M-10

[illegible]

[illegible]

015,1A2 02५V

015,1A2
152E4.13

02458

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास

अर्थात्

महाभारत भाषा

शान्तिपर्व

हिंदी-अनुवादक

स्वर्गीय

पं० कालीचरणजी गौड़

प्रकाशकः—

नवलकिशोर-प्रेस बुकडिपो

हज़रतगंज, लखनऊ

भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास

अर्थात्

महाभारत भाषा

शान्तिपर्व

जिसमें

राज-धर्म, आपद्धर्म और मोक्ष-धर्म का अति विस्तार
के साथ वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवादक :—

कोनिंग कॉलेज, लखनऊ के भूत पूर्व संस्कृत-प्रोफेसर

स्वर्गीय पं० कालीचरणजी चौरासिया गौड़

चतुर्थावृत्ति

पृष्ठ
... १
... ४
... ६
... ८
... ९
... १०
. ११
१४
१६
१८
२०
२२
२३
२४
२६
२९
३१
३३
समर
का रोदन सुनकर युधिष्ठिर का
र्णन ...
का धनादिक संचयनिषे
, विराट्, द्रुपद, व
ना वर्णन
नुओं
जैस
हास
र को

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक १०८८
दिनांक

015,1A2
152E4.13

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी ॥
आगत क्रमांक 0259
दिनांक 2615

Pt XIII

शान्तिपर्व भाषा का सूचीपत्र ।

राजधर्म ।

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	कर्णाभिज्ञान वर्णन	१
२	कर्ण को शाप देना वर्णन	४
३	भार्गवोक्त कर्णशाप वरप्रदान वर्णन	६
४	कर्णवीरता वर्णन	८
५	मृतककर्ण वीरता वर्णन	९
६	युधिष्ठिरदत्तस्त्रीशाप वर्णन	१०
७	युधिष्ठिर परिदेवन वर्णन	११
८	युधिष्ठिरप्रति अर्जुनराजधर्म वर्णन	१४
९	युधिष्ठिर ज्ञान वर्णन	१६
१०	युधिष्ठिर व भीमसेन का परस्पर ज्ञान वर्णन	१८
११	ऋषि शकुनी संवादकथन वर्णन	२०
१२	नकुल का अर्जुन से गृहस्थाश्रमधर्म वर्णन	२२
१३	सहदेववाक्य वर्णन	२३
१४	द्रौपदीवाक्यकथन वर्णन	२४
१५	अर्जुनवाक्य वर्णन	२६
१६	भीमसेनवाक्य वर्णन	२९
१७	युधिष्ठिर का ज्ञान वर्णन	३१
१८	अर्जुनवाक्य वर्णन	३३
१९	युधिष्ठिरवाक्य वर्णन	३५
२०	युधिष्ठिरप्रति देवस्थान ऋषि का वचन	३६
२१	देवस्थान ऋषि का संतोष के विषय में इतिहास कहना	३७
२२	युधिष्ठिर प्रति अर्जुन का क्षत्रियधर्म कहना	३९
२३	युधिष्ठिर को गृहस्थ धर्म में स्थित रहने के लिये व्यासजी का समझाना	३९
२४	युधिष्ठिर को राज्य करने के लिये व्यास का समझाना	४२
२५	पति और पुत्रों के निमित्त स्त्रियों का रोदन सुनकर युधिष्ठिर का व्याकुल होना व व्यासजी का धैर्य्य देना वर्णन	४३
२६	अर्जुन प्रति युधिष्ठिर का धनादिक संचयनिषेध व वैराग्यनिरूपण वर्णन	४६
२७	अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, विराट्, द्रुपद, वृषसेन इत्यादिक के मारे जाने में युधिष्ठिर का शोक करना वर्णन	४८
२८	ज्ञाति बन्धुओं के मरने से शोक में मग्न युधिष्ठिर का शोक व्यासजी को दूर करना व जिसतरह से अश्मनाम ऋषि करके राजा जनक का दुःख दूर हुआ वह इतिहास वर्णन करना	४९
२९	युधिष्ठिर को शोक में मग्न देखकर उनके समझाने के लिये अर्जुन का श्रीकृष्णजी से कहना व श्रीकृष्णजी का राजा हिरण्यगर्भ व राजा अतिथि व राजा अंगबृहद्रथ व राजा शिबि इत्यादिक अनेक मरे हुये राजाओं का हाल कहकर युधिष्ठिर को समझाना	५३

अध्याय विषय पृष्ठ

३० युधिष्ठिर का श्रीकृष्णजी से हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति पूछना व श्रीकृष्णजी का जिस तरह सञ्जय की पुत्री व नारद का विवाह हुआ व नारद व पर्वत ऋषि का परस्पर में शाप व मोक्ष हुआ है वर्णन करना व हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति नारदजी से पूछने को आज्ञा देना ६१
३१ श्रीकृष्णजी की आज्ञा से युधिष्ठिर का नारदजी से सुवर्णष्ठीवी के जन्म का हाल पूछना व उनका आद्योपान्त से वर्णन करना ६३
३२ व्यासजी का युधिष्ठिर से राजधर्म कहकर धर्मनाशक दुर्योधन आदि के मारेजाने का दुःख दूर कराना व राज्य करने के लिये सम्मति देना ... ६५
३३ युधिष्ठिर का व्यासजी से कहना कि मैंने राज्यके लोभसे सहस्रों ज्ञाति बन्धुओं का वध करवाया कि जिस पापसे मुझको अवश्य घोर नरक होगा इसलिये मैं राज्य नहीं करूंगा व व्यासजी का समझाकर अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा देना वर्णन ६६
३४ युधिष्ठिर का व्यासजी से यह पूछना कि कौन कर्म करके मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता व कौन कर्म करके उससे उद्धार होता है व व्यासजी का इन सब बातों का उत्तर देना वर्णन ६९
३५ व्यासजी का ब्रह्महत्यादिक अनेक पाप छूटने की विधि युधिष्ठिर से वर्णन करना ७१
३६ युधिष्ठिरजी का व्यासजी से भक्ष्य अभक्ष्य व पात्र अपात्र व भली बुरी वस्तु को पूछना व व्यासजी का इस विषय में एक इतिहास जिसमें कि सिद्धों का व मनुजी का संवाद है वर्णन करना ७४
३७ युधिष्ठिर का व्यासजी से सम्पूर्ण राजधर्म व चारों वर्ण के सब धर्मों का हाल पूछना व व्यासजी का भीष्मपितामह से पूछने की सलाह देना व व्यासजी व श्रीकृष्णजी की आज्ञा से युधिष्ठिर इत्यादिक का हस्तिनापुर को जाना ... ७७
३८ युधिष्ठिर को हस्तिनापुर में आये हुये देखकर सम्पूर्ण प्रजा को आनन्द मनाना व धर्मराज को राजगृह में आकर गृह के सब देवताओं की पूजा करना व ब्राह्मणों का आशीर्वाद लेकर उनको दान मान से पूर्ण कर प्रसन्न करना व चार्वाक राक्षस का भस्म करना ... ...
३९ चार्वाकराक्षस के मरने पर श्रीकृष्णजी करके युधिष्ठिर का दुःख छुड़ाना ... ७९
४० श्रीकृष्णजी के समझाने से युधिष्ठिर का शोक दूर होकर गद्दीपर बैठना व धौम्य पुरोहित का हवन कराना व पाञ्चजन्य शंख करके श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर को अभिषेक करना ८१
४१ युधिष्ठिर का सब प्रजाओं से धृतराष्ट्र की आज्ञा मानने का हुकम देना व अपने भाई भीमसेन को युवराज पदवी पर नियत करके और सब भाई व मित्रों को यथायोग्य अधिकार देना ८१
४२ युधिष्ठिर का उन २ जातिवालों के श्राद्धों को पृथक् २ करवाना जोकि युद्ध में मारे गये थे व पुत्रों के श्राद्धों को राजा धृतराष्ट्र का अपने हाथ से करके दुःखी अन्धे गरीबों को द्रव्य देना वर्णन ८३
४३ राजा युधिष्ठिर का श्रीकृष्णजी की बहुत प्रकार से स्तुति करना वर्णन ८४
४४ युधिष्ठिर का भीमसेन को दुर्योधन का महल व अर्जुन को दुश्शासन का महल व नकुल को दुर्मर्षण का महल व सहदेव को दुर्मुख का महल देना वर्णन ... ८४
४५ जनमेजय का वैशम्पायन से युधिष्ठिर ने राज्य पाकर जो जो कर्म किये उसका हाल पूछना व वैशम्पायन को उनके प्रश्न का उत्तर देना वर्णन ... ८५
४६ युधिष्ठिर का श्रीकृष्णजी से राजधर्म व चारों आश्रमों का हाल पूछना व श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर को भीष्मपितामह से पूछने की आज्ञा देना व युधिष्ठिर को विनय करके भीष्म के पास श्रीकृष्ण को भी लेकर जाना ... ... ८६ ... ८७

अध्याय विषय पृष्ठ

४७ जनमेजय का वैशम्पायन से पूछना कि शरशय्या पर सोनेवाले भीष्मजी ने किस प्रकार से कौन से योग को धारण करके देह को त्यागा व वैशम्पायन को इसका उत्तर देना ८९
४८ हस्तिनापुर से पांचों भाई युधिष्ठिर व श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र में आना व मरे हुये क्षत्रियों में से परशुराम के शरीर को देखकर श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से कहना कि इसने २१ बार पृथिवी को निक्षत्र किया इस पर युधिष्ठिर का पूछना कि जव २१ बार पृथिवी निक्षत्र हुई तो अब कहां से आये ९५
४९ श्रीकृष्णजी का परशुराम के पराक्रम व प्रभाव व जन्म को युधिष्ठिर से वर्णन करना ९५
५० युधिष्ठिर इत्यादिक का श्रीकृष्ण समेत भीष्म के पास जाना व श्रीकृष्ण का भीष्म की प्रशंसा करना वर्णन... ... ... १००
५१ भीष्मपितामह और श्रीकृष्णजी की वार्तालाप में श्रीकृष्णजी का कहना कि केवल तीस दिन आपकी मृत्यु के शेष हैं उत्तरायण सूर्यों में होगी १०२
५२ भीष्मपितामह और श्रीकृष्णजी के वार्तालाप में व्यासादि महर्षियों का वेद के ऋचाओं से श्रीकृष्णजी का पूजन करना व आकाश से देवताओं का पुष्प वर्षाना १०३
५३ श्रीकृष्णजी का हस्तिनापुर में जाना व रात्रि विताकर प्रातःकाल युधिष्ठिरादि पांचों भाइयों को रथों में बैठाकर भीष्मजी के पास आना १०५
५४ राजा लोगों को भीष्मजी से राजधर्म पूछना व श्रीकृष्णजी का भीष्मजी से कहना कि आप युधिष्ठिरादि राजाओं से राजधर्म उपदेश कीजिये १०६
५५ भीष्मजी से श्रीकृष्ण का कहना कि युधिष्ठिर इस लज्जा से आप के सम्मुख नहीं होते हैं कि मैंने राज्य लोभ से गुरुओं को युद्ध में मारा यह सुन के भीष्मजी को युधिष्ठिर की प्रशंसा करनी कि युद्ध ही मुख्य क्षत्रियों का धर्म है व जो प्रश्न पूछना हो निडर होके पूछिये १०८
५६ युधिष्ठिर का भीष्मजी से राजधर्म पूछना और भीष्मजी का यह कहना कि राजा को नौकरों पर मृदु स्वभाव होने से बहुत बुराइयां होती हैं ११०
५७ भीष्मजी का युधिष्ठिर से राजधर्म में यह कहना कि राजा को बड़े विचार से दण्ड्यपुरुषों को दण्डादि देना चाहिये इसमें देखो बाहु राजा ने अपने बड़े पुत्र असमंजस को और उद्दालक ऋषि ने श्वेतकेतु अपने पुत्र को पुरवासियों की वृद्धि के लिये त्यागा है ११४
५८ भीष्मजी का युधिष्ठिर से राजधर्म में यह कहना कि अच्छे धार्मिक और राजनीति से राज्य करनेवाले राजा की बृहस्पति व भरद्वाजादि ऋषीश्वर प्रशंसा करते हैं ११६
५९ भीष्मजी का युधिष्ठिर से राजधर्म में यह कहना कि ब्रह्माजी ने राजधर्म में लाख अध्याय बनाये उसीको बृहस्पति आदि देवोंने संक्षेप किया है ११८
६० युधिष्ठिर से भीष्मजी का यज्ञ का वृत्तांत कहना १२६
६१ भीष्मजी का राजा युधिष्ठिर से ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इन चारों आश्रमों के कर्मों को सुनाना १२९
६२ युधिष्ठिर का भीष्मजी से राजाओं को सुखदायी उत्तम फलदाता हिंसारहित धर्म पूछना और भीष्मजी का वर्णन करना १३०
६३ भीष्मजी का युधिष्ठिर से ब्राह्मणों के करने वा न करने योग्य बातों का वर्णन १३१
६४ भीष्मजी का युधिष्ठिर से क्षत्रियधर्म की प्रशंसा करना और यह भी कहना कि चारों आश्रमियों के धर्म भी इसीमें हैं १३३

अध्याय	विषय	पृष्ठ
६५	भीष्मजी का क्षत्रियधर्म ही सब धर्मों से उत्तम कहना और युद्ध में सन्मुख देह त्यागना यह सर्वोपरि धर्म वर्णन करना	१३५
६६	भीष्मजी का युधिष्ठिर से प्रजापालन ही में चारों आश्रम और वर्णों के धर्मों का उपदेश करना	१३८
६७	युधिष्ठिर का भीष्मजी से देश के बड़े धर्म को पूछना और भीष्मजी का राजा मनु के वृत्तान्त को कहके देशधर्म को कहना	१४०
६८	युधिष्ठिर का भीष्मजी से यह कहना कि ब्राह्मणों ने राजा को क्या कहा तब भीष्मजी का राजा की राजनीति से रक्षा करना यह परमधर्म वर्णन करना	१४२
६९	युधिष्ठिर का भीष्मजी से राज्य के सम्पूर्ण प्रबन्ध और रीतों को पूछना और भीष्मजी का सुनाना	१४५
७०	युधिष्ठिर का भीष्मजी से राजाओं की राजनीति पूछना और भीष्मजी का सुनाना	१५०
७१	युधिष्ठिर का भीष्मजी से क्षत्रियों के सनातन धर्मों को पूछना कि किस तरह से राजा शोकरहित होता है व भीष्मजी का वर्णन करना ...	१५१
७२	भीष्मजी का युधिष्ठिर से पूरूरवा, पैल और वायु के संवाद द्वारा जैसा पुरोहित चाहिये उसका वर्णन करना	१५३
७३	भीष्मजी का युधिष्ठिर से बहुश्रुत और महाप्रभावान् धर्मार्थ जाननेवाला पुरोहित राजा को योग्य है यह सुनाना	१५४
७४	कुबेर और मुचुकुन्द का वार्तालाप वर्णन करना	१५७
७५	भीष्म और युधिष्ठिर का संवाद व ब्राह्मणधर्म व क्षत्रियधर्म वर्णित है ...	१५८
७६	युधिष्ठिर व पितामहसंवाद और राजाओं को ब्राह्मण की रक्षा करना व ब्राह्मण को जो कर्म करने योग्य हैं	१६०
७७	युधिष्ठिर व भीष्मसंवाद और राजा को जैसी २ द्रव्य ग्रहण करना चाहिये और सब केकय देश के राजा का वृत्तान्त वर्णित है	१६१
७८	युधिष्ठिर व भीष्मपितामहसंवाद और जो चीज़ें ब्राह्मणों के बेंचने योग्य हैं और जिस प्रकार ब्राह्मण की रक्षा राजा को करना चाहिये सो सम्पूर्ण बातें वर्णित हैं	१६३
७९	युधिष्ठिर व भीष्मसंवाद और तप, यज्ञ व सत्य बोलने का माहात्म्य वर्णित है	१६६
८०	युधिष्ठिर व भीष्मपितामहसंवाद	१६७
८१	युधिष्ठिर व भीष्मसंवाद व कृष्ण नारदसंवाद व कृष्णजी ने नारद से सम्पूर्ण वृत्तान्त दुःख व सुख का पूछा है	१७०
८२	कालक वृक्षोपनाम मुनि व कौशल राजा का संवाद वर्णित है ...	१७२
८३	युधिष्ठिर ने भीष्मजी से समासद् व युद्ध के सहायक व सुहृज्जन सेना के अधिकारी व मन्त्रीलोग जैसे राजाओं को अनुमति देने योग्य होते हैं सो वर्णित है	१७५
८४	बृहस्पतिजी व इन्द्र का संवाद और मीठे वचन बोलने से जो फल होता है सो वर्णित है	१७६
८५	युधिष्ठिर ने भीष्मजी से प्रजा का पालन और जिस प्रकार राजा को प्रजा पर न्याय करना चाहिये सो पूछना व भीष्मजी का युधिष्ठिर प्रति वर्णित है	१८०
८६	युधिष्ठिर ने भीष्म से उत्तम पुर में रहने के योग्य और किस स्थान पर रहना चाहिये ये सम्पूर्ण बातें पूछीं सो भीष्मजी ने युधिष्ठिर प्रति वर्णन कीं	१८२
८७	युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह से देश के पालन व स्वाधीन करने में जो विचार करने योग्य हैं सो पूछे व भीष्मजी ने युधिष्ठिर प्रति वर्णन किये ...	१८४
८८	युधिष्ठिर का भीष्मपितामह से पूछना कि जब समर्थ राजा खजाने की इच्छा करे व भीष्म का युधिष्ठिर प्रति वर्णन करना	१८६

अध्याय	विषय	पृष्ठ
८९	भीष्मजी ने युधिष्ठिर को उपदेश किया कि वनस्पति व खाने के योग्य जो पदार्थ व ब्राह्मणों के अर्थ जो जो पदार्थ भक्ष्य व सम्पूर्ण जो धर्मयुक्त की बातें की हैं सो युधिष्ठिर प्रति वर्णन किया	१८८
९०	जो ब्रह्मर्षि अंगिरावंशी उतथ्य ऋषि ने युवनाश्व के पुत्र मान्धाता के प्रति जो बातें व उपदेश किया वही भीष्मजी ने युधिष्ठिर प्रति वर्णन किया ...	१९०
९१	भीष्मजी ने युधिष्ठिर को उपदेश किया कि जिस प्रकार उतथ्य ऋषि के वचनों को सुनकर मान्धाता ने शंकारहित सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय किया उसी प्रकार हे राजन् आप भी धर्म से पृथ्वी की रक्षा करो यह कथा वर्णित है ...	१९२
९२	युधिष्ठिर की भीष्मजी से धर्मप्रवृत्त वार्त्ता पूछना व भीष्मजी का युधिष्ठिर प्रति एक प्राचीन इतिहास वर्णन करना जिसको ब्रह्मर्षि वामदेवजी ने राजा वसुमता से धर्मयुक्त बातें वर्णन कीं सो कथा वर्णित है	१९६
९३	वामदेव ऋषि ने राजा वसुमता से सम्पूर्ण बातें वर्णन कीं जो कि निर्बल मनुष्यों पर राजा लोग अधर्म करते हैं कि जिनके कारण से कुल के लोग भी उसी कर्म के कर्त्ता होते हैं सो वर्णन है	१९७
९४	भीष्मजी ने युधिष्ठिर को उपदेश किया कि जिस प्रकार वामदेवजी के वचनों को मानकर राजा ने उन सब बातों को किया इसी प्रकार जो तुम भी करो तो निस्सन्देह दोनों लोक में विजय को प्राप्त करोगे ये सम्पूर्ण बातें वर्णित हैं ...	१९९
९५	युधिष्ठिर ने भीष्मजी से सम्पूर्ण क्षत्रिययुद्ध की बातें पूछीं यह कथा वर्णित है ...	२००
९६	भीष्मजी का राजा युधिष्ठिर से यह व्याख्यान वर्णन करना कि जो राजा पृथ्वी को अधर्म से विजय करता है और जिस प्रकार इन्द्र ने व राजा प्रतर्दन ने पृथ्वी को विजय किया और जिस प्रकार राजा दिवोदास ने अग्निहोत्र के बचे हुये हव्य को भोजन किया	२०१
९७	युधिष्ठिर ने भीष्मजी से सम्पूर्ण क्षत्रियधर्म व जैसे २ मनुष्य युद्ध में लड़ने योग्य होते हैं ये सम्पूर्ण बातें भीष्मजी ने युधिष्ठिर के प्रति वर्णन कीं ...	२०३
९८	राजा अम्बरीष व इन्द्र का संवाद और जो लोग युद्ध छोड़कर मुख मोड़कर भागते हैं ये सब बातें भीष्मजी ने युधिष्ठिर प्रति वर्णन कीं ...	२०५
९९	राजा प्रतर्दन व मिथिलापुरी के राजा जिस प्रकार युद्ध कर मोक्ष को प्राप्त हुये वह सम्पूर्ण कथा भीष्म ने युधिष्ठिर से कही	२०८
१००	इस अध्याय में युधिष्ठिर ने भीष्मजी से विजय की इच्छा करने व सम्पूर्ण उत्तम २ मनुष्यों को जो युद्ध के योग्य होते हैं ये सम्पूर्ण बातें भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहीं	२०९
१०१	युधिष्ठिर का भीष्मजी से सौवीरदेश इत्यादि के राजाओं का पराक्रम और शूरता पूछना	२१२
१०२	युधिष्ठिर का भीष्मजी से सेनाओं का उत्तम लक्षण पूछना	२१३
१०३	युधिष्ठिर का भीष्मजी से पृथ्वी के राजाओं का मृदुल और कठिन स्वभाव का बर्ताव बृहस्पति और इन्द्र का प्रश्नोत्तर पूछना	२१६
१०४	युधिष्ठिर का भीष्मजी से खजाना और सेना से रहित धर्मात्मा राजाओं का आचरण पूछना और क्षेमदर्शी राजा का इतिहास भीष्मजी का वर्णन करना	२१९
१०५	मुनि का भीष्मजी से क्षत्रियों के धर्म का और वीरता इत्यादिक कथाओं को वर्णन करना	२२१
१०६	भीष्मजी का राजा युधिष्ठिर से ब्राह्मण के कहे हुये को राजा जनक का मानना व कौशल राजा को अपनी कन्या विवाह देना वर्णन	२२३
१०७	युधिष्ठिर का भीष्मजी से तीनों वर्णों का धर्म और आजीविका का लक्षण पूछना	२२५

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१०८	भीष्म का युधिष्ठिर से माता पिता और गुरु इत्यादिकों के बिषे प्रीति और धर्म वर्णन करना	२२७
१०९	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से सत्य असत्य और प्राचीन धर्मों का पूछना ...	२२९
११०	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से जीवों के दुःखी होने का कारण पूछना ...	२३१
१११	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से व्याघ्र और शृगाल का प्रश्नोत्तर और पौरक नाम राजा के पूर्व्व जन्म की कथायें पूछना	२३२
११२	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से राजाओं का धर्म और ऊंट का वृत्तान्त ऊंट का तपस्या करना व ब्रह्माजीका प्रसन्न होना वर्णित है	२३८
११३	युधिष्ठिर करके भीष्म से नदी और समुद्र का इतिहास पूछना	२३९
११४	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से सभा के मध्य दुष्टजनों के वचन सहने का लक्षण और कार्यसाधन वर्णित है	२४०
११५	युधिष्ठिर करके भीष्म से हितकारी और मंगलयुक्त वस्तु और प्रजा के सुख के वास्ते प्रश्न करना	२४१
११६	भीष्मजी करके उत्तम मुनियों का वर्णन किया हुआ प्राचीन इतिहास परशुराम से	२४३
११७	भीष्म करके मतवाले हाथी का शब्द सुनके व्याघ्र का भयभीत होना और मुनिकी शरण लेना इत्यादिक कथायें वर्णित हैं	२४४
११८	भीष्मजी करके पूर्वरूप कुत्ते का पाना और राजाओं की नीति वर्णन ...	२४५
११९	भीष्मजी करके कुत्तों के समान नौकरों का नियत करना	२४६
१२०	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से अनेक प्रकार से प्रजाओं का पालन और राजाओं को बहुतसा रूप धारण वर्णित है	२३८
१२१	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से अनेक प्रकार का दण्ड और धर्म का विषय पूछना	२५२
१२२	भीष्मजी करके प्राचीन इतिहास और रामचन्द्र का मुंजावट में जटा हरण और क्रमपूर्वक देवताओं का अधिपति होना वर्णन है	२५५
१२३	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से धर्म अर्थ की उत्पत्ति और तीनि प्रश्न के बाद चौथे प्रश्न में कामन्दक ऋषि और आगरिष्ट राजा का प्रश्नोत्तर वर्णन ...	२५८
१२४	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से धर्म का कारण और धृतराष्ट्र से प्रश्न करना दुर्योधन का इत्यादिक वर्णित है	२५९
१२५	युधिष्ठिर करके भीष्मजी से देह में शील का प्रधान कहना व सुमित्र और ऋषभ का इतिहास इत्यादिक कथा वर्णन हैं	२६३
१२६	भीष्मजी करके राजा का महावन में प्रवेश और मुनि लोगों का कारण पूछना	२६४
१२७	ऋषभदेव व राजा सुमित्र के संवाद में बदरीवन नारायण के आश्रम को तनु ऋषि को जाना व संवाद व देवमणि राजा को पुत्र के ढूंढ़ने को जाना व तनु ऋषि व राजा का संवाद	२६५
१२८	देवमणि का तनु ऋषि से पुत्र को पूछना व तनु ऋषि करिकै आशा व अनाशा को वर्णन व तनु ऋषि करिकै राजपुत्र को बुलाना	२६६
१२९	युधिष्ठिर के प्रश्न से भीष्म करिकै गौतम व यमराज का संवाद ...	२६८
१३०	भीष्म करिकै आपत्तिकाल में क्षत्री राजा व ब्राह्मण की जीविका व राजा करिकै खजाने की वृद्धि करना	२६८

इति राजधर्म।

आपद्धर्म्म ।

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	शत्रु की चढ़ाई आदि आपत्ति में प्रजा से धन ले व साम दण्ड भेद से कोश व देश की रक्षा करना	२७३
२	आपत्ति आने पर ब्राह्मण के कुटुम्ब की रक्षा करना व राजा को धर्मयुक्त कोश की रक्षा व गुरुआदिकों को अदण्ड कहना	२७४
३	धन के इकट्ठा करने का व खर्च करने व चौरवत् वृत्ति करनेवालों को दण्ड देना व तिनकी निन्दा	२७६
४	बल व धनकी प्रशंसा व तिन करिकै अनेक कार्यों की सिद्धि	२७७
५	कायव्य ब्राह्मण का चोरों को उपदेश करना व उपदेश मान के चोरी को छोड़ पापों से निवृत्त होना	२७८
६	भीष्मजी करिकै राजाको धनरूपी दण्ड लेने योग्य पुरुषों का वर्णन ...	२८०
७	दीर्घसूत्री के करने न करने योग्य कर्म के विषय में इतिहास वर्णन ...	२८०
८	युधिष्ठिर करिकै भीष्मजी से आपत्ति से ग्रसित राजा के निर्वाह के लिये व आपत्तिकाल में शत्रु मित्र का विभाग पूछना व भीष्म करिकै मूस बिलार के इतिहास द्वारा उत्तर वर्णन करना	२८१
९	भीष्मजी से विश्वास के विषय में राजा का प्रश्न करना व राजा ब्रह्मदत्त के महल में राजा व पूजनी पक्षी के संवाद करिकै विश्वास का उत्तर देना ...	२९२
१०	युधिष्ठिर करिकै चोरों से ग्रसित राज्यको बर्त्तने का उपाय पूछना व भीष्म करिकै राजा शत्रुगय व भारद्वाज के संवाद में वर्णन करना	२९८
११	युधिष्ठिर करिकै अकाल में धर्म व मर्याद के नाश होने पर उपाय पूछना व भीष्म करिकै इसही विषय में विश्वामित्र व चांडाल का संवाद वर्णन है ...	३०३
१२	राजा युधिष्ठिर का भीष्मजी से उल्लंघन न होनेवाली मर्य्यादा को पूछना	३०९
१३	कपोत करिकै शरणागत में आये हुये शत्रुको अपने मांस से पोषण व रक्षा करना	३१२
१४	तथा कपोत व कपोतिनी का विलाप वर्णन	३१३
१५	तथा कपोत कपोतिनी का संवाद	३१४
१६	कपोत का शरण में आये व्याधको अग्नि से तपाना व अपने मांस से तृप्त करना	३१५
१७	कपोत की दशा देख के व्याध को ज्ञान होना	३१६
१८	पतिको मरा देख कपोतिनी का भस्म होना	३१७
१९	कपोत कपोतिनी का स्वर्ग में देख व्याधका त्यागी होकर दावाग्नि में भस्म होकर स्वर्ग को जाना	३१७
२०	राजा जनमेजय का भ्रूणहत्या के भय से वनको जाना व वन में शौनक के पुत्र इन्द्रोत से संवाद होना	३१८
२१	जनमेजय व शौनक के संवाद में जनमेजय का अपना को निन्दा के योग्य कहना व ब्राह्मणों से विरोध न करने की प्रतिज्ञा करना	३१९
२२	शौनक का जनमेजय से राजा ययाति का इतिहास वर्णन करना व जनमेजय का यज्ञ करके अपने नगर को लौटना	३२१
२३	युधिष्ठिर का भीष्म से प्रश्न करना कि आपने किसीको मर करके फिर जो आना देखा या सुना है व भीष्म को एक गृध्र व शृगाल का इतिहास कहकर समझाना	३२३
२४	युधिष्ठिर का भीष्म से शत्रुविजय का हेतु पूछना व भीष्मजी का शाल्मली वृक्ष और वायु का इतिहास वर्णन करना	३२९
२५	शाल्मलि वृक्ष को वायु से प्रबल बनना व नारदजी का वायु को प्रबल बखान कर शाल्मलि को समझाना	३३०

अध्याय विषय पृष्ठ
२९ नारदजी का वायुके पास जाना व शाल्मलि वृक्ष का हाल कहना और वायुका उस वृक्ष के पास आना व शाल्मलि वृक्ष का पछिताना ३३०
२७ शाल्मलि वृक्षको अपने पत्ते व डारैं गिराकर वायुके अधीन होकर नम्र वचन बोलना ३३१
२८ युधिष्ठिर का भीष्मजी से विशेष पाप का स्थान पूछना व भीष्मजी का उत्तर देना ३३२
२९ युधिष्ठिर का भीष्मजी से अज्ञान स्थान के विषय में पूछना व उनका उत्तर देना ३३४
३० युधिष्ठिर का भीष्मजी से संसारी लोगों में तपस्या करनेवालों का हाल पूछना व उनका उत्तर देना ३३५
३१ भीष्मजी का राजा युधिष्ठिर से तपका माहात्म्य कहना ३३७
३२ युधिष्ठिर का भीष्मजी से धर्म व सत्य का लक्षण पूछना व उनको उत्तर देना ३३८
३३ युधिष्ठिर का भीष्मजी से काम क्रोध आदिक के उत्पन्न होने का हाल पूछना व उनको विस्तार से वर्णन करना ३३९
३४ युधिष्ठिर का भीष्मजी से निर्दय मनुष्य के विषय में पूछना व भीष्मजी का विधिपूर्वक वर्णन करना ३४१
३५ भीष्मजीका युधिष्ठिर से दानलेने योग्य ब्राह्मणों का हाल और कामी अथवा निर्दय तदुपरि और अपराधियों के हेतु युक्ति वर्णन करना ... ३४२
३६ युधिष्ठिर का भीष्मजी से खड्ग युद्ध व उसकी उत्पत्ति का हाल पूछना और भीष्मजीका मय इतिहास सविस्तार वर्णन करना ३४६
३७ युधिष्ठिर इत्यादिक का भीष्मजी से काम क्रोध इत्यादिक के जीतने का उपाय पूछना ३५०
३८ युधिष्ठिर का भीष्मजी से मित्रता करनेवाले पुरुषों के लक्षण पूछना व भीष्मजी का एक ब्राह्मण व साह का इतिहास वर्णन करना ३५३
३९ भीष्मजी का युधिष्ठिर से गौतमजी का राजधर्मा के स्थान पर जाने का हाल कहना ३५६
४० राजधर्मा का गौतम के भोजन हेतु मछलियाँ देना व उनके धन प्राप्ति के अर्थ अपने मित्र विरूपाक्ष के पास गौतम को भेजना ३५७
४१ गौतमजी का राजा विरूपाक्ष से सुवर्ण का दान लेना व मार्ग में भोजन हेतु बगुलों के राजा को मारने का विचार करना ३५८
४२ गौतमजी का राजधर्मा को मार के व भून के लेजाना व उसके मित्र राजा विरूपाक्षका शोच करना और राजधर्मा की स्त्रियों का रोदन वर्णन है ३६०
४३ विरूपाक्ष का राजा राजधर्मा की लाश को फूंकना व दाक्षायणी देवी की गौवों के थनों का दूध उसकी चितापर छोड़ना व इन्द्रका आना वर्णित है ... ३६१

मोक्षधर्म पूर्वार्द्ध।

१ राजा युधिष्ठिर का भीष्मजी से श्रेष्ठ धर्मों के विषय में पूछना व उनको आश्रमों का हाल कहना ३६३
२ राजा युधिष्ठिरका भीष्मजी से पूछना कि वृद्धावस्थामें मनुष्य को क्या करना चाहिये और भीष्मजी का इस विषय में पितापुत्र का एक इतिहास वर्णन करना ... ३६८
३ युधिष्ठिर का भीष्मजी से निर्द्धनी के मोक्ष होने का उपाय पूछना व भीष्मजी का संपाक ऋषि का इतिहास वर्णन करना ३७१
४ युधिष्ठिर का भीष्मजी से निर्द्धनी के यज्ञ करने के विषय में पूछना व उनका इतिहास कहकर समझाना ३७३
५ भीष्मजी का युधिष्ठिर से बौद्ध ऋषि और राजा ययाति का संवाद वैराग्य के विषय में कहा हुआ वर्णन करना ३७६

अध्याय विषय पृष्ठ

६ युधिष्ठिर का भीष्म से प्रश्न करना कि किस व्रत और कर्म करने से उत्तम गति मिलती है और भीष्मजी का व्रती मुनि और प्रह्लाद का संवाद वर्णन करना ३७७
७ भीष्मजी का युधिष्ठिर से अजगर व्रतरूप और आत्मभाववाली प्रतिष्ठा के विषय में इन्द्र और काश्यपगोत्री ब्राह्मण का इतिहास वर्णन करना ... ३७९
८ युधिष्ठिर का भीष्मजी से तप और गुरु आदि की सेवा का फल पूछना ... ३८२
९ इस अध्याय में भृगुजी और भारद्वाज का और युधिष्ठिर और भीष्मजी का संवाद और स्थावरजंगम जीवों सहित संसार और पंचतत्त्वों की उत्पत्ति और परिमाण और मुक्त होकर किसमें लय होते हैं यह इतिहास वर्णन है ... ३८३
१० इस अध्याय में जल अग्नि वायु पृथ्वी आदि की उत्पत्ति और भारद्वाज और भृगुजी का संवाद वर्णन है ३८६
११ भृगुजी का भारद्वाज से देह में पंचतत्त्वरूप का वर्णन करना ३८७
१२ भारद्वाज का भृगुजी से पंचतत्त्व देह में निवास करनेवाली अग्नि के प्रकट होने के विषय में प्रश्न करना ३८९
१३ इस अध्याय में भारद्वाज और भृगुजी का संवाद और जीव का वर्णन ... ३९१
१४ भारद्वाज का भृगुजी से जीव की मुख्यता का वृत्तान्त पूछना ३९२
१५ भृगुजी का भारद्वाज से चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनकी उत्पत्ति और स्वभाव वर्णन करना ३९४
१६ भृगुजी का भारद्वाज से चारोंवर्णोंका कर्म धर्म विस्तारसहित कहना ... ३९६
१७ भृगुजी का भारद्वाज से धर्मों के रूपों का वर्णन करना ३९७
१८ भृगुजी का भारद्वाज से चारों आश्रमों का कर्म धर्म और दान वेदपाठ जप होम आदि का फल पृथक् २ वर्णन करना ३९९
१९ भृगुजी का भारद्वाज से वानप्रस्थ संन्यास का कर्म धर्म वर्णन करना ... ४०१
२० भीष्मजी का युधिष्ठिर से नित्यक्रिया विस्तार सहित वर्णन करना ... ४०४
२१ भीष्मजी का युधिष्ठिर से पंचतत्त्व इन्द्रियां और गुणों का वर्णन करना ... ४०६
२२ भीष्मजी का युधिष्ठिर से चारप्रकार के ध्यान योगों का वर्णन करना ... ४११
२३ युधिष्ठिर का भीष्मजी से जप करनेवालों का फल और निवास पूछना ... ४१३
२४ भीष्मजीका युधिष्ठिर से जप करनेवालों की दूसरी गति विस्तारपूर्वक वर्णन करना ४१५
२५ युधिष्ठिर का भीष्मजी से प्रश्न करना कि किस प्रकार से जप करनेवाला नरक को जाता है ४१६
२६ भीष्मजी का युधिष्ठिर से जप करनेवालों के फल के विषय में काल मृत्यु यमराज ब्राह्मण और राजा इक्ष्वाकु का इतिहास वर्णन करना ... ४१९
२७ युधिष्ठिर का भीष्मजी से राजा इक्ष्वाकु और ब्राह्मण का वार्तालाप पूछना ... ४२४
२८ युधिष्ठिर का भीष्मजी से अग्निहोत्रादि के नियमों का फल व जीवात्मा को जानने के विषय में प्रश्न करना ४२५
२९ मनुजी का प्रजापति से ब्रह्म और माया का प्रभाव व सृष्टि प्रलय व सूक्ष्म स्थूलरूप का वर्णन करना ४२८
३० मनुजी का प्रजापति से देवता, मनुष्य, राक्षस व आकाशादि पंचतत्त्वों का हाल वर्णन करना ४३१
३१ मनुजी का प्रजापति से ज्ञान द्वारा ब्रह्मको प्राप्त करने का हाल वर्णन करना ... ४३३
३२ मनुजी का प्रजापति से धर्म से वैराग्य को प्राप्त होकर मुक्ति का पाना वर्णन ... ४३५
३३ मनुजी का प्रजापति से प्रलय के होने पर अज्ञानी मनुष्यों को प्रकृति में लय होने और ज्ञानी को ब्रह्म में मिलने का हाल वर्णन ४३७

अध्याय	विषय	पृष्ठ
३४	भीष्मजी का युधिष्ठिर से श्रीकृष्णजी के सगुणरूप चरित्रों को वर्णन करना ...	४३९
३५	युधिष्ठिर का भीष्मजी से तेजस्वी ऋषीश्वरों के लक्षण पूछना व भीष्मजी का विधिपूर्वक वर्णन करना	४४१
३६	भीष्मजी का युधिष्ठिर से वराहरूप नारायण का प्रकट होना व नरकासुर आदि बड़े २ राक्षसों का वध होना वर्णन करना	४४३
३७	भीष्मजी का युधिष्ठिर से शिष्य और गुरु का परस्पर में मोक्षसम्बन्धी प्रश्नोत्तर वर्णन	४४४
३८	भीष्मजी का युधिष्ठिर से सतोगुण व रजोगुण व तमोगुण का प्रभाव वर्णन ...	४४८
३९	भीष्मजी का युधिष्ठिर से पृथक् २ रजोगुण तमोगुण सतोगुण का स्वभावगुण लक्षण वर्णन करना	४४९
४०	भीष्मजी का युधिष्ठिर से काम, क्रोध, लोभ, मोह में संयुक्त मनुष्यों की प्रकृति का वर्णन	४५१
४१	भीष्मजी का युधिष्ठिर से विज्ञानशास्त्ररूप व मोक्ष का उपाय वर्णन ...	४५३
४२	भीष्मजी का युधिष्ठिर से ईश्वर ब्रह्मरूप में प्राप्त होने की विधि वर्णन ...	४५५
४३	युधिष्ठिर का भीष्मजी से विराट्रूप को पूछना व भीष्मजी का विस्तारपूर्वक वर्णन करना	४५८
४४	भीष्मजी का युधिष्ठिर से जीव ईश्वररूप रहित को विभाग समेत वर्णन करना	४६०
४५	युधिष्ठिरजी का भीष्मजी से राजा जनक के मोक्ष होने का हाल पूछना व भीष्मजी का पंचशिख नाम ऋषीश्वर का इतिहास विधिपूर्वक कहकर समझाना वर्णन	४६३
४६	भीष्मजी का युधिष्ठिर से राजा जनक व कपिलदेव मुनिका संवाद वर्णन करना	४६६
४७	युधिष्ठिर का भीष्मजी से सुख दुःख होने का कारण व निर्भय होने का यत्न पूछना व भीष्मजी का जनक व पंचशिख ऋषीश्वर का संवाद कहना ...	४६९
४८	युधिष्ठिर का भीष्मजी से व्रतादिकों का विधान पूछना व भीष्मजी का विधिवत् वर्णन करना	४७०
४९	युधिष्ठिर का भीष्मजी से शुभ अशुभ कर्म के कर्त्ताओं को पूछना व भीष्मजी का इंद्र और प्रह्लाद का संवाद सुनाना	४७२
५०	युधिष्ठिर का भीष्मजी से निर्द्धनी राजाओं के दुःख का कारण पूछना व भीष्मजी का इसी विषय में राजा इन्द्र और बलि राजा का इतिहास वर्णन करना ...	४७४
५१	भीष्मजी का राजा युधिष्ठिर से इन्द्र व बलि का युद्ध वर्णन करना व बलि के अंग से लक्ष्मी का निकलना	४७५
५२	बलि के अंग से निकली हुई लक्ष्मी को देख के राजा इन्द्र का लक्ष्मी से पूछना व उसका उत्तर देना	४८०
५३	भीष्मजी का युधिष्ठिर से निरहंकारता के विषय में एक इतिहास कहना ...	४८२
५४	युधिष्ठिर का भीष्मजी से पूछना कि बन्धुओं समेत राज्य के नष्ट होजानेपर कल्याण करनेवाला क्या है व उनका उत्तर देना ...	४८५
५५	युधिष्ठिर का भीष्मजी से ऐश्वर्य्यवान् होनेवाले व नष्टता को प्राप्त होनेवाले पुरुषों के चिह्नों को पूछना व उनका वर्णन करना	४९१
५६	युधिष्ठिर का भीष्मजी से पूछना कि किस स्वभाव व आचार व विद्या व पराक्रमवाला मनुष्य ब्रह्मलोक को पाता है व भीष्मजी का इस विषय में जैगीषव्य व असितदेवल ऋषि का संवाद वर्णन करना ...	४९६

अध्याय	विषय	पृष्ठ
५७	युधिष्ठिर का भीष्मजी से प्रश्न करना कि कौनसा मनुष्य संसार भरका प्यारा व जीवों का प्रसन्नकर्त्ता सबगुणसम्पन्न है व उनका एक इतिहास जिसमें नारद के विषय में श्रीकृष्ण व उग्रसेन का संवाद है वर्णन करना	४९७
५८	युधिष्ठिर का भीष्मजी से जीवों के आदि अन्त व युग युग के ध्यान, कर्म, काल और अवस्था को पूछना व उनका वर्णन करना	४९८
५९	व्यासजी का शुकदेव से तत्त्वों के विषय में वर्णन करना	५००
६०	व्यासजी का शुकदेव से प्राप्त होनेवाली प्रलय का कहना	५०४
६१	व्यासजी का शुकदेव से सांख्ययोग के अधिकारी का वर्णन करना ...	५०५
६२	व्यासजी का शुकदेव से ब्राह्मणों के कर्मों का वर्णन करना	५०८
६३	व्यासजी का शुकदेव से कैवल्यमोक्ष प्राप्त करनेवाले बारह गुणों का वर्णन करना ...	५०९
६४	शुकदेवजी का व्यासजी से मोक्ष व ज्ञान का हाल पूछना	५१३
६५	व्यासजी का शुकदेव से बहुत से मतों का हाल वर्णन करना	५१६
६६	सांख्य और योग के अन्तर का वर्णन	५१८
६७	सांख्य और योग के अन्तर का वर्णन	५२१
६८	शुकदेवजी का व्यासजी से ब्रह्मज्ञान का हाल पूछना	५२३
६९	शुकदेवजी का व्यासजी से काल से सम्बन्ध रखनेवाले सत्पुरुषों के आचार का पूछना व उनका उत्तर देना	५२५
७०	व्यासजी का शुकदेव से गृहस्थाश्रम का वर्णन करना	५२६
७१	भीष्मजी का युधिष्ठिर से व्यासजी का कहा हुआ वानप्रस्थ आश्रम का हाल वर्णन करना	५२८
७२	व्यासजी का शुकदेव से संन्यास आश्रम का हाल वर्णन करना	५३१
७३	व्यासजी का शुकदेव से प्रकृति के जो देह इन्द्री चित्त आदि विकार हैं उनका वर्णन करना	५३४
७४	शुकदेवजी का व्यासजी से ब्रह्मज्ञान पूछना	५३५
७५	व्यासजी का शुकदेव से ब्रह्मज्ञान का वर्णन करना...	५३७
७६	व्यासजी का शुकदेव से ज्ञान और बुद्धि के विषय में वार्त्ता करना ...	५३९
७७	शुकदेवजी का व्यासजी से उत्तम धर्म को पूछना	५४०
७८	व्यासजी का शुकदेव से ब्रह्मभाव प्राप्त होने की विधि को कहना ...	५४१
७९	व्यासजी का शुकदेव से आत्मज्ञान कहना	५४२
८०	व्यासजी का शुकदेव से जीवन्मुक्त लोगों के लक्षण वर्णन करना	५४४
८१-८२	भीष्मजी का युधिष्ठिर से व्यास के कहे हुए चैतन्य आत्मा की उपाधि रूप आकाशादि के विचार को वर्णन करना	५४५-५४७
८३	युधिष्ठिर का भीष्मजी से प्रश्न करना कि मृत्यु किसकी है और किस पुरुष से उत्पन्न हुई व किस कारण से संसार को मारती है व भीष्मजी का उत्तर देना	५४८
८४	सब जीवों को दुःखी देख कर शिवजी का ब्रह्माजी के पास जाकर प्रार्थना करना	५४९
८५	मृत्यु का स्त्रीरूप होकर ब्रह्माजी के पास जाना व सब मनुष्यों के मारने को अस्वीकार करना और फिर मृत्यु का तप करना वर्णन	५५१
८६	युधिष्ठिर का भीष्मजी से धर्म के विषय में पूछना	५५३
८७	युधिष्ठिर का भीष्मजी से तत्त्वों का हाल पूछना	५५५
८८	भीष्मजी का युधिष्ठिर से तुलाधार व जाजली ब्राह्मण का इतिहास वर्णन करना	५५७
८९	जाजली ब्राह्मण व तुलाधार का प्रश्नोत्तर वर्णन	५५९
९०	जाजली ब्राह्मण से तुलाधार वैश्य का हिंसात्मक यज्ञ व यज्ञ का वृत्तांत कहना ...	५६३
९१	जाजली से तुलाधार का हिंसा की निन्दा व श्रद्धा अश्रद्धा का वृत्तांत कहना ...	५६७

अध्याय विषय पृष्ठ
९२ भीष्मजी का हिंसात्मक धर्म की निन्दा करना ... ५६८
९३ युधिष्ठिर को भीष्मजी से योग्यकर्म की परीक्षा शीघ्र व विलम्ब किस प्रकार करे पूछना और भीष्मजी को चिरकारी ब्राह्मण का इतिहास कहना ... ५६९
९४ भीष्मजी को युधिष्ठिर के हिंसा धर्म अधर्म के प्रश्न में द्युमत्सेन व राजा सत्यवान् का इतिहास कहना ... ५७४
९५ युधिष्ठिर का भीष्मजी से गृहस्थधर्म और योगधर्म इनमें कौन कल्याणदायक ये प्रश्न करना और भीष्मजी को कपिलजी व गौ का संवाद कहना ... ५७७
९६ कपिलजी स्यूमरश्मिजी का आश्रमों के विषय में प्रश्नोत्तर वर्णन ... ५८०
९७ स्यूमरश्मि का कपिलमुनि से ब्रह्ममार्ग के विषय में प्रश्न करना व उनका उत्तर देना ५८५
९८ भीष्मजी का युधिष्ठिर से कुण्डधार नाम मेघ को अपने भक्त का उपकार करना वर्णन ... ५८९
९९ भीष्मजी का युधिष्ठिर से हिंसायुक्त यज्ञ की निन्दा करना ... ५९१
१०० भीष्मजी का युधिष्ठिर से पाप व धर्म व मोक्ष व वैराग्य का वर्णन करना ... ५९३
१०१ भीष्मजी का युधिष्ठिर से योग आचार का वर्णन करना ... ५९४
१०२ भीष्मजी का युधिष्ठिर से नारद व असित देवल का संवाद वर्णन करना ... ५९६
१०३ भीष्मजी का युधिष्ठिर से अनर्थों की हेतु तृष्णा और ममता के दूर करने का उपाय वर्णन करना ... ५९९

मोक्षधर्म उत्तरार्ध ॥

१०४ भीष्मजी का युधिष्ठिर से संन्यासधर्म वर्णन करना ... ६०३
१०५ युधिष्ठिर का भीष्मजी से पंचप्राण बुद्धि मन दशों इन्द्रियों की निन्दा करना व भीष्मजी का मोक्ष के मिलने का उपाय बताना ... ६०४
१०६ शुक्रजी व वृत्रासुर के संवाद में सनत्कुमार को आना व शुक्रजी की आज्ञा से सनत्कुमार का विष्णु भगवान् का माहात्म्य वर्णन करना ... ६०७
१०७ युधिष्ठिर का भीष्मजी से वृत्रासुर व इन्द्र के युद्ध का हाल पूछना व उनका विस्तार से वर्णन करना ... ६१४
१०८ भीष्मजी का युधिष्ठिर से वृत्रासुर के अंग में तप के प्रभाव से जो चिह्न प्रकट हुये उनका वर्णन करना ... ६१६
१०९ युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्मजी का ज्वर की उत्पत्ति वर्णन करना ... ६१९
११० राजा जनमेजय का वैशम्पायन से दक्षप्रजापति के यज्ञ का विध्वंस होने का कारण व फिर यज्ञ पूर्ण होने का वृत्तान्त पूछना व वही हाल भीष्मजी का युधिष्ठिर से वर्णन करना ... ६२२
१११ युधिष्ठिर का भीष्मजी से दक्ष की स्तुति किये हुये शिवसहस्रनामों को पूछना व उनका वर्णन करना ... ६२६
११२ युधिष्ठिर का भीष्मजी से अध्यात्मविद्या का ज्ञान प्राप्त होने के विषय में पूछना व उनका वर्णन करना ... ६३२
११३ युधिष्ठिर का भीष्मजी से सुख दुःख व मृत्यु से भय न होने का उपाय पूछना व भीष्मजी का इसी विषय में नारदजी व समंगऋषि का इतिहास वर्णन करना ६३५
११४ युधिष्ठिर का भीष्मजी से ब्रह्मविद्या की युक्ति प्रधान जानने को पूछना व उनका इसी विषय में नारदऋषि व गालवऋषि का संवाद वर्णन करना ... ६३७
११५ युधिष्ठिर का भीष्मजी से पूछना कि मुझसा राजा किस कर्म को करके संसार के बन्धन से छूटे व भीष्मजी का इस विषय में सगर व अरिष्टनेमि का संवाद वर्णन करना ... ६४१

अध्याय	विषय	पृष्ठ
११६	युधिष्ठिर का भीष्मजी से यह प्रश्न करना कि शुक्रजी दैत्यों के उपकारी व देवतों के अनुपकारी किस कारण से हुये व दैत्य देवतों से शत्रुता क्यों हुई और महातेजस्वी होने पर शुक्रजी का शुक्रनाम क्यों हुआ व भीष्मजी का इन सबका उत्तर देना वर्णन	६४४
११७	युधिष्ठिर का भीष्मजी से इसलोक व परलोक दोनों में परमगति मिलने का उपाय पूछना व भीष्मजी का इस विषय में राजा जनक व पराशर मुनि का संवाद वर्णन करना	६४६
११८	पराशरजी का राजा जनक से योगधर्म प्रवृत्त होने की टीका को वर्णन करना	६४८
११९	पराशरजी का जनक से शुभकर्म करने को वर्णन करना	६५०
१२०	पराशरजी का राजा जनक से दानविषय में वर्णन करना	६५२
१२१	पराशरजी का राजा जनक से धर्म के विषय में वर्णन करना	६५३
१२२	पराशरजी का राजा जनक से तप की प्रशंसा करने के निमित्त गृहस्थाश्रम की निन्दा करना	६५६
१२३	राजा जनक का पराशर से वर्णों में विभाग होने का कारण पूछना व उनका उत्तर देना वर्णन	६५९
१२४	पराशरजी का जनक से श्रेष्ठ युद्ध का वर्णन करना	६६१
१२५	राजा जनक का पराशरजी से कल्याण के साधन को पूछना	६६५
१२६	युधिष्ठिर का भीष्मजी से सत्यता शांतता बुद्धिमत्ता इत्यादिक गुणों का पूछना व भीष्मजी का हंस व साध्यों का संवाद वर्णन करना	६६८
१२७	युधिष्ठिर का सांख्यशास्त्र व योगशास्त्र की विशेषता का पूछना व भीष्मजी का वर्णन करना	६७२
१२८	युधिष्ठिर को भीष्मजी से सांख्ययोग के परमार्थिक पदार्थभाव को मूलसमेत पूछना और भीष्मजी को वशिष्ठजी और राजा कराल जनक का प्रश्नोत्तर वर्णन करना	६७९
१२९	वशिष्ठजी का ज्ञानीपुरुष व अज्ञानीपुरुषका कर्म वर्णन करना	६८३
१३०	वशिष्ठजी को सोलह कलाओं का वर्णन करना	६८६
१३१	राजा जनक और वशिष्ठजी का प्रश्नोत्तर वर्णन	६८७
१३२	वशिष्ठजी को राजा जनक से योगशास्त्र व सांख्ययोग को वर्णन करना ...	६९०
१३३	वशिष्ठजी को जनकजीसे विद्या और अविद्या को क्रमसे वर्णन व प्रकृति और पचीसवां चिदाभास तत्त्वका वर्णन करना	६९५
१३४	वशिष्ठजी को राजा जनक से सतोगुण आदि के प्रभाव का वर्णन करना ...	६९८
१३५	भीष्मजी को युधिष्ठिर से धर्मयोनि व कर्मकी शुद्धि को वर्णन करना ...	७०२
१३६	भीष्मजी और युधिष्ठिर के संवाद में भीष्मजी को याज्ञवल्क्य ऋषि व राजा जनक का प्रश्नोत्तर वर्णन करना	७०४
१३७	याज्ञवल्क्य को राजा जनक से तत्त्वों व कालकी संख्या क्रम से वर्णन करना ...	७०६
१३८	याज्ञवल्क्यजी का राजा जनक से प्रलयका वृत्तांत कहना	७०७
१३९	याज्ञवल्क्यजी को राजा जनक से तमोगुण के लक्षण कहना	७०८
१४०	याज्ञवल्क्यजी को जनकजी से सतोगुण रजोगुण तमोगुण तीनों प्रधानों के गुण वर्णन करना	७१०
१४१	याज्ञवल्क्यजी को राजा जनक से निर्गुणब्रह्म व सगुणब्रह्म का गुण वर्णन करना...	७११
१४२	याज्ञवल्क्य को राजा जनकसे योगज्ञान को मूल से वर्णन करना	७१३
१४३	याज्ञवल्क्यजी को राजा जनक से देह के त्यागनेवाले जीवात्मा व ज्ञानियों के नियत किये हुये मृत्युचिह्न वर्णन करना	७१५

अध्याय विषय पृष्ठ

१४४ याज्ञवल्क्यजी को राजा जनक के पूछे हुये प्रश्न कहना व याज्ञवल्क्यजी ने सूर्य्य-नारायणसे वरदान पाया सो कहना व याज्ञवल्क्य से विश्वावसु ने चौबीस प्रश्न किया उनको उत्तरसंयुक्त वर्णन करना ७१७
१४५ युधिष्ठिर और भीष्मजीके संवाद में भीष्मजीको पंचशिख संन्यासी व राजा जनक का इतिहास कहना ७२५
१४६ युधिष्ठिर और भीष्मजीके संवादमें भीष्मजीको राजा जनक और सुलभ नाम संन्यासी के प्रश्नोत्तर वर्णन करना ७२६
१४७ युधिष्ठिरको भीष्मजी से शुकदेवजीका वैराग्य होना पूछना और भीष्मजी को व्यासजीने शुकदेवजी को उपदेश दिया सो कहना ७३८
१४८ युधिष्ठिरका भीष्मजी से शुकदेवके जन्म की कथा पूछना ७४७
१४९ शुकदेवजी के जन्मकी कथा वर्णन ७४८
१५० शुकदेवजी का पिताकी आज्ञासे मोक्षशास्त्र के पढ़ने को राजा जनक के पास जाना ७५०
१५१ राजा जनक करके पूजित शुकदेवजी का मोक्षशास्त्र के विषय में जनक से प्रश्न करना व राजाका उत्तर देना वर्णन ७५२
१५२ शुकदेवजी का राजा जनकसे बिदा होकर हिमालयकी तरफ़ आना व विष्णुजी का स्वामिकार्त्तिककी फेंकी हुई शक्तिका हिलाना ७५६
१५३ भीष्मजीका युधिष्ठिरसे व्यास व नारदका संवाद वर्णन करना ७५९
१५४ शुकदेवजीके पास नारदजी का आना व वार्तालाप वर्णन करना ७६२
१५५ नारदजी का अप्रिय के नाशके निमित्त शुकदेवजी को एक इतिहास सुनाना ... ७६६
१५६ शुकदेवजी का नारदजी से सुख दुःख का वृत्तांत पूछना और नारदजी को वर्णन करना फिर शुकदेवजीको व्यासजीसे बिदा होकर कैलास शिखर पर जाना ... ७६८
१५७।१५८ भीष्मजी का युधिष्ठिर से शुकदेवजी के तपका वर्णन करना ... ७७२।७७४
१५९ युधिष्ठिर का भीष्मजी से पूछना कि किस देवता की कृपा से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है व उनका इतिहासों द्वारा समझाना ७७६
१६० नारदजी का नारायणजी से वार्तालाप कर अपने अधिकारोंको वर्णन करना व वहां से मरु पर्वतकी तरफ़ जाना ७७९
१६१ भीष्मजी का युधिष्ठिर से राजा उपरिचर के पैदा होने व यज्ञ करने का वृत्तांत कहना ७८३
१६२ युधिष्ठिर का भीष्मजी से राजा वसु के स्वर्ग से गिरने का कारण पूछना व उनका वर्णन करना ७८६
१६३ महापुरुषस्तव वर्णन... ... ... ७८९
१६४ भीष्मजी का युधिष्ठिर से नारदजी के स्तुति करनेपर नारायणजी का प्रकट होना व वार्तालाप करना वर्णन ७९१
१६५ शौनक का सूतजी से यह पूछना कि किस रीति से ईश्वर यज्ञों में उत्तम भाग के भागी हुए व यज्ञधारी होकर सदैव वेद वेदांग के कैसे जाननेवाले हुए व उनका वर्णन करना ८०४
१६६ राजा जनमेजय का वैशम्पायन से प्रश्न करना कि व्यासजी को शिष्यों समेत नानाप्रकार के नामों से नारायणजी की स्तुति करने का क्या हेतु है व वैशम्पायन का उत्तर देना ८११
१६७ अर्जुन का मधुसूदनजी से अग्नि और चन्द्रमा को एकही योनि में उत्पन्न होने का हाल पूछना व उनका उत्तर देना... ... ... ८२७
१६८ शौनक ऋषि का सूतपुत्र से पूछना कि नारदजी श्वेतद्वीप में नारायणजी के दर्शन कर फिर बदर्य्याश्रम को क्यों गये व वहां कितने दिन रहे और कौन २ सी

अध्याय विषय पृष्ठ

बातें नारायणजी से पूछीं व नारदजी के विदा होने के समय क्या २ उन्होंने कहा इन सब बातों का वैशम्पायन को उत्तर देना ८३१
१६९ नर नारायण व नारदजी का परस्पर संवाद वर्णन... ... ... ८३२
१७० वैशम्पायन का जनमेजय से धर्म के बड़े बेटे नारायण व नारद का संवाद वर्णन करना ८३४
१७१ वैशम्पायन का नर नारायण के कहे हुए को सुनकर नारद के तप करने का वर्णन करना व और श्रीनारायण की भक्ति के विषय में इतिहासादि वर्णन करना ८३५
१७२ शौनकऋषि का सूतजी से हयग्रीव अवतार का पूछना व उनका वर्णन करना ... ८४०
१७३ राजा जनमेजय का अनिच्छावान् पुरुषों के आदि नियम का पूछना व उनका वर्णन करना ८४५
१७४ राजा जनमेजय का वैशम्पायन से सांख्ययोग पञ्चरात्र वेद का पूछना व उनका वर्णन करना ८५०
१७५ जनमेजय का प्रश्न सुनकर वैशम्पायनजी का ब्रह्माजी व शिवजी के प्रश्नोत्तर वर्णन करना ८५१
१७६ ब्रह्माजी का शिवजी से सनातनपुरुष का वर्णन करना ८५३
१७७।१७८ युधिष्ठिर का भीष्मजी से श्रेष्ठ आश्रम को पूछना व उनका वर्णन करना ... ८५४
१७९ भीष्मजी का युधिष्ठिर से एक अतिथि व तपस्वी ब्राह्मण का संवाद वर्णन करना ८५५
१८० अतिथि का तपस्वी ब्राह्मण से अर्थतत्त्व का वर्णन करना ८५६
१८१ ब्राह्मण को अतिथि की प्रशंसा करना व अतिथि के बताये हुए सर्पराज के स्थान को ब्राह्मण का जाना ८५७
१८२ ब्राह्मण का नागलोक में पहुँच कर तप करना व नाग की स्त्री को उनके पास आकर प्रार्थना करना ८५८
१८३ ब्राह्मण को निराहार तप में आरूढ़ देख नाग के कुटुम्बियों का उनके पास आना ८५८
१८४ नाग का अपने स्थान को आना व नागिनि का ब्राह्मण का हाल कहकर उसके पास जाने को कहना ८५९
१८५ नाग का नागिनि से उस ब्राह्मण के कर्मों को पूछना व उसका उत्तर देना वर्णन... ८६१
१८६ नाग का ब्राह्मण के पास जाना व वार्तालाप करना ८६२
१८७।१८८ ब्राह्मण का नागजी से सूर्यलोक में दीखे हुए आश्चर्य को पूछना व उनका वर्णन करना ८६३
१८९ ब्राह्मण और सर्प का वार्तालाप होना ८६४
१९० ब्राह्मण की आज्ञा से सर्प का भार्गव च्यवनऋषि के पास जाके शुभकथा सुनना... ८६४

इति श्रीमहाभारतशान्तिपर्वणः सूचीपत्रं समाप्तिं

पफाणेति शम् ॥

श्री मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग [illegible] अस्सी, वाराणसी।
क्र० सं०......८
वि०सं०......८

महाभारत भाषा

शान्तिपर्व ।

राजधर्म ।

सो०　गणपति इष्टमनाय सुमिरि भवानी शंकरहिं ।
भाषा कहौं बनाय शांतिपर्वकी वार्त्तिकाहि ॥

पहिला अध्याय ॥

वैशम्पायन मुनि बोले कि हे राजन् ! श्रीगङ्गाजी के तटपर अपने सुहृदोंको जलदानादि क्रिया करके सब पाण्डव विदुर धृतराष्ट्र और सब गतरूपास्त्रियों समेत पुर के बाहर एकमासतक निवास करते भये वहां व्यासदेव, नारद, देवल, देवस्थान, कण्व इत्यादि बड़े २ मुनीश्वर और वेद के जाननेवाले बुद्धिमान् महात्मा अनेक ब्राह्मण लोग भी अपने २ शिष्यों समेत युधिष्ठिर के देखने को आये और देशकाल के सदृश राजा युधिष्ठिर ने उनका पूजन किया राजा की पूजा को स्वीकार करके उसको मध्य में कर चारोंओर वृत्ताकार विराजमान हुये और शोकग्रस्तकुरुपति राजा युधिष्ठिर का आश्वासन किया उस समय कृष्ण द्वैपायन आदि मुनियों समेत नारदजी बोले कि हे राजन्, धर्म ! तुम बड़े भाग्यशाली हो तुमने केशवजी की सहायता और अपने सुधर्म बल से प्रबल शत्रुओं को मार सम्पूर्ण पृथ्वीको विजय किया और प्रारब्धसे महाभयकारी घोर युद्ध से निश्चिन्त्य हो आनन्द प्राप्त किया अब ऐसी विजय को पाकर क्यों शोचमें पड़ेहो शास्त्र में लिखा है कि क्षत्रियधर्म्म के जाननेवाले को विजय पाकर शोक करना उचित नहीं और तुमने तो बहुत समय तक धर्म्महीका पालन किया परन्तु उन्हों ने सदैव तुम्हारे साथ हठधर्म्मी ही करी अर्थात् तुम ने सब प्रकार से उनको समझाया परन्तु वह न माने अन्त को लाचार होकर युद्धही

करना पड़ा और क्षात्रधर्म्म करके भूमि धन राज्य प्राप्त किया अब तुम्हारा खेद करना क्षत्रियधर्म्म के विपरीत और अन्याय है तुमको अपना अहोभाग्य समझकर आनन्द करना उचित है यह नारदजी के वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर बड़े विचार के साथ बोले और नारदजी से कहनेलगे हे नारदजी! आपके वचन सब यथार्थ और योग्य हैं और यह निश्चय है कि श्रीकृष्ण की कृपा से और ब्राह्मणों के आशीर्वाद और भीमार्जुन के भुजबल से मैंने विजय पाकर समस्त पृथ्वी को पाया और प्रबलशत्रुओं को भी दलसमेत परास्त किया परन्तु हे मुनिवर! ज्ञातिबन्धु और गुरुजनोंका जो क्षय हुआ वह दुस्सह दुःख मेरे अन्तःकरण को बहुत पीड़ा करता है हाय इस युद्ध में अभिमन्यु और द्रौपदी के अज्ञानी प्यारे बालकों का नाश और गुरुजनों में भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य आदि बड़े२ अतुल पराक्रमी और तेजस्वी सर्दार और महाबली अतिरथी अतुलपराक्रमी मेरा सहोदर भाई कर्ण जिसका गुण पराक्रम वर्णन नहीं कियाजाता इन सबको वध करके विजय प्राप्तकी सो महादुःखदायी मालूम होती है यह विजय अजय के तुल्य है यह कठोर विजय मेरे हृदय को यम की स्त्री के सदृश पीड़ित करता है जिनके पति पुत्र बिचारे संग्राम में मरे वे स्त्रियां कैसे धीरज रक्खेंगी और श्रीद्वारकानाथ द्वारका को जायँगे तब वधू सुभद्रा अपने प्यारे भैया कृष्ण से क्या कहैगी और जिसके पुत्र और प्यारे भाई दोनों मारेगये वह द्रौपदी मेरे हृदय को वारंवार पीड़ित करती है॥

दो० सुमुखि सुभद्रा द्रुपदजा कैसे धरि हैं धीर।
मरे परमप्रिय जासु सुत बन्धु विदित रणधीर॥

हे नारदजी! मैं अपने दुःखों को कहांतक कहूं कि मेरा कर्णसरीखा भाई जो युद्ध में अद्वितीय दशसहस्र हाथियों का बल रखनेवाला महारथी था उसके मरने का महादुःख मेरे हृदयको बड़ीही पीड़ा देता है प्रथम हम नहीं जानते थे कि कर्ण हमारा सहोदर भाई है माता ने प्रथम नहीं कहा यह वार्ता मैं यथार्थ ही आपसे कहता हूं जो कदाचित् पहिले से हम जानतेहोते तो उससे स्नेह प्रीति बढ़ाकर आपत्तियों को मिटादेते वह कर्ण महाबुद्धिमान्, सत्यवादी, दानी, दयावान्, महाबली और पराक्रमी था और धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनका महाप्यारा प्राणरक्षक था और अपनी हस्तलाघवता से हर एक युद्ध में हमसब का अपमान करनेवालाथा उसको जन्मते ही हमारी माता कुन्तीने एक पिटारी में बन्द करके

श्रीगङ्गाजी में बहादिया था जिसको यहां के लोगों ने सूतका और राधाका पुत्र माना वास्तव में वह कुन्ती का ज्येष्ठपुत्र हमारा बड़ा भाई था वह मुझराज्यके लोभी अज्ञानी के कारण मारागया मैं और मेरे भाई भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव कोई भी इसभेदको नहीं जानते थे परंतु वह सुंदर व्रत रखनेवाला कर्ण हमको जानताथा क्योंकि हमने सुनाहै कि हमारी शुभचिन्तक कुंतीमाता हमारी रक्षाके लिये उसकेपास गई और कहा कि तू मेरापुत्र है सूर्य ने कृपा करके तुझको दियाथा तब भी उस महात्माने कुंती का मनोरथ पूरा नहीं किया परंतु यह भी सुना कि उसने पीछेसे माता से कहदिया कि मैं राजा दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सक्ता जो कदाचित् मैं तेरे कहने से युधिष्ठिर से मिलाप करलूं तो मुझे सब लोग नीच और विश्वासघाती आदि अनेक दोष लगाकर यह कहेंगे कि यह अर्जुन से भयभीत होकर युधिष्ठिर से जामिला इस कारण हे देवि ! मैं श्रीकृष्ण समेत अर्जुन को विजय करके युधिष्ठिर से मिलाप करूंगा यह सुनकर कुंती ने कर्ण से कहा कि जो तुझे यही हठहै तो अर्जुन के सिवाय चारों को अभय करके अर्जुन से इच्छापूर्वक युद्ध करियो तब उस बुद्धिमान् कर्ण ने हाथजोड़ेहुये कुंती से कहा कि मैं अपने बसाते तेरे चारों पुत्रोंको नहीं मारूंगा और हे माता ! तू काहे को अधीर होती है तेरे तो पांचही पुत्र चिरंजीवि रहैंगे कैतो युद्ध में अर्जुन मुझे मारेगा या मैं अर्जुनको दोनों में से एक रहैगा पुत्रोंपर दयाकरनेवाली माता फिर बोली कि हे पुत्र ! जो तू इनका कल्याण चाहता है तो रक्षाही करियो ऐसा कर्णसे सत्य २ कहकर कुंती घर को गई ऐसा मेरा सहोदर भाई अर्जुन के हाथ से मारागया हे मुनियों में श्रेष्ठ, नारदजी ! मैंने अपने सहोदर भाई कर्ण को पीछे से माता के वचनों से जाना इसी से मुझ भाई के मारनेवाले का हृदय बहुत खेद पारहाहै क्योंकि जो मेरा भाई कर्ण भी जीता रहता तो मैं कर्ण और अर्जुनकी सहायतासे इन्द्रको भी जीतलेता और सभा में धृतराष्ट्रके बिचारे निर्बुद्धी पुत्रों से मुझ दुखिया को क्रोध अकस्मात् उत्पन्न होगया कि द्यूतसभा में दुर्योधन का शुभ चाहनेवाला कर्ण जब मुझसे कटुवचनों को बोलता उस समय मेरा क्रोध उस कर्ण के चरणों को देख २ कर दूर होजाता था क्योंकि कर्णके दोनों चरण कुन्ती के चरणों के सदृश थे मैं अपनी बुद्धिसे जब कुन्तीकी और उसकी तुल्यता का कारण सोचता तो किसी प्रकारका हेतु नहीं समझ में आता था युद्ध में उसके रथके पहियेको जो पृथ्वीने पकड़ा और दबाया हे नारदजी ! इसका हेतु आप

मुझसे कहिये उस मेरे भाई को किसने किस अपराध के कारण शाप दिया सो समझाकर कहिये क्योंकि आप त्रिकालज्ञ हैं संसारके कार्य्य कारणको जानते हैं और ब्रह्मज्ञानी हो इसीसे आपके मुखसे ठीक२ वृत्तान्त सुना चाहताहूं ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे युधिष्ठिरनारदसंवादे कर्णाभिज्ञानो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

दूसरा अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि जबनारद से युधिष्ठिर ने ऐसा प्रश्न किया तब महावक्ता श्रीनारद जी बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम, महाबाहो, युधिष्ठिर ! तुम्हारे भाई कर्णको परशुरामजी का जैसे शाप हुआ वह मैं कहता हूं तुम चित्तलगाकर सुनो कि जो तुम कहते हो कि युद्ध में कर्ण और अर्जुन की कोई शत्रुता न थी यह केवल देवताओं की गुप्त बात है सो ठीकही जानो वह वृत्तान्त मैं कहता हूं तुम अच्छे प्रकार से समझो हे युधिष्ठिर ! पूर्वकाल में देवताओं में यह विचार गुप्त हुआ कि यह क्षत्रियों का समूह अधिक होगया है वह शस्त्रों से पवित्र होकर कैसे स्वर्ग को पावै इस निमित्त शत्रुताकी अग्नि का उत्पन्न और प्रकाश करनेवाला यह कन्या का पुत्र कर्ण उत्पन्न कियागया और वह महातेजस्वी बालक सूत का पुत्र कहाया और तरुण होकर द्रोणाचार्य्य गुरु से धनुर्वेद पढ़ा उस समय भीमसेन की सबलता और अर्जुनकी युद्ध में हस्तलाघवता और हे राजेन्द्र ! तुम्हारी बुद्धिमत्ता और नकुल सहदेव की पाण्डित्यता और नम्रता और श्रीकृष्ण अर्जुन से बाल्यअवस्था की मित्रता और प्रजा का अनुराग इत्यादि अनेक बातों को देखदेखकर हृदय में जलता था इसीहेतु से इसने बाल्यअवस्था से ही राजा दुर्योधन से मित्रता अङ्गीकार करी और प्रारब्धाधीन अकारण दैवइच्छा से तुम से ईर्षाभाव रखता था अर्जुनको धनुर्वेद में अधिक पराक्रमी जान के अपने गुरु द्रोणाचार्य्य से एकांत में जाकर विनयपूर्वक बोला कि हे गुरुदेव ! मेरा यह विचारहै कि मैं अर्जुनसे युद्ध करने को आप से ब्रह्मास्त्रविद्या रहस्य प्रयोग संहार समेत सीखूं इस मेरे मनोरथ को आप पूर्ण कर आप महात्मा हैं आपकी प्रीति पुत्र और शिष्यों में समान है आपकी कृपा से मुझे कोई पण्डित अकृतास्त्र अर्थात् वे शस्त्रवाला न कहें द्रोणाचार्य्यजी ने जाना कि यह अर्जुन से शत्रुता रखता है इसकारण कर्ण से क्रोध में आकर कहा कि तू अल्पबुद्धि है और बुद्धि के तुल्य व्रती ब्राह्मणही ब्रह्मास्त्र पासक्ताहै

अथवा तपस्वी क्षत्रियको भी प्रयोग करना योग्यहै और शूद्रको तो उसका अधिकार भी नहीं है तुम अपने योग्यही वस्तुओं को मांगो जब कर्ण ने अङ्गिराकुल भूषण द्रोणाचार्य्य का यह वचन सुना और सिद्धांत को जाना तो उसी समय द्रोणाचार्य को दण्डवत् करके बड़े अहंकार से महेंद्रगिरि पर्वतपर गया वहां परशुरामजी को साष्टांग दण्डवत् करके बोला कि हे महाराज! मैं भार्गव ब्राह्मण हूं आपकी प्रशंसा सुनकर शरण में आया हूं फिर परशुराम जी ने नाम गोत्र प्रवर वेद इत्यादि सब बातें पूछकर अपनी शिष्यतामें अङ्गीकार किया और बड़ी प्रीति से कहा कि किस कारण आपका आना हुआ तब वह बोला कि हे महाराज! धनुर्वेद पढ़ने को आया हूं तब प्रसन्न होकर कहा कि हम तुमको पढ़ावेंगे और सिखावेंगे और आज्ञा की कि आनन्द से रहो यह आज्ञा पाकर कर्ण उस स्वर्ग के तुल्य महेंद्रगिरिपर रहने लगा और वहां रहते हुये गन्धर्व, राक्षस और यक्षों से मेल हुआ और परशुरामजी से बुद्धि के अनुसार शस्त्र सीखे और देवता, दानव, दैत्यों से प्रीति हुई तिस पीछे वह सूर्य्य का पुत्र कर्ण आश्रम के समीप समुद्र के तटपर हाथ में कभी खड्ग कभी धनुष लिये वन में अकेला घूमाकरता था एकदिवस फिरते २ दैवयोग से उसने धोखे से मृग जानकर किसी अग्निहोत्री ब्राह्मण की होमधेनु को बाणसे मारडाला और धेनु के समीप जाकर मनहीमन में पछिताकर और उसके स्वामी उस अग्निहोत्री मुनिको क्रोधित जान उनके चरणपकड़ प्रार्थना करने लगा कि हे स्वामिन्! मृग की भ्रांति से यह गौ हमारे बाण से मारी गई इससे आप बड़े हैं क्षमा कीजिये क्योंकि बड़े लोग छोटे उत्पाती बालकों पर सदैव कृपा करते हैं और पण्डित लोग धोखे से हुये पाप का दोष नहीं मानते यह सिद्धांत समझके मेरी विनय को अङ्गीकारकर क्षमा करिये कर्ण के ऐसे वचन सुनके वह क्रोधयुक्त होकर बोला और शाप दिया कि हे मूढ़, शठ, अबोध! तू अवश्य बधने के योग्यहै और मूर्ख! तू जिसके जीतने के लिये धनुष विद्या सीखकर अभ्यास करताहै अथवा जय की आशा करता है जब उसके साथ अथवा किसी देवता से युद्ध करेगा उसी दिन तेरा यह पाप शिर घुमाकर प्रकटहोगा और तेरे सुन्दर रथके चक्रको पकड़कर भूमि ग्रस लेगी और चक्र के ग्रसते ही तुझ व्यग्रचित्त का शिर तेरा शत्रु अपने पराक्रम से काट डालेगा हे नराधम! तू चला जा तब उस शापित कर्णने बहुत से रत्न और गौ देनेको कहकर चाहा कि शाप शान्तहो परन्तु न माना और कहा कि मेरेवचनों

को कोई भी मिथ्या नहीं करसक्ता तुम जाओ या ठहरो अथवा अपना कार्य्य करो जब इसप्रकार ब्राह्मणके वचन सुने तब भावीप्रबल जानकर शापके दुःखसे शिर नीचा करके भयभीत हो शापको शोचता हुआ कर्ण चला आया ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे नारदयुधिष्ठिरसंवादे कर्णशापोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय ॥

नारदजी बोले कि हे युधिष्ठिर! कर्ण परशुरामजी के निकट आकर पहिले के अनुसार रहनेलगा और भार्गवजी की सेवा समय २ पर जैसी कि उचित है रात्रिदिन करनेलगा तब परशुरामजी ने उसका विक्रमबुद्धि गुण और श्रेष्ठ कर्म जानकर उसको शुभअंगों सहित ब्रह्मास्त्र दिया और अच्छे प्रकार से धनुर्वेद पढ़ाकर बड़ा चतुर किया और ऐसा विश्वास उसपर बढ़ाया कि तप से और व्रतों से जब निर्बल होते थे तो परशुरामजी जो कि बड़े बुद्धिमान् थे कर्ण के साथ कभी२ आश्रम के सम्मुख घूमाकरते थे और शान्त होकर इसके सहारे से आराम भी कियाकरते थे एकदिन अधिक थकित होकर कर्ण की बगलमें अपना शिर धर के सोगये थे कि दैवयोग से हे युधिष्ठिर! अकस्मात् मांस, मज्जा, कफ, रुधिर आदि का खानेवाला एक महाभयानक कीड़ा जिसका स्पर्श भी अत्यन्त कठोर था कर्ण के समीप आया और उसकी जंघा को अपने तीक्ष्ण दांतोंसे काटा परन्तु उस महावीर कर्णने गुरु के भय से कि मत कभी मेरे देहके हिलाने चलाने से गुरु की निद्रा जाती रहै इसलिये उसके हटाने और मारने का कोई उद्योग नहीं किया और उसीप्रकार कीड़ेसे काटीहुई जंघा समेत वह सूर्य का पुत्रकर्ण जरा भी न हटा धैर्य्य से उस महाक्लेश को सहाकिया और गुरु के शिर को धारण कियेरहा जब उसके रुधिर से उसका सब देह भीजगया तबतो तपोमूर्ति परशुरामजी निद्रा से जगकर महापीड़ित हुये और शीघ्रही बोलउठे कि बड़े आश्चर्य्य की बात है कि मेरा देह अपवित्र कैसे होगया और कर्ण तुझसे यह पूंछता हूं कि यह तैंने क्या किया भय को त्याग सत्य २ कहो तबतो कर्ण ने उस कीड़े का काटना उनसे वर्णन किया और परशुरामजी ने भी उस शूकरसमान कीड़े को देखा कि जिसके आठपावँ तीक्ष्णदाढ़ सुई के सदृश सिमटाहुआ और घनेबालों से ढकाहुआ अंग जिसका बड़ा भयानकरूप भल्लूक नाम कीट था उसने तपोमूर्ति परशुरामजीका जैसेही दर्शन किया तो उसी क्षण प्राणोंको त्यागकर ऐसा आश्चर्य्यकारी भयानक रूप धारण करलिया कि जिस

की लाल गर्दन मेघपर सवार राक्षसदेह आकाश में निराधार खड़ाहुआ दीखा और परशुरामजी को हाथ जोड़े हुये आनन्द चित्त होकर बोला कि हे भृगुवंशियों में मृगेन्द्ररूप, परशुरामजी, महाराज! आपका कल्याण हो मैं आपके दर्शनों के प्रभाव से इस महाघोर नरक से छूटकर उद्धार हुआ और हे मुनिश्रेष्ठ! आपकी कृपा से मैं अपने स्थान को जाऊँगा और आपने जो मेरा अभीष्ट सिद्ध किया इससे आपके चरणों को प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक आपको चाहताहूं कि आपका ईश्वर भलाकरै यह सुनकर प्रतापी श्रीपरशुरामजी बोले कि तुम कौन हो और कैसे नरक में पड़े इसका सब वृत्तान्त हम से वर्णन करो वह बोला कि हे महात्मन्! मैं प्रथम सतयुग में दंशनाम महाअसुर था और भृगुजी के समान मेरी अवस्था थी उससमय मैंने अपने पराक्रम से भृगुजी की प्यारी स्त्री को हरलिया था तब वह आपके पितामह भृगुजी महाक्रोधित होकर बोले कि अरे मूत्र, कफ, रुधिर, मज्जाके खानेवाले, दुष्ट, पापी! तू नरकके योग्यहै उनका शाप होते ही हे महर्षे! मैं ऐसी सूरत का कीड़ा बन पृथ्वी पर गिरपड़ा तब मैंने प्रार्थना करके पूछा कि हे ब्रह्मन्! मुझ अपराधीका शाप कब छूटेगा तब उन्हों ने कहा कि जब भृगुवंशीय परशुरामजी का दर्शन पावेगा तब तू शाप से मोचन होगा सो अब मैं उन्हीं के वचनों के अनुसार आपके चरणों का दर्शन पाकर इस कल्याणरूपी गति को प्राप्त हुआ ऐसा कहकर वह परशुरामजी को प्रणामकर चला गया फिर परशुरामजी ने क्रोध में आकर कर्ण से कहा कि अरे मूर्ख! यह महादुःख है ब्राह्मण इस कष्ट को कभी नहीं सहसक्ता तू छल करके ब्राह्मण बना है तेरा धैर्य्य क्षत्रिय के तुल्य है इस से तुम छल त्यागकर सत्य २ यथार्थ कहो तब शाप से भयभीत होकर उनकी प्रसन्नता के अनुकूल कर्ण ने उत्तर दिया कि हे भार्गव! मुझे ब्राह्मण क्षत्रिय से भिन्न सूत जानो और इसलोक में लोग मुझको राधा का पुत्र कर्ण कहते हैं और हे महात्मन्! आप दयाकरके मुझ अस्त्रों के लोभी पर अनुग्रह करो आप वेद और धनुर्वेद के देनेवाले गुरु पिता के तुल्य हैं मैं निःसन्देह सूत हूं मैंने अस्त्रों के लोभ से आप से अपना भार्गवगोत्र कहा तब तो महाक्रोधाग्नि में जलते हुये परशुरामजी ने उस हाथबांधे आधीन खड़े हुये कर्ण से कहा कि जिस प्रकार से तैंने अस्त्रों के लोभसे अपना भेद छुपाया अरे मूर्ख! इसी अपराध से यह ब्रह्मास्त्र सीखाहुआ तुझको समय पर याद न आवैगा और अपने बराबरवाले के साथ युद्ध करने

के समय स्मरण रहेगा कि वेद कभी ब्राह्मणसे भिन्न किसी अन्यजाति में अचल और दृढ़ नहीं होगा अब तुम जाओ तुम सरीखे मिथ्यावादियों के लिये यहां कोई स्थान नियत नहीं है पृथ्वी पर युद्ध में तेरे समान कोई क्षत्रिय नहीं होगा जब परशुरामजी ने ऐसे वचन कहे तब वह नम्रतापूर्वक न्याय और धर्म्म की रीतिसे दण्डवत् कर चलाआया और दुर्योधनके पास आकर कहा कि मैं अस्त्र का जाननेवाला अद्वितीय हूं ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे नारदयुधिष्ठिरसंवादे भार्गवोक्त-
कर्णशापवरप्रदानयोर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय ॥

नारदजी बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम, युधिष्ठिर ! वह कर्ण उन भार्गवनन्दन परशुरामजी से शाप और अस्त्र पाकर दुर्योधन के साथमें रहनेको प्रसन्न हुआ और बड़े अहंकार से कुरुपति के साथ रहनेलगा तब हे राजन् ! कर्ण ने जो जो पराक्रम किये उन को सुनो कि प्रथम तो कलिंगदेश के श्रीमान् राजपुर नगर में राजा चित्रांगद के यहां उसकी कन्या के स्वयंवर में देश २ के बहुत से शूर राजा इकट्ठे हुये यह वृत्तांत सुनकर दुर्योधन भी अपने कंचन के रथ पर सवार हो कर्ण को साथ लिये वहां गया उस स्वयंवर में शिशुपाल, जरासन्ध, भीष्मक, बभ्रु, कपोत, रोमानील और दृढ़पराक्रमी रुक्मी और राजा सृगाल और स्त्रीराज्याधिपति अशोकशतधन्वा, वीरभोज इत्यादि तो यह और अन्य बहुत से दक्षिण देश के राजा और म्लेच्छों के आचार्य्य राजालोग और इसीप्रकार पूर्वोत्तर के अनेक भूपति सब सुवर्ण के बाजूबन्द आदि अनेक रत्न जटित भूषणों से अलंकृत तेजस्वी शुद्ध सुवर्ण के से वर्ण उन्नतदेह सिंहसमान पराक्रमी से मदोन्मत्त इकट्ठे हुये हे भरतर्षभ ! उस स्वयंवर में जब सब राजा लोग यथायोग्य आसनोंपर बैठाये गये तब वह राजकन्या हाथ में जयमाल लिये अपनी धात्री और क्लीबलोगों के साथ रंगभूमि में आई और राजाओं के नामगुण पराक्रम सुनाये गये तब वह कन्या हरएक राजा को देखती हुई चली और जो दुर्योधन को उल्लंघन करके दूसरे के समीप जानेलगी तो राजा दुर्योधन उस अपमान को नहीं सहसका और सब राजाओं को तुच्छ समझ तुरन्त ही कन्या को रोंक हाथ पकड़ रथपर बैठाय कर्ण के साथ अहंकार और बल बढ़ाकर चल दिया तिस पीछे द्रोण भीष्म आदि से रक्षित उस की सेना भी

चलदी राजा दुर्योधन का रथ सब शस्त्रों से भराहुआ था ऐसा कन्या का हरण देखकर सब राजालोग अपने २ रथोंपर चढ़चढ़ अपने शूरवीरों समेत बढ़ २ कर पुकारते हुये और कन्याभिलाषी राजालोगों ने दौड़ २ कर कर्ण समेत दुर्योधन के रथको जा घेरा और क्रोध से भरकर कर्ण और दुर्योधन दोनों के ऊपर शस्त्रों की वर्षा ऐसे करनेलगे जैसे कि दो पहाड़ों के ऊपर बादल वर्षा करे ऐसा देखकर कर्णसमेत राजा दुर्योधन भी बाणों की वर्षा करतेहुये सम्मुख हुये और महाघोर संग्राम होनेलगा उस समय कर्ण ने ऐसा घोर युद्ध किया कि गदा शक्ति धनुषधारी ध्वजा समेत रथोंपर चढ़ेहुये बाणों की वृष्टि करते हुये अगणित राजाओं के सब शस्त्रों को काट २ पृथ्वीपर डालदिया और अनेक घोड़े, हाथी, रथों के सारथियों को मार २ अगणित योधाओं को गर्द मर्द कर मारे शस्त्र और बाणों से दिन की रात्रि कर महाघोर संग्राम किया और सब राजाओं को जीत विजयी बाजों को बजाताहुआ तब वह भयभीत राजालोग युद्ध को त्याग अपना २ जीव ले रथों को भी त्याग घोड़ों को हांकतेहुये अपने २ देशोंको गये और राजा दुर्योधन कर्ण आदि सब साथियों समेत कन्याको ले विजयका शब्द करतेहुये हस्तिनापुरको आये ऐसा रणकर्कश और महाभट कर्ण था॥ २१॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे कर्णवीरतावर्णनोनाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पांचवां अध्याय॥

नारदजी बोले कि कर्ण की और भी वीरता सुनाता हूं तुम चित्त से सुनो यह सत्य २ कहता हूं कि एक दिवस कर्ण की वीरता और पराक्रम सुन के चक्रवर्ती मगधदेश के राजा जरासन्ध ने दो रथों समेत युद्ध में बुलवाया दोनों एक २ रथपर सवारहुये और शस्त्र लेकर दोनों बड़े शस्त्रवेत्ता द्वन्द्वयुद्ध करने लगे प्रथम तो धनुषबाण से अनेकप्रकार से युद्ध किया फिर शस्त्रों से ठहरा २ कर पुकार २ के कि भागो मत २ कहकर घोरसंग्राम किया फिर खड्ग धनुष भी डाल २ विरथ हो बाहु कण्टक युद्ध किया तब कर्ण ने ऐसा पराक्रम किया कि जरासन्धकी सन्धि को उखाड़नेलगा तब जरासन्ध ने अपनी देहकी विपरीत दशा देखकर दूर से ही शत्रुता को त्याग के कहा कि हे कर्ण! मैं तुझसे प्रसन्न हूं और सराहकर कहा कि तू बड़ावीर है और अपनी प्रसन्नता से अंगदेशसमेत मालिनी नगरी दीनी तभी से कर्ण भी भूमिपति हो दुर्योधन के साथ शोभित हुआ और हे युधिष्ठिर! वह कर्ण अंगदेशों का राजा कहलाया और शत्रुओं की

सेना का मर्द्दन करनेवाले कर्ण ने चम्पानगरी की रक्षा की वह तुम भी जानते हो इस प्रकार वह कर्ण शस्त्रों के प्रतापसे इस भूमिपर प्रधान शस्त्रवेत्ता हुआ ॥

चौ० कर्ण सकल जग जीतन लायक । जो नहिं शाप देत भृगुनायक ॥

और हे राजन् ! तेरी जय के लिये देवेन्द्र इन्द्र ने उसके दोनों कुण्डल और कवच अर्थात् बखतर उससे मांगे और देवमाया से मोहित उस दानी कर्ण ने देह के साथ उत्पन्न अपने कवच और दोनों पूजित कुण्डलों को उतार इन्द्रको देदिये तब कर्ण दोनों कुण्डलों और कवचों से रहित होगया इसी हेतु वह विजयी कर्ण श्रीवासुदेवजी के सम्मुख युद्ध में अर्जुन के हाथ से मारा गया ॥

दो० विप्र न देतो शाप जो कवच न लेत सुरेश ।
तो को करिके करण सों लहत विजय को लेश ॥

अर्थात् ब्राह्मण और महात्मा परशुरामजी के शाप और कुन्ती को वचन देने और इन्द्र की माया करके भूल से कवच कुण्डलों के देने से और संख्यामें अतिरथी कहने से और भीष्मजी के किये हुये अपमान से और राजा शल्य की ओर से तेज बल और बुद्धि की न्यूनता और वासुदेवजी की इच्छा से वह कर्ण रुद्र, इन्द्र, यमराज, वरुण, कुबेर, देव, यक्ष, राक्षसोंसे वर पानेवाले और महात्मा द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य के दिये हुये दिव्य अस्त्रवाले गांडीव धनुषधारी अर्जुन के हाथ से वह सूर्य्य के सदृश तेजस्वी सूर्य्य का पुत्र होके भी मारागया इससे हे युधिष्ठिर ! वह तेरा भाई कर्ण इस प्रकार से शापित होकर बहुतों से ठगागया हे नरोत्तम ! वह शोच के योग्य नहीं है जो क्षात्रधर्म्म को पालनकर संग्रामभूमि में महायुद्ध कर साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्णजी के सम्मुख मारागया ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे नारदयुधिष्ठिरसंवादे मृतककर्णवीरतावर्णनोनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठा अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि नारद तो इतना वर्णन युधिष्ठिर से कहकर चुप होगये और युधिष्ठिर फिर भी शोक से पीड़ित हो दीन आतुरमन सर्प के तुल्य श्वास ले २ अश्रुपात डालता हुआ तब दुःख से हतचित्त कुंतीमाताने देशकाल के सदृश मधुर वाणी से युधिष्ठिर से कहा कि हे युधिष्ठिर ! तुम ऐसे धर्म्मज्ञ ज्ञानी होकर कर्ण का शोक क्यों करते हो हे महाबाहो ! तुम शोक को दूरकर मेरे इन

वचनोंको सुनो कि मैंने उस कर्ण को पहिलेही भाइयों से प्रीतिकरने को प्रेरणा किया था और उसके पिता सूर्य्य ने भी बहुत समझाया और अनेक बार शिक्षा की गई परन्तु वह हठी कर्ण नहीं माना इससे तुम शोकको त्यागो भावी बड़ी प्रबल होती है जो होनहार है सो अवश्य होताहै उसका मेटनेवाला कोई नहीं यह माताके वचन सुनतेही अश्रुपात डालता युधिष्ठिर बोला कि हे माता! तुमने जो इस वृत्तांतको गुप्तरक्खा इसीसे हम इस महाशोक में पड़े इससे मैं अब शाप देताहूं कि कोई स्त्री मंत्र और गुप्तभेदको अन्तःकरण में न छिपावे ऐसा स्त्रियोंको शाप दे राजा युधिष्ठिर फिर सधूम अग्निके सदृश होकर शांत होगये ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे कुन्तीयुधिष्ठिरसंवादे युधिष्ठिरदत्तस्त्रीशापवर्णनोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि शांत होकर भी दुःखार्णव में डूबेहुये व्यग्रचित्त उस धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उस महारथी कर्ण का स्मरण करके रुदन किया और दुःखदशा में उष्णश्वास लेकर अर्जुन को देखकर यह वचन कहा कि जो हमलोग वृष्णि, अन्धक क्षत्रियों के पुर में ही भिक्षा मांगते रहते तो काहे को जाति के मनुष्यों का नाश करके इस शोकदशा को पहुँचते हमलोग निश्चय करके प्रारब्धहीन हैं और हमारे शत्रु बड़े प्रारब्धी थे हमने बड़ा आत्मघात किया कि इसका फल अवश्य पावेंगे क्षत्रियों के बल पराक्रम क्रोध आदि को धिक्कार है जिसके कारण इस महाशोक में हमलोग पड़े हम से तो अच्छे वनचारी ही लोग हैं जो इन्द्रियों को जीत क्रोध हिंसा आदि से रहित होके वैराग्य को धारण किये पवित्रात्मा हो साधुरूप होते हैं और हम सब तो लोभ और भूलसे दंभी और मानी होकर ऐश्वर्यपूर्वक राज्य भोगने की इच्छा करके इस महाघोर दुःखदायी अवस्था को प्राप्तहुये पृथ्वी के विजय के हेतु अपने भाइयों को मराहुआ देखकर त्रिलोकी के राज्यको भी हम धिक्कार मानते हैं सो हम पृथ्वी के लोभसे मारनेके अयोग्य गुरुजन आदि भाइयों और अन्य बहुतसे राजाओं को वध करके इच्छा रहित बांधव मारनेवाले पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुये और अपने पुत्र पौत्र सखाओं को जिसके लिये वध कराया ऐसी पृथ्वी के पाने से कौन सुख है हमारी ऐसी दशा है कि जैसे श्वान अस्थि को चबाकर प्रसन्न होता है वैसे ही हमने अस्थिरूपी राज्य को पाकर प्रसन्नता पाई ऐसा राज्य मुझ

को नहीं भावता यह क्षत्रियों के वंश का नाश दुर्योधन की मति के विपरीत होने से हुआ और तुम लोगोंने भी इसी राज्य के लिये बड़ाभारी पराक्रम किया हमको राज्य, भूमि, घोड़े, हाथी, गौ और सुवर्ण रत्नों का ढेर तो मिलजायगा परन्तु वे मरेहुये भाई बन्धु न मिलेंगे जो राज्य की इच्छा करके अभिमान और क्रोध में भरेहुये कालवश हो यमलोक को गये देखो पिता माता भी बड़े २ जप पूजन पाठ आदि अनेक तपस्या ब्रह्मचर्य्यादि शुभकर्म करके ऐसे पुत्रों को चाहते हैं जो शुभकर्म करनेवाले हों और माता गौरी, गणेश, महादेव आदि देवताओं का व्रत यज्ञ मंगलगान करके ऐसे गर्भों को दश मास पर्य्यन्त धारण करती हैं जो जीवने पर ऐश्वर्य्यवान् हो अच्छी २ सन्तानों को उत्पन्न करें और इस लोक में अपने माता पिता को अनेक सुख देकर अन्त को पुन्नामादि अनेक नरकों से उद्धार करें जब उनके उत्तम कुण्डलधारी तरुण पुत्र पृथ्वीसम्बन्धी भोगों को न भोगकर और देव, पितृ, ऋषि इन तीनों ऋणों को न चुकाकर कालवश हुये तो निश्चय है कि वे यमलोक को गये इससे निश्चय होता है कि उनके माता पिता दोनों धन रत्नों की आकांक्षावाले थे तभी वह राजालोग मारेगये जो राजालोग अपने वांछित के प्राप्ति की इच्छा और उसके न मिलने से दुःख और क्रोध में प्रवृत्त होंगे वह कभी कहीं अर्थात् इसलोक, परलोक दोनों में कभी सुख न पावेंगे पांचाल और कौरवों में जो मारेगये वे तो सत्य ही मारेगये क्योंकि तृष्णासंयुक्त मरने से स्वर्ग को नहीं गये जो लोग तृष्णा से रहित हैं वह ऐसी दशा में इसलोक, परलोक दोनों में सुख भोगेंगे हम सब इस संसार की अनित्यता में अर्थात् संसार के नाश में कारणरूप समझेगये परंतु हमारा राज्य हरने से वह सब कारण मिथ्या निश्चय होता है क्योंकि वह शत्रुता रखनेवाला और कपट के द्यूत आदि से अपनी जीविका करनेवाला दुर्योधन हम शुभचिंतक लोगों के साथ मिथ्यावादी हुआ इसी से हम ने न उन्हों ने विजय पाकर अभीष्ट सिद्ध किया अर्थात् उन्होंने न तो इस पृथ्वी को भोगा और न स्त्रियों के गीत वाद्य सुने और न अपने इष्टमित्र और मंत्रियों के वचनों को सुना और वह मूल्यरत्न और भूमि की आमदनी के धन को भी न भोगा इसका यह हेतु है कि हमारी शत्रुता से पीड़ित होके इसलोक का सुख न पाया उस धन को हमारे पास देखकर उस का मुख बिगड़कर पीला होगया और राजा धृतराष्ट्र भी अनेक बातों से

विदित कियागया तब भी अन्याय की बुद्धि में प्रवृत्त हो पुत्रों की इच्छा को स्वीकार करके अपने पिता के तुल्य भीष्मजी और विदुरजी के कहने को भी न मानकर उनकी अवज्ञा के कारण निश्चय करके मेरे ही सदृश ऐसी महाघोर कुलक्षयरूपी दशा को प्राप्त हुआ कि जो महाभ्रष्ट अन्तःकरणवाले और हम से ईर्षा रखनेवाले दुराचारी लोभी अपने दुर्योधन आदि पुत्रों को न समझाकर अपने सगे भतीजों को राज्य से हत करके अपयश का भागी हुआ और हमारे महाशत्रु पापात्मा दुर्बुद्धि सुयोधन आदि वृद्धों को शोक की अग्नि में डालकर गया हमारे घराने का कौन सा भाई सुहृद्जनों के मध्य में श्रीकृष्ण से ऐसे वचन कहसक्ता था जैसे कि उस दुराचारी महालोभी अभिमानी दुर्योधन ने कहे और हमलोग अपने तेज प्रतापसे सब दिशाओंको विजय करके अपने भाइयों से बरसों तक शत्रुता त्याग करते रहे तो भी उस दुर्बुद्धि ने दुर्योधन की सलाहसे पराजय पाई जिससे कि यह हमारा सब कुटुम्ब नाश हुआ हमने मारने के अयोग्य भीष्मपितामह आदि को मारकर इस संसार में अपयश पाया इस घराने के नाश करनेवाले दुर्बुद्धि पापात्मा दुर्योधन को राजा धृतराष्ट्र राज्य देकर अब पछताता है कि बड़े२ शूरवीर मारेगये और बहुत से पाप करके देश का नाश किया उनको मारकर सबका क्रोध दूर हुआ यह शोक मुझको दबाताहै हे अर्जुन! क्या हुआ पाप तो पुण्यश्लोकों के द्वारा अथवा पापका प्रायश्चित्तादि दान तप करके और राज्य को त्याग स्मृतियों के जप करने से नाश होता है त्यागीलोग फिर पाप कभी नहीं करसक्ते यह स्मृति है त्यागी मनुष्य जन्म मरण से भी छूटजाता है अर्थात् मुक्त होजाताहै यह भी श्रुतिहै कि तब वह योगमार्ग का पानेवाला ब्रह्म को पाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप होजाता है ऐसा समझकर निर्द्वन्द्व गृहस्थाश्रमको त्याग ध्याननिष्ठ मननशील ब्रह्म में मिला हुआ मैं तुम सबको पूछकर वन को जाऊँगा और हे शत्रुहंता, अर्जुन! गृहस्थाश्रम में धर्म्म कुल योग आदि से आत्मदर्शन नहीं होसक्ता यह भी श्रुति है सो हे शत्रुसूदन! मुझ गृहस्थाश्रम में फँसे हुये के सम्मुख वह पाप वर्त्तमान है जो मैंने किया है उसी पाप से जन्म और मरणका करनेवाला मोह मुझे प्राप्त होनेवाला है इससे मैं सम्पूर्ण राज्य और राजसम्बन्धी सुखों को त्यागकर सब से अलग हो शोक और ममता को दूरकर कहीं को अकेला चलाजाऊँगा और तुम इस निर्विघ्न अकंटक राज्य और भूमि को निस्संदेह भोगो और हे कौरवनन्दन! राज्य

और भोगों से मेरा प्रयोजन नहीं ऐसे वचन कहकर राजा युधिष्ठिर चुपका हुआ। तब छोटाभाई अर्जुन बोला ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे युधिष्ठिरार्जुनसंवादे युधिष्ठिरपरिवेदनोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर ऐसे वचन कहकर चुप होगया तब दृढ़ पराक्रमी तेजस्वी युद्ध में हस्तलाघवता आदि अनेक बातों से उग्रस्वरूप इन्द्र से सम्बन्ध रखनेवाला अर्जुन बड़ी नम्रता और सुशीलतापूर्वक पृथ्वी की ओर शिर झुकाकर यह वचन बोला कि हे धर्म्मराज ! आप नीति में निपुण और अशेष धर्मों के जाननेवाले होकर ऐसे क्लीबों के समान वचन कहते हुये शोभित नहीं होते धर्म का पालन करके और क्षात्रधर्म्म से विजय करी हुई भूमि को प्राप्त किया इसमें कौन पाप हुआ जो इस को त्याग के आप ब्राह्मणों के समान वन में घूमना चाहते हैं यह आपकी बुद्धिकी न्यूनता है जो अपने शत्रुओं के मरने से विकल होते हो काल पाकर तो सब संसार नष्ट होता है और जिसका जिसके हाथ घात लिखाहै वह अवश्य होगा और होताहै वही हुआ इस में आप को क्या दोष है नाहक आप पश्चात्ताप करते हैं ऐसे प्रबल शत्रुओं से विजय पाकर खेद करना अत्यन्त अन्याय है इस प्रकार से राज्य पाकर कोई भाग्यशाली त्याग नहीं करता इस राज्य के त्यागने से आप को लोग क्या कहेंगे कि जिसके लिये ऐसे २ कर्म किये उसको त्याग करना कौन धर्म है और जो राजा कि कुटिल पापात्मा होते हैं वह भिक्षा मांगते फिरते हैं प्रतिदिन जिसके ऐश्वर्य्य की वृद्धि होतीहैं वही महाभाग्यवान् कहाता है और सब राजालोग अपने धन राज्य की ऋद्धि वृद्धि के लिये अहर्निशि नीति को सोचा करते हैं और दरिद्रता का होना महापाप का मूल है दरिद्र को आप रौरव नरक का किनारा समझो जैसे कि पापीलोग रात्रि दिन शोच में रहते हैं इसी प्रकार दरिद्रीको भी कभी आनन्द नहीं मिलता और जो राजा होकर दरिद्री हुआ उसकी तो दशा कौन कहसके अपने सुन्दर धन को त्याग दरिद्री होना कौन सी नीति है ॥

दो० सकै न कछु करि दारिदी दोऊ दिशा नशात ।
होत सधन मतिमान को दोऊ दिशि अवदात ॥

सधन पुरुष के सधत हैं अर्थ धर्म्म अरु काम ।
होत काज धनहीन को ग्रीषम सर सम छाम ॥
धन ते धन है होत अरु धन ते होत सुकर्म्म ।
धनते प्रकटत धर्म्म जिमि गिरिते सरिता पर्म्म ॥
काम क्रोध अरु हर्ष मद धीरज बड़ो विचार ।
धनते प्रकटत भूप अरु सधत सकल उपचार ॥
सो पंडित गुणवान अरु दाता शूर सुजान ।
दासबन्धुहित तासु सब जो जग में धनवान ॥
गो हय सेवक बन्धु हित बिनु है जो कृश तौन ।
नहिं शरीरकृश तौन कृश धनबिनुकृश सबभौन ॥
मुनिनसंगमहि अजिनधरि दर्भ कमण्डलु पानि ।
दोनों भूपहि उचित नहिं राज्य करो हित मानि ॥

अर्थात् हे राजन् ! आप न्याय से विचार करो कि जैसे देवता और दानवोंसे युद्ध हुआ उस समय देवताओं ने अपने जातिवालों को मारने के सिवाय कोई और भी विचार किया देव दानव परस्पर में एक ही पुरखे की संतति होने से सजाती कहलाते हैं और देखो किसी राजा को दूसरे का धन न लेना चाहिये तो वह धर्म कहां से करै इस विषय को पंडितलोगों ने वेदों में भी निश्चय किया तो यही निश्चय हुआ कि राजा को पण्डित होकर वेदत्रयी पढ़ना और सब दशा में धन का हरना और धन से रीति के अनुसार यज्ञ करना योग्य है और देवताओंने द्रोह करके ही स्वर्गआदि स्थानों को पाया जैसे कि देवताओं ने जातिवालों से शत्रुता के सिवाय कोई उपाय दूसरा न किया देवता लोग सदैव इसी वेदवाक्य को कहते हैं और पढ़ाते हैं यज्ञ करते वा कराते हैं वह भी धर्म्म और कल्याणकारी हैं राजा लेता है और फिर देदेता है हम राजाओं के किसी धन को भी निंदारहित नहीं देखते हैं इसी प्रकार से सब राजालोग इस पृथ्वीको विजय करके यह कहते हैं कि यह हमारी है जैसे कि पिता के धनको पुत्र कहते हैं कि यह हमारा है वह राजर्षि भी स्वर्ग्ग के योग्य हैं जिनका कि धर्म्म कथन होताहै जैसे कि पूर्णसमुद्र के अम्बुकण चारोंओर को जाते हैं इसी प्रकार राजकुलोंसे भी धन पृथ्वीपर ठहरता है जैसा कि यह पृथ्वी दिलीप, नृग, नहुष, अम्बरीष, मांधाता आदि अनेक राजाओं की थी वह तुम्हारी होगई यह

सर्वदक्षिणावाला धनरूपी यज्ञ तुमको प्राप्त हुआहै जो तुम इस यज्ञको न करोगे तो तुम राजसम्बधी पापभागी होगे जहां का राजा सर्व दक्षिणावाले अश्वमेध को करता है उसके यज्ञांत के अवभृथनाम स्नान में सर्व देवता आकर पवित्र होतेहैं और देखो विश्वरूप श्रीमहादेवजी ने सर्वमेध नाम महायज्ञ में सर्वजीवों समेत अपने को होम किया हम ने श्रवण किया है कि यह जीवधारियों का दाशरथ* नाम सनातन महामार्ग है सो हे राजन् ! आप कुमार्गी मत हो ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि राजधर्मे युधिष्ठिरप्रत्यर्जुनराजधर्म्मवर्णनोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे अर्जुन ! तू एकाग्रचित्त हो एक मुहूर्त्तक दोनों कानों को हृदयकमल में धारण कर पीछे से मेरे वचन को सुन तब तू समझेगा मैं संसारी सुखों को त्यागकर साधुओं के चलेहुये मार्गों में चलूंगा और तेरे कहने से कभी उस राज्य को स्वीकार न करूंगा जो तुम मुझ से पूछो कि आनन्दों से भराहुआ एकाकी के चलने का निर्विघ्न मार्ग कौनसा है अथवा नहीं पूछता है तो भी सुन घर के सुखों को त्याग जहां बड़े २ तपस्वी लोग तपस्या करते हैं उस जंगल में फल मूलों को भोजन करके मृगों के साथ विहार करूंगा समयपर हवन करूंगा दोनों समय स्नान करके स्वल्पाहारी हो मृगचर्म ओढ़ जटा धारण करूंगा और सरदी, गरमी, वर्षा, धूप आदि भूख प्यास के दुःख को सहता अपने देह को सुखाकर वन में रहनेवाले प्रसन्नचित्त पशु पक्षियों के नानाप्रकार के क्रीड़ित शब्द जो मन को और कानों को आनन्द देनेवाले हैं उन को सदैव सुनूंगा और प्रफुल्लित वृक्षों की और लताओं की आनंदकारी सुगन्धि को सूंघता और अनेक प्रकार के रूप धारण कियेहुये वनवासियों को देखूंगा और वानप्रस्थ मनुष्यों का और कुलवासियों के विपरीत दर्शन न करूंगा तो फिर ग्रामवासियों का क्यों करूंगा एकान्त में निवास करने का अभ्यास करके विचारवान् हो पके कच्चे फलों से अपना निर्वाह कर वन के फल वचन और जलों से देवता और पितरों को तृप्त करूंगा ॥

इसप्रकार से वनके शास्त्रों की बड़ी २ उग्र विधियों को करता इस देह की परिणाम दशा को देखूंगा फिर मुनिमुण्ड होकर एक २ वृक्ष से प्रतिदिन

---

* एकपशु दो स्त्रीपुरुष यजमान तीनवेद चार ऋत्विज् यह दशरथ जिस यज्ञ में चलते हैं उसका नाम दाशरथ है ॥

भिक्षा मांगता देह को पोषण करूंगा फिर शरीर में धूल लगा उजड़ेहुये मकान में या वृक्षोंकी जड़ोंमें निवास करके सब रोचक वा अरोचक वस्तुओं को त्याग शोच और आनन्द से रहित स्तुति निन्दा को समान कर इच्छा और ममता को दूरकर गृहस्थाश्रम से निर्द्वन्द्व हो आत्माराम प्रसन्नचित्त जड़ अन्ध और बधिरों कीसी दशा में योग से आत्मा में रमण करनेवाला शुद्ध अन्तःकरणवान् अन्य किसी से विवादरहित हो सब स्थावर जंगम और चार खानि के सब जीवों में अहिंसावान् अपने सुधर्म्म में प्रवृत्त होकर इन्द्रियों का पोषण करनेवाले जीवों के समान कभी किसी से हँसता न भृकुटी हिलाता सदैव प्रसन्नमुख जितेन्द्रिय होकर किसीसे मार्ग को न पूछता चाहे जिस मार्ग होकर अनियतदेश की ओर अनिच्छावान् पीछे को न देखता काम, क्रोध, लोभ से रहित निरभिमानी होकर दैवइच्छा पर चलूंगा और स्वभाव जो है देह का पूर्वसंस्कार और भोजन वह आप से आप पैदा होजाते हैं जैसे किं बालक को दूध इसलिये भोजन आदि की चिन्ता न करना चाहै कभी पहले घर में न मिलै अथवा दूसरे में भी स्वादु अस्वादु थोड़ा ही मिलै उसे ही भक्षण करना बल्कि न मिलने से भी तृप्त रहना जिस घर में धुवां न हो रसोई अलग करदी हो अग्नि प्रज्वलित न हो मनुष्य भोजन करचुके हों पात्रों का मांजनाआदि भी होचुका हो भोजन सब खागये हों ऐसे समय में दो तीन अथवा पांच घर में भिक्षा करता संसारी प्रीति की फांसी को अलग करके इस पृथ्वीपर विचरूंगा समदर्शी महातपी लाभ में व अलाभ में व जीवन मरण में न किसी की स्तुति न निन्दा करके एक भुजा को ऊंचा कर दूसरी में चन्दन लगाके उन दोनों भुजाओं के कल्याण और अकल्याणों को न सोचे धनआदि की वृद्धि के लिये जो काम कि जीवधारियों को करने के योग्य हैं उन सब को त्याग कर केवल देह के निर्वाह होने के योग्य करे उनकामों में भी सदैव चित्त न देकर इन्द्रियों की सब क्रियाओं को छोड़कर चित्तके संकल्प को अपने वश में रखने वाला बुद्धि के दोषों को दूरकरे सब संगों से छूट मोह से जुदेहुये के सदृश किसी के वशीभूत न होगा इसप्रकार से संसार की प्रीति को त्यागूंगा मैंने अपनी मूर्खता से बड़ा पाप किया है कोई मूर्ख मनुष्य भी बुरे भले कामों को करके ऐसी स्त्री आदि का पोषण करता है जोकि केवल अपने स्वार्थ ही के लिये मिलेहुये हैं और अन्तावस्था में इस अनित्य शरीर को त्यागकर उस पाप का

भागी होता है क्योंकि वह करनेवाले के काम का फल है इसप्रकार रथके पहिये के सदृश घूमनेवाले इस संसारचक्र में इसकाम का न करनेवाला संसार के जीवों में मिलजाता है जन्म, मरण, वृद्धावस्था के दुःख और रोगों से भरेहुये आत्मा के जुदा भ्रांति से रस्सी में सर्प के सदृश मिथ्या संसार को त्याग करके सुख को प्राप्तहोता है स्वर्ग से देवताओं के गिरजाने और महर्षियों को अपने २ स्थानों से नीचा होने का कारण अविद्या है और तत्त्व का जाननेवाला कौन पुरुष स्वर्ग के सुखों को चाहताहै अर्थात् स्वर्ग के सुख भी नाशवान् हैं और अनेक प्रकार के लक्षणों से भरेहुये बड़े२ राजालोग अनेक प्रकार के कर्म्मों को करतेहुये तुच्छ वार्त्ताओं के कारण छोटे२ राजाओं के हाथ से मारेजाते हैं इसी हेतुसे यह ज्ञानरूपी अमृत बहुतकाल पीछे मेरे सन्मुख अर्थात् मुझको प्राप्तहुआहै उसको पाकर मैं उस स्थान को चाहता हूं जो कि अनादि और अव्यय और सदैव एक स्वरूप में रहता है मैं धैर्य्यवान् और निर्भय होकर ऐसे निष्कंटक और भयरहित मार्ग में विचरताहुआ जरा रोग आदि से ग्रसित इस अपने शरीरको त्यागूंगा ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्म्मे युधिष्ठिरज्ञानवर्णनोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशवां अध्याय ॥

युधिष्ठर के ऐसे वैराग्ययुक्त वचन सुनके छोटे भाई भीमसेन बोले कि हे राजन्! आप अर्थ न जानके अपंडित वेदपाठी के सदृश ऐसे वचन कहते हो जिन को बुद्धिमान् कभी न कहैं अगर आप की ऐसीही बुद्धि थी तो प्रथम ही कहते कि हम काहे को शस्त्रों को ग्रहण करते और काहे को यह उत्पात होता और माक्ष के लिये भीखही मांगते रहते इस दारुणयुद्ध को नहीं करते जो हम जानते कि विजय करना बुरा होता है तो छली धूर्त्त अधर्म्मी धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर कौन सा फल प्राप्तकरें जो आप इसराज्य और भूमि का धर्म्म विचारकर त्याग करते हैं जैसे प्यासा मनुष्य सर के समीप पहुँचकर जल को नहीं पीता और वृक्षपर चढ़के मधु पाकर भय के मारे उस को नहीं पीता और जैसे हजारों कोस चलकर अभीष्ट नगर के समीप जाकर मारे भ्रम और संदेह के प्रवेश न करके फिरजाय और क्षुधित होके प्राप्त भोजन को दुःख मानकर नहीं खाता और जैसे कि कामी पुरुष तरुणी को पाकर विना भोग किये जाय तैसेही आप की बुद्धि मालूम होती है कि ऐसे विजय कियेहुये राज्य को अपनी निर्बुद्धिता से त्याग करते हैं हम को अपनी हारही अच्छी थी विजय

लेने से कौन प्रयोजन निकला कि ऐसे विजयरूपी यश को पाकर फिर अयश लेना चाहते हो हे युधिष्ठिर! यहां हमहीं निन्दा के योग्य हैं कि आपको अपना बड़ा भाई समझकर अपनी निर्बुद्धिता से आप के पीछे२ काम करते हैं कि भुजों से बली और विद्यायुक्त पराक्रमी बुद्धिमान् होके इस प्रकार के नपुंसक की आज्ञा में चलते हैं जैसे कि निर्बल मनुष्य किसी बलवान् के साथ चलै मेरे इन वचनों को ध्यान करके विचारो कि हम सामर्थ्यवानों को राज्य प्राप्त करने के लिये उद्योग करना उचित है व अनुचित और शत्रुओं से घिरे हुये और पराजय पानेवाले राजालोग आपत्तिकाल में संन्यास लेते हैं इसी कारण ज्ञानी लोग क्षत्रियों के संन्यास की प्रशंसा नहीं करते और सूक्ष्म देखनेवाले धर्म्म के विपरीत मानते हैं अर्थात् स्मृतियों के अनुसार क्षत्रियों का मुंडन निषेध और अयोग्य समझते हैं कदाचित् कहो कि क्षत्रियधर्म्म हिंसा से भरा है इसका उत्तर यह है कि जो जिस धर्म्म में जिस जीविका में जिस जाति में जिस घराने में पैदा होते हैं वह उसी२ धर्म्म में चलते हैं और कोई अपनी जाति व सनातन धर्म्म की निन्दा नहीं करता क्योंकि सब क्षत्रियों का अक्षयधन तीनों वेद हैं इसके विपरीत क्षत्रियों का जो झूठा धर्म्म है वह नास्तिकों का बनायाहुआ है उसको धर्म्मज्ञलोग नहीं मानते हैं शरीर को अनाशवान् जाननेवाले आप सरीखे मनुष्य को मौन होकर धर्म्म कपट में प्रवृत्त होकर मरना संभव है और पुत्र, पौत्र, देव, ऋषि, पितृ इन को पालन किये विना वन में अकेले अपने देह से सुखपूर्वक जीना भी आपही में घटित है तात्पर्य्य यह है कि जब पूर्वोक्त मनुष्यों का पालन न हुआ तो पशु के तुल्य हुये क्योंकि यह मृग, शूकर, पक्षी जो जंगल में अकेले रहते हैं वह स्वर्ग को नहीं प्राप्त करसक्ते न कोई दूसरे प्रकार से वह पुण्यभागी हैं जो कोई राजा संन्यासधर्म्म से सिद्धता को प्राप्त होता हो तो हे राजन्! पर्वत वृक्ष भी सिद्धि को प्राप्त करनेवाले हैं क्योंकि यह सदैव निरुपाधि संन्यासी हो गृहस्थधर्म्म से बाहर ब्रह्मचर्य्य धारण किये रहते हैं तात्पर्य्य यह है कि पशु पक्षी आदि कोई कर्म्म नहीं करसक्ते हैं अपने पूर्व कर्म्मफल को भोगते हैं और हमलोग कर्म्म करने के अधिकारी हैं इस से विना कर्म्म किये हमारी मुक्ति नहीं होगी जल के जीव जो अपनेही उदर को भरना जानते हैं वह भी सिद्धि को पाते हैं विचार करो कि जैसे यह संसार अपने २ कर्म्मों में प्रवृत्त है वैसेही हम सबको भी कर्म्मही करना योग्य है

विना कर्म्म करनेवाले क्षत्रिय की गति अर्थात् मुक्ति नहीं होती ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

गेरहवां अध्याय ॥

अर्जुन बोले कि इस स्थान में हम उस प्राचीन कथा को कहते हैं जिस में तपस्वियों से इन्द्र ने वर्णन किया है कि डाढ़ी मूछ कटाकर कोई बड़े घराने के निर्बुद्धि ब्राह्मण घर को त्यागकर इस विचार से वन को गये कि फिर घर को न आना चाहिये यह धर्म्म है ऐसा मानके वह धनाढ्य ब्राह्मण लोग अपने पिता, माता, भाई, बन्धुओं को त्याग ब्रह्मचारी होकर जंगल में रहनेलगे यह देखकर इन्द्र देवता प्रसन्नहुये और सुवर्ण का पक्षीरूप धारणकर उनसे कहा कि जो यज्ञ के शेष अन्न के खानेवाले मनुष्यों ने जो कर्म्म किया वह कठिन है यह कर्म्म धर्म्म की वृद्धि का हेतु होता है और इस से जन्म भी सफल होता है और अंत को धर्म्मपरायण होकर अपने अभीष्ट को पाके मुख्य गति को प्राप्त होता है यह सुनकर वे ब्राह्मण बोले कि हे पक्षी! बड़े आश्चर्य्य की बात है कि तुम यज्ञाशियों की अर्थात् यज्ञ के शेष भोजन करनेवालों की अर्थात् भीख मांगनेवालों की प्रशंसा करते हो तो हम को भी सत्य निश्चय होता है और हमलोग भी भिक्षाशी हैं फिर पक्षी बोला कि मैं तुम सरीखे पापी और उच्छिष्टभोजी रजोगुणी अज्ञानियों की प्रशंसा नहीं करता हूं प्रशंसा के योग्य वे दूसरे ही भिक्षा मांगनेवाले हैं जो वृक्षों के पत्ते तृण फल जो कीड़ों के उच्छिष्ट होते हैं उनको शुद्ध करके खाते हैं तब ब्राह्मण बोले कि यह हमारा बड़ा कल्याण है जो तुमने वर्णन किया हे पक्षी! हम सब वर्त्तमान हैं आप हमारे कल्याण की बातें कहिये आपके वचनों में हमारी बड़ी श्रद्धा होती है पक्षीरूप इन्द्र बोले कि जो तुम आत्मा से आत्मा को जुदा करके द्वैत न मानो तो तुम से यथातथ्य वचन कहूं फिर ब्राह्मण बोले कि हे भाई! हम तुम्हारे वचनों को सुनेंगे तुम मोक्षमार्ग के जाननेवाले हो हे धर्म्मात्मन्! हम तेरी आज्ञा में वर्त्तमान हैं तुम हमको धर्म्म की शिक्षा करो पक्षी बोला कि सुनो चार पैरवालों में गौ बड़ी और धातुओं में सुवर्ण और शब्दों में मन्त्र और द्विपदों में ब्राह्मण श्रेष्ठतम है यह मन्त्र ब्राह्मणही को उचित है जो जीवनसे मरणकाल के श्मशान पर्य्यन्त समय के अनुसार जीवते ब्राह्मण का कहाजाता है इस ब्राह्मण का वेद के अनुसार स्वर्गमार्ग सर्वोत्तम है तात्पर्य्य यह है कि ऐसा न हो तो प्राचीन

समय के पुरषों ने मन्त्रों से प्रकट होनेवाले सब कर्म्मों को मेरे निमित्त कैसे किया मुख्य बात यह है कि वे कर्म्म स्वर्ग्ग को देते हैं जो कोई मनुष्य निश्चय लाके जिस २ रूप से ईश्वर की उपासना करता है उसीप्रकार से इसलोक में सिद्धि को पाता है जैसे कि माघ महीने के शुक्लपक्ष आदि में जो उपासना करते हैं उन को सूर्य्यके द्वारा मोक्षरूपी सिद्धि प्राप्त होती है और श्रावण आदि मास में करने से चन्द्रमार्ग्ग से सिद्धि होती है अर्थात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है फिर वह स्वर्ग से गिरकर अपने कर्म्मों को भोगते हैं और जो कोई कर्म्म की निन्दा करके कुपंथ में चलते हैं वह अर्थहीन मूढ़ पापके भागी होते हैं और देववंश, पितृवंश, ब्रह्मवंशों को त्यागकर वे मूढ़ वेदविहीन मार्ग को प्राप्त होते हैं अर्थात् राक्षसरूप होते हैं मैं तुमको यह वरदान देताहूं कि तुम्हारी सगुण और निर्गुण उपासना सिद्ध हो और गोधन और पुत्र देता हूं इससे हे ऋषियो ! उस २ मार्ग में निष्ठायुक्त होना यही तपस्वियोंका तप कहाजाताहै कुछ देहको सुखानाही तप नहीं होता अपने सनातन देव पितृमार्ग से ही गुरुभक्ति करके ब्रह्मकी प्राप्ति होती है वही निश्चय करके कठिन कहीजाती है इसी कठिन कर्म्म को करके देवताओंने बड़े ऐश्वर्य्य को पाया इसी कारण मैं तुमसे कहताहूं और निश्चय जानो कि गृहस्थाश्रमधर्म्म धारण करना कठिनहै यही प्रतिष्ठापूर्वक कुटुम्बपोषण करना प्रजाओं का श्रेष्ठ और मुख्य तपहै इसीपै ब्राह्मणोंने द्वन्द्व मत्सरता आदि उपाधियोंको छोड़ इसी को महातप जाना इसी आश्रममें ब्रह्मचर्य्य धारण कर वेदपाठ करना यही गृहस्थाश्रमका तप कठिनहै ऐसी बुद्धिसे प्रातःकाल सायङ्कालके समयको विभाग करके यज्ञ करनेसे शेष अन्नको कुटुम्बसमेत भोजन करनेवाले पुरुष अचल पदवी को पाते हैं इसीकारण देव अतिथि पितृ और अपने स्वजनों को देकर जो शेष अन्न भोजन करतेहैं वही विघसाशी हैं इसी से धर्म्म को आश्रयकर जो ब्राह्मण सुव्रती और सत्यवादी हैं वह लोक में गुरुकी पदवी पाकर निस्संदेह होजाते हैं अर्थात् स्वर्ग में जाकर विमत्सर हो इन्द्रलोक में असंख्य वर्षोंतक निवास करते हैं अर्जुन बोले कि इसके अनंतर वह ब्राह्मण उसके धर्म्म अर्थ से भरे वचनों को सुनकर अपने हितकारी जान और यह समझकर कि दूसरे आश्रममें सिद्धि नहीं है वनवासको त्यागकर गृहस्थाश्रम में प्रवृत्तहुये इससे हे सर्वज्ञ, युधिष्ठिर ! तुमभी उसी धैर्य्यको धारण करके इस शत्रुरहिता पृथ्वीको अपनी करके राज्य करो २८॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽर्जुनवाक्ये ऋषिशकुनिसंवादो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि ऐसे अर्जुन के वाक्य सुनकर नकुल बोले कि हे धर्म्मधारियों में उत्तम, महाप्राज्ञ, बड़ी छाती और प्रलम्बभुजवाले, युधिष्ठिर ! वैशाख यूपनाम क्षेत्र में सब देवताओं की वेदियां हैं इस से जानो कि वह देवता भी यज्ञ करते हैं और अपने कर्म्मों से देवभाव को पहुँचे हे राजन् ! जो पितृ आस्तिकता से रहित केवल जीवधारियों को वर्षा आदि से प्राणदान करते हैं वह भी बुद्धि से कर्म्महीको करते हैं और जो लोग वेद के मार्ग को त्यागते हैं उनको बड़ा नास्तिक जानो वह कभी स्वर्ग को नहीं पाते वेद के जाननेवालों का वचन है कि यह गृहस्थाश्रम सब आश्रमों से श्रेष्ठ है और उन्हींको वेदपाठी जानो जिन्होंने धर्म्म से प्राप्तहुये अपने धन को उत्तम २ यज्ञों में खर्च किया उसी को जितेन्द्रिय और त्यागी भी जानो हे राजन् ! जो पुरुष गृहस्थ के सुखों को न भोगकर वन में जाकर देह को त्यागता है वह तामसी त्यागी कहाता है हे युधिष्ठिर ! जो ब्राह्मण संन्यासी हो घर को त्याग वृक्षों की जड़ों में निवास करके किसी से कोई वस्तु विना मांगे भिक्षा के लिये घूमता विचारता है वह संन्यासी त्यागी है और जो ब्राह्मण काम क्रोध और तृष्णा को दूर करके वेदों को पढ़ता है वह त्यागी कहाजाता है ऋषियोंने अपनी बुद्धिरूपी तराजू में एक ओर तीनों आश्रम और दूसरी ओर गृहस्थाश्रम रक्खा तो तीनों गृहस्थ से कम हुये हे राजन् ! जो पुरुष इसपर चलता है वही त्यागी है और वह पुरुष त्यागी नहीं कहाता है जो मूर्खों की सदृश घर को छोड़ वन को जाय जो ऐसा धर्म्मध्वजी मनुष्य वन में जाकर अभीष्ट वस्तु को चाहता है उसको धर्म्मराज मृत्यु की फांसी में बांधता है और अभिमानयुक्त कर्म्म करना सफल नहीं होता इससे त्यागयुक्त निरभिमानी होकर करनाही महाफलदायक है और शम, दम, दया, धैर्य्य, शौच, सत्यता, सुहृद्भावपने से जो यज्ञधर्म्म होताहै वह ऋषियज्ञ कहाताहै और पितृ देव अतिथियों को सन्तोष करने वाले मनुष्य इसी लोक में प्रशंसा पाकर अर्थ, धर्म्म, काम, मोक्ष चारों फलों को भोगते हैं हे धर्म्मात्मन् ! ब्रह्माजी ने भी यही सोच विचारकर जीवों को उत्पन्न कियाहै कि यह अनेकप्रकार के दक्षिणायुक्त यज्ञों से मेरा पूजन करेंगे और पशु, वृक्ष, औषधियों को भी हव्य वस्तुओं सहित उत्पन्न किया इसी से वह यज्ञकर्म्म गृहस्थाश्रम को दृढ़ करता है इसी हेतु से गृहस्थाश्रम कठिन और दुर्लभ है

उसको प्राप्त हो गृहस्थलोग पशु, धान्य, धनको पाकर जो यज्ञादिक कर्म्म न करेंगे वह सदैव पाप के भागी होंगे जैसे ऋषिलोग स्वाध्याय अर्थात् वेदपाठ, जप, यज्ञ करते हैं वैसेही दूसरे लोग ज्ञानयज्ञादिकों को और अन्य ऋषिलोग चित्तही में मानसी पूजनादि से यज्ञों को करते हैं हे राजन् ! देवतालोग भी ऐसे ब्राह्मण की इच्छा करते हैं जो चित्त को एकाग्र करके ब्रह्मरूप को देखता है इसी से वह भी ब्रह्मरूपही है सो आप इधर उधर से प्राप्त कियेहुये विचित्र रत्नों को यज्ञों में खर्च न करके नास्तिकपना करते हो हे राजन् ! गृहस्थाश्रमी होके मैं किसी को राजसूय अश्वमेध और सब यज्ञों का तर्क करनेवाला नहीं देखता हूं इससे आप उन ब्राह्मणों के द्वारा पूजन करो जो दूसरे यज्ञ ब्राह्मणों से पूजित हैं जैसे कि देवताओं के स्वामी इन्द्र ने किया जो प्रजा का धन राजा की भूल से चोर उठालेजायँ और उस की रक्षा राजा न करै तो वह राजा कलि कहाता है और भूषणों से अलंकृत घोड़े, हाथी, दास, दासी, गौ और देश, ग्राम, छत्र, स्थान आदि ब्राह्मणों को न देकर ईर्षा द्रोह में भरेहुये हमलोग कलियुग के पापी राजा होंगे और हे राजन् ! प्रजा की रक्षा और ब्राह्मणों को दान न देनेवाले प्रजा के पाप के भागी होकर अपने किये को भोगेंगे अर्थात् कभी सुखों को न भोगेंगे इस से हे स्वामिन् ! जो तुम अच्छे २ यज्ञों से पूजन और पितरों को स्वधादानदिये विना और तीर्थों में विना स्नान किये वन को जाओगे तो ऐसी दशा में आप वायु से पृथक् टूटेहुये बादल के सदृश नाश को प्राप्त होगे और दोनों लोकों से गिरकर पिशाचयोनि को पाओगे जो बाहर भीतर की प्रीति को त्याग घर को छोड़ वन को जाता है वह त्यागी नहीं है हे महाराज ! ऐसे अयोग्य कर्म्म ब्राह्मण को करने में हानिकारी नहीं हैं जैसे कि इन्द्र ने दैत्यों की सेना को मारा उसी प्रकार युद्ध में वेग से वृद्धि पानेवाले शत्रुओं को मारकर कौन सा राजा शोच करता है सो आप क्षत्रियधर्म्म पराक्रम से पृथ्वी को विजय करके मन्त्रों के जाननेवाले ब्राह्मणों को दान करके स्वर्ग के भी ऊपर अर्थात् ब्रह्मलोक को जाओगे सो अब तुम को शोच न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवां अध्याय ॥

यह नकुल के वचन सुनकर सहदेव बोले कि हे युधिष्ठिर ! बाहर की द्रव्यों को त्यागकर सिद्धि नहीं प्राप्त होती जो मनुष्य अपने शरीर की द्रव्यों को त्याग

देता है वही सिद्ध होजाता है देह की द्रव्यों को त्याग पृथ्वीपर राज्य करने वालों को जो धर्म्म और सुख होता है वैसाही हमारे मित्रों को भी हो दो अक्षर वाले को मृत्यु और तीन अक्षरवाले को ब्रह्म की प्राप्ति होती है अर्थात् मेरा कहनेवालों की मृत्यु और न मेरा कहनेवाले की मुक्ति होती है और हे राजन्! इसी से ब्रह्म और मृत्यु दोनों बुद्धि से मालूम होते हैं यह दोनों अदृश्य शास्त्र निस्संदेह जीवों को लड़ाते हैं हे राजन्! निश्चय जानो कि इस जीवात्मा का नाश नहीं है ऐसी दशा में धर्म्मयुद्ध में जीवों को मारकर हत्या नहीं मालूम होती फिर भी ऐसे नाशवान् शरीर के साथ जीव की उत्पत्ति और नाश वृथा मानना है इस से इस एकांतपने को त्यागकर पहिले पुरुषों ने जो पथ प्राप्त किया उसी पथ में चलना योग्य है अर्थात् स्थावर जंगम सहित इस सम्पूर्ण पृथ्वी को प्राप्त करके जो राजा भोग नहीं करता उसका जीवन निष्फल है हे राजन्! वन में रहनेवाले और फल फूलों के खानेवाले जिस पुरुष की ममता द्रव्यों में होती है वह मृत्यु के मुख में है अर्थात् उस को सदैवता नहीं है तुम जीवों के भीतर बाहर को देखो जो भीतर की द्रव्य हैं उनको परमात्मा की सत्ता जानो जो पुरुष उस नित्य शुद्ध परमात्मा को देखते हैं वह इस महाभयानक संसार से मुक्त होते हैं आप मेरे पिता, माता, भाई, गुरु हो मुझ दुःख से पीड़ावान् के अपराध के क्षमा करने को योग्य हो हे भरतर्षभ! मैंने जो आपके सामने सत्य झूठ कहा उसको भक्ति से कहाहुआ जानो ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सहदेववाक्यवर्णनोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इस प्रकार नाना शास्त्र और वेदों के ज्ञाता भाइयों ने ऐसे २ वाक्य कहे तब कुन्ती के पुत्र धर्मस्वरूप युधिष्ठिर फिर चुप होगये तो बड़े घराने की पुत्री स्त्रियों में उत्तम बड़े नेत्रवाली श्रीमती द्रौपदीजी गजरूप भाइयों के मध्यवर्ती गजेन्द्ररूप युधिष्ठिरको सन्मुख करके आनन्दचित्त हो बड़ी सावधानी से बोलीं कि हे राजन्! यह सब तुम्हारे भाई चातक पक्षी के सदृश मुख को कुम्हला रहे हैं और बराबर पुकार रहे हैं इनको क्यों प्रसन्न नहीं करते तुमको उचित है कि इन मतवाले हाथियों के सदृश महाभुजवाले पराक्रमियों को जो महादुःख पारहे हैं युक्तिपूर्वक वचनों से सुखी करो और हे राजन्! तुम ने पहले द्वैतवन के मध्य में वात, शीत, उष्णता से पीड़ावान् अपने भाइयों

से यह वचन क्यों कहा था कि हम युद्ध में दुर्योधन को मारकर संपूर्ण पदार्थों से भरी हुई इस पृथ्वी को भोगेंगे और युद्ध में विजयी हो संपूर्ण मनोरथों को पूरा करेंगे सो तुमने महाबलवान् रथी महारथी भाइयों को विरथ करके बड़े २ हाथियों को मार घोड़ों के सवारों समेत रथों से पृथ्वी को आच्छादित किया अब नानाप्रकार के दक्षिणायुक्त यज्ञों से जो पूजन करोगे तो वनवास में जो दुःख पाये हैं वह सुखदायी होंगे हे धर्म्मध्वज! आपने प्रथम उनसे ऐसा कहा था अब क्यों उनके चित्तों को उदास करते हो नपुंसकलोग पृथ्वी और धन को नहीं भोगते और न उनके पुत्र उत्पन्न होते हैं और क्षत्रिय दण्ड विना तेजस्वी नहीं होता और दण्ड विना पृथ्वी को नहीं भोगसक्ता हे राजन्! सब जीवों में दया करना और वेद पढ़ना और तप करना ब्राह्मण का धर्म्म है क्षत्रिय का नहीं दुराचारियों को दण्ड देना या देश से निकाल देना सत्पुरुषों का पालन करना युद्ध से न हटना यह क्षत्रियों का उत्तम धर्म्म है जिसमें क्षमा, क्रोध, दान और भेद आदि लेना और भय वा निर्भयता और कृपा होती है वही धर्म्म का जाननेवाला कहाजाता है तुमने वेदविहित दान से या यज्ञ से अथवा याचनाके द्वारा यह पृथ्वी नहीं पाई शत्रुओं की युद्धकर्त्ता सेना और ऐसे २ युद्धवेत्ता पराक्रमी घोड़े, हाथी, रथों से भरे हुए प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति, उत्साहशक्ति इन तीनों अंगों से युक्त और द्रोणाचार्य्य, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य्य आदि महाप्रतापियों से रक्षित अपने शत्रु को मारा इससे अवश्य इस पृथ्वी को भोगो हे राजन्! यह जंबूद्वीप अनेक उत्तम देशों से शोभित है इसको आपने दण्ड से मर्दन किया और हे महाराज! इसीप्रकार सुमेरुपर्वत के पश्चिम की ओर जो क्रौंचद्वीप है उसको भी आपने उक्त प्रकार से आधीन किया और हे कुरुनन्दन! उसी महामेरु के पूर्व में क्रौंचद्वीप के सदृश शाकद्वीप को भी दण्ड से स्ववश किया और शाकद्वीप के तुल्य सुमेरु के उत्तर और भद्राश्वद्वीप को दण्ड से विजय किया और हे वीर! तुमने सागर के पार होके अनेक देशों से सुशोभित द्वीप और उपद्वीपों को दण्ड से परास्त किया ऐसे अनेक अप्रतिमेय कर्म्म आपने किये और ब्राह्मणों से प्रशंसा पाकर भी आप प्रसन्न नहीं होते सो हे भारत! तुम इन अपने भाइयों को देखकर प्रसन्न करो जो वृषभों के सदृश मत्त और गजेन्द्रों के समान बली देवताओं के से स्वरूप शत्रुहन्ता महातपी एक २ पृथ्वीके जीतने योग्य हैं यह मेरी रायहै कि ऐसे भाइयों को आनन्द दो

नहीं तो फिर मेरे यह सब नरोत्तम पति कैसे समर्थ न होंगे जैसे कि देहके पृथक् होने से इन्द्रियां सामर्थ्यहीन हों और सब देश काल की जाननेवाली हमारी सास ने मुझसे यह बात मिथ्या नहीं कही कि हे पांचालि ! यह शीघ्र पराक्रमी युधिष्ठिर अनेक राजाओं को मारकर तुमको उत्तम सुख देगा सो हे राजन् ! उस वचन को आप की अज्ञानता से मैं निष्फल होता सा जानती हूं जिनके बड़े भाई बुद्धिमान् और वह सब आज्ञाकारी ऐसे चारों पाण्डुनंदन आपके मोह से और चित्त की भ्रान्ति से दुःखित हैं सो हे राजन् ! आपके भाई जो सावधान चित्त हों तो तुम को नास्तिकों के साथ बांधकर आप पृथ्वी को भोगें इसप्रकार के कर्म्म अज्ञानी करते हैं वह कभी आनन्द को नहीं पाते वह औषधियों से चिकित्सा के योग्य हैं जो उन्मत्तों के मार्ग में चलते हैं वह इस लोक में सब से स्त्रियों से भी निकृष्ट हैं मैं भी इसी प्रकार पुत्रों से रहित होजाऊँगी जो इन उद्योग करनेवालों को त्यागकर जीवना चाहती हूं मेरा वचन मिथ्या नहीं है तुम सब पृथ्वी को त्यागकर अपनी आपत्ति को बुलाते हो सो हे राजाओं में उत्तम ! जैसे कि तुम सब राजाओं में शोभित हो वैसेही मान्धाता और राजा अम्बरीष थे इसी प्रकार तुम भी धर्म्म से प्रजा का पोषण करके पृथ्वी देवी का पालन करो और पर्व्वत वन द्वीप आदि से शोभित इस पृथ्वी पर राज्य करो हे राजन् ! चित्त से उदासीन मत हो तुम अनेक प्रकार के यज्ञपूजनों से परमेश्वर को प्रसन्न करो और युद्ध में शत्रुओं को पराजयकर ब्राह्मणों को वस्त्र, धन, भोजन इत्यादि भोगों का दान करो ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्रौपदीवाक्यकथनोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंद्रहवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इसप्रकार द्रौपदी के वचन सुनकर बड़े भाई का बड़ा मान करके फिर अर्जुन बोले कि दण्ड देनेवाले सब प्रजापर आज्ञाकर्त्ता हैं और दण्डीही रक्षा कर सब सोनेवालों के बीच में जगता है यह दण्डी के धर्म्म बुद्धिमान्लोग कहते हैं कि दण्डही से धन धान्य धर्म्म आदि होते हैं और दण्ड से अर्थ धर्म्म काम मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्तहोते हैं इसीसे इसको त्रिवर्ग कहते हैं सो हे बुद्धिमान् ! इसको लोकव्यवहार मानो और अंतर्दृष्टि से आत्मभाव को देखो कि कोई भी पापी राजदण्ड के भय से पाप नहीं करता और कोई यमदण्ड के भय से कोई परलोक के डर से पाप नहीं करते और कोई

पापी आपस के भय से भी नहीं करते लोक में इस प्रकार के व्यवहार करनेवाले सब जीव दण्डके अधिकारी हैं कोई दण्ड के भय से परस्पर में भोजन भी नहीं करते इस से जो राजा दण्ड से प्रजा की रक्षा न करेगा वह अन्धतामिस्र नरक को जायगा जैसे कि अजितेन्द्रिय पुरुष अन्य उत्तम पुरुषों को दुःख देता है और दण्ड लेनेवाला कर्म्मकर्त्ता होता है तो उसी कारण से उस को दण्ड कहते हैं ब्राह्मणों का वचन दण्ड है क्षत्रियों का दण्ड मासिक देना है वैश्यों का दान दण्ड है और शूद्र निर्दण्ड कहाजाता है सो हे राजन्! लोक में धन की रक्षा के लिये अज्ञानताही दण्डनाम मर्य्यादा है जहां राजा दण्ड लिये उद्युक्त रहता है वहां की प्रजा अज्ञान नहीं होती इसी से वहां अच्छे प्रकार से निर्णय होता है ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, भिक्षुक यह सब लोग भी दण्डही के भय से अपने अपने मार्ग में वर्त्तमान रहते हैं भयभीत मनुष्य न तो यज्ञ करसक्ता न दान देने की इच्छा करता न कहीं ठहरकर नियम धर्म्म करसक्ता न क्षत्रिय दूसरे मनुष्यों के मर्म्मों को छेदकर कठिन कर्म्म करसक्ता केवल एक मत्स्यघाती के समान जीवों को मारकर बड़ी लक्ष्मी को प्राप्त करता है इसलोक में नहीं मारनेवाले क्षत्रियकी न तो कीर्त्ति है न धनहै तो प्रजा भी नहीं है इन्द्रने वृत्रासुरके मारने से ही महेन्द्रपदवी पाई और देखिये जो मारनेवाले देवता हैं उन्हीं की पूजा अधिक लोग करते हैं रुद्र, इन्द्र, स्वामिकार्त्तिक, अग्नि, वरुण, यम यह मारने वाले हैं इसीप्रकार काल, वायु, मृत्यु, कुबेर, सूर्य्य, अष्टवसु, मरुद्गण, विश्वेदेवा यह भी मारनेवाले हैं इनके प्रतापों को जान के सबलोग पूजन करके प्रतिदिन नमस्कार करते हैं और ब्रह्माजी और पूषा देवता आदिको कोई नहीं पूजता और न किसी दशा में नमस्कार करते तात्पर्य्य यह है कि यह उत्पत्ति पालन करनेवाले हैं मनुष्यों में कोई मनुष्य शांतस्वभाव और जितेन्द्रिय सब कर्मों से शांत देवता को पूजता होगा इसलोक में हिंसारहित जीव तामें किसी को नहीं देखता बड़े बलवान् थोड़े बलवालों को मार खाकर जीते हैं जैसे नौला चूहों को मारकर खाता है उसीप्रकार बिलार नौले को खाता है और कुत्ता बिलार को और चीता व्याघ्र कुत्ते को खाता है और काल सब को ग्रास कर लेताहै देखो यह सब स्थावर जंगम जीवों का भोजन है कर्म्म ईश्वर का बनाया हुआ है उस में बुद्धिमान् अचेत नहीं होता जैसे उत्पन्न किया है वैसेही भोगना भी योग्य है क्रोध हर्ष को त्यागकर निर्बुद्धि वन में बसते हैं तपस्वी

लोग भी वन में विना धंधा किये अपने प्राणों की रक्षा नहीं करसक्के पृथ्वी, जल, फूल आदि वस्तुओं में अनेक जीव होते हैं उनको कौन नहीं मारता ऐसे २ सूक्ष्म जीव होते हैं जो पलक मारने से मरजाते हैं काम क्रोध से रहित मुनिलोग ग्रामों से निकल वन में जाकर गृहस्थलोगों को धर्म्मात्मा कर्म्म करनेवाले दृष्टि पड़ते हैं मनुष्य पृथ्वीको खोदकर अथवा जड़ी बूटीको काटकर ओषधी से और पशु पक्षियों के मांससे यज्ञों को रचते हैं वह स्वर्ग को जाते हैं हे युधिष्ठिर ! दण्ड से मिलीहुई इच्छा से सब जीवों के कर्म्म सिद्ध होते हैं यह निस्सन्देह बात है जो लोक में दण्ड न होय तो प्रजा नाश होजाय और निर्बलों को सबल खाजायँ जैसे कि जल में बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है यह सत्य वचन पहले समय में ब्रह्माजी ने कहा है कि दण्ड से प्रजा की रक्षा करना उत्तम नीति है देखो शांतहुई अग्नियां फिर भयकारी दण्डरूप फूंकनेसे प्रज्वलित होती हैं जो संसार में दण्ड न हो तो अच्छे बुरे का ज्ञान न हो जो कुमार्गी नास्तिकलोग वेद की निन्दा करते हैं वह भी दण्डके भयसे मर्य्यादा पालन करने के लिये अत्यन्त समर्थ होते हैं सब लोग दण्ड से ही जीते जाते हैं दण्डसे रहित लोग बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं भयकारी दण्डसे ही मर्य्यादा पालन होती है ईश्वर ने चारोंवर्ण के आनन्द और नेकनियत होकर अर्थ धर्म की रक्षा के निमित्त पृथ्वीपर दण्ड निर्मित किया जो पक्षी और भेड़िया आदि दुष्टजीव दण्ड से भयभीत न हों तो यज्ञकी हव्य कव्यकी सामग्री समेत संसार को खाजायँ जो दण्ड का भय न हो तो ब्रह्मचारी वेद को न पढ़ें और न सन्ततिवाला गौ को दुहे न कन्या विवाहको प्राप्त हो सर्वनाश होकर सम्पूर्ण मर्य्यादा टूटजायँ और दण्ड के विना कोई संवत्सर यज्ञों में मन्त्रयुक्त कर्म्म भी न करे सब आदमी वेदोक्त आश्रमधर्म्म को छोड़दें जो दण्डरक्षा न करे और हाथी, घोड़े, ऊंट, खच्चर, गधे आदि सवारी या बोझे को न लेचलें नौकर, लड़के, दास, दासी कोई आज्ञा को न मानें और स्त्रियां भी अपने धर्म्म में दृढ़ न रहैं अर्थात् सब देव मनुष्य इस लोक परलोक में दण्डही से अपने २ कर्म्म को सावधानी से करते हैं जहां शत्रुओं का नाशक दण्ड अच्छे प्रकार से जारी होकर घूमता है वहां कोई मिथ्या पाप छल आदि बुरा कर्म्म दिखाई नहीं देता जो यह राज्य धर्म्म से वा अधर्म्म से विजय किया इसमें शोक न करना चाहिये राज्य के भोगों को भोगो और यज्ञादिक करो धनवान् अथवा पवित्र

वस्त्रालंकार धारण करनेवाले फल आदि के दान देने से सुशोभित अनेक प्रकार के उत्तम अन्नादि भोजनों को करके सुखपूर्वक धर्म्म को करते हैं सब कर्म्मों का प्रारम्भ धन के आधीन है और वह धन दण्ड के स्वाधीन है कोई अत्यन्त नतो गुणवान् है न निर्गुण दोनों सब कर्म्मों में अच्छे और बड़े दृष्टि में आते हैं देखिये पशुओंके वृषणों को काटकर फिर उनके मस्तकों को तोड़ते हैं फिर वह बड़े बोझों को ले चलते हैं और पीटे भी जाते हैं ऐसे अनेक विषयों से लोक भराहुआ है इस से हे धर्म्म ! तुम अपने धर्म्म का आचरण करो शत्रुओं को निकालो और मित्रोंका पालन करो हे शत्रुओं के मारनेवाले ! तुमको कोई दुःख मत हो और हे भाई ! कर्त्ता को उसके मारने में कोई पाप नहीं होता जो सम्मुख शस्त्र लिये घात की इच्छा करके आवे और मारनेवाला भ्रूणहत्यासे भी बचता है सबभूतों में अन्तरात्मा अवध्य है जब कि आत्मा अवध्य अर्थात् कभी नहीं मरता तो वध करने में क्या दोष है जैसे कि मनुष्य दूसरे नवीन स्थान में प्रवेश करता है वैसेही जीवात्मा भी कर्माधीन नवीन देहको पाताहै अर्थात् पुराने देह को त्याग नवीन शरीर में जाता है यह तत्त्ववेत्ता कहते हैं ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि राजधर्मेऽर्जुनवाक्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५ ॥

सोलहवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि ऐसे वचन जब अर्जुन ने कहे तब अतिअमर्षी भीमसेन धैर्य्यता से अपने बड़े भाई से बोले कि हे राजन् ! तुम धर्म्म के जानने वाले हो ऐसी कोई बात नहीं जिसको आप न जानते हों आपको हम शिक्षा नहीं देसक्के हमारे मन में यही रहता है कि न कहूं न बोलूं परन्तु दुःख से बोले बिन रहा नहीं जाता इसको आप समझिये आपके बड़े मोह से सबको संदेह होता है और विकल होकर निर्बलता होती है सब शास्त्रों के ज्ञाता होकर लोकों के राजा कैसे होते हैं ऐसी दशा में राज्य के विषय में एक युक्ति को कहूंगा तुम चित्त से सुनो दो प्रकार की व्याधि होती हैं एक दैहिक दूसरी मानसिक उन दोनों की उत्पत्ति परस्पर से होतीहै अर्थात् जो पुरुष निर्द्धन्द्व है वह देह और मनको आत्मासे जुदा मानताहै वह उन व्याधियोंसे बचा रहता है देह के रोग से मन के रोग उत्पन्न होते हैं और यह भी निश्चय है कि मन के रोगों से भी देह में व्याधि उत्पन्न होती है और जो आदमी देह और मन के गत दुःखों को शोचता है वह दुःख से दुःख को पाता है और दोनों दुःख

अनर्थक हैं शरीर से तीन प्रकार के गुण होते हैं अर्थात् शीतता, उष्णता और वायुत्व और तीनों गुणों की जो ऐक्यताहै उसी को स्वस्थता कहते हैं अर्थात् वात, पित्त, कफ यह तीनों देह से उत्पन्न होनेवाले गुण हैं उन तीनों की जो समता है वही नीरोगता का लक्षण है उन्हों में जब एक अधिक होता है तब चिकित्सा करीजाती है गरम औषध से शीत दूर होते हैं और शीत औषध से गरमी जाती है और सत्त्व, रज, तम यह तीनों गुण मानसी हैं उन तीनों की जो साम्यावस्था है उसी को स्वस्थता कहते हैं उनमें भी एक की आधिक्यता होने में उपाय कियाजाता है जैसे कि शोक की शांति प्रसन्नता से और प्रसन्नता शोक से जाती रहती है कोई भी अज्ञानी सुख में वर्त्तमान होकर व्यतीत दुःख को स्मरण करना चाहता है अर्थात् शोक से आनन्द को पीड़ित करता है यह दोनों देहादि के अभिमान से सम्बन्ध रखते हैं परन्तु तुम तीनों काल में मन देह के दुःख सुखों से पृथक् हो इसकारण उन दोनों को भूलकर सुख दुःख के समय और दुःख सुख के समय स्मरण करने के योग्य नहीं हैं हे कौरव! जो तुम याद करना चाहते हो तो कैतो यह आप का स्वभाव है या दैव की प्रबलता है जिससे कि दुःखी होते हो आप सब पाण्डवों के देखते हुये एकवस्त्रा रजस्वला द्रौपदी को देखकर उसकी क्यों नहीं याद करते नगर से निकाल देना और मृगचर्म्मों का धारण करना और बड़े २ वनों में रहना आप क्यों नहीं याद करते जटासुर से दुःख पाना और चित्रसेन से युद्ध करना और राजा जयद्रथ से कष्ट पाने की याद को कैसे भूलगये हो फिर गुप्तवास में कीचक से राजपुत्री द्रौपदी को जो दुःख हुये उनका भी विस्मरण होगया हे शत्रुनाशन! जो तुम्हारे युद्ध द्रोणाचार्य्य और भीष्मजी के साथ हुये वह सब घोर आन्तरीय शत्रुता से हुये जिस युद्ध में दोनों हाथों में बाण और भाइयों से प्रयोजन नहीं केवल अकेले चित्तके साथ लड़नाहै वह आपका युद्ध सम्मुख वर्त्तमान है इस युद्ध में विजय न पाकर जो आप प्राणों को त्यागोगे तो दूसरी देह में आकर उनके साथ भी युद्ध करोगे तात्पर्य्य यह है कि उस वासनारूप चित्त के न जीतने पर दूसरे जन्म में भी पहले संस्कार से आपको वह युद्ध प्राप्त होगा इससे हे भरतर्षभ! अब भी अपने कर्म्म से इस अपवित्र देह को त्यागकर जो चित्तका विरोधी एकाकी भाव होने के लायकहै इसकारण चित्त के जीतने के लिये युद्ध करो उस चित्त के जीतन्दे पर उस दशा को प्राप्त होगे कि चित्त

से आत्मा पृथक् है इस स्वरूप की बुद्धि को और जीवों की उत्पत्ति आर प्रीति को आत्मारूप चित्त से उत्पन्न होनेवाली विचार के उसको त्यागकर पूरे त्यागी हो बाप दादों की रीतिपर संसार में जैसा कि उचित है वैसा राज्य कर और पापात्मा दुर्योधन अपने साथियों समेत दैवइच्छा से युद्ध में मारागया और प्रारब्ध ही से तुमने द्रौपदी के शिरके बाल पकड़ने का बदला पाया हे राजन्! बुद्धि के अनुसार तुम दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ करके ईश्वर का पूजन करो और हम सब लोग और महाप्रतापी वासुदेवजी आपके आज्ञाकारी हैं॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवां अध्याय ॥

राजा युधिष्ठिर बोले कि बातों से त्याग नहीं होता किन्तु चित्त के रोकने से होता है और वह चित्त की रुकावट संतोषपूर्वक चित्त की एकाग्रता, नम्रता, वैराग्य, शान्ति, धैर्य्य, रूपान्तर होना, निरहंकार होने से होती है और राज्य असन्तोषी मनुष्य के करने योग्य होता है इसकारण राज्य के चाहनेवाले तुम छोटे होकर हम से पण्डिताई मत छांटो और राज्य को त्यागकर संतोषी हो इस बात को सिद्ध करतेहुये युधिष्ठिर बोले कि असंतोषता, प्रमादता, मत्तता, रागता, प्रशान्तता, बलवत्ता, मोहता और सबप्रकार से व्यग्रचित्तता आदि अनेक प्रकारके पापों से भरे हुये तुम राज्यको चाहते हो जो अकेला राजा इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करे तो निश्चय है कि उसका भी एक ही पेट है तुम उसकी क्या प्रशंसा करते हो मास दिन आदि में असंपूर्ण होने के योग्य चित्त की इच्छा का पूर्ण करना उमरभर में भी नहीं होसक्ता क्योंकि प्रतिदिन लाभ होने में भी इच्छा बढ़ती ही जाती है ज्ञानी लोग भी अपने पेटके ही लिये बहुत भक्ष्यवाले अमृतयज्ञ को करते हैं पहले पेट को जीतो फिर परलोक के जीतने से पृथ्वी भी जीती जाती है वही विजय तुम को भी हुई है तुम नरलोक के भोग और ऐश्वर्य्योंकी प्रशंसा करते हो भोग न करनेवाले और तप से देह को दुर्बल करनेवाले उत्तम स्थान को पाते हैं निष्फल राज्य का मिलना और फल की रक्षा यह दोनों धर्म्म और अधर्म्मरूप तुम में वर्त्तमान हैं इससे बड़े बोझे से खाली होकर त्यागके भी रक्षा करनेवाले हो देखो व्याघ्र एक पेट के लिये शिकार करता है उससे और भी निर्बुद्धि मृग लोभ से बँधकर जीविका करते हैं जो राजा बाहर की विषयवासना को अपने वशीभूत करके संन्यास धारण करते हैं

वह चित्त से प्रसन्न नहीं होते यह बुद्धि की विपरीतता जानो पत्तों के भोजन वा पाषाण पर कूटकर खानेवाले और इसीप्रकार दांतों को ऊखल बनानेवाले जल का भोजन करनेवाले और वायुभक्षणवाले जो ऋषिलोग हैं वह इस नरक से उद्धार होते हैं जो राजा इस संपूर्ण पृथ्वीपर राज्य करे उससे वह संन्यासी अच्छा है जिसकी बुद्धि में पत्थर और सुवर्ण समान है पहले कहे हुये संस्कार और संकल्पों का प्रारम्भ कर्म्म न करनेवाला ममता को छोड़ निराश हो इस लोक परलोक दोनों में ऐसे अशोकस्थान को पाता है जिसका नाश नहीं राज्य के त्याग करनेवाले शोच नहीं करते हैं तुम राज्यको क्या शोचते हो जब सब राज्यको त्याग दोगे तब मिथ्यावाद से रहित होगे पितृयान या देवयान यही दो मार्ग प्रसिद्ध हैं यज्ञ करनेवाले तो पितृयान से और मोक्ष चाहनेवाले देवयान से अपने २ मार्ग को जाते हैं और वह महर्षि जो तप और ब्रह्मचर्य्य और वेद के पाठ से देहों को त्यागकर तत्त्वों को प्राप्त होते हैं वही जीवन्मुक्त हैं इसलोक में आमिष ही बन्धन है तो उसी आमिष अर्थात् मांसादिकों को कर्म्म में हवन करके उन पापों से छूटकर उत्तम पद को प्राप्त होते हैं और जो लोग निर्द्वन्द्व मोक्ष के जाननेवाले हैं वह इन पुरानी कथाओं को कल्पना कहते हैं महासुंदर शोभायमान मिथिलापुरी में मेरा असंख्य धन है उसकी मुझको कुछ भी ममता नहींहै ज्ञानके रथपर चढ़कर शोचने के अयोग्य स्वर्गवासी मनुष्यों को शोचनेवाला निर्बुद्धि नहीं मालूम होता अर्थात् वह उनकी दुखिया स्त्रियों आदि को नहीं शोचताहै जैसे कि पहाड़पर बैठा मनुष्य पृथ्वीपर बैठेहुये मनुष्य को देखे जो पुरुष देखने के योग्य बातों को देखता है वही बुद्धिमान् और नेत्र रखनेवाला है इसकारण कि ज्ञात अज्ञात और करने वा न करने के योग्य बातों के जतलाने को बुद्धि कहते हैं और ब्रह्मभावको जाननेवाला शुद्ध अन्तःकरण जो पुरुषहै वह विद्वानों के वचनोंको अच्छे प्रकार से जानताहै अर्थात् उनके वचनों के आशयको समझता है वही बड़ी प्रतिष्ठा पाताहै अब तत्त्वज्ञान का वर्णन करते हैं कि जिससमय आकाशादि पंच महाभूतों के अनेक भेदों को एक आत्मा में देखता है और उसी आत्मा से उनकी उत्पत्तियों को भी देखताहै तब तत्त्व की प्राप्ति होती है जो मनुष्य अज्ञानी निर्बुद्धि और तपस्या से रहित हैं वह तत्त्वदर्शियों की गति को नहीं पाते ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवां अध्याय ॥

इतना कहकर राजा फिर चुपका होगया तब भाई के वचनों से महाशोकयुक्त हो फिर अर्जुन बोले कि हे राजन् ! इस विषय में हम एक पूर्व्व वृत्तांत कहते हैं कि जिसमें राजा जनक और उनकी स्त्री का संवाद है कि किसी समय राजा जनकने भिक्षा के निमित्त राज्य त्याग करनेकी इच्छाकी कि धन, पुत्र, स्त्री और अनेक प्रकार के रत्नों को और यज्ञादिक करने से शुद्ध सनातन मार्गों को त्याग मूर्खता में पड़ कमंडलु हाथ में ले मुट्ठी २ अन्न मांगते उदासीनवृत्ति हो विचरेंगे यह राजा का दृढ़विचारजान उसकी पतिव्रता स्त्री ने क्रोधित होकर कहा कि आप को यह क्या मूर्खता आई है कि ऐसे धनधान्ययुक्त अपने उत्तम राज्य को त्यागकर खप्पर हाथ में धारण करके घर २ भीख मांगोगे यह एक २ मुट्ठी जौका मांगना तुम को योग्य नहीं हे राजन् ! यह तुम्हारी प्रतिज्ञा मिथ्या है कि तुम ऐसे बड़े राज्य को त्यागकर थोड़े सामान कमंडलु आदि से तृप्तहोते हो हे स्वामिन् ! इस थोड़ेसे सामान और मुट्ठी२ अन्न से तुम देव, ऋषि, पितृ आदिको तृप्त नहीं करसक्ते इससे यह आप का परिश्रम निष्फल है हे राजन् ! तुम देव, ऋषि, अतिथि और पितरों को त्यागकर निष्कर्म्म संन्यासी होते हो जो तुम तीनों वेदोंके पढ़ने से प्रतिष्ठित और हजारों ब्राह्मण और संसार का पोषण करनेवाले होकर शोभायमान थे सो तुम उन ब्राह्मण आदिके द्वारा अपना पेट भरना चाहते हो अत्यन्त प्रकाशवान् लक्ष्मी को छोड़कर कुत्ते के सदृश दीखते हो अब आप की माता पुत्र से रहित है और तुम्हारे कारण मैं भी पतिरहित हूं जो बड़े२ धनी भाग्यवान् क्षत्रिय राजा हजारों आप की सेवा करते हैं हे राजन् ! लोक के बिगड़ने और देह ईश्वर के आधीन होने से तुम उन राजाओं को निष्फल करके किस लोक में जावोगे तुझ पापकर्म्मी का यह लोक परलोक दोनों नहीं हैं जो तुम धर्म्म से प्राप्त हुई स्त्रियों को त्यागकर जीते रहना चाहते हो गन्धमाल और आभूषण और नानाप्रकार के वस्त्रों को भी त्यागकर विना कर्म्म तुम कैसे त्यागी होते हो और सब जीवों के पोषक रक्षक होकर और पक्षियों के निमित्त फलवान् वृक्ष होकर दूसरों की सेवा किया चाहते हो बहुत से मांसभक्षी और कीड़े निरपराधी हाथी को भी खाते हैं फिर सब पुरुषार्थ से रहित तुमको क्यों नहीं खायँगे जो इस कुंडल को तोड़ आप के वस्त्रों को भी छीनले तो ऐसी दशा में आप का चित्त कैसा होगा जो तुम इन

सबको त्यागकर एकमुट्ठी भुनेहुये जौ के धारण करनेवाले हुये जब उस मुट्ठी जौके सदृश सब संसार है तो फिर तुम कैसे निश्चय करते हो जो यहां एक मुट्ठी जौ से प्रयोजन है तब आपकी प्रतिज्ञा अत्यन्त नाश को प्राप्त होगी तो त्यागी नहीं हो सक्के मैं कौन हूँ और तुम मेरे कौन हो और मुझपर तुम्हारी क्या कृपा है हे राजन् ! इस पृथ्वीपर राज्य करके महल, पलंग, सवारी, वस्त्र, आभूषणों को भोगो इसी में तुम्हारा कल्याण है ऋग्, यजु, सामवेदरूपी यज्ञ लक्ष्मी से रहित निर्धन अमित्रवान् परमसुख चाहनेवाले संन्यासियों को कुंडल धारण कियेहुये देखकर राजा भी उसी प्रकार धारण करता है वह राज्य को क्या त्याग करता है अर्थात् त्याग करना कठिन है आप उन दोनों मनुष्यों का अन्तर देखो जो बहुत देता या बहुत लेता है और उनदोनों में कौन सा श्रेष्ठ है पाखंड से भरेहुये याचक मनुष्यों को दक्षिणा का देना ऐसा है जैसा कि निर्बुद्धिता से दावानल अग्नि में हवन करना हे राजन् ! जैसे कि अग्नि भस्म करके शांत होजाती है उसी प्रकार याचना करनेवाला ब्राह्मण भी शांति को प्राप्त होता है इसलोक में संन्यासियों को भोजन देना मानो जीविका है जो राजा होके दान करनेवाला न होय तो मोक्ष चाहनेवाले कहां से होयँ इस संसार में कुटुम्बी लोग अन्न से जीवते हैं उसी से संन्यासी भी जीवते हैं अन्न से प्राण बना रहता है अन्न का दाता प्राण का दाता जानो जितेन्द्रिय पुरुष कुटुम्बीलोगों से जुदे भी होकर कुटुम्बवालों के हो ऐश्वर्य्य से प्रतिष्ठा पातेरहते हैं त्यागने से और मूर्खतापूर्वक याचना के करनेवाले संन्यासी से वह पुरुष उत्तम है जो अपने शुद्धभाव से धनआदि को त्यागता है हे राजन् ! जो निस्संग हो बन्धन को त्याग शत्रुमित्र में समानबुद्धि और दृश्यपदार्थों में चित्त को न लगा कर वैराग्यवान् है वही मुक्त है और शिरमुड़ाकर गेरुयेवस्त्र पहिन बहुत से जंजालों में फँसे हुये धन के खोजने में फिरते हैं जो अल्पबुद्धि वेद के सनातनमार्ग को और अपने स्त्री पुत्रादिकों को त्यागकर जाते हैं वह कभी मुक्ति नहीं पाते हे महाराज ! जितेन्द्रिय पुरुष मूड़मुड़ाये गेरुआ कपड़े जटाधारी मृगचर्म्म ओढ़नेवाले धनकांक्षी साधुओं से उत्तम हैं जो मनुष्य प्रतिदिन अपने प्रथम गुरु के निमित्त अग्निहोत्रों की दक्षिणा को देता है और बड़े२ यज्ञों को भी करता है उससे अधिक धर्मात्मा कौन है अर्जुन बोले कि इसलोक में राजा जनक बड़ा तत्त्ववेत्ता प्रसिद्ध है वह भी अज्ञान के वशीभूत हुआ इससे आप भी मोह में मत

फँसो और धर्म्म में प्रवृत्त हो सदैव दान तप में तत्पर दया आदि गुणोंसे सम्पन्न काम क्रोधसे वर्जित प्रजापालनरूपी महादान में स्थित अपने गुरु वृद्ध इष्टमित्र और याचकों को संतुष्टकर अपनी बुद्धि के अनुसार देवता अतिथि और अनेक जीवों को यजन, पूजन, भोजन आदि से प्रसन्न करके वेद के अनुसार उत्तम ब्राह्मणों का सत्कारकर सत्यवक्ता हो हम सब समेत आप उत्तमपद को पावोगे ४०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भाई! मैं वेदांतशास्त्र और अन्य शास्त्र को जानकर यह भी जानता हूं कि क्या त्यागना और क्या नहीं त्यागना चाहिये और उन शास्त्रों को भी जानता हूं जो घरानों से सम्बन्ध रखते हैं और मन्त्रों में भी मुझे बुद्धि के अनुसार निश्चय है परन्तु तुमलोग केवल अस्त्रविद्याओं के जाननेवाले और वीरों के व्रत से भरेहुये हो इससे किसी दशा में भी शास्त्र के यथार्थ आशय के जानने को समर्थ नहीं हो और जो शास्त्र के सूक्ष्म आशयों का देखनेवाला है और धर्म्म के निश्चय करने में पण्डित है वह भी ऐसा नहीं कह सक्ता और तुमने भाईके सुहृद्भाव में प्राप्त होकर वचनों को कहा इससे हे अर्जुन! मैं तुमसे प्रसन्न हूं युद्धधर्म्म में और क्रियाओं की चतुरता में तीनों लोकों में कोई भी तेरे समान नहीं है धर्म्म बड़ा सूक्ष्म है उसमें वार्त्तालाप करना तुमको बड़ा कठिन है इससे हे वीर! सन्देह करने के योग्य तेरी बुद्धि नहीं है तुम तो केवल जनक के ही शास्त्र को जानते हो तुमने वृद्ध पुरुषों का संग नहीं किया इससे तुम ने उन तत्त्वदर्शियों के निश्चय भाव को नहीं जाना बुद्धिमान्लोग निश्चयपूर्वक कहते हैं कि तपस्या का त्याग करना बुद्धि की विपरीतता है और जो तुम कहते हो कि धन से उत्तम तप नहीं है इसविषय में मैं तुमसे वर्णन करूंगा जैसे कि यह उत्तम है कि धर्म्मवान् पुरुष तप वेदको पठन पाठन और जप आदिके अभ्यास करनेवाले देखने में आते हैं ऐसे ऋषिलोग भी तपस्याही में प्रवृत्त रहते हैं जिनके सनातनलोक हैं इसी प्रकार के अन्य वनवासी भी जो सब संसार से मित्रभाव करनेवाले वेदपाठ और जप तप के करने से स्वर्ग को गये उत्तम पुरुष विषयों को त्याग अज्ञानरूपी अन्धकार से पार होकर उत्तम मार्ग से कर्म्मत्यागियों के लोकों को गये और जो दक्षिणमार्ग हैं जिनको कि प्रकाशवान् कहते हैं वह कर्म्मवालों के लोक हैं जो इन मार्गों से

जाते हैं वह जन्म मरण के फंदे से नहीं छूटते वह मोक्ष वर्णन नहीं कियाजाता है जिसको कि मोक्षमार्ग में चलनेवाले देखते हैं इसकारण उसके प्राप्त होने के लिये योगाभ्यास करना उत्तम है परन्तु जानना उसका महाकठिन है पंडित लोग भी शास्त्रों में सारासार विचारतेहुये उसके सत्यासत्य जानने में भूलेहुये हैं उन्हों ने वेद के वचनों को और वेदांत शास्त्रों को उल्लंघन करके केले के खम्भे को चीरकर सार वस्तु को नहीं देखा और अब दूसरे की मति को त्याग करके सिद्धान्त कहते हैं कि वह आत्मा, मन, बुद्धि, वाणी से परे नेत्रों से अदृश्य कर्म्मसाक्षी प्रकाशवान् हो प्राणियों में वर्त्तमान है चित्त को आत्मा की ओर लगाकर इच्छा और लोभ को वशीभूत करके और नित्यकर्म्मों को त्यागके अहंकाररहित होजाता है हे अर्जुन! इस सूक्ष्म बुद्धि से प्राप्त होने के योग्य सत्पुरुषों से सेवित मार्ग में तुम किसप्रकार से अनर्थ नाम अर्थ की प्रशंसा करते हो हे अर्जुन! कर्म्मकाण्ड के जाननेवाले दान, यज्ञ, कर्म्म और क्रियाओं के व्रत रखनेवाले मनुष्य भी इसीप्रकार देखते हैं तो फिर ज्ञानीलोग क्यों न देखेंगे कारणों के जाननेवाले पण्डितलोग सिद्धान्त बातों को कष्ट से भी नहीं समझसक्के कारण यह है कि वह पहिले जन्म के दृढ़ संस्कार को रखनेवाले ऐसा नहीं कहनेवाले हैं और मिथ्या को निर्मूल करने के लिये सभाओं में शास्त्रार्थ के करने में अतिप्रगल्भबुद्धि रखनेवाले और अनेक शास्त्रोंके वेत्तालोग सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमते हैं इसप्रकार शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता ज्ञानी और महापुरुष भी सुने गये उनको हम नहीं जानते तो दूसरा कौन उनको जानसक्ता है हे अर्जुन! तपसेही वैराग्य को पाताहै और बुद्धि से परब्रह्म को भी जानता है इस प्रकारके तत्त्व का जाननेवाला त्यागही से सदैव आनन्द को पाता है॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि राजधर्मे युधिष्ठिरवाक्ये एकोनविंशतितमोऽध्यायः॥ १९॥

बीसवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि इस वचन के कहने के समय सामयिक वक्ता देवस्थान नाम महातपस्वी ऋषि ने बड़ी युक्ति के सहित युधिष्ठिर से यह वचन कहा कि हे युधिष्ठिर! अर्जुन ने जो कहा कि तप धन से बड़ा नहीं है इस विषय में तुझ से मैं कहता हूं तू एकाग्रचित्त होकर सुन हे अजातशत्रु, युधिष्ठिर! तुमने धर्म्म से सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय किया उस जीतीहुई को अयोग्य रीति पर त्यागदेना उचित नहीं क्योंकि चारों आश्रमों से सम्बन्ध रखनेवाली श्रेणी

ब्रह्मही में नियत है इससे हे महाबाहो, युधिष्ठिर ! तुम भी उसको बुद्धि की परम्परा से विजय करो अर्थात् बड़ी दक्षिणावाले महायज्ञों से पूजन करो वेद का पठन पाठन ये रूप यज्ञ तो ऋषियों का और ज्ञानरूपी यज्ञ औरों का अर्थात् ब्रह्मचारी और संन्यासी का और कर्म्मनिष्ठ गृहस्थों का और तपोनिष्ठ होना वानप्रस्थों का जानो हे राजन् ! इसीप्रकार वैखानस नाम ऋषियों का सुना जाता है जो पुरुष धन के लिये इच्छा को करे उसकी इच्छा न करनाही उत्तम है और जो उस धर्म्म को कोई क्षत्रिय करे वह बड़ा दोषी होता है और यज्ञही के कारण धनसंचय करते हैं जो देह को या उसी के समान धन को अयोग्य कर्म्म में खोता है और योग्य कर्म्म में नहीं लगाता है वह आत्मा से शत्रुता करनेवाली भ्रूणहत्या को नहीं जानता है योग्यायोग्य कर्म्मों का ज्ञान न होने से शुद्ध धर्म्म भी कठिनता से होता है ईश्वर ने यज्ञ करने के लिये धनुर्द्धारियों को उत्पन्न किया इससे यज्ञ के निमित्त आज्ञा पाया हुआ मनुष्य उस यज्ञ का रक्षक है इस कारण सब धन यज्ञही में खर्च करने के योग्य है उसीसे चित्त की इच्छा भी पूर्ण होती है बड़े तेजस्वी देवेश इन्द्र ने निरीच्छ होकर ईश्वरार्पण यज्ञकेही द्वारा सब देवताओं को अपना आज्ञाकारी किया और उसी यज्ञ के कारण वह अमरावती पुरी को पाकर अबतक शोभायमान है इससे निश्चय करके यज्ञमेंही सब धन खर्चना उचित है और महादेवजी भी सर्वयज्ञ में अपनी आत्मा को हवन करके सब देवताओं के देवता हुये और महातेजस्वी हो अपने तेज को इस ब्रह्माण्ड के सब लोकों में व्याप्त करके अपनी सुन्दर कीर्त्ति से पूर्ण कर दिगम्बररूप धारण किये विराजमान हैं और एक आविक्षत मरुत हुआ है जिसने देवराज इन्द्र को विजय किया उसके यज्ञ में आप श्रीलक्ष्मीजी ने आकर दर्शन दिया उस यज्ञ में सब सुवर्ण के ही पात्र थे और हरिश्चन्द्र राजा को भी सुना होगा कि उसने भी बड़े२ यज्ञों से पूजन किया और इन्द्र को भी विजय किया इसी से सब धनको यज्ञही में लगाना चाहिये ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इक्कीसवां अध्याय ॥

देवस्थान ऋषि बोले कि हम इस स्थान में एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको समय पर पूछने से बृहस्पतिजी ने इन्द्र से कहा कि निश्चय करके सन्तोष करनाही बड़ा स्वर्ग है सन्तोषी को महासुख होता है जब वह सन्तोषी

इसप्रकार अपनी इच्छा को आत्मा में छिपाता है जैसे कि कछुआ अपने अंगों को तब थोड़ेही काल में ज्योतिरूप आत्मा अपनी आत्मामेंही प्रसन्न होता है तब यह भय नहीं करता और न इससे दूसरे को भय होता है और किसी बात की इच्छा नहीं करता तब ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है हे राजन् ! इस प्रकार अधिकारी जीव जिस समय जिस २ रीति से जिस २ कर्म्म को करता है वह उस २ कर्म्म को अपने अनुभव से देखता है इसकारण तुम भी ज्ञाता हो अर्थात् प्रजा के पालन से निर्भयता प्राप्त करो कोई शस्त्र को कोई उद्योग को कोई ध्यान को अच्छा कहते हैं और कोई २ दोनों कोही श्रेष्ठ समझते हैं इसी प्रकार कोई यज्ञ की कोई संन्यास की कोई दान की प्रशंसा करते हैं और कोई दान लेने को भी अच्छा कहते हैं कोई सब त्यागकर मौन हो बैठते हैं और कितनेही राज्य और प्रजापालन को श्रेष्ठ बतलाते हैं और कोई मारकर भेदकर विदीर्णकर एकान्तवास करते हैं इन सब बातों को देखकर कहता हूं कि निश्चय अपने कर्म्म में प्रवृत्त हो अब सिद्धान्त बात कहता हूं कि जीवों में जो शत्रुता न करने से धर्म्म होता है वह सत्पुरुषों का स्वीकृत है जैसे कि द्रोह न करना सत्य बोलना विभागकरने में दया पाखण्ड न करना भयभीत न होना अपनी स्त्रियों में सन्तति उत्पन्न करना नम्रता लज्जा स्थिरस्वभाव इसप्रकार से उत्तम धर्म्मों में प्रवृत्त रहना स्वायम्भुवमनु ने कहा है इससे हे कौन्तेय ! बड़ी युक्तिसे इस धर्म्म को पालन करो यज्ञ के शेष अमृत अन्न का खानेवाला और शास्त्र के अर्थ को यथार्थ जाननेवाला अपराधियों को दण्ड देनेवाला साधुओं की पालना में अतिशय प्रीतिमान् हो प्रजा को सुमार्ग में स्थितकरके आप भी धर्म्मपूर्वक कर्म्म करै फिर अपने पुत्र को राज्य का अधिकारी कर वन के कन्द, मूल, फलों से अपना निर्वाह कर वन में रह शास्त्रश्रवण करनेवाली सुबुद्धि से कर्म्मों को करै हे राजन् ! आलस्य को त्याग ये धर्मनिष्ठ होकर जो राजा ऐसे कर्म्म करता है उसका यह लोक और परलोक सफल होता है और इसी कर्म्म से काम, क्रोध, लोभ भी नष्ट होजाते हैं प्रजापालन में तत्पर और दान तप में प्रवृत्त दयायुक्त क्रोध इच्छा से रहित उत्तम धर्मवान् गौ ब्राह्मणों के अर्थ युद्ध करनेवाले क्षत्रियों ने उत्तम गति को पाया है और एकादश रुद्र और अष्टवसु और द्वादश सूर्य्य साधुवर्ग्ग और ऋषियों के अंशोंसे बनी राजा की देह होती है इससे तुम इस धर्म्मपर निश्चय नियत हो॥२३॥

इति श्रीमहाभारते-शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इतनी बातें सुननेवाले युधिष्ठिर से फिर अर्जुन ने वचन कहा कि हे महाबुद्धिमन्, धर्मज्ञ, युधिष्ठिर ! क्षत्रियधर्म से बड़ी कठिनतापूर्वक शत्रुओं को विजयकर राज्य पाकर क्यों दुःखी होते हो हे महाराज ! क्षत्रियधर्म्म को ध्यान करते महापुरुषों ने क्षत्रियों का युद्ध में मरना बहुत से यज्ञों से भी उत्तम कहा है और ब्राह्मणों का संन्यासधर्म्म देह के त्यागने के समय पर कहागया है और क्षत्रियों का युद्ध में मरना ही संन्यास से उत्तम माना है और हे राजन् ! क्षत्रियधर्म्म महारुद्र और महेश्वरशास्त्रों से संयुक्त है और समय पाकर युद्ध में शस्त्रों से मरना होता है इससे हे राजन् ! जो ब्राह्मण भी क्षत्रियधर्म्म में प्रवृत्त होता है उसका जन्म सुफल होता है और योग्य इस कारण है कि लोक में क्षत्रिय का वंश ब्राह्मण से उत्पन्न होनेवाला है और स्वामी क्षत्रिय को न तप न संन्यास न ब्रह्मयज्ञ न दूसरे धन से जीविका करना योग्य है इस से हे बुद्धिमन्, धर्म्मात्मन् ! आप प्रजापालन में तत्पर हो और दुःख से प्राप्त हुये शोक को त्यागकर कर्म्म करने में प्रवृत्त होजावो मुख्य करके क्षत्रिय का हृदय वज्र के तुल्य होता है सो ऐसे क्षत्रियधर्म्म से राज्य को पाकर जितेन्द्रिय हो यज्ञ दान आदि कर्म्मों में ध्यान दो निश्चय है कि इन्द्र भी ब्राह्मण का पुत्र हो कर्म्म से क्षत्रिय हुआ उसने पापात्माजाति के आठसौदश प्रकारों को मारा हे राजन् ! उसका वह कर्म्म प्रशंसा के योग्य है उसी कारण देवताओं के स्वामी हुये यह हम ने सुना है हे नरेंद्र ! आप तप के सिवाय बड़े २ दक्षिणावाले यज्ञों को करके इन्द्र के समान पूजन करो और हे भाई ! आप ऐसी दशा में कुछ शोच न करो उन शस्त्रों से पवित्र क्षत्रियलोग अपने क्षत्रियधर्म्म से परमपद को प्राप्त हुये हे राजशिरोमणे ! जो भवितव्य था सो हुआ उसके मिटाने को कोई समर्थ नहीं इससे तुम भी उल्लङ्घन करने के योग्य नहीं हो ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तेईसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि अर्जुन के इतने कहनेपर भी युधिष्ठिर ने कुछ नहीं कहा तब व्यासजी बोले कि हे स्वामिन्, युधिष्ठिर ! यह अर्जुन का वचन सत्य है यह गृहस्थधर्म्म शास्त्र की दृष्टि से उत्तम है इस धर्म्म के रक्षक होकर धर्म्म में वर्त्तमान शास्त्रबुद्धि से अपना कर्म्म करो हे धर्म्मज्ञ ! गृहस्थाश्रम को छोड़

तुम्हारा वन में वास करना धर्म्म नहीं है गृहस्थ से देवता, अतिथि, पितर और नौकर, चाकर सब अपना निर्वाह करते हैं इससे उनका पोषण करो और पशु पक्षी आदि जीवधारी भी गृहस्थही से पलते हैं इसहेतु से गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमों में श्रेष्ठ है चारों आश्रमोंमें यह आश्रम दुःखसे कटने योग्यहै हे राजन्! अब उस विधि को करो जोकि निर्बल असाहसी लोगों से कष्ट से होने के योग्य है तुम सब वेदों के जाननेवाले और महातपस्या करनेवाले हो सो आप बाप दादे के राज्य के धुर धारण करने के योग्य हो हे राजन्! तपसमाधि, ब्रह्मविद्या, भिक्षामांगना, दृढ़ विश्वास, ध्यान और एकान्त बैठना, सन्तोष और सामर्थ्य के समान दान देना यह ब्राह्मणों का कर्म्म मोक्ष का देनेवाला है और क्षत्रियों के कर्म्म को कहता हूँ वह सब तेरा जाना हुआ है यज्ञ करना विद्या पढ़ना लक्ष्मी के लिये उत्तम उद्योग सन्तोष करना दान देना उग्ररूप होना और प्रजा का पोषण और सब वेदों का ज्ञान और ऐसेही अच्छे प्रकार से किया हुआ तप बड़े धन का संचय करना और पात्र को दान देना ये राजाओं के श्रेष्ठकर्म्म हैं हे राजन्! वह इस लोक परलोक दोनों को सिद्ध करते हैं यह हमने सुना है हे कुन्ती के पुत्र! इन सबमें दण्ड का धारण करना उत्तम कहाजाता है क्षत्रिय में सदैव पराक्रम है और पराक्रम में सदैव दण्ड नियत है यह क्षत्रियों की विद्या मोक्ष की देनेवाली है और बृहस्पतिजी ने भी इस कथा को गाया है पृथ्वी इन पूर्वोक्त दोनों को निगलजाती है जिस प्रकार बिल में रहनेवाले चूहों को सर्प और शत्रुता न करनेवाला राजा और वनवास न करनेवाला ब्राह्मण निकृष्ट सुनाजाता है सुद्युम्न राजऋषि ने दण्ड के धारण करने सेही ऐसी परम गति को पाया जैसी कि प्राचेतस दक्ष ने पाई युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन्! राजा सुद्युम्न ने किस कर्म्म से ऐसी सिद्धि को पाया मैं उसका वृत्तान्त सुना चाहता हूं व्यासजी बोले कि मैं इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास कहता हूं कि शङ्ख और लिखित नाम ब्राह्मण दोनों भाई थे वे बड़े तेजस्वी और व्रत करनेवाले हुये उन दोनों के पृथक् २ आकाम बाहुदा नदी के सामने सुपुष्पित सफल वृक्षों से शोभित अतिसुन्दर वर्त्तमान थे किसी समय दैव इच्छा से लिखित शङ्ख के आकाम को गया तो उसे देख शङ्ख भी अपने आकाम से निकला तब उस लिखित ने शङ्ख के उस आकाम में जो सुन्दर फल फूलों से युक्त था जाकर झुकेहुये फलों को गिराया और फलों का भोजन करनेलगा उसके भोजन करने

के समय शङ्ख भी अपने आश्रम में आया और उस फल खानेवाले अपने भाई से कहा कि यह फल तैंने कहां से पाये और काहे को खाता है तब हँसकर लिखित ने उसके पास जाकर कहा कि मैंने यह फल यहां से लिये हैं तब महाक्रोधित हो शङ्ख ने उससे कहा कि आप से तुम ने जो इन फलों को लिया यह तुम ने चोरी की तुम राजा के पास जाकर अपना कियाहुआ चोरकर्म्म कहो कि हे राजाओं में उत्तम! मैंने विना दीहुई वस्तु को लेलिया तुम मुझ को चोर जानकर अपने धर्म्म का पालन करो और मुझ चोर को शीघ्र दण्ड दो हे महाबाहो! इसप्रकार के अपने भाई के वचन सुनकर वह राजा के पास गया और अपना सब वृत्तान्त राजा से कहा तब राजा सुद्युम्न द्वारपालों के मुख से आये हुये लिखित को सुनकर मन्त्रियोंसमेत पैदल उसके पास गया और उससे मिलकर राजा ने धर्म्मयुक्त वचन कहे कि हे भगवन्! आप का आना कैसे हुआ आपका जो मनोरथ हो वह मैं तत्काल ही करूंगा इसप्रकार के राजा के वचनों को सुन वह ब्रह्मर्षि बोला कि हे नरोत्तम, महाराज! मैंने बड़े भाई से विना आज्ञा लिये फलों को भोजन करलिया उसमें मुझ को जो उचित दण्ड हो वह शीघ्र दो विलम्ब न करो राजा सुद्युम्न बोला कि हे ब्राह्मणों में उत्तम! जैसे आपने दण्डदेने में राजा को प्रमाण माना है उसी प्रकार आज्ञा देने में भी प्रमाण जानिये इसकारण शुद्धकर्मी और महाव्रतधारी आप मुझ से आज्ञा पानेवाले हो इसके विशेष जो तुम दूसरी कोई अन्यवार्त्ता अपनी प्रसन्नता की कहो उसे मैं अवश्य करूंगा यह सुन उसमहर्षि ने अपने दण्डके सिवाय दूसरा कोई वर राजा से न मांगा तब तो राजा ने उस लिखित नाम ब्रह्मर्षि के हाथों को कटवाया और दण्ड पाकर वह ऋषि चलेगये और पीड़ितस्वरूप से अपने भाई शङ्ख से जाकर यह बोले कि मुझ निर्बुद्धि दण्ड पानेवालेका वह अपराध क्षमा कीजियेगा शङ्ख बोला कि हे धर्म्म के जाननेवाले! मैं तुझपर क्रोध नहीं करता क्योंकि तुम मुझ को दोष का भागी नहीं करते तेरा धर्म्म बेमर्य्यादा हुआ था इसकारण तेरा प्रायश्चित्त हुआ तुम शीघ्रही बाहुदा नदी पर जाकर बुद्धिके अनुसार देवता और पितरों को तर्पण करो और अधर्म्म में चित्त न लगावो लिखित ने शङ्ख के उस वचन को सुनकर उस पवित्र नदी पर जा आचमन आदि करना प्रारम्भ किया तब उसके दोनों हाथ कमल के सदृश प्रकट हुये तब उसने वह हाथ अपने भाई को दिखाये फिर शङ्ख ने उससे कहा कि मैंने यह हाथ तपस्या से किये इसमें

तुम कुछ संदेह मत करो इसमें दैवही कारण कहाजाता है लिखित बोले कि हे महातपस्विन् ! तुमने पहिलेही मुझ को पवित्र क्यों न किया जो आप सरीखे ब्राह्मणोत्तमों में तप का ऐसा प्रभाव है शङ्ख बोले कि मैंने इसकारण ऐसा किया कि मैं तेरा दण्ड देनेवाला नहीं वह राजा पवित्र हुआ और तुम भी पितरों समेत पवित्र हुये व्यासजी बोले कि हे राजन्, युधिष्ठिर ! उस सुद्युम्न राजा ने उसी कर्म्म के द्वारा परमानन्दरूपी पवित्रता को ऐसा पाया जैसा कि प्राचेतस दक्षजी ने पाई थी इससे हे महात्मन् ! प्रजा का पालनही क्षत्रियों का धर्म्म है और दूसरा कुमार्ग है शोक से चित्त को हटाकर भाई के हितकारी वचनों को सुनो कि राजाओं को दण्डही धारण करना योग्य है मुण्डन धर्म्म नहीं है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चौबीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि इतना सुनाकर फिर उस अजातशत्रु युधिष्ठिर से व्यासजी ने यह वचन कहा कि हे तात ! तेरे मनस्वी भाइयों से वन में बसने के समय जो मनोरथ हुये थे हे महारथिन् ! उनको बतावो और तुम पृथ्वीपर राज्य करो जैसे कि नहुष के पुत्र ययाति ने किया हे नरोत्तम ! इन बिचारे तपस्वी वीरों ने वन में अनेक प्रकार से दुःखों को सहा और दुःख के अन्त में सुख को सब भोगते हैं इससे हे कौन्तेय ! तुम अपने भाइयों के साथ धर्म्म अर्थ काम मोक्ष इनको प्राप्त करके पीछे से इन उपाधियों को त्यागोगे और देवता पितर जो आपका आश्रय किये रहते हैं उनके ऋण से भी छूटोगे और तुम सर्वमेध और अश्वमेधयज्ञों के द्वारा पूजन करो उसके पीछे परमगति को पावोगे और बहुत बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों के फलों से भाई और स्त्री, पुत्र आदि सहित बड़ी कीर्त्ति को पावोगे और हे कौरवोत्तम ! हम तेरे वचन को जानते हैं इसप्रकार से कर्म्म करनेवाला धर्म से नहीं गिरता हे युधिष्ठिर ! जो राजा समान धर्म्म में प्रवृत्त हैं और बुद्धिमान् हैं वह दूसरे के धन हरनेवाले राजा का युद्ध और विजय करना आवश्यक मानते हैं जो राजा देशकाल को समझकर शास्त्र की बुद्धि से अपराधियों को क्षमा करके नहीं मारता वह उसी चोरी आदि पापों के फलों को पाता है और जो राजा छठेभाग को लेकर अपनी प्रजा की रक्षा नहीं करता वह उस रक्षा न करने के चतुर्थांश पाप को भोगता है और यह समझो कि जो राजा अपने धर्म्म को करता है वह कभी धर्म्म से भ्रष्ट नहीं होता सदैव राजा

धर्म्मशास्त्र के विरुद्धकर्म्म करने से ही भ्रष्ट होता है जो पिता के समान सब प्रजापर शास्त्रबुद्धि से समदृष्टि होकर राज्य करता है वह कभी पापका भागी नहीं होता और जो राजा दैवयोग से समयपर अपना कर्म्म नहीं करता वह अधर्म्म नहीं है बुद्धि के द्वारा बहुत शीघ्रही शत्रु को दण्ड देना योग्य है और पापात्मा लोगों से स्नेह न रक्खे अपने देश में धर्म्म की वृद्धि करे और शूर वीर श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करे और कर्म्मकाण्ड के जाननेवाले ब्राह्मण और धनवान् वैश्यादिकों की अधिक प्रतिष्ठा करे और अनेक शास्त्रों के जाननेवाले पुरुष व्यवहारों में सम्मति करने के योग्य हैं और बुद्धिमान् राजाको उचित है कि कैसा भी कोई बुद्धिमान् हो किसी पर पूर्ण विश्वास न करे रक्षा न करने वाला राजा पाप को भोगता है हे राजन् ! ईश्वर के कोप से जो दुर्भिक्ष आदि कष्ट प्रजापर होते हैं उन से और चोरी आदि से प्रजा का नाश होता है वह सब राजा का ही पाप है और हे राजन् ! जो विचारपूर्वक न्याय और धर्म्मशास्त्र के अनुसार पालन करनेपर भी जो प्रजा की हानि हो वह अधर्म्म नहीं है बहुधा होनहार बातें भी होजाती हैं परन्तु उन के दूर करने के उद्योग करने से राजा को पाप नहीं होता इस स्थान पर एक कथा तुम से कहता हूं कि प्राचीन समय में एक हयग्रीवनाम राजर्षि था वह शत्रुओं के दण्ड देने में और मनुष्यों के पोषण करने में जो उत्तम कर्म्म और श्रेष्ठ उद्योग थे वहसब करके युद्ध में कीर्तिमान् हो स्वर्ग में आनन्द करता है वह स्नेह को त्याग युद्धों में शस्त्रधारियोंके शस्त्रों से घायल दिव्य अस्त्र शस्त्र धारण किये चोरों से मारा हुआ कर्म्मकर्त्ता साहसी और मनोरथों का पानेवाला था और अपने युद्धरूप यज्ञ की अग्नि में शत्रुओंको हवनकर पापों से छूट प्राणों को त्याग देवलोक में विहार करता है ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पच्चीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इस प्रकारके अनेक वचन व्यासजी से सुनकर अर्जुन को क्रोधित जान व्यासजी को सम्मुख कर युधिष्ठिर बोले कि यह पृथ्वी का राज्य और अनेक प्रकार के भोग मेरे चित्त को प्रसन्न नहीं करते अब यह दुःख मुझ को सताता है हे मुने ! अपने वीर पुरुष पति और पुत्रों के शोक से पीड़ित स्त्रियों के रोदन को सुनकर शान्त नहीं होता यह वचन सुनकर वेद और धर्म्म के ज्ञाता योगियों में श्रेष्ठ श्रीव्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा कि वह पति, पुत्र,

स्त्रियों को कर्म्म करके वा यज्ञों से भी प्राप्त नहीं होसक्ते और न कोई उन पुरुषों का देनेवाला है ईश्वर ने सबका समय नियत किया है इससे अपने २ समय मनुष्य यथेच्छ वस्तु पाता है इन स्त्रियों का सौभाग्य जाना था इससे विधवा हुईं इन का शोच करना व्यर्थ है विना समय के आये चाहे जितने ज्ञानशास्त्र धर्म्मशास्त्र पढ़ने से भी पुत्र नहीं होते कभी मूर्ख भी अर्थों को पाता है सब कामों में समय ही मूल कारणहै विनाशकाल में शल्यविद्या, मन्त्रविद्या और ओषधी सफल नहीं होती हैं वह सब कालसेही नियत और प्राप्त होते हैं जिसको विधाता ने उत्पन्न किया है वह सब काल पाकर नष्ट होते हैं विना समय आये कोई किसी का नाश नहीं करसक्ता समय पाके गुणी धनी निर्धन होते हैं और उसी प्रकार निर्धन निर्गुणी धनवान् होते हैं कालही में तीक्ष्ण हवा, बादल, मेह और वन के वृक्ष फूलते हैं समयही से अँधेरी उजेली रात्रि और विना समय के नदी वेग से नहीं बहतीं और पक्षी, सर्प, मृग, हाथी, पहाड़ी, पशु उन्मत्त नहीं होते समय परही स्त्रियां गर्भ धारण करतीं विना समय फाल्गुन चैत्र में वर्षा नहीं होती समय परही मरना, जीना, पैदा, धर्म्म, अधर्म्म होता है समय परही बालक बोलता और तरुण होताहै समय परही बोयाहुआ उगता है और समय परही सूर्य्य का उदय अस्त आदि सम्पूर्ण बातें होती हैं इस स्थानपर हम राजा सेनजित का इतिहास वर्णन करते हैं कि यह काल की गति दुःख से सहने के योग्य है और सब नरलोकवासियों को स्पर्श करती है कालसे ही पृथ्वी के सब जीव मरते हैं और कालही से एक दूसरे को मारता है सो हे राजन्! यह मरना जीना कहने ही मात्र है न कोई मरता है न जीता है न मारता है तर्कशास्त्रवाले यह मानते हैं कि मारता है और दूसरा सांख्यशास्त्रवाला कहता है कि नहीं मारता है यह जीवों का जन्म मरण केवल आत्मा की सत्ता से है कि अपने आप होते हैं अर्थात् धन स्त्री के नाश से दुःख और पुत्र अथवा पिता के मरने में महादुःख है इसप्रकार ध्यान करताहुआ उस दुःख का उपाय करे मूर्ख होकर शोच न करे और शोक में डूबकर मूर्ख स्त्रियों को क्यों शोचता है जिन के दुःखों में दुःख और भय में भय भी है अर्थात् दुःख और भय को दूना करना महा अज्ञानता है यह आत्मा भी मेरा नहीं है और न यह पृथ्वी मेरी है अर्थात् मुझ आत्मारूप से जुदे हैं और जैसे कि यह सब प्रपंच मेरा रूप है उसीप्रकार दूसरों का भी है अर्थात् सब रूपों में एकही आत्मा है जो इस प्रकार से देखता है

वह अज्ञानता में नहीं फँसता है शोक के हजारों स्थान और आनन्द के सैकड़ों स्थान प्रतिदिन अज्ञानियों में आते हैं पण्डितों में नहीं आते इसप्रकार काल के प्रेरित सुख दुःख जीवों में घूमा करते हैं जैसा समय पाते हैं वैसेही सुखरूप दुःखरूप हो जाते हैं यह सब मोह के लक्षण हैं ऐसा विचार करे कि यहां जितने सुख हैं वह भी दुःखरूपही हैं क्योंकि लोभ से जो चित्त में आकुलता होती है उससे दुःख उत्पन्न होता है और दुःख के नाश होने को सुख कहते हैं सुख के अन्त में दुःख और दुःख के अन्त में सुख अवश्य होताहै न सदैव दुःख रहता है और न सुखबनारहता है कभी दुःख से सुख और कभी सुखसे दुःख होजाता है इस कारण इन दोनों को त्यागकर मोक्षरूपी अक्षय सुख को प्राप्त करे और उन्हीं दोनों सुख दुःखों से शोक की भी वृद्धि होती है इससे उन दोनों को एक अङ्ग के सदृश समझकर त्याग करे सुख दुःख को हृदय से अलग करने के निमित्त मनुष्य उपासना करे तो इस शोक से निवृत्त होगा देह, स्त्री, पुत्रों में स्नेह करनेवाला पीछे से समझेगा कि किसप्रकार से किसकारण कौन किसका सम्बन्धी है अर्थात् कोई किसी का न पुत्र है न स्त्री है इस संसार में जो अत्यन्त अज्ञान है और जो बड़े ब्रह्मज्ञानी हैं वहही सुखों को भोगते हैं और मध्य के मनुष्य दुःखही पाते हैं हे युधिष्ठिर ! उस महाज्ञानी दानी दुःख सुख के ज्ञाता राजा सेनजित ने यह कहा कि उस लोभ आदि के कारण जो दुःखों से दुःखी है वह कभी सुखी न होगा दुःखों का नाश नहीं है एक से एक दुःख पैदा होताजाता है सुख दुःख राज्य नाश हानि मृत्यु जीवन इन सबको क्रमपूर्वक पाते हैं उन सबों से पण्डितलोग न खुश होते हैं न शोच करते हैं युद्धभूमि में जो युद्ध करना है वही राजा का दीक्षायज्ञ है और राज्य में जो अच्छे प्रकार से दण्ड और नीति का जारी होना है उसी को योग जानो और यज्ञ के बीच जो दक्षिणा का देना है अथवा धन खर्चकर अच्छे प्रकार दान करना है वह सब राजाओं को शुद्ध करता है देह के स्नेह को त्याग यज्ञ करनेवाला महात्मा राजा बुद्धि और नीतिपूर्वक राज्य की रक्षा करनेवाला और धर्म्म की दृष्टि से सब मनुष्यों में घूमनेवाला जब समय पाकर देह को त्यागता है वह देवलोक में आनन्द करता है युद्ध में विजय कर देशों का पालन कर यज्ञों के अमृत को भोजन करके युक्ति दण्ड से प्रजाकी वृद्धि कर जो राजा संग्राम में मरता है वह भी स्वर्ग में निवास करता है और वेद शास्त्रों को पढ़ अच्छे

प्रकार से प्रजापालन कर चारों वर्णों को अपने२ धर्म्म में प्रवृत्त करके जो राजा शुद्ध अन्तःकरण होता है वह परमधाम को पाता है और उसके पुरवासी मन्त्री प्रजा आदि के मनुष्य उस स्वर्गवासी राजा की कीर्त्ति को गाते हैं और नमस्कार करते हैं वह राजा सर्वोत्तम है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

छब्बीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इसी विषय में राजा युधिष्ठिर बड़ी बुद्धिमानी के साथ अर्जुन से यह वचन बोला कि हे अर्जुन ! तुम जो यह मानते हो कि धन से कोई बड़ा नहीं है विना धन के न स्वर्ग है न सुख है न राज्य आदि है सो यह सब तुम्हारा कहना मिथ्या है वेदपाठ, यज्ञ, जप आदि से सिद्ध होनेवाले बहुत से मनुष्य और तप में प्रीति करनेवाले मुनि ऐसे देखने में आते हैं जिनको सनातनलोक प्राप्त होते हैं हे अर्जुन ! जो ब्रह्मचारी और सब धर्म्मों के जाननेवाले पुरुष ऋषियों के प्राचीन आचरणों की रक्षा करते हैं उनको देवतालोग ब्राह्मण जानते हैं तुम भी वेदपाठ में प्रवृत्त हो इससे उन ज्ञाननिष्ठों को जानते हो हे अर्जुन ! तेजोमय पुरुष ज्ञानी और निष्ठावान् होके हज़ारों स्वर्गलोक को गये हैं और वेद में कहेहुये कर्म्मों को प्राप्त होकर यज्ञ वेदपाठ दान कठिनता से प्राप्त होते हैं जो पुरुष अर्य्यमा देवता के दक्षिणमार्ग होकर परलोक को गये हैं उन कर्म्म करनेवालों के लोकों को मैंने प्रथमही कहा और उत्तरायणमार्ग है उसको जो नियम से देखेगा वह यज्ञ करनेवालों के सनातनलोक में प्रकाशित होगा हे अर्जुन ! उस स्थान पर ब्रह्मज्ञानी पुरुष उत्तरायणगति की प्रशंसा करते हैं संतोष से स्वर्ग को पाता है और संतोषही से मोक्ष भी मिलता है क्रोध और आनन्द को समान समझकर जो जीतलेते हैं वह ज्ञानीलोग संतोष भी करसक्ते हैं और इनसे अन्यलोग संतोषी नहीं होते क्योंकि यह वैराग्य बड़ी उत्तम सिद्धि है इस स्थानपर राजा ययाति की कहीहुई उस कथा को कहते हैं जिससे कि ज्ञानीलोग त्यागी हो अपनी सब इच्छाओं को आत्मा में अन्तर्गत करते हैं जैसे कि अपने अङ्गों को कछुआ लय करता है जब यह भय नहीं करता और न इससे कोई भय करता और इच्छा और शत्रुता को भी नहीं करता है तब ब्रह्मभाव को पाता है जब अहङ्कार और अज्ञान को जीतनेवाला स्नेह को दूर करता है तो भी मोक्ष को पाता है हे जिते-

न्द्रिय, अर्जुन! तुम मेरे कहेहुये वचनों को सुनो कि कोई तो धर्म्म को चाहता है और कोई संसारी आनन्द को और कोई धनको सो जो पुरुष धनकी इच्छा करता है उसकी अनिच्छा ही उत्तम है क्योंकि धन में बड़े २ दोष हैं और उस धन से जो कर्म्म होते हैं उन में भी अधिक दोष आजाता है मैं प्रत्यक्ष देखरहा हूं और तुम भी देखसक्ते हो धन की लिप्सावालों से त्याग के योग्य बातों का त्याग करना कठिन है जो धन को प्राप्त करते हैं उनमें सहनशीलता होना कठिन है और धन हत्या करनेवालों को मिलता है और वह प्राप्त हुआ धन भी शत्रुता का मूल है अर्थात् भय का कारण है फिर जो पुरुष उस बेशीलता, शोक, भय आदि से जुदा होना चाहे वह थोड़े धन के लिये लोभ से हत्या करता हुआ ब्रह्महत्या को नहीं जानता है अर्थात् लोभी थोड़े धन में भी भ्रूणहत्या को प्राप्त होता है कष्टसे प्राप्त होनेवाले धनको पाकर अपने आज्ञाकारी नौकरों आदि को भी देकर सदैव दुःख को पाता है जैसे कि चोरों से इसलिये कि धन लेनेवाले नौकर भी विपरीत होजाते हैं विना धन और सबप्रकार की उपाधियों से रहित जो पुरुष है वह सब प्रकार से स्तुति के योग्य है वह लोक देवताओं के पञ्चयज्ञ आदि करने के निमित्त भी जो संचित धन है उससे भी प्रसन्न नहीं होते अर्थात् देवयज्ञादिकों के लिये भी न देकर उससे प्रसन्न नहीं होते क्योंकि लोभ की वृद्धि होने से महादुःख होता है इस स्थान में प्राचीन वृत्तान्तों के जाननेवाले तीनों वेदों के ज्ञाता ज्ञानियों के यज्ञों की प्रतिष्ठा करनेवाले लोक में यज्ञ की गाईहुई कहावत को कहते हैं कि ईश्वर ने यज्ञके लिये धन को और यज्ञ करने के लिये पुरुषों को रक्षक पैदा किया इसकारण सब धन को यज्ञ और ईश्वर के पूजन में लगाना चाहिये वह धन देह के प्रयोजन के लिये हितकारी नहीं है हे धनवानों में उत्तम, अर्जुन! ईश्वर इस धन को अपने और यज्ञ के अर्थ नरलोक के वासियों को देता है इस से वह धन किसी का नहीं है इसी हेतु श्रद्धावान् पुरुष दान और यज्ञ करे क्योंकि प्राप्त होनेवाले धन का त्यागही उत्तम है उसके भोग और नाश को कोई अच्छा नहीं कहता है जब कि भोगमें न आसका तो उसके इकट्ठे करने से क्या प्रयोजन है जो निर्बुद्धिलोग अपने धर्म्म के विपरीत अन्य मनुष्यों को देते हैं वह मरकर सैकड़ों वर्षतक विष्ठा को खाते हैं और जो अपात्र को देता है और सुपात्र को नहीं देता है तो पात्र अपात्र का ज्ञान न होने से दानधर्म्म का भी करना कठिन है प्राप्त होनेवाले धन और धन से पैदा होनेवाली वस्तुओं

की अमर्य्यादा जाननी चाहिये जब कि पात्र और अपात्र का ज्ञान नहीं है ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि राजधर्मे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सत्ताईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, विराट्, द्रुपद, धर्म्मज्ञ वृषसेन, धृष्टकेतु तथा अन्य बहुत से देशों के राजालोग जो संग्राम में मेरे निमित्त मारेगये इससे मुझ ज्ञातिघाती स्ववंशछेदक राज्य की कामना करनेवाले का शोक मन से नहीं जाता जिसकी गोदी में हमलोग खेले वह गङ्गाजी के पुत्र हमारे पितामह भीष्मजी मुझ राज्य के लोभी के कारण युद्ध में गिराये गये वह वज्र के तुल्य थे शिखण्डी को सम्मुख देखते अर्जुन के बाणों से कांपते हुये मैंने देखे उन वृद्ध सिंह के समान अर्जुन के बाणों से विदीर्णदेह नरों में उत्तम अपने पितामह को देखकर मेरा चित्त अत्यन्त पीड्यमान हुआ यहां तक कि उस पर्व्वतसमान शत्रुहन्ता पितामह को घूमता देख के मुझको मूर्च्छा आगई उन भीष्मजी ने कुरुक्षेत्र के मैदान में बहुत दिवस तक भार्गव परशुरामजी से महाप्रबल युद्ध किया और काशी में काशीराज की कन्या के निमित्त एक रथ के द्वारा उन महावीर गाङ्गेयजी ने स्वयंवर में आयेहुये सब राजाओं को युद्धमें बुलाकर बड़े२ अस्त्रोंको धारण किये महापराक्रमी चक्रवर्ती राजा शाल्व को बड़ी वीरता से परास्त किया और जिनकी स्वेच्छाचारी मृत्यु ऐसे महाबली पितामह ने पाञ्चालदेशवाले शिखण्डी को बाणों से नहीं गिराया परन्तु आप अर्जुन के हाथ से गिरे हे मुनीश्वर ! जब मैंने उनको पृथ्वीपर रुधिर से व्याप्त देखा तभी भयदायक तप मेरे चित्त में उत्पन्न हुआ बाल्य अवस्थामें जिसने हमारी रक्षा और पालन किया वह मुझ राज्य के लोभी पापी गुरुहन्ता महामूर्ख के कारण नाशवान् राज्य के हेतु मारेगये सब राजाओं के पूज्य महाअस्त्रज्ञ गुरुजी को युद्ध में मिलकर पुत्र के निमित्त मुझ पापी से मिथ्या वचन कहलायेगये वह बात मेरे अङ्गों को भेदती है कि जो गुरु ने कहा था कि हे अर्जुन ! तुम सत्य २ कहो कि मेरा पुत्र जीवता है सत्य को निश्चय करनेवाले ब्राह्मण ने उस बात को मुझसे पूछा मैंने हाथी का बहाना करके मिथ्या वचन कहा युद्ध में सत्यता के कञ्चुक को त्यागकर मुझ राज्यलोभी पापी गुरुघ्नी के कहने से वह गुरुजी हाथी के छल में छलेगये और कहागया कि अश्वत्थामा मारागया हे मुने ! मैं ऐसे महापापों को करके किस लोक में जाऊंगा और जो मैंने युद्ध

में दृढ़ महावीर अद्वितीय शस्त्रों के जाननेवाले अपने बड़ेभाई कर्ण को मरवाया मुझसे अधिक पापी कौन है जैसे कि पहाड़ों में सिंह होता है उसीप्रकार उत्पन्न होनेवाला अभिमन्यु बालक को मुझराज्यलोभीने द्रोणाचार्य्यकी रक्षित सेनामें भेजा तब से अर्जुनकी ओर और कमललोचन श्रीकृष्णजी और पुत्रों से रहित दुःखोंसे पीड्यमान द्रौपदीकी ओर देखनेको ऐसे समर्थ नहीं होता हूं जैसे कि बालकोंका मारनेवाला महापापी पहाड़ों के समान पांचों पुत्रों से रहित हो पृथ्वी को शोधता हूं कि तुझ पर मुझसा कुटुम्बघाती पापात्मा वर्त्तमान है ऐसा अपनेको धिक्कारकर अपनी देहको सुखाऊँगा तदनन्तर मैं गुरुघाती महापापमूर्ति अपनी देहके त्यागने का उद्योग करूंगा अर्थात् अन्न जल छोड़कर बैठूंगा तब हे तपोधन, ऋषियो! यहांपर अपने प्यारे प्राण को त्यागूंगा तुम सबको प्रसन्न करके कहता हूं कि इच्छा के अनुसार अपने २ अभीष्ट स्थान को जावो और मुझको सब महाशय आज्ञा दो कि इसशरीर को त्यागूं वैशम्पायन कहते हैं कि इस प्रकार शोक सन्ताप करनेवाले युधिष्ठिर से श्रीव्यासदेवजी बोले कि ऐसा नहीं करना योग्य है तुम इतना शोक मत करो यही समझो कि ऐसा ही होनहार था सो हुआ जीवों के योग और वियोग होने को ऐसा निश्चय जानो जैसे कि पानी के बबूले पानी से बनकर पानीमें ही मिलजाते हैं अर्थात् उत्पन्न होते हैं और नाश होते हैं सब धनसमूह अन्त में नाश होते हैं और सब वृद्धि पानेवाले परिणाम में नाश को पाते हैं इससे सुख और दुःख का अन्त देखकर दुःख को सुख का प्रकाश करनेवाला जानो और लक्ष्मी, ऐश्वर्य, लज्जा, धैर्य, नेकनामी यह सब बातें बुद्धिमान् चतुर पुरुषों में निवास करती हैं दीर्घसूत्रियों में नहीं होतीं मित्र सुख देने को और शत्रु दुःख देने को समर्थ नहीं है धन के प्राप्त करने के लिये बुद्धि समर्थ नहीं है और धन से भी सुख नहीं मिल सक्ता हे राजन्, युधिष्ठिर! जैसा ईश्वर ने कर्म्म बतादिया वैसाही करो इसीसे तुम्हारी शुद्धि है तुम कर्म्मों को नहीं त्याग सक्ते ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि ज्ञातिबन्धुओं के मरने से शोक में मग्न प्राणत्यागने की इच्छा करनेवाले युधिष्ठिर का शोक व्यासजी ने पूर्वोक्त अनेक बातों के कहने से दूर किया और कहा कि हे युधिष्ठिर! इस स्थानपर तुम अश्मगीत

अर्थात् अश्मनाम ब्राह्मण ने जो गाया उसको समझो कि राजा जनक ने दुःख और शोक में मग्न होकर अश्मनाम ब्राह्मण से अपना सन्देह पूछा कि हे महाज्ञानिन्, महात्मन्! धन के प्राप्त करने और नाश में इच्छा रखनेवाले पुरुष कैसे कल्याण को पावें अश्मऋषि बोले कि उत्पन्न होनेवाले देह मनुष्यों को दुःख और सुख देने के निमित्त विना सोचे समझे सम्मुख आजाते हैं तब उन सुख दुःखों का बर्ताव होता है अर्थात् आमने सामनेवाले दोनों में एक की आपत्ति में जो २ सम्मुख आता है वह उसकी बुद्धि को जल्दी से हरलेता है जैसे कि बादल को हवा हरलेती है मैं श्रेष्ठघराने में उत्पन्न हुआ हूं और सिद्ध हूं केवल मनुष्यही नहीं हूं इन तीनों बातों के हेतु से उसका चित्त निर्बल होता है संसारी सुखों में चित्त का लगानेवाला पुरुष पिता के संचित धन आदि को उड़ाकर खाली हाथ अर्थात् निर्द्धन होजाता है तब दूसरे के धन लेने को अच्छा समझता है उस अमर्य्याद और अयोग्य लेनेवाले का राजालोग निषेध करते हैं हे राजन्! जो चोर पुरुष हैं वह बीस व तीस वर्षतक जीते हैं और दूसरे सौवर्ष से अधिक नहीं रहते राजा को चाहिये कि उन बड़े दुःखियाओं का इलाज बुद्धिमानी से करे सब जीवों के आचार को जहां तहां देखता हुआ अपने प्रबन्ध को करे फिर मनुष्यों के पुनर्जन्म से जो दुःख होते हैं उन से चित्त में भ्रान्ति होती है और भ्रान्ति से अनिच्छा होती है तीसरी कोई बात सिद्ध नहीं होती जो इसलोक में यह और वह अनेक प्रकार के दुःख हैं उसी प्रकार विषयों के सुख भी प्राप्त होते हैं वृद्धावस्था वा मृत्यु उन महाबली और निर्बल व अहंकारी व महात्मा जीवों को भी भक्षण करनेवाली है इसलोकमें कोई मनुष्य समुद्र के अन्ततक सम्पूर्ण पृथ्वी को विजयकर के भी मृत्यु और वृद्धावस्था को उल्लङ्घन नहीं करसक्ता जीवों के सम्मुख नियत होनेवाला सुख और दुःख मनुष्यों को लाचारी से भोगने के योग्य है उसका त्याग होही नहीं सक्ता हे राजन्! बाल्यावस्था, तरुणता अथवा वृद्धावस्था में वृद्धपने की दशा रुकनेवाली नहीं है जोकि उससे विपरीत मनुष्यों को अभीष्ट हैं अनिच्छाओं के साथ मिले सम्बन्धियों से जुदा होना अथवा धनी वा निर्द्धनी होना और विना जानेहुये सुख और दुःख सामने आते हैं जीवों का जन्म, मरण, हानि, लाभ या परिश्रम इन सबका मिलना दृष्टि से अगोचर वर्त्तमान है रूप, रस, गन्ध, स्पर्श यह सब जैसे स्वाभाविक वर्त्तमान होते हैं इसीप्रकार सुख दुःख भी विना जाने सम्मुख

आते हैं निश्चय करके सब जीवों का आसन शयन सवारी उद्योग और खाने पीनेवाली वस्तु सब कालही से पैदा होते हैं वैद्य, रोगी, पराक्रमी, निर्बल, धनी और नपुंसकता यह समय की विपरीतता अनेक प्रकार की हैं सुन्दर घराने में जन्म और नीरोगता, सुन्दर स्वरूप होना, प्रारब्धी होना, संसारी सुख की प्राप्ति यह सब होतव्यता से ही पाता है बहुधा निर्द्धन और इच्छा न करनेवालों के बहुत से पुत्र होते हैं और इच्छा करनेवाले और धनी और कर्म्म करनेवाले पुरुषों के नहीं होते रोग, अग्नि, जल, शस्त्र, गृहस्थी आदि की आपत्ति विष, तप, मृत्यु, नीचे ऊपर का गिरना यह सब जीवों की दशा हैं जिसके जन्म में जो होनहार होता है उसको उस कर्म्म की मर्य्यादा से वह प्राप्त करता है उसको उल्लङ्घन करता दृष्टि नहीं आता किन्तु उसमें प्रवृत्त दृष्टि आता है इस संसार में धनवान् मनुष्य बहुधा तरुणही अवस्था में मरता दीखता है और दुःखी निर्द्धनलोग वृद्ध होकर सौवर्ष के भी देखने में आते हैं और कुछ भी पास न रखनेवाले पुरुष चिरजीवी बहुत कालतक जीवतेहुये दृष्टि आते हैं और अच्छे ऐश्वर्य्यवान् घराने में उत्पन्न होनेवाले तपङ्ग के समान नाश होते हैं इसलोक में धन के भोगने की बहुधा लोगों को सामर्थ्य नहीं है सब दरिद्रीलोगों को काष्ठ भी हजम होजाते हैं कालसे बँधा हुआ यह मानता है कि मैं यह करूं तो वह निर्बुद्धि असन्तोषता से जो २ चाहता है उसको करता हुआ पापकरता है ज्ञानियोंने शिकारखेलना, पांसा, स्त्री, मद्य और युद्ध में वितण्डावाद आदि को निन्दित किया है पर बहुत से शास्त्र के जाननेवाले पुरुष इन बातों में बड़े प्रवृत्त देखने में आते हैं इससे निश्चय है कि इस लोक में ईप्सित और बे ईप्सित सब अर्थ सब प्राणियों को समय के आधीन प्राप्त होते हैं इसका हेतु नहीं जानाजाता है अर्थात् अज्ञात बातें सम्मुख आती हैं प्रलय होनेपर पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, तेज, चन्द्रमा, सूर्य्य, दिन, रात, नक्षत्र, नदी, पर्वत इत्यादि असंख्य पदार्थों को कौन उत्पन्न करता है इसी प्रकार सर्दी, गरमी, वर्षा भी काल ही से इरते फिरते रहते हैं इसीप्रकार मनुष्यों के सुख दुःख भी हैं मृत्यु और वृद्धापन से संयुक्त मनुष्य को औषध, मन्त्र, होम, जप आदि कोई नहीं बचा सक्ता है जैसे कि महासमुद्र में परस्पर काष्ठ मिलजाय और मिलकर पृथक् होजाय उसीप्रकार जीवों का संयोग वियोग है जो पुरुष स्त्रियों के गीत वाद्यों से सेवित हैं और जो अनाथ हो दूसरे के अन्न के भोजन करनेवाले हैं उनमें मृत्यु समान ही कर्म्म करनेवाली है हजारों पिता माता और

सैकड़ों पुत्र स्त्री संसारचक्र ने उत्पन्न किये वे किसके और हम किसके हैं न इसका कोई है और न वह किसी का है स्त्री, भाई, पति इनके साथ यह संयोग इस प्रकार है जैसे कि मार्ग्ग में एक दूसरे से मिलै यह कहां जायगा और मैं कहां जाऊंगा और मैं कौनहूं और यहां किस निमित्त वर्त्तमान हूं किस कारण से किस बात को सोचूं इस प्रकार चित्त में विचारांश करे जिसमें कि अपने सम्बन्धियों के साथ सदैव रहना नहीं है और जिसकी चाल गाड़ी के पहिये के सदृश घूमनेवाली है ऐसे संसार में माता, पिता, भाई आदि यह सब मार्ग्ग के से मिलाप हैं ज्ञानियों ने परलोक को ऐसा कहा है कि वह ज्ञानरूप से नहीं देखा गया अर्थात् ब्रह्मज्ञान से और धर्म्मयुद्ध में मोक्ष होने से वह परलोक भी नाश को प्राप्त होता है इस निमित्त शास्त्रों को उल्लङ्घन न करके इच्छावान् ऐश्वर्य्य की श्रद्धा करनी चाहिये पितृ और देवताओं का तर्पण और कर्म्मों को करे फिर ज्ञानी हो यज्ञों को बुद्धि के अनुसार करे और त्रिवर्ग्ग अर्थात् अर्थ, धर्म्म, काम का सेवन करे यह जगत् कालरूप लहरों से भरेहुये समुद्र के समान जिस में मृत्यु और वृद्धावस्था यह दो बड़े ग्राह हैं उसमें डूबते हैं परन्तु कोई बचा नहीं सक्ता केवल आयुर्वेद वैद्यविद्या को पढ़नेवाले बहुत से वैद्यलोग अपने कुटुम्बसमेत रोगों में पड़े दृष्टि आते हैं वह क्वाथ और अनेकप्रकार के रसों को खाकर मृत्यु को उल्लङ्घन न कर ऐसे वर्त्तमानही रहते हैं जैसे कि महासमुद्र अपनी मर्य्यादा को उल्लङ्घन नहीं करता रसों के बनानेवाले और धन भी खर्चनेवाले आदमी वृद्धावस्था से निर्बल और कांपते दृष्टि आते हैं जैसे कि पराक्रमी हाथियों से वृक्ष कांपता है इसीप्रकार तप से संयुक्त वेदपाठ और जप के अभ्यास में प्रीति रखनेवाले दानी और यज्ञ करनेवाले वृद्धावस्था और मृत्यु से नहीं बचते हैं उत्पन्न होनेवाले जीवों के न दिन, न मास, न वर्ष, न पक्ष, न रात फिरते हैं सो नाशवान् असमर्थ मनुष्य इस काल से उस नाशवान् बड़े संसारमार्ग को पाता है जिसमें कि सब जीव रहते हैं जो आत्मा को अविनाशी समझैं उस पक्षमें जीवात्मा से देह की उत्पत्ति है और जो आत्मा को नाशवान् समझैं उस पक्ष में देह से जीव की उत्पत्ति हो चाहे जो कुछ होय परन्तु सब दशाओंमें स्त्री और अन्यबान्धवों के साथ मिलना मिलाना मार्ग के मिलाप होने के समान है यह कभी किसी के साथ बहुत बड़े रहनेवाले साथी को नहीं पाता है और न अपनी देह के साथ बड़े रहनेवाले साथी को पाता फिर

अन्य किसका साथ पावेगा हे राजन्! अब तेरा पिता और पितामह कहां हैं हे पवित्रात्मन्! अब न तुम उनको देखते हो न वे तुमको देखते हैं स्वर्ग नरक का देखनेवाला पुरुष नहीं है सब पुरुषों का नेत्ररूप शास्त्र है सो हे राजन्! इस स्थानपर उसको प्राप्त करो दूसरे के गुण में दोष न निकालनेवाला ब्रह्मचारी पुरुष पितृ देवता आदि के ऋण से दूर होने के लिये सन्तान को उत्पन्न करे वह यज्ञाभ्यासी सन्तान पैदा करनेवाला पहिला ब्रह्मचारी विवेकयुक्त हृदय के अन्धकार और शोक और मिथ्या को दूरकर इसलोक और परलोक की इच्छा को दूरकर परमात्मा को आराधन करे राग द्वेष रहित धर्म्म को करता हुआ बुद्धि के अनुसार धनों को इकट्ठा करके धर्म्मपूर्वक राज्य करनेवाले का यश लोक परलोक में बढ़ता है इसप्रकार कारणों से भरेहुये सम्पूर्ण वचनों को जानकर अत्यन्त शुद्धबुद्धि और शोक से पृथक् राजा जनक अश्मऋषि से पूँछकर अपने घर को गये हे राजन्! इसीप्रकार तुम भी शोक को त्यागो हे इन्द्र के समान! उठो और आनन्द करो तुम ने क्षत्रियधर्म्म से पृथ्वी को विजय किया उसको भोगो और उसका अनुमान कभी मत करो ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उन्तीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि हे राजेन्द्र! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर जब मौन हुये तब पाण्डुनन्दन अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे माधवजी! शत्रुहन्ता धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर सम्बन्धियों के शोक से महादुःखी हैं इस शोकसमुद्र में मग्न को आप समाश्वासन करें इसीके शोक से हम सब भी शोकवान् हैं इससे हे जनार्दन! इसका यह महाशोक दूर करने को आप ही समर्थ हैं ऐसे महात्मा अर्जुन ने जब श्रीकृष्णजी से वचन कहे तब अविनाशी कमललोचन गोविन्दजी राजा की ओर दृष्टि करके सम्मुख हुये केशव गोविन्दजी बाल्य अवस्था से राजा युधिष्ठिर को अर्जुन से भी अधिक प्राणों से प्यारे थे और उनके वचनों को भी धर्म्मराज कभी उल्लङ्घन नहीं करते थे बातों से प्रसन्न कर महाबाहु श्रीवासुदेवजी चन्दन से चर्चित पर्वत की कुक्षिसमान युधिष्ठिर की भुजा को पकड़कर सुन्दर नेत्र दन्तों से शोभायमान कमल से प्रफुल्लित मुखारविन्द से बोले कि हे पुरुषोत्तम, युधिष्ठिर! तुम शोक से अपने मुख को मत सुखावो जो

इस युद्ध में मारेगये वह अब सुगमता से मिलने कठिन हैं हे राजन् ! जैसे कि स्वप्न में प्राप्त होनेवाली वस्तु जाग्रत अवस्था में मिथ्या हैं इसी प्रकार वह क्षत्रिय भी हैं जो महारण में मारेगये युद्ध को शोभित करनेवाले सब शूरवीर सम्मुख युद्ध करके परलोक को गये उनमें कोई न भगा और न किसी ने पीठि फेरी सब वीर भारी संग्राम में महायुद्ध कर शस्त्रों से अपने देहों को पवित्र कर प्राणों को त्याग २ स्वर्गलोक को गये उनका शोक करना वृथा है क्षत्रियधर्म्म के जाननेवाले वेद और वेदाङ्गों के जाननेवाले शूरों ने वीरों की पवित्र गति को पाया यह शोच योग्य नहीं है इस स्थल में इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको कि पुत्रों के शोक में डूबेहुये राजा संजय से नारदजी ने कहा कि हे राजन्, संजय ! हम तुम और सब संसार सुख दुःखों से संयुक्त मरेंगे इसमें कौन संयोग है पहिले समय के राजाओं का माहात्म्य मेरे मुख से सुनो हे राजन् ! सावधान हो फिर दुःख को त्यागोगे तुम इन महानुभाव राजाओं को सुनकर अपने दुःख को दूर करो यह वृत्तान्त कठिन ग्रह का शान्तकर्त्ता आयुवर्द्धक राजाओं के श्रवण करने योग्य चित्तरोचक है इसको यथावत् सुनो हे राजन्, संजय ! हम अविक्षित और मरुत राजा को मृतक हुआ सुनते हैं जिस महात्मा राजा के यज्ञ में इन्द्र वरुण के साथ वह देवता जो विश्व को रचते हैं और जिनके आगे चलनेवाले बृहस्पतिजी हैं आके वर्त्तमान हुये जिसने ईर्षा से देवराज इन्द्र को भी विजय किया और इन्द्र के शुभ चाहनेवाले बृहस्पतिजी ने उससे कहा था कि यज्ञ मत करो उसकी आज्ञा पाने से बृहस्पतिजी के छोटे भाई संवर्त्त ने उसको पृथ्वी पर यज्ञ कराया तब यज्ञसीमा के वृक्षों से घिरी हुई पृथ्वी विना परिश्रम अपने आप फलसंयुक्त हुई और अविक्षित के यज्ञ में विश्वेदेवा सभासद् हुये और महात्मा राजा मरुत के यज्ञ में भोजन परोसनेवाले साध्यगण और मरुद्गण नाम देवता हुये जिन्हों ने यज्ञ में अमृत पान किया और यज्ञ में इतनी दक्षिणा दीगई कि देवता मनुष्य और गन्धर्वों से लेचलना कठिन हुआ हे संजय ! जो वह धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य्य नाम चारों कल्याणमय तुझ से और तेरे पुत्र से भी अधिक पवित्र होकर मरगया तो ऐसी दशा में अपने पुत्र के विषय में तुम शोक न करो और सुहोत्र अतिथि को भी सुनते हैं कि कालवश हुआ जिसके देश में इन्द्र ने एक वर्षपर्य्यन्त सुवर्ण की वर्षा करी इस पृथ्वी का नाम वसुमती तभी से हुआ उसी राजा के समय में

नदियों ने भी सुवर्ण धारण किया और लोकपूजित इन्द्र ने नदियों में कूर्म्म, कर्कट, नक्र, मकर, शिंशुक आदि जीवों को गिराया उसके पीछे राजा अतिथि ने हज़ारों लाखों सुनहरी मछली, मगर, कछुओं को गिरा हुआ देखकर आश्चर्य्य किया फिर यज्ञकर्त्ता उस राजा ने कुरु जाङ्गल देशों में जाकर यज्ञों के बीच में ब्राह्मणों को बहुत सा सुवर्ण दान किया जब कि वह महादानी प्रतापी इस लोक को त्याग गये तो तुम शोक को किस निमित्त करते हो दक्षिणापूर्वक यज्ञ न करनेवाले पुत्र का शोच त्याग शान्त होकर चैतन्य होजावो और सुनते हैं कि राजा अङ्ग बृहद्रथ भी मृत्युवश हुये जिसने दशलाख श्वेत अश्व और सुवर्णभूषणों से भूषित दशलाख कन्याओं को यज्ञ में पूजन करके ब्राह्मणों को दिया और वस्त्र भूषणों से अलंकृत उत्तम वर्ण के दशलाख हाथी और बैल उनके दक्षिणारूपी यौतुक में दिये जिनके साथ एकहज़ार गोपाल भी थे विष्णुपद नाम पर्वतपर यज्ञ करनेवाले राजा अङ्ग के अमृत से इन्द्र देवता और दक्षिणाओं से ब्राह्मण महातृप्त हुये हे राजेन्द्र! प्राचीन समय में इस राजा के हज़ारों यज्ञों में देव ब्राह्मण गन्धर्व दक्षिणा के भार को न लेजासके ऐसा दूसरा पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ न होगा राजा अङ्ग ने इस धन को सात सोमसंस्थाओं में दान किया वह भी तुझ से और तेरे पुत्र से अत्यन्त अधिक धर्म्मात्मा दान, धर्म्म, यज्ञों को कर मरगया तो तुम क्यों अपने पुत्र के शोक में डूबरहे हो और औशीनर के पुत्र शिबि को भी मृतक हुआ सुना है जिस राजाने अपने शब्दायमान रथ से पृथ्वी को शब्दमय करके चर्म्म के सदृश लाये अर्थात् विजय किया और एक रथ से पृथ्वी को एक छत्र किया और उसके जहां तक गौ घोड़े आदि पशु थे सबको उस औशीनर के पुत्र शिबि ने दान किया ब्रह्माजीने उस के धन को लेचलनेवाला किसी को नहीं समझा उस शिबि राजा के समान पृथ्वी में न है और न होगा तुम दक्षिणायुक्त यज्ञ के न करनेवाले अपने पुत्र को न शोचो और भरतवंशी राजा दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र महात्मा और धनी भरत को भी मरा हुआ हमने सुना जिसने यमुनाजी के पास देवताओं के लिये तीनसौ घोड़े और सरस्वती के पास बीससहस्र घोड़े और गङ्गाजी के पास चौदहसहस्र घोड़ों को बाँधकर प्राचीन समय में सहस्र अश्वमेध और राजसूय यज्ञ से देवताओं का पूजन किया उसके समान दूसरे राजा लोगों में कर्म्म का करनेवाला कोई न हुआ उसने हज़ारों वेदियां बनवाकर

यज्ञ में सहस्र विधि उत्तम २ घोड़ों का हवन किया उसी यज्ञ में भरत ने कण्व ऋषिको हज़ारपद्म धन दक्षिणा में दिया वह भी महात्मा तुझ से और तेरे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा होकर मरगया इससे तुम भी पुत्रशोक करने के योग्य नहीं हो और हे संजय ! दशरथजी के पुत्र रामचन्द्रजी को भी देह छोड़नेवाला सुनते हैं उन्हों ने प्रजा को और ऋषिलोगों को अपने पुत्र पिता के सदृश पालन किया जिनके देश में कोई स्त्री विधवा और अनाथ नहीं हुई पिता के समान राज्य किया समय २ पर वर्षा होती थी खेतियां अच्छे प्रकार से होती थीं उन रामचन्द्र जीके राज्य करने में सदैव सुकाल हुआ और कोई जीव उनके राज्य में जल में नहीं डूबा और अग्नि में कोई विपरीत दशा से नहीं भस्म हुआ और रोगों से कभी किसी को भय भी नहीं हुआ श्रीरामचन्द्रजी के राजाधिराज होने में स्त्री और पुरुष हज़ार वर्ष की अवस्था प्राप्त करनेपर भी किसी रोग से पीड़ित नहीं हुये और उनके समय में कभी स्त्रियों का शास्त्रार्थ अर्थात् वितण्डावाद नहीं हुआ तो पुरुषों का कैसे होता प्रजा के मनुष्य सदैव धर्म्मनिष्ठ होते रहे और सब छोटे बड़े उनके राज्य में सन्तोषी निर्भय और सफलमनोरथ स्वतन्त्र और सत्यव्रत होते हुये और वृक्ष भी सदैव फलफूलयुक्त निरुपाधि हुये और सब गौवें एक २ द्रोणप्रमाण दूध देती थीं इस महात्मा ने चौदह वर्ष वन में तपस्वियों का वेष धारण कर बड़े भारी दश अश्वमेध यज्ञों को किया और आजानुबाहु तरुण श्याम अरुणाक्षयूथप मातङ्गसमान शोभायमान मुखारविन्द सिंह के स्कन्ध महाभुजवाले रामचन्द्रजी ने श्रीअयोध्याजी में ग्यारहहज़ार वर्ष पर्यन्त राज्य किया वह भी तुझ पिता पुत्र से अधिक पुण्यात्मा दानी प्रतापी होकर इस अनित्य शरीर को त्याग गये फिर तू पुत्रशोक व्यर्थ करता है और राजा भगीरथजी को भी मृतक हुआ सुनते हैं कि जिसके रचेहुये यज्ञ में इन्द्र अमृतपान करके मदोन्मत्त हुये और उसीके बल से देवोत्तम देवेन्द्र ने हज़ारों असुरों को विजय किया और अपने विस्तृत यज्ञ में उस राजा ने पूजन के पश्चात् सुवर्ण के आभूषणों से भूषित दशलाख कन्या दक्षिणा में पुण्य करीं वह सब कन्या चार २ घोड़ों के रथपर सवार थीं और हरएक रथ के साथ सुवर्णभूषित वस्त्रों से अलंकृत सौ सौ हाथी थे और एक २ हाथी के पीछे एक एक सहस्र घोड़े और प्रत्येक घोड़े के पीछे एक २ सहस्र गौ और प्रत्येक गौ के पीछे हज़ारों भेड़ बकरियां थीं तब उस समीपवर्ती राजा भगीरथ की गोदी में

श्रीगङ्गाजी बैठगईं इसीकारण उनका भगीरथकी पुत्री उर्वशी नाम प्रसिद्ध हुआ उस इक्ष्वाकुवंशी राजा भगीरथ की पुत्री त्रिपथगामिनी श्रीगङ्गाजी ने जिसके पुत्रीभाव को पाया ऐसे महातेजस्वी प्रतापी त्रिवर्गी को भी जब मृत्यु ने ग्रास किया तो तू अपने पुत्रही को क्या शोचता है और इसीप्रकार राजा दिलीप का भी मरना सुना जिसमें अनेक कर्म्मों की प्रशंसा ब्राह्मणलोग करते हैं ऐसे सावधान सम्पूर्ण संसार के राजा ने अटूट धन से भरीहुई पृथ्वी को उस बड़े यज्ञमें ब्राह्मणों को दान में देदिया उस यजमान की यज्ञ में पुरोहितजी ने हिमालयदेश के हजारों हाथियों को दक्षिणा में पाया और शोभायमान सुवर्ण के स्तम्भवाले हरएक यज्ञकर्म्म के करनेवाले इन्द्र आदि देवता उसके समीप वर्त्तमान हुये उसके उस स्वर्णमय यज्ञ में स्वर्णनिर्मित वस्त्रों को धारण कर हजारों देवता और गन्धर्वों ने नृत्य किया और सप्तस्वरों के अनुसार बाजा बजाया और विश्वावसु गन्धर्व ने वीणा को ऐसा बजाया कि जिसको सब लोगों ने यही समझा कि यह हमारेही आगे बजाता है अन्य राजाओं में कोई ऐसा न हुआ जो दिलीप के से कर्म्म करे जिसके मार्ग में सुवर्ण वस्त्र भूषित हजारों हाथी सोते थे जिन पुण्यात्मा पुरुषों ने इस राजा दिलीप को देखा वह भी स्वर्ग के विजय करनेवाले हुये दिलीप के महल में तीन शब्द सदैव होते थे वेदपाठ का धनुष का और दान देने का ऐसा होकर जो मृत्युवश हुआ तो तू भी शोक मत कर और युवनाश्व के पुत्र मान्धाता को भी मरा सुनते हैं जिस बालक को मृत्यु देवता ने उसके पिता की जङ्घा से निकाला जोकि दही-मिले घृत से उत्पन्न पिता के उदर में वर्द्धमान श्रीमान् तीनों लोकों का विजय करनेवाला प्रतापी राजा हुआ पिता की गोद में सोनेवाले उस देवस्वरूप को देखकर देवतालोगों ने परस्पर में यह कहा कि यह किसको भक्षण करेगा और इन्द्रनेही भयभीत होकर कहा कि मुझेही यह खाजायगा इसीकारण उसका नाम इन्द्र ने मान्धाता रक्खा तदनन्तर उसके पोषण के लिये इन्द्रनेही अपने हाथसे दुग्ध की धार उसके मुख में गेरी तो वह इन्द्र के हाथही को भोजन करके बहुत शीघ्र एकही दिन में बड़ा हुआ और बारह दिन में बारह वर्ष की अवस्था का होगया यह सब पृथ्वी उसमहात्मा मान्धाता को एकही दिनमें प्राप्त हुई समरभूमि में वह धर्म्मात्मा इन्द्र के समान शूर हुआ इसीसे इसने अङ्गार, मरुत, असित, गय, अङ्ग, बृहद्रथ आदि राजाओं को युद्ध में विजय किया जब युवनाश्व का

पुत्र मान्धाता रणभूमि में अङ्गारके साथमें लड़ा तब देवताओंने धनुषकी टंकारों से जाना कि स्वर्ग का चूर्ण हुआ सूर्योदय से सूर्य्यास्तपर्य्यन्त मान्धाता का छत्र कहाजाता है हे राजन् ! उसने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञों से पूजन करके ब्राह्मणोंको लाल मछलियोंका दान किया उनसे एक योजन ऊंची सुवर्ण की मछली और दश योजन ऊंची चांदीकी बड़ी मछलियों को ब्राह्मणों के अर्थ दान किया और दूसरे मनुष्यों ने उनको विभाग किया वह भी तुमसे उत्तम था इस कारण तुम पुत्रका शोक मत करो और नहुष के पुत्र ययाति को भी मरा हुआ सुनते हैं जो इस पृथ्वीको सप्त समुद्रोंसमेत विजय करके धर्म्मशास्त्रकी विधि से परिमित पृथ्वी में वेदियां बनाकर पूजन करता वेदियों से पृथ्वी को सुशोभित करता चारों ओर को गया अर्थात् समुद्र के किनारे तक पहुँचा क्रतुनाम हजार यज्ञ और सौ अश्वमेध यज्ञों से पूजन कर तीन सुवर्ण के पर्व्वत दान करके ऋत्विज् अर्थात् यज्ञ करानेवाले को प्रसन्न किया नहुषके पुत्र ययाति ने आसुरी बुद्धि के अनुसार दैत्य और दानवों को मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने सब पुत्रों को विभाग कर दी यदु द्रुह्य अणु तुर्वसु इन चारों पुत्रों को दूसरे राज्य और देशों में छोड़कर और मुख्य राज्यपर पुरु को अभिषेक कराके स्त्री के साथ वन को गया हे संजय ! वह तुझसे और तेरे पुत्र से अधिकतर होकर मृत्युवश हुआ तो तू अपने पुत्र का शोक मत कर हमने अम्बरीष और नाभाग को मराहुआ सुना है प्रजाने राजाओं में उत्तम जिस पालन करनेवाले को चाहा जिस बड़े महात्मा राजाने अपने महायज्ञ में दश लाख यज्ञ करनेवाले राजा लोग अपने यज्ञ के ब्राह्मण और अतिथियों की सेवा करने के निमित्त नियत किये इस बात को न पहिले किसीने किया और न आगे करेंगे बुद्धिमान् लोग राजा अम्बरीष की इसप्रकार प्रशंसा करते हैं कि उस राजा के यज्ञ में एकलाख दशहजार राजालोगों ने ब्राह्मणों की सेवा करने के कारण हिरण्यगर्भलोक पाया ऐसा भी प्रतापी तेजस्वी जब मरगया तो तू किसकारण पुत्रका शोक करता है इसके विशेष राजा चैत्ररथके पुत्र शशिबिन्दु को भी हमने मृतक हुआ सुना है जिस महात्मा की एकलाख स्त्रियां थीं और एकलाख पुत्र सबके सब महाधनुर्द्धारी थे और प्रत्येक राजपुत्र के पीछे सौ २ राजकन्या चलीं और हरएक कन्याके साथ सौ २ हाथी और प्रतिहाथी सौ २ रथ और प्रत्येक रथ के साथ सौ २ घोड़े और घोड़े २ के साथ सौ २ गौ और गौवों के पीछे अनेक

भेड़ बकरियां थीं ऐसे असंख्य धन को शशिबिन्दु ने बड़े अश्वमेध में ब्राह्मणों को बांटदिया उसको भी तू महाउत्तम समझकर अपने शोक को दूर कर गय और अमूर्त्तरय को भी हमने मृतक सुनाहै यह राजा सौ वर्षपर्य्यन्त यज्ञ के शेष अमृत अन्न का भोजन करनेवाला हुआ अग्नि ने उसको वरदान दिया और गयने भी बहुत से वर मांगे जिनमें एक यह वरदान है कि मेरा धन दान करते करते न निबटे और धर्म्म में पूरी श्रद्धा बनी रहै और मेरे चित्त में सदैव सत्यता बनी रहै यह सब वरदान अग्निने उसको दिये अमा पूर्णिमा चातुर्मास में पूरे सहस्रवर्ष पर्य्यन्त अश्वमेधयज्ञ से परमेश्वर का पूजन किया सहस्रवर्ष पर्य्यन्त उठ२ कर एकलक्ष गौ और इतनेही खच्चर दान किये और धन से ब्राह्मणों को और अमृत से देवताओं को और स्वधा से पितरों को और कामशक्ति से स्त्रियों को प्रसन्न किया और महाअश्वमेध यज्ञ में उसराजा ने पचास हाथ चौड़ी और सौ हाथ लम्बी सुवर्ण की पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणों को यज्ञदक्षिणा दी और जितने बालू के कण गङ्गा में हैं उतनेही राजा गय अमूर्त्तरय ने गोदान किये हे संजय ! जब ऐसे भी धर्म्मात्माको काल ने न छोड़ा तो तू क्या अपने पुत्र का शोक करता है रन्तिदेव और सान्त्य को भी हमने स्वर्ग्गवासी हुआ सुना है जिस महात्मा तपोधन ने उत्तम आराधना करके इन्द्रसे वरप्रदान पाया कि हमारे बहुत अन्न उत्पन्न हो और अतिथियों के भोजनों में हमारी श्रद्धा न घटै और किसी से कोई वस्तु न मांगें आप से आप उस महात्मा रन्तिदेव के पास सब पशु आये और कहा कि पितृकार्य्य में हमको लगावो इसीकारण उनपशुओं के चर्मों से जो रुधिर निकला उसी से चर्म्मणवती नदी प्रसिद्ध हुई सभा नियत होजाने पर वह राजा एक ब्राह्मण को सौ २ निष्क देने को पुकारता था परन्तु वह नहीं लेते थे जब हज़ार निष्क देता था तब ब्राह्मणों को पाता था पितरों के मालिक श्राद्धका जो सामान है उसमें जो पीतलके पात्र होते हैं वह यह हैं कि कलश थाली यज्ञपात्र कराह पिठर आदि वह सब सामान सुवर्णरचित था और जब बीससहस्र राजा उसके घर में रात्रि को वर्त्तमान हुये तब उन्होंने सौ २ गौ दक्षिणा में पाईं वह उत्तम कुण्डलधारी रसोईदार पुकारते थे कि अब अनेक व्यञ्जनों को भोजन करो पहिला मांस अब नहींहै वहभी तुम से और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा पुरुष मरगया तो तू क्यों पुत्रशोक करता है और इक्ष्वकुवंशी महाबली महात्मा राजा सगर को भी मराहुआ सुनते हैं जिसके पीछे २ उसके

साठहज़ार पुत्र चलते थे जैसे कि वर्षा के अन्त में निर्मल आकाश में चन्द्रमा को हज़ारों नक्षत्र घेरेहुये चलते हैं प्राचीन समय में उसके प्रताप से पृथ्वी एक छत्रवाली हुई और हज़ार अश्वमेधों से उसने देवताओं को प्रसन्न किया और अनेक सुवर्ण भूषित वराङ्गनाओं से शोभित सर्ववस्तुसम्पन्न महलों को बहुत से धनसे पूर्ण करके ब्राह्मणों को दान किया और क्रोध करके समुद्रों से अङ्कित पृथ्वी को खुदवाया इसीकारण समुद्र का सागरनाम हुआ उस महातेजस्वी को भी जब कालबली ने दबालिया तो तू क्या अपने पुत्रका शोक करता है और वेणु के पुत्र राजापृथुको भी मृतकसुनते हैं जिसको बड़े२ ऋषियों ने वन में अभिषेक कराया और लोकों में प्रसिद्ध हुआ इसी से उसका नाम पृथु रक्खा और यह निश्चय है कि जो क्षत अर्थात् घाव से रक्षा करे वह क्षत्रिय कहलाता है इसकारण वेणुके पुत्र राजा पृथुकी प्रजा ने देखकर कहा कि हम अनुरक्त हैं अर्थात् प्रवृत्त हैं इससे राजा यह नाम हुआ राजापृथु के राज्य में वृक्ष विना परिश्रम किये फलको देते थे और पत्रमें मिष्टरस होता था और सब गौ एक२ द्रोणपरिमित दूध देती थीं क्षेत्र और स्थानों में सब प्रकार के मनुष्य निर्भय हुये समुद्र का जल इसके देखतेही स्थिर होता था और नदियां हटकर मार्ग करदेती थीं कहीं इसकी ध्वजा की रोक नहीं हुई इस राजाने चारसौ हाथ ऊंचे इक्कीस सुवर्ण के पर्वतों को महायज्ञ अश्वमेध में ब्राह्मणों को दान किया ऐसा महादानी धर्म्मात्मा जब मरगया तो निरर्थक पुत्रशोक तू क्यों करता है हे संजय! तुम मौन होकर क्या विचार रहेहो मेरे इन वचनों को नहीं सुनते हो मैंने जो इतने इतिहास कहे वह मिथ्या नहीं हैं जैसे आसन्नमृत्यु मनुष्य को हितकारी वचन असह्य होते हैं तैसेही तूभी मेरे वचनों को सत्य नहीं समझता संजय बोला कि हे नारदजी! मैं चित्त से आपके वचनों को सुनता हूं यह राजऋषियों की कीर्त्तियों से भरेहुये अनेक शोकों के दूर करनेवाले वचन हैं हे महर्षे! आपने निष्फल वार्त्ता कोई नहीं कही मैं आपके देखनेसेही शोकरहित हूं और हे ब्रह्मवादिन्! मैं आपके अमृतरूपी वचनों से तृप्त नहीं होता हे नारद जी! आपका दर्शन सफलहोता है इससे अनुग्रहकरके इस पुत्रको फिर जिलावो जिससे कि मैं उससे मिलकर अपने शोकको मिटाऊं नारदजी बोले कि जो यह तेरा स्वर्णष्ठीवी नाम पुत्र जिसको पर्व्वतऋषिने तुझको दिया था उसको मैं फिर तुझे देता हूं जिसकी हिरण्यनाभिहोकर सहस्रवर्षकी अवस्था होगी १५०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि संजय का वह पुत्र हिरण्यगर्भ कैसे हुआ उसको पर्व्वत ऋषि ने कैसे दिया और किसकारण से मरगया उस समय सब मनुष्य हजार वर्ष की अवस्था रखते थे तो संजय का पुत्र कौमार अवस्था ही में कैसे मरगया आश्चर्य है कि वह नाममात्र को सुवर्णष्ठीव हुआ अथवा कैसे सुवर्ण का उगलनेवाला हुआ इस बात को जानना चाहता हूं श्रीकृष्णजी बोले कि इस स्थानपर मैं यह वृत्तान्त तुझ से कहता हूं कि यह नारद ऋषि और पर्व्वत ऋषि दोनों मामा भानजे थे लोकों के हित के लिये स्वर्ग से पृथ्वी में आये और पूर्व्व समय में वह दोनों नरलोक में बड़ी प्रीतिपूर्व्वक विहार करते फिरते थे पवित्रान्न हव्य चावल और घृतसंयुक्त देवताओं के भोजनों को करके मामा नारदजी और उनके भानजे पर्व्वत ऋषि पर्यटन करने को पृथ्वीपर घूमा करते थे और दोनों तपोमूर्ति नरलोकवासियों के पदार्थों को भोजन करके स्वेच्छाचारी हो इस पृथ्वी के चारों ओर को घूमे और बड़ी प्रीतिपूर्वक परस्पर में दोनों ने यह प्रण किया कि हृदय में जो अच्छा बुरा कोई संकल्प उठे उसे आपस में कहना योग्य है और जो कोई मिथ्या कहै उसके बदले शाप होवे इसप्रकार की शर्तें करके वह लोकपूजित दोनों ऋषि संजय नाम राजर्षि के समीप पहुँचे और बोले कि हम दोनों तेरे शुभ के लिये कुछ समय तक तेरे पास रहेंगे हे राजन् ! तुम भी बुद्धिके अनुसार हम दोनों के समान होवो राजा ने तथास्तु कहकर दोनोंका सत्कार किया तदनन्तर किसी समय उन दोनों तपोमूर्त्तियों को प्रसन्न जानकर राजा ने यह कहा कि यह सुन्दर वर्ण स्वरूपवान् मेरी अकेली पुत्री आपकी सेवा करेगी यह कन्या अतिसुशील नम्र देखने योग्य निर्दोष गुरुसेवापरायण चतुर कुमारी कमलनेत्र प्रकाशमान वर्त्तमान है उन दोनों ने कहा कि बहुत अच्छी बात है तब राजा ने उस कन्या को शिक्षा करी कि हे पुत्रि ! तू इन दोनों ऋषियों की पिता के समान सेवा कर वह सुशील कन्या राजा की आज्ञा पा उन दोनों महर्षियों की श्रद्धापूर्व्वक सेवा करनेलगी उसकी सेवा और अपूर्व्व लावण्यता से नारदजी को कामदेव ने सताया तब उस वृत्तान्त को नारदजी ने अपने भानजे पर्वत ऋषि से नहीं कहा परन्तु पर्वत ऋषिने अपने तपके बल से नारद की अङ्गचेष्टाओं से उस वृत्तान्त को जाना और अत्यन्त क्रोधयुक्त हो काम-

पीड़ित नारदजी को शापदिया कि सावधान हो आपने मुझसे शर्त करके कहा था कि हृदय में जो बुरा भला संकल्प हो उसको परस्पर में कहना योग्य है उस को आपने छिपाया हे ब्रह्मन् ! आपने उस प्रतिज्ञा कियेहुये वचन को मिथ्या किया इससे मैं शाप देता हूं कि यही कुमारी आपकी निश्चय करके भार्या होगी हे स्वामिन् ! विवाहसमय में यह कन्या और अन्य मनुष्य तुमको वानररूप देखेंगे जोकि आपके असली रूप को नाश करेगा यह सुनकर नारद ने भी क्रोधित होकर उस अपने भानजे पर्व्वत ऋषि को शाप दिया कि तू भी तप ब्रह्मचर्य सत्यता आदि धर्म्मों को सदैव करताहुआ भी स्वर्गलोक न पावेगा इसप्रकार से वह दोनों क्रोधाग्नि में भरेहुये शापाशापी करके इधर उधर चले गये और बुद्धिमान् पर्वत ऋषि सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमे और अपने तेजबल से न्यायकी रीति से पूजन पानेवाले हुये इसके पीछे नारदजीने उस संजयकी पुत्री को धर्म्म से पाया अर्थात् पाणिग्रहण के मन्त्र पढ़नेवालों की आज्ञा से नारदजी को वानररूप में देखकर अपमान नहीं किया और प्रसन्न हुये अपने स्वामी के समीप प्राप्त हुई उस पतिव्रता ने दूसरे देवता मुनि यक्ष गन्धर्व आदि को भी पति नहीं बनाया तदनन्तर किसीसमय तपोमूर्त्ति पर्वत ऋषिने कहीं वन में घूमते हुये नारदजीको देखा और नमस्कार करके नारदजी से कहा कि हे स्वामिन् ! आप मेरे स्वर्ग जाने के विषय में शाप अनुग्रह करके कृपा करो तब नारदजी ने पर्वत ऋषि से कहा कि मुझे आपने प्रथम शाप दिया था कि तुम वानररूप होगे इसीकारण पीछेसे ईर्षायुक्त मैंनेभी तुमको शापदिया कि अबसे लेकर अन्त तक स्वर्ग में नहीं रहसकोगे यह बात कहने योग्य नहीं है क्योंकि तुम हमारेपुत्र के समानहो तब उनदोनों मुनियोंने परस्परमें शापको मोचन किया तब वह सुकुमारी संजयकुमारी उस शोभायमान नारदके स्वरूपको देखकर दूसरेपुरुषकी शङ्कासे भागी तब उस पर्वत ऋषिने उस निर्दोष भागनेवाली कुमारीसे समझाकर कहा कि यह तेरा पति है इसमें विचार न करना चाहिये यह परमधर्म्मात्मा नारदजी तेरेही पति हैं इसमें तू सन्देह मत कर तब उस कन्या ने पर्व्वत ऋषिसे शापदोषको समझकर चित्तमें विश्वासकिया कि नारदजीने अपने मुख्यस्वरूप को पाया तब पर्व्वत ऋषि भी स्वर्गको गये और नारदजी अपने स्थानको आये वासुदेवजी बोले कि यह भगवान् नारद ऋषि जो सबको प्रत्येक वार्त्ता प्रकट करते हैं उनसे जब तुम पूछोगे तब वह इसके यथार्थ वृत्तान्तको कहेंगे ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३०॥

इकतीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि श्रीकृष्णजी के कहने से राजा युधिष्ठिर ने नारदजी से कहा कि हे ब्रह्मन्! मैं आपके मुखारविन्द से सुवर्णष्ठीव के जन्म को सुना चाहता हूं यह सुनकर नारद मुनि ने धर्म्मराज से कहा कि सुवर्णष्ठीव का जैसा वृत्तान्त है कि वह सब केशवजी ने आपसे कहा उसमें जो कुछ शेष रह गया है वह मैं तुझ से कहता हूं कि मैं और मेरा भानजा महामुनि पर्वत निवास करने की इच्छा करके महाप्रतापी राजा संजय के पास गये वहां हम दोनों ने शास्त्रोक्त कर्म्म के द्वारा पूजित हो सब इच्छाओं से पूर्ण उसके स्थान में निवास किया बहुत वर्षों के पीछे यात्रा करने के समय पर्वत ने मुझसे यह सार्थक वचन कहा कि हे ब्रह्मन्! हम दोनों इस महाराज के घर में बड़े पूजित होकर रहे हम को उचित है कि इसका कल्याण विचारें तब मैंने उस शुभदर्शन पर्वत ऋषि से कहा कि हे भानजे, पर्व्वत! यह सब सामर्थ्य तुझ में है राजा को वरों से लुभाना चाहिये जो २ वह वर मांगे वह उसको दो और वह हम दोनों के तप से सिद्धि को पावे तदनन्तर पर्व्वत ऋषि ने उस प्रतापी संजय को बुलाकर कहा कि हे संजय! आपके सत्यतापूर्व्वक होनेवाले कामों से हम बहुत प्रसन्न हैं सो हे नरोत्तम! तुम हम दोनों से कोई वर मांगो देवताओं के पीड़ा न होने से मनुष्यों का भी कल्याण होता है हे राजन्! आप उस वर को लीजिये तुम हम दोनों की ओर से पूजन के योग्य हो संजय बोला जो आप मुझसे प्रसन्न हैं इतनेही से मेरा बड़ा लाभ हुआ फिर पर्व्वत ऋषि ने उत्तर दिया कि हे राजन्! उस चित्त की इच्छा को मांगो जो बहुत काल से आपके हृदय में है संजय बोला कि मैं ऐसा पुत्र चाहता हूं जो महापराक्रमी वीर दृढ़व्रतधारी विद्यावान् महाप्रारब्धी इन्द्र के समान तेजस्वी आयुष्मान् हो पर्वत बोले कि यह सब इच्छा तेरी पूर्ण होगी परन्तु वह अवस्था में पूर्ण न होगा तेरे हृदय में यह संकल्प इन्द्र के ऐश्वर्य्य के निमित्त है तेरा पुत्र सुवर्णष्ठीव के नाम से प्रसिद्ध होगा वह देवेन्द्र के समान तेजस्वी होगा परन्तु इन्द्र से रक्षा होनी चाहिये तब संजय ने महात्मा पर्वत ऋषि को प्रसन्न करके कहा कि आप ऐसी कृपा करें कि इन्द्र से भय न होवे हे मुनीश्वर! मेरा पुत्र आपके महातप से आयुर्दायवान् होवे पर्वतजी ने इन्द्रके हेतु से उसको कुछ उत्तर नहीं दिया फिर नारदजी कहते हैं कि मैंने राजा संजय से कहा कि हे महाराज! आप मुझ को याद करना मैं तुम्हारे पुत्र

को यमराज के फन्दे से छुटाकर फिर उसी स्वरूप का करके दूंगा इससे हे पृथ्वीपते, संजय ! शोच मत करो ऐसा कहकर हम दोनों अपनी इच्छापूर्वक चले आये और राजा संजय इच्छानुसार अपने महल में पहुँचा तदनन्तर कुछ समय व्यतीत होनेपर राजऋषि संजय के पुत्र उत्पन्न हुआ वह बड़ा पराक्रमी और तेज से देदीप्यमान था और समय पाकर ऐसे बड़ा हुआ जैसे कि सरोवर में कमल बड़ा होता है वह नाम के अर्थ के अनुसार यथा नाम तथा गुणवान् होकर लोक में बड़ा आश्चर्य्यकारी हुआ और इन्द्र उस पर्वत ऋषि के वरदान को जानकर बृहस्पतिजी की सलाह से अपने पराजय से भयभीत हो उस कुमार के मारने का मौका देखनेलगा और अपने दिव्य अस्त्र वज्रको आज्ञा दी कि तुम व्याघ्ररूप होकर इस कुमार को मारो नहीं तो हे वज्र ! यह कुमार बड़ा होकर मुझको मारेगा या पराजय करेगा जैसा कि पर्वत ऋषि ने राजा से कहा है जब इन्द्र ने वज्र को यह आज्ञा दी तब वह शत्रुहन्ता दिव्य अस्त्र कुमार के मारने को व्याघ्ररूप होकर सदैव सम्मुख आया करता था और संजय भी अपने ऐसे पराक्रमी पुत्र के होने से निर्भय होकर वन में वास करनेलगा फिर एक समय वह बालक निर्जन वन में गङ्गाजी के तटपर अपनी धात्री को साथ लिये क्रीड़ा करने के निमित्त चारों ओर को दौड़ा उस समय उस महाबली गजेन्द्र के समान पराक्रमी पांचवर्ष के बालक ने अकस्मात् उछलते हुये उस प्रबल सिंह को देखा तो भयभीत हो कांपनेलगा और उसी समय उस व्याघ्र ने मारडाला तब वह धात्री पुकारी और वह शार्दूल उसको मारकर उसी स्थान पर अन्तर्द्धान होगया और देवराज की माया से गुप्त होगया तब उस धात्री के रोने का महाव्याकुल शब्द सुनकर वह राजा संजय वन से दौड़ा और वहां आकर अपने पुत्र को मरा हुआ पृथ्वीपर पड़ा देख व्याकुल हो उसने मृतक पुत्र को छाती में लगाकर महाविलाप किया तदनन्तर उसकी सब माता भी महाघोर विलाप और रोदन करती हुई वहां आईं जहां राजा संजय शोक कररहा था उस समय राजा ने मुझको स्मरण किया तब मैंने जाकर उसको दर्शन दिया उस समय उस शोकग्रस्त ने मुझ से वह वचन कहे जो श्रीकृष्णजी ने तुमको सुनाये फिर इन्द्र की सलाह और नारदजी की कृपा से उसका सुवर्णष्ठीवी पुत्र जीउठा वह ऐसाही होना था उस होनहार से विपरीत करना असम्भव है तब उस पुत्र को देखकर उसके माता पिता प्रसन्न हुये और राज्य देकर तप के द्वारा स्वर्गवासी

हुये उस सुवर्णष्ठीवी ने अपने माता पिता के मरने के अनन्तर ग्यारहसौ वर्षपर्य्यन्त पृथ्वीपर राज्य किया और बड़े २ यज्ञों के द्वारा देवता और पितरों को सन्तुष्ट कर वंश की वृद्धि करनेवाले बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करके समयानुसार मोक्षरूप मृत्यु पाई सो तुमभी इस शोकको दूर करो जैसे कि केशवजी और महात्मा व्यासजीने तुमसे कहा है अपने बाप दादे के राज्यमें प्रवृत्त होकर धर्म करो अर्थात् संसारका पोषणकरो और महान् यज्ञों से पूजन करके अभीष्ट पदको पावोगे ४७॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

बत्तीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि महातपस्वी तत्त्वज्ञ व्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा कि हे कमललोचन ! राजाओं का परमधर्म्म प्रजा का पालन है सदैव धर्म्मपर चलनेवाले पुरुषों का धर्म्म लोक को प्रमाण होता है सो हे राजन् ! तुम बाप दादे के राज्यपर नियत होजावो ब्राह्मणों में तप का होना जो धर्म्म है वह सदैव वेद से निश्चय होता है कि हे भरतर्षभ ! वह ब्राह्मणों का प्राचीन कर्म्म धर्म्म की मर्य्यादा है उस सब धर्म्म का रक्षा करनेवाला क्षत्रिय है जिस देशवासी मनुष्य ने आज्ञा को न माना वह मर्यादा भङ्ग करनेवाला पुरुष पकड़ने के योग्य है और जो अज्ञान होकर नौकर या पुत्र अथवा तपस्वी भी मर्यादा को बिगाड़े उस पापी को राजा दण्ड दे या मारडाले और जो राजा ऐसा न करे तो वह भी पाप का भागी होता है और जो राजा नाश होनेवाले धर्म्म की रक्षा न करे वह धर्म्म का नाश करनेवाला है तुमने धर्म्मनाशक दुर्योधन आदि को उनके सहायकों और साथियों समेत मारा इससे हे पाण्डव ! तुमने धर्म्म से मारा अब तुम क्यों शोच करते हो राजा को उचित है कि शत्रुओं को मारे और दान धर्म्म कर प्रेम से प्रजा का रक्षापूर्वक पोषण करे युधिष्ठिर बोले हे तपोमूर्त्ते, पितामह, व्यासजी ! मैं आपके वचनों में सन्देह नहीं करता हूं जो आप कहते हो वह सब धर्म्म आपके दृष्टिगोचर है अर्थात् आप उन सबके ज्ञाता हैं हे ब्रह्मन् ! मैंने राज्य के लिये मारने के अयोग्य बहुत से मनुष्यों को मारा वही कर्म्म मुझको भस्म कर रहा है तब व्यासजी बोले कि हे नरोत्तम ! ईश्वर में मिले पुरुष बुरा भला कैसाही कर्म्म करें उन सब कर्मों का फल ईश्वरही में वर्तमान होता है जैसे कोई पुरुष वन में जाकर फरसे से वृक्ष को काटे तो काटनेवाले को पाप नहीं होता अर्थात् फरसे को पाप नहीं होता कदाचित्

ऐसा कहो कि फरसे के लेने और चलाने से कर्म्म के फलको भोगे तहां कहते हैं कि फरसे की लकड़ी और शस्त्र बनाने का पाप बनानेवाले मनुष्य में भी होना चाहिये सो नहीं होता है जब पहिले कर्त्ता में कर्म्म का फल नहीं हुआ तो दूसरे कर्त्ता में कहां से होगा इसकारण ऐसे सब कर्म्म ईश्वर की इच्छा से होते हैं जो यह बात अभीष्ट नहीं है कि शस्त्रप्रहार करनेवाले का किया हुआ अकर्म्म फल शस्त्र बनानेवाला पाये ऐसी दशा में तुझ में पाप न होने से उसको ईश्वर ही में जानो और जो यही कहो कि अच्छे बुरे कर्म्म का कर्त्ता पुरुषही है ईश्वर नहीं है इस हेतु से भी यह कर्म्म अच्छा किया हे राजन्! अदृष्ट होनहार के विरुद्ध कोई पुरुष अवश्य होनेवाले कर्म्म को नहीं त्यागता है जो यह समझते हो कि प्रारब्ध भी अपने दूसरे जन्म का पुण्य पाप है उसके उत्तर में कहते हैं कि दण्ड और शस्त्र बनाने का पाप पुरुष में नहीं है तो पिछले कर्त्ता में क्यों मिलना चाहिये अब तीसरे पक्ष को दोष लगाते हैं हे राजन्! जो तुम मारने के कर्म्म करने का कारण पुरुष को मानते हो तो इसप्रकार से भी तुझ हठवादी का कर्म्म बुरा नहीं हुआ है न होगा फिर लोक के पुण्य पाप अर्थात् सुख दुःखका कर्म्म मिलाने के योग्य है इससे यही जानो कि यह राजाओं का दण्ड धारण करना लोक को प्रमाण है अर्थात् लोक और शास्त्र दोनों में देखाजाता है इसमें सन्देह करते हैं हे भरतर्षभ! लोक में भी तो अच्छे और बुरे कर्म्म अवश्य प्राप्त होते हैं और नेक अशुभ फलको पाते हैं यह मेरा मत है इसकारण मुझको देह के त्यागने के लिये नियम करना उत्तम है इसका उत्तर यह है कि हे नरोत्तम! ऐसाभी हो परन्तु तुम पापों की जड़ हो इससे उस कर्म्म को त्यागो जिसका फल डुबन्त खाता है इसप्रकार चित्त में शोक मत करो हे भरतवंशिन्! अपने निन्दित धर्म्म में तुझको देह का त्याग करना उचित नहीं है ऐसे निन्दित कर्म्म से भी महापाप होता है हे कुन्तीपुत्र! सब कर्मों के प्रायश्चित्त शास्त्रों में लिखे हैं देहधारी उनको करे और देहका त्याग करनेवाला नाश को प्राप्त होता है हे राजन्! जो तुम देहधारी होकर प्रायश्चित्त को न करोगे तो मरकर पश्चात्ताप करोगे ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

तेंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह! मुझ राज्य के लोभी अकेले ने पुत्र, स्त्री, भाई, पिता,

श्वशुर, गुरु, मामा, पितामह, महात्मा, क्षत्रिय, सम्बन्धी, सुहृज्जन, समानवय, भानजे, जातिवाले और नानाप्रकार के उद्योग करनेवाले राजालोग मरवाये सो हे तपोधन ! ऐसे २ वीर राजाओं को मारकर मैं क्या फल पाऊंगा इससे उन श्रीमान् राजाओं से खाली पृथ्वी को देख २ मैं सदैव चिन्ता करता हूं और ज्ञातिवालों के घोरनाश को और सैकड़ों शत्रु और करोड़ों अन्य मनुष्यों को मरा हुआ देखकर महाःदुखी होता हूं उनकी श्रेष्ठ २ स्त्रियों की क्या दशा होगी जो पति, पुत्र और अपने भाइयों से रहित होगईं वे तो दुर्ब्बल शोक से पीड़ित हम सब पाण्डवों को दुर्वचन कहतीहुई वे स्त्रियां पृथ्वीपर गिरेंगी या अपने पिता, माता, पति, भाई, पुत्र आदि को न देख देह को त्याग २ यमलोक को जायँगी इसका निश्चय यह फल होगा कि हमलोग धर्म्म की सूक्ष्मता से स्त्रीवधकर्म्म के फल को पावेंगे और जो अपने सुहृज्जनों को मार प्रायश्चित्तों से पाप से निवृत्त होकर हमलोग मरेंगे तो अवश्य नरक में पापों को भोगेंगे इससे हे पितामह ! हम तप करके अपने देहों को त्यागेंगे अब आप आश्रमों में जो उत्तम आश्रम हो उसको कहो वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर के ऐसे वचनों को व्यासजी ने सुना तब बड़े विचारपूर्वक व्यासजी बोले कि हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ, युधिष्ठिर ! क्षत्रियधर्म्म को जानकर तुम व्याकुल मत हो यह सब क्षत्रिय लोग अपने क्षात्र धर्म ही से मारेगये पृथ्वी के सब धन और बड़े यश के चाहनेवाले काल के प्रेरित दूसरों के मारने में प्रवृत्त थे इन सब ने कालही से मृत्यु पाई तुम न भीम न अर्जुन न नकुल न सहदेव कोई मारनेवाले नहीं हो काल ने सबको बटोर लिया यह सब बातें काल के लिये हेतुरूप होगईं कि जीव जीव के हाथों से मरते हैं इसकारण यह तुम कर्मरूप बन्धन को प्रधान रखनेवाला अच्छे बुरे कर्म्मों का साक्षी सुख दुःखादि गुणों का समय पर फल देनेवाला कालरूप ईश्वरही जानो और हे युधिष्ठिर ! तुम उनके नाश होने के कर्म्मरूप कारण को भी समझो जिससे कि वह काल की फांसी में बँधेगये हे सावधान ! तुम अपने कर्म्म की प्रवृत्तिता को जानो कि जब तुम ईश्वरेच्छा से प्रारब्धाधीन ऐसे कर्म्म में प्रवृत्त कियेगये जैसे त्वष्टा का बनाया हुआ यन्त्र अङ्ग के हिलानेवाले के आधीन होता है उसीप्रकार यह जगत् काल से संयुक्त कर्म्मों के द्वारा चेष्टा करता है पुरुषों के जन्म और नाश को दैवइच्छा से होना जानकर सुख दुःख करना वृथा है जो यहां मिथ्या भी तेरे चित्त का बन्धन है उसके लिये

प्रायश्चित्त करना होता है उसको तुम करो और पहिले समय में देवासुरों के युद्ध में यह सुना जाता है कि असुर बड़े भाई और देवता छोटे भाई थे उनका भी युद्ध धनही के निमित्त बत्तीसहज़ार वर्षतक हुआ देवताओं ने पृथ्वी को रुधिर से एकसमुद्रवाली करते हुये दैत्यों को मारा और स्वर्ग्ग को भी प्राप्त किया उसीप्रकार वेद के पारंगत होनेवाले अहंकार में भूले हुये ब्राह्मण पृथ्वी को पाकर दैत्यों की सहायता के लिये तय्यार हुये वह तीनों लोक में प्रसिद्ध शालावृक नाम से अट्ठासीसहस्र थे वह भी देवताओं के हाथ से मारेगये इससे यह बात सिद्ध हुई कि जो अधर्म्म के जारी करनेवाले और धर्म्म का नाश होना चाहते हैं वे मूढ़बुद्धि मारने के ही योग्य हैं जैसे कि दैत्य देवताओं के हाथ से मारेगये जो एक पुरुष के मारने से घराना बचे और एक घराने के मारने से एक ग्राम बचे और एक ग्राम के मारने से एक देशभर बचे तो वह धर्म्म का नाश करनेवाला नहीं है हे राजन्! कोई तो अधर्म्मरूप धर्म्म है और कोई धर्म्मरूप अधर्म्म है वह पण्डितही के जानने के योग्य है इसकारण तुम चित्त को स्वस्थ करो क्योंकि तुम शास्त्रों के ज्ञाता हो और पूर्व्वचरित मार्गों पर चलते हो ऐसे पुरुष कभी नरक को नहीं जाते इससे तुम अपने इन शूरवीर छोटे भाइयों को आनन्द दो जो पुरुष पापसंयुक्त कर्म्म में न्यायही में स्नेह रखता है वह पाप करता हुआ भी उसी दशावाला होजाय कर्म्म करके निर्लज्ज होजाय तो उसीमें वह पाप पूरा होगा यह कहते हैं कि उसके पाप का नाश प्रायश्चित्त कर्म्म से नहीं है परन्तु तुम पवित्रकुल और दुर्योधन के दोष से कर्म्म करनेवाले होकर इस कर्म्म की अनिच्छा करके पश्चात्ताप करते हो सो सबका प्रायश्चित्त बड़ा अश्वमेध यज्ञ कहा है उसको करो तो पाप से छूटोगे इन्द्र देवता मरुद्गणों के साथ शत्रुओं को विजय करके सौ सौ बार एक२ यज्ञ को करके शतक्रतु अर्थात् सौ यज्ञ का करनेवाला हुआ जो लोकों के आनन्द का प्रकट करनेवाला मरुद्गणों समेत लोकों को प्राप्त करके चारों दिशाओं को प्रकाश करता शोभायमान है और स्वर्ग्गलोक में अप्सराओं से सेवित देवताओं के ईश्वर शचीपति इन्द्र की ऋषि और देवता चारों ओर से उपासना करते हैं हे निष्पाप! यह पृथ्वी तुझको पराक्रम से प्राप्त हुई और तेरे पराक्रम से राजा लोग विजय हुये सो हे नरोत्तम! तुम अपने सुहृज्जनों समेत उनके पुर और देशों को जाकर अपने भाई, पुत्रों, पोतों को यथायोग्य राज्यों पर अभिषेक करावो और श्रेष्ठ

आचरणयुक्त सब नौकर चाकरों को मीठे वचनों से प्रसन्न कर गर्भस्थ बालकों की और पृथ्वी की रक्षा करो और जिनके कि पुत्र कुमार नहीं हैं वहां उनकी कन्याओं को अभिषेक करावो स्त्रियों का समूह इसप्रकार अपने वाञ्छित को प्राप्त होकर शोकों को तजेगा इसप्रकार से सब देशों को स्वस्थ और आनन्द करके अश्वमेध यज्ञ से पूजन करो जैसे पूर्वकाल में विजयी इन्द्र ने किया था हे क्षत्रियोत्तम! वह महात्मा क्षत्रियलोग शोच के योग्य नहीं हैं जिन्हों ने अपने२ कर्म्म के द्वारा मृत्यु को पाया हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! क्षत्रियधर्म्म तुम को प्राप्त है और निष्कण्टक राज्य भी तुम को प्राप्त हुआ इससे अपने उस धर्म्म की रक्षा करो जोकि परलोक में कल्याण करनेवाला है॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३३॥

चौंतीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि इस लोक के मनुष्य कौन से कर्मों को करके प्रायश्चित्त के योग्य होता है और किस कर्म्म के करने से उद्धार होता है व्यासजी बोले कि छल से भरीहुई बातों को करके अपने नित्यकर्म्म को त्यागता है वह निषेधित कर्म्मों को छोड़कर प्रायश्चित्त के योग्य होता है और जो ब्रह्मचारी होके सूर्य्योदय और सूर्य्यास्त में सोता है उसको सुवर्णस्तेयी और मद्य बेचनेवाले के समान समझो उसको भी प्रायश्चित्त करना योग्य है और जिसके छोटे भाई का विवाह उससे पहिले होगया हो अथवा बड़े भाई से पहिले छोटे भाईने अपना विवाह कर लिया हो वह छोटा भाई ब्रह्मघाती होकर निन्दित है और जिसकी बड़ी बहिन का विवाह न हुआ हो और छोटी बहिन विवाह करले अथवा छोटी बहिन का विवाह होजाने के पीछे उसकी बड़ी बहिन का विवाह करले वह मनुष्य अथवा जिसका व्रत नष्ट होगया हो वा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का मारनेवाला और सुपात्र को छोड़कर अपात्र को वेद का दान देनेवाला और मनुष्यों के समूहों को विष आदि से मारनेवाला और अग्नियों को त्यागकर मासिक लेकर वेद पढ़ानेवाला और गुरुस्त्री का मारनेवाला इन सबमें पहिले २ मनुष्य निन्दित हैं और पशुओं का निरर्थक मारनेवाला गृह को अग्नि से जलानेवाला मिथ्या कर्म्म करनेवाला और गुरु का तिरस्कार करनेवाला अपने विहित नियमों का उल्लङ्घन करनेवाला यह सब पापरूप हैं और जो जो कर्म्म करने के योग्य नहीं हैं वह हम कहते हैं तुम चित्त लगाकर सुनो

और लोक वेद से विपरीत चलनेवालों को भी एकाग्र होकर समझो अपने धर्म्मों को त्यागकर दूसरे के धर्मों का आचरण करे अथवा यज्ञ के अनधिकारी को यज्ञ करावे इसीप्रकार लहसुनादि अभक्ष्य वस्तुओं का खाना और शरणागत का त्याग और अपने दासों का पोषण न करना और गुड़ आदि रसोंका बेचना अथवा तिर्यग्योनि के जीवों का मारना और जो सामर्थ्यवान् होके गर्भाधानादि कर्म्म नहीं करता और नित्य दान गोग्रासादि को नहीं देता और प्रतिज्ञा करके दक्षिणा किसीको न देना ब्राह्मणके धन को छीन लेना धर्म्मज्ञ पुरुषों ने इन सब कर्मों को निन्दित जानकर करना निषेध किया है और पुत्र का पिता से विवाद करना और गुरुकी स्त्री से सम्भोग करना और अपनी धर्म्मपत्नी से समय पर सम्भोग न करना यह सब कर्म्म विस्तारपूर्वक कहे इनमें जो मनुष्य करने के योग्यों को नहीं करता और नहीं करने के योग्यों को करता है वह प्रायश्चित्त के योग्य होता है और जिन२ कर्मों को करके मनुष्य अपवित्र नहीं होता उनको सुनो कि चाहे वेदों का पारगामी भी ब्राह्मण हो और किसी के मारने की इच्छा से शस्त्र को धारण किये सम्मुख आवे ऐसे आततायी के मारने से ब्रह्महत्या नहीं होती है हे कुन्ती के पुत्र ! ऐसे स्थान में वेदों में भी पढ़ाजाता है वेद के प्रमाण की योग्यता को तुम से कहते हैं कि जो पुरुष गुरुकी सेवा आदि से भिन्न मारने की इच्छा किये शस्त्रधारी ब्राह्मण को मारे उसके मारनेसे ब्रह्महत्या नहीं होगी क्रोध में प्रवृत्त होकर उस कर्म्मका फल क्रोधही में जाता है प्राणों के नाश में अथवा अज्ञानता में मद्य पीना भी धर्मात्मा पुरुषों की आज्ञा से निषेध नहीं है अर्थात् शुद्धि के योग्य है हे युधिष्ठिर ! मैंने यह सब अभक्ष्य भोजनों का वर्णन किया इन सब से प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्ध होसक्ता है और गुरु की आज्ञा से उनकी स्त्री से सम्भोग करना मनुष्य को पाप का भागी नहीं करता है जैसे कि उद्दालक ऋषिने श्वेतकेतु को शिष्य के द्वारा उत्पन्न किया गुरु के निमित्त अथवा आपत्ति में चोरी करना निषेध नहीं होता और ब्राह्मण के सिवाय दूसरे वर्णों का धन लेना दोषभागी नहीं करता है और अपने या दूसरे के प्राणों की रक्षा में गुरु के निमित्त स्त्रियों में अथवा विवाहों के करने में मिथ्या बोलना अयोग्य नहीं गिना जाता है और स्वप्नावस्था में वीर्य के गिरने से प्रातःकाल दूसरा यज्ञोपवीतधारण करना योग्य नहीं है अच्छी प्रज्वलित अग्नि में घृत से हवन करना प्रायश्चित्त है बड़े भाई

के बेधर्म होने या संन्यासी होजानेपर छोटे को विवाह करना पाप नहीं है और शास्त्र की रीति से विषय की प्रार्थना करनेवाली दूसरे की स्त्री से सम्भोग करना दूषण नहीं है पशुओं का वध निरर्थक करना वा दूसरे से कराना महानिषेध है पशुओं पर दया करना ही संसार में योग्य है अज्ञानता से अयोग्य ब्राह्मण को दान देना और इसीप्रकार पात्र के सत्कारों का न करना भी दोषभागी नहीं करता इसीप्रकार कुपात्र स्त्री को दासी के समान त्याग देना और भोजन वस्त्र देकर पृथक् करदेना भी अयोग्य नहीं है वह स्त्री भी उससे निर्दोष होकर पति को दूषित नहीं करसक्ती सोमनाम वस्तु का तत्त्व जानकर जो उसको बेचता है वह अदोषी है और असमर्थ नौकर के त्यागने में भी अदोष है और गौवों के निमित्त जंगल कटवाना भी दोष नहीं है इतने कर्म्मों का करनेवाला दोषका भागी नहीं होता है और जो२ प्रायश्चित्त हैं उनको ब्यौरे समेत कहूंगा ॥३२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पैंतीसवां अध्याय ॥

व्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा कि जो मनुष्य अपने कियेहुये पापों को फिर कभी न करे तो दान तपस्या आदि कर्म्मों से भी पापों से छूटजाता है जो ब्रह्मचारी कपाल और खड्ग को धारण करके अपने नित्य कर्म्म को करता हुआ भिक्षावृत्ति से एक ही समय भोजन करे और दूसरों के गुणों में कोई दोष न लगाकर लोक में अपना किया हुआ कर्म्म प्रकाश करता हुआ पृथ्वी पर शयन करे तो बारह वर्ष में ब्रह्महत्या दूर होजाती है अथवा उपदेशकर्त्ता पण्डितों की आज्ञा से व अपनी इच्छा से शस्त्रधारियों का लक्ष्य अर्थात् निशाना होजाय चाहे अग्नि में नीचा शिर करके अपनी देह को डालदे या किसी वेदमन्त्र को जपता तीनसौ योजन चलाजाय अथवा अपने सम्पूर्ण धन को किसी वेद जाननेवाले ब्राह्मण के अर्पण करे वा जीवनपर्य्यन्त के उपयोगी धन को या वस्तुओं से भरेहुये घर को उस ब्राह्मण के अर्थ दान करे वह गौ ब्राह्मण की रक्षा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्या से छूटता है ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य कृच्छ्रभोजी होकर छह वर्ष में पवित्र होता है और प्रतिमास के चतुर्थांश का कृच्छ्रभोजी तीन वर्ष में शुद्ध होता है और मास मास का कृच्छ्रभोजी एकही वर्ष में शुद्ध होता है और केवल जलमात्र ही से जीवन करनेवाला पुरुष थोड़े ही समय में पवित्र होता है और अश्वमेध यज्ञ से भी

निस्सन्देह पवित्र होता है जो कोई राजा इसप्रकार के यज्ञों के अन्त में अवभृथ स्नान करनेवाले होते हैं वह सब पापों से छूटजाते हैं यह श्रुति है कि युद्ध में ब्राह्मण के निमित्त मरा हुआ पुरुष ब्रह्महत्या से छूटता है अथवा ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष एक लाख गोदान पात्र ब्राह्मणों को दे तो सब पापों से छूटजाता है जो राजा पचीसहज़ार कपिला गौवों का दान करे वह सब पापों से रहित होता है जीवन के सन्देह होने में राजा सवत्सा दूध देनेवाली एकसहस्र गौ साधु और ब्राह्मणों को दान दे तो निस्सन्देह पापों से छूटकर नीरोग होता है और हे युधिष्ठिर ! जो राजा काम्बोज देश के सौ घोड़े जितेन्द्रिय ब्राह्मणों को दान करता है वह निष्पाप होता है और जो पुरुष एक ब्राह्मण को ब्राह्मण की यथेच्छ वस्तुओं को देवे और देकर नहीं कहै वह पाप से अत्यन्त रहित होता है जो पुरुष वारंवार मदिरापान करके अग्निवर्ण की मद्य को पिये तो वह इस लोक और परलोक दोनों में अपने को पवित्र करता है निर्जल देश में पहाड़ के शिखर से गिरे या अग्नि में पड़े या केदार हिमालय पर्व्वतपर चढ़े तो सब पापों से छूटजाता है और मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण बृहस्पति सवनाम यज्ञ से पूजन करने के पीछे सभा में जाने के योग्य है यह ब्राह्मण की श्रुति है कि जो पुरुष मद्य को पीकर ईर्षारहित हो पृथ्वी का दान करे और फिर मदिरा को न पिये वह संस्कार करनेवाला शुद्ध होता है गुरु की स्त्री से सम्भोग करनेवाला लोहे की गर्म शिला से चिपटजाय अथवा अपना लिङ्ग काटकर ऊंची दृष्टिवाला संन्यासी होजाय वह नरक भोगने से देह को शुद्ध करता है एक वर्ष तक जितेन्द्रिय होकर जो स्त्री रहती है वह सब कुकर्म्मों से पवित्र होती है जो पुरुष महाव्रत को करे अर्थात् एक महीने तक जल को भी त्याग करे और सब धन को दान करदे अथवा युद्ध में गुरु के निमित्त मरे वह पापकर्म से शुद्ध होता है और जो गुरु से मिथ्या बोले या सत्कार गुरु का न करे तो वह उस गुरु की इच्छा को पूर्ण करके पाप से शुद्ध होता है और जिस पुरुष का व्रत नष्ट होगया हो वह व्रत नष्ट होने के छह महीने तक गोचर्म्म को धारण कर ब्रह्महत्या के व्रत को करे तो निर्दोष हो पाप से छूटे इसीप्रकार दूसरे की स्त्री या धनको हरे वह एक वर्षतक व्रती रहे तो पाप से छूटजाता है अथवा जिसके धनको ले उसके धन के समान अनेकप्रकार से धन देदे तो पाप से छूटे बड़े भाई से पहिले अपना विवाह करनेवाला छोटा भाई और

छोटे भाई से पीछे विवाह करनेवाला बड़ा भाई यह दोनों जितेन्द्रिय और व्रत में नियत होकर बारह दिन के कृच्छ्रव्रत से पवित्र होते हैं सदैव पितरों के उद्धार करनेवाले उस छोटे भाई को फिर अपना दूसरा विवाह करना उचित है और स्त्री को दोष नहीं होता क्योंकि वह उससे कोई देहसम्बन्ध नहीं रखती चातुर्मास में व्रत का धारण और पारण होता है स्त्रियां उससे शुद्ध होती हैं यह धर्म्मज्ञलोग कहते हैं सन्देहों से भरीहुई पापात्मा स्त्री बुद्धिमान् मनुष्य के सम्भोग करने के योग्य नहीं होती और जिन स्त्रियों का पाप केवल मानसी है वह मासिकधर्म्म से शुद्ध होजाती हैं जैसे कि भस्म से पात्र और जो शूद्र का जूठा कांसे का पात्र या मुख के बहुत से जलसे जूठा है वह भी दश वस्तुओं से पवित्र होता है गौ की पांचवस्तु और मिट्टी, जल, भस्म, खटाई, अग्नि चार चरण रखनेवाले सब धर्म्म ब्राह्मण के कहेजाते हैं और तीन चरणवाले क्षत्रियों के और दो चरणवाले वैश्यों के और एक चरणवाले शूद्र के कर्म्म कहेजाते हैं इसरीति से उनकी उच्चता और नीचता को जानो तिर्य्यग् चलनेवाले जीवों को मारने वाला वा वृक्षों का काटनेवाला तीन रात्रि हवा का भक्षण करनेसे और अपने पाप को कहदे तो पाप दूर होय और अयोग्या स्त्री से सम्भोग करने में भी प्रयश्चित्त होता है कि भस्मपर गीले वस्त्रों से छह महीनेतक सोकर विहार करना चाहिये इसस्थान में भस्मशब्द के आने से सावित्री का जप भी करना योग्य है क्योंकि वह स्मृतियों से सिद्ध है इससे थोड़ा भोजन कर हिंसा, राग, द्वेष, मान, अपमान से रहित निर्विवाद होकर पवित्र स्थान में गायत्री को जपै वह मनुष्य सब पापों से मुक्त होता है जो द्विजन्मा अज्ञानता से पापों को करै वह दिनरात जंगल में नियत होकर वस्त्रों समेत तीन दिन रात जल में रहै और व्रती होकर स्त्री शूद्र और पतित से वार्त्तालाप न करे तो पापों से रहित होजाय इस निमित्त दान तप और शुभकर्म्मों से पापों को दूर करके श्रेष्ठफल की वृद्धि करे जैसे पुण्य से पाप को जीते और सदैव उत्तमकर्म्म कर निकृष्ट कर्मों को त्यागे और धन से दान करे तो पाप नष्ट होजाय यह सब प्रायश्चित्त पापों के अनुरूपही मैंने कहे अब महापातकों के दूर करनेवाले प्रायश्चित्त कहता हूं हे राजन्! ज्ञानी पुरुष से किया हुआ पाप बड़ा होता है और अज्ञानी से थोड़ा होता है इसी से प्रायश्चित्त होसक्ता है शास्त्रोक्त विधि से पापका दूर करना सम्भव है परन्तु यह विधि आस्तिक और श्रद्धावान् के निमित्त कही जाती है और

नास्तिक अश्रद्धावान् द्वेषी पाखण्डी पुरुषों में यह विधि कभी नहीं देखने में आती है हे नरोत्तम! ज्ञानीलोगों का धर्म्म और आचरण सर्वोत्तम है वह इस लोक और परलोक में सुखकी इच्छा करनेवालों को करने के योग्य है हे राजन्! तुम इस हेतु से अपने पापों को दूर करके उनको भी नरकोंसे उद्धार करोगे यह सुन युधिष्ठिरने क्षणमात्र ध्यानावस्थित होकर व्यासजीको उत्तर दिया ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

छत्तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! कौन वस्तु भक्ष्य है और कौन अभक्ष्य है और कौन पदार्थ प्रशंसा के योग्य होता है और कौन पात्र और कौन अपात्र है यह भी आप कहिये व्यासजी बोले कि इस स्थान में एक इतिहास कहता हूं जिसमें सिद्धों का और प्रजापति मनु का संवाद है पूर्वकाल में व्रत करनेवाले ऋषियों ने प्रातःकाल के समय सामर्थ्यवान् मनुजी से पूछा कि हे प्रजापतिजी! भोजन किसरीति से करना चाहिये और किसप्रकार से पाक सिद्ध होता है और कौनसा करना योग्य है और कौनसा नहीं करना योग्य है यह सब वर्णन कीजिये यह सुनकर ब्रह्माके पुत्र स्वायम्भुवमनु ने कहा कि जिस देशकी शुद्धि नहीं हुई उसमें भी जप, होम, व्रत और आत्मज्ञान होता है और मनुष्य इन जप आदि कर्मों में प्रवृत्ति करते हैं वह भी गङ्गा आदि तीर्थ के समान पवित्र करनेवाला है इसीप्रकार जप आदि के समान यह पर्वत भी पवित्र करनेवाले हैं उनमें सुवर्णप्राशन और रत्नों से स्नान करना दोष है देवालय में दर्शन करना वा घृत का स्पर्श करना यह बहुत शीघ्र मनुष्यों को पवित्र करते हैं ज्ञानी पुरुष कभी अहंकार न करे और जो कदाचित् करे भी तो दीर्घ आयु की इच्छा रखता हुआ तप्तकृच्छ्रव्रत को करे और विना दीहुई वस्तु का न लेना दान करना वेद पढ़ना जप तप करना हिंसा न करना सत्य बोलना क्रोध न करना यज्ञ करना यह धर्म्म के लक्षण हैं वही धर्म्म देशकाल पाकर अधर्म्म होता है अर्थात् प्राण के जाने में धर्म्म अधर्म्म और अधर्म्म धर्म्म होजाता है इसीकारण से दूसरे के धन को लेना मिथ्या बोलना हिंसा करना यह अवस्था के धर्म्म हैं ज्ञानियों के यह दोनों धर्म्म और अधर्म्म दो २ प्रकार के हैं लोक और वेद की दो विधि हैं एक प्रवृत्ति दूसरी अप्रवृत्ति कर्म्म के फल को तो प्रवृत्ति और देवत्व होने को अप्रवृत्ति जानो इसी प्रकार बुरे कर्म्म का बुरा

और अच्छे का अच्छा फल होता है दैवदैव करके युक्त अर्थात् होनहार शास्त्रोक्त कर्म्म से संयुक्त और शक्ति और ईश्वर इन चारों के सन्बन्धसे जो कर्म्म कियाजाता है उसके करनेसे नीच पुरुषों का भी कर्म्मफल उत्तम होता है पञ्चहत्या के संदेह से अथवा इस लोक में परम्परा से प्रचलित रीति को जानकर किया हुआ सन्ध्यावन्दनादि कर्म्म उत्तम होता है और दैव आदि के सम्बन्ध से कर्म्म का करना प्रायश्चित्त कहाजाता है अर्थात् काम क्रोध मोह से उत्पन्न जो मनकी प्रिय और अप्रिय इच्छा वह भी दूर होजाती हैं और देहों के जो रोगादि दुःख हैं वह औषध मन्त्र प्रायश्चित्त और तीर्थयात्रासे दूर होते हैं राजा को जो दण्डत्याग का पाप होता है वह एक रात्रि के व्रतसे दूर होता है और पुरोहित की पवित्रता तीन दिन के व्रत से होती है जब पुत्रादि के मरने से शोकयुक्त मनुष्य शस्त्रादि के अपघात करने में न मरे तो तीन दिन व्रत करे और जो पुरुष अपनी ज्ञाति वा जन्मभूमि वा अपने कुलके धर्मों को सब प्रकार से छुपाते हैं वह भी अधर्म्मी हैं और धर्म्माधर्म्म का जब सन्देह होजाय तो दश वेद शास्त्र के ज्ञाता और तीन धर्म्म के ज्ञाता मिलकर जो कहें वही धर्म्म है बैल, मृत्तिका, चेंटी और श्लेष्मा तक नामवृक्ष और विषवाली वस्तु यह सब ब्राह्मणों को अभक्ष्य हैं अर्थात् खाने के योग्य नहीं हैं जो ब्राह्मण शक नाम जाति से अलग रहते हैं उनको मछली और चार पैरवाला कछुआ और जो जलमें उत्पन्न होनेवाले मेढक, भासा, हंस, सुपर्ण, चक्रवाक, प्लवा, बक, कौआ, गोह, गिद्ध, बाज, उल्लू और जितने चीड़ फाड़ करनेवाले और पैनी डाढ़वाले पशु पक्षी हैं और जिनके दोनोंओर दांत हैं और चारडाढ़ रखनेवाले सब जीव अभक्ष्यहैं भेड़, बकरी, घोड़ी, गधी, ऊँटनी और सूतकी गौका और मांसी पशुओं का भी दूध ब्राह्मण नहीं पिये और प्रेतान्न, सूतकान्न और जो कुछ कि सूतकसे सम्बन्ध रखनेवाला है और जिसका बछड़ा दशदिनका न हुआ हो उस गौ का दूध अभक्ष्य है राजाका अन्न तेजको घटाता है शूद्र का अन्न ब्रह्मतेज को सुनार का अन्न और पतिपुत्ररहित स्त्री का धन आयु को क्षीण करता है व्याज लेनेवाले का अन्न विष्ठा के समान होता है वेश्या का और स्त्रीजित का अन्न वीर्य के तुल्य है और दीक्षित का, कादर का और यज्ञ बेचनेवाले का, बढ़ई, चमार, धोबी और कुचालिनी स्त्री का अन्न, वैद्य का अन्न, सीमा के रक्षक का अन्न, भोजन के योग्य नहीं है सब ग्रामवासियों ने जिसको यह दोष लगाया हो कि यह दूसरे की स्त्री से कुकर्म्म करता है उसका अन्न, स्त्रियों के अन्न

से अपना जीवन करनेवाले का अन्न और जिस पुरुष के छोटेभाई का विवाह उसके विवाहसे पहिले होगया हो उसका अन्न, राय भाट और जुवां खेलनेवालों का अन्न, वामहस्त से लाया हुआ अन्न, भोजन किया हुआ अन्न, बासी अन्न, मदिरा के समीप रक्खा हुआ अन्न, खाने से बचा हुआ अन्न, लड़के बालों को विना खिलाया अन्न यह सब अन्न भोजन के योग्य नहीं हैं पेठे की तरकारी उसी प्रकार दूध का विकार मट्ठा दही जो बहुत दिनी होजाय तो भोजन के अयोग्य है और मुख्य करके गृहस्थ ब्राह्मणों को यह सब वस्तु खानी और पीनी अयोग्य हैं गृहस्थ को देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर और कुल के देवताओं का पूजन करने के पीछे भोजन करना योग्य है जैसे संन्यासी भिक्षुक होय वैसे अपने घर में निवास करे अर्थात् घर के मनुष्य देवता आदि को देकर जो बचे वह भी संन्यासियों की भिक्षा के समान है ऐसी रीति पर चलनेवाला अपनी धर्म्मपत्नी के साथ विहार करता धर्म्मात्मा है और अपनी नेकनामी के लिये दान करे और भयसे दान न करे और अपने मित्र आदि को दान न करे अर्थात् मित्रों के शिष्टाचार आदि से दान अलग है और जो नाचने गाने का अभ्यास रखते हैं और जो हास्य और कुतूहल में प्रवृत्त हैं और नशा पीते हैं और जो ग्रह भूत आदि से पीड़ित हैं और जो चोर हैं या निन्दित हैं उनको कभी दान न देना चाहिये और जो बातचीत नहीं करसके और कुरूप हैं और जो किसी अङ्ग से रहित दुर्जन वा निकृष्टकुल हैं और व्रतों से संस्कार नहीं कियागया है उनको दान न देवे वेदपाठी के विशेष वेदहीन ब्राह्मण को दान न दे क्योंकि जो अच्छे प्रकार से दान नहीं किया और न अच्छे प्रकारसे लियागया वह दोनों देने और लेनेवाले महाअज्ञान हैं जैसे कि कोई खदिर या पाषाण को लेकर समुद्र को तरता डूबे उसीप्रकार दान देनेवाला और लेनेवाला दोनों डूबते हैं और जैसे गीले इन्धन से अग्नि प्रज्वलित नहीं होती है तप और वेदपाठ और आचारों से खाली दान लेनेवाला ऐसा है जैसे त्रिकुश में जल होना और जैसे लकड़ी का हाथी और चमड़े का हिरन होता है वैसे ही विना पढ़ा ब्राह्मण है वह तीनों नामहीमात्र हैं जैसे कि स्त्रियों में नपुंसक निष्फल है और जैसे विना पक्षके पक्षी हैं उसीप्रकार मन्त्रहीन ब्राह्मण है और जैसे अन्नों से खाली ग्राम होय और पानी के विना कूप होय और जैसे राख में हवन वैसेही मूर्ख ब्राह्मण में दान होता है देवता और पितरों के हव्य और कव्यका नाश करनेवाला और शत्रुरूप होकर

धनका हरनेवाला लोकों को नहीं पासक्ता हे युधिष्ठिर ! जैसा कि वृत्तान्त था सब हमने वर्णन किया परन्तु यह बड़ा इतिहास आपके सुननेके योग्य है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सैंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन्, महामुने, व्यासजी ! मैं आपके मुख से सम्पूर्ण राजधर्म्म और चारों वर्ण के सब धर्म्मों को सुनना चाहता हूं हे ब्राह्मणोत्तम ! जिसप्रकार आपत्तिकाल के नियत समयों में जैसी नीति से चलना योग्य है मैं धर्म्मरूप मार्ग से कैसे पृथ्वी को विजय करूं प्रायश्चित्त व्रत शपथ आदि प्रसङ्ग से भरीहुई यह कथा मेरे चित्त को बड़ा आनन्द देती है धर्म्माचार और राज्य सदैव विरुद्ध हैं इसीप्रकार मुझ चिन्ता करनेवाले का चित्त सदैव मोह को प्राप्त होता है वैशम्पायन बोले कि वेद के महाज्ञाता व्यासजी ने बड़े प्राचीन सर्वज्ञ महामुनि नारदजी को देखकर युधिष्ठिर से कहा हे राजन् ! जो तुम सम्पूर्ण धर्म्म को यथार्थ सुना चाहते हो तो कौरवों के पितामह वृद्ध भीष्मजी के पास जावो वह श्रीगङ्गाजी के पुत्र सब धर्म्मों के जाननेवाले तेरे उन सन्देहों को जोकि धर्म्म की गुप्त वार्त्ता तेरे चित्त में नियत हैं दूर करेगा तीन मार्गों में चलनेवाली दिव्य नदी श्रीगङ्गाजी ने उसको उत्पन्न किया और जिसने सब देवताओं को इन्द्रसमेत साक्षात् होकर देखा और अपनी सेवा से बृहस्पति आदि देवऋषियों को बराबर प्रसन्न करके राजनीति को पढ़ा शुक्रजी जिस शास्त्र को जानते हैं और देवगुरु बृहस्पतिजी जिस शास्त्र के ज्ञाता हैं और जो धर्म्म धर्म्मशास्त्र से संयुक्त है वह सब कौरवों में श्रेष्ठ भीष्मपितामह ने प्राप्त किया उस व्रत करनेवाले भीष्मजी ने अङ्गों सहित वेदोंको भी बड़े महात्मा ज्ञानी च्यवन ऋषि से पढ़ा जिसने पूर्व्वकाल में ब्रह्माजी के बड़े पुत्र ब्रह्मज्ञानियों की गतिके जाननेवाले कुमारजी के पास शिक्षा पाई और मार्कण्डेय जी के मुखसे सम्पूर्ण संन्यासधर्म्म को जाना और उस पुरुषसिंहने परशुराम जी से और इन्द्रदेवता से अस्त्रों को पाया वह मनुष्यदेह से जितेन्द्रिय अपुत्रवान् मृत्यु का वश करनेवाला सत्पुरुष स्वर्ग में प्रसिद्ध है और जिसकी सभा में बड़े २ पवित्र ब्रह्मऋषि सभासद् हुये और ज्ञानयज्ञों में जिसको कोई बात अज्ञात नहीं है वह धर्म्म का ज्ञाता सूक्ष्म धर्म्म अर्थ के तत्त्वों को तुझ से कहेगा उसके पास जा वह धर्म्मज्ञ बहुत शीघ्र प्राणोंको त्यागना चाहता है इसप्रकार की

बातें सुनकर धर्म्मज्ञ महाबाहु युधिष्ठिरने सत्यवतीके पुत्र वेदव्यासजीसे कहा कि मैं लोकोंका अपराधी और सम्पूर्ण संसारका नाशकर्त्ता और जातिवालों के उस नाश को जिससे कि रोम २ कांपउठे करवाके और ऐसे धर्म्म से युद्ध करनेवाले पुरुष को छल से मरवाके मैं किस मुखसे उनके पास जाकर अच्छेप्रकार से प्रश्न करने के योग्य हूं वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर ने व्यासजी से इसप्रकार वचन कहा तब यादवों में श्रेष्ठ महाबाहु श्रीकृष्णजीने चारों वर्ण के उपकारके लिये राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे राजेन्द्र! अब तुम शोक त्यागो जो भगवान् व्यासजी ने कहा है उसको करो और इस प्रार्थना के करनेवाले ब्राह्मण और महातेजस्वी तेरे भाई सम्मुख वर्त्तमान हैं और युद्ध में मरनेसे शेष रहेहुये राजालोग और कौरव जाङ्गल देशवाले सबके सब तुम्हारे पास प्राप्त हुये सो हे समर्थ, युधिष्ठिर! उन महात्मा ब्राह्मणों के और द्रौपदी के प्रियकारी और लोक को हितकारी बातों को बड़े तेजस्वी गुरु व्यासजी की आज्ञा से करो श्रीकृष्णजी के यह वचन सुनकर महाप्राज्ञ साहसी राजा युधिष्ठिर सबके आनन्द के निमित्त उठ खड़ा हुआ और शोक को दूर किया और जैसे नक्षत्रों से चन्द्रमा घिरा होता है उसीप्रकार उन सब देव, ब्राह्मण, भाई, बन्धु आदि से घिरे हुये राजा युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को आगे करके अपने पुर में प्रवेश किया और वहां जाकर बड़ी श्रद्धा भक्ति से देव, ब्राह्मण, अतिथि आदिको दान दक्षिणा देकर पूजन किया तदनन्तर नवीन उज्ज्वल शाल दुशालों से सुशोभित और कल्याणकारी चिह्नवाले श्वेत सोलह बैलों से जुतेहुये मन्त्रों से पूजित रथपर सवार हुये उस समय महाबली भीमसेन ने तो रथकी बागडोर पकड़ी और अर्जुनने प्रकाशित श्वेतछत्र को धारण किया उस समय की शोभा छत्र सहित युधिष्ठिर की ऐसे थी जैसे नक्षत्रों से घिरा हुआ श्वेत बादल हो तब नकुल और सहदेव ने उसके व्यजन और चमर को हाथों में लिया इसप्रकार सुन्दरता से आच्छादित पांचों भाइयों ने रथपर बैठकर सब छोटे बड़ों को दर्शन दिया और शीघ्रगामी श्वेत अश्वों से सुशोभित रथपर सवार होकर युयुत्सु भी राजा युधिष्ठिर के रथके पीछे २ चलदिया और श्रीकृष्णजी भी सात्यकी के साथ उज्ज्वल सुवर्णनिर्मित शैब्य सुग्रीवनाम घोड़ों से जुते हुये रथ में सवार होकर कौरवों के पीछे चले और पाण्डवों केताऊ धृतराष्ट्र भी गान्धारी समेत नरयान में अर्थात् पीनस आदिमें चढ़कर धर्म्मराज के आगे चले और कौरवों की वह सब

स्त्रियां कुन्ती द्रौपदी आदि जिनके आगे विदुरजी थे नानाप्रकार की सवारियों पर चढ़कर चलीं और बहुत से हाथी घोड़े पैदल बनठनकर पीछे से चले इस प्रकार से शोभित होकर सब इष्ट मित्र भाइयों सहित सुन्दर वचन बोलनेवाले वैतालक, सूत, मागधों से कीर्त्तिमान् होते राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर नगर को गये उस महाबाहु युधिष्ठिर की वह सवारी बड़ी भीड़भाड़ के साथ अच्छे २ छोटे बड़े शूरों समेत अद्वितीय दीखती थी राजा की सवारी को नगरवासी मनुष्यों ने आते सुनकर नगर को और राजमार्ग को बुद्धि के अनुसार अच्छेप्रकार सुशोभित किया पृथ्वी को श्वेत माला और पताकाओं से और राजमार्ग को अगर चन्दन अतर आदि से सुगन्धित किया और नगर के द्वारपर नवीन दृढ़ सुवर्ण के कलश जल से पूरित किये और जहां तहां पुरकी कन्याओं ने श्वेत फूल इकट्ठे किये फिर शुभ वचनों से स्तुतिमान् और सुहृज्जनों से संयुक्त पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ने सुन्दर अलंकृत नगर के द्वारमें सुशोभित होकर प्रवेश किया॥ ४९॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३७॥

अरतीसवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि नगर में पाण्डवों के पहुँचतेही हज़ारों पुरवासी राजा के दर्शन करने को आये तब वह राजमार्ग जो अत्यन्त विस्तृत था वह ऐसा शोभायमान हुआ जैसा कि चन्द्रमा के उदय में बढ़ा हुआ महासमुद्र हो और राजमार्ग में जो रत्नजटित गृह थे वह स्त्री पुरुषों के बोझ से कम्पायमान हुये और उन कुलाङ्गनाओं ने बड़ी नम्रता से पांचों भाइयों को शोभित किया और द्रौपदी से कहनेलगीं कि हे कल्याणि! तुम धन्य हो जो पुरुषोत्तम पाण्डवों में वर्त्तमान हो जैसे कि महर्षियोंके पास गौतमी वर्त्तमान हो हे भामिनि! तेरे कर्म्म और आचरण सफल हैं ऐसी २ बातों से अन्तःपुर में आनन्द कुतूहल होनेलगा और युधिष्ठिर भी उस राजमार्ग को योग्यरीति से शोभित करते हुये राजमहल के समीप पहुँचे तदनन्तर सब अधिकारीलोग जहां तहां से पुरवासियों समेत सम्मुख आकर सुन्दर वचनों को कहनेलगे कि हे शत्रुओं के मारनेवाले, राजशिरोमणे! आपने प्रारब्ध से शत्रुओं को विजय करके फिर अपने राज्यको पाया आप हज़ारों वर्षतक हमारे राजा होकर धर्म्म से प्रजा की ऐसी रक्षा करो जैसे कि स्वर्ग की रक्षा इन्द्र करते हैं इसप्रकार मङ्गलशब्दों से पूरित चारोंओरसे ब्राह्मणोंके आशीर्वादोंको लेताहुआ इन्द्रभवनके समान घरमें प्रवेशकरके विजय

के वचनों को सुन रथ से उतर गृह के सब देवताओं को रत्नादि द्रव्य और फलों से पूजन किया तिसपीछे मङ्गलद्रव्य लिये ब्राह्मणों के देखने को फिर स्थानसे निकला तो उन आशीर्वाद देनेवाले ब्राह्मणों के मध्यमें वह राजा ऐसा शोभायमान हुआ जैसे कि नक्षत्रों के मध्य में निर्मल चन्द्रमा विराजमान हो फिर युधिष्ठिर ने धौम्यगुरु और ताऊ धृतराष्ट्र को आगे करके विधिपूर्वक उन ब्राह्मणों का पूजन किया और अपने नौकरों को मोदक रत्न सुवर्ण गौ वस्त्र आदि अनेक वाञ्छित द्रव्यों से प्रसन्न किया तदनन्तर मित्रों का और श्रवणों का आनन्ददायी पुण्याहवाचनशब्द होनेलगा और आनन्ददायक विजय के द्योतक शङ्ख और भेरीशब्द हुये तब ब्राह्मणों के शान्त होने पर कपट से ब्राह्मणरूप बनाय चार्वाक राक्षस जो दुर्योधनका मित्र संन्यासीरूप से ढका हुआ शिखाधारी त्रिदण्डी रुद्राक्षधारण किये निर्लज्ज आशीर्वाद देनेवाले हज़ारों ब्राह्मणोंमें मिला हुआ आया वह महादुष्ट महात्मा पाण्डवों के दोषों के कहने की इच्छा से उन सब ब्राह्मणों से विना पूछे राजा से बोला कि मैं इन सबकी ओर से कहता हूं कि हे राजन्! तुम जातिवालों के मारनेवाले निन्दित होकर धिक्कार के योग्य हो हे कुन्तीपुत्र! तू जातिवालों और गुरुओं को मारकर अपने को क्या उत्तम जानता है तुझ धिक्कारवान् का मरनाही योग्य है उस दुष्ट राक्षस के यह वचन सुनकर ब्राह्मण उसके वचनों को तिरस्कार कर महाक्रोधित हुये और राजा भी उन ब्राह्मणों समेत व्याकुल होकर बोला कि आपलोग कृपा करके मुझ नम्रीभूत प्रार्थना करनेवाले के ऊपर प्रसन्न हो क्योंकि मेरे भाई बहुत काल से दुःखी हैं इससे मुझ राज्य चाहनेवाले को धिक्कार करना उचित नहीं है तदनन्तर वह सब ब्राह्मण बोले कि हे राजन्! यह हमलोगों का वचन नहीं है आप का धन निर्विघ्न हो फिर उन महात्मा वेदज्ञ ज्ञानी ब्राह्मणों ने अपनी दिव्य दृष्टि से उस को जानलिया और कहा कि यह दुर्योधन का मित्र संन्यास धारण किये चार्वाक राक्षस उसका प्रिय करना चाहताहै हे राजन्! हम नहीं कहते हैं तेरा ऐश्वर्य अचल हो ऐसा राजा को कहकर क्रोधित मूर्च्छावान् महातेजस्वी ब्राह्मणों ने हुंकार करके उस पापी राक्षस को मारडाला और राजा को आशीर्वाद दे वह सब ब्राह्मण अपने २ स्थानों को चले गये और राजा ने सुहृज्जनों समेत आनन्द को पाया ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवां अध्याय॥

वैशम्पायनजी बोले कि इतनी बातों के उपरान्त देवकीनन्दन सर्वदर्शी जनार्दन श्रीकृष्णजी ने सब भाइयों सहित विराजमान राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे तात! इस लोक में ब्राह्मणलोग हमलोगोंको सदैव पूजने योग्य हैं क्योंकि यह पृथ्वी पर घूमनेवाले देवता हैं इनके वचनों में विष और अमृत दोनों हैं हे राजन्! पहिले सत्ययुग में चार्वाक नाम राक्षस ने बहुत समय तक बदरिकाश्रम में तपस्या की और यहांतक हुआ कि वारंवार ब्रह्माजी से वर मांगने को लुभाया गया तो उसने यही मांगा कि मुझे किसीप्रकार के जीवधारी से भय न हो तब ब्रह्माजी ने अमान ब्राह्मण के सिवाय किसी जीवधारी से भय न होगा यह वरदान दिया फिर बड़े पराक्रमी शीघ्रकर्म्मी वर पानेवाले पापी राक्षस ने देवताओं को दुःख दिया और उसके पराक्रम से हारेहुये देवताओं ने उसके मारने की प्रार्थना ब्रह्माजीसे करी तब ब्रह्माजीने कहा कि मैंने वही युक्ति करी है जिससे कि उसकी मृत्यु शीघ्र होगी लोक के मनुष्यों में राजा दुर्योधन से इसकी मित्रता होगी उसके स्नेहमें बँधा हुआ यह राक्षस ब्राह्मणों का अपमान करेगा वहां पर अपमान से तिरस्कृत क्रोधाग्नि वचनरूप पराक्रम रखनेवाले ब्राह्मण इस पापी को भस्म करेंगे तब इसका नाश होगा सो हे राजन्! वह चार्वाकनाम राक्षस ब्रह्मदण्ड से मृतक सोता है तुम किसी बात का शोच मत करो और जो आपके जातिवाले क्षत्रिय मारेगये वह धर्म्म से मारेगये स्वर्ग को गये इससे हे विजयिन्! तुम अपने कर्म्म में सावधान होकर ग्लानि त्यागकर शत्रुओं को मारो और प्रजा की रक्षापूर्वक ब्राह्मणों का पूजन करो॥ १३॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३९॥

चालीसवां अध्याय॥

वैशम्पायनजी बोले कि ऐसे श्रीकृष्णजी के समझाने से राजा युधिष्ठिर प्रसन्नचित्त हो शोकरूपी दुःख को त्याग पूर्वाभिमुख हो सुवर्णनिर्मित आसन पर विराजमान हुये और उसी आसन के समान आसनपर महातेजस्वी प्रतापी श्रीवासुदेव और सात्यकी भी बैठे और महात्मा भीमसेन और अर्जुन राजा को मध्य में करके शुद्ध रत्नजटित आसनोंपर बैठगये और कुन्ती माता भी नकुल और सहदेव के साथ सुवर्ण से चिह्नित महादीप्यमान हाथीदांत के सिंहासन पर बैठगईं और सुधर्मा, विदुर, धौम्य, धृतराष्ट्र यह सब पृथक् २ अग्निवर्ण

आसनों पर बैठगये जिधर राजा धृतराष्ट्र बैठे थे उधर युयुत्सु, संजय और यशस्विनी गान्धारी आदि सब बैठगये ऐसी सभा में बैठेहुये धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने अगस्त आदि श्वेतपुष्प पृथ्वी सुवर्ण रजत मणि आदि से चित्र विचित्र सर्वतोभद्र से चिह्नित देवताओं के आसनों को स्पर्श किया उसके पीछे सब नौकर चाकर आदि अधिकारियों ने पुरोहितजी को साथ ले बहुत सी मङ्गल वस्तुओं समेत राजा धर्म्मराज को देखा पृथ्वी सुवर्ण और नानाप्रकार के रत और सब सामानों से पूर्ण अभिषेक के पात्र और मृत्तिका सुवर्ण चांदी तांबे के जलपूरित कलश, फूल, फल, अक्षत यह सब ब्राह्मणों के हाथों में लिये अग्नि, गोरस, शमी, पीपल, ढाक आदिकी लकड़ी, शहद, घृत, उदुम्बर, स्तवा और इसीप्रकार सुवर्णवेष्टित शङ्ख आदि सब सामान लाये और श्रीकृष्ण जी की आज्ञा पाय धौम्य पुरोहित ने ईशान दिशा में लक्षण समेत वेदी रचकर व्याघ्रचर्म्म से संयुक्त श्वेतरूप अग्निसमान देदीप्यमान सर्वतोभद्र नाम आसन पर कृष्णा द्रौपदी समेत महात्मा युधिष्ठिर को बैठाकर मन्त्र की विधि से सम्मुख स्थापित अग्नि में हवन किया फिर श्रीकृष्णजी ने उठकर पूजित शङ्ख को हाथ में लेके कुन्तीपुत्र पृथ्वी के स्वामी युधिष्ठिर को अभिषेक किया इसी प्रकार राजऋषि धृतराष्ट्र और सब अधिकारियों ने श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्यशङ्ख से अभिषेक किये हुये भाइयों समेत राजा युधिष्ठिर का दर्शन किया तदनन्तर आनक दुन्दुभी नाम पणव को बजाया तब युधिष्ठिर ने भी इन सब पूजनों को स्वीकार करके और विधिपूर्वक सबका पूजन किया फिर स्वस्तिवाचन करनेवाले वेदपाठी जो कि क्षमा शील आदि गुणों से सम्पन्न थे उनको हज़ार निष्क स्वर्णमयी दक्षिणा देकर प्रसन्न किया फिर उन प्रसन्न हुये ब्राह्मणों ने स्वस्तिपूर्व्वक जयशब्द का उच्चारण किया और हंसों के समान शब्दों से युधिष्ठिर की प्रशंसा को किया कि हे पाण्डव, युधिष्ठिर ! आपने अपने प्रारब्ध और पराक्रम से अपने धर्म्म राज्य को पाया और प्रारब्धही से अर्जुन भीमसेन नकुल सहदेव समेत आप कुशल हैं अब सब बातों से निवृत्त होकर जो आगे करने के योग्य कर्म्म हैं उनको शीघ्र करो यह सुनकर धर्म्मराज सब सुहृदों समेत प्रसन्न हुये और राज्यासन को सुशोभित किया ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

* * *

इकतालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि अधिकारी आदि के इन वचनों को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने देश काल के सदृश यह उत्तर दिया कि निश्चय पाण्डव धन्य हैं जिनकी सच्ची या झूंठी प्रशंसा को बड़े २ महात्मा ब्राह्मणों ने किया निश्चय है कि हम आपलोगों की कृपा के योग्य हैं जो ईर्षारहित होकर आप इस प्रकार हमलोगों के गुणों की प्रशंसा करते हो मेरा पिता महाराज धृतराष्ट्र उत्तम है मेरे प्रियवादी तुमलोगों को इसकी आज्ञा और अभीष्ट बातों में प्रवृत्त होना चाहिये मैं जातिका नाश करके इसी निमित्त जीता हूं इसकी सेवा मुझ को सावधानी से सदैव करनी योग्य है जो मैं आपलोगों की और सुहृज्जनों की कृपा के योग्य हूं तो तुम पहिले के समान धृतराष्ट्र की सेवा करने में प्रवृत्त होने को योग्य हो मेरे साथीलोगों का और जगत् का यह स्वामी है और सम्पूर्ण पृथ्वी और हम सब पाण्डव इसी के हैं आपलोगों को यह मेरा वचन चित्तमें दृढ़ रखना चाहिये यह कह सबको आज्ञा दी कि अपनी इच्छा के अनुसार जावो इस प्रकार से सब पुरवासियों को बिदा करके युधिष्ठिर ने भीमसेन अपने भाई को युवराजपदवीपर नियत किया और सर्वगुण सम्पन्न महाबुद्धिमान् संजय को सब कामों के परिणाम आदि के जानने और आय व्यय अर्थात् आमद खर्च के विचारने में नियत किया और महाधर्म्मज्ञ बुद्धिमान् विदुरजी को मन्त्र अर्थात् सलाह के और छह गुणों के विचारांश में नियत किया और सेना की संख्या और मासिकों के विभाग करने और प्रतिदिन के हिसाब आदि देखने में नकुल को स्थापित किया और शत्रुओं की सेना के रोकने और दण्ड देने में अर्जुन को नियत किया पुरोहितों में श्रेष्ठ धौम्य को ब्राह्मण और देवताओं के कामों में और अन्यकार्यों में भी प्रवृत्त किया और अपने सम्मुख रहने को जिससे कि सदैव राजा की रक्षा रहै सहदेव को नियत किया तात्पर्य यह है कि जिस २ को जिस २ कार्य्य में कुशल समझा उस २ को उसी अधिकार पर नियत किया फिर धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने महाबुद्धिमान् विदुर, संजय, युयुत्सु से कहा कि आपलोग सावधानी से युक्तिबल और पराक्रम के द्वारा इस मेरे पिता राजा धृतराष्ट्र का सब कार्य ठीक २ करने को योग्य हो और पुरवासी और देशवासियों के जो कार्य्य हैं उन सबको राजा से पूछकर विभागादि कार्य करो ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

बयालीसवां अध्याय ॥

इन सब प्रबन्धों के पीछे राजा युधिष्ठिर ने उन २ जातिवालों के श्राद्धोंको पृथक् २ करवाया जो कि युद्ध में मारेगये थे और पुत्रों के श्राद्धों को राजा धृतराष्ट्र ने अपने हाथ से करके सब कामना आदि गुणसंयुक्त धन और गोदान भी किये और बड़े मोल के रत्न उन महात्मा द्रोणाचार्य्य और कर्ण और धृष्टद्युम्न अभिमन्यु घटोत्कच राक्षस और सहायक विराट सुहृज्जन द्रुपद और द्रौपदी के पुत्रों के निमित्त ब्राह्मणों को दिये और हज़ारों ब्राह्मणों में प्रत्येक ब्राह्मण को पृथक् २ समझाते हुये धन, रत्न, गौ और वस्त्रों से अच्छेप्रकार तृप्त किया और जो ऐसे राजालोग मारेगये जिन्हों के कोई सुहृज्जन नहीं हैं उनके नाम से संकल्प करके क्रियाकर्म्म किया और सब सुहृज्जनों के नामसे पाण्डवों ने धर्म्मशाला, बावड़ी, तालाब और अनेक प्रकार धर्म्मालय बनवाये और उन सबके ऋण से उद्धार लोकनिन्दा से रहित होकर धर्म्मसे प्रजापालन आदि कर्त्ता कर्म्मों से निवृत्त हुआ और पहिले के ही समान धृतराष्ट्र गान्धारी विदुर आदि सब कौरवों को और मान सत्कार के योग्य प्राचीन अधिकारियों को भी अच्छेप्रकार से प्रसन्न किया और जो स्त्रियां मृतक होगईं अथवा जिनके पति नहीं रहे उनके निमित्त भी बहुत प्रकार से दान पोषण आदि कर्म्म किये अर्थात् उनके निमित्त घर, वस्त्र और भोजनकी वस्तु इत्यादिसे अच्छेप्रकार पूजन किया और दुःखी अंधे व गरीब पुरुषों पर कृपा करी इन बातों से राजा युधिष्ठिर सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय कर शत्रुओं से अनृण हो निश्शत्रु हो सुखपूर्व्वक विहार करने लगा ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि राजधर्मे द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इसप्रकार से अभिषेकादि से शुद्ध हो बुद्धिमान् युधिष्ठिरने हाथजोड़ नम्र हो श्रीकृष्णजीसे यह कहा कि हे यादवोत्तम, श्रीकृष्णजी ! आपकी कृपा से नीति पराक्रम बुद्धि के योग से मैंने बाप दादे के इस राज्य को फिर पाया इससे हे कमललोचन ! शत्रुओं के पराजय करनेवाले आपके चरणों में वारंवार नमस्कार करता हूं आप सम्पूर्ण संसार में अकेले निवास करनेवाले हैं और उपासना करनेवालों की गति भी आपही को कहते हैं जितेन्द्रिय ब्राह्मण बहुत प्रकार के नामों से आप की स्तुति करते हैं हे विश्वकर्त्ता, विश्वात्मन् ! तुमको नमस्कार है हे सर्व्वव्यापिन्, सर्वविजयिन्, हरि, श्रीकृष्ण,

वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है और आपही अकेले प्राचीन पुरुष ने सात प्रकार से अदिति के पुत्र होकर परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बलदेव आदि के रूप को धारण किया तुम को तीनों यज्ञों में प्रकट होनेवाला और धर्म्म ज्ञान वैराग्य का स्वामी या ऐश्वर्य लक्ष्मी यश आदि का स्वामी भी कहते हैं तुम पवित्र कीर्तिवाली इन्द्रियों के और यज्ञों के ईश्वर होकर ब्रह्माजी के भी गुरु कहे जाते हो और तुम्हीं पिनाकधारी त्रिनेत्र शिवजी हो तुम्हीं समर्थ और दामोदर हो और तुम्हीं अग्नि सूर्य्य वराह धर्म्म गरुड़ध्वज शत्रुसेना पराजय करनेवाले सबदेहों में प्रवेश होनेवाले बड़े पराक्रमी पुरुष हो तुम्हीं उत्तम तुम्हीं सेनापति सत्य अन्नदाता और देवताओं के सेनापति स्वामिकार्त्तिक भी तुम्हीं हो तुम्हीं अजेय और शत्रुओं के विजयकर्त्ता हो और तुम्हीं ब्राह्मण आदि के रूप अनुलोम विलोम से उत्पन्न होनेवाले जीवों के रूप श्रेष्ठ हो और तुम्हीं ऊर्ध्ववर्त्मा अग्नि हो और तुम्हीं इन्द्रके अभिमानध्वंसक शिव विष्णुरूप हो तुम्हीं सगुण निर्गुण हो और क्रम से पूर्व्व उत्तर ईशान आदि दिशारूप हो त्रिधामा और स्वर्ग से अवतार लेनेवाले हो तुम्हीं संसार के राजकुल हो और विराट्‌रूप हो तुम्हीं देवेन्द्र हो तुम्हीं संसार के कारण हो तुम्हीं सत्‌रूप देहरहित श्रीकृष्ण हो तुम्हीं अश्विनीकुमार और उनके पिता सूर्य और कपिल, वामन, यज्ञ, ध्रुव, गरुड़, यज्ञसेन हो तुम्हीं शिखण्डी, नहुष, महीश्वर और तुम्हीं पुनर्वसु नाम नक्षत्र हो और तुम्हीं पिङ्गलवर्ण रुक्म यज्ञ सुबभ्रु और दुन्दुभी हो तुम्हीं कालचक्ररूप हो श्रीकृष्ण पद्म पुष्कर पुष्पधारी हो तुम्हीं समर्थ और देवतारूप समुद्र ब्रह्मा पवित्र धाम और धाम के ज्ञाता हो तुमको ही हिरण्यगर्भ श्रद्धा स्वधा केशव कहते हैं तुम्हीं इस संसार के उत्पत्तिस्थान और प्रलयस्थान हो और तुम्हीं आदि में इस विश्व को उत्पन्न करते हो हे संसार के उत्पत्तिस्थानरूप! यह संसार आपके आधीन है हे शार्ङ्गधन्वा, चक्र हाथ में रखनेवाले! सभा में जब युधिष्ठिर ने बड़ी प्रीतिपूर्व्वक श्रीकृष्णजी की प्रशंसासहित स्तुति की तब यादवेन्द्र कमललोचन श्रीकृष्णजी ने उस भरतवंशी युधिष्ठिर को उत्तम २ वचनों से प्रसन्न किया॥ १७॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि राजधर्मे त्रयश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चवालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि यह सब स्तुति श्रीकृष्णजी की करके राजा युधिष्ठिर ने अधिकारी आदि सेवकों को बिदा किया और वह सब राजा की आज्ञा पाकर

अपने २ स्थानों में गये तदनन्तर भयंकरपराक्रमी भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव चारों अपने भाइयों से यह कहा कि तुमलोग महाभारी युद्ध में शत्रुओं के नानाप्रकार के शस्त्रों से विदीर्ण और घायलदेह क्रोध और शोक से दुःखी हो अत्यन्त थकगये हो और हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ! आपलोगों ने मेरे हेतु से वन में दुःख के निवासों को ऐसा पाया जैसे कि पापी पुरुष पावें इससे सुखपूर्वक इस विजय के आनन्द को भोगो और सावधान होकर विश्राम के पीछे कल फिर तुम लोगों से मिलूंगा इसके पीछे महाबाहु भीमसेन ने धृतराष्ट्र से स्वीकार कियेहुये और भाई के दियेहुये दुर्योधन के इस महल को जोकि नाना आनन्द के स्थानों से व्याप्त अनेक रत्नोंसे जटित दास दासियों से पूर्ण था ऐसे प्राप्त किया जैसे कि इन्द्र ने महेन्द्र पर्वत को पाया और उसीप्रकार दुश्शासन के घर को जोकि बड़े २ महलों की पंक्ति से घिरा हुआ सुवर्ण की बन्दनवारों से शोभित दास दासियों से व्याप्त बहुत धन धान्य से पूर्ण था उसको अर्जुन ने राजा की आज्ञा से पाया और वन में महापीड़ा पानेवाले नकुल को युधिष्ठिर ने दुर्मर्षण का वह महल दिया जोकि दुश्शासन के महल से उत्तम वीरभवन के रूपमणि और सुवर्ण से खचित था और दुर्मुख का श्रेष्ठ महल जोकि सुवर्ण से अलंकृत शोभायमान था और सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियों से देदीप्यमान था वह महल सहदेव को दिया और सहदेव उसे पाकर ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे कि कैलास को पाकर कुबेर प्रसन्न हुआ और युयुत्सु, विदुर, संजय, सुधर्मा, धौम्य यह सब अपने २ महलों को गये और पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी सात्यकी के साथ अर्जुन के महल में जाकर ऐसे विराजमान हुये जैसे कि पर्वत की गुफा में व्याघ्र बैठे फिर अपने २ स्थानों में अच्छे २ पदार्थ भोजन कर सुखपूर्वक निद्रा लेकर आनन्द के सहित राजा युधिष्ठिर के पास सब मिलकर प्राप्त हुये ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवां अध्याय ॥

जनमेजय बोले कि हे वैशम्पायनजी! धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर ने राज्य को पाकर जो२ कर्म्म किये वह सब आप मुझ से वर्णन कीजिये हे जितेन्द्रिय, महर्षे! तीनों लोकों के नाथ महायशस्वी पराक्रमी श्रीकृष्णजी ने जो २ कर्म्म किये वह भी कहने के योग्य हो वैशम्पायन बोले हे राजन्, जनमेजय! मेरे कहेहुये सत्य २ वचनों को सुनो कि जो पाण्डवों ने वासुदेवजी को अग्रगामी करके जो २

कर्म्म किये वह एकाग्र हो सुनों कि युधिष्ठिर ने राज्य पाकर चारों वर्णों को यथायोग्य अपने २ स्थानों पर नियत किया प्रथम तो पाण्डवों ने स्नातक ब्राह्मणों को एक२ सहस्र निष्क दान दिया दास और पोषणके योग्य, रक्षित और अभ्यागतों को भी सब कामनाओं से पूर्ण किया और इच्छा करनेवाले दुखियों को भी आनन्द देकर उसने धौम्य पुरोहित को हज़ारों गौ और सुवर्णरचित स्थान रत्न आदि धन और अनेक प्रकार के वस्त्रादिक दिये और कृपाचार्य्यजी के निमित्त गुरुवृत्ति के समान सेवा की अर्थात् गुरु के समान पूजन किया और विदुरजी की भी पूजा करी और सब रक्षितलोगों को नानाप्रकार सुस्वादु भोजन और वस्त्र धन आदि से संतुष्ट किया और प्राप्त धन से राजा ने धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु की भी पूजा करी इन सब बातों को करके उस राज्य को धृतराष्ट्र विदुर और गान्धारी के स्वाधीन करके सुखपूर्वक रहनेलगा इसप्रकार सब नगर को प्रसन्न करके राजा हाथ जोड़े हुये वासुदेवजी के पास गये वहां श्रीकृष्णजी को श्याम सजल मेघके समान वर्ण शोभायमान मणि और सुवर्ण से भूषित पलंगपर बैठा हुआ देखा उस समय दिव्य अग्नि के समान प्रज्वलित पीताम्बर धारण किये दिव्य भूषणों से अलंकृत सुवर्णमणियुक्त कौस्तुभमणि को छाती में धारण किये ऐसे शोभायमान थे जैसे सूर्य्योदय में उदयाचल की शोभा होती है ऐसे अलौकिक शोभायमान श्रीकृष्णजी को देखकर बड़ी नम्रता और मृदुहास्यपूर्वक मीठे २ वचनों से राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे महाबुद्धिमन्, प्रतापीपुरुष ! आपकी रात्रि क्या सुखपूर्वक व्यतीत हुई हे अविनाशिन् ! जैसे आपके सब विचार शुद्ध हैं इसीप्रकार दैवी बुद्धि भी आप में है हे भगवन्, त्रिलोकीनाथ ! हमने राज्य आपकी कृपा से पाया और पृथ्वी हमारे आधीन हुई और हमारी उत्तम विजय जिसको हमने प्राप्त की वह नाशवान् नहीं है श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के इस वचन को सुनकर कुछ उत्तर नहीं दिया और ध्यानही में बैठे रहे ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

छियालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे महापराक्रमिन् ! बड़ा आश्चर्य्य है कि तुम भी ध्यान करते हो हे त्रिलोकी के उत्पन्न करनेवाले ! क्या इस त्रिलोकी में कुशल है क्योंकि आप सरीखे पुरुष देवों के देव होके तीनों अवस्थाओं से हटकर जो

चौथी अवस्था में प्राप्त हुये इससे मेरे चित्त को आश्चर्य्य हुआ प्राणायामादिकों का करनेवाला और देह में फिरनेवाला आपका प्राण निश्चल हुआ और शुद्ध ज्ञान आपके चित्त में नियत हुआ हे गोविन्द ! आपकी वाणी और मन ने बुद्धि में प्रवेश किया और सब गुण आप सरीखे क्षेत्रज्ञ में प्राप्त हुये आपके रोमाञ्च भी नहीं हिलते तुम्हारी बुद्धि और मन स्थिर हैं इससे हे माधव ! तुम काष्ठ वा पाषाण के समान निश्चल हो जैसे वायु से रहित स्थान में दीपक निश्चल और प्रकाशित रहता है उसीप्रकार आप भी निश्चेष्ट निश्चल वर्त्तमान हो जो आप इसको गुप्त नहीं रखना चाहते हैं और मुझे समझने का अधिकारी समझते हैं तो ऐसी दशा में मुझ सन्देही के सन्देह को निवृत्त करो हे पुरुषोत्तम ! आपही कर्त्ता अकर्त्ता माया के प्रवर्त्तक अविनाशी आदि अन्त रहित सबके आदि होकर तुम इसकारण मुझ नीचे शिरवाले से कहने के योग्य हो तदनन्तर इन्द्रियों को यथास्थानों में नियत करके मन्द मुसक्यान से श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर से बोले कि शरशय्यापर वर्त्तमान अग्नि के समान शान्त होनेवाला पुरुषोत्तम भीष्म मुझको ध्यान करता है इससे मेरा चित्त उसमें गया वज्र के समान जिसकी प्रत्यञ्चा के शब्द को देवराज इन्द्र भी सुनने को असमर्थ होता है उसको मैं प्राप्त हुआ हूं जिसने बड़े पराक्रम से सम्पूर्ण राजाओं की विजय करके वह तीनों कन्या विवाहीं और जो तेईस दिनतक परशुरामजी से युद्ध करता हुआ रोमाञ्च से भी खण्डित न हुआ वह सब इन्द्रियों को इकट्ठा करके और चित्त को ज्ञान के द्वारा आधीन करके मेरी शरण में प्राप्त हुआ और श्रीगङ्गाजी ने जिसको गर्भ में धारण किया और वशिष्ठजी का शिष्य होकर बड़ा तेजस्वी बुद्धिमान् दिव्यअस्त्रों का और अङ्गों के साथ चारों वेदों का जाननेवाला है और हे पाण्डव ! जमदग्निजी के पुत्र परशुरामजी के शिष्य सब विद्याओं के मूलस्थान उस भीष्म को मैं चित्त से प्राप्त हुआ हूं सो हे युधिष्ठिर ! वह तीनों काल का जाननेवाला धर्म्मज्ञों में उत्तम है उस पुरुषोत्तम के स्वर्गवासी होजाने में पृथ्वी ऐसी होजायगी जैसे चन्द्रमा के विना रात्रि होती है सो हे युधिष्ठिर ! तुम गङ्गाजी के पुत्र महापराक्रमी तेजस्वी सत्यवक्ता भीष्मजी के पास बैठकर उन सब प्रश्नों को करो जो तेरे चित्त में वर्त्तमान हैं और अर्थ धर्म्म काम मोक्ष और चारों विद्या चारों आश्रमों के धर्म्म और सब राजधर्म्मों को उससे पूछो कौरवों के धुरन्धर उस भीष्मपितामह के अस्त होने पर सब धर्म्म

भी अस्तंगत होजायँगे इससे मैं तुमको सलाह करता हूं अश्रुपात डालनेवाले युधिष्ठिर ने वासुदेवजी के उन उत्तम वचनों को सुनकर उत्तर दिया कि हे मथुरावासिन् ! वह ऐसे ही हैं मैं निस्सन्देह जानता हूं क्योंकि मैंने बड़े२ महात्मा ब्राह्मणों के मुखसे भीष्मजी का प्रभाव और माहात्म्य अच्छेप्रकार से सुना है हे यादवेन्द्र ! जैसा आप कहते हैं वह ठीकही है हे माधव ! जो आपकी मेरे ऊपर कृपा है ऐसी दशा में हम आपको मुख्य करके भीष्मजी के पास जावेंगे और सूर्यभगवान् के लौटनेपर वह परमधाम को जायँगे इससे हे महाबाहो ! वह कौरवोत्तम भीष्म आपके दर्शन पाने के योग्य हैं तुमहीं ब्रह्मरूप देवताओं के देवता सगुणनिर्गुणरूपमय होकर भीष्मजी को दर्शन दो यह वचन युधिष्ठिर के सुनकर श्रीमधुसूदन ने सात्यकी से कहा कि मेरा रथ जोड़ो सात्यकी ने शीघ्रही दारुक सारथी को हुक्म दिया कि बहुत जल्द श्रीकृष्णजी का रथ जोतकर लावो उसने आज्ञा पातेही कृष्ण के स्वर्णमयी रथ को जोतकर तैयार किया और हाथ जोड़कर श्रीकृष्णजी से निवेदन किया ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवां अध्याय ॥

जनमेजय ने कहा कि हे वैशम्पायनजी ! शरशय्यापर सोनेवाले भरतवंशियों के पितामह भीष्मजी ने किसप्रकार से कौन से योग को धारण करके देह का त्याग किया वैशम्पायन बोले कि हे महाराज ! आप सावधान हो पवित्रचित्त और नियमको दृढ़ करके महात्मा भीष्मजी के देहत्यागके वर्णन को सुनो उत्तरायण सूर्य्य होने पर भीष्मजी ने समाधि में स्थित होकर जीवात्माको परमात्मा में लगाया और सैकड़ों बाणों से छिदेहुये सूर्य्य के समान तेजस्वी भीष्मजी बड़े२ महात्मा ब्राह्मणों से घिरेहुए महाशोभायमान हुए उनके चारों ओर वेदव्यास, नारद, देवस्थान, वात्स्यायन, अस्मक, सुमन्त, जैमिनि, पैल, शाण्डिल्य, देवल, मैत्रेय, असित, वशिष्ठ, कौशिक, हारीत, लोमश, अत्रि, बृहस्पति, शुक्र, च्यवन, सनत्कुमार, कपिल, बाल्मीकि, तुम्बुरु, कुरु, मौद्गल्य, परशुराम, सुनि, पिप्पल, पुलह, संवर्त्त, कच, कश्यप, पुलस्ति, चक्रत, दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, गौतम, गालव, विभाण्डव, माण्डव, धौम्य, कृष्णानुभौतिक, उलूक, मार्कण्डेय, भास्कर, पूरण, कृष्णसूतइत्यादि महात्मा अपने २ अधिकारयुक्त सुन्दर आसनोंपर विराजमान थे ऐसी दशा में वर्त्तमान शर:

शय्यापर शोभित भीष्मपितामह ने श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को स्मरण किया तदनन्तर बड़े महात्मा धर्म्मज्ञ भीष्मजी ने उस योगेश्वर कमलनाभ सर्वव्यापी जगत् के स्वामी श्रीवासुदेव श्रीकृष्णजी की स्तुति करी और कहा कि मैं श्रीकृष्णजी के आराधन करने की इच्छा करके जिस वचन को कहना चाहता हूं उस वचन से वह आदिपुरुष मेरे ऊपर प्रसन्न हो अब आशिष कहते हैं कि मैं सर्वात्मा से आत्मा को त्याग करके उन दोषों से रहित पवित्रमार्गी सबसे उत्तम जो तत्त्वमसि महावाक्यहै उसके तत्पदका अर्थरूप हिरण्यगर्भ प्रजा के स्वामी ईश्वर को प्राप्त होता हूं देवता और ऋषियों ने भी उस अनादि परब्रह्मको न जाना यह धाता नारायण भगवान् हरि अकेला आपको जानता है सिद्ध ऋषि मुनियों के समूह और देवता, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग, दैत्य, दानव आदि जिसको नहीं जानते हैं कि यह ईश्वर कौन है और कहां से कब आया है जिस जीवों के ईश्वर में तीनों गुण से उत्पन्न होनेवाले संसारी जीव ऐसे ठहरते और प्रवेश करते हैं जैसे कि सूत्र में मणियों के समूह नियत होते हैं ऐसे परमात्मा हरि को सहस्रशिर और सहस्रचरण सहस्रभुजा मुकुटमुखवाला नारायण विश्वपरायण सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थूल से स्थूल गुरु से गुरु श्रेष्ठों से श्रेष्ठतम कहा और जिसको वेद और उपनिषद् आदि साममन्त्रों में ध्यान करते हैं और वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चारों नामों से और अन्य गुप्त उत्तम नामों से ब्रह्म जीव मन अहंकार रखनेवाली बुद्धिसे प्रकट होनेवाले जिन भक्तों के स्वामी को पूजते हैं वह तप जो उसकी प्रीति के निमित्त कियागया और जिसके द्वारा वह हर समय चित्तमें नियत होता है और सबका आत्मा और पैदा करनेवाला और जाननेवाला सर्वरूप है मैं उसको प्राप्त होता हूं और जिसको श्रीदेवकीजीने वेद ब्राह्मण और यज्ञोंकी रक्षाके निमित्त वसुदेवजी के द्वारा उत्पन्न किया जैसे कि अरणी काष्ठ अग्नि को उत्पन्न करता है जो द्वैतभाव को त्यागकर अनिच्छायुक्त पुरुष मोक्षके लिये उपाधि और पापोंसे जुदा सबके ईश्वर गोविन्द जी को सूक्ष्मबुद्धि से हृदयके आकाश में देखताहै और जो प्राण इन्द्रियों को उल्लंघन कर कर्म्म करनेवाला सूर्यादिसे भी अधिक प्रकाशवान् मन, बुद्धि, चित्त से परे है उस संसार के स्वामी को प्राप्त होता हूं और पुराणों में पुरुष और यज्ञादिकों में जिसको ब्रह्म कहा और संसारके नाशमें सङ्कर्षण कहा उस उपासना के योग्य की उपासना करते हैं द्वैत से भिन्न क्रियावान् भक्त पुरुष जिस एक और

अनेकरूप से प्रकट होनेवाले की पूजा करते हैं उसी को जगत् का आश्रयरूप भण्डार कहा जिसमें कि सब संसार वर्त्तमानहै और जिसमें सब जीव ऐसे चेष्टा करते हैं जैसे कि जल में पक्षी क्रीड़ा करें जिसके आदि अन्तको देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प आदि कोई नहीं जान सक्ता है और सब जितेन्द्रिय लोग उस अविनाशी और महादुःख की औषध को पूजते हैं और जो आदि अन्त रहित सनातन आत्मयोनि अदृष्ट जाना नहीं जाता हरि नारायण प्रभु और जिसको सब स्थावर जङ्गम जीवों का स्वामी अविनाशी परमपदरूप कहते हैं और जिस दैत्यों के नाश करनेवाले सुवर्णवर्ण एक गर्भ को अदिति ने बारह प्रकार से उत्पन्न किया उस सूर्य्यरूप आत्मा को नमस्कार है और जो शुक्लपक्ष में देवताओं को और कृष्णपक्ष में पितरों को अमृत से तृप्त करता है वह ब्राह्मणों का राजा है और अमावस के चन्द्रमारूप को नमस्कार है जो बड़े अन्धकार के अन्त में जिस महातेजस्वी पुरुष को जानके मृत्यु को उल्लङ्घन करता है उस उपासनायोग्य आत्माको नमस्कार और जिस ब्रह्मको बड़ी २ ऋचाओं से अग्निस्थापनादि बड़े २ यज्ञों में ब्राह्मणों के समूह गाते हैं उस वेद आत्मा को नमस्कार और ऋग्, यजु, साम यह तीनों वेद जिसके धाम हैं और पञ्चहव्य जिसका रूप है और जिसको साततार गायत्री आदि विस्तार करते हैं उस यज्ञात्मा को नमस्कार और जो २ नाना मन्त्रों से होमा जाता है उस होमात्माको नमस्कार उस यज्ञरूप सरूप आत्माको नमस्कार जिसको वचनरूप अङ्ग और सन्धिरूप अंगुष्ठ आदि रखनेवाला सुररञ्जनरूप भूषणों से भूषित दिव्य और अक्षर कहा उस वागात्मा के अर्थ नमस्कार और जिस यज्ञों के अङ्गरूपने वराह होकर तीनों लोकोंका हित करने के हेतु पृथ्वी को ऊपर उठाया उस यज्ञरूप वीरात्माको नमस्कार जो पुरुष वेद में कही हुई मोक्षकी देनेवाली युक्तियों से और धर्म्म, अर्थ, व्यवहार और उसके अङ्गों से सत्पुरुषों के पुल अर्थात् योगधर्म्म को तैयार करता है उस सत्यात्माके अर्थ नमस्कार पृथक् २ धर्म्म करनेवाले और पृथक् कर्म्मफलके चाहनेवाले पुरुष जुदे २ धर्म्मों से जिसको अच्छी तरह पूजते हैं उस धर्म्मात्माको नमस्कार जिस कामदेवके अङ्गों से सब देहधारी उत्पन्न होते हैं वह शरीर के उन्मादरूप कामात्मा को नमस्कार महर्षिलोग देह में वर्त्तमान अर्थात् देहरूपी क्षेत्र में विराजमान दृष्टि में न आनेवाले क्षेत्रज्ञको निश्चय करके खोजते हैं उस क्षेत्रज्ञ

आत्मा के अर्थ नमस्कार है सांख्यशास्त्रवालों ने जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थावान् सोलह गुणसम्पन्न चैतन्य को सत्रहवां कहा उस सांख्य आत्मा को नमस्कार आत्माको परम आत्मा में मिलानेवाले और निन्दा से रहित श्वासा जीतनेंवाले बुद्धि में वर्त्तमान अच्छे जितेन्द्रिय पुरुष जिसको ज्योतिरूप देखते हैं उस योगात्मा के अर्थ नमस्कार है पाप पुण्य के दूर होनेपर संसार से निर्भय शान्तरूप संन्यासी जिसको प्राप्त करते हैं उस मोक्ष आत्माको नमस्कार हज़ार युगके अन्तमें जो देदीप्यमान अग्नि सम्पूर्ण संसारको अच्छेप्रकार से भक्षण करती है उस घोरात्मारूप के अर्थ नमस्कार जो महापुरुष सब जीवोंको अपने आत्मा में लय करके जगत्को एकरस कर बालकरूप होता है उस मायात्मा को नमस्कार और जिस अजन्मा कमललोचन की नाभि में कमल उत्पन्न हुआ और जिस कमलमें यह सब विश्व स्थिर है उस परमात्माको नमस्कार हज़ार शिर रखनेवाले अनन्तपुरुष के अर्थ नमस्कार जिसके शिर के बालों में बादल और सब देह के जोड़ों में नदियां और कोख में चारों समुद्र हैं उस जल आत्माको नमस्कार जिससे महाप्रलय की सब विपरीत सूरत पैदा होती हैं और जिसमें लय होते हैं उस हेत्वात्मा को नमस्कार जो रात्रिमें अर्थात् सुषुप्ति में साक्षी होजाय और जाग्रत् में निष्फल निष्काम होता है और प्रिय और अप्रिय का कर्त्ता नहीं है उस द्रष्टात्मा को नमस्कार है जो विना रोक सब कर्म्मों में और धर्म्मकार्य्यों में तैयार वैकुण्ठका रूप है उस कार्य्यात्मा के अर्थ नमस्कार जिस क्रोधाग्नि ने धर्म्म त्याग पशुवत् क्षत्रियों को इक्कीस बार युद्ध में मारा उस कर्म्मात्मा के अर्थ नमस्कार है जो अपने को पञ्चप्राणरूप होकर देह में वर्त्तमान वायुरूप होकर जीवों को चेष्टावान् करता है उस वायु आत्मा के अर्थ नमस्कार जो योगमायाके बलसे सत्ययुग आदि युगों में अवतार लेता है और मास ऋतु दक्षिणायन उत्तरायण वर्ष इन सबके हिसाबसे उत्पत्ति और प्रलयका कर्त्ता है उस कालात्मा के अर्थ नमस्कार जिसका मुख ब्राह्मण और दोनों भुजा क्षत्रिय और सब जङ्घा और पेट वैश्य हैं और शूद्र जिसके चरणों में रक्षावान् हैं उस वर्ण आत्माको नमस्कार जिसका मुख अग्नि, मस्तक स्वर्ग, नाभि आकाश, चरण पृथ्वी, नेत्र सूर्य्य, कान दिशा हैं उस लोकात्मा को नमस्कार जो काल से और युगसे परे परजन्य हिरण्यगर्भ है उससे परे जो मायोपहित अर्थात् माया से ढका जो ईश्वर है उससे भी परे है अर्थात् शुद्ध

ब्रह्म है जिसकी आदि नहीं और वह विश्वका आदि है उस विश्वात्मा को नमस्कार विषयों में कर्म्म करनेवालों को अनादर करके वैशेषिक गुणों अर्थात् राग द्वेषसे जिसको विषयों का रक्षक कहा उस गुप्तार आत्माको नमस्कार खाने पीनेकी वस्तुओं को इन्धन और रस के द्वारा वृद्धि पानेवाला प्राणरूप अग्नि होकर जीवों को धारण करता है उस प्राणात्माको नमस्कार जो अग्नि देहके भीतर के प्राणों की रक्षा के निमित्त अन्न को चार प्रकार से भोजन कराती है और परिपक्व करती है उस पावकरूप आत्माको नमस्कार जो पिङ्गलवर्ण दृष्टि स्थूलकण्ठ बड़ी दाढ़ नखरूप आयुधधारी रूप दानवेन्द्र का नाशक है उस दृप्त आत्मा को नमस्कार अर्थात् नृसिंहजी को नमस्कार है जिसको देवता गन्धर्व दैत्य और दानव मुख्यता से नहीं जानते उस सूक्ष्मात्मा को नमस्कार जो समर्थ भगवान् शेषजी रसातल में स्थित होकर सम्पूर्ण संसार को धारण करते हैं उस वीर्य्यात्मा को नमस्कार जो संसार की रक्षा के लिये मोहपाशों से जीवों को मोहता है उस मोहात्मा को नमस्कार इस उत्तम ज्ञान को पञ्च विषयों में लगा जानकर जिस पुरुष को ज्ञान से प्राप्त करते हैं उस ज्ञानात्मा को नमस्कार जिसका स्वरूप ध्यानचक्र से बाहर और सब ओर से ज्ञानरूप नेत्र रखनेवाला है और जिसमें अत्यन्त विषय पैदा होता है उस दिव्य आत्मा को नमस्कार सदैव जटा दण्ड धारण किये पेट और देह लम्बा रखनेवाला और कमण्डलुरूप धनुर्द्धारी है उस ब्रह्मात्मा को नमस्कार है जो शूलधारी देवताओं का ईश्वर त्रिनेत्र रखनेवाला महात्मा भस्म से लिप्त देह से अर्द्धाङ्ग है उस रुद्रात्मा को नमस्कार जो अर्द्धचन्द्र को शिरपै और सर्पों का यज्ञोपवीत किये पिनाक धनुष और शूल हाथ में लिये हैं ऐसे उग्रात्मा को नमस्कार जो सब प्राणियों का आत्मारूप आदि भूति अर्थात् अहंकार का नाश करनेवाला और काम, क्रोध, मोह से रहित है उस शान्तात्मा को नमस्कार जिससे सब स्थित हैं और जिससे सबकी उत्पत्ति है और सर्वरूप है और सर्व ओर है उस सर्वात्मा को नमस्कार हे विश्वकर्म्मन् ! विश्व की आत्मा विश्वके उत्पन्नकर्त्ता आप पञ्चभूतसे पृथक् मोक्षरूप हो ऐसे तीनों लोकमें वर्त्तमान को नमस्कार है तीनों लोकों से परे सब दिशाओं में व्याप्त होकर सबके आश्रयस्थान हो हे लोकोत्पादक, अविनाशिन्, विष्णु ! तुमको नमस्कार, हे इन्द्रियों के स्वामिन्, दुर्धर्ष ! तुमहीं उत्पत्ति करनेवाले और नाशकर्त्ता हो तीनों

मार्ग में आपके दिव्यभाव को नहीं देखता किन्तु आपके सनातनरूप को देखता हूं आपके शिर में स्वर्ग चरणों में देवी पृथ्वी और पराक्रम में तीनों लोक व्याप्त हैं इससे आपही सनातन पुरुष हो आपकी भुजा दिशा, नेत्र सूर्य्य और वीर्य्य प्रजापति हैं और तेजस्वी वायु के सात मार्ग आपही से रुके हुये हैं जो पुरुष अतसीपुष्प के सदृश पीताम्बरधारी अविनाशी श्रीगोविंदजी को नमस्कार करते हैं वह निर्भय होते हैं श्रीकृष्णजी को एकबार भी प्रणाम करना दश अश्वमेध के अमृत स्नान के तुल्य है दश अश्वमेधकरनेवाला तो जन्म पाता है परंतु श्रीकृष्ण को नमस्कार करनेवाला फिर जन्म को नहीं पाता जो अहर्निशि श्रीकृष्ण का स्मरण करतेहुये कृष्ण ही का व्रत करते हैं वह ऐसे श्रीकृष्णहीमें प्रवेश होते हैं जैसे कि मन्त्र से होमाहुआ घृत अग्नि में लय होता है हे नरकासुर से भय उत्पन्न होनेवालों की रक्षा करनेवाले, संसारसागर के पार उतारनेवाले, वेद ब्राह्मणों की रक्षा करनेवाले, गौ ब्राह्मणों के और जगत् के हितकारी, श्रीकृष्ण, गोविंद ! तुमको नमस्कार हरि यह दोनों अक्षर प्राणों के मार्ग में पाथेय हैं और संसाररूप रोग की औषध दुःख शोक के नाशक जैसे सब जगत् कृष्णमय है और सत्य विष्णुरूप है उसी प्रकार जगत् विष्णुरूप है जैसे सब विष्णुरूप है उसी प्रकार मेरे पाप भी नाश होयँ हे देवोत्तम, कमललोचन ! आपके शरणागत और इच्छासदृश गति चाहनेवाले भक्त के लिये जो कल्याण है उसको ध्यान करो विद्या तप आदि के आलय अजन्मा सर्वव्यापी दुष्टों की त्रास का वञ्चनरूप यज्ञों से पूजित स्तुति के योग्य मुझपर प्रसन्न हो नारायणही परब्रह्म नारायण ही बड़े देवता आदिपुरुष हैं जब भीष्मजीने इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजीको स्तुति करके नमस्कारें करीं तब माधवजीने योगसे भीष्मजी की भक्तिको जानकर त्रिलोकीदर्शन दिव्यज्ञान देकर अपनी देह में फिर आगये फिर भीष्मजी के उस शब्द के बन्द होने पर प्रीति से भरे गद्गदकण्ठ हो उन ब्रह्मवादियोंने उस बड़े ज्ञानी महात्मा भीष्मजी को वचनोंसे पूजन किया और श्रीकृष्णजीकी ऐसी स्तुतिकरने से भीष्मजी की बड़ी प्रशंसा की और श्रीपुरुषोत्तमजी भी योगबल से भीष्मजी की दृढ़भक्ति को जानकर अकस्मात् आनन्दयुक्त उठकर रथपर सवार हुये और सात्यकी को साथ लेकर चलने को उपस्थित हुये और महात्मा युधिष्ठिर अर्जुन समेत दूसरे रथपर सवार हुये भीमसेन और नकुल सहदेव तीनों एक रथपर सवार हुये परमतपस्वी

कृपाचार्य्य, सूत, संजय, युयुत्सु भी रथोंपर सवार हुये वह सब पुरुषोत्तम रथों के बड़े शब्दों से पृथ्वी को कम्पायमान करते नगरके स्वरूप रथों पर बैठे चलखड़े हुये तदनन्तर उस प्रसन्नचित्त मार्ग में पुरुषोत्तम की प्रशंसा में प्रवृत्त ब्राह्मणों के कहेहुये वचनों को सुनकर उस केशी दैत्यके मारनेवाले आनन्दकन्द श्रीकृष्ण जी ने शिर झुकाये हाथ जोड़ेहुये दूसरे मनुष्यों को प्रसन्न किया ॥ १०८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि वहां से वह सब युधिष्ठिर आदि पांचो भाई और श्रीकृष्णजी समेत सब लोग रथों पर सवार उस कुरुक्षेत्र को गये जहां कि उन क्षत्रियों ने युद्धमें शरीरों को त्याग किया था वहां रथों से उतर पर्वताकार हाथी और घोड़ों के हाड़ और देहों के हमूहों,से और शङ्खो के समान मनुष्यों के कपालों से व्याप्त हजारों चिताओं से चितेहुये अस्त्रों के खण्डों से पूर्ण उस कुरुक्षेत्र को देखतेहुये वह महारथी बड़ी शीघ्रता से चले और चलते ही में श्रीकृष्णजी ने परशुरामजी के महापराक्रम को युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! यह पांच परशुरामजी के ह्रद दिखाई देते हैं परशुरामजी ने इन ह्रदों में क्षत्रियों के रुधिरसे उन अपने पितरों को तृप्त किया परशुरामजी ने इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्र करके यहां युद्ध से निवृत्त हुये युधिष्ठिर बोले कि पहिले समय में परशुरामजी ने जो पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्र किया इस आपके कथन में मुझे बड़ा सन्देह है कि जब परशुरामजी ने क्षत्रियों को निर्वंश किया फिर क्षत्रियों के वंश की उत्पत्ति कैसे हुई सो आप कृपा करके समझाइये कि कैसे तो परशुराम ने पृथ्वीको निःक्षत्र किया और कैसे इसकी वृद्धि हुई हे महावक्ता! जब कि करोड़ों क्षत्रियोंका नाश हुआ और फिर उसीप्रकार पृथ्वी क्षत्रियोंसे पूर्ण होगई और महात्मा परशुरामने किसकारण से कुरुक्षेत्र में क्षत्रियों का नाश किया इस मेरे सन्देह को आप निवृत्त कीजिये और हे इन्द्रावर! यह वेद आपके वंचनों से है आप से अधिक नहीं है वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर ने ऐसा सन्देह किया तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजीने ब्योरेवार सब वृत्तान्त क्षत्रियोंके नाश और उत्पन्न होनेका कहा॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

उनचासवां अध्याय ॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे युधिष्ठिर! उन परशुरामजी का प्रभाव और परा-

क्रम और जन्म जैसा कि मैंने महर्षियों से सुना है वह सब तुम मुझसे सुनो और जैसे परशुरामजी के हाथ से सब क्षत्रिय मारेगये और पैदाहोकर इस महाभारत के युद्ध में संहार कियेगये उनमें जह्नुका पुत्र अज और अजका पुत्र बलाकाश्व उसका पुत्र धर्म्म का जाननेवाला कुशिक नाम पृथ्वीपर इन्द्रके समान महातपी हुआ और उसने चाहा कि मैं तीनों लोकों से अजेय पुत्रको उत्पन्न करूं उस उग्र तपस्वी को पुत्र के उत्पन्न करने में समर्थ जानकर उसके घर में आप इन्द्र ने आकर अवतार लिया और लोकेश्वरों के ईश्वर इन्द्र उसकी पुत्रता में प्राप्त हुये अर्थात् कुशिकका पुत्र गाधि नाम हुआ और उसकी कन्या सत्यवती हुई कुशिक ने उस कन्याका भृगुजी के पुत्र ऋचीक के साथ विवाह करदिया ऋचीकमुनि ने उस कन्या की पवित्रतासे प्रसन्न होकर उसके पुत्रके निमित्त और उसीप्रकार गाधीके पुत्रके लिये दो स्थानों में चरु को बनाया अर्थात् दो स्थानोंपर तस्मै बनवाई और उस अपनी स्त्री सत्यवतीको बुलाकर कहा कि यह चरु तुम खावो और दूसरा अपनी माता गाधीको खाने को दो उसका पुत्र क्षत्रियों में उत्तम होकर उत्तम २ क्षत्रियोंका मारनेवाला लोक में अन्य क्षत्रियों से अजेय उत्पन्न होगा और हे कल्याणि ! यह तुम्हारा चरु तुम्हारे भी पुत्रको उत्पन्न करेगा जो धैर्य्यवान् इन्द्रियों का जीतनेवाला तपस्वी ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होगा ऐसा अपनी भार्य्या को समझाकर वह तपस्वी महात्मा ऋचीक ऋषि वनको चलेगये और उसी समय तीर्थयात्रामें तत्पर वह राजा गाधि भी अपनी स्त्री समेत ऋचीक ऋषिके आश्रम में आया तो सत्यवती ने उनदोनों चरुओं को लाकर अपनी माताको भर्त्ता की आज्ञानुसार बड़ी प्रसन्नता से दिया और भर्त्ताकी आज्ञाको मातासे कहदिया सो हे युधिष्ठिर ! उसकी माता ने अपना चरु तो कन्याको दिया और सत्यवतीने अज्ञानतासे उसके चरुको खालिया तब सत्यवतीने प्रसन्नानन होकर क्षत्रियों के नाश करनेवाले उग्ररूप दर्शनको गर्भ में धारण किया तब ब्राह्मणों में उत्तम ऋचीक उसके गर्भ में वर्त्तमान ब्राह्मणको जानकर अपनी देवीरूप भार्य्या से बोले हे कल्याणि ! चरुके विपरीत होने से तू मातासे ठगीगई तेरा पुत्र महाक्रोधी और कठिन कर्म करनेवाला होगा और तेरा भाई ब्रह्मरूप और तप में प्रीति रखनेवाला उत्पन्न होगा मैंने तेरे चरुमें विराट्रूप पुरुषका बड़ा ब्रह्मतेज नियत कियाथा और तेरी माता के चरुमें सम्पूर्ण क्षत्रियोंका तेज नियत कियाथा सो हे कल्याणि ! तेरे इस

विपरीत चरु होने से ऐसा न होगा तेरी माता का पुत्र ब्राह्मण होगा और तेरा पुत्र क्षत्रियों का कर्म्म करनेवाला होगा जब पति ने ऐसा कहा तो सत्यवती गिरपड़ी और कांपतीहुई अपने पति से यह वचन बोली कि हे भगवन् ! अब आप मुझसे ऐसे वचन न कहिये कि ब्राह्मणों में नीच पुत्र को उत्पन्न करेगी ऋचीक बोले कि हे कल्याणि ! मैंने तुझ में ऐसे पुत्र की इच्छा नहीं की परन्तु चरु के विपरीत होने से निर्दय कर्म्म करनेवाला पुत्र होगा सत्यवती बोली कि हे समर्थ, मुने ! तुम इच्छा करके लोकों को भी पैदा करसक्ते हो फिर पुत्र का पैदा करना कितनी बात है तुम मुझको विजयी ज्ञानवान् भीतर से सचा शूर बुद्धिमान् पुत्र देने को योग्य हो ऋचीक बोले कि हे कल्याणि ! मैंने कभी स्वप्न में भी मिथ्या नहीं कहा फिर मन्त्रों सहित चरुसाधन में अग्नि के समक्ष कैसे कहूंगा हे कल्याणि ! मैंने पहिले समय में तपके द्वारा इस बात को देखा था और जाना था कि तेरे पिता का सब कुल ब्राह्मण होवे सत्यवती बोली कि हे समर्थ ! चाहो मेरा और आपका निबेड़ा किसी प्रकार से होवे परन्तु मैं बुद्धिमान् विजयी धर्म्मात्मा पुत्रको प्राप्त करूं ऋचीक बोले कि हे प्यारी ! पुत्र और पौत्र में मेरी सामर्थ्य नहीं है परन्तु हे कल्याणि ! जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा इतनी कथा सुनाय वासुदेवजी बोले कि इसके पीछे सत्यवती ने पुत्र को उत्पन्न किया वह तप में प्रीति रखनेवाले सावधानव्रत शान्तरूप भार्गव जमदग्नि नाम से प्रसिद्ध हुये और कुशिकनन्दन गाधि ने ब्रह्मरूप विश्व के सम्पूर्ण ब्रह्मगुणों से संयुक्त विश्वामित्र नाम पुत्र को उत्पन्न किया और ऋचीक ने तप का भण्डार जमदग्निजी को उत्पन्न किया फिर उन जमदग्निजी ने भी ऐसे पुत्र को उत्पन्न किया जो बड़े भय के हेतु और धनुर्वेद आदि सब विद्याओं के पारंगत होनेवाले उत्तम प्रकाशमान अग्नि के समान तेजस्वी क्षत्रियों के नाश करनेवाले परशुराम नाम थे इन परशुरामजी ने गन्धमादन पर्वतपर श्रीमहादेवजी को प्रसन्न करके उनसे अस्त्रों को और बड़े तेजस्वी फरसे को पाया उस अकुण्ठधार महातेजस्वी अग्निसमान प्रकाशित अनन्य फरसे के द्वारा परशुरामजी लोकों में अद्वितीय प्रसिद्ध हुये उसी समय कृतवीर्य के पुत्र पराक्रमी तेजस्वी अर्जुन नाम क्षत्रिय दत्तात्रेयी ऋषि की कृपा से सहस्रभुजा पानेवाले चक्रवर्ती महातेजस्वी राजाने अश्वमेध यज्ञ में पहाड़ और सातोंद्वीपोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी को वेदपाठी ब्राह्मणों को दान किया हे युधिष्ठिर ! वह सहस्रभुजा रखनेवाला

पराक्रमी अर्जुन पिपासित अग्निदेवता से भिक्षा के निमित्त प्रार्थित कियागया तब उस राजा ने अग्नि को भिक्षा दी उसके बाणों की नोकों से प्रकट होनेवाले पराक्रमी अग्नि देवता ने भस्म करने की इच्छा से गांव, पुर, देश, घोषों को पहाड़ वनस्पति समेत उस सहस्राबाहु की सहायता से भस्म करदिया वायु से बढ़ीहुई उस अग्नि ने सहस्राबाहु के साथ होकर महात्मा वशिष्ठजी के केवल आश्रम को भस्म किया तदनन्तर आश्रम भस्म होने के कारण वशिष्ठजी ने महाक्रोध से सहस्रार्जुन को शाप दिया कि जैसे तैंने मेरे इस वन को त्याग नहीं किया और जला दिया इसकारण परशुरामजी युद्ध में तेरी भुजाओं को काटेंगे उस समय इस शाप को उस महातेजस्वी पराक्रमी सदैव विजयी सहस्राबाहु ने सन्देह न किया इसी शाप के कारण इसके पराक्रमी पुत्र अपने पिता के मारने में कारणरूप और अहंकारी और निर्दय हुये और जमदग्निजी की गौ के बछड़ों को उस हयदेश के बुद्धिमान् राजा सहस्राबाहु के विना जनाये अपने देश में लेआये इसकारण महात्मा परशुरामजी से युद्ध हुआ तदनन्तर क्रोध में भरकर परशुरामजी ने सहस्राबाहु की उन भुजाओं को काटकर घूमते हुये अपने बछड़ों को आश्रम में लेआये तब सहस्राबाहु के उन अज्ञानी पुत्रोंने एकता करके गुप्त आश्रम में जाकर भालों से महात्मा जमदग्निजी के शिर को काटडाला उस समय परशुरामजी लकड़ी और कुशाओं के लेने को वन को चलेगये थे तदनन्तर आश्रम में पिता को मृतक देख महाक्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो शस्त्र धारण करके यह प्रतिज्ञा की कि पृथ्वी को निःक्षत्र करूंगा यह कहकर सहस्राबाहु को पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब सहित मारकर हयदेशी हज़ारों उसके भाई बन्धुओं के रुधिर से पृथ्वी पर कीच करदी और क्षत्रियों को विध्वंस करके उसी समय क्रिया में युक्त हो वन को चलेगये फिर कितनेही हज़ार वर्ष पीछे स्वाभाविक क्रोध रखनेवाले प्रभु परशुरामजी की महानिन्दा हुई अर्थात् विश्वामित्रके पोते ऋभु के पुत्र महातपस्वी परावसु ने उनसे सभा में निन्दा करके यह कहा कि हे परशुराम ! ययाति के गिरने पै स्वर्गनाम यज्ञ में जो प्रतर्दन नाम भृगुवंशी आदि सन्त पुरुष आये वह क्या क्षत्रिय नहीं हैं हे परशुरामजी ! तुम मिथ्या प्रतिज्ञा करनेवाले हो सभा में अपनी प्रशंसा करते हो और वीर क्षत्रियों के भयसे तुम पर्वतों में आश्रयीभूत हो अब यह पृथ्वी सबओर से क्षत्रियों से व्याप्त हुई यह परावसु के वचन को सुनकर भार्गवजी ने फिर शस्त्र को हाथ में

लिया इसके पीछे जो सैकड़ों क्षत्रिय परशुरामजी ने छोड़दिये वह वृद्धि पाकर पृथ्वी के स्वामी हुये हे राजन्! फिर परशुरामजी ने उन बालकों को भी मारा तब फिर भी गर्भों में वर्त्तमान बालकों के उत्पन्न होने से पृथ्वी व्याप्त हुई फिर उसने उनको भी मारा तब क्षत्रियों की स्त्रियों ने कितनेही पुत्रों की रक्षा की इसीप्रकार इक्कीस बार परशुरामजी ने पृथ्वी को निःक्षत्र कर अन्त को अश्वमेध यज्ञ में कश्यपजी को यज्ञदक्षिणा में दान करदी तब कश्यपजी ने क्षत्रियों के शेष रहने के निमित्त यज्ञ का स्रुवा रखनेवाले हाथ से बुलाकर परशुरामजी से यह वचन कहा कि हे मुने! तुम दक्षिणसमुद्र के किनारे जावो और यहां मेरे देश में तुम को कभी न रहना चाहिये तदनन्तर उस समुद्र ने अकस्मात् उन परशुरामजी के शूरपारक नाम देश को उत्पन्न किया जोकि पृथ्वी से जुदा गिनाजाता है और कश्यपजी इस पृथ्वी को ले ब्राह्मणों को स्वाधीन करके महावन में चलेगये फिर वैश्य और शूद्र स्वेच्छाचारी होकर ब्राह्मणों की स्त्रियों से कुकर्म्म करनेलगे इस जीवलोक के वे राजा होने से निर्बल मनुष्य सबलों से अधिकतर पीड़ावान् होनेलगे और ब्राह्मणों में किसी की प्रतिष्ठा नहीं रही इसके पीछे पृथ्वी समय के विपर्य्यय से नष्टबुद्धियों के हाथ से पीड़ित हुई और बे मर्य्यादा होने से रसातल को चलीगई जोकि धर्म्म की रक्षा करनेवाले क्षत्रियों से बुद्धि के अनुसार रक्षा नहीं कीगई इसकारण भयभीत होकर भागजानेवाली उस पृथ्वी को देखकर बड़े साहसी कश्यपजी ने उसको जङ्घा से धारण किया इसी कारण उसका नाम उर्व्वी हुआ और उस देवी पृथ्वी ने कश्यपजी को प्रसन्न करके अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करी कि कोई राजा हमारी रक्षा करे और कहा कि हे ब्रह्मन्! हैहयकुल की स्त्रियों में मुझ से रक्षित क्षत्रियलोग उत्तम हैं वही मेरी रक्षा करें उनमें वेदपाठी पुरुवंशी विदूरथ का पुत्र वर्त्तमान है वह ऋक्षवत् पर्व्वत में वहां के ऋक्षों से रक्षित कियागया है उसी प्रकार यज्ञ करनेवाले बड़े दयावान् तेजस्वी पराशरजी ने राजा सुदास के पुत्रकी रक्षा करी है वह क्षत्रिय भी शूद्रभृत्य के समान उन के सब कामों को करता है इसकारण शूद्रकर्म नाम प्रसिद्ध हुआ वह मेरी रक्षा करे, शिवि का महातेजस्वी गोपति नाम पुत्र वन में गौवों के दूध से पोषण कियागया है वह मेरी रक्षा करे और प्रतर्दन का पुत्र बड़ा पराक्रमी वत्सनाम गोशाला में बछड़ों के सङ्ग में रक्षा कियागया वह राजा मेरी रक्षा करे दधिवाहन का पौत्र दिविरथ का पुत्र गङ्गाजी के

किनारे पर गौतम ऋषि से रक्षित होकर महातेजस्वी महाभाग बृहद्रथ नाम गिरिधर कोटिनाम पर्व्वत में गोलांगूल नाम वानरों से रक्षित कियागया है मरुत के वंश में जो क्षत्रियों के लड़के रक्षा कियेगये वह इन्द्र के समान पराक्रमी समुद्र से पोषण कियेगये हैं वह क्षत्रियों के पुत्र जहां तहां मैमार सुनार आदि की जाति में रक्षा कियेगये हैं वह मेरी रक्षा करतेही अचल होंगे उनके बाप दादे मेरेही निमित्त युद्ध में परशुरामजी के हाथ से मारेगये इसकारण उनसे अऋण होने के लिये मुझे उनका पूजन करना चाहिये मैं धर्म्महीन पुरुष से अपनी रक्षा कभी नहीं चाहती धर्म्मात्मा राजा के कारण ठहर सक्ती हूं इससे शीघ्र विचार कीजिये तब कश्यपजी ने पृथ्वी के बताये हुये उन पराक्रमी क्षत्रिय राजाओं को बुलाकर अभिषेक कराया उनके पुत्र पोते होकर वंश नियत हुये इसप्रकार का यह प्राचीन इतिहास है यह सब इतिहास कहते हुये महातेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्रजी रथ में चढ़ेहुये बड़ी शीघ्रता से गये ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पचासवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि श्रीकृष्ण से यह इतिहास सुनकर राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे महाराज ! परशुरामजी का पराक्रम इन्द्र के समान है जिसने कि क्रोध से पृथ्वीको निःक्षत्र किया और उनके भय से क्षत्रियों के बालक व्याकुल होकर गौ समुद्र गोलांगूल रीछ वानरों से रक्षा किये गये इससे आश्चर्य है और यह नरलोक भी धन्य है और पृथ्वीपर सब मनुष्य प्रारब्धी हैं जहां पर ब्राह्मणों ने ऐसा धर्म्मरूप कर्म्म किया अर्थात् क्षत्रियों को पापों से मोक्ष करके स्वर्गवासी किया हे राजन् ! श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर यह संवाद कहतेहुये वहां पहुँचे जहां शरशय्या पर पड़ेहुये श्रीगङ्गाजी के पुत्र भीष्मजी वर्त्तमान थे वहां जाके सूर्य्य के समान तेज से भरेहुये महाप्रतापी भीष्मजी का दर्शन किया वह भीष्मजी बड़े धर्म्मिष्ठ देश में मोघवतीनदी के तटपर देवताओं से सेवित इन्द्र के समान मुनि ऋषियों से घिरेहुये थे उनको दूर से देखकर श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर आदि पांचो भाई और कृपाचार्य्य आदि सब साथियों समेत सवारियों से उतर चञ्चल मन को स्थिर करके उन महामुनियों में जाकर विराजमान हुये फिर गोविन्दजी सात्यकी और सब पाण्डव आदि व्यासजी को दण्डवत् करके भीष्मजीके आगे जाकर खड़ेहुये और उनको उस दशा में देख प्रणामादिक करके

और उनके चारों ओर परिधि समान हो बैठगये तदनन्तर श्रीकेशवजी ने चित्त को म्लान करके भीष्मजी से कहा कि हे महावक्ता ! आप के सर्वज्ञान पूर्व्वके समान शुद्ध हैं और आप की बुद्धि व्याकुल तो नहीं है और बाणों की चोटों के दुःख से आप की देह पीड़ित तो नहीं है चित्त के दुःख से देह का दुःख महाप्रबल है हे समर्थ ! आप सदैव धर्म्म करनेवाले शान्तनु पिता के वरदान से इच्छापूर्वक मृत्यु चाहनेवाले हो यह पिता का आनन्द मुझ को भी प्राप्त नहीं है यह अत्यन्त सूक्ष्म भाले भी देह में पीड़ा करते हैं सो हे महात्मन् ! आपसरीखे इतने बाणों से भिदेहुये को क्यों न पीड़ा होगी जीवों की यह मुख्यता और नाश आपके सामने कहने के योग्य नहीं है अर्थात् आप सर्वज्ञ हो और ऐसे प्रतापी हो कि देवताओं के भी उपदेश करने को समर्थ हो हे भीष्मजी ! जो भूत भविष्य वर्त्तमान है वह सब तुम्हारी वृद्धबुद्धि में वर्त्तमान है और जीवों का नाश और धर्म्म के फल का प्रकाश आपका जाना हुआ है तुमहीं धर्म्मरूप नदी हो आप नीरोगदेह राज्य में वर्त्तमान हजारों स्त्रियों से व्याप्त होकर भी मुझ को ऊर्ध्वरेता दीखते हो हे महाराज ! तीनों लोक में सच्चे धर्म्मवाले महापराक्रमी शूर अकेले धर्म्म में प्रवृत्त उस मृत्यु को रोकेहुये तपके द्वारा शरशय्यापर सोनेवाले सिवाय भीष्मजी के किसी नामी पुरुष को संसार में नहीं सुनते हैं सत्य तप दान और यज्ञ के अधिकरण धनुर्वेद और वेदों की विज्ञता और सदैव संसार की रक्षा करनेवाला आप के सिवाय किसी को नहीं देखता हूं और आपके समान किसी महारथी को दयावान् पवित्र जितेन्द्रिय और सबों का उपकारी किसी को नहीं सुनते हैं तुमहीं एक रथ के द्वारा देवता, यक्ष, गन्धर्व, दैत्य, राक्षसों के विजय करने को समर्थ हो हे महाभुज, भीष्म ! तुम ब्राह्मणों के और वसुओं के अंश से मिलेहुये नवम वसु हो परन्तु गुणों में उनके नवम नहीं हो हे पुरुषोत्तम ! जो तुम हो उसे मैं अच्छेप्रकार से जानता हूं तुम पराक्रम के द्वारा देवताओं में भी प्रसिद्ध हो हे श्रेष्ठ ! मैंने आप के समान संसार में कोई गुणी न देखा है न सुना है इससे हे भीष्म ! तुम सब गुणों में देवताओं से भी अधिक हो आप अपने तप के बल से सब स्थावर जङ्गल जीवों के उत्पन्न करने को भी समर्थ हो ऐसे होकर अपने शुद्ध प्रकाशवान् लोकों को क्यों नहीं प्राप्त करोगे हे भीष्म ! आप इस जातिवालों के नाश से दुःखी राजा युधिष्ठिर के शोक को दूर करने को योग्य हो हे भरतवंशिन् ! चारों वर्ण के धर्म्म जो चारों आश्रमों के धर्म्मों से

मिलेहुये हैं वह सब आप के जानेहुये हैं चारों विद्या और चातुर्होत्र में जो धर्म्म कहे और सांख्ययोग में जो सनातनधर्म्म वर्त्तमान है और चारों वर्णों का जो धर्म्म एक दूसरेसे विरुद्ध नहीं है वह सेवन किया हुआ धर्म्म क्रमपूर्वक आपका जाना हुआ है और प्रतिलोम से उत्पन्नों के धर्म्मों को भी आप जानते हैं और देश जाति कुल के धर्म्म और लक्षणों को भी जानते हो वेदों में कहा हुआ और श्रेष्ठलोगों का उपदेश किया हुआ धर्म्म अच्छेप्रकार से आपका जाना हुआ है और इतिहास पुराणों का भी अभिप्राय अच्छेप्रकार से आप का जाना हुआ है और आप के चित्त में सम्पूर्ण धर्म्मशास्त्र वर्त्तमान हैं हे पुरुषोत्तम! इस लोक में जो कोई अर्थ संशय में पड़ेहुये हैं उन शोकों का दूर करनेवाला आप के समान कोई नहीं है हे नरेन्द्र! वह पाण्डवों के चित्त का शोक अपनी बुद्धि से आप निवृत्त करिये आप सरीखे महान् बुद्धिमान् पुरुष मोहित जीव की शान्ति के अर्थ होते हैं ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इक्यावनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी श्रीकृष्णजी के इन वचनों को सुनकर कुछ मुख को उठाकर हाथ जोड़कर बोले हे भगवन्, श्रीकृष्णजी! तुम को नमस्कार और हे जीवों के उत्पत्तिनाशक! आपही इन्द्रियों के स्वामी और संसार के ईश्वर नाशकर्त्ता अजेय हो और हे विश्वात्मन्! विश्वकर्म्मा विश्व के उत्पत्तिस्थान आपको नमस्कार पञ्चतत्त्वों से परे मोक्षरूप तीनों लोकों में वर्त्तमान और तीनों से परे आपको नमस्कार हे योगेश्वर! तुमहीं सबके मुख्य आश्रय हो सो हे माधव! आपने मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले जैसे वचन कहे उसीसे आपके दिव्य भावों को देखता हूं जो कि तीनों मार्गों में वर्त्तमान हैं और हे गोविन्दजी! मैं आप के सनातनरूप को देखता हूं महातेजस्वी वायु के सातों मार्ग्ग तुमहीं से रुकेहुये हैं आपके शिर से स्वर्ग्ग और चरणों से देवी पृथ्वी व्याप्त है दिशा भुजा और सूर्य्य नेत्र हैं और पराक्रम से वीर्य्य नियत है अतसीपुष्प के समान पीत पीताम्बरधारी अजेय और विद्युत्वाले बादल के समान आपके रूपको विचारता हूं हे देवताओं में उत्तम, कमललोचन! तुम अपनी प्यारी गति प्राप्त करने के इच्छावान् होके अपने शरणागत भक्त के लिये जो कल्याण है उसको ध्यान करो वासुदेवजी बोले हे पुरुषोत्तम, राजन्,

भीष्म ! निश्चय करके जिस हेतु से मुझमें तेरी परम भक्ति है उसी कारण मैंने अपना दिव्यरूप तुमको दिखाया और हे भीष्म ! जो पुरुष कि भक्त नहीं है और भक्त होकर भी सत्यवक्ता और शान्त नहीं है उसको मैं अपने रूप का दर्शन नहीं देता आप मेरे भक्त सदैव सत्य आचरणों में वर्त्तमान शान्तचित्त तप दान में प्रीतिमान् पवित्र हो इससे हे राजन्, भीष्म ! अपने तप के प्रताप से मेरे दर्शन के योग्य हो वह सब लोक आपके सामने वर्त्तमान हैं जिनमें जाकर फिर नहीं लौटता है हे कौरवेन्द्र ! तेरे जीने के तीस दिवस बाक़ी हैं वह सौ दिन के समान हैं तब तुम इस देह को त्यागकर अच्छे कर्म्मों के उदय से प्रकाशित होगे अग्नि के समान तेजस्वी अग्निवर्ण गुप्तरूप वसुदेवता विमानों पर सवार होकर तुम्हारी और उत्तरायण होनेवाले सूर्य्य की बाट देख रहे हैं हे पुरुषोत्तम ! उत्तरायण भगवान् सूर्य्य के होने में और जगत् काल के आधीन होने पर उन लोकों को जावोगे जहां जाकर वह ज्ञानी फिर लौटकर नहीं आता है हे वीर, भीष्मजी ! आपको परलोक जाने पर सब ज्ञाननष्टता को प्राप्त होंगे इसकारण हम सब धर्म्म के निश्चय करने के निमित्त आप के पास आये हैं इससे आप इस सत्यप्रतिज्ञ और जातिवालों के शोक से ज्ञान नष्ट युधिष्ठिर के निमित्त धर्म्म अर्थ समाधिसंयुक्त सीधे और सत्य२ वचनों को कहो और इसके संताप को दूर करो ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

बावनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि श्रीकृष्णजी के उस वचन को सुनकर जो धर्म्म अर्थ से संयुक्त सबका हितकारी था भीष्मजी हाथ जोड़कर यह बोले हे लोकनाथ, शिवनारायण, महाबाहो, अविनाशिन्, श्रीकृष्णजी ! मैं आपके वचनों को सुन कर बड़ाही प्रसन्न हूं हे स्वामिन् ! मैं आपके सम्मुख क्या वचन कहूंगा जब सब संसार के वचन आपके दिव्य वचनों के अन्तर्गत हैं हे देव ! इसलोक में जो कुछ करने के योग्य है और जो किया जाता है वह दोनों लोकों के उपकारी कर्म्म तुझ बुद्धिमान् से उत्पन्न हुये हैं जैसे पुरुष देवराज के सम्मुख देवलोक का वर्णन करे वैसेही आपके सम्मुख धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष का वृत्तान्त कहना है हे मधुसूदनजी ! मेरा चित्त बाणों की पीड़ा से पीड़ित है और अङ्गों में क्लेश है और बुद्धि में शुद्धि नहीं होती और कोई बात कहने की

मुझमें सामर्थ्यवती बुद्धि नहीं है हे गोविन्दजी ! जोकि मैं बाणों से विष अग्नि के समान पीड़ावान् हूं पराक्रम मुझको छोड़ता है और प्राण भी शीघ्रता कररहे हैं मर्म्मस्थान में बड़ी पीड़ा है इससे मैं भ्रान्ति में डूबा हुआ हूं निर्बलता से मेरा वचन रुकता है सो मैं किसप्रकार से कहने को समर्थ हूं सो हे दाशार्ह ! आप मुझ से प्रसन्न हैं इसीसे सब अच्छा है हे महाबाहो, अजेय ! मुझको क्षमा कीजिये मैं आपके सामने क्या कहसक्ता हूं आपके सामने बृहस्पतिजी की भी बोलने की सामर्थ्य नहीं मैं इस समय दिशा आकाश और पृथ्वी को नहीं पहिंचानता हूं हे मधुसूदनजी ! मैं केवल आपकी सामर्थ्य से वर्त्तमान हूं इससे आप शीघ्रही कहिये जो धर्म्मराजको अभीष्ट है तुम सब शास्त्रों के भी शास्त्र हो तुम्हारे साक्षात्कार में मुझसा कौन पुरुष किसप्रकार शास्त्र को वर्णन करे जैसे कि गुरुके वर्त्तमान होने पर कोई शिष्य शास्त्र कहै फिर वासुदेवजी बोले कि हे कौरवों के धुरन्धर, महाबली, बुद्धिमन्, सब अर्थों के दर्शी, शान्तस्वभाव, भीष्मजी ! यह वचन आपही में वर्त्तमान और योग्य है हे गाङ्गेयजी ! जो आपने बाणों की पीड़ा के विषय में मुझसे कहा सो हे समर्थ, भीष्मजी ! यहां मेरी प्रसन्नता से प्राप्त होनेवाले वरदान को लो कि तुमको ग्लानि, मूर्च्छा, दाह, पीड़ा आदि कोई व्यथा न होगी और क्षुधा पिपासा भी न होगी और हे निष्पाप ! तुम्हारे सब ज्ञान प्रकाशित होंगे और कहीं भी आपकी बुद्धि नहीं रुकैगी और सदैव आपका चित्त सतोगुण में वर्त्तमान रजोगुण तमोगुण से पृथक् रहैगा जैसे कि चन्द्रमा बादलों से जुदा हो तुम धर्म्म से संयुक्त या अर्थ से संयुक्त जिस २ बात को विचारोगे उसमें आपकी बुद्धि श्रेष्ठ रहैगी और तुम दिव्यदृष्टि को पाकर इस चार प्रकार के जीवों के समूहों को देखोगे फिर ज्ञानरूप अक्षिको पाकर तुम इस घूमनेवाले प्रजा के जाल को मुख्यता से देखोगे जैसे कि जल की वस्तु को मछली देखलेती है वैशम्पायन बोले कि इन बातों के पीछे व्यास समेत उन सब महर्षियों ने ऋग्, यजु, सामवेदों की ऋचाओं के साथ वचनों से श्रीकृष्णजी का पूजन किया फिर वहां आकाश से सब ऋतुओं के पुष्पों की दिव्य वर्षा हुई जहां कि श्रीकृष्णजी उन पाण्डव और भीष्मजी के साथ विराजमान थे और सब प्रकार के बाजे बजे और अप्सरा नाचीं और गन्धर्वों ने गाया और शीतल मन्द सुगन्ध लिये पवित्र कल्याणरूप वायु चली और दिशाओं के शान्त होने से शान्तरूप पशु पक्षी भी क्रीड़ा करनेलगे तदनन्तर एक मुहूर्त

में ही सूर्य्य भगवान् पश्चिम में ऐसे दिखाई दिये जैसे कि वन को भस्म करती हुई अग्नि होती है फिर सब महर्षियों ने उठकर श्रीकृष्णजी और भीष्मजी से कहा कि अब हमलोग जाते हैं फिर कल आवेंगे उनके पीछे पाण्डव के साथ केशवजी और सात्यकी संजय और कृपाचार्य्यजी ने प्रणाम किया फिर वह सब ऋषि कल मिलेंगे ऐसा वचन कहकर चलेगये उसीप्रकार केशवजी और पाण्डव भीष्मजी को पूछकर परिक्रमा करके शुभ रथोंपर सवार हुये फिर वह सुवर्णमय रथ और पर्व्वताकार मतङ्ग हाथी और गरुड़ के समान शीघ्रगामी घोड़ों और धनुष आदि रखनेवाले पदातियों के साथ रथों की वह सेना आगे पीछे से अत्यन्त चपलता करनेवाली ऐसी चली जैसे महानदी नर्मदा आगे पीछे से रक्षावन्त पहाड़ को प्राप्त करके चले तदनन्तर चन्द्रमाजी उस सेना को प्रसन्न करते और उन ओषधियों को जिनके रसों को सूर्य्य देवता ने शुष्क किया उनको फिर अपनी किरणों से और गुणों से संयुक्त करते पूर्व्वदिशा से ऊपर को उठे फिर वह यादव और पाण्डव देवराज की पुरी के समान तेजोमय पुर में प्रवेश करके अपने महलों में ऐसे घुसे जैसे कि थके हुये सिंह गुफा में प्रवेश करते हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

तिरपनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि वहां जाकर मधुसूदनजी शयनस्थान में जाकर सोगये और प्रातःकाल की अमृतवेला में जगे उस समय ध्यानमार्ग में प्रवृत्त होकर सब ज्ञानियों को देखकर फिर सनातन ब्रह्म का ध्यान किया तिसके पीछे स्तुति और पुराणों के जाननेवाले रक्तकण्ठ और सुशिक्षित पुरुषों ने उस प्रजा के स्वामी और सब जीवों में निवास करनेवाले संसार के भर्त्ता श्रीकृष्णजी की स्तुति की उसके पीछे पाठवाले पढ़ने और गानवाले गाने और हज़ारों शङ्ख मृदङ्गों के शब्द होनेलगे और उस महल के वीणा पणव वेणु के शब्द अतिमनोरम और हास्यरस से संयुक्त चारों ओर फैलेहुये सुनेगये उसके पीछे राजा युधिष्ठिर के गीत और बाजों के शब्द जोकि मङ्गलरूप मधुर वचनवाले थे होनेलगे फिर उठकर स्नान कर हाथ जोड़ निरहंकार हो महाबाहु श्रीकृष्णजी मन्त्र जपकर अग्नियों को प्रकाशित करके वर्त्तमान हुये फिर माधवजी ने चारों वेदों के जाननेवाले ब्राह्मणों

से एक सहस्र गौवों के द्वारा स्वस्तिवाचन कराया फिर श्रीकृष्णजी गौवों को स्पर्श करके निर्मल आदर्श में अपना मुख देखकर सात्यकी से बोले कि हे सात्यकी ! तुम जाकर देखो कि युधिष्ठिर भी भीष्मजी के देखने को तैयार हुये यह सुनतेही सात्यकी ने शीघ्रही युधिष्ठिर से जाकर कहा कि हे राजन् ! वासुदेवजी का रथ तैयार हुआ वह भीष्मजी के पास जायँगे और आपकी बाट देखते हैं यहां जो काम शीघ्र करने के योग्य है उसको करिये यह सुनकर धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर ने हुक्म दिया कि हे अर्जुन ! मेरा भी उत्तम रथ तैयार हो और सेना को छोड़ हमही लोग केवल वहां जायँगे धर्म्मात्मा भीष्मजी को हम पीड़ा नहीं देसक्ते हे अर्जुन ! इसकारण आगे चलनेवाले मनुष्यों को भी लौटा दो अब वहां भीष्मजी बड़े गुप्तधर्म्मों को कहैंगे इससे साधारण मनुष्यों को लेजाना मैं नहीं चाहता हूं तदनन्तर राजा की आज्ञा को जानकर अर्जुन ने रथ तैयार करने को आज्ञा दी फिर राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीमसेन और अर्जुन समेत सब मनुष्यों को ले श्रीकृष्णजी के महल में गये तब श्रीकृष्णजी सात्यकी को साथ ले पाण्डवों समेत रथोंपर चढ़ २ तैयार हुये और परस्पर में दण्डप्रणाम करके उन शीघ्रगामी रथों में बैठे हुये चलादिये दारुक ने श्रीकृष्ण के उस रथ को जिसमें कि बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य, सुग्रीव नाम घोड़े जुते थे तेज किया और बड़ी शीघ्रता से चलादिये और धर्म्मस्थल कुरुक्षेत्र में जाकर ठहरे और वहां से रथों से उतर २ कर भीष्मजी के पास गये वहां सब पाण्डव आदि ने उन महर्षियों को जो भीष्मजी के पास बैठे थे दण्डप्रणाम किया फिर भीष्मजी का दर्शन किया ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चौवनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि वह सब पाण्डव और श्रीकृष्णजी महातेजस्वी भीष्मजी के और पास विराजमान हुये इस कथा को सुनकर जनमेजय बोले कि पाण्डव आदि करके चारों ओर से घिरेहुये महापराक्रमी सत्यव्रत जितेन्द्रिय भीष्मजी से युधिष्ठिर ने कौन २ कथा पूंछी उसको आप मुझसे कृपा करके वर्णन कीजिये वैशम्पायन बोले कि हे राजन्, जनमेजय ! कौरवों के धुरन्धर भीष्मजी के शरशय्या पर वर्त्तमान होनेपर नारद आदि ऋषि और सिद्धलोग आये और मरनेसे शेष बचेहुये राजा जिनके अग्रवर्त्ती युधिष्ठिर थे उन्होंने और

धृतराष्ट्र, श्रीकृष्णजी, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि बहुत से महात्माओं ने उन भरतवंशियोंके पितामह गङ्गाजी के पुत्र श्रीभीष्मजी के पास जाकर उनका शोच किया फिर थोड़े समय तक ध्यानावस्थित होकर देवदर्शन नारदजी पाण्डव आदि सब राजाओं से बोले कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ! मैं समय के अनुसार कहता हूं कि यह गाङ्गेय भीष्मजी अब सूर्य के तुल्य अस्त हुआ चाहते हैं इससे तुम सब प्रश्न करो यह महात्मा चारों वर्णों के नाना प्रकार के धर्म्मों को जानते हैं यह वृद्ध देह को त्यागकर उत्तम लोक को पावेंगे तुम अपने चित्तके सन्देहों को इनसे पूछो नारदजी के ऐसे वचन सुनकर राजालोग भीष्मजी के पास गये और प्रश्न करने को समर्थ न होकर परस्पर में प्रश्न करने को उपस्थित हुये तदनन्तर युधिष्ठिर श्रीकृष्णजी से बोले कि आपके सिवाय दूसरा मनुष्य पितामहजी से प्रश्न करने को समर्थ नहीं है इससे हे यादवेन्द्र, श्रीकृष्णजी! आपही पहिले वार्त्तालाप भीष्मजीसे करिये और हे महात्मन्! हम सब में आपही धर्म्म जाननेवालों में श्रेष्ठ हो यह पाण्डव युधिष्ठिरके वचन सुनकर श्रीकृष्णजी ने भीष्मजी के पास जाकर यह वचन कहा कि हे राजाओं में श्रेष्ठ! क्या आपकी रात्रि सुख से व्यतीत हुई और शुद्ध लक्षणवाली बुद्धि क्या आप में वर्त्तमान है और हे जितेन्द्रिय! क्या सम्पूर्ण ज्ञान आप में प्रकाशित हैं और हृदय में कोई ग्लानि तो नहीं है आपका चित्त सावधान है यह सुनकर भीष्मजी बोले कि हे कृष्ण! आपकी कृपा से मेरा चित्त सबप्रकार से आनन्द में है अर्थात् अङ्गोंकी वेदना भूल परिश्रम और थकावट ग्लानि आदि सब दैहिक व्यथा दूर होगई और भूत भविष्यत् वर्त्तमान सब बातोंको देखता हूं हे अविनाशिन्! वेद में कहेहुये जो धर्म्म हैं और जो वेदान्त से प्राप्त होनेवाले शम दम संन्यास आदि धर्म्म हैं उन सबको देखता हुआ यथार्थ जानता हूं और श्रेष्ठ पुरुषों के कहेहुये धर्म्म भी मेरे चित्त में वर्त्तमान हैं सो हे जनार्द्दन! मैं देश काल जाति कुल आदि के धर्म्मों का जाननेवाला हूं और चारों आश्रमोंके धर्म्मों के अर्थ को भी जानता हूं वह सब मेरे हृदयमें वर्त्तमान हैं और सब राजधर्म्मों को भी जानता हूं और जहां जो कहने के योग्य है उसको भी कहूंगा और हे जनार्द्दनजी! आपकी कृपा से मेरे चित्त में शुभ बुद्धि उत्पन्न हुई आपके अनुग्रह से मैं तरुण के समान सब बातों में होगया हूं अब हे माधवजी! मैं कल्याणकारी धर्म्म के रखने को समर्थ हूं हे माधव! आपनेही पाण्डवों से कल्याण-

कारी धर्म्म श्रीमुख से क्यों नहीं कहा और यहां आपको क्या अभीष्ट है उसे वर्णन कीजिये वासुदेवजी बोले कि हे कौरवेन्द्र ! तुम मुझको संसारका हितकर्त्ता मोक्षरूप जानो सत्य असत्य व दृश्यमान पदार्थ मुझही से हुये चन्द्रमा शीतल प्रकाशवान् है ऐसा कहने से कौन पुरुष सन्देह करेगा उसी प्रकार मेरे यशस्वी होने में भी कौन आश्चर्य करेगा हे महातेजस्विन् ! मुझको तेरा यश प्रसिद्ध करना अभीष्ट है इससे हे भीष्म ! मैंने तुझमें बड़ी बुद्धिको प्रवेश किया सो हे पृथ्वीपाल ! जबतक यह पृथ्वी वर्त्तमान रहैगी तबतक तेरी अविनाशिनी कीर्त्ति लोकोंमें प्रसिद्ध रहैगी हे भीष्मजी ! आप प्रश्न करनेवाले पाण्डव युधिष्ठिरसे जो कहोगे वह आपका वचन वेदवचनों के समान पृथ्वीपर अचल होगा जो पुरुष आपके इस प्रमाण से आत्मा को आत्मा में मिलावेगा वह देहत्याग करके सब प्रश्नोंके फल को पावेगा इसीकारण हे भीष्मजी ! मैंने आपको दिव्य बुद्धि दी जबतक इस भूलोक में पुरुषका यश वर्त्तमान रहता है तबतक उसकी कीर्त्ति का नाश नहीं होता हे भरतवंशिन्, राजन्, भीष्म ! यह मरनेसे बचेहुये धर्म्म के पूछने की इच्छा करनेवाले राजालोग आपके चारों ओर बैठेहैं उनसे धर्म्मों को कहो आप अवस्था में वृद्ध शास्त्र और आचारोंसे पूर्ण राजधर्म्म आदि सब धर्म्मोंमें विख्यात हो जन्मसे लेकर आजतक आपका कोई पाप किसी ने नहीं देखा सब राजालोग आपकोही धर्म्मका जाननेवाला समझते हैं जिस प्रकार पिता पुत्रको उपदेश करता है उसीप्रकार आप नीति का वर्णन कीजिये हे राजन् ! तुमने ऋषि देवता आदि की सदैव उपासना करी इसकारण सत्पुरुष से पूछेहुये तुम्हारे धर्म्मोंके सुननेकी इच्छा सब राजालोगों को है इससे आप इस धर्म्म को अवश्य कहिये ज्ञानियों ने धर्म्मको पण्डितोंके करने योग्य कहा है हे समर्थ ! जो आप धर्म्मको न कहोगे तो बड़ा दोष होगा इससे आप इन राजाओं को अपना पुत्र पौत्र समझकर इनके प्रश्नोंको सुन्दर रीतिसे वर्णन करो ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पचपनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि हे राजन्, जनमेजय ! इन बातों को सुनकर भीष्मजी बोले कि बड़े आनन्द की बात है कि अब मेरा चित्त और वाणी दृढ़ है इससे मैं धर्म्मोंको वर्णन करूंगा हे गोविन्द, माधव ! आपकी कृपा से मैं सब कहने को समर्थ हूं आप सनातनरूप होकर सब जीवों के आत्मा हो और हे धर्मात्मन्,

युधिष्ठिर ! तुम सब धर्म्मोंको मुझसे पूछो मैं बड़ी प्रसन्नता से तुम्हारे पूछेहुये धर्म्मोंका वर्णन करूंगा जिस राजऋषि धर्म्मात्मा के उत्पन्न होनेसे सब ऋषि मुनि प्रसन्न हुये वह पाण्डव मुझसे प्रश्न करने को योग्य है धर्म्म का प्रकाश करनेवाला कौरववंश में जिसके समान कोई नहीं है वह पाण्डव मुझसे प्रश्न करे जिसमें धैर्य्यता, शान्तता, ब्रह्मचर्य्य, क्षमा, धर्म्म, पराक्रम और तेज सदैव वर्त्तमान हैं और जो भाई, बन्धु, अतिथि, सेवक, शरणागतों को अच्छेप्रकार से सत्कार करके श्रेष्ठ आचरणों से मानता है और सत्यता, दान, तप, शूरता, शान्ति, चातुर्य्यता, असंभ्रमता आदि गुण जिसमें हैं वह पाण्डव मुझसे प्रश्न करे जो धर्म्मात्मा इच्छा, क्रोध, भय और प्रयोजन के लिये अधर्म्म को नहीं करे अथवा जो सदैव सत्यवक्ता सहनशील और ज्ञानी अतिथियों का प्यारा सदैव दान सत्पुरुषों को देता है और प्रतिदिन यज्ञ वेदपाठ करता श्राद्धों में प्रीति करनेवाला है वह पाण्डव मुझसे धर्म्म पूछने को योग्य है और जो शान्त ब्रह्मज्ञान का उपदेश पानेवाला है वह पाण्डव मुझसे इच्छापूर्वक प्रश्न करे यह सुनकर वासुदेवजी बोले कि बड़ी लज्जा में डूबे लोक की निन्दा से भयभीत धर्म्मराज युधिष्ठिर आपके पास नहीं आते हैं हे राजन् ! इस लोक का स्वामी युधिष्ठिर लोक के नाश करने की निन्दा से आपके समीप नहीं आता है जो गुरु भक्त सम्बन्धी बान्धव अर्घ के योग्य थे उनको बाणों से छेदकर आपके पास नहीं आता है भीष्मजी बोले कि हे श्रीकृष्णजी ! जैसे ब्राह्मणों का धर्म्म, दान, तप, वेदपाठ है उसीप्रकार क्षत्रियों का धर्म्म युद्ध में देह का त्यागना है जो राजा मिथ्या कर्म्म करनेवाले पिता, पितामह, गुरु, सम्बन्धी और बान्धवों को युद्ध में मारे वह भी धर्म्म है हे केशव ! जो क्षत्रिय प्रण का त्यागनेवाला लोभी पापी भी होके युद्ध में गुरुओं को मारता है वह धर्म्म का ज्ञाता है जो पुरुष लोभ से धर्म्म की सनातनमर्य्यादा को नहीं विचारता है और जो क्षत्रिय उस लोभी को युद्ध में मारता है वह भी निश्चय करके धर्म्म का जाननेवाला है और जो क्षत्रिय युद्ध में पृथ्वी को रुधिर के स्वरूप जल और कटेहुये शिर के समान तृण और हाथियों के तुल्य पहाड़ और ध्वजाओं के समान वृक्ष धारण करनेवाली करता है वह धर्म्म का ज्ञाता है युद्ध में बुलायेहुये क्षत्रिय को सदैव लड़ना चाहिये क्योंकि मनुजी ने युद्ध को धर्म्म और स्वर्ग और इस लोक का देनेवाला कहा है वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी से इसप्रकार कहेहुये धर्म्मपुत्र

युधिष्ठिर नम्रतापूर्व्वक पास जाकर उनके नेत्रों के सामने उपस्थित हुये और दोनों चरणों को पकड़लिया फिर उन भीष्मजीने भी उनको प्रसन्न किया और उसका मस्तक सूंघकर कहा कि बैठो फिर सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजी के पुत्र भीष्मजी ने उनसे कहा कि हे तात! तुम विश्वास करके मुझसे प्रश्न करो और किसी बात का भय मत करो ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

छप्पनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी को प्रणाम और पितामह को दण्डवत् और सब गुरुओं की प्रतिष्ठा करके पूछा कि निश्चय राजाओं का धर्म्म उत्तम है क्योंकि जब ऐसे धर्म्मज्ञों ने इसको माना है तो मैं भी इसको सत्यही जानता हूं सो हे पितामह! सम्पूर्ण राजधर्म्मों को कहो क्योंकि राजधर्म्मही इस सम्पूर्ण जीवलोक की रक्षा का मुख्य स्थान है हे कौरव! धर्म्म, अर्थ, काम यह तीनों राजधर्म्मों में रक्षा करनेवाले हैं और इसी राजधर्म्म में मोक्षधर्म्म भी अच्छे प्रकार से वर्त्तमान है जैसे कि घोड़े की बागडोर और हाथी का अंकुश होता है इसीप्रकार राजशासन भी लोक का धर्म्मरूप कहा जाता है राजऋषियों से सेवित उस धर्म्म में जो अधिक अज्ञान होजायँ तो ऐसी दशा में लोक की मर्य्यादा न रहैगी और सब लोग व्याकुल होजायँगे जैसे कि अँधेरे को सूर्य का उदय नाश करता है वैसेही राजधर्म्म भी गुप्त अशुभगति को दूर करते हैं अर्थात् राजा से दण्ड पानेवाले अपराधी पवित्र होकर स्वर्ग को जाते हैं इस हेतु से हे पितामह! आप पहिले राजधर्म्मों को वर्णन कीजिये आप धर्म्मधारियों में श्रेष्ठ हो हे परन्तप! हम सबका उत्तमज्ञान आपके द्वारा प्राप्त हो क्योंकि वासुदेवजी भी आपको बुद्धि में महान् जानते हैं भीष्मजी बोले कि मैं श्रेष्ठ धर्म्म को नमस्कार करता हूं और संसार के स्वामी श्रीकृष्णजी को भी नमस्कार है अब ब्राह्मणों को नमस्कार करके वेदों से जानने के योग्य सनातनधर्म्म को कहता हूं हे युधिष्ठिर! आप सावधान होकर अपने पूछेहुये सब राजधर्म्मों को मुझसे सुनो और जो२ दूसरी भी बात सुनना चाहते हो उसे भी सुनो हे कौरव, युधिष्ठिर! उत्तम राजा को प्रजा की प्रसन्नता के निमित्त पहिले बुद्धि के अनुसार देवता और ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये क्योंकि देवता और ब्राह्मणों के पूजने से धर्म्म के ऋण से उद्धार को पाता है और लोक में

अच्छेप्रकार से पूजित होता है हे पुत्र, युधिष्ठिर ! तुम सदैव उद्योग के साथ कर्म्म करो विना उद्योग के दैव अर्थात् प्रारब्ध राजालोगों के अभीष्टों को सिद्ध नहीं करता यह दोनों प्रारब्ध और उद्योग साधारण हैं मैं उद्योग कोही उत्तम मानता हूं फल के द्वारा प्रारब्ध को निश्चय करके कर्म्म न करने के दोषसे सिद्धि में दुःख से निवृत्त होता है तुम प्रारब्ध कर्म्म के निष्फल होजाने का शोक मत करो और इसीप्रकार से सदैव उद्योग करो यही राजाओं की बड़ी नीति है निश्चय है कि राजाओं की सिद्धि का करनेवाला सिवाय सत्यता के और कोई कर्म्म नहीं है सत्यमें प्रवृत्त राजा इसलोक परलोक दोनों में प्रसन्न रहता है हे राजेन्द्र! सत्यता ही ऋषियों की उत्तम द्रव्य है उसी प्रकार सत्यता के सिवाय राजाओं का विश्वास उत्पन्न करनेवाला दूसरा कर्म्म नहीं है गुणवान्, सदाचारी, स्थिरस्वभाव, दयावान्, धर्म्मपरायण, जितेन्द्रिय, सावधान, बहुत दानी, प्रसन्नमुख, सत्पुरुषोंकी शरण लेनेवाला राजा कभी नाशको नहीं प्राप्त होताहै सो हे कौरवनन्दन ! तुम सब कर्म्मों में तीन कर्म्मों के गुप्त करनेवाले नीति विचारके साथ सत्य बोलने में सावधान हो वह तीन कर्म्म यह हैं कि अपने दोष को छिपाना और शत्रु के दोषको निश्चय करना तीसरे जो उद्योग प्रारम्भ करना हो उसको गुप्त करना और जो सलाह कीजाय वह भी गुप्त करना बराबर मृदुलता करनेवाला राजा सब दशा में आज्ञाभङ्ग होने के योग्य होता है और तीव्रप्रकृति होने से सब प्रजा व्याकुल रहती है इस हेतु से दोनों कर्म्मोंको करो हे महावक्ता, पुत्र, युधिष्ठिर ! ब्राह्मण तुझ से दण्ड के योग्य नहीं हैं हे पाण्डव ! इस लोक में यह ब्राह्मण सब मनुष्यों में उत्तम हैं इसमें महात्मा मनुजी ने दो श्लोक कहे हैं उन दोनों श्लोकों के धर्म्मों को तुम अपने चित्त में धरने के योग्य हो कि-जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पाषाण से लोहा उत्पन्न हुआ उन्हों का सर्वव्यापी तेज अपनीही योनि में शान्त होता है जब लोहा पत्थर को मारता है और अग्नि से जल माराजाता है और क्षत्रिय ब्राह्मण से शत्रुता करता है तब वह तीनों पीड़ा को पाते हैं इससे हे महाराज ! ब्राह्मण प्रतिष्ठा और पूजने के योग्य हैं हे पुरुषोत्तम ! इसप्रकार जो तीनों लोकों को दुःख देनेवाले ऐसे पुरुष हों वह बराबर भुजाओं से दण्ड देने के योग्य हैं हे राजन् ! प्राचीन समय में महर्षि शुक्रजी ने दो श्लोक कहे हैं तुम एकाग्रचित्त से उनको सुनो धर्म्म सम्बन्ध रखनेवाला राजा संसार में शस्त्र उठाकर युद्ध में आनेवाले वेदपाठी ब्राह्मण को भी।

अपने धर्म्म से पकड़े वह धर्म्म का जाननेवाला है और उस कर्म्म से धर्म्म का नाश करनेवाला नहीं होसक्ता क्योंकि क्रोध क्रोध को पाता है हे राजन् ! यद्यपि ऐसा भी है तौभी ब्राह्मण रक्षा के योग्य है और अपराधी ब्राह्मण को भी देश से बाहर निकालदे हे राजन् ! जिस ब्राह्मण को दूसरे की स्त्री से कुकर्म्म करने का दोष लगा हो उसपर भी दया करे ब्राह्मण का मारनेवाला गुरुकी स्त्री से कुकर्म्म करनेवाला इसीप्रकार बालवध करनेवाला और राजासे शत्रुता करनेवाला होनेपर भी देश से बाहर निकालदेनाही वेदपाठी ब्राह्मण का विचार कियागया है उनको किसी दशा में देहदण्ड नहीं होसक्ता और जो ब्राह्मणों में भक्ति रखनेवाले हैं वह राजा के सम्बन्धी प्यारे होवें ब्राह्मणों के भक्त मनुष्यों के समूहों से बढ़कर कोई उत्तम ख़ज़ाना नहीं है हे राजन् ! जो शास्त्र के निश्चय करनेवाले हैं वह सब छह क़िलों में से मनुष्यों के क़िले को दुर्गम और अजेय मानते हैं वह छह क़िले यह हैं मरुदेश, जल, पृथ्वी, वन, पहाड़, मनुष्य इसीकारण बुद्धिमान् राजा को चारों वर्णों पर कृपा करनी चाहिये जो राजा धर्म्मात्मा और सत्यवक्ता है वह प्रजा को प्रसन्न करता है हे पुत्र, युधिष्ठिर ! तुझ क्षमावान् को सब जातियों में दण्ड की क्षमा न करनी चाहिये क्योंकि हाथी के समान भी क्षमाशील राजा नीच और धर्म्म का विरोधी होता है हे महाराज ! प्राचीन समय में बृहस्पतिजी के धर्म्मशास्त्र में इसी आशय का एक श्लोक कहा है उसको मुझसे सुनो कि क्षमापराधी राजा की नीच मनुष्य सदैव अप्रतिष्ठा करते हैं जैसे क्षमावान् हाथीपर हाथीवान् सवार होजाता है इस से श्रीमान् राजा वसन्त ऋतु के सूर्य्य के समान न शीतल हो न अधिक ऊष्म का देनेवाला हो हे राजन् ! तुमको अपने और दूसरे मनुष्यों की परीक्षा प्रत्यक्ष अनुमान से करनी योग्य है इससे तुम सब व्यसनों को त्याग करो राजा सदैव विजयके हेतु शत्रुओं पर अपने शूर पुरुषों को चढ़ावे साम नीति के स्थानापन्न दण्ड को त्यागे वह व्यसन यह हैं शिकार करना, पांसा खेलना, दिन का सोना, निन्दा, स्त्रीसङ्ग, नशा पीना, बाजाबजाना, सरोद व्यर्थ मद्यपान इन कर्म्मों से उत्पन्न होनेवाले सब व्यसन हैं इनमें कठोर वचन धन को व्यर्थ लेना दण्ड लेना यह क्रोध से उत्पन्न होनेवाले तीन व्यसन कठिन हैं कठिन व्यसनों का रखनेवाला सदैव अप्रतिष्ठित होता है और लोकको व्याकुल करता है और प्रजा से शत्रुता रखनेवाला होता है और राजा को विवाहिता रानी से सदैव प्रीति

रखनी चाहिये इस का यह कारण है जैसे कि गर्भवती रानी चित्तमें आनेवाली प्रियवार्त्ता को त्याग करके गर्भ की वृद्धि को करती है उसीप्रकार राजाको भी निश्चय कर्म्म करना चाहिये धर्म्मात्मा राजा को अपने चित्त की प्रिय बातों को त्यागके उन बातों में ध्यान लगाना चाहिये जिनसे संसार का उपकार हो हे युधिष्ठिर ! तुझको किसी समय भी धैर्य्य त्यागना उचित नहीं है धैर्य्यवान् चतुरङ्गिणी सेना रखनेवाले राजा को किसी स्थान में भय नहीं है इससे तुम को नौकरों के साथ कभी हँसी न करना चाहिये इसमें यह दोष हैं कि सेवक लोग बहुतहँसी आदि करने से स्वामी का अपमान करते हैं और अपने अधिकारपर भी स्थित नहीं होते हैं और आज्ञाभङ्ग करते हैं और करने के योग्य कामों के करने में भी सन्देह उत्पन्न कराते हैं और गुप्त विचार को भी प्रकट करते हैं और मांगने के अयोग्य वस्तुओं को मांगते हैं और राजा के भोजन योग्य वस्तुओं को भोजन करते हैं क्रोध करके भड़कते हैं और राजा की छाती पर चढ़ते हैं और छलयुक्त बातों से संसार के कामों को बिगाड़ते हैं और जालसाज़ी के आज्ञापत्रों से उसके देश को निर्बल करते हैं और स्त्रियों के रक्षकों से मिलजाते हैं और एकसी पोशाक पहिनने लगते हैं और राजा के सम्मुख में ही थूकाथाकी किया करते हैं और वह निर्लज्ज होकर उसके वचन को संसार में प्रकट करते हैं राजा के मृदु स्वभाव होने से और चित्त मिले होने से नौकरलोग उसका अपमान करके उसके घोड़े हाथी रथ आदि सवारियोंपर सवार होते हैं और सभा में बैठकर सुहृज्जन ऐसे वचनों को कहते हैं कि हे राजन् ! यह आपका कठिन काम है अथवा बुरा काम है और काम बिगड़नेसे हँसते हैं और इनाम आदिसे प्रसन्न नहीं होते फिर परस्परमें ठट्ठा करते हैं गुप्त मन्त्रको प्रकट करते हैं और बुरे कामको अधिक प्रसिद्ध करते हैं और उसकी आज्ञाको खेल और अपमान से करते हैं इसीप्रकार भूषण भोजन और स्नान की वस्तु चन्दन आदिके निबट जानेपर उसकी आज्ञाभङ्ग करतेहुये निडर और ढीठ होजाते हैं और अपने अधिकार को तुच्छ कहकर त्याग करते हैं और नियत मासिक पर सन्तोष नहीं करते हैं और राज्य के धनको चुराते हैं और राजाके साथ क्रीड़ा व्यवहार किया चाहते हैं और लोगों में कहते हैं कि यह राजा हमारा ग़ुलामहै हे युधिष्ठिर ! राजा के मृदुलचित्त होने में यह दोष और अन्य भी बहुत से दोष उत्पन्न होते हैं ॥६०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सत्तावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि राजा को सदैव उद्योग और विचार करना चाहिये स्त्री के समान अविचारी राजा की प्रशंसा नहीं होती इस स्थान में शुक्रजीने एक श्लोक कहा है कि जैसे सर्प्प बिलके रहनेवाले जीवों को निगलजाता है उसी प्रकार पृथ्वी भी दण्ड के योग्य पुरुषों को दण्ड न देनेवाले राजाको और वेदाध्ययन के निमित्त परदेश न जानेवाले ब्राह्मण को और पर्यटन न करनेवाले संन्यासी को निगलजाती है इससे तुम हृदय में सोचकर इस बातको ठानकर सलाह के योग्य पुरुषों से सलाह करो और दण्डके योग्य पुरुषोंको दण्ड दो जो पुरुष सात अङ्गवाले राज्य के विपरीत काम करे वह चाहे गुरु हो या मित्र हो मारने के योग्य है हे राजन्! प्राचीन समय में मरुत नाम राजाने बृहस्पतिजी के कहने से यह श्लोक कहा कि कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के योग्य कर्म्म को न जाननेवाले कुमार्गगामी गुरु कोभी दण्ड होता है बाहुके पुत्र राजा सगरने पुरवासियों की वृद्धि के निमित्त असमञ्जस नाम बड़े पुत्र को त्याग किया हे राजन्! उस असमञ्जस लड़के ने पुरवासियों के बालकों को सरयूनदीमें डुबाया इसकारण पिताने उसको क्रोध करके देश से निकाला और उद्दालक ऋषि ने भी अपना प्यारापुत्र महातपस्वी श्वेतकेतु नाम जोकि ब्राह्मणोंसे मिथ्या व्यवहार करता था उसको त्याग किया इसलोक में राजाओं का सनातनधर्म्म यह है कि संसार की प्रसन्नता रक्षा सत्य बोलना व्यवहारका यथार्थ बर्ताव करना दूसरे के धनका नाश करना और समयपर देने के योग्य पुरुषों को देवे और पराक्रमी क्षमावान् सत्यवक्ता होवे वह राजा सुमार्गसे नष्ट नहीं होता है चित्तके क्रोध का रोकनेवाला शास्त्रार्थ में निश्चय बोधवाला और धर्म्म, अर्थ, मोक्ष में सदैव प्रवृत्त अर्थात् दिवसके पूर्वभाग में धर्म्मको और मधाह्नकाल में अर्थ को अन्त में कामको और रात्रि के अन्त में योग को करनेवाला और विचार को गुप्त रखनेवाला राज्यके योग्य है क्योंकि गुप्त रक्षा और सलाह के विना राजाको और कोई नाशकारक नहीं है राजाको चारों वर्ण के धर्म्मों की रक्षा करनी योग्य है और धर्म्मों के अस्तव्यस्त होने से प्रजाकी रक्षा करना राजाओं का सनातन धर्म्म है अच्छे पुरुषोंपर विश्वास करे परन्तु अधिकतर विश्वास न करे और सदैव बुद्धि से छह गुणों के गुण दोषोंको देखे शत्रुके दोषोंका देखनेवाला राजा सदैव प्रशंसनीय है और जो धर्म्म, अर्थ, कामके मूलको जानता है वह दूतों से

काम करानेवाला और गुप्त धन देकर शत्रुके मन्त्रियों को मिलानेवाला है वह भी प्रशंसा के योग्य है विना जीविकावाले पुरुषों की रक्षा करनेवाला और नौकरों का प्रबन्धक होकर मन्द मुसुकानके साथ बोलनेवाला, सुन्दरमुख, वृद्धों का सेवक, निरालस्य, निर्लोभ, सबपुरुषों के चलनपर बुद्धिको स्थिर करनेवाला, दृढ़स्वभाव, सुन्दर दर्शन होवे और कभी सत्पुरुषों से धन का दण्ड न लेवे नीचों से लेकर सत्पुरुषों को देवे आप लेनेवाला और दान करनेवाला शान्तचित्त और सुन्दर साधन करनेवाला, समयपर दान करनेवाला, भोगोंका भोक्ता और शुद्ध आचारवान् शूरभक्त हो और धनलेकर शत्रुओं में न मिलनेवाले उत्तम कुलवाले दूसरे का अपमान न करनेवाले विद्यावान् संसार के जाननेवाले परलोकका विचारकरनेवाले धर्म्ममें प्रवृत्त साधुवृत्ति और पर्वतों के समान दृढ़चित्त पुरुषों को सदैव अपना सहाय बनावे जो राजा ऐश्वर्यवान् होकर उन सहायकों के साथ भोगों में समान होवे केवल छत्र और आज्ञा में अधिक हो ऐसे राजाका चलन शूरपुरुषों के साथ आगे पीछे एक सा होवे इसप्रकार से करताहुआ भी राजा दुःख को नहीं प्राप्त होता जो राजा कि सबके ऊपर सन्देह करनेवाला होवे वह कुटिल लोभी राजा अपनेही मनुष्यों के हाथसे माराजाता है पवित्र और संसार के चित्त को आधीन करने की इच्छा रखनेवाला राजा शत्रुओंसे दबकर नाशको नहीं पाता है और चारों ओरसे दृढ़ होता है क्रोध और व्यसनों से जुदा थोड़ा दण्ड देनेवाला जितेन्द्रिय राजा हिमाचल के सदृश जीवोंका विश्वासपात्र होता है उसीप्रकार ज्ञानी त्यागी और शत्रुओं के छिद्रों के देखने में प्रवृत्त सुन्दरदर्शन सब वर्णों की नीति और अनीतिका जाननेवाला शीघ्रकर्म्मी क्रोधका जीतनेवाला सुगमता से प्रसन्न होनेवाला महासाहसी निरहंकारी क्रियावान् अपनी प्रशंसा न करनेवाला राजा भी संसार का प्यारा होताहै जिस राजा के कर्म्म प्रारम्भही से अच्छे और नीतियुक्त होते हैं वह राजा राजाओं में उत्तमहै जैसे कि पिताके घर में पुत्र स्वच्छन्द आनन्द में रहते हैं उसीप्रकार जिस राजा के देश में मनुष्य निर्भय विचरते हैं वह राजा सब राजाओं में उत्तम है जिस राजा के पुरवासी और देशवासी धनको प्रकट रखनेवाले और नीति अनीति के जाननेवाले हैं वह राजा भी श्रेष्ठतम है जिसके देशवासी अपने कर्म्मों में प्रीति रखनेवाले देह के निरहंकारी धर्म्म में प्रवृत्त जितेन्द्रिय और बुद्धि के अनुसार पोषण करनेवाले होते हैं और जिसके देश में मनुष्य

विजयी सावधान और सेवा के योग्य दूसरे की अप्रतिष्ठा करने की इच्छा से रखनेवाले और दान देने में प्रीति रखनेवाले होते हैं वह राजा है जिस राजाके देश में सत्य २ विषयको मिथ्या से प्रकट करना नहीं है और मिथ्या छल ईर्षा आदि कोई नहीं है उस राजाका धर्म्म सनातन है जो राजा ज्ञानी पण्डितोंका सत्कार करता है और शास्त्रार्थ में दूसरे का भला करनेवाला है और सत्पुरुषोंके मार्ग में चलनेवाला और दानी है वह राजा राज्यके योग्य है जिस राजाके दूत को और करने न करने की सलाह को कभी शत्रुलोग नहीं जानसक्ते वह राजा भी राज्यके योग्य है प्राचीन समयमें किसी राजाके आगे परशुरामजीके चरित्र कहने में यह श्लोक कहागया कि प्रथम राजा अपनी उत्तमता को प्राप्त करे तदनन्तर भार्याको फिर धनको और नीच राजाके होनेमें लोगों को कहां भार्या और कहां धन है जोकि राज्यके चाहनेवाले राजाओंका सनातनधर्म्म राज्य में संसार की रक्षाके विशेष और कुछ नहीं है इसीसे यह रक्षाधर्म्म संसारको धारण कियेहुये है हे राजेन्द्र ! प्राचेतस मनुने राजधर्म्म में यह दो श्लोक कहे वह तुम चित्त से सुनो कि पुरुष इन छह बातों को ऐसे त्याग दे जैसे कि टूटी नौकाको समुद्र में त्यागते हैं उनके नाम यह हैं—उपदेश न करनेवाला आचार्य १ वेद विद्यासे रहित ऋत्विज् २ रक्षा न करनेवाला राजा ३ अप्रियवादिनी भार्य्या ४ गांव का चाहनेवाला गोपाल ५ वन का चाहनेवाला नाई ॥ ६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! यह राजधर्म्मों की रक्षा का आशय तुमसे कहा इस धर्म्म का वर्णन श्रीबृहस्पतिजी ने न्यायके अनुसार कहा है इसीप्रकार महातपस्वी भरद्वाज और महातप भगवान् शुक्रजी और सहस्राक्ष इन्द्र और प्राचेतसमनु गौरशिरामुनि यह सब राजशास्त्रके जारी करनेवाले वेद ब्राह्मणों के रक्षक ब्रह्मवादी संसार की रक्षा करनेवाले राजाओं के धर्म्म की प्रशंसा करते हैं हे धर्म्मात्मन्, युधिष्ठिर ! इस धर्म्ममय युक्तिको मुझसे सुनो चार अर्थात् दूतों को नियत करना समयपर प्रसन्न होकर मासिक देना और युक्तिबलसे राजभाग लेना विना युक्ति के महसूल न लेना सत्पुरुषों का संग्रह करना शूरता चतुराई सत्यता और प्रजाका अभीष्ट करना छलबल से शत्रुओं के पक्षवालों को तोड़ना पुराने टूटेफूटे स्थानों को देखना और समय के अनुसार दो प्रकार के दण्डोंका जारी

करना साधुओंका त्याग न करना कुलीनलोगोंका पोषण और अन्न आदिको इकट्ठा करना ज्ञानियों की सेवा करना और सदैव सेनाको प्रसन्न करना प्रजा का देखना संसारी कामों में खेद न मानना और खजानेकी भी अधिक वृद्धि करना शत्रुसे रक्षा और विश्वास न करना और जो शत्रुओं ने पुरवासियों को व्यापार आदिके छलसे स्वाधीन करलिया हो उनको अपने आधीन करना और शत्रुओं में वर्त्तमान अपने मित्रों को बुद्धि के अनुसार देखना और जो नौकरों को शत्रुलोग अपने आधीन करते हैं उनको देखना कभी नौकरों पर पूर्ण विश्वास न करना अपने देशको देखना उसीप्रकार आपभी दूसरेको दृढ़ता कराना सब कर्म्म नीति धर्म्म के अनुसार करना सदैव उद्योग करना शत्रुओं का अपमान न करना और निकृष्ट कर्म्म कभी न करना जो बृहस्पतिजी ने राजाओंके उद्योग को कहा है वह राजधर्म्म की जड़ है इसके श्लोकों को मुझसे सुनो कि इन्द्रने उद्योगही से अमृतको पाया और असुरों को मारा और नरलोक और सुरलोक दोनों में प्रतिष्ठावान् हुआ जो पुरुष उद्योग करने में निपुण हैं वह वचन के वीर पण्डितों से भी उत्तम समझे जाते हैं उद्योगी पण्डित लोग वीरों को प्रसन्न करके उनकी उपासना करते हैं उद्योगरहित राजा सदैव शत्रुओं से पराजय होने के योग्य है जैसे कि विना विषवाला सर्प विना उद्योग सबल भी निर्बल शत्रुको नहीं मारसक्ता थोड़ी अग्नि भी भस्म कर सक्ती है और थोड़ा विष भी मारडालता है सेना के एक अङ्ग से भी युक्त शत्रु के गढ़पर वर्त्तमान होकर राजा धन और सेना से वर्द्धमान सब देश को तपाता है अपने शत्रु राजा की गुप्तसलाह और उसका वचन और विजय के लिये मनुष्योंका इकट्ठा करना और उसके हृदय का जो कपट हो और विजय आदि के हेतु जो छल हो और जो उसके राज्य के कामों में बिगाड़ हो उन सब बातों का अपनी बुद्धिमत्ता से जानकर विजय करे और देश को स्वाधीन करने के लिये धर्म्मिष्ठ बातें करे यह राज्य करना बड़ा भारी तन्त्र है यह तन्त्र निर्दय राजाओं से धारण नहीं किया जासक्ता और माया का यह उत्तम स्थान राज्य मृदुस्वभाववाले राजा से धारण करने के योग्य नहीं है इस लोक में यह राजधर्म्म विषयरूप है वह सत्यतासेही धारण कियाजाता है इससे मृदुता और कठोरतासे संयुक्त बुद्धि से कर्म्म करना चाहिये यद्यपि संसार की रक्षा करनेवाले राजको हानि भी होजाय वह भी उसका धर्म्मही है राजालोग ऐसे प्रकार के चलन को किया

करते हैं तुझ अच्छेप्रकार से कर्म्म करनेवाले के सम्मुख राजधर्म्मों का यह थोड़ा सा वर्णन किया फिर जिसमें तुझे सन्देह है उसे कहो वैशम्पायन बोले कि इतनी बातके पीछे भगवान् व्यासजी, देवस्थान, अस्म, वासुदेवजी, कृपाचार्य्य, सात्यकी और संजय यह सब अत्यन्त प्रसन्न चित्त होकर बोले कि हे भीष्म! तुम को धन्यवाद है तदनन्तर भीष्मजी के चरणों को स्पर्श करके युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह! इससमय अपने सन्देहों को आप से नहीं पूछूंगा क्योंकि सूर्य्यास्त हुआ फिर युधिष्ठिर, केशवजी, कृपाचार्य्य आदि ब्राह्मणों को दण्डवत् और श्रीगाङ्गेयजी की परिक्रमा करके रथोंपर सवारहुये और दृषद्वती नाम नदी में स्नान आचमन सन्ध्यावन्दनादि कर्मकरके फिर हस्तिनापुर में पहुँचे ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

उनसठवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि फिर वह पाण्डव और यादव प्रातःकाल उठकर सन्ध्यावन्दनादि से निवृत्त होकर रथों पर चढ़ भीष्मजी के पास आये और व्यास आदि ऋषियों को प्रणाम कर चारों ओर को बैठगये और श्रीभीष्मजी को बड़ी नम्रता से प्रणाम करके हाथ जोड़ के यह कहा कि हे भरतवंशिन्, महाराज, भीष्मजी! इस पृथ्वीपर जो यह राजा शब्द प्रचलित होरहा है इसका हेतु क्या है और काहे से उत्पन्न हुआ यह आप मुझ से कहिये सब पुरुषों के समान भुजा, ग्रीवा, बुद्धि, प्राण, आत्मा, दुःख, सुख, पीठ, मुख, उदर आदि रखने वाला और एकसाही वीर्य्य, अस्थि, मस्तक, मांस, रुधिर रखनेवाला और श्वास का भी बराबर आना जाना और एकसा देह और जन्म मरणवाला और मनुष्यों के समानही गुण रखनेवाला एक पुरुष किसकारण से सब मनुष्यों पर आज्ञा करनेवाला होता है और अकेला किसप्रकार से शूरवीर और उत्तम पुरुषों से व्याप्त कैसे सब पृथ्वी की रक्षा करता है और संसार की प्रसन्नता को भी चाहता है उसी अकेले की प्रसन्नता से सब संसार प्रसन्न होता है और उस के व्याकुल होने में सब महाव्याकुल होते हैं सो वक्ताओं में श्रेष्ठ आप इस बात को मुझको समझा के कहिये मेरी बुद्धि में यह छोटा नहीं है जो सब पुरुषों में देवताओं के समान पूजित होता है भीष्मजी बोले कि हे नरोत्तम! तुम सावधान होकर सब वृत्तान्त सुनो जैसे कि सत्ययुग के प्रारम्भ में राजशब्द हुआ उससमय नतो कोई राजा और न राज्य था न दण्ड और दण्ड देनेवाला था सब संसारी

लोगों ने परस्पर में धर्म्महो से रक्षा करी तब धर्म्म से परस्पर रक्षा करनेवालों ने बड़ा खेद पाया इसकारण उनमें अज्ञानता प्रकट हुई और अज्ञान के वशीभूत होकर ज्ञान के लोप से उनका धर्म्म नाश हुआ फिर उत्तम ज्ञान के नष्ट होने से मोह के वशीभूत हो सब मनुष्य लोभ में प्रवृत्त हुये उसके पीछे मनुष्य असम्भव बातों के विचार करनेवाले हुये और फिर वहां कामनाम दूसरी इच्छा भी आकर वर्त्तमान हुई फिर काम के वशीभूत मनुष्यों को राग ने आकर दबाया और राग में प्रवृत्त होकर मनुष्यों ने करने और न करने के योग्य कर्म्म को नहीं जाना फिर हे राजन्! उन्हों ने भोगकरने के अयोग्य स्त्री के भोग को और इसी प्रकार कहने और न कहने योग्य वचन को और भोज्य और अभोज्य वस्तु को और दोषों को भी त्याग न किया अर्थात् सब बातें करनेलगे ऐसी दशा में इस नरलोक को बेमर्यादा होने से वेद भी लोप हुआ फिर वेद के लुप्त होने से धर्म्म का नाश हुआ फिर वेद और धर्म्म के लोपहोने पर देवताओं में भय उत्पन्न हुआ तब वह भयभीत देवता ब्रह्माजी की शरण में गये और महादुःखी हो हाथ जोड़कर ब्रह्माजी को प्रसन्न करके कहा कि हे भगवन्! लोभ मोह आदि के होने से नरलोक में सनातन वेद और धर्म्म का लोप हुआ इस कारण हम सबमें भय उत्पन्न हुआ इसी हेतु से हमलोग भी नरलोकवासियों के समान होगये अर्थात् स्वाहा आदि के न होने से भूखे मरते हैं हमारी वर्षा नीचे को होती है और मनुष्य ही वर्षा करनेवाले हैं उनकी क्रिया नष्ट होने से हमको संशय प्राप्त हुआ इससे हे पितामह! यहां जो कल्याणकारी कर्म्म है उसको ध्यान करो आपही के प्रभाव से यह नवीन उत्पन्न होनेवाला भय नाश को प्राप्त होगा तब ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारे कल्याण को विचारूंगा जिससे कि तुम्हारा भय दूर हो फिर ब्रह्माजी ने अपनी बुद्धि से एक लाख अध्याय बनाये जिनमें कि धर्म्म, अर्थ, काम का वर्णन है और ब्रह्माजी सेही यह त्रिवर्ग गुण प्रसिद्ध हुआ फिर चौथा मोक्ष है जो कि इस त्रिवर्ग के फल और साधन से अपना फल और साधन पृथक् रखता है अर्थात् मोक्ष का त्रिवर्ग दूसरा है तात्पर्य यह है कि इच्छा फल से रहित है वह भी उसीमें कहा है और धर्म्म आदि के विपरीत होने का कारण सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण और धनुष से व्यापारियों का मार्ग में निवास, तपस्वियों की वृद्धि, चोरों का नाश, दण्ड से उत्पन्न होनेवाला यह त्रिवर्ग भी वर्णन किया चित्त, देश, काल, साधन, कर्म्म,

सुहृद् आदि जिनके सुधारने का कारण नीति से उत्पन्न होनेवाला षड्वर्ग भी वर्णन किया अर्थात् नीति के बल से प्रजाकी व्याकुलता भी मिटती है और कुदेश भी सुदेश होजाताहै और कलियुग भी सत्ययुग होजाताहै हे भरतवंशिन्! कर्म्मकाण्ड,ज्ञानकाण्ड,वार्त्ता अर्थात् खेती,जीविका, व्यापार आदि का काण्ड, दण्डनीति अर्थात् प्रजा के पोषण करने की विद्या औ बड़ी विद्या उन लाख अध्यायों में दिखाई मन्त्रीलोगों की रक्षा और उनपर ऐसा गुप्त दूत का नियत करना जो कि नानाप्रकार की युक्तियों का जाननेवाला हो जैसे कि ब्रह्मचारी आदि के रूप रखनेवाले और हरएक स्थान में भिन्न २ पोशाकवाले तीन २ नियत हों यह सब बातें और राजकुमार का लक्षण उनमें वर्णन किया हे राजन्! इसमें साम, दाम, दण्ड, भेद और पांचवां उदासीनता भी सम्पूर्णता के साथ वर्णन की सब गुप्त विचार उसीप्रकार भेद के निमित्त सलाह का मिथ्या करना और मन्त्र की सिद्धि और असिद्धि का जो फल है उसको भी वर्णन किया और तीन प्रकार की सन्धियां जो भय और लेख और धन से सम्बन्ध रखती हैं अधम, मध्यम, उत्तम नाम से वर्णन कीं भय से होनेवाली सन्धि लघु और सत्कार से होनेवाली सन्धि मध्यम है और लेनदेन से होनेवाली सन्धि उत्तम है *यात्रा के चारों समय धर्म्म और त्रिवर्गका विस्तार और धर्म्मयुक्त विजय और अर्थकी विजय और †आसुरी विजय सम्पूर्णता के साथ वर्णन की ‡ और उससे पञ्चवर्ग के लक्षण भी तीन प्रकार के वर्णन किये और प्रकाशित वा अप्रकाशित दोनों प्रकार की सेना भी कही उन में प्रकाशित सेना आठप्रकार की है और अप्रकाशित सेना बड़े विस्तार की है॥

हे पाण्डव! रथ, हाथी, घोड़े, पैदल, भारकश, नौका, दूत, उपदेशक गुरु यह सेना के आठ अङ्ग हैं और जङ्गम विष बिच्छू आदि से पैदा होनेवाले और स्थावर विष और चूर्ण में मिलनेवाले कहे और वस्त्र आदि के स्पर्श में और खाने पीने की वस्तुओं में विष मिलाना और मारण आदि प्रयोग यह तीन प्रकार के विष का मेल करना दण्डरूप कहा और शत्रु, मित्र, उदासीन यह भी वर्णन किये ग्रह नक्षत्र आदि मार्गों के गुण इसीप्रकार पृथ्वी के गुण मन्त्र यन्त्र आदि से अपनी भयभीत प्रजा की रक्षा करना रथ आदि के कारखाने को देखना मनुष्य हाथी घोड़े रथ आदि को नीरोग और पराक्रमी करनेवाली

---

* अपने मित्रों की जब वृद्धि हो—अपने खज़ाने का इकट्ठा होना—शत्रु के मित्रों का नाश—शत्रु के ख़ज़ाने का नाश—यह चार यात्रा के समय हैं। † रात्रि को मारपीट करना। ‡ मन्त्री—देश—गढ़—सेना—खज़ाना—यह पञ्चवर्ग हैं और अत्यन्त—साधारण—न्यून यह तीन प्रकार हैं॥

अनेक प्रकार की युक्तियां और बहुत प्रकार के व्यूह और विचित्र युद्ध में जानकारी यह भी उसमें वर्णन किये और उत्पात निपात अर्थात् ग्रहों का विरोध और पृथ्वी का कम्पन और उल्कापात होना उत्तम युद्ध और भागना और शस्त्रों का तीव्र करना और उनका ज्ञान भी वर्णन किया सेना का दुःख और उसीप्रकार सेना का प्रसन्न करना पीड़ा और आपत्ति के समय का ज्ञान भी वर्णन किया इसीप्रकार बाजों के शब्दों से चढ़ाई आदि के इङ्गित को समझ कर काम करना योग संचार, पताका और मन्त्र आदि के सुनने और देखने से मोहित करना और चोर उग्ररूप वनवासी मनुष्यों की सेना से शत्रु के देश को पीड़ा देना यह सब उसमें वर्णन किया और अग्नि लगानेवाले विष देनेवाले मूर्त्ति बनानेवाले और सेना के प्रधानों को अपनी ओर मिलाने और खेती आदि के काटने और हाथियों के वध करने और सन्देह पैदा करने रोजीना देने और विश्वास उत्पन्न करने से शत्रु के देश को पीड़ा देना वर्णन किया सात अङ्ग रखनेवाले राज्य के नाश वृद्धि और समानता और दूत के उद्योग के फल से अपने देश की वृद्धि का वर्णन किया और शत्रु मित्र और मध्यस्थों की फूट का वर्णन किया इसीप्रकार पराक्रमियों को पीड़ा देना और मारना वर्णन किया अत्यन्त सूक्ष्म व्यवहार उसीप्रकार कांटे का उखाड़ना अर्थात् दुष्टों को मारना मल्लक्रीड़ा व्यायाम आदि शस्त्रों के चलाने का अभ्यास धन का संचय यह सब वर्णन किये विना जीविका के पुरुषों का पालना और सेवकों का देखना समयपर धन का दान करना व्यसनों में प्रवृत्त न होना यह सब वर्णन किया इसीप्रकार राजगुण अर्थात् चढ़ाई आदि सेनापति के गुण त्रिवर्ग का हेतु और गुण दोष वर्णन किये नौकरों के अनेक प्रकार के बदचलन और नेकचलन सब में संदेह करना भूल का त्यागना अप्राप्त को प्राप्त करना और प्राप्तवस्तु की बहुत वृद्धि करना फिर अच्छी वृद्धि पानेवाली वस्तु को अच्छे सुपात्रों का दान करना यह सब वर्णन किया धन का खर्च करना धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिये कहाजाता है इसीप्रकार आपत्ति के दूर करने के लिये चौथा दान इसमें वर्णन किया हे राजन्! इसीप्रकार इस लाख अध्याय में क्रोध और काम से उत्पन्न होने वाले दश व्यसन वर्णन किये और आचार्यों ने शिकारबाजी, पांसा, मद्य पीना, स्त्री यह चार व्यसन काम से उत्पन्न होनेवाले कहे ब्रह्माजी ने उनको भी इसमें वर्णन किया और वैसेही क्रोध से उत्पन्न होनेवाले कठोरवचन, उग्रता,

दण्डपारुष्य, देहको घायल करना, त्याग करना, धन को निरर्थक ख़र्च करना यह छह व्यसन वर्णन किये नानाप्रकार के यन्त्र और उनकी क्रिया वर्णन की शत्रु की सेना से देश आदि की पीड़ा और घायल होना स्थानों का तोड़ना यह सब वर्णन किया सीमा के वृक्षों का तोड़ना और राज्य की आमदनी का रोकना शस्त्र आदि सामान के बनाने की रीतियों का वर्णन किया और पणवानक, शङ्ख, भेरी बाजों का बजाना और द्रव्यों का संग्रह करना वर्णन किया जो कि संख्या में छह हैं मणि, पशु, पृथ्वी, वस्त्र, दासी, दास और स्वाधीन होनेवाले को शान्त करना सत्पुरुषों का पूजन करना पण्डितों के यज्ञांगतादान और होम की विधि को जानना वर्णन किया मङ्गलवस्तु सुवर्णादि का स्पर्श करना, देह को शृङ्गार करना, भोजन करना, सदैव ईश्वरको मानना यह सब वर्णन किया अकेले की चढ़ाई की रीति सत्यता मीठा बोल उत्सव समाजों की क्रिया इसीप्रकार ध्वजा धन आदि का वर्णन किया हे युधिष्ठिर ! इसीप्रकार चौतरा आदि बैठने का स्थान मनुष्यों के गुप्त प्रकट वृत्तान्तों को और व्यवहारों को सदैव देखना वर्णन किया ब्राह्मणों को अदण्ड होना और युक्ति से दण्ड देना और विजातिवालों और गुणों से उत्पन्न होनेवाली प्रतिष्ठा पुरवासियों की रक्षा देश की अच्छी वृद्धि करना और बारह राजाओं से सम्बन्ध रखनेवाले मण्डल में जो स्थिरचित्त है उसका भी वर्णन किया अर्थात् विजय के चाहनेवाले चारों ओर चार शत्रु और उनसे आगे चार मित्र फिर उनसे आगे चार उदासीन यही मण्डल के बारह राजा होते हैं और बहत्तर प्रकार के संस्कार देह, देश, जाति और कुल के धर्म्म अच्छेप्रकार वर्णन किया और धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष युक्तियां और अनेकप्रकार की इच्छा धन आदि इसमें कहे मूल कर्म्म अर्थात् माल के प्रबन्ध की रीति माया, योग, नदी और नियत प्रदेशों के दोषी करने का भी वर्णन किया और जिन २ रीतियों से यह संसार विरुद्ध न होवे वह सब रीतियां नीतिशास्त्र में वर्णन कीं वह ब्रह्माजी इस उत्तमशास्त्र को बनाकर उन देवताओं से जिनमें मुख्य इन्द्र देवता थे प्रसन्न होकर यह बोले कि संसार की वृद्धि और धर्म्म, अर्थ, कामके नियत होनेके वास्ते सरस्वतीकी यह सार बुद्धि प्रकट है लोक की रक्षा करनेवाला दण्ड पारितोषिक से संयुक्त यह नीतिशास्त्र दण्ड युक्त होकर लोगों में विचरेगा यह संसार दण्ड ही से आधीन होता है और दण्डही को पाता है यह दण्डनीति नाम से प्रसिद्ध तीन

लोकों में वर्त्तमान होगी छहगुणों से भरी यह दण्डनीति महात्माओं के आगे नियत होगी इसमें धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सबका वर्णन किया तदनन्तर भवरूप विशालाक्ष स्थाणु उमापति शङ्कर भगवान् ने इस नीतिको लिया फिर शिवजी ने संसारी जीवों की थोड़ी अवस्था जानकर उस ब्रह्माजी के बनाये हुये महाअस्त्र नाम शास्त्रका सार निकाला उसमें दशहज़ारही रहगया कि उस विशालाक्ष नाम सारको इन्द्र ने पाया इन्द्र ने भी उसका पांच हज़ार ही में आशय निकाला उसका नाम बाहुदन्तक रक्खा उसको बृहस्पतिजी ने तीनहीहज़ार में संक्षेप किया वह बार्हस्पती नाम से प्रसिद्ध हुआ फिर योगाचार्य शुक्रजीने एकही हज़ार में संक्षिप्त करके वर्णन किया इस क्रमसे महर्षियों ने अवस्था की न्यूनता देखकर संक्षेप किया इसपीछे देवताओं ने प्रजापति विष्णुजी से कहा कि संसारी पुरुषों में से एक योग्य पुरुष जो राज्यशासन करने के योग्य हो उसको आज्ञा दीजिये तब नारायणजी ने विचारकर रजोगुण से रहित तैजस नाम मानसी पुत्र उत्पन्न किया उस निरञ्जन महाभाग ने पृथ्वी पर राज्य करना न चाहा और संन्यास धारण करने की इच्छा करी उसका पुत्र कीर्त्तिमान् हुआ वह भी जीवन्मुक्त हुआ उसके पुत्र कर्दमजी हुये वह भी बड़े तपस्वी हुये और कर्दमजी का पुत्र अनङ्ग नाम साधुरक्षक और दण्डनीति में प्रवीण हुआ अनङ्ग के पुत्र महानीतिज्ञ पराक्रमी ने जाकर बड़े भारी राज्य को प्राप्त किया और इन्द्रियों के वशीभूत हुआ उस मृत्यु को पुत्र मानसी सुनेथा नाम तीनों लोक में प्रसिद्ध हुआ उसका पुत्र वेन हुआ वह राग द्वेष में वशीभूत हो प्रजापर अधर्म्म करनेवाला हुआ उसको ब्रह्मवादी ऋषियों ने मन्त्रों से अभिमन्त्रित कुशों से मारा और उसकी दाहिनी जङ्घा को मन्त्रों से मथा तब उस जङ्घा से एक पुरुष ऐसा उत्पन्न हुआ जो कि छोटा देह कुरूप और कोयले के समान वर्ण रक्तनेत्र काले केशवाला था उसको देखकर ऋषियों ने कहा कि बैठजावो उसीसे सैकड़ों निषाद उत्पन्न हुये जो कि वन में और पर्वतों में निर्दयचित्त होकर रहते हैं और विन्ध्याचलवासी दूसरे प्रकार के म्लेच्छ हैं वह भी उसी से पैदा हुये फिर उन महर्षियों ने उसकी दाहिनी जङ्घाको मथा उससे एक ऐसा पुरुष उत्पन्न हुआ जो रूपमें द्वितीय इन्द्र सुवर्णनिर्मित वस्त्र और खड्ग धनुष बाण धारण करे वेदवेदाङ्गों का जाननेवाला धनुर्वेद में पण्डित था उस के आधीन सब दण्डनीति हुई तब वह वेन पुत्र ऋषियों से हाथ जोड़कर

बोला कि धर्म्म, अर्थ की देखनेवाली बड़ी सूक्ष्म बुद्धि मुझ में उत्पन्न हुई इस बुद्धि के अनुसार मुझको क्या करना योग्य है यह समझाकर आप मुझसे कहिये आप अर्थ संयुक्त जिस काम को कहोगे उसको मैं करूंगा इसमें कोई विचार न करियेगा तब देवता और महर्षि लोग बोले कि जिसमें ठीक २ निश्चयपूर्वक धर्म्म है उसको निस्सन्देह करो और सब जीवों में समानदृष्टि हो प्रिय अप्रिय को त्यागकर काम, क्रोध, लोभ को दूर से त्याग ऐसा काम करो कि लोक में जो कोई मनुष्य धर्म्म से हटजाय वह सदैव आपसे दण्डके योग्य है चित्त से कर्म्म से वार्त्ता से बराबर शपथ करो कि मैं ब्राह्मणों का पालन करूंगा और इस शास्त्र में दण्डनीति से सम्बन्ध रखनेवाला जो नीतिधर्म्म कहा उसको निस्सन्देह मैं करूंगा और कभी इन्द्रियों के वशीभूत न हूंगा और यह भी प्रतिज्ञा करो कि मुझसे ब्राह्मण अदण्ड हैं और यह भी प्रण करो कि सब संसार की रक्षा करूंगा फिर उस वेनपुत्र ने देवताओं से कहा कि महाभाग पुरुषोत्तम ब्राह्मण मुझसे नमस्कार के योग्य हैं फिर ब्रह्मवादी ऋषियोंने कहा कि ऐसाही हो वेदरूप भण्डार रखनेवाले शुक्रजी उसके पुरोहित हुये बालखिल्य ऋषियों के समूह और सारस्वत ब्राह्मण उनके मन्त्री हुये और गर्गमुनिजी उसके ज्योतिषी हुये यह अपने कुल में आठवां हुआ अर्थात् पहिला विष्णु, दूसरा विरज, तीसरा कीर्त्तिमान्, चौथा कर्दम, पांचवां अङ्ग, छठा अवतल, सातवां वेन, आठवां पृथु हुआ मनुष्यों में यह श्रेष्ठ श्रुति प्रसिद्ध है प्रथम इसके पुत्र सूत और मागध नाम उत्पन्न हुये वेन का पुत्र पृथु इन दोनों पर प्रसन्न हुआ तब सूत को अनूपदेश और मागध को मगधदेश दिये उसके समय में जो असमभूमि थी उसको उसने सम करवाया यह भी सुना है कि सब मन्वन्तरों में पृथ्वी असम होजाती है फिर पृथु ने चारों ओर से शिला के जालों को धनुष की कोटी से उठाया उससे पहाड़ बड़े हुये तब पृथु देवताओं के देवता इन्द्र और विष्णुजी और प्रजापालक ऋषि मुनि ब्राह्मण आदि से अभिषेक करायागया उसको पृथ्वी ने साक्षात् रत्नों को लेकर सेवन किया और नदियों के स्वामी समुद्र ने और पर्वतों के अधिपति हिमाचल ने और इन्द्रदेवता ने उसको असंख्य धन दिया और स्वर्णमयी पर्वतों ने सुवर्ण दिया यक्ष राक्षसों के अधिपति कुबेर ने भी अक्षय धन दिया उससे धर्म्म, अर्थ, काम सिद्ध हुये हे पाण्डव ! घोड़े, रथ, हाथी और करोड़ों मनुष्य पृथु के ध्यान सेही

उत्पन्न होंगये उस समय किसीको वृद्धापन देह रोग और दुर्भिक्ष आदि कोई प्रकार की व्याधि न थीं उसकी उत्तम रक्षा से कभी सर्प चोर आदि से भय नहीं होता था उसकी यात्रा के समय समुद्र के जल स्थिर हुये और पर्वतों ने मार्ग दिये और कभी ध्वजापतन नहीं हुआ उसने यक्ष, राक्षस, नाग आदि समेत पृथ्वी को दुहा और सत्रह प्रकार की खेतियां प्रकट कीं और जिस २ का जो अभीष्ट था वह भी उस महात्मा ने लोकधर्म्म को उत्तम रखनेवाला किया और सब प्रजा को प्रसन्न किया इसीसे राजा शब्द कहाजाता है ब्राह्मणों के घावों की रक्षा से क्षत्रियशब्द हुआ और बहुत धर्म्म से यह भूमि प्रसिद्ध हुई और पृथ्वी नाम हुआ और आप सनातन विष्णुजी ने मर्यादा नियत की कि हे राजन्! कोई पुरुष तेरे विरुद्ध काम नहीं करेगा और योग के द्वारा आप विष्णु ने उस की देह में प्रवेश किया इसीसे यह नर देवताओं के समान है इसी से जगत् राजा को प्रणाम करता है इससे राज्य दण्डनीति से सदैव रक्षा के योग्य है इसीप्रकार दोनों के होने से और देश की दशाओं के देखने और पोषण करने से राजा को कोई पराजय नहीं करसक्ता है इस लोक में समदर्शी राजा के चित्त और कर्म्म से किया हुआ उत्तम कर्म्म और उत्तम फल के वास्ते कल्पना कियाजाता है इसका क्या हेतु है जो देवगण के सिवाय सब लोग राजा के स्वाधीन होते हैं इसका हेतु यह है कि प्रथम विष्णु के मस्तक में सुवर्ण का कमल उत्पन्न हुआ उससे बुद्धिमान् धर्म्म की रक्षा करनेवाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई और लक्ष्मी से धर्म्म के द्वारा अर्थ उत्पन्न हुआ इसीप्रकार अर्थ से धर्म्म, अर्थ उत्पन्न हुये और लक्ष्मीजी राज्य में नियत होती हैं तब स्वर्ग से आकर दण्डनीति में कुशलबुद्धि राजा उत्पन्न होता है वह मनुष्य विष्णु के माहात्म्य का जाननेवाला बुद्धिमान् होकर प्रतिष्ठा को पाता है इसकारण देवताओं के अभिषेक कियेहुये राजा को कोई उल्लङ्घन करके कर्म्मकर्ता नहीं होसक्ता है और यह संसार एक राजा के आधीन होता है उसके विना यह जगत् कर्म्म करने को समर्थ नहीं होसक्ता हे राजन्! शुभकर्म्म शुभफल के निमित्त कियाजाता और लोक उस समान अङ्गी एक के आज्ञावर्ती नियत होता है जिसने उसके सौम्य मुख को देखा वही उसका आज्ञाकारी हुआ और वही उस सुन्दर ऐश्वर्यवान् अर्थवान् और रूपवान् को भी देखता है उस दण्ड की प्रतिष्ठा से शुद्धलक्षणवाली नीति और उसमें वर्त्तमान जो उत्तम धर्म्म सो दृष्टि पड़ता है इसीसे यह सब क्रमपूर्वक कियागया और

इस शास्त्र में शास्त्र पुराण महर्षियों की उत्पत्ति तीर्थों का और नक्षत्रों का वंश कहागया और इसी प्रकार चारों आश्रमों का धर्म्म चातुर्होत्र आदि चारोंवर्णों का धर्म्म और चारों विद्या इसमें वर्णन हुईं इतिहास, वेद, सम्पूर्ण न्याय, तप, ज्ञान, अहिंसा, सत्य, मिथ्या और उत्तम नीति इसमें वर्णन करी वृद्धों की सेवा, दान, शौच, युक्ति, चढ़ाई आदि सबजीवों पर कृपा का करना और सब यन्त्र इसमें कहेगये और उस ब्रह्माजी के शास्त्र में पृथ्वी और पाताल का सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन कियागया इसी हेतु से ज्ञानियों ने राजा शब्द को सदैव जगत् में कहा हे राजन्! देवता और नरदेव यह दोनों समान हैं यह सब राजाओं का माहात्म्य हम ने पूर्णता से कहा अब अन्य क्या वार्त्ता आपको पूछना है ॥ १४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

साठवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इसके पीछे युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर भीष्मजी से यह प्रश्न किया कि सब वर्णों के कौन २ धर्म्म हैं वह सब पृथक् २ कहिये चारों वर्ण और आश्रम और धर्म्मों को कौन मानता है और देश किस रीति से वृद्धि को पाता है और राजा किस राजा से बड़ाई पाता है और पुरवासी और अधिकारी लोग कैसे आनन्दपूर्वक वृद्धि पाते हैं और कैसे खज़ाने दण्ड गढ़ सहायक मन्त्री सेना पुरोहित आचार्यों को त्याग करे राजा को कैसी आपत्ति में कैसे २ मनुष्यों पर विश्वास करना योग्य है और आत्मा की रक्षा दृढ़तापूर्वक कहां करनी योग्य है यह सब बातें आप कृपा करके वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि महाधर्म्म को और जगत् के स्वामी श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके मैं सनातनधर्म्मों को कहता हूं क्रोध न करना सत्य बोलना क्षमा करना अपनी स्त्रियों में सन्तति पैदा करना पवित्रता और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष किसी से शत्रुता न करना शुद्धभाव होना पोषण आदि यह तो सब वर्णों के धर्म्म हैं अब जो केवल ब्राह्मणों का धर्म्म है उसको कहता हूं कि शान्त स्वभावही को प्राचीन धर्म्म कहा और उसी में वेदपाठ का अभ्यास यह भी नित्यकर्म्म होता है उस अपने कर्म्म में सावधान शान्तवृत्ति और विपरीतधर्म्म न करनेवाले ब्राह्मण को जो धन प्राप्त होय तो विवाह करके सन्तान को उत्पन्न करे और दान और यज्ञ कर धन को विभाग कर भोगना चाहिये ब्राह्मण वेदपाठही से आनन्दित रहता है दूसरा कर्म्म करे या न करे क्योंकि मैत्र कहाजाता

है अर्थात् सब का मित्र होता है और क्षत्रिय का भी धर्म्म मैं कहता हूं कि दान कर किसी से प्रार्थना न करे यज्ञ करे परन्तु दूसरे को यज्ञ न करावै वेद पढ़े परन्तु किसी को पढ़ावै नहीं प्रजाको पोषण करे चोरों के मारने में तत्पर रहे और युद्धमें पराक्रम करे जो राजालोग शास्त्रज्ञ और यज्ञों से पूजन करनेवाले हैं और युद्ध में विजयी हैं यह क्षत्रियों में उत्तम और लोकों के विजय करनेवाले हैं जो क्षत्रिय विना घायल युद्ध से पीठ फेरता है उसकी प्राचीनलोग प्रशंसा नहीं करते हैं यह क्षत्रियों की उत्तम रीति कही चोरों के मारने के सिवाय इस का कोई बड़ा कर्म्म नहीं है दान, वेदपाठ, जप, यज्ञ राजाओं का कल्याण कहाजाता है इसकारण से धर्म्म की इच्छा रखनेवाले राजाको अधिक युद्ध करना चाहिये राजा अपनी सब प्रजाको अपने धर्म्मों में नियत करके वह सब कर्म्म जिसमें अन्तःकरण में शान्तचित्त हो धर्म्मसे करावै राजा प्रजा के पोषण करने से महाआनन्द में प्राप्त होता है दूसरा कर्म्म करे या न करे राजा इन्द्र का पुत्र कहा जाता है अब वैश्यके धर्म्म कहता हूं वेदपाठ पवित्र यज्ञ से धन को संचय करने में प्रवृत्त चित्त होकर वैश्य पिताके समान पशुओं का पोषण करे इसके विशेष दूसरा कर्म्म विपरीत है पशुओं की रक्षा से बड़े सुख को पाता है ब्रह्माजी ने पशुओं को उत्पन्न करके वैश्य को दिये और ब्राह्मण और राजा को सब प्रजा दी है इनकी जीविका भी कहता हूं छह गौवों में से एक गऊ के दूध को पिये और सौ में से एक गऊ और बैल को ले और व्यापार के नफ़े में सातवां भाग ले इसीप्रकार उनके सींग खुर आदि को ले और सब बीजके व्यापार और खेती के सातवें भाग को ले यही बर्षौड़ी जीविका है वैश्य को ऐसी बुद्धि कभी न करनी चाहिये कि मैं पशुओं का पोषण न करूं वैश्य के राजी होने में दूसरे किसी की रक्षा पशुओं में योग्य नहीं अब शूद्र का भी धर्म्म कहता हूं ब्रह्माजी ने शूद्र को सब वर्णोंका दास नियत किया इस हेतु से तीनों वर्णोंकी सेवा ही शूद्र का कर्म्म कहाजाता है उनकी सेवा से वह बहुत सुख पाता है शूद्र क्रमपूर्व्वक तीनों वर्णों की सेवा करे और किसी दशा में धन को इकट्ठा न करे क्योंकि वह छोटा होकर धन के हेतु से उत्तम वर्ण को अपने आधीन न करेगा चाहे राजाकी आज्ञा से धर्म्मज्ञ शूद्र धनको संचय करे उसकी जीविका को कहता हूं शूद्र तीनों वर्णों की ओर से अवश्य पोषण के योग्य कहाजाता है छत्र सितार पलँग आदि जूते का जोड़ा बान का काढ़ना यह

सब पुरानी वस्तु सेवा करनेवाले शूद्र को देना चाहिये पुराने वस्त्र द्विजों के धारण करने के योग्य नहीं होते वह शूद्रही को देने योग्य हैं वही उसका धर्मरूप धन है द्विजों में जिस किसी की सेवा करने की इच्छा से शूद्र आवे उसकी जीविका उस द्विज सेही धर्मज्ञों ने कही है वही द्विज असन्तान शूद्रको भोजन देने के योग्य है और वृद्ध अथवा निर्बल भी पोषण के योग्य हैं शूद्रको किसी आपत्तिमें भी स्वामी का त्यागना उचित नहीं है और धनके नाश होजाने पर वह स्वामी अपने बाल बच्चों से भी अधिक पोषण के योग्य है शूद्र का धन नहीं है वह धर्म्म स्वामी के लेने के योग्य है और तीनों वर्णों की सेवा करनाही उसका यज्ञ है स्वाहाकार, वषट्कार, मन्त्र शूद्रमें नहीं होसक्ते इसकारण यह वेदोक्त व्रत बुद्धि से रहित शूद्र आप ग्रहशान्ति और वैश्वदेव यज्ञों से पूजन करे उस पाप की दक्षिणा को पूर्णपात्ररूप कहा पै जवन नाम शूद्र ने ऐन्द्राग्नि के विधान से एकलाख दक्षिणा दी हे राजन्! सब वर्णों का जो यज्ञ है वह उस का भी होता है क्योंकि उनका वह सेवक है और सब यज्ञों में पहिला श्रद्धायज्ञ कहाजाता है पवित्र यज्ञ करनेवालों का वसुदेवता है वेदपाठी ब्राह्मण अपने २ कर्म्म से परस्पर में देवता हैं यहां उन्हों ने अच्छेप्रकार से दृढ़ता से सकल यज्ञों से पूजन किया तीनों वर्णों में ब्राह्मणों सेही सन्तान उत्पन्न की गई इसीकारण से यज्ञ में शूद्र का अधिकार है ब्राह्मण यद्यपि देवताओं के भी देवता हैं इससे जो वह कहैं वही यथार्थ है इस हेतु सब यज्ञ स्वभाव से भी चारों वर्णों से कियेजाते हैं ऋग्, यजु, सामवेदों का जाननेवाला ब्राह्मण सदैव देवता के समान पूजन के योग्य है और ऋग्, यजु, सामवेदों का अनधिकारी और तीन वर्णों के पास रहनेवाला शूद्र प्राजापत्य है हे राजन्, युधिष्ठिर! मानसी यज्ञ सब वर्णों में होता है इस मानसीयज्ञ करनेवाले की इच्छा देवता और दूसरे मनुष्य नहीं करते हैं यह बात नहीं है अर्थात् श्रद्धा की पवित्रता से सब लोग इसके यज्ञ में भाग को चाहते हैं इसी हेतु से सब वर्णों में श्रद्धा यज्ञ कहाजाता है अग्नि के विना शूद्रका अधिकार पवित्रता यज्ञों में किसप्रकार से है यह शङ्का करके कहते हैं ब्राह्मण तीनों वर्णों का असाधारण देवता है इस हेतुसे कि उन ब्राह्मणों ने अपने यजमान दूसरे वर्णों को यज्ञ न कराया हो वह भी बात नहीं है अर्थात् ब्राह्मणों ने यह कहकर कि हम अमुक इच्छा से अमुक शर्म्मा आदि जे बिगड़े हुये यज्ञ का पूजन करवाते हैं यज्ञ तो क्या वेदोक्त

विवाह के सिवाय अग्नियों का विस्तार वेदोक्त बुद्धि के अनुसार वैश्य से सम्बन्ध रखनेवाला है इस निमित्त ब्राह्मणों ने तीनों वर्णों में यज्ञ उत्पन्न किया इस कारण सब वर्ण साधु हैं और जाति वर्ण अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र उस ब्राह्मण की विपरीत दशा में उत्पन्न होते हैं जिनको अनुलोम विलोम कहते हैं जैसे कि एक अकार सब अक्षरों से मिलकर बहुत रूपवाला होता है अर्थात् साम, यजु, ऋग्वेदों के रूपों को धारण करता है उसीप्रकार अकेला ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म उन वर्णों में उत्पन्न हुआ हे राजन्! इस स्थानपर प्राचीन वृत्तान्तों के जाननेवाले पुरुष और यज्ञ की इच्छा करनेवाले वानप्रस्थ ब्राह्मणों की कही हुई स्तुतिरूप कहावत को कहते हैं कि श्रद्धावान् जितेन्द्रिय पुरुष प्रातःकाल सायंकाल पर अग्नि में धर्म्मपूर्वक आहुति देता है इससे निश्चय श्रद्धाही बड़ा कारण है इसमें जो यज्ञ वायुदेवता का है वह उत्तम है और जो बुद्धि के अनुसार कियागया वह सबसे श्रेष्ठ है इसके विशेष अनेक प्रकार के कर्मफल देनेवाले रुद्र नाम सोलह अग्निहोत्र हैं अच्छे ज्ञान से जो पुरुष उनको जानता है वह श्रद्धावान् द्विजन्मा यज्ञ करने के योग्य है जो चोर या पापी या महापापी यज्ञ से पूजन किया चाहता है उसको साध्वी कहते हैं और ऋषिलोग उसकी प्रशंसा करके कहते हैं कि यह निस्संदेह साधु है सदैव सब दशा में प्रत्येक वर्ण को पूजन करना चाहिये यह सिद्धान्त है तीनों लोक में यज्ञ के समान कोई बात नहीं है इसहेतु से पवित्र श्रद्धा में नियतबल इच्छा के अनुसार दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाले पुरुष के द्वारा पूजन कराना चाहिये ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इकसठवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे सत्यपराक्रमिन्, युधिष्ठिर! अब तुम चारों आश्रमों के नाम और कर्म्मों को सुनो ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास यह चार आश्रम हैं इनमें जटाधारणसंस्कार और द्विजभाव को पाकर वेदाध्ययन कर आधान आदि कर्म्मों को करके आत्मज्ञानी जितेन्द्रिय और गृहस्थाश्रम से पूर्णकाम स्त्री के साथ अथवा अकेलाही वानप्रस्थ नाम आश्रम को प्राप्त करे फिर वह धर्म्म का जाननेवाला ऊर्ध्वरेता हो वानप्रस्थों के शास्त्र को पढ़कर अर्थात् कर्म्म के ज्ञान द्वारा प्राप्तकर संन्यासी होकर केवल मोक्ष को पाता है हे राजन्! इसलोक में पण्डित ब्राह्मण को प्रारम्भ में ऊर्ध्वरेता मुनियोंके कर्म्म करने चाहिये और ब्रह्म-

चारी ब्राह्मण को मोक्षधर्म्म में प्रवृत्त होकर भिक्षा मांगना उत्तम है जिस आश्रम में मिताहारी, अनाहारी, स्थानरहित, यथालाभ सन्तोष, मुनिरूप, शान्तस्वभाव, जितेन्द्रिय, निर्लोभी, समदर्शी, भोग काम संकल्प आदि से पृथक् ब्राह्मण होता है वह कैवल्य मोक्ष को पाता है जो पुरुष वेदोंको पढ़कर मृत्युके समान कर्म्म का करनेवाला सन्तान को उत्पन्न करके सुखों को भोग योग में प्रवृत्त उन कठिन धर्म्मों को जोकि मुनियों से सेवित हैं करे और अपनीही स्त्री में तृप्त ऋतुकाल में उसके पास जानेवाला शास्त्र के अनुसार कर्म्म करे धूर्त्तता कुटिलतारहित, मिताहारी, देवता में प्रीतिमान्, स्वरूप का जाननेवाला, सत्यवक्ता, मृदुस्वभाव, दयावान्, क्षमावान्, सावधान, गुरु और शास्त्रके वचनों का माननेवाला और ब्राह्मणों को अन्न का देनेवाला, ईर्षारहित, सब आश्रमियों का दाता, सदैव वेदोक्तकर्म्म करनेवाला, गृहस्थ आश्रमी हो ऐसे स्थान में महानुभाव ऋषियों ने नारायणगीत को कहा है जो कि बड़े२ अर्थ और तप से भरा है उसको सुनो कि अपनी स्त्रियों के साथ सत्यता और शुद्धभाव और अतिथिपूजन धर्म्म अर्थ और प्रीति यह सुखरूप कर्म्म इस लोक और परलोक में सेवन करने के योग्य हैं महर्षि लोग इस उत्तम आश्रम में निवास करनेवाले पुरुषों का कर्म्म पुत्र स्त्रियों का पोषण और वेदों का पढ़ना कहते हैं जो यज्ञ करने का अभ्यास रखनेवाला ब्राह्मण इसप्रकार बुद्धि के अनुसार गृहस्थआश्रम में निवास करता है वह गृहस्थों की जीविका को अच्छी तरह शुद्ध करके स्वर्ग्ग में अत्यन्त पवित्र फल को पाता है अब ब्रह्मचारी के कैवल्य मोक्ष को वर्णन करते हैं कि अकेला सब देवताओं को स्मरण करता और सब वेदमन्त्रों को जपता और एकगुरु में विश्वास करनेवाला मैले वस्त्र धारण करनेवाला ब्रह्मचारी सदैव व्रत करनेवाला दीक्षावान् जितेन्द्रिय वेदान्तशास्त्र के विचारकरने के योग्य ध्यान को करता गुरु के कुल में निवास करे गुरुसेवापरायण होकर छह कर्मों से निवृत्त होजाय उनमें प्रवृत्त न होजावे और दण्डक्रिया से युक्त आचरण नहीं करे शत्रुओं को न सेवे यह ब्रह्मचारी का आश्रमपद इच्छा किया जाता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

बासठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आप मुझसे वह सब धर्म्म वर्णन कीजिये जो कल्याणरूप सुखद उत्तम फल के दाता हिंसारहित सबके प्रिय सुगम रीति;

वाले मुझ सरीखे राजा को सुख के देनेवाले हों भीष्मजी बोले कि ब्राह्मण के चार आश्रम कहे उनको तीन वर्ण नहीं करसक्ते हे राजन्! बहुत से कर्म्म ऐसे कहे जो राजा से ही सम्बन्ध रखते हैं वह स्वर्ग के दाता हैं तेरे प्रश्न के अनुसार यह धर्म्म हिंसायुक्त नहीं हैं वह सब बुद्धि के अनुसार क्षत्रियधर्म्म में नियत हैं जो निर्बुद्धि पुरुष ब्राह्मण होकर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों के कर्म्म करता है वह इस संसार में निन्दित होकर परलोक में नरक भोग करता है और हे राजन्! इस लोक में दास, कुत्ता, भेड़िया आदि जो पशुओं के नाम नियत हैं वही नाम उस ब्राह्मण के होते हैं जो अपने कर्म्मों को त्याग करदेता है चारों आश्रमों में चपलता से रहित सब धर्म्मों में प्रवृत्त चित्त के जीतनेवाले ब्राह्मण के छह कर्म हैं उन कर्म्मों के करनेवाले ब्राह्मण ब्रह्मरूप हैं ब्राह्मण अपने कर्म्मों को छोड़कर छोटे धर्म्मों में क्यों प्रीति करता है यह संस्कार का हेतु कहते हैं जो पुरुष जिस निजदशा में जिस देश और काल में जिस फल की इच्छा से जो बुरा भला कर्म्म करता है वह लोभ कर्म्म के फल से और बहुत दिन के अभ्यास से सगुणब्रह्म को पाता है अर्थात् यह भी निन्दित नहीं है हे राजन्! तुम ब्याज लेना खेती करना व्यापार शिकार से जीविका करना और इन सब से बड़ा वेदपाठ को जानने के योग्य हो अभ्यास से कर्म्म स्वीकार होते हैं फिर उत्तम कर्म्म का अभ्यास नहीं करते हैं और यह शङ्का करके कहते हैं कि काल से प्रकट होनेवाला पुरुष पिछले संस्कार और काल की गति से चलायमान होता है इसीसे स्वाधीन होकर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट कर्म्मों को करता है पिछले पुण्य पाप देह की उत्पत्ति में प्रधान और यह लोक अपने प्रिय कर्म्म में श्रद्धा प्रीति रखनेवाला है और जीवात्मा प्रवृत्त है वा स्वतन्त्र है इसीकारण शास्त्र में आज्ञा नहीं कियेगये॥ ११॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

तिरसठवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि धनुष का खैंचना शत्रु का मारना खेती व्यापार पशु पालना धन इत्यादि के लिये दूसरे की सेवा करना यह कर्म्म ब्राह्मणों के करने के योग्य नहीं हैं ज्ञानी गृहस्थ ब्राह्मण को छह ब्रह्मकर्म्म अर्थात् प्राणायाम आदि सेवन करने के योग्य हैं सब कर्मों से निवृत्त ब्राह्मण का कर्म्म वनवास उत्तम कहाजाता है राजा की नौकरी खेती करना व्यापार से जीवन करना कुटिलता

परस्त्रीगमन और ब्याज की जीविका करना इन सब बातों को अत्यन्त त्याग करे जो ब्राह्मण दुराचारी धर्म्मों से पृथक् वृषलीपति अर्थात् विना विवाही स्त्री का पति निर्दय मनुष्य की देह का नौकर अपने कर्म्म का त्यागनेवाला है वह शूद्र होता है वेदों को पढ़े वा न पढ़े तौ भी शूद्रों के समान है वह भी दासों के समान भोजन कराने के योग्य है यह सब शूद्र के समान होते हैं इन को देवकार्य्य में त्याग करे उस ब्राह्मण में दियेहुये हव्य कव्य और सब दान न देने के बराबर हैं जो कि विना मर्य्याद अपवित्र निर्दयचलन और हिंसा करनेवाला अपने धर्म्म कर्म्म का त्यागनेवाला हो इसकारण ब्राह्मण का शान्तस्वभाव पवित्रता और शुद्धपन भी नियत किया इसीप्रकार पहिले समय में ब्रह्माजी ने ब्राह्मण के सब आश्रम पैदा किये जो जितेन्द्रिय यज्ञ में अमृत का भोजन करनेवाला सबका प्रिय दयावान् क्षमायुक्त निर्लोभ सरल मृदुचित्त हिंसारहित सन्तोषी और सहनशील हो वही ब्राह्मण है दूसरा पाप कर्म्म करनेवाला नहीं हे राजन्! इच्छायुक्त धर्म्म सब जीव और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में रक्षित रहते हैं इसकारण विष्णुजी वर्णों को शान्तिधर्म्म में अप्रवृत्त मानकर उनको नहीं चाहते तब उन में जो हानि होती है वह कहते हैं लोक में सब जीवों को सुख आदि न होवे और चारों वर्ण का धर्म्म और वेदवचन भी नहीं होयँ सब यज्ञकर्म्मादि क्रिया नष्ट होजायँ और सब आश्रमी न होयँ क्योंकि यह सब विष्णुही की कृपा से होते हैं जो राजा तीनों वर्णों के आश्रम का सेवन किया चाहो तो हे राजन्! चारों आश्रम में देखे हुये उन धर्म्मों को सुनो कि वेदान्त में अधिकार न होने से पुराणों के द्वारा आत्मा को सुनने की इच्छा से देह के बल के अनुसार तीनों वर्णों की सेवा करनेवाले सन्ततिमान् राजा की आज्ञा पाके और आचारनिष्ठ में तीनों वर्णों के समान दश धर्म्मों के प्राप्त करनेवाले अर्थात् योगधर्म्मों के जाननेवाले शूद्र के सब आश्रम नियत हैं एक शान्ति दान्ति कल्याण गुण को त्यागकर उस धर्म्मचारी शूद्र का अन्त में भिक्षाधर्म्म कहा इसीप्रकार वैश्य और क्षत्रिय का भी भिक्षाकर्म्म कहा है कर्म्म से निवृत्त वृद्धराजा के कामों में परिश्रम करनेवाला राजा की आज्ञा से वैश्य संन्यास आश्रम को धारण करे इससे हे युधिष्ठिर! राजा भी धर्म्म से वेदों को और राजशास्त्रों को पढ़कर सन्तति को उत्पन्न करके यज्ञ में अमृत को भोजन करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन कर राजसूय अश्वमेध आदि अनेकयज्ञों को बुद्धि के

अनुसार करके ब्राह्मणों को दक्षिणा देके युद्ध में थोड़ी या बहुत विजय को पाकर प्रजापोषण करनेवाले पुत्र को या दूसरे गोत्र के उत्तम क्षत्रिय के पुत्र को राज्यपर नियत करके विचारयुक्त बुद्धि के अनुसार पितृयज्ञों के द्वारा पितरों को अच्छेप्रकार से पूजकर यज्ञों से देवताओं को और वेदों से ऋषियों को प्रसन्न कर अन्तावस्था में जो दूसरे आश्रम को चाहे वह क्रम से एक आश्रम से दूसरे आश्रमों को प्राप्त करके सिद्धि को पाता है वह राजर्षिभाव से भिक्षा करे और सेवा से न करे तो वह गृहस्थधर्म्म से जुदा भी आनन्दपूर्व्वक भिक्षा करे यह तीनों का सदैव कर्म्म नहीं है यही वृत्तान्त चारों आश्रमियों का है अपने धर्म्म पर चलनेवाले मनुष्यों का जो धर्म्म लोक में उत्तम है वह क्षत्रियों की भुजा से सम्बन्ध रखता है तीनों वर्ण और आश्रमियों के सब धर्म्म उपधर्म्मों समेत राजा के धर्म्म से प्रकट होते हैं इसको वेद में कहा हुआ जानता हूं जैसे कि सब जीवों के चरण हाथी के पैर में छिपजाते हैं इसीप्रकार सब धर्म्मों को राजधर्म्मों में अन्तर्गत जानो धर्म्म के जाननेवाले दूसरे धर्म्मों को अल्प फल देनेवाला कहते हैं उत्तम पुरुषों ने क्षत्रियधर्म्म को बड़ा रक्षा का स्थान और महाकल्याणरूप है राजधर्म्म को श्रेष्ठ माननेवाले सब धर्म्म और वर्ण पोषणकर्त्ता जानते हैं राजा को धर्म्मरक्षा करने से सब धर्म्मों का छठा भाग मिलता है दण्डनीति के नष्ट होने पर तीनों वेद डूबजाते हैं और सब बड़े २ धर्म्म भी नष्ट होजाते हैं और आश्रमों के सब धर्म्म जातेरहते हैं सब त्यागों के छठे भाग को लेता है इससे राजा भी त्यागी होता है सब दीक्षा राजधर्म्मों में कहीं और सब विद्या भी राजधर्म्मों में संयुक्त हैं और सब लोक भी राजधर्म्म ही में हैं जैसे कि नीचों के हाथों से मारेहुये मृग आदि जीव उन घातकों के शास्त्रोक्तधर्म्म के नाशकारक होते हैं इसी प्रकार राजधर्म्मों से जुदे सब धर्म्म हैं क्षणकबुद्धि लोग अपने धर्म्म का आदर नहीं करते हैं इसकारण राजधर्म्म ही उत्तम है ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चौंसठवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि चारों आश्रमों के और संन्यासियों के लौकिक वैदिक धर्म क्षत्रियधर्म में वर्तमान हैं क्षत्रियधर्म के अच्छे प्रकार नियत न होने से सब संसारी जीव निराश होजाते हैं आश्रमवासियों का गुप्तधर्म बहुत द्वारवाला है उस सनातनधर्म के स्वरूप को दूसरे मनुष्य शास्त्र से विपरीत क्रोधयुक्त करते

हैं वह मनुष्य पवित्र वचनों से लोक के निश्चय के कहनेवाले हैं और धर्मों के निश्चय और सिद्धान्तों को न जानकर निर्बुद्धिलोग उस कर्म को क्रोध में भरे हुये करते हैं प्रत्यक्ष में बहुत सुखों का करनेवाला आत्मा का साक्षी छलरहित सबका उपकार करनेवाला धर्म क्षत्रियों में वर्तमान है हे युधिष्ठिर ! जैसे कि पूर्व समय में गृहस्थाश्रम नैष्ठिक प्रस्थवीती नाम ब्राह्मणों का और तीनों वर्णों का अन्तर्भाव प्रसिद्ध हुआ उसीप्रकार राजधर्मों में सब संसार को आचरणों के द्वारा नियत माना है हे राजन् ! जिसप्रकार कि पहिले समय में बहुत से शूरवीर राजा दण्डनीति के लिये उन विष्णुजी के पास गये जो कि महातेजस्वी सब जीवों के ईश्वर देवता प्रभु नारायण हैं उस समय में राजालोग अपने हरएक कर्म को ध्यान करके कि इनमें कौनसा उत्तम है यह सन्देह करके सिद्धान्त के सुनने को विष्णुजी के पास पहुँचे उसकाल में प्रथम देवता से मिलेहुये साधुगण देवता और अष्टवसु अश्विनीकुमार रुद्र विश्वेदेवा मरुद्गण और सिद्ध लोग क्षत्रियधर्म में प्रवृत्त थे इस स्थान में धर्म अर्थ के निश्चय को तुमसे कहूँगा हे राजन् ! प्राचीन समय में दानवों से व्याप्त बेमर्याद लोक के होनेपर मान्धाता नाम पराक्रमी राजा हुआ उससमय उस मान्धाता ने प्रभु के दर्शन करने की इच्छा से यज्ञ किया और उसने महात्मा विष्णुजी के चरणों में शिर रखकर प्रार्थना करी तब विष्णु ने इन्द्र के रूप में उसको दर्शन दिया तब अन्य सत्पुरुष राजाओं समेत उसने उनका पूजन किया तब इन्द्ररूप प्रभु ने कहा कि हे धर्मधारियों में उत्तम ! तू क्या चाहता है जो ऐसे ध्यान से उस परब्रह्म विष्णु का दर्शन किया चाहता है यह विश्वरूपदेवता मुझसे और साक्षात् ब्रह्माजी के भी दर्शन के योग्य नहीं हैं और दूसरी इच्छा जो तेरे हृदय में वर्तमान है उसको दूंगा तुम्हीं नरलोकों में राजा हो तुम सत्यता में नियत धर्म को श्रेष्ठ माननेवाले जितेन्द्रिय सूर्यदेवता के उपासक बुद्धि भक्ति और श्रद्धा से उत्तम हो इससे मैं तुझको तेरे चित्त के प्रिय वरदान को देता हूं मान्धाता बोले कि मैं निस्सन्देह आपको प्रणामों से प्रसन्न करके आदिदेव भगवान् का दर्शन करूंगा धर्म की इच्छाकरनेवाला मैं सब अन्य इच्छाओं को त्याग करके वन जाने की और सत्पुरुषों के देखेहुये सन्मार्ग की इच्छा रखता हूं मैंने इस अप्रमेय क्षत्रियधर्म से लोकों को प्राप्त किया और अपने यश को दृढ़ किया और जो यह धर्म आदिदेवता से जारी कियागया है इससे उत्तम धर्म करना नहीं

जानता हूं इन्द्र बोले कि जो क्षत्रिय राजा नहीं हैं और धर्म में प्रवृत्त हैं वह धर्म के अंश से परमगति को नहीं प्राप्तहोते वह कर्म निश्चय प्रकट करने के योग्य नहीं है कि जो क्षत्रियधर्म आदि देवता से जारी कियागया फिर दूसरे धर्म उसके अंगरूप जारी किये बाक़ी के असंख्यधर्म संन्यासधर्म के साथ क्षत्रियधर्म से पृथक्हैं वह विनाशी फलवाले उत्पन्न किये अर्थात् उनका फल करनेहीवाले को होता है दूसरेको नहीं होता इस राजधर्म में सब धर्म वर्तमान हैं इसकारण इस धर्म को उत्तम कहते हैं पहिले समय में क्षत्रियधर्म रखनेवाले विष्णुजी ने शत्रुओं को पराजय करके अपने कर्म से सब देवता और महातेजस्वी ऋषि मुनियों की रक्षा की जो ध्यानकक्ष से बाहर भगवान् सब शत्रुओं को न मारते उस दशा में न ब्राह्मण होते और न लोकआदि के बनानेवाले प्रजापति होते और न यह धर्म न पहिला धर्म होता जो वह देवोत्तम आदि देव इस पृथ्वी को और सब असुरों को विजय न करते उसदशा में ब्राह्मणों के नाश होने से सब वर्णधर्म और आश्रमों के धर्म नहीं होते वह सनातनधर्म सैकड़ों प्रकार से नाश होकर फिर क्षत्रिय धर्म के द्वारा बड़ी वृद्धि को पहुँचा और हरएक यज्ञ आदि में धर्म जारी हुये इस हेतु से संसार में क्षत्रियधर्म को उत्तम कहते हैं युद्ध में देह का त्याग सब जीवों में दया लोक का ज्ञान और व्याकुल संसार का पोषण और पीड़ित पुरुषों को दुःख से छुटाना यह सब राजाओं के क्षत्रियधर्म में वर्तमान हैं राजा से भयभीत होकर वह पुरुष पाप को नहीं करते हैं जो कि बेमर्याद और काम क्रोध से भरे हुये हैं दूसरे उत्तमलोग सब धर्मों में प्रवृत्त श्रेष्ठ आचरणवान् साधुधर्म का उपदेश करते हैं राजाओं के राजधर्म से पुत्र के समान पोषण कियेहुये सब जीव निस्सन्देह लोकमें विचरते हैं इससे यह क्षत्रियधर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ लोक में उत्तम सनातन अविनाशी प्राचीन सब स्थानों में जारी और मोक्ष की सीमाहै ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पैंसठवां अध्याय ॥

इन्द्ररूप भगवान् बोले कि ऐसा पराक्रमी सब धर्मों में प्रवृत्त और सब धर्मों में उत्तम क्षत्रियधर्म है यह संसार की वृद्धि करनेवाला धर्म तुमसरीखे अधिकारी राजाओं से रक्षा के योग्य है उसके विपरीत कर्म करने से संसार की हानि होती है सब जीवोंपर दया करनेवाला राजा खेती के प्रबन्ध और राजसूययज्ञ आदि में अनृत स्नान करना भिक्षा न मांगना अर्थात् संन्यास न लेना सबक़ा

पोषण करना इत्यादि बातों को जाने और युद्ध में देहत्यागही को श्रेष्ठ धर्म माने इस निमित्त कि मुनिलोग देहत्यागही को उत्तम कहते हैं जैसे कि आप के नेत्रों के सामने सदैव राजधर्मों में प्रवृत्त राजा लोगों ने देह को त्याग किया परस्पर में दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि आश्रमधर्म का चाहनेवाला ब्रह्मचारी अकेला क्षत्रिय बहुतसे शास्त्र और गुरुसेवा समेत प्राचीनधर्म को करे और एकसे अर्थवाले व्यवहार को जारी होनेपर युक्ति से प्रिय अप्रिय वार्ताओं को त्याग करके उसको करे और चारों वर्ण का धर्म नियत करके और उद्योग नियम और परिश्रम से वर्णधर्मों को पालन करे इसी से सबधर्मों में प्रवृत्त क्षत्रियधर्म को सब आश्रमधर्मों से श्रेष्ठ धर्म कहा जो वर्ण अपने २ धर्म को नहीं करते हैं और उन धर्मों को विपरीत अर्थवाला कहते हैं उन मनुष्यों को बेमर्याद और सदैव धन के संचय में प्रवृत्त पशुओं के समान जानो जो कि धन के व्यय से नीति को जारी करता है इस हेतु से भी क्षत्रिय धर्म अन्य आश्रमधर्मों से अधिक कल्याणकारी है त्रिवेदी ब्राह्मणों के यज्ञ आदि धर्म और अन्य ब्राह्मणों के जो आश्रमधर्म हैं यही ब्राह्मण के उत्तम धर्म कहेजाते हैं दूसरा कर्मकर्ता शूद्र के समान शस्त्र से मारने के योग्य है हे राजन्! चारों आश्रमों के धर्म ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण से प्राप्त करने के योग्य हैं दूसरा कभी नहीं जानता विपरीत कर्म करनेवाले की यह वृत्ति कल्पनाही गिनीजाती है अर्थात् कर्म से धर्म की वृद्धि होती है जैसा धर्म है वैसाही वह भी है जो वेदपाठी ब्राह्मण विपरीत कर्म करता है वह प्रतिष्ठा करने के योग्य नहीं है अपने कर्मको न करने से वह ब्राह्मण विश्वास के योग्य नहीं होता यह धर्म सब धर्मों में करने के योग्य है और क्षत्रियों से इसकी वृद्धि होनी योग्य है इस कारण राजधर्म उत्तम है न दूसरे धर्म कि जिनमें वीर बड़ा है वह वीरधर्म मुझको भी स्वीकृत हैं मान्धाता बोला कि किरात, गान्धार, चीना, शबर, वर्वर, शक, तुषार, कंक, पल्हव, अन्ध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ, काम्बोज और ब्राह्मण क्षत्रिय से उत्पन्न होनेवाले और वैश्य शूद्र मनुष्य आदि सब देश के वासी कैसे धर्मों को करेंगे और मुझ से चोर राजा से सब मनुष्य कैसे धर्मपर नियत करने के योग्य हैं सो हे भगवन्! मैं यह सुना चाहता हूं उसको मुझसे कहिये हे देवेश्वर! तुम क्षत्रियों के बान्धवरूप हो इन्द्र बोले कि सब चोरजातों को पिता माता की सेवा करना योग्य है उसी प्रकार आचार्य गुरु और आश्रमवासियों की सेवा करनी चाहिये सब चोर

जातों से राजा की भी सेवा करनी योग्य है वेदधर्म यज्ञक्रिया आदि भी उनका धर्म कहाजाता है इसी प्रकार पितृयज्ञ, कूप, प्रपा और समय के अनुसार सदैव ब्राह्मणों को दानदेना, अहिंसा, सत्यता, क्रोधत्याग, आजीविका और विभाग की रक्षा, पुत्र और स्त्रियों का पोषण पाकर शत्रुता न करना और ऐश्वर्य चाहनेवालों को सब यज्ञों की दक्षिणा देना चाहिये सब चोरजातों की ओर से धनरूप पवित्र यज्ञ देने के योग्य है हे निष्पाप, मान्धाता ! प्राचीन समय में इस प्रकार से ऐसे २ कर्म नियत किये वह यहां सब लोक को करने के योग्य हैं मान्धाता बोले कि नरलोक में सब वर्णों में चोर दृष्टि आते हैं चारों आश्रमों में आश्रम के नीच चिह्न वर्तमान हैं इन्द्रबोले कि दण्डनीति के नाशहोने और राजधर्म के दूर करने से राजाकी निर्बुद्धिता और अप्रबन्ध से जीव अचेत होजाते हैं इस सत्ययुग के समाप्त होनेपर भिक्षा मांगनेवाले उसी प्रकार ब्रह्मचर्य आदि का चिह्न रखनेवाले और आश्रमों के कल्पना करनेवाले असंख्य होंगे और पुराण और धर्मों की परमगति को न सुननेवाले काम क्रोधसे चलायमान पुरुष कुमार्ग को पावेंगे जब महात्माओं की दण्डनीति से पाप दूर होता है तब उत्तम सनातन सद्धर्म चलायमान नहीं होताहै जो पुरुष लोक के गुरु राजा का अपमान करताहै उसको दान होम श्राद्ध आदि का कभी फल नहीं होता मनुष्यों के स्वामी सनातन देवतारूप धर्मनिष्ठ राजाका देवता भी अपमान नहीं करतेहैं भगवान् प्रजापतिजी ने सब जगत् को उत्पन्न किया और धर्मों की प्रवृत्ति निवृत्ति के लिये क्षत्रियकुल को पैदा किया है जो बुद्धिसे जारी होनेवाले धर्म के फलको स्मरण करता है वह मेरा माननीय और पूज्य है उसमें क्षत्रियधर्म वर्तमान है भीष्मजी बोले कि वह भगवान् प्रभु मरुद्गणों से घिरेहुये ऐसा कहकर अपने भवन को गये हे निष्पाप ! प्राचीन समय में इस श्रेष्ठ प्रकार से किये हुये धर्म के जारी होने से बुद्धिमान् और बहुत शास्त्रों का जाननेवाला कौन पुरुष क्षत्रियधर्म का अपमान करसक्ता था अन्याय से प्रवृत्त और निवृत्त होनेवाले बीचही में ऐसे नाश को प्राप्त होते हैं जैसे कि मार्ग में अन्धेपुरुष दुःख को पाते हैं हे पुरुषोत्तम ! आदि में जारी होनेवाले पिछले पुरुषों का रक्षास्थान धर्मरूप कर्म करो और मैं तुमको अच्छे प्रकार जानता हूं कि तुम सबप्रकार से समर्थ हो ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

छासठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि आप ने जो मनु के पुत्रों के चारों आश्रम कहे इन आश्रमों के आशय को मुझसे वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! यहां साधुओं के प्रिय सब धर्म तुमको मालूम हैं और जो तुम हृदय आकाश में वर्तमान ब्राह्मणों से सम्बन्ध रखनेवाले धर्मको पूछतेहो उसको समझो कि साधु आचार से संयुक्त चारों आश्रमियों के सब धर्म राजधर्मों में वर्तमान होते हैं, दण्डनीति के साथ इच्छा और शत्रुता से रहित सब जीवों में समदर्शी राजा को वह ब्रह्मलोक प्राप्त होताहै जो कि संन्यास आदि के द्वारा प्राप्त होता है जो ब्रह्मज्ञान दान युद्ध पोषण आदिको जानता है उस शास्त्रवृत्ति पण्डित राजाको गृहस्थाश्रमही उत्तम होता है और सदैव विभाग के द्वारा सब ओर से पूजन के योग्य पुरुषों को पूजतेहुये राजाको वह लोक प्राप्त होता है जो ब्रह्मचारियों को ब्रह्मज्ञान से मिलता है और शरणागतसम्बन्धी मित्र और जातिवालों का पोषण करनेवाला राजा वह लोक पाता है जो दीक्षा से लोगों को प्राप्त होता है और जो उत्तमपुरुष आश्रमियों में श्रेष्ठ हैं उनका सत्कार करनेवाले राजा को वानप्रस्थ के प्राप्त योग्य स्थान की प्राप्ति होती है और नित्यकर्म पितृयज्ञ भूतयज्ञ नरयज्ञ इन उत्तम यज्ञोंके करनेवाले राजाको भी वानप्रस्थवाला ही स्थान मिलता है और जीवों को भाग और अतिथियों का पूजन और देवयज्ञों से भी पूर्वोक्त स्थान की प्राप्ति होती है और अच्छे पुरुषों की रक्षा के लिये शत्रुके देशों के मर्दन करनेवाले राजाको भी वही वानप्रस्थवाला लोक मिलता है और सब जीव और अपने देश की पूरी रक्षा करने से दीक्षा से ब्रह्मलोक का प्राप्त करनेवाला संन्यासआश्रमधर्म प्राप्त होता है और सदैव वेद पढ़ना शान्त और श्रेष्ठपुरुषों का पूजन उपाध्याय की सेवा यह भी ब्रह्मआश्रम को देते हैं और सर्वदा दिनको धर्मपूर्वक जप करनेवाले और देवपूजन न करनेवाले राजा को धर्मआश्रमपद मिलता है और सब जीवोंपर दया करनेवाले मृदुचित्तवाले राजाको सर्वावस्थपद मिलता है और सबदशा में बालक और वृद्धोंपर दया करने से भी सर्वावस्थपद प्राप्त होता है और हठसे कर्म करनेवाले जीवों में से शरणागतों की रक्षा और बुद्धि के अनुसार पूजन भी करता गृहस्थाश्रम में निवास करे और सब जड़ चैतन्य जीवों की रक्षा और बुद्धि के अनुसार पूजक होकर भी गृहस्थाश्रम में निवासकरे और भाई पुत्र पोतों की स्त्रियोंपर अवस्था

के विचार से शासना और कृपा करना गृहस्थाश्रम का तप है और ज्ञानी और पूजन के योग्य साधुओं की सेवा और पालन से भी गृहस्थाश्रमपद होता है और जो राजा अपने आश्रम में वर्तमान और घरमें रहनेवाले जीवों को भोजन के द्वारा अपने वशीभूत करता है वह भी गृहस्थाश्रमपद होता है जो पुरुष ईश्वर के रचेहुये धर्म में बुद्धि के अनुसार वर्तमान है वह सब आश्रमों के शुद्धफल को पाता है और जिस पुरुष में सदैव गुण नाश को नहीं पाते हैं उस आश्रमी को भी नरों में श्रेष्ठ कहते हैं और जो राजा स्थान, कुल, अवस्था आदि के विचार से सब की प्रतिष्ठा करता है वह सब आश्रमों में निवास करता है और जो राजा राज्य, देश, कुल, धर्मों की रक्षा करता है वह सर्वाश्रमी होता है और समय पर जीवों के ऐश्वर्य और भेंटों को करता है वह साधुआश्रम में निवास करता है और जो दशधर्म को भी न जाननेवाला राजा सब लोकोंके धर्म को विचारता है वह भी आश्रमी होता है और जो धर्मज्ञ पुरुष लोक में धर्म को करते हैं वह जिस राजा के राज्य में रक्षा किये हुये हैं वह राजा भी धर्म का भाग पाता है और जो राजा धर्म को उत्तम माननेवाले धर्मज्ञ पुरुषों की रक्षा नहीं करते हैं वह उनके पाप को भोगते हैं जो पुरुष इस लोक में राजाओं के सहायक होयँ वह सबभी दूसरे के किये हुये धर्म में भाग लेनेवाले हैं हे पुरुषोत्तम ! सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम को प्रकाशवान् और निर्णयवाला और पवित्र कहा और जो मनुष्य सब जीवों को आत्मा के समान रखनेवाला दण्ड और क्रोध को त्याग करता है वह इसलोक और परलोक में सुख पाता है और धर्मरूप समुद्र में वर्तमान सतोगुणरूप पराक्रम और धर्मरूप रस्सी बांधनेवाली और त्यागरूप हवा से चलनेवाली शीघ्रगामिनी नौका उसको अच्छेप्रकार से तारती है जब सबसे निवृत्त होताहै और जो इसके हृदय में कामना वर्तमान है उसको भी त्याग करता है तब ज्ञानी होकर ब्रह्मभाव को प्राप्त होताहै हे राजन् ! तुम शुद्धचित्त हो इससे धर्मको पावोगे वेदपाठ का अभ्यास करनेवाले शुभकर्मी ब्राह्मण आदि सब लोगों के पोषण का उद्योग करो और हे राजन् ! जो पुरुष आश्रमों में वर्तमान वन में धर्म करते हैं उनसे सौगुणा पुण्य राजाको प्रजा के पोषण से होताहै हे पाण्डवों में श्रेष्ठ ! यह अनेक प्रकार से धर्म मैंने तुमसे कहे इससे तुम इस सनातनधर्म में वर्तमान होकर प्रजापालन सेही चारों आश्रम और वर्णों के धर्मोंको जो कि ब्रह्म के प्राप्त होने की सामग्री है उसको प्राप्त होगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सरसठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णों का धर्म कहा अब देशके बड़ेधर्मों को कहो भीष्मजी बोले कि जो राजाका अभिषेक है वही देश का बड़ाकर्म है क्योंकि राजा और सेना के विना चोर देश को नष्ट करते हैं राजा के विना देशों में धर्म नियत नहीं रहता परस्पर में एक एक को खाजाते हैं राजा के विना देशको सदैव धिक्कार है जो राजाको चाहता है वह इन्द्र को चाहता है यह श्रुति है कि (यथा इन्द्रस्तथा नृपः) अर्थात् जैसा इन्द्र है वैसाही राजा है इससे वह पूजन के योग्य है राजासे रहित देशों में कभी निवास न करना चाहिये क्योंकि राजा से रहित देश में अग्निदेवता हव्यको नहीं ग्रहण करता है जो ऐसे देश में कोई दूसरा राजा इच्छा करके आवे तो वह पूजा के योग्य कहां से होसक्ता है तात्पर्य यह है कि विना राजा के देशमें पाप के सिवाय कोई धर्म नहीं है जो राजा अच्छे प्रकार से विचार करे तो सर्वानन्द हो क्योंकि क्रोधयुक्त पराक्रमी राजा सब नाश करता है हे राजन् ! जो गौ दुःख से दूध देनेवाली होती है वह महादुःख पाती है और जो सुख से दूध देती है उसको पीड़ा नहीं देते हैं जो विना तपाये लकड़ी अच्छी तरह नव जाती है उसको तपाने की कोई आवश्यकता नहीं होती और जो लकड़ी आप झुकती है उसको भी नहीं झुकाते इससे हे राजन् ! पराक्रमी को अच्छे प्रकार नमस्कार करै जो बलवान् को नमस्कार करता है वह इन्द्र को नमस्कार करता है इससे ऐश्वर्य चाहनेवाली प्रजा को सदैव राजा करना अवश्य है जिन्हों का राजा नहीं है उनका धन और स्त्री से सम्बन्ध रखनेवाला कोई प्रयोजन नहीं सिद्ध होता राजा से रहित देश में पापी पुरुष दूसरे के धन को चुराता है और प्रसन्न रहता है जब दूसरे मनुष्य उसके धन को हरते हैं तब राजा को चाहता है तब पापी भी कभी आनन्द को नहीं पाते हैं एक के धन को दो हरते हैं और दो के धन को दूसरे अन्य लोग हरते हैं और जो दास नहीं है वह दास किया जाता है और बल से स्त्रियां हरण कीजाती हैं इसी हेतु से देवताओं ने राजाको नियत किया है जो लोक में पृथ्वी का दण्डधारण करनेवाला राजा न होय तो अधिक बलवान् निर्बलों को भक्षण करजायँ जैसे कि जल में मछली मछलियों को खाती हैं पूर्व समय में राजा न रखनेवाले परस्पर भक्षण करनेवाले जीव नाश को प्राप्तहुये जैसे कि जल में बलवान् मछली निर्बल मछली

को खाकर नाश करदेती है यह हमने सुना तदनन्तर उन्होंने परस्पर में मिलकर नियम किया यह भी हमने सुना कि जो वचन की कठोरता और दूसरेकी स्त्री से भोग करने का उग्रदण्ड हो और जो दूसरे के धन को चुरावे ऐसे प्रकार के मनुष्य हम को त्यागने के योग्य हैं वह सब वर्णों के विश्वास के लिये उस प्रकार के परस्पर नियमों को करके नियमों में दृढ़ नहीं हुये तब दुःख से पीड़ित हो वह जब प्रजा के लोग ब्रह्माजी के पास गये कि हे ईश्वर! हम विना राजा के नाश होजायँगे इससे हम को राजा दो हम ऐश्वर्यवान् होकर उसीकी प्रतिष्ठाकरेंगे जो हमारी रक्षा करेगा तब ब्रह्माजी ने मनुजीको आज्ञाकरी मनुजी ने उन प्रजाओंको स्वीकार नहीं किया और कहा कि मैं पापकर्म से बहुत डरता हूं राज्य में बड़े२ दुःख हैं इससे पारहोना कठिन है मुख्यकर बिनलाभ चलनेवाले मेरी सन्तानों में वर्तमानहैं भीष्मजी बोले कि यह सुनकर प्रजा ने मनुजी से कहा कि भयमतकरो पाप कर्ताकोही होगा हम पशुओं का और सुवर्ण का पचासवां भाग और अनाज का दशवां भाग खज़ाने की वृद्धि के लिये तुमको देंगे और कन्याओं के विवाहों में कर लगने पर सुन्दर रूपवती कन्याओं को देंगे जो आपकी उत्तम सन्तान हैं वह उत्तम शस्त्र और सवारियोंसमेत आपके पीछे ऐसे चलेंगे जैसे देवतालोग महेन्द्र के पीछे चलते हैं सो तुम पराक्रमी प्रतापी विजयी राजा हम सब को ऐसे प्रसन्न करोगे जैसे कि राक्षसों को कुबेर प्रसन्न करता है राजा से रक्षित होकर प्रजा जिस धर्म को करेगी उस धर्मका चौथाभाग तुमको मिलेगा सो हे राजन्! उस बड़े धर्म से वर्धमान सुखसे प्राप्त होनेवाले आप हम सबकी रक्षा उसी प्रकार करो जैसे कि देवताओं की रक्षा इन्द्र करता है आप सूर्य के समान तपानेवाले हैं इससे विजय के निमित्त चलो और शत्रुओं के अहंकारों को नाश करो और सदैव तुम्हारी विजय होगी तब बड़ीभारी सेना समेत महाप्रतापी सूर्यसमान तेजस्वी मनुजी वहांसे चले और जैसे देवता महेन्द्र की प्रतिष्ठा को देखते हैं उसी तरह उसकी उस प्रतिष्ठा को देखकर सब भयभीत हुये और अपने२ धर्म में चित्त लगानेलगे फिर वर्षा करनेवाले बादल के समान मनुजी सबओर से पापियों को विजय करते और अपने कर्म में लगाते हुये पृथ्वी पर भ्रमण करनेलगे इसीप्रकार जो मनुष्य पृथ्वी पर ऐश्वर्य को चाहैं वह अवश्य राजा को बनावें और उसके पास वर्तमान होकर जैसे कि शिष्यलोग गुरुको और देवता देवराज को मानते हैं उसीप्रकार वह भी भक्तिपूर्वक उसको

नमस्कार करें अपने मनुष्यों में प्रतिष्ठित मनुष्य को अन्य लोगभी प्रतिष्ठा देते हैं और अपने लोगों में अपमान पानेवालों को दूसरे भी अपमान करते हैं शत्रुओं से राजा की पराजयहोना सबका दुःखदायी है इस कारण छत्र, सवारी, वस्त्र, आभूषण और खाने पीने की वस्तु और मकानात आसन शय्या आदि राजाको निवेदन करें जिससे कि वहराजा शुद्धचित्त से आनन्दपूर्वक मन्द मुसक्यान से प्रजा से मीठे वचन कहै और उपकार करनेवाला दृढ़ भक्त विभाग करके भोजन करनेवाला जितेन्द्रिय समानद्रष्टा सुन्दर दृष्टि से देखे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अरसठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ! ब्राह्मणों ने मनुष्यों के स्वामी देवतारूप राजा को क्या कहा उसे आप कहिये भीष्मजी बोले हे राजन्! इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसको कौशिकी राजा वसुमना ने बृहस्पतिजी से पूछा था कि हे महाज्ञानिन्, बृहस्पतिजी! जीव कैसे बढ़ते और कैसे नाश होते हैं और किस के पूजन से अविनाशी सुख को पावें यह सुनकर बृहस्पतिजीने कहा कि हे महाज्ञानिन्! लोक का धर्म राजा को मूल रखनेवाला दृष्टि पड़ता है प्रजालोग राजा के भय से परस्पर में भक्षण नहीं करते हैं राजा सब संसार के कुकर्मी लोगों को पवित्र करता है और पवित्र करके शोभायमान होता है जैसे कि चन्द्रमा और सूर्य के उदय न होनेपर परस्पर में न देखनेवाले जीव अन्धतामिस्र नाम नरकमें गोते खाते हैं और जैसे थोड़ेजल में मछलियां और बधिक से स्वच्छन्द विहार करनेवाले पक्षी भयभीत रहते हैं उसीप्रकार श्रेष्ठ दण्डसे प्रजा भी भयभीत होकर अधर्मों से बचीरहती है इससे विना राजाके प्रजा नाश होजाती है जैसे कि ग्वालसे रहित पशु होते हैं और पराक्रमी अल्पपराक्रमी की स्त्री को हरण करते हैं और धनकी रक्षा करनेवालों को मारते हैं जो राजा रक्षा नहीं करे तो इस लोक में यह न होगा कि यह मेरा स्थान या स्त्री या पुत्र है अर्थात् धन स्त्री पुत्र अपने नहीं कहसक्ता और सब ओर से धन का नाश होता है जब कि राजा रक्षा नहीं करता है तो पापीलोग अकस्मात् सवारी, वस्त्र, भूषण और अनेक प्रकारके रत्नों को हरण करते हैं जब रक्षा राजा की न हो तो बहुधा धर्म करनेवालों पर बहुत से शस्त्र चलाये जाते हैं और अधर्म मचजाता है और जो राजा की

श्रेष्ठ रक्षा न होय तो वृद्ध माता, पिता, आचार्य, अतिथि और गुरु इत्यादि को कष्ट देकर मारते हैं और सदैव धनवानों को दुःख और बन्धन और मरण होता है और इस बातको कोई प्राप्त न करसके कि यह धन स्थान आदि पदार्थ हमारा है विना काल मरते हैं और संसार चोरों के ही आधीन होकर घोर नरक में गिरता है और योनि का दोष वर्तमान न होवे खेती और व्यापारका मार्ग भी न चले धर्म डूबजाय तीनों वेदों का अभाव होजाय और पूरी दक्षिणावाले यज्ञ विधि के अनुसार न हों न विवाह समाज आदि हो बैल गौवों में भोग न करें और मनुष्य दही को न बिलोवें और अहीरों की गाय नाश होजायँ भयभीत व्याकुलहृदय और हाहाकाररूप अचेत हो संसार का शीघ्रही नाश होजाय और मारे भय के कोई राजा स्वयंवर भी न करे तपस्वी और विद्याव्रतधारी ब्राह्मण वेदों को न पढ़ें और अत्यन्त दुःखी होकर मनुष्य धर्म के स्नानादिकों को भी न करसकें और चोरों को निर्भयता होजाय और हाथोंहाथ चोरी करें और सब मर्यादा टूटजायँ और भय से पीड़ित होकर सबदेश भागजाय अनीति जारी हो और संसार वर्णसंकर होजाय और सब देशों में दुर्भिक्ष पड़े और जब मनुष्य राजासे रक्षित होकर चारों ओर से निर्भय होते हैं तब इच्छापूर्वक अपने द्वारों को खोल २ सोते हैं जो धार्मिक राजा पृथ्वी की रक्षा अच्छे प्रकार से नहीं करता है तब कोई किसी की घुड़की को नहीं सहता है तो तमाचा कब सहैगा जब कि राजा की अच्छी रक्षा होती है तब सब स्त्रियां भूषणों से भूषित पुरुषों से अरक्षित भी निर्भय मार्ग में चलती हैं और मनुष्य धर्म को करते हिंसा नहीं करते और एक दूसरे पर कृपा करता है तीनों वर्ण पृथक् २ बुद्धि के अनुसार महायज्ञों से पूजन करते हैं और परिश्रम करके विद्या को पढ़ते हैं यह लोक जीविकारूप जड़ रखता है और वेदके लिखे हुये कर्म जो कि वर्षा आदि के कारण हैं धारण किये जाते हैं जब राजा बड़े बल से प्रजा के श्रेष्ठ भार को लेकर उसकी रक्षा करता है तब संसार प्रसन्न होता है और उसके नाशसे चारों ओर जीवों का भी नाश होता है और ऐश्वर्य में ऐश्वर्य होवे तो कौन उसकी प्रतिष्ठा न करे जो पुरुष राजा के प्यारे हित में नियत होता है तो संसार में भय उत्पन्न करनेवाला राजा भी उस पुरुष का बोझा धारण करता है और दोनों लोकों को विजय करनेवाला है जो पुरुष चित्तसे भी उसके पाप को विचारे वह निस्सन्देह इसलोक में दुःख भोगकर अन्त में नरक पाताहै राजा कभी अपमान

के योग्य नहीं है क्योंकि वह मनुष्यों का बड़ा देवता नररूप में वर्तमान है कि सदैव समय के अनुसार पांचरूप को धारण करता है अर्थात् सूर्य, अग्नि, मृत्यु, कुबेर और यमराज भी होता है जब छला हुआ राजा पापियों को सबके सम्मुख उग्रतेज से भस्म करता है तब अग्निरूप होता है और जब दूतके द्वारा राजा सब जीवों को देखता है और मंगल मनाकर चलता है तब सूर्यरूप होता है जब क्रोधयुक्त होकर सैकड़ों अपवित्र मनुष्योंको पुत्र पौत्र मन्त्रियों समेत मारता है तब मृत्युरूप होता है जब सब अधर्मियों को कठिन दण्ड देता है और धर्म करनेवालों पर कृपा करता है तब यमराजरूप होता है जब राजा सहायता करनेवालों को धनकी धाराओं से तृप्त करता है और शत्रुता करनेवालों के अनेक प्रकार के रत्नों को छीनलेता है किसी से लेता है और किसी को देता है तब वह कुबेररूप होता है बुद्धिमान् सुगमकर्मी धर्मरूप लोक के चाहनेवाले और दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाले मनुष्य को इस ईश्वर स्वरूप राजा की निन्दा न करनी चाहिये पुत्र भाई अथवा समान अवस्थावाला यद्यपि आत्माकी बराबर हैं वे भी राजा की निन्दा करके सुख को नहीं पाते हैं वायु को सारथी रखनेवाला अग्नि चाहे कुछ भस्म करने से बाक़ी भी छोड़े परन्तु राजा से विरोधी का चिह्न भी नहीं रहता उस राजा की रक्षा के योग्य वस्तुओं को मनुष्य दूरसे ही त्याग करे और राजधनहरण से ऐसा डरे जैसे कि मृत्यु से डरते हैं क्योंकि राजधन के छूने से ऐसे नाश होजाता है जैसे कि फन्दे के छूतेही मृग मरजाता है इसलोक में बुद्धिमान् मनुष्य राजधन को अपने धनके समान रक्षा में रक्खे राजधन के चुरानेवाले महाघोर नरक में पड़ते हैं भोज, विरट्, सम्राट्, क्षत्रिय, पृथ्वीनाथ, मनुष्यरक्षक जो राजा इन शब्दों से विशेषण अर्थात् प्रशंसा किया जाता है उसके पूजन को कौन योग्य नहीं है इससे ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् मनुष्य राजा की शरण में रहे राजा ऐसे मन्त्री को पारितोषिक आदि देकर प्रसन्न करे जोकि उपकारी, ज्ञानी, कुलीन, दृढ़भक्तिरखनेवाला, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा और स्थिरस्वभाव हो राजा मनुष्य की बुद्धि से प्रशंसा करताहै और दुर्बल भी करदेता है इससे राजाके अपराधी को कहां सुख है और अपने आज्ञाकारी को राजा सुखी करता है प्रजालोगों की हृदय से प्रतिष्ठा उत्तम और सुखरूप होती है मनुष्य राजा के पास शरणागत होकर इसलोक परलोक दोनोंमें सुखी होते हैं और बड़ा यशस्वी राजा भी सम-

दर्शी भाव सत्यता प्रसन्नता आदि से पृथ्वी पर आज्ञाओं को और बड़े २ यज्ञों को करके स्वर्ग में सनातन स्थान को पाता है ऐसे बृहस्पतिजी के समझाने से राजा वीरकौशली ने बड़ी धर्मनीति से प्रजा का पालन किया ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले राजा से कौन कर्म करना रहजाता है और कैसे देश की रक्षा के योग्य है और कैसे शत्रुओं को विजय करे और कैसे दूतों को नियत करे और कैसे वर्णों को विश्वास दिलावे और नौकर, पुत्र, स्त्री आदि को कैसे शिक्षा करे भीष्मजी बोले कि तुम सावधान होकर राज्य के सम्पूर्ण प्रबन्ध और रीतियों को सुनो पृथुवंशी या दूसरे वंश के राजा को भी प्रारम्भ में जो करने के योग्य है वह कहता हूं कि प्रथम तो राजा अपने चित्तको वश करे फिर शत्रु विजय करने के योग्य है चित्त को विना वश किये राजा कभी शत्रुओं को विजय नहीं करसक्ता है पांचो इन्द्रियों को स्वाधीन करना यही चित्त का विजय करना है इन्द्रियों का जीतनेवाला राजा सदैव शत्रुओं को पीड़ा दे सक्ता है गुल्म अर्थात् रक्षा करनेवाली सेना को गढ़, देश, नगर, वन, उपवन आदि स्थानों में नियत करे और कोष्ठपालों को पुर, नगर, राजमहल आदि सब स्थानों में जंगी पहरा बनाकर नियत करे फिर मनुष्यों के ज्ञाता बुद्धिमान् भूख प्यास परिश्रम के सहनशीलों को अज्ञान अन्धे बहरे के रूप में गूढ़चारी अर्थात् जासूसों को नियत करे और सावधान राजा को उचित है कि सब मन्त्री और नानाप्रकार के मित्र और पुत्रों से भी गुप्त दूतों को नियत करे ऐसेही नगर, देश और सामन्त नाम राजाओंपर भी गुप्तदूत नियत करने योग्य हैं जिनको कि वह परस्पर में भी न जाने और शत्रुओं के भेजे हुये दूतों को जाने हुये व्यापारियों की दूकान विहारस्थान संन्यासियों के समाजों में वन, उपवन और पण्डितों की सभा में अथवा देश की कचहरी राजसभा और बड़े घरोंपर नियत करे ऐसी सावधानी से राजा शत्रु के दूत को निश्चय करे प्रथम तो दूत के निश्चय होने पर प्रयोजन सिद्ध होता है जब राजा अपने को बुद्धि में कम समझे तब मन्त्रियों से सलाह करके पराक्रमी राजा से सन्धि करे जो राजा बड़े उत्साहयुक्त धर्मज्ञ और साधु हैं उनके साथ धर्मात्माराजा को सदैव सन्धि करनी चाहिये बुद्धिमान् राजा अपनी

पराजय होती जानकर अपराध से छूटकर कृपा से पोषण होनेवाले और प्रजा के शत्रुरूप सब अपराधियों को मारे जो राजा उपकार और अनुपकार करने को समर्थ नहीं है और पराजय करने की भी सामर्थ्य नहीं है उसप्रकार के राजा से तरहही देना योग्य है बुद्धिमान् राजा उस समय युद्ध के लिये चढ़ाई करके जब कि शत्रु निर्बल और मित्रों से रहित बान्धवों से पृथक् दूसरे से युद्ध करनेवाला और अचेत हो ऐसे और चढ़ाई कीजाय कि मालूम न हो और जब कोई वीरपराक्रमी राजा समर्थ और पराक्रमी सेना सहित सुखी हो तब चढ़ाई के समय पहिले नगर में रक्षाकरनेवाली सेनाको सामान सहित नियत करके अपनी चढ़ाई को प्रकट करे और जो वह भी पराक्रमी है और इसके आधीन न हो उस दशा में सेना और बलपराक्रम से हीन राजा बलीराजाको बल से हीन करताहुआ उस कर्म में प्रवृत्त हो कि विषके शस्त्र और अग्नि आदिसे उसके देशको व्याकुल करे और उसके मन्त्री वा भाई बन्धुओं में परस्पर कलह मचवावे राज्य के चाहनेवाले बुद्धिमान् राजाको सदैव युद्धत्यागकरना योग्य है बृहस्पतिजी ने तीनयुक्तियों से राजा के प्रयोजन सिद्ध होने को कहा है पण्डित राजा युद्धनिवृत्तकर्त्ता कुछ देकर सन्धिकरना शत्रु और शत्रुओं के मित्रों से विरोध करवाना इनतीनों युक्तियों के द्वारा जिस प्रयोजन के सिद्धकरने को चाहै वही प्राप्तकरै और ज्ञानीराजा अपनी प्रजा से भी छठाभाग उपजे का उनकीही रक्षाके निमित्त लेवे और दशधर्म में प्रवृत्तलोगोंसे जो थोड़ा बहुत राज-अंश लेना उचित है उसको पुरवासियों की रक्षा के लिये विना विचार के लेवे जैसे पुत्र देखने योग्य हैं वैसेही पौत्र भी निस्सन्देह देखने चाहिये विवादके दृष्टिगोचर होनेपर उसमें परिश्रम न करनाचाहिये किन्तु राजा विवाद के सुनने और योग्यायोग्य जानने के लिये सब अर्थों के जाननेवाले ज्ञानी पुरुषों को नियत करे क्योंकि उनमें राज्य नियत है उन बुद्धिमान् आज्ञाकारी पुरुषों और मन्त्रियों को सुवर्ण की खानि नमक का स्थान अनाज की मण्डी और रुई पान नदी के पुल आदि स्थानों पर उनकी आमदखर्च विचारने के वास्ते नियत करे सदैव अच्छे प्रकार दण्ड का धारण करनेवाला राजा धर्म को प्राप्त होता है राजा का सदैव दण्ड जारी होना पूरा धर्म कहलाता है और जो राजा वेदवेदांग का जाननेवाला पण्डित तपस्वी दानयज्ञ का अभ्यासी भी हो और व्यवहार लोपकरनेवाला हो अर्थात् विवाद को अस्तव्यस्त करे ऐसे

राजाको यश और सुखकी प्राप्ति कैसे होगी जब राजा दूसरे पराक्रमी राजासे पीड्यमान होय तब वह बुद्धिमानी से गढ़ में रक्षाले मित्रों को संयुक्त करके युद्ध के व्यवहारों में रीतियां जारी करे और सामवेद के विपरीत अर्थों को विचारकरे मार्ग में अहीरों के गाँवों को नियत करे और अन्य गाँवों को उठादे और उनसब को भी बड़े नगरों के उपनगरों में बसावे और जो रक्षाके योग्य दुर्गम स्थान हैं उनमें देशवालों को बसावे और धनी लोगों को और सेना के प्रधानों को बराबर धैर्य बँधवावे और शत्रु के खेतों को आप राजा छीनले और दखल होने के असम्भव होने पर अग्नि से भस्म करे खेतों में अनाज बोने पर शत्रुके मनुष्योंको अपनी ओर करके उनके द्वारा खेतों को छीनले या अपनी सेना के द्वारा उन सबका विध्वंस करे इसीप्रकार नदी के मार्ग पुल आदि को तोड़ डाले सब जल को हटा दे और हटने के अयोग्य जल को विषयगर्द से बिगाड़े वर्तमान और भविष्यत् काल में सदैव मित्र का कार्य वर्तमान होने पर भी उसको त्याग करके मैदान में शत्रु के मारनेवाले और विवश शत्रु के पास रहनेवाले राजा से मिलकर निवास करे अर्थात् उससे सन्धि करके उसकी सेना के द्वारा शत्रुओं को अपने देश से दूरकरे राजा सब ओर से गढ़ों के ओर पास वृक्षोंको लगावे और सब छोटेवृक्षों को कटवावे परन्तु चीतनाम वृक्षों को त्यागकरे उसी प्रकार बहुत बड़े वृक्षों की शाखाओं को कटवावे सब दशा में चैतनाम वृक्षों की पत्ती को अवश्य गिराना चाहिये तब अच्छे प्रकार से प्रगंजी अर्थात् धुस आदि और आकाशजननी अर्थात् गोले के बाहर आने के छिद्रों को बनवावे और खाईं को जलपूरितकर मगरमच्छों से पूरित करे पुरके श्वास लेने के लिये छोटे २ द्वार हों और सबप्रकार से उनकी रक्षा करे द्वारपर सदैव भारी यन्त्र तोप इत्यादि को नियत करे और शतघ्नियों को अपने आधीन करके आरोपण करे और काष्ठ इकट्ठा कराने के योग्य है इसीप्रकार कूपों को खुदवावे और पहिले बनेहुये कूपों को साफ़ करावे और फूस आदिसे बननेवाले स्थानोंको मृत्तिकासे लिपवावे इसी प्रकार अग्नि के भय से चैत के महीने में घास आदि को खुदवावे और इकट्ठी करे और सेना के खाने की वस्तु को रात्रि में पकवावे और अग्निहोत्र के सिवाय दिनमें अग्नि न जलावे और कर्मारिष्टशालाओं में अर्थात् लोहार आदि की दूकानों में अग्नि बड़ी रक्षापूर्वक रहे और घरों में भी दबीहुई अग्नि रहे दिन में जिसके घरमें अग्नि जलाईजाय उसको बड़ा दण्ड हो और पुरकी रक्षाके लिये

भी इसीप्रकार प्रवेष अर्थात् मनादी करादे और भिक्षुक, कुम्हार, क्लीब, प्रमत्त, कुशील आदि पुरुषों को देश से बाहर करदे क्योंकि वह दूसरी दशा में हानिकारक होंगे और चौतरे आदि अठारह नाम से प्रसिद्ध तीर्थ सभा और बड़े २ मकानों में वर्णों के अनुसार सबके गुप्त देवताओं को नियत करे और बड़े २ राजमार्गों को बनवावे और जलकी प्याऊ आदि बाज़ारों में शास्त्र के अनुसार नियत करे और पात्रस्थान शस्त्रस्थान और सब लड़नेवालों के मकानात अश्वशाला गजशाला आदि सड़क की खाईं और बाग़ महल इत्यादि बनवावे और इन स्थानों को ऐसा गुप्त रक्खे कि दूसरा मनुष्य कोई न जानसके तेल, चर्बी, शहद, घृत और सब औषध, कोयले, कुश, मूंज, ढाक, जौ, ईंधन और विष से भरेहुये बाणों का ढेरकरावे और सब धनुष आदि शस्त्र शक्ति, दुधारा खड्ग, वर्म, ओषधी, मूल, फल और अच्छे ज्ञाता चारप्रकार के वैद्यों को नौकर रक्खे अर्थात् विष का दूरकरनेवाला व्रणका अच्छा करनेवाला और रोगों को जानकर चिकित्सा करनेवाला और कृत्तिआ अर्थात् घात आदि से बचानेवाला यह चारप्रकार के वैद्य कहलाते हैं और नट, नर्तक, मल्ल और मायावी आदि पुरुषोंको बसावे वह सब पुर के उत्तम लोगों को प्रसन्न करें और राजा उनको धनसे मान से पूजन से और अनेक प्रकार से प्रसन्न रक्खे और उनको नौकर चाकर पुरवासी अथवा दूसरे राजा से भी शंका होय तो अपने आधीन करे और दान मान से और अनेक प्रकार के विश्वाससे उनका सत्कार करे और शत्रुको ताड़ना करके अथवा मारकर उनसे उऋण होवे यह शास्त्र में कहा है और राजा को सात वस्तु रक्षा के योग्य हैं अपना देह, मन्त्री, ख़ज़ाना, मित्र, दण्ड, देश, पुर यह सातो राजा के अंग हैं इनकी सदैव रक्षा उचित है और जो षड्गुण और त्रिवर्ग को जानता है वह इस पृथ्वी को भोगता है वह छहगुण यह हैं कि सन्धि करना चढ़ाई करना शत्रुता करके वर्तमान होना शत्रु को भयभीत करने के लिये चढ़ाई दिखाकर अपने स्थानही पर वर्तमान रहना दोनों ओर से सन्धि करना इसीप्रकार गढ़ आदि में वर्तमान होना अथवा दूसरे किसी महाराज की शरण लेना और त्रिवर्ग को भी स्वस्थचित्त से सुनिये आमदनी और खर्च और ख़ज़ाने की वृद्धि इसीप्रकार धर्म, अर्थ, काम यह भी श्रेष्ठ त्रिवर्ग समय पर सेवनकरने के योग्य है इसरीति से धर्मपूर्वक राज्य करनेवाला राजा बहुतकालतक पृथ्वी को भोगता है इस विषय में बृहस्पतिजी

ने दो श्लोक कहे हैं सो हे श्रीकृष्णजी ! आप की जय हो उनको भी सुनिये कि सबकरने के योग्य कर्मों को करके और सुन्दररीति से पृथ्वी का पालन और पुरवासियों का पोषण कर परलोक में आनन्द से वर्तमान होता है उस राजा को तप यज्ञादि से क्या प्रयोजन है जो राजा धर्म से प्रजापालन करता है वही सब धर्मों का ज्ञाता है युधिष्ठिर बोले कि दण्डनीति और राजा दोनों समान हैं इन में कौन कर्म करता है और किस को सिद्धि प्राप्त होती है इसको मुझे समझाइये भीष्मजी ने कहा कि दण्डनीति चारों वर्णों को अपने धर्म में प्रवृत्त करती है और राजा से अच्छे प्रकार जारी होने से वह अधर्मों से भी रक्षा करती है चारों वर्णों को अपने २ कर्मों में नियत होने और मर्यादा ठीक रहने में और दण्डनीति के कुशल रहने और प्रजा के निर्भयरहने से तीनों वर्ण बुद्धि के अनुसार अपनी दृढ़ बुद्धि में बड़े २ उद्योग करते हैं उसी से मनुष्यों के सुख बने रहते हैं और काल का हेतु राजा या राजा का हेतु काल है इसमें सन्देह मत करो कि राजाही काल का कारण है क्योंकि जब राजा दण्डनीति में अत्यन्त कर्मकर्ता होता है तब सत्ययुग नाम काल उत्पन्न होताहै उसमें धर्म जारी होता है और अधर्म नष्ट होता है और किसी वर्ण का चित्त अधर्म में नहीं जाता है और सबगुण बुद्धि के अनुसार होते हैं सब सुख और ऋतु निर्विघ्न होती हैं और मनुष्योंके स्वर वर्ण और चित्त शुद्ध होते हैं उस युग में रोग और अल्पावस्था नहीं होती और स्त्रियों में कुपात्रता नहीं दृष्टि आती कोई कृपण नहीं होता और विना परिश्रम पृथ्वी में अन्न बहुत उत्पन्न होता है और ओषधी, फल, फूल, त्वचा, मूल महापराक्रमी होते हैं और अधर्म का लोप होता है धर्मही व्याप्त होजाता है इन धर्मों को यज्ञसम्बन्धी जानो जब राजा दण्डनीति में चौथाभाग दूरकरके तीन भागों को लेता है तब तृतीय वर्तमान होता है और दण्डनीति के उन तीनों भागों के सम्मुख अधर्म का चौथाभाग आकर वर्तमान होता है और खेती सफल होती है और ओषधियां भी उत्पन्न होती हैं और जब राजा दण्डनीति के आधेभाग को छोड़ देता है तब द्वापर नाम युग आजाता है उससमय अधर्म का आधाभाग दण्डनीति के आधेभाग के सम्मुख आजाता है तब पृथ्वी में आधा फल अन्न ओषधी आदि उत्पन्न होते हैं जब राजा दण्डनीति को अत्यन्तही त्याग कर विना विचारे प्रजा को दुःख देताहै तब कलियुग वर्तमान होजाता है कलियुग में बहुत अधर्मियों के

उत्पन्नहोने से कभी धर्म नहीं होता है सब वर्णों का चित्त अपने धर्म से पृथक् होजाता है और शूद्रलोग भिक्षा से जीवन करते हैं ब्राह्मण सेवा से अपना पोषण करते हैं धन की प्राप्ति और उसकी रक्षा दोनों का नाश होता है और वैदिककर्म निष्फल होजाते हैं सब ऋतु सुखरहित और रोगों से व्याप्त होती हैं मनुष्यों के स्वर देह चित्त म्लान होजाते हैं और रोगों के कारण मनुष्यों की अकालमृत्यु होती है और स्त्रियां पापात्मा कुचालिनी होजाती हैं और प्रजा के लोग निर्दय उत्पन्न होते हैं खण्डवृष्टि और खेती कभी फलती कभी नहीं फलती है जब राजा दण्डनीति से सावधान होकर प्रजा को अच्छे प्रकार से पोषण नहीं किया चाहता है तब सब रसों का नाश होता है राजाही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चारों युगों का कारण है सत्ययुग का जारी करनेवाला राजा अक्षय स्वर्ग भोगता है और त्रेतायुग उत्पन्न करनेवाला स्वर्ग को अल्पकाल भोगता है और द्वापर को पैदा करनेवाला भागके अनुसार स्वर्ग भोगता है और कलियुग को जारी करनेवाला महापापों को भोगता है अर्थात् बहुत समय तक नरक भोगता है और प्रजा के पापों में डूबाहुआ महाअपयश को प्राप्त होता है इससे क्षत्रिय लोग दण्डनीति को आगे करके अप्राप्त को प्राप्तकरें और प्राप्तकी चारों ओर से रक्षाकरें अच्छेप्रकार से जारी कीहुई दण्डनीति माता पिताके समान संसार की स्थिति और वृद्धि करनेवाली मर्यादारूप होती है सो हे राजन्! यही धर्म उत्तम है और इसी से सब जीव ऐश्वर्यवान् होते हैं इस कारण हे कुन्तीनन्दन! तुम नीतिपूर्वक प्रजापालन करो ऐसे आचरणों से प्रजाका पालन करनेवाला दुर्गम स्वर्ग को पाता है ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे क्षत्रियव्यवहार के जाननेवाले, पितामह! किस रीति से कर्म करनेवाला सुखपूर्वक दोनों लोकों में उन सुखों को पावे जोकि भविष्यत् काल में आनन्ददायक हों भीष्मजी बोले कि यह छत्तीसगुण छत्तीस ही विशेषणों से संयुक्त हैं इन सविशेषण गुणों से युक्त राजा जो २ कार्य करता है वह सब कल्याणकारी होते हैं रागद्वेषवर्जित आस्तिकबुद्धि राजा सब धर्मों को प्रीति से करे और परलोक का चिन्तन करे लोभ न करे और दयायुक्त होकर धन को इकट्ठाकरे और धर्म, अर्थ संयुक्त इन्द्रियों को प्रसन्न करे

और उदारतापूर्वक प्यारे वचन कहे और आत्मस्तुतिरहित पात्रापात्र विचार कर पात्र को दान दे नीचोंसे स्नेह न करे और बुद्धिमान् होकर बान्धवों से द्वेष न करे थोड़ी जीविका के दूतों को भ्रमण न करावे और न कभी कष्टदे और नीचपुरुषों से न तो अपने गुण कहै और न अपना प्रयोजन वर्णन करे साधु से ले नहीं नीचों की रक्षा न करे विना परीक्षा किये दण्ड न दे मन्त्र गुप्तरक्खे लोभियों को धन न दे कृतघ्नी लोगोंपर विश्वास न करे अनीर्षु और स्त्रियों का रक्षक शुद्ध दयावान् बहुत सी स्त्रियों का सेवन न करनेवाला शुद्ध भोजन करे और क्रियावान् पुरुषों का पूजन और गौवों का पूजन निश्छल होकर करे इसीप्रकार देवताओं को यज्ञादि धर्मों से प्रसन्न करे और उत्तम लक्ष्मी को चाहै नम्रतापूर्वक ईश्वर की सेवाकरे बुद्धिमान् और काल का जाननेवाला शत्रु को भी अपराध जाने विना दण्ड न दे और अपराधी शत्रुओं के मारने में शोच न करे विना कारण क्रोध न करे कृतघ्नियों पर नम्रता न प्रकट करे जो इस लोक में कल्याण को चाहते हो इससे तुम राज्य में प्रवृत्त होकर इस प्रकार से कर्म करो इसके विपरीत कर्म करनेवाला राजा बड़ी विपत्ति में पड़ता है जो राजा इन सब गुणों से सम्पन्न कर्मों को करता है वह इसलोक में अनेक ऐश्वर्यों को भोग स्वर्ग में बड़ी प्रतिष्ठा पाता है यह सब बातें सुनकर राजा युधिष्ठिर ने भीष्मजी को प्रणाम करके वैसाही किया ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इकहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! किस प्रकार से प्रजा की रक्षा करता हुआ राजा चिन्ता से रहित होताहै और कैसे धर्ममें विपरीत कर्म नहीं करता भीष्म जी ने कहा कि हे राजन् ! मैं मिलेहुये सनातनधर्म तुम से कहता हूं क्योंकि धर्मोंको ब्योरेवार कहने में अन्त नहीं है तुम धर्मनिष्ठ वेदपाठी देवव्रतपरायण हो गुणवान् ब्राह्मणों को पूज घरही में यज्ञों को करो और अपने पुरोहितादि को दानदक्षिणा देकर राज्य के कामों को करो और शुद्धभाव से धैर्यभाव में प्रवृत्त बुद्धि के अनुसार राजअंश को ले और काम क्रोध को त्याग दे क्योंकि जो राजा काम क्रोध में प्रवृत्त होकर राज्य के प्रबन्ध को करता है वह निर्बुद्धि अपने अर्थ धर्म को भी खो बैठता है लोभी और मूर्खों को काम और अर्थ में नियत मत करो निर्लोभी बुद्धिमान् पुरुषों को सब अधिकारों पर नियत करो

राज्य के कामों में विना कुशल काम क्रोध में भरेहुये माल के महकमे आदि में अधिकारी होनेवाले मूर्ख विना विचार युक्ति के कारण प्रजा को दुःखदायी होते हैं खेती के पवित्र षष्ठांश से और अपराधियों के जुर्माने से और परमठ आदि के महसूल को शास्त्र की रीतिपर लेने से धनका आगम चाहो और जब छठाभाग अन्नादि का लेनेसे प्रजाका वार्षिक व्यय पूरा न होसके तब आलस्य को त्याग राजनीति के द्वारा राजा प्रजा के महसूल आदि लेने को माफ़ करे और इसी प्रकार बुद्धि के अनुसार उनकी जीविका और रक्षा का भी विचार करे उसकी प्रजा भी उस धर्मात्मा दानी को अनेक प्रकार से आनन्द देती है इससे तुम अधर्म और लोभ से धन को मत चाहो जो राजा शास्त्र के अनुसार न चले उसके धर्म अर्थ का नाश होता है जो धनकी इच्छा रखनेवाला राजा शास्त्र पर दृष्टि नहीं रखता और भूलाहुआ प्रजा को क्लेश देता है वह अपना मरण आप करता है जैसे कि दूध का चाहनेवाला गौ के थन को काटे उसको दूध कहां से मिलसक्ता है उसीप्रकार विना विचारके पीड़ा दियाहुआ देश भी अच्छी वृद्धि को नहीं पाता है और जो दूध देनेवाली गौ की उपासना करता है वह सदैव दूध पाता है इसी प्रकार विचारपूर्वक देशका भोगनेवाला राजा भी फल को पाता है और विचार से भोगेहुये सुरक्षित देश की भी वृद्धि करता है तब खज़ाने में धन की वृद्धि होती है राजा से अच्छे प्रकार सुरक्षित भूमि भी अन्न, सुवर्ण, रत्न आदि राजाको और प्रजा दोनों को ऐसे देती है जैसे कि तृप्तिमाता दूध को देती है इससे हे राजन्! तुम माली के समान हो जैसे कि माली उत्तम वृक्षों की रक्षा करता है और हानिकारी वृक्षों को निकालता है वैसेही अपनी प्रजा का पालन करो तो सदैव आनन्दपूर्वक रहोगे जो शत्रु पर सेना की चढ़ाई करने से तेरे धन का व्यय हो उस दशा में सामनीति के द्वारा ऐसे धन को इकट्ठा करो जो कि ब्राह्मणों के विशेष दूसरे वर्णों का हो ब्राह्मण को धनाढ्य जानकर तू अपने चित्त से कभी लोभ में प्रवृत्त न हो किन्तु सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मणों को यथायोग्य धन को दो इस प्रकार से ब्राह्मणों को दान से प्रसन्न करोगे तो सदैव आनन्द से राज्य भोगोगे और अन्त में स्वर्ग की भी प्राप्ति होगी ऐसे सम्पूर्ण धर्माचरण से प्रजापालन करो जिससे कि तुम कभी शोक में नहीं प्रवृत्त होगे यही प्रजापालन सबधर्मों में उत्तम गिना जाता है प्रजा को भय से रक्षा नहीं करनेवाला राजा एक दिन में जो पाप करता है

वह हज़ार वर्ष में भी उसके पाप से नहीं छूटता और जो राजा धर्मपूर्वक प्रजापालन करता है उसका एक दिन का पुण्य स्वर्ग में दशहज़ार वर्षतक आनन्द देता है ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ धर्मों के करने में जो धर्म प्राप्त होता है वह धर्मपूर्वक प्रजापालन करनेवाला राजा एक क्षण में पाता है इससे हे युधिष्ठिर! तुम बड़ी सावधानी से युक्तिपूर्वक प्रजा का पालन करोगे तो पवित्र फल को पाकर कभी शोक को प्राप्त न होगे और सब लोकों में महालक्ष्मी को पावोगे जो राजा नहीं है उनके पास ऐसे धर्मों का प्रकाश नहीं होता इस कारण जो ऐसे धर्म के फल को पावे वही राजा है सो तुम धैर्यवान् होकर देवों को अमृत से और सुहृद्जनों को कामनाओं से तृप्तकरो ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

बहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन्! जो ब्राह्मण सत्पुरुषोंकी रक्षा और असत्पुरुषों को राज्य से निकलवादे वही राजा को पुरोहित करने के योग्य है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहासको कहता हूं जिसमें पुरूरवा ऐल और वायु का संवाद है पुरूरवा बोले कि ब्राह्मण कहां से उत्पन्न हुआ और तीनोंवर्ण कहां से पैदाहुये और कौन २ कर्मों से उत्तमता प्राप्ति होती है वह सब मुझ से वर्णन कीजिये वायुदेवता बोले कि हे राजन्! ब्रह्माजी के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य, चरण से शूद्र उत्पन्न हुये सो ब्राह्मण तो संस्कार के द्वारा धर्मों के समूहों का रक्षक सब का ईश्वर पृथ्वीपर जन्म लेनेवाला है और दण्डधारण के लिये क्षत्रिय पृथ्वी का स्वामी और रक्षक उत्पन्न हुआ और धन धान्य की रक्षा के लिये वैश्य और इन तीनों वर्णों की सेवा के निमित्त शूद्र उत्पन्न हुआ ऐल बोला कि ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनों में से यह वसुन्धरा पृथ्वी किसकी होनी चाहिये इसको हे वायुदेवता! मुझ से कहिये तब वायु बोले कि इस लोक में यह पृथ्वी वेदपाठी ब्राह्मण की है यह धर्मज्ञ पुरुष कहते हैं ब्राह्मण अपने धनको भोगता है और अपनेही वस्त्रादि को धारण करता है और दान भी अपनेही धनका करता है इससे निश्चय है कि द्विजन्मा ब्राह्मण ही सब वर्णों का गुरु और वृद्ध और उत्तम समझा जाता है जैसे कि स्त्री पति के न होने में सन्तति के लिये देवर को पति करती है यह प्रथमकल्प तुम से कहा और आपत्तिकाल में इससे भिन्न होता है इससे जो कोई स्वर्ग को चाहे

वह इस धन समेत पृथ्वी को तपस्वी ब्राह्मण को अर्पण करे जो कुलवान् बुद्धिमान् नीतिज्ञ ब्राह्मण अपनी उत्तम बुद्धिसे सब प्रकार की बातों की शिक्षा राजा को करे वह कल्याणकारी है उसके उपदेश कियेहुये धर्मों को जो राजा करता है वह सेवापरायण निरहंकारी क्षत्रिय धर्म में प्रवृत्त ज्ञानी शुभकर्मी राजा उसी धर्म से बहुत कालतक कीर्तिमान् होता है और उस सब धर्म का भागी राजपुरोहित है और इसी प्रकार सब प्रजा भी राजा की रक्षा में हैं वह सुन्दर वृत्ति करनेवाली प्रजा जिस राजा के राज्य में धर्मों को करती है उसके पुण्य के चौथे भाग को राजा प्राप्त करता है और देवता, मनुष्य, पितृ, गन्धर्व, उरग, राक्षस यह सब यज्ञ सेही जीवन करते हैं और विना राजा के देश में यज्ञ नहीं है इससे इन सब धर्मयज्ञों का मूल राजा ही है इसी से सब की तृप्ति होती है वह राजा गर्मी में वायु, जल, छाया आदि से प्रसन्न रहता है और शीतकाल में अग्नि, वस्त्र और सूर्य इनसे सुख पाता है और चित्त शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्धादि विषयों में रमता है और भयभीत मनुष्य इन सब भोगों में आनन्द नहीं प्राप्त करता है इससे जो निर्भयता करनेवाला है उसका बड़ा फलहै तीनों लोकों में प्राणदान के समान कोई वस्तु नहीं है जैसे इन्द्र और यम राजा हैं वैसेही धर्म भी राजा है राजा बहुत से रूप धारण करता है और राजाही से यह सब धारण किये हुये हैं ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि बहुश्रुत और महाप्रभाववान् धर्म अर्थ के जाननेवाले ब्राह्मण राजा को पुरोहित करने के योग्य हैं जो राजाओं का पुरोहित धर्मात्मा और मन्त्र का जाननेवाला हो और उनका राजा भी उसी प्रकार के गुणों का जाननेवाला हो वहां सब प्रकार से कल्याण होता है वह राजा और पुरोहित दोनों प्रजा को और सब देव पितरों को और पुत्रादिकों को वृद्धि करनेवाले हैं वह श्रद्धापूर्वक अच्छे वेदोक्त धर्मों में प्रवृत्तचित्त सुहृद्जनों के सुखदायी और हितकारी हैं प्रजा में ब्राह्मण लोग क्षत्रिय की प्रतिष्ठा करने से सुख को पाते हैं और जो प्रजा उन दोनों का अपमान करती है तो नष्ट होजाती है क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय सब वर्णों के मूल कहे जाते हैं इस स्थान में इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें ऐल और कश्यप ऋषि के उत्तर प्रत्युत्तर हैं उस को सुनिये ऐल बोला कि जब ब्रह्मकुल क्षत्रियकुल को त्याग करता है ऐसी

दशा में सब वर्ण कैसे होजाते हैं और कैसे पोषण कियेजाते और जीवन किस के द्वारा होता है कश्यपजी बोले कि इस लोक में जहां ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर में विरोध रखते हैं वहां क्षत्रियका देश नष्टता को प्राप्त होता है फिर जैसे पराक्रम प्रकट होता है वैसेही उस देश को चोर सेवन करते हैं और उसी प्रकार सन्तलोग भी उन में रूप धारण करते हैं अर्थात् यह जानते हैं कि यह ब्राह्मणों का अपमान करनेवाला म्लेच्छराजा है उन्हों के वेद की वृद्धि नहीं होती और सन्तान भी वेद नहीं पढ़ते और घरों में कभी लक्ष्मी की वृद्धि नहीं होती और सब सन्तान मूर्ख होती है और यज्ञादि से रहित म्लेच्छरूप होजाते हैं इससे यह दोनों परस्पर में स्नेह और पोषण के योग्य हैं क्योंकि क्षत्रियकुल ब्रह्मकुल का रक्षास्थान है इसी प्रकार ब्रह्मकुल क्षत्रियों का रक्षास्थान है यह दोनों कुल सदैव से प्रतिष्ठावान् हैं जब इनदोनों में स्नेह नहीं होता उस दशा में सब संसार नष्ट होजाता है और अज्ञान की फांसी में फँसता है और इस संसाररूपी अथाह समुद्र से ऐसे पार नहीं उतरसक्ता जैसे कि अथाह समुद्र में उत्पात में पड़ीहुई नौका के चारोंवर्ण महाभयभीत होते हैं फिर प्रजा नष्ट सी होजाती है रक्षा कियाहुआ ब्राह्मण देश में सुवर्ण की वर्षा को करता है और अरक्षित ब्राह्मण अश्रुपात से पाप की वर्षा करता है जब ब्रह्मचारी ब्राह्मण पढ़ी हुई वेदशाखाओं से रहित चोरों से घिराहुआ होता है और क्षत्रिय उसकी रक्षा नहीं करता है वहां देवता वृष्टि को सन्देहपूर्वक करते हैं अर्थात् वर्षा का होना कठिन होता है और देश में मरी और दुर्भिक्ष भी प्रवेश करते हैं और जहांपर पापात्मा लोग स्त्री या ब्राह्मण को मारकर प्रशंसा पाते हैं और राजा के सम्मुख भी भय नहीं करते तब क्षत्रियों को भय प्राप्त होता है सो हे ऐल! पापियों के पापकरने से यह राजारूप देवता रुद्ररूप अर्थात् कलिरूप होजाता है क्योंकि पापीलोग ही पापों से कलियुग को उत्पन्न करते हैं वह कलि साधु असाधु सबको मारता है ऐल बोला कि राजा का रुद्ररूप कहां से होता है यह मुझ से कहिये कश्यपजी बोले कि मनुष्यों के हृदय में जो आत्मा अर्थात् जीवात्मा है वही नाशकर्ता होता है तब अपने और दूसरे के देहों को घातकरता है रुद्र उत्पात की वायु के समान है और उस देवतारूप बादल के तुल्य है अर्थात् जैसे वायु बादलों को पृथक् २ करदेती है उसी प्रकार काम क्रोध आदि आत्मा को विपरीतदशा में करते हैं ऐल बोला कि पवन किसी को अलग नहीं करती है और देवता इन्द्र

बादलरूप होकर भी वृष्टि नहीं करता परन्तु नरलोकों में संयुक्त होकर ऐसा गर्भित दृष्टिपड़ता हैं और कामद्वेष के कारण मरना और विस्मरण होना होता है कश्यपजी बोले कि जैसे एक स्थान की देदीप्त अग्नि सम्पूर्ण ग्रामको भस्म करती है उसी प्रकार यह देवता भी बड़ामोह प्रकट करता है इसी से सबजीव पुण्य पापों में प्रवृत्त होते हैं ऐल बोला कि मुख्यकर पापियों के पाप करने से पुण्य पाप से पृथक् आत्मा को अज्ञानता से दण्डस्पर्श करता है ऐसी दशा में किस कारण से पुण्य करता है और किसहेतु से पाप नहीं करता अर्थात् शास्त्रोक्त कर्म निष्फल नहीं होता कश्यपजी बोले कि अहंकार के साथ आत्मा का योग न होने से अहंकार का कियाहुआ पाप नहीं होता और अहंकार में प्रवृत्त होने से पाप के समान दण्डस्पर्श करता है जैसे कि सूखे काष्ठ के साथ गीलाकाष्ठ भी जल जाता है इससे पापियों से कभी मेल मिलाप न करे ऐल बोला कि पृथ्वी इस लोक में साधु असाधु सबको धारण करती है और सूर्य भी साधु असाधु कोई हो सबको तपाते हैं और वायु भी इसी प्रकार सबपर चलती है इसीप्रकार जलभी साधु असाधु सबको पवित्र करताहै तात्पर्य यह है कि पृथ्वी आदि के समान आत्मा सब से असंग है फिर अहंकार युक्त रुद्रभाव से आत्मा को क्या सम्बन्ध है इससे आत्मा रुद्ररूप है यह कहना योग्य नहीं कश्यपजी बोले कि हे राजकुमार ! इसी प्रकार से वह शुद्ध आत्मारूप दृष्टिगोचर होता है परन्तु परलोक के विषय में ऐसे प्रकार का दर्शन वर्त्तमान नहीं है उस दशा में जो पुण्य पाप को करता है तब देह त्यागने पीछे उन दोनों के रूप में अन्तर होता है अर्थात् पुण्य का लोक मधुमान और दिव्य प्रकाशवान् सुवर्णरूप ज्योति रखनेवाला और अमृत की नाभि है उसी में ब्रह्मचारी लोग देहत्याग करके आनन्द को करते हैं उसमें जरा मृत्यु आदि कोई दुःख नहीं है और पाप का लोक कुचाली सदैव दुःखरूप अत्यन्त शोक का कर्त्ता है उस में भूलेहुये पापात्मा लोग गिरते हैं और बहुत समय तक अपने को शोचा करते हैं ब्राह्मण क्षत्रियों के परस्पर विरोध होने से प्रजा असह्य दुःख को सहती है ऐसा जानकर राजा को इस लोक में सदैव विद्यावान् वेदज्ञ ब्राह्मण पुरोहित करना चाहिये उस पुरोहित को नियत करके राज्याभिषेक करे इस लोक में ब्राह्मण धर्म से सब से मुख्य और धर्म का मार्ग दिखानेवाला कहा है ब्राह्मण की उत्पत्ति सबसे प्रथमहै इससे इनको प्रथम पद की प्राप्ति है और सब प्रकार पूजन के योग्य

है सब उत्तम पदार्थ उसकी भेंट के योग्य हैं यह बात पराक्रमी राजा भी सदैव करे क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रिय की वृद्धि करता है और क्षत्रिय से ब्राह्मण भी वृद्धि पाता है इसी हेतु से ब्राह्मण क्षत्रियों से सदैव पूजने के योग्य हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्रयस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि देश का अभीष्ट और रक्षा राजाके आधीन है और राजा का जो अभीष्ट और रक्षा है वह पुरोहित के आधीन कही जाती है जिस में प्रजाओं का जो गुप्त भय है उसको ब्राह्मणही दूर करता है और दृष्टिगोचर भय को राजा अपने भुजबल से दूर करता है इस कारण सम्पूर्ण राज्य के लोग आनन्द को प्राप्त होते हैं इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में राजा मुचुकुन्द और कुबेरजी के प्रश्नोत्तर हैं राजा मुचुकुन्द इस सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय करके कुछ इच्छापूर्वक सेना समेत कुबेरजी के पास गया तब कुबेरजी ने राक्षसों को आज्ञादी कि इस सेना को मारो तब मुचुकुन्द की सेना को राक्षसों ने मारा उस समय अपनी सेना के नष्टहोने पर विद्यावान् मुचुकुन्द ने अपने वेदपाठी पुरोहित की निन्दा की तब तो पुरोहित वशिष्ठजी ने अपने तप के प्रभाव से सब राक्षसों को मारडाला और उस राजा के मार्ग को भी जाना फिर कुबेरजी ने अपनी सेना के मरने पर मुचुकुन्द को दर्शन दिया और यह वचन कहा कि तुम से पहिले राजालोग पुरोहितों के कारण महापराक्रमी थे ऐसा किसीने कर्म नहीं किया जैसा कि तुमने यहां किया निश्चय करके वह अस्त्रज्ञ पराक्रमी राजालोग आकर मुझ सुखदुःख के स्वामी की उपासना करते हैं इससे जो तू पराक्रमी है तो अपने पराक्रम को दिखा तुम ब्राह्मणों के पराक्रम से क्या अधिक कर्म करते हो तबतो क्रोधयुक्त होकर मुचुकुन्द ने धन के स्वामी कुबेरजी को उत्तर दिया कि ब्रह्माजी ने एक स्थान में उत्पन्नहोनेवाले ब्रह्मकुल और क्षत्रियकुल को उत्पन्न किया वह विद्या और पराक्रम से भराहुआ संसारकी क्या रक्षा नहीं करे क्योंकि तप और मन्त्रबल तो सदैव ब्राह्मणों में वर्त्तमान है और क्षत्रियों में अस्त्र और भुजाबल सदैव वर्त्तमान है दोनों मिलकर प्रजा का पालन करना योग्य है इससे हे अलकापुरी के राजा, कुबेरजी ! क्यों मेरी निन्दा करते हो फिर कुबेरजी ने राजा से और उन के पुरोहितजी से कहा कि मैं ईश्वर के बिना दिये हुये किसी को राज्य नहीं देताहूं

और ईश्वरकी इच्छा विना किसीका राज्य हरता भी नहींहूं तब मुचुकुन्द ने उत्त
दिया कि हे कुबेरजी ! मैं भी आपके दियेहुये राज्य को भोगना नहीं चाहता हू
मेरी यही इच्छा है कि मैं अपनी भुजाबल से जीते हुये राज्य को भोगूं भीष्मजी
बोले कि ऐसे मुचुकुन्द के निर्भय वचनों को सुनकर कुबेरजी ने बड़ा आश्चर्य
किया तदनन्तर क्षत्रियधर्म के ज्ञाता उस राजा मुचुकुन्द ने भुजबल से प्रा
होनेवाली पृथ्वीपर बड़े आनन्द से राज्य किया इस प्रकार से जो उत्तम ब्राह्म
को अग्रगणनीय करके धर्मज्ञ राजा राज्य को करता है वह कठिन भूमि को
विजय करके सुख और आनन्द भोगता है और सदैव यशस्वी रहता है ब्राह्म
सदैव जल रखनेवाला और क्षत्रिय शस्त्र रखनेवाला हो तो उन दोनों के आधी
सब विश्वके पदार्थ हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि राजा जिस रीति से मनुष्यों की वृद्धि करता और पवित्र
लोकों को विजय करता है वह सब आप मुझसे कहिये भीष्मजी बोले कि
दान, यज्ञ, व्रत, तप का अभ्यास रखनेवाला प्रजापालन में प्रीतिकर्ता राज
सदैव धर्म से प्रजा का पालन करे और दान, मान, प्रीति से धार्मिक पुरुषों क
सन्मान करे क्योंकि राजा से पूजित धर्म सब स्थानों पर पूजाजाता है राज
जो २ कर्म करता है वही प्रजाओं को सुखदायी जानपड़ता है राजा सदैव श
त्रुओंपर मृत्यु के समान दण्डधारण करनेवाला होवे और सब चोर आदि क
मारे और अपनी इच्छा से किसी को क्षमा न करे इस लोक में राजा से रक्षि
प्रजा जिस धर्म को करती है उसके चौथे अंश को राजा प्राप्त होता है औ
प्रजा के लोग जो दान, यज्ञ, व्रत और वेदपाठ आदि कर्म करते हैं प्रजापाल
करनेवाला राजा उसके चौथे भाग को भोगता है और जो रक्षा नहीं कर
उसकी प्रजा जो पाप करती है उसका चौथाई पाप राजा भोगता है और निर्द
✓ मिथ्यावादी मनुष्य जो कर्म करते हैं उस कर्म के सम्पूर्ण या आधेभाग
राजा पाता है और जिस कर्म से राजा जैसे पाप से छूटता है उसको सुनो
चोरों से हराहुआ धन उनसे फेरलेने को असमर्थ हो ऐसी दशा में अस
✓ और व्यापारियों के साथ जीविका करनेवाले राजा को अपने भण्डार से दे
✓ चाहिये सदैव ब्राह्मण का धर्म रक्षाकरने के योग्य है जोकि ब्राह्मण रक्षा

योग्य हैं और जो पुरुष ब्राह्मणों के साथ निकृष्ट कर्म करे वह देशमें रखने के योग्य नहीं है ब्राह्मण के धन की रक्षा से सबकी रक्षा होती है इसीसे राजा ब्राह्मण की कृपा से अभीष्ट सिद्धकरे जैसे जीवों की रक्षा मेघ और पक्षियों की रक्षा वृक्ष करते हैं उसी प्रकार मनुष्यों का अभीष्ट राजा से सिद्ध होता है अपनी इच्छा के अनुसार चित्त और बुद्धि रखनेवाले निर्दयी लोभी राजा से प्रजा की रक्षा का होना सम्भव नहीं युधिष्ठिर बोले कि मैं राजसुख का चाहनेवाला एक क्षणमात्र को भी राज्य नहीं चाहता हूं केवल धर्म के निमित्त राज्य को अच्छा समझता हूं और इसमें धर्म वर्तमान नहीं है इससे राज्य से मुझको अलग कीजिये और धर्म करने के लिये वनही को जाऊंगा वहां पवित्र वनमें तारक दण्ड जितेन्द्रिय फल मूल भोजन करनेवाला मुनिरूप धारण कर धर्म का साधन करूंगा भीष्मजी बोले कि मैं तेरी उस बुद्धि को जानता हूं जो कि दूसरे के दुःख की हरनेवाली है परन्तु वह निर्गुण है शुद्धदयावान् से राज्य का भोगना असम्भव है यह लोक तुझ मृदुस्वभाव बड़े धार्मिक उत्तम और नपुंसक धर्म रखनेवाले दयावान् को भी बहुत मानता है पिता पितामह का चालचलन देखो इस प्रकार का राजाओं का चलन नहीं होता है जैसा कि तुम कर्म किया चाहते हो इस लोक में व्याकुलता में प्रवृत्त दयावान् तुम प्रजा पालन से उत्पन्न होनेवाले धर्मफल को नहीं प्राप्तहोगे पाण्डु और कुन्ती ने ऐसा आशीर्वाद नहीं मांगा जैसे कि शास्त्रज्ञ होकर अपनी बुद्धि से तुम कर्म करते हो पिता ने तेरी शूरता पराक्रमसत्यता आदि को सदैव कहा है अर्थात् आशीर्वाद दिया और कुन्तीने आपके माहात्म्य और उदारता को चाहा और पितृदेवता पुत्रों में स्वधा और स्वाहा को नरयज्ञ देवयज्ञ के द्वारा चाहा करते हैं दानयज्ञ और वेदपाठ करना और चारोंओर से प्रजा का पालन करना यह धर्म हो या अधर्म हो तुम जन्म सेही उनके करने के लिये उत्पन्नहुये हो हे कुन्तीपुत्र! समयपर धुड़ में जुड़नेवाले और रक्खेहुये भारको उठानेवाले पीड्यमान पुरुषों की भी कीर्ति नाश नहीं होती है और शिक्षा कियाहुआ मार्ग में वर्तमान घोड़ा भी भार को लेचलता है कर्म वचन से जो निरपराधता है वही कर्म की सिद्धि है इस लोकमें किसी धर्मवान् गृहस्थी; राजा और ब्रह्मचारी ने एकान्त में बैठकर धर्म को नहीं किया छोटाभी कर्म बहुत मनुष्यों का सुखदायी होने से बड़ा सारवान् है इससे न करने से करनाही उत्तम है विना जाने का अधिक

पाप नहीं है जब कुलवान् धर्मज्ञ पुरुष उत्तम ऐश्वर्य को पाता है तब राजा का सिद्धप्रयोजन और उसकी रक्षा उसके कल्याण के निमित्त कल्पना कीजाती है इस लोक में धर्मकरनेवाला राजा राज्य को पाकर सब और किसी को दान से किसी को पराक्रम से किसी को सत्यवचनों से अपने स्वाधीनकरे विद्यावान् कुलवान् निर्जीविका से भयभीत पुरुष जिसको प्राप्तहो तृप्तिता से आनन्दपाते हैंउससे अधिक कौनधर्म है युधिष्ठिर बोले हे पितामह ! उत्तम स्वर्ग का देनेवाला कौनकर्म है और उत्तम प्रीति क्या है और इसका फल बड़ा ऐश्वर्य कौन है यह मुझे समझाइये भीष्मजी बोले कि जिस राजा के पास भय से पीड्यमान पुरुष एक क्षणमात्रभी अच्छेप्रकारसे कुशलतापूर्वक आनन्दको पाता है वह हमलोगों में स्वर्ग का जीतनेवाला है इससे हे कौरवों में उत्तम ! कौरवों में प्रीति करनेवाले तुम्हीं राजाहोकर स्वर्गको विजयकरो सत्पुरुषों की रक्षाकरो और दुष्टों को मारो हे तात ! जैसे बड़े २ पुण्यात्मा उपकारी जीवों की रक्षा करते हैं वैसेही तुम अपने सुहृद्जन और प्रजाका पालन करो ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! कोई ब्राह्मण अपने कर्म में प्रवृत्त है और कोई उसके विपरीत कर्म में डूबेहुये हैं उनकी न्यूनाधिकता कहिये भीष्मजी बोले कि जो ब्राह्मण ब्रह्मविद्या और शम दम आदि लक्षणों से संयुक्त समदर्शी हैं वह ब्रह्मरूप कहेजाते हैं और ब्राह्मणों में जो ब्राह्मण ऋग्, यजु, साम आदि वेदयुक्त अपने कर्म में अत्यन्त प्रवृत्त हैं वह देवताओं के समान हैं और जो जन्म के योग्य कर्मों से रहित और सब बालबच्चे स्त्री आदि के दुःखदेनेवाले हैं और लोभ से धन इकट्ठा करनेवाले नाममात्र को ब्राह्मण कहलाते हैं वह शूद्र के तुल्य हैं और जो वेदपाठी अग्निहोत्री नहीं हैं उन सब से धर्मात्मा राजा कर ले और विना मासिक के राजसेवा करावे धर्माधिकारी और मासिक लेकर देवता की पूजाकरनेवाला नाक्षत्रक, ग्रामयाजक, मनुष्यों के समूह को यज्ञ करनेवाला और मार्गका कर लेनेवाला यह पांचो ब्राह्मण चाण्डाल के सदृश हैं और ब्राह्मणों में जो ब्राह्मण ऋत्विज्, पुरोहित, मन्त्री; दूत और सन्देशहर हैं वह क्षत्रिय के समानहोते हैं और जो ब्राह्मण अश्वयानी, हस्तियानी, रथयानी और पदाती होते हैं वह वैश्य के समान होते हैं जिस राजा का कोशागार धर्म

से खालीहो वह ब्रह्मरूप और देवरूप ब्राह्मणों के सिवाय इन सब ब्राह्मणों से पृथ्वी की भेंट ले और जो ब्राह्मण नहीं हैं उनके धनका स्वामी राजा है और ब्राह्मण होके अपने धर्म के विपरीत चलनेवाले ब्राह्मण के धनका भी राजाही स्वामी होताहै यह वेदवाक्यहै अपने धर्मके विपरीत धर्मवालाब्राह्मण किसीप्रकार से भी राजा से अदण्ड नहीं होसक्ता अर्थात् धर्मपर अनुग्रह करने के कारण वह लोग समझाने और भाग देने के योग्य हैं और जिस राजा के देश में ब्राह्मण चोर होता है उसके आन्तर्य के जाननेवाले मनुष्य उसको राजाही का अपराध जानते हैं जो वेदज्ञ और स्नातक ब्राह्मण आजीविका के न होने से चोर होजाय वह राजा से पोषण के योग्य है यह वेदज्ञों का वचन है और जिस ब्राह्मण की आजीविका नियत कीगई है और अपराधी होजाय तो वह अपनी जीविकाको त्यागदे और जो न त्यागे तो राजा उसको सकुटुम्ब देशसे बाहर निकालदे॥ १५॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! राजा किस २ के धनका स्वामी होता है और किस वृत्ति से रहै यह कृपाकरके मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि ब्राह्मण के सिवाय राजा सबके धनका स्वामी होता है और ब्राह्मणों में भी जो अपने धर्म के विपरीत हैं उनके भी धनका स्वामी गिनाजाता है यह वेदकी श्रुतिहै विपरीतधर्म करनेवाले ब्राह्मण किसी दशामें भी राजा से अदण्ड नहीं होसक्ते श्रेष्ठ लोग राजाओं का यह प्राचीन व्यवहार कहते हैं जिसराजा के देशमें ब्राह्मण चोर होता है उस अपराध को राजाही का पाप मानते हैं उसकर्म से आत्मा को जब लगाने के योग्य मानते हैं इसीसे सब राजऋषियों ने ब्राह्मण को पोषण किया इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसको राक्षस से हरेहुये राजा केकयने वर्णन किया है वह यह है कि एक भयानकरूप राक्षसने वेदपाठी व्रतनिष्ठ केकयदेश के राजा को वन में पकड़लिया तब राजाने उससे कहा कि मेरे देश में चोर, कृपण, मद्यपी आदि कोई नहीं है और सब मनुष्य अग्निहोत्री हैं और सदैव यज्ञधर्म करनेवाले हैं और मेरा ब्राह्मण भी मूर्ख नहीं है किन्तु व्रतनिष्ठ अमृतपान करनेवाला अग्निहोत्री यज्ञ करनेवाला है और मेरे देश में कोई भी विना दक्षिणावाले यज्ञ से पूजन नहीं करते और कोई वेदपाठ और यज्ञ से खाली नहीं है पठन, पाठन, यज्ञ करते कराते दान देते और लेते

हैं इन छह कर्मों में प्रवृत्त हैं मृदु स्वभाव सत्यवादी स्वकर्मनिष्ठ ब्राह्मण मुझ से पूजित और अच्छे प्रकार से भोगों के पानेवाले हैं सत्यधर्म में कुशल अयाचक दान लेते हैं वेतन लेकर नहीं पढ़ाते हैं आप पढ़ते हैं यज्ञ करते हैं परन्तु दूसरे को नहीं कराते और दान लेने को भी निषेध करते हैं अपने कर्म में सावधान और युद्ध में न मुड़नेवाले ऐसे मेरे क्षत्रिय ब्राह्मणों की चारोंओर से रक्षा करते हैं निश्छल होकर खेती गौवों का पालन और व्यापार आदि से अपना निर्वाह करते हैं सावधान क्रियावान् सुन्दर व्रतवाले सत्यवादी हैं और भागों का विभाग शान्तचित्त बाहर भीतर से पवित्र और सब से प्रीति रखने आदि में प्रवृत्त हैं ऐसे मेरे देश के वैश्यलोग भी अपने २ कर्म में प्रवृत्त हैं और अपने कर्म में सावधान दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाले मेरे देश के शूद्र भी तीनों वर्णों की सेवा करते हैं दुखिया, अनाथ, वृद्ध, अल्पप्राण, रोगी, स्त्री इन सबको भाग देनेवाला हूं और कुल, देश आदि के सब नियत धर्मों को बुद्धि के अनुसार दृढ़ करनेवाला हूं और मेरे देश में तपस्वीलोग सत्कारपूर्वक पूजित सब ओर से रक्षित अच्छे प्रकार से भाग पानेवाले हैं और मैं भी सब भागों के दिये विना भोजन नहीं करता हूं और अन्य की स्त्री से सम्भोग नहीं करता और न कभी स्वतन्त्रता से क्रीड़ा करता हूं मेरे देशमें ब्रह्मचारी लोगों के सिवाय और कोई भिक्षा मांगनेवाला नहीं है और सब भिक्षुक भी ब्रह्मचर्य से रहित नहीं हैं विना ऋत्विज् के होम नहीं होता और मैं कभी वेदपाठी या वृद्ध या तपस्वियों का अपमान नहीं करता और अपने देश के सोजाने पर जागा करता हूं मेरा पुरोहित ब्रह्मज्ञान में प्रवृत्त तपस्वी सब धर्मों का जाननेवाला सब देश भर का स्वामी और बुद्धिमान् है मैं दान से विद्या को चाहता हूं और ब्राह्मणों की रक्षा के लिये सत्यतापूर्वक धन को चाहता हूं और सेवा के लिये गुरु लोगों के पास जाया करता हूं और मैं राक्षसों से कभी भय नहीं करता मेरे देश में विधवा स्त्री नहीं हैं और अपने कर्म का त्याग करनेवाला कोई नाम को भी ब्राह्मण मेरे देश में नहीं है और न कोई छली चोरब्राह्मण है और अनधिकारियों का यज्ञ करानेवाला भी कोई नहीं है और न कोई पापकर्मी है इसहेतु से मुझ को राक्षसों से किंचित् भी भय नहीं है और मुझ युद्धकर्ता की देह में शस्त्रों से विना व्रण दो अंगुल भी देह नहीं है और मेरे देशवाले सदैव गौ, ब्राह्मण और अन्य मनुष्य यज्ञों से मेरे कल्याण को चाहते हैं इससे तुम

मेरे देह में प्रवेश मत करो राक्षस बोला कि हे केकय ! जिस कारण से तुम सब दशामें धर्मको ही विचारते हो इससे तुम कुशलपूर्वक घर को जावो मैं आपको छोड़कर जाता हूं और सुनो कि जो गौ, ब्राह्मणों और प्रजा की रक्षा करते हैं उन को राक्षसों से कभी भय नहीं होता फिर पाप से भय कैसे होगा जिन के अग्रगणनीय ब्राह्मण हैं और पुरवासी वा अतिथियों का सत्कार करते हैं वह राजा निश्चय करके स्वर्ग पानेवाले हैं भीष्मजी बोले कि इसकारण ब्राह्मणों की रक्षाकरे क्योंकि वह रक्षा को निर्विघ्न करते हैं और उनका आशीर्वाद राजाओं को सफल होता है इस हेतु से विपरीतकर्मी ब्राह्मणों को भी राजा सुधर्म में प्रवृत्त करे और उनपर ऐसा अनुग्रह करे कि वह भाग पाने के योग्य होजायँ जो राजा इस प्रकार से अपने देश और पुरवासियों के साथ बर्ताव करता है वह इस लोक में कीर्तिमान् होकर अन्त में इन्द्र की समता को प्राप्त होता है ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अठहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि आपत्तिकाल में ब्राह्मणों की जीविका राजधर्मों से कही है तो किसी दशा में ब्राह्मण वैश्यधर्म से भी अपनी जीविका करसक्ता है या नहीं ? भीष्मजी बोले कि आजीविका के नष्ट होजाने से और दुःखहोने के कारण क्षत्रियधर्म में प्रवृत्त होने को असमर्थ ब्राह्मण खेती और गौ के पालन आदि में प्रवृत्त होकर वैश्य के धर्म से निर्वाह करसक्ता है युधिष्ठिर बोले कि ब्राह्मण वैश्यधर्म में प्रवृत्त होकर किस २ वस्तु के बेचने से स्वर्ग से च्युत नहीं होता है भीष्मजी ने कहा कि मद्य,नोन,तिल,घोड़े,गौ,बकरी, बैल, मधु,मांस, सिद्धान्न इतनी वस्तुवों को ब्राह्मण सब दशा में नहीं बेचे क्योंकिइन में से कोई भी वस्तु बेचे तो अवश्य नरकभोगे बकरा अग्निरूप और भैंसा वरुणरूप, घोड़ा सूर्यरूप, पृथ्वी विराट्रूप, गौ यज्ञ अमृतरूप हैं वह किसी दशा में भी बेचने के योग्य नहीं हैं साधुलोग पक्केअन्न से कच्चेअन्न को बदलने की प्रशंसा नहीं करते हैं इस से कच्चेअन्न से पक्केअन्न को भोजन के लिये अदला बदलीकरे तो यह कहकर बदल करे कि हम पक्केअन्न को भोजन करेंगे आप इसको तैयार करो इसप्रकार बिगार कर बदला करने से कोई दोष नहीं है इस स्थान पर व्यवहार अच्छे लोगों के सनातनधर्म

को समझो मैं यह आप को देता हूं आप इसको लीजिये धर्म मन की इच्छा से वर्तमान होता है पराक्रम से जारी नहीं होता इसप्रकार से ऋषिलोग और अन्य पुरुषों के सनातन व्यवहार जारी होते हैं यही श्रेष्ठ है इस में कुछ सन्देह नहीं है युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जब सब प्रजा शस्त्रों को धारण करती है और सब अपने धर्मों से हटजाते हैं तब क्षत्रियधर्म नष्ट होजाता है तब लोक का राजा कैसे रक्षा करने को योग्य होय इस मेरे सन्देह को ब्योरेवार कहकर दूरकरो भीष्मजी बोले कि जिन वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं वह वर्ण दान, तप, यज्ञ, अशत्रुता और शान्तस्वभाव से अपना कल्याण चाहें उन में जो वेदपाठ के पराक्रम रखनेवाले ब्राह्मण हैं वह चारो ओर उद्योग करके राजा के पराक्रम को बढ़ावें जैसे कि देवतालोग अपने इन्द्र के पराक्रम को बढ़ाते हैं हतराज्यराजा का भी ब्राह्मण हीरक्षक है इससे ज्ञानी राजा को ब्राह्मण के पराक्रम से उद्योग करना चाहिये जब पृथ्वी का विजय करनेवाला राजा देश में मंगल करे तब वर्ण अपने२ धर्म में कैसे नहीं चलैंगे अर्थात् अवश्य चलैंगे हे युधिष्ठिर ! बे मर्यादा जारीहोने में और चोरों से वर्णसंकर करने में शस्त्रधारी सबवर्ण दृष्टि न पड़े अर्थात् वर्णों की पृथक् २ पहिचान न हो और क्षत्रिय अज्ञानता से ब्राह्मण के साथ सबप्रकार से शत्रुताकरे उस ब्रह्मकुल का कौन रक्षक है और कौन धर्म और क्या उन की रक्षा का स्थान है भीष्मजी बोले कि जप, तप, ब्रह्मचर्य, शस्त्र, पराक्रम, छल और विना छल से शासन करना उचित होय तो ब्राह्मणों के ऊपर अधिकतर बे मर्यादगी करनेवाले क्षत्रिय का दण्ड देनेवाला ब्राह्मण ही होगा क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मणही से प्रकट हुआ है जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय, पत्थर से लोहा उत्पन्न हुआ उन का सर्वव्यापी तेज अपने उत्पत्तिस्थान में शान्तिता को पाता है जब लोहा पत्थर को काटता है और अग्नि जल को स्पर्श करती है और क्षत्रिय ब्राह्मण से शत्रुता करता है तब वह तीनों नाश को पाते हैं इससे हे युधिष्ठिर ! क्षत्रियों से अजय और बहुत बड़े तेज और बल ब्राह्मण में शान्ति को पाते हैं ब्राह्मण का पराक्रम न्यून होने और क्षत्रिय का पराक्रम कठिन होने में और सब ब्राह्मणों के ऊपर सब वर्णों के शत्रुहोने में ब्राह्मणों को और धर्मों को और अपने को रक्षा करने वाले जो पुरुष अपने जीव को त्याग करके यहां युद्ध को करते हैं वह साहसी और क्रोधजित पवित्रलोकगामी होते हैं ब्राह्मणों के लिये सब वर्णों को शस्त्र

धारण करना अभीष्ट समझा जाता है वह शूर भोजनरहित अग्निप्रवेश करनेवालों के सदृश ऐसे उत्तम लोकों को प्राप्त होते हैं जो कि यज्ञ, वेदपाठ, तपस्या आदि से संयुक्त तपस्वियों के भी लोकों से बड़े हैं और मोक्षरूप परमगति को भी पाते हैं ब्राह्मण तीनों वर्णों के ऊपर शस्त्र धारण करता दोष को नहीं प्राप्त होता है इसी प्रकार मनुष्यों ने भी अपने देह के त्याग से दूसरे धर्म को नहीं जाना उनको नमस्कार है और उनका कल्याण हो जो ब्राह्मणों के शत्रुओं के मारने में अपनी देह को अर्पण करते हैं हम को भी उन्हीं की सी योग्यता हो मनुजी ने उन वीरों को स्वर्गवासी और ब्रह्मलोक का विजय करनेवाला कहा जैसे कि अश्वमेधयज्ञ के अवभृथस्नान से मनुष्य पवित्र होते हैं और जैसे युद्ध में पाप के नाशकर्ता अस्त्रों से मारनेवाले पवित्र होते हैं उसी प्रकार देश काल के कारण से दोनों धर्म और अधर्म परस्पर में लौटपौट होते हैं अर्थात् अधर्म धर्मरूप होजाता है क्योंकि वह देश काल इसी प्रकार का है सबके मित्र निर्दयकर्म को करते उत्तम स्वर्ग को पाते हैं और धर्म में प्रवृत्त क्षत्रिय पापकर्म को करते परमगति को पाते हैं क्षत्रिय आदि वर्ण के विपरीत कर्म होने से ब्राह्मण अपनी रक्षा के निमित्त तीनों काल में दुःख से विजय होनेवाले नीचों के विजय करने के लिये शस्त्र को धारण करता दोष को नहीं प्राप्त होता है युधिष्ठिर बोले कि हे महाराज! चोर और वर्णसंकरों का समूह उठने और क्षत्रियों के असावधान होनेपर जो दूसरा वर्ण पराक्रमी प्रजापालन के लिये चोरों को विजय करे वह ब्राह्मण या वैश्य या शूद्र चोरों से प्रजा की रक्षा करे और धर्म से दण्ड को धारण करे दूसरे के योग्य कर्म को करे या न करे और चाहे निषेध करने के योग्य हो या न हो मेरी बुद्धि में इस कारण से क्षत्रिय के सिवाय दूसरे वर्ण को भी शस्त्र धारण करना उचित है भीष्मजी बोले कि जो शूद्र या दूसरा कोई अपार में पार हो और विना नौका के नदी की नौका हो वह सब प्रकार प्रतिष्ठा के योग्य है हे राजन्! जिसकी रक्षा में मनुष्य अपना सुखपूर्वक काम करें और चोरों से अनाथों की रक्षा होय वह प्रीतिपूर्वक उसी राजा को ऐसे पूजें जैसे कि अपने बान्धव को पूजते हैं हे कौरव! निर्भय दान करनेवाला सदैव मानने के योग्य है जो बैल सवारी के योग्य नहीं होता उस से क्या प्रयोजन है और दूध न देनेवाली गौ से भी क्या प्रयोजन है बांझ स्त्री भी निष्प्रयोजन है इसी प्रकार रक्षा न करनेवाले राजा से भी कौन अर्थ है

हे राजन् ! जैसे लकड़ी का हाथी और चर्म का मृग और नपुंसक और ऊसर खेत निष्प्रयोजन हैं इसी प्रकार जो ब्राह्मण वेदपाठी नहीं है और राजा रक्षक नहीं है और मेघ वर्षारहित है वह सब निरर्थक हैं जो पुरुष सदैव सत्पुरुषों की रक्षाकरे और नीचपुरुषों को मार्ग में चलावे वही राजा करने के योग्य है उससेही यह सब राज्यभार धारण किया जासक्ता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

उन्नासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महावक्ता ! ऋत्विज् किस निमित्त नियत किये जाते हैं और उनका स्वभाव कैसा होना योग्य है और किस प्रकार के होयँ इसका वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि साम आदि वेद और शास्त्रों को जानकर प्रतिदिन कर्म में प्रवृत्त ऋत्विज् ब्राह्मणों का प्रति कर्म जो कि अच्छे प्रकार प्रवृत्त होकर कियाजाय वह कहाजाता है जो ऋत्विज् सदैव एकही राजा के समीप रहनेवाला और शत्रुवों के प्रश्नों का उत्तर देनेवाला सब का मित्र और समदर्शी होय वह दयावान् सत्यवादी ब्याज न लेनेवाला शुद्ध अन्तःकरण शत्रुता और अहंकार से रहित लज्जायुक्त शान्तचित्त भीतर बाहर की बातों का जाननेवाला बुद्धिमान् सत्य धैर्यवान् तपयुक्त जीवों की हिंसा न करनेवाला रागद्वेष से भिन्न निर्दोष तीन गुणों में प्रवृत्त ज्ञान से तृप्त होय वह ब्रह्मआसन के योग्य है वही महाऋत्विज् प्रतिष्ठा के योग्य हैं युधिष्ठिर बोले कि जो यह वेद का वचन दक्षिणाओं के विषय में कहाजाता है कि यह देना चाहिये यह देना चाहिये वह कहीं व्यवस्था को नहीं पाता है यह शास्त्र धनकी संख्या का निश्चय करनेवाला नहीं है किन्तु आप धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला है क्योंकि शास्त्र की यह बड़ी आज्ञा सामर्थ्य को नहीं देखती हैं श्रद्धा दान से यज्ञ करना चाहिये यह वेदकी श्रुति है निष्फलकर्मवाले यज्ञ को श्रद्धा क्या पूर्ण करेगी अर्थात् जितनी गौ उतनेही वस्त्र या उनके बदले चरु देवे यह निर्धन के लिये विधि है जो सामर्थ्यवान् पुरुष गौ के स्थान में चरु देवे तो वह मिथ्यायज्ञ है भीष्मजी बोले कि कोई मनुष्य वेदों के अपमान दुष्टता और छल आदि से बड़े पद को नहीं पाता है तेरी बुद्धि ऐसी न हो हे तात ! दक्षिणा यज्ञों का अंग है यह वेद का वचन है दक्षिणारहित यज्ञ किसी दशा में भी सफल नहीं होता इससे तीनों वर्णों को सदाक्षिणा यज्ञ करना चाहिये ब्राह्मणों का राजा सोम

है यह वेद की मर्यादा है उसको विक्रय किया चाहते हैं परन्तु विना यज्ञ के उसका बेचना अभीष्ट नहीं है क्योंकि उस धन के द्वारा प्राप्त हुये सोम से फिर यज्ञ होसक्ता है यह धर्मज्ञ ऋषियों का विचार है परन्तु उस समय जब कि पुरुषयज्ञ और सोमयज्ञ न्याय के अनुसार हो न्याय के विपरीत पुरुष दूसरे का है न अपना है अपमान से संयुक्त महात्मा ब्राह्मणों के किये हुये यज्ञ आदि शुभ नहीं होते यह भी वेद की श्रुति है तपयज्ञ से भी उत्तम है यह विशेष श्रुति है वह तप मैं तुझ से कहता हूं उसको सुन हिंसारहित, सत्य बोलना, दया और शान्तचित्त होना इसी को पण्डितों ने तप कहा है देह का सुखाना तप नहीं है वेदों का प्रमाण न मानना शास्त्रों को उल्लंघन करना सबधर्मों में प्रवृत्त न होना यह बात अपना नाश करनेवाली है कर्म भी ज्ञानही से सम्बन्ध रखते हैं इसको समझो कि दशहोम करनेवालों की बुद्धि को साकल्य और चित्तरूप स्रुक् और ज्ञानरूप घृत यही ज्ञान करना उत्तम है केवल यज्ञ नहीं उचित है और सब प्रकार की कुटिलता मृत्यु का स्थान है और सीधापन ब्रह्मपद है ज्ञान का विषय इतनाही है और सब वृथा है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९ ॥

अस्सीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जो कर्म न्यूनतम भी है वह भी विना सहायता के अकेले मनुष्य से करना कठिन है फिर राजा से करना कैसे सुगम होगा राजा का मन्त्री कैसे स्वभाव और आचरणवाला होवे और कैसे मन्त्री पर विश्वास करे और कैसे पर न करे भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! राजालोगों के मन्त्री चारप्रकार के होते हैं एक तो समान प्रयोजनवाला, दूसरा प्राचीन, तीसरा सम्बन्धी, चौथा बना हुआ, पांचवां धर्मात्मा मित्र भी मन्त्री है जो कि पक्षपातरहित और दोनोंओर से गुप्तधनपाने के कारण छली न हो जिधर धर्म होय उधरही संयुक्त हो अथवा उसके उदासीनपने में भी जो धर्म में आरूढ़ हो उसी में संयुक्त हो जो प्रयोजन उसकी बुद्धि में निकृष्ट हो उसको उससे न कहे विजय की इच्छा करनेवाले राजालोग धर्म और अधर्म दोनों से कर्म को करते हैं इन चारो मन्त्रियों में मध्य के दो मन्त्री श्रेष्ठ हैं पहिला और चौथा सदैव सन्दिग्ध हैं और जितने हैं सब शंका के योग्य हैं अपना काम अपने नेत्रों के सम्मुख करना योग्य है इससे निश्चय करके राजा को अपने मित्रों की रक्षामें

ढील न करनी चाहिये क्योंकि असावधान राजा का सबलोग अपमान करते हैं असाधु साधुरूप और साधु भय उत्पन्न करनेवाले होजाते हैं शत्रु मित्र होता है और मित्रभी शत्रुता करताहै जोकि मनुष्य की बुद्धि सदैव एक सी नहीं रहती इससे कौन उसपर विश्वास करे इससे जो उत्तम कर्म हैं उन को अपने सम्मुखही करे वा करावे जो अत्यन्तविश्वास करताहै वह सबधर्मार्थों को नाश करता है परन्तु सब स्थानों में अविश्वासही करना मृत्यु से भी अधिकहै विश्वास अकालमृत्यु है विश्वास का करनेवाला आपत्ति में पड़ता है जिसपर विश्वास करता है उसीकी इच्छा से जीवता है इसकारण कितनेही पुरुषोंपर तो विश्वास करना योग्य है और कितनेही पर ससन्दिग्ध विश्वास योग्य है हे तात ! यह सनातन नीति की गति देखने के योग्य है अविश्वास के स्थान यह हैं कि जिस को जाने कि मेरे मरने के पीछे इसीको राज्य होगा उससे सदैव शंका करनी योग्य है ज्ञानी लोग इसको शत्रु कहते हैं जिस के क्षेत्र से दूसरे के क्षेत्र में जल जाता है वहां उसके न चाहते सब पुल क्या नष्ट न होवें अर्थात् वह अधिक जल छोड़ने से देश को भी बरबाद करसक्ता है इसीप्रकार अपने देश की सीमा के समीपी जो राजा हैं जबतक वह सीमापर प्रबन्ध न रक्खें तबतक व्यापारादि अच्छे प्रकार से होते हैं और जब वह विपरीतता को करे तब देश की हानि होती है इससे वह राजा भी विश्वास योग्य नहीं है वैसेही वह राजा जल की आधिक्यता से भयभीत उस बन्द को तोड़ना चाहता है जिसको कि उसप्रकार का हानिकारक जाने उस शत्रु को अच्छे प्रकार से धमकावे जो मित्र वृद्धि से सन्तुष्ट न होवे और हानि में बड़ा दुःखी होवे यह मित्र का बड़ा लक्षण है ऐसे महान्लोग कहते हैं और जो यह माने कि मेरे नाश से उस का नाश होगा उसपर निश्चयपूर्वक ऐसा विश्वास करे जैसा कि पिता पर विश्वास होता है वह सदैव धर्म कर्मों में भी घावों से बचाता है अपनी सामर्थ्य से बुद्धिमान् होकर उसकी सब ओर से वृद्धि करे और घावों से भयभीत मित्र को अच्छा मित्र जाने और जो घावों के चाहनेवाले हैं वही शत्रु हैं जो सदैव व्यसनों से भयभीत रहता है और जो राज्य की वृद्धि के कारण शत्रुता नहीं करता है जो ऐसे प्रकार का राजा मित्र होय वह आत्मा के समान कहा जाता है जो रूप वर्ण और स्वर से संयुक्त क्षमावान् गुण में दोष न लगानेवाला कुलीन अपने श्रेष्ठकुल से सम्पन्न है वह प्रधान है और शास्त्रों को स्मरण रखने

वाला बुद्धि का स्वामी हरएक बात को याद रखनेवाला चतुर और स्वभाव से दयावान् है और जो प्रतिष्ठावान् व अप्रतिष्ठावान् होकर भी कभी शत्रुता न करे ऋत्विज् या आचार्य या प्रशंसनीय मित्र हो ऐसा मन्त्री तेरे घर में पूजित होकर वर्तमान हो वही तेरे बड़े मन्त्र को जाने और अर्थ धर्म की प्रकृति को जाने उसपै तेरा विश्वास पिता के समान हो एक कामपर दो या तीन अधिकारी नहीं नियत करने चाहिये अर्थात् एक कामपर एकही अधिकारी किया जाय क्योंकि जीवों में सदैव विपरीतता होती है इससे वह भी कभी परस्पर में क्षमा न करेंगे जो नेकनामी को उत्तम माननेवाला और मर्याद पर चलनेवाला समर्थ मनुष्यों से शत्रुता नहीं करता है और अनर्थों को नहीं करता और इच्छा, भय, लोभ, क्रोध इत्यादि के कारण धर्म को नहीं छोड़ता चतुराई से सबका प्रिय बोलनेवाला है वह तेरा प्रधानमन्त्री होके कुलीन, श्रेष्ठस्वभाव, क्षमावान्, अपनी प्रशंसा न करनेवाला, शूर, श्रेष्ठ, चतुर, बुद्धिमान्, करने न करने के काम में विचारवान्, सत्संगी, सुकर्मी, सब कर्मों में प्रवृत्त ऐसे मन्त्री करने के योग्य हैं और जो पूजित अच्छेभाग को पानेवाले हों वा अपनी योग्यता से बड़े अधिकारोंपर नियत होनेवाले बड़े कार्यों में प्रवृत्त ऐसे लोग कल्याणों को करते हैं और परस्पर में ईर्षा करनेवाले लोग सदैव पापों को करते हैं और आपस में एक एक को कहकर राज्य के करके लेने पर अधिकारी होते हैं इन लोगों से और जातिवालों से मृत्यु के समान भयभीत जानो ज्ञातिवाले समानता के विचार से सदैव धनकी वृद्धि को नहीं सहते हे महाबाहो! जातिवालों के सिवाय कोई उसके नाश को नहीं चाहता है जो सीधा, मृदुस्वभाव, दानी, लज्जावान्, सत्यवक्ता और सुचाली हो और जो अन्य बिरादरी हैं वह भी सुखदायी नहीं हैं इस कारण वह भी अपमान के योग्य नहीं हैं क्योंकि जाति वालों से बाहर हुये मनुष्य को दूसरे भी अपमान करते हैं दूसरे मनुष्यों के दबाये हुये अप्रतिष्ठित मनुष्य का जातिही रक्षा का स्थान है जातिवाला अन्य जातिवालों से होनेवाली जातिवालों की अप्रतिष्ठा को किसी दशा में भी नहीं सहता है सम्बन्धियों से किसी बान्धव का अपमान करने पर सम्पूर्ण जाति भर अपना अपमान मानती है उनमें गुण और अगुण भी दृष्टि आते हैं अन्य जातिवाला न तो कृपा करता है और न किसी अन्य जाति को झुकता है यह दोनों बातें और उत्तम अनुत्तमता जातिवालों में दृष्टि पड़ती हैं इससे जाति:

वालोंकी अपने सुष्ठु वचन और देहके अभ्युत्थान से प्रतिष्ठा करे और यथायोग्य पूजन सत्कार भी करे जहां तक बने वहां तक इन के अभीष्ट को करे विश्वासरहित और विश्वास के समान सदैव उनके साथ बर्ताव करे दोष या गुण उन से नहीं कहना योग्य है इस प्रकार अधिकारी और चतुर मनुष्य के शत्रु अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और मित्र होजाते हैं जो इस प्रकार से जाति वा सम्बन्धियों के मण्डल में और मित्र शत्रु और उदासीनों में सदैव बर्ताव को करता है वह बहुत काल पर्यन्त कीर्तिमान् रहता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इक्यासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि इस प्रकार जाति और सम्बन्धियों का मण्डल और शत्रु मित्र के आधीन भी न होने पर किस प्रकार से उनका चित्त स्वाधीन किया जाता है भीष्मजी बोले कि मैं इस स्थान पर इस भूत वृत्तान्त को कहता हूं जिसमें वासुदेव और नारदजी का संवाद है वासुदेवजी बोले कि हे नारदजी! सुहृद्जन परममन्त्र के जानने योग्य नहीं हैं चाहे पण्डित या मूर्ख हो या अजित हो ऐसा जानकर आपको सुहृद् मित्र जानकर कुछ कहूंगा कि हे स्वर्गगामिन्! आपकी सम्पूर्ण बुद्धि और पराक्रम को देखकर पूछता हूं कि मैं स भागों के आधे अंश को भोगता हूं और कठोर वचनों को सहता हूं यह जो आप की सेवा है उसको जातिवालों के ऐश्वर्यभाव से नहीं करता हूं जैसे अग्नि का चाहनेवाला अरणी काठ को सहता है उसी प्रकार कठोर वचन मेरे हृद को सुखाता है बलदेवजी में सदैव पराक्रम गद में सुकुमारता और प्रद्युम्न में रू की अहंकारता है इससे हे नारदजी! मैं असहाय हूं और बड़े महाभाग पराक्रमी अजित सदैव दूसरे पर चढ़ाई करने में सन्नद्ध अन्धक और वृष्णि क्षत्रिय हैं वह जिसके सहायक न हों उसका नाश होजाय और जिसके साथी होजायँ उसका कुलभर वृद्धि को पावे अक्रूर और उग्रसेन इन दोनों से सदैव निषेध किया हुआ मैं केवल एक कोही नहीं चाहता हूं जिससे कि एक के चाहने से दूसरे का क्रोध न हो परस्पर में विरोधी उग्रसेन और अक्रूर जिसके दोनों ओर होवें और वह उनका मध्यस्थ हो इससे अधिक उसको क्या दुःख होगा और वह दोनों जिसके मित्र न हों उस दशा में इससे अधिक दुःख क्या है सो हे महा ज्ञानिन्! मैं एक की विजय दूसरे का अपमान ऐसे चाहता हूं जैसे जुवा

खेलनेवालों की माता दोनों पुत्रों के मध्य में दुःख पाती है इससे हे नारदजी ! ऐसी दशा में मुझ दुःख पानेवाले का कल्याण और जातिवालों की वृद्धि के कहने को आप योग्य हैं नारदजी बोले हे श्रीकृष्णजी ! दो प्रकार की आपत्ति हैं एक आन्तरीय दूसरी बाह्य वह दोनों आपत्तियां अपने स्वभाव और जातिवालों की ओर से उत्पन्न होती हैं सो यह आपकी आन्तरीय सम्पूर्ण आपत्ति अपने कर्म से उत्पन्न होकर अक्रूर और उग्रसेन के द्वारा प्रकट होनेवाली है क्योंकि यह सब उनके वंश में हैं और बड़ी आपत्ति धन इच्छा या निन्दा युक्त वचनों से उत्पन्न होनेवाली है अपनी जाति से उत्पन्न होनेवाला ऐश्वर्य दूसरे में नियत किया है और अब उसमें मूल उत्पन्न हुआ है क्योंकि जातिका शब्द उसका सहायक है अर्थात् जातिका नाश न करना चाहिये तुमको उस ऐश्वर्य का फेरलेना ऐसे उचित नहीं है जैसे कि वमन किये हुये अन्न को हे श्रीकृष्ण ! तुम को भी जाति के विरोध के भय से किसी दशा में भी बभ्रु और उग्रसेन का राज्य लेलेना योग्य नहीं है और जो बड़े उद्योग व कठिन कर्म से प्राप्त भी होगा तो ऐसी दशा में बड़ी हानि और व्यय भी होगा और अन्त में नाश भी होगा बराबर साफ़कर उस मृदुचित्त के छेदनेवाले निर्लोह अस्त्र से सब की वाणी को बन्दकरो वासुदेवजी बोले कि हे नारदजी ! मैं मृदु आदि लोह के अस्त्र को कैसे जानूं जिससे कि साफ़ और तेज़ करके उन की जिह्वाओं को बन्दकरूं नारदजी बोले कि सामर्थ्य के अनुसार अन्नदान करना क्षमाशीलता मृदुत्व और जो जिसके योग्य हो उसकी उसीप्रकार पूजाकरना यही निर्लोह अस्त्र है तुम अपनी वाणी से उन कठोर मिथ्यावचनों को कहनेवाले जातिवालों के हृदय और वचन दोनों को शान्तकरो जो महापुरुष चित्त का जीतनेवाला सत्संगी भी नहीं है उस प्रकार का कोई पुरुष बड़ेधुरको धारण नहीं करता है तो तुम उसको हृदय से स्वीकार करके धारण करो बैल बड़े भारी बोझे को समभूमि में बराबर लेचलता है और प्रत्येक सौगद नाम कठिन स्थान में दुःख से धारण करने योग्य बोझे को लेजाता है विरोध से समूहों का नाश होता है और आप समूहों के स्वामी हो इससे यह समूह आप को आश्रय लेकर नाशको प्राप्त न हो वही करिये बुद्धि क्षमा शान्तचित्त और दान धन के सिवाय ज्ञानी पुरुषमें गुण नियत नहीं होताहै सदैव अपने पक्षकी वृद्धि करना धन कीर्ति वृद्धि और आयु का पूर्ण करनेवाला है इससे हे कृष्ण ! जैसे जाति-

वालों का कल्याणहो वही करिये हे प्रभो ! वर्तमान और भविष्यत् काल में छह गुण की वृद्धि से सेना का इकट्ठा करना चढ़ाई करना उसीप्रकार उसकी रीतियां जिनको कि आपजानते हैं अर्थात् सर्वज्ञ हो हे महाबाहो ! सब यादव, कुरु, भोज, अन्धक, वृष्णि कुलवाले क्षत्रिय आपके आधीन हैं वह सब लोकालोक पर्यन्त के स्वामी हैं हे माधव ! ऋषिलोग भी आपकी बुद्धि की उपासना करते हैं तुम सब जीवों के गुरु होकर भूत भविष्यत् को जानते हो यादवलोग आप सरीखे ईश्वर को पाकर सुखको पाते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

बयासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन् ! यह पहिला आचरण है अब दूसरा आचरण सुनो जो कोई पुरुष धन की रक्षा आदि को करे वह राजा से रक्षाके योग्यहै हे युधिष्ठिर ! जो दास या नौकर मन्त्री करके ज़ब्त और नष्ट कियेहुये खज़ाने को राजा से कहदे उसकी बातें एकान्त में सुनने के योग्य हैं और उसकी मन्त्री से रक्षा कीजाय चोरी करनेवाले मन्त्री बहुतों को मारते हैं राज्य के खज़ाने के गुप्त चुरानेवाले सब नौकर मिलकर खज़ाने के रक्षक को पीड़ा देते हैं वह अक्षित होकर नाश को पाता है इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको कालकवृक्षीय नाम मुनि ने कौशल राजा से कहा वह मुनि कौशल देशों के क्षेमदर्शन नाम राजा से मिलने को गये और एक काक को किसी पिंजरे में बन्दकरके अपने विचार को प्रचलित करने की इच्छा से उस क्षेमदर्शी के सब देशों में घूमतेहुये यह कहते फिरते थे कि काक की विद्या को पढ़ो मेरे काक भूत, वर्तमान, भविष्यत् काल वर्णन करते हैं इसप्रकार बहुतसे मनुष्यों के साथ देश में चारो ओर घूमते२ राजा के सब नौकरों के अन्यायों को देखा और सबदेश की यथार्थ बातों को जानकर जहां तहां राज्य के धनके चुरानेवाले राजा के नौकरों को पहिचानकर काक को लिये व्रतपरायण मुनि यह वचन कहतेहुये कि मैं सर्वज्ञ हूं राजा से मिलने को गये और राजा से मिलकर काकके वचन से वस्त्रालंकार से अलंकृत राजाके प्रधानों से कहा कि तुमने अमुक स्थान पर यह चोरी की है और इस बात को यह सब मनुष्य जानते हैं कि तुमने राज्य के खज़ाने को चुराया ऐसा यह काक कहता है इस को जल्दी से देखो तब उस काकने राज्य के धन के चुरानेवाले दूसरे नौकरों को भी कहा और यह भी कहा

कि मेरा इसका कोई वचन मिथ्या नहीं है तात्पर्य यह है कि उसने सब नौकर दोषी किये उनलोगों ने रात्रि के समय निद्रा में निश्चेष्ट मुनि के उस काकको तीरों से घायल किया प्रातःकाल होतेही पिंजरे में उस काक को बाण से छिदा हुआ देखकर वह मुनि राजा से बोले हे राजन्! मैं तुझ से निर्भयता चाहताहूं तुम्हारी आज्ञा से तुम्हारे हितकारी वचनों को कहता हूं राजा ने उत्तर दिया कि अपने अभीष्ट को चाहनेवाला मैं आपके हितकारी वचनों को कैसे न सुनूंगा और हे मुने! मैं आप से प्रतिज्ञा करता हूं आप जो चाहें सो कहें मैं आपके वचनोंको सुनूंगा और करूंगा मुनि बोले कि हे राजन्! मैं तुम्हारे अपराधी नौकरोंके किये कर्मको और नौकरों से तेरे भयों को जानकर भक्तिसे सब वृत्तान्त कहने को तुम्हारे पास आया हूं प्रथमही आचार्यों से राजा की सेवा करनेवाले नौकरों का यह दोष कहागया कि राजा की सेवा करनेवाले पुरुषोंकी यह पापरूप आजीविका बहुत थोड़ी है जिसका स्नेह राजा से है उसकी मानो सर्प से प्रीति है राजालोग बहुत से मित्र और शत्रु रखनेवाले होते हैं राजा की सेवा करनेवालों को उन सबसे भय करना कहाहै उसी प्रकार इन नौकरों को भी एक मुहूर्त तो राजा से भय होय अस्वस्थचित्तपने से राजा को भुलावा देनेको समर्थ होते हैं परन्तु इच्छावान् राजाको किसी दशा में भी भूल करना योग्य नहीं राजा नौकरों की चूक से हानि को पाताहै और हानि पानेवाले राजा में जीवन नहीं होसक्ता राजा को शिक्षा करनेवाला नाश को पाता है जैसे देदीप्त अग्नि में जीव भस्म होते हैं अप्रिय वचन और निष्फल उठाबैठी और यात्रा आदि इंगित और देह के अंगीय कर्मों से शंका करनेवाला मनुष्य जीने की आशा को त्याग करके सदैव युक्तिपूर्वक राजा की सेवाकरे जो कि समर्थ और प्राण धन का स्वामी सर्प के समान क्रोधवान् होता है प्रसन्न राजा देवताओं के समान सब अभीष्टों को प्राप्त करता है और क्रोधयुक्त भी वैश्वानर अग्नि के समान मूल समेत भस्म करता है हे राजन्! यह मैंने जैसा कहा है वैसाही वर्तमान है और मैं बराबर तेरे बड़े २ प्रयोजनों को करूंगा मुझ सा मन्त्री आपत्ति में बुद्धि को ऐसी सहायता देता है जैसे कि मेरे काम को पूरा करनेवाला काक परन्तु मुझ को यह सन्देह है कि जैसे मेरा काक मारागया उसीप्रकार तेरे मन्त्री मुझ को भी मारेंगे यहां आप की मैं निन्दा नहीं करसक्ता और आप जिनके प्यारे हो वह भी निन्दा के योग्य नहीं राज्य के कार्य करनेवाले और बिगाड़ करनेवाले

नौकरही हैं नौकरोंपर विश्वास मतकरो जो जीवों की निर्धनता चाहनेवाले खज़ाने के नौकर आपके दर्बार में वर्तमान हैं उन्हों ने मुझ से शत्रुता की हे राजन् ! जो पुरुष आपकी हानि से निस्सन्देह राज्य को चाहते हैं रसोइये लोगों से मिलकर उन के मन का विचार सिद्ध होता है और नहीं भी होता है इससे हे राजन् ! मैं उनके भय से दूसरे आश्रम को जाऊंगा हे समर्थ ! उनका चलाया हुआ बाण मेरे काकपर गिरा छली पुरुषों के कारण मुझ अनिच्छावान् का काक यमलोक को गया मैंने तप और सूक्ष्मदृष्टि के द्वारा इस राज्यनदी को देखा जो बहुत से नौकररूपी नक्र, झष, ग्राह और छोटी २ मछलियों से संयुक्त है उस नदी को अपनी मृत्यु उत्पन्न करनेवाले अपने काक के द्वारा जो तरा तो वह नदी विना शाखा के वृक्ष और पत्थर कांटों से भरी सिंह व्याघ्रों से व्याप्त अगम असह्य हिमालय की कन्दरा के समान पड़ी दीपक के द्वारा अन्यायगढ़ और नौकाके द्वारा जलगढ़ प्राप्त कियाजाता है पण्डितों ने भी राज्यरूपी गढ़ में प्रवेश होने की युक्ति को नहीं जाना ऐसा आप का राज्य कपट और अन्धकार युक्त तमोगुण से व्याप्त है यहां कोई आप से भी विश्वास करने को योग्य नहीं है फिर मुझको कहां से होगा इस हेतु से यह अच्छास्थान नहीं है यहां सत्य और मिथ्या एकसीही हैं अच्छे कर्म में मृत्यु है तब बुरेकर्म में तो कुछ सन्देह ही नहीं बुरे कर्म में भी न्याय से घात होता है और अच्छे कर्म में कभी नहीं होता यहां ज्ञानी पुरुष बहुत न ठहरे शीघ्रही चलाजाय हे राजन् ! एक सीता नाम नदी है जिस में नौका डूबजाती है सब जीवों का नाशक फांसीरूप उसी नदी के समान मानता हूं आप तो मधुप्रपात हो और भोजन विष से युक्त हैं और तेरा चित्त सत्पुरुषों से विपरीत नीचों के समान है और सर्पों से भरेहुये कूपसदृश शीतल जल की नदीसमान आप हो कुत्ता, गीदड़, गिद्ध आदि से घिरेहुये राजहंस के समान हो जैसे कि बड़े वृक्ष को पाकर लता की बड़ी वृद्धि होती है फिर अग्नि उस लता को घेरती है और उस वृक्षको भी उल्लंघनकर वृद्धिको पाती है उस कठोर इन्धनसे भय उत्पन्न करनेवाली दावानल नाम अग्नि उसको भस्म करती है इसप्रकार के तेरे मन्त्री हैं उनको दण्डदो और हे राजन् ! तुम्हारी ओर से अधिकारों पर नियत कियेहुये और आपही से पोषित हुये और आप से मिलकर आपके प्यारे को मारा चाहते हैं अन्यायी की रक्षा करनेवाले और शंका करनेवाले मैंने तेरे देश में इसप्रकार से

निवास किया जैसे कि कोई पुरुष वीरपत्नियों के घरमें अथवा सर्पवाले घर में निवासकरे नौकरों के साथ राजा के स्वभाव जानने की इच्छा से मैंने इस देश में निवास किया कि राजा जितेन्द्रिय है या इसने काम क्रोध आदि को विजय किया है राजा इन मुंशियों का प्यारा है या प्रजालोगही राजा के प्यारे हैं इन सब तेरी बातों के जानने की इच्छासे यहांआया आप मुझे ऐसे अच्छे विदित होते हो जैसे कि भूखे को भोजन और मन्त्री लोग ऐसे बुरे मालूम होते हैं जैसे विना पिपासा के जल में उनसे शत्रुता करनेवाला नहीं हूं उनका वह दोष दिखलाना ही शत्रुता प्रकट करता है शत्रुकी भीतरी विपरीतता से ऐसे डरना चाहिये जैसे चोरियल सर्प से राजा बोला कि हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! आप बड़े दान मान से पूजित मेरे घर में निवास करो और जो तुमको नहीं चाहते हैं वह मेरे यहां नहीं रहेंगे और जो उनका अपराध है वह आपही से जानने के योग्य है हे मुने! जैसे कि दण्डधारण अच्छे प्रकार से होय और शुभकर्म होय वह आप विचारकर मेरा कल्याण करो मुनि बोले कि पहिले आप काक के मारने के अपराध को विचारकर हरएकको अधिकार से अलग करो फिर मारनेके हेतु को जानकर प्रत्येक को मारो एक से अपराधवाले बहुत मनुष्य भेद खुलजाने के भयसे कांटों से भी मार डालते हैं इससे यह तुमको कहता हूं हम मृदुदण्डवाले दयावान् ब्राह्मण हैं आपकी अपनी और दूसरों की कुशल को चाहते हैं इससे तुमसे कहताहूं कि मैं कालकवृक्षीय नाम मुनि आपका सम्बन्धीहूं आपके पिता का प्यारा मित्र सत्यसंकल्प हूं आपके पिताके स्वर्गवासी होने में आपको राज्यासन पर वर्तमान होने पर मैंने सब इच्छाओं को त्यागकर तप किया मैं प्रीतिपूर्वक तुमसे कहता हूं कि फिर अचेत मतहोना तुम दैवइच्छा से राज्यको पाकर और दुःख सुखको देखकर मन्त्रीके आधीन होनेवाले राज्य से क्यों भूले हुयेहो तिसपीछे उत्तम ब्राह्मण के प्राप्त होनेपर राजकुल और पुरोहितकुल में बड़ा मंगलहुआ कालकवृक्षीय मुनिने पृथ्वीको एकक्षत्राकरके यशस्वी राजा कौशल से उत्तम यज्ञों से पूजन कराया और कौशल राजाने भी उस हितकारी वचन को सुनकर पृथ्वीको विजय किया और जैसा मुनिने कहा वैसाही किया ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

तिरासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह! सभासद् और युद्ध के सहायक व सुहृद्जन

और सेनाके अधिकारी और मन्त्रीलोग कैसे होनेचाहिये ? भीष्मजी बोले कि जो पुरुष लज्जावान्, जितेन्द्रिय, सत्यवक्ता,सन्मार्गी आदि से संयुक्त और न्याय अन्याय के कहने को समर्थ हों वह तेरे सभासद् होयँ जो मन्त्री बड़ेशूर और शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण जातिपुरोहित इत्यादि सन्तोषी औरश्रेष्ठकर्मी होयँ ऐसे सहायकों को सब आपत्तियों में पूछो क्योंकि सदैव पूजित कुलीन मनुष्य अपनी सामर्थ्य को नहीं छिपाता है वही पूजित और पोषित मन्त्री प्रसन्न अप्रसन्न पीड़ित और घायल बहुत से मनुष्यों के समूहों को राज्य के कर्मों में प्रवृत्त करता है कुलीन, देशी, रूपवान्, ज्ञानी, बहुत शास्त्र के जाननेवाले, बुद्धिमान्, स्वामिभक्त ऐसे पुरुष तेरे नौकर होयँ और जो अकुलीन, लोभी, निर्दयी और निर्लज्ज हैं वह तेरी तबतक सेवाकरें जबतक कि गीलेहाथहों राजा ऐसे मन्त्रियों को सदैव माल के अधिकारों पर नियत करे जो कि कुलीन और आनन्द चित्त नेत्र आदि के इंगित अर्थात् इशारे को जाननेवाले मृदुस्वभाव देशकाल रीतियों के ज्ञाता और स्वामी के कामकी वृद्धि चाहनेवाले हों उनको राजा पारितोषिक और पोषण के योग्य माने वह धन और बड़े २ अधिकारोंपर नियतता और दिव्यवस्त्रादिकों का देना और आदर मानपूर्वक छोटे बड़े प्यारेभोगों से सुखभागी होयँ वह ज्ञानी और गुरुपूजन आदि से संयुक्त नेकचलन व्रतकरनेवाले साधु सत्यवक्ता सदैव चाहनेवाले मन्त्री आपत्तिकाल में भी त्याग नहीं करें जो नीच निर्बुद्धि धर्माधर्म की मर्यादा को नहीं जानतेहैं और उस मर्यादा के त्यागनेवाले हैं उनसे अपने को बचावो समूह को छोड़कर एकको न चाहे और जो समूह में एक स्वीकार करने के योग्य हो ऐसी दशा में बहुतसे मन्त्रियों से एकही मन्त्री कल्याण करनेवाला है उसको स्वीकारकरके इच्छा से समूह को त्याग करे जिसका पराक्रम दृष्टिआता है और नेकनामी को उत्तम माने और मर्यादा को दृढ़करे वह साधुहै और जो समर्थोंको पूज ईर्षारहित व मनुष्यों से ईर्षा नहीं करता है और इच्छा, भय, क्रोध, लोभ से धर्म को नहीं छोड़े और निरहंकारी, सुचाली, क्षमावान्, सावधानचित्त और मानयुक्त होय वह सब दशा में परीक्षा लिआहुआ तेरीसलाह आदिमें सहायक होय हे कुलीन! कुलसंयुक्त क्षमावान्, चतुर, ज्ञानी, शूर, कृतज्ञ, सुचाली मन्त्री कल्याण का लक्षण है ऐसे कर्म करनेवाले ज्ञानी पुरुष के शत्रुलोग प्रसन्न होते हैं और मित्र बन-जाते हैं इस पीछे चित्तका जीतनेवाला बुद्धिमान् ऐश्वर्यका चाहनेवाला राजा

मन्त्रियों के गुण, अवगुणों की परीक्षा करे जिन मन्त्रियोंका सम्बन्ध उन पुरुषों से है जो कुलीन स्वदेशी कामकरने में कुशल और धन आदि के द्वारा किसी के स्वाधीन न होनेवाले स्वामी से अप्रतिकूल और सबप्रकारसे परीक्षित उत्तमयोनि वेदमार्गी निरहंकारी हों ऐश्वर्य और राज्य की इच्छा रखनेवाले पुरुष को ऐसे मन्त्री करने चाहिये न्याय के अनुसार यह बुद्धि और पिछले कर्मों से पैदाहोनेवाला संस्कार और सत्यता आदि से संयुक्त बुद्धि दूसरे को विजय करनेकी सामर्थ्य महाआपत्तिमें भी स्थिरचित्त बड़ी कृतघ्नता में भी पवित्र, क्षमा बाहर भीतर से स्वामी से प्रीति करना स्थिरचित्तता धारण करने की सामर्थ्य यह अनेक गुण हैं राजा इन गुणों की परीक्षा लेकर सदैव शुभचिन्तक कार्यकर्ता और पांचो छलों से जुदेपुरुषों को माल के अधिकारों पर नियत करे श्रेष्ठवक्ता, वीर और कर्तव्य अकर्तव्य कामों में कुशल, कुलवान्, धनाढ्य और नेत्रों के इंगित अर्थात् इशारे आदि के पहिचाननेवाले मृदुस्वभाव देशकाल की विधि के जाननेवाले और भर्ता के काम में हित करनेवाले मन्त्रियों को माल के सब अधिकारों पर नियत करे जो मित्र तेजस्वी नहीं है उससे एकमत होकर कभी करने न करने के योग्य कर्म को निश्चय नहीं करना योग्य है क्योंकि वह सब कर्मों में सन्देहों को उत्पन्न करते हैं इससे थोड़े शास्त्र का जाननेवाला मन्त्री यद्यपि उत्तम कुलवान् और धर्म, अर्थ, कामसे संयुक्त भी हो तोभी मन्त्र के विचारने को समर्थ नहीं है इसी प्रकार अन्य कुल का पुरुष चाहे वह बहुत से शास्त्र का जाननेवाला भी हो तोभी छोटे कामों में ऐसे अचेत होजाता है जैसे कि अन्धा और अनायक मनुष्य होता है और जिसका संकल्प नियत नहीं है वह विधिज्ञ, शास्त्रज्ञ, उपायज्ञ भी हो परन्तु सदैव के लिये काम पूरा करने को समर्थ नहीं होता और शास्त्र से रहित दुर्बुद्धि मनुष्य के केवल कर्म के प्रारम्भ से उसके मुख्य कर्म के फलों का विचार साबित नहीं होता है जो मन्त्री स्वामी से प्रीति करनेवाला नहीं है उसपर विस्वास नहीं आता है इस कारण प्रीति न करनेवाले मन्त्री से गुप्त विचारों को प्रकट न करे वह कुचाली पुरुष मन्त्रियों समेत राजा को ऐसे पीड़ित करता है जैसे अग्नि और हवा छिद्रों में प्रवेश करके वृक्ष को पीड़ा देती है कभी स्वामी नौकर को क्रोधित होकर छुड़ा देता है और मारे क्रोध के वचनों से निन्दा करता है फिर प्रसन्न भी होजाता है वह बातें स्वामी में प्रीति रखनेवाले पुरुष को

क्षमा करने के योग्य हैं और मन्त्रियों का भी क्रोध वज्रपात के समान होता है जो नौकर अपने स्वामी की भलाई के कारण इनबातों को क्षमा करता है ऐसे मनुष्य को सुख दुःख आदि कामों में सदैव पूछे जो प्रीति न करनेवाला कुटिल मनुष्य दूसरे अवगुणों से भरा हुआ महाज्ञानी भी हो तोभी राजा का मन्त्र सुनने के योग्य नहीं है जो शत्रुवों के साथ मिलाहुआ है और पुरवासियों को बहुत नहीं मानता है वह शत्रु जानने के योग्य है परन्तु मन्त्र के सुनने के योग्य नहीं है अज्ञानी, अपवित्र, कुटिल शत्रु की सेवा करनेवाला और अपनी प्रशंसा करने में प्रवृत्त, अशुभ चिन्तकता में लगा, क्रोधी, लोभीहो और नवीन नौकर चाहे स्वामी से प्रीति करनेवाला बहुत शास्त्रों का ज्ञाता प्रतिष्ठित बड़ा भाग पानेवाला भी हो और जिसका पिता पहिले समय में अन्याय से अपमान किया गया हो वह अहंकारी फिर अधिकार पर नियत कियाहुआ भी मन्त्र के सुनने के योग्य नहीं है, जो पुरुष मित्र की ओर से छोटे कामों से भी अलग कियागया हो फिर अन्य अवगुणों से युक्तहो वह भी मन्त्र सुनने के योग्य नहीं है ज्ञानी, शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान्, पवित्र, सब कामों में कुशल और देशीही वह मन्त्र के योग्यहै और जो ज्ञान, विज्ञान में पूर्ण अपने शत्रु के मन्त्री आदि के वृत्तान्त का जाननेवाला शुभचिन्तक और राजा की आत्मा के समान हो वह भी मन्त्रके सुनने योग्य है जो सत्यवक्ता, प्रसन्नचित्त और मन्त्र के गुप्तरखने में समर्थ, लज्जावान्, मृदुस्वभाव, बाप दादे से नौकर चलाआया हो वह मन्त्र के सुनने के योग्य है सन्तोषी, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, बुद्धिमान्, पाप को अपना शत्रु समझनेवाला, मन्त्र और समय का ज्ञाता वह भी मन्त्र सुनने के योग्य है हे राजन् ! दण्डधारण करनेवाले राजा को उसके साथ सलाह करनी चाहिये और समर्थ होकर अपने मीठेवचनों से लोक को स्वाधीन करता है और पुरवासी और देशवासियों ने जिसमें धर्म का विश्वास किया वह लड़नेवाला और नीतिज्ञ है वह भी मन्त्र के सुनने के योग्य है इस कारण इन सब गुणों से संयुक्त और अच्छे पूजित और बड़े २ कर्मों के चाहनेवाले तीन मन्त्री प्रकृति के ऊपर आरूढ़ होयँ वह अपनी और शत्रु की प्रकृतियों में दोष को देखे, वह राजा का देश जिसका मूल मन्त्रियों का मन्त्र है अच्छी वृद्धि को पाता है शत्रु इसके अवगुण को नहीं देखे और अवगुणों में शत्रु के सम्मुख कच्छप के सदृशजाय और अंगों को छिपायेहुये अपने दोष को ढके राजा को

जो बुद्धिमान् मन्त्री अपने मन्त्र के छिपानेवाले हैं वह राजा और मन्त्री लोग मन्त्ररूप कवच रखनेवाले हैं, राज्य को कहते हैं कि दूतही इसकी जड़ है और सार इस में मन्त्र है ऐसे राज्य में जो स्वामी और मन्त्री जीविका के कारण अहंकार, क्रोध, ईर्षारहित अपने को माननेवाले सबको अपने आधीन करके कर्म करते हैं तब सुखी होते हैं जो मन्त्री पांचोंप्रकार के छलों से जुदे हैं उन के साथ सदैव सलाह को विचारे इन तीनों विचारों में नाना प्रकार के विचार करके चित्तको लगाकर सलाह के अन्त समयपर उसको उत्तर के लिये उस गुरु से पूछे जो कि उसके असली मूल को जानता हो और उस धर्म, अर्थ, काम के जाननेवाले गुरु ब्राह्मण से मिलकर तात्पर्य को पूछे जब तीनों की राय की ऐक्यताहोय तब अशक्त राजा उस मन्त्र को भी अपने काम में संयुक्तकरे जो मन्त्र और तत्त्व अर्थके निश्चय को जाननेवाले हैं उन्हों ने इस प्रकार सदैव मन्त्र करना कहा है इस हेतु से प्रजा को आज्ञावर्ती करने में समर्थ तेरा मन्त्र इसप्रकार सदा जारी होय इस मन्त्रशाला के मध्य किसी दशा में भी बौना, कुबड़ा, दुर्बल, खंजा, अन्धा, अज्ञान, स्त्री, नपुंसक यह सब लोग तिर्छे होकर आगे पीछे ऊपर नीचे नहीं घूमे उसीप्रकार नौकापर चढ़कर वन, आकाश और कुश और काशसे रहित मकानपर वर्तमान होकर राज्यके बड़े अंगोंके सबदोषों को दूर करके उचित समयतक करने के योग्य कर्म का विचार करे ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चौरासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें बृहस्पतिजी और इन्द्र का संवाद है इन्द्र बोले कि हे बृहस्पति जी! और वह एक पद कौनसा है जिसको पुरुष अच्छेप्रकार से करता हुआ सबजीवों का प्यारा होके बड़ी कीर्तिको पावे बृहस्पतिजी बोले कि हे इन्द्र! कपट से रहित पुरुष मीठेवचनों के बोलने से सब जीवों का प्यारा होकर महती कीर्ति को पाता है यही एक पद सबलोक का सुखदायी है इसको सबजीवों में करने से सदैव प्यारा होता है सदैव भौंह चढ़ानेवाला जो पुरुष किसी से बात नहीं करताहै वह मीठेवचन न बोलने से सबजीवों का शत्रु होजाता है मन्दमुसुकान सहित वार्तालाप करनेवाला जो पुरुष सबको देखकर प्रथमही बोलता है उसपर संसारी जीव प्रसन्न होते हैं, सब स्थानों में मीठेवचनरहित दान भी मनुष्योंको

प्रसन्न नहीं करता है जैसे कि व्यंजन से रहित भोजन और हे इन्द्र! जीवों के सब धनको भी लेकर जो पुरुष मीठेवचनों को कहता है वह उन वचनों से इस सब लोक को आधीन करता है इस कारण दण्डधारी राजा को भी मीठावचन बोलना योग्यहै इसका फल राज्यकी वृद्धि करताहै और उसके मनुष्य भयभीत नहीं होते हैं श्रेष्ठकर्म के साथ मीठेवचन बोलने के सिवाय दूसरी कोई बात उत्तम नहीं है भीष्मजी बोले कि हे कुन्तीनन्दन! बृहस्पतिजी के ऐसे वचन सुनकर जैसे इन्द्रने सब कर्म किये उसी प्रकार तुम भी सब कर्मोंको करो ॥ ११॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पचासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे राजेन्द्र! संसार के धर्म व प्रजापालन करनेवाला राजा इसलोक में किस प्रकार कीर्ति और आनन्द को पाता है भीष्मजी बोले कि प्रजापालन में संयुक्त पवित्र और शुद्धन्याय का करनेवाला राजा धर्म, कीर्ति को पाकर दोनोंलोकों को प्राप्त करता है युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! किस प्रकार के व्यवहारों और कैसे अदालत के हाकिमों के साथ विवादों का निर्णय करे इसको आप कहने के योग्य हो आपने जो पहिले पुरुष के विषय में गुण कहे वह एक पुरुष में वर्तमान नहीं हैं यह मेरा कथन है भीष्मजी बोले कि हे महाज्ञानिन्! यह ऐसेही है जैसे कि तुम कहते हो इन सब गुणों से संयुक्त कोई पुरुष कठिनता से प्राप्तहोता है इसलोक में बड़ीयुक्ति से मिश्रित स्वभाव भी कठिनता से मिलता है इसको फिर कहूंगा जैसे कि तुम उक्तप्रकार के मन्त्रियों को नियत करोगे वहां उस अदालत में चार ब्राह्मण भी ऐसे नियत करो जो कि वेदों के जाननेवाले बुद्धिमान् और ब्रह्मचर्यव्रती और पवित्र हों और वैसेही पराक्रमी, शस्त्रधारी आठ क्षत्रियोंको भी नियतकरो और इक्कीस धनाढ्य वैश्यों को स्थापित करो और अच्छे शिक्षित प्रतिदिन के कर्म करने में पवित्र देह तीन शूद्र भी अवश्य नियतकरो और ऐसे सूत पौराणिकों को भी नियत करो जो कि आठ गुणों से संयुक्त पचासवर्ष की अवस्था के हों और जो दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला श्रुति, स्मृति संयुक्त नम्र समदर्शी विवाद कर्ताओं के कार्य में प्रसक्त धन का निर्लोभी महाघोर सात व्यसन शिकार, पांसा, स्त्री, मद्यपान, दूसरे पर घातकरना, कठोर वचन, अर्थ दूषण आदि से रहित हो ऐसे पुरुष को आठो मंत्रियों के मध्य में मन्त्रियों का प्रधान नियत

करो फिर उन को देशों में भेजो अर्थात् राजा दौरा करावे और देश के लोगों को उनसे विदित करे सो हे युधिष्ठिर ! तुम को इस व्यवहार से प्रजालोग देखने के योग्य हैं दावे की वस्तुपर वादी और प्रतिवादी के परस्पर में निर्वाद होनेपर उस धरोहररूप वस्तु को न लेना चाहिये क्योंकि वह विवाद का नाश करनेवाली है विवाद के निश्चय बिगड़ने पर वह अधर्म तुझको और उनको पीड्यमान करेगा और तेरा देश ऐसे भागजायगा जैसे बाज के भय से पक्षियों का समूह इस लोक में अच्छेप्रकार प्रजापालन करनेवाले राजा के अधर्म से सब देशभर दूसरे देशों को ऐसे चलाजाता है जैसे कि समुद्र में टूटीनौका उस अधर्म से हृदय को भय उत्पन्न होता है और अस्वर्ग होता है, जबकि राजा का मन्त्री या उसका पुत्र धर्मासन अर्थात् न्यायाधीश वर्तमान होकर धर्ममूल राज्य में अधर्म से रक्षाकरता है, अधिकारोंपर नियत होनेवाले और उचितकर्म को न करनेवाले राज्य के नौकर आप को आगे करके राजा के साथ अधोगति को पाते हैं, संसार का रक्षक राजा पराक्रमियों के बल से घायल और दुःख से शब्द करनेवाले अनाथों का सदैव नाथ होय इस हेतु से वादी और प्रतिवादी की दोनों ओर के वाद प्रतिवाद से साक्षी की आवश्यकता होगी साक्षी और नाथ अर्थात् मुख्तार, वकील से रहित विवाद अधिक ध्यान करने के योग्य है और अपराधों के अनुसार अपराधियों को दण्ड दे धनवानों से धन दण्ड ले और निर्धनियों को कारागृह आदि से दण्ड देवे और दुराचारी राजाओं को भी चढ़ाई आदि से भयभीत करे और शासना करे और श्रेष्ठ पुरुषों को मीठे वचन और पारितोषिक आदि से पालन करे जो पुरुष राजा को मारना चाहे या कहीं अग्नि लगानेवाला चोर और वर्णसंकर करनेवाला है उनका घात अनेक प्रकार से हो हे राजन् ! अच्छेप्रकार दण्ड देनेवाले और शास्त्रानुसार कर्म करनेवाले राजा को अधर्म नहीं होता किन्तु सनातनधर्मही है जो अज्ञानी राजा इच्छा के अनुसार दण्ड देता है वह इसलोक में अपकीर्तिमान् होकर अन्त को नरक पाताहै अन्य के अपराध से अन्य को दण्ड न दे अर्थात् पिता के अपराध में पुत्र को दण्ड न दे किन्तु पुत्र के द्वारा पिता को बुलवाकर कारागृह वास दे और पुत्र को छोड़ दे राजा कैसीही आपत्ति में किसी दूत को न मारे दूत का मारनेवाला राजा मन्त्रियों समेत नरक को भोगता है क्षत्रियधर्म में प्रीति रखनेवाला जो राजा सत्य बोलनेवाले दूत को मारे उसके पितर भ्रूण

हत्या को प्राप्त होते हैं कुलीन और कुलसंयुक्त प्रियवक्ता चतुर और अपने मालिक के कहने के अनुसार वार्तालाप करनेवाला स्मरण रखनेवाला सातो गुणों से संयुक्त हो, इनगुणों से भरा और रक्षक इसका दरवानहो वह इनगुणों से व्याप्त गढ़, नगर आदि का रक्षक होताहै, सन्धि, विग्रह का विचार करनेवाला मन्त्री धर्मशास्त्र के अर्थांशका जाननेवाला बुद्धिमान्, धैर्यवान्, लज्जायुक्त गुप्त मन्त्रों को छिपानेवाला होता है, कुलीन, सतोगुणी, पवित्र मन्त्री की प्रशंसा होतीहै इसी प्रकार सेनापति भी इनगुणों से संयुक्त होना चाहिये व्यूह यन्त्र आयुध तत्त्वज्ञ पराक्रमी शीत उष्ण वर्षा वायु का सहनेवाला शत्रु के दोष का ज्ञाता हो शत्रु को विश्वासदे और आप किसी पर विश्वास न करे यहां तक कि पुत्रपर भी विश्वास नहीं करे हे निष्पाप! मैंने यह शास्त्र का तत्त्वार्थ तुम से कहा राजाओं का विश्वास न करनाही गुप्त कर्म कहाजाता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

छियासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि राजा कैसे बनेहुये पुर में रहने के योग्यहै अथवा कैसे पुर को बसाकर उसमें निवास करे हे पितामह! यह सब मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! राजा को पुत्र और बान्धव और जातिवालों समेत जहां पर निवास करना चाहिये वहां वृत्ति अर्थात् जीविका और रक्षापूर्वक पूछना न्याय के अनुसार है इस कारण गढ़ की तैयारी और रक्षाकी रीति सब ब्योरेवार तुझ से कहूंगा सुनकर उसीप्रकार करना चाहिये और युक्ति से कर्म करना चाहिये छह प्रकार के गढ़ में वर्तमान होकर फिर पुरों को बसावे जो गढ़ सब प्रकार के धन से भी पूर्ण और चारो ओर से पांच योजन विस्तृत एक मनुष्य ऊंची पृथ्वी से घिराहुआ है वह मुख्य गढ़ है दूसरा महीदुर्ग अर्थात् कोट तीसरा गिरिदुर्ग जिस के चारो ओर पहाड़ हो चौथा नरदुर्ग अर्थात् मनुष्यों का कोट पांचवां मृत्तिका का कोट छठा वनदुर्ग जिसके चारो ओर वनहो यह छह किले हैं, जो पुर अर्थात् प्रधान नगर दुर्ग से संयुक्त धान्य और आयुधों से पूर्ण दृढ़ प्राकार और परिखा अर्थात् परकोठा और खाई से दृढ़ हाथी घोड़े रथ आदि से संयुक्त हो और जिसमें चतुर कारीगर और अनाज आदि का संचय अच्छे प्रकार वर्तमान हो और महाचतुर धर्मात्मा मनुष्यों से व्याप्त पराक्रमी मनुष्य हाथी घोड़े रखनेवाला चबूतरा और दूकान आदि से शोभायमान और प्रसिद्ध

व्यापारवान् उपाधिरहित निर्भय श्रेष्ठ प्रकाशवान् गीतवाद्यों से शब्दायमान उत्तम स्थानों से शोभित शूर और धनी लोगों से भराहुआ वेदध्वनि और समाज उत्सव आदि आनन्दों से संयुक्तहोकर जिसमें सदैव देवपूजन होता हो उसमें मन्त्री और सेना को स्वाधीन रखनेवाला राजा आप निवास करे उसी पुर में ख़ज़ाना, सेना, मित्र और व्यवहार आदि की वृद्धि करके पुर और देशों के सब दोषों को दूरकरे, तोशेखाने और अस्त्रालय की बड़ी युक्ति से वृद्धिकरे अर्थात् अन्न आदि के सबदेर और मन्त्रालय आदि की वृद्धिकरे काठ, लोहा, भूसा, कोयला, लकड़ी, सींग, हाड़, बांस, कपाल, चर्बी, शहद आदि औषधों का समूह, सन, शालवृक्ष का रस, धान, धनुष, बाण, चमड़े की नसें, देह, बेत, मूंज, बल्वज, तृण, पीनेकी वस्तु, कूप, बहुत जलवाले तड़ाग, हौज़ और दूध के बड़ेवृक्ष यह सब राजा से रक्षाकरने के योग्य हैं और बड़ी युक्ति से सत्कार कियेहुये आचार्य, ऋत्विज्, पुरोहित और बड़े तीरन्दाज़, शिल्पी, ज्योतिषी, वैद्य, ज्ञानी, शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान् लोग और अच्छो शिक्षापाये हुये चतुर शूर और बहुत शास्त्रों के जाननेवाले कुलीन सतोगुणी सब अधिकारों पर नियत और प्रवृत्त धार्मिक पुरुषों को उपदेश का राजा पूजन करे अर्थात् उनका पोषणकरे और धर्म के त्यागी पुरुषों को दण्ड दे और सब वर्णों को बड़ी युक्ति से अपने कर्मों में प्रवृत्त करे इसीप्रकार दूतों के द्वारा पुरवासी और देशवासियों को भीतर बाहर से अच्छेप्रकार निश्चय करके फिर कर्म में प्रवृत्त करे राजा आप दूतोंको और मन्त्र ख़ज़ाना आदि दण्ड को अधिकतर देखे क्योंकि सब प्रबन्ध के मूल यही हैं दूतों के नेत्रों से पुर और देश में उदासीन, शत्रु, मित्रों के सब इच्छा कर्मों को जाने फिर सावधानी से उनका सब प्रबन्ध करना योग्य है जो राजा सदैव भक्तोंको पूजनेवाला और शत्रुवोंको दण्ड देनेवाला है उसको सदैव यज्ञों से पूजन करना योग्य है और पीड़ारहित दान भी करना चाहिये प्रजा की रक्षा करना चाहिये धर्म को पीड़ादेनेवाला कर्म न करना चाहिये दुखी, अनाथ, वृद्धा, विधवा स्त्रियों की इच्छा पूरी करके उनकी रक्षा और जीविका को सदैव विचारकरे राजा आश्रमों में तपस्वियोंका सत्कारपूर्वक पूजन और प्रतिष्ठाकरके सदैव कालके अनुसार वस्त्र, भोजन, पात्र आदि को देवे राज्य और देश के सब कार्योंको अपने देहसमेत तपस्वियों को निवेदन करे और सदैव बड़ी युक्ति के साथ नम्रतापूर्वक वर्तमान हो राजा उस प्रकार के कुलीन और बहुत शास्त्रों के

जाननेवाले सर्वत्यागी तपस्वी को देखकर वस्तु,आसन,भोजन आदि से सदैव पूजन करता रहै राजा आपत्ति में तपस्वी पर विश्वासकरे क्योंकि चोर भी तपस्वियों पर विश्वास करते हैं परन्तु तपस्वीके पास खज़ानेको नहीं रक्खे क्योंकि धन के कारण चोरों से उसके मारे जानेका भय है, सदैव प्रतिदिन सेवन और पूजन न करे और अपने देशों में दूसरा भी तपस्वी मित्र करना चाहिये और शत्रु के देशों में वनों में और सामन्त नगरों में भी दूसरा तपस्वी मित्र करना चाहिये शत्रु के देश और वन में वर्तमान उन तपस्वियों के भागों को सत्कार और प्रतिष्ठासे भेंटकरावे जिससे कि अपने देश में वह तीव्रव्रतवाले तपस्वी किसी आपत्ति में शरणागत राजा को उसकी इच्छानुसार शरण दें यह लक्षण देशमिश्रित तुझने कहा इसप्रकार का नगर में राजा आप वास करने योग्य है ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सत्तासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! देश के पालन और स्वाधीन करने में जो विचार हैं उन्हें आप वर्णन कीजिये क्योंकि मैं चित्त से जानना चाहता हूं, भीष्मजी बोले कि मैं देश की रक्षा और स्वाधीन करने की सबरीतियां तुझ से कहता हूं तुम चित्तलगाकर सुनो गांव का जैसा प्रधान होता है वैसाही दश गांव का दूसरा प्रधान करना चाहिये इसी प्रकार बीस,सौ,हज़ार आदि ग्राम का प्रधान करना चाहिये वह प्रधान ग्राम और देश के वासियों के दोषों को निश्चय करे और उन सबबातों को दशग्राम के प्रधान से कहे वह बीसवाले से इसी प्रकार क्रम से बीसवाला सौवाले से और सौवाला हज़ार गांव के प्रधान से कहे और वह सब प्रधान लोग उन वस्तुवों को भोजन करें जोकि ग्राम वा देश में उत्पन्न हों एक गांववाला दशगांववाले को और दश गांववाला बीस गांववाले को इसी प्रकार एक से एक ऊपरवाले को भेजदे वह सौ ग्राम का स्वामी सत्कार किया हुआ एक ग्राम के भोगने को समर्थ है औरजो बड़ा और श्रेष्ठ वृद्धि पाया हुआ मनुष्यों से भरा देश हो उसमें हज़ार गांव का स्वामी राजा का नायब होता है वह हज़ार गांव का स्वामी नगर की उत्तम शाखाओं के भोगने के योग्य है वही देशी मनुष्यों से संयुक्त उस नगर की शाखा अनाज धन आदि के भोग से प्रजा के पोषण करने को भी योग्य है उनका काम जो युद्ध है और ग्राम से सम्बन्ध रखता हो धर्म का जाननेवाला और

सावधान कोई मन्त्री उन २ कामों को देखे अथवा प्रत्येक नगर में हर एक बात का विचारनेवाला एक पुरुष नियत होय और नगर का स्वामी भयानकरूप होकर ऊंचे स्थान पर विराजमान होके अपने प्रताप से उन सब सभासदों को आच्छादित करे जैसे कि चन्द्रमा नक्षत्रों के तेज को दबालेता है उस देश में घूमनेवाला कोई दूत उनके वृत्तान्तों को पहुँचावे और जो अधिकारीरूप राक्षस मारने की इच्छा करनेवाले पापात्मा दूसरे के धन को हरनेवाले मूर्ख हैं उन सब से जीवों की रक्षा करे, मोल बेच मार्ग और अनाज वा अपने लड़के स्त्री समेत प्राप्त कियेहुये धन और माल को अच्छे प्रकार से ध्यान करके व्यापारियों पर महसूल नियत करे और पैदायश धन और खर्च और कारखाने को सदैव वारंवार देखकर शिल्प के कारखाने के विषय में शिल्पविद्यावानों पर महसूल नियत करे प्रथम राजा के छोटे बड़े महसूलों को नियत करे जिससे कि प्रजा पीड़ावती नहीं होवे पृथ्वी का स्वामी वैसाही करे अनाज आदि फल और परिश्रम आदि कर्म को अच्छे प्रकार से विचारकर सब महसूलों को विचार करे फल और कर्म इन दोनों में कोई विना हेतु के वर्तमान नहीं होता है जैसे कि राजा और कर्मकर्ता दोनों कर्मों के भोगनेवाले होयँ उसी प्रकार ठीक विचार कर राजा की ओर से महसूल नियत करना चाहिये और अपनी जड़ देश को नहीं काटे और लोभ से दूसरों की जड़ खेती आदि को नहीं काटे और राजा इच्छारूपी द्वारों को बन्द करके अत्यन्त प्रसन्न होता है और जो बहुत खाने वाले प्रसिद्ध हैं वह उस राजा के साथ शत्रुता करते हैं जब प्रजा शत्रु है तब राजा का कल्याण कहां है और वह शत्रु होकर फल को नहीं पाता है सावधान बुद्धिवाले राजा को बछड़े के समान होकर देश को दुहना योग्य है और हे युधिष्ठिर ! नौकर और बछड़ा पराक्रमी होने पर पीड़ा को सहता है और माता के दूध से रहित किया हुआ बछड़ा कर्म को नहीं करता इसी प्रकार अत्यन्त दुहा हुआ देश भी बड़े कर्म को नहीं करता है जो राजा आप देश की रक्षा करता है वह श्रेष्ठ महसूल योग्य पृथ्वी की भेज ले आनन्दपूर्वक निर्वाह करता है और उत्तमफल को पाता है उस देश में आपत्ति के लिये दियेहुये धनकी अधिक वृद्धि करे देश खज़ानारूप है और जैसे कि खज़ाने की रक्षा महल में होती है उसी प्रकार पुरवासी, देशवासी, सब शरणागत और अल्पपराक्रमियों पर भी सामर्थ्य के अनुसार राजा कृपा करे बाह्यजन चोर वनवासी आदि को

दूसरे के सुपुर्द करके उससे बहुत धन लेकर मध्य का देश सुखपूर्वक भोगने के योग्य है इस प्रकार से सुखी दुःखी कोई मनुष्य भी राजा पर अप्रसन्न नहीं होते पहिलेही भेज की तहसील को प्रकट करके अपने देश में भय दिखलावे और कहे कि यह शत्रु की सेना का भय महाआपत्तिरूप है उसको भी हम देश के नष्ट होने का कारण जानते हैं जैसे कि बांस के वृक्ष में फल की उत्पत्ति का होना मेरे शत्रु चोरों के साथ बड़े उद्योग करके अपने नाश होने के लिये इस देश को पीड़ा देना चाहते हैं इस घोर आपत्ति में असह्य भय होने से आप लोगों की रक्षा के लिये तुमसे धन को चाहता हूं और भय दूर होने पर तुम्हारा सबधन फेर दूंगा और शत्रु लोग जो यहां से धन हर लेजायँगे वह फेर न देंगे और स्त्री आदि तुम्हारे सब नष्ट होजायँगे और यह भी बात ठीक है कि पुत्र स्त्री के लिये धन के इकट्ठे करने की इच्छा कीजाती है मैं तुम्हारे प्रभाव से प्रसन्न होताहूं जैसे कि पुत्र के उदय में पिता प्रसन्न होता है मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार देश के साथ तुम्हारी सुखपूर्वक रक्षा का प्रबन्ध करता हूं और आप लोगों को आपत्तियों में बोझ का सहनेवाला होना चाहिये जैसे कि श्रेष्ठ बैल भार को सहते हैं किसी आपत्ति में धन को अत्यन्त प्यारा न समझना चाहिये समय का जाननेवाला राजा इन मीठी और साफ़ बातों को आज्ञापत्र के द्वारा अपने नौकरों को विदित करे और धन के लेनेवाली युक्तियों को प्रजापर जारी करके धन को ले परकोटा और नौकरों के पोषण आदि का खर्च और युद्ध सम्बन्धी भय वा मनोरथ का सिद्धकरना और उसकी रक्षा को अच्छेप्रकार से विचार कर वैश्यों को भेज देनेवाला करे वनवासी वैश्य प्रबन्ध से रहितहोकर नाशको पाते हैं इस कारण उन वैश्यों में बड़ी मृदुता सेकामकरे हे राजन्! वैश्यों की रक्षा और मीठेवचनों से आश्वासन, दान, मान और बराबरभाग उनकी इच्छा के अनुसार करना योग्य है और उनमें बराबर फल को भोगना चाहिये जिससे कि वह देश के सब व्यवहार और खेती आदि की वृद्धिकरें इस कारण युक्तिपूर्वक वैश्योंपर साधारण महसूल लगावे और सबस्थानों में मंगल करना यह बात वैश्यों में ही सुगमतापूर्वक है इनके समान कोई उत्तम नहीं है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अट्ठासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जब समर्थ राजा भी खज़ाने की इच्छा करे

तब कैसा कर्मकरे वह कृपाकरके कहिये भीष्मजी बोले कि धर्मका चाहनेवाला प्रजा की वृद्धि में प्रवृत्त राजा देश, काल और बुद्धि के पराक्रम के अनुसार प्रजा को उपदेश करे राजा जैसे उनके और अपने कल्याण को माने उसी प्रकार के कर्मों को सब देश में जारी करे देश को शहद निकालने के समान दुहै जैसे कि मधुमक्खी वृक्ष को और बछड़ा गौ को दुहता है और थनों को पीड़ित करके नहीं काटता है इसी प्रकार राजा जोंक के समान देश को मृदुता से पिये और जैसे व्याघ्री पुत्रों को हरण करे उसी प्रकार काटे और पीड़ा न दे जैसे तीतर चोंचवाला चूहा सदैव पैरों को मृदुत पूर्वक काटता है उसीप्रकार देश को पान करे अर्थात् उससे मालगुज़ारी ले थोड़ी २ मालगुज़ारी से वृद्धि पानेवाली प्रजापर पहिले थोड़ी भेज बढ़ावै फिर क्रम २ से अधिककरके ख़ज़ाने की वृद्धिकरे बोझा लेजाने के योग्य बैलों को सिखाता हुआ वस्तुवों की वृद्धि करे और बड़ी युक्तिपूर्वक सुगमता से पाशों को धारण करावे अर्थात् इसप्रकार से प्रजा को वशीभूत करे पाशों से जुदे होतेही शीघ्र मरजायँगे क्योंकि कठिनता से स्वाधीन होनेवाले हैं इससे उचित युक्तियों से भोगने के योग्य हैं इसी हेतु सब प्रारम्भ कर्म हरएक आदमी में कठिनता से होते हैं उत्तमपुरुषों को मीठे वचनों के द्वारा विश्वास कराके दूसरे भारवाहकता के योग्य मनुष्य भोगने के योग्य हैं तदनन्तर उन उत्तमपुरुषों के द्वारा उन भारकशी के योग्य आदमियों को परस्पर में पृथक् करके मीठेवचनों से विश्वास कराके विना उद्योग सुखपूर्वक भोगे हरस्थान में बे समय पर महसूल उनपर नहीं जारी करे समय और बुद्धि के अनुसार क्रमपूर्वक मीठेवचनों से नियत करे मैं मायारहित उन युक्तियों को कहता हूं कि विनायुक्ति के स्वाधीन करना घोड़ों को क्रोध युक्त करता है शराबख़ाने के लोग और वेश्याओं के मिलानेवाले और नीच स्वभाव से धर्म नष्टकरनेवाले, कुटिनी स्त्री, ज्वारी अथवा जो कोई इसप्रकार के पुरुष हैं और देश को नष्ट करनेवाले हैं वह सब दण्ड के योग्य हैं देश में वर्तमान ऐसे लोग कल्याणरूप प्रजा को पीड़ा देनेवाले हैं विना आपत्ति के किसी से कुछ कोई मांगने के योग्य नहीं हैं मनुजीने पहिलेही यह जीवों की मर्यादा कही उसके अनुसार कर्म करें जो इस लोक में कर्म नहीं करते हैं वह निस्सन्देह नाश को पावेंगे समर्थ राजा जो इनको सुमार्ग में नियत नहीं करता वह उस पाप के चौथेभाग को भोगता है यह श्रुति है उस पाप को ऐसे भोगता है जैसे कि पुण्य

को जो पापी हैं वह सदैव राजा से दण्ड के योग्य हैं जो इनको दण्ड नहीं देता है वह राजा पापात्मा है जैसे कि राजा धर्म के चौथे भाग को भोगता है उसी प्रकार पाप के चौथे भाग को भी भोगता है शराबख़ाने आदि स्थानों में प्रसंग करना ऐश्वर्य को नाश करता है काम में प्रवृत्त पुरुष सब नष्टकर्मों को त्याग करे प्रीति में फँसा हुआ पुरुष मद्य, मांस वा दूसरे का धन और स्त्रियों को हरण करता है और वैसीही आज्ञा जारी करता है या वैसेही शास्त्र को दिखलाता है जिसमें कि गृहस्थाश्रम के सामान नहीं हैं वह उसको आपत्ति के लिये चाहते हैं उनको क्रोधरहित हो धर्म और दयापूर्वक देना योग्य है तेरे देश में ठग और चोर न होयँ यह लोग इन प्रजाओं के मारनेवाले हैं इनसे ऐश्वर्य नहीं होसक्ता जो जीवों पर दया करते हैं और प्रजाकी वृद्धि करते हैं वह लोग तेरे देश में वृद्धि पावें जीवों के नाशकारी वृद्धि मत पावें और नियत महसूल से अधिक लेने वाले अधिकारी दण्डके योग्यहैं दूसरे अधिकारी उन भेज देनेवालों को इत्तिला देकर भेज का धन दाख़िल करावें खेती, रक्षा, गौ, व्यापार और जो दूसरा इसी प्रकार का कोई कर्म है उनको बहुत मनुष्यों से करावे दूसरी दशा में कर्म का नाश हो जो खेती, गोपालन, व्यापार में भी कर्म करनेवाला मनुष्य कुछ संशय को पाता है उससे राजा की निन्दा होती है धनीलोगों को खानेपीने की वस्तु और वस्त्रादि से प्रसन्न करे और यह कहै कि तुम मेरी प्रजापर अनुग्रह करो हे युधिष्ठिर ! यह धनवान् नाम राज्य का बड़ा अंग है और सबजीवों में प्रधान है जो ज्ञानी, शूर, धनी, स्वामी, धर्म करनेवाला, तपस्वी, सत्यवक्ता, बुद्धिमान् है वह प्रजाकी रक्षा करता है इससे सबजीवों में प्रीतिमान् हो और सुहृद्भाव, दया, अक्रोधता को पालन करो इसप्रकार सुहृद्भाव, सत्य कथन में प्रवृत्त मित्र ख़ज़ाने पराक्रमी सेना से संयुक्त पृथ्वी को पावोगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

नवासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि तेरे देश में वनस्पति और खाने के योग्य फलों को कोई न काटें क्योंकि ज्ञानियों ने यह धर्म कहा है कि मूल और फल ब्राह्मणों का धन है ब्राह्मणों से जो शेषरहैं उसको दूसरे लोग खायँ अन्य मनुष्य किसी दशामें भी ब्राह्मणों को विना दिये हुये न लें हे राजन् ! जो वेदपाठी ब्राह्मण अपनी जीविका से पीड़ित होकर देश त्यागने की इच्छा करे तब उसकी और उसकी

स्त्री की जीविका विचार करे और जो वह ब्राह्मण नहीं लौटे उसदशा में ब्राह्मणों की सभा में कहे कि अब यह संसार किस मर्यादा में काम करेगा तो निस्सन्देह लौटेगा जो इसपर भी उत्तर नहीं दे तो उसके पीछे कहना चाहिये कि पिछला अपराध क्षमा करना योग्य है यह सनातनधर्म है यह मनुष्यों का कथन समझ कर मैं श्रद्धा नहीं करूं यह बात ठीक नहीं अवश्य करता हूं जो आजीविका नियत करनेपर भी देश को त्याग करे तो भोगपदार्थों से निमन्त्रण करे और जो आजीविका केही कारण देश को त्यागे तब उसको नियत करे यहां जीवों की जीविका खेती, गोपालन, व्यापार और स्वर्ग और तीनों वेद हैं वह जीवों को ऐश्वर्यवान् करते हैं उसके क्षीण होने से उसके शत्रुरूप जो चोर हैं उनके मारने के वास्ते ब्रह्माजी ने क्षत्रियकुल को उत्पन्न किया इससे हे राजन् ! तुम शत्रुवों को विजय करो और प्रजाकी रक्षा कर यज्ञों से देवताओं का पूजन करके युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ो जो राजा रक्षा के योग्य पुरुषों की रक्षा करता है वह राजाओं में उत्तम है हे युधिष्ठिर ! राजाको सदैव सबप्रजा से ज्ञात होना चाहिये आदमी आदमी को कैसे भोगे अपने आदमियों से दूसरों को और दूसरों से अपने आदमियों को रक्षा करना अथवा अपने आदमियों की अपनेही आदमियों से सदैव रक्षा करो हे राजन् ! अपने को सब ओर से रक्षित करके पृथ्वी की रक्षा करो ज्ञानियों ने इस सबको आत्मारूप मूल रखनेवाला कहा मेरा प्रतिबन्धक कौन है और व्यसनवालों से मेरा स्नेह क्यों है और विना गिराया हुआ शत्रु कौन है और मुझको कहां से दोष लगता है यह सदैव विचार करे दूतलोग दिनके अन्त में वृत्तान्त को कहते हैं या नहीं कहते हैं प्यारे और गुप्त दूतों से पृथ्वी को संयुक्त करे और जो मेरे वृत्तान्त को जाने उस दशा में कहते हैं या नहीं कहते हैं मेरे देश और राज्य में यश अच्छा मालूम होता है या नहीं और जो पुरुष धर्मज्ञ धैर्यवान् और युद्ध में पीठ न फेरनेवाले क्षत्रियों के देश में गुज़ारा करते हैं और जो राजा के पास नौकर हैं सबमन्त्री और मध्यस्थ पुरुषों में जो तेरी प्रशंसा करे या पीछे से निन्दा करे उन सबका सत्कार करावो और अच्छे प्रकार से सबका प्रसन्न करना असम्भव है क्योंकि सबजीवों में शत्रु मित्र और उदासीन होते हैं युधिष्ठिर ने कहा कि भुजाओं के ज़ोर में और गुणों में समान पुरुषों के बीच कौन कैसे अधिक होय और फिर यह सब मनुष्यों को आज्ञावर्ती कैसे करे भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! जो

चेष्टा करनेवाले जीव स्थिर जीवों को भक्षण करते हैं इसी प्रकार डाढ़ रखनेवाले विना डाढ़वालों को खाते हैं और डाढ़ में विषरखनेवाले क्रोधयुक्त सर्प अन्य सर्पों को खाते हैं इनसे और शत्रुवों से राजा सदैव सावधान रहे यह सब गिद्ध के समान अचेत होकर गिरते हैं तेरे देश में कर लगने के कारण पीड्यमान व्यापारी भयभीत तो नहीं होते हैं और वनवासी मनुष्य थोड़े से धन के बदले बहुत सी वस्तुवों को मोल तो नहीं लेते अत्यन्त पीड्यमान रेंनेवाले क्या देश को तो नहीं त्यागते जो राज्य के धुर को उठाते हैं वह दूसरों काभी पोषण करते हैं यहांके दान से देवता, पितरगण, मनुष्य, सर्प, राक्षस, पक्षी, पशुआदि सब का जीवन होता है हे भरतवंशिन्! यह देशकी रीति और राजाओं की रक्षा तुम से वर्णनकी इस प्रयोजन में वर्तमान होकर फिर कहूंगा ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नब्बेवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि बड़े ब्रह्मर्षि अंगिरावंशी प्रसन्नचित्त उतथ्यऋषि ने जिन वचनों को युवनाश्व के पुत्र मान्धाता के लिये वर्णन किया उस बड़े ब्रह्मज्ञानी उतथ्यऋषि ने जिस प्रकार से उसको उपदेश किया वह सब मैं तुझ से कहता हूं उतथ्यजी बोले कि राजा धर्म के लिये होता है न कि इच्छापूर्वक कर्म करने को हे मान्धाता! तुम इसको जानो कि राजा लोक का रक्षक है जो राजा धर्म को करता है वह देवभाव के लिये कल्पना कियाजाता है जो अधर्म को करता है वह नरक को जाता है जीव धर्म में नियत होते हैं और धर्म राजा में वर्तमान होता है जो साधु राजा उसको उपदेश करता है वह पृथ्वी का स्वामी है बड़ा धर्मात्मा धनी राजा धर्मरूप कहाजाता है राजा धर्मरूप नहीं है जहां ऐसा कहाजाता है वहां देवता निन्दा को पाते हैं अपने धर्म में वर्तमान पुरुषों के मनोरथ सिद्धहुये मालूम होते हैं सब संसार उसी मंगल में वर्तमान होता है जब धर्मरूप रीति का नाश होता है तब बड़ा अधर्म वर्तमान होता है जब पाप नहीं हटाया जाता है तब अहर्निश भय उत्पन्न होता है हे तात! जब पाप नहीं रोकाजाता है तब धर्म से साधुवों की मर्यादा भी घटती है कि यह धन मेरा है अथवा यह मेरा नहीं और जब पाप की प्रबलता होती है तब मनुष्यों की स्त्री, गौ, क्षेत्र, स्थान दृष्टि नहीं आते तब देवता पूजा को और पितर स्वधा को नहीं जानते हैं और अतिथि भी नहीं पूजेजाते और व्रतकरनेवाले ब्राह्मण भी वेदों

को नहीं प्राप्तकरते और वेदपाठी ब्राह्मण यज्ञों को विस्तृत नहीं करते शस्त्रों से घायलहुये के समान जीवों का चित्त भय आदि से व्याकुल होता है ऋषियों ने आप दोनों लोकों को देखकर राजा को उत्पन्न किया कि यह संसारी जीवों का अच्छा पालन करेगा जिसमें पालनशक्ति विराजमान होती है उसको राजा कहते हैं और जिसमें धर्म लुप्तहोता है उसको देवताओं ने वृषिल कहा भगवान् का धर्मवृष नाम है जो उसको बन्दकरता है उसको देवताओं ने वृषिल जाना इसकारण धर्म की अधिक वृद्धिकरे धर्म की वृद्धि होनेपर सब जीव सदैव वृद्धि को पाते हैं और जिसके नाशवान् होनेपर सब नाश को पाते हैं इसहेतु धर्म का लोप नहीं करना योग्य है हे राजन्! धर्म धन से या धारण से जारी होता है यह निश्चय है उस धर्म को निषिद्ध कर्मों का नाशकरनेवाला कहा ब्रह्माजी ने जीवों की वृद्धि के लिये धर्म को उत्पन्न किया इसकारण प्रजा के उपकारार्थ धर्म को करे इसीसे धर्म को महाउत्तम कहा, हे पुरुषोत्तम! राजा वही उत्तम है जो प्रजा को धर्म का उपदेश करता है और काम, क्रोध को त्यागकर धर्म को पालन करे धर्म राजाओं का बड़ा कल्याण करनेवाला है हे मान्धाता! ब्राह्मण धर्म का उत्पत्तिस्थान है इसहेतु उनको सदैव पूजे मित्रता से पृथक् राजा ब्राह्मणों की इच्छाआदि को पूर्ण करे उन्हों की इच्छा पूर्ण न करने से राजाको भय उत्पन्नहोता है मित्र वृद्धि को नहीं पाते और शत्रुवों की भी वृद्धि होजाती है विरोचन के पुत्र राजा बलि ने अज्ञानता से सदैव ब्राह्मणों में दोष लगाया इस कारण उससे वह लक्ष्मी जुदीहुई जो उसके पास प्रतापवाली थी फिर वह लक्ष्मी उससे पृथक् होकर इन्द्र के पास गई जब उसने इन्द्र के पास लक्ष्मी को देखा तो बड़ा शोच कर पश्चात्ताप करने लगा हे समर्थ! दूसरे के गुण में दोष लगाने का और अहंकार करने का यह फल है सो हे मान्धाता! सावधान रहो कि यह प्रतापवाली लक्ष्मी तुम को त्याग नहीं करे लक्ष्मी का पुत्र दर्प अहंकार नाम अधर्म से उत्पन्न हुआ है यह श्रुति है हे राजन्! उससे बहुत से देवता और असुर नाश कियेगये और बहुत से राजऋषि भी नाश कियेगये हे भरतवंशिन्! उस अहंकार को विजय करके राजा होता है ऐसा निश्चय जानो और उससे हाराहुआ दास होता है सो तुम अहंकार के साथ अधर्म का सेवन मतकरो वही बात करो जो सत्य है हे मान्धाता! जो बहुतकाल पर्यन्त वर्तमान रहा चाहते हो तो मद्य से प्रमत्तपाखण्डी लोगों का संग और उन से मिले हुये के सेवन को

त्याग करो पकड़े हुये मन्त्री से और स्त्री, पहाड़, कुटिल मार्ग और अगम्य स्थान, हाथी, घोड़ा, सर्प आदि से सदैव चैतन्य रहना चाहिये रात्रि के फिरने को त्याग करो अदानता, अहंकार, कपट, क्रोधइत्यादि का त्याग करो हे राजन्! विनाजाने नपुंसक और स्वतन्त्र अन्य की स्त्री और कन्याओं के साथ विषय को न करो वर्णों के मेल होने से कुलों में पापी, राक्षस, नपुंसक, अंगहीन, विक्षिप्त उत्पन्न होते हैं और अन्य प्रकारके भी मनुष्य उत्पन्न होते हैं जब राजा असावधानी करता है तब राजाको प्रजाकी वृद्धि में अधिक कर्म करना उचितहै अचेत क्षत्रिय को महादोष उत्पन्न होता है और प्रजा को वर्णसंकर करनेवाले में अधर्मकी बड़ी वृद्धि होती है गर्मी में सर्दी वर्तमान होती है और शरदृतुमें सर्दी वर्तमान नहीं होती वर्षा का न होना या अधिक होना और रोग प्रजा में वर्तमान होते हैं उस दशा में धूम्रकेतु और घोर ग्रह आदि सामने प्रकट होते हैं और राज्यके नष्ट करनेवाले बहुत उत्पात दृष्टि आते हैं जो आत्मा की रक्षा किये विना राजा प्रजा की भी रक्षा नहीं करता है उसकी प्रजा नाश को पाती है तब वह भी नाश को पाता है एक के धनको दो लेते हैं और दो के धनको दूसरे अन्य बहुतसे लोग लेते हैं और कुमारियां बहुत गुप्तकरलीजाती हैं तब राजा का दोष कहा जाता है जब राजा धर्म को त्यागकर असावधानी से कर्म करता है तब मनुष्यों में एक की भी मर्यादा नियत नहीं होती है कि यह मेरा है ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इक्यानबेवां अध्याय ॥

उतथ्य बोले कि समयपर वर्षा करनेवाला पर्जन्य और धर्म करनेवाला राजा जो यह सम्पत्ति होती है वह सुख से प्रजा को पोषण करती है जो धोबी वस्त्र या दुशाले आदि के मैल दूर करने को नहीं जानता है वह उत्पन्न भी अनुत्पन्न सा है इसीप्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के मध्य में भी यही बात है और वर्णों में चौथा शूद्र जो नानाप्रकार के कर्मों में वर्तमान है उस में भी यही बात है अर्थात् अपने धर्मों के विपरीत धोबी के समान है सेवा करना शूद्र में, खेती करना वैश्य में और दण्डनीति राजा में और ब्रह्मचर्य, तप, मन्त्र और सत्यता ब्राह्मणों में वर्तमान हैं उनके बीच में जो क्षत्रिय पवित्र वस्त्र के समान प्रजा की नेक प्रकृति को जानता है वह पिता के समान प्रजापति है हे भरतवंशिन्! राजाके सब चलन सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुगरूप हैं राजा ही

युग कहाजाता है चारो वर्ण और चारो आश्रमों का धर्म इसीप्रकार चारो वेद यह सब अज्ञानता को प्राप्त होते हैं जब कि राजा अचेत होता है तीनों वेद तीनों अग्नि और दक्षिणा सहित सब यज्ञ मोह को प्राप्त होते हैं राजाही जीवों की वृद्धि का करनेवाला है जो धर्मात्मा है वह वृद्धि करनेवाला है और जो अधर्मी है वह नाशकर्ता होता है राजा की भार्या, पुत्र, भाई, बन्धु और सुहृद्-जन सब मिलकर शोच करते हैं जब राजा अचेत होताहै, राजा को अधर्मरूप होने से हाथी, घोड़े, ऊंट, खच्चर, गधे और सब जीव पीड़ा पातेहैं हे मान्धाता! ईश्वर ने पराक्रम को निर्बल के लिये उत्पन्न किया क्योंकि निर्बल ही बड़ाजीव है जिसमें सब वर्तमान हैं हे राजन्! यह यश निर्बल जीव को सेवन करता है और जो जीव उसके कुल में हैं वह सब राजा को अधर्म में प्रवृत्त होने से शोच करते हैं निर्बल और मुनि, सर्प की जो आंख है उसको क्षमा के अयोग्य मानता हूं इससे निर्बल को पीड़ा मत दो हे तात! तुम सदैव जिनका अपमान हुआ हो उनको निर्बल जानो निर्बलों के नेत्र तुम को बन्धुवों समेत नाश न करैंगे निर्बल से नष्टहुये राजा के कुल में कुछ भी नहीं रहता मूलतक भस्म कर देताहै इससे निर्बल को पीड़ा मत दो निश्चय करके निर्बल सबल से उत्तम है क्योंकि पराक्रमी को निर्बल से नष्टता के विशेष कुछ प्राप्त नहीं होता अपमान कियाहुआ वा घायलहुआ अथवा पुकारनेवाला मनुष्य जोरक्षक को नहीं पाता है वहां दैव का रचाहुआ दण्ड राजा को मारता है हे पुत्र! तुम पराक्रमी होकर निर्बल मनुष्यों को मत भोगो अर्थात् बल से उनसे भेज मत लो और तुझ को निर्बल के नेत्र ऐसे भस्म न करें जैसे कि मकान को अग्नि जिनको मिथ्या दोष लगाया गया उन रोनेवाले आदमियों के जो अश्रुतपात होते हैं वह उनके मिथ्या बोलने से उनके पुत्र और पशुवों को मारते हैं जो वह पाप आपको न होगा तो पुत्रों को प्राप्त होगा वा पोतों में फल होगा किया हुआ पाप पृथ्वी के कर्म के समान शीघ्र नहीं फैलता जिस स्थानपर निर्बल घायल होता है वहां दैवका रचा हुआ महाभयानक वज्रपात होता है जब देशवासी योगी ब्राह्मणों के समान बराबर भिक्षुकरूप होकर भिक्षा को मांगते हैं उसप्रकार के मनुष्य राजा का नाश करते हैं जब राजा के देश में बहुत से नौकर लोग अन्यायसे कर्मकर्ता होते हैं वह राजा का बड़ा पाप है जब विपरीत युक्ति राजा इच्छा धन के आधीन होकर दुःख से प्रार्थना करनेवाले पुरुषों का धन आदि

छीन ले वह राजा का महानाश करनेवाला है वृक्ष बड़ा उत्पन्न होता है और वृद्धि को पाता है तब जीवों का आश्रय होता है और जब वृक्ष काटाजाता है और जलाया जाता है तब आश्रयी जीव महादुःख पाते हैं जब राज्य में राजगुणों के कहनेवाले मनुष्य उत्तम धर्म और संस्कार को करते हैं तब राजा की वृद्धि होती है और धर्म में असावधानी होने से उनका किया हुआ अधर्म राजा के पुण्य को नाश करता है और पाप का भागी करदेता है जिस स्थान पर सत्पुरुषों के जानेहुये पापात्मा लोग फिरते हैं वहां कलियुग राजालोगों को अपने आधीन करता है जब राजा नीचमनुष्यों को दण्ड देता है या सच्चे मार्ग में चलता है तब उसका राज्य वृद्धि पाता है जो राजा मन्त्रियों को यथायोग्य सत्कार करके दूरदर्शकता की सलाह से युद्ध में प्रवृत्ति करता है उस राजा का देश वृद्धि पाता है और सम्पूर्ण पृथ्वी को बहुत काल तक भोगता है जो कर्म श्रेष्ठ है और अच्छे प्रकार कहा हुआ वचन है उसको भी राजा अच्छेप्रकार से विचार कर पूजता हुआ उत्तम धर्म को पाता है जब भागों का विभाग करके भोगता है और मन्त्रियों का अपमान नहीं करता है और अहंकारी और पराक्रमी को मारता है तब राजा का धर्म कहाजाता है जब देह, चित्त और वचनों से सबकी रक्षा करता है और पुत्र के भी अपराध को क्षमा नहीं करता वह राजा का धर्म कहा जाता है जब पराक्रमी राजा अच्छे प्रकार से भागों को विभाग करके मनुष्यों को भोगता है अर्थात् उन पर आज्ञा करता है तब वह बलवान होते हैं यह भी राजा का धर्म कहाता है जिस स्थान में कर्म, वचन से पापात्मा प्यारे की भी क्षमा न करे वह राजा का धर्म कहाजाता है जब राजा प्रधान व्यापारियों की पुत्र के समान चारो ओर से रक्षा करता है और मर्यादा को नहीं तोड़ता वह राजा का धर्म कहाता है जब श्रद्धायुक्त राजा इच्छाद्वेष को त्यागकर दक्षिणा के योग्य यज्ञों को करता है वह राजा का धर्म कहाजाता है जब राजा मनुष्यों की प्रसन्नता को उत्पन्न करता दुःखी, अनाथ और वृद्धों के नेत्रों के अश्रुपात को साफ़ करता है वह राजा का धर्म कहाजाता है मित्रों की वृद्धि और शत्रुवों को पीड़ादेता है और साधुवों को अच्छेप्रकार से पूजता है वह राजा का धर्म कहाजाता है प्रीति से सत्यता की रक्षा को करता और सदै धर्म को जारी करता अतिथि और पोषण के योग्य मनुष्यों को तृप्त करता है वह राजा का धर्म कहाजाता है दण्ड और पारितोषिक यह दोनों जिस राज

में वर्तमान होयँ वह इस लोक और परलोक में फल को पाता है हे मान्धाता ! यह यमराजरूप धर्मात्मा राजा पुरुषों का बड़ा स्वामी है इन्द्रियों को स्वाधीन करता ऐश्वर्य को पाता है और अजितेन्द्रिय नष्ट होता है जब ऋत्विज्, पुरोहित और आचार्य को अपमानरहित सत्कार करके अच्छे प्रकार से पोषण करता है वह राजा का धर्म कहा जाता है यमराज सब जीवों को अधिक दण्ड देता है उसीप्रकार राजा को भी कर्म करना चाहिये और प्रजा भी विधिपूर्वक सन्मार्ग में लाने के योग्य है हे पुरुषोत्तम ! राजा सब प्रकार से इन्द्र के समान गिनाजाता है वह जिस धर्म को देखता है वही धर्म है क्षमा, बुद्धि, धैर्य, ज्ञान और सदैव सावधानी से जीवों को शिक्षा करो सबजीवों को स्वाधीन करना और दान, मान, मीठेवचन आदि की भी शिक्षा करो तुम को सुखपूर्वक पुरवासी और देशवासी रक्षा करने के योग्य हैं असावधान राजा प्रजा की रक्षा में कभी समर्थ नहीं होता हे पुत्र ! यह राज्य नाम बड़ा कठिन भार है इस कारण दण्ड का जाननेवाला ज्ञानी और शूरवीर राजा रक्षा करने को समर्थ होता है दण्ड न जाननेवाले नपुंसक व अज्ञान राजा से भी रक्षा करना असम्भव है पण्डित, कुलीन, सावधान, भक्त और बहुत शास्त्र के जाननेवाले मन्त्रियों के साथ तपस्वी और आश्रमियों के सब ज्ञानियों की परीक्षा करो इन बातों के पीछे तुम सब जीवों के उत्तम धर्मों को जानोगे अपने देश में और परदेश में तेरा धर्म नाश को नहीं पावेगा क्योंकि अर्थ और काम से धर्मही उत्तम है इससे धर्मात्मा इस लोक और परलोक में सुख से वृद्धि को पाता है अच्छे प्रकार से पूजित मनुष्य स्त्री और पुत्रों का भी त्याग करते हैं जीवों को स्वाधीनता में करना दान, मीठेवचन, भ्रान्ति का त्याग और पवित्रता यह सबगुण राजा के ऐश्वर्य करनेवाले हैं हे मान्धाता ! तुम इन गुणोंको कभी मत भूलो अपना और शत्रु का दोष देखनेवाला राजा सावधान होता है शत्रु के दोष को नहीं देखै और शत्रु के समान दोषों को करे यह कर्म इन्द्र, यमराज और वरुण देवता का है और सब राजऋषियों का भी है इससे तुम भी इसको करो और राजऋषियों से सेवित कर्म में सावधान होकर मोक्षके लिये दिव्य मार्ग में प्रवृत्त हो और देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व आदि दोनों लोकों में धर्म पर आरूढ़ राजा की कीर्ति करते हैं भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन् ! उस उतथ्यऋषि से उस प्रकार कहे हुये उस मान्धाता ने शंकारहित होकर उन सब कर्मों को किया और सम्पूर्ण पृथ्वी

को उस अकेलेने विजय किया हे राजन्! इसी प्रकार आप भी मान्धाताके समान अच्छेप्रकार धर्म करके पृथ्वीकी रक्षा करो इससे स्वर्गमें स्थान पावोगे ९०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकनवतितमोऽध्यायः॥ ९१ ॥

बानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि धर्म में प्रवृत्त होनेवाला धर्मात्मा राजा किस प्रकार से कर्म करे यह आप वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर एकप्राचीन इतिहास कहता हूं जिसको तत्त्वार्थज्ञाता वामदेव ऋषि ने गाया ज्ञानी, पवित्र, धैर्यवान् राजा वसुमता ने ब्रह्मर्षि वामदेवजी से पूछा कि हे भगवन्! धर्म, अर्थ से संयुक्त वचनों के द्वारा मुझे आप उपदेश करिये जिससे कि मैं उस कर्म को करके धर्मसे च्युत न होऊं यह सुनकर तप करनेवालों में उत्तम तपस्वी वामदेवजी ने उस सुवर्णवर्ण ययाति के पुत्र नहुष के समान सुखपूर्वक विराजमान राजा से यह कहा कि धर्मपूर्वक कर्म करो धर्म से उत्तम कोई कर्म नहीं धर्म में वर्तमान राजाही इस पृथ्वी को विजय करते हैं जो राजा धर्म को प्राप्त किये हुये धन से उत्तम मानकर धर्मकी वृद्धि में प्रवृत्त होता है वह धर्म से शोभायमान होता है जो अधर्म का देखनेवाला राजा पराक्रम में प्रवृत्त होता है उससे धर्म और अर्थ शीघ्रही हट जाते हैं और जिसके मन्त्री दुष्ट और पापी हैं वह धर्म का नाश करनेवाला लोक में मरा हुआ है अर्थात् अपने बालबच्चों समेत शीघ्र नाश को पाता है धन को सुमार्ग में न लगानेवाला इच्छाचारी अपनी प्रशंसा करनेवाला राजा सब पृथ्वी को भी पाकर शीघ्र नष्ट होता है और कल्याण का प्राप्त करनेवाला और अन्य के गुण में दोष न लगानेवाला जितेन्द्रिय ज्ञानी राजा ऐसे वृद्धि को पाता है जैसे कि नदियोंसे समुद्र की वृद्धि होती है हे राजन्! वह पृथ्वी का स्वामी अपने को सदैव ऐसा माने कि मैं धर्म, अर्थ, काम, बुद्धि और मित्रोंसे भी पूर्ण नहींहूं इन सबमें लोकयात्रा वर्तमान है अर्थात् इनसे संसार का प्रबन्ध होता है इन धर्म आदि में प्रवृत्त राजा यश, कीर्ति, लक्ष्मी सहित प्रजाको पाताहै इसप्रकार जो धर्म में संयुक्त हो धर्मार्थ का विचारनेवाला राजा अर्थों को विचार कर सेवन करता है वह निश्चय करके बड़े ऐश्वर्य को पाता है दान न करनेवाला प्रजापर प्रीति न रखनेवाला विना विचार कर्म का अभ्यास रखनेवाला प्रजा को दण्ड देता शीघ्र नाश को पाता है जो अज्ञानी राजा बुद्धि से पाप करनेवाले को नहीं देखता है वह अपमान युक्त हो नरक को भोगता है और

जो राजा सत्कार करनेवाला दानी, शुद्धप्रजा के आधीन रहनेवाला है उसके व्यसनों को मनुष्य ऐसे दूर करते हैं जैसे कि अपने दुर्व्यसन को धर्म में जिस का गुरु नहीं है और दूसरों से भी नहीं पूछता वह स्वतन्त्रता से सिद्ध होनेवाले लाभ में बहुतकालतक सुख को नहीं भोगता है और जो आप अर्थों का देखनेवाला और धर्मों में गुरु को और लाभ में धर्म को उत्तम माननेवाला है वह राजा बहुत कालतक सुख को भोगता है ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

तिरानबेवां अध्याय ॥

वामदेवजी बोले कि जिस स्थान पर बड़ापराक्रमी राजा निर्बल पर अधर्म करता है उसके कुल के लोग भी उसी कर्म को करते हैं उस पापी और पापके ज़ारी करनेवाले राजा के समान कर्मकर्ता होते हैं जिस देश के मनुष्य शिक्षित नहीं होतेहैं वह देश शीघ्रही नष्ट होताहै मनुष्य स्वकर्मी राजा के कर्म से निर्वाह करते हैं उस राजा के भाई बन्धु उस गोमार्ग में वर्तमान राजा की क्षमा नहीं करते जिस स्थानपर विनाविचार कर्म करनेवाला कुछ निकृष्ट कर्म करे वह शास्त्र के विपरीत लक्षण रखनेवाला राजा शीघ्रही नाश को पाता है जो क्षत्रिय दूसरे के स्वाधीन होनेवाले और स्वतन्त्र क्षत्रियों के अच्छे आचरण की हुई वृत्ति पर वर्तमान नहीं होता है वह क्षत्रियधर्म से ज़ुदा होता है जो राजा पहिले समय में उपकार करनेवाले और वर्तमान में शत्रुता करनेवाले राजा को क़ैद करके शत्रुता से सत्कार नहीं करता है वह क्षत्रियधर्म से नष्ट होता है और जो समर्थ राजा अच्छेप्रकार सुख को प्राप्त करे और आपत्तिकाल में उस आपत्ति को दूर करने का उपाय करे वह जीवों का प्यारा होकर लक्ष्मी से रहित नहीं होता है और वह मनुष्य जिससे कि कोई विरुद्धभाव रखता हो और फिर उससे सुहृद्भाव करे वह थोड़ेही समय में उसका प्यारा होजाता है और जो शत्रु भी हो वह भी भलाई करे और निरर्थक विवाद का त्याग करना और विनामांगे भलाई को करना इच्छा, क्रोध, शत्रुता आदि से धर्म को न छोड़ना प्रश्नों में न्याय के विपरीत उत्तर का न देना और अकथनीय बात को मुख से न कहना शीघ्रता न करना गुणों में दोष न लगाना आदि बातें शत्रु को स्वाधीन करती हैं मित्र के साथ अतिप्रसन्न शत्रु के साथ क्रोधयुक्त प्रजा की वृद्धि चाहनेवाला आपत्ति में दुःखी नहीं होता है जो राजा नौकर आदि अपने मनुष्यों की भलाई को

अपने गुण से करता है उसके सब काम सिद्ध होते हैं और लक्ष्मीवान् रहता है विपरीत कर्मों का न करनेवाला, भलाई में प्रवृत्त, भक्त और सावधान नौकर को राजा सदैव सेवन करे और बुद्धिमान्, आज्ञाकारी, पवित्र, समर्थ और प्रीति करनेवाले मनुष्य को बड़े अधिकार पर नियत करे इन गुणों से संयुक्त जो नौकर राजा को प्रसन्न करे उस स्वामी के कार्यों में सावधान पुरुष को माल के अधिकार पर नियत करे और जो राजा कि अस्वस्थचित्त, लोभी, दुराचारी, मूर्ख, छली, दुःखदायी, दुर्बुद्धि, अल्पशास्त्रज्ञ, बड़ेकर्मों का त्यागनेवाला, मद्यपी, द्यूत, स्त्री और शिकार में प्रवृत्त पुरुष को बड़े अधिकार पर नियत करता है वह लक्ष्मी से रहित होता है जो राजा रक्षित होकर रक्षा के योग्य मनुष्यों की रक्षा करता है उसकी प्रजा वृद्धि पाती है और निश्चय बड़े पद को भोगता है और जो राजा कि दूसरे राजाओं को शुभचिन्तक गुप्त दूतों के द्वारा देखता है वह राजा वृद्धिको प्राप्त होता है पराक्रमी के साथ बुराई करके यह विश्वास न करे कि मैं दूर हूं क्योंकि बाज़ के समान अचेत मनुष्यों पर गिरते हैं जिसकी जड़ पक्की है और बुद्धि निर्दोष है वह अपने पराक्रम को जानकर निर्बलों को अधिकारों पर नियत करता है न कि अधिक पराक्रमियों को पराक्रम से पृथ्वी को पाकर धर्म से प्रजापालन करे और धर्म में स्थित राजा युद्ध में शत्रुवों को मारे यह सब मरणपर्यन्त होना चाहिये इसमें कुछ हानि नहीं है इस कारण धर्म में वर्तमान राजा धर्म से प्रजापालन करे क़िले आदि का बनाना युद्ध करना और धर्म का उपदेश करना सलाह करना समयपर सुख देना इन पांचो बातों से पृथ्वी की वृद्धिहोती है यह गुण जिसके रक्षित हैं वह राजा राजाओं में उत्तम है इस धर्म में सदैव वर्तमान राजा इस पृथ्वी को आधीन करता है यह पांचो अकेले राजा से देखने के योग्य नहीं राजा उन पांचो में सबको नियत करके बहुत समयतक पृथ्वी को भोगता है देश के मनुष्य उस दानी, न्यायी, मृदुतायुक्त, पवित्र पुरुष को जोकि मनुष्यों का त्याग नहीं करता है राजा करते हैं जो पुरुष अपनी राय को त्याग करके अपने कल्याणकारी ज्ञान को सुनकर उसको प्राप्त करता है उसको लोक राजा करते हैं जो राजा मित्र के वचन को विरुद्धता से नहीं मानता है और सदैव बे मन से उसके शत्रुवों से विपरीत वचनों को सुनता है और जो सदैव दूसरे राजा के विजय किये हुये या न विजय किये हुये राजाओं और बुद्धिमानों की सेवन की हुई लाभ की

युक्ति को सेवन नहीं करे वह क्षत्रियधर्म से हीन होता है कर्म में प्रवृत्त राजा क़ैद किये हुये मन्त्री, स्त्री, पहाड़ और टेढ़े और कठिन स्थान, हाथी, घोड़ा, सर्पआदि से सदैव अपनी रक्षा करे जो राजा प्रधान मन्त्रियों को त्याग करके नीच पुरुषों को प्यार करता है वह पीड्यमान दुःख को पाकर अन्त में कुशलता को नहीं प्राप्त होता है और जो राजा कल्याण गुणों में संयुक्त अपने सजातियों की शत्रुता से वृद्धि नहीं करता वह अदृढ़ात्मा और दृढ़ क्रोधी मृत्यु के समीपही वर्तमान होता है और जो राजा गुणों से युक्त हृदय से प्यारे पुरुषों को भी उनका अभीष्ट करने से आज्ञाकारी करता है वह बहुत कालतक कीर्तिमान् होता है और जो बे समय धन का व्यय नहीं करे और शत्रु के ऊपर कभी क्रोधयुक्त न होवे और मित्र के साथ भी बहुत प्रसन्न न होवे और देह के सुखदायी कर्म में प्रवृत्त होवे और सदैव यह विचारकरे कि इन राजाओं में कौन राजा तो प्रीति करनेवाले हैं और कौन भय से शरणागत हुये और कौन से उदासीन होकर दोष रखनेवाले हैं और पराक्रमी होकर कभी किसी भी स्थानपर निर्बल का विश्वास न करे यह राजा गिद्धके समान अचेत राजा के ऊपर गिरते हैं जो पापात्मा मनुष्य सब गुणों से भरा हुआ प्यारे वचन बोलनेवाले स्वामी से भी शत्रुता करता है उस मनुष्य पर विश्वास नहीं करे इस प्रकार नहुष के पुत्र राजा ययाति ने राजाओं की यह गुप्तविद्या कही यह विद्या मनुष्यों के देश में जारी होकर बड़े २ शत्रुवों को मारती है ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

चौरानबेवां अध्याय ॥

वामदेवजी बोले कि राजा विनाही युद्ध के विजय को बढ़ावे क्योंकि युद्ध से विजय करना मध्यम कहाजाता है राज्य के मूल दृढ़ न होने से अप्राप्त को कभी न चाहै निर्बल मूल राजा को लाभ होना नहीं कहाजाता है जिसका देश धनाढ्य और राजा को प्यारा माननेवाला प्रसन्न मन्त्रियों से संयुक्त है उस राजा का मूल दृढ़ होता है जिसके योद्धा सन्तुष्ट हों और उसके प्यारे मीठेवचनों से प्रसन्नहों वह राजा थोड़ेही दण्ड से पृथ्वी को विजय करता है जिसके पुरवासी, देशवासी, धनी और अनाज आदि रखनेवाले जीवों पर दया करनेवाले हैं वह राजा दृढ़मूल रखनेवाला है जब राजा अपने प्रताप के समयतक अधिक माने उस समय वह बुद्धिमान् शत्रुके देश और धनके विजय

करने की इच्छा करे और जो राजा भोगों में उदयमान जीवों पर दयावान् शीघ्रकर्मी रक्षितात्मा होता है उसकी विजय अत्यन्त होती है जो राजा अच्छे प्रकार बर्ताव करनेवाले अपने मनुष्यों से मिथ्या बोलता है वह अपने को ऐसे मारना चाहता है जैसे कि फरसे से वन काटाजाता है सदैव न मारनेवाले राजा के शत्रु नाश नहीं होते परन्तु जो राजा क्रोध के मारने को जानता है उसका कोई शत्रु नहीं होता जो काम अच्छे लोगों के विरुद्ध है उसको ज्ञानी पुरुष नहीं करे और जिस भलाई को विचारे उसीमें अपनेको प्रवृत्त करे जो राजा दूसरों की इच्छापूर्णता के साथ अपने सुखों को प्राप्त करता है और दूसरे लोग उसका अपमान नहीं करते और आप भी कभी दुःखी नहीं होता ऐसी वृत्तिवाले मनुष्यों में जो राजा वर्त्तमान रहै वह दोनों लोकों का विजय करके पूरी विजय में प्रवृत्त होता है भीष्मजी बोले कि वामदेवजी के ऐसे समझाये हुये राजा ने उन सब बातों को किया इसीप्रकार तुम भी कर्म करके दोनों लोकों को निस्सन्देह विजय करोगे ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पंचानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले जो क्षत्रिय युद्ध में किसी अन्य क्षत्रिय को विजय करना चांहे उसको विजय करने में क्या धर्म करना चाहिये यह आप कृपा करके वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि सहाय रखनेवाला वा असहाय राजा देश में आकर कहै कि मैं तुम्हारा राजा हूं तुम्हारी सदैव रक्षा करूंगा मेरा धर्मरूप राजअंश दो अथवा क्या कहते हो वह प्रजा उस आये हुये राजा को स्वीकार करे तो कुशल है और जो वह क्षत्रिय न होयँ और किसीप्रकार का विरुद्ध करें तो वह विपरीतकर्मी सबप्रकार से दण्ड और शासना के योग्य हैं दूसरा मनुष्य उस क्षत्रिय को रक्षा करने में भी अत्यन्त असमर्थ और अशस्त्री जानकर शस्त्र को हाथ में लेता है यह भी बहुधा होता है युधिष्ठिर ने कहा कि जो क्षत्रिय राजा क्षत्रिय के सम्मुख जाय उसको किस प्रकार से युद्ध करना चाहिये भीष्मजी बोले कि जो क्षत्रिय युद्ध में कवच आदि नहीं धारण किये है उससे युद्ध नहीं करना चाहिये एक को एकही से युद्ध करना योग्य है जो वह शत्रु कवच धारण किये हुयेही आवे तो इसको भी कवच धारण करना योग्य है और जो वह सेना समेत आवे उस दशा में उसको सेना

समेत बुलावे और जो वह छल से युद्ध करे तो उससे आप भी छल करे और धर्म से युद्ध करे तो धर्म ही से उसे हटावे घोड़े की सवारी से रथी के सम्मुख न जाय रथी रथके सम्मुख जाय किसी प्रकार की आपत्ति में शस्त्रघात न करना चाहिये और भयभीत वा विजय किये हुये पर घात न करना चाहिये बड़ा बाण और करणी नाम बाण विष का भरा हुआ न हो यह शस्त्र नीच लोगों के हैं बुद्धि के अनुसार युद्ध करना श्रेष्ठ है मारने की इच्छा करनेवाले शत्रु की रक्षा न करे जब साधुवों के विरोध से साधुलोग व्यसनी होगये तब निर्बल और असन्तान किसी दशा में भी मारने के योग्य नहीं है शस्त्र और कवच जिस के खण्डित हों और मृतकरूप सवारी में सवार आपत्ति में पड़ा हो और अपने देश में चिकित्सा के योग्य होय और घरमें पहुँचने के योग्य हो वह विना घायल छोड़ देने के योग्य है यह सनातनधर्म है इसकारण धर्मही से युद्ध करना चाहिये यह स्वायम्भुव मनु ने कहा है जो धर्म सत्पुरुषों के मध्य में सत्पुरुष करते हैं उसमें नियत होकर उसका नाश न करे जो धर्मरूप प्रण करनेवाला क्षत्रिय अधर्म से विजय करता है वह छली पापात्मा आप अपना घात करता है यह कर्म नीचों का है असाधु को शुभकर्म से विजय करे क्योंकि धर्म सेही मरना उत्तम है और पापकर्म से विजय करना अच्छा नहीं हे राजन्! किया हुआ अधर्म पृथ्वी के समान शीघ्रफल नहीं देता वह अधर्म जड़ों को और बड़ी २ शाखाओं को नष्ट करता हुआ प्राप्त होता है पापी पापकर्म से ही धन को पाकर प्रसन्न होता है चोरी से वृद्धि पानेवाला और धर्मको नहीं माननेवाला पवित्र मनुष्यों को हँसता है पापात्मा पापही में सना रहता है और श्रद्धारहित होने से भी नष्ट होता है वरुण के पाशों से बँधा हुआ अपने को सदैव जीवता सा मानता है हवा से पूर्ण मशक चर्म के समान मोटा देह शुभ कर्म में प्रवृत्त नहीं होता है वह मूलसहित ऐसे नष्ट होता है जैसे नदी के तटके वृक्ष इसकी पीछेसे सब निन्दा करते हैं इससे राजा धर्म सेही विजय और धनको चाहे ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

छानबेवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि राजा को अधर्म से पृथ्वी का विजय न करना चाहिये कौन सा राजा अधर्म से जीत को पाकर सन्तुष्ट होता है अधर्म से संयुक्त विजय और स्वर्ग दोनों नाशवान् हैं हे राजन्! यह विजय राजाको और पृथ्वी भरको

पीड़ा देती है टूटे कवचवाले और तेरे आधीन हूं ऐसे वचन कहनेवाले हाथ जोड़े हुये शस्त्रत्याग कियेहुये शत्रु को पकड़कर नहीं मारे और जो पराक्रम से विजय कियाहुआ है उस राजा से युद्ध नहीं करे और वर्षपर्यन्त उसको समभावे तदनन्तर उसका पुत्र राजा होवे और पराक्रम से लाई हुई कन्या एक से पहिले पूछने के योग्य नहीं कि तू हम को वरैगी या दूसरे को वरैगी अर्थात् विपरीत कहनेवाली कन्या को अपने घर में न रहने दे इसीप्रकार सब धन के विषय में भी कर्म करना चाहिये जो दूसरे का धन छल से हरण कियागया और चोर का भी न गिनाजाय तो वह खर्च के योग्य है उस धन से ब्राह्मणलोग दूध को पियें और बैलों को भी जोड़ें अर्थात् सवारी करें जब घातकरने के योग्य पुरुष चोर न ठहरे तो क्षमा के योग्य होता है अर्थात् वह धन के फेर देने के योग्य है राजा राजा से युद्ध करने के योग्य है ऐसा धर्म कहाजाता है राजा के सिवाय दूसरा वर्ण किसी दशा में भी राजा के सम्मुख शस्त्र न चलावे जब दोनों ओर की सन्धि का चाहनेवाला ब्राह्मण दोनों सेनाओं के मध्य में होय तब उचित युद्ध न होना चाहिये उन दोनों में से जो ब्राह्मण को उल्लंघन करता है वह सनातन मर्यादा को तोड़ता है और जो क्षत्रियों में विजयी पुरुष मर्यादा का उल्लंघन करे वह क्षत्रिय क्षत्रियों में अयोग्य अर्थात् जाति से निकालने के योग्य और सभा में प्रवेश करने के अयोग्य होता है जो विजय की इच्छा करनेवाला राजा धर्मलोप और मर्यादा के तोड़ने से उसीरीतिपर कर्म न करे उस समय धर्मसे प्राप्त हुई विजय से अधिक कौन लाभ होगा वह विना विचारे विजय आदि को करके शीघ्रही अपने विजय कियेहुये को मीठेवचन और भोगदान से प्रसन्न करे यह राजाओं की नीति उत्तम है कटुवचनों से आज्ञा में वर्तमान किये हुये अपने देश से अप्रसन्न और व्यसनों के समूहों की आपत्ति के चाहनेवाले शत्रु उसके समीप वर्तमान हों वह शीघ्रही आपत्तिकाल में उन शत्रुवों के आज्ञाकारी होते हैं हे राजन् ! जो राज्य के व्यसनों के चाहनेवाले यद्यपि सब ओर से तृप्त भी होयँ तोभी शत्रुछल से ठगने के योग्य नहीं होते और किसी दशा में वार्तालाप से भी विरुद्ध करने के योग्य नहीं कभी अत्यन्त घायल वा शत्रु अपने जीवन को भी त्यागकरे इसीप्रकार राजा थोड़े धनयुक्त देश से भी तृप्त होता है और उस प्रकार का होकर पवित्र जीवन को भी बहुत मानता है जिस राजा का देश वृद्धियुक्त धनी और राजा का आज्ञाकारी है और जिसके मन्त्री नौकर आदि

प्रसन्न हैं वह राजा दृढ़मूल रखनेवाला है ऋत्विज्, पुरोहित, आचार्य और अन्य शास्त्रज्ञ पूजने के योग्य जिस राजा के पूजेजाते हैं वही राजा लोक का जाननेवाला कहा जाता है इन्द्र ने इसीरीति से पृथ्वी को प्राप्त किया इसीरीति से राजा लोग इन्द्रलोक को विजय किया चाहते हैं हे युधिष्ठिर ! राजा प्रतर्दन ने भारी युद्ध में विजय करके पृथ्वी के सिवाय अन्न, धन, ओषधियों को भी सदैव हरण किया राजा दिवोदास ने अग्निहोत्र के शेष बचेहुये हव्य और भोजन को खाया इसकारण से अप्रतिष्ठित हुआ तात्पर्य यह है कि इन वस्तुवों को नहीं हरना चाहिये और राजा नाभाग ने वेदपाठी और तपस्वियों के धन के सिवाय राजाओं के समूह सहित सबदेशों को दक्षिणा में दिया हे युधिष्ठिर ! धर्मज्ञ प्राचीन राजाओं के जो नानाप्रकार के धन हुये वह सब मुझ को प्रिय हैं ऐश्वर्य का चाहनेवाला पृथ्वी का राजा विद्याओं के प्रताप से विजय को प्राप्त करे छल और कपट से न चाहे ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! निश्चय करके क्षत्रियधर्म से अधिक कोई पापयुक्त कर्म नहीं है क्योंकि राजा युद्ध करने में वैश्य आदि लोगों को मारता है और पृथ्वी का स्वामी राजा किस कर्म से अपने लोकों को विजय करता है यह आप मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि राजा लोग पापियों को दण्ड देने और साधुवों का पोषण करने से और यज्ञ दानादि से पवित्र निर्मल होते हैं विजय की इच्छा करनेवाले राजा लोग जीवों को पीड़ा देते हैं फिर विजय को पाकर प्रजा की वृद्धि करते हैं और दान, यज्ञ, तपआदि के बल से पापोंको दूर करते हैं उनका पुण्य जीवों के कल्याण के लिये वृद्धि पाता है जैसे कि खेत का निराव करनेवाला निरायेहुये खेत को काटकर अनाज, भूसा आदि को जुदा करता है परन्तु अनाज नष्ट नहीं होता इसीप्रकार शस्त्रों के मारनेवाले राजा लोग मारने के योग्य शत्रुवों को बहुत प्रकार से मारते हैं उनका यही महाप्रायश्चित्त है जो फिर जीवों की रक्षा को करते हैं जो राजा धन खर्चने के द्वारा जीवों को मारने आदि दुःख से और चोरों से रक्षा करता है वह प्राणदान से धन का देनेवाला सुखदायी पोषक निर्भयरूप दक्षिणायुक्त सब यज्ञों से पूजन करनेवाला है वह राजा इस लोक के कल्याणों को भोगकर इन्द्र की समानता

को पाता है जो राजा ब्राह्मणों के प्रयोजन के लिये अपने देहरूपी यज्ञस्तम्भ को ऊंचा करके शत्रुवों से युद्ध करता है वही महादक्षिणावाला यज्ञ है उससे श्रेष्ठ कोई पुरुष नहीं है युद्ध में जितने शस्त्र उसकी देह के चर्म को छेदते हैं वह उतनेही लोगों को जो कि अविनाशी और सब इच्छाफल को पूर्णकरनेवाले हैं भोगता हैं युद्ध में उसकी देह से जो रुधिर आदि निकलता है उस दुःख से वह सबपापों से छूटता है युद्धमें सन्तप्त क्षत्रिय जिन कष्टों को सहता है उसी दुःख से उस के बड़े तप का फल प्राप्त होता है यह धर्मज्ञों का कहा हुआ है युद्ध में भयानकरूप धर्मात्मा पुरुष शूरवीर से रक्षा को चाहते हुये ऐसे पीछे को वर्तमान होते हैं जैसे पर्जन्य नाम मेघ के पीछे वर्षा से जीविका चाहनेवाले वर्तमान होते हैं शूरवीर होकर उसीप्रकार रक्षा करे जिससे कि भय जाता रहै और अपने मनुष्यों को शत्रुवोंके सम्मुख न करे किन्तु आप सम्मुख होके उनको पीछे की ओर करे वह भी महापुण्य है और वह लोग उस उपकार के कारण सदैव उसको नमस्कार करें अथवा संसारके समान युद्ध करें वह पहिले के समान नहीं हैं युद्ध में सेना की चढ़ाइयां होनेपर समान पुरुषों में भी बड़ा अन्तर देखने में आता है अर्थात् कोई सम्मुख होता है कोई नहीं शूर पुरुष स्वर्गमार्ग में वर्तमान होकर शत्रुवों के सामने गिरता है और जो भयभीत है वह भागता है इस कारण प्राण संकट में साथियों को त्याग करे हे तात! ऐसे नीच मनुष्यों को आगे मत करो जो युद्धमें साथियों को छोड़कर कुशलतापूर्वक घरको जायँ जिनके प्रधान इन्द्रदेवता हैं वह देवता उनके कल्याण को करते हैं जो पुरुष साथियों के त्याग से अपने प्राणों की रक्षा चाहता है उसको काष्ठ वा पाषाण आदि से मारे अथवा तृण की अग्नि से भस्म करे और ऐसे क्षत्रियों को पशुवों के समान मारे जो कफ, मूत्र छोड़ता दुःख विलाप करता शय्या पर मरै वह क्षत्रियों का अधर्मरूप विना घायल देहके साथ नाश को पाता है इसके इस कर्मको प्राचीनलोग बुरा कहते हैं हे तात! शूरवीर अभिमान रखनेवाले क्षत्रियों का घर में मरना प्रशंसाके योग्य नहीं होता वह अचेतता दुःखरूपी अधर्म है यह दुःख और महाकष्ट है जो पापी पुरुष विपरीत सुस्त दुर्गन्धित देहयुक्त पुत्र आदि का शोच करता और पुकारता नीरोगों की इच्छा करता है और मृत्यु को भी चाहता है परन्तु वीर अहंकारी लोग ऐसी मृत्यु के योग्य नहीं हैं क्षत्रिय युद्धों में शत्रुवों का नाश करके जातिवालों से घिरा हुआ तीक्ष्ण शस्त्रों से पीड़ित मृत्यु के योग्य है इच्छा

क्रोध से भरा हुआ शूर ही कठिन युद्ध को करता है और शत्रुवों से घायलहुये अंगों को नहीं जानता है वह युद्ध में मरण को पाकर संसार में कीर्तिमान् अपने उत्तम धर्म को प्राप्त करके इन्द्र की समानता को पाता है जीवन का त्यागी शूरपुरुष सब युक्तियों से युद्ध में वर्तमान पीठ को नहीं फेरता है वह इन्द्र की समानता को पहुँचता है और शत्रुवों से घिरा हुआ जहां तहां घायल शूरवीर जो कष्ट को नहीं मानताहै वह अविनाशी लोकों को प्राप्तहोता है॥३२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! मरण को पाके युद्ध करनेवाले मुख न मोड़नेवाले शूरों के कौन लोक होते हैं यह आप वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! मैं इस स्थान पर एक प्राचीन इतिहास कहता हूं जिसमें राजा अम्बरीष और इन्द्र के प्रश्नोत्तर हैं नाभाग के पुत्र राजा अम्बरीष ने बड़ी कठिनता से प्राप्तहोनेवाले स्वर्ग में जाकर इन्द्रके साथ बैठेहुये अपने मन्त्री को और दिव्य प्रकाशवान् ऊपर २ चलनेवाले उत्तम विमान में बैठेहुये अपने सेनापति उस सुदेव की ऋद्धि को दृष्टिगोचर करके आश्चर्ययुक्त होकर इन्द्र से कहा कि मैं सागरान्त सम्पूर्ण पृथ्वी को रीति के अनुसार शिक्षा करके और धर्म की इच्छा से चारों वर्णों के धर्मों में शास्त्र के अनुसार कर्मकर्ता घोर ब्रह्मचर्य गुरुसेवा आदि आचार से वेदों को और धर्म से शुद्ध राजशास्त्र को पढ़कर खाने पीने की वस्तुवों से अतिथियों को और इसीप्रकार श्रद्धापूर्वक पितरों को वेदपाठ की दीक्षा से ऋषियों को और उत्तम यज्ञों से देवताओं को तृप्त करके शास्त्र की विधि से क्षत्रियधर्म में वर्तमान होकर देव को देखता युद्ध में विजय करता था हे देवराज, इन्द्र! प्राचीन समय में यह बड़ा शान्तात्मा सुदेव नाम मेरा सेनापति युद्ध में प्रवीण था यह किस कारणसे मुझसे अधिकार का पानेवाला है इसने न तो मुख्ययज्ञों से पूजन किया और न विधि के अनुसार ब्राह्मण तृप्त किये वह अब मुझ से किस कारण से अधिक है इन्द्र बोले कि हे तात! इस सुदेव का युद्धरूप एक यज्ञ बड़ा हुआ और जो दूसरा क्षत्रिय युद्ध करता है उस का भी यही यज्ञ है अर्थात् जो कवच पहिने शस्त्रधारी सब युद्धकर्ता दीक्षित होकर सेनामुखको पाकर युद्धरूप यज्ञके अधिकार में वर्तमान होते हैं अम्बरीष ने कहा कि यज्ञ में कौन हविष्य और क्या घृत है कौन दक्षिणा है कौन ऋत्विज्

कहा है हे इन्द्र ! यह आप मुझ से कहिये इन्द्र बोले कि इस युद्धयज्ञ में हाथी ऋत्विज्, घोड़े अध्वर्यु, शत्रुवों का मांस हविष्य और रुधिर घृत कहा जाता है उसमें शृगाल, गिद्ध, काकोल पक्षी सदस्य हैं यही यज्ञ के शेष बचे घृत को और हविष्य को भोजन करते हैं और प्रास, तोमरों के समूह, खड्ग, शक्ति, फरसा जोकि प्रकाशित तीक्ष्ण विषों में बुझाये हुये होते हैं वह उस यज्ञ के स्रुच् नाम पात्र हैं वेगयुक्त लम्बे चौड़े तीक्ष्ण परकाया के भेदन करनेवाले सीधे पैने विष में बुझायेहुये जो बाण हैं वही बड़ास्रुवा है युद्ध में हाथी के चमड़े से मढ़ाहुआ हाथीदांत की मूठवाला हाथी की सूंड़ का काटनेवाला खड्ग उस यज्ञ का स्फिग् है प्रकाशवान् निशित लोहमयी तीक्ष्ण परासशक्ति दुधारा खड्ग और फरसों से मारना उस यज्ञ की द्रव्य हैं युद्ध में विनासमय फैलनेवाला कुलीनों की देह से उत्पन्न होनेवाला जो बहुत सा रुधिर शीघ्रता से पृथ्वी पर गिरता है वह वृद्धिकर्ता सब मनोरथों की पूर्ण करनेवाली पूर्णाहुति होती है सेनामुख में काटौ छेदौ यह जो शब्द सुनेजाते हैं उसको सामग ब्राह्मण यज्ञके साममन्त्रों से यमलोक में गाते हैं और शत्रुवोंका सेनामुख उस यज्ञ का हविर्धान अर्थात् साकल्य रखने का पात्र होता है और कवचधारी हाथी घोड़े आदि का जो समूह है वह यज्ञ में श्येनचित्तनाम अग्नि होती है और युद्ध में हज़ारों को मारकर जो कबन्ध उठता है वही खदिर का अष्टकोणवाला यज्ञस्तम्भ कहाजाता है और उस युद्ध में वचन से बुलाये हुये अंकुश से चलाये हुये हाथी वषट्काररूप तलनाद से पुकारेजाते हैं और उस युद्ध में ब्राह्मण का धन चोरी जाने पर प्यारे देह को त्याग कर जाता है यह शब्द जो गाया जाता है वही त्रिसामा नाम दुन्दुभी है और देहरूप स्तम्भ को छोड़कर वह यज्ञ अत्यन्त दक्षिणावाला है जो शूर स्वामी के निमित्त सेनामुख पर पराक्रम करे और भय से मुख न फेरे उसको लोक ऐसे हैं जैसे कि मेरे हैं नीले चर्म से मढ़ेहुये खड्ग परिघ नाम अस्त्रों के समान भुजाओं से जिसकी वेदी रचीगई है उसके भी लोक मेरेही सदृश हैं।जिसको कि किसी सहायक की इच्छा नहीं और सेना के मध्य विजय में वर्तमान है उसके लोक ऐसे हैं जैसे मेरे जिस युद्धकर्ता की रुधिरसमूह रखनेवाली नदी भेरीस्वरूप मेढ़क और कछुवा रखनेवाली और वीरों के हाड़रूप कंकड़वाली अगम्या रुधिर मांसरूपी कीचड़ से भरी खड्ग ढालरूपी प्लव नाम नौकावाली भयानक मरे शिररूप शैवल, शाद्वल

रखनेवाली और मरेहुये घोड़े, हाथी, रथरूप संग्रामवाली पताका और ध्वजारूप वृक्ष बेत रखनेवाली और हाथियों की बहानेवाली रुधिररूप जल से पूर्ण तीर के मनुष्यों को अगम्य मृतक हाथीरूप नक्रवाली परलोक की ओर बहनेवाली कल्याणरूप दुधारा खड्गरूप बड़ी नौका रखनेवाली गिद्ध, कंक समूहरूपी बल प्लवावाली मृतकभक्षियों से सेवित भयभीतों को मूर्च्छा देनेवाली भूमि में जो युद्ध ज़ारी होता है वही उस यज्ञ का अवभृथस्नान है जिस की वेदी शत्रुवों के शिर की बनाई हुई होती है और घोड़े हाथियों के कन्धों से भी संयुक्त होती है उसके लोक ऐसे हैं जैसे कि मेरे, शत्रुवों का सेनामुख जिसका कि स्त्रियों से भरा हुआ महल है ज्ञानियों ने अपनी सेना को उसका हविर्धान अर्थात् साकल्यपात्र कहा और युद्धकर्ता सदस्यों की दक्षिणा है और उत्तर दिशा उसका आग्नीध्र है उस शत्रुरूप स्त्री रखनेवाली सेना में सब लोक वर्तमान हैं जब व्यूह में दोनों ओर से आकाश आगे होता है वही उसकी वेदी इस प्रकारके यज्ञों समेत है और तीनों वेद तीनों अग्नि हैं जो भयभीत मुखमुड़ा युद्धकर्ता शत्रु के हाथ से मारा जाता है वह प्रतिष्ठा से खाली होकर निस्सन्देह नरक को जाता है जिसके रुधिर की आधिक्यता से वेदी डूबजाय और मरे शिर, मांस, हाड़ से पूर्ण होय वह परमगति को पाता है जो युद्धकर्ता सेनापति को मारकर उसकी सवारी पर सवार होता है वह विष्णु के समान चरण उठानेवाला समर्थ युद्धकर्ता बृहस्पतिजी के समान है जो युद्धकर्ता सेनापति या उसके पुत्र को अथवा जो उस सेना में पूजित होय इनमें से किसीको जीता पकड़ लाता है उसके लोक ऐसे हैं जैसे कि मेरे, युद्ध में मरनेवाले शूर को किसी दशा में भी शोच नहीं वह मृतक शोच से रहित शूर होकर सब लोकों में प्रतिष्ठा को पाता है उस मृतक के अन्न, जल, स्नान, सूतक आदि करना नहीं चाहते हैं उसके लोकों को मुझ से सुनो शीघ्रता करनेवाली हजारों श्रेष्ठ अप्सरा उस युद्ध में मृतकहुये शूरवीर के सम्मुख दौड़ती हैं और कहती हैं कि यह हमारा स्वामी होय यही तप का पुण्य और सनातनधर्म है और जो युद्ध को रीतिके अनुसार करे उसके चारो आश्रम हैं वृद्ध, बालक, स्त्री और मुखमोड़नेवाला मारने के योग्य नहीं है जो मुख में तृण रखनेवाला हो और कहे कि मैं तेरा हूं उसको भी मारना नहीं योग्य है मैं जम्भ, वृत्र, बल, पाक, शतमायावी, विरोचन, दुःख से हटाने के योग्य नमुचि, बहुमायावी, शम्बर, विप्रचित्तिदैत्य

आदि सब दानव और प्रह्लाद को युद्ध में मारने के पीछे देवताओं का स्वामी हुआ भीष्मजी बोले कि इन्द्र के इस वचन को सुनके राजा अम्बरीष ने युद्धकर्ताओं की और अपनी सिद्धियों को नेत्रों से देखा ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

निन्नानबेवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिस में राजा प्रतर्दन और मिथिलापुरी के राजा ने युद्ध किया हे युधिष्ठिर ! जैसे युद्ध में यज्ञोपवीतधारी मैथिली राजा जनक ने युद्धकर्ताओं को विजय किया उसको समझो सब तत्त्वों के ज्ञाता मैथिली राजा जनक ने अपने योगबल से युद्धकर्ताओं को स्वर्ग और नरक दिखलाये कि युद्ध में निर्भय शूरों को प्रकाशवान् गन्धर्वों की कन्याओं से पूर्ण सब मनोरथों के पूर करनेवाले अविनाशी लोक हैं उनको देखो और युद्ध में मुख मोड़नेवाले मनुष्यों के यह लोक सम्मुख हैं और सदैव के लिये अपकीर्ति है इससे निस्सन्देह उद्योग करना योग्य है इनको देखकर तर्क से असंयुक्तबुद्धि होकर शत्रुवों को विजय करो और प्रतिष्ठारहित होकर नरक में मत पड़ो शूरों को स्वर्गद्वार में जाने के लिये देह के स्नेह का त्यागनाही मूलकारण है हे शत्रुहन्ता ! उस राजा से इसप्रकार कहेहुये उन युद्धकर्ताओं ने राजा को प्रसन्न करके युद्ध में शत्रुवों को विजय किया इससे ज्ञानी पुरुष को सदैव युद्ध में आगे होना चाहिये हाथियों में रथों को और रथों में अश्वारूढ़ों को और अश्वारूढ़ों के मध्य में कवचधारी और शस्त्रधारी पदातियों को वर्तमान करना चाहिये जो राजा इसप्रकार व्यूह रचता है वह सदैव शत्रुवों को विजय करता है हे युधिष्ठिर ! इससे ऐसा कर्म सदैव करना चाहिये अत्यन्त क्रोधयुक्त सब युद्धकर्ता युद्ध में शुभकर्म को चाहते हैं वह सेनाओं को क्षोभयुक्त करे जैसे कि सागर को मगर दोलायमान करता है और परस्पर में नियत करके व्याकुल युद्धकर्ताओं को प्रसन्न करें और विजय कीहुई पृथ्वी की रक्षा करें परास्तहोनेवालों का पीछा नहीं करे हे राजन् ! फिर लौटआनेवाले और जीवन से निराश होनेवाले युद्धकर्ताओं की चढ़ाई असह्य है इस कारण बहुत पीछा न करे शूरवीर भागे हुवों के ऊपर घात नहीं करते इससे उनका पीछा न करे चलनेवाले जीवों का भोजन स्थिरजीव हैं और दाढ़ रखनेवालों का भोजन बिन दाढ़ रखनेवाले हैं प्यासों का अन्न जल है

और शूर का अन्न नपुंसक है समान पीठ वा पेट और हाथ पैर रखनेवाले भयभीत युद्ध करनेवाले पराजय को पाते हैं इस कारण भय से पीड्यमान युद्धकर्ता दण्डवत् करके फिर हाथ जोड़ के शूरों के सम्मुख वर्तमान होते हैं यह लोक सदैव पुत्र के समान शूरों की भुजाओं में रक्षा कियागया है इस हेतु से शूरवीर सब दशाओं में प्रतिष्ठाके योग्य हैं तीनोंलोकोंमें शूरतासे उत्तम कोई बात वर्तमान नहीं है शूर सबकी रक्षा करताहै और सब शूरही में वर्तमान हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सौवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! विजय की इच्छा करनेवाले राजा लोग धर्म को कुछ पीड़ा देकर भी सेना की चढ़ाई करते हैं वह आप मुझ से कहिये भीष्म जी बोले कि क्षत्रियों का कर्म धर्महीं से वर्तमान है इसीप्रकार दूसरे कहते हैं कि मरण के निश्चय से वर्तमान है और कोई कहते हैं कि अच्छे लोगों के आचार से वर्तमान है इसीप्रकार राजा के भय दिखलाने से भी वर्तमान है अर्थ, धर्म में शुद्ध अर्थवाले उपाय धर्मों को कहूंगा क्योंकि चोरजातिवाले बे मर्याद और नष्ट करनेवाले होते हैं उन चोरों का नाश और सब कर्मों के सुधारने के लिये वेद में कहीहुई युक्ति को कहूंगा उन युक्तियों को मुझ से सुनो हे भरतवंशिन्! दोनों बुद्धि सीधी और टेढ़ी जानने के योग्य हैं ज्ञाता होकर कुटिलों का संग न करे और आनेवालों को जानले शत्रु भेद के द्वारा राजा के पास घूमते हैं राजा उस छल को जानकर शत्रुवों के समान उनको पीड़ा देता है हे कुन्तीनन्दन! हाथी, बैल और अजगरों के चमड़े और सिल्लीबाण तोमर आदि कण्टकनाम वस्तु और सब धातु और कवच और चमड़ा और श्वेत, पीतरंगके वस्त्र और पीतरक्त वर्म और पताका ध्वजा नानाप्रकार के रंगों से रँगी हुई दुधारा खङ्ग, तेजधार फरसा, ढाल यह सब सामान बहुत प्रकार के विचार करने चाहिये युद्ध के योग्य शस्त्र और युद्ध के निश्चय करनेवाले युद्धकर्ता विचार कियेजायँ चैत्र वा मार्गशिर के महीने में सेना की चढ़ाई उत्तम गिनीजाती है तब पृथ्वी पकी खेतीवाली और जल से पूर्ण होती है उस समय न तो अधिक सर्दी और न गर्मी होती है इसकारण उस समय में अथवा शत्रुवों के व्यसन में सेना की चढ़ाई करे शत्रु के पीड़ा देने में यह सेनायोग उत्तम है जल तृण से संयुक्त सीधाचलने के योग्य वह मार्ग प्रशंसा किया

जाता है जिसके इधर उधर के स्थान बुद्धिमान् और वनवासी दूतों के द्वारा अच्छे प्रकार से मालूम होगये हों वन में जाने का ऐसे विचार न करे जैसे कि हिंसक जीवों के भय से मृगगण नहीं जाते इसहेतु विजय की इच्छा करनेवाले राजालोग उन वनवासियों को सेना में भरती करते हैं कुलीन समर्थ पदाती सेना को भी आगे करे सेना का निवासस्थान जलसंयुक्त अगम्य एकही मार्गवाला श्रेष्ठ कहाजाता है इससे सम्मुख आनेवाले शत्रुकी रो होती है आकाश अर्थात् मैदान से वन में निवास करना अधिक लाभकारी है जहां युद्ध में कुशल बहुत से गुणीपुरुष होयँ वहां समीपही सेना का निवासस्थान होना चाहिये वन के निवासस्थान के सम्मुख से सेना का उतरना पदातियों को गुप्त नियत करना फिर समीप आनेवाले शत्रु के ऊपर आघात करना योग्य है जोकि आपत्ति के लिये रक्षा का स्थान हो सप्तर्षियों की ओर पीठ करके पर्वतों के समान निश्चल होकर युद्ध करें इस रीति से शत्रुवों को विजय करें चाहे वे शत्रु कठिनता से भी विजय के योग्य हों जिस ओर की हवा हो और सूर्य इन्द्र जिस दिशा में हों उधरही विजय है हे युधिष्ठिर! युद्ध में इन तीनों में से एक से एक उत्तम है जो युद्ध में कुशल मनुष्य हैं वह कीच, जल, ढेले पुलआदि से रहित सम पृथ्वी को घोड़ों के युद्ध में अच्छा कहते हैं की और गर्त से रहित पृथ्वी रथों के लिये भी उत्तम कही जाती है छोटे वृक्ष औ जल सहित पृथ्वी हाथी की सवारी के युद्ध में श्रेष्ठ समझी जाती है बहुत गढ़ और घने जंगलवाली बांस और बेतों से पूर्ण पहाड़वाली सजल पृथ्वी पदातियों के योग्य होती है हे भरतवंशिन्! बहुत पदाती रखनेवाली सेन दृढ़ होती है और बहुत रथ घोड़े रखनेवाली सेना वर्षाके विना सूखे दिनों उत्तम समझी जाती है बहुत पदाती और हाथी रखनेवाली सेना वर्षाऋतु प्रशंसा के योग्य होती है इन गुणों को अच्छे प्रकार विचारकर देश काल संयुक्त कर न क्षत्रिय आशीर्वाद पानेवाला राजा अच्छे प्रकार विचारकर चल है वह उत्तम चढ़ाई करके सदैव विजय को पाता है सोते हुये पिपासायु शान्तचित्त और युद्ध से पृथक् होनेवालों को नहीं मारे अशस्त्री, रोते हुये, भा हुये, भोजन करनेवाले, युद्धकर्ताओं को भी न मारे इसीप्रकार व्याकुल, अचे घायल, टूटेअंग, शान्तता से पृथक् हुये कर्म का प्रारम्भ करनेवाले, गुप्त या अन्य युक्तियों से तपेहुये और घासआदि के लिये घूमनेवाले डेरों

और पहरादेनेवाले सदैव से घरपै रहनेवाले जोकि द्वारोंपर वर्तमान हों अथवा मन्त्री के द्वारपर जो कोई समूह के स्वामी हैं इन सबको भी कभी न मारे जो युद्धकर्ता शत्रु की सेना को परास्त करते हैं और अपनी सेना को नियतकरते हैं वह समान भोजनपानवाले दूने मासिक करने के योग्य हैं दश २ योद्धाओं में एक २ स्वामी नियत करना योग्य है इसीप्रकार सौ २ युद्धकर्ताओं के ऊपर अधिपति नियत करना चाहिये तदनन्तर आलस्य को दूर करके शूरपुरुष को हज़ार योद्धाओं का नियन्ता बनावे सब बड़े २ अधिकारियों को इकट्ठा होकर यह कहना योग्य है कि हमलोग प्रतिज्ञापूर्वक शपथखाते हैं कि हम विजय के लिये परस्पर में पृथक् होकर युद्ध को त्याग नहीं करेंगे औरजे कोई भयभीत हैं वह यहीं से लौटें जो लोग अपने नियत कियेहुये अधिपतिको युद्ध में मारडालें ऐसे लोग युद्धमें भागे हुये अपने मनुष्यों को नहीं मारें क्योंकि युद्ध में अपनी रक्षा को करता अपने ही पक्ष को मारता है भागजाने में धनका नाश और अपने मरण के साथ अपकीर्ति और अयश है पुरुष के भागने में चित्त के विरोधी दुःखदायी वचन सुनने में आते हैं हमारे शत्रुवों में जो विपरीत दशावाला ओठ, दन्त रखनेवाला सबशस्त्रों को त्यागेहुये शत्रुओं से घिरा हुआ है उसको सदैव धनकी हानि और मरणआदि प्राप्त हो जो युद्ध में मुख फेरते हैं वह नीच मनुष्य हैं वह केवल भीड़ बढ़ाने ही मात्र को हैं अर्थात् उनका जन्म निरर्थक है वह इस लोक, परलोक दोनों लोकों से गये हैं प्रसन्नचित्त शत्रु भागनेवाले के सम्मुख दौड़ते हैं हे तात! विजयी मनुष्य नमस्कार और प्रशंसाओं से प्रसन्नचित्त भागनेवाले शत्रु का पीछा करते हैं युद्ध में वर्तमान शत्रु जिसकी नेकनामी का विध्वंस करते हैं उस दुःखको मारनेसेभी अधिक असह्य जानता हूं विजय को सब धर्म और सुख का मूल जानो भयभीतों की मृत्युघात है उसके सम्मुख शूरपुरुषही जाता है युद्ध में जीवन से निराश स्वर्ग को चाहनेवाले विजय करते या मरते सिद्ध गति को पाते हैं इसप्रकार से शपथ खानेवाले और जीवन से निराश निर्भय वीरपुरुष शत्रु की सेना को मँझाते हैं ढाल, तलवार रखनेवाले पुरुषों की सेना आगेहोय और पीठकी ओर शकटों की भीड़ और स्त्रियां मध्यमें होयँ उस पुर में भी जो वृद्ध मनुष्य आगे बढ़ेहुये हों वह शत्रुवोंके मारनेके निमित्त पदातियों की रक्षा करें जो प्रथमही पराक्रमी और साहसी समझे गये हैं वह आगे को वर्तमान होयँ अन्य मनुष्य उनके पीछे होयँ और युक्ति भयभीतों को भी प्रसन्न करना चाहिये चाहे

वह केवल भीड़ बढ़ानेही के लिये सम्मुख वर्तमान हों थोड़े युद्धकर्ताओं को इकट्ठा करके लड़वावे और बहुतसे युद्धकर्ताओं को इच्छानुसारफहलावे थोड़े योद्धाओं की सेना बहुत से युद्धकर्ताओं के साथ सूचीमुख होय बे मर्याद चढ़ाई या दौ होनेपर बीच अर्थात् मिलाप हो या मिथ्या हो तो दोनों भुजाओं को पकड़क पुकारे कि शत्रुने पराजय पाई पराजय पाई मेरे मित्रों की सेना आई निर्भय होक आघात करो भयानक शब्दों को करते हुये पराक्रमी शत्रुवों को पीड़ादें औ आगे चलनेवाले मनुष्य सिंहनाद और कलकला, क्रकच, गोविषाण, भेरी, मृदंग, पणव, आनक इत्यादि बाजों का शब्द करें ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सेनानीतिनाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकसौएकका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशिन्, पितामह ! कैसा स्वभाव, आचरणरू कवच,शस्त्र रखनेवाले मनुष्य युद्धके योग्य हैं भीष्मजी बोले कि यहां कुल,देश, आचार आदि से प्राप्त होनेवाले शस्त्र और सवारी कही जाती हैं उसीप्रका वीरपुरुष आचरणकर्ता कर्मों में प्रवृत्त होता है गन्धारी, सिन्धी, सौवीरदेशी नखरुप्रास से युद्ध करनेवाले निर्भय और महापराक्रमी होते हैं उन वीरों की सेना सबके पारहोनेवाली है उन्हीं नरजातियों के क्षत्रिय सब शस्त्रों में कुशल और पराक्रमी होते हैं और पूर्वदेशीय हाथियों के युद्ध में प्रवीण माया से लड़नेवाले हैं इसीप्रकार यवन, काम्बोज और मथुरादेशवासी हैं यह भुजाओं के युद्ध में महाप्रबल हैं और दाक्षिणात्य लोग तलवार चलाने में प्रवीण हैं स स्थानों में बहुधा शूर पराक्रमी प्रसिद्ध उत्पन्न होते हैं उनके लक्षण मुझ से सुनो कि जिनके वचन सिंह, शार्दूल समान इसीप्रकार चाल भी इन्हीं के तुल्य कबूतर, सर्प के समान नेत्र रखनेवाले सब शूर और शत्रुवों के मथनेवाले होते हैं मृ के समानस्वर, हाथीके समान उत्तम नेत्रधारी, निरहंकारी, प्रमादी,मुखपर क्रो रखनेवाले, अल्पबुद्धि, किंकिणी और मेघ के समान स्वर कोई २ ऊंटके समान टेढ़ीनोक नाक और जिह्वा रखनेवाले दूरतक पीछा करनेवाले विडाल के समान कुबड़ी देह रखनेवाले मृतकों को खानेवाले सूक्ष्म केश और त्वचा रखनेवा शीघ्रगामी चपलतायुक्त होते हैं वह कठिनता से जीते जाते हैं कितनेही गोह के समान नीची आंखवाले और मृदुप्रकृति घोड़े के समानगति और शब्दवा हैं वह विजयी होते हैं जो अतिदृढ़देह उन्नतस्कन्ध चौड़ी छाती स्थिरस्वभा

होते हैं वह मनुष्य बाजों के बजने से क्रोधयुक्त होते हैं और प्रसन्नचित्त होकर युद्ध करते हैं गम्भीर और निकले हुये पीतवर्ण नकुल के समान नेत्र भृकुटी संयुक्त मुख देहकी प्रीतिरहित शूर ऊंचा ललाट मांसरहित ठोढ़ी रखनेवाले भुजा पर वज्र और उँगलियोंपर चक्र रखनेवाले दुर्बल हाड़ों की मालारूप पुरुष युद्ध के होने में तीव्रता से सेना में प्रवेश करते हैं वह हाथी के समान मतवाले कठिनता से विजय कियेजाते हैं और पिंगलवर्ण देदीप्त केशान्त मोटेगाल ठोढ़ी मुख ऊंचे कन्धे मोटीगर्दन विकटरूप स्थूलदेह ऊंचेसुन्दर सुग्रीवनाम घोड़े और गरुड़ की समान उछलनेवाले देह शिर टेढ़ा वृषभ के समान मुख और दांत उग्रस्वर क्रोधयुक्त युद्धमें शब्दकर्ता अधर्मी घोर भयंकररूप होते हैं यह भी देह की प्रीतिरहित सेना के आगे करने के योग्य हैं वह अपनी इच्छा से विरुद्ध जब देखते हैं तब शत्रुवों को मारते हैं वह अधर्मी दुराचारी हैं इनको जीतना मीठेवचनों से होता है यह राजा के ऊपर भी इसीप्रकार क्रोध करते हैं ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

एकसौदोका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम ! विजयी सेना की कौन सी सूरत उत्तम होती है भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! विजयी सेना की जो उत्तम सूरत है वह मैं कहता हूं कि प्रथम दैव के क्रोध होने और समय की लौटपौटसे उसके जाननेवाले पुरुष ज्ञानरूप दिव्य नेत्रोंसे उसको देखते हैं उसके ज्ञाता पुरोहित आदिपुरुष इस स्थानपर प्रायश्चित्त बुद्धि को और जप, होम मंगलों को करते हैं और शत्रुवों को मारते हैं हे युधिष्ठिर ! जिस सेना में युद्धकर्ता और सवारियां बहुत साहसी होती हैं निश्चय करके उस सेनाको विजय प्राप्त होती है जिसके पीछे की ओर वायु बहती है इसीप्रकार इन्द्रधनुष सूर्य की किरणें और बादल पीछे की ओर होते हैं और गीदड़, काग, गिद्ध सब अनुकूल होकर सेनाका पूजन करते हैं तब उत्तम सिद्धि होती है और जिससमय ऊपर की ओर प्रकाशवती ज्वाला रखनेवाली प्रदक्षिणावर्त शिखा रखनेवाली निर्धूम अग्नि जिसमें आहुतियों की पवित्र सुगन्धि होती है वह होनहार विजय का लक्षण है और जहां गम्भीर शब्द और बड़े शब्दवाले शंख भेरी आदि बाजे बजते हैं और युद्धाकांक्षी लोग अनुकूल होते हैं यह भी होनेवाली विजय का रूप है यात्रा की इच्छासंयुक्त युद्धाभिलाषी लोगों के चलने के समय उनके

पीछे और बायें मंगली पशु होते हैं और वह दाहिनी ओर आते दृष्टिपड़े तो अवश्य युद्धकर्ताओं की सिद्धिहोती है और जो आगेआते दृष्टिपड़े तो युद्ध से निषेध करना सूचन करते हैं और जब हंस, क्रौञ्च, शतपत्र, चाव नाम पक्षी मांगलिक शब्दों को करते हैं और युद्धकर्तालोग प्रसन्न और बलवान् होते हैं तब होनेवाली विजय का लक्षण जानो और जिनकी सेना के योद्धाओं के प्रकाशवान् अस्त्र, शस्त्र, यन्त्र, कवच, ध्वजा और मुख ऐसे प्रकाशित और प्रफुल्लितहों जिनको कठिनता से कोई देखसके वह भी अवश्य शत्रुवों को विजय करते हैं और जिनके युद्धकर्ता वृद्धों की सेवाकरनेवाले निरहंकारी परस्परमें मित्र भीतर बाहरसे एकसा भाव रखनेवाले हैं यह भी विजय होने का लक्षण है और जहां चित्तरोचक शब्द, स्पर्श, गन्ध घूमते हैं और युद्धकर्ताओं में धैर्यता वर्तमान होती है वह विजय का मुख है प्रवेशकरनेवाले युद्धकर्ता के बायें ओर का काग शुभदायी होता है और प्रवेश करनेकी इच्छाकरनेवाले को दक्षिणकाग फलदायी है औरपीछे से मनोरथको सिद्ध करता है और आगे होने से निषेध करता है हे युधिष्ठिर! चतुरंगिणी सेना को पारितोषिक आदि से प्रसन्न करके प्रथम तो सामनाम नीति से ही काम करो फिर युद्ध का उद्योग करो यह साधारण विजय है कि जिसका नाम युद्ध है और युद्ध में जो व्यूहकी इच्छासे विजय है उसके सिद्धान्त कोईश्वर जानता है पराजय होनेवाली बड़ीसेना कठिनता से रोकने योग्य हैं जैसे कि जल का महावेग और भयभीत मृग रोकने योग्य नहीं होता बाजे पराक्रमी रुरुनाम मृगसमूह के समान बड़ी सेना परास्त हुई सुनकर बुद्धिमान्युद्धकर्ता भी पृथक्होजाते हैं एकएक को जाननेवाले अतिप्रसन्नचित्तप्राण के त्यागी युद्ध में श्रेष्ठ,निश्चय करनेवाले पचासशूर भी शत्रुकी सेना को मारते हैं इस पृथ्वीपर निश्चययुक्त पूजित कुलीन मिलेहुये अठारह युद्धकर्ता भी अच्छे प्रकार शत्रु को विजय करते हैं समर्थ होनेपर किसी दशा में भी युद्ध को स्वीकार न करनाचाहिये जो पुरुष साम, दाम, भेद, नीति को करते हैं उनका युद्ध उत्तम कहाजाता है सेना के देखने से ही भयभीतों को महादुःख होता है समीप आनेवाले युद्ध को जानकर जो सम्मुखता को जाते हैं उन युद्धकर्ताओं के विजय के अंग फड़कते हैं उससमय स्थावर, जंगम जीवों समेत देशभर पीड्यमान होता है और अस्त्रों की उष्णता से मनुष्यों के देहकी मज्जा पीड़ा पाती है वारंवार उन शत्रुवों के पास युद्धसंयुक्त साम का पैग़ाम

पहुँचाना चाहिये शत्रुवों से अत्यन्त पीड्यमान होकर वह लोग सब ओर से सन्धि को चाहते हैं और शत्रुवों के जो मित्र हैं उनके भेद के लिये दूतलोगों को भेजे और जो राजा अपने से बड़ा है उसके साथ सन्धिही करना योग्य कहा जाता है उसकी इसप्रकार की पीड़ा दूसरी रीति से करनी असम्भव हैं जैसे कि शत्रु को सब ओरसे पीड़ा दीजाती है निश्चय है कि साधुपुरुषों को क्षमा और धैर्यता प्राप्तहोती है और असाधुपुरुषों को कभी नहीं होती इससे हे राजन्! तुम धैर्य और अधैर्यता के प्रयोजन को समझो कि विजय करके धैर्यता करनेवाले राजा का यश बड़ीवृद्धि को पाता है और महाअपराधमें भी शत्रुलोग विश्वास करते हैं शम्बरनाम असुर शत्रु को पीड़ा देकर क्षमा को अच्छा जानता था क्योंकि जो लकड़ी नहीं तपाई गई है वह फिर मुख्यदशा को प्राप्त होती है आचार्य लोग इसकी प्रशंसा नहीं करते हैं और यह साधुपुरुषों का उपदेश भी नहीं है बल्कि विना क्रोध और नाश के शत्रु अपने पुत्र केसमान शिक्षा के योग्य है हे युधिष्ठिर! उग्ररूप राजा सबका शत्रु होता है और मृदुस्वभाव को भी अपमान करते हैं इस कारण दोनों को काम में लावे और घात की इच्छा करनेवाला घात करता हुआ भी चित्तरोचक वचन कहे और घात करके शोचता और रोता हुआ कृपा करके कहै कि यह मेरा अभीष्ट नहीं है जो तुम युद्ध में मेरे मनुष्यों से मारे गये और वारंवार समझाये हुये यह मेरे लोग मेरे कहने को नहीं करते हैं बड़े कष्ट की बात है क्योंकि जीवन की इच्छा करनेवाला ऐसा योद्धा मारने के अयोग्य है युद्ध में मुख न मोड़नेवाले श्रेष्ठ पुरुष बहुत कम होते हैं और जिसके हाथ से यह युद्ध में मारागया है उसने मेरी इच्छा के विरुद्ध किया इन वचनों को कहकर मारनेवालों को एकान्त में पूजन करे मारनेवाले और मृतक पुरुषों का अपराधी जो अप्रिय करे उस दशा में मनुष्यों को स्वाधीन करना चाहता हुआ भुजा को पकड़कर रोदन करे इसप्रकार सब दशाओं में मीठेवचन बोले धर्मज्ञ और निर्भय राजा मनुष्यों का प्यारा होता है उसीमें सब जीव विश्वास को करते हैं वह विश्वासी और राजसिंहासन पर वर्तमान राजा नियत समय तक पृथ्वी के भोगने को समर्थ होता है इससे पृथ्वी के भोगने की इच्छा करनेवाला राजा छलरहित होकर सब जीवों को अपना विश्वास दिलावे और सब ओर से अच्छी रक्षा करे ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

एकसौतीनका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! पृथ्वी का राजा प्रारम्भ में मृदु कठिन और महापक्षवाले राजा के साथ कैसे बर्ताव करे उसको मुझ से कहो भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! इस स्थान पर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें बृहस्पति जी और इन्द्र का प्रश्नोत्तर है शत्रु के वीरों को मारनेवाले देवताओं के इन्द्र ने हाथ जोड़कर बृहस्पतिजी से कहा कि हे ब्रह्मन् ! सावधान राजा शत्रुवों के साथ किस प्रकार से बर्ताव करे मैं उनको विना पीड़ा दिये कैसे स्वाधीन करूं दोनों सेनाओं के परस्पर युद्ध होने से साधारण विजय होती है प्रतापवती प्रकाशरूपा लक्ष्मी मुझको किस कर्म के करने से त्याग नहीं करे यह सुनकर धर्म, अर्थ, काम के जाननेवाले बृहस्पति जी ने उत्तर दिया कि शत्रु को भी युद्ध से स्वाधीन न करना चाहिये यह वह अज्ञानी लोग करते हैं जो क्रोधी और अधैर्यवान् हैं मारनेवाले राजा को शत्रु को सावधान करना अयोग्य है क्रोध के भय प्रसन्नता को आत्मा के बीच में अन्तर्गत करके विश्वासरहित विश्वासी के समान शत्रु का सेवन करे सदैव प्यारे वचन कहे और कोई अप्रिय बात न करे निरर्थक शत्रुता से अलग रहे और अप्रिय वचनों को ऐसे त्याग करे जैसे कि बहेलिया पक्षियों की सी बोली बोलकर पक्षियों को आधीन करता है हे इन्द्र ! इसीप्रकार कर्मकर्ता राजा शत्रुवों को आधीन करके मारे क्योंकि शत्रुवों को परास्त करके सुख से कोई नहीं सोता है दुष्टात्मा शत्रु ऐसे जागता रहता है जैसे उठी हुई संकर नाम अग्नि थोड़ी विजय के लिये युद्ध न करना चाहिये विश्वास देकर मनोरथ सिद्ध करनेवाला राजा शत्रु को आधीन करके और मन्त्र जाननेवाले महात्मा मन्त्रियों से सलाह करके अपमानयुक्त हृदय से अजय फिर समय पाकर राज्य के चलायमान होनेपर इस पर घात करे और काम पूरे करनेवाले मनुष्यों के द्वारा सेना को रक्षक बनावे आदि अन्त मध्य का जाननेवाला शत्रुता को गुप्त रक्खे और सेना की संख्या का जाननेवाला उसकी सेनाओं को विरुद्ध करे इसी प्रकार भेद दान और विष आदि औषधोंसे प्रयोजन को सिद्ध करे और शत्रुवों से सन्धि करना न चाहे और बहुत काल तक मौक़े मौक़े को देखे फिर शत्रुवों को मारे और काल की इच्छा करनेवाला समय व्यतीत करे जिससे कि शत्रु विश्वासयुक्त हों शत्रुवों को शीघ्र न मारे विजय में सुहृद् देखने के योग्य है

वह चित्तके कांटे को नहीं उखाड़ता है और वचनों से घाव नहीं उत्पन्न करता वह समय पर वर्तमान होने से घात करता है हे देवेन्द्र ! मारने की इच्छा करनेवाले पुरुष को शत्रुवों के विषय में फिर समय नहीं मिलता है जो समय के इच्छावान् पुरुष को समयही उल्लंघन करे फिर वह समय उस कर्म करने के इच्छावान् पुरुष को कठिनता से मिलता है साधुवों के किये हुये कर्म को अंगीकार करता पराक्रम को प्राप्त करे और वे समय मित्र को प्राप्त करे और प्राप्त होने पर पीड़ा न दे कर्मकर्ता राजा काम, क्रोध और अहंकार को त्याग करे वारंवार शत्रुवों के दोषों की इच्छा करे और हे इन्द्र ! दण्ड में मृदुता, सुस्ती, भूल और अच्छेप्रकार से नियत की हुई माया मूर्ख अज्ञानी को पीड़ा देती है इन चारों को दूर करके छल से रहित विचार न करता शत्रुवों के ऊपर घात करने को समर्थ होता है जो एक मन्त्री गुप्त करने के योग्य हो उसी से मन्त्र कहना योग्य है मन्त्रीलोग गुप्त बात को चित्त में रखते हैं और परस्पर में सुनाते भी हैं पहिला मन्त्री राज्य के गुप्त विचार में असमर्थ है यह विचारकर फिर दूसरे मन्त्रियों के साथ सलाह करे जो शत्रु दूर हैं उनपर पुरोहित के द्वारा ब्रह्मदण्ड का प्रयोग करावे और जो सम्मुख आवे उसपर चतुरंगिणी सेना चढ़ावे राजा जब तब समयपर उस उस शत्रु के ऊपर सामआदि युक्तियों को बर्ते प्रथम भेद को फिर इसीप्रकार शान्तता को भी संयुक्त करे समय पर बलवान् शत्रु का आज्ञावर्ती होजाय सावधान कर्म में प्रवृत्त आपही उस असावधान के घात को करे प्रणाम, दान, मान समेत मीठेवचनों से वार्तालाप करता हुआ शत्रु का सेवन करे और उसको कभी शंकायुक्त न करे राजा शंकावान् शत्रुवों के स्थानों को सदैव त्याग करे अर्थात् उनपर विश्वास न करे वह अप्रतिष्ठित शत्रु इस संसार में सावधान रहते हैं हे देवताओं में श्रेष्ठ ! इससे अधिक उत्तम कोई कठिन कर्म नहीं है जैसे कि व्याकुलचित्त पुरुषों का ऐश्वर्य होता है इसी प्रकार नाना प्रकार के स्वभाव रखनेवालों का भी ऐश्वर्य कहाजाता है इससे युक्ति में प्रवृत्त होकर उद्योग करता है परन्तु वह मित्र और शत्रु को विचार ले मनुष्य मृदुचित्त राजा का भी अपमान करते हैं और कठोरप्रकृतिवाले से व्याकुल और भयभीत होते हैं तुम कठोरप्रकृति मत हो और अत्यन्त मृदु भी न हो अर्थात् कठोर मृदु दोनों समय २ पर होना योग्य है जैसे सब प्रकार से पूर्ण अमोघ जल के किनारे पर नगर को छिद्र के द्वारा सदैव पीड़ा है उसी

प्रकार असावधान राजा को भी पीड़ा होती है हे इन्द्र ! एक साथ बहुत से शत्रुवों के सम्मुख युद्ध न करे साम, दाम, दण्ड, भेद के द्वारा उनमें से हरएक को आधीन करके शेष बचे हुये शत्रुवों के साथ उत्तमयुक्ति करे और जो वह बुद्धिमान् राजा समर्थ नहीं होता है उसदशा में सब युक्तियों को प्रकट करे जब कि बड़ी सेना, घोड़े, हाथी, रथ, पैदलों से व्याप्त बहुत से यन्त्रों की रखनेवाली प्रीतियुक्त छह अंग रखनेवाली होय और जब शत्रु से अधिक अपनी बहुत प्रकार की वृद्धि माने तबप्रकट होकर बे विचारे चोरोंपर घात करे क्योंकि पराक्रमी शत्रुवों के ऊपर सदैव सामकरना प्रशंसा के योग्य नहीं है न मृदुता न सेना की चढ़ाई न खेती का नाश न विष से जल आदि को दूषित करना और फिर स्वभाव से विचारना भी नहीं अर्थात् कपटरूप दण्डही उत्तम है नाना प्रकार की माया और उस माया से परस्पर में दूसरे शत्रुवों की चढ़ाई कराना और छल को करे और सेना की चढ़ाई से अपनी बदनामी न करे कार्यकर्ता मनुष्यों के द्वारा कार्य में प्रसक्तचित्त पुरुषों को पुर और देशों में भ्रमण करावे उन पुरों में बुद्धि के अनुसार नियत की हुई नीति को संयुक्त करते हुये राजा लोग उनमें जाकर वहां के सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को विजय करते हैं हे इन्द्र ! राजा लोग अपने मन्त्रियों को गुप्त धन देकर और प्रत्यक्ष भोगों को छीनकर और यह बात प्रसिद्ध करके कि मेरे दुष्ट मन्त्री मुझको छोड़कर अपने दोषों से दूसरे राजाओं में संयुक्त हुये फिर उनको पुर और देशों में नियत करते हैं उसी प्रकार दूसरे शास्त्रज्ञ गुणी सुन्दर शिक्षित भाषा और प्रबन्ध रचना में प्रवीण पण्डितों के द्वारा शास्त्र की रीतियों के अनुसार मारनेवाले देवता को पुरों में स्थापन करे इन्द्र बोले कि हे ब्राह्मणों में उत्तम ! दुष्ट के कौन २ चिह्न होते हैं और कैसे दुष्ट को जाने यह आप मुझसे वर्णन कीजिये बृहस्पतिजी बोले कि जो मनुष्य पीछे दोषों को कहता है और अच्छे गुणों में दोष लगाता है और दूसरे की प्रशंसा में मौन होकर मुख फेरता है मौन होनेपर भी उसको दुष्ट जानना चाहिये जो उस मौन होने में कोई कारण भी नहीं होता है वारंवार श्वास लेना, ओठों का काटना, शिर का हिलाना और वारंवार मिलाप को करता है और शत्रु के समान बातें करता है और स्वीकार किये हुये कर्म को पीछे नहीं करता है और देखी हुई बात को नाहीं करता है और अलग होकर कहता है तब जानना चाहिये कि अब यह अनुकूल नहीं है अधिकतर आसन शयन और सवारी में उसके भाव देखने के योग्य हैं मि

के पीड्यमान होने में पीड़ित होना और प्रीति करना यही मित्र का लक्षण है उसके विपरीत शत्रु जानने के योग्य है क्योंकि वह शत्रु के चिह्न हैं हे देवेन्द्र ! इन कहे हुये दुष्टपुरुषों का स्वभाव बड़ा बलवान् है इसे तुम जानो यह दुष्टों का विज्ञान तुमसे कहा इससे तुम शास्त्र के तत्त्वार्थ को समझकर बुद्धि के अनुसार कर्म करो भीष्मजी बोले कि शत्रु के नाश करने में प्रीतिचित्त उस इन्द्र ने बृहस्पतिजी के इस सत्यवचन को वैसेही किया और समयपर विजय के निमित्त जाकर शत्रुवों को परास्त किया ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

एकसौचारका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि मन्त्रियों के हाथ से पीड्यमान खज़ाने और सेना से रहित धार्मिकराजा अर्थोंको न पाकर सुखको चाहता कैसे कर्मकरे भीष्मजी बोले कि इसस्थान पर राजा क्षेमदर्शी का इतिहास तुझसे कहता हूं उसको समझो प्राचीन समय में सेना से रहित राजकुमार राजा क्षेमदर्शी कालकवृक्षीय मुनि के पास गया और कष्टरूप होकर राजा ने उससे पूछा हे ब्रह्मदेव ! अर्थ में भाग पाने योग्य वारंवार उद्योग करनेवाला मुझसा पुरुष राज्य को न पाकर क्या करने के योग्य है चोरी, दूसरे की शरण, नीच आचार और मरण के सिवाय क्याकरे इसको आप मुझसे कहिये तुम से धर्मज्ञ और सर्वज्ञ पुरुषों की शरण में जाकर मनुष्य प्रीति और शोकको त्याग ज्ञानरूप धन को पाकर इच्छा से वैराग्य को पाता है और वैराग्यवान् होकर सुखपूर्वक वृद्धि को पाता है जिनका सुख धन आदि के आधीन है मैं उनको शोचता हूं स्वप्न के समान मेरे बहुतसे अर्थ नष्ट होगये जो बड़े अर्थों को त्याग करते हैं वह बड़े कर्मकर्ता हैं हमसरीखे भी असत्पुरुष उनके करने को समर्थ नहीं होते सो हे ब्राह्मण ! मुझ सरीखे दुःखी पीड्यमान लक्ष्मीरहित पुरुष को जो यहां दूसरा सुख है उसको वर्णन करो इस बात को सुनकर कालकवृक्षीय मुनि ने राजा क्षेमदर्शी को उत्तर दिया कि तुम विज्ञानी को प्रथमही यह बुद्धि करनी चाहिये कि यह और मैं और जो कुछ मेरा है वह सब नाशवान् है तुम जो मानतेहो कि यह कुछ है सो कुछ भी नहीं है इसको जानो कष्टरूप आपत्ति को प्राप्त होकर ज्ञानीपुरुष इसप्रकार पीड्यमान नहीं होता है जो भूत है वह सब भविष्यत्काल में नहीं है इसप्रकार जानने के योग्य बातों को जाननेवाले तुम अधर्मों से बचोगे प्राचीन राजाओं के समूह में

जो कुछ सम्पत्ति थी और जो पहिलेही पहिले राजा के पास हुई वह सब तेरी नहीं है उसको जानकर कौन दुःखी होगा यह होकर नहीं होता न होकर होगा शोक में धन के लानेकी सामर्थ्य नहीं है इससे कभी शोक न करे हे राजन्! अब तेरा पिता और पितामह कहां है अब तुम उनको नहीं देखते न वह तुम को देखते हैं तुम अपनी नष्टता को देखके उनको क्या शोचते हो बुद्धिसे जानलो कि अवश्य मरेंगे और मैं तुम और तुम्हारे मित्र और शत्रु सब अवश्य मरेंगे और सबका नाश होगा जो बीस या तीस वर्षकी अवस्थाके हैं वह सौवर्षसे पहिलेही मरजायँगे जो पुरुष बहुत से धन से भी पृथक् न होसके ऐसी दशा में मेरा वह धन नहीं है इस प्रकार उसको मानकर अपने अभीष्टको करे और जो प्राप्त नहीं हुआहै उसको भी जाने कि यह मेरा नहीं है और जो हाथसे जातारहा हो उसको भी अपना न जानो और जो प्रारब्ध को बलवान् मानते हैं उनको पण्डित समझो वही सत्पुरुषों के आश्रयस्थान हैं वह अन्नरहित भी जीते हैं और जो राज्य पर शासन करता है वह भी जीता है बुद्धि और उद्योगसंयुक्त मनुष्य तेरे समान और तुझसे अधिक भी हैं वह तेरे समान शोच नहीं करते हैं इस हेतु भी शोचको त्यागो क्या तुम बुद्धि और उद्योगों के द्वारा इन मनुष्यों से उत्तम अथवा समान हो राजा बोले हे ब्राह्मण! वह सब राज्य विना उद्योग के प्राप्त हुआ महाकाल से हरण कियाजाता है यह मैं शोचता हूं हे तपोधन! जीविका का हेतु प्राप्त होने से मैं जीवन करता हुआ मानो नदी से हरे हुये उस राज्य के इस शोकरूपी फल को देखता हूं मुनि बोले कि हे क्षेमदर्शिन्! तुम उसीप्रकार के होजावो जो भूत और भविष्यत् के यथार्थ को विना शोचे प्राप्तहोनेवाले अर्थों को चाहते हैं और अप्राप्त अर्थों को कभी नहीं चाहते हैं और प्रत्यक्ष को अनुभव करते तुम अप्राप्त अर्थों को मत शोचो हे कौशल, राजन्! जिसप्रकार प्राप्तहोनेवाले योग्य अर्थों से लोग प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार तुम भी आनन्दित होते हो क्या लक्ष्मी से रहित तुम अपने शुद्धस्वभाव से शोच नहीं करते हो पूर्व कर्मों से अभागी, दुर्बुद्धि सदैव ईश्वर की निन्दा करता है और मनोरथ पूर्ण करनेवाले पुरुषों से ईर्षा करता है और दूसरे धनवान् मनुष्यों को भी नीच और नालायक़ मानता है इसीहेतु से यह फिर दुःख में प्रवृत्त होता है हे क्षेमदर्शिन्! आये को पुरुष माननेवाले मनुष्य ईर्षा और अहंकार में डूबते हैं सो तुम उनके समान ईर्षावान् मत हो जो लक्ष्मी दूसरे के पास है और तेरे पास नहीं है उसको तुम क्षमा करो

बुद्धिमान् पुरुष सदैव दूसरे के स्थानपर अर्थात् शत्रुवों के पास भी सत्यलक्ष्मी को भोगते हैं सत्यलक्ष्मी भी शत्रुवों के ही पास से प्राप्त होती है योगधर्म के जाननेवाले धर्मचारी पण्डित मनुष्य लक्ष्मी और पुत्र पौत्र आदि को दूर करते हैं दूसरी प्रकृति के मनुष्य कर्म और साधन की इच्छा से नवीन कर्म के प्रारम्भ करनेवाले पुरुष को देखकर और उसको महाकष्ट से प्राप्तहोनेवाला मानकर त्यागकरते हैं सो तुम ज्ञानीरूप होके इच्छा करने के अयोग्य दूसरे के आधीन वर्तमान नाशवान् अर्थों को चाहते हुये दुःख से विलाप करते हो ऐसी बुद्धि के चाहनेवाले तुम उनका त्यागकरो क्योंकि अनर्थ वस्तु अर्थरूप से और अर्थ अनर्थरूप से देखने में आनेवाली हैं धन का नाश कितनेही मनुष्य के मनोरथ सिद्ध होने के लिये होता है दूसरा पुरुष उसको अत्यन्त आनन्द मानकर लक्ष्मी को चाहता है कोई लक्ष्मी से क्रीड़ा करता हुआ दूसरे कल्याण को नहीं मानता है इसप्रकार से उस इच्छावान् का प्रारम्भकर्म नष्ट होता है और जो कष्टसाध्य प्रयोजन चित्त से नाश को प्राप्त होता है तब अर्थ से रहित होकर प्रारम्भ करनेवाला मनुष्य वैराग्य को पाता है कल्याणरूप कुलवान् कोई पुरुष धर्म को प्राप्त होकर परलोक के सुख को चाहते हैं वह लौकिक धर्म से वैराग्य पाते हैं और कोई मनुष्य धन के लोभ में भरे हुये जीवन को त्याग करते हैं वह पुरुष धन के प्रयोजन के सिवाय जीवन को नहीं मानते हैं उन्हों की कृपणता और निर्बुद्धिता को देखो कि जीवन को नाशवान् भी जानकर मोह से अर्थदृष्टि में पड़े हुये हैं नाशहोनेवाले, धनसमूह के रखनेवाले, मृत्युपानेवाले और अन्त में वियोग होनेवाले संयोग के होनेपर कौन चित्तको लगावे हे राजन्! पुरुष धनको अथवा धन पुरुषको अवश्य त्याग करता है इससे कौन बुद्धिमान् दुःखी होगा दूसरों के भी सुहृद्जन और सबधन नष्ट होजाते हैं हे राजन्! बुद्धि से मनुष्यों की और अपनी आपत्ति को जानो इन्द्रियों को रोको चित्त को थांभो वचनों को स्वाधीन करो इन निर्बल शत्रुरूप केवल देखने ही मात्र को उत्पन्न होनेवाले अर्थों में निषेध करनेवाला वर्तमान नहीं है देशकाल से पृथक् अर्थों के जानने से बड़े ज्ञान से तृप्त तुझसा शूरपुरुष पीछे शोच नहीं करता है चपलतारहित मृदुस्वभाव जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ निश्चयपूर्वक ब्रह्मचर्य में प्रवृत्त थोड़े धन को चाहता हुआ शोच नहीं करता तुम निर्विवेक और पापरूप निर्दयवृत्ति दोषों से भरे हुये नपुंसकों के योग्य कापाली वृत्ति के प्राप्तकरने को योग्य

नहीं हो तू वाग्जित् चित्त को जीतनेवाला सब जीवोंपर दयावान् महावन में मूलफलोंको भोजनकरके अकेला होकर क्रीड़ाकर पण्डितका यह कर्म ईषादण्ड अर्थात् हलकी लकड़ी के समान एकाकी वन में क्रीड़ाकरनेवाले दन्ती हाथी के समान है वह वन में ऐसे तृप्त नहीं होता जैसे कल्लोलवान् महाह्रद आपही स्थिर होता है मैं इसी दशावाले पुरुष के जीवनको सुखरूप देखता हूं हे राजन्! धनकी प्राप्ति न होने और दैव के आधीन होने पर मन्त्री से रहित राजा का आप क्या कल्याण मानते हो ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुरुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

एकसौपांचका अध्याय ॥

मुनि बोले कि हे क्षत्रिय! तुम जो अपनी जाति में कुछ वीरता देखते हो उस नीति को राज्य मिलने के लिये तुम से कहता हूं तुम उसके करने में समर्थ होकर कर्म भी करोगे उसको आद्योपान्त सुनो मैं कारण समेत कहूंगा जो इस कर्मको करोगे तो बड़े अर्थवाले राज्य और राजमन्त्रों सहित महालक्ष्मीको पावोगे जो आपको अभीष्ट होय तो कहूं राजा बोला कि हे भगवन्! आप नीति को कहिये मैं वरिता में प्रवृत्त हूं अब आपके साथ यह मेरा मिलाप सफल हो मुनि बोले कि कपट, काम, क्रोध, भय को त्याग हाथ जोड़कर शत्रुवों को भी सेवन करो उनको बड़ी सावधानी और पवित्र कर्मों से आधीन करो सत्यप्रतिज्ञ राजा मासिक के द्वारा धन तुझको देने के योग्य हैं तुम सबजीवों में विश्वासपात्र और उसकी भुजारूप होगे तदनन्तर तुम बड़े उत्साहयुक्त व्यसनों से रहित पवित्र सहायकों को पावोगे अपने शास्त्र का जाननेवाला, चित्त का जीतनेवाला, जितेन्द्रिय राजा अपने को दुःख से रहित करता है और प्रजाको प्रसन्न करता है उस धैर्यवान् श्रीमान् राजा से सत्कार पानेवाले तुम सब जीवों में विश्वासपात्र और उस राजा की बड़ी भुजारूप होकर सुहृद्गणों को प्राप्त होकर श्रेष्ठ मन्त्रियों से सलाह करके बीच के राजाओं को शत्रुओं से प्रतिकूल करके बेलपत्र से बेलपत्र भेदन करो अथवा दूसरों से सलाह करके इस राजा जनक की सेना को घात करावो और जो सुन्दर स्वभाववाली अलभ्य स्त्री, वस्त्र, शय्या, आसन, सवारी और बड़े मोल के स्थान, पशु, पक्षी, रस, गन्ध, फल आदि हैं उनमें उसको प्रवृत्त करो जिस्से कि शत्रु की नष्टता होय और जो निषेधित और अनिषेधित वस्तु हैं उनको नीतिज्ञ पुरुष शत्रु को

कभी न जनावे हे राजन्! तुम शत्रु के देश में क्रीड़ा करो कातामृग और काग की युक्तियों से शत्रुओं में मित्रभाव को करो और पराक्रमियों के साथ उसका विरोध करवावो उद्यान और बड़े मोल के शयन आसन आदि को तैयार करावो और भोगों के आनन्द के द्वारा इसके खज़ानों को खाली करावो एक गोदान करने की शिक्षा करो और यज्ञके करने के लिये ब्राह्मणों का पूजन करो वह ब्राह्मण स्वस्तिवाचन आदि से तेरा उपकार करेंगे और उस शत्रुको भेड़िये के समान भोगेंगे निस्सन्देह पुण्यशील मनुष्य परमगति को पाता है और स्वर्ग में पवित्रतम स्थानको पाताहै हे कौशल, राजन्! खज़ाने के खाली होनेसे मनुष्य शत्रु के आधीन होता है धर्म, अधर्म दोनों में प्रवृत्त पुरुष का खज़ाना जोकि फल और अर्थ का मूलहै नाश को पाताहै शत्रु के सम्मुख श्रेष्ठ मनुष्यके कर्मको न कहो किन्तु इसके समक्ष में दैव की प्रशंसा करो निस्सन्देह दैव का माननेवाला अर्थात् उद्योग न करनेवाला शीघ्र नष्ट होताहै और शत्रु को विश्वजित् यज्ञ कराके धनसे खाली करावो फिर पीड्यमान होकर उसके महावन को जानेपर तुम मनोरथ को सिद्ध करोगे योगधर्म जाननेवाले पवित्र किसी आचार्य को इसके सम्मुख करो जो वह त्यागकर संन्यासधर्म को प्राप्त करे तो सब शत्रुओं की मारनेवली सिद्ध औषधोंके योग से उसके हाथी, घोड़े और मनुष्योंको मारो यह बात महाकपटी, छली, बुद्धिमान् किसी दूसरे मनुष्य से करानी योग्य है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

एकसौछहका अध्याय ॥

राजा बोला कि हे ब्राह्मण! मैं छलकपटसे जीवन नहीं चाहता हूं मैं अधर्म युक्त बड़े अर्थों को भी नहीं चाहता हे भगवन्! मैंने पहिलेही इसको त्याग किया है जिस कर्म से मुझ में कोई सन्देह न करें और सबकी वृद्धि होय उसी वृत्ति से जीवने की इच्छा करता हूं इसके विपरीत आपको भी कहना अयोग्य है मुनि बोले कि हेराजन्! तुम इस गुण से संयुक्त हो जैसा कि तुम कहते हो हे सर्वदर्शिन्! तुम स्वभाव और बुद्धि से संयुक्त हो मैं तुम दोनों शत्रु मित्रों के प्रयोजन में उद्योग करूंगा तेरे और उसके मिलाप को ऐसा करूंगा जोकि सदैव वर्तमान और अविनाशी होगा इसप्रकार के दयावान्, कुलवान्, बहुत शास्त्रों के जाननेवाले, राजनीति के ज्ञाताको कौन राजा मन्त्री न करे और जोकि

तुम राज्य से भ्रष्ट कियेगये और बड़े२ व्यसनोंमें प्रवृत्त हुये हे क्षत्रिय, दयावान्! तुम श्रेष्ठचलन से जीवन करना चाहते हो हे तात! वह सत्यवादी राजा जनक मेरे घर में आवैगा तब मैं उसको आज्ञा दूंगा वह निस्सन्देह उसको करेगा फिर मुनि ने राजा जनक को बुलाकर यह वचन कहा कि यह क्षत्रिय राजकुल में उत्पन्न हुआ है और इसके अन्तःकरण की बात मैं जानता हूं यह शरदृऋतु के चन्द्रमा और आदर्श के समान शुद्धचित्त है मैं इसमें कोई पाप नहीं देखता हूं सब प्रकार से मेरा परीक्षा किया हुआ है इसके साथ तू सन्धिकर इस पर ऐसा विश्वास कर जैसा कि मुझमें करता है मन्त्री के विना राज्य में तीन दिन भी शासन करना या आज्ञा देना योग्य नहीं है हे राजन्! शूर या बुद्धिमान् मन्त्री होना चाहिये उन दोनों शूरता और बुद्धि से दोनों लोकोंको देखो और राज्य के प्रयोजन को भी देखो लोक में किसी स्थानपर धर्मात्माओं की ऐसी अन्यगति नहीं है यह राजपुत्र महात्मा और सत्पुरुषों के कर्मों को करता है तू इसको अपने साथ रखने को स्वीकार कर यह धर्म को सम्मुख करनेवाला राजा तेरे शत्रुवों के बड़े समूहोंको पकड़ेगा और जो यह तुम्हारे सम्मुख होकर युद्ध करे तो वह क्षत्रिय का मुख्य धर्म है बापदादों के स्थानपर युद्ध में वर्तमान होकर तेरे विजय करने की इच्छा करे तो विजयरूपी व्रत के चाहनेवाले तुम भी इससे युद्ध करो अपनी वृद्धि में प्रवृत्त होकर तुम मेरी आज्ञा से युद्ध के विनाही उसको अपने आधीन करो इससे तुम अयोग्य लोभ को त्याग करके धर्म को देखोगे शत्रुता की इच्छा से अपना धर्म त्याग करना योग्य नहीं है हे तात! सदैव जय और अजय नहीं होती इस कारण शत्रुलोग भोजन आदि के द्वारा आधीन करने के योग्य हैं अपनी जाति में भी जय और अजय दृष्टि में आनेवाली है हे तात! नाश करनेवाले पुरुषों को नाश करनेवाले अन्य पुरुषों से भय होता है यह सब बातें सुनकर राजा जनक ने उन क्षेमदर्शी ऋषि से विधिपूर्वक पूजन सत्कार करके प्रतिष्ठापूर्वक यह वचन कहा कि बड़ा ज्ञानी जैसा कहै और बड़ा शास्त्री जैसा वर्णन करे और वृद्धि चाहनेवाला जो कहै वही दोनों लोकोंका देनेवाला वचन है मुझको जो२ आपकी आज्ञा हुई हैं वह सब मैं करूंगा इसी में कल्याण है इसमें विचारना मेरा अयोग्य है तदनन्तर राजा जनक ने कौशल राजाको बुलाकर यह वचन कहा कि मैंने धर्म और नीतिसे संसारको विजय किया परन्तु हे राजाओं में उत्तम! मैं तेरे निजगुणोंसे पराजय

हुआ आप अपना अपमान न करके विजय किये हुये के समान विराजमान रहो मैं तुम्हारी बुद्धि का अपमान नहीं करता हूं और न तुम्हारे पराक्रम का अपमान करता हूं और यह भी नहीं मानता हूं कि मैं विजय करता हूं आप विजयी होनेवालोंके समान काम करो हे राजन्! बुद्धिके अनुसार अच्छे प्रकार पूजेहुये तुम मेरे घर को भी चलौ तब वह परस्पर में विश्वासी दोनोंराजा ऋषि का पूजन करके घरको गये तदनन्तर राजा जनक ने कौशल राजा को शीघ्रता से अपनी राजधानी में लाके उस पूजन योग्य को पाद्य, अर्घ, मधुपर्क से पूजा और इसकी प्रसन्नता के लिये अपनी पुत्री से विवाह करके उसके यौतुक में अनेक रत्नआदि दासी दास दिये यह राजाओं का उत्तम धर्म है और जय पराजय सदैव नहीं होती ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पुनः कालकवृक्षीयनामषडुत्तरशततमोऽध्यायः॥ १०६॥

एकसौसातका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे परन्तप! तुमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके धर्म, चलन और धन, उद्योग, जीविका के हेतु और फलों को कहा और राजाओं के धन खज़ाने और खज़ाने की वृद्धि विजयमन्त्रियों की गुणवृत्ति और नौकरों की वृद्धि को कहा छहगुणों का गुण इसीप्रकार सेनावृत्ति दुष्ट का ज्ञान और सत्पुरुषों का लक्षण कहा और समान न्यून अधिक पुरुषों का जो ठीक लक्षण है और अच्छी वृद्धि पानेवाले राजा को मध्यम पुरुष की प्रसन्नता के लिये जैसे बर्तना चाहिये वह भी वर्णन किया और शास्त्र के अनुसार उपदेशरूप साधारण युक्ति से राज्य से भ्रष्टहुये का पोषण और आजीविका को धर्मपूर्वक वर्णन किया और विजय की इच्छा करनेवाले राजा के चलन को भी वर्णन किया हे ज्ञानियों में उत्तम! इसीप्रकार समूहों की आजीविका को सुना चाहता हूं और हे पितामह! जैसे गणसमूह अच्छी वृद्धि पाते हैं और विरुद्ध नहीं करते और शत्रु को विजय करना चाहते हैं और मित्रों को प्राप्त किया चाहते हैं मैं उन समूहों की नष्टता को देखता हूं जो विरोधता का मूल रखनेवाली है और बहुत मनुष्यों से मन्त्र का छिपाना कठिन है उसको मैं पूर्णता के साथ सुना चाहता हूं जिसरीति से वह विरोधी न हों वह आप कहने को योग्य हैं भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह दोनों लोभ और क्रोध उन समूह व घराने और राजाओं की शत्रुता को बढ़ानेवाले हैं अकेला राजा लोभ को करता है तदनन्तर समूह

क्रोध को करता है वह दोनों भ्रष्टता से नाश को प्राप्त होते हैं वह दूतों के द्वारा अथवा मन्त्रबल से पृथ्वी का भेजदेने से और साममन्त्र के तोड़ने से भ्रष्टता और नाश से और भयकारी युक्तियों से परस्पर पीड़ा देते हैं मिलकर जीविका का निमित्त प्राप्त करनेवाले धन के लेने से शत्रु होजाते हैं विमन और शत्रु होकर वह सब भय से शत्रु के आधीन होते हैं और शत्रुवों के समूहों में नाश पाते हैं और विरोधी शत्रुवों से सुगमता से विजय होते हैं इसकारण समूहवाले लोग सदैव एकता से उद्योग करें क्योंकि मिले हुये समूह के पराक्रम और उद्योगों से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और उन मिलकर जीविका करनेवालों से दूसरे देश के मनुष्य मित्रता करते हैं ज्ञानीपुरुष परस्पर में प्रीतिरखनेवालों की प्रशंसा करते हैं और व्यवहार आदि में एकमतवाला समूह आनन्दपूर्वक वृद्धि को पाता है शास्त्र के अनुसार धर्मिष्ठ व्यवहारों को नियत करके बुद्धि के अनुकूल उनको देखने से सब समूह बड़ी उत्तम वृद्धिपाते हैं पुत्र और भाइयोंको शासना और शिक्षा करते और शिक्षापानेवालोंको पोषण आदि करतेहुये सदैव उत्तम वृद्धि को प्राप्त करते हैं हे महाबाहो ! दूत और सलाह के विषय का विचार करते खज़ाने की वृद्धि में सदैव प्रवृत्तहोनेवाले समूह को सब ओर से वृद्धि होती है हे राजन् ! कार्य में सदैव प्रसक्त समूह की बड़े उत्साहवाले स्वकर्मनिष्ठ उद्योगी बुद्धिमान् लोग प्रशंसा करते हैं और शास्त्र में प्रवीण शस्त्रविद्याके ज्ञाता महाधनी भी बड़ाई करते हैं और क्रोध, विरोध, भय, दण्ड, पीड़ा, घात इत्यादि बातें समूहको शीघ्रही शत्रु के आधीन करती हैं इस निमित्त उक्तबातों से रहित समूह प्रशंसापूर्वक मानने के योग्य है और संसारके बड़े२ प्रबन्ध और कार्य इन समूहों के आधीन हैं सो हे युधिष्ठिर ! जो गुप्तविचार में श्रेष्ठ हैं उनपर दूतों को नियत करना चाहिये सब समूह मन्त्र के सुनने के योग्य नहीं हैं इन उत्तम समूहों से मिलकर परस्पर में समूह का अभीष्ट करना चाहिये पृथक् वा विरोधी वा भिन्न२ होनेवाले समूह का उनके विपरीत करना चाहिये और परस्पर में विरोधी केवल अपनीही सामर्थ्य से कर्म करनेवाले समूहों के धनआदि अर्थ नाश होजाते हैं और अनर्थ प्राप्त होजाते हैं पण्डितलोग उनको शीघ्रही धमकाकर आज्ञा करने के योग्य हैं कुलों में उत्पन्न होनेवाले उपद्रव कुलों के वृद्धों से दूर नहीं किये जायँ तो गोत्रभरे का नाश करते हैं वह दोषसमूह में विरोध का कारण है जो समूह के सब लोग परस्पर में एकसी बातचीत नहीं करते यह भी

हानि का कारण है फिर वह समूह जो धन, बुद्धि और युक्तिबल से कर्मकरें उस दशा में विरोध के कारण या अपनी अज्ञानता से वह समूह शत्रुवों के हाथ से मारेजाते हैं इस हेतु से समूहों के मिलापको रक्षा का बड़ा आश्रय कहते हैं ॥३२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

एकसौआठका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशिन्! यह धर्ममार्ग बड़ा और बड़ी २ शाखाओं का रखनेवाला है इस देश में धर्मों के मध्य कौन कर्म बड़ी धैर्यता से मानने के योग्य है और आपने कौनसा कर्म बड़ा माना है उसी को मैं भी करके इस लोक परलोक दोनों में धर्म प्राप्त करूं भीष्मजी बोले कि माता पिता और गुरुवों का पूजन मेरे चित्तसे बड़ा प्रिय है इसमें प्रवृत्त होकर मनुष्य इस लोक में यशस्वी, प्रतापी होकर उत्तम लोकों को प्राप्त करता है हे तात, युधिष्ठिर! अच्छे पूजित महात्मालोग जिस बात की आज्ञा दें वह चाहे धर्म, अधर्म या विपरीत भी हो करना योग्य है उनकी आज्ञा विना कोई धर्म न करे वह लोग जिस बात की आज्ञा करें वही निश्चय धर्म है यह माता, पिता, गुरु तीनों लोकरूप, आश्रमरूप, वेदरूप और तीनों अग्निरूप हैं निश्चय करके पिता तो गार्हस्पत्य अग्नि हैं और माता दक्षिणाग्नि और आहवनीय नाम अग्नि गुरु हैं यह तीनों अग्नियों का समूह बड़ा है इन तीनों में भ्रान्ति न करता पुरुष तीनों लोकों को तरता है अर्थात् पिता के पूजन से इस लोक को और माता के पूजन से परलोक को और नियमपूर्वक गुरु के पूजन से ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है सो हे युधिष्ठिर! इन तीनों के साथ अच्छे प्रकार बर्ताव कर इससे तीनों लोकों में यश पावेगा और महाफलवाले धर्म को भोगेगा इससे भोजन और कर्मों में अधिकता न करेगा और न दोष लगावेगा तो तेरा बड़ा कल्याण होगा सदैव सेवा करनाही बड़ा उत्तम कर्म है हे तात! तुम कीर्तिमान्, पुण्यवान् और यशस्वी होकर उत्तम लोकों को पावोगे जिसके यह तीनों पूजित होंगे उसका तीनों लोकों में आदर होगा और जिसके यह तीनों पूजित नहीं हैं उसके सब कर्म निष्फल हैं हे परन्तप! जिसके यह तीनों गुरु सदैव नहीं पूजेजाते हैं उसका न यह लोक है न परलोक है और इस लोक परलोक दोनों में इसका यश नहीं प्रकाश पावेगा और न परलोक में इसको दूसरा कल्याण है मैंने अन्य सब कर्म करके इन तीनों को अधिक किया तब मेरा सौगुने से

हज़ारगुना होगया इसी कारण हे युधिष्ठिर ! मुझे तीनों लोक प्रकाशित हैं उत्तम आचार्य दश वेदपाठियों से श्रेष्ठ है और उपाध्याय दश आचार्यों से अधिक है और पिता दश उपाध्यायों से अधिक है और माता दश पिता और पृथ्वी और मुझसे भी वृद्धता में वा बड़ाई में अधिक होती है माता के समान गुरु नहीं है परन्तु पिता से गुरु बड़ाहै यह मेरा मतहै क्योंकि माता, पिता जन्म दिलाते और देह को उत्पन्न करते हैं और आचार्य से होनेवाला जो उत्तम जन्म है वह दिव्य और अजर अमर है उपकार करनेवाले माता, पिता, गुरु यह तीनों सदैव अवध्य हैं अर्थात् मारने योग्य नहीं हैं उसको करके वह दोषी नहीं होता और न वह इसको दोष लगाते हैं देवताओं ने धर्म के निमित्त महर्षियों के साथ उद्योग करनेवाले उन पुरुषों को जाना है जो आचार्य वेदों को कहता अमृत को देता सत्कर्म से कृपा करता है उसी को माता, पिता अपने और उस के लोक को जानते हैं इस हेतु से शत्रुता से रहित जो विद्यावान् होकर कर्म और मन से गुरु की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं वह विरोधता से नाश को प्राप्तहोते हैं उनका पाप भ्रूणहत्या से भी अधिक है संसार में उनसे विशेष दूसरा पापकर्ता नहीं है क्योंकि जैसे वह गुरु से वृद्धि पाने के योग्य है उसीप्रकार गुरु भी उन की ओर से पूजन के योग्य है इस हेतु से वह गुरु उस प्राचीन धर्म चाहनेवाले पुरुष को युक्ति से पूजन अर्चन और भागदेनेयोग्य हैं जिस कर्म से पिता को प्रसन्न करता है उससे पृथ्वी पूजित होती है और जिस कर्म से उपाध्याय को प्रसन्न करता है उससे वेद पूजित होते हैं इसीकारण गुरु माता, पिता से भी अधिक पूजनीय हैं गुरुवों के पूजित होने से पितर समेत ऋषि और देवता भी प्रसन्न होते हैं इससे सर्वथा गुरु पूजनीय है किसी चलन से भी गुरु अपमान के योग्य नहीं है जैसा गुरु मोक्ष के पदपर पहुँचानेवाला है वैसा माता, पिता से नहीं होसक्ता यह ज्ञानियों का मत है वह सब अपमान के योग्य नहीं हैं उनके कर्मों में दोष नहीं लगावे महर्षियों समेत देवताओं ने गुरुवों के सत्कार को उत्तम कहा है जो पुरुष मन और कर्म से उपाध्याय, पिता और माता से शत्रुता करते हैं उनका पाप भ्रूणहत्या से अधिक है लोक में इससे अधिक कोई पापकर्ता नहीं है जो पालाहुआ बड़ा होनेवाला अपनी योनि से उत्पन्न हुआ पुत्र माता, पिता का पोषण नहीं करता है वह पाप निश्चय करके भ्रूणहत्या से भी अधिक है संसार में इससे भी अधिक पाप करनेवाला दूसरा नहीं

है मित्र से शत्रुता करनेवाला, उपकार का भूलनेवाला, स्त्री को मारनेवाला, गुरुहन्ता इन चारों के प्रायश्चित्तों को हम नहीं सुनते हैं जो इस संसार में पुरुष से करने योग्य है वह सब विधिपूर्वक कहा यह सब धर्मों का सार तुमसे कहा इससे अधिक कल्याणकारी दूसरा नहीं है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

एकसौनवका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! धर्म में प्रवृत्त होने को इच्छावान् पुरुष किस प्रकार से कर्म करे यह आप मुझसे वर्णन कीजिये हे राजन् ! सत्य और मिथ्या यह दोनों संसार को वृत्तरूप घेरेहुये हैं धर्म को निश्चय करनेवाला पुरुष दोनों में से किसको करे सत्य क्या है और मिथ्या क्या है और प्राचीन धर्म क्या है किस समय सत्य बोले और किस समय मिथ्या बोलना चाहिये भीष्मजी बोले कि सत्य वचन उत्तम है सत्य से अधिक कुछ नहीं है हे युधिष्ठिर ! लोकों की जो बुद्धि है उसको कहता हूं जहां मिथ्या सत्यके समान हो और सत्य मिथ्या के समान हो वहां सत्य बोलना उचित नहीं किन्तु मिथ्या ही बोलना योग्यहै ऐसा अज्ञानी बालक जो सत्य और असत्यके मूल को नहीं जानता वह नष्टता को प्राप्त होता है जहां सत्यंता नष्टपनेसे मिली हुई है वहां सत्य और मिथ्याको अच्छे प्रकार निश्चय करके धर्मका जाननेवाला होताहै और नीच अज्ञानी व हिंसा करनेवाला पुरुष भी बहुत बड़े पुण्य को प्राप्त करता है जैसे बहेलिये ने पक्षियों की प्यारी बोली बोलकर पक्षियों के घात से स्वर्गको पाया क्या आश्चर्य है कि जो अज्ञानी धर्म का न जाननेवाला धर्मकी इच्छा करनेवालाभी बड़े पुण्य का भागी होजाय जैसे कि श्रीगंगाजी पर कौशिक ने मोक्ष प्राप्त किया था अर्थात् कौशिक उल्लू ने गंगाजीपर सर्पों के हज़ारों अण्डों को तोड़कर पुण्य प्राप्त किया था यह तुम्हारा प्रश्न उस प्रकार का है जिसमें धर्म बड़ा और लम्बा है जिसकी संख्या करनी कठिन है सो इस धर्मलक्षण में निश्चय करते हैं कि वह किसरीति से होता है जीवों की वृद्धि के लिये धर्म का वर्णन किया जो कर्म जीवों की वृद्धि से संयुक्त है वह निश्चय धर्म ही है प्रजा की रक्षा से धर्म किया गया और धर्म से प्रजा रक्षित है जो प्रजाकी रक्षा में प्रवृत्त होय वह भी निश्चय करके धर्म है किसी ने कहा कि सब धर्म वेदोक्त हैं दूसरे मनुष्यों ने कहा कि नहीं हम इसकी निन्दा नहीं करते क्योंकि सब नहीं किया जाता है अर्थात्

देशकाल के अनुसार कर्म किया जाता है अन्याय की रीति से हर लेने की इच्छा रखनेवाले जो पुरुष किसी के धन को चाहते हैं उस धन को उन्हीं से न कहना चाहिये यह भी निस्सन्देह धर्म है जहां मौनता से जान बचे वहां किसी प्रकार से भी वार्तालाप न करे बोलने के स्थानपर न बोलने से भी अवश्य शंका करते हैं वहां मिथ्या बोलना सत्य से भी अच्छा है जहां शपथ के खाने से पापों के सम्बन्ध से छूटता है यही निर्धार किया गया वहां सम्भव होय तो किसी दशामें भी उन पापियों को धन न देना चाहिये क्योंकि पापियों को दियाहुआ धन दाता को भी पीड्यमान करता है प्रतिवादी के पकड़ने से अपना रुपया लेने की इच्छा करनेवाले वादी का विवाद झूठा होने के लिये गवाहलोग ऐसे स्थानपर जो वार्तालाप करैं वहां कहने के योग्य वचन को न कहने से वह सब मिथ्यावादी हैं प्राणत्याग और विवाह में मिथ्या बोलना योग्य है अधर्म के कारण दूसरों की सिद्धि को चाहता दूसरों के धनकी रक्षाके लिये नीचधर्म भक्षक होताहै प्रतिज्ञा करके देना चाहिये जो न दे तो धन का पचानेवाला दास हो जो कोई धर्मका साधन करनेवाला धर्म्मरूप नियम से भ्रष्ट होजाय उस मार्ग में वह शरणागत पुरुषभी दण्ड के द्वारा मारने के योग्यहै वह दिव्यधर्म से भ्रष्ट आसुरीधर्म में वर्तमान हुआ वह छली अपने धर्म को छोड़कर उस आसुरीधर्म से जीता रहना चाहता है वह छल से जीवनेवाला पापी सब रीतियों से मारने के योग्य है सब पापियों को धनही अच्छा लगता है निश्चय करके धर्म जरा अच्छा नहीं लगता है वह क्षमा के अयोग्य अधर्मी मनुष्य देवता और मनुष्यों से पृथक् कियेहुये प्रेत के समानहैं यज्ञ और तप से रहित पुरुषों से तेरी मित्रता मत हो क्योंकि उनके संगसे धन के नाश के द्वारा बड़ा दुःख होताहै और जीवन में सन्देह होता है यह धर्म तुझको मानना चाहिये इसप्रकार बड़ी युक्तिसे उस छली को समझना चाहिये परन्तु पापियोंका किसी धर्म में निश्चय नहीं है यह जानो जो पुरुष उस दशावाले पुरुष को मारे वह पाप में संयुक्त नहीं होता है क्योंकि अपनेही कर्म से वह मृतक माराजाता है जो कोई मनुष्य उन घातबुद्धि मनुष्यों के विषय में इस नियम को करे कि मैं उनको मारूंगा वह श्रेष्ठ है जैसे कि काग और गिद्ध हैं वैसेही वहलोग हैं जोकि कपट से अपने दिन पूरे करते हैं वह देहत्यागने के पीछे इन काग आदि की योनियों में उत्पन्न होते हैं जो मनुष्य जिसमें जैसा बर्ताव करताहै उसमें उसी

प्रकार बर्ताव करना चाहिये वही धर्म है छली छलसेही पीड़ा देनेयोग्य है और नेकचलन नेकचलन से पीड़ा दियाजाता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे नवोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

एकसौदशवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! जहां तहां उन २ कारणों से जीवों के दुःखी होने पर जिस प्रकार से उन आपत्तियों से पार होय उसको आप कृपा करके कहिये भीष्मजी बोले कि जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण शास्त्रोक्त आश्रमों में बुद्धि के अनुसार निवास करते हैं वह आपत्तियों से पारहोते हैं कपटयुक्त कर्म नहीं करते हैं और जिनकी बुद्धि की वृत्ति नियमों में लगी है और इन्द्रियों को स्वाधीन करते हैं वह आपत्तियों को तरते हैं और जिन निन्दा पानेवालोंने निन्दा नहीं की और जिन दुःख पानेवालों ने किसी को दुःख नहीं दिया और दानकरते हैं और किसी से दान नहीं लिया वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो सदैव अतिथियों को घर में निवास कराते हैं और दूसरे के गुणों में दोष नहीं लगाते हैं और सदैव वेद के पाठ का अभ्यास करते हैं वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो धर्म में कुशल अपने माता, पिता के पूजन में प्रवृत्त रहते हैं और दिवस का सोना त्याग करते हैं वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो पुरुष मन, वचन, कर्म से पापको नहीं करते हैं और जीवों को नहीं सताते हैं वह विपत्तिसे पार होते हैं और जो राजा रजोगुण से संयुक्त हो लोभ से किसीके धनको नहीं हरते हैं और इन्द्रियों की चारो ओर से रक्षा करते हैं वह आपत्तियों से निवृत्त होते हैं और जो पुरुष अग्निहोत्र में प्रवृत्त होकर केवल ऋतुकाल में ही अपनी धर्मपत्नी में विषयादि करते हैं वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो शूर मृत्यु के भय को त्यागकर युद्ध में धर्मपूर्वक विजय चाहते हैं वह आपत्तियों से पार होतेहैं और जो पुरुष प्राणत्याग होने पर भी सत्यवचनों को कहतेहैं और जीवों के प्राणरूप हैं वह आपत्तियों को तरते हैं और जिनके कर्म सत्यप्रयोजनवाले हैं और सत्यवक्ताहैं और जिनके धनआदि अच्छेप्रकार सुरक्षितहैं वह आपत्तियों को तरते हैं इस लोक में जो वेदपाठी ब्राह्मण अनध्यायों में वेद के पाठों को नहीं करते हैं और तपोनिष्ठहैं वह महातपानेवाली आपत्तियों से पार होते हैं और जो ब्रह्मज्ञानविद्या और वेदव्रतमें परायण कौमार ब्रह्मचर्यव्रत को तपते हैं वह विपत्तियोंसे छूटते हैं और जो शान्त रजोगुण और शान्त तमोगुण और महात्मा

सतोगुण में प्रवृत्त हैं वह आपत्तियों को तरते हैं और जिनसे कोई भय नहीं करता और न वह किसी का भय करते हैं और यह लोक जिनका आत्मारूप है वह विपत्तियों से पार होते हैं और जो पुरुषोत्तम सन्त दूसरे की लक्ष्मी से दुःखी नहीं होते हैं और विषयादि भोगों को त्यागेहुये हैं वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो श्रद्धावान् शान्तपुरुष सब देवताओं को नमस्कार करते हैं और सबधर्मों को सुनते हैं वह कष्ट से तरने के योग्य स्थानों को तरते हैं जो अपनी प्रतिष्ठा को नहीं चाहते हैं और दूसरों की प्रतिष्ठा करते हैं और प्रतिष्ठा के योग्य पुरुषों को नमस्कार करते हैं वह कष्टसाध्य स्थानों से तरते हैं जो सन्तान के चाहनेवाले पुरुष अत्यन्तपवित्रचित्त से तिथि २ में श्राद्धों को करते हैं वह दुस्तर स्थानों को तरते हैं और जो क्रोध को रोकते हैं और क्रोधयुक्त पुरुषों को शान्त करते हैं और जीवोंपर क्रोध नहीं करते हैं वह दुस्तर स्थानों से पार होते हैं और इस लोक में जो मनुष्य जन्म से लेकर मरणपर्यन्त मांस और मदिरा को त्यागकरते हैं वह कठिन स्थानों को तरते हैं और जिन्हों का भोजन शरीर की यात्रा के लिये और विषय सन्तान के लिये और वचन सत्य कहने के निमित्त है वह दुस्तर स्थानों से पार होते हैं और जो भक्तजन सब जीवों के ईश्वर, जगत् के उत्पत्तिस्थान, अविनाशी, नारायणदेव का ध्यान करते हैं वह दुस्तरस्थानों से पारहोते हैं और यह कमलरूप, रक्तनेत्र, पीताम्बरधारी, महाबाहु, भाईबन्धुसम्बन्धियों का शुभचिन्तक ऐसा अविनाशी है वह प्रभु अचिन्त्यआत्मा, पुरुषोत्तम, गोविन्दजी इच्छा करके इनसब लोकों को चर्म के समान लपेटे वही वैकुण्ठरूप दुर्धर्ष पुरुषोत्तम आपके और अर्जुन के प्यारे हित में वर्तमान हैं जो भक्त इस लोक में इस नारायण हरि की शरण होते हैं वह इस लोक में दुस्तर स्थानों को निस्सन्देह तरते हैं इसमें विचारना नहीं और जो पुरुष इस दुर्गातितरण को वेदपाठों से पढ़ते पढ़ाते सुनते सुनाते हैं वह दुस्तरस्थानों से पार होते हैं हे अनघ! मैंने करने के योग्य कर्मों का आशय तुम से कहा जिसके द्वारा मनुष्य इस लोक में महादुस्तरस्थानों से पार होते हैं ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे दशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकसौग्यारहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! असौम्य पुरुष अर्थात् अज्ञानी पुरुष सौम्यरूप और सौम्य पुरुष असौम्यरूप दृष्टिआनेवाले हैं हम इसप्रकार के पुरुषों को

कैसे जानें भीष्मजी बोले कि यहां मैं इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में व्याघ्र और शृगाल का प्रश्नोत्तर है उसको सुनो प्राचीन समय में पूरिका नाम पुरी में श्रीमान् पौरक नाम राजा हुआ जोकि दूसरे की हिंसा में कठोरचित्त निर्दयी नीचपुरुष था उसने मरने के पीछे मनके विरुद्ध गति को पाया अर्थात् पूर्वजन्म के दोष से उसने शृगाल अर्थात् स्यार की योनि को पाया फिर उसने पिछले जन्म के ऐश्वर्य को स्मरण करके बड़े वैराग्य को पाया दूसरे जीवों के लायेहुये मांस को भी नहीं खाता था सब जीवों में हिंसारहित सत्यवक्ता महादृढ़व्रत रखनेवाला था उसने समय के अनुसार पृथ्वी पर गिरेपड़े हुये फलों से निर्वाह किया श्मशानभूमि में उस स्यार को रहना स्वीकार हुआ उसने जन्मभूमिकी प्रीति से दूसरे निवासस्थान को पसन्द नहीं किया उसकी पवित्रता को न सहनेवाले उसकी जातिवालों ने प्यारे वचन कहकहकर उसकी बुद्धि को विपरीत करना चाहा और कहा कि रौद्रपितृवन में निवास करके तू पवित्रता को चाहता है यह तेरी विपरीत बुद्धि है जब कि तुम मांसभक्षी हो तो हमारे समान होजावो हम तुम को भोजन देंगे पवित्रता को दूर करके जो तेरा भोजन है वही खा उस सावधान ने उनके वचन को सुनकर मीठे और व्यौरेवार कारणों समेत मृदुतापूर्वक उत्तर दिया कि मेरी उत्पत्तियां अप्रमाण हैं अर्थात् इन्द्रियों की मर्यादा से रहित हैं और कुल का नाम स्वभाव से प्रसिद्ध होता है इससे मैं उन कर्मों को चाहता हूं जिनसे कि यश की प्रसिद्धि होती है जो मेरा निवास श्मशान में है मेरी समाधि को सुनो कि आत्मा कर्म को सफल करता है और आश्रम धर्म का कारण नहीं है जो पुरुष आश्रम में द्विज को मारे वह क्या पातक नहीं है अथवा अन्य आश्रमी को गोदान करे वह दिया हुआ क्या निरर्थक होता है आप अपने अर्थ लोभ से केवल मांस खाने में मन लगाये हुये हैं परिणाम में तीन दोष हैं अज्ञानी जीव उनको नहीं देखते हैं इसकारण असन्तोषता से निन्दित की हुई और धर्म के नाश से दूषित इस लोक और परलोक में बे मर्यादा आजीविका को स्वीकार नहीं करता हूं प्रसिद्ध पराक्रमी शार्दूल ने उसे पवित्र और पण्डित जानके अपने योग्य पूजित कराके आप उसको प्रधानता में नियत करना चाहा और बोला हे ज्ञानिन्! तुम प्रसिद्ध चलन हो मेरे साथ राज्य को पावो इच्छाभोजन और बड़े सामानों को भोगो हम क्रोधप्रकृति प्रसिद्ध हैं आप

को जतलाते हैं तुम मृदुता के साथ अपने हित और कल्याणों को चाहोगे यह सुनकर स्यार ने बड़ी नम्रता से शार्दूल के वचन की प्रशंसा करके यह वचन कहा कि मेरे विषय में जो आप का वचन है वह आप सरीखे मृगराज के योग्य है जो आप धर्म, अर्थ में कुशल पवित्र सहायकों को तलाश करते हो हे वीर ! मन्त्री न रखनेवाले अथवा देह के शत्रु दुष्ट मन्त्रीवाले राजा से राज्य करना असम्भव है प्रीति रखनेवाले नीतिज्ञ परस्पर शुभचिन्तक सहायता करनेवाले विजय की इच्छा रखनेवाले चपलचित्त नम्र ज्ञानी और मन का अभीष्ट करने में प्रवृत्त साहसी सहायकों का ऐसा पूजन करो जैसे कि आचार्यों का और वृद्धों का होता है इससे हे मृगेन्द्र ! सन्तोष के सिवाय मुझे दूसरी बात स्वीकार नहीं है मैं सुखभोग और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले ऐश्वर्य को नहीं चाहता हूं जो मेरा स्वभाव तेरे नौकरों से मेल न खायगा वह मेरे विषय में बुराई करनेवाले होंगे और तुम को मेरा शत्रु बनादेंगे दूसरे तेजस्वियों का भी मिलाप प्रशंसा के योग्य नहीं है मैं आत्मावान् श्रेष्ठ महाभाग पापकर्म में भी सहनशील दूरदर्शी उन्नताकांक्षी बड़ादानी महाबली कर्मकर्ता और प्रारब्धवान् सफलकर्म का करनेवाला हूं मैं थोड़े सामान से भी सन्तोष करसक्ता हूं और दुःखरूप जीविका मैंने प्राप्त नहीं की और सेवा में भी अज्ञानी हूं अपनी इच्छा से वनचारी हूं राजा के सम्मुख निन्दा से उत्पन्न होनेवाले सब दोष उसके शरणवालों को प्राप्त होते हैं और वनवासियों की व्रतचर्या संग और क्रोध से पृथक् है राजा के बुलायेहुये नौकर के हृदय में जो भय उत्प होता है वह भय वन में मूल फल खानेवाले सन्तोषी पुरुषों के हृदय में उत्प नहीं होता है विना परिश्रम के मिलनेवाला जल और सुस्वादु भोजन अथवा अन्त में भयकारी दोनों वस्तुवों को विचारकर देखताहूं कि वही सुख है जिस निस्सन्देहता है इतने नौकर अपराध के कारण राजाओं से दण्ड नहीं दि गये जितने कि नौकर दूसरों की बुराई से अपराधी होकर नष्टहुये हे मृगेन्द्र ! जो यह मेरे करने के योग्य है और जो तुम मानते हो तो मैं प्रतिज्ञा किया चाहता जैसे कि मेरे साथ करना चाहिये मेरे बालबच्चे आप पालने को योग्य हैं औ हितकारी वचन आपके सुननेके योग्य हैं और जो मेरी आजीविका विचार की गई है वह तुम्हारे पास अच्छेप्रकार से वर्तमान होय मैं कभी तेरे दूसरे मन्त्रियों के साथ सलाह नहीं करूंगा नीतिज्ञ इच्छावान् शत्रु मेरे विषय में विपरी

कहेंगे और अकेला एकान्तमें केवल आपहीसे मिलकर हितकारी वचन कहूंगा तेरी जाति के कागजों में हित और अहित पूछने के योग्य नहीं होऊं मेरे साथ सलाह करके मन्त्री आप के हाथ से मारने के योग्य नहीं और क्रोधयुक्त होकर तुम मेरे समीपी लोगों को दण्ड मत दो व्याघ्र ने उसकी सब बातों को स्वीकार किया और स्यार ने प्रधानता का अधिकार पाया प्राचीन नौकर एकमत होकर इसप्रकार से बड़े अधिकार के पानेवाले अपने काम में पूजित उस स्यार को देखकर अकस्मात् विरोधी हुये इन दुर्बुद्धियों ने मित्रता की बुद्धि से उस स्यार को विश्वासपूर्वक प्रसन्न करके दोष लगाना चाहा दूसरे के धनों के हरनेवाले वह सब पूर्वसमय में विरुद्धकर्मी थे अब स्यार के स्वाधीन रहनेवाले वह किसी प्रकारकी द्रव्यके लेनेको समर्थ नहीं हुये वह स्यार विरोध चाहनेवालोंसे कथाओं के द्वारा लुभाया जाता था और बड़े धन से उसकी बुद्धि लुभाई जाती थी परन्तु वह बड़ाज्ञानी अपने धैर्य से चलायमान नहीं हुआ इसीप्रकार दूसरों ने उसके नष्ट करने की सलाह करके वहां मृगराज का अभीष्ट जो मांस तैयार किया था उन्होंने आप जाकर उसके घरमें रखदिया इस निमित्त कि वह चोर ठहराया जाय और जिसने वह सलाह की वह उसको विदित होगया परन्तु किसी हेतुसे उसने क्षमा किया और प्रधानता प्राप्त करनेवाले स्यार ने यह विचार किया कि यहां मित्रता करनेवाले तुझ को नाश न करने चाहिये भीष्मजी बोले कि भूखे और खाने के वास्ते उठेहुये मृगराज को भोजन के निमित्त जो मांस भेंट करना चाहिये था वह दृष्टि न पड़ा मृगराज ने हुक्म दिया कि चोर को ढूंढ़ना चाहिये छलियों ने उसका वर्णन मृगराज के सम्मुख किया कि आपका मन्त्री जो कि अपनेको पण्डित और ज्ञानी मानता है उसने छिपाया शार्दूल स्यार की चपलता को सुनकर क्रोधित हुआ और उसके मारने को स्वीकार किया तब पहिले मन्त्री उस अपने शत्रु को देखकर बोले कि यह हम सबकी जीविका खोने में लगा हुआ है फिर उन्होंने निश्चय करके उसके कर्म को भी वर्णन किया कि उसका जब यह काम है वह क्या काम नहीं करसक्ता स्वामी ने पहिले जैसा सुना था वैसा नहीं है यह केवल बातों से धर्मिष्ठ है परन्तु स्वभाव से निर्दयी है यह पापी कपटरूप धर्म रखनेवाला और मिथ्या आचार परिग्रह रखनेवाला है इसने अपने कार्य के लिये भोजन के अर्थ व्रतआदि में परिश्रम किया यह अविश्वासी है यह हम आपको दिखाते हैं यह कहतेही शीघ्र उस स्यारके घर में से मांस को

लाकर व्याघ्रको दिखाया तब व्याघ्र ने उस मांसका चुराना जानकर और उनके वचनों को सुनकर आज्ञा दी कि स्यार को मारो तब व्याघ्र की माता अपने पुत्रकी बातों को सुनकर मृगराज को हित की बात समझाने को उसके पास आई और कहा कि हे पुत्र ! कपट और छल से संयुक्त यह बुराई तुम को स्वीकार न करनी चाहिये क्योंकि पवित्र राजा भी पापात्मा और ईर्षा करनेवालों के दोष से दोषी होता है कोई ऊँचे अधिकारवाले को चित्त से नहीं चाहता है अधिकारही शत्रुता उत्पन्न करनेवाला है पवित्र और स्वकर्मनिष्ठ नौकर में और स्वकर्मी वनवासी पवित्र मुनि में भी दोष लगाया जाता है मित्र, उदासीन और शत्रु नाम तीनपक्ष उत्पन्न होते हैं पवित्र मनुष्य लोभों के शत्रु और पराक्रमी पुरुष नपुंसकों के शत्रु कहेजाते हैं और पण्डित मूर्खों के और बड़े धनी निर्धन लोगों के और धर्मिष्ठ पुरुष अधर्मियों के स्वरूपवान् कुरूपों के शत्रु समझे जाते हैं बृहस्पतिजी के मत से मूर्ख लोभी और कपट से जीवनकरनेवाले अपने को पण्डित माननेवाले ऐसे बहुत से मनुष्य निर्दोषी को दोष लगाते हैं जो कि तेरे खाली मकान से उस मांस को चुरालिया और दिया हुआ नहीं चाहता है अच्छा है तबतक विचार करो सभासद् जो अयोग्यहैं वह योग्यरूप और जो योग्य हैं वह अयोग्यरूप दीखते हैं और नाना प्रकार के चित्तवाले दीखते हैं इन्हों में परीक्षा करनी योग्य है आकाश पृथ्वी के समान और पटबीजना अग्नि के समान दृष्टि पड़ता है वास्तव में आकाश पृथ्वी नहीं है और न पटबीजने में अग्नि है इस कारण नेत्रों से भी देखा हुआ प्रयोजन परीक्षा लेने के योग्य है परीक्षा करके विवादों का प्रकट करनेवाला पीछे पश्चात्ताप नहीं करता है हे पुत्र ! यह कठिन बात नहीं है जो स्वामी दूसरे को मरवावे लोक में समर्थ पुरुषों की क्षमा प्रशंसा के योग्य शुभकीर्ति को क्या विख्यात करनेवाली है हे पुत्र ! तुमने इसको इस अधिकारपर नियत किया और सामन्तों में भी प्रसिद्ध हुआ पात्र मनुष्य कठिनता से मिलता है यह तेरा शुभचिन्तक जीतारहै जो राजा दूसरे के दोषों से मित्र या पवित्र नौकर को दण्ड देता है वह दोषसे संयुक्त मन्त्रीवाला आप से आप शीघ्र नाश होजाता है स्यार के उस शत्रुसमूह में से कोई धर्मात्मा आया और उसने सब छलकरने का भेद वर्णन किया तब वह स्यार मृगराज से प्रीतिमान् और पूजित होकर बड़े स्नेह और मिलाप के साथ शुद्ध जानकर दण्ड पाने से छूटा फिर नीतिशास्त्रज्ञ और

क्रोध से दुःखित स्यार ने मृगराज को पूजकर देह के त्याग के लिये नियम करना चाहा पूजा से पूजन करते और प्रीति से प्रफुल्लित नेत्रवाले उस शार्दूल ने उस धर्मिष्ठ स्यार को निषेध किया तब स्यार ने नम्रतापूर्वक भ्रान्तचित्त उस शार्दूल को देखकर अश्रुपातयुक्त गद्गद वचनों से कहा कि मैं पहिले आप से पूजित हुआ और पीछे से भी सत्कार किया गया दूसरों के अधिकार पर नियत होनेवाला मैं आप के पास निवास करने के योग्य नहीं हूं व्याकुल अधिकारहीन प्रतिष्ठारहित नौकर और जो अधिकारी कि शत्रुवों से दुःखी किये गये और लोभी, क्रोधी, भयभीत और जिसको निकृष्टकर्मों का दोष लगाया गया और जो अहंकारी होकर ऐश्वर्य का चाहनेवाला है और जो जीविका त्याग करनेवाला है और जो बहुत व्यसनों के मिलने से दुःखी है और जो कोई धनधान्य सहित गुप्त हुआ है वह सब अप्रीतिकारी और निर्धन हैं फिर तुम अप्रतिष्ठित अधिकाररहित नौकर के विश्वास को कैसे पावोगे और मैं कैसे रहसकूंगा तुमने मुझको समर्थ जान के परीक्षा लेके लिखपढ़ अधिकार पर नियत किया फिर प्रतिज्ञाओं को तोड़कर मेरा अपमान किया पहिले सभा में जो श्रेष्ठप्रकृतिवाला प्रसिद्ध हुआ उसकी प्रतिज्ञा पालन करनेवाले राजा को अप्रशंसा न करनी चाहिये यहां इसप्रकार मुझ अपमान पानेवाले में विश्वास को नहीं पावोगे और तुझ अविश्वासी में मेरे चित्त की व्याकुलता प्रकट होगी मैं शंकायुक्त और भयभीत हुआ और मेरे शत्रु म्लानचित्त असन्तोषी मेरे दोष को देखनेवाले हैं और यह काम बहुत कपट छलवाला है शत्रु दुःख से मिलाप करनेवाला होता है और मिलाप करनेवाला दुःख से शत्रु होता है जो प्रीति कि मिलाप और विरोध नाम दोनों विशेषण रखनेवाली है वह उसके साथ वर्तमान नहीं होती है अर्थात् वह प्रीति स्वामी के अभीष्ट को नहीं करती है कोई स्वामी के प्रिय करने में दृष्टि नहीं आता है अपने और दूसरे के प्रयोजन के कारण गर्भित होते हैं शुद्धचित्त नौकर बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं मनुष्य का जानना कठिन है क्योंकि राजाओं का चित्त स्थिर नहीं है समर्थ और शंका से रहित मनुष्य सौ में से एक मिलता है एकाएकी मनुष्यों का नियत करना और अकस्मात् अधिकार से छुड़ादेना प्रतिष्ठा देना और बुराभला कर्म करना बुद्धि की न्यूनता है इसप्रकार से वह स्यार धर्म, अर्थ से सम्बन्ध रखनेवाले मीठेवचनों को कहकर राजा को प्रसन्न करके वन को चलागया फिर वह

बुद्धिमान् स्यार उस मृगराज की शिक्षा को स्वीकार न करके देह त्याग के नियम में नियत होकर देह को त्याग स्वर्ग को गया ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

एकसौबारहका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे सर्वधर्मभृतांवर! राजा को क्या करना चाहिये और किस कार्य को करके सुखी होता है इसको विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले अच्छा श्रवणकरो मैं कार्य के एक निश्चय को कहता हूं जैसे कि इस लोक में राजा को करना चाहिये और वह करके सुखी होता है इसप्रकार से न करना चाहिये जैसे कि हम ऊंट के बड़े वृत्तान्त को सुनाते हैं हे युधिष्ठिर! उसको समझो प्रजापति यज्ञ में एक जातिस्मर नाम बड़ा ऊंट हुआ वह महाव्रतवाला ऊंट वन के बीच बड़ी तपस्या करनेलगा उसके तप से समर्थ ब्रह्माजी प्रसन्न हुये और वर मांगने को इच्छा करवाई तब ऊंट बोला कि हे भगवन्! जो आप प्रसन्न हैं तो मेरी गर्दन लम्बी होजाय क्योंकि मैं सौ योजन से अधिक चरने को जाता हूं वरदायी ब्रह्माजी ने कहा कि ऐसाही होय यह उत्तम वर पाकर ऊंट अपने वनको गया तब उस निर्बुद्धि ने वरके पाने से आलस्य किया और काल के मारे उस दुरात्मा ने चरने के निमित्त जाना भी छोड़दिया किसी समय परिश्रम से शान्त होकर अपनी सौ योजन की गर्दन को फैलाकर चरनेलगा दैवयोग से उस समय बड़ी वायु चली तब वह पशु अपनी लम्बी गर्दनको गुफामें रखकर बैठगया फिर सब संसार को व्याप्त करती हुई महावृष्टि हुई तब तो शीत में डूबा हुआ भूख और थकावट से दुःखी जल से पीड्यमान एक शृगाल अपने बालबच्चों समेत उस गुफा में आ बैठा तो हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! भूख से महाव्याकुल थकेहुये मांसाहारी शृगाल ने इधर उधर देखकर उस ऊंट की गर्दन को भक्षण किया जब ऊंटने अपनेको भक्षणहुआ जाना तब महादुःखी हो गर्दन को सिकोड़ने का विचार किया जबतक उस पशु ने गर्दन को ऊपर से नीचे की ओर सिकोड़ा तब तक उस स्त्री संयुक्त शृगाल ने गर्दन को भक्षण करडाला तब वह शृगाल ऊंटको मार भक्षण करके आंधी और वर्षा के बन्दहोने पर गुफाके मुख से बाहर निकला इसप्रकार उस निर्बुद्धि ऊंट ने अपना जीव गँवाया आलस्यके करनेसे इसप्रकार के दोष होतेहैं इससे तुम जितेन्द्रिय होकर इसप्रकार के आलस्य को चित्त से दूर करके उद्योगपूर्वक कर्म करो मनुजी ने विजय को बुद्धिरूपी

मूल रखनेवाली कहा है इससे बुद्धि से होनेवाले काम उत्तम हैं और शूरता से होनेवाले मध्यम और बड़ीभारी जमात से होनेवाले काम निकृष्ट गिनेजाते हैं बुद्धिमान् जितेन्द्रिय राजा का राज्य दृढ़ होताहै मनुजी ने अत्यन्त इच्छावान् की पूर्ण विजय को भी बुद्धिरूपी मूल रखनेवाली कहा है हे युधिष्ठिर ! इस लोक में शास्त्रज्ञ सभासद् रखनेवाले राजा का गुप्त मन्त्र और परीक्षा लेकर कर्म करनेवाले के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं यह सम्पूर्ण पृथ्वी बुद्धि रखनेवाले राजा से राज्य करने के योग्य है हे युधिष्ठिर ! प्राचीन समय में यह वचन बुद्धि के ज्ञाता सत्पुरुषों का कहा गया है और मैंने भी शास्त्रकी दृष्टि से तुम को कहा कि तुम बुद्धि के अनुसार कर्म करो ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्वादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

एकसौतेरहका अध्याय ॥

हे पितामह ! कठिनता से प्राप्त होनेवाले राज्य को पाकर फिर साधन न करनेवाला होकर अत्यन्त वृद्धिपानेवाले शत्रु के पास कैसे निवास करे भीष्म जी बोले कि हे भरतबंशिन् ! यहां एक प्राचीन इतिहास कहता हूं जिसमें नदियों के और समुद्र के प्रश्नोत्तर हैं कि असुरों के आश्रयस्थान नदियों के स्वामी समुद्रने अपने उत्पन्न होनेवाले सन्देहको नदियोंसे पूछा कि हे नदियो ! तुम जल से पूर्ण अपनी तरलधार के वेग से जड़समेत बड़े २ भारी वृक्षों को उखाड़कर यहां लाती हो उनमें छोटी देह और जड़ रखनेवाला तुम्हारे तटोंपर होनेवाला बेत का वृक्ष कभी नहीं देखागया उसको तुम अनादर से नहीं लाती हो अथवा तुम्हारा कोई उपकार किया है जिससे तुम उसको नहीं उखाड़ती हो इसका कारण तुम सबसे मैं सुना चाहता हूं कि क्यों नहीं बेत का वृक्ष तुम्हारे किनारों को छोड़कर यहां आता है वहाँ नदियों में से श्रीगंगाजी ने समुद्र को ऐसा उत्तर दिया जोकि सार्थक और श्रेष्ठ और सहेतु था कि जो यह स्थावरवृक्ष अपने२ स्थानों में नियत हैं वह सब हमारी शत्रुता से स्थान को त्याग करते हैं परन्तु बेत हमारी शत्रुता से नहीं स्थान त्यागता इसका कारण यह है कि यह बेत का वृक्ष हमारे वेग को आते हुये देखकर झुकजाता है और वे वृक्ष नहीं झुकते फिर वह बेत का वृक्ष नदी का वेग हटजाने पर स्थानपाकर जमजाता है और नियमपूर्वक सदैव जितेन्द्रिय और अनुकूल होकर झुकता है कभी उपद्रव नहीं करता इस कारण वह नहीं आता है जो ओषधी वा वृक्ष वा गुल्म हवा

और जल के वेग से हिलते झुलते रहते हैं वह नष्ट नहीं होते हैं भीष्मजी बोले कि जो मनुष्य अत्यन्तवृद्धियुक्त और पकड़ने या मारने में समर्थ शत्रुके वेग को पहिले नहीं सँभालता है वह शीघ्र नष्ट होता है जो ज्ञानी शत्रु के और अपने सार असार पराक्रम को जानता हुआ विचरता है वह नाश को नहीं पाता है इसीप्रकार बुद्धिमान् मनुष्य जब शत्रु को महाबलवान् जानता है तो वेतवृक्ष के समान नम्र होकर रहता है यही बुद्धिमत्ता के चिह्न हैं ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्रयोदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

एकसौचौदहका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! सभा के मध्य में पण्डित, मूर्ख, बुद्धिमान्, मृदु, कठोर मनुष्य जो असभ्य वचन कहें उनको सुनकर राजा क्या करे भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर ! सुनो जिस प्रकार यह प्रयोजन सिद्ध कियाजाता है वह यह बात है कि इस लोक में शुद्धचित्त मनुष्य सदैव अज्ञानी के कठोर वचनों को सहता है कठोरवचन कहनेवाले मनुष्यपर क्षमा करने से उसके पुण्य का भागी होता है और वह क्षमावान् मनुष्य अपने पाप को क्रोधयुक्त मनुष्य पर छोड़ता है रोगी और टिटिहरी के समान अयोग्य वचन कहनेवाले को क्षमा करे सबसे शत्रुता रखनेवाला पुरुष फल को नहीं पाता है वह मनुष्य उस पापकर्म के साथ सदैव अपनी प्रशंसा करता है कि अमुक योग्य पुरुष से मैंने सभा में यह कहा और उसने सुनकर मृतक समान लज्जायुक्त होकर शिर को नीचा करलिया प्रशंसा के अयोग्य कर्म से प्रशंसा करनेवाला निर्लज्ज होता है ऐसा नीचपुरुष युक्ति से क्षमा करने के योग्य है सदैव निर्बुद्धि जो २ कहैं वह ज्ञानी को क्षमा करने के ही योग्य है प्राकृतमनुष्य की निन्दा और स्तुति से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जैसे कि वनमें निर्बुद्धि काग के अयोग्य शब्द करने से जो पापकर्म के प्रकट करने पर वचनों ही से दूसरे के दोष को साबित करता है उस समय उसका प्रयोजन वचनों ही से होजायगा अर्थात् उस मिथ्या दोष लगानेवाले को शाप दे वहां मारने का व्यापार नहीं होता है वह मनुष्य मोर के समान गुप्त अंगों को दिखाता हुआ कर्म और वचन आदि के व्यापार से प्रत्यक्ष कहता है कि मेरी माता के पेट में अन्य मनुष्य ने वीर्य डाला है, लोक में जिसके कहने और करने के योग्य कुछ भी नहीं है बुद्धिमान् पवित्र मनुष्य उस निर्बुद्धिता में फँसेहुये के साथ वार्तालाप कभी न करे जो

मनुष्य नेत्रों के सामने गुणों का कहनेवाला है और परोक्ष में निन्दा करता है वह लोक में ज्ञान धर्म से नष्ट होकर कुत्ते के समान है ऐसा मनुष्य जो परोक्ष में निन्दा करता है वह सौ मनुष्यों को भी जो दान देता है और होम करता है उसके फल को क्षणमात्र में नष्ट करता है इस कारण ज्ञानी मनुष्य शीघ्रही उस प्रकार के पापात्मा और असाधुपुरुषों को त्याग करे शिष्टलोगों के मध्य में दुर्वचनों को कहता दुरात्मा पुरुष दोषों को ऐसे प्रकट करता है जैसे कि सर्प अपने फन को जो अज्ञानी उस दुष्टकर्मों को बदला देने की इच्छा करता है वह महादुःख में डूबता है शान्तचित्त मनुष्यों की निन्दा करनेवाले को कुत्ते और गर्जनेवाले मतवाले हाथी के समान त्याग करे, अज्ञानियों के मार्ग में वर्तमान इन्द्रियों के वशीभूत नम्रतारहित शत्रुभाव रखनेवाले सदैव ऐश्वर्य के चाहनेवाले पापबुद्धि मनुष्यों को धिक्कार है ऐसे लोगों के कठोरवचन सुनकर तुम उनको उत्तर मत दो और क्रोधयुक्त मत हो जो स्थिरबुद्धि मनुष्य हैं वह नीचसंगी उत्तमपुरुष की निन्दा करते हैं वह क्रोधयुक्त थप्पड़ मारे या धूलि और भूसे से ढकदे और दांत निकालकर भयभीत भी करता है यह सब बातें अज्ञानी, क्रोधी, निर्दयी मनुष्य में होती हैं जो मनुष्य सभा में दुष्टात्मा दुर्जन मनुष्य की करी हुई निन्दाको क्षमा करे और सदैव इस दृष्टान्त को भी पढ़े वह वचनरूप अप्रियता को नहीं प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुर्दशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

एकसौपन्द्रहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाज्ञानिन्, पितामह! मेरा यह बड़ा संशय है वह आप मिटाने के योग्य हैं आप हमारे कुल के उत्पन्न करनेवाले हो हे तात! दुरात्मा पुरुषों की यह बातें आपने वर्णन कीं इस कारण तुमको बतलाता हूं कि जो राजतन्त्र का हितकारी है कुल का उदयकारी है वह वर्तमान या भविष्यत् काल में मंगल और वृद्धि का करनेवाला पुत्र पौत्रादि को पराक्रमी करनेवाला देश की वृद्धि करनेवाला है और जो खाने पीने की वस्तुवों में देह की हितकारी हैं वह सब आप कहिये और जो राजा राज्याभिषेकयुक्त अपने देश में मित्र और सुहृद्जनों से संयुक्त है वह प्रजा को कैसे प्रसन्न करे और जो राजा इन्द्रियों को आधीन न करने से उनकी प्रीति के आनन्द में मग्न हठी होकर नीचों के ऐश्वर्य का चाहनेवाला है उसके घरानेवाले नौकर विरुद्धता को प्राप्त होते हैं

वह राजा नौकरों के उद्योगों से प्राप्त होनेवाले धन आदि से संयोग नहीं पाता है हे बुद्धि में बृहस्पतिसमान ! आप मेरे इस संशय के दूर करने के निमित्त बड़ी कठिनता से जानने के योग्य राजधर्म को कहिये हे पुरुषोत्तम ! तुम हमारे कुलकी वृद्धि के चाहनेवाले हो और एक बड़े ज्ञानी विदुरजी जो सदैव हमको उपदेश करते हैं मैं तुम से कुल का हितकारी और राज्य की वृद्धि का उदय करनेवाला वचन सुनकर सुखपूर्वक अमृत से तृप्त हुये के समान आपको उत्तर दूंगा, सब गुणों से सम्पन्न समीप रहनेवाले नौकर कैसे होने चाहिये, कैसे कुलीन और किसप्रकार के नौकरों के साथ राज्यकाम कियाजाता है, नौकरों से रहित अकेला राजा रक्षित नहीं होता है और यह राज्य और सब प्रजा भी रक्षित नहीं होती है कुलीन राजा उनको चाहता है, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन् ! अकेले राजा से राज्य करना असम्भव है हे तात ! साथी न रखनेवाले राजा से कोई अर्थ सिद्ध होना असम्भव है और अर्थ प्राप्त करने पर भी सदैव रक्षाकरना असम्भव है जिसके सब नौकर ज्ञान और विज्ञान में परिडत शुभचिन्तक कुलीन और प्रीति रखनेवाले हैं वही राज्य के फल को पाता है जिस राजाके मन्त्री कुलीन और गुप्तधनलेकर शत्रुसे मिलनेवाले नहीं हैं और साथ रखनेवाले राजा को सलाह देनेवाले शान्तस्वभाव और समय के जानने में परिडत हैं, व्यर्थकर्मों के न करनेवाले कालज्ञान में विशारद गतबातों का शोच नहीं करनेवाले हैं वह राजा राज्यफल को भोगता है जिसके नौकर सुख दुःख में एक भाव होकर सहायक और प्रियकारी हैं और राज्य के विचार में तत्पर होकर सत्यवक्ता हैं वह राजा राज्यके फल को भोगता है, जिसके पासके रहनेवाले मनुष्य सदैव पीड्यमान नहीं होते हैं और शिष्ट और कुलीनों का शरण्य है वह राजा राज्यफल को भोगता है जिस राजा के खज़ाने का संचय उन मनुष्यों से वृद्धि किया जाता है जोकि खज़ाने की वृद्धि करनेवाले विश्वासित और सदैव सन्तोषी हैं वह राजाओं में उत्तम है जिसके नौकर गुप्तधन लेने से शत्रुता न करनेवाले विश्वासित खज़ाने की वृद्धि में लगे हुये पात्ररूप निर्लोभी अन्न आदि के गोदाम में गुणयुक्त हों और नगर में जिसका कारोबार श्रेष्ठ और अदालतों में शंख की स्मृति के अनुसार जिसका निर्णय करना देखने में आताहो वह राजा अपने धर्मफल को भोगनेवाला है जो राजा मनुष्यों को पारितोषिक आदि के द्वारा स्वाधीन करनेवाला राजधर्म

का ज्ञाता षड्वर्ग को काम में लाता है वह धर्म के फल को भोगता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

एकसौसोलहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस विषय में एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जोकि लोक में बड़ा दृष्टान्तरूप और सदैव सत्पुरुषों को करने के योग्य है वह इसी प्रयोजन के समान तपोवन में मैंने सुना है और उत्तम ऋषियों ने परशुरामजीसे कहा है वह यह है कि हिंसकआदि जीवों से व्याप्त किसी महावन में मूलफलके आहार करनेवाले, सावधान, जितेन्द्रिय, दीक्षावान्, शान्तचित्त, वेदपाठी, पवित्र, व्रतों से विशुद्धआत्मा, सदैव सतोगुणवृत्ति एक ऋषि थे उन बुद्धिमान् आसनबद्ध विराजमान ऋषि के शुद्धचित्तको जानकर सब वनचारीजीव उनके सम्मुख वर्तमान हुये उनमें सिंह और व्याघ्रों का समूह और निर्दयी मदोन्मत्त बड़े २ हाथी और नानाप्रकार के व्याघ्र, गैंड़े, रीछ और अन्य बहुत से भयानक पशु थे वह सब रुधिर, मांस के खानेवाले उसके सखा हुये और शिष्यों के समान उस ऋषि के दासरूप होकर प्रियकारी हुये और सब उनको सखा मानकर अपने २ स्थानों को चलेगये वहां गांव का रहनेवाला एक कुत्ता भी था वह नहीं गया वहीं उनकी रक्षा में रहा वह पशु भक्त प्रीतिमान् सदैवव्रत करने से बलहीन फल, मूल, जल का आहार करनेवाला शान्तरूप अच्छे जीवों की सूरत था वह वृक्ष की जड़ में बैठेहुये ऋषि की प्रीति में बँधाहुआ मनुष्य केसे भाव को पहुँचा तदनन्तर रुधिरभक्षी, मृत्युकाल के समान पराक्रमी, निर्दयी और कुत्ते के निमित्त अत्यन्तप्रसन्न द्वीपी नाम व्याघ्र सम्मुख आया और जिह्वा से ओठों को चाटता, पिपासायुक्त, पूंछ को हिलाता, क्षुधायुक्त हो उसने उस कुत्ते के मांस को चाहा और हे युधिष्ठिर! वहां जीवन की इच्छा करनेवाले कुत्ते ने उस निर्दयी को आता हुआ देखकर मुनि से कहा कि हे महाराज! यह कुत्तोंका शत्रु द्वीपी नाम व्याघ्र मेरे मारने को आता है इससे आप मेरी रक्षा करिये यह सुनकर मुनिने कहा कि तुझको इस द्वीपी व्याघ्र से कभी भय न करना चाहिये हे पुत्र! यह द्वीपी अपने स्वरूपवाले ही से जुदा होता है यह कहकर उस कुत्ते को द्वीपी के स्वरूप में प्रविष्ट किया जिसका रंग सुनहरा चित्रविचित्र अंग चलायमान दाढ़ होकर निर्भय वन में रहनेलगा जब द्वीपीने उस पशु को अपने समान सम्मुख देखा तो क्षणभरमेंही उसका मित्र हुआ उसके पीछे महाभयानक बड़े दांत और

मुख को चाटताहुआ एक व्याघ्र उस द्वीपी व्याघ्र के मांस की इच्छा से उसके सम्मुख आया द्वीपी ने उस क्षुधातुर वनचारी हिंसक व्याघ्र को देखकर मुनि की शरण ली तब मुनि ने उसको व्याघ्र बना दिया तब उस शार्दूल ने उसको देखकर नहीं मारा फिर तो उस कुत्ते ने व्याघ्ररूप पराक्रमी मांसाहारी होकर मूल, फलों के खाने की इच्छा नहीं की ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षोडशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

एकसौसत्रहका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि मारेहुये मृगों से तृप्त होकर पर्णशाला के समीपी वृक्ष की जड़पर वह व्याघ्र निर्भय होकर बैठा था दैवयोग से बादल के समान काला मतवाला मेघ समान गर्जना करनेवाला एक हाथी आया तब वह व्याघ्र उस हाथी के भयानक शब्द से भयभीत होकर ऋषिजी के पास जाकर शरणागत हुआ फिर उस महामुनि ने व्याघ्र को हाथी के रूप में समाधिस्थ किया और वह हाथी उस पर्वताकार हाथी को देखकर भयभीत हुआ फिर वह हाथीरूप आनन्द युक्त हो कमल खण्डों से अलंकृत पद्मरेणु से भूषित गैंड़ों के समूहों में विचरने लगा इस आनन्द में इसको बहुत दिवस व्यतीत हुये थे कि पर्वत की कन्दरा में उत्पन्न होनेवाला हाथियों का नाशक मृगेन्द्रों का राजा महाभयानक केशरी सिंह उस देश में आया उस आते महामृगेन्द्र को देख भयभीत कम्पितदेह उस हाथी ने फिर मुनि की शरण ली तब उस गजेन्द्र को मुनि ने सिंहरूप बनाया तब वनवासी सिंह उसको देखकर भयभीत हुआ और वह बना हुआ सिंह मुनि के आश्रम मेंही रहा तब अन्य वनवासी जीव मारे भय के तपोवन के सम्मुख दृष्टि नहीं पड़े दैवयोग से सब जीवों का मारनेवाला महाबली रुधिरभक्षी सब जीवों का भयकारी आठ पैर ऊंचे नेत्रवाला वनवासी शरभ उस सिंह के मारने के लिये उस मुनि के आश्रम में आया तब फिर मुनि ने उस सिंहको मतवाला शरभ बनाया उसको देखकर वह वनवासी शरभ भी भयभीत होकर तपोवन से भागा फिर वह कुत्ता शरभरूप से आश्रम में रहनेलगा और सदैव मुनि की शरण में आनन्द करनेलगा तब उस शरभ को देख सब वन के जीव जिधर तिधर भागे और यह शरभ भी फल, मूलोंका भोजन त्यागके मांसाहारी होगया और कुत्ते की योनि से उत्पन्न उस शरभ ने सब उपकारों को भूलकर उस मुनि को मारना चाहा फिर मुनि ने ज्ञानचक्षुसे जानकर उस शरभ से कहा कि हे कुत्ते!

तैंने कुत्ते से द्वीपीरूप और द्वीपीसे व्याघ्ररूप और व्याघ्र से मतवाला हाथीरूप और हाथी होकर सिंहरूप और सिंहरूप से शरभरूप को पाया मैंने बड़ी प्रीति से तुझको नाना रूपों में बदला और हे पापिन् ! तू मुझसे निरपराधी को मारना चाहता है इस कारण तू उसी अपने कुत्तेकी योनि में प्राप्त होजाने के योग्य है तदनन्तर वह मुनियों का शत्रु, दुष्टात्मा, अज्ञानी शरभ फिर कुत्ता होगया॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

एकसौअठारहका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि पूर्वरूप को प्राप्त होनेवाले उस कुत्तेने बड़ा कष्ट पाया और ऋषि का फटकारा हुआ पापी वन से भी निकाला गया इसप्रकार बुद्धिमान् राजा सत्यता, पवित्रता, स्वरूपता, शास्त्रज्ञता, चलन, रीति, कुलीनता, शान्तता, दया, पराक्रम, प्रभाव, प्रीति, क्षमा आदि सबगुणों को जानकर जो नौकर जिस अधिकार के योग्य होय उसपर नियत करे और उसकी अच्छेप्रकार से रक्षा करे, विना परीक्षा लिये मन्त्री भी राजा को नियत नहीं करना चाहिये अन्य कुलवाले मनुष्यों से राजा सुखपूर्वक आनन्द और वृद्धि नहीं पाता है निरपराध होनेपर कुलीन नौकर को दण्ड देना राजा को पापयुक्त करता है, अच्छे लोगों की प्रीति से कठिन अधिकार का पानेवाला अन्य घराने का प्राकृत मनुष्य धमकाने से शत्रु होजाता है सुशिक्षित, कुलीन, बुद्धिमान्, ज्ञानविज्ञान में पूर्ण, सबशास्त्रों का ज्ञाता, क्षमावान्, देशी, कृतज्ञ, बलिष्ठ, शान्तचित्त, नम्र, सुशील, निर्लोभी, मासिक पर सन्तोषी, स्वामी के मित्रों के ऐश्वर्य को चाहनेवाला, देशकाल का ज्ञाता, जीवोंकी प्रसन्नता करनेवाला, सदैव अपने काम में प्रवृत्त, शुभचिन्तक, निरालस्य, आचारवान्, अपने देश की सन्धि, विग्रह के विषयों में प्रवीण, राजाके त्रिवर्ग का जाननेवाला, पुरवासी और देशवासियों का प्यारा मन्त्री होना चाहिये ॥

शत्रु की सेना का छिन्नभिन्न करनेवाला, व्यूहों की मुख्यता का जाननेवाला, सेना के प्रसन्न करने में चतुर, देह और अंगों की चेष्टा की मुख्यता का जाननेवाला, यात्रा के कुशल हाथियों की शिक्षा की मुख्यता का ज्ञाता, अनुत्तरज्ञानी, वेद के अनुसार कर्मकर्ता, जितेन्द्रिय, पराक्रमी, उचितकर्मी, शुद्ध मनुष्यों से संयुत, सुमुख, सुनेत्र, नीतिज्ञ, गुणचेष्टायुक्त, सेना का अधिपति नियत करना चाहिये ॥

शीघ्रकर्मी, सूक्ष्म आशय का जाननेवाला, शुद्ध और मृदुभाषी, पण्डित, शूर, धनी, देशकाल का जाननेवाला ऐसे मन्त्री को जो राजा नियत करता है और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाता है उसका राज्य ऐसे वृद्धि पाता है जैसे कि चन्द्रमा की किरणें, ऐसे गुणों से संयुक्त, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा और प्रजापालन में प्रवृत्त राजा वृद्धिपाने के योग्य है, पण्डित, क्षमावान्, पवित्र, देशकाल का जाननेवाला, सेवाकरनेवाला, शास्त्रज्ञ, शास्त्रों का सुननेवाला, उत्तर प्रत्युत्तर और खण्डन मण्डनमें कुशल और शास्त्र का स्मरण रखनेवाला, धारणा बुद्धिवाला, न्याय के अनुसार वार्तालाप करनेवाला, जितेन्द्रिय, सदैव प्रियभाषी और शत्रुवों पर भी क्षमावान्, दानविषय में आप कर्म करनेवाला, श्रद्धावान्, सुखदर्शन, पीड्यमानके हाथ में देनेवाला, स्वामी के हित में प्रीतिमान्, अमात्यकर्म में सावधान, निरहंकारी, सत्संगी, राज्य के कामों का देखनेवाला, कार सर्कारी करने पर मन्त्रियों को पारितोषिक देनेवाला, भक्तों का प्यारा, मनुष्यों की शिष्टाचारी करनेवाला, स्थिरचित्त, प्रसन्नमुख, सदैव नौकरों की इच्छा रखनेवाला, क्रोधरहित, महासाहसी, योग्य दण्ड देनेवाला, न कि दण्ड से रहित धर्म के कामों की शिक्षा करनेवाला, दूतरूप नेत्र रखनेवाला, प्रजा के वृत्तान्तों का जाननेवाला, सदैव धर्म व अर्थ में कुशल, सैकड़ों गुणों से भरा हुआ जो राजा है वह चाहने के योग्य है और हे युधिष्ठिर ! युद्धकर्तालोग भी सब गुणों से व्याप्त श्रेष्ठ मनुष्य राज्य के पोषण में सहायक खोजने के योग्य हैं और ऐसेही मनुष्यों की वृद्धि चाहनेवाला राजा कभी अपमान न करे और जिसके युद्धकर्ता युद्ध में अहंकारी, कृतज्ञ, शस्त्रविद्या में प्रवीण, धर्मज्ञ, निर्भय, हाथी और रथ की सवारी में कुशल, बाण और अस्त्रविद्या में पूरे हैं उसी राजा की यह पृथ्वी है, जो राजा सबके प्रसन्न और आधीन करने में प्रवृत्त युद्ध और उद्योग आदि का अभ्यास रखनेवाला और मित्रों से संयुक्त होता है वह राजा राजाओं में उत्तम है हे भरतवंशिन् ! जिसके मनुष्य स्वाधीन हों उन एकहज़ार अश्वारूढ़ों से यह सम्पूर्ण पृथ्वी विजय के योग्य है ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

एकसौउन्नीसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जो राजा इसप्रकार कुत्ते के समान नौकरों को अपने स्थान और अधिकारों पर नियत करता है वह राज्यफल को भोगता है, सत्कार

कियाहुआ कुत्ता अपने योग्य स्थानों को उल्लंघन करके बड़े अधिकार पर नियत करना न चाहिये क्योंकि वह अपने स्थान से ऊँचे अधिकार पर पहुँचकर दूसरी भूल करता है, अपने स्वाभाविक गुणों से संयुक्त, अपने कामों में अच्छा प्रवृत्त मन्त्री नियत करने के योग्य है अन्य स्थानपर राज्य के कार्य पूरे होने के योग्य नहीं हैं जो राजा नौकरों के लिये उनके योग्य अधिकारों को देता है वह राजा नौकरों के गुणों से संयुक्त राज्य के फल को पाता है शरभ शरभ के स्थान में बड़ा सिंह सिंह के स्थान पर और व्याघ्र व्याघ्र के स्थान पर और द्वीपी द्वीपी के स्थानमें बुद्धिके अनुसार योग्य अधिकारों पर नियत करके फिर उन नौकरों को विपरीत रीति से नियत करना अयोग्य है जो निर्बुद्धि राजा प्रमाण से बाहर नौकरों को विपरीत अधिकारों पर नियत करता है वह प्रजा को प्रसन्न नहीं करता है सबगुणों का चाहनेवाला उन मनुष्यों को नियत न करे जो अज्ञानी, नीच, अल्पबुद्धि, अजितेन्द्रिय और अकुलीन हैं जो आदमी साधु, कुलीन, शूर, ज्ञानी, दूसरे के गुण में दोष नहीं लगानेवाले, पवित्र, चतुर हों और नीच न हों वह सदैव करने के योग्य हैं जो दासरूप प्रीतिमान् हैं शान्त, शुद्ध और स्वाभाविक उपकारी हैं और अपने स्थान से अलग नहीं कियेगये हों वह राजाओं के प्राणरूप होने चाहिये, सिंहही सदैव हो और सिंहही पीछेकी ओर हो जो सिंह नहीं है वह सिंहके साथ सिंहके समान फलको पाता है जो सिंह कुत्तों से घिराहुआ सिंह के कर्मफल में चित्त लगा रहा है वह कुत्तों से सेवा कियाहुआ सिंह का फल भोगने को समर्थ नहीं होता है राजन्! इसप्रकार ज्ञानी, शूर, बहुत शास्त्र का जाननेवाला राजा कुलीन पुरुषों के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी के विजयकरने को समर्थ होता है हे युधिष्ठिर! जो निर्बुद्धि, विद्यारहित, मिथ्यावादी और निर्बल हों ऐसे नौकर राजा लोगों को फलों में नियत करने के योग्य नहीं हैं राजा ऐसे नौकरोंको दिलासा और भरोसा दे जोकि स्वामी के कामों में प्रवृत्त और राजा के हितकारी बाण के समान विना रोक के चलते हैं उद्योग में प्रवृत्त होकर राजाओं की ओर से खज़ाना सदैव रक्षा के योग्य है राजा लोग खज़ाने को मूल समझनेवाले हैं और खज़ानाही वृद्धि करनेवाला होता है तेरा गोदाम अनाज आदि से भराहुआ सदैव सत्पुरुषों को सुपुर्द हो और तुम धन धान्य को उत्तम माननेवाले हो और युद्धमें कुशल तेरे नौकर सदैव काम में प्रवृत्त रहें यहां हाथियों के चलाने आदिमें कुशलता इच्छा

की जाती हैं हे कौरवनन्दन ! तुम जाति और बान्धवों की ओर दृष्टि करनेवाले मित्र सम्बन्धियों से संयुक्त और पुरवासियों के मनोरथों की सिद्धि चाहनेवाले हो, हे तात ! तेरी यह दृढ़बुद्धि प्रजालोगों में हितकारी है मैंने कुत्ते के दृष्टान्त को वर्णन किया अब क्या सुनना चाहते हो ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोनविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

एकसौबीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! तुम ने बहुत से राजाओं के वह चलन व्यवहार वर्णन किये जो कि प्राचीन समय में राजधर्म के जाननेवाले प्राचीन अचार्यों ने कहे वही वेदोक्त सनातनधर्म ब्योरेवार वर्णन किया हे पितामह ! राजधर्मों के विशेष उन धर्मों को भी कहिये जिनको अच्छे प्रकार से धारण करसकें भीष्मजी बोले कि सब जीवों की रक्षाही को क्षत्रियों का धर्म माना है उसको जिस प्रकार से करना योग्य है वह मैं कहता हूं कि जैसे मोर चित्रविचित्र परों को धारण करता है उसीप्रकार धर्मज्ञ राजा भी बहुत प्रकार के रूपों को प्रकट करे जैसे तीव्रता, कुटिलता, सत्यता और सीधेपने को धारण करता है वैसे ही न्याय और बुद्धिबल में प्रवृत्त होकर सुख को पाता है जिस प्रयोजन में जैसे रूप से मनोरथ सिद्ध होता जाने उसी वर्ण और रूप को दिखावे बहुरूप राजा का सूक्ष्मअर्थ भी पीड़ाको नहीं पाता है, सदैव गुप्तवार्ता की रक्षा करनेवाला ऐसा हो जैसे कि शरद्ऋतु का मौन हुआ मोर होता है शास्त्र में प्रवीण श्रीमान् राजा शुद्ध वचन और शुद्ध देहवाला हो और आपत्ति के द्वारों पर सावधानी से ऐसे वर्तमान हो जैसे कि वर्षा से उत्पन्न होनेवाले पर्वतों के जल झरनों पर वर्तमान होते हैं और सिद्ध ब्राह्मणों का शरणागत हो, अर्थ की इच्छा करनेवाला राजा शिखा को धर्मध्वजारूप करे और दण्ड में सदैव सन्नद्ध होवे और उसको बड़ी सावधानी से करे लोक की आमद और खर्च को देखके बड़े वृक्षवाले वन को निचोड़े अर्थात् धनरूप रस को लेवे, अपने समूह में शुद्धचित्त होवे और शत्रु के खेतों को घोड़े आदि के पैरों से सत्यानाश करे और अपने पक्ष को खूब देखे शत्रु के मित्रों को चाहै और शिकारबाज़ी के बहाने से खूब भ्रमण करता हुआ शत्रुवों के पक्षवालों को ऐसा कम्पायमान करे जैसे कि वनों में फूलों को ऊँचे और वृद्धि पानेवाले पहाड़ों की समानता रखनेवाले राजाओं को नष्ट करे और अविज्ञात स्थान में प्रवेश करके गुप्तयुद्ध को करे और जैसे

वर्षाऋतु में सायंकाल के समय मोर निर्जन स्थान में गुप्त होता है इसीप्रकार मोर के समान स्त्रियों के साथ महल में निवासकरे परन्तु कवच को नहीं त्यागे आप अपनी रक्षाकरे, दूतों के बतायेहुये स्थानों पर शत्रु के लायेहुये वर्णरूप पाशों को अपनी देह से जुदाकरे कठिनता से निश्चय होनेवाले पाश ज्ञान होनेपर उस कपटभूमि को पाकर अपने को उससे मिलावे तब नष्टता को प्राप्त होता है उन बड़े विषभरे क्रोधी मनुष्यों को मारे जो कि कुटिलता किया करते हैं शत्रु की सेना के पक्षों का नाशकरे और दृढ़मूल रखनेवाले मन्त्री और शूरों को नियतकरे और सदैव मोर के समान इच्छा के अनुकूल उत्तम कर्मों को करे और सब ओर से बुद्धि को ऐसे प्राप्त करे जैसे कि घनेवनों में टीड़ियों का समूह वृक्षोंको बे पत्ते करता है इसप्रकार से राजा मोर के समान अपने राज्य की रक्षाकरे और वह चतुर मनुष्य नीति उत्पन्न करनेवाली बुद्धि को धारणकरे और अपनी बुद्धि से चित्त को स्वाधीन करना और दूसरे की बुद्धि से दृढ़ निश्चय करना और शास्त्र से उत्पन्न होनेवाली बुद्धि के द्वारा अपने गुणों का प्राप्त होना यह शास्त्र का प्रयोजन है शत्रु को मीठेवचनों से विश्वास दिलावे और अपनी सामर्थ्य को देखे, अपने विचार से अपनी बुद्धि को भ्रमावे जो कि सामनीति से संयुक्त बुद्धि रखनेवाला हो और कर्तव्य, अकर्तव्य कर्मों का जारी करनेवाला हो उस गम्भीरबुद्धि पण्डित को योग्य उपदेश होने पर उपदेश का करना वृथा है अर्थात् उपदेश की आवश्यकता नहीं है चाहे वह ज्ञानी बुद्धि में बृहस्पतिजी के भी समान हो और निर्बुद्धिताके बाद को करे वह शीघ्रही ऐसे विश्वास को प्राप्त होता है जैसे कि जल में डाला हुआ गर्म लोहा सर्दी को प्राप्त होता है राजा अपने और दूसरे के सब कामों को जो कि शास्त्रों से उपदेश हुयेहों जारीकरे प्रबन्ध की रीतियों का जाननेवाला राजा मृदुस्वभाव ज्ञानी और शूर को और जो दूसरे महाबलवान् हैं उनको अपने राज्य के कामोंपर नियतकरे फिर अपने योग्य अधिकारों पर नियत होनेवाले पुरुषों को देखकर उनसब का ऐसा द्रष्टा हो जैसे कि वीणा के बड़े स्वर को देखता है धर्मों की अविरोधता से सबका हितकरे जो राजा यह मानता है कि यह मेरा है वह पर्वत के समान अचल है प्रिय, अप्रिय को समानकर निर्णय को बुद्धि में दृढ़ नियत करके धर्म की ऐसे रक्षाकरे जैसे कि सूर्य बड़ी किरणों को धारण करके प्रजा का पोषण करता है प्रकृति देश और घराने के जानने-

वाले नम्रभाषी तरुणावस्था में निर्दोषी हितसंयुक्त व्याकुलतारहित निर्लोभी शिक्षावान् शान्तचित्त धर्मों में कुशल, धर्म, अर्थ के रक्षक पुरुषों को राजा सब अधिकारों पर नियत करे कर्म में प्रवृत्त राजा इसप्रकार से राज्य के कामों की प्राप्त होनेवाली यात्रा में कुशल हो और प्रसन्नचित्त दूतों से संयुक्त हो उस सफल क्रोध हर्षवाले और राज्यकार्य के देखनेवाले खज़ाने पर अपना विश्वास रखनेवाले राजा को यह धन से पूर्ण पृथ्वी महाधन ऐश्वर्य की देनेवाली है जिसकी कृपालुता प्रकट है और दण्ड उचित है और जिसका देश और देह रक्षित हैं वह राजा राजधर्मों का जाननेवाला है और जैसे उदय होनेवाला सूर्य अपनी किरणों से संसार को देखता है उसीप्रकार सदैव अपने देश को देखै और दूतोंसमेत अपनी प्रजा के सब वृत्तान्तों को जाने उसीप्रकार अपनी बुद्धि से कर्म करे, राजा अपने वर्तमान समय को जानकर अपने धन को नहीं वर्णन करे वह बुद्धिमान् गौ, भैंस के समान देश को प्रतिदिन दुहै, जैसे क्रमपूर्वक भौंरा रस को पीता है उसी प्रकार राजा धन को लेकर संचयकरे, जो धन रक्षित धन से अधिक होय उसको धर्म के कामों में खर्च करे जो राजा कि शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान् है वह ख़ज़ाने से धन को कभी न दे, थोड़े धन का और शत्रु के मनुष्यों का अपमान नहीं करे, बुद्धि से आत्मा को जाने और निर्बुद्धियोंपर विश्वास न करे धैर्यता, चातुर्यता, जितेन्द्रिय होना, बुद्धि, देह, पृथ्वी, शूरता और देशकाल में असावधान न होना यह आठ बातें थोड़े या बहुत धन में वृद्धिकारक हैं, घृत से सींचीहुई थोड़ी अग्नि भी वृद्धि पाती है और एक बीज हजाररूप से उत्पन्न होता है इसकारण बड़ी आमद और खर्च को सुनकर थोड़े धन का अपमान न करे बालक, तरुण, वृद्ध कैसाही जो शत्रु है वह असावधान रहनेवाले पुरुष को सदैव मारता है दूसरा राज्य का चाहनेवाला काल के द्वारा उसकी जड़ को काटता है, जो कालज्ञ है वह राजाओं में श्रेष्ठ इसकी कीर्ति को हरण करके धर्म का नाशकर अर्थ में इसके बड़े पराक्रम को नष्ट करता है, विरोधी शत्रु निर्बल अथवा बलवान् कैसाही हो उससे राजा असावधान न रहै संचित धनकी नष्टता वा वृद्धि वा रक्षा वा ऐश्वर्य और विजय आदि को जानकर शत्रु से सन्धि करे या युद्ध करे इसहेतु से बुद्धिमान् राजा अपनी बुद्धि से रक्षा कियाजाता है, प्रकाशित बुद्धि पराक्रमी को मारती है और बुद्धि से वृद्धि पानेवाली सेना रक्षित रहती है और वृद्धि पानेवाला शत्रु भी बुद्धि

से पीड़ा को पाता है जो काम बुद्धि के अनुसार होता है वही उत्तम है पण्डित निर्दोष और सब मनोरथों का चाहनेवाला राजा थोड़े पराक्रम से भी उनको प्राप्त करता है अपने को इच्छाओं से संयुक्त चाहता है अर्थात् लोभी और अहंकारी होता है वह कल्याण के पात्र को थोड़ा भी नहीं भरता है इस कारण प्रजा का प्यारा राजा सब से राज्य की भेज ले व प्रजापर बिजली के समान गिरकर देरतक पीड़ादेने से भी पराक्रमी नहीं होता विद्या, तप और बहुतसा धन यह सब उद्योग से मिलसक्ते हैं और बुद्धि के आधीन हैं इस कारण से उद्योग को बड़ा जाने जिस देह में इन्द्र, विष्णु, सरस्वती आदि देवता और सब जीव सदैव निवास करते हैं इसहेतु से ज्ञानी मनुष्य देह का अपमान नहीं करे लोभी पुरुष को सदैव दान के द्वारा मारे लोभी दूसरे के धन से शान्त नहीं होता है जो निर्धन हैं वह सबकर्म के फल सिद्ध करने में लोभी हैं वह सुख के लोभ से धर्म, भोग, पुत्र और स्त्री की इच्छा करते हैं इसलोक में लोभी पुरुष के भीतर सब दोषही होते हैं इसकारण राजा लोभीको अधिकारों पर नियत नहीं करे पूरी बुद्धि से नीचपुरुष को चतावै है इसलिये ज्ञानी राजा शत्रुवों के प्रारम्भ कर्म और सब अर्थों को भी नष्ट करे हे युधिष्ठिर ! ब्रह्ममण्डली में मुख्य वृत्तान्त का जाननेवाला मन्त्रियों से रक्षित कुलीन राजा सामन्तों को अपने आधीन करने को समर्थ है बुद्धिसंयुक्त मिश्रित कहेहुये राजधर्मों को बुद्धि से समझो, जो राजा गुरु के पास जाकर इन धर्मों को हृदय में धारण करे वह संसार की रक्षा करने को समर्थ है जिस राजा का सुख अनीति उत्पन्न दैव से मिलनेवाला बुद्धि के अनुसार हठ से वर्तमान दीखता है उसको उत्तमगति और राज्य के सुख प्राप्त नहीं होते धनों से उत्तमबुद्धि और संसार से पूजित शूरता आदि गुणों से सम्पन्न युद्ध के बीच पराक्रम में देखेहुये पुरुषों का समूहों में देखकर सावधान राजा चढ़ाई करनेवाले शत्रुवों को निशान करके थोड़ेदिनों में ही मारता है नानाप्रकार के मार्ग और कामों से युक्तियों को देखे और विना युक्ति के राय का संयुक्त नहीं करे, निर्दोषी मनुष्योंमें भी दोषों का देखनेवाला राजा उत्तमधन और सुन्दर कीर्ति और धन को अच्छे प्रकार से नहीं भोगता ज्ञानी राजा मित्रों की अच्छी परीक्षा लेकर जिन दो मित्रों को विचार करके एकही अधिकार पर नियत करे उन दोनों के मध्य में जो भारीबोझ को उठावे उसकी प्रशंसा करे मेरेकहेहुये उन राजधर्मों के ऊपर ध्यान

करो और मनुष्यों की रक्षाकरने में बुद्धि को प्रवृत्तकरो तुम सुख से पुण्य के फल को पावोगे हे राजन् ! सबलोक धर्मही को मूल जानता है ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे विंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

एकसौइक्कीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आपने यह सनातन राजधर्म कहा और दण्ड बड़ा समर्थ है सब दण्डों में वर्तमान है देवता, ऋषि, महात्मा, पितृ, यक्ष, राक्षस, पिशाच, साधुगण और अधिक करके लोक में सबजीव और पशुपक्षियों के मध्य बड़ातेजस्वी सर्वव्यापी दण्डही उत्तम है; आप ने इसप्रकार कहा है कि देवता, असुर, मनुष्य, जड़, चैतन्य जीवों के साथ सम्पूर्ण संसार को दण्ड में वर्तमान देखो सो हे पितामह ! मैं इसको मूल समेत जीतना चाहता हूं कि दण्ड कौन है, कैसा है कैसा रूप है और उसका मुख्य स्थान कौनसा है और किसका आत्मा है कैसे उत्पन्नहुआ और क्या आकृति है और प्रजा के मध्य किस प्रकार जागता है आदि अन्त में रक्षा करता हुआ जागता है पहिले कौनरूप से जानाजाता है और दण्ड का कौनसा नाम उत्तम है, दण्ड किसमें नियत करनेवाला है और इसकी कौन गति कहीजाती है इन ग्यारह प्रश्नों में दण्ड कौन है इसका उत्तर भीष्मजी देते हैं कि हे युधिष्ठिर ! सुनो जो दण्ड है और जैसे व्यवहाररूप है और जिसके आधीन है केवल वही दण्ड है और हे तात! अच्छीतरह धर्म का प्रकट करनेवाला व्यवहार इच्छा कियाजाता है, लोकों में सावधान बुद्धि राजा के धर्मका लोप कैसे नहीं होता, जैसे कि इसप्रकार के व्यवहार का वह कर्म इच्छा कियाजाता है जिस में कुमार्ग के द्वारा दूसरे के धन का लेना नहीं होता है हे राजन् ! प्राचीनसमय में मनुजी ने भी आदि में इसको कहा, प्रिय, अप्रिय जिसमें समान हैं उस जारी कियेहुये दण्ड से जो राजा अच्छे प्रकार से प्रजा की रक्षा करता है केवल वही धर्म है और प्राचीन समय में जिसप्रकार मनुजी ने यह वचन कहा है और जो मैंने कहा वह ब्रह्माजी का महावचन है यह वचन प्रथम कहागया इसहेतु से इसको पहिला वचन जानो, इस लोक में वह दण्ड व्यवहार के प्रकट करने से व्यवहार नाम कहा जाता है अच्छे प्रकार जारी होनेवाले दण्ड में तीनवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम बराबर जारी होते हैं रूप से अग्नि के समान प्रकट होनेवाला अर्थात् रुद्ररूप दण्ड, परम दैव है वह दण्ड नीले कमल की समान श्याम चार दाढ़ चार भुजा आठ चरण बहुत से

नेत्र तीक्ष्णकर्ण खड़ेरोम देहवाला जटाधारी दो जिह्वा रखनेवाला रक्तमुख मृगराज के चर्म का धारण करनेवाला है वह अजय दण्ड सदैव इस उग्ररूप को धारण करता है अर्थात् खड्ग, धनुष, गदा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मुसल, फरसा, चक्र, पाश, दण्ड, दुधारा, खड्ग, लोष्ठ और इसलोक में जो कोई शस्त्र हैं उनका रूप मूर्तिमान् दण्डही भेदता, छेदता, पीड़ादेता, घात करता, चीरता, गिराता, मारता, चारोंओर दौड़ता घूमताहै खड्गसे घात करनेवाला और तीक्ष्ण कवच रखनेवाला दुःख से धारण होनेवाला लक्ष्मी से उत्पन्न हुआ विजयरूप धर्मरूप हाकिम और सनातन व्यवहाररूप है शास्त्र, ब्राह्मण और मन्त्ररूप प्राचीन धारणा बुद्धिवाले आचार्यों में उत्तम धर्मरक्षक अविनाशी देवतासीधा चलनेवाला सदैव गमन करनेवाला सबसे पहिले उत्पन्न होनेवाला असंग रुद्र का पुत्र मनु बड़ा कल्याण करनेवाला है हे युधिष्ठिर ! दण्ड के यह सब नाम कहे अब दण्ड के मुख्यरूपको कहतेहैं कि दण्डही भगवान् विष्णु हैं और दण्डही प्रभु नारायण हैं सदैव महारूप को धारण करता महापुरुष कहाजाता है अब दण्ड को शक्तिरूप वर्णन करते हैं जिसप्रकार ब्रह्मकन्याओं को लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती, दण्डनीति और जगद्धात्री कहते हैं यह सब दण्डही बहुत से रूप धारण करनेवाला है अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, धर्म, अधर्म, बल, निर्बल, प्रारब्धहीन, प्रारब्धी, पुण्य, पाप, गुण, अवगुण, इच्छा, अनिच्छा, ऋतु, मास, रात्रि, दिवस, क्षण, सावधानी, असावधानी, प्रसन्नता, क्रोध, शान्तचित्त, बाहर, भीतर, प्रारब्ध, उद्योग, मोक्ष, बन्धन, भय, निर्भय, हिंसा, अहिंसा, तप, यज्ञ, संयम, विष, निर्विष, अन्त, आदि, मध्यकी क्रियाओं का प्रपंच, अहंकार, भूल, एकता, कपट, धैर्य, न्याय, अन्याय, बल, अबल, विरुद्धता, व्यय, अव्यय, नम्रता, दान, काल, अकाल, मिथ्या, बुद्धिमानी, सत्य, श्रद्धा, अश्रद्धा, नपुंसकता, निश्चय, लाभ, हानि, विजय, पराजय, कठोरता, नम्रता, मृत्यु, शास्त्र, अशास्त्र, शत्रु, अशत्रु, कार्य, अकार्य, निन्दा, अनिन्दा, लज्जा, निर्लज्ज, धनी, निर्धनी, तेज, कर्म, पण्डिताई, सामर्थ्य, वचन, बुद्धिमानी, सिद्धान्त इत्यादि इस दण्ड के बहुतरूप हैं जो इस लोक में दण्ड नहीं होय तो परस्पर में एकएक को मारडालें हे युधिष्ठिर ! दण्ड के ही भय से परस्पर नहीं मारते हैं इस लोक में दण्ड से प्रतिदिन रक्षित प्रजा राजा की सदैव वृद्धि करती है इसहेतु से दण्ड का स्थान बड़ा है यह दूसरे प्रश्न का उत्तर है किसका आत्मा है किस प्रकार

उत्पन्न हुआ और किस रूप का है इन तीनों प्रश्नों का उत्तर देते हैं हे राजन्! इस लोक को दण्ड शीघ्र वर्तमान करता है ऐसे निश्चयवाला धर्म है और वह ब्राह्मणों में वर्तमान होता है किसप्रकार जागता है इसका उत्तर देते हैं कि धर्मसंयुक्त ब्राह्मण देवताओं से संयुक्त होते हैं यज्ञ वेदों से उत्पन्न हुआ और देवताओं को प्रसन्न करता है और प्रसन्न होकर देवता सदैव इन्द्र से वार्तालाप करते हैं इन्द्र प्रजा पर कृपा करके अन्न को देता है सब जीवों के सदैव अन्नमय प्राण हैं इसी के बल से प्रजा नियत रहती है इनके बीचमें दण्ड जागता है ऐसे प्रयोजनवाले दण्ड ने क्षत्रियरूप को पाया सदैव सावधान अविनाशी दण्ड प्रजा की रक्षा करता हुआ जागता है ईश्वर पुरुष, प्राण, पराक्रम, धन, प्रजापति, भूत, आत्मा, जीव इन आठ नामों से भी कहने में आता है ईश्वर ने इस राजा में वह दण्डनीति और ऐश्वर्य धारण किया है जो कि पराक्रम से संयुक्त है और सदैव पांचरूप रखनेवाला है वह पांचरूप यह हैं धर्म, व्यवहार, धर्मेश्वर, जीव, रूप, कुल, महाधनी, मन्त्री, बुद्धि और सब प्रकार के जो पराक्रम कहेगये सो हे युधिष्ठिर ! इन आठ दिव्य पदार्थों के द्वारा दूसरा बल अर्थात् खज़ाने की वृद्धि प्राप्त करनी चाहिये हाथी, घोड़े, रथ, पदाती, नौका उसी प्रकार नौकर या बेगारी देशीवस्तु कम्बल आदि यह आठ अंग रखनेवाला पराक्रम कहा अथवा सेना और राज का दण्डही अंग है इसके विशेष शेषवार्ता युक्त दण्ड के अंग रथ के सवार, हाथीके सवार, अश्वसवार, मन्त्री वैद्य, भिक्षुक, अदालत के हाकिम, मुहूर्त रखनेवाले देवचिन्तक, खज़ाने के मित्र यहसब सामान हैं सात प्रकृति और आठअंगों समेत इसका देह कहागयाहै जो लोकमें दण्ड का ज्ञाताहै वह राज का अंगहै और दण्डही उत्पत्ति स्थान है ईश्वरने किसी कारण से बड़ीयुक्ति के साथ क्षत्रिय को दण्ड सुपुर्द किया यह समदर्शी दण्ड सनातन है संसार की रक्षा और अपने धर्म के नियतरखने के निमित्त ब्रह्माजी का दिखाया हुआ धर्म राजाओं को महापूजनीय है इसीप्रकार वादी और प्रतिवादी के कारण पैदा हुआ दूसरा व्यवहार है इसी निमित्त जो व्यवहार मनोरथों से भरा हुआ देखागया उसका नाम भर्तृप्रत्यय लक्षण है फिर व्यवहार वेदोक्त और वेदमूल कहाजाता इसीप्रकार दूसरा व्यवहार कुलाचार से संयुक्त और शास्त्रोक्त है जो यह पहिला भर्तृप्रत्यय लक्षण नाम दण्ड कहा वह हम राजा लोगों में जानना चाहिये इस हेतु से दृष्टि आनेवाला दण्ड भी

व्यवहाररूप कहागया है और जो व्यवहार कहागया है वह वेदोक्त है जो वेद से प्रकट होनेवाला है वह गुणदर्शन नाम धर्म है जो कि कर्म के कारण से ज्ञानियोंने धर्म के लिये उपदेशकिया हे राजन् ! ब्रह्माजी का दिखाया हुआ दण्ड प्रजा का रक्षक है वह सत्यबुद्धि और ऐश्वर्य का बढ़ानेवाला दण्ड तीनों लोकों को धारण करता है जो दण्ड है वह देखाहुआ हमारा सनातन व्यवहार है जो व्यवहार देखा गया वह वेद है यह निश्चयपूर्वक निर्णय कियागया है जो वेद है वही धर्म है जो धर्म है वही सत्यमार्ग है पितामह ब्रह्माजी पहिले प्रजापति हुये तब संसारकेस्वामी देवता असुर राक्षस मनुष्य और सर्पों समेत सब लोकों के ईश्वर हुये इस कारण यह भर्तृप्रत्यय लक्षण नाम हमारा व्यवहारजारी हुआ इसी कारण उन ब्रह्माजीने इस व्यवहारदर्शी वचन को कहा माता, पिता, स्त्री, पुरोहित यह सब उस राजा की ओर से दण्ड के योग्य हैं जो राजा अपने धर्म से राज्य पै नियत हैं ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

एकसौबाईसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हम यहां इस प्राचीन इतिहास को भी कहते हैं कि अंग देशों में महातेजस्वी वसुहोम नाम राजा प्रसिद्ध हुआ सदैव धर्म का ज्ञाता महातपस्वी वह राजा अपनी रानी समेत उस मुंजपृष्ठपर्वतपर गया जो पितृ और देवऋषियों से पूजित था वहां हिमालय के शिखरपर सुवर्ण पर्वत के समान मुंजावट में जहां श्रीरामचद्रजी ने जटाहरण उपदेश किया था हे राजेन्द्र ! तभी से वह तेजव्रतवाले ऋषियों ने उस रुरुसेवित देश का नाम मुंजपृष्ठ रक्खा तब वहां वेदोक्त बहुत गुणों से संयुक्त और ब्राह्मणों का प्यारा वह राजा देवऋषियों के समान होताहुआ दैवयोगसे इन्द्रका प्रतिष्ठित मित्र शत्रुहन्ता महाप्रतापी राजा मान्धाता उसके पास आया वह मान्धाता उस वसुहोम राजा के पास जाकर नम्रतापूर्वक दण्डप्रणाम करके उसके आगे वर्तमानहुआ वसुहोमने भी पाद्यअर्घ दिया और सप्तांग रखनेवाले राज्य की कुशल को पूछकर उस राजा मान्धाता से जो कि प्राचीन समय में सत्पुरुषों से सेवित और बुद्धि के अनुसार धर्म में प्रवृत्त था कहा कि हे राजन् ! आप का क्या शिष्टाचार करूं तब मान्धाता ने उस महाज्ञानी वसुहोम से कहा कि हे राजन् ! तुम ने बृहस्पतिजी के सब मत को पढ़ा और इसीप्रकार शुक्रजी के भी शास्त्र को जाना सो मैं यह जानना

चाहता हूं कि दण्ड किसप्रकार उत्पन्न होता है क्या वह पहिले जागता है या उत्तम कहाजाता है वह दण्ड क्षत्रियों में कैसे नियत हुआ यह आप मुझसे कहिये मैं आप को गुरुदक्षिणा दूंगा वसुहोम ने कहा कि हे राजन्! जिसप्रकार से संसार का वशकरनेवाला धर्म का आत्मा सनातन नीतिदण्ड प्रजा की रक्षा के लिये उत्पन्नहुआ उसको सुनो कि यज्ञ की इच्छा करनेवाले ब्रह्माजी ने जब अपने योग्य ऋत्विज् को नहीं पाया तब उसने अपने गर्भ को बहुत वर्षों तक शिर में धारण किया और हजार वर्ष के पीछे वह गर्भ छान लेतेही गिरपड़ा वह क्षुपनाम प्रजापतिहुआ और वह उसके यज्ञ में ऋत्विज् हुआ उस ब्रह्मयज्ञ के जारी होने पर प्रधानरूप के देखने से वह दण्ड अन्तर्धान हुआ अर्थात् दीक्षारूप में नियत हुआ उस दण्ड के अन्तर्धान होने पर प्रजाओं की मिलावटहुई तब योग्य अयोग्य कर्म और भक्ष्य अभक्ष्य वस्तुवों का विवेक नहीं रहा और भोजन करने न करने के योग्य वस्तु भी वर्तमान नहीं हुई तो सिद्ध कहां से होय एक दूसरे को मारताथा उस समय भोग्य अभोग्य स्त्री का विचार नहीं होता था अपना और दूसरे का धन समान गिनते थे परस्पर में ऐसे घात करते थे जैसे कि कुत्ते मांस को टुकड़े २ करते हैं पराक्रमी निर्बलों को मारते थे ऐसी सब मर्यादा वर्तमान हुई तब ब्रह्माजी ने सनातन वरदायी भगवान् विष्णुदेवता और महादेव जी को अच्छेप्रकार से पूजन करके यह कहा कि हे केशवजी! आप यहां कृपा करिये यहां वर्णों का मिलाप जैसे न हो वही आप कीजिये तदनन्तर देवताओं में उत्तम त्रिशूलधारी भगवान् शिवजी ने देरतक ध्यान करके अपने आत्मारूप दण्ड को अपनी देह से उत्पन्न किया उस धर्म चरण से नीतनाम देवी सरस्वती उत्पन्नहुई उसने तीनों लोकों में दण्डनीति को प्रसिद्ध किया फिर भगवान् शिवजी ने देरतक ध्यान करके समूहों का एक २ स्वामी नियत किया अर्थात् इन्द्र को देवताओं का स्वामी और सूर्य के पुत्र यमराज को पितरों का स्वामी और कुबेरजी को धन का और राक्षसों का स्वामी किया और सुमेरु को पर्वतों का और महासमुद्र को नदियों का स्वामी बनाया जल और अस्त्रों के समूह का वरुणजी को स्वामी नियत किया फिर मृत्यु को प्राण का ईश्वर और अग्निको तेजों का स्वामी किया प्रभु ईशान महात्मा महादेव विशालाक्ष सनातनदेव को भी रुद्रों का स्वामी नियत किया वशिष्ठजी को ब्राह्मणों का अग्नि को वसुवों का सूर्य को तेजों का चन्द्रमा को नक्षत्रों का स्वामी

किया अंशुमान् को वीरुधों का और द्वादशभुजधारी षण्मुख कुमार स्कन्द को देवता आदि सब जीवों का राजा किया उत्पत्तिनाशकारक काल को चार प्रकारवाली मृत्यु और दुःख सुख का स्वामी बनाया कुबेरजी राजाओं के राजा हुये और शूलधारी शिवजी सब रुद्रों के स्वामी हुये और समीपही उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मपुत्र क्षुप नाम को प्रजाओं के सब धर्मधारियों का बड़ा स्वामी किया उसके पीछे महादेवजी ने बुद्धि के अनुसार उस यज्ञ के जारी होने पर धर्म के रक्षक दण्ड को विष्णुजी के सुपुर्द किया और विष्णु ने अंगिरा ऋषि को दिया अंगिरा ने इन्द्र और मरीचि को दिया मरीचि ने भृगुजी को दिया भृगुजी ने उस सावधानदण्ड धर्म को ऋषियों को दिया ऋषियों ने लोकपालों को दिया और लोकपालों ने क्षुप को दिया क्षुपने सूर्य के पुत्र मनुजी को दिया उन्हों ने अपने पुत्रों को दिया और कहा कि न्याय के अनुसार विचारकर धर्मसे दण्ड जारी करना चाहिये अपने आप स्वतन्त्रता से दुष्टों का दण्ड देना दण्ड नहीं है जुर्माना लेना बाहरी कर्म है अर्थात् केवल भयभीत करने के निमित्त है खज़ाने की वृद्धि के लिये नहीं है अंगो से रहित करना देहघात और देह की अनेक पीड़ा देना देह को गिराना और देश से निकालना छोटे कारणों से नहीं होता है सूर्य के पुत्र मनु ने उनसे वर्णन किया कि यह दण्ड क्रम से प्रजा की रक्षापूर्वक सदैव जागता रहता है और इन्द्रभी जागते हैं और इन्द्र से अग्नि देवता जागते हैं प्रथम वरुणदेवता जागते हैं वरुण से प्रजापति प्रजापति से नीतिरूप धर्म जागता है धर्म से ब्रह्माजी का पुत्र सनातन व्यवसाय नाम जागता है व्यवसाय से चारो ओर रक्षा करता हुआ तेज जागता है उस तेज से ओषधियां और ओषधियों से पहाड़ जागते हैं पहाड़ों से रस और रसों से गुण और निर्ऋति देवी जागती है निर्ऋति से सब ज्योतियां जागती हैं ज्योतियों से वेद की प्रतिष्ठा और उससे हयग्रीव प्रभु जागते हैं उस हयग्रीव से प्रभु पितामह ब्रह्माजी जागते हैं ब्रह्माजी से भगवान् महादेव शिवजी जागते हैं शिवजी से विश्वेदेवा और विश्वेदेवाओं से ऋषि ऋषियों से चन्द्रमा चन्द्रमा से सब सनातन देवता और देवताओं से लोक में ब्राह्मण जागते हैं और ब्राह्मणों से राजा लोग जागते हैं वही धर्म से संसार की रक्षा करते हैं और राजाओं से स्थावरजीव और प्रजा के लोग जागते हैं उन्हों में दण्ड जागता है ब्रह्माजी के समान तेजस्वी दण्ड सबको धर्षण करता है और काल आदि, मध्य, अन्त तीनों

समय जागता है सब लोकों के ईश्वर महादेव शिवजी माहराज सदैव जागा करते हैं, यह दण्ड आदि, मध्य, अन्त इन तीनों समयों में प्रसिद्ध हुआ धर्मका जाननेवाला राजा न्याय के अनुसार इसको करे भीष्म जी बोले कि जो मनुष्य वसुहोम के इस मत को सुने और सुनकर अच्छेप्रकार से काम में लावे वह सब मनोरथों को सिद्ध करे हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर ! यह दण्ड धर्मसे विरुद्ध होनेवाले सब लोगों को बदला देनेवाला मैंने तुमसे कहा ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे द्वाविंशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

एकसौतेईसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे तात ! मैं धर्म, अर्थ, काम के निश्चय को सुना चाहताहूं संसार का सब कार्य किन २ वस्तुवों में नियत होता है धर्म, अर्थ, काम का मूल क्या है तीनों का उत्पत्तिस्थान क्या है वह परस्पर में संयुक्त होते हैं और किसप्रकार से जुदे २ होजाते हैं भीष्म जी बोले कि जब मनुष्य शुद्धचित्त होते हैं तब पृथ्वी पर धर्म को आगे करनेवाले अर्थ, धर्म, काम यह तीनों ऋतुकाल में बुद्धि के अनुसार स्त्री के गर्भाधान में निश्चय आकर संयुक्त होते हैं दैव से मिलाहुआ अर्थ, धर्म का और काम, अर्थ का मूल कहा जाता है और सबका मूल संकल्प कहाजाता है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तीनों संकल्प से उत्पन्न होते हैं और संकल्प विश्वरूप है और सब विषय आहार सिद्धि के निमित्त हैं और निवृत्ति मोक्ष इस त्रिवर्ग का मूल कहाजाता है अर्थात् आदि में मोक्ष के लिये इन तीनों का वर्णन है धर्म से देह की रक्षा है और अर्थ धर्म के निमित्त होता है और काम ऋतु फलवाला है ऐसी दशा में वह सब रजोगुणप्रधान हैं धर्म नीरोगता के निमित्त है और अर्थ धर्म की इच्छा के लिये है काम इन्द्रियों की तृप्ति के लिये है इनतीनों में जो श्रेष्ठ होय उसको सेवन करे अर्थात् धर्म चित्त की शुद्धि के निमित्त और अर्थ निष्काम कर्म के लिये और काम केवल देह के ठहरने के निमित्त है इसप्रकार से करना चाहिये इन धर्म, अर्थ, काम तीनों को चित्त से भी त्याग न करे फिर स्वरूप को क्यों त्यागेगा तप से विमुक्त होकर इन सब धर्म आदि से पृथक् होना चाहिये अर्थात् फल की इच्छा से इनको न करे किन्तु अकाम करे मोक्ष में त्रिवर्ग की यह श्रेष्ठ बुद्धि है अर्थात निष्ठा है जब कि मनुष्य उसको प्राप्त करसके इस प्रयोजनसे कि धर्मसे अर्थ है और अर्थ से धर्म है अज्ञान नीचबुद्धि से दृष्टिआनेवाला अज्ञानी

धर्म अर्थ के फलको नहीं पाताहै अब धर्म आदि के रजोगुणको दिखलाते हैं धर्म की प्रवृत्ति फल की इच्छा है और दान भोग का प्राप्त न करना अर्थ की प्रवृत्ति है और काम प्रीतिरूप प्रवृत्ति का रखनेवाला है फिर अपने गुणों से पृथक् वह त्रिवर्ग चित्तशुद्धि आदि के द्वारा ब्रह्मानन्दरूप फल को देता है तीनों प्रश्नों को कहकर चौथे प्रश्न को इतिहास के द्वारा कहता हूं उस प्राचीन इतिहास में कामन्दक ऋषि और आगरिष्ट राजा का प्रश्नोत्तर है आगरिष्ट राजा ने मर्यादा भंग करके कामन्दक ऋषि से पूछा कि हे ऋषे ! जो काम मोह से युक्त राजा पाप को करता है उसके पाप दूर होने का कौन सा उपाय है जो मनुष्य अज्ञानता से अधर्म को धर्म जानकर सेवन करे उस प्रसिद्ध मनुष्य को किस प्रकार से राजा सुमार्ग में लावे कामन्दक ने उत्तरदिया कि जो पुरुष धर्म अर्थ को त्याग करके कर्म में ही प्रवृत्त रहता है वह इसलोक में धर्म अर्थ के त्यागने से ज्ञान भ्रष्ट होता है और ज्ञानभ्रष्ट होने से मोह को प्राप्त होकर धर्म अर्थ को नाश करता है जब राजा उन दुराचारी दुष्ट मनुष्यों को दण्ड नहीं देताहै तब लोक ऐसा व्याकुल होता है जैसे कि घर में बैठेहुये सर्प से व्याकुल हो प्रजा ब्राह्मण और साधु उसकी इच्छा के अनुसार कर्म नहीं करते हैं इस कारण से संशय को प्राप्त होकर इसीप्रकार से घात को प्राप्त होता है वह अपमान और निन्दायुक्त होकर दुःखरूप जीवन को पाता है निन्दित जीवने से मनुष्य का मरना उत्तम होता है उस निन्दित के करने योग्य कामों को कहते हैं इस स्थान में आचार्यों ने उस पापीको तीनों वेद और ब्राह्मणों का सत्कार करना कहा है वह धर्म में बड़ा चित्तलगावे और बड़े घराने में विवाह करे शान्त क्षमावान् ब्राह्मणों का भी सेवन करे इस लोक में सुख से बैठाहुआ जप करे और सदैव जल से देह की शुद्धि रक्खे पापियोंको त्याग करके धर्मात्माओं को साथ बैठावे और मीठेवचनों से उनको प्रसन्न करे और दूसरे की प्रशंसा करके सदैव कहै कि मैं तेरा हूं इसप्रकार से पाप से निवृत्त होकर शीघ्र सबका प्रिय होता है और गुरु जिस परमधर्म को कहैं उसके करने से भी निश्चय परमकल्याण को पाता है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे त्रयोविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

एकसौचौबीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे नरोत्तम ! पृथ्वीपर मनुष्य यह कहते हैं कि धर्म का आदिकारण सुशीलता है इस कारण मुझ को बड़ा सन्देह है जो वह हमारे

जानने के योग्य होय तो आप कृपा करके कहिये कि वह सुशीलता किसप्रकार से प्राप्त होती है और उसका क्या लक्षण है भीष्मजी बोले कि हे महाराज, युधिष्ठिर! प्रारब्ध और पराक्रम से प्राप्त होनेवाली तुम्हारी लक्ष्मी को और इन्द्रप्रस्थ में सभा के मध्य भाइयों समेत तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर महादुःखी हो ईर्षा से भरेहुये दुर्योधन ने अपने पिता धृतराष्ट्र से प्रार्थनापूर्वक जो वचन कहा उस को सुनो कि अपने स्थान में बैठेहुये धृतराष्ट्र को अकेला देखकर ईर्षायुत दुर्योधन ने सभा का सब वृत्तान्त जब सुनाया उसको सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा कि हे पुत्र! क्यों दुःखी होता है अपना मनोरथ कह फिर मैं उसका योग्य उत्तर दूंगा हे शत्रुवों के विजय करनेवाले! तुम ने बड़े ऐश्वर्य को पाया सब भाई मित्र सम्बन्धी तुम्हारे आज्ञाकारी हैं और तुम बहुमूल्य वस्त्रों को देह में धारण करते हो और मांस ओदनों का भोजन करते हो नानाप्रकार के घोड़ोंपर सवार होते हो तुम्हारा देह क्यों पाण्डुवर्ण और दुर्बल है दुर्योधन ने कहा कि वह दश हज़ार महात्मा स्नातक ब्राह्मण युधिष्ठिर के घर सुवर्ण के पात्रों में नित्य भोजन करते हैं हे तात! शत्रुपाण्डवों को दिव्य फूल फलों से संयुक्त उस उत्तम सभा को और तीतर के समान चित्रित घोड़ों को और नाना प्रकार के वस्त्रालंकारों को और कुबेर के समान अमोघ धन को देखकर शोच करताहूं धृतराष्ट्र बोले कि हे नरोत्तम, पुत्र! जो तुम उस लक्ष्मी को चाहते हो या उससे अधिक चाहते हो तो तुम शीलवान् होजावो क्योंकि शील से तीनोंलोक निस्सन्देह विजय होने के योग्य हैं लोक में शीलवानों को कोई वस्तु अप्राप्त नहीं होती देखो मान्धाता ने एक दिन में जनमेजय ने तीन दिन में नाभाग ने सात दिन में सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय किया यह सब राजा शीलवान् और दयायुक्त थे इस हेतु से उनके गुण से मोल ली हुई के समान आपसे आप पृथ्वी प्राप्त हुई दुर्योधन ने कहा कि हे पिता! मैं सुनाचाहता हूं कि वह शील किसप्रकार से प्राप्त होता है जिसके द्वारा उन राजालोगों को शीघ्रता से पृथ्वी प्राप्त हुई धृतराष्ट्र बोले कि हे दुर्योधन पुत्र! मैं इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसको प्राचीन समय में शीलयुक्त होकर नारदजी ने वर्णन किया और प्रह्लाद दैत्य ने शीलवान् होकर महात्मा इन्द्र का राज्य छीनलिया और तीनोंलोकों को स्वाधीन किया तब इन्द्र ने हाथ जोड़कर बृहस्पतिजी से कहा कि मैं कल्याण को जानना चाहता हूं तब बृहस्पतिजी ने मोक्षसम्बन्धी महाउत्तम ज्ञान उस देवराज

इन्द्रको सुनाया और कहा कि इतनाही कल्याण है इन्द्र ने फिर पूछा कि इससे अधिक भी कोई ज्ञान होता है बृहस्पतिजी बोले कि हे तात ! महात्मा भार्गव शुक्रजी का ज्ञान अधिक है तू वहां ज्ञान को प्राप्त कर तेरा भला होगा तदनन्तर उस तपस्वी इन्द्र ने वह महाज्ञान श्रीभार्गव शुक्रजी से प्राप्त किया और प्रार्थनापूर्वक पूछा कि महाराज इससे अधिक भी कोई कल्याण है तब सर्वज्ञ शुक्रजी ने कहा कि महात्मा प्रह्लादका ज्ञान अधिकहै यह सुनकर इन्द्र प्रसन्न हुआ और ब्राह्मणका रूप बनकर प्रह्लाद से जाकर कहा कि मैं कल्याण को जानना चाहता हूँ प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण ! मुझ तीनों लोक के राज्यवाले को अवकाश नहीं है इसहेतु से तुमको उपदेश नहीं करसक्ता । फिर ब्राह्मण ने कहा कि जब आपको अवकाश हो तब सुना चाहता हूं फिर वह प्रह्लाद उस ब्रह्मवादी के ऊपर प्रसन्न हुआ और स्वीकार करके उसने शुभकाल में ज्ञानतत्त्व को दिया ब्राह्मण ने भी अपने चित्त की इच्छानुसार उस गुरुवृत्ति को न्यायपूर्वक प्रीति से किया उस प्रह्लाद से बहुधा इसने पूछा कि आपने तीनों लोकों का राज्य कैसे पाया वह सब मुझसे कहिये तब प्रह्लाद ने यह वचन कहा कि मैं राजा हूं इस अहंकार से वचन कभी नहीं कहता हूं नीतिशास्त्र के वक्ता ब्राह्मणों को दान देकर उन से वार्तालाप करताहूं वे विश्वासयुक्त होकर सदैव मुझसे वार्तालाप करते हैं और शास्त्र को देते हैं और मुझ शुक्रनीति के मार्ग में प्रवृत्त सेवा करनेवाले और दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाले धर्मात्मा क्रोधजित् के चित्त को शास्त्रों से ऐसे सींचते हैं जैसे कि मक्खियां शहद को सो मैं जिह्वाग्रवर्ती विद्यावान् ब्राह्मणों के वचनरूपी रसों का अस्वादन करनेवाला अपने सजातियों पर ऐसे आज्ञा करता हूं जैसे कि चन्द्रमा नक्षत्रोंपर करता है पृथ्वीपर यही शीलादि गुण अमृतरूप हैं यही कल्याण है और कहा कि हे ब्राह्मण ! मैं तेरी गुरुभक्ति से प्रसन्न हूं तेरा भला हो तू अपने अभीष्ट को मांग मैं तुझको दूंगा तब उस ब्राह्मण ने कहा कि आपने मेरा सब कार्य किया तब प्रसन्न होकर प्रह्लाद ने कहा कि वर को लो तब ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन् ! जो आप मुझसे प्रसन्न हैं और जो मेरा अभीष्ट चाहते हो तो आपका सा शील मुझमें होय यही मेरी प्रार्थना है यह सुनकर दैत्येन्द्र प्रसन्न तो हुआ परन्तु वर के देने में उसको बड़ा भय हुआ और जाना कि यह थोड़े तेजवाला नहीं है तब विस्मित प्रह्लाद ने कहा कि ऐसाही हो और वर देकर दुखी हुआ और वर लेकर उस ब्राह्मण के चलेजाने

पर प्रह्लाद को बड़ी चिन्ता हुई और उसको निश्चय नहीं हुआ फिर उसके चिन्ता करनेसे छायारूप महातेजस्वी देहधारी तेजरूप शील ने उसकी देह को त्याग किया तब प्रह्लाद ने उस महारूप और देहधारी से पूछा कि आप कौन हैं उसने उत्तर दिया कि मैं शील हूं तुमसे अलग होकर जाता हूं और हे राजन्! मैं उस उत्तम ब्राह्मण की देह में प्रवेश करूंगा जो शिष्यता में होकर बहुत कालतक तेरेपास वर्तमान रहा ऐसा कहकर वह शील अन्तर्धान हुआ और इन्द्रकी देह में प्रविष्ट हुआ उस तेजके चलेजाने के पीछे दैत्येन्द्र की देहसे वैसा ही दूसरा रूप और बाहर निकला उससे भी पूछा कि आप कौन हैं उसने कहा कि मैं धर्म हूं जहां वह उत्तम ब्राह्मण है वहांही मैं भी जाता हूं क्योंकि जहां शील है वहां मैं हूं तदनन्तर तीसरा रूप उस महात्मा प्रह्लाद की देह से निकला जब उससे भी पूछा कि आप कौन हैं तब उसने कहा कि हे असुरेन्द्र! मैं सत्य हूं मैं अब धर्म के पास जाता हूं इसके अनन्तर चौथा पुरुष निकला उसने भी पूछने पर कहा कि मैं व्रत हूं जहां सत्य है वहीं मैं भी रहता हूं इसके जाने के पीछे उसकी देह से एक बड़ाशब्द प्रकट हुआ उसने भी पूछने से कहा कि मैं पराक्रम हूं जहां व्रत है वहीं मैं भी हूं यह कहकर वहां गया जहां व्रत था उसके पीछे उसके देह से प्रकाशरूप देवी निकली उसने भी पूछने से कहा कि मैं लक्ष्मी हूं हे सच्चे वीर! मैं आप तेरे पास आई हूं तुझसे त्याग की हुई जाती हूं पराक्रम के पीछे चलनेवाली हूं फिर तो महात्मा प्रह्लाद को महाभय हुआ और पूछा कि हे लक्ष्मि! कहां जावोगी हे देवि! तुम सत्यव्रती और लोक की माता हो यह ब्राह्मण कौन है मैं इसको अच्छे प्रकारसे जानना चहताहूं लक्ष्मी बोली वह इन्द्र है उसी ने आपसे शिक्षा पाई है हे समर्थ! तेरा तीनों लोकोंका ऐश्वर्य उसने लेलिया और हे महाराज! तुमने शीलही से तीनों लोक विजय किये थे देवराज ने उसको मूल कारण जानकर तुझसे लेलिया और हे महाज्ञानिन्! धर्म, सत्य, व्रत, पराक्रम और हम सब शीलही को मूल कारण कहते हैं भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! लक्ष्मी समेत वह सब ऐसा कहकर चलेगये यह इतिहास सुनकर दुर्योधन ने फिर अपने पिता से पूछा कि हे कौरवनन्दन! मैं शील की मुख्यता को जानना चाहता हूं और जैसे शील प्राप्त होता है उस युक्ति को भी मुझसे कहो धृतराष्ट्र बोले कि महात्मा प्रह्लाद ने प्रथमही उसको युक्ति के साथ कहा है उसके मिलने

का ब्योरेवार वृत्तान्त सुनो कि देह, मन और वचनों से सब जीवों के साथ शत्रुता का करना अनुग्रह और दान करना यही सदैव शील कहाजाता है जो युक्तिकर्म दूसरों का और अपना हितकारी न हो अथवा जिस कर्म से लज्जा युक्त होनापड़े उसको कभी न करे सब काम ऐसे करे जिससे सभा में प्रशंसा पावे हे कौरवोत्तम ! यह शील ब्योरेवार तुझसे कहा हे राजन् ! कदाचित् कोई मनुष्य शीलरहित होकर लक्ष्मी को पाते हैं वह बहुतकाल तक उसको नहीं भोगसक्के अर्थात् निर्मूल होती है धृतराष्ट्र बोले कि हे पुत्र ! जो तुम युधिष्ठिर की लक्ष्मी से भी उत्तम लक्ष्मी को चाहते हो तो इसको मूलसमेत जानकर शीलवान् हो भीष्मजी बोले कि इसप्रकार धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र से कहा इससे तुमभी इसको करो तदनन्तर इसके फल को पावोगे ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे चतुर्विंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

एकसौपच्चीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! तुमने पुरुष की देह में शील को प्रधान कहा आशा और अनाशा यह दोनों कैसे हुईं इसको भी आप कहिये क्योंकि इस महासंशय का दूर करनेवाला आपके समान कोई दूसरा नहीं है हे समर्थ, तात ! दुर्योधन से मुझे बड़ी आशा थी किं युद्ध वर्तमान होने पर विनाही युद्ध करने के आधाराज्य देगा सब मनुष्यों को बड़ी २ आशा उत्पन्न होती हैं निष्फल होने से निस्सन्देह मृत्यु है सो हे राजेन्द्र ! उस दुरात्मा दुर्योधन ने मुझ निर्बुद्धि को निराशा किया इस मेरी निर्बुद्धिता को देखो मैं आशा को वृक्षयुक्त पहाड़ से अथवा आकाश से भी बहुत बड़ी मानता हूं यद्यपि वह आशा साधारण भी है तो भी चिन्ता के योग्य कठिनता से विजय होनेवाली है और दुर्लभ होने से विचार करता हूं कि उससे अधिक दुर्लभ क्या है ॥

भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर ! इस स्थान में सुमित्र और ऋषभ के सम्पूर्ण इतिहास को तुमसे कहता हूं हैहय देश का सुमित्र नाम राजऋषि जब शिकार को गया और तीक्ष्ण बाण से किसी मृग को बेधकर उसके पीछे चला तब वह महापराक्रमी मृग उस बाण को लेकर चलागया और राजा भी बड़े वेग से उस मृगराज के पीछे दौड़ा तदनन्तर वह शीघ्रगामी मृग पृथ्वी के नीचे गया और एक मुहूर्तमात्र में ही वह सम मार्ग में वर्तमान हुआ तब वह तरुणवय कवचधारी पराक्रमी राजा नद, नदी, पल्वल आदि वनों को उल्लंघन करता

हुआ उसके पीछे चला तब वह मृग इच्छावान् राजा को वारंवार मिलकर फिर बड़े वेग से सम्मुख आता और बहुत से बाणों से भिदा हुआ भी वह वनचारी मृग क्रीड़ा करताहुआ सम्मुखही आता था इसी प्रकार वह मृगराज वारंवार वेगवान् होकर दूर जा जाकर फिर सम्मुख आता था तब उस शत्रुहन्ता राजाने उसके मर्मों के छेदनेवाले महाघोर तीक्ष्ण धारवाले बाणों को धनुष में लगाकर छोड़ा तदनन्तर वह मृगराज कुछ दूरपर जाकर उसके बाणमार्ग को छोड़कर हँसता हुआ ठहरगया उस तीक्ष्णप्रकाश बाण के पृथ्वी में गिरने से मृग महावन में घुसगया और राजा भी शीघ्रता से चला ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे पञ्चविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

एकसौछब्बीसका अध्याय ॥

भीष्म जी बोले कि इस दौड़धूप के पीछे राजा महावन में प्रवेश करके तपस्वियों के आश्रमों को प्राप्त होकर परिश्रम के कारण बैठगया तब ऋषियों ने इस क्षुधापिपासायुक्त धनुर्धारी राजा को देखकर बुद्धि के अनुसार मिलकर उसका पूजन किया तब राजा ने उनके आतिथ्यपूजन को स्वीकार करके तप की उत्तम वृद्धि को सब तपस्वियों से पूछा तब उन तपोधन ऋषियों ने उसके वचन का उत्तर देकर उसके प्रयोजन को पूछा कि हे कल्याणरूप, राजन् ! किस सुख के लिये खड्ग धनुष बाण धारण किये पदाती होकर इस वन में आये हो इसका कारण कहो कि तुम कहां से आये और किस कुल में उत्पन्न हुये और क्या तुम्हारा नाम है यह सब हमसे कहो तब उसने अपनी दौड़धूप का कारण उन सब ब्राह्मणों से वर्णन किया कि मैं मित्रों का प्रसन्न करनेवाला हैहय देशियों के कुलमें उत्पन्न हुआ बाणों से हजारों मृगयूथों को मारता घूमता हूं मन्त्री और रानी समेत मैं बड़ी सेना समेत था मेरे बाण से भिदाहुआ भाल संयुक्त देहवाला मृग जाता है मैं दैवइच्छा से उस भागनेवाले मृग के पीछे इस वन में आगया हूं इसी से शोभा और आशा से रहित परिश्रम से पीड़ित आपके सम्मुख वर्तमान हूं इससे कठिन दूसरा कौन दुःख होगा जो परिश्रम से पीड्यमान आशारहित राज्यचिह्नों के विना मैं आप लोगों के आश्रम में आया हे तपोधन, ऋषियो ! राज्य के चिह्न और पुरका त्याग उसकठिन दुःखको ऐसा नहीं उत्पन्न करता है जैसे कि मेरी नष्ट हुई आशा इतनी बड़ी है कि बड़ा पहाड़ हिमालय वा महासमुद्र और आकाश भी उसके एक भाग को नहीं

पासक्ता इसीप्रकार हे महाऋषियो ! मैंने भी आशा के अन्त को नहीं पाया आपसरीखे तपोधन ऋषि सब जानते हैं आप बड़े महाभाग हैं इसकारण अपने सन्देह को पूछता हूं कि जो मनुष्य आशावान् होकर सन्तुष्टता को प्राप्त हुआ होय ऐसा लोक में प्रतिष्ठा के साथ कौन बड़ा है उसको मूल समेत सुना चाहता हूं इस संसार में दुर्लभपदार्थ क्या है जो यह बातें सदैव गुप्त रखने के योग्य नहीं हैं तो शीघ्र कहिये विलम्ब न करिये और उत्तम ऋषियों में गुप्त रखने के योग्य वचनों को तुमसे नहीं सुना चाहता हूं और जो इसमें किसीप्रकार का आपके तप में विघ्न हो तो मौनता प्राप्त करो या कहना है तो कहो क्योंकि मैं समर्थ को भी मूलसमेत सुना चाहता हूं उसको भी आप वर्णन करें ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे षड्विंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

एकसौसत्ताईसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उन ऋषियों में से मन्दमुसक्यान करते महाब्रह्मर्षि ऋषभदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! मैं तीर्थाटन करता हुआ श्रीनारायण के दिव्य आश्रम में पहुँचा जहां क्रीड़ा के योग्य बदरी और वैहायस नाम ह्रदहैं वहांही अश्वशिरा सनातन वेदों को पढ़ते हैं वहां मैं प्रथमही ह्रद में जाकर देवपितृतर्पण करके पीछे आश्रम को गया और नरनारायण के पासही एक स्थान में निवास किया वहां चीर मृगचर्म को धारण किये महादुर्बल तनु नाम ऋषिको आतेहुये देखा तो हे राजन्! वह दूसरे मनुष्यों की देह का अष्टमांश था मैंने ऐसा दुर्बल देहवाला भी कोई नहीं देखा कि जिसका देह कनिष्ठ उँगली के समान पतलाथा वैसेही हाथ पैर मुख भुजा और शिर के बाल अपूर्व देखने के योग्य थे और उसी देह के सदृश शिर आंख कानभी थे और उसके सब अंग और वचन भी देहकेही अनुरूप थे मैं उस दुर्बलदेह को देखकर भयभीत होकर दुःखी हुआ और उसके दोनों चरणों में प्रणाम करके हाथ जोड़के सम्मुख हुआ और अपने नाम गोत्र पिता को कहकर उसके बतायेहुये एक आसनपर बैठ गया फिर उस धर्मध्वज तनु ने ऋषियों के मध्य में उन कथाओं को कहा जो कि धर्म, अर्थ से संयुक्त थीं उसकी कथाही के समय में एक कमललोचन नाम राजा सेना और स्त्री समेत शीघ्रगामी घोड़ों की सवारी से आपहुँचा वह अतिदुःखी, यशस्वी, श्रीमान्, वीरदेवमणि का पुत्र वनमें गुप्तहोनेवाले अपने पुत्र भूरिदेवमणि को स्मरण करता हुआ कि उस पुत्र को यहां देखूंगा वहां देखूंगा

इसप्रकार आशा में बँधा हुआ यह वचन कहता हुआ इस वन में घूमता था कि निश्चय इसी महावन में मेरा धार्मिक बड़ा पुत्र अकेला गुप्त हुआ मुझको दृष्टि आना कठिन है यही वारंवार कहता था कि उसका देखना मुझको कठिन है और मेरी आशा बड़ी है उससे जुदा होकर मैं मरने की इच्छा करता हूं यह कहता हुआ आपहुँचा और इस बात को सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ तनुमुनि एक मुहूर्तमात्र ध्यान में मग्न हुये उन ध्यानकरनेवाले ऋषि को देखकर महादुःखी मन से धीरे २ वारंवार इस वचन को राजा ने कहा कि हे देवऋषे ! कठिनता से विजयहोनेवाला कौन है और आशा से बड़ा कौन है यह सब आप प्रकट करके मुझसे कहिये मुनि बोले कि पहिले समय में उस तेरे पुत्र भूरिदेव मुनिने बाल्यबुद्धि में नियत होकर अपनी अभाग्यता से किसी समर्थ ऋषि का अपमान किया था अर्थात् सुवर्ण के कलश और वल्कल के वस्त्रों को देना कहकर उस राजकुमार ने अपमान करके फिर उनको लाकर नहीं दिये और हे राजन्! जैसे तुम थकगये हो उसी प्रकार थका हुआ वीरदेवमणि भी पीड्यमान हुआ था यह वचन सुनकर वह राजा उस लोकपूजित ऋषि को दण्डवत् करके दुःखी और निराश हुआ तदनन्तर उस महर्षिने अर्घ्य पाद्य को लेकर वन से सम्बन्ध रखनेवाली बुद्धि के अनुसार उस सबको राजा की भेंट किया तिसपीछे वह सब मुनि उस राजा को घेरकर ऐसे बैठगये जैसे कि सप्तऋषि ध्रुवजी को घेरते हैं और राजा से सब वृत्तान्त पूछा ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे सप्तविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

एकसौअट्ठाईसका अध्याय ॥

राजा बोले कि मैं वीरदेवमणि नाम राजा सब दिशाओं में प्रसिद्ध हूं अपने पुत्र भूरिदेवमणि के खोजने को वन में आया हूं हे ब्राह्मणोत्तम ! वह मेरा इकलौता बालक लड़का दृष्टि नहीं आता ऋषभमुनि बोले कि यह राजा का वचन सुनकर उस तनुऋषि ने उत्तर नहीं दिया मौन होकर शिर झुकालिया हे राजेन्द्र! पहिले समय में उस राजा ने उन तनुऋषि का बड़ा अपमान किया था फिर वह अपमान बड़े तप से दूर हुआ अर्थात् यह संकल्प किया कि किसी राजा का अथवा दूसरे वर्णों का भी दान नहीं लूंगा और यह बात ठहराके कि वर्तमान होनेवाली आशा अज्ञान मनुष्य को चलायमान करदेती है मैं उस आशा को दूर करूंगा यह दृढ़करलिया तदनन्तर वीरदेवमणि ने फिर उस महात्मा

ऋषि से पूछा कि आशा में क्या बात हीन होजाती है और इस लोक में क्या दुष्प्राप्य है आप धर्म, अर्थ के द्रष्टा हैं इससे आप कृपा करके कहिये तब महात्मा तनुऋषि वह सब वृत्तान्त राजा को स्मरण कराके बोले कि हे राजेन्द्र ! आशा की कृशता के समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है मैंने उस आशाकी कठिनता को राजाओं से कहा है राजा ने कहा कि हे ब्राह्मण ! मैं आपके वचन से आशा की कृशता और अकृशता का होना जानता हूं परन्तु उस का दुर्लभ होना वेदवचन के समान है अर्थात् आशा ने जिसको जीता वही कृश है और जिसको नहीं जीता वही पुष्ट है हे महाज्ञानिन् ! मेरे चित्तमें बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ है उसको आप दूर करने को समर्थ हैं तुम से अधिक कौन कृशांग है इसको कहना आप उचित समझें तो कहिये कृशतनु बोले यह चाहे दुर्लभ है या नहीं है परन्तु जो इच्छावान् धैर्यता को पावे वही बड़ा दुर्लभ है और जो इच्छावान् का अपमान नहीं करता वह महादुर्लभ है जो समर्थ और योग्यता के अनुसार सत्कार करके अभीष्ट सिद्ध नहीं करता और जिसकी आशा सब जीवों में लगी हुई है वह मुझसे अधिक दुर्बल है उपकार को भूलनेवाले निर्दयी और आलसी आदमियों में और शत्रुता करनेवाले मनुष्यों में जो आशा वर्तमान है वह मुझसे अधिक दुर्बल है जो एक पुत्रवाला पिता पुत्र के गुप्त होने या मरनेपर उसके वृत्तान्त को नहीं जानता उस की आशा मुझसे भी अधिक दुर्बल है पुत्र के उत्पन्न होने के समय स्त्रियों की और पुरुषों की आशा और उसी प्रकार धनीलोगों की जो आशा है वह मुझसे भी न्यून है तरुणाई में होकर उस तरुणाई से सम्बन्ध रखनेवाली कथाओं को सुनकर विवाह के चाहनेवालों को जो कन्याओं की आशा है वह मुझसे अधिक दुर्बल है तब उस राजा ने अपनी रानी समेत ऋषि के पास जाकर दोनों चरण छुये और कहा कि आपको प्रसन्न करके पुत्र से मिलना चाहता हूं हे ब्राह्मणोत्तम ! आपने जो कहा वह सब सत्यहै इसमें सन्देह नहीं तब तनुऋषिने हँसकर अपने शास्त्रबल से शीघ्रही उसके पुत्र को बुलादिया और राजा को अपराध मुक्त कर अपने को धर्मरूप दिखाके वन की यात्रा की हे राजन् ! मैंने प्रत्यक्ष देखा और उनके इन वचनों को सुना इससे तुम भी इस महानिकृष्ट आशा को त्याग करो भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! तब महात्मा ऋषभ के ऐसे वचन सुनकर राजा सुमित्र ने महादुर्बल आशा को दूर किया है

कुन्तीपुत्र ! तुमभी इस मेरे वचनको सुनकर हिमालय पर्वत के समान दृढ़ हो मुझ कष्टयुक्त से तुम्हीं प्रश्न करनेवाले और सुननेवाले हो इससे मेरी बातें सुन कर दुःखी होने के योग्य नहीं हो ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेऽष्टाविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

एकसौउन्तीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह ! आप की वार्तालापों से अभी मेरी तृप्ति नहीं होती है जैसे कि अमृतपान से और उसी प्रकार से ध्यान लगारहाहूं जैसे समाधि में पुरुष ध्यानावस्थित होता है इस कारण हे पितामह ! पहिले उसी धर्म को कहिये जो आपके वचनरूपी अमृतपान से पूर्णता को नहीं पहुँचता है भीष्म जी बोले कि इस स्थान पर मैं प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें गौतम ऋषि और यमराजका प्रश्नोत्तर है गौतमजी के महाआश्रम पारियात्र नाम पर्वत में जितने दिवस गौतमजी ने तपस्या की उसको मुझसे सुनो कि साठ सहस्रवर्ष पर्यन्त महाउत्तम तपस्या की उस तप को देखकर लोकपाल यमराज आदि देवता मुनि के पासगये तब वह महामुनि यमराजजी को देखकर सावधान होकर हाथ जोड़ कर सम्मुख बैठगये धर्मराज ने उनसे सुन्दर वचन कह कर अपनी प्रसन्नता दिखाई और कहा कि हम तुम्हारा क्या मनोरथ करें गौतम जी ने कहा कि कौन कर्म करके माता पिता से अऋण होय और पुरुष किस प्रकार से दुष्प्राप्य लोकों को पाता है यमराज बोले कि तप से पवित्र देह और सत्यधर्म में प्रवृत्त पुरुष को प्रतिदिन नियम के साथ माता पिता का पूजन करना चाहिये और पूर्ण दक्षिणावाले बहुत से अश्वमेधयज्ञों से पूजन करना चाहिये इस कर्म से पुरुष को अपूर्व लोकों की प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मे एकोनत्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

एकसौतीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशिन्, पितामह ! मित्रों से रहित बहुतशत्रु रखनेवाले और धनागार से रहित विना सेनावाले की कौन गति है दुष्टमन्त्रीको साथ रखने और सबप्रकार से हतराज्य और सलाहकारों से दिव्य उत्तमगति को न देखनेवाले दूसरे के देशपर चढ़ाई करनेवाले शत्रु के मर्दन करनेवाले पराक्रमी के साथ युद्ध में प्रवृत्त, निर्बल और अरक्षित देशवाले और देशकाल के न जाननेवाले राजा की कौन गति है और जहां देश को अधिक पीड़ा देने

से साम और भेद भी प्राप्त न हो वहां क्या धन से प्राप्तहोनेवाला जीवन या शुभकर्म अथवा अर्थ अनरीति से भी प्राप्त होने के योग्यहै भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! तुमने बड़े गुप्तधर्म को पूछा विना तुम्हारे पूछे इस धर्म को कभी इच्छा से नहीं कहना चाहता हूं हे राजन्! शास्त्र के वचनों से सूक्ष्मधर्म और बुद्धि से सुनकर सदाचारों को करके किसी२ स्थान में कोई साधु होता है बुद्धिरूप कर्म से धनी होता है या नहीं होता है इसीप्रकार का यह प्रश्न है अपनी बुद्धि से निश्चय करनेके योग्यहै हे राजन्! राज्यके कामों के जारीकरनेके निमित्त आप राजाओं के आपद्धर्म में बहुत सी युक्तियों को सुनो मैं धर्म के कारण ऐसे धर्म को प्राप्त नहीं किया चाहता हूं जो युक्ति प्रजा के दुःख से स्वीकार कीजाती है और पीछे मरण समान है अर्थात् आपत्तिकाल में भी प्रजा की पीड़ा से उत्पन्न होनेवाली अग्नि राजा के प्राण सेना और धनको नष्ट करके लौटती है सबके मतों का निश्चय पाकर पुरुष जैसा २ शास्त्र को देखता है वैसेही वैसा ज्ञाता होता है फिर विज्ञान को चाहता है अज्ञानता से पुरुष की अनुद्योगता प्रकट होती है और अच्छी विज्ञता से भी उद्योग सिद्ध होता है वह युक्ति बड़े ऐश्वर्य की उत्पन्न करनेवाली है तू इस वचन को सन्देह और निन्दारहित होकर सुन राजा का खज़ाना खाली होने से सेना का अभाव उत्पन्न होता है इससे राजा धन को ऐसे पैदा करे जैसे कि झिरनों से जल इकट्ठा होता है और समयपाकर प्रजा का पोषण करे यही सनातनधर्म है यह धर्मरूप युक्ति पहिले लोगों ने की है और हे राजन्! समर्थों का दूसरा धर्म है और आपत्तिकालों में दूसरे धर्म हैं विना खज़ाने के भी धर्म प्राप्त होता है परन्तु धर्म से आजीविका बड़ी है निर्बल राजा धर्म को पाकर न्याय में प्रवृत्त जीविकाको नहीं पाता है इसकारण से सेना और पराक्रम का प्राप्त होना केवल धर्महीं से नहीं होता है इस निमित्त आपत्तिसमय में अधर्म भी धर्मलक्षण सुना जाता है और उस धर्म में अधर्म उत्पन्न होता है यह पण्डितों का कथन है उस आपत्तिकाल के पीछे क्षत्रिय को क्या करना चाहिये जिससे कि वह धर्मग्लानि को पाकर शत्रु के वशीभूत न हो ऐसे स्थान में वह कर्म करना कहा है जिससे कि अपनी कोई हानि न हो किसी पराक्रम से अपने या दूसरे के धर्म को नष्ट न करे किन्तु अनेक युक्तियों से अपने को आपत्ति से पार करना चाहिये वह यह है कि उससमय धर्म के ज्ञाता पुरुषों का निश्चय धर्म की प्रवीणता है और भुजबल से उद्योग करना क्षत्रिय में बुद्धिमत्ता

गिनी जाती है क्षत्रिय को अपनी आजीविका के रोकने पर तपस्वी और ब्राह्मणों के विशेष और किसका धन लेना योग्य है और किसका अयोग्य है जैसे कि पीड़ित होकर ब्राह्मण यज्ञ के अयोग्य मनुष्यों को यज्ञ करावे और अभोज्य अन्नों को भोजन करे ऐसाही यह भी कर्म है इसमें सन्देह न समझो पीड़ित पुरुषका कौन द्वार है और शास्त्र के विरोधियोंका कौन मार्ग है बुद्धिमान् जब पीड़ित होता है तब दुर्द्वार होकर भागता है जिस राजा के खज़ाने और सेना की ग्लानि से सब लोक की नष्टता है उसकी कोई भिक्षा नहीं नियत की गई और न वैश्य, शूद्र की आजीविका उसको नियत हुई सजातियों से चाहना न करनेवाले राजा की वह जीविका है जो कि अपने धर्म के योग्य है पहिले कल्पशास्त्र के जाननेवाले राजा की जीविका आपत्तिकाल में गौण कल्प से योग्य है आपत्तिमान् को धर्म के विपरीत जीवन करना यह बात आजीविका के नष्ट होने से ब्राह्मणों में भी देखी गई है तो किस कारण से क्षत्रिय के करने में सन्देह है इसप्रकार सदैव निश्चय कियागया वह क्षत्रिय भी अच्छे पुरुषों से बल के द्वारा धन को लेने से किसीप्रकार की पीड़ा को न पावे क्षत्रिय को प्रजा का रक्षक और पीड़ा देनेवाला कहा है इसीकारण अच्छे प्रकार से रक्षा करनेवाले क्षत्रिय को धन लेना चाहिये हे राजन्! विना पीड़ा के किसी की आजीविका नहीं है यहां तक कि वन में वर्तमान् घूमनेवाले अकेले मुनि की भी जीविका विना पीड़ा के नहीं है हे कौरवोत्तम! क्षत्रिय को प्रारब्ध मेंही लिखी हुई जीविका पर सन्तोष करके रहना योग्य नहीं है तो रक्षा करनेवाले राजा को तो सन्तोष से रहना सदैव अयोग्य है आपत्ति में राजा को और देश को परस्पर में अन्योन्य रक्षा करनी चाहिये यह सनातनधर्म है जैसे कि राजा आपत्तिकाल में देश की द्रव्य और ओषधियों आदि से रक्षा करता है उसीप्रकार कोई व्यसन में राजा कीभी रक्षा देश को करनी अवश्य है खज़ाना, दण्ड, सेना, मित्र और देश की अन्य वस्तुवों के संचय को क्षुधा से संयुक्त राजा दूर नहीं करे बीज को तक़ावी धन के द्वारा प्राप्त करना चाहिये यह धर्मज्ञों का कथन है इसस्थान पर बड़ीमायावाले शम्बर दैत्य का यह शास्त्र कहागया है जिसका देश आजीविका न पाने से पीड़ा पाता है अथवा जो राजा थोड़े मनुष्यों समेत दूसरे के देश से जीवन करनेवाला है उस राजा के जीवन को धिकार है खज़ाना और सेना राजा का मूल है और केवल खज़ाना सेना की जड़

है और धर्म प्रजाओं की जड़ है इसहेतु से सबधर्मों का मूल खज़ाना है यहां दूसरों को पीड़ा न देकर खज़ाने की वृद्धि सम्भव नहीं फिर सेना कहां से होगी वह राजा उसके लिये प्रजा को पीड़ा देखकर दोष का भागी नहीं है यज्ञकर्मों में यज्ञ के लिये अकार्य भी कियाजाता है इस कारण राजा दोष के योग्य नहीं है आपत्तिकाल में दूसरा कर्म अर्थात् प्रजा को पीड़ा देना धन के लिये होता है और पीड़ा न देना विपरीत अर्थात् अनर्थ का हेतु होता है और हाथी आदि का पोषण धन के नष्ट होने के निमित्त होता है यह सब धन के ही कारण होते हैं इसप्रकार शास्त्रज्ञ मनुष्य बुद्धि के अनुसार निश्चय को विचारता कर्मकर्ता होय जैसे कि पशु आदि यज्ञ के कारण होते हैं और यज्ञ धन का संस्कार है इससे पशु यज्ञ और संस्कार यह तीनों मोक्ष के निमित्त होते हैं और यज्ञ के साधन कहेजाते हैं इसीप्रकार दण्ड खज़ाने के लिये और खज़ाना सेना के निमित्त और सेना शत्रु के विजय के लिये और तीनों मिले हुये देश की वृद्धि के लिये हैं इस स्थानपर धर्मतत्त्व के प्रकट करनेवाले दृष्टान्त को कहता हूं, यहां जो शत्रु हैं वह यज्ञस्तम्भ को काटते हैं और कितनेही सामन्तलोग वृक्षों को भी अवश्य काटते हैं वह वृक्ष भी गिरते समय अपने नीचे की वनस्पतियों को मारते हैं इसीप्रकार जो मनुष्य बड़ेखज़ाने के शत्रु हैं उनको भी विना मारे सिद्धि नहीं प्राप्तहोती धन के ही द्वारा दोनों लोक और सत्यता आदि धर्म वचन को विजय करता है और विना धन के मृतक समान है इससे हे युधिष्ठिर ! यज्ञ के निमित्त अनेक युक्तियों से धन को प्राप्त करे इसप्रकार से कार्य कारण दोनों में दोष नहीं होता है हे राजन् ! यह धन की प्राप्ति और त्याग दोनों एक मनुष्य में कभी किसी प्रकार से भी सिद्धि को कहीं प्राप्त होते धनवान् लोगों को वन में कभी कोई नहीं देखता अर्थात् जो धनी लोग हैं वह त्यागी नहीं होते हैं और जो त्यागी हैं वह धनी नहीं होते इस पृथ्वी पर जो कुछ यह धन दृष्टि पड़ता है उसको मनुष्य चाहते हैं कि यह मेरा होय इससे हे राजन् ! राजधर्म से अधिक कोई धर्म नहीं है वही राजाओं का धर्म कहागया और आपत्ति के लिये इसके विपरीत कहागया कोई दान और कर्म से और तपस्वी तप से कोई बुद्धि की चतुराई से धन के समूह को पाते हैं निर्धन को निर्बल और धनवान् को पराक्रमी कहते हैं तात्पर्य यह है कि धनवान् को सब वस्तु प्राप्त होसक्ती हैं खज़ाना रखनेवाला सब आपत्तियों से तरसक्ता है जैसे धन से धर्म,

अर्थ, काम और परलोक की प्राप्ति होती है वैसेहीं इस लोक के आनन्द प्राप्त होते हैं इस निमित्त उस धन को धर्म से ही प्राप्त करे अधर्म से कभी न करे॥ ५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्र्यां वैयासिक्यां शान्तिपर्वणि राजधर्मे
त्रिंशदुत्तरशततमोऽध्याय ॥ १३० ॥

इति शान्तिपर्व राजधर्म समाप्तम् ॥

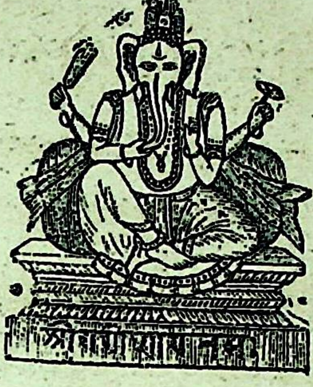

क्र० सं०..........
दि०सं०..........
- अस्सी, वाराणसी।

अथ महाभारत भाषा

शन्तिपर्व।

आपद्धर्म।

पहिला अध्याय॥

श्रीगणेशजी और नरोत्तम श्रीनारायणजी और सरस्वती देवी और व्यास जी को नमस्कार करके फिर जय को वर्णन करते हैं पहिले अध्याय में यह वर्णन किया है कि सेना की चढ़ाई करनेवाला राजा आपत्तिकाल में प्रजा को पीड़ित करके भी धन से खज़ाने को पूरा करके आपत्ति से निवृत्त हो अब वर्तमान राजा आपत्ति के आनेपर क्या करे इस विषय में युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि अनाज आदि के गोदाम और खज़ाने से रहित दीर्घसूत्री बान्धवों पर दयावान् अर्थात् राज्य और जिसका मन्त्र प्रकट होगया हो और राज्य करने में शंका युक्त गढ़ से बाहर निकलकर युद्ध करने में असमर्थ जिसके ग्रामदेश शत्रुवों ने परस्पर में विभाग करलिये और देशों को शत्रुवों ने परस्पर में विभाग करलिया हो और धन के समूहों से खाली मित्रों से भिन्न और सब मन्त्रियों से रहित शत्रु की सेना से घिरा हुआ पराक्रमी शत्रु से व्याकुलचित्त राजा का कौन सा कर्म शेष रहजाता है उसको कहिये—भीष्मजी बोले कि जो धर्म अर्थ में कुशल चढ़ाई करनेवाला राजा विजय की इच्छा करनेवाला होय तो शीघ्र ही उससे सन्धि करे और अपने प्राचीन पुरुषों के ग्राम और नगरों को शत्रुने विजय करलिये हों उनको सामनीति से छुड़ावे और जो पराक्रमी पाप का निश्चय करनेवाला अधर्म से विजय करने की इच्छा करता हो उससे भी अपने थोड़े बहुत ग्राम देकर सन्धि करे अथवा राजधानी को त्यागकर धन के द्वारा आपत्ति से उद्धार हो फिर जीवता हुआ उन राजगुणों से संयुक्त धनों को इकट्ठा करे जो

आपत्ति कि धन और सेना के त्यागने से दूर होती जानपड़े तो अर्थ धर्म का जाननेवाला कौन पुरुष धन के सिवाय अपनेको त्याग करे अर्थात् ऐसे समय में सेना और धन के त्यागने से सब अपनी २ रक्षा को उचित जानते हैं महलों को भगाना चाहिये नहीं तो शत्रु के आधीन होनेवाले धन में क्या प्रीति है समर्थ होकर आप उसके स्वाधीन न होय युधिष्ठिर बोले कि मन्त्री आदि के क्रोधयुक्त होने से और देश गढ़ आदि शत्रु के आधीन होने से और खजाने के नष्ट होने और गुप्तमन्त्रों के प्रकट होने में कौन कर्म शेष रहता है—भीष्मजी बोले कि मन्त्री आदि के धर्मज्ञ होनेपर सन्धि की शीघ्र ही इच्छा करे अथवा शीघ्र ही महावीरता प्रकट करे जब ऐसा होता है तब शत्रुका हटाना शीघ्र ही होता है अथवा धर्मयुद्धकर मरजाने में परलोक की प्राप्ति होती है सब पृथ्वीका रक्षक राजा ऐसी थोड़ी सेना से भी पृथ्वी को विजय करता है जो प्रीतिमान् स्नेहयुक्त और प्रसन्नचित्त हो मरकर स्वर्ग को जाय अथवा मारकर पृथ्वी को विजय करे वह युद्ध में प्राणों को अच्छेप्रकार त्याग करके इन्द्र के लोक को प्राप्त होता है मृदुता के गुण प्राप्त करने के निमित्त लोकप्रसिद्ध शास्त्र को बुद्धि से प्रकट करके विश्वास से विश्वास को पाकर मृदुता करे और युक्ति से विश्वासित हो जो मन्त्रियों के क्रोध से सामनीति होना असम्भव हो अर्थात् मेल होना कठिन हो तब मिलमिलाकर क़िले से भागने की इच्छा करे और थोड़ेदिन देश को छोड़कर उत्तम सलाह के द्वारा फिर पराक्रम को करे ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! सबके उपकारी उत्तम राजधर्म के नष्ट होने और सब पृथ्वी की जीविका चोरों के आधीन होजानेपर और उस नीचसमय के आने में ब्राह्मण स्नेह से अपने पुत्र पौत्रादि को नहीं त्याग करे उस दशा में कैसे निर्वाह करे भीष्मजी बोले कि उस दशा में विज्ञान के पराक्रम में नियत होकर जीवन करे क्योंकि यह सब संसारी वस्तु साधुवों के लिये हैं असाधुवों के निमित्त कुछ भी नहीं है जो पुरुष अपनेको सेतु बनाकर नीचों से धन लेकर सत्पुरुषों को देता है वही आपद्धर्म का जाननेवाला है हे राजन् ! संसार की रक्षा करनेवाले का धन है इसकारण यह शोचकर कि यह मेरा ही है अपने लिये अनिच्छा करके पालन धर्म को करता विना दियेहुये धन को भी लेले

जो पूरीबुद्धि के बल से पवित्र मनुष्य निन्दितकर्मों में भी प्रवृत्त होता है वह जीविका की पूर्णबुद्धि रखनेवाला और विद्वान है उसकी निन्दा कौन करसक्ता है जिनकी आजीविका बल से उत्पन्न होनेवाली है उन्होंको दूसरी आजीविका श्रेष्ठ नहीं मालूम होती है हे युधिष्ठिर ! बलवान् मनुष्य अपने बल से सम्मुख होजाते हैं और यह शास्त्र आपद्धर्म के योग्य वर्तमान है इसको इसप्रकारसे काम में लावे और शास्त्रों का ज्ञाता बुद्धिमान् पुरुष भी इससे उत्तम शास्त्र में कुशल होताहै अर्थात् जो अपने वा शत्रु के देशी मनुष्य दण्डके योग्यहैं उनसे धनको लेना चाहिये राजा आपत्तिकाल में शुभकर्मी ऋत्विज, पुरोहित, आचार्य आदि पूज्य ब्राह्मणों को धनदण्ड आदि के सिवाय मारे नहीं क्योंकि उनके मारने में दोषी होता है यह लोकमर्यादा है और सनातन नेत्र हैं इसकारण इस मर्यादा का माननेवाला उसको देशों में फिरावे चाहे वह उत्तम हो या अनुत्तम हो बहुत से ग्रामवासी परस्पर में क्रोधयुक्त होकर कहैं राजा उनकी न तो वचनों से अप्रतिष्ठा करे और न मारे गुरु आदि की निन्दा न करनी चाहिये और न किसी दशा में सुननी चाहिये ऐसे स्थान में दोनों कान बन्द करने योग्यहैं यह निन्दा करना नीचों का ही स्वभाव है और सन्त लोग सत्पुरुषों में गुणोंके ही कहनेवाले होते हैं जैसे कि सुन्दर बोलनेवाले सीधे सुशिक्षित अच्छेलोगों को सवार करनेवाले दो बैल धुर को उठाकर ले चलते हैं उसी प्रकार राजा भी कर्म करे जिस२ रीतिसे उसके बहुतसे सहायकहोते हैं उसीप्रकार दूसरे मनुष्य यह मानते हैं कि धर्म रूप आचार बड़ा है जो दूसरे पुरुष शंखके लेखको प्रमाण मानते हैं वह इसप्रकार से चाहते हैं कि मित्रता और लोभ से भी ऐसे वचन नहीं कहना चाहिये इस स्थानपर धर्मके विपरीत कर्म करनेवाले गुरु आदि के दण्डको आर्ष अर्थात् ऋषियों का वचन कहते हैं परन्तु ऐसे प्रकार का कोई प्रमाण दृष्टि नहीं आता तात्पर्य यह है कि गुरु आदि कभी दण्ड के योग्य नहीं हैं देवता धर्म के विपरीतकर्मी नीचमनुष्य को दण्ड देते हैं इसी कारण वह राजा किसी मिष के द्वारा गुरु आदि से धन को लेकर नष्टता को प्राप्त होताहै तात्पर्य यह है कि जब दैव गुरु आदि को दण्ड देताहै उस दशा में राजा उस दण्ड देने से अलग होजाय और जो वेदोक्त धर्म सब ओर से प्रतिष्ठा के योग्य और सत्पुरुषों से सेवित स्मार्त धर्म और सदैव से प्राप्त होनेवाले कुलदेवता आदि से स्वीकार कियेहुये धर्म और इनतीनों हेतुओं के न होनेपर भी अपने हृदयका अभीष्ट जो धर्म है उस

को निश्चय करता है तब ऋत्विज् आदि के दण्ड देने में उसका सम्मत नहीं होताहै जो चारों गुणों से संयुक्त धर्म को कहे वह धर्म का जाननेवाला है सर्प के समान धर्म का खोज ढूंढ़ना कठिन है जिसप्रकार घायल मृग के चरणचिह्न पाकर उसके स्थान को पाता है और रुधिरकी आधिक्यता से उसको देखताहै उसीप्रकार धर्मको देखे और युक्तिसे ऐसे दूसरोंको प्राप्तकरावे जैसे कि सत्पुरुषों से उपदेश पायेहुये पुरुष को इस रीति से धर्ममार्ग पर चलना योग्य है और यही राजऋषियोंका चलनहै सो हे युधिष्ठिर ! तुमभी इसीप्रकार से चलो॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! अपने देश और दूसरे के देश से धन को उत्पन्न करे क्योंकि धन सेही धर्म होता है और राज्य की भी दृढ़ता होती है इस हेतु से धन को इकट्ठा करे और सत्कारपूर्वक उसकी सबप्रकार से रक्षा करे और फिर अच्छे २ कामों में खर्च करे यह सनातनधर्म है पवित्र शौचक्रिया· वाले अथवा निर्दय मनुष्य से धन कभी इकट्ठा नहीं होसक्ता साधारण स्थान पर नियत होकर धन को बटोरे विना पराक्रम धन नहीं और धन के विना सेना नहीं और विना सेना के राज्य कहां और राज्य के विना राजलक्ष्मी कहां होसक्ती है बड़े आचारवान् पुरुष के पास लक्ष्मी का न होना मरण के समान है इसकारण राजा खज़ाना, सेना और मित्रों की वृद्धि अच्छे प्रकार से करे खज़ानेसे रहित राजा का अपमान होता है और उसके मनुष्य थोड़ेमासिक से प्रसन्न नहीं होकर इसके काम को भी उत्साहपूर्वक नहीं करते हैं लक्ष्मी के कारण राजा बड़ी सत्क्रिया को पाता है वह इसके पापों को ऐसे ढकती है जैसे कि स्त्री के गुप्तअंगों को वस्त्र आच्छादन करता है पहिले समय के अपमान किये हुये मनुष्य इसके ऐश्वर्य को देखकर दुःखी होते हैं और कुत्तेआदि के समान इसके मारनेको बराबर बैठतेहैं हे राजन् ! ऐसे राजाको सुख कहां होसक्ता है उद्योगकरे सुस्ती न करे क्योंकि युक्तिपूर्वक उद्योगही करना मनुष्य का धर्म है और असमर्थ होने या अपना बुरासमय होने में भागजाय पर किसी के साथ निकृष्टकर्म न करे वन में जाकर मृगयूथों के साथ घूमे नहीं तो बे मर्याद होकर चोरों के साथ घूमे हे भरतवंशिन् ! दुष्टकर्मों में चोरों की सेना सुगमता से प्राप्त होती है बहुत सी बे मर्यादा से सब मनुष्यों को व्याकुलता होती है और

निर्दयकर्म करनेवाले चोर भी शंका करते हैं इससे मनुष्यों के चित्त की प्रसन्नता करनेवाली मर्यादा को नियत करे वह मर्यादा इसलोक के छोटे अर्थों में भी पूजित होती है प्राकृत पुरुषों का यह निश्चय है कि न यह लोक है न परलोकहै नास्तिक और भयभीत पुरुषों को विश्वास होना ऐसा कठिन है जैसे कि सत्पुरुष को चोरों से विश्वास नहीं होता दूसरे का धन हरना भी हिंसा है इसको कहताहूं कि जैसे चोरों की मर्यादा होनेसे सब जीव अप्रसन्न होते हैं उसी प्रकार युद्ध न करनेवाले का मारना और दूसरे की स्त्री का पुरुष उपकारको भूलजाना ब्राह्मण के धन का लेना और सर्वस्वहरण करना कन्या को चुराना गांवों को अपने स्वाधीन करके उनका स्वामी बनजाना और दूसरेकी स्त्री से सम्भोग करना यह सब बातें चोरों में निन्दित हैं चोर इनको त्याग करे जो मनुष्य इस चोर के विश्वास के निमित्त उससे मिलाप करते हैं वह चोर उसके विश्वास होजाने पर स्थान आदि को पाकर उसके धन और बालबच्चों को नाश करते हैं ऐसा निश्चय जानके अपने स्वाधीनहुये भी चोरजाति को शेष न छोड़ना चाहिये अपने को पराक्रमी समझकर जो उनको बाक़ी छोड़ देते हैं तो वह बाक़ी के मनुष्य उस नाशकर्ता की बेबाक़ी करेंगे ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय ॥

भीष्म जी बोले कि प्राचीन वृत्तान्तों के जाननेवाले पुरुष इस स्थानपर धर्म के अनुवचन को कहते हैं कि धर्म अर्थ अच्छे बुद्धिमान् क्षत्रिय के दृष्टिगोचर होता है ऐसे स्थानपर यह विचार न करना चाहिये कि यह धर्म है या अधर्म है क्योंकि धर्म का उपदेश ऐसा गुप्तफलवाला है जैसा कि भेड़ी का खोज कभी किसी ने धर्म अधर्म के फल को नहीं देखा इससे पराक्रम कोही प्राप्त करने की इच्छा करे क्योंकि यह बात निश्चय है कि यह सब संसार पराक्रमी केही आधीन है इस लोक में पराक्रमी राजा लक्ष्मी सेना और मन्त्रियों को पाता है जो धनरहित है वह पतित है अर्थात् अपने धर्म का करनेवाला नहीं है और जो इससे भी अल्प है वह उच्छिष्ट के समान है पराक्रमी में बहुत कुमार्गों को देखकर भय से कुछ नहीं किया जाता है वह पराक्रम और धर्म दोनों सच्चे अधिकार में नियत होकर बड़े २ भयों से रक्षा करते हैं मैं धर्म से पराक्रम को अधिक मानता हूं क्योंकि पराक्रमही से धर्म जारी होता है धर्म पराक्रमही में

ऐसे वर्तमान है जैसे कि पृथ्वीपर चेष्टा करनेवाले जीव धर्म पराक्रम के पीछे ऐसे वर्तमान होता है जैसे कि धुवां वायु के आधीन होता है यह धर्म पराक्रम में वर्तमान होकर स्वतन्त्र ऐसे नहीं है जैसे कि वृक्ष में लगीहुई लता धर्म इसप्रकार पराक्रमियों के आधीन है जैसे भोगी लोगोंके आधीन सुख होता है पराक्रमियों को कोई अप्राप्त वस्तु नहीं है और उनके आगे सब पवित्र हैं कुमार्गी और निर्बल की रक्षा नहीं होती है क्योंकि उससे सबलोग ऐसे व्याकुल होते हैं जैसे कि भेड़िये से राज्य से भ्रष्ट अपमानयुक्त मनुष्य दुःखरूप जीवन को पाता है जो जीवन निन्दित है वह मरण के समान है जो कोई ऐसा कहे कि पाप और कुवृत्ति के कारण बान्धवों ने इसको त्याग किया इस बात से वह अत्यन्त दुःख पाता है वह वचनरूप भालों से चारों ओर से घायल है इस पाप के दूर होने का उपाय आचार्यलोग ऐसा कहते हैं कि तीनों वेदों का पाठकरे और ब्राह्मणों की उपासना करे और नेत्र, वचन, कर्म आदि से सबको प्रसन्न करके महाउदारता प्रकट करे और बड़ेकुल में विवाह करे और अपनी हीनता करके दूसरेकी प्रशंसा करे अथवा स्नान, जप, स्तोत्र आदि से प्रसन्नचित्त पवित्र और मृदुस्वभाव होकर दूसरों को प्रसन्न करे बुराई न करे बड़े कठिन कर्म को करके वारंवार लोगों से की हुई अपनी पशंसा को सुनी अनसुनी करके ब्राह्मण और क्षत्रियों के बीच में निवास करे इसप्रकार के आचरणों से वह पापरहित होकर सबका प्रिय होसक्ताहै और अपूर्व सुख को भोगता हुआ एक उपकारही मात्र के करने से ऐसे गुणवाला राजा लोक में प्रतिष्ठा को पाता है और दोनों लोकों में बड़े २ फलों को भोगता है ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पांचवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिससे मर्यादायुक्त चोर भी नरक को नहीं पाता है, शिकार करनेवाला बुद्धिमान् शूरवीर शास्त्रज्ञ होकर शास्त्रकी रीतिसे हिंसा करनेवाला वेद ब्राह्मणों का रक्षक आश्रमियों के धर्मकी रक्षा करनेवाले क्षत्रियोंका रक्षक एक कायव्य नाम निषाद का पुत्र था उसने निषादी स्त्री में क्षत्रिय से उत्पन्न होकर चोरजाति में ही सिद्धिको पाया वह वन के मृगोंपर अहर्निश क्रोध करनेवाला और मृगकी जाति के जीवों की बुद्धि का ज्ञाता निषादों में पण्डित सब काल और देश

का जाननेवाला सदैव पारियात्रपर्वतपर विचरनेवाला सब जीवों के धर्मों का जाननेवाला सफलबाण और शस्त्रधारी था उस अकेले ने बहुत सी कठिन सेनाओं को विजय करके वृद्ध, अन्ध, बधिर अपने माता पिता का वन में पूजन किया और मधु,मांस,मूल,फल और अनेकप्रकारके अन्नों के भोजनों से सत्कार पूर्वक उनको तृप्त किया और प्रतिष्ठा के योग्य पुरुषों की सेवा करके वनवासी ब्राह्मण संन्यासी लोगों के निमित्त उसी वन में मृगों को मारकर उनके भेंट किये जो पुरुष चोरजाति की शंका से इससे नहीं लेतेथे उन्हों के घरमें वह प्रातःकालही भोजन रखकर चला जाता था, निर्दयकर्मी चोरों के समूहों ने इसको अपना मालिक बनाना चाहा और कहा कि हे मुहूर्त देश काल आदि के जाननेवाले, ज्ञानिन्, शूर और दृढ़व्रतवाले! तुम हम में मिलकर हम सबके बड़े अधिपति होजावो और जो हमको आज्ञा करोगे वही हमसबलोग करेंगे तुम माता पिता के समान न्याय की रीति से हम सबकी रक्षाकरो कायव्य बोला कि तुम भयभीत स्त्री को, बालक को, तपस्वी को और युद्ध न करनेवाले को मत मारो और स्त्रियां कभी पराक्रम से पकड़ने के योग्य नहीं होतीं सब दशा में जीवधारियों के मध्य स्त्रियां अवध्य हैं, सदैव ब्राह्मणों का कल्याण विचारना योग्य है और उनके आनन्द के लिये युद्ध करना भी उचित है सत्यता को कभी नष्ट न करना चाहिये और किसी के विवाहादि कार्यों में विघ्न मत करो क्योंकि विवाहादि में देवता, अतिथि, पितृ पूजेजाते हैं सब जीवों में ब्राह्मण अदण्ड्य हैं और उन ब्राह्मणोंकी वृद्धि सबप्रकार से करनी चाहिये वह ब्राह्मण क्रोधयुक्तहोकर जिसका नाश करना चाहते हैं उसका रक्षा करनेवाला तीनोंलोक में कोई नहीं होताहै, जो ब्राह्मणों की निन्दा करे और नाश को चाहे उसका नाश ऐसे शीघ्र होता है जैसे कि सूर्योदय में अन्धकार का नाश होता है इन ब्राह्मणों में बैठा हुआ सब प्रकार से राजफल की इच्छा करे कि जो व्यापारी हमको नहीं देंगे उससे उनलोगोंको चोरी लगेगी क्योंकि यह दण्ड निश्चयकरके कुकर्मियों के नाश के निमित्त नियत कियागया है खज़ाने की वृद्धि के लिये नहीं कियाहुआ है जो श्रेष्ठ लोगों को पीड़ा देते हैं उनका मारना ही दण्ड कहागया है जो कोई देश के नाश से अपनी वृद्धि करते हैं वह ऐसे मारेजाते हैं जैसे मृतक के साथ कीड़े मारेजाते हैं और जो चोर धर्मशास्त्रके अनुसार कर्म करें तो वह चोरजाति में भी शीघ्र सिद्धि को पाते हैं भीष्मजी बोले कि इतनी बातें सुनकर उन चोरोंने

उस कायव्यकी शिक्षा और आज्ञाको किया तब सबलोग पापोंसे निवृत्त होकर वृद्धि को प्राप्तहुये साधुवों की भलाई और चोरों को पापकर्मों से निवृत्त करके कायव्य ने बड़ी सिद्धि प्राप्त की जो पुरुष इस कायव्य के चरित्रको सदैव विचार करेगा वह वनवासी जीवों से कभी भयभीत न होगा हे राजन् ! जिसको सब जीवोंसे भय न हो और नीचों से भी कभी भय न करे वही वनका राजाहै ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठा अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर प्राचीन वृत्तान्तों के जाननेवाले पुरुष ब्राह्मणों की कही हुई कथा को कहते हैं कि राजा जिन २ से धन को इकट्ठा करता है उनमें यज्ञ करनेवालों का और देवताओं का धन न हरना चाहिये, क्षत्रियराजा चोरों का और यज्ञ न करनेवालों का धन हरसक्ता है क्योंकि यह प्रजा और राज्यभोग क्षत्रियों के ही हैं धन भी क्षत्रियों का ही है अन्य किसी का नहीं है वह धन इसके पराक्रम और सेना के वास्ते अथवा यज्ञ के निमित्त होता है भोगने के अयोग्य इन्धन आदि और भोजन के योग्य चावल इत्यादि और ओषधियों को काटकर पकाते हैं जो पुरुष हविष्यान्न से देव, पितृ, मनुष्यों का पूजन नहीं करता है उस स्थल में धर्मज्ञ पुरुषों ने धनको निष्फल कहा है हे राजन् ! धर्मज्ञ राजा पहिले धन को हरण करे तदनन्तर लोक को प्रसन्न करे इसप्रकार करनेवाला राजा शोकरूप नहीं होता, जो पुरुष अपने देह को सेतु बनाकर असाधुवों से धन लेकर साधुवों को देता है वही सब धर्मों का ज्ञाता है अपनी सामर्थ्यसे ऐसे प्रकारसे संसारको विजय करे जैसे कि उद्भिज्ज चेंटी आदि जीव धीरे २ दूरतक चले जाते हैं जैसे कि डांस मच्छर और चेंटियों के अण्डे अपने आप उत्पन्न होते हैं उसीप्रकार यज्ञ न करनेवाला पुरुषभी वारंवार पैदा होताहै और जैसे डांसआदि जीवोंको पशु अलग करते हैं वैसेही यज्ञ न करनेवालों को त्यागना चाहिये और जैसे बहुत पिसावट से पृथ्वी की रेणु महीन होजाती है उसी तरह इस लोक में धर्म भी सूक्ष्म से सूक्ष्म होजाता है ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जो मनुष्य भविष्यत् बातको पहिलेही करनेवालाहै और जो समय पर बुद्धि के अनुसार कार्य करता है यह दोनों सुखपूर्वक वृद्धि को

पाते हैं दीर्घसूत्री सदैव नष्टता को पाता है इसस्थानपर इस उत्तम व्याख्यान को कहता हूं जोकि दीर्घसूत्री को करने और न करने के योग्य कर्म के निश्चय के विषय में कहा है, हे राजन्! किसी बड़े गहरे तालाब में मित्रभाव के साथ रहनेवाले तीन मत्स्य थे उन तीनों में से एक तो प्राचीन वृत्तान्तों का जाननेवाला दूसरा समय पर बुद्धिमत्ता प्रकट करनेवाला और तीसरा दीर्घसूत्री था किसी समय मछली मारनेवालोंने चारोओर से नीचा खोदकर उसके जलको खाली किया तब वह दूरदर्शी उस तालाब को खाली होता देखकर अपने दोनों मित्रों से बोला कि सब जलजीवों की यह आपत्ति उत्पन्न हुई है सो जबतक मार्ग में कोई दोष न आवे तबतक दूसरे किसी अन्यस्थान को चलना चाहिये हे मित्र लोगो ! जो पुरुष सम्मुख आनेवाली किसी आपत्ति को अच्छीनीति से निवृत्त करे वह संशय से रहित होता है जो तुमलोगों को यह बात स्वीकार होय तो चलो उनमें से दीर्घसूत्री ने कहा कि ठीक है परन्तु शीघ्रता न करनी चाहिये यह मेरी पक्कीरायहै तदनन्तर समयपर बुद्धि प्रकट करनेवाले ने दूरदर्शी से कहा कि समय वर्तमान होनेपर मेरा कोई काम न्याय के विपरीत नहीं होताहै तब तो महाबुद्धिमान् दूरदर्शी वहां से नालियों के मार्ग होकर किसी बड़े गहरे तालाबको गया तदनन्तर मछुवों ने उस तालाबको खाली करके बड़ी२ युक्तियों से मछलियों को पकड़ा उनमें वह दीर्घसूत्री भी पकड़ा गया वहां रस्सियों से मछलियों के बांधने पर वह समयपर बुद्धि प्रकट करनेवाला भी उनमें आकर घुसगया और सबको जाल में लेकर वह मत्स्यघाती चलदिया और उसने उन सब पकड़ी हुई मछलियों को देखा तदनन्तर मछलियों के धोने के समय यह बुद्धिमान् मत्स्य रस्सी से निकलकर गम्भीरजल में चलागया और उस निर्बुद्धि असावधान दीर्घसूत्री की मृत्यु हुई इसीप्रकार जो पुरुष सम्मुख आयेहुये समय को नहीं जानता है वह दीर्घसूत्री मत्स्य के समान शीघ्र ही मृत्यु को पाता है और जो अपने को बुद्धिमान् समझकर प्रारंभमें अपने कल्याणको नहीं करता है वह ऐसे सन्देह में पड़ता है जैसे कि समयपर बुद्धि प्रकट करनेवाले ने पाया और जो आगामी होनेवाले कर्म को करता है और समयपर बुद्धि को प्रकट करता है वह दोनों सुख से वृद्धि को पाते हैं और दीर्घसूत्री का नाश होजाता है काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, रात, मास, पक्ष, छहोंऋतु, कल्प, चारो प्रकार के वर्ष, पृथ्वी, देश, काल यह सब समय के विभाग हैं इनकी सूक्ष्मता दृष्टि नहीं

आती है जो पुरुष मनोरथ सिद्धि करने के लिये ध्यान करता है वह अपने ही प्रकार से जानता है ऋषियों ने यह दोनों धर्म अर्थ और मोक्ष के शास्त्र और मनुष्यों के स्वीकृतशास्त्रों को ऋतु कहा है परीक्षा लेकर करनेवाला और कर्म का करनेवाला दोनों अच्छे प्रकारसे प्रयोजन को सिद्ध करते हैं देश और काल चित्त के रोचकहैं इससे इन्हीं से फल को पाता है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! आपने सर्वोत्तम बुद्धियों का वर्णन किया प्रथम वह है कि जिससे भविष्यत् बात ज्ञात होजाय द्वितिय वह कि समयपर आपत्ति से बचे तृतीय नाश करनेवाली दीर्घसूत्रियों की बुद्धि है हे पितामह! अब मैं आपसे उस बुद्धि को सुनाचाहता हूं जिससे कि शत्रु से घिराहुआ राजा मोहयुक्त न हो और जो राजा धर्म अर्थ में प्रवीण और धर्मशास्त्र का पण्डित हो ऐसा कौन है उसको आप कहिये मैं इन सबको बुद्धि के अनुसार सुना चाहता हूं पूर्वसमय के खेद पाये हुये बहुत से शत्रु आपत्ति में संयुक्त अकेले भी होकर राजा के नाश को चाहते हैं, बड़े पराक्रमियों से सब स्थानों पर क़ैद करने के योग्य निर्बल और असहाय राजा कैसे वर्तमान होने को योग्य है और शत्रु मित्र को कैसे प्राप्त करताहै यहां शत्रु मित्र के मध्य में कैसे कर्म करना चाहिये इसीप्रकार जिस पुरुष का लक्षण जानागया है ऐसे मित्र को शत्रु होजाने पर कैसे काम करे जिससे कि सुख को प्राप्त हो, किसको मित्र और किसको शत्रु करे और शत्रुवों में वर्तमान वीर पराक्रमी भी किसप्रकार से बर्ताव करे इन सब बातों को आप विचारपूर्वक कहिये भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर, पुत्र! यह सुखदायी प्रश्न तेरे पूछने योग्य है इसको ब्यौरेसमेत मैं कहता हूं कि कार्यों के सामर्थ्ययोग से शत्रु मित्र होजाता है और मित्र शत्रु होजाता है यह बात सदैव से चली आई है इसकारण देशकाल को जानकर योग्यायोग्य कर्म के निश्चय करने में विश्वास करना चाहिये और आतंकबन्ध घात इत्यादि को अच्छे प्रकार से करे और बुद्धिमान् शुभचिन्तकलोगों से सदैव मेल और स्नेह रखना चाहिये और शत्रुवों से भी सन्धि करनी चाहिये क्योंकि अपने प्राणों की रक्षा अवश्य है जो मूर्ख शत्रुवों से सदैव मेल नहीं रखता है वह किसी अर्थ और फल को नहीं पाता जो पुरुष अपना अर्थ समझकर शत्रु से सन्धि करता है

और मित्र के साथ शत्रुता करता है वह बड़े भारी फल को पाता है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें वट वृक्ष के समीप रहनेवाले बिलार और चूहे का परस्पर विवाद है कि किसी बड़े वन में एक बड़ाभारी बरगद का वृक्ष था जिसकी बड़ी २ लता उसको घेरेहुये थीं और अनेक प्रकार के पक्षियों के समूहों से व्याप्त था उसकी सघनछाया में अनेक सर्पादिक विषवाले जीव और मृगों का निवासस्थान था वहां एक पलित नाम चूहा भी उसकी जड़ में सौ मुखवाले छिद्र में निर्भय रहता था और पक्षियों का घातक लोमश नाम बिलार उस वृक्ष की शाखा पर रहता था वहां एक बहेलिया सूर्यास्त के समय उस वृक्ष के नीचे जाल बिछाकर प्रतिदिन घर को चलाजाता था और प्रातःकाल जब आता था तब रात्रि के फँसेहुये मृग उसमें पाता था दैवयोग से एक दिन वह बिलार उसमें फँसगया उस बड़े पराक्रमी अपने शत्रु के फँसजाने पर वह पलित नाम चूहा निर्भय होकर इधर उधर फिरनेलगा तब बहुत दिनों से आकांक्षी घूमनेवाले चूहे ने उस जाल के समीप पड़ेहुये मांसखण्डको देखा और जालपर चढ़कर उसको खाया और उस फँसेहुये अपने वैरी बिलार के सिवाय उसने एक नौले को और उलूकपक्षी को देखा यह दोनों भी चूहे के शत्रु थे और चूहे की गन्ध पाकर ओठों को चाटतेहुये चूहे की खोज में इधर उधर फिरनेलगे तब चूहे ने चारो ओर से अपने को शत्रुवों से घिरा हुआ देखकर महाचिन्तायुक्त होकर यह विचार किया कि ऐसे मृत्यु के वर्तमान होने से और चारो ओर से भयभीत होनेपर अपनी वृद्धिचाहनेवाले को किसी प्रकार काम करना चाहिये जिससे कि आपत्ति में पड़ेहुये जीव अपनी आपत्ति दूर करके उत्तम जीवन प्राप्त करें यदि पृथ्वीपर जाऊं तो नौला भक्षण करेगा और जो यहांही बैठा रहूंगा तो उलूक खाजायगा और फांसियों के कटने से बिलार भोजन करेगा ऐसी दशा में मुझ सरीखा बुद्धिमान् मोह करने के योग्य नहीं है क्योंकि मैं जहां तक बनेगा वहां तक जीवने का उद्योग करूंगा बुद्धिमान् नीतिज्ञ लोग बड़ी आपत्ति में भी फँसकर चिन्ता में मग्न नहीं होते हैं इससे अब मैं इस स्थान पर बिलार के सिवाय दूसरे उपाय को नहीं जानता हूं यह मेरा शत्रु आपत्ति में है और इस समय में उसका बड़ा काम करसक्ता हूं अब तीन शत्रुवों से घिरा हुआ अपने जीवन के लिये क्या काम करूं इससे इस बिलार अपने शत्रु की शरण में जाता हूं नीतिशास्त्र की रीति से इसकी

शरण में जाकर इसके अभीष्ट को वर्णन करूं जिसके द्वारा अपनी बुद्धिमत्ता से इन सब शत्रुवों से बचूं यह मेरा शत्रु बड़ी आपत्ति में है जो यह मूर्ख अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये मेल करने को तैयार होजाय अर्थात् महादुःखी होकर जो मुझसे मित्रता करे तो आपत्ति में पड़ेहुये जीवन की इच्छा करनेवाले उस पराक्रमी शत्रु से भी मिलाप करना योग्य है जो कि समीप वर्तमान हो ऐसा आचार्यलोग कहते हैं कि पण्डित शत्रु भी श्रेष्ठ है और मूर्ख मित्र भी अच्छा नहीं और मेरा जीवन इस बिलार से है मैं अपने बचने के लिये इस बिलार से कहूंगा तो यह शत्रु भी मिलाप से पण्डित होजायगा ऐसा मन में विचारकर बड़ी मीठीवाणी से चूहे ने बिलार से कहा कि हे बिलार ! मैं मित्रता से पूछता हूं कि तुम जीते हो मैं तेरा जीवन चाहता हूं हम दोनों का कल्याण सुगम है हे स्वामिन् ! तुमको भय न करना चाहिये तू सुख को अधिक भोगेगा मैं तुझको इस बन्धन से छुटादूंगा जो मुझको न मारे यहां एक कठिन उद्योग मुझको दृष्टिपड़ता है जिसके द्वारा तुझको छुटाऊंगा और मेरा भी कल्याण होगा मैंने अपने और तेरे लिये खूब विचारकर यह युक्ति शोची है इसीमें हमदोनों का कल्याण है हे बिलार ! यह नौला और पापात्मा उलूक मुझको नहीं मारते हैं इसी से मेरा कल्याण है परन्तु यह चपलनेत्र नौला मुझको देखता है और शब्द करता है और वृक्ष की शाखापर बैठा हुआ यह उलूक भी देखता है मुझको इनसे बड़ा भय है सातचरण साथ चलने से सत्पुरुषों की मित्रता होती है सो तुम पण्डित हो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा तुम मेरे मित्र हो अब तू भय मत कर हे मित्र, बिलार ! तुम मेरे काटने विना फन्दे से नहीं निकलसक्के जो तुम मुझको न मारोगे तो मैं तेरे फन्दों को काटूंगा तुम अपने वृक्षपर जावो और मैं वृक्ष की जड़ में जाऊं क्योंकि हम तुम बहुतकाल से इस स्थान में रहते हैं जिसका कोई विश्वास नहीं करता और कहीं आप भी विश्वास नहीं करता ऐसे चित्तवालों की पण्डित प्रशंसा नहीं करते हैं इसकारण हमदोनों की मित्रता बड़ी होय और सदैव हमदोनों का मिलाप रहे इस स्थान पर पण्डितलोग समय पर प्रयोजन उल्लंघन करने की प्रशंसा नहीं करते हैं यहां इस अर्थयुक्ति को सुनो कि मैं तुम्हारे जीवन को और तुम मेरे जीवनको परस्पर चाहते हो जैसे कि कोई पुरुष काष्ठ के द्वारा महागम्भीर नदी से पार उतरता है वह उस काष्ठ को भी तारता है और उसके द्वारा आप भी तरता है इसीप्रकार

हमारा तुम्हारा योग है मैं तुमको तारूंगा और तुम मुझको तारोगे ऐसी उचित बातें करके वह चूहा चुप होगया तब वह पण्डित बिलार बड़े मीठे वचनों से उसकी प्रशंसा करके बोला कि हे सौम्य ! तेरा भला हो मैं प्रसन्न होता हूं जो तुम मेरा जीवन चाहते हो तो इस कल्याणको करो इसमें विचार मत करो मैं इस कठिन फन्दे में फँसा हूं और तुम मुझसे भी अधिक आपत्ति में फँसे हो हमदोनों आपत्ति में हैं मिलाप करने में विलम्ब न करना चाहिये और हे मित्र ! समय के अनुसार जिस कर्म से सिद्धि प्राप्त होगी उसीको करूंगा मेरी आपत्ति की निवृत्ति करने से तेरा उपकार व्यर्थ न होगा मैं निरहंकारी भक्त हूं शिष्य के समान तेरी भलाई करूंगा यह सुनकर उस पलित चूहे ने यह हितकारी वचन कहा कि आप ने जो बात कही वह आप सरीखे जीव में आश्चर्यकारी नहीं है प्रयोजन के सिद्ध करने को जो युक्ति मैंने नियत की है उसको सुनो मैं तेरे पास आता हूं मुझको नौले से बड़ा भय है सो तुम मुझको मत मारो क्योंकि मैं तेरी रक्षा करने में समर्थ हूं और उलूक भी मुझको चाहता है उस नीच से भी मेरी रक्षा करो हे मित्र ! मैं सत्य २ शपथ करता हूं मैं तेरी फांसी को काटूंगा तब उस लोमस नाम बिलारने ऐसे सार्थक वचनोंको सुनकर उस पलित नाम चूहेकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि तुम मेरे प्राण के समान मित्र हो तुम्हारा सदैव भला हो जल्द फन्दों को काटो हे ज्ञानिन् ! तेरी कृपा से बहुत दिनतक जीऊंगा और जो २ मुझसे इसके बदले में चाहैगा वह सब तेरे लिये करूंगा हे मित्र ! जल्दी से हमारा तेरा मिलाप हो इस आपत्ति से जल्दी छुड़ा मैं तेरे अनेक उपकार करूंगा भीष्मजी बोले कि इसप्रकार से दोनों विश्वसित होगये तब चूहा उसकी बग़ल में फन्दे काटने को आया और बिलार से निर्भय होकर उस की छाती के नीचे ऐसे शयन किया जैसे कि विश्वासी माता पिता के साथ सोता है उस चूहे को बिलार के नीचे चिपटा हुआ देखकर वह नौला और उलूक दोनों निराश हुये और उनकी ऐसी प्रीति देखकर वह दोनों महाआश्चर्य करनेलगे और उस चूहे को अपने पराक्रम और उद्योग से पकड़ने को असमर्थ हुये और उसका पकड़ना असम्भव जानकर शीघ्रता से अपने २ स्थानों को चलेगये तब उस पलित ने बहुत धीरे२ उस बिलार की फांसियोंको काटा तब उस बिलारने चूहेसे कहा कि हे सौम्य, मित्र ! क्यों नहीं शीघ्रतासे काटता और अपने सिद्ध मनोरथ का क्यों अपमान करता है हे शत्रुवों के मारनेवाले ! जल्दीसे फांसियों

को काट सामने से वह चाण्डाल आता है तब चूहे ने उस से कहा कि हे मित्र! चुप होजावो तुमको शीघ्रता न करनी चाहिये क्योंकि हम समय के जाननेवाले हैं समय त्याग नहीं किया जाता विना समय करनेवाले का प्रारम्भकर्म सिद्ध नहीं होता है और समयपर करने से वही प्रारम्भकर्म शीघ्र ही सिद्ध होता है बे समय तुझ फांसी से छूटेहुये से मुझको भय है इससे समयतक राहदेख शीघ्रता क्यों करताहै जब उस शस्त्रधारी चाण्डाल को समीप आता देखूंगा तब साधारण भय होनेपर तेरी फांसियों को काटूंगा फांसी से छूटते ही तुम अपने जीवन के निमित्त वृक्ष परही चढ़ोगे तब मैं अपने बिल में जाऊंगा और आप अपने वृक्ष पर बैठोगे; तब चूहे से अपने हितकारी ऐसे वचनों को सुनकर बिलार बोला कि हे मित्र ! प्रीति से करनेवाले साधुलोग इसप्रकार नहीं करते हैं देखो जैसे मैंने तुमको शीघ्र ही आपत्ति से छुटाया उसीप्रकार तुम भी मुझको शीघ्रता से छुटावो और जो तुम प्राचीन शत्रुता से देर करते हो सो देखो कि तुम्हारा जीवन मेरे कारण से सिद्ध हुआ और जो कोई अज्ञानता से मैंने तुम्हारे साथ पहिले पाप किया हो उसको क्षमा करो और चित्त से द्वेष को त्याग कर मेरा काम करो तब उस शास्त्रज्ञ चूहे ने शास्त्र की बुद्धि से फिर श्रेष्ठ वचन कहा कि हे बिलार ! मैंने तुझ स्वार्थी का वचन सुना और तुम भी मुझ अपने स्वार्थी को जानते हो जो मित्र भयकारी के समान मिलनेवाला है और जो भय से हितकारी है वह कार्य बहुत विचार के साथ ऐसे करने के योग्य है जैसे कि सर्प के मुख से हाथ विचार करने के योग्य है जो पुरुष पराक्रमियों से मिलाप करके अपनी रक्षा नहीं करता है उसकी बात उसके प्रयोजन को सिद्ध नहीं करसक्ती है जैसे कि भोजन किया हुआ अपथ्य—न तो कोई मित्र है न कोई किसी का शुभचिन्तक है प्रयोजन से ही मित्र और शुभचिन्तक होते हैं प्रयोजन से प्रयोजन ऐसे बांधाजाता है जैसे कि हाथियों से जंगलीहाथी—कार्य होजाने पर कोई उपकार को नहीं ध्यान करता है इस कारण सब कामों को पूरा नहीं करता दिनमें भयभीत होकर आप भी मुझ पर घात नहीं करसकोगे और भागने में प्रवृत्त होगे बहुत से फन्दे काटे हैं एकही फन्दा बाक़ी है हे लोमश ! मैं उस को भी बहुत शीघ्र काटूंगा विश्वासयुक्त रहो इसीप्रकार से वार्तालाप करते २ रात्रि व्यतीत हुई और बिलार को भय उत्पन्न हुआ तिस पीछे प्रभात के समय विकृत काला और पीलावर्ण महाघोररूप कुत्तोंको साथ लिये शंकुकर्ण चौड़ा

भयानक महामलिन घोरदर्शन हाथमें शस्त्रलिये परिघ नाम चाण्डाल दृष्टिपड़ा तब महाभयभीत होकर बिलारने कहा कि अब क्या करेगा तदनन्तर वह दोनों नौला और उलूक जो निराश होकर चलेगये थे फिर उस समूह में आये और उस बिलार और चूहेको देखते थे कि चूहेने बिलार का वह बाक़ी फन्दा भी काट डाला और बिलार बड़ी शीघ्रता से पेड़पर चढ़गया फिर पलितचूहा भी बिलमें घुसगया तब वह चाण्डाल क्षणमात्र ठहरकर उस जाल को लेकर चलागया तब बिलार ने बिल में बैठेहुये उस चूहेसे यह कहा कि हे मित्र! जीवदान देकर मित्रता से मेरे पास क्यों नहीं आते हो जो मनुष्य पहिले मित्रता करके पीछे पास नहीं आता है वह निर्बुद्धि बड़ी आपत्तियों में कष्ट से भी मित्रों को नहीं पाता है हे मित्र! तैंने अपनी सामर्थ्य से मेरेऊपर उपकार किया इससे मुझसे मित्रता भोगो मेरे इष्टमित्र बान्धव भी तुमको ऐसे पूजेंगे जैसे कि शिष्यलोग अपने प्यारे गुरु को पूजते हैं और मैं अपने सब कुटुम्ब समेत तुझ जीवदान देनेवाले को सदैव पूजूंगा उपकार को जानकर कौन पुरुष है जो उसकी सेवा न करे आप मेरे देह, प्राण, घर आदि के स्वामी हो और मेरे मन्त्री होकर पिता के समान मुझको उपदेश करो हम शपथ खाते हैं हमसे आप कभी भय न करें यद्यपि हम पराक्रम में तुमसे अधिक हैं परन्तु तुम शुक्रजी के समान गुरु हो इस से पराक्रमी सलाह में प्रवृत्त हो बिलार के ऐसे २ वचनों को सुनकर चूहे ने साफ़ २ अपना हितकारी वचन कहा कि मैंने सब तुम्हारी बातें सुनीं अब मुझको जैसा मालूम होता है उस मेरी बात को भी सुनो कि शत्रु जानने और पहिंचानने के योग्य हैं लोक में यह अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञानियों का वचन सुनने में और देखने में आता है कि मित्र शत्रुरूप हैं और शत्रु मित्ररूप हैं वह काम क्रोध में संयुक्त हुये नहीं पहिंचाने जाते हैं प्रत्यक्ष में न कोई शत्रुहै न मित्र है मित्र और शत्रु दोनों सामर्थ्य के योग से उत्पन्न होते हैं जो अपने प्रयोजन के लिये जिसके पास जीवन करता है और जीवन में कोई दुःख नहीं पाता है वह तबतक ही उसका मित्र बना रहता है जबतक कि कोई विपरीतता न होवे प्रत्यक्ष है कि मित्रता स्थिर नहीं है और शत्रुता भी अविनाशी नहीं है मित्र और शत्रु सब अर्थयुक्तियों से उत्पन्न होते हैं किसीसमय की विपरीतता में मित्र शत्रु होता है और शत्रु मित्र होजाता है अपना प्रयोजनही महाबली है जो मित्रों में विश्वास करता है और शत्रुवों में विश्वास नहीं करता है और

जो अर्थयुक्ति को न जानकर प्रीति करनेवालों में इच्छा करताहै उसकी बुद्धि शत्रु या मित्र में अवश्य चलायमान होगी अविश्वस्तों में अधिक विश्वास न करे विश्वास से उत्पन्न होनेवाला भय मूल को भी काटडालता है अर्थयुक्ति से ही पिता, माता, पुत्र, मामा, भानजे, सम्बन्धी, बान्धव आदि सब उत्पन्न होते हैं और पतित होनेवाले पुत्र को माता पिता भी त्याग करते हैं सब संसार अपनी आत्मा की रक्षा करता है तुम अपने अर्थकी सरिता देखो हे ज्ञानिन्! जो बन्धन से छूटने के पीछे बदला है वह साधरण है निस्सन्देह तुम सुगमता से अपने शत्रु को प्राप्त किया चाहते हो इस बड़े बरगद से उतरते हुये तुमने चपलता से पहिले से बिछाये हुये जाल को नहीं जाना चपल पुरुष जब अपनाही नहीं है तो दूसरों का कैसे होगा इस कारण चपल मनुष्य अवश्य सबकार्यों का नाश करता है जो तुम इन मीठे वचनों को कहते हो कि आप मेरे प्यारे हो तो मित्र होने के उस सम्पूर्ण कारण को ब्यौरेवार मुझसे सुनो कि कारण ही से मित्रता प्राप्त होती है और कारण ही से शत्रु भी होजाता है यह जीवलोक अपने स्वार्थ का चाहनेवाला है कोई किसी का प्यारा नहीं है सगे भाई या स्त्री पुरुषों में परस्पर प्रीति होती है मैं इस लोक में किसी की प्रीति को विना कारण के नहीं जानता हूं जो किसी हेतु से भाई या स्त्री क्रोधयुक्त होजाते हैं तो वह स्वभाव से प्रसन्न भी होजाते हैं दूसरा मनुष्य प्रसन्न नहीं होता कोई धन से कोई मीठे वचन से कोई मन्त्र, होम, जप आदि से प्रसन्न होता है सब मनुष्य कार्य के निमित्त प्रीति करते हैं हमारी तुम्हारी प्रीति कारणसे हुई है बेकारण नहीं हुई मैं जानता हूं कि उस कारण स्थान के नाश होने से वह प्रीति दूर हो जाती है, वह कौन सा कारण है जिससे मैं आप का प्यारा हुआ, भोजन के प्रयोजन के सिवाय भी उस स्थान पर हम बुद्धिमान् हैं समय कारण को बदलता है और अपना प्रयोजन उसके पीछे वर्तमान होता है ज्ञानी अपने प्रयोजन को जानता है और ज्ञानी के समान संसार कर्म करता है बुद्धिमान् पण्डित होकर तुम को ऐसा न कहना चाहिये तुझ सरीखे समर्थ मनुष्य का यह प्रीति का कारण अयोग्य है इस कारण सन्धि और विरोध में स्थिरस्वभाव होकर मैं प्रयोजन के मित्र से अलग होता हूं जैसे कि बादलों के रूप क्षण २ में बदलते रहते हैं इसीप्रकार आप भी शत्रु होकर मेरे मित्र होते हो और फिर शत्रु होजावोगे इन युक्तियों की चपलता को

देखो तभीतक हमारी मित्रता रही जबतक कि पूर्वसमय में मित्रता का कारण वर्तमान था उस समयसे मिलीहुई मित्रता जातीरही तुम जन्मसे ही मेरे शत्रु हो सामर्थ्य के योग से मित्रता होगई उस कार्य को सम्पूर्ण करके स्वभाव ने शत्रुता को पाया सो मैं शास्त्रज्ञ होकर अपने को तेरे जाल में कैसे फँसाऊं यह मुझे समझावो मैं तेरे बल से छूटा इसीप्रकार आप भी मेरे पराक्रम से जालसे छूटे परस्परमें कृपाहोने से फिर मिलाप नहीं है हे बिलार ! अब जैसे तुम अभीष्ट सिद्ध किये हो उसप्रकार मैं भी सिद्धमनोरथ हूं अब भक्षण करने के सिवाय कोई काम मुझसे तेरा नहीं है मैं भोज्यवस्तु हूं आप भोक्ता जीवहैं मैं निर्बलहूं आप पराक्रमी हैं भिन्न २ पराक्रमियों का परस्पर में मेल नहीं होता सो मैं तेरी इस बुद्धि को जानता हूं जो जाल से छूटने के पीछे तुझ में उत्पन्न हुई, तुम निश्चय करके सुगमता से भोजन को चाहते हो भोजनही के लिये तुम जाल में फँसे थे अब उससे छूटकर फिर गृहस्थाश्रम से दुःखी हो मुझे निश्चय है कि तुम अपनी विद्याबुद्धि के बल से मुझको भक्षण करना चाहते हो मैं तुझको जानता हूं यह तेरे भोजन का समय है सो मुझसे मिलाप करके भोजन चाहते हो जो तुम मुझसे मित्रता करते हो तो तुम भी स्त्री और पुत्रों में संयुक्त हो और मेरी सेवा करनेकी युक्ति करते हो सो हे मित्र ! वह तेरे स्त्री पुत्र मुझको तेरे साथ देखकर कब खाने से छोड़ेंगे इससे मैं तुझसे नहीं मिलूंगा मिलाप करने का जो कारण था वह तो समाप्त हुआ अब जो उपकार को तुम स्मरण करते हो तो सावधान होकर मेरी भलाई को ध्यानमें रक्खो नीच, दुःखी और भोजन को चाहनेवाले शत्रुके देशको कौन बुद्धिमान् जाता है मैं दूरही से तेरा भय करताहूं क्षणमात्रमें तेरा भोजनरूप कल्याण होजाऊंगा चाहे विश्वासयुक्त हो या अत्यन्त प्रसन्न हो परन्तु समयपर यही कर्म होगा क्योंकि पराक्रमीकी समीपता किसी २ समयपर दुःखदायिनी भी होती है इससे हे लोमश ! मैं तुमसे नहीं मिलूंगा अपनी आशा दूर करो और जो तुम उत्तमकर्म को जानते हो तो चित्तसे प्रीति रक्खो मुझको शान्तचित्त पापी पराक्रमी से अवश्य डरना योग्य है जो तुम अपने मतलबी होजावो तो मैं तुम्हारा क्या करसक्ता हूं मैं इच्छा के अनुसार सब वस्तु दूंगा परन्तु देहको नहीं दूंगा क्योंकि देह के पीछे सन्तान, राज्य, रत्न, धन भी त्याग करने के योग्य हैं सब धनको भी त्याग कर बुद्धिके अनुसार देहकी रक्षा करे धन रत्नों के ऐश्वर्य को पाकर मित्र के पास वर्तमान हो और धन की प्राप्ति के

अनुसार अपने जीवन का निर्वाह करो, धन और रत्नों के समान अपने देहको कोई नहीं देने की इच्छा करता है स्त्री और धनसे भी अधिक अपना आत्मा रक्षा के योग्य है—जो पुरुष अपने आत्मा की रक्षा में प्रवृत्त अच्छी परीक्षा करके कर्म करते हैं उन पुरुषोंको अपने दोष से प्राप्त होनेवाली आपत्ति कभी नहीं होतीहै, जो निर्बल अपने पराक्रमी शत्रु को अच्छेप्रकार से जानते हैं उनकी बुद्धि चलायमान नहीं होती है तब तो बिलार ने लज्जायुक्त होकर उस पलित चूहेसे यह वचन कहा कि पलित मैं तुझसे सत्य २ शपथ खाता हूं मित्र से शत्रुता करना महानिन्दितकर्म है और तुम जो मेरे अभीष्ट को चाहते हो इससे मैं तेरी इस बुद्धि को श्रेष्ठ जानता हूं तुमने अपने प्रयोजन के लिये अथवा मुख्य प्रयोजन पर दृष्टि करके अपूर्व बातें मुझसे कहीं सो हे मित्र! तुम मुझको प्रतिकूल जानने के योग्य नहीं हो क्योंकि प्राणदान से मैं तुझको मित्र बनाता हूं मैं गुण और धर्मों का जाननेवाला अच्छेप्रकार तेरे उपकार को जानता हूं मित्रों से प्रीति रखता हूं और विशेष करके तेरा भक्तहूं इस कारण तुम मेरे साथ विचरनेके योग्य हो तेरे त्यागने से मैं बान्धवोंसमेत प्राण त्याग करूंगा जब कि यह मेरा विचारहै तो आपको भय करना कभी नहीं योग्यहै यह सुनकर चूहेने फिर उत्तर दिया कि आप साधु हैं परन्तु मैंने अर्थशास्त्र पढ़ाहै इससे शत्रुपर विश्वास कभी नहीं करसक्ता तेरी प्रशंसा और धन के देनेसे भी मैं तेरे आधीन नहीं होसक्ता अरे भाई ज्ञानी पुरुष विना प्रयोजन शत्रुके आधीन नहीं होते हैं इस प्रयोजनमें शुक्रजी की दो गाथाओं को सुनो कि जहां साधारण शत्रु है वहां पराक्रमी के साथ मेल करके सावधानी से युक्तिपूर्वक कर्म करे और मनोरथ सिद्ध करके भी विश्वास न करे, अविश्वासी में विश्वास न करे और विश्वासी में भी अधिक विश्वास न करे, सदैव दूसरों को अपना विश्वास दिलावै परन्तु आप किसी दूसरे का विश्वास न करे इस कारण चाहिये कि सब दशाओं में अपने आत्मा की रक्षा करे धन और पुत्र देहसेही उत्पन्न होते हैं अविश्वासहीको नीतिशास्त्र का उत्तम आशय कहते हैं इससे मनुष्योंपर विश्वास न करनाही अपना बड़ा हितहै विश्वास न करनेवाले निर्बल भी पराक्रमियों के हाथसे नहीं मारे जाते हैं और विश्वासी पराक्रमी भी होकर निर्बलों के हाथ से मारेजाते हैं इससे हे बिलार! मुझको अपना आत्मा तुझ सरीखे जीवों से सदैव रक्षा के योग्य है तुमको भी उचित है कि पापी चाण्डाल से अपनी रक्षा करो उसके यह वचन

सुनतेही वह बिलार भयभीत होकर वृक्षको त्यागरक शीघ्रही बड़ी तीव्रता से भागा वह पलित चूहा अपनी बुद्धि की सामर्थ्य से ऐसे वचन सुनाकर दूसरे बिलमें चलागया इसप्रकार से इस निर्बल चूहे ने अपनी प्रबलबुद्धि से बहुत से पराक्रमी शत्रुवों को स्वाधीन किया पण्डित होकर समर्थ शत्रु से सदैव सन्धि करे मैंने क्षत्रियधर्म चूहे और बिलार के दृष्टांत से तुमको सुनाया अब हे युधिष्ठिर ! इसका आशय भी मुझसे सुनो कि उन दोनों विरोधियों ने परस्पर में प्रीति करी और फिर परस्पर में मेल करने की भी उन दोनों में इच्छा हुई ऐसे स्थान में ज्ञानी पुरुष बुद्धि के बल से अच्छे प्रकार मिलाप करता है ज्ञानी भूल से भी अज्ञानियों के साथ मिलाप करता है इस कारण निर्भयता के समान भयभीत और विश्वासी के सदृश विश्वास को नहीं करता सावधान पुरुष चलायमान नहीं होता है और जब चलायमान होता है तब नाश को प्राप्त होता है समय पर शत्रु से सन्धि और मित्र से विरोध भी करना चाहिये यह सन्धि के जाननेवालों ने वारंवार कहाहै हे युधिष्ठिर ! इसको जानकर शास्त्र के अर्थ को निश्चय करके कर्म में प्रवृत्त प्रसन्न चित्त होकर भय से पूर्वही भयभीत के समान कर्म करो, क्योंकि भयपूर्वक सावधानी से उद्योग करने से बुद्धि उत्पन्न होती है और सम्मुख न आनेवाले भय में भयभीत होनेवाले को भय नहीं प्राप्त होता है और विश्वासयुक्त निर्भय से भी बहुत बड़ाभारी भय उत्पन्न होता है-जो पुरुष सदैव निर्भय होकर घूमता है उसको बड़ी युक्ति से मन्त्र देना चाहिये कि अच्छेप्रकार से जाननेवाला वह पुरुष अज्ञानी के समान उन लोगों के पास जाय जोकि ऐश्वर्यवान् हैं भयभीत विश्वासी के समान विश्वास करने के कारण निर्भय के समान कार्यों की श्रेष्ठता को पाकर मिथ्याकर्म नहीं करता है हे युधिष्ठिर ! मैंने इसप्रकार यह इतिहास कहा इसको समझकर तुम मित्रों में बुद्धिके अनुसार कर्म करो अर्थात् उत्तम बुद्धि और शत्रु मित्रके अन्तर को जानकर सन्धि और विरोध के समय अपना बचाव जानके शत्रु को साधारण जान पराक्रमी से मेलकर मिलाप में युक्ति के साथ कर्म करो और मनोरथ सिद्ध करके विश्वास न करो-हे राजन् ! यह नीति त्रिवर्गसे मिलीहुई है इसको काम में लावो और फिर इस शास्त्र से प्रजा की अच्छी रक्षा करके सावधान हो और तेरी यात्रा भी ब्राह्मणों के साथ हो क्योंकि ब्राह्मण लोग इस लोक और परलोक में महाकल्याणरूप हैं और यही धर्मज्ञ और कृतज्ञ पूजित होकर भला करनेवाले

हैं इनका पूजन करने से परम कल्याण और कीर्ति को प्राप्त होगे और न्यायपूर्वक परम्परा के समान घराने की सन्तानों को भी पावोगे—इस नीतिके अनुसार राजालोगों को शत्रुवों के बीचमें बर्ताव करना चाहिये ॥ २२१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाबाहो ! आपने मन्त्र अर्थात् सलाह का वर्णन किया कि शत्रुवों पर विश्वास नहीं है जो राजा किसी पर विश्वास न करे तो कैसे अपने सब राज्यकर्म करे और विश्वास से राजाओं को बड़ाभय उत्पन्न होता है पृथ्वी का राजा विश्वासरहित होकर कैसे शत्रुवों को विजय करता है इस अविश्वस्तता के वृत्तान्त को सुनकर मेरे चित्त में बड़ी अज्ञानता है इससे मेरे सन्देह को दूर करिये भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! सुनो कि राजा ब्रह्मदत्त के महल में पूजनी नाम पक्षीकी स्त्री के साथ राजासे वार्तालाप के द्वारा जो वृत्तान्त हुआ वह यह है कि काम्पिल्य नाम नगर में राजा ब्रह्मदत्त के राजमहल में पूजनी नाम पक्षिणी बहुत दिवस से रहती थी यद्यपि वह तिर्यग्योनि में उत्पन्न हुई थी परन्तु सब सिद्धान्तों की ज्ञाता होकर सम्पूर्ण जीवों की भाषा जीव जीव के समान जानती थी (जीव जीव के पक्षियों की बोली से शुभ अशुभ जाननेवाला होता है) उसी महल में उस पूजनी में एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ और उसीसमय राजा के भी पुत्र हुआ तब वह पक्षिणी समुद्र के तटपर जाकर दोनों बालकों के निमित्त दो फल लाई वह अमृत के समान सुस्वादु तेजबल का बढ़ानेवाला एक फल अपने पुत्र को और दूसरा राजकुमार को दिया उस फल से राजकुमार की बड़ी वृद्धि हुई एक दिन धात्री की गोद में बैठेहुये राजकुमार ने उस पक्षी के बच्चे को देखा और लड़कपन से उसके पास जाकर उससे खेलने लगा और खेलते २ उस खाली मकान में उस पक्षी को मारकर धात्री की गोदी में आबैठा तदनन्तर वह फललानेवाली पूजनी आपहुँची और उस अपने बच्चे को राजकुमारसे मारा हुआ पृथ्वीपर पड़ा देखा और महाव्याकुल शोकसे अश्रुपात करती हुई उस पूजनी ने यह वचन कहा कि क्षत्रिय में न मिलाप है न प्रीति है यह क्षत्रियलोग कारण से मीठे वचन कहकर दमदिलासा दिया करते हैं और अपना मनोरथ करके उसको त्याग करते हैं सबप्रकार से अनुपकारी अकृतघ्न क्षत्रियों का विश्वास न करना चाहिये बुराई करके भी निरर्थक दिलासा देते

हैं अब मैं भी इस शत्रुता का बदला दूंगी साथ उत्पन्न होकर बड़े होनेवाले और साथ भोजन करनेवाले और शरणागत में आनेवाले इन तीनों को मारने से तीन प्रकार का पातक है ऐसा कहकर दोनों पंजों से राजकुमार की दोनों आंखों को फोड़कर आकाश में जाकर यह वचन कहा कि इच्छा से किये हुये पाप का फल इस लोक में शीघ्रही होता है अर्थात् जैसा कर्म किया वैसा फल पाया क्योंकि कर्म का लोप नहीं होता जोकि किया हुआ पाप कर्मकर्ता में दृष्टि नहीं आता है तो उसके पुत्र पौत्रादि में अवश्य दृष्टि आता है राजा ब्रह्मदत्त ने अपने पुत्र को आंखरहित देखकर और जैसे कर्म का तैसाही फल जानकर उस पूजनी से यह कहा कि निश्चय हमारी ओर का दुष्कर्म है और तेरी ओर से उस कर्म का बदला है यह दोनों बराबर हुये सो हे पूजनी ! यहां से मत जावो पूजनी बोली कि एकबार अपराध करनेवाले को उसी स्थान में शरण होनेवाला कर्म ज्ञानीलोग अच्छा नहीं समझने ऐसे स्थान से अलगही होना कल्याणकारी है सदैव दमदिलासा देने से शत्रुका विश्वास न करे नहीं तो वह अज्ञानी शीघ्रही माराजाता है क्योंकि शत्रुता दूर नहीं हुई परस्पर में शत्रुता करनेवालों के पुत्र पौत्रादि को मृत्यु मारती है और पुत्र पौत्रादि के नाश होने से उसके परलोक का भी नाश करती है शत्रु से अविश्वास करना सबप्रकार से सुखकारी है विश्वासघातियों का विश्वास कभी न करना चाहिये अप्रमाणिक में कभी विश्वास न करे और प्रमाणिक में भी अधिक विश्वास न करे विश्वास से उत्पन्न होनेवाला भय मूलसमेत काटता है दूसरों को इच्छा के समान विश्वास करावे परन्तु दूसरों का विश्वास न करे बान्धवों में माता पिता सबसे श्रेष्ठ हैं और स्त्री वीर्य ग्रहण करने से और पुत्र वीर्यरूप होने से श्रेष्ठ गिनेजाते हैं भाई शत्रुहै जिसको धन से प्रसन्न करनापड़ता है वह आत्माही अकेला मित्र होकर सुख दुःख का भोगनेवाला है परस्पर में शत्रुता करनेवालों का स्नेह शुद्ध नहीं होता है वह सब बातें दूर हुईं जिनके कारण मैं वहां रहती थी, धन और प्रतिष्ठा से पूजित पहिले बुराई करनेवाले जीव का चित्त अविश्वासी होता है और अपना कर्म मुझ सरीखे निर्बल की रक्षा करता है जिस स्थान पर पहिले प्रतिष्ठा हो और पीछे अपमान हो उस स्थान में चाहे शत्रु बहुत सी प्रतिष्ठा भी करे परन्तु बुद्धिमान् वहां कभी न रहै, मैं तेरे महल में बहुत कालतक अच्छेप्रकार से प्रतिष्ठापूर्वक रही अब यह शत्रुता उत्पन्न हुई इससे आनन्दपूर्वक शीघ्रही

जाती हूं ब्रह्मदत्त ने कहा कि जो जीव कर्म के बदले कर्म करे उस स्थानपर अपराधी नहीं है उससे अऋण होता है इससे हे पूजनी ! निवास करो कहीं मत जावो पूजनी बोली कि कर्ता और कर्मकी मित्रता फिर नहीं होती है क्योंकि उस स्थान पर कर्ता और कर्म का हृदयही जानता है ब्रह्मदत्त बोला कि कर्ता और कर्म की मित्रता फिर भी होती है शत्रुता के दूर होने से फिर वह पापको नहीं भोगता है पूजनी ने कहा कि शत्रुता का दूर होना वर्तमान नहीं है मैं दमदिलासा दीजाती हूं यह विश्वास न करे क्योंकि लोक में विश्वासही से माराजाता है इस कारण अलग होना भी कल्याणकारी है जो लोग कि बड़े तीव्रशस्त्रों से भी विजय नहीं होसक्के वह मीठेवचन और दिलासासे पकड़ेजाते हैं जैसे कि हाथी हथिनियों के द्वारा, ब्रह्मदत्त बोला कि जीव नाश करनेवाले जीवों में भी साथ निवास करने से प्रीति उत्पन्न होती है और परस्पर विश्वास होता है जैसे कि चाण्डाल के साथ कुत्ते का होता है परस्पर शत्रुता करनेवालों के सहवास होने से मृदुतायुक्त शत्रुभावसे ऐसे नहीं होता है जैसे कमलपर वर्तमान जल पूजनी बोली शत्रुता पांचस्थानों से उत्पन्न होती है उसको पण्डितही जानते हैं प्रथम तो स्त्री के कारण से, दूसरी पृथ्वी से, तीसरी वचनों से, चौथी स्वाभाविकीय, पांचवीं अपराध से उत्पन्न होनेवाली शत्रुता के स्थान पर बल और अबल के दोष को जानकर विशेषकर क्षत्रिय की ओर से प्रकट वा अप्रकट वांछित वस्तु का देनेवाला मारने के योग्य नहीं है परन्तु इस लोक में शत्रुता करनेवाले मित्रमें भी विश्वास न करना चाहिये जैसे कि लकड़ी में गुप्त अग्नि होती है उसी प्रकार शत्रुता भी गुप्त रहा करती है हे राजन् ! क्रोध की अग्नि न धन देने से न कठोर और मीठे वचनों से किन्तु शास्त्रों से शान्त होती है जैसे कि सागर की वड़वानल अग्नि हे राजन् ! शत्रुता से प्रकट होनेवाली अग्नि और अपराध से उत्पन्न होनेवाला कर्म भी शत्रु को विध्वंस किये विना शान्त नहीं होताहै, पहिले निन्दा करनेवाले और पीछे धनप्रतिष्ठासे सत्कार पानेवाले को मित्र करने के योग्य विश्वास नहीं होता है क्योंकि निर्बलों को अपना कर्मही रक्षा करताहै किसी बुराई के कारण जैसे मैं तुझपर विश्वास नहीं करती हूं और वैसेही आप भी मुझपर विश्वास नहीं करते हो, मैं तेरे घर में रहती थी परन्तु अब नहीं रहूंगी ब्रह्मदत्त बोला कि करने और न करने के योग्य अनेक काम कालसे कियेजाते हैं यह सब कर्म समयपर होते हैं इस लोक में कोई किसी

का अपराध नहीं करता है जन्म मृत्यु दोनों बराबर वर्तमान होते हैं यह कालही पैदा करता है और वही मारता है कितनेही एकही साथ परस्पर में मारे जाते हैं दूसरे परस्पर नहीं मारेजाते हैं जैसे अग्नि इन्धन को भस्म करता है इसी प्रकार काल सबको भस्म करता है हे पक्षिणि ! हम और तुम दोनों किसी का कोई कारण नहीं है कालही संसार के सुख और दुःख को उत्पन्न करता है इससे हे पूजनी ! बड़ी प्रसन्नता से अविनाशी होकर यहां निवास करो तुम ने जो किया वह मैंने क्षमा किया और हमारे करने को तुम भी क्षमा करो पूजनी बोली कि जो काल ही से सब होता है तो एक को एकसे शत्रुता न होनी चाहिये बान्धव किस कारण से मारेहुये बान्धवों के द्वारा हानि को पाते हैं जो कालही से सुख दुःख और हानि लाभ है तो प्राचीन समय में देवता और राक्षसों में क्यों परस्पर युद्ध हुआ जो कालही सबका हेतु है तो वैद्य रोगियों को औषधों से क्यों चिकित्सा करते हैं और जीवों के शोक से पीड्यमान क्यों विलाप को करते हैं किस कारण से कर्ता लोगों में धर्म वर्तमानहै तेरे पुत्रने मेरे पुत्रको मारा वह मेरे हाथसे मारागया तदनन्तर हे राजन् ! मैं तेरे हाथसे मारनेके योग्य हूं मैं पुत्रके शोक से तेरे पुत्र के साथ पापकर्मा हुई मैं तेरे हाथ से जैसे मारने के योग्य हूं उसको ब्यौरेसमेत सुनो मनुष्य पक्षियों को भोजन और क्रीड़ा करने के लिये चाहा करते हैं उनको पक्षियों को पकड़ना या मारना इसके सिवाय तीसरा मिलाप हितकारी नहीं है यह सब जीवघात और बन्धन के भय से मोक्षतन्त्र में रक्षावान् हैं वेद के ज्ञाताओं ने दुःख को मरण के उत्पात से उत्पन्न होनेवाला कहा है प्राण सबको प्यारा है और पुत्र सबके प्रिय हैं सब दुःख से डरते हैं और सुख सबको अभीष्टहै हे ब्रह्मदत्त ! बुढ़ापा होना और धनका हाथसे जाना यही दुःख है और अप्रियके साथ भी रहना दुःख है और हितूबान्धवों से पृथक् रहना भी दुःखहै घात और बन्धन से उत्पन्न होनेवाला दुःखहै, स्त्री से सम्बन्ध रखनेवाला दुःखहै इसीप्रकार देहसे उत्पन्न होनेवाला भी दुःखहै, विरोधी पुत्रसे सदैव दुःख है, ऐसे २ दुःखों को जानकर भी इन्हीं बातों में अधिक प्रवृत्त होताहै । कितनेही अज्ञानी लोग दूसरे के दुःख को दुःख नहीं मानते हैं जो दुःख को नहीं जानता है वह बड़े मनुष्यों में वाद करता है और जो अपने देह में सब दुखोंका जाननेवाला है वह दूसरे में भी वैसाही मानता है और दुःख से पीड़ित होकर शोच भी करता है वह कैसे कहनेको समर्थ हो हे ब्रह्मदत्त ! जो तुमने मेरा उपकार

किया और जो मैंने तुम्हारा किया वह बहुत कालतक भी चित्त से दूर होनेको असम्भव है हम दोनों का काम परस्पर में है अब सन्धि नहीं होसक्ती पुत्र को याद करके तेरी शत्रुता नवीन होगी, जो शत्रुता के समीप होकर मित्रता चाहताहै वह इसप्रकार कभी नहीं होती जिसप्रकार टूटी मिट्टी के पात्र की सन्धि नहीं होतीहै अपने प्रयोजन के शास्त्र जाननेवाले जीवों पर विश्वास करना निश्चय करके शोक का उदय करनेवाला है प्राचीनसमय में शुक्रजी ने प्रह्लाद जी से दो कथा कही हैं कि जो जीव शत्रुवोंके सत्यवचन अथवा मिथ्यावचनों पर श्रद्धा करता है तो वह श्रद्धा करनेवाले ऐसे मारे जाते हैं जिसप्रकार लोभरूपी शहदसे सूखेतृणोंसे ढकीहुई पृथ्वीपर गिरनेवाले लोग दुःखसे होनेवाली घराने की शत्रुता दूर नहीं होती है परन्तु उसमें शिक्षा समाधान करनेवाले बहुत होजाते हैं हे राजन्! शत्रुताओं को करके दमदिलासा देते हैं परन्तु किसी समय उसको ऐसे मारते हैं जैसे कि भरेहुये घड़ेको पत्थरपर, राजा इस लोक में किसी का पाप करके सदैव विश्वास न करे क्योंकि दूसरों का अपमान करनेवाला विश्वास से दुःख को भोगता है ब्रह्मदत्त बोला कि कोई भी विश्वास के विना मनोरथों को सिद्ध नहीं करसक्ता है और न कुछ इच्छा करसक्ता है लोग पूरेभयसे सदैव मृतक के समान रहते हैं, पूजनी बोली कि जिसके दोनों पैरों में फोड़ा फुंसी है और पैरों से चलता है उसके दोनों पैर घायल होते हैं जो पुरुष पीड्यमान नेत्रों से हवा की ओर देखताहै उसकी आंखोंको वह हवा महापीड़ा देती है जो पुरुष कुमार्ग को प्राप्त होकर अपने पराक्रम को जानकर भूल से उसमें चलता है उसका जीवन उसी मार्ग में समाप्त होताहै, जो वर्षा न होना जानकर खेत को जोतता है वह खेती के फल को नहीं पाता है, जो पुरुष तिक्त, कषाय, मधुर आदि रसों को विचारपूर्वक पथ्य से खाता है वह नीरोग होता है और जो पुरुष पथ्य भोजन को छोड़ के परिणाम को न जान के अज्ञानता से दुष्टभोजन को खाता है उसकी मृत्यु होती है प्रारब्ध और उद्योग परस्पर में एक एककी रक्षामें वर्तमानहैं बड़े साहसी पुरुषोंके कर्म श्रेष्ठहैं, नपुंसक लोग प्रारब्ध को ही रोया करते हैं सबको अपनी वृद्धि करनेवाला काम करना चाहिये चाहे वह सुगम हो या कठिन हो क्योंकि निकम्मा निर्धन मनुष्य सदैव अनर्थों से ग्रसित होता है इससे सबको त्याग करके पराक्रम करना चाहिये मनुष्यों को अपने हित के लिये सब धन भी त्यागना योग्य है विद्या, शूरता, विज्ञता,

वैराग्य, धैर्य यह सब देह के साथ उत्पन्न होनेवाले मित्र कहेजाते हैं अर्थात् इस लोक में इन गुणों के द्वारा गुणी होते हैं सुवर्ण, रत्न, छत्र, स्त्री और सुहृद्जन यह सब हितकारी हैं इनको सब स्थानोंपर पुरुष पाताहै और ज्ञानीपुरुष उनको सर्वत्र पाकर सब स्थलों में विराजमान होताहै कहीं उसको कोई नहीं डराता है और जो कोई डराता भी है तो वह भय नहीं करता है बुद्धिमान् का थोड़ा भी धन वृद्धि को पाताहै और असावधानी से करनेवालेका कर्म अचेतता से रुकावट को पाता है प्रीति में बद्ध निर्बुद्धि मनुष्यों के मांसों को खोटी स्त्रियां अपने अपराधोंसे पीड़ा देती हैं अर्थात् ऐसे सुखादेती हैं जैसे कर्कश मनुष्यको उसकी सन्तान यह घर, क्षेत्र, मित्र, देश अपना है इसप्रकार की बुद्धि की विपरीततामें मनुष्य पीड़ित होते हैं रोग और दुर्भिक्षताके कारण अपने देशसे भागकर दूसरे स्थान में रहने को जाय या सदैव सुरक्षित होकर रहै इससे हे राजन्! मैं दूसरे स्थान में जाऊंगी यहां रहने को चित्त से नहीं चाहती हूं क्योंकि मैंने तेरे पुत्रके साथ यह बहुत पापकर्म कियाहै खोटी भर्या कुपात्र पुत्र अन्यायी राजा खोटी मित्रता खोटा नाता और खोटा देश इन सबको दूरही से त्याग करे क्योंकि कुपात्र पुत्र में विश्वास नहीं कुभार्या में रति नहीं खोटे राज्य में सुख नहीं खोटे देश में जीविका नहीं सदैव निर्मूल मित्रतावाले खोटे मित्र में मिलाप नहीं धनके नाश होने से खोटी नातेदारी में अपमान होता है जो प्यारे वचन कहती है वही भार्या है जिससे सुख उत्पन्न होता है वही पुत्र है जिसमें विश्वास है वही मित्रहै जिसमें जीवन होताहै वही देशहै जिस देश में अन्याय और भय नहीं है और कठिन आज्ञा देनेवाला राजा निर्धनों की रक्षा करना चाहता है उसी गुणवान् धर्मज्ञ राजा के पास भार्या, देश, मित्र, पुत्र, नातेदार, बान्धव होते हैं धर्म न जाननेवाले राजा के दण्ड से प्रजा नष्ट होती है क्योंकि राजा धर्म, अर्थ, काम का मूल है इस कारण से बड़ी सावधानतापूर्वक राजाको प्रजा की रक्षा करनी चाहिये पृथ्वी के छूटेभाग को लेकर अच्छे प्रकार से खर्च करे जो प्रजा की रक्षा नहीं करता है वह राजा चोर है जो राजा आप अपनी निर्भयता को प्रकट करके धन के लोभ से उसको प्रमाण नहीं करता है वह अधर्मी सब प्रकारके लोभसे पापी होकर नरकको जाता है और जो राजा अपनी निर्भयता प्रकट करके प्रमाणपूर्वक धर्म से प्रजापालन करता है वह राजा सबका सुखदायी है प्रजापति मनुजी ने माता, पिता, रक्षक, गुरु, अग्नि, कुबेर, यम-

राज इन सात राजा के गुणों का वर्णन किया है जो राजा प्रजा के ऊपर कृपा करता है वह पिता के समान है उसके साथ मिथ्याकर्म करनेवाला मनुष्य तिर्यग्योनिकी यातना को पाता है जो माता के समान वृद्धि को चाहता है और दुखियाओं का पोषण करता है और अग्नि के समान शत्रुवों को ऐसे भस्म करता है जैसे कि यमराज पापियों को दण्ड देता है मित्रों में धनों को त्याग अर्थात् उनको देता कुबेर के समान है मनोरथों का देनेवाला है और धर्म का उपदेश करने से गुरु के समान और चारो ओर से रक्षा करने से रक्षक है, जो राजा अपने गुणों से पुरवासियों और देशवासियों को प्रसन्न करता है और देश की रक्षा से उसकी प्रजा दुःखी नहीं होती है वह देश भर का प्यारा होकर इस लोक और परलोक दोनों में आनन्द भोगता है जिसकी प्रजा करों के देने से पीड़ित भयभीत होकर सदैव अनर्थों से नाश होती है वह राजा भी नाश होजाता है जिसकी प्रजा अधिक वृद्धि पाती है वह राजा स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा पाता है हे राजन्! बलवान् से विरोध करना कभी कोई अच्छा नहीं कहताहै जिसका विरोध बलवान् से होता है उसका राज्य कहां और सुख कैसे होसक्ता है ऐसा कहकर वह पक्षिणी राजा को खूब जतलाकर अपनी दिशा को गई हे राजन्! यह मैंने पूजनी के साथ ब्रह्मदत्त का वृत्तान्त वर्णन किया अब दूसरी कौन सी बात सुना चाहता है ॥ ११३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह! युग के अन्त में लोक के धर्म क्षीण होने से चोरों से पीड्यमान होनेपर राज्य में किस प्रकार से वर्तमान होना चाहिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! इस स्थानपर मैं तुझसे उस नीति का वर्णन करता हूं जोकि आपत्तिकालों में उपकारिणी होती है कि समयपर दया को भी त्याग कर जैसे कि कार्य करना चाहिये प्रथम इस स्थान में इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें राजा शत्रुंजय और भरद्वाजऋषि का परस्पर में प्रश्नोत्तरहै सौवीर देशमें महारथी राजा शत्रुंजय होता हुआ उसने किसी समय भरद्वाज ऋषि के समीप जाकर अर्थ के निश्चय को पूछा कि महाराज अप्राप्त वस्तु की इच्छा कैसे करनी उचित है और प्राप्त हुई वस्तु को कैसे बढ़ावे और वृद्धि को प्राप्त हुई वस्तु की कैसे रक्षा करे और उस रक्षित वस्तु को कैसे खर्च करे

अच्छे प्रकार से निश्चय कियेहुये अर्थ के लिये अर्थनिश्चय को पूछेहुये ब्राह्मण ने इस सहेतुक उत्तमवचन को उससे कहा कि सदैव दण्ड जारी करनेवाला और उद्योग करनेवाला कोई दोष न करनेवाला और दूसरे शत्रुवों के दोषों का देखनेवाला और उनके दोषों का पकड़नेवाला होना चाहिये-सदैव दण्डधारी राजा के मनुष्य अत्यन्त भयभीत होते हैं इस कारण सब जीवों को दण्ड से ही स्वाधीन करे मुख्यता के देखनेवाले पण्डितलोग दण्डही की प्रशंसा करते हैं इसीहेतु से चारो नीतियों में दण्डही उत्तम कहा जाता है, जिस देश का मूल काटागया उसमें सबके जीवन का नाश हुआ जब कि वृक्ष का बीजही नष्ट होगया तो उसकी शाखा कहां से नियत होगी-बुद्धिमान् पण्डित राजा को उचित है कि पहिलेही शत्रु के पक्ष की जड़ को काटडाले तदनन्तर उसके सहायकों को मारे और उसके मूल को अपने स्वाधीन करे-आपत्तिकाल के आनेपर नेक सलाह और सुन्दर पराक्रम और युद्ध को करके समय पाकर विना विचारे युक्ति के साथ भाग भी जाय केवल बातें तो मृदुता से करे परन्तु हृदय में छुरे के समान रहै और सफ़ाई के साथ वार्तालाप करनेवाला होवै और काम क्रोध को त्याग करै अपना काम शत्रु के आधीन होजाने पर विश्वास के साथ सन्धि न करे और बुद्धिमानी से अपना काम सिद्ध करके शीघ्रही उससे पृथक् होजाय-मित्रों के समान मीठेवचनों से शत्रु को विश्वास संयुक्त करे और सदैव उससे ऐसा भय करता रहै जैसे कि सर्पयुक्त घर से करते हैं शत्रुवों को बुद्धि के अनुसार विजय करे और उनको व्यतीत वृत्तान्तों से दृढ़ताकरावे और दुर्बुद्धिको भविष्यत् होनेवाले वृत्तान्तों से विश्वास करावे और पण्डित को उस समय के योग्य वचनों से धीरज करावे हाथ जोड़ना शपथखाना मीठेवचन बोलना भी उचित है और शिर को झुकाकर नमस्कार करना भी योग्य है और ऐश्वर्य के चाहनेवाले को शत्रु की सफ़ाई अश्रुपातों से भी करनी योग्य है. जबतक समय अनुकूल न हो तबतक शत्रु को अपने कन्धे की सवारी में भी लेचले और समय वर्तमान होने पर इसप्रकार से मारे जैसे कि पत्थरपर घट को मारते हैं हे राजेन्द्र ! एक मुहूर्त पर्यन्त तिंदुक अलापवत् क्रोधाग्नि में संयुक्त होजाय बहुत से मनोरथों का चाहनेवाला पुरुष कृतघ्नी मनुष्यों से अर्थसम्बन्ध न करे क्योंकि अर्थी पुरुष तो भोगने को समर्थ होता है और मनोरथ सिद्ध करनेवाला अपमान करता है इसी कारण

से सबकामों को पूरा न करावे और कोकिल, शूकर, पर्वत, खाली मकान, नट और भक्त मित्र का जो कल्याणकारी कर्म है उसको करे अर्थात् कोकिल तो अपने बालबच्चोंका पोषण दूसरेसे चाहता है इसीप्रकार राजा भी रक्षा आदि कर्म प्रजा से करावे और वराह जड़ को खोदता है इसीप्रकार शत्रुवों की जड़ राजा उखाड़े और मेरु पर्वत में दृढ़ता और उल्लंघन का न होना है इसीप्रकार राजा अपनी दृढ़बुद्धि को चाहै खाली मकान से प्रयोजन धनकी आमदनी है और नटसे बहुत रूप धारण करना प्रयोजन है और भक्त मित्र अपने मालिक का उदय चाहता है इसी प्रकार राजा को भी अपनी प्रजा का उदय करना योग्य है मिलाप करनेवाला सदैव उठ उठकर शत्रु के घर में जाकर उसकी कुशलक्षेम पूछाकरे चाहै कुशल न भी हो तोभी पूछे और सुस्त, नपुंसक, भगनेवाले, संसारकी बातों से भयभीत और सदैव प्रारब्धही का भरोसा करनेवाले मनुष्य कभी मनोरथों को सिद्ध नहीं करसक्ते, शत्रु जिसके दोष को न जाने परन्तु शत्रु के दोषों को आप जाने कछुवे के समान अपने अंगों को छिपाये रहै और अपने दोषों की रक्षा करै और बगले के समान अर्थों को विचार करता हुआ सिंह के समान पराक्रम करके भेड़िये के समान मारकर खरगोश के सदृश भागे और मद्यपान, पांसा, स्त्रीसंग, शिकार, गीत, वाद्य आदि को बड़ी युक्तिपूर्वक करे और बहुत से प्रसंगों का करना महादोष है धनुष को तृणरूप बनाकर मृगों की शय्यापर शयन करे समयपर सूझता भी अन्धा और बधिर बनजाय और अपनी बुद्धिमानी से देश काल को अनुकूल जानके पराक्रम करे क्योंकि देशकाल के अनुकूल हुये विना पराक्रम करना वृथा होजाता है अपनी सबलता निर्बलता को और समय असमय को और परस्पर के बल को अनुमान करके उस कर्म में प्रवृत्त हो जो राजा दण्ड के द्वारा झुके हुये शत्रु को अपने स्वाधीन नहीं करता है वह अश्वतरी के गर्भ के समान अपनी मृत्यु को प्राप्त करता है सुन्दर पुष्पित होकर अफल हो और फलवान् होकर कठिनता से चढ़ने के योग्य हो कच्चे पक्के आम की सूरत बने परन्तु कभी मुरझाया हुआ न बनै आशा को समयपर होनेवाली समझै और उसको विघ्न में न डाले और विघ्न को निमित्त के द्वारा और निमित्त को हेतु के द्वारा वर्णन करे, जबतक भय सम्मुख न आवे तबतक भयभीत के समान कर्म करे और आयेहुये भय को देखकर निर्भयके समान दूर करना चाहिये, मनुष्य संशयपर चढ़े विना कल्याण

को नहीं देखसक्ता जब संशयपर चढ़कर जीवता रहताहै तभी कल्याण को देखता है सम्मुख न आये हुये भय को अच्छेप्रकार से जाने और सम्मुखमें वर्तमान हुये भय को दूर करे फिर उसकी वृद्धि के भय से कुछ शेष रहे के समान देखे सम्मुख में वर्तमान काल के सुख का त्यागना और पीछे से प्राप्त होने की आशा करना यह बुद्धिमानों का मत नहीं है जो शत्रु के साथ मिलाप करके विश्वासपूर्वक सुख से सोता है वह वृक्ष की सब से ऊंची नोकपर से सोताहुआ गिरकर सावधान होता है जैसे बने तैसे मृदु और कठोर कर्म के द्वारा अपने दीनआत्मा को बचावे और समर्थ होकर धर्मकरे, जो शत्रुवों के शत्रुहैं उन सबसे स्नेह करे और शत्रु केनियत किये हुये दूतों को और अपने जासूसों को भी जानना अवश्य है अपना जासूस शत्रु का विना जाना गुप्त नियत करना चाहिये पाखण्डी तपस्वियों को शत्रुके देशमें प्रवेश करादे, उद्यान विहारस्थान–प्याऊ आदि पीनेके स्थान प्रवेशस्थान–तीर्थस्थान और सभा आदि के स्थानों में वह मनुष्य आते हैं जोकि मरण आदि कर्मरूप धर्म रखनेवाले महापापी संसारके कण्टक हैं उनको पहिंचान २ कर स्वाधीन करे अथवा मार डाले और अविश्वस्त मनुष्यों में विश्वास न करे और विश्वस्त में भी अधिक विश्वास न करे परीक्षा किये विना विश्वास करने से भय प्राप्त होता है, सिद्धान्तरूप कारण से शत्रु को विश्वास दिलाकर फिर किसी समय राज्य के चलायमान होने पर उसको मारे, विना सन्देह में भी सन्देह करे और सन्दिग्ध मनुष्यपर तो सदैवही सन्देह करता रहे, असन्दिग्धसे भी उत्पन्न होनेवाला भय मूलसमेत को काटता है सावधानी और मौनता, काषायवस्त्र, जटा, मृगचर्म आदिसे शत्रुवों को विश्वास कराके भेड़िये के समान घात करे पुत्र, भाई, पिता, मित्र आदि भी जो प्रयोजन में हानिकारक हों वह ऐश्वर्य चाहनेवाले राजा से मारने के योग्य हैं, अहंकारी कर्तव्य अकर्तव्य के न जाननेवाले कुमार्गगामी गुरु भी शासनारूपी दण्ड के योग्य हैं, तीक्ष्णचोंचवाले पक्षी के समान अभ्युत्थान और नमस्कार वा कुछ देने से शत्रु के फूल, फलोंको नाश करे, शत्रुके मर्मस्थानों को न काटकर और भयकारी कर्म को भी न करके जो मछलीमारों के समान न मारे तो बड़ी लक्ष्मी को नहीं पाता है, जन्मसेही शत्रु मित्र नहीं होते केवल सामर्थ्य के होने से शत्रु मित्र उत्पन्न होजाते हैं, शोकयुक्त वचनों को कहता हुआ भी शत्रु नहीं छोड़ने के योग्यहै, प्रथम तो अपराधीको मारे उसमें दुःख न माने और दूसरेके गुणों में दोष न लगा-

नेवाले मनुष्य को इकट्ठा करके कृपा करना चाहिये और ऐश्वर्य का चाहनेवाला उनको युक्तिपूर्वक दण्ड भी देसक्ता है, जो घात करता हुआ प्यारे वचन कहै और घात करके प्यारे उत्तर को भी दे और तलवार से शिर को काट शोच करके रोदन करे, मीठेवचनपूर्वक प्रतिष्ठा और सहनशीलता से उनको अपने सामने करे, ऐश्वर्य चाहनेवालेको यह पुरुषों की प्रसन्नता करने के योग्य है सूखी शत्रुता को नहीं करे नदी को भुजाओं से इसप्रकार न तरे जैसे कि गौ के सींग का खाना निरर्थक और आयुर्दाय का घटानेवाला दांतों का तोड़नेवाला नीरसता का देनेवाला है, धर्म, अर्थ, काम यह त्रिवर्ग तीनप्रकार की पीड़ा रखनेवाला है अर्थात् धर्म से अर्थ की और अर्थ से धर्म की और काम से अर्थ धर्म दोनों की पीड़ा होती है और इनके फल भी इसीप्रकार के हैं अर्थात् धर्म का फल अर्थ और अर्थ का काम और काम का फल इन्द्रियों का पसन्न करना है, धर्मका फल चित्त की शुद्धि और अर्थ का फल यज्ञ और काम का फल केवल जीवन यह सब फल उत्तम हैं ऐसे फल को जानकर पीड़ा को त्याग करे जैसे कि ऋण का शेष और अग्निशेष है उसीप्रकार शत्रुवों के शेष भी वारंवार बढ़ते हैं इसकारण किसीप्रकारकी बाकी को न छोड़ना चाहिये जैसे वृद्धि पायाहुआ ऋण वर्तमान होता है उसी प्रकार हारा हुआ शत्रु और ध्यान न कियेहुये रोग भी बड़े भय को उत्पन्न करते हैं विपरीत रीति से कर्म न करना चाहिये सदैव सावधान रहै, अच्छेप्रकार न निकाला हुआ कांटा भी बहुत कालतक पीड़ा देता है, मनुष्यों के मारने और मार्गों के दोषी करने और स्थानों के तोड़ने आदि से शत्रु के देश को नष्ट न करे, गिद्ध के समान दीर्घदृष्टि बगले के समान निश्चेष्ट कुत्ते के समान जागनेवाला और चोरका जाननेवाला सिंह के समान पराक्रमी और निर्भय और काक के समान दूसरे की अंगचेष्टाओं को जाननेवाला हो और सर्प के समान अकस्मात् शत्रु के गढ़ आदि में प्रवेश करे और शूरभयकारी शूरवीर को हाथजोड़ने से और भेद करके और लोभी को धन से अपनी ओर करे, समान से युद्धकरना योग्य है, प्रतिष्ठित नौकरों के मिलाने से और शत्रुवों की ओर से अपने मित्रों के बहकाने पर विरोध वा अविरोधता में भी मन्त्रियों की चारो ओर से रक्षा करे, यह मृदुस्वभाव है ऐसा जानकर अपमान करते हैं और उग्रस्वभाव जानकर भयभीत होते हैं इस कारण से तेज़ी के समय तेज़ होजाय और नरमी के समय नरम होजाना योग्य है नरमी से तो नरम को काटे

क्योंकि नरमी से भय उत्पन्न करनेवाला राजा शत्रु को मारताहै नरमी से सब काम सिद्ध होते हैं इसीसे नरम आदमी बड़ा तीव्र होताहै जो समयपर मृदु और क्षमावन् होता है वह सब कामों को सिद्ध करके शत्रु को भी विजय करता है पण्डित के साथ विरोध करनेवाला यह विश्वास न करे कि मैं दूर वर्तमान हूं क्योंकि बुद्धिमान् की दोनों भुजा लम्बी होती हैं वह घायल होकर भी उन दोनों भुजाओंसे मारताहै, जिसका पार होना नहीं है उसको नहीं तरना चाहिये जिसको दूसरा हरले उसको नहीं हरे जिसकी जड़को नहीं उखाड़े उसको नहीं खोदे जिसके शिरको नहीं गिरावे उसको नहीं मारे मैंने आपत्तिकाल से सम्बन्ध रखनेवाला यह वचन कहा इसको पुरुष कभी न करे परन्तु शत्रुकी ओर से युद्ध के लिये बुलाये जाने पर अवश्य करे हित चाहनेवाले ब्राह्मण के बुद्धि के अनुसार कहेहुये वचनों को सुनकर बड़े बुद्धिमान् सुतीर देशके राजा ने उन वचनों को उसीप्रकार करके बान्धवों समेत राजलक्ष्मीको भोगा ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! सब लोकों से उल्लंघन किये हुये उत्तम धर्म के नष्ट होने और अधर्म धर्मरूप होने और धर्म अधर्मरूप होने में मर्यादा का नाश होने और निश्चय धर्मके नियत न होनेसे राजाओं और दूसरे आदमियों से भी लोक के पीड्यमान होनेपर सब रक्षास्थानों के विरोधी शास्त्र होने में कर्मों के नाश होने और काम लोभ मोह से भय के देखने से अविश्वास और भयभीत होने, छलसे घायल होने और परस्परमें छल करने से, देशों में अग्नि लगने और ब्राह्मणों के अत्यन्त पीड़ित होने और मेघों से वर्षा न होने में परस्पर भेदके उठने से पृथ्वीकी सब जीविका चोरों के आधीन होने और नीच काल आने पर ब्राह्मण कौन सी आजीविका करके अपने पुत्र पौत्रादि समेत आपत्तियों में जीवन करे इसको आप कृपाकरके कहिये और हे परन्तप! लोक के पापरूप होजाने पर राजा किसप्रकार से कर्म करे और कौन रीति से धर्म अर्थका नाश न हो भीष्मजी बोले कि हे महाबाहो! मनोरथों को सिद्ध करके उनकी रक्षा करना और अच्छी वर्षाका होना यह सब राजाको दृढ़ रखनेवाली हैं प्रजाओं में रोगों का होना और मरण आदि सब भय भी राजा को ही मूल रखनेवाले हैं और हे राजन्! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग यह सब भी

राजमूल हैं यह निश्चय मेरा मतहै तब प्रजाओं का दोष उत्पन्न करनेवाले उस कालके निकट आने पर पूर्णबुद्धि के पराक्रम में दृढ़ होकर जीवन करना योग्य है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें चाण्डाल के घर में विश्वामित्र ऋषि और चाण्डाल से वार्तालाप हुई थी कि त्रेता और द्वापर के सन्धि में दैव के रचेहुये विधान से बारह वर्ष का भयानक दुर्भिक्ष संसार में प्राप्त हुआ अर्थात् त्रेता के अन्त में और द्वापर के प्रारम्भ में बड़ी वृद्धि पाईहुई प्रजापर इन्द्र ने वर्षा नहीं की और बृहस्पतिजी तिरछे हुये और विपरीतचिह्नवाले चन्द्रमा दक्षिणमार्ग को गये तब धूम भी नहीं हुआ तो बादल कहां से होय नदियों में बहुत कम जल रहगया और कितनीहीं तो गुप्त होगईं और सरोवर, नदियां, कुवें, झिरने भी ईश्वर की आज्ञा से कुरूप होगये तब पृथ्वी इसप्रकार की होगई कि छोटे तालाब तो सूखगये और प्याऊ आदि बन्दहोगईं यज्ञ वेद बन्द होकर वषट्रूप मंगल से रहित हुये खेती और गौवोंकी रक्षा नष्ट होगई दूकानों में वस्तुवों का बेचना बन्द होगया यज्ञस्तम्भ की सामग्री गुप्त हुई और महाउत्सवों का नाश हुआ अस्थियों के ढेरों में भूतों के शब्द होने से सब लोग व्याकुल थे जिसके नगर ग्राम और बहुत से स्थान समाप्त हुये कहीं विष से कहीं शस्त्रों से कहीं दुःखी राजाओं से और परस्पर के भय से भी मनुष्यों से रहित होकर उजाड़ होगये और देवताओं के मन्दिर भी नहीं रहे और वृद्धमनुष्यों का अपमान होताथा गौ, भेड़, बकरी, भैंसों से रहित परस्पर में घायल थे जिसमें ब्राह्मण और रक्षा करनेवाले मारेगये और ओषधियों के समूह नष्ट हुये और सब पृथ्वी वृक्षों के सूखने से श्मशान के समान अगम्या होगई यहां तक हुआ कि उस महाकाल के समय में परस्पर में मनुष्य मनुष्य को खाने लगे ऋषि लोग भी अपने २ नियम और अग्नि देवता आदि को अत्यन्त छोड़ आश्रमों को त्याग इधर उधर को भागगये तदनन्तर क्षुधा में आतुर बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्र भी आश्रम को त्यागकर चारो ओर को दौड़े स्त्री पुत्रों को किसी बसेहुये स्थान में छोड़कर भक्ष्य अभक्ष्य को एकसा जानकर अग्नि और स्थान से रहित हुये दैवयोग से इधर उधर फिरते हुये उस ऋषि ने कहीं जीवों के घातक किसी चाण्डाल के स्थान को पाया वह स्थान फूटे कलशों से भरा हुआ कुत्ते के चर्म छेदनेवाले यन्त्रों से व्याप्त शूकर और गधों की टूटी हड्डियों और कपालों से संयुक्त मृतकों के वस्त्रों से घिरा हुआ

नरोंकी मालाओंसे शोभित सर्पकी कांचलियों के हारों से चिह्नित मठवाला मुर्गों के अत्यन्त शब्दों से पूरित और गधों के शब्द से परस्पर में शब्द करके युद्ध करनेवाले और शब्द करनेवाले गधों के वचनों से और उलूक पक्षियों की ध्वनि और देवमन्दिरों से संयुक्त लोहे के घण्टों से भूषित कुत्तों के समूह से घिरा हुआ था उस घर में भोजन के खोजमें महाव्याकुल हो विश्वामित्र पहुँचे वहां जाकर भी भिक्षा मांगनेवाले विश्वामित्र ने फल मूल मांस आदि कोई वस्तु नहीं पाई तब तो महादुःखी हो भूखसे निर्बल विश्वामित्र घबराके पृथ्वी पर गिरपड़े और चिन्ता करके विचार किया कि मैं कौनसा उत्तम कर्म करूं और कैसे मृत्यु नहीं होती वहां विश्वामित्र ने चाण्डाल के घर में शीघ्रता से यन्त्र के काटेहुये कुत्ते के मांस के खण्डों को फैला हुआ देखा तब यह विचार किया कि मुझको यहां से चोरी करना चाहिये क्योंकि अब प्राण बचाने की कोई अन्य युक्ति नहीं है आपत्तिकाल में चोरी करना भी बुद्धि से उचित जाना गया है और वेदपाठी ब्राह्मण को प्राण की रक्षा के निमित्त चोरी करना योग्य है प्रारम्भ में नीच से लेना योग्य है तदनन्तर बराबरवाले से लेना ठीक है इसीप्रकार अप्राप्त होने पर धार्मिक और श्रेष्ठपुरुष से भी ले ले सो मैं बुरे कर्म के पूरे करने के निमित्त इसको चुराता हूं दान के दोष से चोरी के दोष को अधिक नहीं जानता हूं इससे मैं कुत्ते की जंघा को चुराऊंगा हे राजन्! ऐसा विचार करके वह महामुनि उस घर में सोगये जहांपर कि चाण्डाल था चाण्डाल के घर के सब मनुष्योंको सोता जानकर बहुत धीरेपनसे उठकर फिर कुटी में प्रवेश कर गये तब औंघ से नेत्र बन्द किये वह चाण्डाल यह बोला कि चाण्डालका घर भर सोजानेपर कौन जंघाओं को हिलाता है यहां मैं जागता हूं सोता नहीं हूं मैं तुझे मारूंगा यह भययुक्त वचन कहा तबतो भयभीत होकर अकस्मात् विश्वामित्र ने उससे कहा कि हे चाण्डाल! मैं विश्वामित्र हूं भूख से आया हूं मुझको मत मार यह ऋषि का वचन सुनकर भयभीत हो वह चाण्डाल शयन से उठा और आंखों से अश्रुपात करके हाथ जोड़कर विश्वामित्रजी से बोला कि हे ब्राह्मण! इस जंघा के विषय में आप की क्या इच्छा है फिर धैर्यता देकर विश्वामित्र ने उस मातंग नाम चाण्डाल से कहा कि भूखा और निर्बल हूं इससे कुत्ते की जंघाको हरूंगा मुझ अर्थी ने पापकर्म की बुद्धि की है बुभुक्षितको कोई लज्जा नहीं है मुझको क्षुधा दोष का भागी करती है इससे कुत्ते की जंघा को हरूंगा

मेरे प्राण पीड़ायुक्त हैं और क्षुधा से मेरा बल नाश होता है निर्बल अचेत होकर भक्ष्याभक्ष्य के विवेकसे पृथक्हूं सो अधर्मरूप कर्मको जानकर भी कुत्तेकी जंघा को हरूंगा जब तुम्हारे मकान में घूमता हुआ भिक्षाको नहीं पाया तब पापयुक्त कुत्तेकी जंघा को हरण करना चाहा है पदार्थों का पवित्र करनेवाला देवताओं का मुखरूप अग्नि पुरोहित है जैसे कि वह सबको भोगनेवाला है इसीप्रकार मैं ब्राह्मण भी उसके समान होकर सर्वभक्षी हूं मुझको तुम धर्मपूर्वक जानो तब चाण्डाल बोला कि हे महर्षे ! मेरे वचन को सुनो और उसके सिद्धान्त को जानकर कर्म करो जिससे कि धर्म का नाश न हो हे ऋषे ! मैं आपके भी धर्म को कहूंगा जो मैं कहूं उसको सुनो बुद्धिमान् लोग कुत्तेको शृगालसे भी नीच कहते हैं और उसकी जंघा भी उसके सब अगों में निकृष्ट हैं इससे यह धर्मनिन्दित है, जो कि चाण्डाल के धन का लेना भक्ष्यरहित वस्तुका है यह आपने ठीक निश्चय नहीं किया इससे बहुतश्रेष्ठ होगा कि तुम प्राणकी रक्षा के निमित्त दूसरी वस्तुको विचारो इसमांस के लोभसे आपके तपका नाशहोगा ज्ञानी से ही धर्म नियत किया गयाहै इसे धर्म में अधर्मसंयुक्त करना अयोग्यहै तुम धर्मको मत छोड़ो निश्चय करके तुम धर्मधारियों में उत्तम हो यह चाण्डालका वचन सुनकर क्षुधा से पीड़ित महामुनि ने फिर उत्तर दिया कि मुझ निराहार और दौड़नेवाले का बहुत बड़ा समय व्यतीत हुआ और मेरे प्राणोंकी रक्षा में कोई युक्ति वर्तमान नहींहै पीड्यमान पुरुष जिस युक्ति अथवा कर्म से जीता रहै वही करे और समर्थ होकर धर्म को करे, क्षत्रियों का धर्म इन्द्र से सम्बन्ध रखनेवाला है और ब्राह्मणों का धर्म अग्नि से सम्बन्ध रखनेवाला है वेद रूप अग्नि मेरा पराक्रम है मैं भूखको दूर करने के लिये इसको भक्षण करूंगा जैसे जीवन रहै वही काम करना योग्यहै मृत्यु से जीना उत्तमहै क्योंकि जीवनसे धर्म करेगा सो मैं जीवनके लिये अभक्ष्यको भी खाना चाहताहुं फिर जीवन पाकर अपने धर्मको करूंगा और विद्या तप आदि के द्वारा पापोंको ऐसे दूरकरूंगा जैसे कि बड़े अन्धकारको सूर्य दूरकरताहै चाण्डालने कहा कि इस मांसका खानेवाला बड़ी अवस्था को नहीं पाताहै और न प्राणों को पाताहै अमृत के समान गुणकारी नहीं है तुम दूसरी भिक्षा को मांगो आपका चित्त कुत्ते के मांस खाने को कभी मत हो कुत्ते ब्राह्मणों के अभक्ष्य हैं विश्वामित्र बोले कि हे चाण्डाल ! ऐसे दुर्भिक्षके समयमें कुत्तेके मांसके सिवाय दूसरामांस सुगमता से नहीं मिलसक्ता

है और मेरे पास धनभी नहीं है भूख से पीड़ित निराशा होकर मैं इसी कुत्ते के मांस में षट्रसोंका स्वाद मानताहूं चाण्डाल बोला कि पंचनख रखनेवाले जीव ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों को अभक्ष्य हैं जैसे कि आप शास्त्रको प्रमाणमानते हो वैसेही इस अभक्ष्य में चित्तको मत चलावो, विश्वामित्र बोले कि यह निश्चय है कि भूखे अगस्त्यजी ने वातापी नाम असुरको भोजन किया मैं भी आपत्ति में पड़ाहुआ भूख से कुत्ते की जंघाको भक्षण करूंगा, चाण्डाल ने कहा कि आप दूसरी भिक्षा का उद्योगकरो इसके खाने को आप योग्य नहीं हैं सर्वथा यह कर्म आपके योग्य नहीं है विश्वामित्र ने कहा कि निश्चय करके श्रेष्ठ पुरुष धर्म में कारण हैं मैं उसी चलनपर कर्म करताहूं मैं पवित्र भोजन से भी अधिक इस जंघा को मानता हूं चाण्डाल बोला कि जो नीचोंने किया वह सनातन धर्म नहीं है आपको अयोग्य कर्म करना न चाहिये तुम छल से पाप मत करो विश्वामित्र बोले पापको और निषिद्धकर्म को ऋषिलोग अच्छा नहीं मानते परन्तु मैं विश्वजाति होने से कुत्ते और मृगको समान मानताहूं इस हेतु से इस श्वानजंघा के मांसको अवश्य भक्षण करूंगा, चाण्डालबोला कि ब्राह्मणोंसे प्रार्थना कियेहुये उस अगस्त्य ऋषिने उस दशा में ब्राह्मणों के निमित्त जो कर्म किया वही धर्म निष्पाप है ब्राह्मण सब रीति से रक्षा के योग्य हैं विश्वामित्र बोले कि यह मुझ ब्रह्मज्ञानीका देह मेरा मित्र और प्यारा है और संसार में बड़े पूजन के योग्य है उसके पोषण की इच्छा करनेवाला मैं इस मांसको हरता हूं मैं इसप्रकार की निर्दयता का भय नहीं करताहूं, चाण्डाल बोला कि मनुष्य इच्छासे देहको त्याग करते हैं परन्तु किसी स्थानपर अभक्ष्य में बुद्धिको नहीं चलाते हैं और हे बुद्धिमन्! इस लोक में पुरुष धर्ममें विजयी होनेसे सब मनोरथों को प्राप्त करते हैं तुम भी निराहारी होकर सब कामनाओं को पूर्णकरो, विश्वामित्र बोले कि देह के त्यागने से संशय उत्पन्न होता है और कर्मों की नष्टता होती है इससे यह अयोग्य बातहै मैं फिर पापों को दूर करूंगा इस निमित्त इस अभक्ष्य को भक्षण करूंगा देह में अभिमान न रखनेवाले पुरुष में प्रत्यक्ष महापुण्य है और आत्मा में ऐसा मोह करना दोष है जैसा कि कुत्ते के मांस में होता है यद्यपि यह बात है और मैं संशयात्मा होकर भक्षण करता हूं तो भी जैसा तू है वैसा मैं नहीं हूंगा, चाण्डाल बोला कि यह पाप मेरी राय से गुप्त करने के योग्य है और जो पापी और अन्य ब्राह्मण के समान आप से निन्दायुक्त कठोरवचन कहता हूं

और छल करनेवाला हूं इसको क्षमा करिये—विश्वामित्र बोले कि मेढ़कों के रोदन करने पर भी गौवें जल को पीती हैं धर्म उपदेश करने में तेरा अधिकार नहीं है तू अपनी प्रशंसा मत कर चाण्डाल बोला कि मैं शुभचिन्तक होकर उपदेश करता हूं हे ब्राह्मण! तुम में मेरी बड़ी कृपा है इसमें आपका कल्याण है इससे मेरी बातको मानो और लोभ से पापको मत करो, विश्वामित्र ने कहा कि जो तुम मेरे मित्र और सुख के चाहनेवाले हो तो मुझको आपत्ति से छुटवो मैं तुमको धर्मात्मा जानता हूं कुत्ते की जांघ को छोड़ो चाण्डाल ने कहा कि मैं इस मांसको उत्साह से आपको नहीं दिया चाहता हूं और अपने हरेहुये अन्न के दानों को भी उत्साहपूर्वक नहीं चाहता हूं क्योंकि इस कर्म से हम दोनों पाप संयुक्त होकर नरक में जायँगे अर्थात् दान देनेवाला मैं और दान लेनेवाले तुम ब्राह्मण हो विश्वामित्र बोले कि अब मैं इस पापकर्म को करके बड़ी पवित्रता से रहूंगा और पापरूप आत्मा में धर्म ही को प्राप्त करूंगा इन दोनों में जो बड़ी बात हो उसको कहो, आत्माही सब धर्मकार्यों का साक्षी है जो इसमें पाप है वह तुमहीं जानते हो जो पुरुष इस कुत्ते के मांस को भोजन करने की वस्तु के समान करसके उसको त्याग करना क्या योग्य है यह मेरा सिद्धान्त है और लेने और खाने में यद्यपि दोष है परन्तु प्राणत्याग के समय यही दोष अदोष होजाता है अर्थात् उस समय अभक्ष्य भी भक्ष्य होजाता है जिस स्थान में अभक्ष्य किया है वहां उसके निषेध करनेवाला वचन उत्तम नहीं है क्योंकि उस अभक्ष्य के भक्षण में हिंसा और मिथ्यापन नहीं है कुछ थोड़ी निन्दा से वह हिंसा और मिथ्या के समान अधिक निन्दा के योग्य नहीं है चाण्डाल बोला कि जो इसके खाने में प्राणका पोषणही करना आपको अभीष्ट है तो ऐसी दशा में ईश्वर और उत्तम धर्म आपको प्रमाण नहीं है हे द्विजेन्द्र! इस हेतु से तो भक्ष्य और अभक्ष्य में कोई दोष नहीं मानना योग्य है विश्वामित्र बोले कि अभक्ष्य खानेवाले का पाप हिंसा के समान नहीं देखने में आता है मद्य के पान करने से अधिकार से गिरता है यह शास्त्र का वचन केवल अज्ञानमात्र है, जिसप्रकार स्त्रीप्रसंग आदि कर्म हैं उसी प्रकार यह भी है—केवल थोड़े से पाप से पुण्य का नाश नहीं होताहै हां थोड़े पापकी उत्पत्ति होती है परन्तु ब्राह्मणधर्म में हानि नहीं होती चाण्डालबोला कि श्रेष्ठ चलनेवाले ज्ञानी को चाण्डाल के घर में बुरे कर्म के द्वारा विना दी हुई वस्तु पीड़ा देती है और

जो हठ से कुत्ते के मांस को लेता है उसको दण्ड भी क्षमा करने के योग्य है अर्थात् मैं देनेवाला उसके फल को नहीं पाऊंगा ऐसा कह कर वह मातंग चाण्डाल मौन होगया और विश्वामित्र ने कुत्ते की जंघा को हरण किया तदनन्तर उस जीवन की इच्छा करनेवाले महामुनि ने उस कुत्ते के अंग को हाथ से ले जाकर आश्रम में अपनी स्त्री के साथ खाना चाहा तिस पीछे यह बुद्धि हुई कि मैं पहिले बुद्धि के अनुसार देवताओं को तृप्त करके फिर इसको इच्छापूर्वक खाऊंगा तब महामुनि ने ब्राह्मणबुद्धि से अग्नि को प्रज्वलित करके इन्द्राग्निसे सम्बन्ध रखनेवाली बुद्धि के द्वारा आप चरु को सिद्ध किया और देव पितरोंका पूजन प्रारम्भ किया और इन्द्रादि देवताओं का आवाहन करके बुद्धि और क्रम के अनुसार उसके जुदे २ भाग किये—उसीसमय पर सब प्रजाको जीवदान देते हुये इन्द्र ने बड़ी वर्षा की और ओषधियों को उत्पन्न किया और विश्वामित्र ने तपस्या,से पापों को भस्मकरके बड़े काल में महासिद्धि को पाया और कर्म को बन्दकरके उस हव्य को आप न खाया और देवता पितरों को तृप्त करके प्रसन्न किया इसीप्रकार दुःखसंयुक्त जीवन की इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् साहसी युक्तियों के ज्ञातालोग अनेक उपायों से आपत्तिकाल में अपने को बचावे इस बुद्धि में प्रवृत्त होकर सदैव जीवन करने के योग्यहै जीवन से ही मनुष्य पुण्य को प्राप्त होकर कल्याण को भोगता है इसीकारण हे कुन्तीनन्दन ! शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मज्ञानी को धर्म और अधर्म निश्चय करने के समय बुद्धि में स्थिर होकर इस संसार में कर्म करना योग्य है ॥ १०२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि जो मिथ्या के समान श्रद्धा से रहित घोरकर्म करने के योग्य उपदेश किया ऐसी दशा में यह चोरों की मर्यादा है जिसको मैं त्याग करता हूं अर्थात् चोरोंको धिक्कार न करना चाहिये इससे मैं अचेत होकर मोहको प्राप्त होता हूँ मेरा धर्म पक्का नहीं किया इससे आपको विश्वास कराता हुआ भी निश्चय को नहीं पाताहूं भीष्मजी बोले कि मैंने शास्त्र से सुनकर तुझको यह धर्म उपदेश किया यह बात नहीं है यह बुद्धि की निष्ठा पण्डितों ने कल्पना की है, राजा को जहां तहां से बहुत सी बुद्धि प्राप्त करना चाहिये यह लोकयात्रा एकदेशीय धर्म से जारी नहीं होती है हे कौरव ! बुद्धि का उत्पन्न करनेवाला धर्म

और सत्पुरुषों का आचार सदैव जानने के योग्य होता है उन सब प्रयोजनों में मेरे प्रयोजन को सदैव जानो उत्तम बुद्धिमान् विजय की इच्छा रखनेवाले राजा लोग कर्म करते हैं इसलिये राजा को जहां तहां से बुद्धि के द्वारा धर्म प्राप्त करने के योग्य हैं क्योंकि एकदेशीयधर्म से राजाका धर्म प्राप्त नहीं होता है पहिले से शिक्षा न पाईहुई बुद्धि निर्बल राजा को कहीं से प्राप्त होती है अर्थात् नहीं प्राप्त होती है एक काम में दो प्रकारके प्रयोजनों का न जाननेवाला राजा दो प्रकारवाले मार्ग में कष्ट पाने के योग्यहै इससे हे राजन्! पहिलेही दो प्रयोजनवाली बुद्धि जानने के योग्यहै, ज्ञानी राजा पीछे करने के योग्य बातको निश्चय करके करावे उस कर्म को मनुष्य धर्मरूप जानते हैं परन्तु ज्ञानदृष्टि से धर्म नहीं होता कोई सच्चे कोई झूठे ज्ञानी विज्ञानी हैं उसको ठीक जानकर सत्पुरुषोंके ज्ञान को स्वीकार करता है धर्म के विरोधी लोग कहते हैं कि अर्थशास्त्र धर्मशास्त्र के विरुद्ध है वह आदर के योग्य नहीं है वह अर्थरहित अर्थशास्त्रों की अप्रमाणता को प्रकट करते हैं और जो पुरुष विद्या, यश, काम से जीवन की इच्छा रखते हैं अर्थात् तीनों को उदरपूर्ण करने के निमित्त प्राप्त करते हैं वह सब पापी और धर्म के शत्रु हैं अल्पबुद्धि मन्दप्रारब्धी लोग मुख्य बात को ऐसे नहीं जानते हैं जैसे कि शास्त्र में अकुशल और सब स्थानों में अयुक्ति से करनेवाले और शास्त्रों के दोष देखनेवाले पुरुष शास्त्रोंको चुराते हैं अर्थात् विपरीत वर्णन करते हैं इसकारण से विद्याओं का जाना हुआ अर्थ अच्छे प्रकारसे प्राप्त नहीं होता दूसरे की विद्याओं की निन्दा करने से अपनी विद्या को प्रसिद्ध करते हैं वहवचनरूप अस्त्र शस्त्र रखनेवाले निष्फल हैं जिनकी विद्या असारहै उनलोगों को विद्या बेचनेवाला राक्षसों के समान जानना चाहिये सत्पुरुषों से जारी कपट से किया हुआ धर्म नाश को पाताहै-धर्मका निश्चय केवल वचन और बुद्धिसे नहीं है यह हमने सुना है बृहस्पतिजी के इस ज्ञान को इन्द्रने आप कहाहै यहां कोई वचन विना हेतुके नहीं कहा जाता है फिर इस दूसरे अच्छी नीतिवाले पुरुष शास्त्र से इसको निश्चय नहीं करते हैं, इसलोकमें कितनेही ज्ञानियोंने यात्राको ही धर्म कहाहै इसीकारण पण्डितलोग सत्पुरुषों से अच्छेप्रकार उपदेश कियेहुये धर्मको आप शास्त्रोक्त वचनों से निर्णय करें हे राजन्! सभाके मध्य ज्ञानीपुरुष का कहाहुआ शास्त्र क्रोध और मोह से नाश होजाता है वेदोक्त बुद्धि से प्राप्त हुये जो वचनहैं उनसे दूसरा मनुष्य अज्ञान और ज्ञान प्राप्तहोनेके कारण केवल वचन

ही को अच्छा मानता है अर्थात् तर्कणाओं से उसको निश्चय नहीं करता है अन्य लोग मानते हैं कि इस युक्तिसे कि इस शास्त्रमें दोष लगाया है इसलिये निष्फल है यह बात भी केवल अज्ञान से है पूर्वसमय में इस संशय का दूर करनेवाला यह वचन कहा है कि वह संशयरूप ज्ञान भी उसप्रकार का है जैसे कि नहीं अर्थात् नहीं होने के समान है इसहेतु से उस संशय को निर्मूल करके काटने के योग्य हो, जो आप मेरे इस नीतियुक्त वचन को नहीं मानते हो यही अयोग्य है क्योंकि तुम हिंसात्मक कर्म के लिये उत्पन्न होकर उसको नहीं विचारते हो हे पुत्र ! तुम मुझको ही देखो कि दूसरे मनुष्य जिस प्रयोजन को अच्छा नहीं समझते वह पृथ्वी भर के चाहनेवाले राजालोग मेरी निन्दा करते हैं कि यह हिंसा करनेवाला है और जो मैंने उनको स्वर्गलोक में पहुँचाया वह उन्हीं के कल्याणके लिये है कुछ अपने निमित्त नहीं है इसको वह नहीं जानते हैं-बकरा, घोड़ा, क्षत्रिय यह सब ब्रह्माजी ने बराबर उत्पन्न किये अर्थात् दोनों प्रकार के यज्ञों में देह के त्यागने से मोक्ष के अधिकारी बनाये गये हैं इस कारण जीवों की कोई यात्रा बराबर सिद्ध होती है मारने के अयोग्य पुरुष के मारने में जो दोष है वही मारने के योग्य मनुष्य के न मारने में भी कहा है निश्चय करके जिसको यह त्याग करे वही मर्यादा है जैसे कि भेड़ियों के समान परस्परमें भक्षण करनेवाली प्रजा घूमती है उसीप्रकार से तीव्र बुद्धि राजा अपने धर्म में प्रजाओं को नियत करे जिसके देश में चोर मनुष्य दूसरे के धन को ऐसे हरते हैं जैसे कि काक जल से मछलियों को वह राजा निश्चय करके क्षत्रियों को कलंक लगानेवाला है हे राजन् ! कुलीन, वेदज्ञ मन्त्रियों को नियत करके धर्म से प्रजा को पालन करतेहुये तुम सम्पूर्ण पृथ्वीपर राज्य करो जो राजा राज्य के कर्मों से रहित संसार से विपरीत कर को लेता है उस युक्ति के न जाननेवाले क्षत्रियकुल को नपुंसक कहते हैं इस लोक में रूप वा उग्रतारहित राज्य के योग्य नहीं होता है किन्तु धर्म से प्रशंसा को पाता है तुम उग्ररूप होकर मृदु होजावो, यही क्षत्रियधर्म कठिन है और मेरी प्रीति तुझमें वर्तमान है तुम हिंसात्मक कर्म में उत्पन्न हुये हो इससे राज्य को धर्मपूर्वक करो हे राजन् ! आपत्तिकाल में सदैव नीच को दण्ड और योग्य मनुष्यों का पोषण करना चाहिये यह बुद्धिमान् शुक्रजीका वचन है युधिष्ठिर बोले हे पितामह ! जो यह मर्यादा है कि जिसको कोई दूसरा उल्लंघन नहीं करे वह आप मुझसे वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि

विद्यावृद्ध तपस्वी शास्त्र के आचार विचार में प्रवीण ब्राह्मणों का भी सेवन करे यही पवित्र और उत्तम है देवताओं में जो तेरी वृत्ति है वही सदैव ब्राह्मणों में हो हे राजन् ! क्रोधयुक्त वेदपाठी ब्राह्मणों से बहुधा कर्म किये गये हैं उनमें प्रीति करने से बड़ी कीर्ति होती है परन्तु प्रीति करने से बड़ा भय है वेदपाठी ब्राह्मण प्रीति में तो अमृत के समान और क्रोध में विष के सदृश होते हैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाशास्त्रज्ञ, ज्ञानिन्, पितामह ! शरणागत के ऊपर कृपा करनेवालेका जो धर्म है उसको मुझसे कहो—भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! शरणागत के पोषण करने में बड़ा धर्म है तुमको ऐसा प्रश्न पूछना योग्य है हे राजन् ! शिबि आदि राजाओं में शरणागतोंपर कृपा करने से बड़ी २ सिद्धियों को प्राप्त किया सुना जाता है कि किसी कपोत ने शरण में आयाहुआ शत्रु न्याय से पूजा उसको अपने मांस का निमन्त्रण दिया युधिष्ठिर बोले कि कपोत ने शरणमें आये हुये अपने शत्रुको अपने मांस से कैसे तृप्त किया और उसका फल उसको क्या हुआ भीष्मजी ने कहा कि भार्गव जी ने राजा मुचुकुन्द से जिस कथा को कहा उस दिव्य पाप दूर करनेवाली कथा को सुनो कि पूर्वसमयमें राजा मुचुकुन्द ने बड़ी नम्रतापूर्वक भार्गवजी से यह प्रयोजन पूछा था तब भार्गवजी ने राजा से यह कथा कही जैसे कि कपोत ने सिद्धिको पाया भार्गवजी ने राजा मुचुकुन्द से कहा कि तुम एकाग्रचित्त होकर मुझसे इस कथाको सुनो कि किसी महावन में नीच आचारवान् काल के समान घोररूप एक चिड़ीमार घूमताहुआ निकला वह काकोल प्रकार करके कौवे के समान काला रंग लाल नेत्र बड़ी जंघा छोटेपैर बड़ा मुख और तीव्र नखवाला था उसका कोई मित्र बान्धव नहीं था क्योंकि इसी हिंसाकर्मसे उन सबने उसको त्याग किया था ज्ञानियों को पापआचारवाला मनुष्य दूरसे ही त्याग करने के योग्य है जो आत्मा को विष फांसी आदि से मारना चाहता है वह कैसे दूसरे का हितकारी होगा जो मनुष्य निर्दयी दुष्टबुद्धि जीवोंके प्राण हरनेवाले हैं वह सब की समान जीवों के भयकारी होते हैं वह सदैव जालको लेकर पक्षियों को वन में मारकर बेचा करता था इसीप्रकार इस नष्टकर्म को करते बहुत समय व्यतीत हुआ तब भी उसने धर्मको नहीं जाना भार्या समेत सदैव क्रीड़ा करनेवाले

उस अज्ञानी को दूसरी जीविका अच्छी नहीं मालूम होती थी एक दिन उस वनमें बड़ी आंधी आई उसके कारण आकाश बादलों से पूर्ण बिजलीकी चमक से शोभायमान हुआ और एक मुहूर्त में ही ऐसा ढक गया जैसे कि सम्पूर्ण मनुष्यों से भरी नौका सागर में ढकजाती है और ऐसी वर्षा हुई कि क्षणमात्र में पृथ्वी जलसे डूबगई तब वह व्याध शीतसे महाव्याकुल हो वन में चारोओर घूमा परन्तु कोई आश्रयस्थान नहीं पाया और वन के सब मार्ग जल से गुप्त होगये तब तीव्र वर्षा से पीड़ित पक्षीभी गुप्त हुये मृग सिंह वराह आदि पशु अपने २ स्थानों में रक्षा पानेवाले हुये और वह व्याध शीत के मारे शिथिल अंगों से चल न सका तब उसने सर्दीसे व्याकुल पृथ्वीपर पड़ेहुये किसी कपोत पक्षी को देखा उस पापात्मा ने उसको पीड़ायुक्त देखतेही पिंजरे में डाला और वनखण्डोंमें मेघके समान किसी नीलेवृक्षको देखा जो कि पक्षियोंका आश्रयरूप था वह वृक्ष ईश्वर ने दूसरों के हित के लिये साधुके समान उत्पन्न किया था थोड़े काल पीछे आंधी निवृत्त हुई और आकाशमें निर्मल नक्षत्र दीखनेलगे तब उस शीत से व्याकुल व्याध ने निर्मल आकाश को देखकर दिशाओंको देखा और यह विचार किया कि इसस्थानसे मेरा घर दूरहै इस कारण वहां रहनेके विचार से उस वृक्षसे हाथजोड़ नम्रतापूर्वक यहवचन कहा कि इसवृक्षपर जो देवताहैं उनकी शरण लेता हूं यह कहकर वह व्याध पृथ्वी में पत्ते बिछाकर सोगया ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! उस वृक्षकी शाखा पर अपूर्व रोम रखनेवाला एक कपोत पक्षी अपने इष्टमित्रों समेत बहुत काल से रहता था उसकी भार्या प्रातःकाल चुगने को गई थी वह नहीं लौटी और रात्रि को देखकर वह पक्षी महादुःखी होकर कहनेलगा कि बड़ी हवा और वर्षा हुई और मेरी प्यारी नहीं आई इसका कारण क्याहै जो अबतक नहीं लौटी वन में वह जीतीरहै क्योंकि उसके विना यह मेरा घर उजाड़ है चाहे पुत्र, पोते, नौकर, चाकर बड़े बूढ़ों से पूर्ण भी घर हो उसको घर नहीं कहते केवल स्त्रीसे ही घर कहा जाताहै और स्त्री से खाली घर वनके समान माना है जो वह रक्तनेत्र अपूर्व देह मीठेशब्दवाली मेरी प्यारी नहीं आती है तो मेरा भी जीना वृथा है वह ऐसी पतिव्रता है जो विना मेरे भोजन कराये भोजन नहीं करती है और मेरे स्नान के विना

स्नान नहीं करती और मेरे वर्तमान होनेविना वर्तमान न होवे और मेरे सोजानेपर सोती है और प्रसन्न होनेपर प्रसन्न होती है दुःखी होनेपर दुःखिनी और दूरजानेपर मुख मैला करती है और मेरे क्रोध होनेपर प्यारे वचनोंको कहती है पतिव्रत रखनेवाली है जिसकी भार्या ऐसी हो वह पुरुष धन्य है वह तपस्विनी मुझ थके और पीड़ावान्को जानती है और शान्तचित्त भक्तिपूर्वक प्रीति रखनेवाली यशस्विनी है जिसकी प्यारी वृक्षकी जड़पर भी होती है वह घरहै उसके विना महल भी वन के सदृश निश्चय कियागया है धर्म, अर्थ और काम की विपत्तियों में भार्या पुरुष की सहायता करनेवाली है और इसके परदेश जानेपर वही विश्वास करनेवाली है इस लोक में स्त्री ही पुरुषकी उत्तम लक्ष्मी कहीजाती है इस संसार में असहाय मनुष्य को स्त्री ही सहायता देनेवाली है उसी प्रकार रोगसे संयुक्त सदैव दुःखसे पीड़ित आदमी को स्त्री के सिवाय कोई औषध नहीं है लोक में धर्मों के बीच भार्या के समान सहायक नहीं है बन्धु भी भार्या के समान नहीं होते जिसके घरमें नेकचलन और प्यारे वचन कहनेवाली भार्या नहीं है उसको वन ही जाना चाहिये क्योंकि उसको घरसे वन ही अच्छा॥१७॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पन्द्रहवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि इसप्रकार विलाप करनेवाले कपोत के करुणावचनों को सुनकर व्याध से पकड़ी हुई कपोतिनी ने वचन कहा कि मैं बड़ी प्रारब्धिनी हूं जो मेरा पति मेरे गुणों को कहता है चाहे मैं अच्छी हूं या बुरी हूं जिस स्त्री से पति प्रसन्न नहीं है वह स्त्री मानने के योग्य नहीं है पतिके प्रसन्न होने से स्त्रियों के सब देवता प्रसन्न होते हैं निश्चय करके पतिदेवता सब से उत्तम है जिसका साक्षी अग्नि है जैसे फूल, फलवाले वृक्ष दावानल से भस्म होतेहैं उसीप्रकार वह स्त्री भी भस्म होती है जिसका ।कि पति प्रसन्न नहीं होताहै तब महादुःखित व्याध से पकड़ी हुई कपोतिनी अपने पति से बोली कि मैं तुम्हारे कल्याण को कहती हूं तुम इसको सुनकर उसी प्रकार करना हे पते! तुम शरणागत के बड़े रक्षक हो आपके निवासस्थान में शरणागत यह व्याध सोता है यह सर्दी और क्षुधा से पीड़ित है इसका पूजन करो जो कोई ब्राह्मण को अथवा लोक माता गौ को मारे और जो शरणागत को मारे तीनों का पाप बराबर है कपोत जाति के धर्म से हमारी जीविका नियत की गई है तुझ सरीखे ज्ञानी पुरुष से

वह वृत्ति न्याय के अनुसार करने के योग्य है जो कुटुम्बी सामर्थ्य के अनुसार धर्म को करता है वह मरकर अविनाशी लोकों को पाता है ऐसा सुनते हैं सो हे कपोत ! अब तुम कुटुम्बवाले हो अपनी देह में दया को धारण करके धर्म अर्थ के साथ इसका पूजन ऐसा करो जिससे इसका चित्त प्रसन्न हो और मेरे निमित्त दुःख मत करना अपने शरीरकी रक्षाके निमित्त दूसरी स्त्रीको प्राप्तकरना ऐसा वचन कहकर उस पिंजरे में से पतिकी ओर को देखा ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जब उस व्याकुलनेत्र पक्षीने पत्नीके धर्म और युक्तिपूर्वक वचनों को सुना तब बड़ी प्रसन्नता से संयुक्त होकर उस घातक को देख कर बुद्धि के अनुसार पूजन किया और बोला कि अब तेरा आगमन मंगलदायी हो आप कोई प्रकार से शोच न कीजिये क्योंकि यह आपही का घर है मैं आपको नम्रतापूर्वक कहता हूं कि आप मेरे शरण में आयेहो जो आपकी इच्छा हो सो करूं घरमें शत्रुको भी आनेपर योग्य आतिथ्यधर्म करना चाहिये जैसे कि काटनेवाले पर वृक्ष अपनी छाया को दूर नहीं करता है इसी प्रकार शरणागत का आतिथ्य बड़ी युक्ति से करना चाहिये गृहस्थ को पंचयज्ञ में आतिथ्यधर्म बड़ी प्रसन्नता से करना चाहिये जो पुरुष गृहस्थाश्रम में मोह से यज्ञोंको नहीं करताहै उसका न यह लोकहै न परलोक होताहै सो आप चिन्ता को दूर करके जो मुझ से कहोगे वही मैं करूंगा व्याध ने पक्षी के इस वचन को सुनकर कहा कि मुझे सर्दी बड़ी पीड़ा देरही है उसका उपाय करो यह व्याध से सुनतेही पक्षी पृथ्वी पर पत्तों को बिछाकर पराक्रम के अनुसार अग्नि लेने को गया और बड़ी शीघ्रता से अग्नि को लेआया तदनन्तर उसने सूखे पत्तों के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित किया और उस शरणागत व्याध से कहा कि अब तुम विश्वासयुक्त होकर अपने सब अंगों को सेंको तबतो व्याध ने बहुत प्रसन्न होकर अपने अंगों को तपाया जब अग्नि से प्राण बचे और प्रसन्न हुआ तो फिर उस पक्षी से कहा कि अब क्षुधा से पीड्यमान होकर तेरे दियेहुये आहार को चाहता हूं यह सुनतेही पक्षी ने यह वचन कहा कि मेरे पास कोई सामान नहीं है जिसके द्वारा तेरी क्षुधा को मिटाऊं हम वनवासी सदैव मिलजानेवाले भोजन से आनन्दपूर्वक जीवते हैं मुनियों के समान

हमारेपास भी भोजन इकट्ठा नहीं है ऐसा कहकर वह पक्षी रूपान्तर हुआ और चिन्ता करनेलगा कि किसप्रकार कर्म करना चाहिये और अपनी जीविकाकी निन्दा करता शोचग्रस्त हुआ फिर क्षणमात्र में सावधान होकर उस पक्षीने व्याध से कहा कि थोड़े काल में ही मैं तुझको तृप्त करूंगा तू मुहूर्तभर और बाट देख बड़ी प्रसन्नता से और बहुतसे सूखे पत्तों में अग्नि को प्रज्वलित करके यह वचन बोला कि मैंने पूर्वसमय में महात्मा, ऋषि, देवता, पितरों का अतिथि पूजन में बड़ा धर्म सुनाहै मैं आपसे सत्य२ कहताहूं आप कृपाकरिये इससेही निश्चय करके मेरी बुद्धि अतिथि के पूजन में प्रवृत्त हुई तदनन्तर वह पक्षी उस अग्नि की तीन परिक्रमा करके उसमें प्रवेश करगया व्याधने पक्षीको अग्निमें घुसा देखकर चिन्ता की कि मैंने यह क्या किया इससे मुझको निश्चय करके महाघोर नरक होगा और अपने कर्म की निन्दा करके उस दशावाले पक्षी को देखकर इस प्रकार का बहुतसा विलाप किया ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि तब उस महादुःखित व्याध ने अग्नि में पड़ेहुये पक्षी से यह वचन कहा कि मुझ निर्दयी निर्बुद्धि ने ऐसा क्यों किया इससे मुझ जीवनेवाले को सदैव पातक होगा अपनी निन्दापूर्वक वारंवार यही शब्द कहा कि मैं अपनी निर्बुद्धि और पापबुद्धि से अनेक उत्तम कर्मोंको त्यागकर पक्षियों का घातक हुआ अब मुझ निर्दयी को धिक्कार के साथ यह उपदेश है कि भस्म होनेवाले महात्मा कपोत ने अपना मांस मुझको दिया सो मैं भी अपने प्यारे प्राणों समेत स्त्री और पुत्र आदि को इसीप्रकार त्याग करूंगा महात्मा कपोत ने मुझको धर्म उपदेश किया है अब से लेकर जीवनपर्यन्त सब भोगों से रहित अपने देह को ऐसा सुखाऊंगा जिसप्रकार कि ग्रीष्म ऋतु में बहुत छोटा सरोवर सूखजाता है क्षुधा, पिपासा, आतप का सहनेवाला दुर्बल और हड्डियों से तना हुआ बहुत प्रकार के व्रतों के द्वारा परलोक से सम्बन्ध रखनेवाला कर्म करूंगा आश्चर्यकारी देहके दान से अतिथिपूजन इसकपोत ने दिखाया इसकारण धर्म को करूंगा क्योंकि धर्मही परमगति है जैसा धर्म इस धर्मिष्ठ उत्तम कपोत में देखा वह कहीं किसी में नहीं सुना वह वीभत्सकर्मी व्याध इसप्रकार से कहकर और बड़ी दृढ़ता से व्रतमें परायण हो संन्यासधर्म में प्राप्त होकर चलदिया और अपनी

लाठी शलाका जाल और पिंजरे को डाल दिया और उस पकड़ीहुई कपोतिनी को छोड़दिया ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उस व्याध के चलेजानेपर दुःखी व्याकुल उस कपोतिनी ने पति को स्मरण करके यह कहा कि हे पते ! मैं तेरे अप्रिय को कभी स्मरण नहीं करती हूं सब विधवा स्त्रियां जो कि बहुत बेटेवाली होती हैं वह शोचती हैं विधवा तपस्विनी स्त्री बान्धवों की ओर से शोच के योग्य होती हैं मैं तुझसे बहुत प्यार की गई और बड़े मान से पूजित हुई मैं तेरे साथ सुन्दर मीठे सुगम और चित्तरोचक वचनों के साथ पहाड़ों की कन्दरा और नदियों के झरने और वृक्षों की उत्तम शाखाओं पर क्रीड़ा करनेवाली हुई और तेरे साथ आकाश में सुखपूर्वक चलती थी सो हे पते ! वह आगे का सुख मुझको अब कुछ भी नहीं है पिता संख्यावाली वस्तु को देता है भाई, लड़के भी संख्याही की वस्तु को देते हैं और असंख्यवस्तु देनेवाले पति का कौन नहीं सत्कार करेगा पति के समान सुख और नाथ नहीं है निश्चय करके सब धनों को त्याग करके स्त्री का रक्षास्थान पतिही है हे नाथ ! तेरे विना मैं यहां जीवन करना नहीं चाहती पति के विना कौनसी पतिव्रता स्त्री जीने की इच्छा करती है ऐसे अनेक करुणा विलाप के वचन कहके वह भी अग्नि में प्रवेश करगई मरने के अनन्तर उसने अपूर्व बाजूबन्दयुक्त विमान में बैठे शुभकर्मी महात्माओं से पूजित अनेक आभूषण वस्त्रों से अलंकृत श्रेष्ठकर्मी पुरुषों के अनेक विमानों से घिराहुआ अपने पति को देखा फिर वहां स्वर्ग में वर्तमान होकर उत्तम विमान में बैठा अपनी भार्या समेत क्रीड़ा करनेलगा ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! उस व्याधने भी उन दोनों कपोत कपोतिनी को विमान में बैठाहुआ देखा और उस गति को खूब विचार करके चाहा कि मैं भी इसप्रकार के तप से परमगति को प्राप्त करूं यह बुद्धि में विचारताहुआ चल दिया और सबसे ममता त्याग संन्यासी होकर वायु का भोजन करनेलगा और अनेक सुन्दर पक्षियों से व्याप्त अनेक रंग के कमलों से शोभित उसने

किसी सरोवर को देखा जिसके देखतेही तृष्णा इसकी जातीरही तब बड़े २ व्रतों से देह को कृश करके वह व्याध हिंसक जीवों से व्याप्त किसी निर्जन महावन में पहुँचा वहां वन के कांटों से घायल रुधिर से भराहुआ फिरनेलगा दैवयोग से वृक्षों की रगड़से उस वन में दावानल अग्नि लगी और उस महाप्रचण्ड अग्नि ने सब पशु, पक्षी, वृक्ष और लताओं समेत उस कानन को भस्म किया उस समय वह व्याध भी देह को शुद्धकर मोक्ष के निमित्त उस अग्नि के सम्मुख दौड़ा और जाकर उसमें भस्म होगया और मरने के पीछे उसने बड़ी सिद्धि को पाया अर्थात् अपने को स्वर्ग में जाकर यक्ष गन्धर्वों से सेवित इन्द्र के समान शोभायमान देखा इसप्रकार से कपोत कपोतिनी उस व्याध समेत स्वर्ग को गये इसीप्रकार जो कोई स्त्री पति की इच्छा के अनुसार कर्म करती है वह कपोतिनी के समान शीघ्रही स्वर्ग में जाकर शोभायमान होती है यह कपोत कपोतिनी और व्याध का पूर्व वृतान्त शुभकर्म से उत्तमगति पाने का है जो इसको सदैव सुनै सुनावैगा उसका पाप नष्ट होगा हे युधिष्ठिर! यह बड़ा धर्म है इस कथा के कहने से गौ ब्राह्मण मारनेवाले की भी गति होती है परन्तु जो शरणागत को मारता है उसका प्रायश्चित्त भी नहीं होसक्ता है जो पुरुष इस पवित्र पाप के दूर करनेवाले इतिहास को सुनता है या सुनाता है वह दुर्गति को त्याग स्वर्ग को जाता है ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मे एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

बीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! अज्ञानता से जो पाप करै वह कैसे पाप से छूटता है भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर मैं उस ऋषियों के कहे हुये पुराण को तुमसे कहता हूं जो शौनक के पुत्र इन्दोत ने राजा जनमेजय से कहा है कि परीक्षित का पुत्र राजा जनमेजय महापराक्रमी हुआ उसने अज्ञानता से ब्रह्महत्या को किया था इस कारण पुरोहित समेत ब्राह्मणों ने उसको त्याग दिया तब वह राजा महाशोक से पीड़ित वन को गया और वहां जाकर अपने पापका पश्चात्तापकरके शुद्धि के लिये उसने तपस्या की और देश २ के ब्राह्मणों से उसने अपनी हत्या के निवृत्त होने को पूछा वह धर्म की वृद्धि करनेवाला इतिहास तुमसे कहता हूं कि पापकर्म से दुःखित वह राजा जनमेजय जब वन को गया और वन में घूमतेहुये उसने शौनक के पुत्र इन्दोत को पाकर उस

के दोनों चरण पकड़लिये तब उस ऋषि ने उस राजा की बड़ी निन्दा की और कहा कि हे बड़े पाप और भ्रूणहत्या करनेवाले ! यहां क्यों आया है तुम हमारे पास क्या करसक्ते हो मुझको तुम कभी मत स्पर्श करो जावो २ तुम्हारे रहनेसे हम प्रसन्न नहीं हैं तेरे देह की गन्धि रुधिर के समान है और तेरा मुख मृतक के तुल्य है अकल्याणवान् कल्याणवानों के समान मृतक जीवतेहुये के समान घूमताहै ब्राह्मण को मार अपवित्र आत्मा पापको ही विचारता जागता, सोता है और बड़े आनन्द में वर्तमान् होता है हे राजन् ! तेरा जीवन निष्फल है तू बुरे कर्म के लिये उत्पन्न हुआ है पिता माता आदि तप, देवपूजन, नमस्कार और क्षमायुक्त होकर पुत्रों की इच्छा करते हैं और उनसे अपना बड़ा कल्याण चाहते हैं देख तेरे पिता का वंश तेरे कारण से नरक को गया उन माता पिता की तुझसे सम्बन्ध रखनेवाली सब आशा वृथा हैं जिनके पूजन से स्वर्ग और कीर्ति होती है उन ब्राह्मणों के तुम शत्रु हो तुम इस संसार को त्यागकर अपने पापकर्म से विनाशवान् होकर ऐसे स्थान पर शिर के बल वर्षों तक गिरोगे जहां पर लोहे के समान मुख रखनेवाले गिद्ध और शतकण्ठों से छेदे जाते हैं फिर वहां से अलग होकर पापयोनि को पावेगा और हे राजन् ! जो तुम यह मानते हो कि यह लोक नहीं है तो परलोक कहां से होगा इस बात की याद तुझको यमलोक के दूत दिलावेंगे ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इक्कीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि यह बात जनमेजय ने सुनकरउस मुनि से कहा कि आप मुझ निन्दायोग्य की निन्दा करतेहो और धिकार के योग्य को धिक्कारी देते हो मैं इसी के योग्य हूं यह मेरा पाप है अग्नि में बैठेहुये के समान भस्म होरहा हूं अपने पाप को स्मरण करके मेरा चित्त प्रसन्न नहीं होता है निश्चय है कि मेरे पाप से उत्पन्न होनेवाली भाल यमराज से भी अधिक घोर भय को पाकर पार निकल जायगी मैं उस भाल को विना उखाड़े कैसे जीवन को समर्थ हूं हे शौनक जी ! आप सब क्रोध को त्यागकर मेरेसम्मुख बात करो मैं ब्राह्मणों का बड़ा भक्त था इसको फिर कहूंगा यह वंश बनारहै इसका नाश न हो ब्रह्महत्या करनेवाले और अपकीर्ति पानेवाले हमलोगों का रहना वेद की रीति से एकमत प्राप्त होने के योग्य नहीं है आपको अपमान करके फिर सनातन वचन कहता

हूं कि आप मेरी इसप्रकार से रक्षा करो जिसप्रकार योगीजन निर्धनों की रक्षा करते हैं—यज्ञ न करनेवाले मनुष्य किसी दशा में भी परलोक को नहीं पाते हैं और पुलिन्द शबर नाम म्लेच्छों के समान नरकवासियों के समीप वर्तमान होते हैं जो मुझ सरीखे अज्ञानी शरण में आयेहुये की निन्दा करै वह पण्डित नहीं है हे शौनक ! जैसे पिता पुत्रपर प्रसन्न होता है उसीप्रकार आप मुझपर कृपा करिये शौनक ने कहा कि क्या आश्चर्य है जो अज्ञानीपुरुष अयोग्य कर्म करे उसके ऊपर पण्डित अवश्य क्रोध नहीं करते ज्ञानमहल पर चढ़कर शोच के अयोग्य पुरुष दूसरे मनुष्यों को ऐसे शोचता है जैसे पहाड़ पर बैठा मनुष्य पृथ्वी के मनुष्यों को ज्ञान से जानता है—जो साधुवों में प्रीति नहीं रखता है और उनकी आंखों से गिराहुआ है और पहिले साधुवों से धिक्कारी को पायाहुआ है वह ज्ञान को नहीं पाता है उसप्रकार के पुरुष में दूसरे मनुष्य आश्चर्य को नहीं करते हैं ब्राह्मण का बल वेद और उसका माहात्म्य शास्त्रों में है वह तुमको मालूम है तुम यहां शान्त होकर कर्म करो और ब्राह्मण तुम्हारा रक्षक हो हे तात ! क्रोधरहित ब्राह्मणों का जो कर्म है वह परलोक का हितकारी पापयुक्तभी हो ऐसी दशा में भी धर्म को ही समझो जनमेजय बोले कि हे शौनकजी ! मैं पाप से पश्चात्ताप करता हूं और धर्म को लोप नहीं करता हूं मुझ कल्याण चाहनेवाले सेवक पर प्रसन्न हूजिये—शौनकजी बोले कि हे राजन् ! मैं छल और अहंकार रहित तेरी प्रीति को चाहता हूं तू धर्म को याद करके सब जीवों की वृद्धि में वर्तमान हो मैं लोभ दुःख भय आदि से तुझको शिष्य नहीं बनाता हूं तुम ब्राह्मणों समेत मेरे उन दैवी सत्यवचनों को सुनो मैं किसी से धनकी इच्छा नहीं रखता हाहा धिक्कार धिक्कार ऐसे सब जीवों के पुकारने से तुझको धर्म से शिष्य करताहूं सुहृद्जन मुझको धर्मसे अज्ञानी जानकर त्याग करेंगे और मुझपर महादुःखी होंगे मेरे चित्त के प्रयोजन को कोई ज्ञानी ही पुरुष जानेंगे वह ब्राह्मण मेरे कारणसे जिसप्रकार कुशलता को पावें उसीप्रकार तुमको करना योग्य है हे राजन् ! ब्राह्मणों की अविरोधता का प्रण करो, जनमेजय बोला कि हे वेदपाठिन्, शौनक ! मैं कभी वचन चित्त कर्म से ब्राह्मणों से विरोध नहीं करूंगा और मैं आपके दोनों चरणों को स्पर्श करके कहता हूं ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवां अध्याय ॥

शौनक बोले कि तुम बड़े पराक्रमी होकर धर्म को देखते हो और विद्यावान् प्रसन्नचित्त होकर पाप से व्याकुलचित्त हो इस कारण मैं तुमसे धर्मको कहताहूं कि राजा प्रथम भयानकरूप होकर फिर अपने चलन से जीवोंपर कृपा करता है वह अपूर्वतर है वह सम्पूर्ण प्रजा को नष्ट करता है यह सब संसार कहता है तुम ऐसे अन्यायी होकर धर्मकोही देखतेहो इससे तुम बहुत कालतक भोज्य वस्तुवों को त्यागकरके तपस्या में प्रवृत्त होजावो हे जनमेजय ! अधर्म से अपमानयुक्त राजाओं की यह अपूर्व वार्ता है कि जो दान करनेवाला धनवान् हो और तपस्यारूपी धन का रखनेवाला कृपण हो यह आश्चर्य नहीं है क्योंकि जो आदि अन्तमें विचार नहीं किया यही सम्पूर्ण कार्पण्यताहै जो कर्म ध्यानपूर्वक होता है उसमें गुण है हे राजन् ! यज्ञ, दान,दया, वेद, सत्यता यह पांचो और अच्छे प्रकार किया हुआ तप सब पवित्र हैं यही राजाओं का पवित्र और उत्तम धर्म है इन गुणों से तू मोक्षधर्म को प्राप्त करेगा पवित्र देशकी यात्रा उत्तम और पवित्र कही जाती है इस स्थान पर राजा ययाति का कहा हुआ इतिहास कहते हैं जो आदमी अपनी आयु और जीवनको प्राप्त करे और बड़ी युक्ति से यज्ञकरके फिर तपस्या को करे वह तप कुरुक्षेत्र के समान पवित्र है और कुरुक्षेत्र से सरस्वती को और सरस्वती से तीर्थों को और तीर्थों से पृथूदक को पवित्र वर्णन किया है जिन तीर्थों में स्नान और जलपान करके जीवन्मुक्त होजाय वह महासरोवर पुष्कर, प्रभासक्षेत्र, कालोदक आदि तीर्थ हैं और सरस्वती दृषद्वती दोनों का संगम और मानसरोवर यह बड़े तीर्थ हैं उन सब तीर्थों में वेदपाठ और जप का अभ्यास करनेवाला आचमनपूर्वक स्नान करे मनुजी ने कहा है कि पवित्र पुरुषों का धर्म त्याग है और उससे भी अधिक संन्यास है इस स्थान पर सत्यवान् के बनाये हुये इतिहास को कहता हूं जैसे कि बालक सत्यवक्ता है और पाप पुण्य का कर्ता नहीं है इसीप्रकार इस लोक में सब जीवों के मध्य ब्रह्म से उत्पन्न होनेवाले अर्थात् ब्रह्मस्वरूप पुरुषों को सुख नहीं है तो फिर संसार के कुसंग से सब पापों के प्राप्त करनेवाले पुरुषों को कैसे होगा अर्थात् वह दोनों कल्पित हैं पुण्य पाप के समाप्त होने पर त्याग करनेवालों का जीवन कल्याणकारी है राजाओं के कर्मों में जो उत्तम कर्म है वह तुमसे कहूंगा तुम धैर्यता और दानों से स्वर्ग को विजय करो जिसको धैर्यता और इन्द्रियों के

जीतने की सामर्थ्य है वह मनुष्य धर्म का स्वामी है तुम ब्राह्मणों के अर्थ और सुख भोगने के निमित्त पृथ्वी की रक्षा करो क्योंकि तुम ने पहिले इनको तिरस्कार किया था अब इनको प्रसन्न करो और शपथ करो कि मैं ब्राह्मणों को नहीं मारूंगा तू अपने कामों में उद्योग करके परमकल्याण को कर कोई राजा तो बर्फ़ अग्नि और यमराज के समान होता है और कोई राजा हल और वज्र के समान होता है मैं सदैव रहूंगा ऐसा विचारकर नीचपुरुषों का निष्फल संग न करना चाहिये अर्थात् नाश की इच्छा करके कभी नीचों का संग न करे पश्चात्ताप के करने से विपरीत कर्म का पाप दूर होता है यह फिर नहीं करूंगा ऐसा निश्चय करलेने से भी पाप से निवृत्त होता है मैं धर्म ही को करूंगा यह संकल्प करके भी अपने पाप से उद्धार होता है ऐश्वर्य चाहनेवाले को अपना कल्याण करना चाहिये जो सुगन्धियों का सेवन करते हैं वह उसी सुगन्धि के रखनेवाले होते हैं जो दुर्गन्धियों के रखनेवाले हैं वह उसीप्रकार की दुर्गन्धि रखनेवाले होते हैं तप में प्रवृत्त होने से पुरुष शीघ्रही पाप से छूटता है जिसको दुष्टकर्म का दोष लगाया गया हो वह एक वर्ष पर्यन्त अग्नि की उपासना करके पाप से पृथक् होता है भ्रूणहत्या करनेवाला तीन वर्ष अग्नि की उपासना करके पाप से निवृत्त होता है महासरोवर पुष्कर प्रभास आदि तीर्थों की यात्रा को करके सौ योजन चलने से भी भ्रूणहत्या दूर होती है जितने जीवों को मारे उतने ही मरनेवाले जीवों को छुड़ाने से वह जीवघाती पापों से निवृत्त होता है तीन ऋचा अघमर्षण की जल में गोता लगाकर पढ़े उसको अश्वमेध और अवभृथ स्नान के समान मनुजी कहते हैं उससे शीघ्रही पाप नष्ट हो सत्कार को पाता है और सब जीव भी जड़ और गूंगे के समान इसको प्रसन्न करते हैं हे राजन्! देवता और असुरों ने देवगुरु बृहस्पतिजी से आदरपूर्वक पूछा कि हे महर्षे! तुम धर्म से उत्पन्न होनेवाले सुखरूपी फल को जानते हो उसीप्रकार परलोक सम्बन्धी दुःख को भी जानते हो जिस योगी के वह दोनों सुख दुःख बराबर होयँ उन दोनों की विजय भी वहां बराबर होसक्ती है या नहीं, धर्मकी प्रकृति रखनेवाला पुरुष किसप्रकार से पाप को दूर करता है, बृहस्पतिजी बोले कि जो पहिले अज्ञानता से पाप को करके फिर बुद्धि से पवित्र कर्मों को करता है वह कर्मका अभ्यासी उस पाप को ऐसे दूर करता है जैसे कि देह से मैले वस्त्र को दूर करते हैं—पाप करके

यह माने कि मैं कर्ता नहीं हूं अर्थात् देह के अहंकार से पृथक् है वह श्रद्धायुक्त दूसरे के दोष गुण में दोष न लगानेवाला कल्याण को प्राप्त होता है जो पुरुष साधुवों से प्रकट होनेवाले दोषोंको ढकता है वह भी कल्याणभागी होताहै—जो पुरुष पापको करके कल्याण को प्राप्त करता है वह इसप्रकार कल्याण को करता हुआ सब पापोंको दूर करता है जैसे कि सम्पूर्ण अन्धकारको प्रातःकाल का सूर्य दूर करता है—भीष्मजी बोले कि शौनक के पुत्र इन्दोत ने राजा जनमेजय से ऐसा कहकर बुद्धिके अनुसार अश्वमेधयज्ञ कराया तब वह जनमेजय निष्पाप होकर कल्याणयुक्त देदीप्यमान अग्नि के समान रूपवान् शत्रुहन्ता होकर अपने नगर में जाकर ऐसे पहुँचा जैसे कि आकाश में पूर्णचन्द्रमण्डलयुक्त चन्द्रमा होता है ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तेईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आपने देखा या सुना है कि कोई मृतकहोकर फिर जिया इसको कृपा करके कहिये भीष्मजी बोले कि एक प्राचीन इतिहास जिसमें गिद्ध और शृगाल का वर्णनहै उसको सुनो कि प्राचीन समय में नैमिष देशमें किसी ब्राह्मण का बालक बड़े नेत्रवाला कष्ट से प्राप्त होनेवाला बालग्रह से पीड़ित होकर मरगया तब उस घराने के मूलधनरूप मृतक बालकको उसके भाई बन्धु महाऽव्याकुल शोक से अश्रुपात करतेहुये श्मशानभूमि के पास लेकर वर्तमान हुये और शोक से उस बालक को पृथ्वीपर रखकर करुणा करके रोदन करनेलगे वारंवार उस बालकके वचनों को याद कर कर मारे मोहके उसको वहां छोड़कर लौट जानेको समर्थ नहीं हुये उनके विलापके वचन सुनकर एक गिद्ध उनसे बोला कि लोक में इकलौते पुत्र को छोड़कर जावो यहां विलम्ब न करो यहां हजारों स्त्री पुरुषों को बान्धव लोग छोड़ २ कर सदैव चलेजाते हैं और सुखदुःख से भरे हुये सब संसार को देखो मिलना और बिछुड़ना क्रम से सबको होनेवाला है जो लेकर आते हैं वह जीवभी अपनी अवस्थाकी संख्या से मृत्यु होते हैं तुम इस गिद्ध शृगाल काकआदि से व्याप्त महाभयानक भूमि से चले जावो कालको पाकर कोई इष्टमित्र फिर नहीं जियाहै जीवों की ऐसी ही गति है इसमें जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्यही मरेगा कौन पुरुष मृत्यु से बचाकर मृतक को जिलासक्ता है लोक का सब काम करके अन्त को सूर्य भी अस्तंगत

होता है पुत्र के स्नेह को त्यागकर अपने २ स्थानों को जावो तदनन्तर गिद्ध के वचनों से वह सब बान्धव पुकारे और रोकर लड़के को छोड़कर चल दिये और निराश होकर अर्थ के निश्चय करने को मार्ग रोककर वर्तमान हुये तब कौवे के समान काला एक शृगाल बिल में से निकलकर उन सब मनुष्यों से बोला कि निश्चय करके मनुष्य निर्दय हैं अरे मूर्खो! यह सूर्य वर्तमान है प्रीति करो भय मत करो अब बहुत रूप रखनेवाला मुहूर्त है कभी २ मृतक भी जीता है तुम पुत्रभाव की प्रीति से पृथक् हो निर्दय होकर अपने इस बालक को श्मशान में छोड़कर किस कारण से जाते हो इस मीठवचनवाले बालक में तुम्हारा स्नेह नहीं है जिसकी केवल बातों ही से खुशी होते थे तुम देखो कि जैसे पशु पक्षियों की अपने पुत्रों में प्रीति होती है उनको अपने पुत्रों के पोषण के सिवाय कोई फल नहीं प्राप्त होता है पुत्रों में प्रीति रखनेवाले पशु पक्षी कीट आदि जीवों को पोषण करने का कोई फल ऐसे प्राप्त नहीं है जैसे कि परलोकगति में वर्तमान मुनियों के यज्ञ और क्रियाओं का फल प्रकट नहीं होता अर्थात् वह फल ईश्वर में वर्तमान होता है पुत्रों से क्रीड़ा विनोद करनेवालों को इसलोक परलोक दोनों में कोई फल नहीं देखने में आता है परन्तु सन्तान को पोषण करते हैं प्यारे पुत्रों के न देखनेवाले उन जीवों को शोक वर्तमान नहीं होता है और न बड़े होकर अपने पिता माता का पोषण करते हैं मनुष्य की प्रीति कहां से है जिनका शोक किया जाय इस अपने पुत्र को त्याग कर कहां जावोगे कुछ समय तक नेत्रों से जल बहावो और प्रीति से देखो इसप्रकार की चित्तरोचकता अधिक करके उस मनुष्य को त्यागना कठिन है जोकि सुख से भ्रष्ट और प्यारी वस्तुवों समेत श्मशानभूमि में वर्तमान हो, जिस स्थान पर बान्धव वर्तमान होते हैं वहां दूसरा कोई नहीं ठहरसक्ता है प्राण सबको प्यारे हैं और सब प्रीति को जानते हैं—तिर्यग्योनि के जीवों में भी सत्पुरुषों की प्रीति जैसी होती है उसको भी देखो ऐसे कमलमुख कोमल बालक को छोड़कर तुम कैसे घर को जाते हो जैसे कि हाल के विवाह कियेहुये स्नानपूर्वक अलंकृत दूलह को—यह शृगाल के वचन सुनकर वह सब भाई बन्धु उस मृतक बालक के लेने को लौटे तब गिद्ध बोला कि अरे निर्बुद्धिलोगो! तुम इस नीचबुद्धि शृगाल के बहकाने से क्यों लौटे आते हो और पंचभूतों से बने प्राणरहित काष्ठरूप बालक को क्या शोचते हो तुम अपनी आत्मा को क्यों नहीं

शोचते निश्चय करके उग्र तप करो जिससे पाप से छूटो तप से सब प्राप्त होसक्ता है विलाप करनेसे क्या होगा सब अनिष्ट देहके साथही उत्पन्न हुये हैं जिसके कारण यह बालक अत्यन्त दुःख देकर जाता है धन, गौ, रत्न और सन्तान भी तप से ही प्राप्त होते हैं और वह तप योग से प्राप्त होता है जिसप्रकार अपनेकर्म से उत्पन्न होनेवाले सुख दुःख जीवों को प्राप्त होते हैं उसीप्रकार सब जीव सुख दुःख को साथ लेकर उत्पन्न होता है पिता के कर्म से पुत्र और पुत्र के कर्म से पिता संयुक्त नहीं होता है सब अपने अच्छेबुरे कर्मोंसे बँधेहुये इस मार्ग होकर जाते हैं तुम युक्तिपूर्वक अधर्म को चित्त से दूर करके धर्म को करो और समय के अनुसार देवता और ब्राह्मणों में बर्ताव करो शोक और दुःखको त्याग करो और पुत्र के स्नेह से अलग होकर इसको आकाश में त्याग करके फिर शीघ्रता से लौटो जो पुरुष बुरे भले कर्म को करता है उसी को भोगता है इस में बान्धवों से क्या सम्बन्ध है बान्धवलोग यहां अपने प्यारे बान्धव को त्याग करके वर्तमान नहीं रहते हैं और अश्रुपात कर करके प्रीति को त्यागकर वह अपने २ घरको जाते हैं ज्ञानी या मूर्ख धनी वा निर्धन यह सब बुरे भले कर्म के द्वारा कालके वशीभूत होते हैं शोचनेसे क्या होगा और मृतक को क्या करोगे सबको बराबर देखनेवाला काल धर्म से सबका स्वामी है तरुण, वृद्ध, बालक आदि सब जीव कर्म में बँधेहुये मृत्युके आधीन होते हैं यह संसार ऐसाहै शृगाल ने कहा बड़ा आश्चर्य है कि अल्पबुद्धि गिद्ध ने पुत्र के स्नेह में भरेहुये शोचग्रस्त तुम लोगोंकी प्रीति कम करदी जो यह समूह स्पष्ट विश्वासित और अच्छे प्रकारसे कहेहुये वचनों से कठिन प्रीतिको त्यागकर जाताहै और दुःखका स्थान है कि पुत्र का वियोग और श्मशान के सेवन से पुकारनेवाले आदमियों का ऐसा बड़ा दुःख है जैसे कि बछड़ों के वियोग होनेसे गौवों को दुःख होता है अब मैं पृथ्वी के मनुष्यों के शोक को खूब जानता हूं प्रीति के कारण मेरे भी अश्रुपात हुये उद्योग सदैव करना चाहिये फिर वह दैवके योग से सफल होता है प्रारब्ध और उद्योग दोनों दैव के द्वारा प्राप्तहोते हैं सदैव प्रीति करना चाहिये विना प्रीति के सुख नहीं होता अर्थकी सिद्धि बड़े उद्योगसे होती है तुम क्यों निर्दयी के समान जाते हो अपने वीर्य से उत्पन्न आत्मारूप पितरों का वंश पैदा करनेवाले पुत्रको वन में छोड़कर कहां जाते हो तुम सूर्यास्त के समय पुत्रको ले जावोगे या यहांपर वर्तमान होगे फिर गिद्ध बोला हे मनुष्यो! अब मेरीअवस्था

हज़ार वर्ष से अधिक व्यतीत हुई मैं स्त्री, पुरुष, नपुंसक किसी को जीता नहीं देखता हूं मृतक जीव गर्भ से उत्पन्न होते हैं और जन्म लेते ही मरजाते हैं और इधर उधर घूमतेहुये भी मरजाते हैं इसीप्रकार तरुण, वृद्धावस्था में भी मरते हैं इस लोक में पशु पक्षी जड़ चेतन जीव और पहाड़ों के भी प्रारब्ध नाशवान् हैं क्योंकि अवस्था आगे नियत होती है प्यारी स्त्री से वियोग और पुत्र के शोक से संयुक्त दुःखी मनुष्य सदैव शोक करते घर को गये हज़ारों इष्ट, मित्र, शत्रु, प्यारे, कुप्यारे लोगों को बान्धवलोग यहां छोड़कर चलेगये इस काष्ठतुल्य मृतक पुत्र को तुम त्याग करो यह मृतकरूप जीव दूसरी देहमें पहुँच गया किस कारणसे इस निर्जीव को छोड़कर नहीं जाते हो यह प्रीति निरर्थक है और परिश्रम निष्फल है यह न आंखों से देखता न कानों से सुनता है क्यों नहीं इसको त्याग करके जल्दी घर को जाते हो मोक्षधर्म से सम्बन्ध रखनेवाले कारणयुक्त मेरे कठिन वचनों से समझाये तुम अपने २ घर को चलेजावो हे मनुष्यो! निश्चय ज्ञानविज्ञान से संयुक्त सलाह को सुनकर लौट जावो बालक को देखकर और चरित्रों को शोचकर शोक दूना होजाता है इस वचन को सुनकर सब मनुष्य लौटे तब शृगाल ने शीघ्रही आकर उस पड़ेहुये बालक को देखा और मनुष्यों से कहा कि तुम गिद्ध के वचन से इस सुवर्णवर्ण भूषणों से अलंकृत पितरों के पिण्ड देनेवाले पुत्र को क्यों त्यागे जाते हो, प्रीति शोक से अलग नहीं है निश्चय इस मृतक के त्याग से तुमको खेद होगा सुनते हैं कि शम्बुक शूद्र के मरने पर ब्राह्मण का बालक धर्म को पाकर सच्चे पराक्रमी रामजी से जिलाया गया उसीप्रकार से राजर्षि श्वेतका पुत्र मृत्युवश हुआ फिर इस बालक को धर्मनिष्ठ श्वेतने जिलाया उसी प्रकार कोई देव मुनि सिद्ध हो और शोचग्रस्त तुम लोगों पर करुणा करे तो यह भी बचे इसप्रकार से कहेहुये शोक से पीड़ित पुत्र पर प्यार करनेवाले वह सब लौटे और अपनी गोदी में बालकका शिर रखकर बड़ा भारी विलाप किया उनकी विलापयुक्त वाणी को सुनकर गिद्ध ने कहा कि अश्रुपात से भीजा देह हाथ के छूने से घायल और धर्मराज के प्रयोग से बड़े भारी स्वप्न में प्रवृत्त कियेगये तप से भरेहुये धनी महाबुद्धिमान् सब मनुष्य मृत्यु के आधीन होते हैं यह वह मृतकों का नगर है जहां बान्धवलोग सदैव हज़ारोंबालक और वृद्धोंको त्याग करके पृथ्वीपर अहर्निश दुःख भोगते रहते हैं हठ को छोड़ चित्तसे शोक को दूर करो अब इसका जीवन कैसे होसक्त है मृतक

और देहके त्यागनेवालों का फिर देह नहीं वर्तमान होताहै सैकड़ों शृगाल की मूर्तियों के देने से भी यह बालक सैकड़ों वर्षतक भी जिलाना असम्भव है जो ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, स्कन्द आदि में से कोई इसको वरदान दें तो यह बालक जीवे और आपके इस रोदन के अश्रुपातों से नहीं जी सकेगा मैं तुम बान्धव शृगाल आदि जितने हैं वह सब धर्म अधर्म को साथ लेकर यहां इस मार्ग में वर्तमान हैं अप्रिय मनुष्य दूसरे की स्त्री और जीवों की शत्रुता अधर्म मिथ्या इत्यादि बातों को ज्ञानी पुरुष त्याग करे तुम धर्म की सत्यता और न्यायशास्त्र के अनुसार गुण और जीवों पर बड़ी दया और निश्छलता को युक्ति से निश्चय करो, जो पुरुष माता पिता बान्धव सुहृद् आदि को जीवता नहीं देखते हैं उनके धर्म में विपरीतता है, जो बालक नेत्रों से नहीं देखता है और किसी प्रकार की अंगचेष्टा भी नहीं करता है उसकी अवस्था पूर्ण होजाने में तुम शोक करके क्या करोगे यह सुनकर शोच में डूबे हुये वह बान्धव बालक को पृथ्वी में छोड़कर घर को चले शृगाल बोला कि सब जीवों का नाश करनेवाला यह नरलोक भय उत्पादक और कठिनता से क्षमा किया जाता है यहां जैसे सुहृद् बान्धव आदि से वियोग है उसीप्रकार जीवन भी थोड़ा है बहुत से कुप्यारे जो परोक्ष में निन्दा और अप्रिय बोलनेवाले दुःख और शोक के बढ़ानेवाले पुरुषों से संयुक्त इस प्रकट संसार को देखकर यह नरलोक एक मुहूर्त भी मुझको अच्छा नहीं लगता है तुम सरीखे अज्ञान लोगों को धिक्कार है जो गिद्ध के कहने से पुत्र से निर्मोही होकर घर को जाते हो हे शोकयुक्त मनुष्यो ! लौटो इस पापी गिद्ध के अशुद्ध वचनों को सुनकर क्यों जाते हो सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख है यहां सुख दुःख से संयुक्त इस संसार में एक बात बराबर नहीं होती हे अज्ञानियो ! इस कुल के शोभा देनेवाले स्वरूपवान् बालकको छोड़कर कहां जाते हो मैं इस रूपवान् तरुणतायुक्त बालक को निस्सन्देह चित्तसे जीवता देखता हूं हे मनुष्यो ! इसका नाश नहीं है निश्चय तुम इसको आनन्दसे पावोगे अब बालक के शोक से दुःखी मृतक के समान आप लोगों को जाना उचित नहीं है सुखको प्राप्त करके और धारण करके निर्बुद्धियों के समान पुत्र को त्यागकर कहां जावोगे—भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! इसप्रकार शृगाल के अमृतरूपी वचनों को सुनकर उन सब बान्धवों ने मध्य के बसेरे को पाया और अपने प्रयोजन के निमित्त उसके पास वर्तमान हुये

गिद्ध बोला कि यह श्मशानभूमि प्रेत यक्ष राक्षसों से व्याप्त भयकारी नौला आदि जीवों से शब्दायमान भयानक घोरसूरत नीले बादल के समान प्रभायुक्त इसमें मृतक को त्याग करके प्रेतक्रिया में प्रवृत्त हो जबतक सूर्य अस्त नहीं होता है तबतक सब ओर के मार्ग साफ़ हैं इससे इसी शुद्धमार्ग में प्रेतक्रिया को करो बाज़ पक्षी कठोर शब्द करते हैं और भयकारी शृगाल बोलते हैं मृगेन्द्र प्रसन्न होते हैं और सूर्य अस्ताचल को जाता है चिता के नीले धुवें से वृक्ष रंगीन होते हैं, श्मशानभूमि में निराहार देवता गर्जते हैं इस भयानकरूप देश में भस्म से भरेहुये देह और कुरूप से रुधिरभक्षी राक्षस तुमको रात्रि में डरावेंगे यह कठिनस्थान है इसमें अब भय उत्पन्न होगा इस काठरूप बालक को त्यागो और शृगाल के वचनों को विचारो, जो तुम शृगाल के निष्फल और मिथ्यावचनों को सुनोगे तो बेहोश होकर नाश को पावोगे—शृगाल बोला ठहरो यहां डरना न चाहिये जबतक सूर्यका उदयहै तबतक इस प्यारेपुत्र में अप्रीति नहीं करनेयोग्य है तुम विश्वास करके कुछ समय तक देखो जबतक सूर्य है तबतक कच्चे मांस भक्षी गिद्ध से तुमको क्या प्रयोजन है जो तुम गिद्ध के वचनों पर विश्वास करोगे तो तुम्हारा पुत्र नहीं जीवेगा फिर गिद्धने कहा कि सूर्यास्त हुआ शृगाल ने कहा नहीं हे राजन्! अपने काम में प्रवृत्त वह दोनों गिद्ध और शृगाल भूख प्यास से थकेहुये शास्त्रका सहारा लेकर चुप होगये—विज्ञानी और पण्डित लोग उन गिद्ध और शृगाल के अमृतरूपी वचनों से चलते थे और ठहरजाते थे फिर शोकमें भरेहुये वह सब लोग ठहरगये और उन दोनों चतुरोंकी चतुराई से वह सब काम करनेलगे तदनन्तर वादी प्रतिवादी गिद्ध और शृगाल और उन मनुष्यों के सम्मुख श्रीमहादेवजी ने आकर दर्शन दिया और सबसे कहा कि मैं वर का देनेवालाहूं तब सबने हाथ जोड़के कहा कि आप हमारे इकलौते पुत्र को जीवदान दीजिये तब शिवजी ने जलसे पूर्ण नेत्रो समेत उस बालक की सौ वर्ष की उमर करदी उसीप्रकार सबके उपकारी शिवजी ने शृगाल और गिद्धको भूखके नाश करने का वरदान दिया और वह लोग लड़केको जीवदान कराके बड़ी प्रसन्नतापूर्वक श्रीशंकरजी को नमस्कार करके घर को गये तात्पर्य यह है कि बड़ीप्रीतिपूर्वक पूर्णनिश्चयसे और देवोंके देव शंकरजी की प्रसन्नता से शीघ्रही फल प्राप्त होता है—दैवसंयोग और बान्धवों के निश्चय को देखो और दुःखी भूखे प्यासे मनुष्यों के अश्रुपात का साफ़ होना देखो थोड़े ही समय

में बड़े निश्चय को करके शोक से दुःखी मनुष्यों ने महादेवजी की प्रसन्नता से बड़ेभारी सुखरूप कल्याण को पाया जो इस अध्याय को चित्त से सुनताहै उसको इसीप्रकार के अनेक कल्याण होते हैं ॥ १२२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चौबीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जो निर्बल मिथ्यावादी असावधान मनुष्य हैं वह अपनी अज्ञानता से अयोग्य वचनों के द्वारा सदैव सम्मुख वर्तमान नेकी बदी करने में समर्थ उद्युक्त शत्रुके साथ विरोध करके अपने बलके घमंड से क्रोध युक्त सम्मुख आनेवाले शत्रु के उखाड़ने की इच्छा से कैसे कर्म करे भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें शाल्मली वृक्ष और हवा का संवाद है–हिमालय पर्वतपर एक शाल्मली का बहुत बड़ा वृक्ष था जिसकी बड़ी २ शाखाओं में अनेक उपशाखाथीं वहां धूप से पीड़ित थकेहुये मतवाले हाथी और अनेक प्रकार के पशुजीव निवास करते थे उसकी मुटाई दोसौ गजकी बड़ी छायावाला तोता मैनाआदि पक्षियोंसे शब्दायमान फल पुष्पयुक्त था दैवयोगसे उस उत्तम वृक्षके नीचे वनवासी व्यापारियों का समूह और विदेशी तपस्वी इकट्ठेहुये थे वहां नारदजी ने आकर उस वृक्ष से कहा कि आश्चर्य है कि तुम चित्तरोचक क्रीड़ाके योग्यहो हे शाल्मले, वृक्ष ! हम तुमसे सदैव प्रसन्न रहते हैं और तेरी छाया में बड़े२ मतवाले हाथी आदि अनेक वन के पशु आनन्द से विश्राम लेते हैं और तेरी शाखाओं को मैं किसीप्रकार के वायुसे टूटता नहीं देखता क्या वायु तुम्हारा मित्रहै और तुझपर प्रसन्नहैं जिससे कोई तुम्हारा बिगाड़ नहीं करता तीक्ष्ण वायु सैकड़ों बड़े२ वृक्ष और पर्वतों के शिखर और अनेक स्थानों को अपने२ स्थानों से हटा देताहै अतिसुगन्धित पवित्र वायु देवता, पाताल, सरोवर, नदी और सागरों को प्रसन्न करता है वायु देवता तुमको मित्रता से रक्षा करते हैं इसी से तुम फल पुष्पयुक्त भी रहते हो और तेरी सुन्दर शाखाओं में यह प्रसन्नचित्त पक्षी कल्लोलें करते हैं इन सब पक्षियों के शब्द ऋतु२ के अनुसार मीठे और मनभावने सुनाई देते हैं और इसीप्रकार यह मतवाले गर्जनेवाले हाथी आदि जीव भी तेरेआश्रम में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं तुम इन सब बातों से सुमेरुपर्वत के समान शोभा देरहे हो तप से सिद्ध तपस्वी और भिक्षुक ब्राह्मणों के द्वारा तुझको स्वर्ग के समान मानता हूं ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पच्चीसवां अध्याय ॥

हे शाल्मले ! भयकारी सर्वव्यापी वायु देवता बिरादरी के नाते से या मित्रता से तुम्हारी सदैव रक्षा करते हैं इससे हे वृक्ष ! तुम वायु देवता के दास हो और मैं तेरा हूं ऐसा सदैव दीनवचन कहते हो इसी से वायु देवता तुम्हारी रक्षा करते हैं मैं ऐसा कोई वृक्ष पर्वत स्थान पृथ्वी पर नहीं देखता हूं जो वायु से पीड़ित न हो शाल्मली बोला हे ब्राह्मण ! वायु न मेरा मित्र है न बन्धु है और न मेरा शुभचिन्तक है इसीप्रकार ईश्वर भी नहीं है जो सबकी रक्षा करता है हे नारदजी ! मेरा और वायु का तेज बल कठिनता से सहने के योग्य है वायु देवता पराक्रम में मेरे अठारहवीं कला के भी समान नहीं हैं वह पवन वृक्ष पर्वत स्थानों को तोड़ता हुआ मेरे ही बल से रोकागया है वायु देवता को बहुधा मैंने पराजय किया इससे हे नारदजी ! मैं क्रोधयुक्त वायु से भी नहीं डरता हूं नारदजी बोले कि हे शाल्मले ! यह तेरा समझना मिथ्या है क्योंकि पवन के समान कोई जीव पराक्रमी नहीं है इन्द्र, वरुण, यमराज, कुबेर यह भी बल में वायु देवता के समान नहीं हैं तो तुम कैसे होसक्ते हो और इस पृथ्वीपर जो कोई जीव चेष्टा करता है वह सब चेष्टा करनेवाले वायु देवता ही हैं यही देवता सब में व्याप्त होकर जीवमात्रों को चेष्टा कराता है और विपरीत से व्याप्त होकर विपरीत चेष्टा भी करा देताहै सो तुम ऐसे पराक्रमी देवता का पूजन नहीं करते हो इससे यह बुरी बात है जो स्वाभाविक गुण से रहित है और शास्त्र की जाननेवाली मेधा बुद्धि जिसकी नष्ट है वह बड़ी बकवाद करता है और क्रोध आदि से आच्छादित निष्प्रयोजन बात करता है तेरे ऐसे वचनों से मुझको क्रोध उत्पन्न हुआ मैं तेरे खोटे वचनों को वायु देवता से कहूंगा हे दुर्बुद्धे ! चन्दन, स्यन्दन, शाल, सरल, देवदारु, बेत, धन्वन आदि अनेकपराक्रमी और ज्ञानी वृक्ष हैं वह सब भी वायु देवता की ऐसी निन्दा नहीं करसक्ते वे सब वायु देवता के और अपने बलको जानते हैं इससे वह बड़े २ उत्तम वृक्ष भी वायु देवताको नमस्कार किया करते हैं तुम अपने मोह से वायु देवता के अत्यन्त पराक्रम को नहीं जानते हो जो यह बात ऐसे ही है तो वायु देवता के सम्मुख जाऊंगा ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

छब्बीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजेन्द्र ! ज्ञानियों में श्रेष्ठ नारदजी ने शाल्मली से

ऐसा कहकर उसकी सब बातों को वायु से कहा कि हिमालय के ऊपर एक शाल्मली वृक्ष है वह बड़ी जड़ और छाया रखनेवाला है वह तुम्हारा अपमान करता है उसने बड़ी निन्दा के वचन जो तुमको कहे हैं वह मैं तुम्हारे आगे कह नहीं सक्ता हे वायु देवता! मैं तुमको सब देव दानव राक्षसों से भी बड़ा पराक्रमी और क्रोध में यमराज से भी अधिक जानता हूं यह नारद के वचन सुनतेही वायु देवता क्रोधयुक्त हो उस शाल्मली से जाकर यह वचन बोले हे शाल्मले! तैंने नारदजी से मेरी निन्दा की है मैं अपना पराक्रम तुझको दिखलाऊंगा और जो ब्रह्माजी ने तेरे नीचे विश्राम किया उसी विश्राम करने से यह मेरी कृपा तेरे ऊपर है हे दुर्बुद्धे! इसी कारण से बचा हुआ है तू अपने पराक्रम से नहीं बचा है जो तू मुझको दूसरे प्राकृत जीवों के समान जानता है मैं अपनी आत्मा को दिखाता हूं जिससे तू कभी मेरी निन्दा न करेगा तब शाल्मली ने हँसकर उत्तर दिया कि हे वायु देवता! तुम अपना पूरा पराक्रम मुझको दिखावो मुझ पर क्रोध मत करो और जो क्रोध करोगे तो मेरा क्या करसक्ते हो हे वायु! यद्यपि आप समर्थ हैं परन्तु मैं आपसे कभी नहीं डरता मैं तुझसे पराक्रम में अधिक हूं इससे तेरा भय मुझको ज़रा भी नहीं है क्योंकि जो बुद्धि के बली हैं वही पराक्रमी होते हैं जो देह से ही बलिष्ठ हैं वह बली नहीं समझेजाते हैं यह वचन शाल्मली से सुनकर वायु ने कहा कि मैं कल अपना बल तुझको दिखाऊंगा तदनन्तर रात्रि वर्तमान हुई और वायु के समान अपने को न जानकर शाल्मली ने ध्यान करके कहा कि मैंने नारदजी से जो २ वचन कहे वह सब मिथ्या हैं मैं वायु से निर्बलहूं वही पराक्रमी है निश्चयकरके जैसा कि नारदजीने कहाहै सो ठीक है अर्थात् वायु देवता बड़े बलवान् हैं और मैं निस्सन्देह दूसरे वृक्षोंसे भी निर्बलहूं सो मैं बुद्धिमें नियत होकर वायु से अपने भयको दूर करूंगा जो वन के वृक्ष भी उस बुद्धि में नियत होकर ठहरें वह भी सदैव वायु के कोप से बचेंगे इसमें सन्देह नहीं है परन्तु वह अज्ञानी इसको नहीं जानते हैं इसी से क्रोधभरा वायु इन वृक्षोंको हिलाता है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे षडविंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सत्ताईसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उस शाल्मली वृक्ष ने व्याकुल होकर अपनी छोटी बड़ी शाखा और गुद्दोंको अपने आप गिरा दिया सबफल पुष्प और शाखा आदि

के दूर करनेवाले शाल्मली ने प्रातःकाल के समय आनेवाले वायु देवता को देखा कि श्वासों से बड़े २ वृक्षोंको गिरातेहुये क्रोधाग्निमें भरेहुये उस स्थानमें आये जहांपर कि वह शाल्मली वृक्ष था उसके फल पुष्प और शाखाओं को गिराहुआ देखकर बड़े प्रसन्नचित्त मन्द मुसुकान से यह वचन बोले कि हे शाल्मले ! मैं भी क्रोधसे तुमको ऐसाही करनेवाला था तुमने आप शाखाओं के दूर करने से अपनेको दुःख में डाला अपने बुरे विचारसे फूल, फल, शाखाओं से रहित सूखे गिरे हुये तुम मेरे पराक्रमके आधीन किये गये तब शाल्मली महालज्जायुक्त होकर नारदजी ने जो कहा उस वचन को स्मरण करके महादुःखित हुआ हे राजेन्द्र! इसीप्रकार अज्ञानी राजा भी निर्बल होकर बलवानों से जो विरोध करता है वह शाल्मली वृक्ष के समान दुःखी और लज्जायुक्त होता है इस कारण निर्बल राजा पराक्रमी राजा से विरोध ऐसा न करे जैसा कि शाल्मलीने वायु से किया—हे महाराज ! महात्मा लोग दुष्टता करनेवालों पर शत्रुता प्रकट नहीं करते हैं और धीरे २ अपने पुरुषार्थ को दिखलाते हैं—दुर्बुद्धि मनुष्य बुद्धि से जीवन करनेवाले मनुष्य से शत्रुता न करे क्योंकि उसकी बुद्धि ऐसे प्रवेश कर जाती है जिसप्रकार घास में अग्नि—हे राजन्! जैसे पुरुषों में बुद्धि के समान कोई वस्तु नहीं है इसीप्रकार इस लोक में बल के समान कोई नहीं है इसी हेतुसे बालक, विक्षिप्त, अन्धे, बहिरे और अपने से अधिक बलवान् से क्षमा करे हे युधिष्ठिर ! वह बात मैं तुझमें देखता हूं हे राजेन्द्र ! युद्ध प्रवृत्त होने पर ग्यारह अक्षौहिणी सेना पराक्रम में महात्मा अर्जुनके समान न हुई सब सेनाके योद्धा पराक्रम में नियत होकर युद्ध में घूमनेवाले इन्द्र के पुत्र यशस्वी अर्जुन के हाथसे मारेगये और पराजय दियेगये—हे राजन्! यह राजधर्म और आपद्धर्म ब्योरेसमेत तुम से कहे अब और क्या सुना चाहते हो ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम, पितामह ! पाप का जो नियत स्थान है और जिससे पाप जारी होता है मैं उसको ब्यौरे समेत सुना चाहता हूं भीष्मजी बोले कि हे राजेन्द्र ! पाप के रहनेके स्थान को सुनो केवल लोभ ही बड़ा ग्राह है लोभही से पाप जारी होता है इसी से पाप अधर्म और महा दुःख प्राप्त होता है जिस लोभ से मनुष्य पाप करते हैं वही छल का मूल है

लोभ से ही क्रोध होता है और उसी से काम जारी होता है लोभ से ही मोह छल अपमान और पराधीनता प्राप्त होती है अधैर्यता, निर्लज्जता, धनक्षय, धर्म नाश, अपकीर्ति, चिन्ता आदि भी लोभही से जारी होते हैं-त्याग न करना, अत्यन्त तृष्णा और विपरीत कर्मों में जो२ बातें होती हैं यह सब और कुल विद्या का अहंकार और रूप वा ऐश्वर्य का मद, सब जीवों से शत्रुता और उनका अपमान अविश्वस्तता, कुटिलता, परधन का हरना, दूसरे की स्त्री से सम्भोग करना, वचनवेग, चित्त का वेग, निन्दा का वेग, उपस्थ इन्द्रिय और उदर का वेग, मृत्यु का भयानक वेग, ईर्षाका बलिष्ठ वेग, दुःखसे विजय होनेवाला हत्या का वेग, दुःखसे हटाने योग्य रिस का वेग, असह्य कानों का वेग, निन्दा, अपनी हीनता, मित्रता और पाप दुःख से प्राप्त होनेवाला व्याज इसी प्रकार विना विचारे होनेवाली सब कार्योंकी क्रिया यह सब लोभसे उत्पन्न हैं, बालअवस्था, कुमारअवस्था और तरुणअवस्थावाले पुरुष भी अपने कर्मको नहीं त्याग करते हैं हे राजन्! यह लोभ वृद्धसे वृद्ध पुरुष का भी कम नहीं होताहै और प्रतिदिन के लोभसे भी ऐसे पूर्ण नहीं होता जैसे महागम्भीर नदियों के जलसे समुद्र नहीं अघाता जो लोभसे प्रसन्न और कामसे तृप्त नहीं होताहै, वह भी उसीके समान है, हे राजन्! जो देवता, गन्धर्व, असुर, महासर्प और सब जीवों के समूहों से मुख्यता के साथ नहीं जानाजाता है वह लोभ मोह समेत जितेन्द्रिय मनुष्य से विजय करने के योग्य है-हे राजन्! कपट, शत्रुता, निन्दा, दुष्टभाव, मित्रता यह अवगुण अशुद्ध अन्तःकरणवाले लोभियों के होते हैं बड़े ज्ञानी पुरुष बहुत बड़े शास्त्रोंको भी धारण करते हैं और सन्देहों को भी दूर करनेवाले होते हैं और जो निर्बुद्धि हैं वह दुःख को प्राप्त होते हैं शत्रुता और क्रोध से भरे हुये उत्तम पुरुषों के आचार से रहित अन्तःकरण से निर्दयी प्रत्यक्षमें मृदुभाषी तृणों से ढके हुये कूपों के समान धर्म के छल से दूसरों को मारनेवाले धर्मध्वजा रखनेवाले नीच मनुष्य जगत् को ठगते हैं, धर्म अधर्म से दूसरों को प्रसन्न करनेवाले हेतुबलमें प्रवृत्त पुरुष इन बहुतसे मार्गोंको उत्पन्न करते हैं और लोभ ज्ञान में नियत होकर सत्पुरुषों के मार्गों को नाश करते हैं-दुरात्मा लोभियों से हरेहुये धर्म की जो२ मर्यादा भिन्न २ होती हैं वह भी इसी प्रकार से प्रसिद्ध होती हैं, हे राजन्! अहंकार, क्रोध, धन आदि का मद, निन्दा, प्रसन्नता, शोक यह सब दुष्ट गुण लोभी मनुष्यमें दृष्टि आते हैं तुम इनको सदैव लोभ से भरेहुये नीच जानो और

जिन्हों में संसार के आवागमन का भय नहीं है और परलोक की चिन्ता नहीं है और प्रिय अप्रिय विषयों में जिनका चित्त नहीं है और सदैव शिष्टाचार में प्रवृत्त हैं और प्रत्यक्ष में शान्तचित्त हैं और सुख दुःख को समान जानते हैं और उच्चस्थानी और दानी हैं और किसी से प्रतिग्रह को नहीं लेते और दयावान् होकर पितृ, देवता और अतिथियों के पूजन में सदैव सावधान हैं वह वीर सबके उपकारी धर्मरक्षक जीवमात्र के हितकारी प्राण तक देनेवाले हैं वह धर्म व्यापार करनेवाले मार्ग से भी हटाने के योग्य नहीं हैं उनका वह चलन कभी नष्ट नहीं होताहै जोकि पहिले साधुवों से चलाया हुआहै—जो पुरुष भयका उत्पन्न करनेवाला नहीं है और चपलता, रुद्रता से रहित सन्मार्ग में वर्तमान हैं और अहिंसा ही परमधर्महै ऐसे मनुष्य सदैव साधुवों से सेवनयोग्यहैं, जो काम क्रोधसे रहित ममता अहंकार आदि से पृथक् सुन्दर व्रत और मर्यादाओं में वर्तमान हैं उन्हों की उपासना करके धर्म को पूछो, हे राजन्! उनका धर्म धन के और कीर्ति के निमित्त नहीं है किन्तु देह की भोजनादि सब क्रिया करने के योग्य है ऐसा समझकर करते हैं उनमें भय, क्रोध, चपलता, शोक आदि अवगुण नहीं हैं और धर्मध्वजी भी नहीं हैं न किसी पाखण्डकर्म में प्रवृत्त हैं, लोभ मोहादिक से रहित सत्य कहनेवाले हैं उनसे मिलाप करो ऐसे पुरुषों का चलन कभी भ्रष्ट नहीं होता है—जो पुरुष हानि, लाभ होने में शोक, हर्ष नहीं करते और ममता अहंकार रहित सतोगुण में वर्तमान समदर्शी हैं उन दृढ़पराक्रमी सतोगुणी पुरुषों को हानि, लाभ, सुख, दुःख, प्रिय, अप्रिय, जीवन, मरण सब बराबर हैं, तुम जितेन्द्रिय सावधान धर्म के प्यारे होकर बड़े २ महानुभावों का पूजन करो पूर्व के अच्छे संस्कारियों से सब कर्म कल्याणकारी होते हैं और अज्ञानियों के सब कर्म अशुभदायक होते हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उन्तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आपने अनर्थों का उत्पत्तिस्थान वर्णन किया अब ज्ञान को भी यथायोग्य सुना चाहताहूं भीष्मजी बोले कि जो अज्ञान से पाप को करता है और अपने नाश को नहीं जानता है और श्रेष्ठकर्मी पुरुषों से शत्रुता करता है वह संसार में वर्तमान होकर निन्दा को पाता है और मोह से नरक और दुर्गति को प्राप्त होता है और दुःख से पीड़ित आपत्तियों में

डूबजाता है युधिष्ठिर ने कहा कि मैं अज्ञान की प्रवृत्ति, स्थान, वृद्धि, हानि, उदय, मूलयाग, गति, काल, कारण, हेतु इत्यादिको ब्यौरे समेत सुना चाहताहूं और जो दुःख प्राप्त होता है वह अज्ञान से होता है—भीष्मजी बोले कि प्रीति, विरोध, मोह, हर्ष, शोक, अहंकार, काम, क्रोध, अपमान, सुस्ती, आलस्य, इच्छा, अनिच्छा, कष्ट, अन्य की वृद्धि में दुःखपाना यही अज्ञान है अर्थात् यह अज्ञानके ही रूप हैं—पापियों की जो हिंसा आदि क्रिया हैं वह पापरूप हैं इस जारी होनेवाले पाप की जिस वृद्धि आदि को तुम पूछते हो उसको ब्यौरे समेत कहता हूं कि यह दोनों अज्ञान और लोभ एकसा दोष और फल देनेवाले हैं इससे दोनों समान हैं लोभ से अज्ञान प्रकट होता है और पाप कर्म से लोभ की वृद्धि होती है, समानता में समान और न्यूनता में न्यून होता है उदय में उदय होकर नाना प्रकार की गतियों को प्राप्त करता है अब सातवें प्रश्न का उत्तर कहते हैं कि अज्ञानरूप लोभ की जड़ मोह है और योग्यायोग्य के विचार कर्म के निश्चय से मोह संयोगी अज्ञान योग है और कालात्मारूप से अज्ञान की गति है इसीप्रकार लोभ के घटने और वृद्धि होने से कारण और काल होताहै उस काल के ज्ञान से लोभ प्रकट होता है और लोभ से अज्ञान उत्पन्न होता है इसीप्रकार लोभही से सब दोष प्रकट होते हैं इस निमित्त लोभ को अत्यन्त त्याग करे—राजा जनक, युवनाश्व, वृषदर्भ और प्रसेनजित लोभ के ही नाश से स्वर्ग को गये इसीप्रकार अन्य बहुत से राजा भी वैकुण्ठवासी हुये इससे हे कौरवेन्द्र ! तुम यहां प्रत्यक्ष होकर लोभ को त्याग करोगे तो इस लोक परलोक दोनों में आनन्दपूर्वक विचरोगे ॥ ४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे धर्मात्मन्, पितामह ! वेदपाठ और जप के उद्योग करनेवाले इच्छावान् पुरुष का इस लोक में क्या कल्याण होता है और नानारूप धारण करनेवाले इस संसार में कल्याण को मानते हैं और यहां वहां जो कल्याण है उसको भी मुझसे कहिये और यह बड़ा धर्ममार्ग बहुत शाखावाला है उसकी जो बड़ी जड़ है उसको भी ब्यौरे समेत कहो भीष्मजी बोले कि बहुत अच्छा इसको भी कहता हूं जिससे कि तेरा कल्याण होगा, जैसे कि प्राणी अमृत को पान करके तृप्त होता है उसीप्रकार तू भी ज्ञान से तृप्त होगा देखो महर्षियों की

कही हुई धर्म की बहुत सी रीतियां हैं वह लोग अपने २ विज्ञान से वर्तमान होकर परमकाष्ठाओं को करते हैं निश्चय करके देखनेवाले महात्माओं ने प्रत्यक्ष शान्तचित को कल्याणकारी कहा है मुख्य करके ब्राह्मण का प्रत्यक्ष में शान्त चित्त होना सनातनधर्म है शान्तचित्त होने से उसके कर्म की सफलता अच्छे प्रकार से होती है शान्तचित्त होने से तेज की वृद्धि और अत्यन्त पवित्रता होती है पापरहित तेजयुक्त पुरुष मोक्ष को पाता है शान्तचित्त से बढ़कर संसार में कोई धर्म नहीं है यह चित्त की शान्तता लोक में उत्तम और सब धर्मों में श्रेष्ठ है हे राजन्! प्रत्यक्ष शान्तचित्त होने से बड़ाफल पाता है अर्थात् इस लोक और परलोक में बड़े सुख को पाता है शान्तचित्त मनुष्य सुख से सोता जागता लोकों में घूमता चित्त से प्रसन्न और साफ़ रहता है और जो पुरुष शान्तचित्त नहीं है वह सदैव दुःख को पाता है और अपने दोषों से बहुत से अनर्थ करता है चारो आश्रमों में प्रत्यक्ष शान्तचित्तको ही उत्तम व्रत कहते हैं अब उसके चिह्न कहता हूं जिन पुरुषों की चित्त की शान्तता अच्छे प्रकार से उदय होनेवाली है उनमें धैर्यता, क्षमा, अहिंसा, समानदृष्टि, सत्यता, शुद्धभाव, इन्द्रियनिग्रह, चातुर्यता, मृदुता, लज्जा, अचपलता, उदारता, अक्रोधता, सन्तोष, प्रियवचन, दूसरे के गुण में दोष न लगाना, गुरुपूजन और जीवों पर दया, दुष्टमनुष्यों से निर्विवादता, प्रशंसा, निन्दा आदि का त्याग यह सब बातें भी होती हैं और काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, दुष्टता, ईर्षा, अभिमान आदि बुरे गुण भी उनमें कभी नहीं होते हैं इच्छारहित, अविनाशी, प्रशंसनीय, सुखों से तृप्त न होनेवाला और अन्य के गुण में जो दोष नहीं लगानेवाला पुरुष है वह समुद्र के समान किसीप्रकार से तृप्त नहीं होता है मैं तुझमें प्रीति रखता हूं तुम मेरे हो और मुझमें प्रीति रखते हो उसीप्रकार मैं भी उनमें स्नेह रखता हूं यह सब बातें और पहिली नातेदारीका संयोगइत्यादि बातों को जितेन्द्रिय नहीं सेवन करता है लोक में जो नगर और वन से सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं उनको और निन्दा स्तुति को जो पुरुष काममें नहीं लाता है वह मुक्त होता है, जो पुरुष सब के मित्र सुन्दर प्रकृति शुद्धचित्त और ब्रह्मज्ञानी हैं वह अनेक प्रकार के दुस्संगों से रहित होकर स्वर्ग में बड़े फल को पाते हैं श्रेष्ठचलन, सुप्रकृति, शुद्धचित्त, आत्मज्ञानी, बुद्धिमान् पुरुष इस लोक में सत्कार को पाकर परलोक में परमगति को पाता है इस लोक में जो शुभकर्म हैं और सत्पुरुषों

से किये गये हैं वह ज्ञान से भरे हुये मुनियों के मार्ग स्वाभाविक सिद्ध होते हैं जो घर से निकलकर वन में वर्तमान होकर ज्ञानसंयुक्त जितेन्द्रिय काल को देखता विचरता है वह ब्रह्मभाव के जानने को समर्थ होता है जो जीवों से निर्भय है और उससे जीव निर्भय हैं उस देह से निरभिमानी पुरुष को कहीं भय नहीं होता जो कर्मों को भोगों के करने से नाश करता है और उनको संचय नहीं करता है वह सब जीवों में समदर्शी होकर जीवों को निर्भय दान करे उसका मोक्ष ऐसे गुप्त होता है जिस प्रकार आकाश में पक्षियों की और जल में जलजीवों की गति नहीं मालूम होती है जो पुरुष घरों को त्याग कर मोक्ष को ही सेवन करता है उसके तेजरूप लोक बहुत दिनतक कल्पना किये जाते हैं, सब कर्मों को त्याग बुद्धि के अनुसार तप को विसर्जन कर नानाप्रकार की विद्याओं को त्याग सबको छोड़कर पवित्र इच्छावान् सब लोकों में जाने वाला अर्थात् माया के आवरण से पृथक् शुद्धचित्त आत्मज्ञानी अनिच्छावान् पुरुष इसलोकमें सत्कार को पाकर स्वर्ग को प्राप्त करता है और जो ब्रह्माजी का स्थान ब्रह्मसमूह से उत्पन्न होनेवाला हृदयकमल में वर्तमान है उसको शान्तचित्त होकर प्राप्त करता है उस ब्रह्मज्ञान में वर्तमान ज्ञानी सब जीवों के प्यारे पुरुष को संसार के आवागमन का भय नहीं होता है तो परलोक का भय कैसे होगा शान्तचित्त होने में एक दोष के सिवाय दूसरा नहीं मालूम होता है वह एक दोष भी बड़े गुणवाला है सन्तोषी पुरुष को सन्तोष के प्रभाव से बड़े२ लोक भी सुगम हैं हे युधिष्ठिर! जितेन्द्रिय पुरुषको वन से क्या प्रयोजन है उसीप्रकार अजितेन्द्रिय को भी क्या लाभ है जितेन्द्रिय जहां रहै वही वन और आश्रम है वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी के इस वचन को सुनकर राजा युधिष्ठिर ऐसे प्रसन्न हुये जैसे कि अमृत से अच्छा तृप्त हुआ मनुष्य आनन्द को पाता है ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इकतीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इन सबका मूल तप ही है पण्डित लोग ऐसा कहते हैं कि तप न करनेवाला अज्ञानी पुरुष क्रिया के फल को नहीं पाता है ब्रह्मा जी ने इस सब सृष्टि को तप से ही उत्पन्न किया है और ऋषियों ने भी तप से ही वेदों को प्राप्त किया है तप से ही अन्न फल मूल हैं सिद्धलोग तप से ही तीनों लोकों को देखा करते हैं रोगों की नाशक औषधें और नाना प्रकार की क्रिया तप से ही

सिद्ध होती हैं जो साधन है उसका भी मूलकारण तप है जो कुछ कि कठिनता से प्राप्त होता है वह सब भी तप ही से होता है ऋषियों ने भी निस्सन्देह तप ही से ऐश्वर्य को पाया है मद्यपान करनेवाला, भ्रूणहत्या करनेवाला, गुरुकी शय्या पर सोनेवाला पुरुष अच्छे प्रकार के तपेहुये तप से पाप से निवृत्त होता है बहुत रूप रखनेवाले तप के द्वारा कर्म को करता हुआ निवृत्तमार्ग में वर्तमान पुरुष का तप अनशनव्रत से उत्तम नहीं है और अहिंसा, सत्यता, दान, जितेन्द्रिय आदि होकर अनशन करने से अधिक कोई व्रत नहीं है दान से अधिक कर्म नहीं है दान के समान कोई गति नहीं है तीनों वेदों से कोई उत्तम नहीं है संन्यास तपों में उत्तम तप है इस लोक में स्वर्ग और धर्म की रक्षा के लिये इन्द्रियों की रक्षा करते हैं इस कारण अर्थ और धर्म में अनशन से उत्तम तप नहीं है ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और सब स्थावर जंगम जीव यह सब तप को ही उत्तम पद देनेवाला जानते हैं और तपही से सिद्ध होते हैं और देवता लोग भी तपही से सबके पूजनीय हुये, यह तप के आठ भाग रखनेवाले फल हैं तप और निश्चय से देवभाव भी प्राप्त होना सम्भव है ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे एकात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

बत्तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! ब्रह्मऋषि, पितृ, देवता आदि सब सत्यधर्म की प्रशंसा करते हैं आप उस सत्यधर्मको कहिये और सत्यका लक्षण और स्वरूप क्या है और कैसे प्राप्त होता है और सत्य को कैसे करके क्या होजाता है सो भी कृपा करके मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि चारो वर्ण के धर्मों का संकर अर्थात् मिलावट प्रशंसा के योग्य नहीं होता है परन्तु सब वर्णों में सत्यही अपने स्वरूपको कभी नहीं बदलता है सत्पुरुषों में भी सत्यही धर्म सनातन गिनाजाता है इससे सत्यही नमस्कार के योग्य परमगतिरूप है सत्यही धर्म तप योग और सनातन ब्रह्म है और सब सत्य ही में वर्तमान है इससे सत्य ही उत्तम युग है इस स्थान पर सत्यके ठीक २ आचारों को लक्षण समेत क्रमपूर्वक कहता हूं और जिसप्रकार से सत्य की प्राप्ति होती है उसको भी सुनो हे भरतवंशिन् ! सब लोकों में सत्य तेरह प्रकार का है अर्थात् सत्य, समता, दम, अमत्सरता, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूयता, त्याग, ध्यान, श्रेष्ठता, धैर्यता, दया, अहिंसा यह तेरह सत्यके स्वरूप हैं और इन सत्य आदि शब्द के अर्थों को सुनो कि सत्य अविनाशी प्राचीन

रूपान्तररहित है और सब धर्मों से अविरुद्ध होकर योग के द्वारा प्राप्त होता है इसीप्रकार इच्छा द्वेष आदि काम क्रोध को नाश करके प्रिय अप्रिय शत्रु आदि में जो समदृष्टि है उसको समता कहते हैं और सिवाय आत्मा के किसी दूसरे की इच्छा न करना गम्भीरता, धैर्यता, अभयता, रोगशमन यह दम के रूप हैं और ज्ञान से प्राप्त होता है और दान धर्म में जो शान्तचित्त है उसको अमत्सरता कहते हैं वह अमत्सरता सदैव सत्य में वर्तमान होने से प्राप्त होती है जो साधु सहने असहने की प्रिय अप्रियता को क्षमा करता है वह सत्यवक्ता होकर प्रतिष्ठाको पाता है जो बुद्धिमान् बड़े कल्याण को करता है और अप्रसन्न कभी नहीं होता सदैव शान्तता से बोलनेवाला और उदार है उसको धर्म से लज्जा प्राप्त होती है जो धर्म अर्थ के लिये और लोकसंग्रह के लिये क्षमा करता है वह तितिक्षा और क्षान्ति कही जाती है और धैर्य से प्राप्त होती है जो स्नेह और विषयों का त्याग है उसी रागद्वेषरहित पुरुषका त्याग कहाता है जो देहाभिमान और स्नेह से रहित पुरुष बड़ी युक्ति से कर्म को करता है वही जीवों की श्रेष्ठता है, सुख दुःख में रूपान्तर को नहीं पाना यही धृति कहाती है ऐश्वर्य का चाहनेवाला ज्ञानी उसका सदैव सेवन करे और क्षमावान् सत्यवक्ता पुरुषको तो सदैव प्राप्त करनी उचित है राग द्वेष और क्रोध से रहित पण्डित धृति को प्राप्त करता है मन वाणी कर्म से किसी जीवपर शत्रुता न करना और दानपूर्वक कृपा करना यह सत्पुरुषों का सनातनधर्म है, हे राजन्! यह तेरह स्वरूपवाले पृथक् २ गुण एक सत्य ही का लक्षण रखनेवाले हैं वह यहां सत्य ही का सेवन करके वृद्धि को पाते हैं सत्य का अन्त अकथनीय है इस कारण वेदपाठी ब्राह्मण, देवता, पितरों समेत सत्य ही की प्रशंसा करते हैं सत्यके समान धर्म नहीं और मिथ्या के समान पाप नहीं है सत्य धर्म की श्रुति है इससे सत्यको गुप्त न करे सत्यके दान और दक्षिणावाले यज्ञों को और त्रेता अग्निहोत्रवाले वेदों को और जो अन्य धर्म के निश्चय हैं उन सबको प्राप्त करता है हज़ार अश्वमेध एक ओर और दूसरी ओर एक सत्य को रक्खे तो उन हज़ार अश्वमेधों से सत्यही अधिक होता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

तैंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! जिसकारणसे कि क्रोध, काम, शोक, विधित्सा,

परास्तुत्व, लोभ, मत्सरता, ईर्षा, निन्दा, असूया, कृपा, भय इत्यादि उत्पन्न होते हैं उसको मूलसमेत मुझसे कहिये भीष्मजी बोले हे महाराज, युधिष्ठिर! जीवों के जो महापराक्रमी यह तेरह शत्रु कहे गये वह सब इस संसार में चारो ओर से मनुष्यों की उपासना करते हैं और असावधान मनुष्यों को पीड़ा देते हैं और मनुष्यों को अचेत देखते ही भेड़ियों के समान बड़े पराक्रम से मारते हैं तब उनसे दुःख और पाप जारी होता है इससे हे युधिष्ठिर! मनुष्य इनके उदय होने और स्थित होने और नाश होने को अच्छे प्रकार से जाने हे राजन्। इच्छा में जो क्रोध की उत्पत्ति है उसको मैं मूलसमेत प्रारम्भ से कहता हूं तुम चित्त लगाकर सुनो कि जब लोभ से क्रोध उत्पन्न होकर दूसरों के दोषों से महातीव्र होता है तब क्षमा के कारण ठहरा रहता है अर्थात् रुका रहता है उसी से दूर भी होजाता है—संकल्प से काम पैदा होता है और सेवन किये जाने से बड़ी वृद्धि को पाता है जब ज्ञानी संकल्प को त्यागता है तब उसका काम नाश होता है असूया क्रोध लोभ आदि यह सब मध्यवर्ती स्वरूप कहे जाते हैं वह सब जीवों पर दया करने और शास्त्र की आज्ञा से निवृत्त होते हैं यह असूया दूसरे में दोष लगाने से उत्पन्न होती है और बुद्धिमानों के तत्त्वज्ञान से दूर होती है और अज्ञान से उत्पन्न होनेवाला मोह पाप के प्रतिदिन करने से जारी होता है और ज्ञानियों में रहकर शीघ्र नाश होजाता है और भिन्न २ शास्त्रों के देखने से विधित्सा अर्थात् कर्म के प्रारम्भ की इच्छा उत्पन्न होती है उसका नाश तत्त्वज्ञान से होता है और प्रीति से शोक उत्पन्न होता है और उस देहधारी के वियोग से जब उसको निरर्थक देखता है तब उसका शीघ्र ही नाश होता है और परासुता अर्थात् दुष्टकर्म के आधीन होना क्रोध लोभ और अभ्यास से वर्तमान होती है वह सब जीवों पर दया और वैराग्य से निवृत्त होती है और सत्यता के त्यागने और शत्रुवों के सेवन से ईर्षा उत्पन्न होती है यह ईर्षा साधुवों की सेवा से नष्ट होती है और कुल ज्ञान और ऐश्वर्य से मद उत्पन्न होता है वह इन कुल आदि के अच्छे प्रकार जानने से शीघ्र दूर होजाता है इच्छा प्रसन्नता आदि से ईर्षा उत्पन्न होती है वह दूसरे जीवधारियों की बुद्धि से निवृत्त होती है और भ्रान्ति के कारण धर्मरहित पुरुषों के जो अस्वीकृत और शत्रुतासम्बन्धी वचन हैं उनसे निन्दा उत्पन्न होती है वह संसार को देखकर अर्थात् जीवमात्र की मुख्यता को जानकर शान्त होजाती है जो पुरुष अपने विरोध करनेवाले

प्रबल शत्रु को बदला देने में समर्थ नहीं होता उसकी अत्यन्त निन्दा होती है वह दया से निवृत्त होती है और सदैव दुःखों को देखकर कृपा उत्पन्न होती है वह धर्म की निष्ठाके जानने से शान्त होजाती है और सदैव जीवों के अज्ञान से लोभ दृष्टि आता है वह लोभ भोगों की अनियतता को देखने और जानने से दूर होता है इन तेरह दोषोंको अन्तःकरणकी शान्तता से विजय करना कहा है यह तेरह धृतराष्ट्र के पुत्रों में थे सो तुझ सत्यता के चाहनेवाले ने वृद्धों की सेवा से उनको विजय किया ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चौंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशिन्, पितामह ! मैं सदैव सत्पुरुषों के दर्शनों से दया को अच्छे प्रकार से जानता हूं परन्तु निर्दय लोगों को और उनके कर्मों को नहीं जानता हूं जैसे कांटे, कुवें, अग्नि को पुरुष त्याग करते हैं उसी प्रकार निर्दयकर्मी मनुष्यों को लोग त्याग करते हैं इससे निर्दय मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों का नाश कर्ता है इस कारण हे पितामह ! आप उसके धर्म निश्चय को कहिये, भीष्मजी बोले कि जिसके कर्म की प्रीति और करने की इच्छा निन्दित होती है वह ईश्वर का ठगा हुआ अपने को पुकारता है जो ऐसा कर्म करता है वही यह जानता है, दान देकर अपनी श्लाघा करनेवाला, समतारहित, नीचकर्मी, स्नेह दिखाकर छलनेवाला और भागोंका विभाग अच्छे प्रकार से न करनेवाला, अहंकारी, कर्मफल चाहनेवाला, काक के समान छलदृष्टि रखनेवाला, सब पर सन्देहयुक्त, कृपण, अपनी जातिवालों की प्रशंसा करनेवाला, आश्रमों का सदैव शत्रु और वर्णसंकर करनेवाला, हिंसायुक्त, गुण अवगुण में विवेक न रखनेवाला, बहुत अस्तव्यस्त वचन बोलनेवाला, असाहसी, महालोभी, निर्दयी मनुष्य धर्म के अभ्यासी गुणवानों को पापी जानता है और अपनी दुश्शीलता से किसी पर विश्वास नहीं करके गुप्तदोषवाले का दोष प्रकट करनेवाला, दोषों के समान होने पर भी अपनी आजीविका के निमित्त नष्ट करके उपकार करनेवालेको ठगा हुआ शत्रु मानता है और समयपर उपकार करनेवाले के लिये धन देकर दुःखी होता है, भक्ष्य, पेय आदि जो अर द भोजन हैं उनको जो पुरुष सबके देखते हुये भोजन करता है वह निर्दयी कह जाता है, जो पुरुष प्रथम ब्राह्मणों को देकर अपने मित्रों समेत भोजन

करता है वह मरकर स्वर्ग को पाता है और इस लोक में भी बड़े सुख को भोगता है हे राजन् ! यह निर्दयी मनुष्यों का वर्णन तुझसे कहा यह ज्ञानी पुरुषों को सदैव त्यागने के योग्य है ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पैंतीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जो पुरुष चोरों के धन से रहित यज्ञ करनेवाला सब वेदान्त का ज्ञाता आचार्य और पितरों के कार्य के निमित्त वेदपाठ के लिये भी उद्योग करनेवाला है वह धर्मभिक्षुक ब्राह्मण साधु कहाता है इन निर्धनों को धनदान और विद्यादान देना योग्य है और अन्य ब्राह्मणों में भी दक्षिणा दान देना योग्य है वेदी से बाहर कच्चा अन्न भिन्न ब्राह्मणों को भी देना योग्य है राजा सब रत्नों को जैसे उचित है वैसेही दान करे ब्राह्मण, वेद, बहुत दक्षिणा वाले यज्ञ यह सब सदैव परस्पर ऐश्वर्य और आचारवाले अपने गुण से विजय करते हैं जिसके पास बालबच्चों के पोषण के निमित्त तीन वर्षतक के लिये अन्न वर्तमान है चाहे इससे अधिक भी हो वह यज्ञ में अमृतपान करने के योग्य है जो यज्ञ करनेवालेको यज्ञका एकभाग स्त्री आदि के कारण रुकजाय तब धर्मिष्ठ राजा उस ब्राह्मण के धन को यज्ञ के निमित्त लेले जो वैश्य यज्ञ से रहित अमृत का भोजन करनेवाला नहीं है और बहुत से पशुओं को रखता है उसके कुटुम्ब से यज्ञ के लिये उसके धन को लेले परन्तु शूद्र के घर से इच्छापूर्वक कभी कुछ न ले क्योंकि यज्ञों में शूद्रका धन नहीं ग्रहण किया गया है जो अग्निहोत्र का न करनेवाला सौ गौवों का रखनेवाला है अथवा यज्ञोंका न करनेवाला हज़ार गौवोंका रखनेवाला है राजा उन दोनों के भी कुटुम्ब से विना विचारे धन लेसक्ता है राजा सदैव दान न करनेवालों से प्रसिद्ध करके धनको ले ऐसे कर्म करनेवाले राजा के धर्म में न्यूनता नहीं होती है इसीप्रकार यह भी जानो कि तीन दिन व्रत करनेवाले को नीचकर्मी पुरुष के घर से भी एक दिन का भोजन हरना चाहिये जिसका कि शेष दूसरे दिन को न बचे, पूछनेवाले या न पूछनेवाले ब्राह्मणसे राजा को यह बात कहना योग्य है कि हे ब्राह्मण ! तू खेत, बाग़, खांर्यान या जहां से मिले वहांसे लेले, धर्मज्ञ राजा धर्म के द्वारा उसको दण्ड न दे राजाकी अज्ञानता से ब्राह्मण भूखा प्यासा कष्ट सहता है अर्थात् ब्राह्मणके निराहार रहनेमें राजाहीको दोष है शास्त्र और स्वभावको अच्छेप्रकारसे जानकर इसकी जीविका

के हेतु को विचार करे और उसकी चारों ओरसे ऐसी रक्षा करे जैसे पिता पुत्रकी रक्षा करता है, जो वनपशु आदि यज्ञको न करे तो प्रतिवर्ष नियमसे वैश्वानरीय यज्ञ को करे क्योंकि अनुकल्प नाम धर्म उत्तम होता है फिर केवल धर्मवादी आपत्तियों में मरण से भयभीत होकर विश्वेदेवा, साध्यगण, ब्राह्मण और महर्षि लोगों करके गौणधर्मी कियाजाता है परन्तु प्रथम कल्प के करने को समर्थ जो पुरुष अनुकल्प धर्म से कर्म करता है उस निर्बुद्धि को परलोक का कोई फल प्राप्त नहीं होता, वेद का ज्ञाता ब्राह्मण राजा से यह बात न कहै कि मैं ब्राह्मण हूं क्योंकि धन और राजबल से ब्राह्मण का निज पराक्रम बहुत बड़ा है इसी कारण से ब्रह्मवादी ब्राह्मणों का तेज राजा को सदैव बड़ी कठिनता से सहनेके योग्य है इस हेतुसे कि ब्राह्मण को कर्ता शास्ता विधाता देवता लोग कहते हैं जो ब्राह्मण के सम्मुख अकल्याणकारी वचन कभी न कहे और सूखे वचनों को जिह्वा से भी नहीं उच्चारण करे वह क्षत्रिय अपने भुजबल से आपत्तिसे तरता है, वैश्य शूद्र धन के द्वारा और ब्राह्मण हवन मन्त्रादि के पराक्रम से आपत्ति को तरता है, कन्या, तरुण स्त्री, मन्त्र का न जाननेवाला, मूर्ख, असंस्कृत अग्नि में आहुति का डालनेवाला यह सब होम करनेवाले यजमान समेत नरकगामी होते हैं इसकारण वेदोक्त बुद्धि से अग्निस्थापन में कुशल वेद में पूर्ण ब्राह्मणों के द्वारा यज्ञ कराना योग्य है, श्रद्धावान् जितेन्द्रिय पुरुष जिन पवित्र कर्मों को करे उनमें विना दक्षिणावाले यज्ञों से पूजन नहीं करे विना दक्षिणावाला यज्ञ सन्तान, पशु और स्वर्ग का नाश करता है और इन्द्रियों समेत यश, कीर्ति, आयुका भी नाश करनेवाला है, जो कोई विना अग्निहोत्री ब्राह्मण रजस्वला स्त्री से सम्भोग करता है अथवा जिनका हवन वेदपाठी ब्राह्मण से रहित है वह सब पापकर्मी गिने जाते हैं, जिस ग्राम में एक ही कूप है उसमें वृषलीपति ब्राह्मण बारह वर्ष रहकर शूद्रकर्मी होजाता है और जो अविवाहिता स्त्री को अपनी शय्या पर बैठाता है यह सब वृद्ध क्षत्रिय वैश्य शूद्र को अपने से बड़ा मानकर तृणों पर शयन करने से जैसे पवित्र होते हैं उसीप्रकार यहां मेरे वचनों को सुनो कि जो ब्राह्मण नीचवर्ण के साथ मकान आसन आदि में विहार करनेवाला एक रात्रि में जितना पाप करता है उतने पापको तीन वर्ष व्रत करने से वह धोता है, हे राजन् ! स्त्रियों में विवाहके समय गुरुके और अपने जीवन के लिये निन्दायुक्त वचन नहीं मारता है, श्रद्धावान् पुरुष को शुभ विद्या

नीच से भी प्राप्त करनी योग्य है और सुवर्ण को अशुद्ध मनुष्य से भी विना विचारे लेले और स्त्रीरत्न को दोषी कुल से भी लेलेना उचित है और विष के द्वारा भी अमृत को पिये स्त्रीरत्न धर्म से ऐसे निर्दोष हैं जैसे जल, वर्णों के सं कर होनेपर वैश्य भी गौ ब्राह्मणके मनोरथों की सिद्धि और अपनी रक्षा के निमित्त शस्त्रोंको हाथमें ले मद्यपान, ब्रह्महत्या, गुरुशय्या पर सोना यह तीनों जब कि जानकर किये होयँ तो इनकी शुद्धि किसी प्रायश्चित्त से नहीं होसक्ती, सुवर्ण चुराना वा ब्राह्मणका धन चुराना यह पातक हैं, मद्य पीना और अगम्या स्त्री में भोग करना, पतितों से स्नेह करना, ब्राह्मणी से भोग करना यह सब पाप शीघ्र ही पतित करते हैं, पतित के साथ एक वर्ष विचरनेसे पतित होता है परन्तु पतित को यज्ञ कराने पढ़ाने और विवाहआदि सम्बन्ध करने से शीघ्र ही पतित होता है साथ, सवारी, आसन, भोजन आदिके कारण शीघ्र पतित नहीं होता अर्थात् पतित के साथ एक वर्ष तक भोजन आदि करनेसे पतित होता है इनके सिवाय जो पाप हैं उनका प्रायश्चित्त होसक्ता है जब कि रीतिके अनुसार प्रायश्चित्त करके फिर किसी काल में पाप को न करे उन पतितों के मरने और दाहादि क्रिया न होनेपर भी उनका अन्न सुवर्णादि विना विचार के भी हा लेना योग्य है धार्मिक राजा धर्म से ऐसे मन्त्री और गुरुओं को भी त्याग करे, जो कि पतित होने से प्रायश्चित्तादि कर्मों के योग्य नहीं हैं उनके साथ बैठना न करे, अधर्म करनेवाला धर्म और तप से पापों को दूर करता है चोर को चोर कहने से उतनाही पाप होता है और जो चोर नहीं है उसको चोर कहने से दूना पाप का भागी होता है पति के सिवाय अन्य से सम्भोग चाहनेवाली कन्या ब्रह्महत्या के तीसरे भाग को पाती है, इस लोकमें जो पुरुष ब्राह्मणों की निन्दा करके बाण आदि से घायल करे वह उस दुष्टा कन्या के शेष पाप को पाता है क्योंकि ऐसा कर्म करने से वह पाप बहुत वृद्धि पाताहै सैकड़ों वर्ष तक प्रतिष्ठा को नहीं पाता है अर्थात् प्रेतयोनि से नहीं छूटता है और हज़ार वर्ष पर्यन्त नरक भोग करता है इस कारण ब्राह्मण की निन्दा नहीं करनी योग्य है और कभी उसको घायल न करना चाहिये ब्राह्मण के घायल होने से जितनी धूली उसके रुधिर से भीजे उतनेही वर्षतक वह नरक को भोगता है भ्रूणहत्या को करनेवाला युद्धभूमि में शस्त्रों से पवित्र होता है अथवा देदीप्यमान अग्नि में अपनी देह के होमने से पवित्र होता है मद्य पीनेवाला मनुष्य उष्णमद्य को

पीकर पाप से छूटता है अथवा उस उष्ण मद्यपान से मृत्यु पाकर पवित्र होता है और वेदपाठियों के लोकों को पाता है, दुष्टात्मा और पापात्मा पुरुष गुरुशय्या पर वर्तमान होकर लोहे की स्त्री को बग़ल में देकर सोने से मृत्युपाकर पवित्र होता है अथवा अपनी शिश्नेन्द्रिय को वृषणों समेत अपने हाथ में लेकर उत्तर दिशा की ओर चलाजाय अथवा ब्राह्मण के निमित्त प्राणों को त्याग करने से भी पवित्र होता है अथवा अश्वमेध, गोमेध और अग्निष्टोमयज्ञों के द्वारा अच्छे प्रकार अमृत को पीकर इस लोक परलोक दोनों में पूजित होता है इसी प्रकार ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य सदैव अपने को प्रसिद्ध करता हुआ बारह वर्ष तक कपाली ब्रह्मचारी मुनि होकर फिरे अथवा इसीप्रकार से तप करे तो ब्रह्महत्या के दोष से निवृत्त होता है इसीप्रकार गर्भवती स्त्री को गिरावे तो उसके मारने से ब्रह्महत्या से दूना पाप होता है, मद्य पीनेवाला ब्राह्मण ब्रह्मचारी के समान भोजन शयन करता तीन वर्ष से अधिक तक अग्निष्टोमयज्ञ से ईश्वर का पूजन करे अथवा एक बैल और हज़ार गोदान करके पवित्रता को प्राप्त करे, वैश्य को मार कर दो वर्ष तक एक बैल और सौ गोदान करने से पवित्र होता है और शूद्र को मारकर एक वर्षतक एक बैल और सौ गोदान करने से पाप से छूटता है कुत्ते शूकर गधे को मारकर उक्त शूद्रव्रत को करे और बिल्ली, चाख, मेंढक, काक, सर्प, चूहे को मारकर भी शूद्रव्रत से निवृत्त होता है अब मैं दूसरे प्रायश्चित्तों को क्रमपूर्वक कहता हूं कि अज्ञानता से कीट आदि जीवों के मारने से जो छोटे २ पाप होते हैं वह सब पश्चात्ताप ही के करने से निवृत्त होते हैं गोहत्या के सिवाय प्रत्येक हत्या के पाप का प्रायश्चित्त एक वर्ष तक करे, वेदपाठी की स्त्री से भोग करने में तीन वर्ष और दूसरे अन्य की किसी स्त्री में कुकर्म करने से दो वर्ष का प्रायश्चित्त है अथवा चौथे काल में भोजन करनेवाला व्रतपूर्वक ब्रह्मचारी हो तीन दिन केवल जलपान करके स्थान और आसन से पृथक् होकर विहार करे तो पाप से निवृत्त होता है इसीप्रकार किसी का अपमान करनेवाला अथवा अग्नियों का दूषित करनेवाला वा विना कारण माता, पिता, गुरु को त्याग करता है वह धर्म के निश्चय के अनुसार पतित होता है, स्त्री को कुचालिनी होने से अधिकतर प्रबन्ध में रखकर केवल वस्त्र और भोजन देना योग्य है और दूसरे की स्त्री से सम्भोग करने में जो पुरुष का व्रत है वही इस स्त्री से भी करावे, जो स्त्री अपने ब्राह्मण पति को त्याग करके दूसरे नीच

पुरुष को प्राप्त करलेती है उसको राजा बड़े मैदानी मकान में कुत्तों से पीड़ित करवावे और उसके जार पति को भी लोहे की गर्मशय्या पर सुलवावे और काष्ठ लगावे जिससे कि वह कुकर्मी जलजाय यह पति त्यागनेवाली स्त्रियों का दण्ड कहा है वह दोषी कदाचित् एक वर्ष तक इस प्रायश्चित्त को न करे तो उसका दोष दूना होता है उसके साथ मिलनेवाली स्त्री नव वर्ष तक व्रत को करे और उसका पति मुनियों का व्रत धारण करके पृथ्वी पर घूमता हुआ पांच वर्ष तक भिक्षाको मांगे, बड़े भाई से पहिले अपना विवाह करनेवाला छोटा भाई और जो स्त्री कि छोटे भाई को विवाही जाय और जिनका कि अधर्म से विवाह हो वह सब पतित कहेजाते हैं यह सब उस व्रतको करें जिसको कि वीरका मारनेवाला करता है और पाप दूर करने के लिये एक मास तक चान्द्रायण वा कृच्छ्र व्रत को करे बड़े भाई से पहिले विवाह करनेवाला छोटा भाई उस अपनी स्त्री और पुत्रवधू को सम्भोग से पहिलेही उस बड़े भाई के सुपुर्द करे जिसका कि विवाह नहीं हुआ है फिर बड़े भाई से आज्ञा लेकर विना विचारे उनको लेले इसप्रकार से वह दोनों भाई और स्त्री पाप से निवृत्त होते हैं, गौ के सिवाय दूसरे पशुवों की हिंसा में दोष नहीं होता है क्योंकि पुरुष को पशुवों का स्वामी और पोषण करनेवाला कहते हैं गोवध करनेवाला चर्मसमेत गौ की पूंछ को धारण करके मृत्तिका का पात्र हाथ में लिये सब लोगों से अपने पाप को कहता हुआ प्रतिदिन सात घरों से भिक्षा मांगकर भोजन करे तो बारह दिन में पवित्र होता है और पाप दूर होने के लिये एक वर्षतक इसी व्रत को करे इसप्रकार से प्रायश्चित्त करे अथवा धनवान् होकर दान करे, जो नास्तिकतारहित हैं उनको एक गोदान के भी देने से पाप से निवृत्ति होती है, कुत्ता, शूकर, मनुष्य, मुर्गा, गधा यह सब मांस और मूत्र विष्ठा के खाने से भी संसार के योग्य गिने जाते हैं, यज्ञ में अमृत का भोजन करनेवाला ब्राह्मण कदाचित् मद्य पीनेवाले की गन्धि को सूंघले तो तीन दिन उष्णजल और तीन दिन उष्णदूध और तीन दिन वायुभक्षण करके शुद्ध होता है यह सब सनातन प्रायश्चित्त कहे गये हैं परन्तु प्रायश्चित्त अज्ञानता से ही करने का होता है ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे पञ्चत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

छत्तीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि खड्ग युद्धमें प्रवीण नकुलने कथा समाप्त होनेपर शरशय्या

पर वर्तमान अपने पितामह से यह कहा कि हे पितामह ! इस लोक में धनुष नाम शस्त्र उत्तम है और मेरा खड्ग अत्यन्त तीव्रधार है तो धनुष के टूटजाने और घोड़ों के नष्ट होनेपर युद्ध में साधु लोगों की चारो ओर से रक्षा करना खड्ग से सम्भव नहीं है तब अकेला खड्गधारी वीर उन धनुष गदा शक्तिधारियों के पीड़ा करने को क्या समर्थ है यह मेरा सन्देह बड़ा चमत्कारी है कि सब युद्धों में कौन सा युद्ध उत्तम है और खड्ग कैसे किसने किस प्रयोजन के लिये उत्पन्न किया खड्ग के प्रथम आचार्य को कहिये यह बुद्धिमान् द्रोणाचार्य के शिष्य नकुल के प्रश्न को सुनकर भीष्मजीने उसकी बड़ी प्रशंसा करके उत्तर दिया कि हे माद्रीनन्दन! तुम अपने प्रश्नका उत्तर सुनो कि प्राचीनसमय में यह सब संसार दिव्य जलरूप स्थिरता समेत आकाश से रहित नाम चिह्न के विना धरातल पै वर्तमान अन्धकारयुक्त शब्द स्पर्श रहित अत्यन्त गम्भीररूप अपरम्पार था तब ब्रह्माजी ने पैदा होकर वायु, अग्नि,सूर्य, आकाश, स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी को और चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, वर्ष, ऋतु, मास,पक्ष, तिथि,लव, क्षण, काल इत्यादि को उत्पन्न किया तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजीने लोक में वर्तमान देह को धारण करके उत्तम २ पुत्रों को उत्पन्न किया मरीचि, अत्रि,पुलस्ति,पुलह,क्रतु,वशिष्ठ, अंगिरा इन सप्तऋषियों को और समर्थ ईश्वर शिवजीको प्रकट किया और इसी प्रकार प्राचेतस गोत्रीय दक्ष ने भी साठ कन्याओं को उत्पन्न किया उन सब ऋषियों ने सन्तानके निमित्त ग्रहण किया उनसे सब संसारी जीव,देवता,पितृगण,गन्धर्व, अप्सरा और अनेक प्रकार के राक्षस, पशु, पक्षी, मछली, बन्दर, रीछ आदि महासर्प और जल थल के पक्षियों का समूह और अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज्ज आदि चारो प्रकार की सृष्टि स्थावर जंगम संसार उत्पन्न हुआ सबके उत्पन्न करने के पीछे ब्रह्माजी ने सनातन वेदोक्त धर्म को जारी किया उस धर्म में देवता, आचार्य,पुरोहित, द्वादश सूर्य, अष्टवसु, एकादश रुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, भृगु, अत्रि, अंगिरा, सिद्ध काश्यपगोत्रीय तपोधन वशिष्ठ, गौतम, अगस्त्य, नारद, पर्वतऋषि, बालखिल्यऋषि, प्रभास, सिकित नाम ऋषि, घृतिपा, सोमपा, वायव्य, वैश्वानर, मरीचिपऋषि; अकृष्टहंस, अग्नि से उत्पन्न होनेवाले बानप्रस्थ, प्रश्नीनाम ऋषि यह सब ब्रह्माजी के उपदेश में वर्तमान हुये फिर क्रोध लोभ से संयुक्त दानवेन्द्रों ने ब्रह्माजी की उस आज्ञा को उल्लंघन करके धर्म का त्याग और नाना हानि की हिरण्यकशिपु, हिर-

ण्याक्ष, विरोचन, शम्बर, विप्रचित्ति, प्रह्लाद, नमुचि, बलि यह सब और अन्य दैत्य दानवों के गण धर्ममर्यादा को त्याग करके क्रीड़ा करनेवाले हुये और जो अधर्म का निश्चय करनेवाले थे वह सब एकही जाति में थे जैसे कि देवता और हम सब लोग इसप्रकार के धर्म में नियत होकर देवता और ऋषियों से ईर्षा करनेलगे और जीवों पर दया और प्रियबातों को नहीं किया तीनों युक्तियों को बड़ी बुद्धिमानी के साथ जारी करके दण्ड से ही प्रजाओं को आधीन किया तब असुरों के मुख्य लोगों की उनसे एकता नहीं हुई तदनन्तर ब्रह्मऋषियों के सम्मुख वर्तमान ब्रह्माजी हिमालय के उस शिखर में जहां कमलों के समान नक्षत्र चमकते थे और सौ योजन के विस्तार में मणिरत्नों के समूहों से अलंकृत था उसपर संसारके प्रयोजन की सिद्धि के लिये वर्तमान हुये वहां हजार वर्ष के पीछे कल्प में कही हुई यथार्थ विधि के अनुसार अच्छे प्रकार से ठीक२ करीहुई यज्ञ की उस रचनाको ब्रह्माजी ने किया जो विधि के अनुसार यज्ञ करनेवाले यज्ञ में प्रवीण समिध् और देदीप्यमान अग्नियों से संयुक्त प्रभायुक्त सुवर्ण के यज्ञपात्रों से शोभित अच्छे२ देवगणों से व्याप्त यज्ञमण्डलवाला और ब्रह्मऋषि सदस्यों से शोभायमान होती है वहां मैंने ऋषियों के मुख से बड़े भयकारी वृत्तान्त को सुना कि चन्द्रमा और नक्षत्रों के उदय से आकाश के समान निर्मल अग्नि के सदृश फैला हुआ नीलकमल के समान रूप तीक्ष्ण दाढ़ सूक्ष्म उदर ऊँचाई में कठिनता से प्राप्त योग्य महापराक्रमी जिसके प्रकट होतेही सब पर्वतों समेत पृथ्वी प्रबल तरंगवाले समुद्रसंयुक्त कम्पायमान हुई और महाउल्कापात से वृक्षों की शाखा टूट२ गिरनेलगीं और चारो दिशाओं से अशुभ वायु चलनेलगी और सब जीव भय के मारे पीड्यमान हुये तब इस महाउत्पात को देखकर ब्रह्माजी ने महर्षि, देवता, गन्धर्व आदि से कहा कि यह महातेज मेरेही ध्यान करने से उत्पन्न हुआ है तदनन्तर वह तेज लोक की रक्षा और असुरों के मारने को अपनें तेजरूप को त्यागकर खड्गरूप होगया जिसकी निर्मल तीव्रधार थी और काल मृत्यु के समान ऊंचा था तब ब्रह्माजी ने उस अधर्म के हटानेवाले तेजरूप खड्ग को वृषध्वज नीलकण्ठ जी को दिया और रुद्रजी ने उस खड्ग को पाकर अपना ऐसा दूसरा रूप धारण किया जो चार भुजायुक्त पृथ्वी पर बैठेहुये भी मस्तक से सूर्य को स्पर्श करनेवाला बड़ी दृष्टि महालिंग मुख से अग्नि को निकालते अनेक रक्त नील

पाण्डुवर्णों को बदलते स्वर्णमय उत्तम चमकदार कृष्णमृगचर्म धारण किये सूर्य के समान एक नेत्र को ललाट में धारण करके अत्यन्त पिंगल वर्ण दो नेत्रों से शोभायमान था तदनन्तर महापराक्रमी त्रिशूल हाथ में लिये भगदेवता के नेत्र फोड़नेवाले देवदेव महादेवजी कालाग्निरूप खड्ग को लिये देदीप्यमान ढाल को उठाकर नाना प्रकार के मार्गों में घूमे और युद्ध की इच्छा से खड्ग को आकाश में घुमाते महाशब्द से अट्टट्टहास करते हुये महाभयकारी रुद्ररूप हुये तब उस रुद्ररूप शिवजी को देखकर सब दैत्य दानव युद्ध के लिये उनके सम्मुख गये और उनपर पाषाण और उल्कापात किये और महातीव्र शस्त्रों की वर्षा की तदनन्तर इन महाउग्रतेजस्वी रुद्र के स्वरूप को देखकर वह दैत्यों की सेना कम्पायमान होकर अचेत हुई और सबों ने अकेले रुद्रजी को हजारों की समान समझा क्योंकि उन महाशत्रुवों में छेदते, भेदन करते, पीड़ित करते, काटते, फाड़ते अकेले खड्ग लिये ऐसे घूमे जैसे कि सूखे वन में दावानल अग्नि सबको भस्म करती घूमती है उनके तीव्र खड्ग से दैत्यों के अंग कट कट कर गिरे और दानव महापीड़ित होकर पराजय हुये और परस्पर में पुकारते हुये इधर उधर को चलेगये कुछ तो पृथ्वी में कुछ पहाड़ों में कुछ आकाश और जल में प्रवेश करगये और पृथ्वी पर उनके मांस रुधिर की कीच होगई और पृथ्वी उनके बोझ से हलकी होगई इन दैत्य दानवों को मार रुद्रजी ने अपने इस उग्ररूप को त्याग फिर कल्याणरूप को धारण किया तदनन्तर सब महर्षि और देवगणों ने विजयी शब्दों से शिवजी की स्तुति की फिर प्रसन्न होकर शिवजी ने सबकी रक्षा के निमित्त विष्णुजी को दिया विष्णु ने मरीचि को और मरीचि ने महर्षियों को, महर्षियों ने इन्द्र को और इन्द्र ने लोकपालों को, लोकपालों ने सूर्य के पुत्र मनुजी को देकर कहा कि तुम मनुष्यों के ईश्वर हो इससे खड्ग की जन्मभूमि संसार की रक्षा करो जोकि देह और चित्त के कारण धर्मरूप मर्यादा को उल्लंघन करनेवाले दण्ड को विभाग करके धर्म से रक्षा के योग्य हैं स्वतन्त्रता से कठोरवचन सुनाना और ज़ुर्माना लेना देह को अंगभंग करना वा मारना यह छोटे कारणों से नहीं होता है इससे यह कठोरवचन आदि का कहना खड्ग के ही समान है यह उपदेश करो खड्ग के ऐसे प्रमाणवाले रूपों को बेमर्यादापने से रक्षा करो तदनन्तर मनुजी ने अपने पुत्र क्षुपको उत्पन्न करके प्रजाओं की रक्षा के निमित्त वह खड्ग दिया क्षुपने

इक्ष्वाकु को दिया इक्ष्वाकु ने पुरूरवा को, पुरूरवा ने आयु को, आयु से नहुष ने पाया, नहुष ने ययाति को, ययाति ने पुर को, पुर से अमूतरयसने पाया, उससे राजा भूमिशय को, उससे भरत ने, उससे ऐलविल को, ऐलविल से धुन्धमार ने, धुन्धमार से काम्बोज ने, उससे मुचुकुन्द ने, मुचुकुन्द से मरुत ने, मरुत से रैवत ने, रैवत से युवनाश्व ने, युवनाश्व से रघु ने, उससे इक्ष्वाकुवंशी हरिणाश्व ने, हरिणाश्व से शौनक ने, शौनकसे औशीनर ने, उससे यादव भोज ने, यदुवंशियों से शिबि ने, शिबि से प्रतर्दन ने, प्रतर्दन से अष्टक ने, अष्टक से पृषदश्वने, पृषदश्व से भरद्वाजऋषि ने, उनसे द्रोणाचार्य ने, उनसे कृपाचार्य ने, कृपाचार्य से भाइयों समेत तुमने पाया उस खड्ग का नक्षत्र कृत्तिका है और देवता अग्नि है रोहिणी गोत्रयुक्त रुद्रजी उसके बड़े गुरु हैं अब खड्ग के आठ गुप्त नामों को मुझसे सुनो उन नामों के उच्चारण करनेसे सदैव विजय को पाता है (श्लोक) असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालस्तथैव च ॥ हे माद्रीनन्दन ! यह खड्ग सब शस्त्रों में उत्तम है यह महेश्वरजी ने जारी किया इसके निश्चय को पुराण कहते हैं तदनन्तर शत्रुहन्ता राजा पृथु ने अवलीन धनुष को धारण किया उसीने पृथ्वी को दुहकर बहुत प्रकार की वनस्पति और खेती उत्पन्न की उस वेनपुत्र पृथु ने धर्म से पूर्व के समान चारो ओर से इस पृथ्वी की रक्षा की यह वह आर्षकथा है कि जो युद्धविद्या में पण्डित हैं वह सदैव इसका पूजन करते हैं और सबको करना योग्य है हे नकुल ! यह खड्ग की उत्पत्ति और उसकी प्राप्ति प्रथम कल्प है इसको मैंने ब्यौरे समेत ठीक २ तुमसे कहा इस खड्ग के साधन के सुनने से पुरुष कीर्ति को पाता है और अन्त में स्वर्ग के अनन्त सुखों को भोगता है ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे षट्त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सैंतीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी के इसप्रकार कहने से मौन युधिष्ठिर ने घर में जाकर विदुरजी समेत अपने भाइयों से यह पूछा कि धर्म, अर्थ, काम में लोभवृत्ति वर्तमान है उन तीनों में उत्तम, मध्यम, निकृष्ट कौन २ हैं त्रिवर्ग अर्थात् काम, क्रोध, लोभ तीनों की विजय के निमित्त किसमें आत्मा को लगाना चाहिये आप यथार्थता से कहने के योग्य हो तब धर्मशास्त्र के ज्ञाता विदुरजी ने प्रथम यह वचन कहा कि शास्त्र का बहुत पढ़ना, तप, दान, श्रद्धा, यज्ञ,

क्रिया, क्षमा, निष्कपटता, दया, सत्य, इन्द्रियों का निग्रह यह दश आत्मा की सम्पत्ति हैं तू इनकोही प्राप्त कर कभी चित्त को चलायमान मत करो धर्म अर्थ का भी यही मूल है और मेरा भी यही आश्रय है ऋषि लोग धर्म से पार होते हैं सब लोक भी धर्म में ही नियत हैं देवता लोग भी धर्म से बढ़े और अर्थ भी धर्म में ही नियत है इससे हे राजन् ! ज्ञानी लोग कहते हैं कि धर्म उत्तम गुण और अर्थ मध्यम और काम निकृष्ट गुण कहाजाता है इस कारण सावधान आत्मा और धर्मप्रधान पुरुष ऐश्वर्यवान् होना चाहिये और जैसे कि अपनी आत्मा में व्यवहार करे उसीप्रकार सब जीवों में भी बर्ताव करना चाहिये वैशम्पायन बोले कि विदुरजी के पीछे अर्थशास्त्र के ज्ञाता अर्जुन बोले कि हे राजन् ! यह कर्मभूमि है यहां उन वार्ताओं की ही प्रशंसा कीजाती है यथा खेती व्यापार गौ की रक्षा नानाप्रकार की शिल्पविद्या इत्यादि सब कर्मों की मर्यादा अर्थ है यह वेद की भी श्रुति है कि विना अर्थ के धर्म और काम नहीं वर्तमान होते हैं अर्थवान् पुरुष विषयों के द्वारा उत्तमधर्म के आराधन करने और काम के भोगने को समर्थ होता है यह अशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषों को अगम है यह भी श्रुति है कि धर्म और काम यह दोनों अर्थ के अंग हैं यह दोनों अर्थ की सिद्धि से ही सिद्ध होते हैं उत्तमजाति के लोग उस अर्थवान् पुरुष की सदैव ऐसे उपासना करते हैं जैसे कि सब जीव ब्राह्मण की सेवा करते हैं जटा और मृगचर्म धारण करनेवाले सावधानचित्त निष्पाप जितेन्द्रिय मुण्ड निस्तन्तु ब्रह्मचारी भी अर्थकी इच्छा से पृथक् २ निवास करते हैं काषायवस्त्र और दाढ़ी मूंछ रखनवाले लज्जावान् पण्डित शान्त सब परिग्रहों से रहित भी होकर कोई अर्थ की इच्छा रखते हैं कोई स्वर्ग का मनोरथ करते हैं और कुलीन शास्त्रज्ञ लोग अपने२ धर्म में प्रवृत्त हैं कोई आस्तिक कोई नास्तिक कोई पूरे जितेन्द्रिय हैं अर्थशास्त्रका न जानना अन्धकाररूप है और उसमें विज्ञता होना प्रकाशरूप है जो पुरुष भोगों से दास आदि को और दण्डों से शत्रुवों को विजय करता है वही अर्थवान् है यह मेरा मत है तुम इन दोनों नकुल और सहदेवको वचन वाक्य और क़रारसे जानो वैशम्पायन बोले कि अर्जुन के पीछे धर्म अर्थ में प्रवीण माद्री के पुत्र नकुल, सहदेव ने उत्तम वाणी से कहा कि बैठता, सोता, घूमता और नियत मनुष्य भी नानाप्रकार की युक्तियों से धनके समूह को दृढ़ता से संचय करे इस दुष्प्राप्य और महाप्यारे धन के प्राप्त होने पर इस संसार में निस्सन्देह सम्पूर्ण मनोरथों को

प्रत्यक्ष होकर प्राप्त करताहै जो अर्थ धर्म से मिलाहै अथवा धर्मसे अर्थ मिला है वह दोनों आपको निश्चय करके अमृत के समानहैं इसकारण यह दोनों संसार में हमको अभीष्ट हैं अर्थ से रहित पुरुष को काम की सिद्धि और धर्म से रहित पुरुष को अर्थ की सिद्धि नहीं होसक्ती जो पुरुष धर्म, अर्थसे रहितहैं उनसे संसार भय करता है इस कारण धर्मरूप दानी लोगों से और जितेंद्रिय पुरुषों से वह मनोरथ सिद्ध होने के योग्य है हमारे वचनों में विश्वास करनेवाले जीवों में सबही कल्पना किया जाता है प्रथम तो धर्म को अच्छे प्रकार से करे तदनन्तर धर्मसंयुक्त अर्थ को प्राप्त करे फिर कामको सिद्ध करे वह फल अर्थवान् ही का है वैशम्पायन बोले कि अश्विनीकुमार के पुत्र यह वचन कहकर चुप हुये तब भीमसेन ने यह वचन कहा कि काम से रहित पुरुष अर्थ, धर्म और इच्छा इन तीनों को नहीं चाहताहै इस कारण कामही प्रधान है कामसे संयुक्त ऋषिलोग फल मूल भोजन करे शान्तचित्त वायुभक्षी हो अच्छे नियमवान् तप में प्रवृत्त होते हैं बहुतेरे वेद उपवेदों में संयुक्त जप में नियत श्रद्धा, यज्ञ, क्रिया, तप, दान और दान लेने में प्रवृत्त हैं और कोई व्यापारी, कृषिकर्मी, गोपाल, कारव, शिल्पी, देवकर्म करनेवाले यह सब कामहीसे कर्मों में प्रवृत्तहैं और कितने ही कामना करनेवाले पुरुष समुद्र में भी प्रवेश करते हैं इससे कामही नानारूप धारण करनेवाला है और सब काम से ही विस्तार पानेवाला है कामात्मा के सिवाय कोई जीव न था न है न होगा हे महाराज! यह प्रत्यक्षहै कि इसमें धर्म अर्थ अच्छे प्रकार से वर्तमान है जैसे कि दही का तत्त्व मक्खन है उसीप्रकार अर्थ धर्म का सिद्धान्त काम है खल से तेल उत्तम है और मीठे से घृत उत्तमहै काष्ठ से फूल फल श्रेष्ठ हैं इसीप्रकार धर्म अर्थ में काम सर्वोत्तम समझा जाताहै जिसप्रकार फूल से मधु रस निकलता है उसीप्रकार इन धर्म अर्थों से काम उत्तम गिनाजाता है काम ही धर्म अर्थ का उत्पत्तिस्थान है और काम ही उन का रूप है विना काम केवल अर्थसे ही स्वादिष्ठ भोजन नहीं होता और विना काम के ब्राह्मणों को भी कोई दान नहीं करताहै और काम विना नाना प्रकार की लोकचेष्टा भी नहीं देखने में आती इसी कारण यह काम ही त्रिवर्ग मुख्य में जानाजाता है हे राजन्! तुम काम को पाकर सुन्दर वस्त्र और भूषणों से अलंकृत मदसे मतवाले होकर प्यारी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करोगे तब जानोगे कि कामही सब में उत्तम है यह मेरा सिद्धान्त है इससे धर्म, अर्थ, काम तीनों सदैव

सेवन के योग्य हैं और जो पुरुष एकही को चाहता है वह निकृष्ट है और जो त्रिवर्गमें सब ओर से प्रीति करनेवालाहै वह सब में उत्तम है यह कहकर अनेक गुणसम्पन्न महावीर भीमसेन भी चुप होगये तब महाप्राज्ञ धर्मधुरन्धर धर्मराज युधिष्ठिर क्षणमात्र इनके वचनों को विचारकर यह वचन बोले कि निस्सन्देह आप सबलोग धर्मशास्त्रके ज्ञाता और प्रमाण जाननेवाले हो और मुझ इच्छावान् के लिये जो वचन कहा वह मैंने सुना हे समानबुद्धिवाले, भाइयो ! मेरे इस वचन को सुनो कि जो मनुष्य निश्चयकरके पाप, पुण्य, अर्थ, धर्म और काम में प्रीति करनेवाला नहीं है वह निर्दोषी सुवर्ण मृत्तिका को समान जाननेवाला पुरुष दुःख सुख और अर्थसिद्धि से निवृत्त होता है जन्म मरणसे संयुक्त वृद्धावस्था को प्राप्त विपरीत दशा में पड़े जीव उन गुरुओं के समझायेहुये फिर मोक्षकी ही प्रशंसा करते हैं जिनको कि हम नहीं जानते हैं संसार में प्रीतिमान् पुरुष को मुक्ति नहीं होती है यह भगवान् ब्रह्माजी का वाक्य है ज्ञानी पुरुष मोक्ष में ही चित्त को लगाये रहते हैं इस कारण प्रिय अप्रिय दोनों को न करे यह बात उत्तमहै कि मैं अपनी इच्छा के समान असावधान नहीं हूं जैसे मुझको सबोंने प्रवृत्त किया उसीप्रकार के करताहूं ईश्वर या प्रारब्ध सब जीवों को कर्मों में प्रवृत्त करता है वह ईश्वर या प्रारब्ध महाबलवान् है इसको तुम सब जानो न पाने के योग्य अर्थ को कर्म के द्वारा नहीं पासक्ताहै जो होनहार है वही होताहै, त्रिवर्गरहित पुरुष भी मोक्ष को पाता है इस कारण वह गुप्त ज्ञान मोक्ष के निमित्त है वैशम्पायन बोले कि इन चित्तरोचक उत्तम २ वचनों को सुनकर सबलोगों ने राजा युधिष्ठिर को बड़ी प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़े और उनके वचनों की प्रशंसाकी फिर प्रसन्नचित्त युधिष्ठिर ने भी अपने सब भाइयों की प्रशंसा की और भीष्मजी से जाकर फिर उत्तम धर्मों को पूछा ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अड़तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाज्ञानिन्, कुरुवंशियों के प्रीति बढ़ानेवाले, पितामह! मैं कुछ प्रश्न करता हूं उनके उत्तर आप कहने को योग्य हैं कि कैसेमनुष्य सौम्य होते हैं और कैसे लोगों से उत्तम प्रीति होती है और कौनसा पुरुष वर्तमान और भविष्यत् काल में वृद्धि करने को समर्थ है जहांपर मित्र होते हैं वहां धन की वृद्धिपूर्वक नातेदार बान्धव लोग वर्तमान नहीं होते यह मेरा मतहै सुनने-

वाले और हितकारी सुहृद् लोग दुर्लभ हैं हे धर्मभृतांवर ! इन सबका आप वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि मित्रता के योग्य और अयोग्य पुरुषों को सुनो कि लोभी, निर्दयी, अधर्मी, अकर्मी, शठ, नीच, पापचलन, सन्दिग्धचित्त, अनुद्योगी, दीर्घसूत्री, मिथ्यावादी, लोकनिन्दित, गुरु की स्त्री से सम्भोग करनेवाला, व्यसनी, माता पिता आदि का त्याग करनेवाला, दुरात्मा, निर्लज्ज, सबकी ओर पापदृष्टि से देखनेवाला, नास्तिक, वेदनिन्दक, भ्रान्तचित्त, कार्य में संलग्न, कामी, असत्यवादी, सबका शत्रु, अनाचारी, कठोर, निर्बुद्धि, ईर्षाकरनेवाला, पाप का निश्चय करनेवाला, दुस्स्वभाव, दुष्ट अन्तःकरण, छली, मित्रद्रोही, दूसरेके धनकी इच्छा करनेवाला, जो अपनी सामर्थ्य के समान दान देनवाले से अप्रसन्न होनेवाला, मित्र को धैर्यता से अलग करनेवाला, अकारण क्रोधी, अचेत, अकारण शत्रु, अकल्याणकारी, मित्रों का त्यागनेवाला, अपने स्वार्थ के लिये मित्रों के साथ बैठनेवाला, अज्ञानता से थोड़ी अनुपकारी अप्रिय बात से मित्रता से शत्रुता करनेवाला, प्रत्यक्ष में मित्र और भीतर से शत्रुता करनेवाला, टेढ़ीदृष्टि से देखनेवाला और विपरीत दृष्टिवाला, उपकार से तृप्त न होनेवाला, दूसरे को अपने समान बनानेवाला, मद्यप, शत्रु, क्रोधी, अभीष्ट न मिलने से दूसरे को दुःख का देनेवाला, मित्र से शत्रुता करनेवाला, जीवहिंसा करनेवाला, कृतघ्नी, छिद्रान्वेषी इन पुरुषोंसे कभी मित्रता न करनी चाहिये और मित्रता करने के योग्य पुरुषोंको भी मुझसे सुनो कुलवान्, मधुरभाषी, ज्ञान विज्ञान में कुशल, रूप में रूपवान्, गुणवान्, निर्लोभी, श्रमी, सन्मित्र, कृतज्ञ, सर्वज्ञ, लोभ ईर्षारहित, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, सदैव उद्योगी, कुलीन के पुत्र, कुल के तारनेवाले, दोषों से रहित प्रसिद्ध होयँ उन्हीं लोगों से राजा को प्रीति रखनी योग्य है हे राजन् ! सामर्थ्य के अनुसार आचार करनेवाले अच्छे प्रकार से तृप्त होते हैं विना स्थान क्रोध न करनेवाले, अकस्मात् प्रीति न त्यागनेवाले, प्रीति करनेवाले, जो अर्थ में पण्डित होकर चित्तसे भी विरोधी नहीं होते हैं और अपने हृदय को कष्ट भी देकर मित्रके कार्य में प्रवृत्त होते हैं जिसप्रकार कम्बल पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता है उसप्रकार जो मित्रों से प्रीति नहीं छोड़ते और निर्धन होने में स्त्रियों पर क्रोध, लोभ, मोह से अप्रीति नहीं प्रकट करते हैं, वह धर्मशील, विश्वासी लोग अपने मित्रों को भी अप्रीति नहीं दिखलाते हैं मृत्तिका और सुवर्ण को एकसा माननेवाले मित्रों में

दृढ़बुद्धि, स्वतन्त्रतारहित, स्वामी के अर्थ को सदैव उत्तम माननेवाले जो पुरुष अपने मनुष्यों की रक्षा करते शास्त्रों से कर्म करते हैं ऐसे उत्तमपुरुषों से जो राजा स्नेहपूर्वक मिलाप करता है उसका राज्य चन्द्रमा की चांदनी के समान वृद्धि को पाता है सदैव शास्त्रोक्त करनेवाले क्रोधजित् युद्ध में पराक्रमी जन्म से ही उत्तम गुण स्वभाव युक्त श्रेष्ठपुरुष भी मिलाप के योग्य हैं—हे राजन् ! जो गुणदोषयुक्त मनुष्य मैंने कहे उनमें भी जो उपकार को भूलनेवाले मित्रघाती और नीच हैं वह दुराचारी त्यागने के योग्य हैं यह सब का मत है युधिष्ठिर बोले कि मैं मिलाप से सम्बन्ध रखनेवाले इतिहास को मुख्यता से सुनना चाहता हूं और जो आपने मित्र से शत्रुता करनेवाला और उपकार का भूलनेवाला कहा उसको भी मुझसे कहो—भीष्मजी बोले कि मैं उस प्राचीन इतिहास को तुमसे कहता हूं जो उत्तर दिशा में म्लेच्छ लोगों में हुआ कि मध्यदेश का रहनेवाला वेदों से अज्ञान कोई ब्राह्मण वृद्धियुक्त गांव को देख कर भिक्षा की इच्छा से उसमें पहुँचा वहां गांव में दस्यु जातिवाला कोई महाधनी सब वर्णों के विभागों का ज्ञाता ब्राह्मणों का भक्त सत्यप्रतिज्ञ और दान में प्रीति रखनेवाला था उसके घरमें जाकर इस ब्राह्मण ने रहने के लिये स्थान और बर्षौंड़ी खर्च के निमित्त भिक्षा मांगी तब उस धनी ने ब्राह्मण को बहुत से वस्त्र और एक नवीन स्थान दिया और एक तरुण स्त्री दासी करके दी हे राजन् ! इसप्रकार वह गौतम ब्राह्मण दस्यु से सब पदार्थ पाकर उस स्थान में उस तरुण दासी से विहार करनेलगा और दासी के कुटुम्बपोषण को भी उस ने प्राप्त किया और बहुत दिन तक उस धनी के स्थान में आनन्दपूर्वक रहा वहां उस गौतम ब्राह्मण ने बाणविद्या में बड़ी कुशलता प्राप्त की और वन में जाजाकर हंसों को उसीप्रकार से मारता था जैसे कि दस्यु लोगों के समूह मारा करते थे तब तो वह गौतम महाहिंसा में प्रवृत्त होकर उन दस्यु जाति के समान होगया इसीप्रकार अनेक जीवों की हिंसा करते हुये बहुत दिन गौतम को व्यतीत हुये तब एक दूसरा ब्राह्मण उस देश में आया वह जटा और मृगचर्म को धारण किये वेदपाठ और जप को उत्तम जाननेवाला पवित्रात्मा अवस्था के अनुसार भोजन करनेवाला वेदज्ञ ब्राह्मणों का रक्षक वेद में पूर्ण था वह उस गौतम का स्वदेशी और परममित्र था और शूद्रान्न को त्याग कर अपने मित्र गौतम के घर को खोजता फिरता था और उस गांव को चारों ओर से

ढूंढ़ा फिर गौतम के घर को पाकर उसमें प्रवेश किया तब गौतम ने भी आकर मिलाप किया और उन हंसों का बोझ कन्धेपर रखनेवाले धनुर्बाण हाथ में लिये शस्त्रधारी रुधिर से भरा देह राक्षसी सूरत घर के द्वार पर वर्तमान महानिन्दित कर्मों से घर में आकर महालज्जायुक्त होकर आनेवाले ब्राह्मण ने कहा कि तुम कुलीन ब्राह्मण होके अज्ञानता से यह क्या कर्म करते हो और तुम मध्यदेशी होकर दस्यु के भाव को कैसे प्राप्त हुये तुम अपने प्राचीन वृद्धों को स्मरण करो कि कैसे वेद में कुशल थे उनके वंश में ऐसे कलंकी तुम उत्पन्न हुये इससे अपने स्वरूप और कुल को ध्यान करके इस महानिन्दित कर्म का त्यागकर इस स्थान में मत रहो तब उस गौतम ने बड़े विचार के साथ उसको उत्तर दिया कि हे मित्र ! मैं निर्धन हूं और वेद को भी नहीं जानता हूं और तुम धन के निमित्त यहां आये हो सो हे महाज्ञानिन्, वेदज्ञ ! मैं तुम्हारे दर्शन से कृतकृत्य हुआ अब रात्रि को आप निवास करिये कल प्रातःकाल हम दोनों अपने देश को चलेंगे वह ब्राह्मण घृणायुक्त किसी वस्तु का स्पर्श न करके वहां रहा और भोजन के विषय में बहुत सत्कार करने पर भी न खाया ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मेऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! उस रात्रि के अन्त में उस ब्राह्मण के जाने पर वह गौतम समुद्र के समीप गया वहां मार्ग में वर्तमान समुद्र के व्यापारियों को देखा और उनके साथ होकर सागर की ओर चला दैवयोग से वह जनसमूह किसी पहाड़ी गुफा के समीप मतवाले हाथियों से मारागया और यह ब्राह्मण मारे भय के घबराकर उत्तरदिशा को गया और अपने देश से दूर उस समूह से पृथक् होकर गुप्त होजाने के समान अकेला जंगल में फिरनेलगा फिर मार्ग को पाकर समुद्र के समीप एक वन को पाया जो कि क्रीड़ायोग्य दिव्य प्रफुल्लित वृक्षों से शोभित सब ऋतुवों के फलयुक्त नन्दनवन के समान यक्ष किन्नरों से सेवित शाल, ताल, तमाल और चन्दन अगर के वृक्षों से महासुगन्धियुक्त था वहां पर्वतों के सुन्दर शिखरों पर नाना प्रकार के पक्षी शब्द करते थे और मनुष्य का सा मुख रखनेवाले समुद्र और पर्वतों में उत्पन्न होनेवाले भूलिंग नाम पक्षी भी देखे उनके सुन्दर मधुर शब्दों को सुनता हुआ वह गौतम ब्राह्मण वहां आया जहां अच्छी क्रीड़ा के योग्य वन में सुवर्ण की रज

से निर्मित उत्तम प्रकाशवती भूमिमें एक बड़ा ऊंचा वटवृक्ष था जिसकी शोभायमान शाखा महासुन्दर छत्राकार थीं और उसकी जड़ उत्तम चन्दन के जलों से सींची हुई थी वह प्रफुल्लित शोभायमान वृक्ष कल्पवृक्ष के समान था गौतम उस अपूर्व उत्तम वृक्षको देखकर प्रसन्न हुआ और उसके नीचे बैठगया उसके नीचे सुगन्धियुक्त तीनों प्रकार की वायु चलनेलगी उस आनन्ददायी वायु के कारण वह सोगया और सूर्यास्त होनेपर सन्ध्या के समय वहां एक उत्तम पक्षी ब्रह्मलोक से अपने स्थान को आया वह नाड़ीजंघ नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माजी का परममित्र बड़ाज्ञानी कश्यपजी का पुत्र बगलों का राजा था जिसको पृथ्वी के लोग राजधर्मा कहते थे वह महासुन्दर प्रतापवान् देवकन्या का पुत्र शुद्ध किरीट आदि सुवर्ण रत्नों के आभूषणों से अलंकृत सूर्य के समान प्रकाशमान था उस पक्षी को देखकर गौतम बड़ा आश्चर्ययुक्त हुआ और भूख प्यास से व्याकुल थकेहुये ने मारने की इच्छा से उसकी ओर को देखा तब वह राजधर्मा बोला हे ब्राह्मण ! तेरा आना सफल हो तू मेरे घर पै प्रारब्ध से आया है और अब सूर्यास्त होकर सन्ध्या वर्तमान हुई और तुम निर्दोषी प्यारे अतिथि होकर मेरे घर में आये हो सो प्रातःकाल के समय तुम मुझसे पूजित होकर प्रसन्नता से अपने घर को जावोगे ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! तबतो शोचदृष्टि से संयुक्त गौतम ने उसके मधुरवचनों को सुनके बड़ा आश्चर्य करके उस राजधर्मा को देखा तब राजधर्मा बोला कि हे ब्राह्मण ! मैं कश्यपजी का पुत्र हूं और मेरी माता दक्ष की पुत्री है और तुम गुणवान् अतिथि हो इससे तुम्हारा आना सफल हो यह कहकर उस राजधर्मा ने बुद्धि में देखे हुये कर्म से उसका सत्कार करके शाल के पुष्पों के समान दिव्य कुशासन को दिया और जो मछलियां राजा भगीरथ के रथ से इधर उधर होकर गंगाजी से सेवित देशों में घूमती थीं उनको उसके भोजन के लिये देने का विचार किया और बड़ी २ मछलियां उसके भोजन को दीं और उसके श्रम दूर करने को भोजन के पीछे बड़े आनन्द से अपने परों से वायु करी फिर विश्राम से बैठेहुये गौतम से गोत्र को पूछा तब उसने कहा कि मैं गौतम हूं वेद की कोई वार्ता नहीं कही फिर उसने मृदुपत्तों की शय्या बनाई

और उसपर गौतम को सुलाया फिर उस राजधर्मा ने पूछा कि आपका आना कैसे हुआ तब गौतम ने कहा कि हे महात्मन्, ज्ञानिन्! मैं निर्धन हूं और धन के लिये समुद्रपार जाने की इच्छा करता हूं तब उस काश्यप ने कहा कि हे ब्राह्मण! सन्देह मत करो तुम मनोरथ समेत घर को जावोगे सो हे प्रभो! अर्थसिद्धि चार प्रकार की हैं जैसा कि बृहस्पति जी ने कहा है प्रथम तो प्राचीन अर्थात् बाप दादों से, दूसरी ईश्वर या प्रारब्ध से, तीसरी सफल कर्म करने से, चौथी मित्र से प्राप्त होनेवाली है सो मैं तेरा मित्र उत्पन्न हुआ हूं और मेरी मित्रता तुझ में है सो मैं वही विचार करूंगा जिससे कि तू धनवान् होजायगा फिर प्रातःकाल के समय उस प्रसन्न ब्राह्मण से यह कहा कि हे सौम्य! तुम इस मार्ग होकर जावो तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा यहां से तीन योजन पै राक्षसो का बड़ा राजा महाबली विरूपाक्ष नाम से प्रसिद्ध मेरा मित्र है सो हे ब्राह्मण! तुम मेरे कहने से उसके पास जावो वह तुम को निस्सन्देह अभीष्ट धन देगा यह सुनकर परिश्रमरहित हो अमृतके समान फल खाता हुआ उसके पास चला और मार्ग में चन्दन, अगर, दालचीनी, तेजपत्र इत्यादि वृक्षों को देखता चलदिया और उस मेरुव्रज नाम नगरमें पहुँचा जो पर्वत का द्वार और परकोटा खाईं आदि से शोभित पर्वतों के ही यन्त्रों से वेष्टित था वहां पहुँचते ही उस बुद्धिमान् दनुजपति को मालूम हुआ कि यह प्रीतिमान् अतिथि मित्र की ओर से भेजा हुआ आया है तब उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि उस गौतम को शीघ्र ही यहां लेआवो तब उसके मनुष्य गौतम का नाम पुकारते नगरके द्वारपर आये और उससे कहा कि शीघ्र ही चलो राजा विरूपाक्ष तुम को देखना चाहताहै तब बड़ी तीव्रता से वह गौतम चला और उसके असंख्य धन को देख आश्चर्यित होता हुआ राजमहल को गया ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इकतालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि वहां जाकर वह ब्राह्मण राजा से पूजित होकर उत्तम आसन पर बैठाया गया—वहां भी राजा विरूपाक्ष ने ब्राह्मण से गोत्र प्रवर वेद और ब्रह्मचर्य पूछा परन्तु उसने सिवाय गोत्रके और कुछ नहीं कहा तब उनके रहने के स्थान को पूछा कि हे ब्राह्मण! तू कहां का रहनेवाला है और तेरी ब्राह्मणी कौन गोत्रवाली है मुझपर विश्वास करके निर्भय होकर अपना सब

वृत्तान्त कहो—गौतम बोला कि मैं मध्यदेश में उत्पन्न हुआहूं और मेरा स्थान शबरजातिवाले मनुष्य के घर में है मेरी भार्या शूद्रा पुनर्भू है यह मैं तुझसे सत्य२ कहताहूं—भीष्मजी बोले कि इस बातको सुनकर राजाने विचार किया कि मेरा कर्म अच्छा कैसे होगा और इसका कार्य कैसे बनेगा निश्चय है कि यह जन्म से तो ब्राह्मण है और उस महात्मा का मित्र है उस काश्यपगोत्रीय ने मेरे पास भेजाहै वह मेरा रक्षकहै इससे मैं उसके अभीष्ट को अवश्य करूंगा वह मेरा भाई बान्धव और चित्तसे मित्रहै अब कीर्त्तिकी पूर्णमासी को मेरे घर हज़ार ब्राह्मण भोजन करेंगे वहां यह भी भोजन करेगा और मुझे इसको धन देना योग्यहै और यही पवित्र दिनहै और यह अतिथि है और धनभी संकल्प कियाहै अब दान करना ही योग्यहै तदनन्तर क्षौमवस्त्रधारी एकहज़ार स्नातक ब्राह्मण भी आगये तब उस विरूपाक्ष ने शास्त्र की रीति से जैसे अभ्युत्थान करना योग्य है उसीप्रकार उनका अभ्युत्थान किया और उनके चरण धोकर उनके निमित्त उत्तम पवित्र कुशासन बिछवा दिये और यथायोग्य अपने२ आसनों पर राजासे पूजित होकर बैठगये फिर तिल जल कुशों से पूजेगये और विश्वेदेवा समेत पितर और अग्नि स्थापन किये गये और चन्दन पुष्प अक्षतों से भी सुन्दर रीति से पूजन करके ऐसे विराजमान हुये जैसे कि नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा फिर सुवर्ण के थालों में अन्न मिष्टान्नयुक्त नानाप्रकार के सुस्वादुभोजन ब्राह्मणों को परोसे गये आषाढ़ी या माघ की पूर्णमासी को बहुत से ब्राह्मण उसके घरपर सुन्दर बनायेहुये भोजनोंको पाते थे और विशेष करके कार्त्तिकी पूर्णिमा को ब्राह्मणों को धन का भी दान करता था अर्थात् सुवर्ण, रजत, मणि, बहुमूल्य मोती, हीरा वैडूर्य, मृगचर्म और दक्षिणा में रत्नों के ढेरों को धरकर यह कहा कि अपनी इच्छा के अनुसार इन रत्नों को लो और जिन२ सुवर्ण के पात्रों में तुमने भोजन किया है उनको लेकर अपने२ घर को जावो यह सुनकर सब ब्राह्मणों ने अपनी२ इच्छा के अनुसार उन रत्नों को लिया जब शुभरत्नों से और सुन्दर वस्त्रों से शोभित वे ब्राह्मण उसके सत्कार से प्रसन्न होकर चलनेलगे तब फिर ब्राह्मणों से कहा कि हे ब्राह्मण लोगो! अब कभी तुम को राक्षसों से भय न होगा प्रसन्न होकर अपने२ अभीष्ट देशों को जावो देर मत करो तब ब्राह्मणलोग चारोंओरको चलगये और गौतम भी सुवर्ण के बोझ को लेकर शीघ्रता से उस वट के वृक्ष के नीचे आया और

भूख प्यास से थकित पीड्यमान होकर बैठगया फिर वह राजधर्मा उसके पास आया और कुशल पूछकर गौतम को प्रसन्न किया और अपने परों की वायु से उसके श्रम को दूर किया और पूजन करके भोजन का भी आतिथ्य किया तब उस भोजन करनेवाले गौतम ने चिन्ता की कि मैंने लोभ मोह से इस सुवर्ण के बड़े भारको लिया है और दूर मुझको जाना है और मार्ग में प्राणका धारण करनेवाला कोई भोजन मेरेपास नहीं है मैं कैसे प्राणों को धारणकरूंगा इसकी चिन्ताकरके मार्ग में भोजन के योग्य कोई वस्तु न देखके उस अकृतज्ञ ने मन में यह विचार किया कि मेरे समीप यह बगलोंका राजा बड़े मांस से भरा वर्तमान है-इसीको मारकर साथलेकर शीघ्र जाऊंगा ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

बयालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि वह पक्षियों का राजा राजधर्मा उस गौतम के समीप रक्षा करने के लिये प्रकाशमान अग्नि को स्थापन करके विश्वासयुक्त होके सोगया और वह कृतघ्नी दुष्टात्मा जो पहिले ही से उसके मारने के विचार में था उसने एक सूखी लकड़ी से उसको सोते में मारा और मारने के पाप दोष को मन में भी नहीं विचारा और बहुत प्रसन्न होकर उसके परों को अलग करके अग्नि में भूनकर उसको बांध सुवर्णसमेत घर को चला तब दूसरे दिन के अन्त में विरूपाक्ष ने अपने पुत्र से कहा कि हे पुत्र ! मैं अब पक्षियों के राजा राजधर्मा को नहीं देखता हूं क्योंकि वह पक्षी सदैव पूर्वाह्ण सन्ध्या में ब्रह्माजी के दर्शनों को प्रतिदिन जाता है तब मुझको देखे विना कभी घर को नहीं जाता है सो दो दिन से मेरे घर को नहीं आया इस कारण से मेरे चित्त में सन्देह है उस मेरे मित्र को देखना चाहिये मत कहीं उस वेदपाठ से रहित जपहीन हततेज हिंसा धर्मवाले नीच ब्राह्मण ने तो उसको नहीं मारा यही मुझको सन्देह है अर्थात् वह निर्बुद्धि दुष्टाचारी है इसको मैंने उसके लक्षणों से जाना है वह निर्दयी भयकारी रूप दुष्ट चोरों के समान नीच गौतम वहां गया है उसी से मुझको सन्देह होगया है सो हे पुत्र ! तुम शीघ्र जाकर उस राजधर्मा को घर में देखो कि वह जीवता है या नहीं यह पिता की आज्ञा पातेही उसका पुत्र बहुत से राक्षसों समेत शीघ्रता से वहां पहुँचा तो राजधर्मा के देह के पक्ष पृथ्वी में पड़ेहुये खाली वृक्ष को देखा यह वृत्तान्त देखकर वह राक्षस का पुत्र रोदन करके

बड़ी शीघ्रतापूर्वक उसके पकड़नेको गया और समीपही उसने गौतमको पकड़ा और राजधर्मा के देहसमेत उस पापकर्मी दुष्ट गौतम को राजाके सम्मुख किया वह राजा उसको देखकर मन्त्री और पुरोहितों समेत महारुदन करनेलगा और उसके महल की स्त्रियां और नगर के सब छोटे बड़े स्त्री पुरुष भी बड़े शोकयुक्त होकर रोदन करनेलगे तब राजा ने पुत्र को आज्ञा दी कि इस पापी को मारो और अपनी २ इच्छा के सदृश इसके मांस को खण्ड २ करो क्योंकि यह दुष्टात्मा पापाचार पापकर्मी तुमलोगों के मारने के योग्य है राजा की इस आज्ञा होनेपर महापापी गौतम के मांस का भक्षण किसी ने नहीं करना चाहा तब यह विचार किया कि इस नीच पापी को दस्युजातिवालों को देना चाहिये और यही विचार राजा से निवेदन करके शिर झुकाकर कहा कि हे राजन् ! आप इसका पाप हमारे भक्षण के देने को योग्य नहीं हो तब राजा ने कहा कि ठीक है अब यह कृतघ्नी पापात्मा गौतम दस्युजातिवालों को दियाजाय तब उसके टुकड़े २ करके दस्युलोगों को दिया उनलोगों ने भी उस पापी को भक्षण करना न चाहा इससे सिद्धान्त यह है कि कृतघ्नी पुरुष के मांस को राक्षस भी कोई नहीं भक्षण करता हे राजन् ! ब्रह्महत्या करनेवाला, मद्यपनिवाला, चोरी करनेवाला और व्रत का त्यागनेवाला ऐसे लोगों का तो प्रयाश्चित्त हो भी सक्ता है परन्तु कृतघ्नी मनुष्य के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है और ऐसे लोग जो कि मित्र से शत्रुता करनेवाले कृतघ्नी और हिंसा करनेवाले हैं उनका भोजन मांसभक्षी जीव और कीड़े भी नहीं करते ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उसको इसप्रकार दण्ड देकर उस राक्षसों के राजा ने उस बकराज की चिता को रत्न और वस्त्रों से अलंकृत नाना सुगन्धियों से युक्त बनाया और दाहक्रिया करके मृतकक्रियाओं को किया उसी समय शुभकारी दाक्षायणी देवी सुरभी के रूप में चिता के ऊपर वर्तमान हुई उसके थनों से बहुतसा दूध उसकी चिता में गिरा उस दूध के प्रभाव से वह पक्षियों का राजा जीउठा और वहां से उठकर अपने मित्र विरूपाक्ष से मिला तदनन्तर देवराज इन्द्र भी विरूपाक्ष के पुर में आये और विरूपाक्ष से कहने लगे कि यह राजधर्मा अपने ारब्ध से जीगया है और वह प्राचीन इतिहास विरूपाक्ष को इन्द्र ने सुनाया

कि जैसे ब्रह्माजी ने राजधर्मा को शाप दिया था अर्थात् जब राजधर्मा ब्रह्माजी के पास नहीं गया तब क्रोधयुक्त होकर ब्रह्माजी ने राजधर्मा से यह कहा कि अरे अज्ञानी, बगले ! जो मेरी सभा में तू नहीं आया इससे थोड़े ही समय में मारा जायगा इसी कारण गौतम के हाथ से यह मारागया और अमृत के सींचने से फिर यह जीउठा यह सुनकर राजधर्मा ने इन्द्र देवता को नमस्कार करके यह वचन कहा कि हे देवेश्वर ! जो तुम बुद्धि से मेरे ऊपर अनुग्रह करते हो तो हे पुरुषोत्तम ! मेरे प्यारे मित्र गौतम को भी फिर जीवदान दो तब इन्द्र ने प्रसन्न होकर उस गौतम को भी अमृत सींचकर जिलाया तब वह राजधर्मा सुवर्णपात्र युक्त उसको देखकर बड़ी प्रीतियुक्त हो उस मित्र से मिला और उस पापकर्मी को धन समेत बिदा करके अपने स्थान को गया और पूर्व के समान फिर राजधर्मा ब्रह्मलोक को गये और ब्रह्माजी ने इस महात्मा को आतिथ्यधर्म से पूजन किया और उस गौतम ने भी उस दस्युजाति के राजा के स्थान को पाकर अपनी उसी दासी शूद्रामें पापी पुत्रोंको उत्पन्न किया तब देवताओं के समूहने उसे महाघोर शाप दिया कि अरे पापिन् ! तू बहुत दिनतक कुत्तेकी योनि में पुत्रों को उत्पन्न करके महाघोर नरक को पावेगा क्योंकि तू कृतघ्नी उपकार का भूलने वाला है हे राजन् ! पहिले समय में यह वृत्तान्त तुमसे नारदजी ने कहा था और मैंने उसको यथार्थ स्मरण करके बुद्धि के अनुसार तुमसे कहा कि कृतघ्नी पुरुषको न तो यश है न स्थान है और न सुख है वह कभी श्रद्धा के योग्य नहीं है न उसके लिये कोई प्रायश्चित्त है अधिक करके पुरुष को मित्र से शत्रुता न करनी चाहिये क्योंकि मित्र से शत्रुता करनेवाला घोरनरक में गिरता है और कृतज्ञ और सदैव मित्रता चाहनेवाले मित्रको ईश्वर सदैव ऐश्वर्यवान् करताहै मित्रसेही सब मनोरथ और प्रतिष्ठापूर्वक भोगोंको भोगताहै और आपत्तियोंमें भी मित्रोंही के द्वारा उद्धार होताहै इससे बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम सत्कारों से मित्रका पूजन करे पापी अकृतज्ञ निर्लज्ज मित्र से शत्रुता करनेवाला कुलनाशक पापकर्मी नीच मनुष्य ज्ञानियों को त्यागने के योग्यहै हे राजन्, युधिष्ठिर ! यह उपकार भूलनेवाले पापात्मा मित्र से विरोध करनेवाले का वृत्तान्त तुझसे विधिपूर्वक कहा अब क्या सुनना चाहता है वैशम्पायन बोले कि हे राजन्, जनमेजय ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिरसे जब भीष्मजीने कहा तब युधिष्ठिर बहुत प्रसन्नहुये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वण्यापद्धर्मे त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इति शान्तिपर्व आपद्धर्म समाप्तम् ॥

श्री मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग विद्यालयीय पुस्तकालय
क्र० सं० …………
दि० …………
अस्सी, वाराणसी।

अथ महाभारत भाषा
शान्तिपर्व ।

मोक्षधर्म ।

पूर्वार्धप्रारम्भः ॥

श्लोक श्रीमन्महाभारतशान्तिपर्वान्तमोक्षधर्मस्य विशुद्धभाषाम् ।
करोमि कालीचरणाभिधोऽहं भाषाप्रबन्धेन जगद्धिताय १

पहिला अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आपने राजधर्म और आपद्धर्मों को बड़ी उत्तमता से वर्णन किया अब आप आश्रमों के श्रेष्ठधर्मों को वर्णन कीजिये-भीष्मजी बोले कि सब आश्रमों में श्रेष्ठ धर्म और ज्ञान देहही से नियत किया गया है उनके फलों को मैं कहता हूं तुम चित्त को एकाग्र करके सुनो कि धर्म के अनेक मार्ग हैं किसी मार्ग से धर्म करो सब सफल होते हैं सबका फल क्रम २ से मोक्षही से सम्बन्ध रखता है इस लोक का किया हुआ धर्म बहुधा शीघ्रता से फलीभूत नहीं होता परन्तु दूसरे लोक में जन्मान्तर के द्वारा अवश्य प्राप्त होता है और जो धर्म ज्ञानपूर्वक इस लोक में किया जाता है उसका फल इसी देह से प्राप्त होताहै सो हे युधिष्ठिर ! जो पुरुष जिस २ विषय में जैसा २ निश्चय करता है उसी में अपना कल्याण मानता है और जो कदाचित् इस मेरे कहने से तुझको शंका हुई हो तो यही सिद्धान्त समझना कि केवल धर्म का फल दृष्टिगोचर नहीं होता है किन्तु ज्ञानयुक्त धर्म का ही फल प्रत्यक्ष होताहै तो धर्मकरना व्यर्थ है और ज्ञानही करना सारहै इसका तात्पर्य यहहै कि जो इसलोक में कामनाके निमित्त धर्मको करते हैं उनको इसीलोकमें फलकी प्राप्ति होती है

क्योंकि धर्म के अनेक मार्ग कहे हैं इससे कभी सन्देह करना योग्य नहीं है और उत्तमलोग भी सदैव कहते हैं कि क्रिया कभी निष्फल नहीं होती है, पुत्रादि की कामना, स्वर्ग की कामना, वेदान्तविचार की कामना इन तीनों में से जिस कामना में पुरुष का निश्चय होता है उसी में फल की इच्छा करता है अन्य में वासना नहीं करता और जैसे२ तृण के समान संसार को असार नाशवान् समझाजाता है तैसेही तैसे सुखदायी वैराग्य बुद्धि में आताजाताहै तब संसार को दुःखमय जानकर बुद्धिमान् लोग मोक्ष होने के यत्न को करते हैं, यह बात सुनकर युधिष्ठिर बोले कि यह आपने कहा सो सत्य है परन्तु अब यह भी कृपा करके समझाइये कि माता, पिता, धन, पुत्र, स्त्री इन सबके नष्टहोने से जो शोक उत्पन्न होता है उसकी निवृत्ति किस रीति से होती है भीष्मजी बोले कि माता, पिता, धन, स्त्री, पुत्रादि के नष्ट होने पर संसार को अनित्य दुःखमय विनाशवान् जानके शोक के दूर होनेका उपाय करे अर्थात् चित्त से खेदको दूर करे इस तुम्हारे सन्देह के दूर करने के निमित्त ज्ञान का देनेवाला एक प्राचीन इतिहास तुमसे कहता हूं कि पूर्वसमय में पुत्र के शोक से महापीड़ित एक सेनजित नाम राजा था उसको शोक से महाव्याकुल देख एक शुभचिन्तक ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन् ! तू क्या मूढ़ निर्बुद्धियों के समान शोच कररहा है तेरे शोच को देखकर तेरे सब बान्धव तेरे भी शोचको करेंगे और हम तुम सब नौकर चाकर, इष्टमित्र और जितने स्थावर जंगम जीव हैं सब अपनी२ देह और इन्द्रियों समेत वहां हीं जायँगे जहां से कि आये थे इससे ज्ञानमार्ग में प्रवृत्त धैर्यवान् होकर शोक को दूर करो सेनजित बोला कि हे ब्राह्मण ! वह कौन से उत्तम ज्ञान, धर्म, तप, बुद्धि इत्यादि हैं जिनसे कि आप को कभी शोक नहीं सताता है ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन् ! तुम संसार में जितने उत्तम मध्यम निकृष्ट अनेक जीवोंको देखते हो सब दुःखों ही से भरे हैं इससे पण्डित बुद्धिमान् पुरुष कर्मको ही दुःखसुख का देनेवाला समझकर कभी हर्ष शोक को नहीं करते इसमें एक कारण और कहता हूं उसको चित्त लगाकर सुनो और सदैव चित्त में विचारो कि यह जो जीवात्मा है वह नित्य है अविनाशी है और ईश्वर का प्रतिबिम्बरूप है वह न तेरा है न मेरा है जो देहका आत्मा ही अपना नहीं है तो धन, पुत्र, स्त्री, माता, पिता, पृथ्वी, स्थान आदि हमारे कैसे होसक्ते हैं और जब हमसे कोई सम्बन्ध नहीं है तो हमारा उनपर प्रेम भी व्यर्थ है ऐसी बुद्धि

के अनुसार ज्ञान होनेसे हे राजन्! हमको कभी शोक हर्ष नहीं बाधा करते,जैसे कि दो काष्ठ बहते२ समुद्र में मिलजाते हैं और फिर जल की तरंग से पृथक्२ होजाते हैं ऐसेही यह जीवों का समागम और पुत्र, पौत्र, स्त्री, ज्ञाति, बान्धव आदि का होना है इससे हे राजन्! यह सब पुत्रादि दुःख के ही हेतु हैं ऐसा जानकर इनमें स्नेह कभी न करना चाहिये और जो तेरा पुत्र था वह ईश्वर के ही घरसे आया था और वहीं फिर चलागया अब तू किसका शोच करता है वह न तुझको जानता है न तू उसको जानता है तो शोच किसका है अब मैं पूछताहूं कि तू अच्युत के प्रतिबिम्ब को शोचता है या उसके शरीर को शोचता है जो देह को शोचता है तो देह जड़ है जैसे उसको शोचता है वैसेही काष्ठ पाषाण का भी शोच करना चाहिये और जो अच्युत के आभास को शोच करताहै तो वह अच्युत एकही है परन्तु सब जगत् में व्याप्त है, तृष्णा से दुःख होता है और तृष्णा के नाश से सुख होता है दुःख के अन्त में सुख और सुख के अन्त में दुःख इसीप्रकार यह दोनों दुःख और सुख मनुष्य के पीछे चक्र के समान फिरते रहते हैं इसी कारण से हे राजन्! तुमको भी सुख के अन्त में दुःख हुआ है और इस दुःख के पीछे अवश्य तुमको सुख की भी प्राप्ति होगी क्योंकि न सदैव सुख रहता है न दुःख रहेगा यह शरीर दुःख और सुख का स्थान है और मनुष्य जिस२ शरीर से जो२ कर्म करता है उसके फल को उसी२ देह से भोगता है हे राजन्! ज्ञानी लोग कहते हैं कि यह स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर संग ही उत्पन्न होते हैं और अनेकरूप प्रकाश करके संसार में भी साथ ही साथ रहते हैं और संग ही संग दोनों का विनाश भी होता है जो पुत्ररूपी स्नेह की रस्सी से बँधे हैं वह ऐसे नष्ट होजाते हैं मैंने देखे हैं जैसे कि रेतपर का बँधा हुआ सेतु जल से शीघ्र नष्ट होजाता है स्नेह के कारण तिल के समान कोल्हू में अज्ञानी लोग पिसते हैं उसीप्रकार मनुष्य संसारी स्नेहरूपी भार के द्वारा अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले क्लेश से पीड़ित होकर इस संसारचक्र में सदैव पीड़ा पाते हैं मनुष्य अपने पुत्र स्त्री आदि के पोषण के वास्ते पापकर्म को करते हैं वह दोनों लोक में महादुःखों को भोगते हैं अर्थात् उस कर्ता के पाप पुण्य को वह स्त्री पुत्रादि नहीं भोगते वह केवल उसके धन के भोक्ता हैं सब मनुष्य पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब में चित्त से प्रवृत्त होकर ऐसे शोक के समुद्र में डूबे हुये हैं जैसे वृद्ध जंगली हाथी कीच में और हे युधिष्ठिर! धन, जाति, बान्धव आदि के नष्ट

होताहै यह सब दुःख सुख ऐश्वर्य होने में दावानल के समान बड़ा भारी कष्ट प्राप्त और नाश दैव के आधीन है तात्पर्य यह है कि पुत्रादि के नष्ट होने पर उनमें ममता न करनी चाहिये मित्र के साथ विना स्वार्थ के प्रीति और उपकार करनेवाला या मित्र के साथ शत्रुता रखनेवाला मित्र, शत्रु, सुबुद्धि, निर्बुद्धि कैसा ही होय दैवसे ही सुख दुःख को पाता है अर्थात् दैव को न माननेवाले धनाढ्य होने पर भी सुखकी प्राप्ति में दुःखी होते हैं और दैव को माननेवाले धनाढ्य न होने पर भी लोभ के त्यागने से सुखी होते हैं सुख दुःख के देनेवाले मित्र शत्रु नहीं हैं और धन आदि की प्राप्ति में बुद्धि कारण नहीं है और सुखों के मिलने में धन उपयोगी नहीं है और धनकी प्राप्तिमें बुद्धि और नाश में अज्ञानता समर्थ कारण नहीं हैं तत्त्व का जाननेवाला इस भोग के योग्य प्रपंच की उत्पत्ति और सिद्धान्त को जानता है और जोकि बुद्धिमान्, अज्ञान, शूर, भयभीत, अल्पज्ञ, दूरदर्शी, निर्बल, पराक्रमी, दैवका माननेवाला है उसको सुख प्राप्त होताहै, गौ अपने बछड़े की है स्वामी की है और चोरकी भी है परन्तु जो पुरुष उसके दूधको पीताहै वह निश्चय करके उसीकी है तात्पर्य यहहै कि उसमें दूरकी ममता होना वृथा है इसी कारण आवश्यकता से अधिक इच्छा न करनी चाहिये जो पुरुष महाज्ञानी हैं और जिन्होंने बुद्धिमानों से भी बढ़कर ऐश्वर्य पाया अर्थात् निर्विकल्प समाधि में हैं वे मनुष्य आनन्दपूर्वक वृद्धि को पाते हैं और जो भेद के देखनेवाले हैं वह कष्टको पाते हैं जो पण्डित लोग सिद्धान्तों में रमते हैं वह मध्य में नहीं प्रवृत्त होते हैं यहां सिद्धान्त की प्राप्तिको सुख और सिद्धान्तके मध्यको दुःख समझना योग्यहै जो बुद्धि के सुखको प्राप्त करनेवाले हैं और सुख दुःख ईर्षा आदिसे रहितहैं उनको अर्थ और अनर्थ आदिसे कभी पीड़ा नहीं होती और जो पुरुष बुद्धिरहित अज्ञानता में डूबेहुये हैं वह दुःखोंको भी पातेहुये अत्यन्त प्रसन्न होतेहैं, अज्ञानी पुरुष अहंकार में भरे हुये सत् असत् के न जाननेवाले कामादि दोषों से युक्त दूसरेकी अप्रतिष्ठा या नाश करने से ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे कि स्वर्ग में देवताओंके समूह परिणाममें दुःख रखनेवाले सुखको जानकर दुःख ही ज्ञानसाधनके अनुष्ठान में उत्साहयुक्त सुखका उदय करनेवाला है इसी प्रकार आत्मा आदि लक्ष्मीयुक्त ऐश्वर्य के साथ ज्ञानी पुरुषमें ही निवास करते हैं आलस्ययुक्तों में कभी नहीं नियत होते दुःखशोकात्मक चित्त का जीतनेवाला पुरुष प्राप्त होनेवाले प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख को समान जानकर सहता है

पण्डित के सिवाय अज्ञानी पुरुष में प्रतिदिन हजारों शोक भय उत्पन्न हुआ करते हैं और स्वयंसिद्ध ज्ञानी बुद्धिमान् शास्त्र के अर्थों में दोष न लगाने वाला शास्त्रज्ञ शान्तचित्त जितेन्द्रिय पुरुष को शोक कभी स्पर्श नहीं करसक्ता है ऐसी बुद्धि में प्रवृत्त हो निष्कामचित्त होकर ज्ञानी पुरुष विचरता है जो ब्रह्म संसार की उत्पत्ति स्थिति लय का कारण है उसमें जो लगा हुआ ज्ञानी है उसको शोक कभी नहीं स्पर्श करता है जिस देहके किसी अंग के कारण शोक दुःखादि ताप होयँ उस अंग को भी जब कि काट डालना योग्य है तो स्त्रीपुत्रादि किस गणना में हैं जब कुछ ममता कल्पना की जाती है तभी शोक दुःखादि उत्पन्न होते हैं विषयों में से जिस२ विषय को त्यागता जाता है उससे सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति होती है और विषयी पुरुष विषयों के साथ नाशको प्राप्त होताहै, लोक में जो विषयादि सुख हैं और स्वर्ग के जो बड़े सुख हैं वह सब मिलकर लोभ के त्यागने पर वैराग्य नाम सुख के सोलहवें भाग के भी समान नहीं हैं, वैराग्यवान् पुरुषको यह जानना चाहिये कि प्रथम देहका किया हुआ शुभ अशुभ कर्म ज्ञानी अज्ञानी वा शूर पुरुषको स्वतः सेवन करता है निश्चय करके इसीप्रकार यह प्रिय अप्रिय सुख दुःख जीवों के चारोंओर वर्तमान होते हैं इस बुद्धि में प्रवृत्त होकर गुणी पुरुष प्रसन्न होता है जो सब विषयों को त्याग कर क्रोधरहित होता है और यह चित्त से उत्पन्न होकर हृदय में वृद्धिपूर्वक वास करनेवाला क्रोधरूप जीवों के देह में नियत होता है उसको ज्ञानी लोग मृत्युरूप कहते हैं अर्थात् जन्म मरणवाले संसारका द्वार मानते जब इच्छाओं को सब प्रकार से कछुवे के अंगों के समान देहमें लय करताहै अर्थात् वह योगी हार्दाकाश नाम कारण ब्रह्म में प्रवेश करता है तब यह जीवात्मा सब उपाधियों से रहित उस अपने स्वरूप में जहां केवल आत्मा ही का प्रकाश है वहां अखण्ड चिन्मात्र को देखता है और माया के आवरण को त्याग करताहै और जब ममता से कुछ कल्पित होता है, तब वह सब दुःखों के निमित्त प्राप्त होता है, जब आत्मा में चित्त के लय करने पर भय नहीं करता और न इससे कोई भयभीत होता और इच्छारहित होने से किसीसे शत्रुता भी नहीं करता है तब ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, सत्, असत्, शोक, हर्ष, भय, निर्भय, प्रिय, अप्रियता को अत्यन्त त्याग करके महाशान्तचित्त होताहै और जब धीर पुरुष मन, वाणी, कर्मसे जीवों में हिंसा आदि पापों को नहीं करताहै तब ब्रह्मभाव

को प्राप्त होता है, जो कुबुद्धियों से कठिनता से भी त्याग नहीं होसक्ती है और जैसे२ वह वृद्ध होते हैं तैसे२ वह भी दृढ़ होतीजाती है और जो प्राणान्तक महारोगरूपी तृष्णा की आधिक्यताहै उसके त्यागने से मनुष्य सदैव आनन्द युक्त रहता है इस विषय में एक पिंगला नाम वेश्या के कहे हुये इतिहास को कहता हूं कि जैसे उसने दुःख के समय में भी सनातनधर्म को पाया उसको सुनो कि जब उस वेश्या को अपने स्थानपर निजप्यारे पुरुष से वियोग हुआ तब महादुःखी होकर उसने अपनी आत्मा में शान्तिबुद्धि को धारण किया तात्पर्य यह है कि वैराग्य का मुख्यकारण दुःखही है पिंगला ने अपने चित्त में विचारा कि मैं बहुतकाल से उस निर्विकार स्वामी ईश्वर को भूली हुई थी जो सदैव हृदय में रमण करनेवाला विद्यमान अच्युत अनूपरूप कान्त है उसको मैंने अपनी अज्ञानता से ऐसे ढकदिया था कि कभी नहीं जानागया एक थूण रूप अज्ञान में अविद्यारूप जो यह शरीर है वह अत्यन्त दुःखदायी है उसके नासिकादिक नवो द्वारों को मैं अपनी ज्ञानरूपी विद्या से चारो ओर से ढक दूंगी तब अपने हृदयके रमण करनेवाले प्यारे कान्त को बाहर न जानेदूंगी फिर उस आत्मलाभ से सब इच्छाओं के प्राप्त होने पर मुझ अनिच्छावान् को त्यागने के योग्य वह धूर्तमनुष्य अज्ञानरूप कान्त कान्ताभाव से कैसे ठगेंगे इसप्रकार से विदित होकर अब मैं जागती हूं तात्पर्य यह है कि जिसने तत्त्वको पायाहै वह विषयोंसे आकर्षण नहीं होताहै और दैवयोगसे जो पिछले पापकर्म हैं वह भी नष्ट होजायँ मैं विषयों से रहित ज्ञानको प्राप्त हुई हूं इससे जितेन्द्रिय हूं जो विषयभोग से पृथक् है वह सुखपूर्वक सोताहै वही परमसुख है इसकारण पिंगला भी धन की आशा को विषयभोग से रहित करके आनन्दपूर्वक सोती है भीष्मजी ने कहा कि हे युधिष्ठिर ! तब ब्राह्मण के ऐसे सहेतुक वचन सुनकर राजा सेनजित आत्मतत्त्वकी निष्ठामें वर्तमान होकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आशा जीतकर मोक्ष की इच्छा करना यह आपने प्रथम अध्याय में वर्णन किया अब आप मेरे इस सन्देहको निवृत्त करिये कि जीवों के नाश करनेवाले इस काल के मध्य में वृद्धावस्थाआदि अनेक देह के रोगों से देह के नष्ट होने पर मनुष्य किस कल्याण को प्राप्त करे, भीष्मजी

बोले कि इस स्थान पर मैं पिता पुत्र के संवादवाले प्राचीन इतिहास को तुझसे कहता हूं कि किसी वेदपाठी ब्राह्मण के पुत्र उत्पन्न हुआ वह बड़ा बुद्धिमान् शास्त्रज्ञ मेधावी जिसका नाम था उसने अपने पितासे यह कहा कि हे पिता! जब असत् सत् का ज्ञान प्राप्त होजाय तब मनुष्य को क्या करना उचित है यह मुझसे आप वर्णन कीजिये क्योंकि मनुष्यों की आयुर्दाय क्षीण होती चली जाती है पिता ने कहा कि हे पुत्र! जो तुमने प्रश्न पूछा वह बहुत उत्तम है उसको समझ कर मैं कहता हूं तुम चित्त लगाकर सुनो कि ब्रह्मचर्य से वेदों को पढ़ कर पितरों की पवित्रता के निमित्त पुत्रों को उचित है कि अग्नियों को स्थापन करके पुत्रोत्पादन करे फिर विधिपूर्वक अग्नियों में यज्ञ करे तदनन्तर मुनि-रूप होकर वन में वास करे इस धर्म में प्राप्त होने से बड़े आनन्द को पाता है पुत्र ने कहा कि इसप्रकार मृत्यु से घायल होने और वृद्धावस्था से घिरजाने और क्षण २ में अवस्था व्यतीत होनेपर धैर्यवान् के समान आप वार्ता कहते हैं यह मुझको आश्चर्य होता है पिता बोले कि लोक किसप्रकार किससे घायल और किससे व्याप्त है और कौन सफल होते हैं पुत्र ने कहा कि यह लोक मृत्यु से घायल है और वृद्धावस्था से घिरा हुआ है बड़े कष्ट की बात है कि यह अहर्निश व्यतीत होते जाते हैं तुम क्यों नहीं सावधान होते हो और यह दिनरात निष्फल आते जाते हैं अर्थात् अवस्था घटती जाती है परन्तु मृत्यु नियत नहीं होती अर्थात् क्षण २ में समीप आती जाती है इसको जानकर भी मायाजाल से आच्छादित मैं किसप्रकार भ्रमण करता बाट देखूं बुद्धिमान् मनुष्य को जानना चाहिये कि दिनरात के अन्त में आयुर्दाय घटती जाती है तब वह दिनरात भी निष्फल हैं जब इच्छा की अपूर्णता में ही मृत्यु आजाती है तब बिन जल मछली के समान कौन सुख को पाताहै सफल कर्मों के फलों को प्राप्त करनेवाले और आत्मा के विशेष दूसरीओर चित्त लगानेवाले पुरुष को मृत्यु ऐसे लेजाती है जैसे कि सिंहिनी गौ के बछड़ेको, तुम अबभी अपना कल्याण करो इस समय को व्यर्थ व्यतीत मत करो क्योंकि मृत्यु करने के योग्य कर्मों को न करने पर भी आकर्षण करेगी कलके काम को आज करो और रात्रि के काम को प्रातःकाल ही करो चाहे किसी का काम होचुका हो या न होचुका हो मृत्यु मुख फाड़े ही बैठी है कौन जानता है कि कब किसकी मृत्यु होती है इससे तरुणाई में ही धर्म का अभ्यास करे क्योंकि निश्चय करके जीवन नाशवान्

है, धर्म करने से इस लोक में कीर्ति और परलोक में सुख की प्राप्ति होती है मोह से भरा हुआ पुरुष पुत्र स्त्री के निमित्त कर्तव्य अकर्तव्य कर्मों को करके उनका पोषण करता है उस गृहस्थ के नाना जंजालों में फँसे हुये पुरुष को मृत्यु ऐसे उठा लेजाती है जैसे कि सोते हुये मृग को सिंह उठा लेजाता है निन्दित वस्तुवों के ग्रहण करनेवाले और इच्छाओं में प्रवृत्त पुरुषों को काल ऐसे उठा लेजाता है जैसे कि पशु को व्याघ्र उठा लेजाता है, यह तो किया और यह करने के योग्य है यह आधा है और आधा बाक़ी है इसप्रकार के लोभ में फँसे हुये मनुष्य को मृत्यु अपने आधीन करलेती है कर्मों के फल को आप न पानेवाले और व्यापारी नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र वा दूकान आदि में आसक्तचित्त मनुष्य को मृत्यु अवश्य लेजाती है, अबल, सबल, शूर, भयातुर, पण्डित और सब मनोरथ न सिद्ध होनेवाले मनुष्य को मृत्यु लेजाती है, जब कि देह में मृत्यु बुढ़ापा रोग आदि अनेक दुःख लगे हुये हैं तो धैर्यवान् के समान कैसे आप वर्तमान हैं मृत्यु देह के नाश के ही निमित्त प्रकट हुआ है और बुढ़ापा देह के अंगों को शिथिल करता है और सब स्थावर जंगम जीव इन दोनों मृत्यु बुढ़ापे से संयुक्त हैं और स्त्री पुत्रादि में जो प्रीति है यही मृत्यु का सुख है और जो एकान्त स्थान है वह देवताओं के बन्धन का आलय है और अपने जनसमूहों में जो प्रीति है यही सदैव बांधनेवाली रस्सी है और शुभकर्म करनेवाले इस रस्सी को सदैव काटकर मोक्ष प्राप्त करते हैं और पापी इसको नहीं काटते हैं, जो पुरुष मन, वचन, वाणी और श्राद्धादिक कर्मों से जीवों को नहीं मारता है न किसी को मारने की अनुमति देता है वह धन और जीवन के नाश करनेवाले जीवों से नहीं माराजाता है न उनकी समानता को पाता है, मृत्यु की आनेवाली सेना को सिंवाय सत्य के कोई पराजय नहीं करसक्ता है यद्यपि सत्य असत्य का नाश करनेवाला है तो भी सबको असत्य का त्यागना ही योग्य है और सत्य ही में मोक्ष वर्तमान है इस हेतु से सत्यव्रत का करनेवाला सत्ययोग में प्रवृत्त गुरु और वेद के वचनों को प्रमाण माननेवाला सदैव शान्तचित्त पुरुष उसी सत्य से मृत्यु को भी विजय कर सक्ता है देह में मोक्ष और मृत्यु दोनों वर्तमान हैं मोक्ष सत्य से और मृत्यु असत्य से प्राप्त होती है मैं अहिंसक सत्यवक्ता काम क्रोधरहित सुख दुःखमें समान परोपकारी हो हिरण्यगर्भ की समान मृत्युको विजय करूंगा और देवयान मार्ग में शान्तियज्ञ के द्वारा प्रीतिमान् अर्थात्

निवृत्तमार्ग में कुशल हो शान्तचित्त ब्रह्मयज्ञ में नियत उपनिषदों के अर्थ का ज्ञाता मुनियों के वचनों से यज्ञ करके चित्त का यज्ञ करनेवाला हूंगा जैसे कि पिशाच अपने देह के त्याग करने से पूजन को करता है उसीप्रकार मुझ सरीखा ज्ञानी विनाशवान् हिंसायुक्त पशुयज्ञों से पूजन करने को योग्य है अर्थात् नहीं है तात्पर्य यह है कि पशु आदि के देह को भी अपना ही देह समझकर कैसे नाश करूं जिसका मन वचन सदैव ब्रह्म में अर्पित हो और तप, त्याग, सत्य भी होय वह ज्ञानी निश्चय करके ब्रह्म को पाता है विद्या के समान नेत्र नहीं और सत्य के समान तप नहीं और राग के समान दुःख नहीं और त्याग के समान सुख नहीं है हे पिता! जो आश्रमों की परम्परा आपने वर्णन की वह मोक्षमार्ग में व्यर्थ होती है ब्रह्म में ब्रह्मरूप से उत्पन्न ब्रह्मरूप असन्तान होकर भी ब्रह्म ही में उत्पन्न हूंगा सन्तान मेरी मुक्ति वैसी नहीं करसक्ती है जैसी कि एकान्त में स्थित और प्रशंसायुक्त गुरुपूजनादि से होती है ब्रह्मभाव, सत्यता, शान्तचित्तता, मन वाणी से हिंसारहित होना, शुद्धभाव इत्यादि से अधिक दूसरा ब्राह्मण का धन नहीं है इन सब कर्मों से पृथक् तुमको धनों से और बान्धव स्त्री आदि से क्या प्रयोजन है बुद्धि में स्थित आत्मा को खोजो और आपके पिता पितामह आदि कहां गये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! जैसे इसपुत्र के कहनेके अनुसार उसके पिता ने किया उसीप्रकार तुमभी करो॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

तीसरा अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! आपने जो कहा कि मोक्षसाधन यज्ञके द्वारा धन से होता है और निर्धनलोगों को मोक्ष होना कठिन है यह सुनकर मुझको आश्चर्य हुआ कि धनी और निर्धनी जो अपने शास्त्र के अनुसार कर्म करते हैं उन धनाढ्य लोगों का कौन रूप है और किसप्रकार से सुख दुःख की प्राप्ति होती है और निर्धनों को भी दुःख सुख की कैसी प्राप्ति है इसको आप वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि इस विषय में एक प्राचीन इतिहास कहता हूं कि जिसको इस लोक में शान्तवृत्ति जीवन्मुक्त सम्पाक ऋषि ने वर्णन किया है कि प्राचीन समय में निर्धनता से साधारण वस्त्र धारण किये भोजन की अभिलाषायुक्त प्रतिकूल स्त्री से पीड्यमान संसार से वैराग्यवान् किसी ब्राह्मण ने सम्पाक ऋषि से कहा कि इस संसार में उत्पन्न होनेवाले पुरुष को जन्म से ही

नानाप्रकार के दुःख सुख सताते हैं जो कदाचित् दैव सुख दुःख के बीच में इसको प्राप्त करके एक मार्ग में लेजाय तो ऐसी दशा में दुःख पाकर दुःखी न होय और न सुख पाकर सुखी होना योग्य है चित्त के आत्मारूप होने से सदैव अनिच्छायुक्त भी इच्छावान् होकर धैर्य से योग के भार को उठाकर अपने मोक्ष की समानता में नहीं प्राप्त होता है क्योंकि तुम चित्तके जीतनेवाले नहीं हो धन स्त्री आदि से रहित चारोओर को घूमता हुआ सुख को भोगेगा और वही आनन्दपूर्वक सोता और उठता है और अकिंचन होकर लोक में सुखरूप मोक्ष के समीप निर्विघ्न रहता है शत्रुवों से रहित कल्याणरूप मार्ग कठिनता से प्राप्त होता है परन्तु इच्छावानों को सुगम है इस संसार में अकिंचन सिद्ध वैराग्यवान् ज्ञानी के समान मैं तीनों लोकमें किसी को नहीं देखता हूं मैंने ज्ञानियोंकी अकिंचनता को और राजाओं के राज्य को अच्छे प्रकार से तुला में तोला तो अकिंचनता ही गुणों में राज्य से अधिक हुई अकिंचनता और राज्य में यह बड़ी मुख्यता है कि धनी तो ऐसा भयभीत रहता है मानो मृत्यु के मुख में ही वर्तमान है और धन के त्यागने से इस अनिच्छावान् विमुक्त के विघ्न, अग्नि, मृत्यु और चोर आदि प्रकट नहीं होते हैं ऐसी इच्छा से घूमनेवाले शय्यारहित पृथ्वी पर शयन करनेवाले भुजारूप तकिया रखनेवाले निवृत्त पुरुष को देवता लोग भी अच्छा कहते हैं जो धनवान्, क्रोधवान्, निर्बुद्धि, कुटिलदृष्टि, रूक्ष और पाप मुखपर भृकुटी रखनेवाला दांतों से ओठों को काटता क्रोधाग्नि से कठोर बोलनेवाला होता है वह जो पृथ्वी को भी देना चाहता है तो भी कौन उसके देखने की इच्छा करेगा जो लक्ष्मीवान् होकर सदैव अज्ञानी को मोहित करता है उसके चित्त को लक्ष्मी ऐसे हरलेती है जैसे कि शरद्‌ऋतु के बादल को वायु हरलेती है तदनन्तर इस धनी को रूप और धन का यह अहंकार होता है कि मैं बड़ा कुलीन हूं और सिद्ध हूं केवल मनुष्य ही नहीं हूं इन तीनों कारणों से इसका चित्त असावधान होताहै और उनमें अत्यन्त टक्कर खाया हुआ पिता के संचित धन को खर्च करके निर्धनता से धन आदि की चोरी को अच्छा मानता है उस बेमर्याद अर्थात् जहां तहां चोरी करनेवालेको राजालोग ऐसे दण्ड देते हैं जैसे कि बहेलिया बाणों से मृग को इसीप्रकार से इस लोक में नानाप्रकार के दैवी दुःख और देह को स्पर्श करनेवाले दाह आदि भी मनुष्य को प्राप्त होते हैं लोक के धर्म को देह आदिके साथ तुच्छ करके उन अवश्य होनेवाले दुःखोंकी चिकित्सा

बुद्धिसे करे-विना त्याग के सुख और मोक्ष की प्राप्ति और निर्भयतापूर्वक शयन को भी नहीं करता है और सबको त्यागकर आनन्दपूर्वक सुख भोगता है यह हस्तिनापुर में सम्पाक नाम ब्राह्मण से मैंने सुना है इससे मैंने भी त्याग ही को उत्तम माना है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि जो कर्म के प्रारम्भ करने की इच्छा करनेवाले पुरुष को धन प्राप्त न हो वह धनके लोभमें भरा हुआ क्या करके सुख को पावे-भीष्मजी ने कहा कि हानि,लाभ,प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठा को समानकर धन आदि के निमित्त परिश्रम करके सत्यता, वैराग्यता आदि में अनिच्छा जिस पुरुषकी होतीहै वही मनुष्य सुखी है-वृद्धों ने मोक्ष के निमित्त इन पांच पदों को कहा है यही स्वर्ग धर्म और सबसे उत्तमसुख मानाहै यहां एक प्राचीन इतिहासको कहते हैं जिसको कि वैराग्यपूर्वक मंकी ने कहा है कि धन के चाहनेवाले वारंवार आशारहित होकर मंकी नाम मनुष्य ने कुछ शेष धन से छकड़े में जोड़ने के योग्य दो तरुणबैलों को मोल लिया तो वह दोनों बछड़े जुयेके लगनेमें बड़े सीखे हुये निकले और एक ऊंट को बैठा हुआ देखकर अकस्मात् दौड़े तो वह ऊंट महाक्रोधित होकर उन दोनों बछड़ोंको उनके कन्धोंके बीचसे उठाकर बड़ी शीघ्रता से दौड़ा उस पराक्रमी ऊंटसे उठाये हुये उन बछड़ोंको मृतक हुआ देखकर वह मंकी बोला कि चाहे जैसा श्रद्धावान् कर्म करनेवाला चतुर भी मनुष्य होय परन्तु विना दैव के दिये हुये धनको कठिनता से भी नहीं प्राप्त करसक्ता प्रथम मुझ मनोरथरहित सावधानचित्त और मनोरथ सिद्ध करनेवालेके इस उपद्रवको जोकि बछड़े और ऊंट के कारण उत्पन्न हुआ है देखो कि कुमार्ग के द्वारा मेरे बछड़े उछल२कर ऐसे चलेथे जैसे कि किसी ने दोनों हाथों से ताली बजाई और उसमें कौवा दबजाय अर्थात् काकतालीन्याय होगया कि मेरे प्यारे दोनों बछड़े मणिके समान ऊंटके कन्धेपर लटकते हैं इसी को मुख्यदैव कहते हैं उसकी नाहींमें कोई उद्योग और पराक्रम नहीं होसक्ता अथवा जो किसी समयपर उद्योग भी बनपड़े तो वह भी उद्योग दैवाधीनही होजाताहै अर्थात् उद्योगका फल नष्ट होने पर उद्योग भी प्रारब्ध से ही सिद्ध होता है इस कारण सुख के चाहनेवाले को वैराग्य ही प्राप्त करना उचित है क्योंकि अर्थसाधन की आशा का त्यागने-

वाला वैराग्यवान् पुरुष आनन्द से सोता है—गुरुजनक के स्थान से जानेवाले सर्वत्यागी शुकदेवजी ने भी कहा है कि जो पुरुष सब कामनाओं को प्राप्त करे अथवा त्याग करे ऐसे स्थान में सब कामनाओं के मिलनेसे उसको सर्व त्याग ही अधिक है—प्राचीन समयमें भी किसीने सब कर्मोंके प्रारम्भ के अन्त को नहीं पाया है—अज्ञानी का लोभी देह जीवन में वृद्धि को पाता है हे इच्छावान्, मन ! तू सब कर्मों के प्रारम्भों को त्याग कर आन्तर्यस्वस्थचित्तता को प्राप्त कर वारंवार छलेजाने से दुष्प्राप्य वैराग्य को प्राप्त करहे धनके चाहनेवाले, मन ! जो तुझसे मेरा नाश न होसकै तो मेरे साथ इसप्रकारसे क्रीड़ा करके मुझको निरर्थक लोभमें संयुक्त मतकर तेरा धन वारंवार मिला और नष्ट हुआ अरे मूर्ख ! तू कभी भी इस धनकी इच्छा को त्यागेगा यह मेरी बड़ी अज्ञानता है जो मैं तेरा क्रीड़ारूपी मृग बना हुआ हूं क्योंकि इच्छारहित होनेपर कभी कोई भी पुरुष दूसरेकी आधीनी नहीं करसक्ताहै पहिले और दूसरे किसी मनुष्य ने भी इच्छा के अन्त को नहीं पाया है इस कारण मैं सब कर्मों के प्रारम्भ को त्याग करके सावधान होकर जागता हूं हे काम ! तेरा हृदय वज्र सा कठोर है जो हजारों अनर्थों से व्याप्त होकर भी खण्ड २ नहीं होता है मैं तुझको और तेरे अभीष्ट को जानता हूं और तेरे प्रिय को चाहता हुआ भी मैं आत्मा में सुख को नहीं प्राप्त कर सक्ता हूं और तेरे मूल को भी जानता हूं निश्चय करके तू संकल्प से उत्पन्न होता है मैं जब किसी बात का भी मनोरथ न करूंगा तो तू मूल समेत नाश होजायगा—धनकी इच्छा सुखदायिनी नहीं है उसके कारण बड़ी चिन्ता प्राप्त होती है जब कि धन जाता है तब मृत्यु के समान खेद होता है देह की प्रीति त्यागने से जो दूसरों के निमित्त धन को नहीं पाता है उससे अधिक क्या दुःख है जो प्राप्त होने से भी तृप्त नहीं होता है अर्थात् वारंवार खोजा ही करता है धन लोभ को ऐसे बढ़ाता है जैसे कि तृषा को उत्तम गंगाजल यही तृष्णा मेरा नाश करनेवाली है हे काम ! मैं सावधान हूं मुझे छोड़दे जो यह इन्द्रिय आदि का समूह मेरी देह में वर्तमान है वह चाहे इच्छानुसार रहै या नष्ट होजाय परन्तु यहां तुम सरीखे काम के लोभियों में मेरी प्रीति नहीं है इस कारण से कामना को त्याग करके सत्यवाले सतोगुण में वर्तमान हूं और मैं अपने चित्त और देह में सब जीवों को देखता हूं और योग में बुद्धि को शास्त्र में चित्त को और ब्रह्म में मन को लगाकर राग द्वेष से रहित नीरोग सुखपूर्वक विहार

करूंगा जिससे कि तुम फिर मुझको इस प्रकार के दुःखों में संयुक्त न करोगे क्योंकि मुझ तेरे भ्रमाये हुये को दूसरी गति नहीं है हे काम ! तुम लोभ, शोक, परिश्रम के सदैव उत्पत्तिस्थान हो मैं भी जानता हूं कि धनके नाश में सबसे अधिक दुःख है निर्धन मनुष्य की जातिवाले और मित्रलोग भी निन्दा करते हैं विना धन के मनुष्य में हज़ारों अपमान के साथ कठिन दोष हैं धन में जो सुख का अंश है वह भी दुःखमय है धनी पुरुष को चोरलोग नानाप्रकार से भयभीत करके दण्डपूर्वक कष्ट देते हैं यह मैं बहुत काल से जानता हूं कि धन की लालसा महादुःखदायिनी है यह पुरुष जिस २ कामना में प्रवृत्त होता है उस २ को स्वाधीन करता है—तत्त्व का न जाननेवाला अज्ञानी दुःख से तृप्त होनेवाला अयोग्य अग्निरूप होता है तुम सुलभ दुर्लभ दोनों को नहीं जानते हो पाताल के समान पूर्ण न होनेवाले तुम मुझको दुःखों में डाला चाहते हो इससे मैं तुझसे मिलने के योग्य नहीं हूं अब धनक्षय और दैव की इच्छा से वैराग्यवान् होकर परम निवृत्ति को प्राप्त करके कामनाओं की वासना नहीं करता हूं और यहां बड़े २ क्लेशों को सहकर भी अज्ञानता से ऐसे सचेत नहीं होता हूं मानो धन के नाश से ठगा हुआ महाभारी तप में प्रवृत्त अंगों में शयन करता हूं हे काम ! मैं चित्तकी सब वृत्तियोंको त्याग करके तुमको सब ओर से त्याग करता हूं सो तुम मुझसे कभी स्नेह मत करो—मैं अपमान करनेवालों की क्षमा और दुःखदायियों को कभी दुःख न देकर सबके प्यारे वचनों को कहूंगा और यथालाभ सन्तोष करके तुझ अपने शत्रु को कभी न चाहूंगा वैराग्य, सुख, तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सब जीवों में दयावान् होना इत्यादि गुणों से सम्पन्न मुझको जानो इस हेतु से मुझ मोक्षकामनावाले को काम, लोभ, क्रोधादि में मत प्रवृत्त करो क्योंकि मैं सतोगुण में वर्तमान हूं और काम लोभसे रहित होकर अब मैं बहुत प्रसन्न हूं और अज्ञान व लोभके कारण दुःख को कभी न पाऊंगा—जो पुरुष इच्छा आदि को त्यागता है वह सुखी होता है सदैव काम के ही आधीन होनेवाला पुरुष दुःख ही पाता है थोड़े रजोगुण में प्रवृत्त होकर मनुष्य योगइच्छा में चित्त को चलाता है और जो दुःख है वह काम क्रोध से उत्पन्न होनेवाला अमित और निर्लज्ज है मैं ब्रह्म में ऐसे प्रवेश करता हूं जैसे कि ऊष्म ऋतु में शीतलता हृदय में दुःख से रहित कर्मों की निवृत्ति को पाकर सिद्ध सुख को प्राप्त होता हूं लोक में विषयरूप सुख और स्वर्गसम्बन्धी

महाआनन्द है यह दोनों उस सुख के षोड़शांश के भी समान नहीं हैं जोकि लोभ के नाश से प्राप्त होता है मैं सूक्ष्मदेह से सातवें काम को बड़े शत्रु के समान मारकर और अविनाशी ब्रह्मलोक को पाकर राजा के समान सुख को भोगूंगा ऐसी बुद्धि वर्तमान होकर मंकी ने सब कामनाओं को त्याग बड़े ब्रह्मानन्द में प्राप्त होकर वैराग्य को पाया और निश्चय करके बछड़ों के नाश होने से काम के मूल को काटकर बड़े सुख को भी पाया ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पांचवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस स्थान में इस प्राचीन उपाख्यान को कहता हूं कि जिसको त्यागवान् राजा जनक ने कहा है कि मेरा पंचकोष लक्षणयुक्त धन असंख्य है अर्थात् देश, काल, वस्तुसे पृथक्है मुझ शुद्धआत्मारूप का वह कुछ नहीं है अर्थात् रस्सी में सर्प के समान भ्रान्ति के सदृश मुझमें कल्पित है इस कारण मिथिलापुरी को अग्नि में भस्म होने पर भी मेरी कुछ हानि नहीं है इस स्थान पर बोध्यऋषि ने भी यह श्लोक वैराग्य के विषय में कहा है उसको सुनो कि राजा ययाति ने वैराग्य से शान्तिरूप शास्त्रज्ञ बोध्यऋषि से पूछा कि हे महाज्ञानिन् ! आन्तर्यस्वस्थता होने के लिये मुझको उपदेश करो कि तुम किस ज्ञानको विचार करके शान्त और सुखी होकर विचरते हो बोध्यऋषिने कहा कि मैं किसी को न उपदेश करता हूं न आज्ञा देता हूं उसके लक्षणों को कहता हूं उससे अपने आपही विचार करो कि पिंगला नाम वेश्या, कुरर नाम पक्षी, सर्प, वन में भ्रमर का घूमना, बाण बनानेवाला, कुमारी यह छह मेरे गुरु हैं और आशा अथवा विषयभोग बड़े प्रबल हैं और विषयों का त्यागना ही बड़ा सुख है—पिंगला वेश्या तो विषयभोगों को त्यागकर सुखपूर्वक सोती है—मांसवाले कुरर नाम पक्षी को मांस न खानेवाले पक्षियों से दुःखी देखकर दूसरा कुररपक्षी मांस के त्यागने के द्वारा आनन्द से वृद्धि को पाता है—घर का बनाना सदैव दुःखदायी है कभी सुखदायी नहीं होता, सर्प दूसरे के बनाये हुये बिल में घुसकर आनन्द से रहता है, भिक्षावृत्ति में लगे हुये मुनिलोग भ्रमर पक्षियों के समान जीवों से शत्रुता न रखने के कारण निर्विघ्न रहते हैं बाण बनाने में संलग्न किसी बाण बनानेवाले ने समीप में आये हुये राजा को भी नहीं जाना इसीप्रकार ब्रह्म में तदाकार होना चाहिये, बहुत से मनुष्यों में सदैव

कलह होती है और दो पुरुषों का अवश्य विवाद होता है इसलिये चूड़ी रखदेनेवाली कुमारी के समान अकेला ही विचरूंगा ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे व्रतज्ञ, शोकरहित, पितामह! ज्ञानीलोग किस व्रत को करके पृथ्वी में विचरें और इस संसार में मनुष्य किस कर्म को करके उत्तम गति को पाता है—भीष्मजी बोले कि यहां भी एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें अजगरवृत्ति मुनि का और प्रह्लाद का संवाद है बुद्धिमान् राजा प्रह्लाद ने राग द्वेष से रहित किसी दृढ़चित्त ब्राह्मण से पूछा कि तुम आत्मनिष्ठ, शुद्ध, मृदु, जितेन्द्रिय होकर कर्म को प्रारम्भ किये विना अदोषदृष्टि, सत्यवक्ता, वाद प्रतिवाद में तत्पर, तत्त्वज्ञ होकर भी बालक के समान विचरते हो हानि लाभमें दुःखसुखरहित सदैव तृप्तपुरुष के समान किसी वस्तु को प्रिय अप्रिय न मान कर किसी को अपमान नहीं करते हो और कामादि के वेग से प्रजाओं के लूटने से खेदरहित चित्त धर्म, अर्थ, काम के कार्यों में कूटस्थ के समान दृष्टि पड़ते हो उस कूटस्थ को सुनिये कि धर्म अर्थ में अनियत काममें भी वर्ताव न करनेवाले इन्द्रियों के भी विषय को अनादर करके भोजन करते हुये साक्षी के समान जीवन्मुक्त होकर विचरते हो और हे ब्रह्ममुने! आपका तत्त्वदर्शन शास्त्र और उसपर अभ्यास करना क्या है इसको मेरे कल्याणके अर्थ शीघ्रता से कहिये तब उस शास्त्रज्ञ ऋषि ने प्रह्लाद से यह सार्थक वचन कहे कि हे प्रह्लाद! जीवोंकी न्यूनाधिकता और नाशको विना कारणके देखो अर्थात् माया के नाश होने से और सब दृश्यमान पदार्थों को ब्रह्ममय होने से द्वैतता सिद्ध नहीं होती है इसी से हर्षविषादरहित हूं सब पदार्थ स्वाभाविक प्रकट होकर वर्तमान हैं और सब आत्मसत्ता में ही संयुक्त हैं इस हेतु से किसी संसारी वस्तु को देखकर प्रसन्न नहीं होता और यही जानें कि यह संसार मिथ्याहै इसप्रकार से तत्त्वदर्शी लोग आत्मभावको सिद्ध करके अन्तर्दृष्टिसे भी संसार को अनित्य और मिथ्या कहते हैं हे प्रह्लाद! योगसे वियोग प्राप्त होनेवाले मनुष्यों को और अन्त में नाशवान् धनके समूहों को देखो कि मैं इसी कारण से कहीं चित्त को नहीं लगाता हूं—तीनों गुणों से संयुक्त जीव मृत्तिका से स्वरूपान्तर होनेवाले घट के समान नाशवान् हैं इस उत्पत्ति नाशके देखने और जाननेवाले ज्ञानीको

कोई बात करने के योग्य नहीं है—दूसरे को भी दृष्टिसे इस संसार को नाशवान् ही प्रसिद्ध करते हैं महासमुद्र के जल में उत्पन्न होनेवाले सब बड़े छोटे देहवाले जीवों का भी क्रमपूर्वक नाश देखने में आताहै और हे असुरेन्द्र, प्रह्लाद! पृथ्वी के भी सब स्थावर जंगम जीवों के भी नाश को सब ओर से देखता हूं और अन्तरिक्षचारी पक्षियों की भी मृत्यु को देखता हूं पराक्रमी जीवों की भी मृत्यु नियत समय पर होती है और आकाश के छोटे बड़े नक्षत्रों को भी नियत समय पर पतन होते देखता हूं इसप्रकार जीवों को मृत्युवश देखता हुआ सबमें ब्रह्मसत्ता जानकर ज्ञानीहोकर आनन्दसे सोताहूं और स्वतः मिलनेवाले बड़े ग्रास को भी खाता हूं और कभी विना भोजन के भी बहुत दिनतक सोता हूं अर्थात् समाधिमें वर्तमान होता हूं मैं अनेक गुणवाले अन्नोंसे बहुत भोजन फिर थोड़ा२ क्रम से घटाताहुआ यहां तक कि कुछ भी नहीं खाता हूं और इसकी अप्राप्तिमें कभी धन खल मांसादि अनेकप्रकार के भोजनों को भी खाता हूं कभी पलँगपर कभी पृथ्वीपर सोता हूं कभी शय्या महल में जहां सनसूत्र और कोमल मृगचर्मों को ओढ़ता बिछाता हूं कभी२ बहुमूल्यवस्त्रों को भी धारण करता हूं दैवइच्छा से प्राप्त होनेवाले किसीप्रकार के भी वस्त्रों को त्याग नहीं करताहूं और इस कठिनता से प्राप्तवस्तु को रक्षापूर्वक भी नहीं रखता हूं पवित्र होकर इस अजगर व्रत को करता हूं यह व्रत बड़ा दृढ़ मृत्यु का विरोधी कल्याणकारी शोकरहित अत्यन्त पवित्र ज्ञानियों करके स्वीकृत अज्ञानियोंसे असेवित और अस्वीकृत है और बुद्धि में सावधान स्वधर्म से नाश न होनेवाला सन्धियोग करनेवाला दोनों लोक का जाननेवाला भय, मोह, लोभ, राग, द्वेष आदि से पृथक् इस पवित्र अजगरव्रत को करता हूं जिसमें भोजन पान करने की जो फल आदि वस्तु विपरीत दशामें प्राप्त देशकालवाली हैं वह नियत नहीं हैं और जो हृदय का सुखरूप विषय के नानालोभों से सेवन नहीं किया गया है अर्थात् यह करूं यह करूं इस लालसा से निरादरयुक्त धन न पानेवाले दुःखी मनुष्य को तत्त्वबुद्धि से अच्छे प्रकार से विचार कर शुद्ध अन्तःकरण से इस अजगरव्रत को करता हूं इस लोक में धन के लिये उत्तम अनुत्तम मनुष्यों के आश्रित बहुत प्रकार के दुःखी मनुष्यों को देखकर शान्तचित्त हो सिद्धान्तसे इन सुख, दुःख, लाभ, हानि, राग, द्वेष, मृत्यु, जीवन को दैवाधीन देखकर भय राग अहंकार से रहित धैर्यवान् विचारवान् बुद्धियुक्त श्रेष्ठ फल के पानेवाले अजगर सर्पों को

देखकर और शयन भोजन के नियम से रहित स्वाभाविकीय शान्तचित्तता नियम व्रत में दृढ़ सत्यता, पवित्रतायुक्त सब फलों से रहित प्रसन्न ज्ञानी होकर विषयवासना से पृथक्चित्त जितेन्द्रिय शुद्ध अन्तःकरण होकर इस अजगरव्रत को करता हूं यह अजगरव्रत सबको इसप्रकार से प्यारा वर्णन करते हैं और बुद्धिमान् कीर्तिचाहनेवाले पण्डित जो तर्कशास्त्र के ज्ञाता हैं वहभी इस अतर्क्य आत्मतत्त्व को बहुत प्रकार से उत्तम कहते हैं कि यह प्रत्यक्षादि प्रमाणों से निश्चय होनेवाला जगत् अज्ञानी मनुष्यों की ओर से आत्मा से पृथक् माना गयाहै तो उस जगत्का हेतु काल गुण देश आदि से निश्चय न होनेवाला दोषरहित देश से सम्बन्ध रखनेवाला है उसको शास्त्रयुक्तियों से विचारकर तृष्णारूपी दोष से पृथक् होकर मैं मनुष्यों के मध्य में विचरता हूं—भीष्मजी बोले कि इसलोक में जो महात्मा ज्ञानी पुरुष राग, भय, लोभ, मोह, क्रोधसे पृथक् होकर इस अजगरव्रतरूप क्रीड़ा को करेगा वह सुखपूर्वक विहार करेगा ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! अजगरव्रतरूप और आत्मभावलक्षणवाली प्रतिष्ठा कौनसी है और भाई बन्धु या मणि, मन्त्र, औषध , कर्म, धन, ज्ञान आदि को भी मुझसे कहिये भीष्मजी बोले कि जीवों की अहिंसारूप प्रतिष्ठा को ज्ञान समझो इसी ज्ञान को बड़ा लाभकारी लोक में कल्याणरूप सत्पुरुषों ने स्वर्ग माना है ऐश्वर्य के नष्ट होने पर राजा बलि, प्रह्लाद, नमुचि, मंकी आदि ने भी ज्ञान से ही मनोरथों को सिद्ध किया है उस ज्ञान से उत्तम कौन पदार्थ है इस स्थान पर उस पुराणकथा को भी कहता हूं जिसमें इन्द्र और काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण का संवाद है किसी अहंकारी धनवान् वैश्य ने किसी व्रती काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण को रथ की टक्कर से गिरादिया तब वह गिरकर महापीड्यमान क्रोधयुक्त हुआ और अधीर होकर बोला कि मैं मरजाऊंगा क्योंकि इस संसार में विना धन के जीवन निष्प्रयोजन है उस मरने की इच्छा करनेवाले मूर्च्छित अचेत लोभी ब्राह्मण से शृगालरूप होकर इन्द्र ने कहा कि सब जीवमात्र और देवतालोग नरयोनि को ही चाहा करते हैं और नरों में भी ब्राह्मण वर्णको श्रेष्ठ जानते हैं हे काश्यपगोत्रीय ! तुम वेदपाठी ब्राह्मण मनुष्य हो इस उत्तम देह को पाकर अज्ञानता से मरने के योग्य हो सब लाभ अहंकार से

संयुक्त हैं अर्थात् वास्तव में सत्य नहीं हैं यह सत्यश्रुति है तुम सन्तोषी होकर लोभ से ऐसे उत्तम देह का अपमान करते हो बड़ा आश्चर्य है कि जिनके हाथ हैं उनकी यह मनोरथों की सिद्धता देखीजाती है—जैसे कि तुम धन की इच्छा करते हो उसीप्रकार हम हाथवालों की इच्छा करते हैं क्योंकि हाथ के प्राप्त होने के सिवाय दूसरा कोई विशेष लाभ नहीं है हे ब्राह्मण ! देखो कि हम हाथ के न होने से न तो कांटा निकालसक्ते और न देह में पीड़ा देनेवाले मच्छर मक्खी आदि को मारसक्ते हैं हाथ रखनेवाले मनुष्य देह में दंश करनेवाले अनेक दुःखदायी कीटों को मारते हैं और वर्षाऋतु बर्फ और धूप आदि से अपने को स्थान आदि बनाकर रक्षा करते हैं और अन्न, वस्त्र, शय्या, वायु आदि के सुख को भी भोगते हैं और संसार में पृथ्वी और बैल आदि को स्वाधीन करके भोगतेहैं और सवारी में लाते हैं और अनेक प्रकार के भोग भी हाथों ही के द्वारा अपने स्वाधीन करते हैं हे मुने ! जिनके मुख, जिह्वा, हाथ, पैर आदि नहीं होते हैं वही मनुष्य देह के त्याग को करते हैं तुम इसके योग्य नहीं हो क्योंकि तुम प्रारब्धाधीन न तो शृगाल हो न सर्पादि कीड़े न मेढक न किसी पापयोनि में पैदा हो हे काश्यप ! इतने पदार्थों के होते भी तुम अधैर्यता करते हो तुम सब प्राणियों में उत्तम ब्राह्मण होकर क्षमावान् क्यों नहीं होते तुम मेरी दशा को देखो कि विना हाथों के यह कीड़े मुझको काटते हैं और कुछ नहीं करसक्ता मैं इस अयोग्य देह को भी नहीं त्याग सक्ता क्योंकि न जानें इससे भी निकृष्ट कोई पापयोनि में उत्पन्न होजाऊं मैंने पापयोनि में से इस शृगाल देह को पाया है इससे भी अधिक बहुत सी पापयोनियां हैं—कोई तो जन्म से ही बड़े सुखी हैं और कोई अत्यन्त दुःखी हैं इस संसारमें किसीको सर्वसुखसम्पन्न नहीं देखता हूं मनुष्य धनवान् होने के पीछे राजा होने की इच्छा करते हैं राज्य से देवभाव को देवभाव से इन्द्रपद को चाहते हैं इससे तुम धनवान् होकर राजपद इन्द्रपद पाने पर भी सन्तोष नहीं करोगे लोभ ऐसा प्यारा है कि उससे कोई तृप्त नहीं होता जैसा कि तुम में शोक है वैसेही प्रसन्नता भी है यही दुःख सुख सबमें हैं इसमें विलाप करना व्यर्थ है अर्थात् अपने उत्तम कुल में वर्तमान होकर आनन्द से शोकको दूर कर सक्ते हो सब कर्म और कामनाओं की मूल बुद्धि को और इन्द्रियों के समूह को देह में स्वाधीन करके ऐसे निर्भय होजावो जैसे कि मनुष्य पिंजरे में पक्षियों को बन्द करके उनके भागजाने

आदि नहीं सुना जाता है क्योंकि वास्तव में एक शिर और दो हाथ होते हैं इनके सिवाय जो है ही नहीं तो उसके काटने का भय भी नहीं है तात्पर्य यह है कि जो तीनों काल में अद्वैत है तो भय भी नहीं है निश्चय है कि अज्ञानी पुरुष की इच्छा कहीं उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि वह स्पर्श और देखने सुनने से भी प्रकट होती है तुम मद्य और लद्वाकू नाम पक्षी के मांस को स्मरण नहीं करते हो इनसे अधिक कोई भक्षण की वस्तु कहीं नहीं है हे काश्यप ! पहिले समय में जीवों में जो दूसरे प्रकार के भोजन वर्तमान हुये और जिनको तुम ने भोजन नहीं किया उन भोगों का भी ध्यान तुम को नहीं होता है इसमें सन्देह नहीं है कि देह के निर्वाह योग्य भोजन से अधिक भोजन करने न छूने और न उसके देखने का जो नियम है वह निस्सन्देह पुरुष का कल्याणकारी है हाथ रखनेवाले पराक्रमी धनीलोगों को भी मनुष्यों ने ही स्वाधीन किया है वह लोग वारंवारके घात और बन्धन से दुःखको पातेहुये भी निस्सन्देह क्रीड़ायुक्त होकर प्रसन्न होते हैं तात्पर्य यह है कि होतव्यता में दुःखको न मानना चाहिये बहुत से भुजाओं के बली शास्त्रज्ञ धैर्यवान् मनुष्य निन्दित और दुःखरूप आजीविका को करते हैं और दूसरी भी आजीविका करने की इच्छा करते हैं वह भी अपने कर्मानुसार होतव्यता ही गिनी जाती है देखो म्लेच्छ चाण्डाल भी अपनी देह को नहीं त्यागना चाहता है सब अपनी २ योनियों में प्रसन्न हैं हे काश्यप ! पक्षाघात से अयोग्य हाथ रखनेवाले अथवा किसी रोग से पीड्यमान मनुष्यों से अपने को सब प्रकार से उत्तम समझो कि तुम देह से नीरोग सर्वांगधारी उत्तम कुलनि अनिंदित कलंकरहित वर्तमान हो इससे धर्म के निमित्त उठो और देह को त्याग न करो जो तुम मेरे वचनको मानोगे तो विवेकसहित चित्तशुद्धि को पावोगे इससे सावधान होकर वेदपाठ अग्निसंस्कार सत्यता शान्तता उदारता आदि में प्रवृत्त होकर किसीसे ईर्षा न करो—जो कोई वेदपाठी यजन याजन आदि कर्मों को करते हैं वह शोचरहित कल्याण के भागी होते हैं और अनेक उत्तम यज्ञों को करके सुखपूर्वक विहार करते हैं शुभ नक्षत्र तिथि मुहूर्त में उत्पन्न होनेवाले मनुष्य सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ दानादि करके सन्तान की इच्छा में उद्योग करते हैं और इसके विपरीत अशुभ नक्षत्रादि में उत्पन्न होनेवाले लोग आसुरीयोनि में प्राप्त होकर यज्ञों से रहित होते हैं मैं पहिले समय में पण्डितों का विरोधी और वेदशास्त्रकी निन्दा

करनेवाला था और आन्वीक्षिकी नाम तर्कविद्या जो सब ओर से पुरुषार्थरहित है उसमें प्रीतिमान् हेतुवचनों का बोलनेवाला होकर साधुस्वभाव में कारणरूपही वचन बोलता था और वेदोक्तवचनों के विरुद्ध कठोर वचन कहनेवाला और वेदवचनों में ब्राह्मणों का उल्लंघन करनेवाला मूर्खता से सब में शंका करनेवाला महानास्तिक पण्डिताई में अहंकार करनेवाला था उसी कर्म के फल से यह शृगालयोनि मुझे प्राप्त हुई है कभी ऐसा भी ईश्वर करेगा कि मैं इस शृगालरूप नीचयोनि से छूटकर मनुष्ययोनि में भी प्राप्त होजाऊंगा तो मैं यज्ञ दान तप से प्रीतिमान् योग्यायोग्य का ज्ञाता और त्याज्य योग्य को त्याग करनेवाला होजाऊंगा तब उस आश्चर्य में भरे हुये काश्यप मुनिने उठकर उससे कहा कि बड़ा आश्चर्य है कि तुम इस योनि में ऐसे बुद्धिमान् और कुशल हो यह कह कर ध्यानपूर्वक उसको देखा तब देवेन्द्र शचीपति इन्द्र को जाना और बड़ी विधि से उसका पूजन किया और पूजा पाकर इन्द्र अपने स्थान को गये ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि अजगरव्रत के प्राप्त करने में देह के अभिमान दूर करने के निमित्त ज्ञान ही कारणरूप है और ज्ञान बुद्धि का ऐसा रूपान्तर है जैसा कि दूध से दही का रूपान्तर होता है वह समय पर आपही प्राप्त होजायगा फिर दान यज्ञ से क्या प्रयोजन है और हे पितामह ! जो ज्ञान इष्ट और किया हुआ तप गुरु की सेवा आदि बुद्धि की प्राप्ति के कारण होते हैं उनको भी मेरे अनुष्ठान के योग्य आप कहिये भीष्मजी बोले कि अनर्थयुक्त बुद्धि के कारण चित्त पाप में प्रवृत्त होता है और अपने पापकर्म के कारण नरक भोगना पड़ता है पापात्मा दरिद्रीलोग दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष क्लेश से क्लेश भय से भय और मरण से मरण को भी भोगते हैं अर्थात् वारंवार उनको सहते हैं और उत्सव से उत्सव स्वर्ग से स्वर्ग और सुख से सुख को पाते हैं और जो श्रद्धावान् जितेन्द्रिय शुभकर्मी हैं वह धनवान् हैं नास्तिक मनुष्य हाथों में हथकड़ी पहिरे सर्प हाथी आदि से अगम्य मार्ग में चोरों से भयभीत होकर जाते हैं इससे अधिक कौनसा दुःख होगा जो पुरुष देवता अतिथियों के प्यारे दानी साधुवों के कृपापात्र हैं वह चित्त को जीतकर योगियों के मार्ग में नियत होते हैं वह योगमार्ग विघ्नरहित योग्य दान के समान है मनुष्यों में जिनका धर्म सुख का कारण नहीं है वह खेतों में

गर्मी से पकेहुये अन्न के समान और पक्षियों में मच्छर के समान हैं जिस २ पुरुष ने जो २ कर्म पूर्व में किये हैं वही उनके साथ रात्रिदिन बने रहते हैं और शीघ्रता से दौड़ने के समय दौड़ते हैं और नियत होनेवाले के साथ नियत होते हैं चलनेवाले के साथ चलते हुये प्रतिबिम्ब के समान पुरुष के समान होते हैं पूर्व में अपने २ जैसे २ कर्म जिसने किये हैं उनको अकेला ही भोगता है ऐसे कर्मवाले लोगों को कालपुरुष चारोओर से खींचता है और जैसे कि अपनी २ ऋतु के समय फल फूल फूलते हैं उसीप्रकार काल भी अपने समय को कभी नहीं चूकता है अर्थात् कर्म का फल समयपर अवश्य होता है प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठा, हानि, लाभ, नाश, उदय, प्रारब्ध यह वारंवार होनहार के पीछे रूपोंको बदलते हैं गर्भ से लेकर मरणपर्यन्त अपनी आत्मा से उत्पन्न होनेवाले पिछले देह के सम्बन्ध से दुःख सुख को भोगता है बाल, वृद्ध, तरुण कोई हो जो जिस समय जैसा २ कर्म करताहै वह उसी २ दशा में अपने कर्मों के शुभ अशुभ कर्मफलों को भोगता है जैसे कि गौ का बछड़ा हजारों गौवों में से अपनी माताको पहिंचानता है उसी प्रकारसे पिछले जन्मों का किया हुआ कर्म भी कर्ता को पहिंचान लेता है कीच में बिगड़ा हुआ वस्त्र जैसे जलसे साफ़ होता है इसीप्रकार से उपवासपूर्वक तप करनेवालों को अत्यन्त सुखकारी मोक्षरूप फल प्राप्त होता है तपोवन के बीच बहुत कालतक किये हुये तपके द्वारा उन धर्मोंसे निष्पाप होनेवाले पुरुषों के सब मनोरथ ऐसे सिद्ध होते हैं जिसप्रकार आकाश में पक्षियों के और जल में मछलियों के चरण दृष्टि नहीं पड़ते उसीप्रकार से ब्रह्मज्ञानियों की भी गति है अर्थात् वह महापुरुष ब्रह्मलोक के जाने की इच्छा नहीं करते हैं किन्तु उनके शुद्धप्राण ब्रह्म में लय होजाते हैं निन्दापूर्वक वचन कहने के अपराधों को क्षमा करके कुशलता से अपने योग्य हित को करना चाहिये अर्थात् उस कर्म के द्वारा सब वासनाओं के उदय से श्रेष्ठ बुद्धि प्रकट होती है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! ऊपर के आठ अध्यायों में क्रम से वर्णन किया है कि पूर्वावस्था में इच्छा को त्याग हिंसारहित परिग्रहभिन्न शुभकर्म करनेवाला ज्ञानी अजगरीव्रत में वर्तमान ब्रह्मविद्या का अधिकारी होना और समय पर आत्मतत्त्व का भी वर्णन कर ब्रह्म को अद्वैत प्रतिपादन करके

ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्म ठहराया फिर कार्य कारण के न होने से संसार की उत्पत्ति को अनहोना मानकर युधिष्ठिर ने फिर प्रश्न किया कि हे पितामह ! यह सब स्थावर जंगम कहां से उत्पन्न हुये हैं और प्रलय में किसको प्राप्त होते हैं इसको आप मुझ से वर्णन कीजिये कि यह सागर, आकश, पर्वत, बादल, पृथ्वी, अग्नि, वायु समेत संसार किससे उत्पन्न हुआ है जीवों की उत्पत्ति और वर्णों का विभाग होकर उनके शौचाशौच धर्माधर्म विधि किस २ प्रकार से हुई है और जीवोंका जीवात्मा कैसा है और जो मुक्तहुये वह किसमें लयहुये इस लोक से परलोकपर्यन्त का यह वृत्तान्त वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर एक प्राचीन इतिहासको कहते हैं जिसमें भृगुजीने प्रश्न करनेवाले भारद्वाज ऋषि से शास्त्र को वर्णन किया है कि भारद्वाज ऋषि ने प्रकाशवान् कैलास के शिखरपर महातेजस्वी भृगु महर्षिको बैठेहुये देखकर यह प्रश्न किया कि यह सागर, बादल, पर्वत आदि अनेक स्थावर जंगम जीवों सहित संसार किस से उत्पन्न हुआ है और पंचतत्त्व कहांसे हुये और जीवोंकी उत्पत्तिपूर्वक वर्णन विभाग कैसे और कहां से हुआ है और शौचाशौच उनमें कैसे और कहां से हुआहै और धर्माधर्म और जीवोंका जीव क्या है और जो मुक्त हुये वह किस में लयहुये और होते हैं यह सब इस लोकसे परलोकपर्यन्त आप मुझ से वर्णन कीजिये तब भृगुजीने कहा कि सबसे प्रथम मानस नाम प्रकाश जो महर्षियों से जानागया वह आदि अन्त रहित देव दानवों से अभेद्य अजर अमर है और वृद्धि क्षय जन्मादि से रहित सदैव एकरूप अव्यक्त होकर प्रसिद्ध है उसी से जीवों की उत्पत्ति और नाश होता है तात्पर्य यह है कि निर्जीव गुणवाले चैतन्य नहीं होते अर्थात् उसी अव्यक्तदेव ने प्रथम महान्त को उत्पन्न किया फिर महान्त से अहंकार को, अहंकार से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी को उत्पन्न किया स्थूलतत्त्ववाले चार प्रकार के जीवों की अहंकार से उत्पत्ति है जो आकाशादि पांचतत्त्व सब में वर्तमानहैं वही महातेजस्वी ब्रह्म विराट्रूपहै जिसके पहाड़ अस्थि, पृथ्वी मांस, मज्जा, समुद्ररुधिर, आकाश उदर, वायु श्वास, अग्नि तेज, नदी नाड़ियां और अग्नि सूर्य चन्द्रमा नेत्र, आकाश शिर, पृथ्वी दोनों चरण, दिशा भुजा हैं यह अचिन्त्य आत्मा सिद्धोंसे भी कठिनतासे जानाजाता है और अनन्त नामसे प्रसिद्ध सब जीवमात्रों का आत्मारूप अहंकार में वर्तमान यह विष्णु भगवान्

अशुद्ध अन्तःकरणवालोंसे कष्टसाध्य सब जीवों के उत्पन्न करने के निमित्त अहंकार को उत्पन्न करनेवालेहैं और इसीसे यह विश्व हुआ यही तेरे प्रश्न का उत्तर है और दूसरा प्रश्न जो तेराहै कि संसार किससे उत्पन्नहुआ उसका उत्तर ऊपरही दिया है कि विराट्रूप से उसमें वर्तमान है उसका मिलना नियतस्थान पर है अथवा सबस्थानपरहै इसका उत्तर फिर देंगे भारद्वाज ने कहा कि आकाश दिशा पृथ्वी वायु इनका क्या परिमाणहै इसको भी मूलसमेत वर्णन कीजिये भृगुजी बोले कि सिद्ध देवताओं से सेवित क्रीड़ायोग्य भवनों से युक्त जो यह आकाश है उसका अन्त नहीं है जहांतक कि सूर्य की किरणें जाती हैं उससे ऊपर और नीचे सूर्य और चन्द्रमा दृष्टि नहीं आते वहांपर देवता ही अपने तेजोंसे सूर्य के समान प्रकाशवान् तेजस्वी अग्नि के सदृश तेजवाले हैं वह तेजस्वी देवता भी इस आकाश के अन्त को नहीं जानते हैं एक से एक ऊपर अपने २ तेजों से प्रकाशवान् लोकों से और अनेक देवताओं से यह आकाश व्याप्त है चौड़ाई का भी प्रमाण अनन्त है इसको सुनो पृथ्वी के अन्त में समुद्र और समुद्र के अन्त में अंधेरा है, अंधेरे के अन्त में जल और जल के अन्त में अग्नि वर्तमान है, रसातल के अन्त में जल और जल के अन्त में सर्पराज उसके अन्त में फिर आकाश और आकाश के अन्त में फिर जल है इसप्रकार से जलरूप भगवान् दीखते हैं परन्तु जल, अग्नि, वायु आदि के मण्डल का अन्त देवताभी कठिनतासे जानसक्ते हैं अग्नि, वायु, पृथ्वी, तेज, वरुण आदि आकाश से होते हैं और तत्त्वों के न देखने से विभाग को प्राप्त होते हैं अर्थात् वास्तव में सब आकाशरूप हैं परन्तु मुनिलोग नानाशास्त्रों में इसप्रकारसे इस त्रिलोकी का परिमाण सागर समेत कहते और पढ़ते हैं कि जो अदृश्य और अगम्य है उसका क्या परिमाण कहना चाहिये जिसके जानने को देवताओं की भी गति नहीं है वह अनन्त विश्वरूप प्रलय की दशामें योगनिद्रा करके सबको अपने में लय करता है फिर जागने के समय वृद्धि को पाताहै अर्थात् आदि, अन्त, मध्य में भी एकरूप होकर नहीं है अर्थात् ब्रह्मरूप है दूसरा कौन पुरुष है जो उसप्रकार के ब्रह्मभाव को प्राप्त होकर जानने के योग्य हो अर्थात् कोई नहीं है क्योंकि मृगतृष्णा के बीच रस, रूप, जल और स्पर्श को कौन करसक्ता है तदनन्तर उनके स्थूल, सूक्ष्मरूपकी नाभिकमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुये वही सर्वज्ञ मूर्तिमान् धर्मरूप प्रभु पहिले प्रजापति सर्वोत्तम हैं भारद्वाजजी

बोले कि जो ब्रह्माजी कमल से उत्पन्न हुये हैं तो उनसे पूर्व होने के कारण कमल क्यों नहीं बड़ा है और आप ब्रह्माजी को सबसे प्रथम उत्पन्न होनेवाला कहते हैं इसमें मुझको सन्देह है भृगुजी ने कहा कि मनुष्य देव की जो मूर्ति है उसने ब्रह्मारूप को प्राप्त कियाहै उसके आसन विधान के निमित्त पृथ्वी ही कमलरूप कहीजाती है उस कमलका जो एक भाग आकाश की ओर को ऊंचा है उसका सुमेरु पर्वत नाम है उसके मध्य में वर्तमान होकर लोकों के स्वामी ब्रह्माजी जगत् को उत्पन्न करते हैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशवां अध्याय ॥

भारद्वाजजी बोले कि हे भृगुजी ! सुमेरु पर्वत पर वर्तमान होकर ब्रह्माजी सृष्टि को किसप्रकार से उत्पन्न करते हैं क्योंकि जीवों की उत्पत्ति तो अपने २ वीर्यों से उत्पन्न दृष्टि आती है उसमें उसकी क्या ईश्वरता है इसको आप वर्णन कीजिये भृगुजी बोले कि मानस नाम देवता ने जीवों की रक्षा के निमित्त नानाप्रकार की सृष्टि को मन से उत्पन्न किया है अर्थात् वह सत्यसंकल्प है इससे वहां वीर्य की कुछ आवश्यकता नहीं है प्रथम जल को उत्पन्न किया वही जल सब जीवों का प्राणरूप है उसी से सबकी वृद्धि होती है और उसके विना सबका नाश होता है उसीसे सब व्याप्त है और पृथ्वी, पर्वत, मेघ और मूर्तिमान् जो अन्य पदार्थ हैं सब उसी जल से उत्पन्न जानो भारद्वाज बोले कि यह जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी आदि कैसे उत्पन्न हुये हैं इस सन्देह को आप निवृत्त कीजिये भृगुजी ने उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण ! पूर्वकाल में ब्रह्मकल्प अर्थात ब्रह्मलोक के कल्पके प्रारम्भ में महात्मा ब्रह्मऋषियों के समूह में भी संसार की उत्पत्ति के विषय में बड़ा सन्देह हुआ था तब आज्ञा हुई थी कि ध्यान योग में वर्तमान होना चाहिये यह सुनकर वह ब्राह्मण हृदयकमल की ओर ध्यान लगाकर निरोधरूप योग में नियत होकर स्थिर वायुभक्षण के आधार से दिव्य शतवर्ष पर्यन्त वर्तमान हुये वहां हृदयकमल में हार्दाकाश के द्वारा दिव्य रूप सरस्वतीजी प्रकट हुईं और वेदरूप वाणी उन सबके कानों में पहुँची तो प्रथम हार्दाकाश में गुरु की युक्ति के द्वारा और स्थूलदेह से भिन्न सूक्ष्मदेह के चित्त धारण करने से श्यामरूप अचल अनन्त आकश जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, वायु नहीं है सोता हुआ सा दृष्टि आया फिर कुछ अन्धकार दूर होने पर पुरुष को

तृष्णायुक्त होने से जल की इच्छा होते ही जल उत्पन्न हुआ उसके पीछे वायु उत्पन्न होती ऐसी दृष्टिपड़ी जैसे कि विना छिद्र का घट विना शब्द के देखने में आता है उस पात्र को जल से पूर्ण होते ही वायु शब्दायमान करतीहै इसी प्रकार जल से आकाशपर्यन्त व्याप्त होने से शब्दायमान वायु समुद्रतल को फाड़कर उछलती है और समुद्र की पूर्णता से उत्पन्न होनेवाला वायु आकाश स्थान को पाकर चारो ओर को घूमता है और कहीं शान्ति को नहीं पाता है फिर उस वायु और जल के बढ़ने से प्रकाशवान् तेजस्वी और पराक्रमी ऊंची शिखा रखनेवाला अग्नि आकाश को अन्धकार से रहित करके उत्पन्न हुआ वह अग्नि वायु से मिलकर जल को आकाश की ओर उछालता है और वायु के ही योगसे वह अग्नि बादलरूप हो जाताहै उस आकाश में जानेवाले जल का जो दूसरा रस नीचे को वर्तमान होता है वह अग्नि वायु से संयुक्त होकर पृथ्वीरूप होजाता है यहां सब रस गन्धादि और जीवों के उत्पत्तिस्थान को सब वस्तुवों की उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी समझो ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहवां अध्याय ॥

भारद्वाज बोले कि जो यह पांच धातु पंचतत्त्वों में ब्रह्माजी ने प्रथम उत्पन्न किये उन्हीं महाभूतों से यह सब लोक आच्छादित है इनमें सन्देह है कि जब ब्रह्माजी ने हजारों भूतों को उत्पन्न किया है तो केवल पांच ही भूतों का होना कैसे सिद्ध हुआ अर्थात् ब्रह्माजी के उत्पन्न किये हुये आकाशादि पंचधातु स्वप्न के समान मध्यवर्ती हैं वह अपनी मर्यादा से अलग होकर बाहर के लोकों के ढकनेवाले कैसे होसक्ते हैं अर्थात् किसीप्रकार से नहीं होसक्ते भृगुजी बोले कि जो अत्यन्तता से रहित हैं उनके लिये महाशब्द नियत हैं उनसे जीवों की उत्पत्ति होती है इसी कारण वह महाभूत कहे जाते हैं देह की चेष्टा, वायु, छिद्र, आकाश, उष्णता, अग्नि, रुधिर आदि सब जल हैं और मांस, अस्थि आदि कठोर वस्तु देह में पृथ्वी है इन हेतुवों से देह पंचतत्त्वात्मक कहा जाता है इन प्रकारों से सब स्थावर जंगम जीव पंचभूतों से संयुक्त हैं—श्रोत्र, घ्राण, रसना, स्पर्श, दृष्टि आदि सब इन्द्रिय हैं भारद्वाज बोले कि जो स्थावर जंगम जीव पंचभूतात्मक हैं तो स्थावर जीवों में भी पंचतत्त्व दृष्टि पड़ते हैं या नहीं उष्णता और चेष्टा से रहित ठोस वृक्षों के देह में पांच धातु मुख्यता से मिलती हैं वह

वृक्ष न देखते हैं न सुनते हैं न गन्ध रस आदि के जाननेवाले हैं वह कैसे पंचतत्त्वात्मक हैं जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु और आकाश का भाव न होने से वृक्ष पंचभूतात्मक नहीं मालूम होते हैं, भृगुजी बोले कि ठोस वृक्षों में भी आकाश निस्सन्देह है क्योंकि सदैव उनमें फल फूल प्रकट होते हैं तात्पर्य यह है कि उनमें फल फूलों की प्रकटता और रस का होना विना आकाश के असम्भव है और ऊष्मा से छाल और फल फूल कुम्हिलाते हैं और गिरते हैं इस कारण स्पर्शेन्द्रिय भी उनमें वर्तमान है—वायु, अग्नि और बिजली के शब्दों से फल फूल गिरते हैं इस कारण उनमें श्रवणेन्द्रिय भी है क्योंकि शब्द के सुनने से ही फल फूलों को गेरते हैं—लता वृक्षों से लिपटती है और सब ओर को जाती है और दृष्टि के विना मार्ग नहीं है इससे वृक्षादि में चक्षुरिन्द्रिय भी है उसीप्रकार पवित्र अपवित्र गन्धि और नानाप्रकार की धूपों से ही नीरोग होकर पुष्पित होते हैं इस हेतु से वृक्षों में घ्राणेन्द्रिय भी वर्तमान है जड़ों से जल के पीने और रोगों के देखने से और रोगों की चिकित्सा होने से वृक्षों में रसनेन्द्रिय भी वर्तमान है जैसे कि कमल अपने नाल से ऊपर को जल खींचता है उसीप्रकार वृक्ष भी वायु के योग से अपनी जड़ों के द्वारा जल को पीता है और सुख दुःख होने और खण्डित शाखा उत्पन्न होने से वृक्षों में जीवों को देखता हूं इस निमित्त उनमें जड़ता नहीं मालूम होती उसके पिये हुये जल को वायु और अग्नि पचाती है और आहार के रस से कोमलता और अंगों की दृढ़ता प्राप्त होती है सब जंगम जीवों के देहों में पांच धातु पृथक् २ नियत हैं उन्हीं से देहों की चेष्टा होती ही है त्वक्, मांस, अस्थि, गुदा, नाड़ी इन पांचो का एकत्वरूप देह में पृथ्वी है उसीप्रकार देहधारियों की देह में अग्नि, तेज, क्रोध, ऊष्म, चक्षु, जठराग्नि यह पांचो अग्निरूप हैं कान, नाक, मुख, हृदय, अन्न आदि का कोष, प्राणियों के देह में यह पांचो धातु आकाशतत्त्व से उत्पन्न हैं—कफ, पित्त, पसीना, मज्जा, रुधिर यह पांच प्रकार के जल सदैव प्राणियों के देह में वर्तमान होते हैं और प्राणी जैसे प्राण से चेष्टा आदि करता है उसीप्रकार वक्तृत्वशक्ति से प्राप्त होनेवाले उद्योग को भी करताहै अपान चला करताहै समान हृदयमें वर्तमान है उदान से श्वास लेता है और कण्ठादि स्थान के विभाग से वार्तालाप करता है इस संसार में यह पांचो इन्द्रियां देहधारियों में चेष्टा करती हैं जीवात्मा घ्राणेन्द्रियरूप पृथ्वी से गन्धि के गुणों को जानता है और रसना जल से रस

को जानती है और चक्षुरिन्द्रिय से रूप का ज्ञान होताहै स्पर्शेन्द्रियसे वायु के द्वारा स्पर्श का ज्ञान होताहै रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द ये आकाशादि पंचतत्त्वों के गुणहैं और गन्धके गुण जो ब्यौरेवार वृद्धोंने वर्णन किये हैं उनको भी विधिपूर्वक कहता हूं कि इष्ट, अनिष्टगन्ध, मधुर, कटु, निर्हारी, शहद, स्निग्ध, रूक्ष, विशद यह गन्धसम्बन्धी नवगुण पृथ्वी के हैं अग्नि नेत्रों से देखता है और वायुसे स्पर्श को जानताहै और शब्द स्पर्श रूप रस यह भी गुण पृथ्वी में कहेहैं अर्थात् जो मुख्य पांच गुण हैं उनमें से रस के गुण मुझसे सुनो उस रस को प्रसिद्धबुद्धि ऋषियों ने अनेक प्रकारसे कहा है मधुर, लवण, तीक्ष्ण, कषाय, अम्ल, कटु यह जलरूप रस छह प्रकार के हैं और शब्द स्पर्श रूप इन तीन गुणों से युक्त अग्नि कही जाती है ज्योतिरूप के द्वारा देखने से रूप अनेक प्रकार के हैं—लघु, दीर्घ, स्थूल, चतुष्कोण, सूक्ष्म, गोल, श्वेत, कृष्ण, रक्त, नीला, पीला, हरित, कठोर, चिक्कण, स्वच्छ, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, मृदु, दारुण यह सब गुण अग्नि के हैं और स्पर्शगुण भी बहुत प्रकारका है उष्ण, शीत, सुखरूप, दुःखरूप, स्निग्ध, विशद, तीक्ष्ण, मृदु, चिक्कण, लघु, अतिविस्तृत और वायुके मुख्य गुण शब्द और स्पर्श हैं उन्हीं के यह ग्यारह भेदहैं इसीप्रकार आकाश में भी केवल शब्द ही एक गुण है परन्तु उस एक के भी बहुत भेदों को कहताहूं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत, पंचम, निषाद यह आकाश से उत्पन्न होनेवाले सात गुण हैं वह अपने ऐश्वर्य अर्थात् व्यापकतासे पटहादि बाजों में भी वर्तमान हैं मृदंग, शंख, भेरी, बादल की गर्जना, रथ, जड़ चेतन का भी जो कोई शब्द सुना जाताहै वह इन्हींके अन्तर्गतमें समझो इसप्रकारसे आकाशजन्य शब्द बहुत प्रकारका कहा जाताहै इन वायु के गुणों के द्वारा आकाश से उत्पन्न होनेवाला शब्द कहा है इन रुकावटोंसे रहित पवनके गुणोंसे शब्द जानाजाता है और भित्ति आदि की रुकावटसे वह शब्द नहीं सुनाई देताहै और छाल आदि वस्तु गोलकरूप इन्द्रियों की धातुसे सदैव स्पर्श को पाते हैं और जल, अग्नि, वायु यह सदैव देहों में जागते हैं यही तीनों देह के मूल हैं और प्राण को आश्रय करके इस लोक में वर्तमान हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय ॥

देह और इन्द्रिय आदि का पंचतत्त्वरूप होना वर्णन किया अब ज्ञानक्रिया

शक्तिवाले विज्ञान और प्राण का भी पंचतत्त्वरूप होना वर्णन करते हैं क्योंकि वह चैतन्य आत्मा से पृथक् है यह सुनकर भारद्वाज ने कहा कि हे भृगुजी! आप इसको सिद्ध करिये कि देह में निवास करनेवाली अग्नि पंचभूतरूप देह को पाकर किसप्रकार से प्रकट होती है और प्राण भी उस देह को पाकर स्थान भेदसे किसरीतिसे देह को चेष्टित करताहै भृगुजी बोले कि हे निष्पाप, ब्राह्मण! मैं उस वायु की गति को तुझसे कहताहूं जो प्राणियों के देह को चेष्टित करती है कि अग्नि और चैतन्य विज्ञान और प्राणों की ऐक्यतारूप जीव है वही सब जीवों का आत्मा सनातन पुरुष है अर्थात् उपाधि युक्त होने से जीव और निरुपाधि होने में ब्रह्मरूप है वही जीवोंका चित्त बुद्धि अहंकार और विषयरूप होजाता है इसप्रकार से वह देह प्राण से चेष्टा करता है और जीवन प्राप्त होने के पीछे समान नाम वायुसे चेष्टित कियाजाताहै वह समान वायु अपनी गति में समानरूप होकर प्राण जठराग्नि में वर्तमान हो अन्न को परिपाक कर उस के रस को अपने २ स्थान को पहुँचाता है और अपानरूप होकर गुदा और शिश्नेन्द्रिय में प्राप्त होकर मूत्र पुरीषको जारी करता हुआ घूमताहै और उसी प्रकार कण्ठ में रहनेवाला उदान और सब शरीरमें फिरनेवाला व्यान भी वर्तमान है वह समान वायु से चेष्टित मांस आदि में व्याप्त जठराग्नि रस धातु दोष को विपरीतरूप करता नियत होता है और अपान प्राण के मध्य में उन दोनों के योग से समान प्राप्त करनेवाले प्राण से क्रोधाग्नि और नाभिमण्डल में नियत जो है जठराग्नि वह अन्नआदि को अच्छे प्रकारसे परिपक्क करता है वह पकाहुआ अन्न इसप्रकार से शरीर में व्याप्त होता है कि मुखसे लेकर वायु तक जिसके अन्त में गुदेन्द्रिय है वही प्राण के चलने का मार्ग प्रसिद्ध है उस बड़े मार्ग से दूसरे अन्य प्राणमार्ग उत्पन्न होते हैं और जीवों के देह में व्याप्त होकर नियत होते हैं उन मार्गों से सब अंगों में प्राणों के पहुँचने से उन प्राणों समेत घूमनेवाली जठराग्नि का भी मेल होता है तब वहां ऊष्मा से अग्नि जानना योग्य है वही देहधारियों के अन्न को पचाती है, प्राणों के परस्पर में सन्निपात होने से सन्निपात उत्पन्न होता है जब अग्नि के वेग से चलनेवाला वायु गुदाके पास टक्कर खाता है तब प्राण ऊपर को आकर अग्निको उछालता है तात्पर्य यह है कि प्राण के रोकने के द्वारा जठराग्निका भय दूर होताहै इस से प्राण रोकने के योग्यहैं क्योंकि जठराग्निके रुकने से सब इन्द्रियों का रुकना

होताहै इसको कहते हैं कि पक्क अन्नका स्थान नाभि के नीचे है और कच्चे अन्न का स्थान नाभि के ऊपर है और देह की नाभि के मध्यवर्ती जठराग्नि में सब इन्द्रियां वर्तमान हैं इसीप्रकार सब रस हृदयसे तिर्छे और नीचे ऊपर को चलते हैं और दशप्राणों से लगी हुई नाड़ियां अन्नके रसों को लेजाती हैं यह मुखसे लेकर वायु इन्द्रिय तक योगियों का मार्ग है जिसके द्वारा उस परमपद को प्राप्त होते हैं परिश्रमको विजय करनेवाले जिन समदर्शी पण्डितोंने सुषुम्णा नाड़ीके मार्गसे मस्तकको पा के वहां आत्माको नियत कियाहै इसीप्रकार प्राणधारियों के प्राण अपाननाम होकर सब मार्गों में प्राणनिरोधरूप योग में वर्तमान हैं इसका अनुष्ठान करने से ब्रह्म ऐसे अच्छे प्रकार से प्रकाश करता है जिसप्रकार स्थाली में रक्खी हुई अग्नि होती है ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवां अध्याय ॥

भारद्वाज बोले कि जो वायु ही जीवनमूल हो चेष्टा करती है श्वास लेती है बोलती है तो जीवनका होना निरर्थक हुआ और जठराग्नि अग्निरूप है और उससे ही अन्न पचता है और अग्नि ही उसको पचानेवाली है इसकारण से भी जीव निरर्थक है जब मृतकदेह में जीव नहीं रहताहै तब वायुभी उसको त्याग देती है और ऊष्मा का नाश होजाता है जो जीव वायुरूप है अथवा उस वायु से उसका योग है और वायुमण्डल के समान दृष्टि पड़नेवाला है उस दशामें वह जीव पवनों के साथ प्राप्त होगा और वायु को प्रधान रखनेवाले इस तत्त्व समूह से उसका योग है इस कारण से भी वह इससे पृथक् है और देह के नाश होनेपर वह इसप्रकार तत्त्वरूप है जैसे कि समुद्र में तौंबा पत्थर आदि गिरने में पत्थर से पृथक् तौंबा ही जल के ऊपर दृष्टि आता है जीव ब्रह्म का अंश है इस सन्देह को निवृत्त करते हैं कि कूप में जल डाले और अग्नि में दीपक रक्खे जैसे कि इन दोनोंका नाश होताहै उसीप्रकार यह भी नाशको पाताहै तात्पर्य यह है कि देह के नाश होनेपर ब्रह्म में प्राप्त होनेवाले जीवके स्वरूपका नाश ऐसे होता है जिसप्रकार समुद्र में नदियों के रूप का नाश होता है इस पंचतत्त्वात्मक देह में जीव कहां से पृथक् है उन पांचो में से एक का नाश होनेसे जैसे चारो की स्थिति नहीं रहती है वैसे ही इस जीवका भी नाश होजाता है तात्पर्य यह है कि पंचतत्त्व का समूह ही जीव है जो भोजन न करने से शीघ्र नष्टता

को प्राप्त होता है और श्वास रोकने से वायु और वायुस्थानों के रोकने से आकाश नाश को प्राप्त होताहै और भोजन न करनेसे अग्निका नाश होता है और नानाप्रकार के रोग और क्लेशों से पृथ्वी की न्यूनता होती है उन्हों में एक के भी पीड्यमान होनेपर संघात अर्थात् देहके तत्त्व आदि नाशको पाते हैं उन पंचतत्त्व के पृथक् २ होनेपर जीव न सुनता है न चेष्टा करता है न कहता है इससे ज्ञात हुआ कि संघात ही जीव है इस कारण परलोक आदि नहीं है तो दान आदि भी करना वृथा है इसको कहते हैं कि जो इस संकल्प से किया जाता है कि यह गौ मुझ परलोकनिवासी को तारेगी यह कहकर जो जीव मरता है वह किसको तारेगी जब गोदान देनेवाला और लेनेवाला दोनों समान हैं वह इसी लोक में नाशको प्राप्त होते हैं उन्हों का मिलाप कहां होसक्ता है पक्षियों के खाये हुये और पर्वतों से गिरे हुये और अग्निसे भस्मीभूतों का फिर जीवन कहां से होसक्ताहै जैसे कि जड़ से टूटे हुये वृक्ष नहीं जमते हैं तो उसके बीज ही वृक्षके स्वरूपको धारण करते हैं परन्तु मृतक फिर जन्म नहीं लेता है सबसे पहिले समय में केवल बीज ही को उत्पन्न किया था जिसने कि इस देहरूप को प्राप्त किया मृतक से मृतक नहीं जीते परन्तु बीज से बीज वर्तमान होता है ॥ १५॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि जीवका, दान का और कर्मका नाश नहीं है सदैव प्राणी दूसरे देहको पाताहै और पूर्व देहका नाश होताहै देह में वर्तमान जीव उस देह के नाश होने में नाश को नहीं पाता है जैसे कि काष्ठ के भस्म होजाने से अग्नि दृष्टि नहीं पड़ती उसीप्रकार जीवभी देहके नष्ट होने में दिखाई नहीं देता तात्पर्य यह है कि केवल दृष्टि न पड़नेसे वस्तुका नाश मानना योग्य नहीं है भारद्वाज बोले कि जैसे अग्निका नाश नहीं होता उसी प्रकार उसकाभी जैसे नाश नहीं होताहै उसको मैं कहता हूं कि इन्धनके जलजाने से वह अग्नि नहीं रहताहै, इससे मैं जानताहूं कि जिसका गमनरूप और नियतस्थान नहीं है तो इन्धन से पृथक् वह बुझी हुई अग्नि नाश को पाती है, भृगुजी बोले कि जैसे काष्ठ के भस्म होनेपर अग्नि नहीं मिलती और रक्षास्थान से रहित आकाश में प्राप्त होने से कठिनता से ग्रहण करने के योग्य है उसीप्रकार देह के त्याग करने पर आकाश के समान वर्तमान जीव सूक्ष्मता से ऐसे नहीं पकड़ा जाता

है जैसे कि काष्ठ के अन्तर्गत अग्नि को नहीं पकड़सक्के-अग्निरूप विज्ञान प्राणों को धारण करता है उसी विज्ञानरूप को जीव जानना चाहिये-वायु से नियत रहनेवाली अग्नि श्वास के रोकने से दृष्टि से गुप्तता को पाती है उस शरीराग्नि के गुप्त होनेपर जड़रूप पड़ा हुआ देह पृथ्वीरूप को पाता है उसकी लयरूप स्थान पृथ्वी है उसीप्रकार सब स्थावर जंगम जीवों की वायु आकाश के पीछे चलती है और उस वायु के पीछे अग्नि चलती है उन तीनों के एक होने से दो पृथ्वी पर नियत होते हैं जहां आकाश है वहां वायु है और जहां वायु है वहां अग्नि है वह तीनों दृष्टि से अलक्ष हैं इस कारण उनका नाश जानना कठिन है इसीप्रकार जीव भी अरूप है तो उसका नाश कैसे निश्चय करसक्के हैं भारद्वाज बोले कि हे निष्पाप! जो देहों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश हैं तो उनमें जीव कैसे लक्षणवाला है इसको आप समझाइये और जो प्राणियों के देहों में पंचभूतरूप पांच विषयों से संयुक्त पंचज्ञानों से चैतन्य जीव है उसकी मुख्यता को मैं जानना चाहता हूं और मांस, मेदा, नाड़ी और अस्थियों के समूहवाले देह के नाश होने पर जो जीव नहीं पाया जाता है और पंचतत्त्व से मिला हुआ देह चैतन्य नहीं है उस दशा में देह और चित्त के खेद में कौन उस पीड़ा को जानता है और जो कहते हैं कि जीव सुनता है परन्तु वह चित्त के व्याकुल होने में कानोंसे नहीं सुनता है इस कारण जीव निरर्थक है, चित्त संयुक्त सब मनुष्य नेत्र से दृष्टि पड़नेवाली वस्तु को देखते हैं और चित्तकी व्याकुलता में देखती हुई आंखें भी उसको नहीं देखती हैं फिर निद्रा के वशीभूत होकर न देखता, न सूंघता, न सुनता, न बोलता, न रसके स्पर्श आदि को जानता है इस देहमें कौन क्रोध करता, कौन शोच करता, कौन भय करता, कौन प्रसन्न होता, कौन इच्छा करता, कौन ध्यान करता, कौन शत्रुता करता और कौन बात करता है भृगुजी बोले कि इस देहमें पंचतत्त्व से पृथक् कोई वस्तु नहीं है केवल अन्तरात्मा ही देह की चेष्टा करता है वही रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि गुणों को जानता है और पूर्व में जो कह आये हैं कि चित्त के व्याकुल होनेमें नहीं सुनता है उस पर कहते हैं कि पांच गुणयुक्त जो अन्तरात्मा है वह पंचतत्त्वात्मक देह में सब जगह वर्तमान है वही इस देह के सुख दुःखों को जानता है उसके वियोग से देह को कुछ ज्ञान नहीं होता है तात्पर्य यह है कि सुषुप्ति और समाधि में चित्त आदि देह में

रहते हैं परन्तु विना अन्तरात्मा के अपना काम नहीं करसक्ते हैं जब कि रूप और स्पर्श नहीं होता न अग्नि में उष्णता होती है तब अग्नि के शान्त होने और देह के त्याग होजानेपर अन्तरात्मा का नाश नहीं होता है अब स्थूल शरीर के नाश को कहकर सूक्ष्म शरीर के नाश को कहते हैं कि यह सब दृश्यमान पदार्थ जलरूप हैं और जलशरीरधारी की मृत्यु है उन जलरूपों में चित्तसम्बन्धी आत्मा ब्रह्मा आदि सब जीवों में लोक का उत्पन्न करनेवाला है वही प्रकृति के गुणों से संयुक्त क्षेत्रज्ञ कहलाता है और माया से रहित होकर परमात्मा कहाजाता है उस आत्मा को सब लोकों का सुखरूप जानो वह स्थूल सूक्ष्म शरीर में ऐसे वर्तमान है जैसे कि कमल पर अम्बुकण होता है, तुम अर्थवाले परमात्माको सदैव सुखरूप जानो और इन सतोगुण,रजोगुण,तमोगुणको जीवके गुण जानो तात्पर्य यह है कि आवरण प्रवृत्ति प्रकाश आदिका अभिमानी जो क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा है वही परमात्मा है जीवको भोग सामग्री को चैतन्य के साथ रखते हैं और जो जीव का गुण चेष्टा करता है उसको सर्वात्मा ब्रह्म चेष्टा देता है वह कैसा है कि क्षेत्रके जाननेवाले ज्ञानी उसको इस जीवसे उत्तम अर्थात् असंसारी कहते हैं उसीमें सातों भवनोंको उत्पन्न करके अपने से व्याप्त किया है यह अज्ञानियोंने मिथ्या कहा है कि देहके नाशमें जीवका नाश नहीं है अर्थात् मृतक होकर जीव दूसरे देहमें प्रवेश करता है उसका देह का त्यागना ही मृत्युरूप है परन्तु उसका नाश नहीं है इसप्रकार अज्ञानसे ढका हुआ सब भूतों में अर्थात् देह इन्द्रियों आदि में व्याप्त होकर घूमता है वह तत्त्वदर्शी ज्ञानियों की सूक्ष्म और उत्तम बुद्धि के द्वारा देखाजाता है रात्रि दिन योग में आरूढ़ अल्पभोजी शुद्धान्तःकरण ज्ञानी उस अविनाशी आत्माको आत्मा ही में देखता है, चित्त की शुद्धता से शुभ अशुभ कर्मों को त्याग करके शुद्धातःकरण ज्ञानी आत्मामें नियत होकर आनन्दरूप मोक्ष को पाता है—सब जीवों की देह में चित्त से प्रकट होनेवाला अग्नि अर्थात् प्रकाशरूप परमात्मा पुरुष जीव कहाजाता है—यह ब्रह्मसृष्टि ब्रह्मज्ञान के निश्चय करने के निमित्त प्रकट हुई है ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि जीवों की उत्पत्ति आदि को कहकर अब वर्णों के विभागों को कहते हैं यहां पहिले कहा है कि चित्त की शुद्धता से मोक्ष को पाता है और

चित्त की शुद्धि अपने धर्म का फल है इस कारण भृगुजी ने धर्म का वर्णन करना चाहा और कहा कि पहिले ब्रह्माजी ने अपने तेजसे सूर्याग्नि के समान तेजस्वी ब्रह्मनिष्ठ सनकादिक और मरीचि आदि प्रजापतियोंको उत्पन्न किया फिर स्वर्ग की प्राप्ति के लिये प्रभु ने सत्य, धर्म, तप, सनातन वेद के आचार, शौच आदि को विचार किया तिस पीछे देवता, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महाउरग, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मनुष्यों को उत्पन्न करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य जीवसमूहों के जो नाना वर्ण हैं उनको भी पैदा किया ब्राह्मणका वर्ण श्वेत अर्थात् सतोगुणप्रकाशात्मक जितेन्द्रिय प्रकृति-क्षत्रियोंका वर्ण लाल अर्थात् रजोगुणप्रवृत्त्यात्मक शूरता तेजयुक्त प्रकृति-वैश्यों का वर्ण पीला रजोगुण तमोगुण से मिला हुआ खेती आदि निकृष्टकर्म करने वाली प्रकृति-इसीप्रकार से शूद्र का वर्ण काला तमोगुण से आवर्णित आत्मा प्रकाश प्रवृत्तिरहित प्रकृतिवाला उत्पन्न किया-भारद्वाजने कहा कि जो चारो वर्ण की जाति से वर्ण विभाग हुआ है वह नहीं है क्योंकि निश्चय करके सब वर्णोंका वर्णसंकर दृष्टि आता है हम सबको काम, क्रोध, लोभ, भय, शोक, चिन्ता, क्षुधा आदि की पीड़ा होती है तो किस प्रकार से वर्णों का विभाग कियाजाता है पसीना, मूत्र, विष्ठा, कफ, पित्त, रुधिर आदि सबके देह से गिरते हैं तो कैसे वर्णों का विभाग जाने पशु, वृक्ष, पर्वत आदि की जाति अनेक हैं तो इन असंख्य वर्ण रखनेवालों का निश्चय कहां से होसक्ता है भृगु जी बोले कि वर्णों का विवेक नहीं है क्योंकि ब्रह्माजी ने प्रथम यह सब जगत ब्राह्मणजातिवाला ही उत्पन्न किया था फिर अपने २ कर्मों से वर्णों को पाया जो ब्राह्मण कामी, भोगी, उग्रप्रकृति, क्रोधी, विनाविचार कर्म करनेवाले धर्म को त्याग कर रजोगुणी हुये वह क्षत्रियवर्ण होगये-जो गोवृत्ति में नियत रजोगुण तमोगुण से संयुक्त खेती से निर्वाह करनेवाले अपने धर्म को त्यागनेवाले हुये वह वैश्यवर्ण होगये-हिंसा मिथ्यासे अनुरागी लोभी सब कर्मों से जीविका करनेवाले शौचरहित तमोगुणी हुये वह शूद्रवर्ण में वर्तमान हुये इन कर्मों से भी पतितकर्मी ब्राह्मणों ने अन्य अन्य वर्णों को पाया उन चारो वर्णों को धर्म और क्रिया का करना निषेध नहीं है जिन चारो वर्णों के लिये ब्रह्माजीने वेदरूप सरस्वती को उत्पन्न किया उन्हों ने लोभ से अज्ञानता को पाया अर्थात शूद्रभाव से वेद के अधिकार से बाहर होगये जो ब्राह्मण वेदोक्त अनुष्ठान में

नियत हैं उन वेद धारण करनेवाले और सदैव व्रत नियम करनेवालों का तप नाश को नहीं प्राप्त होता है जो उत्तम वेद को नहीं जानते हैं वह नीच ब्राह्मण हैं उन्हों के अनेक प्रकार के जन्म बहुधा स्थानों में हुआ करते हैं और जो पिशाच, राक्षस, प्रेत और अनेक प्रकार की म्लेच्छजाति हैं वह ज्ञान विज्ञानरहित अपनी इच्छा के अनुसार ज्ञानचेष्टा रखनेवाले संसार को वेदोक्त करनेवाली अपने कर्मके निश्चय में प्रवृत्त प्रजा उत्पन्न होती हैं प्राचीन ऋषियों के तप से दूसरे नवीन ऋषि उत्पन्न किये जाते हैं और जो आदिदेवसे उत्पन्न ब्रह्ममूल अविनाशी धर्म में परायण हैं वह मानसी सृष्टि कही जाती है ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवां अध्याय ॥

भारद्वाज बोले कि हे ब्राह्मणोत्तम, भृगुजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारो वर्ण किस २ कर्म से होते हैं इसको आप कृपा करके वर्णन कीजिये-भृगुजी ने कहा कि जो पुरुष जातिकर्म आदि अड़तालीस संस्कारों से संस्कार किया हुआ पवित्र वेदपाठ में प्रवृत्त अपने छह कर्मों में सावधान है अर्थात् स्नान, सन्ध्या, जप, होम, देवपूजन, अतिथिपूजन, बलिवैश्वदेव इन छह कर्मों का करनेवाला है और शौचाचारमें वर्तमान देवता और ब्राह्मणोंसे शेष बचे हुये अन्नादि को विधिपूर्वक भोजन करनेवाला गुरुमें प्रीतिमान् सदैव व्रत करनेवाला सत्यधर्मपरायण है और जिसमें सत्यता, ज्ञान, अशत्रुता, अहिंसा, लज्जा, दया, तप आदि अनेक उत्तम बातें दृष्टि आती हैं उसको ब्राह्मण कहते हैं-जो हिंसायुक्त युद्ध आदि कर्मको सेवन करता है और वेदपाठमें प्रवृत्त दान देने और राज्य के कर लेने में तत्पर है वही क्षत्रिय है-जो पशुवों के होने से शीघ्र प्रतिष्ठा को पाता है और कृषिदान आदि में श्रद्धावान् पवित्र वेदपाठमें प्रवृत्त है उसको वैश्य कहते हैं-सदैव सब वस्तुवों के भोजन में प्रीतिमान् और सब कर्मों का करनेवाला अपवित्र वेदत्यागी आचार से रहित है वही शूद्र कहा जाता है-जो ब्राह्मण के गुण शूद्र में दृष्टि पड़ें और ब्राह्मण में वर्तमान न हों ऐसी दशा में शूद्र शूद्र नहीं और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं गिना जायगा-सब युक्तियों से क्रोध लोभ को जीतना और चित्त को चलायमान न करना यही ज्ञान सब ज्ञानों से पवित्र है, कल्याण के नाश में उद्युक्त वह दोनों क्रोध लोभ आत्मा से रोकने के योग्य हैं, सदैव लक्ष्मी को क्रोध से रक्षा करे और

तप की मत्सरता से रक्षा करे, विद्या को मानापमान से, आत्मा को अज्ञानता से रक्षा करे हे ब्राह्मण! जिसके सब प्रारम्भकर्म फल से रहित हैं और सब कर्म फल के त्यागरूप अग्नि में होमे गये हैं वह त्यागी और बुद्धिमान् है, सब जीवों की हिंसा न करनेवाला सबकी मित्रता प्राप्त करे और परिग्रहों को त्याग करके बुद्धिसे जितेन्द्रिय हो ऐसे शोकरहित स्थान में वर्तमान हो जोकि दोनों लोकों में भय से रहित है सदैव तप करनेवाले शान्तचित्त सावधान मन पुत्रादि के स्नेह से विरक्त दुर्विजय को विजय करने के अभिलाषी मनही से विचार करने के योग्य हैं इसप्रकार जीवधारी के अनुष्ठान के योग्य योग को कहते हैं, जो २ इन्द्रियों से ग्रहण कियाजाता है वह व्यक्त अर्थात् मायारूप है यही मर्यादा है और जो इन्द्रियों से बाहर अन्य कारणों से प्राप्त करने के योग्य है वही अव्यक्त जानने के योग्य है अर्थात् उसका साक्षात्कार होना चाहिये-विश्वास के विना जो प्राप्त होने के अयोग्य हो तो गुरु आदि के और वेद के वचनों में विश्वासयुक्त होकर उसमें तदाकार होके चित्त को प्राण में और प्राण को ब्रह्म में धारण करे-वैराग्य से ही निर्वाण मोक्ष होता है क्योंकि निष्पाप ब्राह्मण वैराग्य ही से आनन्दरूप ब्रह्म को पाता है अब योग के अधिकारी को कहते हैं उसको सुनो कि जो ब्राह्मण सदैव शौच आदि सत्य आचारवान् सब जीवोंपर दया करता है वही ब्राह्मण लक्षणयुक्त है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि ब्राह्मण का धर्म श्वेतवर्ण और शूद्र का धर्म कृष्णवर्ण यह पूर्व में कहा अब उन दोनों रूपों को कहते हैं कि ब्रह्म का प्राप्त करनेवाला वेद सत्य है सत्य तप है सत्यही संसार को उत्पन्न करता है सत्यही लोकों का धारण करनेवाला है सत्य से ही स्वर्ग की प्राप्ति है-मिथ्या अविद्या आदि का रूप है इसीसे नरक में पड़ता है अविद्यादि में लिप्त अज्ञान से आच्छादित पुरुष प्रकाश को नहीं देखते हैं यहां स्वर्ग को प्रकाशरूप और नरक को अन्धकाररूप कहा है और उन दोनों से युक्त तमोगुण को सत्य मिथ्या से मिश्रित कहा है यह दोनों सब संसारियों को प्राप्त होते हैं उसमें जो सत्य है वही धर्मरूप प्रकाश है और जो प्रकाश है वही सत्य है उसमें जो मिथ्या है वह अधर्म है जो अधर्म है वही तम है जो तम है उसीको अन्धकार कहते हैं ज्ञानीपुरुष इस संसार की

उत्पत्ति को देखते हुये देह और चित्त के सम्बन्धी सुख दुःखों से मोह को नहीं प्राप्त होते हैं इस स्थान पर ज्ञानीपुरुष तो मोह से अवश्य निवृत्ति करे क्योंकि इस लोक परलोक में संसारियों का सुख विनाशवान् है जैसे कि राहु से ग्रसित चन्द्रमा का प्रकाश नहीं होता है उसी प्रकार अविद्या से निन्दित जीवों का सुख नाश होता है अर्थात् गुप्त होजाता है वह संसारीसुख अनेक प्रकार का कहाजाता है जैसे कि देह और चित्त आदि का सुख है इस लोक परलोक में प्रकट और अप्रकट फलवाले कर्म सुख के लिये वेद में इस प्रकार से कहे गये हैं कि कोई कर्म इस त्रिवर्ग से उत्तम नहीं है क्योंकि उस त्रिवर्ग का फल अतिउत्तम है वह आत्मा का मुख्यगुण काम न्यायशास्त्रवालों का स्वीकृत है और धर्म अर्थ जिस प्रधान सुख के गुणरूप हैं उसी के निमित्त कर्म का प्रारम्भ कियाजाता है इस सुख का उदय धर्म से है और प्रारम्भकर्म सब सुखों के लिये हैं—भारद्वाज बोले कि आपने जो यह सुखों की उत्तम मर्यादा वर्णन की हम उसको स्वीकार नहीं करते क्योंकि इन योग ऐश्वर्यों में वर्तमान ऋषियोंका कर्म निष्फल नहीं है, जो काम नाम मुख्य गुण है उसको वह ऋषिलोग नहीं चाहते हैं सुनाजाता है कि तीनों लोकों के उत्पन्न करनेवाले प्रभु ब्रह्माजी अकेले ही तप में प्रवृत्त होते हैं वह ब्रह्मचारी ब्रह्माजी ईप्सित सुखों में आत्मा को नहीं धारण करते हैं और श्रीमहादेवजी ने भी सम्मुख आयेहुये कामदेव को अनंगरूप से ही शान्त किया इससे हम जानते हैं कि इसको महात्माओं ने नहीं स्वीकार किया है क्योंकि उन लोगों का वह अद्भुत मुख्य गुण नहीं है और ईश्वर में भी यह गुण नहीं पाया गया है क्योंकि भगवान् ने आप कहा है कि सुख से श्रेष्ठ नहीं है, लोकों का कथन दो प्रकार के फलों का प्रकट करनेवाला है कि अच्छे कर्म से सुख और नष्ट कर्म से दुःख प्राप्त होता है—भृगुजी बोले कि इस स्थान पर इस बात को निश्चय समझो कि अज्ञान से अविद्या प्रकट हुई इस कारण अविद्या में पड़ेहुये मनुष्य अधर्म पर ही आरूढ़ होकर धर्मयुक्त कर्म नहीं करते वह निश्चय करके क्रोध, लोभ, हिंसा, मिथ्या आदि से ठगेहुये इस लोक और परलोक में सुख को नहीं पाते हैं और नानाप्रकार के रोग और पीड़ाओं को भोगते हैं—घात बन्धनादि के दुःख और क्षुधा पिपासा परिश्रमादिकी पीड़ाओं से दुःखीचित्त वर्षा वायु और शीतोष्णकी न्यूनाधिकता से उत्पन्न होनेवाले भय और देहों के कष्टों से दुःखी होते हैं और बान्धवों के

वियोग और धनके नाशहोने के दुःखोंसे मन्दादर जरा मृत्युसे उत्पन्न अनेक कष्टों को सहते हैं जो पुरुष इन चित्त देहादि के दुःखों से अलग रहता है वह सुख को जानता है-यह दोष स्वर्ग में नहीं होते हैं वहां पुरुष ऐश्वर्यवान् ही रहता है स्वर्गमें बड़ी सुखदायी वायु है वहां क्षुधा, तृषा, जरा, थकावट और ऊष्मा नहीं है केवल सुख ही सुख है यह दोनों दुःख सुख इसी लोक में हैं नरक दुःखरूप परमपद मोक्ष सुखरूप है, जैसे कि सब जीवों की उत्पन्न करनेवाली अविद्या सब क्लेशों की मूल है वैसेही स्वर्ग में उसी प्रकारकी स्त्रियां हैं और पुरुष ब्रह्माजी हैं जो कि अपनी पुत्री के पीछे कामवश होकर दौड़े और शिवजी ने उनका शिर काटा इस स्थान पर वीर्य ही तेजरूप है पूर्वसमय में ब्रह्माजी ने इस संसार को उत्पन्न किया इसके जीवमात्र अपने २ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं तात्पर्य यह है कि मोक्ष का सुख सबसे उत्तम है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवां अध्याय ॥

भारद्वाज बोले कि मोक्ष को कठिन जानके चित्तशुद्धिके द्वारा मोक्षकारक पवित्र कर्मों में प्रवृत्त होके जो २ कर्म करे उनमें दान, धर्म, आचरण, श्रेष्ठतप, वेदपाठ, जप, होम आदि का क्या फल है इसको आप कृपा करके वर्णन कीजिये भृगुजी ने कहा कि होम से पाप दूर होता है वेदपाठ और जपसे उत्तम शान्ति उत्पन्न होती है-दान से भोगों की अक्षयता होती है-तप से स्वर्ग की प्राप्ति है इस लोक और परलोक के निमित्त दान दो प्रकार का है कि सत्पुरुषों के निमित्त जो दान दिया जाता है वह तो परलोक में मिलता है और नीचों को जो दान दिया जाता है उसका भोग इस लोक में भोगता है जैसा दान होगा वैसाही फल भी होगा-भारद्वाज बोले कि किसका कैसा धर्माचरण है धर्म का क्या लक्षण है और कितने प्रकार का है भृगुजी बोले कि जो ज्ञानी अपने धर्म आचरण में प्रवृत्त होते हैं उनको स्वर्ग फल की प्राप्ति होती है और जो विपरीत आचरण करता है वह अज्ञानता को पाता है, भारद्वाज बोले कि हे ब्रह्मर्षिजी! प्राचीन समय में जो यह चारों आश्रमोंका धर्म नियत किया उन चारों आश्रमों के मुख्य २ आचरणों को आप कृपा करके वर्णन कीजिये-भृगुजी ने कहा कि लोक के हितकारी ब्रह्माजी ने पूर्वही धर्म की रक्षा के लिये चारो आश्रमों को उपदेश किये हैं उनमें गुरुकुल को प्रथम आश्रम कहते हैं इस आश्रम में

अच्छे प्रकार के शौच, व्रत, नियम, संस्कार आदि से शुद्ध अन्तःकरण पुरुष दोनों सन्ध्याओं में सावधान सूर्य अग्नि और देवताओं का उपस्थान करके निद्रा आलस्य अयुक्तियों को त्याग करके गुरु को दण्डवत् करे फिर वेद के पढ़ने में अर्थ का विचार करना इन सब बातों से अन्तःकरण को शुद्ध कर तीनों सन्ध्याओं में स्नान करके ब्रह्मचर्य, अग्निसेवन, गुरुसेवा और सदैव भिक्षा करना और भिक्षावस्तुवों को गुरु के अर्पण करे तदनन्तर अन्तरात्मा से गुरु के उपदेश वचनों से कर्म में प्रवृत्त होकर गुरु की आज्ञा से वेद पढ़ने में उद्युक्त होजाय यहां यह कहाजाता है कि जो द्विज गुरु को अच्छेप्रकार से पूजन करके वेद को प्राप्त करे उसको स्वर्ग की प्राप्ति होती है और अन्तःकरण भी निर्मल होता है अर्थात् सत्यसंकल्प से सिद्धि प्राप्ति होती है गार्हस्थ को दूसरा आश्रम कहते हैं अर्थात् उस अच्छेप्रकार से उदयहोनेवाले सब आचारलक्षण को कहते हैं कि गुरुकुल में निवास करनेवाले श्रेष्ठ आचरणी अपनी स्त्री में रति और उसको फल पुत्रादि के चाहनेवाले पुरुषों का गृहस्थाश्रम कहाजाता है उसीमें धर्म, अर्थ, काम इन तीनों की प्राप्ति होती है उस त्रिवर्गसाधन को ध्यान करके निन्दारहित कर्मों के द्वारा धन को प्राप्त करके वेदपाठ या जप से प्राप्त होनेवाले या ब्रह्मर्षियों से नियत अथवा खानि से उत्पन्न होनेवाले मणि सुवर्णआदि या नियमों के द्वारा ईश्वर की कृपा से प्राप्त होनेवाले मुनियों के हव्यकव्यरूपी धन से वह गृहस्थी गृहस्थधर्म में प्रवृत्त होवे उसीको सब आश्रमों का मूल कहते हैं क्योंकि जो गुरुकुलनिवासी संन्यासी और जो दूसरे संकल्प से व्रत नियम और अनुष्ठान के करनेवाले हैं उनकी भिक्षा बलि और पुत्र आदि के भागों का विभाग इसी आश्रम से होता है वानप्रस्थों का धर्म बहुधा धन का त्यागना अथवा फल मूलों का भोजन करना है निश्चय है कि यह लोग साधुवृत्ति सुपथ्य खानेवाले वेदपाठ और जप का अभ्यास करनेवाले पृथ्वीयात्रा में देशों को पर्यटन करते हैं उन्हीं के समीप जाकर प्रतिष्ठा करके आदर करना और उनसे निर्दोषवार्ता को कहना योग्य है आनन्द और श्रद्धापूर्वक सामर्थ्य के अनुसार आसन शय्या आदि देना उचित है यहां पर यह धर्म उचित है कि जिसका अतिथि घर से निराशा होकर लौट जाता है वह अपना पाप उसको देकर और उसका पुण्य आप लेकर जाता है इस गृहस्थाश्रम में यज्ञादिकों से देवता भी प्रसन्न होते हैं तर्पणसे पितृ और विद्याभ्याससे ऋषि और सन्तानसे प्रजापतिजी

प्रसन्न होते हैं यहां पर यह बात करना योग्य है कि प्रीतिपूर्वक सब जीवों से कानों के सुखदायी वचन कहना योग्य है और दूसरे का दुःख दूर करना चाहिये क्योंकि कठोर वचन, अपमान, अहंकार, कपट, हिंसाआदि महानिन्दित कर्म हैं और हिंसा न करना सत्य बोलना क्रोध न करना यही सब आश्रमों का तप है इस प्रीतिधर्म में माला भूषण वस्त्र तैलादि मर्दन सदैव उपभोग नृत्य कर्णरोचक गीत वाद्य और नेत्रों के सुखरूप दर्शनों की प्राप्ति और भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय आदि अनेक रसों का भोजन उपभोग अपने विहार से सन्तोष और यथेच्छ सुखों की प्राप्ति है, जिसके गृहस्थ आश्रम में सदैव त्रिवर्गगुण की सिद्धि है वह इस लोक के श्रेष्ठ सुखों को भोगकर उत्तम पदवी को पाता है जो गृहस्थ उंछवृत्ति रखनेवाला अपने धर्माचरण में प्रीतिमान् चित्त की वृत्तियों का रोकनेवाला है उसको स्वर्ग की प्राप्ति सुगमता से होती है ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि वानप्रस्थ भी धर्म को करते हुये पवित्र तीर्थ, नदी, झिरनों पर मृग, भैंसा, वराह, शार्दूल, जंगली हाथियों से पूर्ण निर्जन वनों में तप करते विचरते हैं, गृहस्थों के वस्त्र भोजन और, उपभोगों के त्याग करनेवाले वन के फल मूल औषधी आदि से नाना प्रकार के उचित भोजन करनेवाले स्थान, आसनयुक्त, पत्थर, पथरीली, कंकड़ीली, रेतीली आदि पृथ्वीपर सोनेवाले कांस, कुशा, मृगचर्म और भोजपत्रों के धारण करनेवाले शिर, मुण्ड, दाढ़ी, मूछ, नख और रोमयुक्त देह समय पर स्नान करके पृथ्वी में हवन का अनुष्ठान करनेवाले लकड़ी, कुशा, फूल, दक्षिणा के शुद्ध करने में विश्राम लेनेवाले शीत, उष्ण, वर्षा, वायु के सहनेवाले नाना प्रकार के नियम उपभोगयुक्त चारोंओर को घूमना और अनुष्ठान की विधि से शुष्कमांस, रुधिर, चर्म, अस्थि सहित धैर्यवान् होकर शेष अवस्था को व्यतीत करते हैं—ये जो इस ब्रह्मऋषियों के नियत किये हुये आचार पर चलता है वह अग्नि के समान दोषों को भस्म करके दुष्प्राप्य लोकों को विजय करताहै तदनन्तर संन्यास धर्महै उसमें अग्नि, धन, स्त्री, शय्या आदि भोगों की सामग्री को त्याग करके आत्मा को निस्संग करके प्रीति की फांसियों को काटकर संन्यासी होते हैं मिट्टी पत्थर सुवर्ण आदि को समान माननेवाले त्रिवर्गी पुरुषों में बुद्धि न लगानेवाले शत्रु मित्र उदासीन

को बराबर देखनेवाले स्थावर जंगम और चारो खानि के जीवों से मन, वाणी, चित्त से शत्रुता न करनेवाले स्थानरहित पहाड़, पुलिन, वृक्ष और देवालय आदि में विचरनेवाले कार्यवश से ग्राम नगरों में क्रम से एक रात्रि पंचरात्रि निवास करते हैं फिर उन ग्राम नगरों में प्रवेश करके प्राणों की रक्षा के लिये उन द्विजन्माओं के अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के स्थानोंके समीप निवास करें जहां रसोई आदि प्रबन्ध होचुका हो वहां पात्ररहित भिक्षावृत्ति में काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मोह, कृपणता, कपट, निन्दा, अभिमान, हिंसा आदि से रहित यह कर्म करे कि सब जीवोंको निर्भय करके विचरे और किसी स्थानमें किसी जीव को उससे भय न हो और वेदपाठ और अग्निहोत्र को अपने शरीर में नियत करके अपने मुख में भिक्षा से प्राप्त होनेवाले हव्यों से देह की अग्नि में आहुति दे ऐसे अग्निहोत्र करनेवाले मुनियों के लोकोंको जाते हैं अथवा भिक्षा से मिलनेवाले हव्यों से प्राणाग्नि में हवनकर अग्नि के समान प्रकाशित देह में वर्तमान जीव को अपने मुख में अर्थात् ब्रह्म में लय करके एकता प्राप्त करे तो वह अग्निहोत्र का त्यागी ब्रह्मज्ञानियों के लोकों को पाता है जो पवित्र संकल्प से रहित बुद्धिवाला ब्राह्मण वेदोक्त मोक्ष आश्रम में विचरता है वह उस ब्रह्मलोकमें जो निरिन्धन अग्निके समान शान्तिरूप है प्रवेश करता है भारद्वाज बोले कि इस लोक से परलोक सुनाजाताहै परंतु प्राप्त नहीं होताहै मैं उस परमात्मा को साक्षात्कार करना चाहता हूं आप इसके करने के योग्य हैं भृगुजी बोले कि उत्तर में हिमवान् महापवित्र सर्वगुणसम्पन्न है वही परलोक कहा जाताहै वह निष्पाप सत्य इच्छा सत्यसंकल्प और सब कामनाओं के उपभोग के योग्य परमात्मारूप है उस स्थान पर समाधिमें होकर वह पुरुष जाते हैं जोकि पापकर्मों से रहित पवित्र निर्मल देह लोभ मोहसे विमुक्त और उपद्रवों से रहित हैं, वह देश स्वर्ग के समान है उसमें यह शुभगुण वर्तमान हैं कि समाधि के समय तो अविनाशी है और रोगों का स्पर्श नहीं है और अनात्मारूप स्त्रियों में लोभरहित आत्मारूप स्त्री में प्रीतिमान् है निर्जन है, और परस्पर में पीड़ारहित संकल्पजन्य द्रव्यों में आश्चर्यरहित है वहां अनात्मरूप अधर्म भी नहीं है, निस्सन्देह वहां योग और कर्म का किया हुआ फल प्रत्यक्ष मिलता है खानेपीने की वस्तुवों से पूर्ण आसन आदि से युक्त महलों के और घरों के रहनेवाले सब ईप्सितों से पूर्ण सुवर्णादि के भूषणों से भूषित

कितने ही पुरुष तो वहां से लौटआते हैं और कितने ही योगियों को परमात्मा में सब इच्छाओं का लय करना प्राप्त होता है-अब सामान्य योग का वर्णन करते हैं कि कितने ही पुरुष तो बड़े परिश्रम से प्राणों को धारण करते हैं और कितने ही योगरूप ऐश्वर्य को पाकर धर्म में प्रवृत्त हैं कितने ही छली हैं अर्थात बाह्यभोगों के कारण योगजन्य धर्म का नाश करनेवाले हैं इसी कारण से वह धर्मात्मा और छली दोनों सुखी दुःखी हैं क्योंकि कोई निर्धन कोई धनवान् हैं अर्थात् योग धर्म के द्वारा दूसरे के उपकार से उत्पन्न होनेवाले धर्मरूप धनकी वृद्धि करनेवाले हैं और धनके कारण इस लोकमें मनुष्यों का परिश्रम भय मोह गृहस्थादि की कठिनता और लोभ पैदा होते हैं, इस लोक में धर्म अधर्म के करनेवाले बुद्धिमान् बहुत प्रकार के मनुष्य हैं जो ज्ञानी उन दोनों को जानता है वह पाप में नहीं फँसता है, कपटयुक्त छल, चोरी, निन्दा, दूसरे के गुणों में दोष लगाना, अप्रतिष्ठा, हिंसा, निर्दयता, मिथ्या आदि दोषों का जो सेवन करता है उसका तपरूपी धर्म नाश होताहै और जो इन दोषोंसे रहितहै उसके तपकी वृद्धि होती है, इस लोक में धर्म अधर्मरूप कर्म से बहुत प्रकार की चिन्ता होती हैं यह लोक कर्मभूमि है यहां शुभ का शुभ और अशुभ का अशुभ फल होता है प्राचीन समय में इसी पृथ्वीपर देवता और ऋषियोंसमेत ब्रह्माजीने यज्ञ और तपसे पवित्र होकर ब्रह्मलोक में वास किया यह ब्रह्मलोक पृथ्वी का उत्तम और पवित्रभागहै इसमें रहनेवाले मनुष्य जो शुभकर्मों को करते वह वहां प्रकाशवान् होते हैं और जो विपरीत कर्म करनेवाले हैं वह तिर्यक् आदि योनि में महापापों को भोगते और लोभ मोह में फँसे इसी संसार में घूमते हैं और जो जितेन्द्रिय होकर मन वचन देह से गुरु की उपासना करते हैं वही ज्ञानी सब लोकोंके मार्गको अर्थात् सगुण निर्गुण ब्रह्मको ठीक जानते हैं, यह वेदसे प्रकट होनेवाला धर्मका आशय तुमसे वर्णन किया कि जो लोक के धर्म अधर्म को जानता है वही बुद्धिमान् है-भीष्मजी बोले कि जब भृगुजी ने भारद्वाजजी को ऐसे उपदेशपूर्वक धर्म का वर्णन किया तब भारद्वाजजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर भृगुजीका पूजन किया सो हे महाज्ञानिन्, राजायुधिष्ठिर! यह संसार की सब उत्पत्ति तुझसे कही अब और क्या सुनना चाहता है ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

बीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह ! आपने आचार योग मिला हुआ कहा अब कृपा करके स्पष्टता से ब्यौरेसमेत आचार बुद्धि का वर्णन कीजिये, भीष्म जी बोले कि हे धर्मज्ञ ! तुम मेरे कहने से सर्वज्ञता को प्राप्त होकर सुनो कि असन्त दुराचारी दुर्बुद्धि विना विचारे कर्मकरनेवाले प्रसिद्ध हैं और आचार का लक्षण रखनेवाले सन्त लोग हैं अर्थात् उनका स्वरूप आचार ही से जाना जाता है जो मनुष्य गोशाला राजमार्ग और अन्नादि में मूत्र पुरीष को नहीं करते हैं वह उत्तम हैं, यह मनुष्यों का आवश्यकधर्म है कि आवश्यक विष्ठा-मूत्र को त्यागे और दन्तधावन आदि से निवृत्त हो आचमनपूर्वक नदी आदि में स्नान करे फिर देव, पितृ, मनुष्यों का तर्पण करके सूर्य का उपस्थान करे और सूर्य के उदय होजानेपर कभी न सोता रहे पूर्वाह्ण और सन्ध्याकाल की सन्ध्या के आदि में सूर्य के प्रकाश में गायत्री का जप करे और पूर्वाभिमुख होकर हाथ, पैर, मुख शुद्ध करके आर्द्रभोजन को मौन होकर करे और भोजन की वस्तुकी निन्दा न करे भोजनके पीछे आचमन करके उठे और रात्रिके समय पैर धोकर सोवे, यह आचार लक्षण देवऋषि नारदजी ने कहाहै, यज्ञशाला आदि पवित्र देश गौ, बैल, देवालय, चौराहा, स्नान कियेहुये ब्राह्मण आदि को मार्ग में मिलने से प्रदक्षिणा करे कुटुम्बसमेत कुटुम्बी का भोजन अतिथि के भोजन के समान समझाजाता है अर्थात् भोजन में न्यूनाधिकता न करनी चाहिये-प्रातःकाल सायंकाल के समय भोजन करना मनुष्यों को वेदोक्त है इस प्रकार से करनेवाला व्रतके फलको पाता है और दोनों समय के मध्य में भोजन करना वेद में नहीं कहा है इसीप्रकारसे होमके समय होम करे और ऋतुकालमें अपनी स्त्री के पास जाय एक स्त्री रखनेवाला ज्ञानी ब्रह्मचारी ही कहलाता है ब्राह्मणोंके भोजन से बचा हुआ अन्न ऐसा प्रशंसनीय है जैसा कि माताका हृदय हितकारी होता है उस अन्न की उपासना सन्त लोग करते हैं इसीसे उनको ब्रह्म की प्राप्ति होती है अर्थात् आहार की सिद्धि ब्रह्म को प्राप्त करनेवाली है, यज्ञ की वेदी बनाने के लिये मृत्तिका खोदना और तृणोंका छेदना चावल निकालनेके लिये नखों से यज्ञ के शेषमांस को काटकर खानेवाला, सदैव जूठेमुख अमृत पान करनेवाला, फल का चाहनेवाला ब्रह्मको नहीं प्राप्त करताहै, जो मांसखाना छोड़ा चाहे वह यजुर्वेद के मन्त्रों से संस्कार किये मांस को और असंस्कृत मांसको

और श्राद्ध से बचेहुये मांस को भी नहीं खाय अर्थात् हिंसायुक्त कर्म न करे अपने देश में या परदेश में अतिथिको कभी भूखा न रक्खे अवश्य भोजन करावे अन्न आदि श्रेष्ठ फलको प्राप्त करके गुरु पिता आदि वृद्धों को भेंट करे और गुरुलोगों को आसन, पूजन, दण्डवत् करने से कीर्ति और लक्ष्मी प्राप्त होती है उदयकाल के सूर्यको और अन्य की नग्न स्त्री को कभी न देखे और एकान्त में ऋतुकाल-सम्बन्धी दिवसों में सदैव स्त्री संग करे—तीर्थों की गुप्तबात गुरु है और पवित्र वस्तुवों की गुप्तवस्तु अग्नि है और सत्पुरुषों का किया हुआ सब कर्म उत्तम है और गौ की पुच्छ का स्पर्श करना सदैव पुण्यकारी है, सायंकाल प्रातःकाल ब्राह्मणों को दण्डवत् करना शास्त्रका उपदेश है जब देखे तब अच्छा प्रश्न करे, देवस्थानमें, गौवों के मध्य में और ब्राह्मणोंके वैदिक स्मार्त कर्मके अनुष्ठानमें और वेदपाठआदि भोजन कर्ममें यज्ञोपवीतको बायें कन्धेपर रक्खे अर्थात् सव्य रहे जैसे कि दूकानोंकी बेचनेकी वस्तु साफ़ और उज्ज्वल होती है और खेतोंकी खेती नियत करके अनाजकी वृद्धि की जाती है और इन्द्रियोंको उनके ईप्सित विषयों में प्रवृत्त किया जाता है उसीप्रकार सायंकाल प्रातःकाल बुद्धिके अनुसार वेदपाठी ब्राह्मणोंके पूजन की इच्छा करना चाहिये तात्पर्य यह है कि दूकानके देखने आदि के समान ब्राह्मणों का पूजन प्रत्यक्ष फलवाला है, भोजन कराने में दाता सदैव सम्पन्न कहाताहै और भोजन करनेवाला सुसम्पन्न कहाताहै उसी प्रकार जल पिलाने में दाता तर्पण और पीनेवाला सुतर्पण है और तस्मै भोजन कराने में दाता स्मृत और भोजन करानेवाला सुसृत बोला जाता है उसी प्रकार कृषरान्न के लेने देने में यवाग्वां बोलना योग्य है हजामत बनवाने में, छींकलेने में, स्नान पूजन में ब्राह्मणों को दण्डवत् करना महारोगों का करनेवाला है—सूर्य के सम्मुख मूत्र न करे, अपनी विष्ठा को न देखे, स्त्री के साथ सोने और भोजन करने को त्याग करे वृद्धोंका नाम लेना अथवा तुम शब्द कहना दोनों न करे छोटे और बराबरवालों के नाम का लेना वा तुम शब्द कहना दोष नहीं है पाप चलन पुरुषोंके नेत्र आदिका फिरना उनके पापी हृदयको प्रकट करता है बड़े मनुष्यों में प्रत्यक्ष पाप का छुपाना नाश को करता है—अज्ञानी पुरुष जानबूझकर किये हुये पाप को छिपाते हैं उस पापको जो मनुष्य नहीं देखते हैं तो देवता अवश्य देखते हैं—पापीका छिपाया हुआ पाप पापी के ही सम्मुख आता है और धर्मात्मासे गुप्त किया हुआ अधर्म धर्मात्मा ही के आगे आता है,

अज्ञानी इस लोक के किये हुये पापको स्मरण नहीं करताहै वह पाप शास्त्रोक्त बातों के न माननेवाले कर्ता पर होता है जैसे कि राहु चन्द्रमा को घेरता है उसीप्रकार पाप अधर्मी को घेरलेता है आशा से संचय किया हुआ धन दुःख से भोगाजता है मृत्यु उसको धन के भोगने का समय नहीं देती है और ज्ञानी लोग उसको बुरा कहते हैं, ज्ञानियोंने सब जीवोंका धर्म मानसी कहा है अर्थात् जो चित्तसे किया जाय इस कारण सब जीवोंपर चित्तसे दया करे अर्थात् सबको निर्भय करे धर्म में किसी का साथ न करे क्योंकि धर्म में कोई साथी नहीं है केवल शुद्ध बुद्धि से ध्यान योगरूप धर्म को करे इसमें कोई सहायता क्या करेगा धर्म ही मनुष्य और देवताओंका उत्पत्तिस्थान है और हृदयाकाश नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मलोक में अमृतरूप कैवल्यमोक्ष कारणहै और अपूर्व देह की प्राप्ति में धर्म से ही उन धर्म करनेवालों को सुख मिलता है ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इक्कीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जो यह अध्यात्म नाम पुरुष का धर्मरूप कर्म इस लोक में विचारा जाता है उसको आप मुझसे कहिये और यह जड़ चैतन्यरूप विश्व कहां से उत्पन्न हुआ और प्रलय में कैसे लय होता है उसको भी कृपा करके कहिये–भीष्मजी बोले कि हे पाण्डव ! जो तुम इस अध्यात्म को मुझसे पूछते हो उस महाकल्याणकारी अध्यात्म सुखको तुझसे कहता हूं कि यह ब्रह्मज्ञान जिसमें कि उत्पत्ति लय संयुक्त है वह आचार्योंने दिखाया है जिसको कि पुरुष लोक में जानकर प्रीतिपूर्वक ब्रह्मानन्द को पाता है और फल की सिद्धि होती है वही जीवों का हितकारी है–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पंचतत्त्व सब जीवों की उत्पत्ति और लय के स्थान हैं जिस आनन्दस्वरूप से पंचभूत उत्पन्न हुये वह बराबर उसीमें लय होते हैं वह पंचभूत जरायुज आदि चारो प्रकार के जीवों से ऐसे उत्पन्न होते हैं जैसे कि समुद्र की लहरें यहां जरायुज आदि से आकाश आदि की उत्पत्ति और लय को वर्णन करके उनका आनन्दरूप होना कहा है और स्वप्न आदि के समान आकाश आदि तत्त्वों को कल्पित हांना कहा है–जिसप्रकार कछुवा अंगों को फैलाकर अपने में लय करलेता है उसीप्रकार से जीवात्मा देहादि प्राप्त करनेवाले तत्त्वों को फिर आकर्षण करता है, पंचतत्त्वात्मक जीवों से पंचतत्त्वों की उत्पत्ति कैसे

होसक्री है क्योंकि पुत्र से पिता की उत्पत्ति नहीं होसक्री इसके विषय में कहते हैं कि ईश्वर ने सब जीवधारियों में पंचमहाभूतों को उत्पन्न किया और पंचभूतों में वह अन्तर भी पैदा किया है जिसको कि देहाभिमानी होकर नहीं देखता है जैसे कि स्वप्नका देखनेवाला स्वप्नगत दृष्ट वस्तु को सत्यही जानता है और जागने पर मिथ्यारूप जानता है इसीप्रकार देहके अभिमान दूरहोनेपर आत्मा के सिवाय सब वस्तुवोंको मिथ्या समझता है अब इसबातको सिद्ध करते हैं कि जीवही सबकी उत्पत्तिका कारणहै जैसे कि घटकी उत्पत्तिमें मृत्तिका कारणरूप है इसीप्रकार शब्द, श्रवण और देहोंके छिद्र यह तीनों आकाशसे उत्पन्न होते हैं और स्पर्श, चेष्टा, त्वचा यह तीनों वायु से पैदा होते हैं और रूप, नेत्र, अन्नादि का परिपाक होना यह तीन प्रकार तेज से होते हैं रस, शीतलता, जिह्वा यह तीनों जलके गुण हैं सूंघने के योग्यवस्तु, घ्राणेन्द्रिय, देह यह तीनों पृथ्वी के गुण हैं यह पंचमहाभूत और छठा मन कहाजाता है सो हे भरतवंशिन्! जो इन्द्रियां कि पंचमहाभूतों में संयुक्तहैं और चित्त उनकी वृत्तिरूप है सातवीं बुद्धि आठवां क्षेत्रज्ञसाक्षी है, पांचो इन्द्रियां तो विषय प्राप्त करने के निमित्त और चित्त सन्देह करनेको बुद्धि निश्चय करने को और क्षेत्रज्ञ साक्षीके समान वर्तमान है दोनों चरणों के तलुवों से शिखातक जो नीचे ऊपर दीखता है वह सब उदर आकाशादि साक्षी चैतन्यसे व्याप्त होनेवाला जानो—इसप्रकार बुद्धि आदि के साक्षी का ब्रह्मभाव कहकर इस बुद्धि आदि से संयुक्त महाभूतों की उत्पत्ति कही यह युक्त और श्रुति से विचार करने के योग्य है, अब इस बात को कहते हैं कि पुरुषों को पांचो इन्द्रियां और चित्त बुद्धि यह सातो अच्छेप्रकार से जानने के योग्य हैं और जो सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण हैं वह अप्रकट भी उन इन्द्रियों से उत्पन्न होकर उनमें ही वर्तमान हैं, ज्ञानी मनुष्य विचार से इस त्रिगुणात्मक मायाको अथवा बुद्धिको आकाश आदि भूतोंका और जरायुज आदि जीवों का उत्पत्ति और लयस्थान अच्छेप्रकार से जानके वैराग्य विवेक के क्रम से उत्तमसुख अर्थात् ब्रह्मानन्द को प्राप्त होते हैं अब भूतों के उत्पत्ति और लय के स्थानों को कहते हैं कि तमोगुण से बुद्धि वारंवार विषयात्मक की जाती है इस कारण बुद्धि ही चित्त वा पंचेन्द्रिय और स्थूल सूक्ष्म पंचभूतरूप है उस बुद्धि के नाश होने में सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, चित्त और इन्द्रियों के विषय आदि कैसे बाक़ी रहजायँगे—यह जड़ चैतन्यमय जगत् उसी बुद्धि का

रूपहै बुद्धि के लय और प्रकट होने में इसप्रकार बुद्धिरूप दिखलायाजाता है, कि वह बुद्धि जिसके द्वारा देखती है वह नेत्र हैं, और जिससे सुनती है वह कान, जिससे सूंघती है वह घ्राण और जिससे रस पीती है वह रसना कहलाती है और जिससे स्पर्श होता है वह त्वक् इन्द्रिय है, यह बुद्धि भी चिदाभास से संयुक्त होकर कर्तापन और कारणपने को प्राप्त करती है और जब बुद्धि में कोई इच्छा उत्पन्न होती है तब वह चित्तरूप होजाती है, बुद्धि के अधिष्ठान पांच प्रकार के हैं उन्हीं को भिन्न२ विषयवाली पांचो इन्द्रियां कहते हैं चैतन्य आत्मा अपनी स्वरूपसत्तामात्र से उन इन्द्रियों को कर्म में प्रवृत्त करता है, चैतन्य आत्मा में नियत होनेवाले बुद्धि सुख, दुःख, मोह इन तीनों भावों को पाती है और सुख दुःख मोह में वर्तमान होकर बुद्धि चित्त में प्रवेश करती है और चित्त के द्वारा इन्द्रियों के विषयों में भी प्रवृत्त होती है यह सर्वात्मा बुद्धि सुख दुःखादि भावों को उनका आत्मारूप होने पर भी उल्लंघन करके ऐसे वर्तमान होती है जैसे कि नदियों का स्वामी समुद्र अपनी लहरों से बेला को उल्लंघन करता हुआ वर्त्तमान होता है तात्पर्य्य यह है कि इसप्रकार बुद्धि से उत्पन्न होनेवाले देह, इन्द्रिय, विषय जो कि योग के द्वारा बुद्धि में लय होते हैं उनके संस्कार ब्रह्माकार बुद्धि से अन्तर्द्धान होते हैं, आत्माकार वृत्तिवाला बुद्धि के निर्गुण सिद्ध होने पर उसकी दशा को कहते हैं कि सुख आदि भाव से पृथक् होनेवाली बुद्धि चित्त में सत्तामात्र वर्त्तमान होती है अर्थात् पूर्णज्ञान में मोक्षरूप सूक्ष्म होती है फिर उत्थान कालपर प्रकट होनेवाला रजोगुण बुद्धि के भाव को प्राप्त होता है सबका आशय यह है कि जैसे तैल जलरूप होजाता है उसी प्रकार लय होनेवाली बुद्धि रजोगुणरूपी शीतसे तैलके समान फिर सूक्ष्मरूप को प्राप्तहोती है और जबतक प्रारब्ध कर्म का नाश नहीं होता तबतक अविद्यारूप देहादिकों को प्रकट करती है प्रारब्ध नाश होने के पीछे कैवल्यमोक्ष प्रत्यक्ष होती है तब वह रजोगुणरूप बुद्धि सब इन्द्रियों को कर्म में प्रवृत्त करती है फिर सतोगुणरूप बुद्धि विषयों के मुख्यरूप को पहिंचानती है और तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाला भाव रागादि दोषों में प्रवृत्त होता है—सतोगुण प्रीतिरूप, रजोगुण शोकरूप, तमोगुण मोहरूप है इसलोक में जो २ भाव शम, दम, काम, क्रोध, भय, विषाद आदि हैं वह सब इन तीनों गुणों में वर्त्तमान होते हैं यह सब बुद्धि की गति तुमसे कही बुद्धिमान्को सब इन्द्रियां जीतनी योग्य हैं यह तीनों

गुण सदैव जीवों में रहते हैं इसीसे सबजीवों में तीनहीं प्रकार की पीड़ा देखने में आती है उसको सात्त्विकी, राजसी, तामसी बोलते हैं सतोगुण सुखरूप, रजोगुण दुःखरूप और यह सुख दुःख तमोगुण से मिलके सुख दुःखरूप नहीं होते किन्तु मोह के करनेवाले होते हैं, फिर जो दुःख से मिला है और अपनी प्रीति करनेवाला नहीं है वहां यह जानना चाहिये कि रजोगुणयुक्त कर्म हुआ है किसी बात की चिन्ता न करे अर्थात् दुःख को गिनती में नहीं गिने-यह सात्त्विकी गुण बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं, तृष्णा, दुःख, शोक, लोभ, अक्षमा-यह रजोगुण के लक्षण हैं, अपमान, मोह, प्रमाद अर्थात् भूल, स्वप्न, अर्धस्वप्न इत्यादि नानाप्रकार के तमोगुण बड़ी अभाग्यता से उत्पन्न होते हैं दुःप्राप्य वस्तुओं में भी प्राप्त होनेवाला बहुत से विषयों में एकबार ही प्रवृत्त होनेवाला प्रश्नकर्ता, और संशयात्मक चित्त, अथवा जिसके चित्त की वृत्ति रुकगई है वह इसलोक परलोक में सुख का भोग करता है-उस सूक्ष्मरूप बुद्धि बल और क्षेत्रज्ञ साक्षी के अंतर को देखो कि उनमें एक तो गुणों को पैदा करता है दूसरा नहीं करता है जैसे कि मशक अर्थात् मच्छर और गूलर यह दोनों परस्पर में सदैव एकत्र होते हैं उसी प्रकार उन बुद्धि और क्षेत्रज्ञ दोनोंका संयोग है वह दोनों स्वभावसे भिन्न सदैव मिले रहते हैं जैसे कि जलमें मछली रहती है उसी प्रकार वह दोनों संयुक्त हैं गुण तो आत्मा को नहीं जानते परन्तु आत्मा सब गुणों को जानता है तात्पर्य यह है कि गुण जड़रूप हैं और आत्मा चैतन्यरूप है इसीप्रकार पुरुष उन गुण अर्थात् देह अहंकारादि का द्रष्टा है और उनको अपने से भिन्न नहीं मानता है-वह परमात्मा उन चेष्टाओं से रहित अज्ञान इन्द्रिय बुद्धि के द्वारा दीपक के समान अर्थों को प्रकाश करता है-बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है और क्षेत्रज्ञ देखता है उस बुद्धि और क्षेत्रज्ञ का यह प्राचीन सम्बन्ध है, बुद्धि और क्षेत्रज्ञ का सम्बन्ध वर्णन में नहीं आसक्ता इसको कहते हैं कि बुद्धि और क्षेत्रज्ञ का कोई आधार नहीं है क्योंकि क्षेत्रज्ञ असंग और निर्गुण है और बुद्धि मिथ्या और चित्तकी उत्पन्न करनेवाली है उसके जड़रूप गुणों को कभी पैदा नहीं करती अर्थात् वह गुण अपने कार्य्य समेत सब मिथ्या हैं-अब अध्यास निवृत्ति की युक्ति को कहते हैं कि जब उस बुद्धि की इन्द्रिय को अच्छे प्रकार से स्वाधीन करता है अथवा रोकता है तब उसका आत्मा ऐसे प्रकाश करता है जैसे कि घटमें प्रज्वलित दीपक होता है, जो ज्ञानी

अपने स्वाभाविक कर्मोंको त्याग करके केवल आत्मामें प्रीति रखनेवाला ध्यानशील मुनि होकर सब जीवों का आत्मारूप होता है अर्थात् जो इस प्रकार से जानता है कि मैं ब्रह्म हूं वह सर्वरूप होता है और इसीसे उत्तम गति को पाता है- जैसे कि हंसपक्षी जल में नहीं भीजता है उसी प्रकार ज्ञानी देहादि भूतों में घूमता है, इसप्रकार के इस आत्मरूप स्वभाव को अपनी बुद्धि से विचारकर समदर्शी और मित्रता से पृथक् मनुष्य हर्ष शोकरहित होकर विहार करता है, इसी ज्ञानी की जीवन्मुक्ति को कहते हैं कि जो पुरुष आत्मस्वरूप योगसे संयुक्त है वह सदैव गुणों को अपने ऐश्वर्य्य बलसे ऐसे उत्पन्न करता है जैसे कि सूत्र को मकड़ी उत्पन्न करती है वह गुण तार के समान जानने योग्य हैं यह दृष्टांत एकता के निमित्त वर्णन किया इस प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष जिसका देह प्रारब्ध कर्म से बना है पूर्व्व संस्कार के कारण सन्मुख वर्त्तमान गुणों से देखने के समय उत्पत्ति को देखता योग, ऐश्वर्य, आत्मा आदिसे अथवा निर्विकल्प ध्यान से वर्त्ताव करता है यह तो पूर्व्व कहा और प्रारब्ध कर्म्म के समाप्त होनेपर गुण घटके समान निवृत्त होते हैं अथवा रस्सी के सर्प के समान पीड़ा देते हैं इस बातको विचारते हैं और नाशरूप होनेवाले गुण निवृत्त नहीं होते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष में निवृत्ति नहीं पाईजाती है वह परोक्ष अनुमान से सिद्धि होती है अर्थात् नानाजीव माननेवाले व्यवहार की रोक से निवृत्ति होना नहीं मानते हैं और दूसरे एक जीव माननेवाले निश्चय करते हैं कि निवृत्ति होजाती है अर्थात् अपने अज्ञान से उत्पन्न होनेवाला जो प्रपञ्च है उसके नाश होने में अत्यन्त निवृत्ति ऐसे होजाती है, जैसे कि स्वप्नमें दृष्ट आनेवाली वस्तु जागते ही नष्ट होजाती हैं इन दोनों को दिखाकर इनमें से एक मतको शास्त्र में अच्छे प्रकार से विचारकर बुद्धि के अनुसार निश्चय करे अर्त्थात् ध्यान से साक्षात्कार करे-क्षेत्रज्ञ और बुद्धि के अन्तररूपी हृदय की गांठको खोल अर्थात् दोनों को एक करके सुखपूर्वक वर्त्तमान होकर संदेहरूपी शोचको न करे-क्षेत्रज्ञ में बुद्धि के धर्म दुःख आदि हैं और बुद्धि में क्षेत्रज्ञ के धर्मदृष्ट पड़ते हैं इससे बुद्धि से होनेवाला जो अन्तर है उसको त्याग करे जैसे कि मलिन देहवाला मनुष्य पूर्ण नदी में स्नान करने से देह की पवित्रता को पाते हैं उसी प्रकार ज्ञानीपुरुष इस ज्ञानको प्राप्त करके शुद्धता को प्राप्त होते हैं, जैसे महानदी के पारको जानेवाला अत्यन्त दुःख को पाताहै वह मिथ्या नहीं है किन्तु नौका आदि के द्वारा

पार को जाता है उसी प्रकार तत्त्वज्ञान का जाननेवाला ज्ञान से ही संसार को तरता है जिन्हों ने इस प्रकारसे हृदयरूपी आकाश के मध्यवर्त्ती विषयोंसे पृथक् आत्मा को जाना है वही उत्तम ज्ञान को पाते हैं, सब जीवों के उत्पत्ति और लय का स्थान ब्रह्म को जानकर धीरे२ सूक्ष्म बुद्धि से विचारकर जो पुरुष त्यागको करता है वह सुनने और विचार करने से ध्याननिष्ठ तत्त्व को देखनेवाला और आत्मदर्शनके सिवाय कहीं देखनेकी इच्छा न करनेवाला होता है—अपवित्र, मिथ्यावादी मनुष्यों से कठिनता से प्राप्त होनेवाला आत्मदर्शन इन्द्रियों के द्वारा नहीं होसक्ता है इसको जानके ज्ञानी होवे—ज्ञानी का दूसरा लक्षण क्या है अर्थात् कोई नहीं ज्ञानी लोग इसी को जानकर निर्विघ्नतापूर्वक कर्मोंसे निवृत्त होते हैं अज्ञानियों का जो बड़ा भयकारी संसारी दुःख है उससे ज्ञानियोंको भय कभी नहीं होता है—किसी की मोक्षरूप गति अधिक नहीं है अर्थात् सबकी बराबर है गुणों के स्वीकार और अलंकार से असमानता होती है जो पुरुष कर्म को फल की अनिच्छा से करता है वह पहले किये हुये पापोंको दूर करता है पूर्वजन्म के और वर्त्तमानके कर्म उस ज्ञानी के अनीप्सितको सब प्रकार से उत्पन्न नहीं करते हैं तो यहां अभीष्ट को कैसे करेंगे अर्थात् कर्म मोक्ष में कारणरूप नहीं है—काम, क्रोध, लोभरूप, विषयोंसे जर्जरीरूप लोकको देखनेवाला मनुष्य धिक्कारी देता है वह निंदित कर्म उस व्यसनीको यहां सबयोनियों में पैदा करताहै—लोकमें अच्छे प्रकार से मिलकर व्यसनी लोगों को देखो कि पुत्र स्त्रियों आदि के शोचनेवाले हैं और सारासार के विवेक के जाननेवाले और शोकसे रहित पुरुषों को देखो जिन्होंने सत्पुरुषों के उन दोनों क्रममुक्ति और सदैव मुक्तियोंको जानाहै ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन्, युधिष्ठिर ! मैं चार प्रकार के ध्यानयोग को तुम से कहता हूं जिनको कि इस लोक में महर्षि लोग जानकर सनातन मोक्षसिद्धि को पाते हैं, ज्ञान से तृप्त निर्वाण मोक्ष में शांतचित्त योगी इसप्रकार से ध्यान को करते हैं जैसे कि अच्छे अनुष्ठानवाले कियाकरते हैं—हे युधिष्ठिर ! आत्मरूप में चारों ओर से नियत होकर संसारी दोषों से रहित पुरुष फिर संसार में नहीं आते हैं, शीतोष्णता के सहनेवाले सदैव प्रकाश में नियत लोभ आदि से रहित और शौच सन्तोषादि कर्म्मों के करनेवाले हैं और जिनके स्थान स्त्री आदि के संग

से और पक्षपात से रहित और चित्त की शुद्धि करनेवाले हैं उन स्थानोंपर ध्यान से मन को लगाकर एकाग्रता प्राप्त करे और इन्द्रियों को दमन करके काष्ठ के समान वर्त्तमान होजाय-कान से शब्द को न सुने-त्वचा से स्पर्श को न जाने-नेत्र से रूप को न पहिंचाने-जिह्वा से रस का आस्वाद न करे और घ्राण से सब गन्धोंको त्याग दे वह पराक्रमी योगी ध्यान से पांचों इन्द्रियों को दमन करनेवाले इन विषयोंको नहीं चाहैं तदनन्तर यह ज्ञानी पंचवर्ग्गों को हृदय में रोककर पांचों इन्द्रियों समेत व्याकुल चित्त को आत्मा में लय करे, ज्ञानीपुरुष प्रथम उस चित्तको जोकि विषयों में घूमनेका अभ्यासी पांच द्वारवाला चेष्टायुक्त विषयों में भी चेष्टारहित है उसको हृदयाकाश में देहादि के अवलम्बन से रहित करके चारप्रकार के ध्यानमार्ग्ग में धारण करे-जब यह ज्ञानी चित्त और इन्द्रियों को पिण्डीभाव करता है यह पिण्डीकर्म्म मुख्य ध्यानमार्ग है, इसको मैंने तुमसे कहा-उस जीवात्मा के जो चित्त, बुद्धि, पंचेन्द्रिय समेत सात अंग हैं उनमें छठा अंग जो चित्त है वह प्रथम रोकेजाने से भी ऐसे चेष्टा करेगा जैसे कि बादल में घूमनेवाली बिजली-और पत्तेपर ठहरा हुआ और सब ओर से चलायमान अम्बुकण होता है उसी प्रकार ध्यानमार्ग्ग में नियत होकर चित्त भी चलायमान होता है वह थोड़े समयतक तो ध्यानमार्ग्ग में वर्त्तमान होता है फिर नाड़ीमार्ग्ग में जाकर भ्रान्तियुक्त चित्त वायु के समान होजाता है-योगमार्ग्ग में कष्टपानेवाला भी उससे चित्तको न हटावे, और निरालस्य दूसरे की वृद्धि का सहनेवाला हो जाय फिर ध्यानयोग का जाननेवाला ध्यानके द्वारा चित्त को समाधान करे-प्रथम योग का अनुष्ठान न करनेवाले मुनि का विचाररूपी ध्यान या विवेक अथवा वितर्क नाम ध्यान प्रारम्भ में अधिकार के भेद से प्राप्त होता है अर्थात् चित्त से कल्पित सुन्दर पीताम्बर आदि के रूप में चित्त का लगाना बीचवालों का विचार है वह भी सविचार और निर्विचार के नाम से दो प्रकार का है, जब शब्दार्थ के लिखने के साथ ही भक्ति होती हैं वह उत्तम है और उस शब्दार्थ के विना जो होती है उसमें दूसरा विचार है, सवितर्क और निर्वितर्क नाम दो प्रकार के स्थूलालम्बन में यह भेद अधम अधिकारियों के योग्य है-चित्त से क्लेश पानेवाला मुनि समाधिनिष्ठ हो और उस समाधि से प्रीतिरहित न होकर अपने हित को ही करे जैसे कि धूल, भस्म, और गोबर के सात आदि की मूर्ति जल के योग से जल्दी नहीं बनसक्ती है

परन्तु जैसे कि कुछ दिन पीछे उनमें चिकनाई आदि होनेसे मूर्ति बनजाती है इसीप्रकार सब इन्द्रियों को एकरूप करे और क्रम से उसके अंगों के त्यागने से चित्तरूप करे वह पुरुष अच्छे प्रकार से शांति अर्थात् निर्विकल्पता को पाता है अर्थात् वितर्क से विचार को पाता है, विचार से आनन्द को, आनन्द से समता को,समतासे कैवल्यभावको पाता है यह क्रम योगशास्त्रमें प्रसिद्धहै–हे युधिष्ठिर! इसप्रकार प्रथम बुद्धिवाला आपही चित्त और पांचों इन्द्रियों को ध्यानमार्ग्ग में नियत करता है अर्थात् इन सबको लय करके सदैव के योग से आपभी शांतिको पाता है, नरलोक और देवलोक की किसी पदवीसे उस सुखको नहीं पाता है जो सुख कि चित्तरोकनेवाले योगी को होता है उस सुख से संयुक्त ध्यान कर्म्म में प्रीतिमान् योगी इसप्रकार उस द्वैतसे पृथक् कैवल्यरूप ऐक्यताको पाते हैं ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तेईसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि तुमने चारों आश्रमों का हितकारी धर्म्म कहा उसी प्रकार राजधर्म्म आदि अनेक प्रकार के धर्म्मों के उत्पत्ति स्थान और भिन्न २ प्रकार के बहुत से इतिहास वर्णन किये–हे महाज्ञानिन्! आपसे मैंने बहुत सी धर्म्मसंबंधी कथाओं को सुना अब मैं आपसे जप करनेवाले के फल की प्राप्ति को सुना चाहता हूं कि जप करनेवालों को क्या फल होता है और उनका निवास कहां होता है और जप करनेवाला पुरुष वेदान्त का विचार करनेवाला है या योगी और कर्म्म करनेवाला है और यह सांख्य है या योग या क्रिया बुद्धि है यह क्या ब्रह्मयज्ञ की बुद्धि है यह जप क्या कहाजाता है यह सब मुझसे कहो मैंने आपको सर्वज्ञ माना है–भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर मैं एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें यमराज कालपुरुष और ब्राह्मण आदि का प्राचीन वृत्तांत है–मोक्षदर्शी मुनियों ने जो दोनों सांख्य और योग कहे उनके मध्य वेदांत के विषय में तर्क ही वर्त्तमान है अर्थात् संन्यासियों को जप की आवश्यकता नहीं है वह उपासना के अधिकार से भी बढ़कर उत्तमपद को प्राप्त हुये क्योंकि सब वेदवचन ब्रह्म में नियत शांतरूप वैराग्य से संयुक्त हैं समदर्शी मुनियों ने जो सांख्ययोग कहे यह दोनों मार्ग भी जप के उपकारी हैं अर्थात् चित्तशुद्धि के द्वारा तत्त्वमसि वाक्य का अर्थ जानने से आलम्बनरूप योग में प्रणव का जप उपकारी है और वह मार्ग्ग जप का उपकारी भी नहीं अर्थात्

साक्षात्कार में जप की आवश्यकता नहीं है हे राजन् ! जैसे सुनाजाता है उसी प्रकार से यहां कहाजाता है इन दोनों मार्गों में भी चित्त का रोकना और इन्द्रियों का जीतना, सत्यता, अग्निसेवा, एकांतवासी, महात्माओं का सेवन, ध्यान, तप, विषयों में दोषदृष्टि होना, दम, क्षमा, दूसरे के गुणों में दोष न लगाना, अनुकूल भोजन, विषयों का जीतना, मितभाषी, देहेन्द्रिय का जीतना, यह प्रवर्त्तक यज्ञ है अर्थात् स्वर्गादि का देनेवाला है, और निवर्त्तक यज्ञ यह है कि जैसे ब्रह्मचारी जपकरनेवाले का कर्म्म समाप्त होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त होती है वही निवर्त्तकयज्ञ है उसकी यह रीति है कि चित्त की जो समाधि ऊपर वर्णन करचुके हैं उसको कर्म के द्वारा फल से रहित करे अर्थात् निवृत्तिमार्ग को जो कि गुप्त प्रकट आलंबन का आश्रय न करनेवाला शुद्ध चिन्मात्र है उसको पाकर नियत हो—अब मार्ग प्राप्त होने को कहते हैं—कि हृदयकमल से कुशा के समान जो नाड़ियां निकलकर संपूर्ण देह में फैली हैं उन प्रकाशात्माओं से भरी हुई नाड़ियों पर विराजमान आगे ऊपर नीचे और चारों ओर कुशाओं से व्याप्त उस कुशाजालरूप हृदय पिण्ड के मध्य यह पुरुष कुशाओं से ढ़का हुआ है अर्थात् दीपक के समान तेज के द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है वही सबका प्रकाश करनेवाला और आत्मा है—चित्त को बाहर के विषयों से पृथक् करे और अन्तर्य विषयों को त्याग करे चित्त से जीव ब्रह्म की एकता को प्राप्त करके चित्त को चित्त में लय करे क्योंकि चित्त कूटस्थ ब्रह्म का रूपांतर नहीं है और माया मिथ्या है इस कारण वह इन दोनों में लय नहीं होता है उस समदर्शी बुद्धि से हितकारी संहिता को जपकरता हुआ शुद्ध ब्रह्मको ध्यान करता है फिर समाधि में नियत होकर वह पुरुष चित्त की स्थिरता के पीछे उसको भी त्याग करता है यहां वह शुद्धचित्ता विचार से जितेन्द्रिय और योगियों की इच्छायुक्त ब्रह्म नाम का रखनेवाला ज्ञानी संहिता बल की रक्षा से ध्यान को उत्पन्न करता है—राग, मोह से रहित सुख दुःखादि योगों से जुदा वह पुरुष न शोचता है न शान्तचित्त होता है वह कर्म्मों का कर्मफल उत्पन्न करनेवाला नहीं है यही मर्य्याद है—कहीं अहंकार के योग से चित्त को प्रवृत्त नहीं करे—धन के प्राप्त करने में प्रवृत्त अहंकार युक्त और कर्मरहित न होवे ध्यान क्रिया को उत्तम माननेवाला ध्यान में प्रवृत्त और निश्चय रखनेवाला ध्यान के आलम्बन में समाधि को प्राप्त करके उसको भी क्रम क्रम से त्याग करता है उस दशा में वह

सबका त्याग करनेवाला अनिच्छा से प्राणोंको त्याग करता है वह आनन्दरूप ब्रह्म में प्राप्त होता है अर्थात् उसके प्राण पितृयान और देवयानों के द्वारा चेष्टा नहीं करते हैं वह तद्रूप होजाता है चाहे ब्रह्मरूप सुखका सेवन भी न चाहे तो भी वह मार्ग्ग में वर्त्तमान ब्रह्मलोक की ओर चेष्टा करता है परन्तु कहीं जन्म नहीं लेता है आत्मारूप बुद्धि से अच्छे प्रकार ब्रह्म में नियत होकर शान्तरूप जरा मृत्युसे पृथक् रजोगुणरहित अविनाशी आत्माको वह पुरुष प्राप्त करता है॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥ २३ ॥

चौबीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! यहां आपने जप करनेवालों की उत्तम गति प्राप्त होने का वर्णन किया सो उनकी एक ही गति है अथवा दूसरी भी कोई गति है—भीष्मजी बोले कि हे राजन्, युधिष्ठिर ! तुम जप करनेवालों की उस दूसरी गति को सावधान चित्त होकर सुनो जैसे कि वह बहुत प्रकार के नरकों को जाते हैं कि जो जप करनेवाला पहले कहे हुये वचनों के अनुसार कर्म नहीं करता है और इसलोक में अपूर्ण जप का करनेवाला है वह नरक को जाता है, श्रद्धा प्रीतिरहित अप्रसन्न चित्त होकर जप करनेवाला भी अवश्य नरक को जाता है अहंकार करनेवाले सब मनुष्य नरक में जाते हैं, दूसरे का अपमान करनेवाले भी नरक को जाते हैं, जो मोहसे भरा हुआ मनुष्य चित्त की इच्छा के अनुसार जप करता है उसकी जिस फल में प्रीति होती है वह वहां २ उसके भोगने को जन्म लेता है फिर उन्माद आदि में वह जप करनेवाला इच्छा करता है वही उसका नरक है उससे उद्धार नहीं होता है उन उन्माद आदि विभूतियों में राग से मोहित होकर जप करता है ऐसी दशा में जिस फल की उसको इच्छा होती है वहां उसका फल भोगने के लिये जन्म लेता है—दुष्ट भोगों में बुद्धि लगानेवाला और भोगों के परिणामवाले दुःखों का न जाननेवाला चलायमानचित्तहोता है और चलायमान गतिको पाता है अर्थात् नरकको जाता है अज्ञानी बालक जप करनेवाला मोह को पाता है और उस मोह से नरक को जाता है वहां जाकर शोच करता है मैं करता हूंइसप्रकार जो दृढ़ग्राही जापक जप करता है और वैराग्यवान् नहीं है परन्तु बहुतसे भोगोंको त्याग किये हुये है—वह नरक को जाता है, युधिष्ठिर बोले कि जो स्वाभाविक चित्तवृत्ति से रहित ब्रह्म में स्थित है ऐसा जापक किसप्रकार देह के साथ ब्रह्म में प्रवेश करता है भीष्मजी

बोले कि काम से ढकी हुई बुद्धिके कारण बहुत नरक और उस बुद्धिसे सम्बन्ध रखनेवाले दोष रागादिक और उत्तम जपका करना यह सब वर्णन किये ॥ १३॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पच्चीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जप करनेवाला किसप्रकार नरक को जाता है इस मेरे चित्त के शोक को आप दूर करिये—भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! तुम धर्म्मके अंशसे उत्पन्न और स्वभावसे धर्म्मनिष्ठ हो तुम सावधान होकर मेरे कहे हुये वचनों को सुनो—कि यह जो परमउत्तम देवताओं के उत्तमस्थान नाना वर्णों के निवासरूप अनेक फलों के देनेवाले हैं और वैसे ही दिव्य कामचारी विमान और सभा हैं और क्रीड़ाके उद्यान आदि में सुवर्ण सदृश कमलशोभित हैं और चारों लोकपाल शुक्र, बृहस्पति, मरुद्गण, विश्वेदेवा, साध्यगण, अश्विनीकुमार, रुद्र, सूर्य, अष्टवसु, इसीप्रकार दूसरे देवताओं के जो लोक हैं वह सब परमात्मा से पृथक् स्थान होने से नरकरूप हैं, परमात्मा का परमधाम तो निर्भय अविनाशी स्वभाव सिद्ध दोषरहित बाह्याभ्यन्तर से शुद्ध आनन्दमय कालरूप ब्रह्म और स्वर्ग आदि का ईश्वर है शुद्ध आत्मारूपको पानेवाला ज्ञानी उस ब्रह्मरूप स्थान को पाकर शोच से रहित होता है परमधाम ऐसा है और वह नरक वैसे हैं—यह सब नरक ठीक२ तुम से कहे गये इस लोक में उस परमधाम की अपेक्षा सब नरकरूप हैं ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

छब्बीसवां अध्याय ॥

जप करनेवाले के स्वाधीन यमराज आदि होते हैं वह आप समेत दूसरों को तारता है उसको सत्यता आदि की रक्षा करनी योग्य है और छल आदि भी त्याग करने योग्य हैं इन बातोंको दो अध्यायों में वर्णन करेंगे युधिष्ठिर ने कहा कि आपने पूर्व्व में कालमृत्यु, यमराज राजा इक्ष्वाकु और ब्राह्मण का संवाद वर्णन किया सो इसके भी कहने को आप समर्थ हैं—भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं इसमें भी सूर्य्य के पुत्र यमराज और इक्ष्वाकु और ब्राह्मण का वृत्तांत है दूसरे उसी प्रकार के काल और मृत्यु का भी वर्णन है उसको मुझसे सुनो और उन्हींका वह संवाद भी जिसप्रकार जिस स्थानपर हुआ उसको सुनो—कि कोई जप करनेवाला धर्मवृत्ति ब्राह्मण बड़ा यशस्वी शिक्षा

कल्पादि छः अंगोंका जाननेवाला महाज्ञानी कौशिकगोत्री पिप्पलाद नाम वेद के छः अंगों में उसका अपरोक्ष ज्ञान था वह वेदों में पूर्ण होकर हिमालय के मूल में वर्त्तमान था वहां संहिता को जप करते उस सावधान ब्राह्मण ने अति उत्तम ब्राह्मण के योग्य तप को किया, इस नियम से इसके हजार वर्ष व्यतीत हुये तब साक्षात् देवी भगवतीने उसको दर्शन दिया और कहा कि मैं प्रसन्न हूं उस ब्राह्मण ने जप में मौन होकर उससे कुछ नहीं कहा तब तो देवी सावित्री ने उसकी निरपेक्षता से बहुत प्रसन्न होकर उसके जपकी अत्यन्त प्रशंसा की तब वह जप को समाप्त करनेवाला धर्म्मात्मा उठ कर मस्तक को नवाकर देवी के चरणों पर गिरपड़ा और यह वचनबोला कि हे देवि ! तुम प्रारब्धसे मेरेऊपर प्रसन्न हो इससे मुझको दर्शन दिया और मेरे देखनेको आईं जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरा चित्त जपमें प्रवृत्त हो सावित्री बोली कि हेजप करनेवालों में उत्तम, ब्रह्मऋषि ! तू क्या चाहता है तेरी क्या प्रसन्नता करूं तू अपने अभीष्ट को अच्छे प्रकार से कह मैं सब पूर्ण करूंगी जब देवीने ऐसा कहा तब उस धर्मज्ञ ब्राह्मण ने वारंवार यही कहा कि मेरी यह जपकी इच्छा वृद्धिको पावे और प्रतिदिन चित्तमें नियम बढ़े तब देवीने इसे मधुरवचनसे कहा कि यह तेरा अभीष्ट सिद्ध होगा और यह दूसरा वर भी दिया कि तुम नरकयुक्त विनाशवान् होने से उस स्वर्ग को नहीं जाओगे जहां कि उत्तम ब्राह्मण जाते हैं अर्थात् उस ब्रह्मलोक को जाओगे जो कि स्वभाव सिद्ध और निर्दोष है इस कारण से कि मैंने यही इच्छा मुझसे की है कि मेरा चित्त जपही में प्रसन्न रहै इस हेतु से मेरी कृपा से तुझको वही प्राप्त होगा और तुम सावधानतापूर्व्वक चित्तको एकाग्र करके जप में प्रवृत्त हो तेरे समीप धर्म, काल, मृत्यु, यमराज यह सब आवेंगे तब धर्म के विषय में तेरा और उनका शास्त्रार्थ होगा—भीष्मजी बोले कि इस प्रकार भगवती कहकर अपने भवनको गईं और ब्राह्मण भी उसी प्रकारसे दिव्य शतवर्षतक जप करने में वर्त्तमान रहा और चित्त से जितेन्द्रिय क्रोधरहित सत्यवक्ता दूसरों के गुणों में दोष नहीं लगाता था फिर उस बुद्धिमान् ब्राह्मण का वह नियम समाप्त होने पर साक्षात् धर्म देवता ने प्रसन्नमूर्ति होकर आप दर्शन दिया और कहा कि हे ब्राह्मण ! तुम मुझ धर्म को देखो मैं तेरे देखने को आया हूं इस जप का फल जो तुमने पाया है उसको मुझसे मांगो कि तुमने पृथ्वी स्वर्ग से सम्बन्ध रखनेवाले सब लोकोंको विजयकरके देवताओंके भी सब लोकों को उल्लंघन करोगे इससे प्राणों

को त्यागो तुमको इच्छा के समान लोकों की प्राप्ति होगी ब्राह्मण बोला हे धर्म ! मुझको लोकों से कोई प्रयोजन नहीं है तुम आनन्द से चले जाओ और हे समर्थ! मैं बहुत सुख दुःखवाले दूसरे देहको उत्पन्न नहीं करना चाहता अर्थात् इसी देह से मुक्त होना चाहता हूं—धर्म ने कहा हे मुनिश्रेष्ठ! तुमको अवश्य देह त्यागना योग्य है और हे अनघ ! तुम स्वर्ग में बसोगे या और कुछ चाहते हो—ब्राह्मण बोला कि हे समर्थ ! मैं आत्माके देह विना स्वर्ग को नहीं चाहता हूं हे धर्म ! तुम जाओ आत्मा के विना स्वर्ग जाने में मेरी श्रद्धा है धर्म्म बोले कि देह में चित्तलगाना त्याग करो और शरीर को त्याग करके सुखी हो रजोगुण से पृथक् लोकों में जाओ जहां किसी बातका शोच नहीं है, ब्राह्मण बोला कि हे महाभाग ! मैं जपताहुआ रमण करूंगा सनातन लोकोंसे मुझको क्या लाभ है इससे हे धर्म ! मुझको देहसमेत स्वर्ग जाना चाहिये या नहीं, तात्पर्य्य यह है कि सदेह स्वर्ग को जाना जप के फल से न्यून है—धर्म बोले हे ब्राह्मण ! जो तुम देह का त्यागना नहीं चाहते हो, देखो यह कालमृत्यु और यमराज तेरे पास आये हैं—तदनन्तर यमराज और कालमृत्यु ने उस महाभाग ब्राह्मणके पास जाकर यह कहा कि अच्छे प्रकार तपेहुये और विधिपूर्वक किये हुये इस तेरे तपकी यह उत्तम फल की प्राप्ति है मैं यमराज हूं तुम से कहता हूं फिर कालपुरुष बोले कि इस जपका फल उत्तम जैसा कि चाहिये था उसी प्रकार से किया तेरे स्वर्गजाने का काल है मैं कालपुरुष तेरे पास आया हूं मृत्यु बोली कि मुझ आई हुई को रूपवान् मृत्यु जानो हे ब्राह्मण ! मैं काल की भजी हुई तेरे लेने को यहां आई हूं ब्राह्मण ने कहा कि काल, यमराज, मृत्यु और महात्मा धर्म का आना शुभ हो आपका क्या कार्य्य करूं भीष्मजी बोले कि यह कहकर उनका अर्घ्य पाद्य करके प्रसन्नतापूर्वक यह बोला कि मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार आपकी क्या सेवा करूं इसी अंतर में तीर्थयात्रा करताहुआ राजा इक्ष्वाकु भी दैवयोगसे वहां गया जहां पर कि वह सब वर्त्तमान थे वहां उस राजर्षि ने सबको यथायोग्य प्रणाम पूजनादि करके कुशल प्रश्न पूछा तब उस ब्राह्मण ने भी राजा का पाद्य अर्घ्य आसनादि से सत्कार करके यह प्रश्न किया कि हे महाराज ! आपका आना कल्याणकारी हो आपका जो अभीष्ट है उसको यहां मैं अपनी सामर्थ्य के समान किया चाहता हूं आप आज्ञा दीजिये राजाने कहा मैं राजाहूं तुम ब्राह्मण हो जब तुम अपने छओं कर्मोंमें वर्त्तमान हो तब सुवर्ण रत्नादि दानोंमें से कौन सा आपको

हूं उसको आप मुझसे कहिये, ब्राह्मण बोला कि हे राजन्! ब्राह्मण दो प्रकारके हैं और धर्म भी दो भेदका है प्रवृत्त और निवृत्त इस कारण मैं दान लेना नहीं चाहता हूं जो दानलेनेवाले पवित्र ब्राह्मण हैं उन्हीं को आप दान दीजिये मैं दान नहीं लूंगा आपको क्या अभीष्ट है और मैं क्या करूं और हे राजाओं में उत्तम! जो आप अपना मनोरथ कहें उसको मैं अपने तपके बल से पूरा करूं, राजा बोला कि हे ब्राह्मणोत्तम! मैं क्षत्रिय हूं मैं इस वचन के कहने को नहीं जानता हूं कि मुझको दो, हम इस प्रकार के कहनेवाले हैं कि हमको युद्धदान दो ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन्! जैसे तुम अपने धर्म से प्रसन्न हो उसी प्रकार हम भी अपने धर्म में प्रसन्नहैं परस्पर में कोई अन्तर नहीं है जो आपको अभीष्ट है वही करो, राजाने कहा कि हे विप्रवर्य! तुमने जो कहा कि मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार दूंगा तो मैं आपसे मांगताहूं कि इस अपने जपकाफल मुझको दीजिये, ब्राह्मण ने कहा कि जो आप कहते हैं कि मैं सदैव युद्ध की ही याचना करता हूं तो हमारे साथ में कोई युद्ध नहीं है फिर ऐसी याचना क्यों करते हो राजा बोला कि ब्राह्मण वज्ररूप वचन कहनेवाले होते हैं और क्षत्रिय लोग भुजबल से जीवते हैं सो हे ब्राह्मण! यह वचनरूप कठिनयुद्ध मेरा आपके साथ है ब्राह्मण ने कहा कि हे राजेन्द्र! अब भी मेरा वही प्रण है कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार क्या दियाजाय आप कहिये मैं सामर्थ्य होनेपर दूंगा विलम्ब न कीजिये-राजा ने कहा कि जो आप मुझको दिया चाहते हैं तो आपने जो दिव्यशतवर्ष तक जप किया है उसका फल मुझको दो, ब्राह्मण बोला कि उस जप के श्रेष्ठफल को लो जो मैंने जपा है तुम विना विचार के उसके आधे फल को पाओ-और जो तुम मेरा सब फल चाहते हो तो सब जप का फल लो राजा बोला आपका कल्याण हो मैंने जो जप के फल की इच्छा की वह आपने पूर्ण की अब यह भी बतलाइये कि इस जप का क्या फल है ब्राह्मण बोला कि मैं फल की प्राप्ति को नहीं चाहता हूं मैंने जो जप किया वह मैंने दिया यह धर्म, काल, यम, मृत्यु इसके साक्षी हैं राजा बोला कि इस धर्म का अज्ञात फल मेरा क्या उपकार करेगा जो तुम जप के धर्मफल को मुझसे नहीं कहते हो इससे हे ब्राह्मण! उस फल को आप ही भोगें मैं नहीं चाहता हूं ब्राह्मण बोला कि दूसरे के विपरीत वचनों को स्वीकार नहीं करूंगा मैंने इस जप का फल तुमको दिया हे राजर्षे! अब मेरा और तेरा वचन प्रमाणहै मैंने कभी जपके फलकी इच्छा नहीं

की इससे हे राजेन्द्र ! मैं किसप्रकार जपके फल को जानूंगा तुमने मांगा मैंने दिया मैं अपने वचन को दोषी नहीं करूंगा सत्यता पर दृढ़ता करो अब जो तू मेरे वचनों को नहीं करेगा तो मिथ्या बोलने से तुमको बड़ा अधर्म होगा–हे शत्रुहन्ता ! जैसे तू मिथ्या बोलने के योग्य नहीं उसी प्रकार मैं भी अपने वचन को मिथ्या नहीं करसक्ता–जो आप सच्चे हैं तो जैसे कि मैंने पहले विना विचारे देने को कहा उसी प्रकार विना विचार के उसको आप भी लीजिये तुम ने यहां आकर जप के फल को मांगा मैंने उसको दिया और तुम उसको लो और सत्यता में भी वर्त्तमान हो जो मिथ्या बोलता है उसका न यह लोक है न परलोक है और अपने पितरों को भी नहीं तारेगा तो इनके पीछेवालों को कैसे तारेगा हे पुरुषोत्तम ! इसलोक परलोक में जैसे सत्यता उद्धार करती है उस प्रकार यज्ञों का फल दान और नियम आदि नहीं तारते हैं हजारों लाखों वर्षतक जो तप किये गये या करे जायँगे वह सब सत्य से अधिक नहीं हैं सत्य प्रणवरूप ब्रह्म है और सत्य ही प्रणवरूप तप है–सत्य ही प्रणवरूप यज्ञ है–सत्य ही प्रणवरूप ज्ञान है–सत्य ही वेदों में जागता है–सत्य ही में श्रेष्ठ फल भी है–सत्य ही से धर्म और शान्तचित्त है–सत्य ही में सब वर्त्तमान है–सत्य ही वेद, वेदांत, विद्या, बुद्धि, व्रत, नियम है–उसी प्रकार ॐकार भी सत्यरूप है–जीवों की उत्पत्ति सत्यरूप है–सत्य ही से वायु सम्मुख आती है–सत्य ही से सूर्य्य प्रकाश करताहै–सत्य ही से अग्नि भस्म करताहै–सत्यही में स्वर्ग वर्त्तमान है–यज्ञ, तप, वेद, स्तोत्र, मंत्र और सरस्वती यह सब सत्यरूप हैं हमने सुना है कि धर्म और सत्य एक तुला में तोलागया तो सत्यही अधिक हुआ जहां धर्म है वहां सत्य है सब सत्य ही से वृद्धि पाते हैं हे राजन् ! तुम किस कारण मिथ्या कर्म किया चाहते हो सत्य में चित्त को स्थिर करो मिथ्या कर्म मत करो तुम इस शुभ वचन को क्यों मिथ्या करते हो हे राजन् ! जो तुम मेरे इस जप के फल को नहीं चाहोगे तो धर्म से रहित होकर लोकों में भ्रमते डोलोगे, जो प्रतिज्ञा करके देना नहीं चाहता है और जो याचना करके लेना नहीं चाहता है यह दोनों मिथ्या कर्म हैं तुम ऐसे मिथ्या कर्म करनेके योग्य नहीं हो राजा बोला हे ब्राह्मण ! युद्ध करना और प्रजापालन करना यही क्षत्रिय का धर्म्म है–क्षत्रिय दान देनेवाले कहे जाते हैं–मैं आपके दान को कैसे लूं ब्राह्मण बोला कि हे राजन् ! मैं तुमको जबरदस्ती नहीं करता हूं कि तुम लो और न देने को तेरे घर गया

तुम यहाँ आकर याचना करके क्यों नहीं लेते हो धर्म्म बोले कि तुम दोनों मत झगड़ो मुझ आये हुये धर्म को जानो ब्राह्मण दान के फल से और राजा सत्य के फलसे संयुक्त है स्वर्ग्ग देवता बोले कि हे राजेन्द्र! तुम मुझे आप आये हुये रूपवान् स्वर्ग को जानो तुम दोनों मत झगड़ो क्योंकि दोनों समान फलवाले हो राजा बोला कि स्वर्ग ने मेरा काम किया तुम जैसे आये हो वैसे स्वर्ग को जाओ, जो ब्राह्मण स्वर्ग को जाना चाहता है तो मेरे संचित फल को लो- ब्राह्मण बोला कि जो मैंने बाल्यावस्था में अज्ञानता से हाथ पसारा हो तो ऐसी दशामें तेरे दान को लूं मैं संहिता अर्थात् प्रणव गायत्री को जप करता निवृत्ति लक्षणवाले धर्म की उपासना को करूंगा हे राजन्! बहुतकाल से मुझ संसारके त्यागनेवाले को आप कैसे लुभाते हैं मैं आप अपने काम को करूंगा तुझसे फल को नहीं चाहता हूं मैं तप और वेदपाठ का अभ्यास रखनेवाला दानलेने से निवृत्त हूं-राजा बोला कि हे ब्राह्मण! जो तुमने जप के उत्तम फल को दिया उस दशा में हम दोनों का जो कुछ फल है वह हम दोनों को साझे में आधा २ हो-ब्राह्मण दान लेने में प्रवृत्त हैं और राजवंशी राजा दाता है सो हे ब्राह्मण! जो तुमने धर्म को सुना है तो ऐसी दशा में हम दोनों को फल साझे में हो चाहे हम दोनों साथ में न भोगें जो मुझपर तेरी कृपा है तो मेरे किये हुये धर्म को लेकर मेरे फल को पाओ भीष्मजी बोले कि इसके पीछे कुरूप और मैले वस्त्र पहरे दो पुरुष सम्मुख वर्त्तमान हुये और दोनों परस्पर में झपट और पकड़कर एक ने दूसरे से कहा कि तू मेरा ऋणी नहीं है दूसरेने कहा कि मैं तेरा ऋणी हूं यह हम दोनों का झगड़ा है और यह राजा न्याय करनेवाला हमारा न्यायी है-मैं यह सत्य कहता हूं कि आप मेरे ऋणी नहीं हो और तुम मिथ्या कहते हो कि मैं तेरा ऋणियां हूं अत्यंत दुःखी होकर उन दोनों ने राजा से यह कहा कि आप ऐसा न्याय करो जिसमें हम दोनों निन्दित न हों उन दोनों पुरुषों में से विरूप ने कहा कि हे राजन्! मैं विकृत के एक गोदान के फल का ऋणी हूं सो मैं देता हूं और विकृत नहीं लेता है विकृतने कहा कि हे राजन्! यह विरूप मेरा कुछ नहीं रखता है यह तुझ सत्यज्ञ से मिथ्या बोलता है राजा बोला हे विरूप! तुम किस वस्तु के इसके ऋणी हो यह मुझसे कहो मैं न्याय से झगड़ा निपटाऊंगा यह मेरा चित्त कहता है-विरूप बोला कि इसके ऋण को आप ध्यान देकर सुनिये हे राजन्! इस विकृत ने धर्म की प्राप्ति के लिये एक

तपस्वी वेदपाठी ब्राह्मण को सुन्दर गौ दान में दी और मैंने इससे इस गोदान के फल को मांगा और इस विकृत ने अत्यंत शुद्ध अंतःकरण से मुझको दिया तदनंतर मैंने अपनी पवित्रता के लिये शुभकर्म किया कि सवत्सा बहुत दूध देनेवाली दो कपिला गौ मोल लेकर उंछवृत्ती ब्राह्मण के अर्थ बुद्धि और श्रद्धा के अनुसार अर्पण करीं अब मैं इसके गोदान फल के द्विगुण फलको अभी देता हूं सो हे राजेन्द्र! इस विषय में हम दोनों में से कौन अपराधी और कौन निरपराधी है हम दोनों झगड़ालू तेरे समीप आये हैं धर्म से या अधर्म से हम दोनों का निर्णय करो जिसप्रकार मुझने इसको दिया और यह मेरे दान को नहीं चाहता है अब आप यहां वर्त्तमान होकर हम दोनों को न्याय में नियत करोगे फिर विरूप ने विकृत से कहा कि तुम अपने दिये ऋणको मुझसे क्यों नहीं लेते हो जैसे तुमने दिया है वैसे ही लो देर न करो—विकृत ने कहा कि तुमने कहा था कि मैं ऋण लेता हूं तब मैंने भी कहा था कि मैं देता हूं अब यह मेरा ऋणी नहीं है वहां जाय जहां ऋण चाहता है—राजा बोला कि तुम इसके देनेपर नहीं लेते हो यह बात मुझको विरुद्ध ज्ञात होती है तुम मेरी राय से निस्संदेह दण्डके योग्य हो विकृत बोला हे राजर्षे! मैंने इसको दे दिया अब फिर किस प्रकार से लूं जो इसमें मेरा अपराध समझो तो दण्ड की आज्ञा दो विरूप ने कहा कि जो तुम मेरे दिया हुये को नहीं लोगे तो यह धर्म का जाननेवाला राजा तुमको दण्ड देगा विकृत ने कहा कि मैंने तुम्हारे मांगने पर गोदान के फलको दिया अब मैं उसको किस प्रकार से फेर लूं आप जाइये मैं आपको आज्ञा देता हूं-ब्राह्मण बोले हे राजन्! तुमने इन दोनों के इस वर्णन को सुना, मैंने जो तेरे साथ प्रतिज्ञा करी है उसको विचार किये हुये लो—राजा बोला कि इन दोनों का कर्म कालांतर बड़ा प्रशंसनीय है और जापक ब्राह्मण के सिद्धांतको दृढ़ करने वाला है यह कैसे होगा जो अब ब्राह्मणका दिया हुआ नहीं लेता हूं तो मुझको भी बड़ा अधर्म क्यों नहीं होगा तब राजऋषिने उन दोनों से कहा कि तुम मनोरथ सिद्ध करके जाओगे अब यहां मुझको पाकर राजधर्म मिथ्या नहीं होगा राजाओं को यह बड़ा निश्चय है कि अपना धर्म अवश्य रक्षा के योग्य है-ब्राह्मण का धर्म कठिनता से करने के योग्य मुझ निर्बुद्धि में प्रवृत्त हुआ—ब्राह्मण बोला कि मुझको योग्य था कि तुमने याचना की और मैंने स्वीकार किया हे राजन्! जो तुम नहीं लोगे तो मैं अवश्य शाप दूंगा—राजा बोला कि राजधर्म

को धिक्कार है यहां जिसके विषय में यह नीति है अर्थात् दान लेने का अधिकार नहीं और मुझे उसके जप का फल लेना योग्य हुआ तो वह मेरे धर्म के समान कैसे होगा मैंने पूर्व के विपरीत यह हाथ धरोहड़ के लिये पसारा–हे ब्राह्मण ! जो मेरा ऋण आप रखते हैं उसको दीजिये ब्राह्मण बोला कि प्रणव व्याहृति सहित गायत्री का जप करते में मैंने जो कोई गुण प्राप्त किया और जो कुछ यहां मेरा धन है उस सबको लो–राजा बोला कि हे ब्राह्मण ! यह जल मेरे हाथ में गिरा वह मेरा हो वा बांटे में हो आप उसको लीजिये–विरूप बोला कि हम दोनों काम और क्रोध हैं आपको हम दोनों ने इस विषय में प्रवृत्त किया तुमने जो साझे का शब्द कहा इस हेतु से तेरे और इसके लोक बराबर हैं यह कुछ ऋणद नहीं है काल, धर्म, मृत्यु और हम दोनों काम क्रोध ने तेरी बुद्धि जानने की इच्छा करी तेरे समक्ष में परस्पर के निर्णय में सब झगड़ा किया गया तुम अपने कर्म से जहां चाहते हो उन्हीं विजय किये हुये लोकों को जाओ–भीष्मजी बोले कि मैंने तुमको जप करनेवालों के फल की प्राप्ति दिखाई जैसे कि उस जापक ब्राह्मण ने सूर्य्यलोक आदि को विजय करके मोक्षगति को पाया संहित का पाठ करनेवाला ब्राह्मण परमेष्ठी ब्रह्माजी को प्राप्त होता है अर्थात् उन के शरीर में सायुज्य मुक्ति को पाता है या जप करनेवाला अग्निलोक में या सूर्य्य में प्रवेश करता है और वहां तेजसरूप से रमता है और रागादि से रहित होकर उनके गुणों को प्राप्त करता है–जैसे कि चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी और आकाश की देह में प्रवेश करनेवाला और रागवान् पुरुष उन्हीं के गुणको प्राप्त करता हुआ वहांपर वर्त्तमान रागवान् होता है तब संशय को पाता है वह उस उत्तम अविनाशी ब्रह्म को चाहता हुआ फिर उसीमें प्रवेश करता है उस अमृत से अमृत को अर्थात् कैवल्य मोक्ष को प्राप्त करनेवाला इच्छारहित बुद्धिमान् अहंकार को त्याग कर ब्रह्मरूप हर्ष शोकरहित सुखी शान्तरूप द्वैतता से पृथक् आवागमनसे रहित एक अविनाशी जरामृत्युसे अदूषित ब्रह्मरूप स्थानको पाता है वह चित्त के प्रत्यक्षागम अनुमान के विना है क्योंकि रूप गुण सम्बंध और जड़भाव से हीन छः उर्मियों से और प्राणादि सोलह गुणों से पृथक् कारण ब्रह्म को उल्लंघन कर उस पुरुष को प्राप्त होता है तब वह रागरूप पुरुष उस पुरुष की प्राप्ति को नहीं जाता है ऐसी दशा में उस सर्वात्मा कारण ब्रह्म का अभिमानी होता है वह जिस कामना को चाहता है अथवा अनिच्छावान् वा सब प्रकार से

पृथक् होकर सुखपूर्वक उस निर्गुण ब्रह्म में रमता है—इसप्रकार जप करनेवाले की गति कही और क्या सुनना चाहते हो ॥ १२८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सत्ताईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! उस विरूप के कहने के पीछे उस विकृत ब्राह्मण ने और राजा ने क्या वार्त्तालाप करी उसको आप मुझको समझाइये भीष्मजी बोले कि हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर ! उस ब्राह्मण ने ऐसा ही होगा यह स्वीकार करके और पूजनीय यमराज, काल, मृत्यु और स्वर्ग का यथोचित पूजन करके पूर्वमें जो अन्य ब्राह्मण वहां इकट्ठे हुयेथे उन सबको शिरसे दण्डवत् कर राजा से यह कहा कि हे राजन् ! तुम इस फल में संयुक्त होकर प्रतिष्ठा को पाओ और आपसे आज्ञा लेकर मैं फिर जपका प्रारम्भ करूं क्योंकि मुझको श्रीशारदाजी ने वर दिया है कि तेरी जप में सदैव श्रद्धा रहै, राजाने कहा कि हे ब्राह्मण ! जो जप करने में तेरी श्रद्धा है और विना फल के इस प्रकार की सिद्धि है तो तुम मेरे संग चलो और जपके फलको प्राप्त करो ब्राह्मण ने कहा कि वहां सबके सामने बहुत बड़े उद्योग के समान फलवाले हम दोनों साथ ही जायँगे जहां कि हमारी गति है—वहां देवताओं के ईश्वर इन्द्र देवता उन दोनों के निश्चय को जानकर देवता और लोकपालों समेत उनके सन्मुख गये—और साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण, बहुत से बड़े२ बाजेवाले, नदी, पर्व्वत, समुद्र और अनेक प्रकारके तीर्थ, तप, संयोग, विधि, वेद, स्तोम, सरस्वती, नारद, पर्व्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, गन्धर्व्व, चित्रसेन अपने परिवार गणों समेत, नाग, सिद्ध, मुनि; देवों के देव प्रजापति—विष्णु, शेष यह सब देवता आये और नाना प्रकार के बाजों से आकाश में मंगल शब्द करनेलगे और उन दोनों महात्माओं के ऊपर पुष्पों की वर्षा हुई और अप्सराओं के समूह नाचने गाने लगे तदनन्तर उस रूपवान् स्वर्ग ने ब्राह्मण से यह वचन कहा कि हे बड़भागी ! तुम्हारी पूर्ण सिद्धि हुई और हे राजन् ! आपकी भी इसी प्रकार की सिद्धि हुई यह सुनकर दोनों ने एकसाथ ही विषय करनेवाली इन्द्रियों का संहार किया और मूलाधार से कुण्डली को उठाकर ऊपर ऊपर के चक्रों के विजय क्रम से पांचो प्राणों को हृदय के अनहद चक्र के मध्य में नियत करके अर्थात् रोककर उसमें नियत चित्त को एकरूप प्राप्त करनेवाले दोनों प्राणों में धारण करके नियत किया और

पद्मासन होकर भृकुटी के नीचे नासिका के अग्रभागको देखते हुये उन दोनोंने धीरे२प्राण अपान को चित्त के समेत दोनों भृकुटी के मध्य दृष्टि को स्थिर किया उसी प्रकार दृष्टि को नियत किये हुये सावधान चित्त को एकाग्र करके निश्चेष्ट देह होकर मस्तकमें धारण किया तदनन्तर ज्योतिकी बड़ी ज्वाला उस महात्मा ब्राह्मण के ब्रह्मरन्ध्रको फोड़ कर स्वर्ग को गई उसी प्रकार चारोंओरसे सब जीवों का बड़ा हाहाकार हुआ तब वह ज्योति देवताओंसे पूजित और प्रशंसित होकर ब्रह्माजी में प्रवेश करगई फिर ब्रह्माजीने आसन से उठकर उस प्रादेशमात्र पुरुष को अभ्युत्थान देकर उस तेजसे कहा कि आनन्दपूर्व्वक आये यह कहकर दूसरे मीठे वचन यह कहे कि जप करनेवाले और योगियों का फल बराबर है परन्तु इनमें जप करनेवाले की अधिक प्रतिष्ठा है,आनन्द से निवास करो यह कहकर बराबर चैतन्य किया अर्थात् जीवब्रह्म अर्थात् अपनी और उसकी एकताको जताया—तिस पीछे वह ब्राह्मण तपसे पृथक् होकर ब्रह्माजी के मुखमें प्रवेश कर गया,और राजा मान्धाता भी उसी बुद्धिसे भगवान् ब्रह्माजी में प्रवेश करगया, तब देवताओं ने ब्रह्माजी को दण्डवत् करके कहा कि हम लोग इसी निमित्त आयेथे कि जप का फल देखें सो देखा कि आपने योगी और जापक को समान फल दिया यह दोनों वहां प्राप्त हुये जहां कि अनन्तसुख है ब्रह्माजी बोले कि जो पुरुष महास्मृति अर्थात् मनुस्मृति आदि शुभ स्मृतियों का पाठ करता है वह मेरी लोकता को पाता है और जो पुरुष योग में प्रीतिवान् होता है वह भी इसी प्रकार देह के अन्त में मेरे लोकों को पाता है तुम अब अपने लोकों को जाओ मैं तुम्हारे भी अभीष्टों के निमित्त सिद्धि को साधन करूंगा यह कहकर ब्रह्माजी अंतर्द्धान होगये और देवता अपने २ लोकों को आये हे राजन्! वह सब महात्मा प्रसन्न चित्त होकर धर्म्म का सत्कार करके चलेगये यह जपकरनेवालों का फल और गति तुमसे वर्णन किया अब क्या सुना चाहते हो ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! ज्ञानयोग का फल वेदों का फल उसी प्रकार अग्निहोत्रादि नियम का क्या फल है और जीवात्मा कैसे जानने के योग्य है यह सब आप मुझसे वर्णन कीजिये—भीष्मजी बोले कि यहां मैं इस प्राचीन इतिहासको कहता हूं जिसमें प्रजापति मनुजी और बृहस्पति महर्षि का संवाद

है देवताओं में अतिउत्तम महर्षि बृहस्पतिजी ने अपने गुरु प्रजापतिजी से दण्डवत् करके यह प्रश्न किया कि हे भगवन् ! जिसके निमित्त कर्मकाण्ड जारी हुआ और ब्रह्मज्ञान होने से जिसके फल की प्राप्ति है ऐसा जो जगत् का कारण है और मन, वाणी, चित्त से बाहर होने के कारण वेद वचनों से प्रत्यक्ष नहीं होता उसको आप ठीक २ मुझसे वर्णन कीजिये—अर्थशास्त्र और मंत्रशास्त्र और वेद के जाननेवाले पुरुषों के बहुत यज्ञ और गोदानों के जो फलरूप सुख सेवन किये जाते हैं वह क्या वस्तु हैं और किस रीति से प्राप्त होते हैं वह कहां और किस देश में हैं अथवा परमात्मा हैं पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले वृक्ष आदि वायु, अन्तरिक्ष, जलजीव, जल, स्वर्ग, और देवता पर्यन्त जिससे उत्पन्न हुये उस पुराणपुरुष को भी आप वर्णन कीजिये और जिसके लिये मनुष्य ज्ञान की इच्छा करता है और उस ज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाली मिथ्या प्रवृत्ति होती है और मैं भी उस महापुराणपुरुष को नहीं जानता हूं तो निरर्थक प्रवृत्तिको कैसे करूं ऋग्, यजु, सामवेदोंकी और नक्षत्रोंकी गति निरुक्त और शिक्षा कल्प समेत व्याकरणों को भी पढ़कर भूतों की प्रकृति को अर्थात् आत्मा को नहीं जानता हूं सो आप साधारण शब्दों के द्वारा इन सबको और ज्ञान में वा कर्म में जो फल है उसको और देहधारी जो यह जीवात्मा देह से पृथक् होता है और फिर जैसे देहको पाता है वह सब आप वर्णन कीजिये—मनुजी बोले कि जो जिसको प्यारा है वह सुख और जो अप्रिय है वही दुःख कहाजाता है और किसी के अभीष्ट का न होना होजाय इस निमित्त कर्म्मकाण्ड जारी हुआ और प्रिय अप्रिय मुझको नहीं व्यापे इस निमित्त ज्ञानरूप कर्म्म बुद्धि जारी हुई—अर्थशास्त्र जाननेवालों का जो फल है उनको कहते हैं कि वेद में जो कामना को प्रधान रखनेवाले कर्मयोग हैं अर्थात् सफल कर्म हैं उनसे रहित होकर मोक्ष को पाता है परन्तु नानाप्रकार के जो कर्म्ममार्ग वैदिक लौकिक हैं उनमें प्रवृत्त सुख का चाहनेवाला पुरुष स्वर्ग को अथवा नरक को पाता है—बृहस्पतिजी बोले सुख और दुःख दोनों में सुख प्यारा है और दुःख कुप्यारा है अर्थात् त्यागने के योग्य है वह इच्छा इस इच्छावान् को कर्म के अभ्यास में प्रवृत्त करती है मनुजी ने कहा कि इन इच्छाओं से रहित अर्थात् ब्रह्मज्ञान आदि की इच्छासे ब्रह्म में लय होता है इस निमित्त कर्म्मबुद्धि जारी हुई फल की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को वह कर्म्मयोग बन्धन में डालता है

इसी कारण इन इच्छाओं को त्याग के ब्रह्मज्ञान के ही निमित्त कर्म्म करे चित्त आदि और निष्फल कर्म्म से वृद्धियुक्त अर्थात् प्रीति आदि दोषों के दूर करने से प्रकाशमान् सत् असत् विषयों का ज्ञाता सुखकी इच्छा करनेवाला पुरुष उस परब्रह्म को पाता है जोकि श्रेष्ठ होकर कर्म्म मार्ग से पृथक् इच्छा नहीं रखता है-यह सब सृष्टि चित्त और कर्म्म से उत्पन्न हुई है यह चित्त और कर्म्म दोनों संसार के देनेवाले भी ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग हैं और लोकों से सेवित हैं क्योंकि वह वेदोक्त कर्म्म अविनाशी और नाशवान् हैं वहां चित्त से फल का त्याग-करना ही मोक्ष का हेतु है, दूसरा कोई नहीं है, जैसे कि निशाके अन्त में अर्थात् प्रातःकाल के समय अन्धकार से रहित हो नेत्र अपने ही तेज से सब संसार के त्यागनेके योग्य कांटेआदिको देखता है उसीप्रकार विज्ञान गुण से मिला हुआ ज्ञान अशुभ कर्म्मको देखता है या जैसे सर्प्प कुशाओंकी नोकोंको त्याग करता है उसी प्रकार क्रोध को जानकर सर्व्वथा त्याग न करता है वहां जो कोई गिरता है तो अज्ञान ही से गिरता है इससे ज्ञानमें ही उत्तम फलको समझना योग्य है बुद्धि के अनुसार पढ़ा हुआ मंत्र सम्पूर्ण शास्त्रोक्त यज्ञ दक्षिणा अन्नका बड़ा दान और देवताओं के ध्यान आदि में चित्तकी एकाग्रता इन पांच प्रकार के कर्म्मों को फल के समान कहते हैं-अब कर्म्मकर्त्ता के स्वभाव से भिन्न कर्म्मों के फलको कहते हैं कि करने के योग्य कर्म वेदकी रीतिसे त्रिगुणात्मक अर्थात् सात्त्विकी, राजसी, तामसी, कहाते हैं इस हेतु से मंत्र भी त्रिगुणात्मक हैं क्योंकि मंत्रही के साथ कर्म्म हैं, बुद्धि भी तीनप्रकार की है क्योंकि आत्माकी इच्छा करने वाला वा स्वर्ग्ग की कामनावाला अथवा अन्य के मारणादि प्रयोग की इच्छा करनेवाला यह तीनों पुरुष यज्ञ करते हैं और चित्त से फल की प्राप्ति भी तीन प्रकार की है उसी प्रकार फल का भोगनेवाला देहधारी भी तीन प्रकार का है अर्थात् सुखी दुःखी, अज्ञान और शब्द, रूप पुण्य रसस्पर्श इसी प्रकार उत्तम गन्ध है उनका अधिकारी जीवधारी पुरुष है परन्तु यह कर्म्मफल प्राप्त होने वाले लोक में मिलता है तात्पर्य यह है कि उस अदृष्ट कर्मफल से दृष्टिगोचर ज्ञान फल ही श्रेष्ठ है-देहसे जो २ कर्म्म करता है वह दूसरे देह में ही अच्छेप्रकार से उसके फलको भोगता है क्योंकि देह ही सुखालय और दुःखालय है अर्थात् विना देह के आत्मा सुख दुःख से पृथक् है इसी कारण देहके अभिमानसे पृथक् होना मोक्ष है देह के कर्म्मों से मोक्ष नहीं होता है जो कर्म कि वचन के द्वारा

करता है उसको वचन ही से भोगता है और चित्त से जो कर्म करता है उसके फल को चित्तमें ही नियत होकर भोगेगा, कर्मफल का चाहनेवाला पुरुष जैसे सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी कर्मफल को इच्छा से करता है उसी २ रीति से गुणसंयुक्त पुरुष अच्छे बुरे कर्म्मफल को भोगता है जैसे कि मछली प्रवाहरहित जल के पीछे चलती है उसी प्रकार पिछले जन्म में किया हुआ कर्म्मफल प्राप्त होता है और शुभफल में सुखी और अशुभ में दुःखी होना यही अज्ञानता है इससे आत्मा ही श्रेष्ठ है जिससे कि यह जगत् उत्पन्न हुआ चित्त के जीतनेवाले पुरुष उसको जानकर संसार को त्याग उस ब्रह्म को पाते हैं जो मंत्रशब्दों से प्रकाश नहीं करता है उसकी श्रेष्ठता को सुनो कि वह रसों से और नानाप्रकार के गंधादिकों से और शब्द स्पर्शरूपसे पृथक् पकड़ने में नहीं आता है और गुप्त होकर तीनों गुणों से पृथक् उसी एकाकी ने प्रजाओंके पांचों विषयोंको उत्पन्न कियाहै औरपुल्लिङ्ग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग इन तीनों से रहित सत्प्रधान परमाणु आदि भी नहीं है और असत् भी नहीं हैं सदसद् माया सबल भी नहीं है उसी अविनाशी को ब्रह्मज्ञानी लोग देखते हैं उसका कभी नाश नहीं है ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उन्तीसवां अध्याय ॥

मनुजी बोले कि उस अविनाशी ब्रह्म से आकाश अर्थात् माया सबल ब्रह्म उत्पन्न हुआ उससे वायु, वायु से अग्नि, अग्निसे जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से सब सूक्ष्म और स्थूल उत्पन्न हुये और पृथ्वी पर जगत् उत्पन्न होता है इन पृथ्वरूप देहों से जल को पाकर जल से अग्नि को, अग्नि से वायु को, वायु से आकाश को वह आत्मारूप परम मोक्ष को प्राप्त होते हैं और जो आत्मारूप नहीं हैं वह आकाशरूप माया सबल से लौट आते हैं वह अक्षर ब्रह्म शीतोष्णतारहित मृदुत्व कठिनत्व विना मधुर, अम्ल, कटु, कषाय, तिक्तादिरसों से, विगल श्रेष्ठ आत्मभाव शब्द गंधादि का भी रखनेवाला नहीं है और स्पर्शेन्द्रिय जिस स्पर्श को जानती है, और रसना रसको जानती है, घ्राण गंधोंको और दोनों कान शब्दों को, और नेत्र रूपों को देखते हैं परन्तु उस श्रेष्ठ ब्रह्मको नहीं देखते हैं जिसको कि योगरहित अज्ञानी पुरुष नहीं पाते हैं जिह्वा को रसों से, घ्राण को गंध से, दोनों कानों को शब्द से, त्वचा को स्पर्श से, नेत्रों को रूप गुण से पृथक् हटाकर अपने आत्मारूप श्रेष्ठ ब्रह्म को देखता है उस आत्मारूप को उन

मुनियों ने करता आदि का समूह उत्पत्ति का कारण आत्मारूप कहा है जो समूह करता है और जिसके द्वारा देश, काल, कारण, स्वरूप, सुख, दुःख होते हैं उसीके अनुसार उद्योग प्रारम्भ किया जाता है और जिसको राग द्वेष या ईश्वर की इच्छा से प्रारम्भ करके उसका दर्शन और प्राप्ति आदि करता है इस कारण करता–कर्म हेतु कर्म्म, देश, काल, सुख, दुःख, प्रवृत्ति, प्रारम्भ, कर्म्म, नाम, उद्योग, राग, गति, ईश्वर आदि के समूह का हेतु जो चिन्मात्र है वही स्वभाव है–वह कौन हेतु है जिसके कारण से प्राचीन जीव और ईश्वर का कार्य्यरूप होना कहा जाता है यह शंका करके कहते हैं कि जो व्यापक ईश्वर नाम हुआ और साधक जीव नाम हुआ और मंत्रार्थ के समान लोक में भी वर्त्तमान है अर्थात् एक होकर बहुत रूपों से दृष्टि पड़ता है और सबका कारण है अपने एक ही रूप से सबको प्रकट करनेवाला है वह परमकारण आनन्दरूप ब्रह्म है और शुद्धब्रह्म ईश्वरके विषय में अवान्तर कार्य्यरूप है अर्थात् प्रीति कराने के लिये केवल मध्यवर्त्ती वस्तु है इसी हेतु से वह शुद्ध ब्रह्म इस कार्य्यरूप से दूसरा है इस प्रकार स्वभाव की परम कारणता को कहकर ज्ञानात्मा को कहते हैं कि जैसे कोई मनुष्य अपने कर्मों से अच्छे बुरे फलको विना रोकटोक के पाता है उसी प्रकार उत्तम अनुत्तम देहों में अपने कर्म्म से उत्पन्नहोनेवाले पाप पुण्यों से यह चैतन्य स्वभाव नाम परमकारण ज्ञान बँधा हुआ है जैसे कि अग्नि से प्रकाशित वृक्षकी नोकपर नियत दीपक दूसरोंको प्रकाश करता है वैसे ही वृक्ष की जड़में रक्खाहुआ दीपकप्रकाश नहीं करता उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप दीपकसे संयुक्त पंचेन्द्रियरूप वृक्ष प्रकाशरहित होकर ज्ञानदीपकसे प्रकाशित और चैतन्य के प्रकाश से प्रकाश को करते हैं–जैसे राजा के नियत किये हुये बहुत से मंत्री पृथक् प्रमाण को कहते हैं उसीप्रकार देहों में पांच इन्द्रियां ज्ञानरूप के मुख्य अंग होते हैं वह ज्ञानरूप स्वभाव अर्थात् आतमभाव उनसे उत्तम है, जैसे अग्नि की ज्वाला–वायु का वेग–सूर्य्य की किरणें–नदियों का जल–यह सब अच्छे प्रकार से घूमते जाते हैं उसीप्रकार के जीवात्मा के भी देह हैं तात्पर्य्य यह है कि देहों में चित्त से बँधा हुआ ज्ञान देह की नाश अवस्था में नाश को नहीं पाता है जैसे कि कोई मनुष्य करसे को लेकर लकड़ी में अग्नि और धुवां को नहीं देखते उसीप्रकार देह की पीठ और हाथ पैरों को काटकर उसको नहीं देखते हैं, आत्मा उससे ऐसा पृथक् है जिस प्रकार युक्ति से उन लकड़ियों को मथकर अग्नि और धुवां को

देखे उसीप्रकार ज्ञानी जीवात्मा एकही समय उस श्रेष्ठ आत्मभाव को उत्तम बुद्धि से देखता है, जैसे कि स्वप्न में पृथ्वी पर पड़े हुये अपने देह को अपने से पृथक् देखता है उसी प्रकार चित्त बुद्धि से मिला हुआ दश इन्द्रिय पंच प्राण से संयुक्त अर्थात् अपने रूप से पृथक् देह को अपने से जुदा न समझनेवाला एक देह से दूसरी देह में जाता है यह श्रेष्ठ आत्मा उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय, मृत्यु आदि से संयुक्त नहीं होता है वह अदृष्ट कर्म्मफल से युक्त होकर इस मृतक देह से दूसरी देहमें जाता है, नेत्र से आत्माके रूपको नहीं देखता है न स्पर्श करता है अर्थात् वास्तव में भोगनेवाला न होने से असंग है उन इन्द्रियों से कार्य्य को साधन नहीं करता है वह इन्द्रियां भी उसको नहीं देखती हैं और वह उनको देखता है अर्थात् उनका साक्षी है—जैसे कि कोई प्रज्वलित अग्नि के सामने संताप से उत्पन्न होनेवाले रूप को पाता है और दूसरे रूपको नहीं धारण करता है उसी प्रकार इस आत्मा का वह रूप देह में भी दृष्टि पड़ता है तैसे ही मनुष्य इस देह को त्याग कर दूसरे अदृश्य शरीर में प्रवेश करता है—महाभूतों में देह को त्याग कर दूसरे देहसम्बन्धी रूप को धारण करता है अर्थात् उस देह के धर्म्मों को आत्मा में मानता है फिर यह शरीरी देह को त्याग पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश में चारों ओर से प्रवेश करता है और नानाप्रकार के निवासस्थान रखनेवाली कर्म में वर्त्तमान पांचों इन्द्रियां पांचों गुणों को प्राप्त करती हैं श्रोत्र इन्द्रिय आकाश के शब्द गुण को, घ्राण पृथ्वी के गन्ध गुण को, नेत्र अग्नि के गुणरूप को, जिह्वा जल के गुण रसको, त्वचा वायु के स्पर्श गुण को प्राप्त करती है अर्थात् पांचों इंद्रियां पांचों आकाशादि तत्त्वों में और पांचों तत्त्व पांचों इन्द्रियों में निवास करते हैं और चित्त बुद्धि के पीछे चलता है और बुद्धि स्वभाव के पीछे चलती है, इसकारण विषयों की उत्पत्तिस्थान इन्द्रियां हैं, उनका कारण चित्त और चित्तका कारण बुद्धि है और उस बुद्धि का कारण चैतन्य आत्मा इसक्रम से सब वासनाओं से पूर्ण बुद्धि में सब वर्त्तमान हैं उस बुद्धि के पृथक् न होने से चैतन्य आत्मा फिर संसारी होता है जो दूसरा अच्छा बुरा कर्म्म किया उसको कर्म्माधीन प्राप्त होनेवाले दूसरे नवीन देहमें प्राप्त करता है—अर्थ और बुद्धि आदि चित्त के पीछे चलते हैं जैसे कि जल के जीव अपने जलप्रवाह के अनुसार जाते हैं जैसे कि नौकापर चलनेवाले को नदी के किनारे के वृक्ष आदि चलते से दृष्ट पड़ते हैं और छोटी वस्तु दूरदर्शी यन्त्र के

द्वारा बड़ी मालूम होती है—उसीप्रकार चैतन्य पुरुष बुद्धिमार्ग में प्राप्त होता है अर्थात् चेष्टारहित भी चंचलमाया के कारण चेष्टायुक्त मालूम होता है और सूक्ष्म होकर भी बुद्धि में संयुक्त होने से विराट् आदि रूपवान् दृष्टि पड़ता है और अपने अज्ञान से अकेला भी बहुत रूपवाला देखने में आता है और जैसे कि ऐनक आदि के रहित होने से मुख्यरूप दिखाईदेता है उसीप्रकार वह आत्मा बुद्धिमार्ग से पृथक् होने में शुद्ध चिन्मात्र है तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्मज्ञान ही उस अनादि भ्रांतिरूप माया के नाश करने को समर्थ है॥ २३॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ २९॥

तीसवां अध्याय॥

मनुजी बोले कि चित्त और इन्द्रियों से संयुक्त जो चैतन्य जीव है वह बहुत काल तक प्रथम प्राप्त होनेवाले विषयों को स्मरण करता है परन्तु उन इन्द्रिय आदि के लय होने पर अपने मुख्य स्वभाव को प्राप्त होता है फिर वह बुद्धिरूप सबसे उत्तम चैतन्यरूप आत्मा कहाता है अर्थात् वास्तव में बुद्धि से पृथक् है जैसे कि वह आत्मा एकही समय या बहुत समय पर इन्द्रियों के सम्पूर्ण विषयों को अच्छे प्रकार से प्रकाश करता है उसी रीति से चेष्टावानों में भी घूमा करता है, वह साक्षी है उसीकारण से वह एक ही श्रेष्ठ आत्मा है तात्पर्य यह है कि आत्मा बुद्धि आदि का प्रकाशक है और बुद्धि आदि आत्मा के प्रकाशक नहीं हैं वह चेष्टारहित भी चेष्टावान् पदार्थों में घूमता है इसको सिद्ध करते हैं कि यह आत्मा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण अर्थात् त्रिगुणात्मक जाग्रत्आदि बुद्धि के स्थान और गुण अपूर्व दुःख सुखरूपों को जानता है अर्थात् केवल साक्षीरूप है भोक्ता नहीं है वह इसप्रकार से इन्द्रियों में प्रवेश करता है जैसे कि अग्नियुक्त इन्धन में वायु का प्रवेश होता है उसको न आंख देख सक्ती न त्वचा स्पर्श कर सक्ती क्योंकि वह आत्मा इन्द्रियों की भी इन्द्रिय है वह कानों से भी नहीं सुनाजाता और शास्त्र के अनुसार जो आत्मा का दर्शन है उसमें जैसी आकृति का दर्शन है वही नाशवान् है श्रोत्रादि इन्द्रिय अपनी सामर्थ्य से अपने २ विषयों को देखती हैं उस आत्मा को नहीं देखती हैं वह सर्व्वज्ञ और सर्वदर्शी आत्मा उन सबको देखता है, जैसे कि मनुष्यों ने प्रथम हिमालय पर्व्वत के फलों को और चन्द्रमाकी पीठ को नहीं देखा इतनी बात से ही यह नहीं कहसक्ते कि वह नहीं है उसीप्रकार यह सूक्ष्म ज्ञानस्वरूप आत्मा जो कि पहले नेत्रों से दृष्ट नहीं

आया इतनी बात से भी यह न कहना चाहिये कि वह नहीं है जैसे कि चन्द्रमा में दृष्टि करता हुआ भी संसार के प्रतिबिम्ब चिह्नको नहीं देखता है अर्थात् यह जगत् ही चन्द्रमा में दृष्टि पड़ता है इस बात को नहीं जानता है इसी प्रकार का यह आत्मज्ञान है जो आत्मा है वही ब्रह्म है इसहेतु से वह ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है यह बात ठीक नहीं है क्योंकि आत्मज्ञान ही सर्व्वोत्तम स्थान है तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्म को जानकर विपरीत रीति से मानते हैं इससे शास्त्र की आवश्यकता है, ज्ञानीलोग आदि अन्त में बुद्धि से रूपवान्को विना रूप देखते हैं अर्थात् वह जिससे प्रकट हुआ है उसी मूल को मानते हैं उस आदि अन्त का देखने वाले पुरुष सूर्य्य की गति को देखते हैं अर्थात् मण्डल को तो चलायमान और मण्डल के भीतर वर्त्तमान सूर्य्य को अचल देखते हैं, उसीप्रकार बड़ेज्ञानी पुरुष अज्ञानता से दूरवर्त्ती आत्मा को बुद्धिरूपी दीपक से दीखते हैं और समीपवर्त्ती प्रपञ्च को जानने के योग्य ज्ञानरूप ब्रह्म में लय किया चाहते हैं निश्चय है कि विना उद्योग के कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, जैसे कि मछलीमार सूत के जालों से मछलियों को बांधते हैं और जैसे मृगों के द्वारा मृगों का पकड़ना और पक्षियों के द्वारा पक्षियों का पकड़ना होता है और हाथियों से हाथी पकड़े जाते हैं इसीप्रकार जानने के योग्य ब्रह्मज्ञान से ब्रह्म प्राप्त होता है तात्पर्य यह है कि सजातियों के द्वारा सजाती पकड़ा जाता है जो कि ज्ञान भी उस ज्ञानस्वरूप का सजाती है इससे वह ब्रह्म की प्राप्ति में उपयोगी है, सर्प ही सर्प के खोजों को देखता है यह हमने श्रवण किया है इसीप्रकार जानने के योग्य और कारण नाम देह में नियत आत्मा को सूक्ष्म देहों के भीतर ज्ञान से देखता है, जब बुद्धि की वृत्ति से आत्मदर्शन हुआ तब आत्मा की जड़ता सिद्ध हुई इस शंका को इस प्रकार से निवृत्त करते हैं कि जैसे इन्द्रिय इन्द्रिय के जानने की उत्साह नहीं करती है उसीप्रकार पराबुद्धि उस जानने के योग्य आत्मा को नहीं देखती है आशय यह है कि वेदान्त की प्राप्ति के लिये बुद्धि की वृत्ति की व्याप्ति है फल की नहीं है वृत्तिरूप उपाधि के दूर होने में भी इसको ब्रह्म ही कहते हैं, जैसे चन्द्रमा अमावस के दिन देहरहित होने से दृष्टि नहीं पड़ता है और उस समय उसका अभाव नहीं होता है उसी प्रकार देहवान् आत्मा को भी जानो प्रत्यक्षदेह से पृथक् न मालूम होनेवाला चन्द्रमा अमावास्या को प्रकाश नहीं करता है ऐसे ही वृत्ति या देह से जुदा यह आत्मा भी दिखाई नहीं देता है

जैसे कि चन्द्रमा दूसरे आकाश को प्राप्त होकर फिर प्रकाश करता है उसीप्रकार आत्मा भी दूसरे देह को पाकर फिर अपना प्रकाश करता है, प्रत्यक्ष देह का जन्म वृद्धि नाश पायाजाता है वह चंद्रमंडल का धर्म्म है उस आत्मा का नहीं है, जैसे कि उत्पत्ति वृद्धिदशा से एक पुरुष ही जाना जाता है उसीप्रकार अमावास्या के दिन गुप्त होनेवाला चंद्रमा भी फिर देहधारी होकर एक ही दृष्ट पड़ता है उसी प्रकार बालदशा आदि और देह के रूपान्तर में भी एकही आत्मा है-- देह और आत्मा का सम्बन्ध तीनोंकाल में नहीं है इसबात को इसप्रकार सिद्ध करते हैं कि जैसे अन्धकार चन्द्रमा को स्पर्श करता या त्यागकरता दृष्ट नहीं पड़ता है उसीप्रकार आत्मा को देहका स्पर्श करनेवाला वा त्याग करनेवाला जानो जिसप्रकार वह अन्धकार चन्द्रमा और सूर्य से संयुक्त देखाजाता है उसीप्रकार आत्मा देह से संयुक्त मालूम होता है अर्थात् देह और आत्मा का प्रकाश परस्परमें सम्बन्ध रखनेवाला है जैसे कि चंद्र सूर्य से भिन्न वह राहु प्रकाश नहीं करता है उसीप्रकार देह से पृथक् आत्मा भी प्रकाश नहीं करता है जैसे अमावास्या के दिन सूर्य से संयुक्त चंद्रमा नक्षत्रों से मिलता है उसीप्रकार देह से पृथक् आत्मा कर्म्मफल से संयुक्त होता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इकतीसवां अध्याय ॥

मनुजी बोले कि जैसे स्थूल देह सो जाता है और स्वप्न में लिंगशरीर चेष्टा करता है और मृतक ही स्थूलशरीर से पृथक् होकर विचरता है उसीप्रकार का संसार है और इन्द्रियों से संयुक्त लिंगशरीर भी सो जाता है और सुषुप्ति में अर्थात् स्वप्नावस्था से पृथक् अवस्था में ज्ञान विचरता है, लिंगशरीर के नाश में उससे पृथक् होकर विचरता है वैसे ही मोक्ष है, जानने के योग्य आत्मा को ज्ञान से जानकर अज्ञान से छूटता है और वह ज्ञान इन्द्रियों के जीतने से होता है उसको इसरीति से सिद्ध करते हैं कि जैसे शुद्धजल में नेत्र से रूप को देखता है उसीप्रकार इन्द्रियों की सफाई से ज्ञान के द्वारा आत्मा को देखता है और जिसप्रकार उस जल के हिलने पर रूप को नहीं देखसक्ता है उसीप्रकार इन्द्रियों की व्याकुलता में ज्ञान से आत्मा को नहीं देखता है अविद्या अज्ञान से पैदा होती है और अविद्या ही से चित्त खींचाजाता है और चित्त को दूषित होने में चित्त से मिली हुई पांचों इन्द्रियां भी दोषयुक्त होजाती हैं--अज्ञानता से भरा-

हुआ और इन्द्रियों के विषयों में डूबा हुआ जीवात्मा तृप्ति को नहीं पाता है और अदृष्ट के समान विषय भोग के लिये फिर जन्म लेता है-इसलोक में मनुष्य की इच्छा पापों से नाश नहीं होती है जब पाप का नाश होता है तब इच्छा भी नाश होजाती है विषयों के योग से साधन के विपरीत सुखदुःख की इच्छा करता हुआ पुरुष सनातन ब्रह्म के आश्रयसे ब्रह्म को नहीं पाता है और पापकर्म के नाश होनेपर पुरुषों को ज्ञान उत्पन्न होता है और जैसे शुद्धआदर्श में मुख को देखता है उसी प्रकार बुद्धि में आत्मा को देखता है-और विषयों में प्रवृत्त इंद्रियों से दुःखी होता है और उन स्वाधीन होनेवाली इन्द्रियों से सुखी होता है इस कारण चित्त के द्वारा विषयों से इन्द्रिय नाम आत्मा को हटावे अर्थात् अपने वश में करे-चित्त इन्द्रियों से प्रथम है और उस चित्त से महा-उत्तम बुद्धि है और बुद्धि से उत्तमोत्तम ज्ञान अर्थात् जीवात्मा है और उस जीवात्मा से श्रेष्ठतम परमात्मा है तात्पर्य्य यह है कि परम्परा से एक को दूसरे में लय करता हुआ ब्रह्मभाव को प्राप्त करे, उस लयता के निमित्त उत्पत्ति के क्रमको कहते हैं उस गुप्त और शुद्ध चिन्मात्रसे ज्ञानात्मा उत्पन्न हुआ उससे बुद्धि, बुद्धि से चित्त, चित्त से पांचों इन्द्रियां और उन पांचों से शब्द आदि विषय उत्पन्न हुये वह चित्त इन्द्रिय आदि से संयुक्त होकर शब्दादिकों को देखता है, जो पुरुष उन शब्दादि विषयोंको और सब प्रत्यक्ष वस्तुओंका त्याग करता है वह मायासम्बन्धी स्थूल सूक्ष्मादि शरीरों का त्यागकर अविनाशी एकत्वभाववाली मोक्षको पाता है, जैसे कि सूर्य्य उदय होकर किरणें प्रकट करता है और अस्त होकर उस किरण-मण्डल को अपने में लय करता है, उसीप्रकार से जीवात्मा किरणरूप इंद्रियों के द्वारा देह में प्रवेशित होकर और पांचों इंद्रियों के विषयों को पाकर अन्त में आत्मरूप को पाता है-अब वारंवार उसके देहधारी होने के कारण को कहते हैं-कर्म्म में नियत वारंवार विषयों में प्रवृत्त होनेवाला यह जीवात्मा सुख आदि कर्म्मफलको पाता है क्योंकि उसने प्रवृत्ति प्रधानकर्म्म अर्थात् पितापनको प्राप्त किया इस हेतु से निवृत्ति धर्म्मको कहते हैं कि विषयभोग से पृथक् जीवात्माकी विषयरूप इच्छादिक दूर होजाती हैं परंतु वासनारूप रस का नाश नहीं होता है वह भी आत्मा को देखकर नष्ट होजाता है जब बुद्धि उन विषयों के द्वारा जिनके कि गुण कर्म्म हैं चित में वर्त्तमान होती है, तब वह चित्त ब्रह्म को प्राप्त होता है और उसीमें लय होजाता है और वह बुद्धि उस परब्रह्म में प्रवेश करती है

जोकि स्पर्श, गंध, रूप, रसादि से रहित चित्त से बाहर है—अब अध्यायभर के आशय को समझो कि सब रूप तो चित्त में लय हैं और चित्त बुद्धि में और बुद्धि ज्ञान जीवात्मा में लय होते हैं और जीवात्मा परब्रह्म में लय होजाता है इन्द्रियों से चित्तकी शुद्धि नहीं होती और चित्त बुद्धिको नहीं जानता और बुद्धि आत्मा को नहीं जानती है परंतु वह सूक्ष्म आत्मा सबको देखता है ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

बत्तीसवां अध्याय ॥

मनुजी बोले कि देह के रोग और चित्त के खेद वर्त्तमान होने पर जिसके होतेहुये विचारयोग करने को समर्थ नहीं होता उसको चिंता नहीं करे अर्थात् निर्भय होकर उसको दूर करे दुःख का यही उपाय है कि उसकी चिंता न करे क्योंकि चिन्ता करनेसे सन्मुख आता है और अधिक वृद्धि पाता है, बुद्धि से चित्त के खेद को दूर करे और औषधियों से देहके रोगों को दूर करे यह पूर्णबुद्धिवाले की सामर्थ्य है बालकबुद्धि अज्ञान से समता को नहीं प्राप्त होती—तरुणता, स्वरूप, जीवन, धनसमूह, नीरोगता, बांधवों में निवास यह सब बातें सदैव नहीं रहतीं अर्थात् सब नाशवान् हैं इनमें पंडित कभी इच्छा न करे—अकेला मनुष्य सब इलाके का दुःख शोचने को योग्य नहीं है इससे शोचरहित उपाय करे इस जीवनमें सुख से अधिकतर दुःख है यह निस्सन्देह बात है कि इन्द्रियों के विषयों में प्रीति करनेवाले की भूल से अनिच्छा से मरण होता है, जो मनुष्य इन दोनों सुखदुःखों को त्याग करता है वह अपारब्रह्मको प्राप्त करता है और ब्रह्म प्राप्त करनेवाले पण्डित शोच नहीं करते हैं सब प्रकार के धन दुःख से ही मिलते हैं और वह रक्षा के कारण सुखदायी नहीं हैं और दुःख में प्राप्त नहीं होते हैं इनके नाशकी चिंता न करे इसप्रकार दुःख के दूर करनेकी युक्ति वैराग्यको कहकर सुख मिलने की युक्ति ब्रह्मात्मज्ञान को कहते हैं, जब ज्ञानजानने के योग्य हुआ तब चित्तको उस ज्ञान का गुण अर्थात् धर्म्म जानो और जब वह चित्त ज्ञानेन्द्रियों से मिलता है तब बुद्धि वर्त्तमान होती है—बुद्धि का जो लय करना है वही ब्रह्म की प्राप्ति है इसको कहते हैं कि जब कर्मों से उत्पन्न होनेवाले संस्कारों से मिली हुई बुद्धि चित्त में वर्त्तमान होती है तब ब्रह्मज्ञान होता है वह बुद्धि, ध्यानयोग से प्राप्त होनेवाली समाधि से उदय होती है—वह गुणवती बुद्धि अज्ञान से विषयों में वर्त्तमान होती है जैसे कि पहाड़के शिखर से निकलकर जल नदियों में प्राप्त

होता है, जब ध्यान को जोकि सबका मूल है चित्त में पाता है तब ब्रह्म जानाजाता है जिसप्रकार पत्थरपर सुवर्ण की रेखा, जो ब्रह्मज्ञान इसप्रकार से ज्ञानजाता है जैसे कि पत्थरपर सुवर्ण की रेखा ऐसी दशा में उसकी चैतन्यता प्रकट नहीं होती यह शंका करके कहते हैं कि चित्त जो इन्द्रियों के विषयों का दिखलानेवाला है वह समक्ष गुणोंका अपेक्षी होकर निर्गुण को नहीं दिखलासक्ता है, इन इन्द्रियरूप सब द्वारों को बंद करके संकल्प मात्र से नियत हो उनको बुद्धि में लय करके इस आत्मारूप एकाग्रता को पाकर उस अद्वैतता से ब्रह्म को पाता है, इस लय के क्रम को युक्ति से भी सिद्ध करते हैं, शब्दतन्मात्रा आदि अपंचीकृत भूत नाम हैं उनका नाश सुषुप्ति में होनेपर उनके कारणरूप महाभूत नाश होते हैं इसी तरह चित्तकारण में लय होनेवाला कार्य अपने दोष से कारण को भी दोषसंयुक्त करता है जैसे कि जल में डाला हुआ पारा जल के खार को अपने उत्पन्न किये हुये रस से दूषित करता है इस संदेह को कहते हैं कि जब निश्चयात्मकरूप गुण से संयुक्त अहंकार में घूमनेवाली बुद्धि चित्त में वर्त्तमान होती है तब बुद्धि भी चित्तरूप होजाती है, मीठाजल निमक के पारे का कारण नहीं होता इसकारण वह दोष अन्य वस्तु के मिलाने से होता है जब त्रिगुणात्मक चित्त अहंकाररूप कहाजाता है तब अन्य पदार्थ निर्गुण में लय होनेवाला भी अपने धर्म से दूषित करता है इस शंकाको ध्यान से सुनो कि वह अहंकार जब रूप आदि विषयों के साथ गुणों को प्राप्त करता है तब सब गुणों को लय करके निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करता है जब बुद्धि आदि का लय नहीं होता है तब उनमें लय होनेवाला चित्त स्वप्नावस्था और प्रलय में फिर उठ खड़ा होता है क्योंकि उसके कारण का तो नाश नहीं हुआ आशय यह है कि रस्सी में सर्प की भ्रांति के समान होने से वह माया ब्रह्म को दूषित नहीं करसक्ती और अव्यक्त नाम आदि जो चैतन्य के गुण हैं उनका स्वरूप कहना कठिन है उसको भी कहते हैं यहां विज्ञान में उस माया के समान कोई दृष्टांत नहीं है, जहां कि वचन का व्यापार नहीं उस विषय को कौन प्राप्त करसक्ता है इसी कारण से सगुण आदि से उत्पन्न होनेवाले साक्षात्कार से आत्मतत्त्व को निश्चय करना चाहिये ऊपर कही हुई रीति से तत्त्वदर्शी का गुप्तप्रकट एकसा है उसमें कोई अंतर नहीं है जैसे कि सुवर्ण और सुवर्ण के कुण्डल दोनों एक हैं और पृथक् भी हैं इसीप्रकार यह भी है—विषयों से रहित होने से बुद्धि ब्रह्मको पाती है, जैसे कि पांचों इन्द्रियां

स्वप्नावस्था में अपने कर्मों से छूटजाती हैं उसीप्रकार परब्रह्म भी कारण को त्याग कर जन्मांतररूप और मायासे परे है—इसप्रकार जीवात्मा स्वभाव से संसार की ओर वर्त्तमान होते हैं और संसार से निवृत्ति होनेपर परब्रह्म की ओर लौटते हैं अर्थात ब्रह्मभाव को पाते हैं और स्वर्गादिक को भी पाते हैं जीव, प्रकृति, बुद्धि, सब विषय, इन्द्रियां, अहंकार, अभिमान इन सबको भूत कहते हैं, सदैव प्रवाहयुक्त आकाशादि का नाश कहां से है इस शंकाको निवृत्त करते हैं कि इस भूतसमूह की पहली उत्पत्ति प्रधान से होती है, और दूसरी उत्पत्ति बीज अंकुर की रीति से होती है ज्ञानी पुरुष पंचतन्त्र एकादश इन्द्रिय और अहंकार से पंचमहाभूतों की उत्पत्ति को रोकता है अर्थात् विशेषको अविशेष में लय करता है, धर्म्म से कल्याण की वृद्धि होती है और अधर्म से अकल्याण बढ़ता है और संसार की प्रीति में फँसा हुआ मनुष्य समयपर माया के लयको करता है और वैराग्यवान् ज्ञानी मुक्ति को पाता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

तैंतीसवां अध्याय ॥

मनुजी ने कहा कि जब अपने विषयों समेत पांचों इंद्रियां चित्तबुद्धि से संयुक्त स्वाधीन होती हैं तब वह ब्रह्म इसप्रकार दृष्ट पड़ता है जैसे कि मणि में प्रविष्ट सूत्र होता है आत्माकी एकता सिद्ध करनेके लिये इसदृष्टांतसे सब स्थानों में आत्मा की व्याप्ति को कहते हैं फिर जिसप्रकार वह खान का सोना स्वर्णमुद्रिका आदि में भी वर्त्तमान होता है और मोती मूंगों के दानों में भी होता है उसीप्रकार आत्मा अपने कर्मों से गौ, घोड़ा, मनुष्य, हाथी, मुर्गा, कीट, पतंगों के देहों में चित्तलगानेवाला है, यह जिस२ देह से जो२ कर्म्म करता है उस२ देह से वैसे ही फल को पाता है, एकरसवाली पृथ्वी औषधिरूप अर्थ के अनुसार होती है उसी प्रकार कर्म्मों के पीछे चलनेवाली बुद्धि है जिसका कि साक्षी आत्मा है—बुद्धि के अनुसार कर्मकी इच्छा होय और उस इच्छाके अनुसार उद्योग होय और उद्योग के अनुसार कर्म होय उसके पीछे कर्मरूप मूल रखनेवाला फल होय, फलको कर्म से उत्पन्न होनेवाला जाने उसीप्रकार कर्म को बुद्धि आदि से और उस बुद्धिआदि को जीवात्मासे उत्पन्न होनेवाला जाने, वह जीवात्मा जड़ चेतन्यरूप है अर्थात् जीव जड़ और आत्मा चैतन्य है, ज्ञान बुद्धि आदि और संचित कर्मों के नाश होनेपर जो दिव्यफल ब्रह्मज्ञान नाम प्राप्त

होता है वह जानने योग्य ब्रह्म में वर्त्तमान है अब जानने के योग्य ब्रह्म के स्वरूप को कहते हैं योगीजन उसको देखते हैं और विषयों में बुद्धि लगानेवाले अज्ञानी उस बुद्धि में वर्त्तमान ब्रह्म को नहीं देखते हैं इसलोक में पृथ्वीरूप से जलरूप बड़ा है जल से अग्नि, अग्नि से वायु, वायु से आकाश बड़ा है और उससे भी बड़ा चित्त है चित्त से बुद्धि, बुद्धि से बड़ा काल है कालपुरुष से वह विष्णु भगवान् श्रेष्ठ है, जिसका कि यह सब जगत् प्रकट है उस ईश्वरका आदि, मध्य, अंत नहीं है वह अविनाशी आदि मध्य अंत के न होने से सब दुःखों से पृथक् है उसको परब्रह्म कहते हैं वह ज्योति परमपद है उसको जानकर पुरुष काल के देश से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं यह मुक्त पुरुष गुणों में प्रकाश करते हैं, ब्रह्मनिर्गुण होने के कारण उन गुणों से प्रधान है इसी प्रकार निवृत्ति लक्षणवाला धर्म मोक्ष के लिये कल्पना किया जाता है अब वेदपाठ धर्म्म को दिखाते हैं—यजुर्वेद और सामवेद की ऋचा कारणरूप देहों में जिह्वा के अग्रभागोंपर वर्त्तमान होती हैं इसी हेतु से युक्ति से होनेवाली और विनाशवान् हैं यह बात ब्रह्म में विपरीत है इस निमित्त ब्रह्म उसको नहीं चाहता है ब्रह्म युक्ति से सिद्ध होनेवाला नहीं है और आदि मध्यान्तरहित होकर यजु सामवेदों की ऋचाओं का आदि कहाजाता है और जब आदि है तो अंत अवश्य ही होगा इससे ब्रह्म अनादि कहा है आदि अंत न होनेसे वह ब्रह्म अनंत अविनाशी है और अविनाशी होने से आनन्दरूप है इसीकारण मानापमान से पृथक् है इस उन्नीस श्लोक से बत्तीस तक का अभिप्राय है कि मन और आत्मा के संग होने में मन का धर्म आत्मा में नहीं होता—जिसमें सत्त्वगुण प्रधान है वह मन जब प्रकृति को प्राप्त होता है तब प्रकृति और गुणों को त्यागकर निराकार को प्राप्त होकर उसी निराकारमें मिलजाता है, वह निराकार देखने में नहीं आता है तो उसको दृष्टांतों से मुझे बताइये मनुजी ने कहा कि जो कहने में और देखने में नहीं आता उसको दृष्टांतों से कैसे बतलासक्ते हैं इससे जो अव्यक्त और निराकार आत्मा है उसमें श्रवण मनन निदिध्यासनादि से विचार करे फिर अपने में और ब्रह्मभाव में कुछ भेद न रक्खे वह निश्चय ब्रह्मज्ञान को पाता है जो सर्वगुण रहित मति से ब्रह्मज्ञान में तत्पर है वह अवश्य ब्रह्म की प्राप्ति करते हैं और जो गुणसमेत बुद्धि से ध्यान करते हैं वह कभी ब्रह्मको नहीं प्राप्त होते, जैसे कि सुषुप्ति अवस्था में इन्द्रिय और कर्मों से रहित होते हैं उसी प्रकार माया से जो पृथक्

रहते हैं वह ब्रह्म को पाते हैं जो मनुष्य इस संसार में प्रकृति से युक्त हैं वह ज्ञान के उदय होने से स्वधर्मनिष्ठ हो माया को त्याग ब्रह्म में मिलजाते हैं—जब प्रलय होती है तब अज्ञानीजन प्रकृति में मिलते हैं और जो ज्ञानवान् हैं वह निराकार ब्रह्म में मिलजाते हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे मनुबृहस्पतिसंवादे त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चौंतीसवां अध्याय ॥

ब्रह्म के साक्षात्कार को मोक्ष का कारण आपने ऊपर वर्णन किया उसमें सगुण ब्रह्मका ज्ञान होनेसे निर्गुणका दर्शन होता है इस निमित्त पहले महर्षियों के मुखसे श्रीकृष्णजी को परमात्मारूप सुनकर श्रीकृष्णजी के गुणों का कीर्त्तन करने के निमित्त राजा युधिष्ठिर ने कहा कि हे भरतर्षभ, महाज्ञानिन्, पितामह ! मैं उन कमललोचन श्रीकृष्णजी को जानना चाहता हूं कि अविनाशी ईश्वर अजन्मा सर्वव्यापी सब जीवों के उत्पत्तिस्थान और नाशवान् देह के धर्मों को त्यागे नारायण इन्द्रियों के स्वामी गोविंद और केशव जिनका नाम है, भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! मैंने परशुरामजी, देवर्षि नारदजी और व्यासजी के वचन से इस प्रयोजन को सुना है—हे तात ! महातपस्वी असित, देवल, बाल्मीकि, मार्कण्डेय ऋषि इत्यादि इन गोविन्दजीके अनेक अद्भुत माहात्म्योंको कहते हैं, हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर ! यह श्रीकृष्णजी सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य, ज्ञान, यश, लक्ष्मी, वैराग्य और धर्म्म के स्वामी ईश्वर प्रभु पूर्णरूप देहों में निवास करनेवाले व्यापक सर्वरूप बहुतप्रकारसे सुनेजाते हैं, लोकमें ब्राह्मणोंने इसशार्ङ्ग धनुषधारी महात्मा में जो जो माहात्म्य निश्चय किये उनको सुनो कि उस भूतात्मा महात्मा ने पंचमहाभूत होकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश को प्रकट किया और वेद में लिखा है कि वह संसार को उत्पन्न करके उसीमें आप प्रविष्ट हुआ इस आशय को सिद्ध करते हैं कि उन [illegible] ईश्वरने पृथ्वी आकाशादि को उत्पन्न करके जल में निवास किया, जाग्रत् आदि दशा के अन्त में नाश होनेवाली जीवसृष्टि को कहते हैं उसजल में शयन करनेवाले सब वासनारूप उस पुरुषोत्तमने सबजीवों के पहले अहंकार को उत्पन्न किया, वह भूत भविष्य काल और जीवोंको धारण करता है, उसके पीछे उस महाबाहु पुरुषोत्तम विष्णु की नाभि में कमल उत्पन्न हुआ वह सूर्य्य के समान रूपवान् था उस कमल में सबजीवों के पितामह सब दिशाओं को प्रकाश करतेहुये भगवान् ब्रह्मा जी

उत्पन्न होतेभये उनके पैदा होने पर अंधकारसे प्रथम उत्पन्न होनेवाले योग का विघ्नकर्त्ता मधुनाम महाअसुर उत्पन्न हुआ उस भयंकर और भयानक रूप को पुरुषोत्तम-चिदात्मा ने ब्रह्माजी की प्रशंसा करते २ मारडाला उसके मारने से सब देवता, दानव, मनुष्यों आदि ने उस पुरुषोत्तम का नाम मधुसूदन रक्खा फिर ब्रह्माजी ने मानसी पुत्र उत्पन्न किये उनके यह नाम हैं दक्ष, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलहक्रतु, योगी और अज्ञानियों की मानसी उत्पत्ति एकसी है तौ भी सावधान चित्त योगियोंकी उत्पत्ति दुःखदायी नहीं है, अज्ञानियोंकी उत्पत्ति विपरीतता से दुःखदायी है क्योंकि ज्ञान और अज्ञान से ही मोक्ष और बंधन होता है यह प्रसिद्ध है जैसे कि प्रजापतिजी के असुर और देवता पुत्र हैं जिनमें छोटे पुत्र देवता और बड़े पुत्र असुर हैं वह परस्पर में शत्रु हैं परन्तु शम दमादिगुणों से देवता उनको विजय करते हैं और बड़े गिनेजाते हैं और काम आदि दुर्गुणों से संयुक्त असुर पराजय होते हैं, तात्पर्य्य यह है कि काम आदि को असुर और शम, दमादि को देवता जानना चाहिये हे तात ! बड़े भाई मरीचि ने मानसी तेजस्वी और ब्रह्मज्ञानियों में उत्तम कश्यपनामपुत्र को उत्पन्न किया और हे युधिष्ठिर ! ब्रह्माजी ने मरीचि से भी प्रथम होनेवाले पुरुष को अंगूठे से उत्पन्न किया वह दक्षप्रजापति नाम से प्रसिद्ध हुये प्रथम उन प्रजापतिजी के तेरह पुत्रियां उत्पन्न हुईं उन सबमें दिति बड़ी थी उनसब के मरीचि के पुत्र महात्मा कश्यपजी पति हुये उसके पीछे दक्ष ने दश पुत्रियां उत्पन्न करके धर्म को ब्याह दीं उस धर्म के पुत्र बड़े तेजस्वी अष्टवसु, एकादशरुद्र, विश्वेदेवा, साध्य और मरुद्गण उत्पन्न हुये, उनके सिवाय दक्षकी सत्ताईस कन्या और हुईं उन सब के पति चन्द्रमा हुये—उन छोटी कन्याओं ने गंधर्व, घोड़ी, पशु, गौ, किंपुरुष, मछली और पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले वृक्षों को उत्पन्न किया और अदिति ने महाबली देवताओं को उत्पन्न किया उनमें ही प्रभु वामनजी ने अवतार लिया उन वामनजी ने असुरों से तीन चरण पृथ्वी मांग कर देवताओं की वृद्धि की और दानवोंकी पराजय हुई और आसुरी प्रजा दितिसे उत्पन्न हुई दनुनाम स्त्रीने विप्रचित्ति आदि दानवों को उत्पन्न किया और दिति ने महाबली असुरों को उत्पन्न किया, मधुसूदनजी ने दिन, रात्रि, काल, ऋतु, प्रातःकाल, सायंकाल आदि को उत्पन्न करके बादल और स्थावर जंगमजीवों समेत पृथ्वी को उत्पन्न किया तदनन्तर महाप्रभु श्रीकृष्णजी ने मुखसे असंख्य ब्राह्मणों को पैदा

किया-भुजाओं से क्षत्रियों को-जंघाओं से वैश्यों को और चरणों से शूद्रों को उत्पन्न किया इस प्रकार चारों वर्णों को उत्पन्न करके समष्टि अहंकार को सब जीवों का स्वामी किया फिर उसी पुरुषोत्तम ने वेदविद्या के विधाता ब्रह्माजी को और भूत और मातृगणों के स्वामी विरूपाक्षजी को उत्पन्न किया फिर विष्णुजी ने पापीजन और पितरों के स्वामी यमराज को और सब धनके स्वामी कुबेरजी को उत्पन्न किया इसी प्रकार जलजीवों के और जलमात्र के स्वामी वरुणजी को उत्पन्न किया और इन्द्र को सब देवताओं का स्वामी बनाया जहां तक जीवते रहने की जीवों की इच्छा हुई तबतक जीते रहे और यमराज का भय नहीं हुआ उन सबमें विषय धर्म नहीं था केवल संकल्प सेही संतान उत्पन्न होती थी तदनंतर त्रेता युग में स्पर्श से सन्तान उत्पन्न होती थी उनमेंभी विषय धर्म नहीं हुआ परंतु द्वापर में प्रजाओं का धर्म विषय हुआ इसीसे कलियुग में मनुष्यों को दण्ड प्राप्त हुआ इसप्रकार से यह जीवों का स्वामी सर्वव्यापी कहा जाता है और हे पुत्र, युधिष्ठिर! नरोत्तम, अन्ध्रक, गोह, पुलिन्द, शवर, चुचुक यह सब मनुष्य जाति के लोग मद्रकों समेत दक्षिण देशों में रहनेवाले हैं और यौनक, कंबोज, गान्धार, किरात, शवर यह सब उत्तर के देशों में रहनेवाले हैं, हे राजन्! यह पापात्मा चांडाल काक और गधे के समान धर्मधारी इस पृथ्वी पर घूमते हैं और हे युधिष्ठिर! यह मनुष्य सतयुग में इस पृथ्वीपर नहीं रहते हैं त्रेता युग से इनकी वृद्धि होती है, फिर उस महाघोर संध्या काल के वर्त्तमान होने पर राजा लोग परस्पर में युद्धादिकों को करते हैं इसप्रकार से यह संसार महात्मा विष्णुजी से प्रकट हुआ इस देवदेवका वृत्तांत सब लोकों के घूमनेवाले देवऋषि ने मुझ से कहा और श्रीकृष्णजी की प्राचीनता को आपभी माना इसप्रकार से यह सत्य पराक्रमी कमललोचन केशवजी भी ध्यानगम्य हैं यह केवल मनुष्य ही नहीं हैं किन्तु साक्षात्परमात्मा हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पैंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! पहले कौन प्रजापति हुये और कौन से महाभाग ऋषि हरएक दिशा में विघ्नों के नाशकर्त्ता हुये, भीष्मजी बोले कि हे भरतर्षभ! सुनो सबसे पहले स्वयंभू ब्रह्माजी हैं और उन ब्रह्माजी के सातपुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलह, क्रतु और महाभाग वशिष्ठ जो ब्रह्मा

जी के ही समान हैं पुराणों से निश्चय किये हुये यह सात ब्रह्माजी के पुत्र हैं इनके पीछे सब प्रजापतियों को जानो, अत्रि के वंश में उत्पन्न ब्रह्मयोनि सनातन भगवान् प्राचीन वही हुये उनसे प्राचेतस नाम दशपुत्र हुये उन दशों का एकपुत्र दक्षप्रजापति नाम हुआ लोक में उसके दो नाम कहेजाते हैं अर्थात् दक्ष और (क) मरीचि के पुत्र कश्यपजी हुये उनके भी दो नाम बोले जाते हैं अर्थात् अरिष्टनेमि, और कश्यप अत्रि का औरसपुत्र पराक्रमी श्रीमान् राजा सोम हुआ जोकि हजार दिव्य युगोंतक चारों ओर से सेवित होगा हे राजन्! भगवान् अर्य्यमा और उनके पुत्र जो चन्द्रमा हैं वह सब भुवनोंके उत्पन्न करने वाले देवता स्वामीरूप हैं और राजा शशिबिन्दु की दशहजार स्त्रियां थीं उसने प्रत्येक स्त्री में एक २ हजार पुत्र उत्पन्न किये इसप्रकार से उस महात्मा के एक करोड़ पुत्र हुये वह किसी दूसरे प्रजापति को नहीं चाहते हैं यह राजा शशिबिन्दु की संतान की संख्या प्राचीन ऋषि कहते हैं और संकल्प से हुये हैं, यह प्रजापतिजीका बड़ा वंश वृष्णिवंशका उदय करनेवाला है, यह तो यशस्वी प्रजापति वर्णन किये इसके पीछे तीनों भुवनों के ईश्वर देवताओं को कहता हूं कि भव, अंश, अर्यमा, मित्रावरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, महाबल, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवों विष्णु कहेजाते हैं यही कश्यपजी के पुत्र द्वादशसूर्य हैं, नासत्य, दस्र यह दोनों अश्विनीकुमार भी कहेजाते हैं यह दोनों आठवें सूर्य महात्मा के पुत्र हैं, पहले वह देवता और नानाप्रकार के पितृ देवता कहे, त्वष्टाका पुत्र बड़ा यशस्वी श्रीमान् विश्वरूप है अजैकपाद, अहिर्बुध्नि, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, सावित्र, जयन्त, पिनाकी, अपराजित यह ग्यारह रुद्र हैं और महाभाग आठ वसु प्रथमही कहे गये, प्रजापति मनुजी के पहले इतने प्रकार के देवता प्रकट हुये वह देवता और पितृ नामसे दो भेद के हैं प्रथम शील और यौवन से उत्तम हैं और दूसरे शुद्धभाव में उत्तम हैं आदि से देवताओं के गण मरुत नाम हैं इसीप्रकारसे विश्वेदेवा और अश्विनीकुमार हैं उनमें अदिति के पुत्र क्षत्रिय और वैश्य मरुतदेवता हैं और उग्रतपस्वी अश्विनीकुमार शूद्र कहेजाते हैं और अंगिरावंशी देवता ब्राह्मण कहेजाते हैं सब देवताओं के यह चार वरण किये जो पुरुष प्रातःकाल उठकर शुद्धतापूर्वक इन देवताओं का अच्छेप्रकारसे स्मरण करे वह अपने कियेहुये या दूसरे की प्रीति से किये हुये सब पापों से छूटता है, यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु,

परावसु, औषज, कक्षीवानबल, अग्निरस यह सब मेधातिथि के पुत्र हैं और कण्वऋषि के वर्हिषद हैं इसीप्रकार तीनोंलोकों के उत्पन्न करनेवाले सप्तऋषि पूर्वदिशा में वर्त्तमान हैं और उन्मुच, विमुच, स्वस्ति और पराक्रमी आत्रेय प्रमुच, इध्मबाहु, भगवान् दृढ़व्रत, मित्रावरुणी के पुत्र और प्रतापी अगस्त्य यह सब ब्रह्मर्षि लोग सदैव दक्षिण दिशा में वास करते हैं—उषंगु, कवष, धौम्य, पराक्रमी, परिव्याघ्र, एकत, द्वित, त्रित यह तीनों ब्रह्मर्षि और अत्रि के पुत्र प्रभु भगवान् सारस्वत यह महात्मा पश्चिम दिशा में नियत हैं, अत्रि, वशिष्ठ, महर्षिकश्यप, गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र, कौशिक, और ऋचीक के पुत्र भगवान् जमदग्नि यह सातों उत्तर दिशा में वर्तमान हैं यह सब तेजस्वी लोग चारों दिशा में वर्णन किये, लोकों के उत्पन्न करनेवाले यह महात्मा साक्षीरूप हैं रक्षा चाहनेवाला मनुष्य जो इनका कीर्त्तन करेगा वह सब पापों से छूटेगा और आनन्द से अपने स्थान को जायगा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

छत्तीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे युद्ध में सत्य पराक्रमी, पितामह! इन अविनाशी श्रीकृष्ण जी के सम्पूर्ण गुण तेज और पूर्वसमय में जो किया हुआ कर्म है उस को और तिर्य्यक्योनि में प्रभु ने कैसे किस निमित्त रूप को धारण किया यह सब बातें ब्योरे समेत आप मुझसे वर्णन कीजिये मुझे सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा है— भीष्मजी बोले कि पूर्व समय में आखेट करता हुआ मैं मार्कंडेयजी के आश्रममें प्राप्त हुआ वहां हजारों मुनियों को बैठा हुआ मैंने देखा कि उन मुनियों ने देख कर मधुपर्क से मेरा पूजन किया मैंने उस पूजा को लेकर ऋषियों को प्रसन्न किया वहां कश्यप महर्षिजी ने जो कथा कही वह आनन्ददायी कथा तुम चित्तलगाकर सुनो—पूर्वकाल में दानवों में उत्तम क्रोध लोभ में प्रवृत्त नरकासुर आदि सैकड़ों महाबली असुर पराक्रमके मद में मदोन्मत्त होगये और देवताओं से ईर्षा करके महादुःख देनेलगे तब महापीड़ावान् होकर देवता और ऋषियों ने महाबली घोररूप दैत्यों से व्याप्त पृथ्वी को भी महापीड़ित देखा कि मारे बोझ के डूबनेहीवाली थी यह दशा देखकर सब देव ऋषियों ने भयभीत होकर ब्रह्माजी से यह सब वृत्तांत इसप्रकार से कहा कि हे ब्रह्मन्! हम दानवों से कैसे बचें तब ब्रह्माजी ने कहा कि यह मैंने बुद्धि से विचार किया है कि यह दानव

लोग बड़े २ वरों को पाकर पराक्रम और अहंकार से युक्त देवदेव पुरुषोत्तम विष्णुजी को नहीं जानते हैं और पृथ्वी के नीचे बसते हैं वह इनकी अनीति को देख वराहरूप बनकर वहांहीं इनको मारेंगे यह ब्रह्माजी की सुखदायी वाणी को सुनकर हृदय का शोच दूर कर चित्त में प्रसन्न हुये, तदनन्तर श्रीविष्णुजी वराहका रूप धारण कर वहां गये जहां कि पृथ्वी में सब दनुजों का समूह रहता था वहां राक्षसों ने इसवराहरूप विष्णु को देखकर बड़े २ पराक्रम करके उसको पकड़ने की इच्छा की और पकड़कर चारोंओर से खींचने लगे जब उनके बल से वह नहीं चलायमान हुये तब वराहजी ने महाभयानकरूप करके ऐसा घोर शब्द किया कि तीनोंलोकों में व्याप्त होगया और इन्द्रादिक देवता महाभयभीत होकर विचार करनेलगे कि यह शब्द कहां से हुआ परन्तु किसी ने इस भेदको नहीं जाना सर्पलोक में भी सब महा भयभीत हुये और ज्ञान सबके जाते रहे ऐसे शब्द के सुनतेही सब दैत्य महाभययुक्त हो पृथ्वी में गिरपड़े और अपने २ पुरुषार्थों को सबने त्याग दिया उससमय वराहरूप ने महाउग्ररूप धारण करके उनके अस्थि, मांस, मज्जा, रुधिर आदि को अपने तीव्र नखों से विदीर्ण किया तब सब देवता घबरायेहुये उदासचित्त होकर ब्रह्माजी से यह वचन बोलते भये कि हे जगत्पते, ब्रह्माजी ! यह महाभयानक घोर शब्द कहां से और किसने किया जिसको सुनकर सब संसार व्याकुल होगया उसको आप कृपा करके कहिये, इतने में वराहजी भी दैत्यों को मार महाक्रोधरूप धारण किये पृथ्वी से बाहर निकले तब ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा कि देखो यही वराहरूप विष्णु भगवान्जी तुम्हारी रक्षाके निमित्त धारणकर दैत्यों का नाश करके आते हैं इन्होंनेही दैत्यों के मारने के निमित्त वह भयानक शब्द किया था तुम अपने चित्तमें चिन्ताको मत करो और आनन्दपूर्वक अपने स्थानोंको जाओ सो हे युधिष्ठिर ! जिन श्रीमधुसूदन विष्णुजी ने वराहरूप धारण किया वह यही कमललोचन योगेश्वर महात्मा सबजीवों के उत्पन्न करनेवाले जगत्पति श्रीकृष्णजी हैं यही कालरूप होकर नाश करते हैं यह वराहअवतार धारण करने का कारण तुम से कहा अब क्या सुनना चाहते हो ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सैंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि प्रथम तीन अध्यायों में वह ईश्वर की उपासना वर्णन की

जिससे कि शीघ्र योगसिद्धि होती है और योग में जो रोग दुःखादि प्रकट होते हैं उनका नाश होता है अब आप प्रधान योग को कृपा करके कहिये जिससे कि मोक्ष की प्राप्ति होय-भीष्मजी बोले कि इस स्थान में उस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें शिष्य और गुरु का परस्पर में मोक्षसम्बन्धी संवाद है-बड़े सावधान बुद्धिमान् कल्याण के खोजी किसी शिष्य ने किसी महातेजस्वी ऋषियों में उत्तम महात्मा जितेन्द्रिय आचारवान् ब्राह्मण को मिलकर उन के दोनों चरणों में शिर झुकाकर हाथ जोड़कर उनसे यह वचन कहा कि हे महात्मन्! जो आप मेरी उपासना से प्रसन्न हैं तो कृपा करके मेरे संदेह को दूर कीजिये कि मैं कहां से आया और आप कैसे और कहां से उत्पन्न हुये इसको और इस परमश्रेष्ठ ब्रह्म को वर्णन कीजिये और सब जीवों में और पुरुषों में उत्तम दशा, विपरीतता, नाश, उदय इत्यादि बातें कैसे सदैव हुआ करती हैं और वेदों में भी जो लौकिक और न्यायिक वचन हैं उनको भी आप कहने को योग्य हैं-गुरुजी बोले कि हे महाज्ञानिन्, शिष्य! तुम इस वेद की गुप्त और उत्तम ब्रह्मविद्याको जोकि सब विद्या और शास्त्रों का धन है अर्थात् धन के समान रक्षा के योग्य वा उपकारी है उसको सुनो कि वेद और संसार का आदि प्रणवरूप सर्वव्यापी श्रेष्ठ वासुदेवही सत्यता ज्ञान क्षमा शान्तचित्त और शुद्धभाव रूप हैं जिसको कि वेद के जाननेवालों ने सम्पूर्ण रूप और देहों में निवास करनेवाला सनातन सर्वव्यापी उत्पत्ति प्रलय का कर्ता गुप्त और अविनाशी ब्रह्म कहा है वही श्रीकृष्णजी हैं ब्राह्मण, ब्राह्मण से क्षत्रिय, क्षत्रिय से वैश्य, वैश्यों से शूद्र, शूद्र से कहने के अधिकारी हैं इससे तुम इस इतिहास को मुझ से सुनो तुम श्रीकृष्णजी की कथा के सुनने से कल्याणभागी होगे वह परमात्मा कृष्ण आदि अन्तरहित उत्पत्ति लय का कारण कालचक्ररूप है इस सब जीवों के ईश्वर में तीनों लोक चक्र के समान घूमते हैं इसीको केशव पुरुषर्षभ कहते हैं, जिस रूपांतर दशारहित ने पितृ, देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, असुर और मनुष्यों को और वेद, शास्त्र, सनातन लोक धर्म्म और प्रलय का स्थानरूप सबल माया को भी उत्पन्न किया जिसप्रकार कि ऋतुओं के बदलने में नानाप्रकार के रूप दिखाई देते हैं उसीप्रकार यज्ञों में बहुत से भाव प्रकट होते हैं इसको सिद्ध करते हैं कि यज्ञों के मध्य में जो जो काल के योग से प्रकट होता है उस उस विषय में व्यवहार बुद्धि से उत्पन्न

होनेवाला ज्ञान प्राप्त होता है यज्ञ के अन्त में इतिहास समेत गुप्त होनेवाले वेदों को ब्रह्माजी से उपदेश पानेवाले महर्षियों ने अपने तप के द्वारा प्राप्त किया, वेद के ज्ञाता भगवान् ब्रह्माजी हैं और वेदान्त जाननेवाले बृहस्पतिजी हैं और जगत् का उपकारी नीति शास्त्र भार्गव शुक्रजी ने निर्माण किया, गान्धर्व वेद को नारदजी ने, धनुष धारण को भरद्वाज ने, देव ऋषियों के चरित्रों को गार्गी ऋषि ने, आयुर्वेद को कृष्ण और अत्रिऋषि ने जाना उन्हीं कहनेवालों ने न्याय सांख्य पातंजलि शास्त्र भी कहे युक्ति, वेद और प्रत्यक्ष प्रमाणों से जो ब्रह्म का वर्णन कियागया उसीकी तुम उपासना करो वह परम ब्रह्म आदि कारणरहित है, उसको देवता और ऋषियों ने भी नहीं जाना वह अकेलाही षडैश्वर्य्यवान् सबका धारण करता सर्व देह निवासी प्रभु परमेश्वर अपने को आपही जानता है और नारायण से उत्तम ऋषियों के समूह देवता, असुर और प्राचीन राजऋषियों ने उस पुरुषोत्तम सब दुःखों के औषधिरूप ब्रह्म को जाना है-जब प्रकृति इस पुरुष के मन की इच्छा के भाव को उत्पन्न करती है और यह जगत् पहलेही धर्म्म अधर्म्म से संयुक्त है इसीकारण भ्रमता है जैसे कि हेतुरूप तेलबत्ती के होने से एक दीपक से हजारों दीपक वर्त्तमान होजाते हैं उसी प्रकार प्रकृति भी प्रारब्ध के योग से सृष्टि को उत्पन्न करती है और अनन्त भाव से हानि को नहीं पाती है, अब सृष्टि की उत्पत्ति को कहते हैं कि प्रथम अव्यक्त से कर्म्मसंयुक्त बुद्धि उत्पन्न होती है, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है यह आठ मूलप्रकृति हैं इनमेंही जगत् वर्तमान है, इस पुरुष का उत्पत्तिस्थान आठरूपवाली प्रकृति से रूपांतरदशा के साथ पंचज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय पांचविषय और सोलहवां चित्त और एकचित्त का विषय यह सब उत्पन्न हुये श्रवण, त्वचा, प्राण, रसना, चक्षु यह पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं और दोनों चरण, गुदा, लिंग, हाथ, नाक, यह पांच कर्मेन्द्रिय हैं इनके पांचो कर्म्म भी इन्हीं में वर्त्तमान हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन सबको च्युतरूप जानना चाहिये अर्थात् चित्त के ज्ञापक हैं वह चित्त सब इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है उन शब्दादिकों में चित्तही सर्व इन्द्रियरूप है इसको सिद्ध करते हैं कि रस का ज्ञान जिह्वा से वार्त्तालाप वाक्इन्द्रिय से कहीजाती है यह चित्तही है उसी प्रकार नानाप्रकार की इन्द्रियों से संयुक्त सब आभ्यन्तरीय सुख, दुख, बुद्धि

इत्यादि और बाहरी आकाशादि उसीप्रकार अव्यक्त अर्थात् महत्तत्व आदि भी चित्तही है, दश इन्द्रिय, पंच तत्त्व और चित्त इन सोलह देवताओं को विभागी जानें जो कि देहों में ज्ञान उत्पन्न करनेवाले परमात्मा की उपासना करते हैं उसीप्रकार जिह्वा जल का कार्य्य है पृथ्वी गन्ध का कार्य्य श्रोत्रइन्द्रिय आकाश का, चक्षुइन्द्रिय अग्नि का कार्य्य है सबजीवों में स्पर्श करनेवाली त्वक्इन्द्रिय को वायु का कार्य्य जानो, चित्त सतोगुण का कार्य्य और सत्त्वगुण अव्यक्त से उत्पन्न होता है इस कारण बुद्धिमान् पुरुष सबको सब जीवों के आत्मारूप ईश्वर में वर्तमान समझे सत्त्व वा ईश्वर जड़ चैतन्य समेत सब जगत् को धारण करते हैं और वह सब मिल के उस कूटस्थ ब्रह्म के आश्रय हैं जो प्रकृति से भी प्रधान है वह महात्मा पुरुषोत्तम नौद्वारवाले सर्वभाव सम्पन्न पवित्र पुर में व्याप्त होकर शयन करता है इसी कारण से वह पुरुष कहा जाता है वह जरामृत्युरहित अरूप रूपवान् इन दोनों रूपों से उपदेश होनेवाला व्यापक सगुण सूक्ष्मरूप होकर सबजीव और गुणों का आश्रय स्थान है, जैसे कि छोटा बड़ा कैसाही दीपक हो वह प्रकाश करनेवाला है उसीप्रकार सबजीवों में उस ज्ञानात्मा पुरुष को भी जानो-जिसके द्वारा श्रोत्रइन्द्रिय सुनती है और जानने के योग्य को जानता है वही आत्मा सुनता और देखता है यह देह उसके शब्द ज्ञानादि का कारण है जाननेवाला नहीं है सब कर्म्म भी वही करनेवाला है-जैसे कि लकड़ी में व्याप्त अग्नि उसके तोड़ने छोरने पर भी दृष्ट नहीं आता है, उसी प्रकार देह में वर्त्तमान आत्मा योग से ही दृष्ट पड़ता है, योग के अभ्यास में देह का सम्बन्ध दूर नहीं होता है, इसको सिद्ध करते हैं कि जैसे नदियों में जल भरा है और सूर्य्य में किरणें हैं और सदैव प्रचलित हैं उसी प्रकार सब जीवों के देह हैं, जैसे पांचों इन्द्रियों समेत आत्मा स्वप्नावस्था में देह को त्याग करजाता है उसी प्रकार देह के अंत में इस देह को छोड़कर आत्मा दूसरे देह में प्रवेश करता है यह बात शास्त्र से वा योग से जानीजाती है अर्थात् दूसरे देह में आत्मा का जाना स्वप्न के समान है-अपने किये हुये प्रबल कर्म्म से प्राचीन देह का त्याग होता है और उसी कर्म्म से दूसरा भी देह प्राप्त होता है और एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाया जाता है, जैसे कि देह को त्याग कर वह एक देह से दूसरे देह में प्रवेश करता है उसीप्रकार अपने कर्म्म से उत्पन्न होनेवाले दूसरे जीवों के समूह को कहता हूं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अड़तीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि चारप्रकार के जड़ चैतन्य जीव ऐसे हैं कि जिनके दूसरे देह का मिलना प्रकट नहीं होता और न उनके पूर्वदेह का वियोग प्रकट होता है अर्थात् दोनों स्वप्न के तुल्य हैं दूसरे स्थान में जाने के समान नहीं हैं इसमें यह हेतु है कि इसका उसप्रकार का लक्षण प्रकट नहीं है देह चित्त के कारण से आत्मारूप है अर्थात् दूसरे चन्द्रमा के समान उसीमें कल्पित है और देह की प्राप्ति और त्याग में भी आत्मारूप है, जैसे कि पीपल के बीज में प्राप्त बड़ा वृक्ष बीच में प्रकट व वर्त्तमान दृष्ट पड़ता है उसी प्रकार अव्यक्त से चित्त की उत्पत्ति है अर्थात् आदि अन्त और मध्य में भी आत्मा ही है, जैसे कि जड़रूप लोहा चुम्बक पत्थर की ओर दौड़ता है इसी प्रकार पिछले संस्कार से उत्पन्न होनेवाले कर्म्मों के धर्म्म और अधर्म्म आदि का उदय और इसी प्रकार की जो दूसरी अविद्या आदि हैं वह भी देह के सन्मुख दौड़ती हैं उसी प्रकार अव्यक्त अर्थात् अविद्या से उत्पन्न होनेवाले जड़रूप भाव चारों ओर से एकत्र इकट्ठे होते हैं इसी प्रकार चैतन्य और कर्त्तारूप जीवात्मा के भाव बुद्धि चित्त आनन्दादि जो ब्रह्म का दर्शन करानेवाले हैं वह सब भी इकट्ठे होते हैं, वीर्य और रुधिर के योग आदि से देह बुद्धि आदि दृष्ट पड़ते हैं फिर किस प्रकार स्वप्न के समान अकस्मात् दूसरी देहका प्राप्तहोना है इस शंका को निवृत्त करते हैं—चैतन्यधातु जीव के विना पृथ्वी आकाशादि पंचतत्त्व, प्राण, शम, दम और काम आदि प्रकट नहीं हुये और इस अज्ञान की उपाधि से संयुक्त जीव की उपासना भी नहीं की फिर जीव में उसका कैसे सम्बन्ध निश्चय होसक्ता है, इसकारण से इसजीव में पृथ्वी आदि की तादात्म्यता है वह अज्ञान कर्म्म और माया का कार्य्य है यह वेद में कहा है, क्योंकि वह प्रचीन जिसकी आदि नहीं और सर्वव्यापी चित्त की उत्पत्ति का कारण वाणी से परे है उसकी पूर्व्व वासनाही उसको जतलाती है, वह जीव का स्वरूप वासनाओं से संयुक्त कर्मों का संचय करनेवाला है जिस वासना और कर्म्म से यह आदि अन्तरहित बड़ा चक्र वर्त्तमान है, उसमें मन इन्द्रियों समेत जीव गिरकर तबतक भ्रमता है जबतक कि बुद्धि की स्थिरता नहीं होती फल की वासना से जो २ कर्म्म कियेजाते हैं वह आगे देह प्राप्त होने के हेतु हैं, जितने कर्म हेतु और सब मायादिक हैं उनका योग जब क्षेत्रज्ञ से होता है तब देह के मिलने से यह सब भी परस्पर में मिलजाते हैं हे शिष्य!

जो पुरुष ईश्वर के आश्रय में पूर्व देह को त्यागते हैं वह लोकान्तर को प्राप्त होते हैं जब जीव लोकान्तर को जाता है तब उसके संग रजोगुण तमोगुण नहीं जाते हैं उसके साथ केवल सतोगुणही जाता है इस विषय को ज्ञानी पुरुषही जानते हैं संग में जाते हुये भी रज और वायु के समान पृथक् है, ज्ञान प्राप्तहोनेसे आपेको जानताहै जब आपेको जानताहै तब देह नहीं पाताहै॥१७॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जिसप्रकार से यह प्रवृत्त लक्षणवाला धर्म्म सबको स्वीकार होता है उसी प्रकार उन विज्ञानी ब्रह्मज्ञानियों को विज्ञान के सिवाय दूसरा कोई तत्त्व नहीं भाता है वेद के ज्ञाता पुरुष जोकि वेदोक्त कर्म्मों में प्रवृत्त हैं वह बहुत कम हैं वह बड़े ज्ञानी प्रयोजन की महत्त्वता से उत्तम मार्ग्ग को चाहते हैं यह चलन सत्पुरुषोंकी शिक्षा से निन्दायोग्य नहीं होता अर्थात् कर्म्म उस ज्ञानयोग में प्रवेश होने का कारण है और यह ब्रह्मज्ञान वह वस्तु है जिसको प्राप्त होकर उत्तम मोक्ष को पाता है रजोगुण, तमोगुण, क्रोध, लोभ आदि गुणों से संयुक्त देहाभिमानी पुरुष अज्ञानता से सब स्त्री पुत्रादि परिग्रहों को प्राप्त करता है इस कारण मोक्ष का चाहनेवाला अपवित्र कर्म्म नहीं करे कर्म्म से ब्रह्मज्ञान की इच्छाको उत्पन्न करता शुभलोकों को न चाहे अर्थात् फलके त्याग समेत पवित्र चित्त होने के निमित्त कर्म्मों को करे चित्त की पवित्रता न होने से यह दोष होते हैं जैसे कि लोहे से युक्त सुवर्ण पक्व हुये विना शोभित नहीं होता है उसी प्रकार जिस चित्त ने रोगादि दोषों को विजय नहीं किया उसका विज्ञान उदय नहीं होता है, जो पुरुष धर्म्ममार्ग्ग को उल्लंघन करके काम क्रोध के अनुसार कर्म्म करता है और लोभ से अधर्म्म को करता है वह अपने साथियों समेत नाश को पाता है इसी हेतु से पुरुषप्रीति की आधिक्यता से शब्दआदि विषयों को प्राप्त नहीं करे, क्योंकि यहां एक को एक से क्रोध हर्ष और भूल उत्पन्न होती है देह के पंचभूतात्मक होने और चित्त के राजसी तामसी होनेपर यह किसकी प्रशंसा करताहै और क्या कहता हुआ किसकी निन्दा करता है अर्थात् किसीकी नहीं करता है, अज्ञानीलोग रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादिकों में प्रीति करते हैं और अपनी विपरीत बुद्धि से पृथ्वी के गुण देह को नहीं जानते हैं, देह के भस्मीभूत होने में युक्ति कहते हैं जैसे कि मृत्तिका का स्थान मृत्तिका

सेही लीपाजाता है इसीप्रकार यह पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाला देह मृत्तिका के विकार अन्नादिक से पुष्टता को पाता है, मधु, तैल, दूध, घृत, मांस, लवण, धान, फल, मूल यह सब जल के द्वारा मृत्तिका के रूपान्तर रूप विकार हैं, और जैसे कि वन में निवास करनेवाला संन्यासी मुट्ठी अन्न आदि से प्रसन्न नहीं होता उसीप्रकार ग्रामादिकों के बे स्वाद भोजनों से अप्रसन्न देह के निर्वाह के लिये प्राप्त करे, उसी प्रकार संसाररूपी वन में निवास करता परिश्रम में संयुक्त कुटुम्बी यात्रा के निर्वाह के निमित्त अन्न को ऐसे भोजन करे जैसे कि रोगी औषधी का सेवन करता है आशय यह है कि इन्द्रियों की प्रीति के लिये भोजन नहीं करे इसप्रकार कुटुम्बी और संन्यासी के वैराग्य को मुट्ठी अन्न आदि में प्रकट करके दोनों आश्रमों के योग्य मोक्षधर्म्म को कहते हैं—सत्य बोलना मृत्तिका और जल से बाहर की शुद्धि और चित्तशुद्धिसे भीतर की पवित्रता, शुद्धभाव, वैराग्य, वेदपाठ आदि से उत्पन्न होनेवाला तेज, चित्त के विजय करने में शूरता, शास्त्र सुनने से उत्पन्न होनेवाली बुद्धि, क्षमा, धैर्यता, ज्ञान, विवेक, तप, उदारचित्तता, सन्मुख आनेवाले संन्यासी वा संसारीभाव या विषय स्वरूप को अच्छेप्रकार से विचारकर शान्तचित्त इन्द्रियजित् होना चाहिये-सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से मोहित अज्ञानीजीव चक्र के समान घूमते हैं इसकारण अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले दोषों को अच्छेप्रकार से विचार करे, अज्ञानमय दुःखदायी अहंकार को अत्यन्तता से त्याग करे—क्योंकि पंचमहाभूत और सत्त्व, रज, तम यह तीनोंगुण, तीनोंलोक ऐश्वर्यों समेत अहंकार में फँसेहुये हैं अर्थात् अहंकार से कल्पित हैं, जैसे कि इस लोक में सावधानकाल ऋतुसम्बधी गुणों को दिखलाता है इसी प्रकार पंचभूतों में अहंकारको कर्म्मका जारी करनेवाला जाने, अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले अप्रकाश और महामोह उत्पन्न करनेवाले अहंकारको जाने फिर सुखदुःख से मिलेहुये सतोगुण रजोगुण को जाने हर्ष, चित्तशुद्धि, आनंदयुक्त प्रीति, निस्सन्देह होना, धैर्य्यता, स्मरणता यह सब सतोगुण के रूप हैं—और काम, क्रोध, अविवेक, लोभ, मोह, भय, दुःख इत्यादि सब रजोगुण के स्वरूप हैं—शोक, अप्रीति, स्वतंत्रता, अहंकारता, तीक्ष्णता इत्यादि सब तामसी गुण हैं, इसप्रकार के दोषों की हानि लाभ को विचारकर उस आत्मा में वर्त्तमान हरएकगुण को अच्छे प्रकार से विचार करे अर्थात् कौन दोष है कौन नाश हुआ कौन शेष रहा इन सब बातों को सदैव

विचार करे, युधिष्ठिर बोले कि पूर्व में मोक्षकी इच्छा करनेवालों ने चित्त से कौन से दोष दूर किये और किस बुद्धि से निर्बल कियेगये और कौनसी कठिनता से त्याग किये जाते हैं कौन लौट आते हैं और कौन अज्ञान से निष्फल हैं और ज्ञानी किस बुद्धि और कारणों से गुणों के बलाबल को विचार करे इस मेरे सन्देह को हे पितामह ! आप दूर करिये—भीष्मजी बोले कि अत्यन्त शुद्धात्मा पुरुष दोषों को मूल से उखाड़ने के द्वारा मुक्त होता है, जैसे कि धार रखनेवाला औज़ार लोहे की बेड़ियों का काटनेवाला है उसीप्रकार विचार से शुद्ध होनेवाली बुद्धि के द्वारा पैदा होनेवाली दोषयुक्त अविद्यादिक भी नाश होजाती हैं अर्थात् उनको नष्ट करके आप भी शान्ति को पाती है चौथे प्रश्न का उत्तर कहकर तीसरे प्रश्न का उत्तर देते हैं, रजोगुण, तमोगुण, काम, मोह इत्यादि से पृथक् शुद्धरूप सतोगुण यह सब देह के उत्पन्न करनेवाले बीजरूप हैं उनमें से दृढ़ चित्त ज्ञानी को ब्रह्म में मिलानेवाला केवल सतोगुणही है, पहले प्रश्नका उत्तर कहते हैं—कि ज्ञानीको रजोगुण तमोगुण त्याग करने योग्य हैं क्योंकि रजोगुण तमोगुणरहित बुद्धि से परमात्मा को पाता है अथवा सांख्यशास्त्रवाली बुद्धि को स्वाधीन करने के लिये मन्त्रयुक्त यज्ञादिकों को करे अर्थात् उससे चित्तशुद्धि होती है और चित्तशुद्धि से मोक्ष होता है वेदोक्त कर्म्मों में भी काम क्रोध के कारण राजसी तामसी कर्म्म त्याज्य हैं सात्त्विकी कर्म्म में प्रवृत्त रहना योग्य है इस विषय को तीन श्लोकों में कहते हैं, रजोगुण के द्वारा अधर्म्म युक्त कर्मों को प्राप्त करता है वह रजोगुणी कर्म्म अर्थ से संयुक्त होते हैं उन्हीं से सब कामनाओं की इच्छा होती है और तमोगुण से उन कर्मों को सेवन करता है जो कि क्रोध से उत्पन्न होनेवाले लोभ हिंसा में प्रीतियुक्त आलस्य निद्रा में प्रवृत्त करते हैं और सतोगुण में वर्त्तमान ब्रह्म का आश्रय करनेवाला श्रीमान् निर्मल श्रद्धा और विद्यायुक्त जीवात्मा सतोगुणी शुद्ध भावों को देखता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! रजोगुण, तमोगुण से लोभ, मोह, क्रोध, भय, अहंकार आदि उत्पन्न होते हैं उनके नाश करने से पवित्र होता है—शुद्धभाव का फल जीव ब्रह्म की एकता का ज्ञान है इसी कारण शुद्ध पुरुषों ने उस विभु परमात्मा अविनाशी सर्वव्यापी निराकार रूप को देवताओं में श्रेष्ठतर

जाना और शुद्धपुरुष अबभी जानता है, उसकी माया से मनुष्य ज्ञान विवेकरहित होकर अचेत होते हैं उस व्यग्र बुद्धि से वा अज्ञानतासे वह मनुष्य क्रोध अथवा व्यग्र चित्तता को पाते हैं फिर काम, क्रोध, लोभ, मोह से संयुक्त होकर पूजन आदि करने में अहंकार को करके कर्म्मों को करते हैं, उन कर्म्मों के द्वारा राग में भरेहुये शोक को उत्पन्न करते हैं और जन्म मरण को अंगीकार करके कर्म्मों के प्रारम्भ से सुख दुःख को पाते हैं और जन्म से कर्मों की दृढ़ता को पाते हैं और वीर्य्य, रुधिर से उत्पन्न मूत्र विष्ठा और रुधिर में भरेहुये होते हैं फिर लोभ में आसक्त क्रोध इत्यादि से दूषित उन्हीं से पार उतरने की इच्छा करते वर्त्तमान होते हैं वहां स्त्रियों को तो तंतुवाय अर्थात् कोरियों के समान संसाररूपी वस्त्र के तार को तानाबाना बुननेवाली जाने, वह स्त्रियां स्वभाव से क्षेत्ररूप हैं और पुरुष क्षेत्रज्ञरूप है अर्थात् जैसे प्रकृति क्षेत्रज्ञ को अपने स्वरूप से गुप्त करती है इसी प्रकार यह स्त्रियां जीवात्मा को संसार में स्वाधीन करती हैं इस कारण ज्ञानी पुरुष अत्यन्तता से उनको त्याग करें अथवा उनके पास न जावें यह स्त्रियां घोररूप कृत्या अर्थात् शत्रु के मारने को मन्त्ररूप शक्ति हैं और अज्ञानियों को अचेत करती हैं और रजोगुण में अन्तर्गत हैं और इन्द्रियों की सनातन मूर्त्ति हैं अर्थात् इन्द्रियों से कल्पित हैं इसी हेतु से उन स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रीतिरूप वीर्य्य से उत्पन्न होते हैं, अब जिस प्रकार अपनी देह में पैदा होनेवाले और अपने में से पृथक् कीड़ों को देह से जुदा करते हैं उसी प्रकार पुत्रभावरूप रखनेवाले आत्मजरूपी कीड़ों को त्याग करे, स्वभाव और कर्म्मयोग के द्वारा वीर्य और पसीने से जीव उत्पन्न होते हैं उनको बुद्धिमान् लोग त्याग करें, इस रीति से त्याग के योग्य को कहकर जानने के योग्य वस्तु को कहते हैं कि प्रवृत्ति और प्रकाशरूप रजोगुण, सतोगुण यह दोनों तमोगुण में अन्तर्गत होजाते हैं वह अज्ञान नाम तमोगुण ज्ञान में नियत बुद्धि और अहंकार का जतलानेवाला होता है, अहंकार और बुद्धि से मिला हुआ वह अज्ञान जीवात्माओं को देह के मिलने में बीजरूप है उस कार्य्य के साथ ज्ञान का बीज अर्थात् अधिष्ठानरूप जो ज्ञानहै उसीका जीव नामहै वह अज्ञानसे मिलाहुआ ज्ञान बीजरूप है इसहेतु से कि वह काल से मिलेहुये कर्म्म के साथ संसार का घुमानेवाला है यह जीव या ईश्वर जैसे कि स्वप्न में चित्त के साथ देहधारी के समान रमताहै उसीप्रकार यह देहवान् आत्मा कर्म से उत्पन्न होनेवाले गुणों के

कारण माताके उदर में उसको पाताहै जिसका कि आगे वर्णन है अर्थात् मांस पिण्डरूप रागयुक्त होकर पूर्ववासना से मिलकर चित्त के साथ जिस२ इन्द्रिय को स्मरण करता है वह इन्द्रिय बीजरूप कर्म और अहंकार से उत्पन्न होती है जब इसकी शब्द में प्रीति होती है तब श्रोत्र इन्द्रिय उत्पन्न होती है इसी प्रकार रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में प्रीति होने से चक्षु, जिह्वा, घ्राण, त्वचा यह सब क्रम से उत्पन्न होती हैं अर्थात् सब वासना से उत्पन्न होती हैं इसीप्रकार प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान नाम पांचों प्रकार की इन्द्रियोंसे देहका सब व्यापार होता है इसप्रकार से दशों इन्द्रियों समेत पुरुष उत्पन्न होता है अर्थात् गर्भ में इन्द्रियोंके अंगीकार करने से दुःख को पाता है और देह के अभिमान से उस दुःख की अधिक वृद्धि होती है इसीप्रकार देह त्यागने में कष्टको भी पाताहै इन हेतुओं से दुःखों का त्यागही योग्य है क्योंकि उन दुःखों का रोकनेवाला मुक्ति को पाता है इन्द्रियोंकी उत्पत्ति नाश दोनों रजोगुण में हैं ज्ञानी इसको विचार कर बुद्धि के अनुसार शास्त्ररूप नेत्रों से काम करे तात्पर्य यह है कि रजोगुणरूप प्रवृत्ति के रोकने और इन्द्रियजित् होने से दुःख की रुकावट होती है, ज्ञानेन्द्रियां विषयोंको पाकर भी निर्लोभी पुरुष को व्याप्त नहीं करती हैं और उन इन्द्रियों से पृथक् वह जीवात्मा फिर देहोंके प्राप्त होने को योग्य नहीं होता ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इकतालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन्! मैं इस स्थानपर शास्त्ररूप नेत्रों से उपाय को कहता हूं तुम इसी विज्ञान से कर्म को करना अर्थात् शम, दम आदि गुणों से कर्म करने में मोक्षरूप गति को पाता है, सबजीवों में पुरुष उत्तम गिना जाता है, पुरुषों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है और ब्राह्मणों में भी मन्त्रज्ञ ब्राह्मण उत्तम होते हैं वह ब्राह्मण सब जीवों के आत्मारूप सर्वज्ञ सर्वदृष्टा वेदज्ञ और शास्त्र के तत्त्वार्थ निश्चय करनेवाले हैं, जैसे कि अन्धा अकेला मनुष्य मार्ग में दुःखोंको पाता है उसी प्रकार अज्ञानी लोग भी इस संसार में हैं इस कारण ज्ञानी पुरुष सबसे अधिक हैं—इसप्रकार से उपाय जाननेवालों की प्रशंसा करके उनके गुणों को कहते हैं अर्थात् धर्म की इच्छा करनेवाले शास्त्र के अनुसार उन धर्म्मों का सेवन करते हैं जिनका कि मोक्ष में कोई भेद नहीं है वह आगे लिखेहुये गुणों को करते हैं वह धर्म्मज्ञ सब धर्म्मों में इन शुभ गुणों को जतलाते

हैं देह, वाणी, चित्त इत्यादिकी पवित्रता, क्षमा, सत्यता, धैर्य्यता, स्मरण यह जो ब्रह्मचर्य कहा वह ब्रह्मरूप है वह सब धर्म्मों से उत्तम है उसीसे मोक्ष को पाते हैं जोकि पंचप्राण, चित्त, बुद्धि, दश इन्द्रियों को समूह के योग से और शब्द स्पर्शसे पृथक् है और कान से सुनना, आंख से देखना, वचन से कहना जिसमें जारी हुआ वह ब्रह्मचारी चित्त से दृढ़ रहनेवाला विषयेन्द्रियों से रहित है अर्थात् वह शब्द से कहने योग्य विकल्प अवस्था है और जिस दोष से रहित ब्रह्मचर्य को बुद्धि से निश्चय करता है वह मूर्द्धा से उत्पन्न होनेवाली बुद्धि से निश्चय किया हुआ सन्देहरहित परोक्ष ज्ञान है, ब्रह्मचर्याओं के फल को परम्परापूर्व्वक कहते हैं, पूर्णवृत्तिवाला उस मोक्षको पाता है जिसका लोक ब्रह्म है और बीचवाला सत्यलोक को पाता है और छोटी वृत्ति में वर्त्तमान ज्ञानी ब्राह्मण का जन्म लेता है और ब्रह्मचर्य बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है उसके उपाय को मैं कहता हूं ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होनेवाले वृद्धि पानेवाले रजोगुण को अपने में से पृथक् करे, स्त्रियों की कथा को न सुने, न कभी उनको नंगी देखे, इस निमित्त कि उनके दर्शनों से निर्बल मनुष्यों में कभी रजोगुण प्रवृत्त होजाता है, जिसके देह में प्रीति उत्पन्न होजाय वह कृच्छ्रव्रत को करे, और वीर्य की वृद्धि से अत्यन्त पीड़ित होने में जल में प्रवेश करे, जब स्वप्न में वीर्यपतन होजाय तब जल में वर्त्तमान होकर अघमर्षण नाम ऋचा को तीनबार जप करे, ज्ञानी मनुष्य ज्ञान से संयुक्त उदारचित्तता के द्वारा इसप्रकार देह के अभ्यन्तर्गत रजोगुणरूपी पाप को अत्यन्त नष्ट न करे, जिसप्रकार देह में वर्त्तमान मल पवित्र वस्तुओं से मिला निच्छिद्र जकड़ा हुआ है उसीप्रकार देह में नियत आत्मा और देह को दृढ़ बन्धनवाला जाने, नाड़ियों के जालों से जैसे रस मनुष्यों के वात, पित्त, कफ, रुधिर, चर्म्म, मांस, अस्थि शिराओं को और देहों को तृप्त करता है, इस देह में पांच इन्द्रियों के गुण को बहानेवाली दश नाड़ियों को समझो जिनसे हजारों एक से एक नाड़ी उत्पन्न होती हैं इसप्रकार यह नाड़ीरूप नदियां जिनमें रजोगुणरूपी जल भरा है नियत समयतक देहरूपी समुद्र को तृप्त करती हैं जैसे कि समुद्र को नदियां भरती हैं इस देह में चित्त के बीच एक नाड़ी मनोवाह नाम है जो कि मनुष्यों के संकल्प से पैदा होनेवाले वीर्य को सब अंगों से छोड़ती है उसके पीछे चलनेवाली नाड़ियां सब अंगों को तपानेवाली हैं, वह तैजसगुण को बहातीहुई नेत्रों में

प्राप्त होती हैं जैसे कि दूध में गुप्त घृत मथनदण्डों से मथाजाता है उसी प्रकार देह के संकल्प से पैदा होनेवाले मथनदण्डों से वीर्य भी मथाजाता है इसी प्रकार स्वप्न में भी चित्त के संकल्प से उत्पन्न होनेवाली प्रीतिरूपा स्त्री जिस प्रकार प्राप्त होती है उसीप्रकार इसकी मनोवाह नाड़ी संकल्प से पैदा होनेवाले वीर्य्य को देहसे प्रकट करती है इसवीर्य की उत्पत्ति को भगवान् अत्रि महर्षि ने जाना है जिसकी कि तीन स्थानों में उत्पत्ति है अन्नरस, मनोवाह, नाड़ी और संकल्प और इन्द्र इसका देवता है इस हेतु से वह इन्द्रही कहा जाता है निश्चय करके जिन पुरुषों ने वीर्य की गति को जो कि जीवों को वर्णसंकर करनेवाली है विचार किया है वह प्रीतिरहित और वासना से रहित देह की उत्पत्ति को नहीं पाते हैं, जो कि चित्त के द्वारा योगबल से निर्व्विकल्प भावको पाकर मनोवाह में अन्त समय में प्राणों को चलायमान करताहुआ मुक्त होता है, वह केवल देह के निर्वाह के निमित्त कर्म्म करनेवाला है, नाश और देहसम्बन्ध के लिये कर्म्म और मुक्ति देनेवाले योगमार्ग को कहकर जीवनशक्ति उत्पन्न करनेवाले ज्ञानमार्ग्ग को कहते हैं अर्थात् चित्त से ही ज्ञान होता है चित्त ही उत्पत्तिरूप होता है क्योंकि ब्रह्मज्ञानियों का चित्त प्रणव की उपासना से सिद्ध अनादि मायाके रूप वासनासे पृथक् प्रकाशित होजाता है इस कारण इसलोक में उस चित्तके नाश के लिये निवृत्तिरूप कर्मको करे और रजोगुण तमोगुण को त्यागकर जैसे बने तैसे मोक्ष को प्राप्त करे, जिसको युवावस्था में ज्ञान प्राप्त हो और वृद्धावस्था में न्यून न होगया हो उस चित्त के वेगको अर्थात् संकल्प को वह पुरुष विरक्त बुद्धि से स्वाधीन करता है, अत्यन्त कठिन और अगम्य मार्ग को जिसमें देह इन्द्रिय आदि गुणबन्धन हैं उनको निबटाकर जैसे दोषों को देखे उसीप्रकार उनसे पृथक् होकर मोक्ष को पाता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

बयालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि परिणाम में दुःखदायी स्पर्शादि इन्द्रियों के विषय में प्रवृत्त चित्त जीव पीड़ा को पाते हैं, और जो महात्मा उनमें प्रसक्त चित्त नहीं हैं वह मोक्ष को पाते हैं बुद्धिमान् लोग इस संसार को जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, दुःख और चित्त के क्लेशों से व्याप्त देखकर मोक्ष के निमित्त उपाय करे, मन वाणी और देह से पवित्र अहंकाररहित शान्तरूप ज्ञानी और संन्यासी

होजाय और अनिच्छावान् होकर सुखपूर्व्वक घूमे अथवा जीवों की करुणा से चित्त के बन्धन को देखे वहां भी संसार को कर्म्मरूप फल जानके त्याग करे, जो शुभ अशुभ कर्म्म किया है उसको भोगता है इसकारण बुद्धि, मन, वाणी, और देह से शुभकर्म्मों को करे वह शुभ कर्म्म यह हैं कि अहिंसा, सत्यता, सब जीवों में सत्यभाव, क्षमा, दीनदयालुता जिसमें यह गुण होतेहैं वह सुख को पाता है—इसी हेतु से ब्रह्मज्ञान के द्वारा सब जीवों में स्थिरचित्तता को धारण करे जो पुरुष सब जीवों के सुखदायी इस उत्तम धर्म्म को दुःख से पृथक् होने का कारणरूप जानता है वह सर्वज्ञ सुखी होता है इस हेतु से ब्रह्मज्ञान के द्वारा स्थिरचित्त की जीवों में धारणा करे दूसरे की बुराई कभी नहीं विचारे और जो राज्य आदि वस्तु अपने योग्य नहीं हैं उनकी इच्छा न करे और नाशवान् स्त्री पुत्रादि का शोच न करे सकल उपायों से चित्त को ज्ञान के साधन में प्रवृत्त करे और वह मनोहर ज्ञान सकल प्रयोगवाले वेदान्त वाक्यों से प्राप्त होता है शुभ वचन कहने के इच्छावान् और सूक्ष्म धर्म्म को देखनेवाले पुरुष की ओर से ऐसा कर्म्म करना चाहिये कि वह सत्ययुक्त और परनिन्दारहित अन्य के सुखदायी वचन को सदैव कहे, सावधानचित्त पुरुष को ऐसा वचन बोलना चाहिये जो शठता से रहित कठिनता से पृथक् दयायुक्त क्रूरतारहित संक्षिप्त हो, संसार देहसे बँधा हुआ है जो अप्रीतिता से वार्त्ता करे तब बुद्धियुक्त चित्त के सहित तामसकर्म्म अर्थात् हिंसा आदि को कहदे—आशय यह है कि जो पुण्य पापहैं वह अपने मुखसे कहनेपर नाश होजाते हैं, जो पुरुष रजोगुण में प्रवृत्त इन्द्रियों के विषयादि कर्म्मों में प्रवृत्त होताहै वह इसलोक में दुःखों को पाकर नरकगामी होता है इस हेतु से अपने मन वाणी देह से अपने धैर्य्यता को प्राप्त करे (अब कर्म्म के त्याग को दृष्टान्त समेत दो श्लोकों में कहते हैं) कि जैसे मांस के बोझ को लेचलनेवाले चोर जिसओर को जाते हैं उस दिशा को राज्यभय से शत्रु जानके उस मांस को त्यागकर कल्याण दिशा को जाते हैं और जैसे वह पकड़े नहीं जाते उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष अविद्यासे सम्बन्ध रखनेवाले कर्मों को साथ लेकर काम आदि के सम्मुख चलनेवाले संसारी भय को जान कर और उन रजोगुणी तमोगुणी कर्मों को त्याग करके फिर मोक्षको पाते हैं निस्सन्देह जो पुरुष चेष्टासे रहित सब स्त्रीपुत्रादि परिग्रहसे रहित एकान्तवासी, अल्पाहारी, तपस्वी, सावधान इन्द्रिय, ज्ञान से नष्ट क्लेशवाला योगांगों

के अनुष्ठानमें प्रवृत्त होनेवाला बुद्धिमान् है वह शान्तचित्त के द्वारा परमगति मोक्ष को पाता है, जो पुरुष धैर्यवान् और बुद्धिमान् है वह बुद्धि को स्वाधीन करे और उस बुद्धि से संकल्प विकल्पात्मक चित्त को स्वाधीन करे और उस चित्तके द्वारा विषयों को रोंके—अब योगके आवान्तर फलको कहते हैं—इन्द्रियों को आधीन करके चित्त को स्वाधीन करनेवाले योगी के देवता बड़ी प्रसन्नता से प्रकाशमान होकर उसी योगी में लय होजाते हैं जिसका चित्त उन देवताओं से तदाकार होता है उसीका ब्रह्म अच्छे प्रकार से प्रकाश करता है और बुद्धि में इन्हों के लय होने पर ब्रह्मभाव के लिये कल्पना किया जाता है या योगी ऐश्वर्य के प्रकट करने से प्रत्यक्ष न होजाय तब योगतन्त्रसे अनुष्ठानका प्रारम्भ करे तंत्रोक्त योगका अनुष्ठान करता हुआ जिसरूप से उत्तम वृत्ति होवे उसीको काममें लावे और गोधूमचूर्ण अर्थात् गेहूंका आटा, कौमारी, खल, शाक, यव का सत्तू, मूल, फल इत्यादि जो भक्षण के योग्य हैं उनको बहुधा भोजन करे परंतु योग को प्रकट न करे देशकालके अनुसार भोजन के उस सात्त्विकी नियम की परीक्षा करके उसकी प्रवृत्ति के समान कर्म्म करे जो कर्म्म जारी होजाय उसके रोंकनेसे योगमें विघ्न न डाले इसीप्रकार धीरे २ ज्ञानयुक्त कर्म्म को अग्नि के समान वृद्धि करे इस रीति से ज्ञानस्वरूप ब्रह्म सूर्य्य के समान अच्छे प्रकार से प्रकाश करताहै, आत्मा से अभिन्न ज्ञान के प्रकाश से खाली होना नहीं होसक्ता है फिर वह क्यों नहीं प्रकाश करता है यह शंका करके कहते हैं कि ज्ञान का अधिष्ठान अज्ञान तीनोंलोकोंमें वर्त्तमान होताहै इसी हेतुसे बुद्धिका अनुगामी ज्ञान अज्ञान से गुप्त कियाजाता है इससे निश्चय हुआ कि जिसके अंग है वह अंगों से ही प्रकाशकरता है और जो अंग रहित है वह प्रकाश नहीं करता इसी हेतु से इस अज्ञान का प्रकाश न करता ही प्रकाश करना चाहिये इस शंका को कहते हैं तीनों दशाओं से पृथक् उपाधि से रहित आत्मा को दशाओं में मिलाहुआ मान से दोष लगताहुआ भी उसको नहीं जानता है उनके पृथक्भाव और पृथक्भावके सिद्धांतका जाननेवाला संसारी प्रीतिसे रहित पुरुष मुक्ति को पाताहै कालका विजय करनेवाला ज्ञानी जरा मृत्युको जीतकर उस अविनाशी ब्रह्मको पाताहै जिसमें कि कभी नाश और न्यूनता नहीं होती है॥२७॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवां अध्याय ॥

पिछले अध्यायों में वर्णन कियागया कि योग और ऐश्वर्य्य को अनुभव करके वा न करके ब्रह्म में लय होताहै अब अनुभव ऐश्वर्य्य की निन्दा करते हैं–भीष्मजी बोले कि सदैव शुद्ध ब्रह्मचर्य के करने में इच्छायुक्त और स्वप्न के दोषों को देखनेवाले पुरुष को निन्दा करनी कभी न चाहिये, यह जीवात्मा स्वप्न में रजोगुण तमोगुण से संयुक्त होता है और दूसरे देह में प्रवेश हुआ सा इच्छा रहित घूमता फिरता है उस स्वप्न की औषधि जागरण को कहते हैं, ज्ञान के अभ्यास से जागरण होता है वह सदैव वारंवार विज्ञान में प्रवेश करने से विचार के निमित्त जागता है यहां पूर्व्वपक्ष करनेवाले ने कहा है कि स्वप्न में दृष्ट आनेवाला देह आदि पदार्थ क्या है सत्य है या मिथ्य है सह विषयवान् के समान दिखाई देता हैं जैसे कि आकाश में वर्त्तमानसूर्य जल में वर्त्तमान सा दिखाई देता है इसी प्रकार जाग्रत् अवस्थावाले देह आदि भी स्वप्नदशा में दूसरे प्रकार से दृष्ट आते है इतनी ही बात से स्वप्न की निर्विषयता नहीं इसको शंकाकरके कहते हैं कि इन्द्रियों के लय होजानेपर जीवात्मा देहवान् के समान वर्त्तमान होताहै, इस स्थान में यह कहाजाताहै कि जैसा यह है उसको योगेश्वर हरि जानते हैं इसीप्रकार इस युक्ति से संयुक्त अर्थ को महर्षि लोग भी वर्णन करते हैं अर्थात् जैसे कि वेद में लिखा है कि इस योगी के संकल्प से पितृ आदि प्रत्यक्ष होते हैं इसी प्रकार हमारे संकल्प से आकाशादि के जीव इत्यादि हैं और स्वप्नदशा भी संकल्पमात्र है, ज्ञानियों ने सब जीवों में प्रसिद्ध स्वप्न को इन्द्रियों के परिश्रम से जो कि जाग्रत् अवस्था में होता है उसको कहा है और चित्तके लय न होनेसे उस स्वप्नदशामें आगे लिखेहुये श्लोकों के दृष्टान्त को कहा है निश्चय करके कार्यमें चित्त लगानेवालेका संकल्प जाग्रत् अवस्था में भी होता है और जैसा मनोरथ का ऐश्वर्य है उसी प्रकार स्वप्नावस्था में भी वह संकल्प चित्तमें वर्त्तमान होताहै अनेक जन्मों के संस्कार से विषय में चित्त लगानेवाला पुरुष स्वप्न आदि की दशा के ऐश्वर्य को पाता है वह उत्तम पुरुष साक्षी आत्मा चित्त के सब गुप्त वृत्तान्तों को जानता है अर्थात् प्रकाश करता है, बुद्धि आदि के भीतर पिछले कर्म से जो २ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण वर्त्तमान होता है और चित्त जिस कर्म में प्रवृत्त होता है तब सूक्ष्म तत्त्व उस २ को उसके सम्मुख प्रकट करते हैं उस रूप दर्शन के पीछे निस्स

न्देह जैसे सुख आदि का उदय होय उसी प्रकार राजसी, तामसी, सात्त्विकी गुण भी समय के अनुसार उसके सम्मुख वर्त्तमान होते हैं तदनन्तर अज्ञान उन वात, पित्त, कफसे सम्बन्ध रखनेवाले देहों को राजसी, तामसी भावों से देखते हैं उसको भी कठिनता से पार होने के योग्या कहा, प्रसन्नेन्द्रियों से जब मानसी संकल्पों को करता है तो चित्त स्वप्न के वर्त्तमान होने पर प्रसन्न होता हुआ उस २ वस्तु को देखता है, वह व्यापक अरुद्ध चित्त सब जीवों में वर्त्तमान है उसको आत्मा के प्रभावसे जाने क्योंकि सब देवता आत्मा में हैं आशय यह है कि आत्मज्ञान से सर्वज्ञ होजाता है इसप्रकार स्वप्नदशा को कहकर सुषुप्तिदशा को डेढ़ श्लोक में कहते हैं-स्वप्न देखने में जो२ स्थूल देह रूपी द्वार है वह चित्त में गुप्त है उस देह में नियत होकर सोता है और उस अहंकार में अपने उस आत्मा को भी पाता है जोकि अव्यक्त सत्य, असत्यरूपवाली सबल माया में साक्षीरूप और सब जीवों का आत्मारूप है उस सुषुप्तिदशा में आत्मा को अहंकार आदि गुणों से स्पर्श करनेवाला जानो अर्थात् सुषुप्ति में शुद्ध साक्षी के मध्यमें अहंकार आदि लय होजाते हैं क्योंकि वह सब उस आत्मा के प्रतिबिम्ब हैं, अब सम्परज्ञात नाम दशा को कहते हैं, जो पुरुष चित्त के संकल्प से ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य को चाहे उसको चित्तशुद्धि जाने, क्योंकि सब देवता आत्मा में हैं तात्पर्य यह है कि शुद्ध चित्त ही ईश्वर है इसप्रकार विषय आदि के विचारसे संयुक्त चित्त इसप्रकारका होताहै, और ज्ञान से उत्तम ब्रह्मको पानेवाला चित्त सूर्य के समान प्रकाशित अर्थात् ज्ञानरूप होता है इस स्थानपर जीवात्मा के दो प्रकार के ब्रह्मभाव को कहते हैं जीवात्मा तीनों लोकोंका उत्पत्ति स्थान अर्थात् सगुण ब्रह्म है और अज्ञान के अन्त में महेश्वर अर्थात् शुद्धब्रह्म है देवताओं ने तप आदि के करने में निवास किया और असुरों ने तप के नाश करनेवाले अहंकार और कपट आदि में प्रवृत्ति करी अर्थात् रजोगुणी, तमोगुणी देवता और असुरोंसे वह ब्रह्म प्राप्त नहीं होसका इस ब्रह्मको देवता असुरों से गुप्त करके ज्ञानस्वरूप वर्णन किया है, सत्त्व, रज, तम यह तीनों देवता और असुरों के गुण हैं परन्तु इनमें केवल सत्त्वगुण तो देवताओं का है और शेष रजोगुण तमोगुण असुरों के हैं, वह ब्रह्म गुणों से परे ज्ञानस्वरूप स्वयं प्रकाशवान् और व्यापक है जिन शुद्ध चित्त ज्ञानियों ने ध्यान आदि से उसको जाना है वही ज्ञानी परमगति को पाते हैं, ज्ञान चक्षु से युक्ति के द्वारा केवल

इतनाही कहना सम्भव होसक्ता है अथवा उस अविनाशीको प्रत्याहार से अर्थात् विषयों को इन्द्रियों से खींचने के द्वारा जानसक्ता है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चवालीसवां अध्याय ॥

अब सावधान से ब्रह्म की प्राप्ती को कहते हैं भीष्मजी बोले कि वह पुरुष परब्रह्म को नहीं जानता है जो स्वप्नावस्था सुषुप्त्यवस्था सगुण निर्गुणब्रह्म इन चारों को नहीं जानता, व्यक्त अव्यक्त अर्थात् जगत् और चिदात्मा और जो तत्त्व है उसको श्रीनाराणजी ने अच्छे प्रकार से वर्णन किया है कि व्यक्त संसार को तो मृत्यु का मुखजाने और अव्यक्त ब्रह्मको अविनाशी यह नारायण ऋषि ने प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म कहा, उसी कर्म्मफल में जड़ चैतन्ययुक्त तीनों लोक वर्त्तमान हैं और निवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म ब्रह्मही है वह प्रत्यक्ष और प्राचीन है, रजोगुणरूप ब्रह्माजी ने प्रवृत्ति लक्षणवाले धर्म्म को कहा है, प्रवृत्ति धर्म्म संसार में फिर लौटाकर लानेवाला है और निवृत्ति धर्म्म मोक्षरूप है, सदैव चैतन्य आत्मतत्त्व का विचार करनेवाला और संसार से मुक्ति होने के मूलके देखने की इच्छा रखनेवाला निवृत्ति धर्म्म में पूर्ण मुनि उस ब्रह्मगति को पाता है वहां तीनोंका विचार करके आगे की लिखी हुई युक्तिको जाने अर्थात् अव्यक्त जो प्रधानमाया और क्षेत्रज्ञ पुरुष यह दोनों जानने के योग्य हैं और जो इन माया और पुरुष से दूसरा है उसको भी जाने वह बड़ा परमात्मा है, दुःखादि से रहित उस परमात्मा को ज्ञानीपुरुष लक्षणों के द्वारा साक्षात्कार करे क्योंकि वह प्रधान और क्षेत्रज्ञ दोनों आदि अंत से रहित विना रूप के हैं और प्राचीनता चेष्टारहित वृद्धसे भी वृद्ध हैं दोनोंके यह गुण एकसे हैं इसीप्रकार गुणोंसे रहित भी है, उत्पत्ति धर्म्मयुक्त और उसी त्रिगुणात्मिका मायासे विपरीत क्षेत्रज्ञ के मुख्य लक्षण को जाने वह प्रकृति के विकारका देखनेवाला किन्तु आप दृष्ट न आनेवाला विषय और सब गुणों से पृथक् है, प्रधान और क्षेत्रज्ञ की एकता वा विपरीत गुणों को कहकर जीव ईश्वर के एक से गुणों को कहते हैं—यह दोनों चेष्टारहित होनेसे पकड़ने में नहीं आते क्योंकि पुरुष और निराकार में निश्चय करके उन रूपरहित जीव ईश्वरका विभाग किसरीति से है यह शंकाकरके उनका विभाग उपाधि सम्बन्धी है स्वाभाविक नहीं है इस प्रयोजन से कहते हैं कि दृष्टि की समानता और स्वीकारता जतलानेवाला औरप्रत्यक्षका कारण है वही

करता है उसी से शास्त्रोक्त और लौकिक कर्म्मों की सिद्धि है वह करता जैसे २ इन्द्रियों और साधनों से जो २ कर्म्म करता है उसी २ प्रकार उस योनि देनेवाले कर्म्म के साथ जानाजाता है इसप्रकार व्यवहार द्वारा करता तीसरा है वास्तव में नहीं है इसको दृष्टान्तसहित वर्णन करते हैं, को हम इस शब्द से कहाजाता है कि मैं कौन हूं जैसे कि अपनेको कुन्ती का पुत्र न जानकर कर्ण ने कहा कि कुन्ती का पुत्र कौन है तब सूर्य्य देवता से अपने को निश्चय कुन्ती का पुत्र जान के कहा कि मैं कुन्ती का पुत्र हूं इसीप्रकार अज्ञानी पूंछता है कि ब्रह्म कौन है और ज्ञानी जानता है कि मैं ब्रह्म हूं इस प्रकार से एक ही वस्तु में ज्ञान और अज्ञान के भेद से दो बातें भेद खुलनेवाली उत्पन्न होती हैं, इसी प्रकार दृष्ट आनेवाली वस्तु में भी यह है वह है यह दोनों गुण पाये जाते हैं ऐसेही जीव ईश्वर में जानो, जैसे कि दिस्तारबन्द मनुष्य तीनवस्त्रों से संयुक्त होता है उसीप्रकार यह आत्मा वस्त्रों के समान ढकनेवाले स्थूल सूक्ष्म कारण रूप देहों से गुप्त होता है और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से ढका हुआ है तात्पर्य्य यह है कि जैसे कि दिस्तारबन्द तीनों वस्त्रों से पृथक् है उसी प्रकार जीवात्मा तीनों देह और तीनों गुणों से पृथक् है इसकारण चारों प्रधान पुरुषके गुण हैं, इन चारों को जानकर जो करने के योग्य है उसको कहते हैं- हृदय आकाश में ब्रह्म में प्रकट होनेवाली लक्ष्मी को चाहनेवाला और चित्त से पवित्र देहधारी पुरुष देह और इन्द्रियों के उग्रनियमों से अनिच्छावान् होकर तप करे, उस चैतन्य के प्रकाश से संयुक्त आंतरीय तप से तीनोंलोक व्याप्त हैं आकाश में सूर्य्य और चन्द्रमा तप सेही प्रकाश करते हैं क्योंकि वेद में बाह्य आकाश और हृदयाकाश दोनों समान हैं इसी कारण से योगियों का साक्षात्कार सिद्ध होता है, तप का फल ज्ञान है स्वरूप ब्रह्म है वह तपलोक में प्रसिद्ध है तप का जो कर्म्म उन रजोगुण, तमोगुण का नाश करनेवाला है अर्थात् वैराग्य के साथ वेदांत श्रवण नाम है वह असावधानरूप है, अब मुख्य तप को कहते हैं ब्रह्मचर्य और हिंसारहित होना देह का तप कहाजाता है, मन वाणी को अच्छे प्रकारसे आधीन करना चित्त का तप कहाजाता है, जो अन्य बुद्धि जाननेवाले ब्राह्मणों से अंगीकृत है वह उत्तम है क्योंकि आहार केनियम से इसका रजोगुणी पाप नाश होता है और इसकी इंद्रियां विषयोंसे वैराग्य को पाती हैं इसकारण से उतनी ही लेना चाहिये जितनी कि उसको आवश्यकता

हो अर्थात् भोजन से अधिक धन आदि को न लेवे इस बुद्धि के न होने पर मोक्ष में जो सुगमरीति है उसको कहते हैं अन्तके समयपर पूर्ण उपाय से उस ज्ञान को प्राप्त करे जो ज्ञान कि योग से संयुक्त चित्त के साथ धीरे२ प्राप्त होता है वह सुगमरीति यह है कि अन्तसमयपर काशी सेवन करे क्योंकि काशी के बीच देह त्याग करने में रुद्रजी के मुखसे तारकमन्त्र का उपदेश होने के द्वारा मुक्ति होती है इससे अंतसमयपर ईश्वर के उपदेश से ज्ञान को प्राप्त करे, रजोगुण से पृथक् यह जीवात्मा समाधि में स्थूल शरीर का त्यागकरनेवाला भी देहधारी होकर विचरे जोकि कार्यों से अबद्ध बुद्धि है, वैराग्य से उत्तम भोगों में अनिच्छावान् वह जीवात्मा प्रकृति में लय होता है अर्थात् प्रकृति से सर्वोपरि पुरुष को नहीं पाता है त्याग करने तक देह से सावधान रहने और तीनों देहों के नाश होनेसे शीघ्रही मुक्ति को पाता है जीवात्मा पूर्वोक्तकर्म्म मुक्ति को पाते हैं इसका वर्णन करते हैं, सदैव जीवोंकी उत्पत्ति उसी प्रकार अज्ञानके नाश को मूल रखनेवाली है अर्थात् देहके अभिमानसे जुदे होनेवाले जीवोंका अज्ञान और कर्मनाश न होने से सदैव जन्म मरण होता रहता है और शुद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार उदय होने पर धर्म और अधर्म वर्त्तमान नहीं होते हैं अर्थात् पूर्ण सिद्धिवालेके पिछले पापोंका नाश और आगे के कर्मोंका स्पर्श न होना प्राप्त होताहै इसी कारणसे उत्पत्ति कारण के विना मुक्तिहोती है, और शुद्धब्रह्म का साक्षात्कार न होने पर संसारी अनर्थों से मिलता है इसको कहते हैं जो पुरुष ज्ञानकी विपरीतता में वर्त्तमान है अर्थात् अनात्मामें आत्मबुद्धि करके वर्त्तमान है वह महत्तत्त्वादिकी उत्पत्ति नाशमें बुद्धि रखनेवाले हैं अर्थात् विपरीत बुद्धिवाले पुरुषों में मोक्ष कथा भी नहीं होती दृढ़आसन होकर देह को धारण करनेवाले और बुद्धि के द्वारा चित्त के विषयों को रोकनेवाले इन्द्रियों के गोलक नेत्रआदि से पृथक् अन्नमयादिकों को वो त्याग करनेवाले योगी उन प्राण इन्द्रिय आदि को उपासना करते हैं अर्थात् आत्मारूप विचारते हैं, यह सब ब्रह्मलोक में नियत होते हैं इसकारण श्रेष्ठ ब्रह्म को पाकर उसमें आपही बुद्धि से शास्त्र के अनुसार जानता है कोई शुद्ध अंतःकरण योगी उन तीनों देहों से पृथक् अपनी महत्त्वता में नियत शुद्ध ब्रह्मको उपासना करताहै, कोई पुरुष श्रीकृष्ण आदि रूप से संयुक्त आत्मा को स्वामी सेवकभाव से उपासना को करते हैं, कोई सबल अविद्या को उपासना करते हैं और कोई सबल से उत्तम निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हैं

अर्थात् लगातार अनुभव को सिद्ध करते हैं वह ब्रह्म बिजली के समान एकबार प्रकाश करनेवाला रूपांतर दशा से रहित है, यह पांचों उपासनावाले अपने पापोंको तप से भस्म करके अंतकाल में शीघ्र वा क्रम से परमगति को प्राप्त होते हैं शास्त्ररूप नेत्रों से उन भेद और उपासनावालों की सूक्ष्म द्वैतता को विचार करे और स्थूलदेहसे प्रीति रहित संन्यासीको तीनों देहों से पृथक् ब्रह्मरूप मोक्ष को पाते इसप्रकार जाने अथवा उस योगी को हृदय आकाश से श्रेष्ठतर ईश और सूत्रात्मा जाने, वेदोक्त उपासनामें चित्त लगानेवाले नाशवान् लोक से छूटजाते हैं वह रजोगुणरूप ब्रह्मसे पृथक्हैं इसकारण वेदजाननेवाले मनुष्यों ने उस धर्म को कहा है जिसमें ब्रह्म ही प्राप्ति स्थान है, जैसे ज्ञान की उपासना करनेवाले वह सब पुरुष मोक्ष को पाते हैं जिनका कि ज्ञान रागादि से रहित होकर अचल उत्पन्न होताहै उसीप्रकार वह लोगभी उत्तम लोकोंको पातेहैं और वैराग्य के द्वारा मोक्ष को पाते हैं और जो शुद्ध ज्ञान से तृप्त इच्छा से रहित हैं वह भक्तिके द्वारा उस सर्वैश्वर्य्यवान् अजन्मा सर्वव्यापी हृदयाकाश में वर्त्तमान अव्यक्तरूप को पातेहैं, और जीवन्मुक्त पंचकोशों में वर्त्तमान आत्मा में नियत हरिको जानकर फिर लौटकर संसार में नहीं आते किंतु उस अविनाशी उत्तम स्थान को पाकर आनन्द भोगते हैं, यह संसार है भी और नहीं भी है अर्थात् सर्प और रस्सी के समान होना न होना जानकर वाणी से कहने योग्य नहीं है आशय यह है कि मिथ्यारूप लोभ में भराहुआ सब जगत् चक्र के समान घूमता है जैसे कमल का मृणाल सब प्रकार से मृणाल में अन्तर्गत है उसी प्रकार लोभ सब देहों में सब रूपों से वर्त्तमान है जैसे कि सुई से सूत्र के द्वारा वस्त्र बांधा जाता है उसी प्रकार संसारसंबंधी लोभरूपी सुई के सूत्र से देह बांधा जाता है, लोभ त्यागने का उपाय यह है कि जो पुरुष प्रकृति और प्रकृति के रूपांतर तत्त्वों को और सनातन पुरुष को यथार्थ जानता है वह लोभ से पृथक् होकर मुक्त होताहै इस मोक्षसाधन को जीवोंकी रक्षा के निमित्त संसारके उत्पत्ति स्थान भगवान् नारायण ऋषि ने स्पष्टता से कहा है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

पैंतालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! मिथिलापुरी के राजा जनकने कौनसे व्रत को करके संसार के विषय भोगों को त्यागकर मोक्ष को पाया भीष्मजी बोले

कि इस स्थान पर व्रतसंयुक्त एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस व्रत को जानकर राजा जनक ने मोक्ष को पाया, एक जनकवंशी जनदेव नाम मिथिलापुरी का राजा था वह ब्रह्मप्राप्ति करनेवाले धर्म्मों के विचार में प्रवृत्त था उस के स्थान में नानाप्रकार के शौचाचारी आश्रमी लोग उपासना के धर्म्मों को पृथक् २ दिखाते हुये इकट्ठे हुये उनमें कोई तो देह के नाश से अपना नाश कहते थे और कोई देह के नाश को ही नहीं मानते थे उन दोनों के वर्णन से राजा प्रसन्न नहीं होता था क्योंकि वह सिद्धि में वर्त्तमान आत्मतत्त्व का माननेवाला था वहां एक पंचशिख नाम महामुनि आये उनसे राजा जनक ने संसार के मोक्ष का वृत्तांत पूछा अर्थात् राजा ने पूछा कि हे महामुने! जैसे सुषुप्ति दशा की मूर्च्छा में पूर्व स्मरण नहीं रहता उसी प्रकार मोक्ष में भी पूर्व स्मृति नहीं रहती है और सुषुप्ति अवस्था अज्ञान से होती है और ज्ञान से मोक्ष अवस्था होती है यह बात बड़े२ महात्मालोग वर्णन करते हैं तो ज्ञान और अज्ञानमें क्या न्यूनाधिकता हुई जो ज्ञान अज्ञान में कोई न्यूनाधिकता नहीं है तो ज्ञान के निमित्त अनेक क्लेशों का सहना व्यर्थ है भीष्मजी बोले कि जनक के ऐसे वचन सुनकर पंचशिख मुनि ने कहा कि हे राजन्! मैं ज्ञान और अज्ञान का निर्णय तुमसे कहता हूं तू सावधानचित्त होकर सुन—जब अज्ञानके द्वारा आत्माके बीच बुद्धि आदि आरोपित कियेजाते हैं तब उसका अभाव होजाता है, और जब ज्ञान से आत्मा को जानता है तब सब अनर्थ मिटजाते हैं उन अनर्थों के मिटजाने से निर्विकार शुद्ध आनन्दमय ब्रह्म और श्रेष्ठ बुद्धि का उदय होजाता है तब बुद्धि आदि का अभाव भी नहीं होता है इसहेतु से ज्ञानके उपायमें क्लेश करना व्यर्थ नहीं है हे राजन्! अब देहादिक के अनात्मा सिद्ध करने को देहादिक के मूल वृत्तांत को कहता हूं कि देह में यह जो पंचधातु हैं वह तबहीं तक एकत्र रहती हैं जबतक कि यह प्राणी जीवता है यह पांचों धातुओं का संघात देहादिकों का मूल है इनको हे राजन्! तुम अनात्मारूप जानो॥

सो० बुद्ध्यादिक सब जौन तौनहु सर्व अनातमा।
इनमाहीं क्षिति रौन आत्मभाव सो दुखित अति॥
दो० जाने इन्हें अनातमा मैं अरु मम यह भाव।
जौन बुद्धि सों कहत हैं रहत न सो नर राव॥

अब यहां सांख्यशास्त्र का उत्तम विचार कहना योग्य है उसको सुनो उस

विचार को जो तुम करोगे तो अवश्यही मोक्षधर्म को प्राप्त होगे, अर्थात् जो पुरुष मोक्ष को चाहै वह सबका त्याग करे क्योंकि जो त्यागरहित मोक्ष को चाहता है वह महादुःखों को प्राप्तहोता है, देखो द्रव्य के त्यागने से सबकर्म होजाते हैं और भोग के त्यागने से सब व्रत होजाते हैं और सब सुखों के त्यागने से सब प्रकार की तपस्या और योग होजाते हैं सब वस्तुओं के त्यागने से यह सब धर्म होजाते हैं हे राजन्! जो मनुष्य सर्वत्याग के मार्गको जानते हैं वह उस मार्ग को चलकर मोक्ष को पाते हैं ज्ञान से इन्द्रियों समेत बुद्धि के ऊपर मन को भी त्यगना योग्य है क्योंकि मनमें कर्मेन्द्रिय बलयुक्त होकर चपलता करती हैं इससे बुद्धि के त्याग में सबका त्याग होता है, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, चित्त और श्रवण का शब्द यह सब ज्ञान में भी होते हैं इन सबों का कर्त्ता चित्तहै, आकाश के आश्रित श्रोत्र और श्रोत्र के आश्रित शब्द है जिह्वा के आश्रित रस और जल के आश्रित जिह्वा है इसीप्रकार सब इन्द्रियां भूतों के आश्रित हैं और इन्द्रियों के आश्रित विषय हैं और सब इन्द्रियां मन के आश्रित हैं इसीसे मन ही सबका आधाररूप है हे राजन्! दशों इन्द्रियों के जो ज्ञान कर्म हैं उन सब को मन ही जानता है इससे इन सबका राजा ग्यारहवां मन और बारहवीं बुद्धि है जो मनको भी जानती है इन बारहों से ज्ञानीलोग आत्मा को पृथक् मानते हैं, हे राजन्! जाग्रत अवस्था में जो विषय देखा और सुनाहै उसे सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा स्वप्नावस्थामें गुणों के साथ होकर जीवात्मा प्रत्यक्षही के समान अपने समीप देखता है वहां सब इन्द्रियों का राजा चित्त मतिसे युक्त होकर आत्मा को उससे भिन्न कर देताहै इन्द्रियों से आत्मा को पृथक् होने से सुखरूप नीच तामस नाम उत्पन्न होता है इससे सुषुप्ति और मोक्ष में समान आनन्द मालूम होता है परन्तु सुषुप्ति में नाशवान् सुख है और मोक्ष में सदैव अविनाशी सुख है और सुषुप्ति में अहंकारादिक सब होते हैं मोक्ष में नहीं होते और हे राजन्! सब भूतादिकों के समुदाय को क्षेत्र कहते हैं और उस समुदाय के आधार को क्षेत्रज्ञ कहते हैं, वह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों कर्मों के प्रभावसे मिल जाते हैं इनमें किसको सत्य और किसको असत्य समझै, परन्तु जबतक यह कर्मका प्रभाव है तभीतक यह सब भी हैं परन्तु जब कर्म का अंशभी नहीं रहता तब इनका भी चिह्न नहीं रहता, जैसे कि नदी नदआदि समुद्र में मिलने से अपने नाम और रूपको त्याग देते हैं इसी प्रकार यह सबभी ब्रह्म में लय होने से अपने नाम और

रूपों को खोबैठते हैं, जो मोक्षरूपी बुद्धिको जानते हैं, वह आत्मा को प्राप्त होते हैं, जैसे कि कमल के पत्ते में जलस्पर्श नहीं करता उसी प्रकार मोक्षवाले पुरुष में कर्मों का स्पर्श नहीं होसक्ता जैसे कि सर्प कांचली को डालकर चलाजाता है उसीप्रकार मुक्त मनुष्य दुःखों को त्यागकर चलेजाते हैं इन पंचशिख के वचनों को सुनकर राजा जनक बहुत प्रसन्न हुआ, इसमोक्ष के निश्चय को जो कोई पढ़ेगा अथवा सुनेगा वह उपद्रवों से रहित होकर आनन्दों को पावेगा ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पञ्चशिखवाक्यपाखण्डखण्डनोनाम
पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

छियालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि महर्षि प्रबोधित राजा जनकजी ने फिर यह प्रश्न किया कि हे भगवन्! शरीर त्याग समय में संसार और मोक्ष की क्या अवस्था होती है यह संसार ज्ञान और अज्ञान शब्दों से कहने के योग्य नहीं फिर रज्जु सर्पवत् इस अल्प संसार के सुख की प्रत्याशा करना ही निष्फल है यह शंका करके राजा जनकजी बोले हे द्विजश्रेष्ठ! मरण पश्चात् जीव की क्या संज्ञा होती है और तब अज्ञान अथवा ज्ञान क्या करते हैं हे द्विजोत्तम! सब उच्छेद और निष्ठहोते हैं इसपर विचार करो तो सजग और अचेत मनुष्य अज्ञान और ज्ञान भेद में क्या करेंगे प्राणियों में तो अलग होना और अविनाशियों में मिलाप होना है फिर यहां कौन पुरुष किस फल के लिये तत्त्व में निश्चय करे और उसके लिये परिश्रम करे भीष्मजी बोले कि उस अज्ञान सेठके और भ्रान्तियुक्त दुःखी राजा से शान्ति वचनद्वारा पंचशिखा कवि ने यह कहा यहां जन्ममरण कुछ नहीं है—यह चैतन्य इन्द्रियों और शरीर का संयोग कर्म्म प्रधान्यता से होता है शरीर को अनात्मा कहने के लिये उसकी प्रकृतियों को कहते हैं धातु पांच प्रकार की हैं जल, आकाश, वायु, अग्नि और पृथ्वी वे स्वभाव से एकत्र स्थित होते हैं और स्वभाव से ही भिन्न होजाते हैं आकाश वायु और अग्नि के स्नेह और उन्हीं पांच धातुओं के समाहार से शरीर प्राप्त होता है शरीरांतर्गत बुद्धि अग्नि और प्राण यह तीनों सब कार्य्य साधक होते हैं और इन्द्रिय और इन्द्रियों के मनोरथ और स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान और विकार इत्यादि धातु यह सब इन्हीं तीनोंसे निकले हैं—कान, छूनेकी इन्द्रिय, जिह्वा, आंख और नाक यह पांचों इन्द्रिय हैं और इनका आदि कारण चित्त है वहां विज्ञान करके युक्त

चेतनाकी तीन ध्रुवा हैं जिनको सुख दुःख और अदुःख असुख कहते हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पांच सद्गुण मरण पर्य्यन्त ज्ञानसिद्धि के लिये होते हैं उन गुणों में कर्म्म, संन्यास और मोक्ष का कारण स्थित है उस तत्त्व निश्चय को मोक्ष का बीज और श्रेष्ठ मोक्ष देने से अनन्त और ब्रह्म में ज्ञान उत्पन्न करने से ब्रह्मरूप कहा इस ज्ञान समूहको आत्मारूप से देखनेवाले पुरुष के विरुद्धदर्शियों से भी अनन्त दुःख शांति को नहीं प्राप्त होता जो दृष्टि पड़े वह अनात्मा है उस कारण अंहकार ममता यह दोनों बातें वर्त्तमान नहीं होती हैं फिर आनेवाले दुःखका प्रस्ताव किस आधार पर होगा इस स्थल पर उस अनुपम त्याग शास्त्र को शोच में वारंवार सहस्रों मोतियों द्वारा लाना चाहिये जिनका तेरे मोक्षार्थ वर्णन किया जायगा मुक्तिके लिये सर्व कर्म्मोंका त्यागयुक्त है नित्यही मिथ्या विनीत दुःखभागी होते हैं द्रव्य त्याग के लिये कर्म्मों को और भोग त्याग के लिये वृत्तों को और सुख त्याग के लिये तप को और सर्व त्याग के लिये योग का उपदेश करते हैं दुःख नाश के लिये उस सर्वत्याग का यह मार्ग बतलाया है जिसका कोई भेद नहीं है और त्याग के न होने में दुर्गति होती है जिनका छठवां मन है उन पांच ज्ञान इन्द्रियों को बुद्धि में जोड़ कर उन पांच कर्म्म इन्द्रियों को जिनका छठवां प्राण शक्ति है त्याग करै दोनों हाथों को कर्म्म इन्द्रिय और दोनों पांवों को गति इन्द्रिय जानना चाहिये प्रजोत्पत्ति और आनन्द में लिंग इन्द्रिय और विष्ठा त्याग में गुदा को कहा वाक् इन्द्रिय वाक्य बोलने के लिये जाननी चाहिये—मन को इन पांचों से सम्मिलित जानैं इस प्रकार मन को त्याग करै और बुद्धिद्वारा शीघ्र ग्यारह इन्द्रियों को छोड़ देवे वाक् मन के त्याग करने में कर्म्म इन्द्रियों का त्याग हुआ और बुद्धि के त्याग करने में मन के साथ ज्ञान इन्द्रियों का त्याग हुआ दोनों कान शब्द और चित्त यह तीनों कर्म्म कर्ण इन्द्रियके कारणहैं इसीप्रकार रूप, रस और गन्धमें भी तीन २ कारण हैं इसीप्रकार शब्द आदि विषयों के ज्ञान होने में यह पन्द्रह गुण कारण होते हैं जिसके द्वारा यह तीनप्रकार का भाव, कर्त्ता, कर्म, करण भिन्न अभिप्राय के साथ सम्मुख उपस्थित हुआ वे तीनों भी सात्त्विकी, राजसी, तामसी में हैं जिनके मध्य सबका साधन करनेवाले तीन प्रकारके अनुभव वृद्धिको प्राप्त हुये प्रसन्नता, प्रीति, आनन्द, सुख, शान्तचित्तता आदि सतोगुण के धर्म्म हैं असंतोष, परिताप, शोक, लोभ, क्षमा, रजोगुण के धर्म हैं अविवेक, मोह,

प्रमाद, निद्रा, स्वप्न यह तमोगुण के धर्म हैं यहां जो कोई शरीर अथवा मन में प्रीति युक्त होवे–वह सात्त्विक भाव में है इसी प्रकार उसका त्याग करै जो आगे लिखाजावेगा जो आत्मा में असंतुष्ट अप्रीति करै है वह रजोगुण प्रवृत्त है जो देह और मन में मोह युक्तहै उसको तमोगुणी जानो इसी प्रकार शब्द आदि विषय और ज्ञान इन्द्रियों का शिरोमणि चित्तरूप होना कहा चित्त के त्याग से गुण और इन्द्रिय और विषयों का त्याग होता है इस ज्ञान के लिये अब आकाश आदि तत्त्वरूपी विषय और इन्द्रियों का भिन्न न होना अर्थात् एक रूप होना कहते हैं इनके वश करने से आकाश आदि वश होते हैं इस आशय के लिये दो श्लोक लिखते हैं–आकाश में शरणार्थ श्रोत्र इन्द्रिय आकाशरूप ही है और श्रोत्र इन्द्रिय में शरणार्थ शब्द है आकाश तत्त्व ही है इस अवस्था में शब्द और श्रोत्र यह दोनों विज्ञान के विषय नहीं इसी प्रकार आंख, जिह्वा, नाक आदि पांचों स्पर्शरूप सम्बंध रखते हैं वे सब शब्द व आकाश आदि स्मरणात्मक चित्तरूप हैं वह चित्त भी निश्चयात्मक मन का रूप है अर्थात् चित्त के वश होने से सब वश को प्राप्त होते हैं सब के मनरूप होने में जगत् ही को कहते हैं इन पांचों इन्द्रिय व पांचों विषयों में प्राप्त होनेवाला ग्यारहवां चित्त होता है उसको जानो सूक्ष्म इन्द्रिय भी पहिले सुने के आगम से स्मरण करतीहुई भी तीनों गुणों से युक्त फिर नहीं लौटती जो तम से ढका हुआ चित्त जिसका कोई निश्चय नहीं और जो शीघ्रही संहार होसक्ता है अपने शरीर में ग्रहण करते हैं उसको पण्डितलोग तामस कहते हैं जो चित्त तमोगुण युक्त और परवर्ती प्रकाशात्मक आत्मा को छिपाता है और जो नाश योग्य है वह शरीर में युगपद् भाव को नाश करता है इसी तरह से अपने कर्म का प्रत्यय गुण प्रसंख्यात हुआ किसी २ में वर्तता है और किसी में निवृत्त रहता है अध्यात्म की चिन्तना करनेवाले इसी को समाहार क्षेत्र कहते हैं मनमें जो भाव स्थित होताहै वही क्षेत्र कहाताहै ऐसा होते हुये स्वभाव ही से वर्त्तमान सब प्राणियों में हेतु से उच्छेद और शाश्वत कैसे होताहै जैसे नदियां समुद्रमें जाके अपनी पहली रीति को छोड़ देती हैं ऐसेही प्राणी को भी मरने के अनंतर समझिये ऐसा होते हुये मरणके अनन्तर फिर क्या संज्ञा होती है और जीवके सब ओर से ग्रहण हुये देहमें प्रविष्ट होने से कैसी संज्ञा होतीहै इस विमोक्ष बुद्धि आत्मा को जो जानता और अप्रमत्त होके ढूंढ़ता है वह अनिष्ट कर्मफलों से लिप्त

नहीं होता जैसे जल से सींचाहुआ कमल का पत्र नहीं कुम्हिलाता फिर प्रजा निमित्त जो दृढ़ फँसरी हैं तिनसे छूटके जब सुख दुःख को छोड़ताहै तब आगे की गति को प्राप्त होता है फिर वेद और आगम के मंगलों से बुढ़ापा और मृत्यु के भय से निर्भय सोता है एक परमेश्वर ही में आसक्त प्राणी जैसे पुण्य या पापके नाशहुये से और निमित्त फलके भी नाश होनेसे चिह्न रहित निर्मल आकाश में स्थित होके परमेश्वर ही को देखते हैं जैसे ऊन का बीननेवाला ऊन के डोरे के नाश में निर्भय सोता है ऐसेही विमुक्त पुरुष दुःख को छोड़ के निर्भय सुख से सोता है जैसे रुरु नामक जीव पुराने सींगों को छोड़के नये सींग धारण करताहै और सर्प पुरानी त्वचाको छोड़के नई त्वचा ग्रहण करताहै तैसेही विमुक्त प्राणी दुःखको छोड़के सुखी होताहै जैसे जल में गिरेहुये वृक्षको पक्षी छोड़के निर्भय दूसरे वृक्ष में बैठताहै तैसे ही मुक्त पुरुष सुख दुःखको छोड़के श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है इस मैथिल पंचशिख के मुख से निकलेहुये अमृतके तुल्य पद जिसमें ऐसे गानको सुनके और सबको देखके निश्चय अर्थ और शोचरहित राजा जनक परमसुखी होके विचरते भये इस मोक्षके निश्चयको जो सदैव देखता और पढ़ताहै वह उपद्रवों से दुःखित नहीं होता जैसे कपिलदेवजी को पायके राजा जनक सुखी हुये तैसे ही वह पुरुष सुखी होताहै ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! क्या करनेसे सुख और क्या करने से दुःख और क्या करने से लोक में निर्भय होकर विचरताहै भीष्मजी बोले कि इसका उत्तर अंतर्गत होजायगा अब पूर्वकथाका शेष वर्णन करताहूं कि इस पंचशिख महर्षि के समझाये हुये राजा जनक ने फिर प्रश्न किया कि देह के त्यागने के समय संसार और मोक्ष की कौनसी दशा होती है–भीष्मजी बोले कि इन्द्रियों का जो जीतना है उसको दम कहते हैं उसी की प्रशंसा सब वेदज्ञ और धर्मज्ञ ऋषि लोग करते हैं इसदम के साधन को सब लोग करें और विशेष करके ब्राह्मण तो अवश्यही करे जो इन्द्रियों का दमन नहीं करताहै उसकी क्रिया कोई सिद्ध नहीं होती, क्रिया की सत्यता और तपस्या यह दोनों दम ही में वर्त्तमान हैं दम ही तेज की वृद्धि करताहै दम ही अनेक पवित्रताओं को करताहै दम ही निष्पाप और निर्भय होकर ब्रह्मपद को प्राप्त करता है दम करनेवाला संसार में

भी जबतक रहैगा तबतक आनन्दसे रहैगा, जो क्रोधीजन होताहै वह तेजस्वी नहीं होता किन्तु उसीको अन्य जनों से सदैव भय उत्पन्न हुआ करता है, जो कच्चे मांसको खाता है उसका नाम क्रव्याद अर्थात् राक्षस होता है उससे जैसा भय होता उसी प्रकार मनुष्योंसेभी होना प्रसिद्ध है उन मनुष्यों के उपद्रवों के दूर करनेके निमित्त लोकेश ब्रह्माजीने राजा को पृथ्वीपति बनाया, आश्रमी धर्मोंसे जो२ फल होते हैं उससेभी अधिक दम करनेवालों को धर्म होताहै जिन पुरुषों के कि दम का उदय होता है उनके चिह्न मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं कि अदीनता, सन्तोष, आस्तिक बुद्धि, मृदुता, अरुष्टता, अहंकारका त्याग, गुरुपूजा, अनसूया, जीवों में विशेष दया, स्तुति निन्दासे रहित होना, असत्यवाद का त्यागना, निर्वैरता, रागादिक की वार्त्ताओं का त्यागना, सर्व कामनाओं का त्याग, शीलवान् सुव्रती, चुगली का त्यागना यह सब लक्षण दमवाले के हैं इसलोक में दमवाले का बड़ा सत्कार होताहै और देह के अन्तमें उत्तमस्वर्ग की प्राप्ति होती है सुंदर सरलस्वभाववान् होकर सब जीवों का हित विचारे किसीसे शत्रुता न करे सबसे मीठेवचनोंको कहे नतो किसीजीवको डराता है न कभी आप कहीं डरताहै उस दमवालेको सब जीव देखकर बड़े प्रेमको करते हैं सबलोग समीप आकर प्रणाम करते हैं और बहुत से सम्मुख होकर खड़े होते हैं, बहुत से अर्थ में हर्ष न करे और अनर्थ में शोच भी कभी न करे हे राजन्! वही दमी है, सब कोई तामसी बुद्धिमान् नहीं कहाता प्रशंसा और बड़ी क्षमा, सन्तोष, शान्ति, प्रियवाणी इन बातों को दुष्ट मनुष्य नहीं पाताहै, विना काल कोई नहीं मरता है और दमी पुरुष ही निर्भय होकर लोकमें विचरताहै ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! आपने हिंसा को निषेध किया परंतु वेद में यज्ञादिकों को हिंसायुक्त कहा यह संदेह और यज्ञदीक्षा, मंत्रदीक्षासे युक्त तीनों वर्ण द्विजन्मा जो इस हव्य और अन्न मांसादिकको इस मनोरथके निमित्त जो वेदके ब्राह्मण में लिखा है भोजन करते हैं इसका ब्योरा मुझे समझाइये-भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! वेद के विपरीत व्रत करनेवाले पुरुष भोजन के अयोग्य मांसादिक को भोजन करनेवाले कामचारी हैं अर्थात् इस लोक में पतित गिनेजाते हैं और वेदोक्त कर्म्मों में भोजन करनेवाले दीक्षा में लिखेहुये

फलके लोभी हैं अर्थात् वहभी स्वर्ग को पाकर फिर नीचे पतित होंगे युधिष्ठिर ने कहा कि हे महाराज ! संसारी मनुष्यों ने जो इस व्रतको तप कहा है सो तप है या और कुछ है—इस प्रकार से दूसरे के पीड़ा देनेवाले यज्ञादिकों की निन्दा करके देहको पीड़ा देनेवाले मोक्षकी इच्छावालों के विरुद्ध व्रतआदिके निन्दा के विषय में भीष्मजी ने उत्तर दिया कि संसारी महीने और पक्ष के व्रतादिक से जो तप मानते हैं वह तप आत्मविद्या का विघ्नरूप है उस तपको सत्पुरुष नहीं करते अब आत्मविद्या का उपकारी तप वर्णन करते हैं जीवहिंसावाले कर्म्मों का त्याग और प्राणियों की रक्षा यही उत्तम तप है, अब गृहस्थके तप को सुनो बहुकुटुम्बी भी सदैव व्रत करनेवाला और ब्रह्मचारी होता है, वेदपाठी ब्राह्मण सदैव मुनि है और देवतारूप भी है वह धर्म चाहनेवाला सदैव निद्रा जीतनेवाला मांसभोजन रहित पवित्रता से रहे, देवता अतिथियों का सत्कार करनेवाला सदैव अमृत भोजन करे और श्रद्धापूर्वक देव ब्राह्मणों का पूजक हो, युधिष्ठिर ने कहा कि कैसे व्रत करके ब्रह्मचारी होय और विघसान्न को भोजन करके कैसे अतिथियों को पूजे—भीष्मजी बोले कि जो सदैव प्रातःकाल सायंकाल भोजन करनेवाला है और मध्य में भोजन नहीं करता है वह सदैव उपवासी होता है ब्राह्मण ऋतुकाल में ही स्त्रीसंग करनेवाला ब्रह्मचारी होताहै, जो मनुष्य सदैव सत्यवक्ता और ज्ञानी होता है वह निरर्थक मांस को न खाय वह भी मांस का न खानेवाला ही समझा जाताहै सदैव दानी पवित्र दिवसमें न सोनेवाला जागरण करनेवाला समझा जाता है, जो मनुष्य अतिथि और बाल बच्चोंके भोजनके पीछे आप भोजन करताहै वह केवल अमृतका भोजन करनेवालाहै, जो ब्राह्मण विना अतिथि भोजन कराये भोजन नहीं करता है अर्थात् निराहार रहता है उस निराहारता से उसको स्वर्ग प्राप्त होता है, जो पुरुष देवता पितृ अतिथि और बालबच्चों से शेष बचे हुये अन्नादि को भोजन करता है वह भिक्षाशी कहा जाता है, ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक में उसको अनेक लोकों की प्राप्ति होती है और अप्सरादि के आनन्दों को देखता चारों ओर घूमता है, जो पुरुष देवता पितरों के साथ उपभोग करते हैं और अपने पुत्र पौत्रादि के साथ क्रीड़ा करते हैं उनको वह उत्तमगति प्राप्त होती है कि जिससे अधिक कोई गति नहीं है ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

उनचासवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! इस लोक में जो शुभ अशुभ कर्म कैसा ही हो वह फलीभूत होता है उनका कर्त्ता पुरुष है वा नहीं है यह संदेह आप मेरा निवृत्त कीजिये, भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! इस विषय में एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें कि प्रह्लाद और इन्द्रका प्रश्नोत्तर है, कि फलकी इच्छा रहित, निष्पाप, कुलीन, शास्त्रज्ञ, आलस्य विना, निरहंकारी, सतोगुणी, जितेन्द्रिय, धर्मानुरागी, निन्दा स्तुति रहित, सावधान, सब जड़ चैतन्यों के लय प्रलय करनेवाले परमात्मा के ज्ञाता अप्राप्ति में शोकरहित प्राप्ति में हर्षरहित सुवर्ण मृत्तिका को समान माननेवाले महापंडित सर्वज्ञ इत्यादि अनेक गुणयुक्त एकान्तमें विराजमान प्रह्लादजी की बुद्धि की परीक्षा करने की इच्छा करके इन्द्रने उनके निकट जाकर उनसे यह कहा कि कोई पुरुष मनुष्यों में जिन गुणों के द्वारा सबका प्यारा होता है वह सब गुण तुममें वर्त्तमान देखता हूं और तेरी बुद्धि बालकों के समान विदित होती है यहां तुम आत्मा को जान कर किस साधन को श्रेष्ठतर मानते हो, हे प्रह्लाद ! पाशों से बँधा हुआ, राज्य से उतारा हुआ, शत्रुओं के स्वाधीन, लक्ष्मीरहित, शोच के योग्य, स्थान पर शोच नहीं करते हो हे दैत्यपुत्र, प्रह्लाद ! तुम ज्ञानलाभ या धैर्यता से अपने दुःख को देखते भी बुद्धि में सावधान हो यह इन्द्र के वचन सुनकर उस सर्वज्ञ महा पंडित प्रह्लाद ने स्पष्टवाणी से यह कहा कि यहां सांख्य के मत से कर्त्तापने को अमुख्य करते हैं, जो पुरुष जीवों की प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जानता है उसको अज्ञानता से बंधन होताहै और जो जीवात्मा का देखनेवाला है उसको कभी बंधन नहीं होता, सब भाव, अभाव, स्वभावही से जारी होते हैं और इसी प्रकार प्रीति भी स्वभाव के ही द्वारा होती है इसकारण इसमें पुरुषार्थ नहीं है अर्थात् रथ आदि के समान जड़ प्रकृति में भोगमोक्षरूप सामर्थ्य नहीं है तात्पर्य यहहै कि जो कर्त्ता है वही भोक्ताहै आत्मा में भोक्तापन जानना केवल भ्रान्तिरूपहै, चुम्बक पत्थरके समान उदासीन पुरुषकी सत्तामात्र से संसार की प्रवृत्तिहै या नहीं इस शंका का समाधान करते हैं कि भोगमोक्षरूपी पुरुषार्थ के न होने से कोई कर्त्ता नहीं है इस देह में अपने आप कर्म न करनेवाले उस आत्मा का कभी अविद्या से अभिमान न होवे कि मैं कर्त्ता हूं जो पुरुष शुभ अशुभ कर्मों का कर्त्ता आत्मा को मानता है उसकी बुद्धि दोषयुक्त है तत्त्वों की जाननेवाली

नहीं है इससे हे युधिष्ठिर! जो पुरुष निश्चय करके अपने कल्याण में कर्त्तारूप होता है उसके आरंभ कर्म सिद्ध होते हैं और कभी पराजय नहीं होती, उपाय करनेवाले पुरुषों के अनिष्टों की वर्त्तमानता और इस वस्तुका वर्त्तमान न होना दृष्टिपड़ता है इसीकारण पुरुषार्थ नहीं है, हम कितने ही पुरुषों के अनिष्टों का प्राप्त होना और अभीष्टों का वियोग विना उपाय के देखते हैं उनका प्राप्त होना स्वभाव से होता है, कितने ही बड़े बुद्धिमान् लोग निर्बुद्धि कुरूप मनुष्यों से धन की प्राप्ति को चाहते हैं और आज्ञाकारी बने रहते हैं, जब कि सब शुभाशुभ गुण स्वभाव से ही होते हैं तब वहां कौन किसके अभिमानका कारण है अर्थात् वहां यह अभिमान नहीं है कि मैं सुखी हूं अथवा कर्त्ता भोक्ता हूं मोक्षरूप आत्मज्ञान स्वभाव ही से होता है अथार्त् बन्धन के निर्मूल होने से उसकी औषधरूप मुक्ति भी अज्ञानसे ही कल्पना की जाती है यह मेरा मत दृढ़ है उसके विपरीत मेरी बुद्धि नहीं है बादल के समान ईश और काल के स्थानपर नियत प्रकृति साधारण कारण है और बीज के समान कर्म असाधारण है इस शंका को कहते हैं, इस लोक में शुभाशुभ फल का योग और सब विषयों को कर्मों से मिलेहुये मानते हैं इसको मैं कहताहूं तुम सुनो जैसे काक ओदन भक्षण करना जानता है इसीप्रकार सब कर्म स्वभाव के ही लक्षण हैं अर्थात् स्वभाव ही उनका बतलाने वाला है जो पुरुष विकाररूप धर्मों को ही जानता है और परा प्रकृति को नहीं जानता है उसकी अज्ञानता से बन्धन होता है और परा प्रकृति के साक्षात्कार करनेवाले पुरुषको बन्धन नहीं होता है, ब्रह्मज्ञानी को बन्धन क्यों नहीं होता है इसके विषय को कहते हैं—यहां स्वभाव से उत्पन्न होनेवाले निश्चय के जाननेवाले ज्ञानी का अहंकार क्या करेगा अर्थात् कर्त्तृत्वभाव को अपने में सम्बन्ध देना अहंकारादि का कारण है उसके न होने से अहंकारादि भी नष्टरूप हैं और हे इन्द्र! मैं सब धर्म बुद्धि को और जीवों के नाश को भी जानता हूं इस हेतु से शोच नहीं करता हूं यह निश्चय करके नाशवान् है, ममता, अहंकार और इच्छा से पृथक् वासनारहित आत्मरूप में नियत देहाभिमान न होने से आत्मरूप से मैं अविनाशी जीवों के उत्पत्ति और लय में परब्रह्म को देखता हूं, हे इन्द्र! मुझ जितेन्द्रिय ज्ञानी इच्छा लोभ से रहित अविनाशी ब्रह्मदर्शी का उपाय आदि वर्त्तमान नहीं है प्रकृति के विकार में रागद्वेषरहित हूं और अपने उस शत्रुको भी नहीं देखता हूं जो अब मुझको ममता में प्रवृत्त करे और जानने के योग्य विज्ञान

और ज्ञान में मेरा कर्म वर्त्तमान नहीं है अर्थात् मैं सिद्ध दशा में नियत हूं इन्द्रने कहा कि हे प्रह्लाद ! जिसप्रकारसे यह ज्ञान होता है और शान्ति को प्राप्त होता है उस युक्तिको मुझसे समझाकर कहो, प्रह्लाद बोले कि हे इन्द्र ! जो पुरुष विस्मरणतारहित शुद्धभाव और बुद्धिकी नम्रता से वृद्धोंकी सेवा करता है वह मोक्षको पाता है जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं सब स्वभाव ही से हैं और स्वभाव से ही ज्ञान वा शान्तता को पाता है यह प्रह्लाद के वचनों को सुन कर इन्द्र ने बड़ा आश्चर्य्य किया और प्रसन्नता से प्रीतियुक्त होकर उसकी प्रशंसा की और उस दैत्येन्द्र का पूजन करके अपने लोक को गये ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे इन्द्रप्रह्लादसंवादे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पचासवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जिस बुद्धि से लक्ष्मीरहित होकर कालदण्ड से पीड़ित राजालोग पृथ्वी में घूमते हैं उसका वर्णन आप मुझसे कहिये, भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर भी एक पुरातन इतिहास कहता हूं जिसमें इन्द्र और विरोचन के पुत्र राजा बलि का संवाद है, इन्द्र ने सब असुरों समेत राजा बलि को विजय करके ब्रह्माजी से हाथ जोड़कर पूछा कि हे ब्रह्मन् ! दान करते हुये जिसका धन कभी कम न हुआ उस बलि को मैं नहीं पाता हूं उसको मुझसे कहिये इस बलि ने वायु, वरुण, सूर्य्य, चन्द्रमा और अग्निरूप हो सब जीवों को तपाया और जलरूप होकर गुप्त हो सब दिशाओंको प्रकाशित किया और उसी ने समय के अनुसार जल की वर्षा भी की उस बलि का आप वर्णन कीजिये वह मेरे हाथ नहीं आता, ब्रह्माजी बोले कि हे इन्द्र ! यह तेरी बात अच्छी नहीं है जो तू इसप्रकार से पूछता है और पूछीहुई बात को मिथ्या नहीं कहना चाहिये इस हेतु से बलि का वृत्तान्त तुझसे कहता हूं कि वह जीवोत्तम बलि किसी उजड़े फूटे स्थान में ऊंट, गधे, बैल अथवा घोड़ों में होगा, इन्द्र बोले कि हे ब्रह्मन् ! जो मैं उस एकान्तस्थान में बलि से मिलूं तो उसको मारना योग्य है या नहीं यह आप मुझको उपदेश दीजिये ब्रह्माजी बोले हे इन्द्र ! बलि को कभी न मारना क्योंकि वह मारने के योग्य नहीं है, तुम उससे इच्छा के अनुसार कारण पूछने के योग्य हो, भीष्मजी बोले कि इस प्रकार ब्रह्माजी के समझाने से शोभायुक्त इन्द्र ऐरावत हाथीपर सवार होकर पृथ्वीपर घूमनेलगा तदनन्तर उस इन्द्र ने गधे की सूरत में किसी उजड़े हुये मकान में बैठा हुआ

राजा बलि को देखा और जैसा कि ब्रह्माजी ने कहा था उसीप्रकार से पूछा कि हे दैत्य ! तुम गधे की योनि में होकर तृण खानेवाले हुये यह तेरी योनि नीच है इसमें तू शोचता है या नहीं बड़े कष्टकी बात है कि मैं तुमको शत्रुओं के आधीन तेज, बल, लक्ष्मी से रहित इष्टमित्रों से जुदा गुप्तरूप में देखता हूं किसी समय तुम हज़ारों सवारियों के साथ अपने जाति कुटुम्ब इष्टमित्रों से व्याप्त सबलोकों को तपाते हुये हमलोगों को तुच्छ समझते चलते थे और बड़े२ मुखिया दैत्य तेरे आज्ञावर्त्ती थे तेरे राज्य में पृथ्वी विना बोये जोते भी अन्न को उत्पन्न करती थी और अब इस दुःख में हो इसको शोचते हो या नहीं जब बहुत से भोगों को भोगकर तुम समुद्रके पूर्वी तटपर नियत हुये तब तेरा चित्त कैसा था कि हज़ारों देवांगना तेरे सम्मुख खड़ी होकर नृत्य करती थीं और हज़ारों वर्षतक प्रतिदिन सुवर्ण और कमलों के अनेक आभूषण पहरे नाचा करती थीं हे दानवेश्वर ! अब तेरा चित्त कैसा है उससमय तेरा रत्न जटित छत्र भी अद्वितीय शोभायमान था तेरे यज्ञस्तम्भ सुवर्ण के थे और हज़ारों गन्धर्व सप्त स्वरों से गान को करते थे उस यज्ञ में हज़ारों गोदान ब्राह्मणों को देता था उस समय तेरी क्या बुद्धि थी जब दण्ड के फेंकने की बुद्धि से उतने ही विस्तार में तुमने सम्पूर्ण पृथ्वी को भ्रमण किया तब तेरे हृदय में क्या था हे असुरेन्द्र ! मैं तेरे भृंगारपात्र छत्र, चमर, व्यजन और ब्रह्माजी की दी हुई माला को नहीं देखता हूं राजा बलिने कहा कि हे इन्द्र ! तुम मेरे भृंगारपात्र छत्र, चमर, व्यजन को और ब्रह्माजी की दी हुई माला को भी नहीं देखते हो तुम मूल प्रकृति में अन्तर्द्धान होकर मेरे रत्नादिकों को पूछते हो जब मेरा उदयकाल आवेगा तब उन सब वस्तुओं को देखोगे यह तेरा पूछना व्यर्थ है और कुलके योग्य नहीं है कि तुम ऐश्वर्य्यवान् होकर मुझ भ्रष्ट राज्यलक्ष्मीवाले को लज्जायुक्त किया चाहते हो ज्ञानी ज्ञान से तृप्त और शान्त बुद्धिवाले पुरुष दुःखों में नहीं शोचते हैं और न प्रतापके उदय में प्रसन्न होते हैं हे इन्द्र ! तुम प्राकृत बुद्धिसे अपनी प्रशंसा करते हो जब मेरे समान होनहार में फँसोगे तब इसप्रकार नहीं कहोगे ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इक्यावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर ! इस बात को सुनकर भी इन्द्रने हँसते हुये ही फिर उस सर्प के समान श्वास लेनेवाले राजा बलि से यह वचन

कहा कि जो तुम हज़ारों सवारियों समेत अपने सजातियों से संयुक्त सब लोकों को तपाते और हम को तुच्छ समझते जाते थे अब जातिवालोंसे और मित्रों से त्यागे हुये अपनी इस कठिन दशा को देखकर शोचते हो वा नहीं और पहिले समय में लोकों को अपने आधीन करके अतिप्रीतियुक्त हो इस बाहर की विपरीत दशा को देखकर शोचते हो या नहीं राजा बलि बोले कि हे इन्द्र ! यहां धर्म के रूपान्तरवाले समय से इस विपरीतता को देखकर शोच नहीं करता हूं क्योंकि निश्चय करके यह सब नाशवान् है हे देवराज ! इसीकारण मैं शोच नहीं करता हूं और यह मेरा गधेका रूप पाप से नहीं है किन्तु समयकी लौटपौट से है जीवन और देह जन्म के साथ ही उत्पन्न होते हैं और दोनों साथ ही साथ वृद्धि पाते हैं मैं इस गधे के भाव को पाकर देह के धर्म्मों से रहित नहीं हूं जब कि मुझे इतना ज्ञान है तो मुझ विज्ञानी को पीड़ा कैसे होसक्ती है, जो मरण है वह जीवों की निष्ठा है आत्मा की नहीं है जैसे कि समुद्र नदियों की निष्ठा है अर्थात् परागति है हे इन्द्र ! उस परागति के जाननेवाले मनुष्य मोह को नहीं पाते हैं जो पुरुष रजोगुण और मोह में फँसे हुये इसको इस प्रकारसे नहीं जानते हैं और जिनकी बुद्धि नष्ट होजाती है वह दुःख को पाकर पीड़ित होते हैं पुरुष बुद्धि के लाभसे सब पापों को दूर करता है और पापसे पृथक् बुद्धिको पाता है और बुद्धिमान् शुद्ध होता है अर्थात् मोह से उत्पन्न होनेवाली स्याहीको त्याग करता है जो उस बुद्धि से रजोगुण तमोगुण में प्रवृत्त होते हैं वह बारंवार जन्म धारण करते हैं और उन रजोगुण आदि से चलायमान कृपण होकर वह लोग दुःखों को पाते हैं मैं अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, जीवन, मरण के फल को बुरा नहीं कहता हूं और न उसकी इच्छा करता हूं निर्जीव देह को मारता है कुछ जीवात्मा को नहीं मारता जो कोई मनुष्य मारता है अर्थात् कहता है कि मैं देहका दूसरा कर्त्ता हूं वह विनाशवान् और जड़ है वह दोनों अर्थात् एक बाधक दूसरा बाध्य नहीं जानते हैं अर्थात् अज्ञानी हैं हे इन्द्र ! जो कोई मारपीट से विजय करके अभिमान करता है वह अवर्ती ही होता है अर्थात् मुख्य कर्त्ता नहीं है क्योंकि उसको कर्त्ता बुद्धि ही बनाती है तात्पर्य्य यह है कि कर्तृत्वता बुद्धि से ही सम्बन्ध रखती है आत्मा से नहीं रखती है जगत् की कर्तृत्वता पुरुष में नहीं है इसको सिद्ध कहते हैं अर्थात् लोककी उत्पत्ति और नाशको कौन करता है कि मायासे उत्पन्न होनेवाले चित्तने उसकी उत्पत्ति और नाशको किया और उस

चित्तका कर्त्ता आत्मा नहीं है कोई और ही है पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पांचों तत्त्व ही स्थूल सूक्ष्मशरीरके उत्पत्ति स्थान हैं उसमें कौन विलाप करना है जो बड़ा विद्वान्, छोटा विद्वान्, सबल, अबल, सुरूप, कुरूप, भाग्य, अभाग्य इन सबको गम्भीर काल अपने तेज से जैसे स्वाधीन करता है उस काल के स्वाधीन वर्तमान होने पर मुझ विज्ञानी को क्या पीड़ा है अर्थात् वह सब गुण चित्त और देह के हैं आत्मा से कुछ सम्बन्ध नहीं है तो पीड़ा क्या होसक्ती है, कालात्मा ईश्वर के नाश किये हुये को अग्नि आदि से फिर भस्म करता है और मृतक को पीछे मारता है प्रथम नाश पाया हुआ ही नाशित होता है और प्राप्त होनेके योग्य पदार्थको मनुष्य पाता है इस विधाता और पुण्य पापसे जुदे कालका कोई देश नहीं है तो पार कहां से होसक्ता है और बार भी दिखाई नहीं देता है यह सब मैं विचारता हुआ भी उसके अन्तको नहीं देखता हूं हे शचीपते ! जो काल मेरे देखते हुये जीवों का नाशन करे ऐसी दशा में मुझको प्रसन्नता अहंकार और क्रोध हो सक्ता है तुम इस उजड़े एकान्त स्थान में तृणभक्षी मुझ गर्दभरूपको मिलकर और जानकर निन्दा करते हो मैं इच्छा करता हुआ अपने अनेक प्रकारके भयकारी रूपों को बदलूंगा तुम उन मेरे रूपों को देखकर भाग जाओगे, काल सबको अपने आधीन करता है और कालही नाश करता है उसी से सब उत्पन्न हुआ है इससे हे इन्द्र ! तुम अभिमान मत करो हे इन्द्र! पूर्वसमय में मेरे क्रोध होनेपर सब जगत् पीड़ित होता था मैं इस लोक के सनातन धर्म्मों को भी जानता हूं अर्थात् वृद्धि और क्षयरूप को जानता हूं उसको भी इसीप्रकार से विचारो, बुद्धि से आश्चर्य्य में मत पड़ो ऐश्वर्य्य और उसका उदय लक्ष्मी अपने आधीन में नहीं है जैसे कि पूर्वसमय में तेरा चित्त बालकों के समान था वैसा अब भी है यह अच्छीतरह से विचार करो और नैष्ठिकी बुद्धि को प्राप्त करो, देवता, मनुष्य, पितर, सर्प, गन्धर्व, राक्षस यह सब मेरे स्वाधीन थे इन सब बातों को तुम भी जानते हो उस दशा से इस दशा को भी नमस्कार है जिसमें विरोचन का पुत्र राजा बलि है इसप्रकार बुद्धि और मत्सरता से मोहित जीव मेरे आज्ञावर्ती थे हे शचीपते ! मैं उस बात को और अपनी नष्टता को नहीं शोचता हूं इसप्रकार की मेरी निश्चित बुद्धि है मैं ईश्वर की आधीनता में नियत रहता हूं वह महाकुलीन दर्शन के योग्य प्रतापवान् राजा मंत्रियों के साथ दुःख से जीवता तुमको दृष्टि पड़ता है यह ऐसा ही होनहार था सो हुआ इसी प्रकार

अकुलीन अज्ञान नष्ट उत्पत्तिवाले राजमन्त्रियों समेत सुख से जीवता दृष्टि पड़ता है उसकी वही होतव्यता है हे इन्द्र! कल्याणी स्वरूपा स्त्री अभागिनी दृष्टि आती है और दूसरी कुलक्षणी कुरूपा स्त्री भाग्यवाली दृष्टि आती है हे वज्रधारिन्! जो तुमने इस दशाको प्राप्त होकर यह नहीं किया तो हम भी ऐसी दशावाले हैं यह हमने भी नहीं किया और यह धनाढ्यता अथवा दरिद्रता मेरा कर्म्म नहीं है वह काल के क्रम से किया हुआ होता है इसीप्रकार तुझ श्रीमान् यशस्वी तेजस्वी वज्रधारी ऊपर गर्जना करनेवाले आनन्दपूर्वक विराजमान को भी मैं एक मुष्टिका से गिरासक्ता हूं जो इस प्रकार गधेका रूप न होऊं और काल मुझको धर्षण न करके नियत न हो तो सब काम करसक्ता हूं यह हमारे पराक्रमका समय नहीं है यह शांतिका समय प्राप्त है काल सबको नियत करता है और पकाता है जो दानव असुरोंसे पूजित मुझको काल प्राप्त हुआ उस दशामें किस गर्जनेवाले और दूसरेके तपानेवाले पुरुषको प्राप्त नहीं होगा, हे देवराज! मुझ अकेले ने सब द्वादश सूर्य्यों के तेजों को धारण किया और मैं ही बादलरूप से जल को भी धारण करता था और वर्षाता था और मैं ही सूर्य्यरूप होकर तीनों लोकोंको संतप्त करके प्रकाशित करता था और संसारकी श्रेष्ठ प्रकारसे रक्षा को करता था और दण्ड देता और लेता था और लोकों में प्रभु ईश्वर होकर अपराधियों को पकड़ता और बुरे मार्गों से बचाता था हे देवराज! अब वह मेरा ऐश्वर्य्य जातारहा और मुझ काल की सेना से घिरे हुये का सब ऐश्वर्य्य दृष्टि नहीं पड़ता है हे शचीपते, इन्द्र! मैं कर्त्ता नहीं हूं और न तुम हो और न कोई दूसरा है सब लोक काल के क्रम से और दैवइच्छा से भोगेजाते हैं आयुर्वेद जाननेवाले मनुष्यों ने उस कालपुरुष को ऐसा कहा है कि वह काल महीना पक्ष आदि से विदित होता है और उसका आश्रय माया सबलब्रह्म है ऋतु द्वार हैं अर्थात् उसकी प्राप्ति के साधन हैं वायु मुख है अर्थात् प्रथम प्राप्ति के योग्य है अथवा वायु के स्थान में वर्षशब्द हो उसका यह अर्थ है कि वर्षा करनेवाला धर्म्म मेघनाम ध्यान उसका मुख है अर्थात् निर्विषय ध्यान से मिलने के योग्य है कितने ही जीवन्मुक्त मनुष्यों ने बुद्धि से न कि शास्त्रबल से इस सर्वकाल नाम ब्रह्म को ध्यान के योग्य कहा है अर्थात् ध्यान में पूर्ण ब्रह्म का आना असंभव है क्योंकि वह अद्वैतता में गिना जाता है इसी से इस ध्यान के पांच विषय अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोशों

को पांच प्रकार से वर्णन करूंगा अर्थात् वेद में प्राप्त करूंगा जैसे कि कहावत है कि यह पुरुष अन्नरसरूप पक्षी है उसका यह शिर है यह दाहिना और बायां पक्ष है यह आत्मा है यह पुच्छ है वह जाननेके योग्य है परन्तु वह ब्रह्म नहीं है क्योंकि अनात्मा है आत्मा ब्रह्म है और वेद में जो कहा है कि यह सब आत्मा है इसको दोष लगने से हम कहते हैं कि आत्मा में सब प्रकाश इस रीति का है जैसे कि सीपी में चांदी का आभास जैसे कि स्फटिक में पद्मराग इन्द्र नीलमणि आदि दृष्टि पड़ते हैं फिर ध्यान करते २ अन्त में केवल स्फटिक ही शेष रहजाता है उसी प्रकार बुद्धि और चैतन्य में ईशसूत्र विराट् का अध्यास होता है वहां देह का अभिमान दूर होनेपर मैं विराट् हूं यह अध्यास शेष रहजाता है उसकी निवृत्ति होनेपर मैं सूत्रात्मा हूं यह अध्यास होजाता है उसके भी निवृत्त होनेपर मैं ईशहूं यह अध्यास नियत होता है उसके भी निवृत्त होनेपर चित्त और वाणीके विषय से रहित चिन्मात्र शक्ति के समान शेष रहता है वह तर्क से प्राप्त न होनेवाला शास्त्र से प्राप्त होकर भी अगम्य ब्रह्म महासमुद्र के समान आदि अन्त और वारापार न रखनेवाला एकरस है और जैसा कि शंख और चांदी का श्वेतरूप होता है वैसारूप धारण किये है और जन्म मृत्यु से पृथक् भी संसाररूप से नाशवान् और जीवरूप से अविनाशी है बुद्धि आदि में अपने प्रतिबिम्ब को प्रवेश करके आप चिह्नरहित भी है जो तत्त्वज्ञ मनुष्य हैं वह उसको उपाधि धर्म्म से स्पर्शरहित मानते हैं वह षडैश्वर्य्यवान् ईश्वर तत्त्वों की विपरीत सूरत का मिथ्यापन और आश्रय अथवा दुःखादि दुर्भाग्यता को अपने में अविद्या के द्वारा मानता है यह अविद्या से प्रकट होनेवाला दुःखादि आत्मा को प्राप्त होने के लायक नहीं है क्योंकि शुद्ध ब्रह्म से फिर दूसरा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र प्रकट नहीं होता है सब जीवों की गति को पाकर कहां जायगा वह भागनेवाले से त्याग होने के योग्य नहीं है और निश्चल होता भी उससे पृथक् नहीं होता है अर्थात् सदैव प्राप्त होने से चित्तवृत्तिमात्र सब इन्द्रियां पांच प्रकारसे उसको नहीं देखती हैं कितने ही पुरुषों ने इसको अग्निरूप कहा और कितनों ही ने प्रजापति और कितने ही उस कालपुरुष को ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण, पूर्व और परदिन और मध्याह्न मुहूर्त्त भी कहते हैं एक होनेपर भी उस काल को बहुत प्रकार का कहते हैं यह सब बातें जिसके आधीन हैं उसी को मुख्य जानो हे शचीपते ! बल पराक्रम में पूर्ण जैसे तुम हो वैसे हज़ारों इन्द्र होचुके यह महाबली कालरूप

समय आनेपर तुझ सरीके बल में मतवाले देवराज को भी आधीन करेगा वही सदैव इस सब दृश्यादृश्य को आधीन करता है, इसकारण हे इन्द्र! तुम सावधान चित्त हो वह कालपुरुष हम से तुम से पुरुषों से और पूर्व पूर्वजों से हटाने के योग्य नहीं है न होगा इस अनुपम राजलक्ष्मी को पाकर जो कोई जानता है कि यह मेरे पासही रहैगी वह मिथ्या है क्योंकि इसका नाम चंचला है यह एकही स्थानपर कभी नहीं रहती तुझसे भी महाउत्तम हज़ारों इन्द्रों के पास यह राजलक्ष्मी नियत हुई और सबको त्याग कर मुझको भी प्राप्त हुई फिर यह तुमको भी उसी प्रकार का जानकर कभी दूसरे के पास जायगी ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

बावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसके पीछे महात्मा बलि की देह से स्वरूप युक्त प्रकाशमान लक्ष्मी को निकलते हुये इन्द्र ने देखा उस तेज से प्रकाशमान लक्ष्मी को देखकर बड़े आश्चर्य युक्त होकर प्रसन्ननेत्र हो देवराज इन्द्र ने बलि से पूछा कि हे बले! यह अपने तेज से प्रकाशमान चूड़ा केयूर धारणकिये शोभायमान स्त्री जो तेरी देह से निकली और वर्त्तमान है वह कौन है बलि ने कहा कि हे इन्द्र! मैं इस आसुरी वा दैवी अथवा मानुषी को नहीं जानता हूं तुम इससे पूछो या न पूछो या जो इच्छा हो सो करो इन्द्र बोले कि हे पवित्रालय, शोभायमान, चूड़ाधारिणि, स्त्री! तुम कौन हो मुझ अज्ञानी से अपना वर्णन करो हे तेज से प्रकाशित! तुम इस उत्तम दैत्यको त्याग करके मेरे पास वर्त्तमान हो सो कौन हो हे सुभ्रु! तुम अपना वर्णन मुझसे करो लक्ष्मी बोली कि मुझ को न विरोचन जानता था और न यह विरोचन का पुत्र बलि मुझको जानता है तुम मुझ को भूति लक्ष्मी श्री जानो हे इन्द्र! न तो तुम मुझको जानते हो न सब देवता जानते हैं इन्द्रने कहा हे दुःसह! इस बलि के पास बहुतकाल से निवास करनेवाली सती तुम मेरे कारण या इस बलि के कारण से दैत्यराज को त्यागती हो यह बात क्या है लक्ष्मी बोली हे इन्द्र! मुझको किसी प्रकार से भी धाता धारण नहीं करता है और विधाता धारण करता है इसको काल ने प्राप्त किया है तुम इसका अपमान मत करो इन्द्र बोले हे पवित्रालय, देवि! तुमने राजा बलि को किस कारण और किस रीति से त्याग किया और मुझको क्यों नहीं त्याग किया, लक्ष्मी बोली कि मैं सत्यता, दान, व्रत, तप, पराक्रम

और धर्म्म में वर्त्तमान हूं इन गुणों को सुनकर राजा बलि ने मुख फेरलिया इस ने पहिले समय में ब्राह्मणों का भक्त सत्यवादी जितेन्द्रिय होकर फिर ब्राह्मणों की निन्दा करी और उच्छिष्टभरे मुख से घृत का स्पर्श किया और सदैव यज्ञ करनेवाला होकर काल से पीड़ित अज्ञान बुद्धि ने संसार के लोगों से कहा कि मुझ को भी पूजन करो इस कारण से मैं इस से पृथक् होकर तेरे पास निवास करती हूं सावधान मनुष्य से मैं तपस्या और बल के द्वारा धारण करने के योग्य हूं इन्द्र बोले कि हे पद्मालय, देवि ! देवता मनुष्य और सब जीवों में कोई पुरुष भी है जो अकेला आप के धारण करने को समर्थ हो लक्ष्मी बोली कि कोई देवता, गंधर्व, असुर, राक्षस ऐसा नहीं है जो अकेला मुझे धारण करने को समर्थ होय, इन्द्र ने कहा हे देवि ! तुम जिसप्रकार सदैव मेरे पास नियत रहो उस रीति को मुझ से वर्णन कीजिये मैं तेरे इस सत्य वचन को पूरा करूंगा लक्ष्मी ने कहा कि हे इन्द्र ! मैं जिस प्रकार से तेरे पास सदैव रहूंगी उसको मुझ से सुनो कि तुम वेदोक्त बुद्धि से मेरे चार भाग करो, इन्द्र ने कहा कि मैं अपने बल पराक्रम के अनुसार तुम को धारण करूंगा हे लक्ष्मीजी ! आपके सम्मुख मैं कभी बे मर्यादा न होऊंगा जीवधारियों में मनुष्यों का पोषण करने वाली आधाररूप पृथ्वी है वह तेरे चरण को सहैगी क्योंकि वह समर्थ है यह मेरा मत है, लक्ष्मी बोली कि मैंने वही चरण रक्खा है जो पृथ्वी पर नियत है हे इन्द्र ! इसीकारण से मेरे दूसरे चरणको अच्छेप्रकार से नियत करो, इन्द्र बोले हे चारों ओर घूमनेवाली ! मनुष्यों में जारी रहनेवाले जल हैं वह भी तेरे चरणों को सहैं क्योंकि जल भी क्षमा करने को बहुत योग्य है लक्ष्मी ने कहा कि मैंने वही चरण रक्खा है जो कि जल में नियत है अब तू मेरे तीसरे चरणको अच्छी रीति से रख, इन्द्र ने कहा कि जिस में वेद, यज्ञ और देवता वर्त्तमान हैं वह अग्नि तेरे तीसरे चरण को सुन्दर रीति से धारण करैगी, लक्ष्मी बोली हे इन्द्र ! मैंने वही चरण रक्खा है जो कि अग्नि में नियत है अब मेरे चौथे चरण को अच्छा नियत करो, इन्द्र बोले कि मनुष्यों में जो निश्चय करके संत, वेद, ब्राह्मणों के भक्त और सत्यवक्ता हैं वह तेरे चौथे चरण को धारण करें क्योंकि संत बड़े सहनशील होते हैं पृथ्वी ने कहा कि मैंने वही चरण रक्खा जो संतों में नियत है। धन, तीर्थादि में पुण्य, यज्ञादिकर्म्म, विद्या, यही चारों लक्ष्मी के चरण हैं जो कि पृथ्वी, जल, अग्नि और संतों में वर्त्तमान हैं। इन्द्र बोले कि निश्चय

करके इसलोक में जीवों के मध्य जो पुरुष मुझे धारण किये हुये तुझ सती को दुःख देगा वह मारने के योग्यहै यह सुनकर लक्ष्मी से हीन दैत्यों के राजा बलि ने कहा कि जो मेरुनाम प्रकाशित पर्वत स्वर्ग में है उसके पीछे ब्रह्मलोक है औरपूर्वादि चारों दिशाओं में इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम इन चारों देवताओंकीपुरी हैं वह चारोंपुरी मेरु के चारोंओर घूमनेवाले सूर्य्य की किरणों से प्रकाशमान हैं जिस पुरीका नाश वर्त्तमान होता है वहां सूर्य्य प्रकाश नहीं करते हैं विश्वासियों को सूर्य्य का दृष्ट आना उदय और दृष्ट न आना अस्त मालूम होता है जब पूर्व में उदय होता है तब पश्चिमदेशनिवासियोंको अस्त मालूम और जब उत्तरवासियों को मध्याह्न के समय उदय होना मालूम होता है तब दाक्षिणात्य लोगों के यहां अर्द्धरात्रि होती है इसीप्रकार दक्षिण आदि में भी जानना चाहिये ऐसी दशा में जब पूर्व में प्रकाश होताहै तब मेरु की प्रदक्षिणा बराबर होने से सूर्य्य दूसरी दिशा में भी प्रकाश करता है इस हेतुसे जबतक पूर्व में प्रकाश करता है तबतक दक्षिण में इस कहने से जितने काल में पूर्व की नष्टता होगी उससे दूने काल में दक्षिण की होगी ब्रह्माजी का जो दिन है उसके सोलहभाग किये जायँ उनमें के पहिले भाग में पूर्व की हानि, दो भाग में दक्षिण की, चार भाग में पश्चिम की, आठ भाग में उत्तर की, तब देखनेवालों के वर्त्तमान न होनेपर सूर्य्य का उदय अस्त जो कि दर्शनीय और अदर्शनीय रूप है नहीं होता है किंतु मध्याह्नही रहता है अर्थात् बराबर ब्रह्महीलोक को प्रकाश करता है क्योंकि उससमय दूसरी पुरी वर्त्तमानता नहीं होती, उसीको वर्णन करते हैं कि जब एकस्थान अर्थात् ब्रह्मलोक में वर्त्तमान सूर्य्य मेरु पहाड़ की पीठ से नीचे की ओर वर्त्तमान लोकोंको प्रकाश करेगा तब ब्रह्माजी के मध्याह्न समय के पीछे वैवस्वतमनु का अधिकार भ्रष्ट होने से सावर्णिनाम मनु के होनेपर राजा बलिही इन्द्र होगा अथवा वैवस्वतमन्वन्तर के आठभाग करके उनमें ऊपरके क्रम के अनुसार अष्टपुरियों के भ्रष्ट होनेपर दूसरे मन्वन्तरमें राजा बलि इन्द्रहोगा उसीप्रकार जब मध्याह्नके समय सूर्य्य प्रकाशमान होगा अर्थात् चारों पुरी नष्ट होजायँगी फिर देवता और असुरों का युद्ध होनेवाला है तब मैं तुम को विजय करूंगा, इन्द्र बोले कि, हे बले ! मैं ब्रह्माजी से आज्ञा दिया हूं इससे मैं आप के मारने के योग्य नहीं हूं इसीकारण वज्र को तेरे मस्तक पर नहीं मारता हूं हे दैत्येन्द्र, महाअसुर ! तुम इच्छानुसारजाओ तेरा कल्याण हो मध्य

में वर्त्तमान सूर्य कभी नहीं तपावेगा अर्थात् चारोंपुरी की नष्टता कभी न होगी प्रथमही ब्रह्माजी की ओर से इससूर्य का नियम नियत किया गया है यह सूर्य सत्यकर्म से संसार को तपाता हुआ बराबर चलता है उसका स्थान छःमहीने तक उत्तर और छःमहीने दक्षिण को होता है सूर्य जिस मार्ग से शीत और उष्णता को उत्पन्न करता हुआ लोकों में घूमता है उसको क्रांतिवृत्त कहते हैं भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! इन्द्र से इसप्रकार कहाहुआ राजाबलि दक्षिणदिशाको गया और इन्द्र उत्तरदिशा को चलकर राजाबलि के इस साहंकारी वचन को सुनकर आकाशको चढ़ा ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

तिरपनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! इस निरहंकारता के विषय में और एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें इन्द्र और नमुचि का संवाद है किसी समय इन्द्र ने लक्ष्मी से रहित समुद्र की समान स्थिरता में युक्त जीवों के उत्पत्ति लय के जाननेवाले नमुचि से कहा कि हे नमुचि ! पाशों से बँधे स्थान से भ्रष्ट शत्रुओं के स्वाधीन वर्त्तमान लक्ष्मीसे रहित तुम शोचते हो या नहीं शोचते हो, नमुचि ने कहा कि दूर न होनेवाले शोच से देह को पीड़ा होती है उससे शत्रु बहुत प्रसन्न होते हैं शोक में किसी की सहायता नहीं है, इसकारण हे इन्द्र! मैं शोच नहीं करता हूं क्योंकि निश्चय करके यह सब नाशवान् हैं शोकसे स्वरूप की नष्टता होती है और शोभा की हानि होती है और शोकही से आयु वा धर्म नष्ट होते हैं इस अनिच्छा से उत्पन्न होनेवाले दुःखको त्यागकरके ज्ञानी मनुष्य को हृदय में वर्त्तमान आत्मा और अपने कल्याण को चित्त से ध्यान करना योग्यहै, पुरुष जब कल्याणमें चित्तको करताहै तब उसके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं एकही स्वामी है दूसरा कोई नहीं है वह स्वामी गर्भमें शयन करनेवाले पुरुषको उपदेश करताहै उसीसे कर्मों में प्रवृत्त पुरुष होता है जैसे कि ढलाव के स्थान से जल बहता है, मुझ को भी जैसी आज्ञा हुई उसी कर्म को करता हूं मोक्ष बन्धन अथवा सत्य मिथ्या इन सबके मध्य में ज्ञान मोक्षको श्रेष्ठ जानता हुआ सिद्ध नहीं कर सक्ताहूं जैसे कि धर्मरूप उत्तम आशाओं में ईश्वर ने कर्म करना कहा है उसको उसी प्रकार से करता हूं मनुष्य जिसप्रकार से उसको प्राप्त करना योग्य समझता है उसी२ प्रकार से प्राप्त करता है जैसी होतव्यता

होती है वैसाही सब होता है, ईश्वर ने जहां २ बराबर गर्भों में अपने को निवेशित किया है वहां वहां ही निवास करता है क्योंकि उसके आधीन है मुझको जो यह जन्म प्राप्त हुआ सो मेरा होनहार था जिसका इस प्रकार से चित्त में ज्ञान है वह कभी मोह को नहीं पाताहै, काल के क्रम से प्राप्तहोनेवाले सुख दुःखों से पीड़ित मनुष्योंमें कोई विपरीत नहीं जानता जिससे कि किसी नालिश को करे सब बुद्धिमान् पुरुष यही कहते हैं कि हमहीं अपने दुःखों के कर्ता हैं फिर नालिश किसकी किसको करें किस देवता असुर और वन में निवास करनेवाले मुनि वेदज्ञों को आपत्ति नहीं आती है अर्थात् सबको प्राप्त होती है लोक में जो सत् असत् अर्थात् सत्य मिथ्या वस्तु के जाननेवाले हैं वही निर्भय रहते हैं और पण्डित मनुष्य क्रोध नहीं करता है न संसार में चित्त को लगाता है न पीड़ा पाता है न खुश होता है और दुःख से हटाने के योग्य दुःखों में शोच भी नहीं करता है स्वभाव से हिमालय पर्वत के समान अचल होकर नियत है, जो मनुष्य उत्तम मनोरथों से और समय के सुख दुःखों से विस्मरण नहीं होता और सुख दुःखों को समान गिनता है वह मनुष्य बड़ा धुरन्धर गिनाजाता है, जैसी २ दशा को पुरुष प्राप्त करे उसमें दुःखी कभी न हो किन्तु उसी में निर्वाह करे और बड़े भारी चित्त में उत्पन्न होनेवाले दुःखदायी कष्टों को देह से दूरकरे, अब विवेक की कठिनताको सुनो कि वह सभा वेद और स्मृतियों के न्याय और अन्याय की खोलनेवालीहै उसको पाकर कभी भय नहीं करता है, जो बुद्धिमान् धर्मतत्त्वों को जानकर उसको प्राप्त करता है वह पुरुष धुरन्धर है अर्थात् सभासदों में उत्तम है आशय यहहै कि धर्म्मतत्त्व भी कठिनता से प्राप्त होता है तो ब्रह्मतत्त्व क्यों नहीं दुखः से प्राप्तहोगा, ज्ञानी के कर्म ऐसे हैं जिन का फल आगे को समझ में आना कठिन है ज्ञानी मोह के समय मोह को नहीं पाता है, इस गृहस्थाश्रम से रहित गौतम ऋषि इसी प्रकार की आपत्तियों को पाकर उनके दुःखों से मोहित नहीं हुआ, तात्पर्य्य यह है कि मैं तेरे समान अजितेन्द्रिय और चित्त के आधीन नहीं हूं किन्तु गौतम ऋषि के समान चित्त का जीतनेवाला हूं, मनुष्य मन्त्र, बल, पराक्रम, बुद्धि, उपाय, स्वभाव, रीति और धन आदि से दुर्ग्राह्य वस्तु को नहीं पासक्ता है अर्थात् चित्त की सावधानता को नहीं पाता है उसमें क्या शोच है, पूर्व्व समय में ईश्वर ने इस प्रकार जन्मलेनेवाले का जो विधान किया है उसी के अनुसार कर्म्म करूंगा

मृत्यु मेरा क्या कर सक्नी है, प्राप्त होनेवाले सुख दुःखों को अवश्य पाता है और यात्रा के योग्य देशों को भी जाता है और प्राप्त होने के योग्य को प्राप्त होता है जो मनुष्य इसको सम्पूर्णतासे अच्छेप्रकार जानकर मोह को प्राप्त नहीं होता है वह सब दुःखों से निवृत्त होकर धन का स्वामी होता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चौवनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! बन्धुओं समेत राज्य के नाश होने में महाकठिन आपत्तियों में डूबेहुए मनुष्य का कल्याण करनेवाला क्या है इस बात को आप कहने के योग्य हैं क्योंकि इस लोक में हे भरतर्षभ ! आपही हमारे अद्वैतवक्ता हैं भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! पुत्र, स्त्री, सुख, धन से पृथक् और कठिन आपत्ति में पड़ेहुए मनुष्य को धैर्यही सुख का देनेवाला है सदैव धैर्ययुक्त पुरुष नाश को नहीं पाता है और शोकरहित सुखको पाता है और देह की उत्तम नीरोग्यता को भी धारण करता है वह देह की नीरोग्यता से और सात्त्विकी वृत्ति में नियत होकर पूर्ण लक्ष्मी को पाता है उसको धैर्य ऐश्वर्य्य और कर्मों में निश्चय भी प्राप्त होता है, इस स्थानपर फिर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं उसमें भी इन्द्र और बलि के प्रश्नोत्तर हैं कि देवासुर के युद्ध जारी होने में दैत्य दानवों के नाशपूर्वक सबलोकों को विष्णुजी में व्याप्त होनेपर इन्द्र को देवराज पदवी मिली तब इन्द्र देवताओं के पूजित हुये उस समय चारों वर्ण नियतहुये और तीनों लोकों की वृद्धिहुई तब ब्रह्माजी समेत ग्यारहरुद्र, आठवसु, द्वादशसूर्य, दोनों अश्विनीकुमार, सब ऋषि, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, आदि से व्याप्त इन्द्र अपने चार दांतवाले ऐरावतपर सवार होकर तीनों लोकों में घूमे और घूमते हुये समुद्र के तटपर किसी पहाड़ की गुफा में विराजमान राजा बलि को देखा और समीपगया उस बलिने इस बड़ी धूमधाम समेत इन्द्र को देखकर कुछ भी शोच न किया और न दुःखी हुआ तब इन्द्रने उस सावधान निर्भयस्वरूप राजा बलि से कहा कि, हे दैत्य, बले ! तुम शूरता से या वृद्धों के सेवन से अथवा अपने चित्त की शुद्धता से पीड़ारहित हो यह बड़ा कठिन कर्म है कि शत्रुओं के आधीन अपने स्थान से भ्रष्ट राजलक्ष्मी से पृथक् होकर भी तुम किसके बलसे भय के स्थान में भी निर्भय हो पूर्व समय में अपने बाप दादे के राज्यपर अधिकारी होकर अब तुम उसराज्य को शत्रुओं

से छीनाहुआ देखकर क्यों शोच नहीं करते और वरुण के पाशों से बँधे वज्र से घायल स्त्रीधनरहित भी क्यों नहीं शोच करते ऐसा कौन है जो तीनों लोकों के राज्य भ्रष्ट होने पर जीवने का उत्साह करे ऐसी दुःखदायी मर्मभेदी इन्द्र की अनेक बातें सुनकर उस इन्द्र को निरादर करके विरोचन का पुत्र राजा बलि यह वचन बोला कि हे इन्द्र! मेरे आपत्ति के होने से तुझको प्रशंसा करने की क्या आवश्यकता है अब तुम वज्र उठाये दीखते हो किसीसमय तुम ऐसे असमर्थ थे कि भागते फिरते थे अब दैवयोग से इन्द्रपद पाकर तेरे सिवाय दूसरा कौन ऐसे निर्दयवचनों को कहने के योग्य है जो कोई अपने बलवान् शत्रु को स्वाधीन करके उसपर करुणा करता है वही पुरुष है ज्ञानियों के बीच में दो पुरुषों का विवाद निर्णय नहीं होता है उनमें एक हारता है और एक जीतता है हे देवेश! यह तेरा स्वभाव ईश्वर ने कि सब जीवों का स्वामी तेरे बल पराक्रम से विजय होय और यह हमारा कर्म नहीं है न तुम्हारा है जो तुम या दूसरा ऐसी दशा में हो और हम ऐसी दशा में हुए अब जैसे तुम हो वैसाही मैं भी था और जैसे अब हम हैं वैसेही तुम भी होगे तुम यह न समझो कि मैंने बड़ाकर्म किया क्योंकि समय की विपरीतता से पुरुष सुख दुःख को भोगता है और तुमने भी समय की विपरीतता से ही इंद्रपद पाया है कुछ अपने पुरुषार्थ से नहीं पाया कालने जैसे मुझे प्राप्त किया है उसी प्रकार तुझ को भी अवश्य करेगा कभी मैं तेरे समान नहीं कभी तू मेरे समान न होगा, पुरुष का सुखदायी माता पिता से अधिक कोई नहीं है विद्या, तप, दान, मित्र, बांधव यह सब उस काल से पीड़ित मनुष्य की रक्षा नहीं कर सक्ते मनुष्य बुद्धि बल के विशेष सैकड़ों उपाय और अनर्थों से भी होनहार सुख दुःख के दूरकरने को समर्थ नहीं होसक्ते हैं, समय के विपरीतपने से दुःखी मनुष्यों का कोई रक्षक नहीं है हे इन्द्र! इसी को दुःख जानो जो तुम मानते हो कि मैं इसका कर्त्ता हूं, जो मनुष्य कर्त्ता होजाय तो वह कभी उत्पन्न भी न हो फिर कर्त्ता की उत्पत्ति होने के कारण वह कर्त्ता भी असमर्थ है मैंने भी तुझे काल से विजय किया था और अब काल से तैंने भी मुझको विजय किया है कालही कर्म के फल में वर्त्तमान पुरुषों को प्राप्त होनेवाला है, कालही जीवों की संख्या करता है और एक को एक से पृथक् करता है, हे इन्द्र! तुम प्राकृत बुद्धि से नाशको नहीं जानते हो, अपने कर्म्मों से प्रतिष्ठा पानेवाले लोग तुमको बहुत मानते

हैं काल से पीड़ित मुझ सा पुरुष लोक की प्रवृत्तियों को जानता कैसे मोहित होकर शोच को करे और भ्रान्ति पावे मुझ काल से व्याप्त या मेरे समान पुरुष की बुद्धि टूटी नौका के समान पीड़ा को पाती है, मैं तुम और अन्य भी बहुतसे देवेन्द्र होंगे वह सबभी सैकड़ों इन्द्रों के प्राप्त होनेवाले मार्गों में जायँगे, अन्त के समय तुझ शोभायमान विजयी को भी काल ऐसेही भ्रष्ट करेगा जैसा कि मुझको किया है, देवताओं के हर एक यज्ञ में हज़ारों इन्द्र काल से व्यतीत होगये यह कालही कठिनता से उल्लंघन के योग्य है और जो तुम इन्द्रासन को पाकर अपने को बड़ा मानते हो सो यह कालही जीवों के उत्पत्तिस्थान ब्रह्मा जी के समान तुमको भी प्रतिष्ठित मानता है यह किसी का अचलस्थान नहीं है, तुम निर्बुद्धिता से जानते हो कि यह मेरा है हे देवेन्द्र ! तुम अविश्वस्त में विश्वास करते हो और चल को अचल मानते हो तुम मोहसे राजलक्ष्मी को चाहते हो कि यह मेरी है यह तेरी है न मेरी है न दूसरोंकी सदैवहै यह हज़ारोंको उल्लंघन करतीहुई तुझमें प्राप्तहुई है सो कुछ कालतक यह चंचल तुझ में नियत होकर जैसे कि गौ स्थान को बदलती है उसीप्रकार तुझको भी छोड़कर फिर दूसरे को प्राप्तहोगी बहुत से राजा व्यतीत होगये जिनकी संख्या करना कठिन है हे पुरंदर ! दूसरे तुझसे भी अधिकगुणवान् होंगे, यह पृथ्वी पूर्वसमय में वृक्ष, औषधि, वन, आकररत्न, और जीवोंसमेत जिनसे भोगीगई उन पुरुषों को अब नहीं देखताहूं अर्थात् राजापृथु, ऐल, मय, भीम, नरक, शम्बर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, ह्रीनषेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, सत्येप्सु, ऋषभ, बाहु, कपिलाश्व, विरूपक, बाण, कार्त्तस्वर, वह्नि, विस्वदंष्ट्र, नैर्ऋति, सकोच, वरीताक्ष, वराह, अश्व, रुचिप्रभ, विश्वजित्, प्रतिरूप, वृषाण्ड, विस्कर, मधु, हिरण्यकश्यप, कैटभ, यह सब दैत्येय और दानव नैर्ऋति समेत और अन्य बहुत प्राचीन वृद्ध और उनसे भी प्रथम होनेवाले दैत्येन्द्र, दानवेन्द्र और जिन२को सुनते हैं यह सब पृथ्वीको भोगकर चलेगये इससे कालही बड़ा पराक्रमी है सबने सैकड़ों यज्ञोंसे उसका पूजनकिया केवल तुम्हीं शतक्रतु नहीं हो वह सब धर्म्म में पूर्ण सदैव यज्ञ करनेवाले अंतरिक्षगामी सन्मुख युद्ध करनेवाले देहसे दृढ़परिघके समान भुजावाले सैकड़ों माया धारणकरने में समर्थ कामरूप थे अर्थात् स्वेच्छासे रूप धारणकरनेवाले थे वह कभी युद्ध में पराजित नहीं सुने गये वेदव्रत में परायण सत्यवक्ता और शास्त्रज्ञ

थे सब में सबका अभीष्ट ऐश्वर्य्य पाया उन महात्माओं को भी अपने ऐश्वर्य्य का कभी अभिमान नहीं हुआ सब अपनी सामर्थ्य के अनुसार दानी और मत्सरता से रहितथे, सब ने जीवधारियोंमें जैसा बर्ताव योग्य था वैसाही किया दक्षप्रजापति के महाबली पुत्र प्रतापी हुये वह भी काल ने आकर्षण किये, हे इंद्र! तुम जब इस पृथ्वीको भोगकर फिर त्याग करोगे तब तुम अपना शोक दूर करने को समर्थ न होगे कामभोगों में जो इच्छा है उसको त्यागदो और लक्ष्मी से उत्पन्न होनेवाले इस अहंकार को भी त्यागो इसी प्रकार से तुम राज्य के नष्ट होने में शोक को न सहसकोगे तुम को चाहिये कि शोच के समय अशोच और हर्ष के समय हर्षरहित होजाओ, भूत और भविष्य को त्याग करके वर्त्तमान वस्तु से निर्वाह करो क्योंकि सदैव कर्म्म में प्रवृत्त मुझसे सावधान को जो काल प्राप्त हुआ, हे इन्द्र! क्षमा करो वह थोड़े ही काल में तुमको भी प्राप्त होगा हे इन्द्र! तुम यहां मुझको डराकर अपने वचनों से घायल करते हो यह काल पहिले मुझ को सताकर अब तेरे भी पीछे दौड़ता है इसीहेतु से प्रथम काल से मेरे घायल होनेपर तुम गरजते हो इसलोकमें युद्धके बीच तुझ क्रोधी के सम्मुख कौन वर्त्तमान होने को समर्थ है और हे इन्द्र! पराक्रमी कालके प्राप्त होनेपर हज़ार वर्षतक तुम नियत रहोगे, जब मुझ से पराक्रमी के सब अंग सावधान नहीं रहे तब मैं इन्द्रासन से उतारा गया और तुम को स्वर्ग का इन्द्र बनाया इस बड़े जीवलोक में समय के लौटने से उपासना के योग्य हुआ, अब तुम किस कर्म्म से इंद्र हो और हम किस अपराध से राज्य से भ्रष्ट हुए, कालही कर्त्ता और नाशकर्त्ता है और सब निरर्थक हैं, ज्ञानी पुरुष ऐश्वर्य्यवान् होने वा न होने अथवा दुःख सुख होने न होने में सुखी दुःखी नहीं होते हे इंद्र! तुम मुझको जानते हो और मैं तुमको जानता हूं तुम अपनी प्रशंसा हमसे क्यों करते हो क्यों काल से निर्लज्ज होते हो पूर्व समय में तुम मेरे पराक्रम और उपायों को जानते थे जो युद्धों में मैं करता था हे शचीपते! मैंने पूर्वसमय में बारह सूर्य्य, ग्यारह रुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, वसुओं समेत देवासुरयुद्ध में विजय किये इसको तुमभी जानते हो, मैंने युद्ध में बल से भागनेवाले देवता सब परास्त किये और जंगल वा जंगल के जीवों समेत अनेक पहाड़ों को हाथ से उठा २ नगरों समेत तेरे मस्तक पर फेंककर तोड़डाले अब मुझे क्या करना सम्भव है निश्चय करके काल कठिनता से पारहोनेवालाहै नहीं तो तुझ वज्र

धारी को अभी मुष्टिका से मारने का उपाय करता यह मेरा पराक्रम का समय नहीं है किन्तु शांति का समय आया है इसीकारण से हे इन्द्र ! मैं तुमसे अधिक असहिष्णु होकर तुमपर क्षमा करता हूं सो तुम काल के विपर्यय से उस कालाग्नि से व्याप्त होकर काल की फांसी में बँधे हुए मुझको अपनी प्रशंसा सुनाते हो, यह बड़ पुरुष श्याम वर्ण लोकसे दुर्ग्राह्य रुद्र काल मुझको बांधकर ऐसे नियत हैं जैसे कि रस्सी से पशु को बांधकर कोई वर्त्तमान हो, हानि, लाभ, सुख, दुःख, काम, क्रोध, ऐश्वर्य्य, नष्टता, मारना, पकड़ना, मोक्ष होना इत्यादि सब बातें काल से प्राप्त होती हैं न मैं कर्त्ता हूं न तू कर्त्ता है जो कर्त्ता है वह सदैव सब का स्वामी है वह काल वृक्षमें होनेवाले फलोंके समान हम सब को पकाता है, पुरुष जिन २ कर्म्मों के करने से सुख को प्राप्त करता है फिर उन्हीं कर्मों को करता कालके ही कारण दुःखों को भी भुगतता है, काल का जानने वाला पुरुष काल से स्पर्श कियाहुआ शोच के योग्य नहीं है इस कारण से मैं शोच नहीं करता हूं, शोक में किसी की सहायता नहीं है जब शोच करनेवाले का शोक दुःख से दूर नहीं करसक्ता है तब शोचको कौन करै इसी कारणसे अब मैं शोच नहीं करता हूं इतनी बलि की बातें सुनकर इंद्र ने क्रोध को रोककर यह वचन कहा कि वज्रसमेत हाथ के उठने और वरुण के पाशों को देखकर किसकी बुद्धि भय से पीड़ित न होगी और यह तेरी तत्त्वदर्शी अचला बुद्धि मारनेवाली मृत्यु से भी पीड़ा नहीं पाती है निश्चय करके तुम सच्चे पराक्रमी हो और अपने धैर्य्य से भय नहीं करते हो और इस संसारको अस्थिर जानके कौनसा देहधारी विषयोंमें विश्वास करेगा मैंभी इसप्रकार इसलोकको नाशवान् जानता हूं, जो पुरुष उस घोररूप अविनाशी गुप्त प्रकट कालाग्निमें वर्त्तमान है वह कभी नहीं छूटसक्ता है चारोंओर से जीवोंको तपानेवाले लोक को विनाशवान् जानता हूं, और फिर न लौटनेवाले काल के पंजे से नष्टता को प्राप्त पुरुष मोक्ष नहीं होता है क्योंकि वह सावधान काल अचेत जीवों में सदैव जागता है, पूर्वकाल में बड़े उपाय से भी वह प्राचीन सनातन धर्म्म और सब में समान वर्त्तमान वह काल किसी से उल्लंघन होने के योग्य नहीं देखा वह काल न दूर होसक्ताहै और न बदलसक्ताहै जो काल दिन, रात, मास, पक्ष, क्षण, काष्ठादि कला विकलाओंको ऐसे इकट्ठा करता है जैसे ब्याज की जीविकावाला ब्याजका संचय करताहै, अब यह करूंगा कल वह करूंगा इसप्रकारके कहने-

वाले पुरुषको प्राप्त होनेवाला काल आकर्षण करलेताहै और जैसे कि नदी का वेग वृक्ष को गिराता है उसीप्रकार यह भी गिरा लेजाता है, अर्थ भोग स्थान ऐश्वर्य्यादिक सब नाश होजाते हैं, काल आकर जीवलोक के जीवन को लेजाता है सब संसार विनाशवान् और अनियत है तेरी वह अचल और तत्त्वदर्शिनी बुद्धि पीड़ा से रहित है, इस जगत् में बलवान् काल से दबाकर पकड़ने पर भी इसको चित्त से ध्यान नहीं करता है कि मैं पहिले समय में ऐसा था यह ऐश्वर्य्यवान् नष्ट हुआ इस वचन से चित्त को चलायमान नहीं करता है यह संसार, ईर्षा, क्रोध, लोभ, अहंकार, इच्छा, द्वेष, भय, मोहादिकों से अज्ञानता को पाता है परन्तु आप तत्त्वभाव के ज्ञाता बुद्धिमान् ज्ञान तप से संयुक्त हो, प्रत्यक्ष में काल को ऐसे देखते हो जैसे कि हाथ में लिये आंवले को देखा करते हैं हे विरोचन के पुत्र! तुम कालके मुख्य चरित्रों के ज्ञाता सब शास्त्रों में प्रवीण बुद्धिमान् ज्ञानियों के चाहनेवाले हो मैं मानता हूं कि यह सबलोक आपकी बुद्धिसे व्याप्त है सब ओर से मुक्त होकर विचरते हुये किसी बन्धन में नहीं पड़ते और तुमको रजोगुण तमोगुण भी आधीन नहीं करसके हर्ष शोक से रहित तुम आत्मा की उपासना करते हो सब जीवों में समभाव शान्तचित्त तुमको देखकर तुम में मेरी बुद्धि दयालुतायुक्त उत्पन्न हुई है मैं ऐसे ज्ञानी को बन्धनदशा में कभी नहीं मारना चाहता हूं दया ही उत्तम धर्म्म है तुम में मेरी दया है और यह तेरी वरुणपाश समय के विपरीत होने में पृथक् होगी हे महाअसुर! प्रजाओं की अभाग्यतासे तेरा कल्याण हो जब पुत्रवधू वृद्ध सास को अपनी सेवा में प्रवृत्त करेंगी और पुत्र अपने पिता को अज्ञानता से काम करने को भेजेगा और शूद्र ब्राह्मणों से पैर धुलवावेंगे और ब्राह्मणी स्त्रीको निर्भय होकर अपनी स्त्री बनावेंगे और उत्तम पुरुष अपने वीर्य को विपरीतयोनि में डालेंगे और वर्णसंकर होजायँगे और कांसी के पात्रों से बलिकर्म होने लगेगा और चारों वर्ण बे मर्याद होजायँगे तब तेरा एक २ पाश क्रमपूर्वक देह से अलग होगा मुझसे तुझे कोई भय नहीं है समय को देखते हुये सुखी निर्विघ्न स्वस्थचित्त नीरोगतापूर्वक विचरो या जहां चाहो वहां रहो उससे ऐसे वचन कहकर देवेश इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर बड़ी प्रसन्नतासे असुरों को विजय कर महाइन्द्र पदवी पाकर चलेगये और वहां सब देवताओं ने उसकी स्तुति की और देव ब्राह्मण आदि से पूजित स्वर्ग में इन्द्रासन को पाकर महा आनन्दयुक्त हुये ॥ ११६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पचपनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह, राजा भीष्मजी ! ऐश्वर्यवान् होनेवाले और नष्टता को प्राप्त होनेवाले पुरुषों के जो मुख्य और प्रथम चिह्न हैं उनको आप मुझसे वर्णन कीजिये, भीष्मजी बोले कि तेरा कल्याण हो चित्तहीसे ऐश्वर्य होनेवाले और भ्रष्ट होनेवाले मनुष्यों के प्रथम चिह्नों को तुमसे वर्णन करता हूं हे युधिष्ठिर ! इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहासको कहता हूं जिसमें कि लक्ष्मीजी और इन्द्र का संवादहै कि ब्रह्माजीके समान महातेजस्वी तपोमूर्त्ति श्रीनारदजी ब्रह्मलोकवासी ऋषियों की समानतामें प्राप्त होकर बड़े तपके तेज से गुप्त और प्रकट दोनों लोकों को देखते स्वेच्छाचारी हो तीनोंलोकों में घूमे, कभी प्रातःकाल उठकर पवित्रजल में स्नान करने की इच्छा से ध्रुवजी के द्वार पर वर्त्तमान श्रीगंगाजीके तटपर पहुँचे और उस आकाशगंगा पर उतरे वहां देवऋषियों से पूजित पाकासुर और शम्बरके घाती वज्रधारी सहस्राक्ष इंद्रजी भी उस देवऋषियोंसे व्याप्त श्रीगंगाजीपर आये वह दोनों जितेन्द्रिय स्नान जप आदि क्रिया से निवृत्त होकर कंचनके समान उस नदी के रेत में किसी टापूपर बैठगये इस बातसे सिद्ध है कि स्वर्गवासी लोग भी स्नान जप आदि कर्म करते हैं वहां बैठकर उन दोनों पवित्रात्माओंने उत्तम कर्मवाले देवऋषि और महर्षियों की कहीहुई कथा को वर्णन किया और भूतकालीन कथाओं को कहते हुये वह दोनों सावधान हुये फिर उन दोनोंने हज़ारों किरणोंसे व्याप्त उदय हुये सूर्य्यको पूर्णमंडलयुक्त देखकर उठकर उपस्थान किया और उसी सूर्य्य के समीप अन्य सूर्यके समान एक ज्योति भी जो प्रज्वलित अग्नि के सदृश देदीप्यमान थी दृष्टि पड़ी वह गरुड़रूप सूर्यके ऊपर रचित चारों ओरसे नियत विष्णु के समान उन दोनों के सम्मुख तीनोंलोकों को प्रकाश करता किरणों से अनुपम देदीप्यमान थी उसके भीतर रूपवान् शोभायुक्त नाना अलंकारोंसे भूषित श्वेत माला पहरे कमलदल में वर्त्तमान साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी को देखा कि वह अपने उत्तम विमानमें से उतरकर देवेश इंद्र और नारदजीके पास आई उनको देखतेही इंद्र और नारदजी हाथ जोड़कर खड़े होगये और बड़ी विधिसे उनका पूजन करके इस वचनको कहा कि हे सुन्दरि ! तुम कौन हो और किस निमित्त यहां आई हो और कहांको जाओगी, लक्ष्मीजी बोलीं कि तीनों पवित्रलोकों में सब स्थावर जंगम जीव मेरे प्रकाशको चाहा करतेहैं और मेरे लिये अनेक बुद्धियों

से उपाय करते हैं सो मैं कमलमें उत्पन्न होकर सूर्य की किरणों से संसारको व्याकुल देख उनके आनन्द देनेको उत्पन्न हुई हूं जो कि मैं पद्मा श्री और पद्ममालाधारी लक्ष्मी भगवती हूं हे बलिध्वंसिन् ! मैं हीं श्रीलक्ष्मी, श्रद्धा, मेधा, सन्नति, विजिति, स्थिति, धृति, सिद्धि, और मैंहीं तेरी विभूतिहूं स्वाहा, स्वधा, नियति, स्मृति भी मैंहीं हूं मैंहीं विजयी राजाओंकी सेनाओंकी अग्रध्वजाओं पर धर्मशीलों की आश्रयस्थान देशपुरों में विजयसे शोभित युद्धों में और मुख न मोड़नेवाले शूरवीर राजाओंके पास सदैव निवास करती हूं और बड़े बुद्धिमान् वेदज्ञ धर्मशील ब्राह्मणों के पोषण करनेवाले सत्यवक्ता गुरुके वचनों से कर्म करनेवाले दानशील पुरुषों के पास भी सदैव वर्त्तमान रहती हूं, और पूर्व समय में मैं सत्यधर्म से सम्बन्ध रखनेवाले असुरोंके पास नियत थी फिर उनको कुमार्गगामी जानकर तेरे पास रहतीहूं इन्द्र बोले कि हे सुमुखि ! तुम कैसे चलनवाले दैत्यों के पास वर्त्तमान थीं और फिर क्या देखकर तुम दैत्य दानवोंको त्यागकर यहां आईं लक्ष्मीजी बोलीं कि मैं धैर्यवान् अपने धर्म्म में दृढ़ स्वर्गमार्गमें क्रीड़ा करनेवाले जीवोंमें प्रीतिमान्हूं दान, वेदपाठ, यज्ञ, पूजन, पितृ, देवताओंका पूजन, गुरु अतिथियोंका सत्कार और सत्यगुण वर्त्तमान होने से वही असुर बहुत शुद्ध स्थान रखनेवाले स्त्रीसे आजित हवन करनेवाले गुरुसेवापरायण जितेन्द्रिय वेद ब्राह्मणों के भक्त और सत्यवक्ता हुये और श्रद्धावान् क्रोधरहित दानी दूसरेके गुणों में दोष न लगानेवाले पुत्र मन्त्री और स्त्री के पोषण करनेवाले ईर्षारहित थे कभी ईर्षा से परस्पर में इच्छावान् न हुये वह पण्डित अन्यके उत्कर्षमें कभी चित्तको म्लान नहीं करते थे दानी योग्य भेजलेनेवाले अच्छे बुरे अनाथ दुःखी आदि के ज्ञाता बड़े पारितोषिक देनेवाले सत्यवक्ता दृढ़भक्त और जितेन्द्रियथे नौकर और मंत्रीआदिके प्रसन्न रखनेवाले प्रियभाषी, सिद्धमनोरथी लज्जावान् और व्रतपरायण थे, सदैव पर्वों में तीर्थादिस्नान, दान, यज्ञ, धर्म्म करनेवाले चंदनादि सुगन्धित वस्तुओं से अंगशोभित करके व्रत और तपके अभ्यासी प्रसन्नचित्त और ब्रह्मवादी थे प्रातःकालके समय शयन नहीं करते और सोते में जिनके कभी सूर्य का उदय नहीं हुआ और रात्रि के समय जिन्होंने दही और सत्तू नहीं खाया और ब्रह्मवादी हो प्रातःकाल घृत को देखकर घरसे निकले और मंगली पदार्थोंको भी देखा ब्राह्मणोंका भी पूजन किया सदैव धर्म्मकर्त्ता और दान नहीं लिया और अर्द्धरात्रि पर शयन किया

उसीप्रकार दिवस में कभी न सोये, दुःखी, अनाथ, वृद्ध, निर्बल, रोगी और स्त्रियों पर करुणा करते उनके भागोंको सदैव विभाग किया और सदैव भयभीत उद्विग्न और व्याकुलचित्त भयसे पीड़ित निर्बल असमर्थ दुःखीलोगोंको और जिनका धन जातारहा उनको प्रतिदिन विश्वास करातेथे और धर्म्महीमें प्रवृत्त एक दूसरेको नहीं मारतेथे और गुरुवृद्धों की सेवाआदि कर्मों में आसक्तचित्त थे और सब बुद्धिके अनुसार पितृ, देवता, और अतिथियोंके पूजकथे और सत्यता, तप, व्रत में प्रवृत्त होकर देवताआदि से शेष बचे हुये अन्नको और उत्तम भोजन को भी अकेले नहीं खाते थे और अन्य की स्त्री के पास भी नहीं जाते थे और जीवों में ऐसे दया करते थे जैसे कि अपनी आत्मा में, और आकाश में, पशुओं में, विपरीत योनियों में, और पर्वों में कभी वीर्यपतन नहीं किया, हे इन्द्र! उनमें इनगुणों के विशेष दान करना, सावधानी और सीधेपने से उत्साह करना निरहंकार होना, उत्तम प्रीति, शांत स्वभाव, पवित्रता, मृदुभाषण, मित्रों से द्रोह न करना इत्यादि अनेक बातें उत्तम थीं, मैं पूर्व समय में जीवों की उत्पत्तिके प्रारम्भसे बहुतसे यज्ञों के विपरीत होनेतक इस प्रकारके गुणवाले दानवों के पास वर्त्तमान रही, तदनन्तर समय की विपरीततामें उनके गुण विपर्य्यय होनेसे काम क्रोध लोभके आधीन होनेवाले असुरों की देहों से बाहर निकलनेवाले धर्म को मैंने देखा और बड़े बलवान् होनेसे अहंकारयुक्त होकर उन्होंने वृद्धों की निन्दा की और कथापुराण कहनेवाले वृद्ध सभासदों का हास्य किया और अपने स्थानोंमें बैठेहुये उन पराक्रमियोंने पास आनेवाले वृद्ध सत्पुरुषों का सत्कार पूजन इत्यादि भी पूर्वके अनुसार नहीं किया और पिताके वर्त्तमान होनेमें पुत्र स्वामी होता था और स्वामी सेवकभाव को पाकर अपने को बड़े लज्जावान् प्रसिद्ध करते थे इसीप्रकार जो पुरुष धर्मसे रहित निन्दित कर्मके द्वारा बड़े मनोरथों को प्राप्त करते हैं वैसेही कर्मोंमें इन की भी इच्छा हुई और रात्रिके समय उच्चस्वरसे अप्रियवार्त्ताओं को भी कहा तब अग्निने अपने प्रकाश को कम किया और पुत्रों ने पिता के विपरीत और स्त्रियों ने अपने स्वामियोंके विपरीत कर्मको किया, और माता, पिता, वृद्ध, आचार्य्य, अतिथि, गुरु आदि का प्रतिष्ठापूर्वक मान सत्कार और बालकों का लालन न करके भिक्षा बलि से रहित आपही अन्न को भोजन करते थे अन्नादिक का विभाग न करके पितृ, देवता, अतिथि, ब्राह्मण और गौओंको न पूजकर भोजन करते

थे उसी प्रकार उनके रसोइयों ने भी चित्त, कर्म, वाणी से पवित्रतापूर्वक काम नहीं किया फलेहुये धानों को कौवे और चूहोंने भोजन किया दूध उघड़ा रक्खा और जूठे मुखसे असुरों ने घृत का स्पर्श किया, बालबच्चेवाली स्त्री ने कुदाल, दरान्त, बांस का पात्र जूठे कांसीके और पीतल आदिके पात्रादि सामान को नहीं देखा और गिरने के योग्य महल आदि की दीवारों को नहीं बनवाते थे और पशुजीवों को बांधकर घास जल आदिसे पोषण नहीं करते थे जानबूझकर बालकोंके भोजन को खाया और नौकर चाकर आदि को तृप्त न करके भोजन किया और केवल अपनेही निमित्त खीर, मोहनभोग, पूप, पूरी आदि अनेक पक्वान्नों को बनवाया और देव पितरों के उद्देश विना मांस को भक्षण किया और सूर्यास्त के समय निद्रायुक्त हुये और प्रातःकाल सायंकाल सब समयों में शयन करनेलगे और घर २ में कलह वर्त्तमान हुई और नीचों में बैठ श्रेष्ठ पुरुषों की उपासना त्याग करदी और विपरीतधर्मी पुरुषोंने परस्पर में आश्रमीलोगों से शत्रुता की वर्णसंकर होगये किसी बातका शोच विचार नहीं रक्खा जो ब्राह्मण वेदज्ञ थे और जो प्रत्यक्षमें वेद नहीं जानते थे वह सब अत्यन्त प्रतिष्ठा और अपमान में अन्तररहित और मुख्यता से पृथक् हुये अर्थात् सब एक लाठी से हांकेगये और अनेक भूषण वस्त्रादि को अपमानसे देखतेथे स्त्रियोंने पुरुषों का और पुरुषोंने स्त्रियों का रूप धारण करके नानाखेलोंमें चित्त को लगाया, धन ऐश्वर्य्यों में प्रवृत्त असुरोंने नास्तिकतासे पूर्व पूजाके योग्यों को देना बन्द किया कभी धनके संशयमें मित्रसे मित्रने भी मांगना प्रारम्भ किया और उस मित्र ने अपने प्रयोजनके लिये बड़े मूर्खों के समूहोंमें अपने धनको वृथा खोया, श्रेष्ठ वर्णोंके मध्यमें व्यापार करनेवाले मनुष्य दूसरेके धन मारलेने में इच्छा करते देखे और शूद्रलोग भी तपस्या करनेलगे और कितनेही पुरुष ब्रह्मचर्य्यव्रतके विना पढ़तेथे और कोई २ मिथ्याव्रत भी करतेथे, शिष्य गुरुकी सेवारहित थे और कोई २ गुरुभी शिष्य के मित्र होगये और उत्साहरहित वृद्ध माता, पिता, पुत्रोंसे भोजन को चाहते स्वाधीन हुये और देवज्ञ और शान्तचित्त ज्ञानीलोग कृषिकर्म्मों को करनेलगे और मूर्खों ने श्राद्धों में भोजन किया गुरुकी आज्ञा शिष्यों ने नहीं की बहूने सास श्वशुरके विद्यमान होनेमें नौकरोंपर आज्ञाकी, स्त्रीने पति पर हुक्म चलाया और पति को बुलवाकर आज्ञा देती थी पिताने पुत्रके चित्त को बड़े उपाय से बचाव किया चोर और

राजाओं ने धन को हरा पुण्यश्लोक ईश्वर के न माननेवाले और गुरु की स्त्री से प्रीति करनेवाले पापी मनुष्य और मित्र के पोषित भी होकर मित्र की निन्दा करनेवाले हुये, निषिद्ध वस्तुओं के खानेमें प्रीति मान अमर्याद होनेसे तेज और प्रताप से हीन हुये विपरीत समयमें इसप्रकारके आचरण करनेवाले उन असुरों के पास में निवास नहीं करती हूं और हे देवेन्द्र ! तुम्हारे पूजनेके पीछे देवता लोग भी सब मुझको पूजेंगे, जहां मैं रहूंगी वहां मुझसे विशेष मेरी बड़ी प्यारी और आज्ञाकारी सात देवी हैं और आठवीं जया नाम देवी है वह आठ रूपोंसे तेरे घर आवेंगी, उनके यह नाम हैं आशा, श्रद्धा, धृति, क्षांति, विजिति, सन्नति, क्षमा और हे इन्द्र ! इनके आगे चलनेवाली आंठवीं वृत्ति है यह सब और मैं असुरों को त्याग करके तुम्हारे देश में आई हूं हम उन देवताओं के पास निवास करेंगी जिनका अन्तरात्मा धर्म्मनिष्ठ है यह लक्ष्मी जी के वचन सुन देवऋषि नारदजी और इन्द्र ने उसकी प्रसन्नता के अर्थ अनेक स्तुतियों से आनन्द दिया तदनन्तर उस देवमार्ग में वायु का बड़ा वेग हुआ उस में नानाप्रकार की ऐसी सुगन्धियां थीं जिनसे देहकी सब इन्द्रियों को आनन्द होता था और बहुत से देवतालोग भी पवित्र स्थानों में निवास करते वर्त्तमान हुये और लक्ष्मीजीके पास बैठेहुये इन्द्रके दर्शनों की लालसा करतेथे फिर इन्द्र और नारदजी हरे घोड़ेवाले सुन्दर रथ में सवार होकर देवसभाको गये और इंद्र की अंगचेष्टाको चित्तसे विचारते देवलके देखनेवाले नारदजीने महर्षियों समेत श्रीलक्ष्मीजी के आने की कथाको लक्ष्मीके अर्थ वर्णन किया फिर उस प्रकाशमान स्वर्गसे अमृत की वर्षा हुई और पितामह ब्रह्माजीके भवन में विना बजाये दुन्दुभी के शब्द हुये और दिशाओं में प्रकाश होगया इन्द्रने ऋतुके अनुसार पृथ्वी पर वर्षा करी और कोई पुरुष धर्म्ममार्ग से न हटा और देवताओं की विजयसे पृथ्वी उर्वरा और रत्नोंकी आकरोंसे शोभित हुई, यज्ञादिकर्मों में क्रीड़ा करनेवाले और पवित्रकर्मी पुरुषोंके शुभमार्ग में सम्पूर्ण मनुष्य चित्तसे प्रवृत्त हुये मनुष्य, देवता, किन्नर, यक्ष, राक्षस बड़े धनाढ्य और अच्छे साहसी हुये, वायुसे पृथक् होनेवाले वृक्षसे भी कभी बे समय पर फूल नहीं गिरा तो फल कैसे गिरे और किसीका वचन दुःखदायी और भयकारक नहीं हुआ, ब्रह्मसभा में वर्त्तमान ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले जो पुरुष सब मनोरथोंके दाता इन्द्र आदि देवताओं से किये हुये लक्ष्मीजीके इस पूजनको पढ़ते हैं वह लक्ष्मी को

पाते हैं हे युधिष्ठिर ! जो तुमने मुझसे पूछा वह सब मैंने कहा अब तुम खूब विचार करके सिद्धांतके पाने के योग्य हो ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

छप्पनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! किस स्वभाव, आचार, विद्या और पराक्रमवाला मनुष्य उस ब्रह्मलोकको पाता है जो कि प्रकृतिसे परे और निश्चल है, भीष्मजी बोले कि मोक्षधर्मों में सावधान अल्पाहारी जितेन्द्रिय पुरुष प्रकृति से परे अचल ब्रह्मलोक को पाताहै इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को सुनो जिसमें जैगीषव्य और असित देवल ऋषिका संवाद है, असित देवल ऋषिने बड़े ज्ञानी धर्म्मशास्त्रज्ञ हर्षशोक से रहित जैगीषव्य से कहा कि हे अनघ! तुम न प्रसन्न होते न निन्दासे दुखी होते हो ऐसी तुममें क्या बुद्धिहै और कहांसे है और उसका मुख्यस्थान कौन सा है यह वचन सुनकर उस महातपस्वीने देवल से वह वचन कहा जो कि संदेहसे रहित बड़े सार्थक पदोंसे युक्त और पवित्र था कि हे ऋषियों में श्रेष्ठ ! पवित्रकर्मी पुरुषों की जो गति, पराकाष्ठा, और शांतिहै उसको तुमसे कहताहूं कि जो निन्दा और स्तुति करनेवाले मनुष्योंमें एकभावहैं और अपने ऐसे गुणों को वा नियम और कर्मों को गुप्त करते हैं वह निन्दा कियेहुये ज्ञानी लोग उस निन्दक को निन्दा के बदले उत्तर नहीं देते हैं और मारनेवालों को मारने के बदले मारना नहीं चाहते और निष्प्रयोजन को नहीं शोचते और समय पर वर्त्तमान होनेवाले कर्मोंको करके व्यतीत दशा को नहीं शोचते न प्रतिज्ञा करते हैं वह समर्थ और व्रत करनेवाले ज्ञानी पुरुष पूजाके प्राप्त होने पर इच्छापूर्वक अर्थों में न्यायके अनुसार कर्म्मकर्त्ता होते हैं वह दृढ़विद्यावान् महाज्ञानी स्वभाव और चित्तके रोकनेवाले मन, वाणी और कर्म्मसे किसी समयभी अपराधको नहीं करते और ईर्षारहित हो परस्परमें मार-पीट कभी नहीं करते वह पण्डित लोग दूसरे की वृद्धि आदिसे कभी दुःखी नहीं होतेहैं और न किसीकी अत्यन्त निन्दा और स्तुतिको करते हैं और न कभी निन्दा स्तुति से विपरीत दशा को प्राप्त होते हैं वह शांतचित्त सब जीवों की वृद्धि चाहनेवाले न कभी क्रोध करते हैं न प्रसन्न होते हैं और कभी किसी समय पर भी अपराध नहीं करते हैं हृदय की गांठ को खोलकर सुखपूर्वक घूमते हैं जिनके कि बांधव नहीं हैं और न वह किसी के बांधव हैं अथवा न वह किसी के

शत्रु न उनके कोई शत्रु हैं ऐसी वृत्तिवाले मनुष्य सदैव सुखपूर्वक जीवते हैं, हे ब्राह्मणोत्तम! जो धर्म्मज्ञ धर्म्म में प्रवृत्त रहते हैं अथवा इसमार्गसे बाहर कियेगये हैं वह प्रसन्न होते हैं न चित्तसे व्याकुल होते हैं मैं उस मार्ग में नियत हूं किसको किस प्रकारसे निन्दा करूं निन्दा स्तुतिसे मेरी हानि लाभ कुछ नहीं है, तत्त्वका जाननेवाला ज्ञानी अपमानसे ऐसा तृप्त होजाय जैसे कि अमृतसे होता है और प्रतिष्ठासे ऐसा भय करे जैसे कि विषसे करते हैं अपमान पानेवाला सुखसे सोता है और दोनों लोकों में निर्भय रहता है और सब दोषरहित होता है और जो अपमान करनेवाला है वह नष्ट होजाताहै जो कोई ज्ञानी उत्तमगतिको चाहते हैं वह इस व्रत को धारण करके सुखसे वृद्धिको पाते हैं, जितेन्द्रिय पुरुष सब ओर से सब यज्ञों को प्राप्त करके ब्रह्मलोक को पाता है इस परमगति पानेवाले ज्ञानी के पद पर देव गन्धर्वादि कोई नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सत्तावनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि पृथ्वीपर कौन सा मनुष्य सब संसारका प्यारा और जीवों का प्रसन्नकर्त्ता सब गुणसम्पन्न है, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम! मैं इस स्थानपर एक इतिहास तुझसे कहता हूं जिस में नारदजी के विषय में श्रीकृष्णजी और उग्रसेन का संवाद है उग्रसेन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे केशवजी! संसार नारदजी के कीर्त्तन को करता है और मैं भी मानता हूं कि वह गुणवान् हैं उनका वृत्तांत आप वर्णन कीजिये वासुदेवजी बोले कि हे राजन्, उग्रसेन! मैं नारदजी के उत्तम गुणोंको तुमसे कहता हूं अर्थात् इस देह का तपानेवाला अहंकार कुछ खेल के निमित्त नहीं है वह शास्त्र के अनुसार चरित्रों से युक्त है इसीकारण सब स्थानों में पूजित है नारदजी में अमित्रता, क्रोध, चपलता, भय इत्यादि नहीं हैं न उनमें दीर्घसूत्रता है वह बड़े उपासना के योग्य हैं काम या लोभसे इनके वचनों में कोई बे मर्यादगी नहीं है वह वेदांत की बुद्धि से सिद्धान्तके ज्ञाता शान्तचित्त समर्थ जितेन्द्रिय और सत्यवक्ता हैं, तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, नम्रता, जन्म और तपसे बड़े हैं इसीकारण सब स्थानोंमें पूजित हैं और उत्तमशीलवान् सुखरूप निद्रावान् श्रेष्ठ भोजन करनेवाले इच्छाचारी पवित्र प्रियभाषी और ईर्षा से रहित हैं वह बड़े कल्याणकारी निष्पाप दूसरों के अनर्थों से अप्रसन्न वेद, श्रुति के आख्यानों से अर्थों

को प्राप्त किया चाहते हैं क्षमावान् हैं और समान दृष्टि होने से कोई उनका प्रिय अप्रिय भी नहीं है चित्तके अनुसार वार्त्ता करनेवाले बहुत से शास्त्र और अपूर्व कथाओंके ज्ञाता पण्डित इच्छा और द्वेषसेरहित उदारबुद्धि क्रोध लोभसे पृथक् हैं प्रथम धन की अभिलाषा में इनका मुख्य ज्ञान नहीं हुआ इसीसे यह अत्यन्त निर्दोष हैं दृढ़भक्ति पवित्र बुद्धियुक्त शास्त्रज्ञ दयावान् और अज्ञान दोष से पृथक् हैं इसकारण सब स्थानों में पूजित हैं सब संगों में प्रवृत्तचित्त नहीं हैं और न आसक्तचित्त के समान दृष्टि आते बड़े संशयसे रहित उत्तम वर्णन करनेवाले हैं इनकी समाधि कार्य के निमित्त नहीं है न किसी समय अपनी प्रशंसा करते हैं और हठ से रहित मृदु संभाषणकर्त्ता हैं इसीसे सर्वत्र पूजित हैं, निन्दारहित लोक को नानाप्रकार की बुद्धियों को देखते संसर्ग विद्यामें कुशल सब शास्त्रों की स्तुति करते अपनी इच्छापूर्वक निर्वाह करके सफल कालवान् और चित्त को जीतनेवाले हैं इन हेतुओं से सर्वत्र माननीय हैं परिश्रमी ज्ञानी समाधि से तृप्त न होकर सदैव योगी और सावधान हैं लज्जायुक्त कल्याण के निमित्त दूसरों के कहनेसे काममें प्रवृत्त होते हैं और दूसरोंके गुप्त भेदों को प्रकट न करनेवाले अर्थ लाभसे प्रसन्नतारहित और लाभ न होने में शोकदुःखरहित स्थिरबुद्धि संसारसे विरक्त हैं इसी कारण वह सर्वत्र सब पुरुषों से माननीय हैं इन सब गुणसम्पन्न चतुर पवित्र नीरोग काल और अभीष्ट के जाननेवाले को कौन अपना मित्र और प्यारा न बनावेगा ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! मैं जीवों के आदि अन्त को और युग २ के ध्यान, कर्म, काल और अवस्था को और लोकतत्त्व अर्थात् लोक का वास्तवरूप वा आकाशादि पंचभूतोंकी उत्पत्ति और लयके स्थान को अत्यन्तता से जानना चाहता हूं और यह भी निश्चय किया चाहता हूं कि यह उत्पत्ति और प्रलय कहां से होती है हे कौरवेन्द्र ! जो आपकी कृपा हमारे ऊपर है तो वर्णन कीजिये, प्रथम ब्रह्मर्षि भरद्वाजजी के सम्मुख भृगुजी के वर्णन किये हुए उत्तम ज्ञान से मेरी उत्तम बुद्धि योग धर्म्म में निष्ठायुक्त दिव्यरूपवाली हुई इसी हेतु से फिर पूछता हूं आप विस्तार समेत कहने के योग्य हैं, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानमें एक प्राचीन इतिहास तुमसे कहता हूं जिसको कि भगवान्

व्यासजी ने प्रश्न करनेवाले अपने पुत्रसे वर्णन किया अर्थात् व्यासजीके पुत्र श्रीशुकदेवजी ने सांगवेद और उपनिषदों को पढ़कर धर्म्म के पूर्ण दर्शन से नैष्ठिककर्मों की इच्छा करके कृष्णद्वैपायन व्यासजी जो धर्म्म अर्थके निस्सन्देह ज्ञाता हैं उनसे पूछा कि सब जीवसमूहों का ईश्वर जो काल, ज्ञान, अविद्या-सम्बन्धीरूप धारण करके जीव भी कहलाता है उसको और ब्राह्मणोंके जो कर्म हैं उनको मुझसे कहने के योग्य हैं भीष्मजी ने कहा कि इस प्रकार से पूछे हुए धर्म्म अधर्म्म और ब्रह्म के ज्ञाता व्यासजी ने पुत्र शुकदेवजी से इस सब भूत भविष्य वृत्तान्त को कहा कि हे पुत्र! वह आदि अन्तरहित प्रकाशमान जरावस्था और रूपान्तर से पृथक् अविनाशी जैसे जीवों करके ईश्वर कहाजाता है वह अजन्मा तीनों कालोंसे पृथक् न जानने के योग्य ब्रह्म संसार की उत्पत्तिसे प्रथम वर्त्तमान होता है, अब दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हैं कि पन्द्रह निमेषकी एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला और तीस कला का एक मुहूर्त्त जोकि सूर्यसम्बन्धी कलाके दशवें भागसे संयुक्तहो वैसे तीस मुहूर्त्त का एक दिन और रात होय यह प्रमाण मुनियोंसे नियत है और तीस रात्रि दिनको एक मास और बारह मास को एक वर्ष और गणितज्ञ पुरुष दक्षिणायन और उत्तरायण दोनों के होने को वर्ष कहते हैं, सूर्य नरलोक में दिन रात को विभाग करते हैं रात्रि शयन करने को और दिन कर्म करने को है मनुष्यों का एक मास पितरों का एक दिन रात होता है फिर उन दोनोंका यह विभाग है कि शुक्लपक्ष उनका दिन कर्म करनेको और कृष्णपक्ष उनकी रात्रि शयनके निमित्त है और मनुष्य का एक वर्ष देवताओंका एक दिन रात है उन दोनों के यह विभाग हैं कि उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रि है और पूर्व में जो मनुष्यों के दिनरात कहे उनके वर्षों की संख्या करके ब्रह्माजी के दिन रात को कहता हूं और सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग के क्रमसे दिव्यवर्षों को भी कहता हूं सतयुग चार हजार वर्षों का होता है और उसकी संध्या उतने ही सैकड़े अर्थात् चारसौ वर्ष की और संध्यांश भी चारसौही सालकाहै शेष बचेहुए संध्या और सध्यांशयुक्त तीनों युगों में हज़ार और सैकड़े में एक २ चरण अर्थात् चौथाई भाग कम हो जाता है यह वर्ष इन सदैव वर्त्तमान सनातन लोकों को धारण करते हैं हे तात! यह काल नाम चार युग की सूरत आदि अन्तरहित जीवरूप चित्तरूप उपाधियोंके योग से चार प्रकार का भी वास्तवमें सर्व विकारसे पृथक् ब्रह्महीहै और ब्रह्मज्ञानियों

का जाना हुआ है, सतयुग में चारोंचरण रखनेवाला सब धर्म सत्य वर्त्तमान होता है उसका कोई शास्त्र अधर्मयुक्त नहीं जारी होता है, दूसरे युगों में वेदोक्त धर्म एक चरणसे कम होजाता है चोरी, निन्दा, मिथ्या और शठता आदि से अधर्म की वृद्धि होती है, सतयुगमें मनुष्य नीरोग और सब मनोरथों के सिद्ध करनेवाले चारसौ वर्ष की अवस्थावाले होते हैं, त्रेतायुगमें आयु का एक चरण कम होजाता है इस युग में वेदवचन युग के अनुसार नष्टता को प्राप्त होते हैं अवस्था आशीर्वाद और वेदके जो फल हैं वह भी न्यूनताको पाते हैं, सतयुगमें औरही धर्म हैं इसीप्रकार त्रेता द्वापर आदिमें भी पृथक् २ धर्म होते हैं, सतयुग में तप को प्रधान किया है त्रेता में ज्ञान उत्तम है द्वापर में यज्ञको और कलियुग में केवल दानही श्रेष्ठ रक्खा है पण्डितलोगोंने इन युगों की बारह हज़ार संख्या कही है उसकी हज़ार आवृत्तिको ब्रह्माजीका एक दिन कहते हैं और उतनी ही रात्रि है इस दिनके प्रारम्भमें ईश्वर विश्वको प्रकट करता है और रात्रिके प्रारम्भसे प्रलयमें प्रवृत्त ध्यानावस्थित होकर योगनिद्रा में होता है और उस निद्रासे रात्रिके अन्तमें जागता है, जिन्होंने ब्रह्माजी के दिन रातको युगों की हज़ार २ चौकड़ी जानी है वही दिनरात के जाननेवाले हैं, और हम लोगों में भी इसी उत्पत्ति और प्रलयको दिखलाते हैं, प्रलयके समय निद्रा से व्याकुल होकर ब्रह्माजी इस अविनाशी आत्मस्वरूप को विकारवान् करते हैं अर्थात् उससे अहंकार को उत्पन्न करते हैं और अहंकारसे व्यक्तात्मक चित्तको पैदा करते हैं, तात्पर्य यह है कि काल और आकाशादि चित्तरूप हैं और योगनिद्रा से जगने की दशा में उत्पत्ति और नाश होता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

उनसठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, जो ब्रह्म है वह सूक्ष्म वासनारूप और बीजरूप है क्योंकि इस अकेलेहीसे यह सब जड़ चैतन्यात्मक जगत् उत्पन्न हुआ वह ईश्वर प्रातःकाल के समय जगकर महत्तत्त्वों की कारणरूप अविद्या से जगत् को उत्पन्न करता है उत्पत्ति से प्रथम महत्तत्त्व हुआ फिर वही शीघ्रता से व्यक्तरूप चित्त वर्त्तमान होता है फिर उसी चित्तरूप कर्त्ताने दूरगामी बहुत प्रकारसे चलनेवाला संकल्प विकल्पात्मक होकर चैतन्य आत्माको ढककर चित्तसे उत्पन्न होनेवाली सातवस्तुओं को उत्पन्न किया वही उत्पत्तिकी इच्छा से चलायमान चित्त बहुत

प्रकार की सृष्टिको उत्पन्न करता है उसी चित्त से आकाश उत्पन्न होता है उसका गुण शब्द है रूपान्तर होनेवाले आकाश से वायु उत्पन्न हुआ वह सब सुगन्धियों का चलानेवाला पवित्र और पराक्रमी है उसका गुण स्पर्श है फिर उस रूपान्तर होनेवाले वायुसे प्रकाशमान ज्योति हुई जिससे कि अग्नि उत्पन्न हुआ उसका गुण रूपहै उस रूपान्तर प्राप्त होनेवाले तेजरूप अग्निसे रसात्मक जल उत्पन्न होता है, जलसे गन्ध पृथ्वी और सबकी उत्पत्ति कही जाती है, पहिले२ सब तत्त्वों के गुण पिछले पिछले तत्त्वों को प्राप्त करते हैं उन भूतों में जो भूत जितने कालतक जिस मार्गसे वर्त्तमान होता है वह भूत उतने समयतक उतने गुणवाला कहा जाता है यहां प्रथम आधे श्लोक में वर्णन होनेवाली दशा सूक्ष्मतत्त्वों में भी जानना चाहिये और स्थूल तत्त्वों में पंचीकरण के पीछे सब पांचों गुण वर्त्तमान होते हैं पंचीकरण यह है कि एक तत्त्व के दो भाग किये पहिला भाग तो उसी तत्त्व से सम्बन्धित रक्खे और दूसरे भागके चार विभाग करके चारों तत्त्वों में मिला दिये जायँ यही विभाग पांचों तत्त्वोंमें करना चाहिये, जो कोई पुरुष जलमें गन्ध जानकर अज्ञानता से कहै कि जल में ही गन्ध है तब जल और वायुमें वर्त्तमान गन्धको पृथ्वी में भी जाने, यह सात रूपयुक्त और पृथक्२ अनेक प्रकारके पराक्रमी सब मिलकर सृष्टि के उत्पन्न करने को समर्थ न हुये किन्तु परस्पर सब मिलकरही रक्षा करनेवाले हुए और सबने अपने २ अंशों से शरीररूपको उत्पन्न किया इस कारण आत्मा पुरुष कहाजाता है अर्थात् पुर देहको समझो और जो उस देहरूप पुरमें बसे वह पुरुष कहाता है इन स्थूल तत्त्वोंके एकत्र होने से मूर्त्तिमान् देह उत्पन्न होता है यह देह सोलह वस्तुओं से बनता है वह सोलह यह हैं पंचभूत, चित्त, दश इन्द्रियां, सूक्ष्मतत्त्व, महत्तत्त्व, अहंकार यह सब और भोग से और शेष कर्म्म के संयोग से इस देह में प्रवेश करते हैं इस प्रकारसे स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीरके प्रवेश को कहकर उसमें जैसे चैतन्य का प्रवेश होता है उसको भी सुनो वह सब जीवमात्रोंका स्वामी प्रथम सब देहों को लेकर तप करने के लिये उसमें प्रवेश करता है उस जीवरूप प्राप्त करनेवाले को प्रजापति ब्रह्म कहा वही जड़ चैतन्य जीवों को उत्पन्न करता है फिर वही ब्रह्माजी देवता, ऋषि, पितर और मनुष्यों को उत्पन्न करते हैं १४ लोक, नदी, समुद्र, दिशा, पर्वत, वृक्ष, मनुष्य, गन्धर्व, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प आदि को उत्पन्न करते हैं अनाशवान् आकाशादिक और नाशवान् घट

इत्यादि और सब जड़ चैतन्यों को पैदा करते हैं और उन सब जीवों के जो पिछले कर्म पूर्वदेह के वर्त्तमान थे वही वारंवार उत्पन्न होनेवाले मनुष्य किन्नर आदि अपने उन्हीं कर्म्मों के फल को प्राप्त करते हैं और हिंसात्मक पापों से रहित कठिन साधारण धर्म्म, अधर्म, सत्य, मिथ्या आदि गुणों के कारण जन्म लेनेवाले उनको पाते हैं इसहेतु से उनको वही अच्छा लगता है, महाभूत देह और इन्द्रियों के नानाप्रकार के भोजन और विषयों को ईश्वरही रचता है, कितने ही मीमांसा जाननेवाले पुरुषों ने कर्म्मों में पुरुष कीही सामर्थ्य को कहा है अर्थात् कर्म्महीं प्रधान किया है और कितनेही लोग दैव प्रधान कहते हैं उनके मत से ग्रहही अच्छे बुरे फल के देनेवाले हैं और भूतचिन्तकों ने स्वभावही को प्रधान कहा है अर्थात् उपाय कर्म्म और दैव यह तीनों फलवर्त्ती स्वभाव से पृथक् नहीं हैं उनका जुदा २ मानना कोई विवेक नहीं है और कई मतवाले अपने २ मत के अनुसार कहते हैं परन्तु सिद्धान्त मत यह है कि जो पुरुष रजोगुण तमोगुण से रहित सम्परिज्ञात नाम दशा में अर्थात् यथार्थ विचारावस्था में वर्त्तमान हैं वह यही सिद्धान्त देखते हैं कि ब्रह्मही सबका उत्पत्तिकारक है—अब ब्रह्मप्राप्ति के साधन और फल को ढाई श्लोकों में वर्णन करते हैं कि जीवों का तप ही मोक्ष का कारण है उसका मूल चित्त का और इच्छाका रोकना है उस योग से सब मनोरथों को प्राप्त करसक्ता है, तप से उस ईश्वर को पाता है जो कि जगत् को उत्पन्न करता है ब्रह्मभाव को पानेवाला वह योगी सब जीवों का स्वामी होता है, ऋषियों ने दिन रात्रि तपस्या करनेके द्वारा वेदों को प्राप्त किया अर्थात् पूर्वजन्म में पढ़ेहुए वेदों को योगबल से प्राप्त किया और ब्रह्माजी ने आदि अन्तरहित विद्या को ईश्वर से उपदेश पाकर शिष्यों की शिक्षा के द्वारा जारी किया, ऋषियों के नाम और वेदों में जो उत्पत्तियां हैं और जीवों का अनेकरूप होना और कर्म्मों का जारी होना इन सब बातों को उस ईश्वर ने वेद के शब्दों से उत्पत्ति की आदि में पैदा किया वेदों में जो शुद्ध ऋषियों के नाम और उत्पत्ति हैं उनको वह अखिलात्मा ईश्वर अपनी रात्रिके अन्त में दूसरों के निमित्त विचार करता है अर्थात् वेद में भविष्य काल का वर्णन है, नाम, भेद, तप, कर्म्म, यज्ञ, आख्या, आलोक यह सब लोक की सिद्धियां हैं, आत्मसिद्धि; दश साधनसंपन्न वेदों में कही जाती है—अब अंतरङ्ग मोक्षसाधन को कहते हैं कि वेदोक्त कर्म्मों में जो कठिनता से प्राप्त होनेके योग्य

ब्रह्म वेददर्शी ब्राह्मणों से कहा हुआ और उन वेदोक्तकर्मों के अन्त में अर्थात् उपनिषदों में जिसप्रकार से वह ब्रह्म साफ़ २ कहागया है वह ब्रह्म कर्म्मयोग के द्वारा दृष्ट पड़ता है लक्षणके योग्य ब्रह्मस्वरूपको दिखलाते हैं, देहका अभिमान रखनेवाली जीव की द्वैतता कर्म से पैदा होनेवाली है अर्थात् कर्म्म के थकनेपर शयनदशा को समाधि नहीं कहसक्के वह द्वैतता, सुख, दुःख, शीत, उष्ण आदि का जोड़ों से संयुक्त है और आत्मा का मोक्ष विज्ञान से है पुरुष विज्ञान के बल से त्याग करता है, शब्दब्रह्म और परब्रह्म यह दोनों जानने के योग्य हैं, शब्दब्रह्म की पूर्ण उपासना से पुरुष परब्रह्म को पाता है अब दूसरोंको निन्दायुक्त करके प्रणव उपासना की प्रशंसा करते हैं, पशुहिंसायुक्त यज्ञों के करनेवाले क्षत्रिय लोग हैं और हवि से यज्ञ करनेवाले वैश्य हैं और तीनों वर्ण की सेवारूप यज्ञ करनेवाले शूद्रलोग हैं, ब्राह्मण तपरूप यज्ञ करनेवाले हैं परन्तु यह यज्ञोंकी रीति त्रेतायुगमें थी और सतयुगमें नहीं होती थी क्योंकि सतयुग में स्वतः सिद्धि होजाती थी और द्वापर वा कलियुग में ऐसे यज्ञोंमें उपद्रव होते हैं द्वैतता से रहित धर्म रखनेवाले अर्थात् अद्वैत निष्ठा रखनेवाले लोग सतयुग में तपकोही करते हैं वह ऋग्, यजुः, साम वेदोंको और फलयुक्त यज्ञोंको विचार के द्वारा अनात्मारूप स्वर्ग आदि का देनेवाला देखकर योगमार्गको ही अंगीकार करते हैं वह वेद और शास्त्र जड़ चैतन्य स्थावर जंगम जीवों के शिक्षा करनेवाले होते हैं आशय यह है कि त्रेतायुग में सतयुग के समान मनुष्यों की धर्म्म में प्रवृत्ति अपने आप नहीं होती, त्रेतायुग में वेद यज्ञ वर्ण और आश्रम दृढ़ हुए फिर वह द्वापरयुग में उमरकी न्यूनता से नष्ट होते हैं कलियुग में सब वेद दृष्ट पड़ते हैं और नहीं भी दृष्ट आते हैं वह वेद केवल अधर्म्म से पीड्यमान यज्ञों के साथ गुप्त होजाते हैं उस सतयुग में जो धर्म्म ब्राह्मणोंमें दृष्ट आता है वह धर्म्म अब भी चित्त के जीतनेवाले योगनिष्ठ वेदान्त और तपयुक्त वेदज्ञ ब्राह्मणों में नियत है इसकारण वह सतयुगरूप हैं, अब त्रेतायुगके व्यवहार को सुनो कि स्वधर्म्मनिष्ठ वैदिक ब्राह्मण वेदोक्त धर्म्मसे व्रत और तीर्थयात्रा आदिको इच्छानुसार करते हैं और स्वर्ग की कामना से यज्ञादिक भी करते हैं और द्वापर में पुत्रादिकी कामनासे यज्ञ करते हैं और कलियुगमें शत्रुके नाशकी इच्छासे यज्ञ करते हैं, जैसे कि वर्षाऋतु में वर्षाके होनेसे स्थावर जंगम जीवोंकी वृद्धि होती है उसीप्रकार हरएक यज्ञमें धर्म उत्पन्न होते हैं और नाश को पाते हैं और जैसे

नानाप्रकार के रूपवाले चिह्न ऋतु के बदलने में दृष्ट आते हैं उसी प्रकार ब्रह्मा और रुद्र आदि में उत्पत्ति और नाशकी सामर्थ्य वृद्धि पाती है, चारोंयुग के रूप रखनेवाले पुरुष का अनेक प्रकारका होना और आदि अन्त रहित होना हमने प्रथमही तुमसे कहा वही कालपुरुष सृष्टिको उत्पन्न करता है और मारता है, स्वभाव सेही जो सुख दुःख रखनेवाले चारोंप्रकार के जीव वर्त्तमान होते हैं उन सबका उत्पत्तिस्थान काल है वही काल उनको धारण और पोषण करता है और वही जीवरूप होता है अर्थात् आपही भूतात्मा है, उत्पत्ति, काल, क्रिया, यज्ञ, श्राद्धादि, वेद यज्ञादि का कर्त्ता, कार्य, क्रिया, फल यह सब कालात्मा पुरुष हैं हे पुत्र ! जो तुमने मुझसे पूछा वह सब मैंने वर्णन किया ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

साठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि अब क्रम से प्राप्त होनेवाली प्रलय को कहता हूं अर्थात दिवसके अन्त में और रात्रिके प्रारम्भ में कालात्मा ईश्वर में संसार लय होता है इसको सुनो कि जैसे ईश्वर इस संसारको आत्मासम्बन्धी कारणमें नियत करता है उसीप्रकार आकाशमें सूर्यनारायण अग्निसंयुक्त हो अपने तेजसे इस संसार को भस्म करते हैं तब यह सम्पूर्ण संसार सूर्य्य और अग्नि की ज्वालाओं से अग्निके समान संतप्त होता है पृथ्वीके सब जड़, चैतन्य, स्थावर, जंगम जीव तो प्रथमही नाश होजाते हैं अर्थात् पृथ्वी के समान रूप होजाते हैं तदनन्तर सब जीवोंके नाश होनेके पीछे वृक्ष तृण आदि से रहित पृथ्वी कछुये की पीठ के समान दृष्ट पड़ती है जब जल इस पृथ्वी के गन्धगुण को आकर्षण करता है तब गन्धरहित पृथ्वी लयके योग्य होती है अर्थात् गन्धरूप कठोरता जाने से जलके समान होजाती है फिर यहां लहरें लेता और महाशब्द करता अमोघ जल ही जल होजाता है फिर अग्नि जलोंके गुणों को आकर्षण करलेता है तब अग्निगुण से जल अग्निमें उपराम पाता है अर्थात् अग्निरूप होजाता है जब अग्नि की ज्वाला आकाशमें सूर्य्य को ढकती है तब यह आकाश ज्वालाओं से व्याप्त अग्निके समान होजाता है फिर वायु अग्निके गुण को आकर्षण करती है तब अग्नि शान्त होजाती है और वायुका बड़ा वेग होता है तब वायु अपने उत्पत्तिस्थान शब्दतन्मात्रा को पाकर नीचे ऊपर तिरछे दशों दिशाओंमें चेष्टा करता है जब आकाश भी वायुके गुण स्पर्श को अपनेमें लयकरता है तब वायु

शान्त होता है फिर शब्दगुणवाला आकाश वर्त्तमान होताहै रूप, रस, गन्ध, स्पर्शरहित अरूप शब्दगुणवाला सबलोक में शब्द करनेवाला आकाश वर्त्तमान होताहै शब्द आदि और स्थूलरूप सब वस्तुओं को प्राप्त और सूक्ष्मचित्त अपने से उत्पन्न होनेवाले शब्द को जोकि आकाशका गुण है अपने में ही लय करताहै यह चित्त विराट्से सम्बन्ध रखनेवाली प्रलयहै अर्थात् विराट् चित्त से कल्पितहै और उसी चित्त में लय होजाता है- अब सूत्रात्मा की प्रलय को कहते हैं-जब हमलोगों से सम्बन्ध रखनेवाला व्यष्टि चित्त उस अपने ज्ञानवैराग्यरूपमें प्रवेश करके नियत होताहै तब चन्द्रमा उस चित्त को लय करता है चित्तके लय होने और चन्द्रमाके नियत होनेपर पूर्व्व में जो ब्रह्म की प्राप्ति के लिये प्रणव की उपासना कही है और भूतशुद्धि में भी ऊपर लिखे हुए क्रमसे स्थूलतत्त्वोंके समूहरूप विराट् को जो कि आकार का रथ है लय करके और सब आत्मासे स्थूल शरीर को विस्मरण करके केवल चित्तरूप नियत करे वह बन्धनसे रहित चन्द्रमा नाम उकारार्थसे संयुक्त ऐश्वर्य्यवान् होता है योगी उस चन्द्रमा नाम समष्टि चित्तको जो कि उकारार्थवान् और संकल्परूप देहका रखनेवालाहै उसको बहुत समय में अपने स्वाधीन करताहै वह संकल्प चित्तको लय करताहै और उस संकल्पको मकारार्थवाला अहं ब्रह्मास्मि नाम उत्तमज्ञान लय करताहै, अब दो श्लोकों में ईशका भी लय वर्णन करते हैं, काल विज्ञानको लय करताहै कालको बल नाम शक्ति लयकरती है बल शक्तिको महाकाल लयकरता है उस महाकाल को विद्या लयकरती है अर्थात् स्वाधीन करती है अब उस विद्या के क्रमको सुनो कि वह ज्ञानी आकाशके उस शब्दको आत्मामें लय करताहै वह नाद का उत्पत्तिस्थान और परब्रह्म का लयात्मक गुप्त और प्राचीनतायुक्त सबसे उत्तम है तात्पर्य यहहै कि सब जीव उसके रूपहैं उनके लय होनेपर ब्रह्महो शेष रहता है इसप्रकारसे परमात्मारूप योगियोंने सकझाने के योग्य और विद्यारूप शिष्य शुकदेवजी को देखकर यह निस्सन्देह पूर्ण ज्ञान का वर्णन किया हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार उत्पत्ति, प्रलय, प्रणव, अखण्ड, ब्रह्म है इसीप्रकार हज़ार चौकड़ीके प्रारम्भ में दिन और रात्रि बराबर होना वर्णन किया गया ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इकसठवां अध्याय ॥

अब सांख्ययोगके अधिकारीको कहते हैं-व्यासजी बोले कि जीवोंके समूह

में जो स्वामी है उसका वर्णन किया अब ब्राह्मणों के कर्मों का वर्णन करता हूं उसको सुनो कि जिसके जातकर्म आदि संस्कार और दक्षिणावाले कर्मोंकी क्रिया होवै वह समावर्त्तन कर्म करने से प्रथम वेदपारग आचार्य होनेपर सब वेदोंको पढ़कर गुरु की सेवामें प्रीति करनेवाला यज्ञों का ज्ञाता गुरुओंसे अऋण होकर समावर्त्तन कर्म करे फिर वह पुरुष गुरुकी आज्ञा लेकर चारों आश्रमोंमें से एक आश्रम में बुद्धि के अनुसार देह की अवधि तक नियत होय और स्त्रियों के पास सन्तान की उत्पत्ति वा ब्रह्मचर्य से वन में या गुरुकुल में अथवा संन्यासधर्म से अपनी अवस्था को व्यतीत करे, यह गृहस्थाश्रम सब धर्मों का मूल कहाजाता है इस आश्रम में ऐसा जितेन्द्रिय पुरुष जिसके अन्तःकरण के दोष नष्टता को प्राप्त हुए सब स्थानों में सिद्धि को पाता है फिर सन्ततियुक्त वेदपाठी यज्ञकर्त्ता तीनों ऋणों से निवृत्त पवित्रकर्मी होकर दूसरे आश्रमों को प्राप्त करे और पृथ्वी पर जिस स्थान को चित्त से अत्यन्त पवित्र जाने वहां निवास करे उस स्थानमें उत्तम परमात्मा की प्राप्ति का उपाय करे, ब्राह्मणों का यश, तप, यज्ञ, विद्या उनके दान देनेसे बढ़ता है जबतक इसलोक में इसकी कीर्त्ति यश की उत्पन्न करनेवाली होती है तबतक वह पुरुष अपने पुण्य से अनेक लोकों को भोगता है वेद पढ़े और पढ़ावे, यज्ञ करे, करावे, निरर्थक दान न ले, न दे, जब यज्ञ करनेवाले यजमान और शिष्यसे वा कन्या से भी जो बड़ा धन प्राप्त हो उससे यज्ञ और दान को करे और अकेला भोजन कभी न करे, देवता, ऋषि, पितर, गुरु और भोजन की इच्छा करनेवाले वृद्ध, रोगी और गुप्त शत्रुसे दुःखी और सामर्थ्य के अनुसार ऐश्वर्य्यवान् होने की लालसा युक्त पुरुषों का इस कुटुम्बके पोषणके निमित्त दानलेने के सिवाय और कोई उत्तम उपाय नहीं है धन की सामर्थ्य न होनेपर भी इनसबको लाभ से देना योग्य है क्योंकि पात्र और पूजन के योग्य पुरुषों को कोई वस्तु अदेय नहीं होती अर्थात् सब वस्तु देनी योग्य हैं यहां तक कि जो उच्चैःश्रवा घोड़ा भी होय वह भी सत्पात्र योग्य पुरुषों को देना योग्य है बड़े व्रतवाला सत्यसिन्धु अपने वांछित मनोरथ को प्राप्त करके अपने प्राणोंसे ब्राह्मणके प्राणों की रक्षा करके स्वर्ग को गया, रन्तिदेव और सांकृती यह दोनों महात्मा वशिष्ठजी के अर्थ शीतोष्ण जल देकर स्वर्गमें प्रतिष्ठित हैं, अत्रिवंशी बुद्धिमान् इन्द्रद्युम्न भी पूजन के योग्य ब्राह्मण को अनेक प्रकारके धन देकर अनन्तलोकों को गया, औशीनर का पुत्र शिबि,

अपने अंगों को और अत्यन्त प्यारे औरस पुत्रको ब्राह्मण की भेंट करके उत्तम लोक को गया, काशी का पति राजा प्रतर्द्दन अपने दोनों नेत्र ब्राह्मण को देकर इसलोक के सुख को भोग कर अब परलोकमें आनन्द करता है देवावृध राजा सुवर्णकी बहुमूल्य आठशलाका युक्त दिव्य छत्र को ब्राह्मणके अर्थ देकर अपने देशनिवासियों समेत वैकुण्ठ में विराजमान है, अत्रिवंशी महातेजस्वी सांकृती अपने शिष्योंको निर्गुण ब्रह्म का उपदेश करके सबसे उत्तम लोकों को गया, महाप्रतापी राजा अम्बरीष ब्राह्मणों को ग्यारह अर्बुद गोदान करके देशवासियों समेत स्वर्ग को गया, सावित्री और राजा जनमेजय दोनों अपने कुण्डल और शरीरको ब्राह्मणोंके अर्पण करके उत्तम लोक को गये, वृषदश्व का पुत्र युवनाश्व अपने सब रत्न और प्यारी स्त्री वा सुन्दर स्थानों को दान करके स्वर्ग को गया, राजा विदेहने निमिदेश को और परशुरामजीने पृथ्वी को और राजा षगय ने नगरों समेत पृथ्वी को ब्राह्मणों को दानमें दिया, वशिष्ठजी ने वर्षा न होने से सब जीवों को ऐसा जीवदान दिया जैसेकि ब्रह्माजी सबको जीव से रक्षा करतेहैं, करन्धम का पुत्र रुतात्मा अपनी मरुत नाम कन्या अङ्गिरा ऋषि को देकर शीघ्र ही स्वर्ग को गया, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ब्रह्मदत्त नाम पांचाल देश के राजा ने एकशंख धन उत्तम ब्राह्मणों को दान देकर उत्तम लोकों को पाया, राजा मित्रसह भी वशिष्ठजी के निमित्त दमयन्ती नाम प्यारी स्त्री को देकर उसके समेत स्वर्ग को गया, राजा सहस्रजित राजर्षि ब्राह्मणके निमित्त अपने प्यारे प्राणोंको त्याग कर स्वर्ग को गया, राजा शतद्युम्न सब अभीष्टों से पूर्ण सुवर्ण के महल मुद्गल ऋषि को दान दे करके स्वर्ग को गया, द्युतिमान् प्रतापी राजा शाल्व अपने देश और राज्यको ऋचीकमुनि को दान देकर उत्तम लोकको गया, लोमपाद राजर्षि अपनी शान्ता नाम पुत्री को शृङ्गीऋषिके अर्थ दान करके सब मनोरथों से पूर्ण हुआ, मदिराश्व राजा अपनी सुन्दरी कन्या को हिरण्यहस्त ऋषि को देकर देवताओंसे पूजित लोक को गया, बड़ा तेजस्वी राजा प्रसेनजित सवत्सा लक्ष गोदान करके उत्तम लोक को गया, यह और अन्य बहुत से महात्मा जितेन्द्रिय बुद्धिमान् राजा दान और तपके द्वारा स्वर्ग को गये, उनकी कीर्त्ति तबतक रहैंगी जबतक कि पृथ्वी नियत है इन सबों ने दान यज्ञ और सन्तान के उत्पन्न करने के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त किया ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकषाष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

बासठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि वेदों में वर्णन की हुई तीनप्रकार की विद्या को ऋग्, यजुः, साम और अथर्वण वेद के अक्षर और अंगों से विचार करे छओं ऐश्वर्य और कर्म्मोंमें प्रवृत्त परमेश्वर इन वेद आदि में नियत है जो पुरुष वेदवचनोंमें कुशल ब्रह्मविद्यामें पूर्ण बुद्धिमान् महाभाग हैं वह उस उत्पत्ति लय के स्थान ईश्वर को देखते हैं इसीप्रकार धर्मसे कर्म करे और उत्तम पुरुषोंके समान क्रिया को करे, सत्पुरुषोंसे विज्ञान प्राप्त करनेवाला श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ ब्राह्मण जीवोंके विना दुःखदिये अपनी जीविका को करे,जो सतोगुणमें नियत और लोकमें अपने धर्म से क्रियाकर्म को अच्छे प्रकारसे सिद्ध करनेवाला है वह गृहस्थी ब्राह्मण उन छः कर्म्मों में नियत होता है, वह श्रद्धावान् बुद्धिमान् सावधान जितेन्द्रिय धर्मज्ञ ज्ञानी ब्राह्मण बराबर पांच यज्ञों से पूजन करे हर्ष क्रोध अहंकार से रहित ब्राह्मण पीड़ा नहीं पाता है दान, वेदपाठ, यज्ञ, तप, लज्जा, शान्तचित्त इनसबगुणों के प्रत्यक्ष से तेज की वृद्धि करता है और पाप को दूर करता है पापरहित धारणा-बुद्धि का स्वामी अल्पाहारी जितेन्द्रिय पुरुष काम क्रोध को जीतकर ब्रह्मपद को प्राप्त करे और अग्नि ब्राह्मण देवताओं को प्रणाम करे, और अकल्याणरूप वचन और अधर्मयुक्त हिंसा को त्याग करे यह प्राचीन समयसे प्राप्त होनेवाली वृत्ति ब्राह्मण की कही जाती है, वेदान्त शास्त्रसे कर्मों को करता हुआ कर्मों में सिद्ध होता है, बुद्धिमान् पुरुष पंचेन्द्रियरूप जल लोभरूप किनारे क्रोधरूप कीचवाली दुस्तर नदी को तरता है वह अत्यन्त मोहनेवाली सदैव सब ओरसे वर्त्तमान काल और होनहार में दृष्टपड़नेवाले अविनाशी बड़े पराक्रम में भरे कर्म को देखे,स्वभावरूप नदीसे उत्पन्न होनेवाला विस्तृत संसार पूर्वोक्त पराक्रमसे बराबर मोहाजाता है, वह नदी वर्षरूप घेरेवाला बड़ाजल रखनेवाली है जिसमें महीना तरंग-ऋतु वेग-पक्ष लता और तृण हैं, पलक खोलना और बन्द करना फेण और रात्रि दिन जल हैं काम घोर ग्राह और वेद यज्ञ इत्यादि उसमें नौका हैं, धर्म द्वीप हैं और जीवों का अर्थ काम यह जल की गम्भीरता है, सत्यवचन कहना किनारा है वह नदी हिंसारूप वृक्षकी बहानेवाली है वह ब्रह्मसे प्रकट होती है इस नदी के द्वारा जीव यमलोक में खींच लिये जाते हैं, बुद्धिमान् धैर्य्यवान् पुरुष इस नदी को ज्ञानरूप नौकाओं से सदैव पार होते हैं और ऐसी नौका न रखनेवाले अज्ञानी क्या करसक्ते हैं इससे यही युक्तिसे सिद्ध हुआ कि

सिवाय ज्ञानी के दूसरा नहीं तरसक्ता क्योंकि ज्ञानी सबस्थान पर दूरसे ही गुणदोषों को देखता है, वह निर्बुद्धि अज्ञानी चलायमान चित्त कामात्मा पुरुष इस सन्देह को नहीं तरता है और जो वर्त्तमान है वह नहीं जाता है, नौका न रखनेवाला अज्ञानी पुरुष बड़े दोष को पाता है और कामरूप ग्राह के पंजे में फँसेहुये इस पुरुष को ज्ञान भी नौका नहीं है, इसकारण सावधान मनुष्य इस नदीसे पार होने के लिये बड़ा उपाय करे इसका तरना यही है कि ब्राह्मण होजाय अर्थात् महात्मा होजाय, और शुद्ध पुरुषों में संस्कारों के साथ उत्पन्न होनेवाला तीनों वेदका ज्ञाता तीन कर्म का अर्थात् कर्म, उपासना, ज्ञानका करनेवाला है इसीहेतु से नदी से निकलने के उपाय में प्रवृत्त होवे जैसे कि ज्ञान से पार होते हैं, संस्कारयुक्त जितेन्द्रिय सावधान चित्त ज्ञानी की सिद्धि इसलोक परलोक दोनों में होती है, किसी के गुणमें दोष न लगानेवाला क्रोधरहित गृहस्थी इन कर्मों में प्रवृत्तहो विघसान्नभोजी होकर सदैव पंचयज्ञों से पूजन करे और सत्पुरुषों के आचरण क्रियायुक्त अहिंसापूर्वक निन्दारहित जीविका को करे, जो शास्त्र और विज्ञानकी मुख्यताका ज्ञाता श्रेष्ठाचरण बुद्धिमान् अपने धर्मसे क्रियावान् है वह भी कर्मके द्वारा संकरधर्मको नहीं करता है, क्रियावान्, श्रद्धावान्, जितेन्द्रिय, ज्ञानी, अन्यमें दोष न लगानेवाला, धर्म्माधर्म्मका विवेकी, सब प्रकारसे पारहोता है धैर्य्यवान्, सावधान, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, बुद्धिमान्, हर्ष, शोक, क्रोध, अहंकारसे रहित ब्राह्मण भी अचेत नहीं होता है, यह ब्राह्मण की प्राचीन वृत्ति है कि ज्ञानभाव से कर्मों को करता हुआ सब स्थानों में सिद्धि को पाता है इस लोकमें धर्म का आकांक्षी अज्ञानी अधर्म को करता है अथवा वह शोचता हुआ अधर्मरूप धर्म को करता है और अधर्म को करके कहता है कि मैं धर्म करता हूं और अधर्म का चाहनेवाला धर्म करता है दोनों कर्मों को अच्छे प्रकार से न जानता वह देहाभिमानी निर्बुद्धि जन्मको लेता है और मरता है ॥३२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

तिरसठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि पूर्वकहे हुए साधन के पीछे जो पुरुष नीचे लिखीहुई शान्ति नाम कैवल्य मोक्ष को स्वीकार करे वह ज्ञानी ज्ञानरूप नौकारखनेवाला है धैर्य्यवान् और ध्यानजन्य साक्षात् कर्त्तासे निश्चय पानेवाले पुरुष ज्ञानरूप नौकाओं के द्वारा अज्ञानियों को तारते हैं और अज्ञानी किसी प्रकार से दूसरे

को नहीं तारसक्के न आप तरसक्के, रागादि दोषों से रहित स्त्री आदि के संग से पृथक् मुनियोग के बारह सहायकों का सेवन करे, प्रथम १ कंकड़, बालू, अग्नि इत्यादि दोषरहित निर्विघ्न शुद्धदेश में आसनजमावे–दूसराधर्म्म २ आहार, विहार, कर्म्म, सोना, जागना सामान्यहो–तीसरा धर्म्म ३ अच्छे शिष्य हों, योग्य धन, सामर्थ्य के अनुसार उपाय, रागादि से पृथक्ता, गुरु और वेदके वचनों में विश्वास, नेत्र आदि इन्द्रियां, शुद्धआहार, स्वाभाविक विषय, प्रवृत्ति का संकोच, संकल्प विकल्पात्मक चित्त जन्म मृत्यु जरारोग इत्यादि दोषों का दर्शन इन बारह पर इच्छावान् मुक्ति का चाहनेवाला पुरुष ध्यानकरे और मन, वाणी को बुद्धि से स्वाधीन करे इससे उत्तम ज्ञान प्राप्त होताहै–इसप्रकार बारह गुणोंसे युक्त अधिकारी को जो करना योग्य है उसको कहते हैं कि ज्ञानसे आत्मा को स्वाधीन करे इससे उसकी शान्ति अर्थात् कैवल्य मोक्ष होगी, अब योगफल को कहते हैं कि इनका साक्षी जो शान्त आत्मा है, उसी रूप को प्राप्त करनेवाला पुरुष या महापुरुष अथवा अविद्या असमता आदि पांच क्लेशों से शोधित हो वह इसरीति से महाअगम्य जरामृत्यु रूपसागर को तरता है, इस प्रकार इसयोग से जिसका फल शान्ता नाम मोक्ष की प्राप्ति है आत्मा को परमात्मा में मिलाता ज्ञान की इच्छा करनेवाला भी शब्दब्रह्म को उल्लंघन कर कर्म्मकर्त्ता होता है अर्थात् परोक्षज्ञानवाला भी अपने कर्म्म त्याग से उत्पन्न होनेवाले दोषों को नहीं पाता है, जिस रथ के सारथी के बैठने का स्थान यज्ञादिक धर्म्म है और श्रम वरूथ है और उपाय आसन और रागादि से पृथक्ता है अपान अश्व है–प्राण युग है–प्रज्ञा आयु है–जीव बन्धन है–शीलता उसकी नेमि है अर्थात् चक्रधारा है–देखना, स्पर्श करना, सूंघना और सुनना उस रथ के चारों घोड़े हैं शम, दम आदि गुणों में कुशलता उसकी नाभि है शास्त्र उसका चाबुक है और शास्त्रार्थ का निश्चय उसका सारथी है क्षेत्रज्ञ के अधिकार में नियत पराक्रम में पूर्ण श्रद्धा और चित्त की स्थिरता का धारण करनेवाला, त्यागी, नौकरों पर आज्ञा करनेवाला, मोक्ष का चाहनेवाला शुद्धमार्गगामी, ध्यानगोचर और जीवसे मिला हुआ दिव्य रथ ब्रह्मरूपलोक में विराजमान है, वचन आदि से सावधान पुरुष उन धारणाओं को प्राप्त करता है जो कि संख्या में सात हैं इन सातों धारणाओं से इंद्रिय और बुद्धि की धारणा अधिक हैं वह दोनों अहंकार में वर्त्तमान हैं, क्रमवाली बुद्धि के द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अहं

कार और अव्यक्तके ऐश्वर्य को प्राप्त करता है पांवसे जंघातक पृथ्वी का स्थान है और जंघासे लेकर गुदातक जल का स्थान है और गुदासे लेकर हृदय तक अग्नि का स्थान है और हृदय से भृकुटी पर्यन्त वायु का स्थान है और भृकुटी से मस्तक के अन्ततक आकाश का स्थान है पृथ्वी में (ल) लकार अक्षर के संयुक्त वायु को नियत करके संसारके कर्त्ता चतुर्मुख ब्रह्माजी को पांच घड़ीतक धारणा करके ध्यान करना इससे पृथ्वी विजय होती है, जलके स्थान में (व) वकार अक्षरसे संयुक्त प्राण को नियत करके पवित्र स्थान में पीताम्बरधारी शुद्ध स्फटिक के समान विष्णुजी को स्मरण करता पांचघड़ी धारणा करे उसधारणा के द्वारा सब इच्छाओंसे निवृत्त होता है, अग्नि में (र) रकार अक्षर से संयुक्त प्राण को नियत कर के तरुण सूर्य के समान प्रकाशमान तीन नेत्र रखनेवाले वरदाता भस्मधारी आनन्दमूर्त्ति रुद्रजी को स्मण करता पांचघड़ी धारण करे वह अग्निसे भस्म नहीं होता है, वायुमण्डल में (य) यकार अक्षर और ईश्वर से संयुक्त प्राणको पांचघड़ी धारणकरे वह वायु के समान आकाश में चेष्टा करनेवाला होता है, आकाशमें प्राण को नियत करके (ह) हकार अक्षरके ऊपर बिन्दुरूप आकाशस्वरूप महादेव आकाशमें नियत चित्तसे सदाशिवजी का ध्यान करे और एकमुहूर्त्ततक धारणा करे यहां लकार आदि बीजों के स्थान पर क्रमसे अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा और बिन्दुको नियत करेइससे अव्यक्त धारणमें छठवां नाद है उसके सन्मुख शुद्धब्रह्म शेष रहता है इसी प्रकार यहां भी प्रणव के द्वारा तीन२ प्राणायामों से ब्रह्मा आदि कार्यरूपों को अपने २ कारणमें लय करके अत्यन्त चित्तशुद्धि से नादके पास परमेश्वर को देखो और अहंकार की यह धारणा है कि स्थूलदेह से असंग होकर यह सब मैं ही हूं यह अभिमान होना अहंकार की धारणा कहलाती है, "तत्त्वमसि" आदि वचन से उत्पन्न होनेवाला विद्याके विना इस अहंकार की धारणा का लोप होना अव्यक्त धारणा है युक्तिसे योग में प्रवृत्त योगियों के मध्य में जिसयोगी के नीचे लिखेहुए अनुभवकर्म्म जिस रीति से प्रकट होते हैं उसको और अपनी देह के भीतर ध्यान करनेवाले योगी की योगसम्बन्धी पृथिव्यादि सिध्यर्थक नाम सिद्धि को वर्णन करता हूं प्रथम अनुभवकर्म्मों को कहता हूं जैसे कि गुरुकी बताईहुई युक्तिसे स्थूल देहके अध्यास को त्याग कर सूक्ष्मता से आत्मा के लिखेहुए रूपोंको देखता है उसीप्रकार देह से मुक्तपुरुष का पहिलारूप प्रकट होता है अर्थात् जैसे उस धुयें

के गुप्त होने से दूसरा रूप दर्शन जलरूप आकाश में होता है उसीप्रकार योगी अपने देह के भीतर देखता है जल के रूपान्तर में इसका अग्निरूप प्रकाश करता है उस अग्निके लय होनेपर वह वायु जो शत्रुरूप हो वृक्षस्थान पर्वतादिकोंको भी भक्षण करता है प्रकाश करताहै उसका रूप मकड़ी के तारके समान निराधार प्रकाशमान है, फिर वह योगी वायुजित होकर वायुसम्बन्धी सूक्ष्म श्वेत शुद्धस्वरूप को प्राप्त होता है भृकुटियों के मध्यसे लेकर मस्तक के अन्ततक आकाश का स्थान है उसमें मिलकर और लय होकर नीलरूप आकाशमात्र पहले के समान प्रकाश करता है जोकि मुक्ति की इच्छा करनेवाले पुरुषके चित्त को शुद्ध करनेवाला शास्त्रने वर्णन कियाहै, इनके शुद्ध होने पर जो फल उत्पन्न होते हैं वह मैं तुमसे कहता हूं, यहां शुद्ध होनेवाले योगी के पार्थिवऐश्वर्यों से यह संसार ऐसे धारण और पालन कियाजाता है, जैसे कि ब्रह्माजी देह के सब हाथ पांव आदि अंगों से सृष्टि को उत्पन्न करते हैं, वायु के गुण को प्राप्त करनेवाला अकेला योगी पृथ्वीको चलायमान करता है और आकाशरूप को प्राप्त करनेवाला सब स्थानों में वर्त्तमान होने से आकाश में प्रकाश करता है और स्वरूपसे गुप्त होजाता है अर्थात् अरूपतासे अन्तर्द्धान शक्तिको भी प्राप्त करताहै, अब जलके जीतनेके फल को कहते हैं कि वह जल रूप को प्राप्त करनेवाला योगी इच्छासे वापी कूप आदि को भी पीजाताहै इसके तेजों का रूप दृष्टि नहीं पड़ता है और शान्तता को भी प्राप्त होताहै जो ऊपर लिखेहुए क्रमसे पांचों तत्त्वों की विजय न हो तो भी अहंकारको विजय करनेसे पांचों स्वाधीन होजाते हैं, पांचों तत्त्व और छठे अहंकार के विजय होनेसे आत्मारूप बुद्धि में ऐश्वर्य्यवान् सात धारणा होती हैं इस योगी को संशय विपर्यय से रहित पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है, उसीप्रकार बुद्धि आदि रूप आत्माको ब्रह्मभावसे जानता है, यहलोक जिस हेतुसे ब्रह्मरूप को भूल जाता है उसीकारणसे इसका व्यक्त नाम होता है, इस स्थानपर तुम उस विद्या को जिसमें अव्यक्त प्रधान है मुझ से ब्यौरेवार सुनो कि योग और सांख्य शास्त्रमें पचीस तत्त्व कहेहुए हैं वह महत्तत्त्वसे लेकर विकारों पर्यन्त तेईस तत्त्वों के समूह को व्यक्त कहते हैं जो उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय, वृद्ध इन चार लक्षणों से संयुक्त हैं और जो इससे विपरीत अर्थात् जन्म वृद्धि आदि से रहित है उसको अव्यक्त कहते हैं और सांख्य शास्त्रवाले एकही जीवको प्रत्येक देह में पृथक् २ मानते हैं इस कारण उसकी मुख्यता को कहता हूं, दोनों जीव

ईश्वर वेदोंमें और सिद्धान्तों में ब्रह्मरूप कहे गये जीव तो कार्य की उपाधि है और ईश्वर कारण की उपाधि है इस श्रुति के अनुसार जीव ईश्वर के विभाग को कहते हैं कि व्यक्त नाम जीव को चार लक्षण की उपाधि रखनेवाला और उन चारों वग्गों का इच्छावान् कहते हैं और ईश्वर को माया से ढका हुआ कहते हैं इसी प्रकार वह दोनों का च्युत अच्युत नाम है अब श्रुति के अनुसार जीव ईश्वर के भेद को कहते हैं, यह दोनों जीव, ईश्वर, बुद्धि और क्षेत्रज्ञ नाम श्रुति से दिखाये गये हैं, वेदों में दोनों को आत्मा कहा है, विषयों में प्रीति करनेवाले की ओर से उत्पत्तिक्रम के विपरीत घट आदि विषयों को लय करना चाहिये तात्पर्य यह है कि अज्ञानियों की ही समझ से जीव ईश्वर का मुख्य भेद है परन्तु ज्ञानियों की बुद्धि से वह दोनों बिम्ब और प्रतिबिम्ब के समान हैं इससे प्रतिबिम्बरूप जीव के लय होनेपर चिह्नमात्र ही शेष रहता है, इसप्रकार तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त पुरुषों के लक्षणों को कहते हैं, समता और अहंकार से पृथक् सुख दुःख आदि योगों से रहित पुरुष जिसके कि सब संशय कटगये वह क्रोध नहीं करताहै और शत्रुता रहित होकर न मिथ्या वचन कहता है, न किसी को शाप देताहै और कठोर वचन, हिंसात्मक कर्म और चित्त से दूसरेकी बुराई इन तीनोंको त्याग करता है, सब जीवों में समदर्शी ज्ञानी ईश्वरकी ओर तदाकार होजाता है इच्छावान् भी अनिच्छावान् है अर्थात् केवल शरीर के निर्वाह के लिये दूसरे विषयों को त्याग करके मुख्य विषय में वर्त्तमान है, निर्लोभ पीड़ा रहित जितेन्द्रिय कर्म से निवृत्त और पूर्ण वस्त्रसे युक्त देह होता है इसकी इन्द्रियां इकट्ठी होती हैं और सत्यसंकल्प होताहै सब जीवों का मित्र सुवर्ण मृत्तिका को समान माननेवाला धैर्यवान् प्रिय अप्रिय और निन्दा स्तुतिको बराबर जाननेवाला सब मनोरथोंसे अनिच्छावान् ब्रह्मचर्य्यका दृढ़ व्रतर खनेवाला हिंसारहित वेदान्ती मुक्त होता है, योगके द्वारा जिन हेतुओं से मुक्त होते हैं उनको समझो कि जो योगके ऐश्वर्य को उल्लंघन करनेवाला होजाताहै वह मुक्तहोताहै सांख्य वा योग दोनों फल में समान हैं इसको वर्णन किया इसप्रकार करने से निर्द्वन्द्व हो ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चौंसठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि सांख्य और योग के मध्यमें सांख्य ही कल्याणकारक है

इसको वर्णन करते हैं कि इस संसारसागर में गोते खाता और उछलता ध्यानी पुरुष ज्ञानरूप नौका को पकड़कर अपनी शान्ति अर्त्थात् मोक्ष के कारणरूप ज्ञान को ही आश्रय करे, शुकदेवजी बोले कि, मैं उसज्ञान को समझना चाहता हूं कि वह प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म है वा निवृत्तिवाला है जिसप्रकार कि दोनों जन्म मरण को बराबर तरता है उसी प्रकार उसको भी वर्णन कीजिये, इस स्थान में "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूं इस अनुभव के होनेपर जड़ अहंकार और उसका प्रकाश वर्णन कियेजाते हैं वह दोनों आत्मा हैं यह भट्टों का वर्णन है, अहंकार का अर्थही आत्मा है प्रकाश उसका गुण है वह भी तीनक्षण नियत रहनेवाला है यह तर्कशास्त्रवालों का सिद्धान्त है और आत्मा ही सदैव प्रकाशमान है अहंकार का अर्थ आत्मा नहीं है यह सांख्यमतवालों का सिद्धान्त है आत्मा और अनात्मा में अनात्मा नियत है और देहके नाश में चिदात्मा का नाश होजाताहै यह बौद्ध लोगों का मतहै, आत्मा ही सत्यहै अनात्मा मिथ्या है यह वेदान्तवादियों का सिद्धान्त है और दोनों नहीं है यह शून्यवादी कहतेहैं इससे आत्मा का अभाव होने में ज्ञान निरर्थक होजाय इसनिमित्त उसमें दोष लगाने को व्यासजी बोले कि जो पुरुष अहंकार आदि को विना आत्मभावके प्रकाश करनेवाला देखता सब शिष्यों को जिनकी युक्तियां ज्ञानसे रहितहैं इसप्रकारके ज्ञान से उपदेश करके तृप्त करता है वह अज्ञानी है, अब आत्मा के नाश नाम बौद्ध के सिद्धान्त को दोष लगाते हैं कि जिन बौद्धों के पूर्ण निश्चय के साथ स्वभावही कारण मानागया अर्थात् दही आदिका कारण दूधहै न कि अदृष्ट ईश्वरकी कृपाहै क्योंकि प्रत्यक्षमें वह नहीं दिखाई देती इसस्थानपर कहते हैं कि वह बौद्ध मूंजको शुद्धकर उसके भीतर वर्त्तमान पहिले न देखीहुई सींक को भी नहीं पातेहैं क्योंकि मूंज में वर्त्तमान सींक भी दृष्ट नहीं पड़ती है अथवा द्वितीय पाठ में देह से पृथक् आत्मा को कहते हैं कि वेद में लिखाहै कि आत्मा को देह से भिन्न ऐसे जाने जैसे कि मूंज में सींक होती है, इस वेदवचन को ऋषियोंके सन्मुख सुनकर कुछ तत्त्वको नहीं पातेहैं किन्तु आचार्यों की उपासना न करनेवाले आप ही ऐसी कल्पना करते हैं, स्वभाव से ही शून्य में संसारकी भ्रांति है और स्वभाव से ही देहादि की उत्पत्ति है यह दोनों पक्ष भी निरर्थक हैं इसको कहते हैं—जो अल्पबुद्धि मनुष्य इसपक्षका आश्रय लेकर और स्वभावको कारण जानकर वर्त्ताव करते हैं वह कल्याण को नहीं पाते हैं, मोहसे उत्पन्न जो

वित्तहै उससे पैदा होनेवाला स्वभाव नाशवान् है आंपस्वभाव सत्ताका कारणहै यह एक पक्ष हुआ और अपना और दूसरों का भाव कारण है यह दूसरा पक्षहै, इन दोनों का न कहनाही सिद्धान्त है इसलोक में कृषिकर्मादि में खेती का काटना, सवारी, आसन और घर बुद्धिमान् से विचार कियेगये आशय यह है कि जो स्वभावही कारणहै तो इसदशामें बुद्धिकी चतुरता निष्फलहुई, ज्ञानियों के आज्ञाकारी ज्ञानी पुरुष ही क्रीड़ास्थान घर और रोगों की औषधि को तय्यार करनेवाले हैं, बुद्धि अर्थों से संयुक्त करती है और कल्याण करती है इसीसे बड़े २ अर्थों को भोगनेवाले राजालोग राज्यकरते हैं, जीवों से श्रेष्ठ चैतन्य आत्मा और माया को ज्ञानही से जानते हैं हे पुत्र! विद्यासे उत्पन्न होनेवाले जीवों के लय होनेका स्थान विद्याही है, इसप्रकार बुद्धिरूप उत्पत्ति और लयको कहकर व्यवहारको कहते हैं नानाप्रकार के सबजीवों के इन अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज के चारोंप्रकार की उत्पत्ति को देखे और विचारकरे, जंगमजीवों को स्थावर जीवों से उत्तमजाने जो इन जड़ चैतन्य जीवों में चेष्टा होती है उनको बड़ी रक्षा से मुख्यता देवे अर्थात् वृक्षआदि में देखना और सुनना आदि सिद्ध होता है परन्तु कभी प्रत्यक्ष दृष्ट नहीं आते और वह गुण चेष्टावान् मनुष्यादि में प्रकट हैं इसकारण वह उनसे उत्तम हैं, चैतन्यजीवों के बहुत से पैर और दो पैर कहे बहुत पैरवालों से दो पैरवाले उत्तम हैं दो पैरवाले भी दो प्रकार के हैं एक पृथ्वीपर रहनेवाले दूसरे नभचारी उनमें पृथ्वी के रहनेवाले उत्तम हैं वह अन्नों को भोजन करते हैं वह पृथ्वी के दो पैरवाले भी दो प्रकार के हैं मध्यम और उत्तम उनमें जातिधर्म्म के धारण करने से मध्यम उत्तम हैं मध्यम भी दो प्रकार के हैं धर्म्मज्ञ, और अधर्म्मज्ञ, उनमें योग्यायोग्य कर्म्म के जानने से धर्म्मज्ञ उत्तम हैं, धर्म्मज्ञ पुरुष भी दो प्रकारके हैं वेदज्ञ और अवेदज्ञ, उनमें वेदज्ञ श्रेष्ठ हैं क्योंकि उनमें वेद प्रतिष्ठावान् है वेदज्ञों के भी दो भेद हैं वेदार्थज्ञाता, और अज्ञाता, उनमें वेदार्थज्ञ सब धर्म्मोंके धारण करने से उत्तम है जिनके द्वारा वेद में धर्म्मयज्ञ और फल विदित होते हैं क्योंकि सब वेदधर्म्मों के साथ वेदार्थज्ञाताओं से जारी कियेगये, अब उत्तमोंका निर्णय करने को मध्यमों में भी उनकी गणना कराते हैं वेदार्थ जाननेवालों को दो प्रकार का कहा, आत्मज्ञानी और अनात्मज्ञानी उत्पत्ति और नाश के जानने से आत्मज्ञानी उत्तम हैं जो पुरुष दोनों धर्म्मों को जानताहै वह सर्वज्ञ और ब्रह्मज्ञानी है वह संन्यासी ही सत्य सं-

कल्प,पवित्रात्मा और ईश्वर है, देवताओं ने उस ब्रह्मज्ञान में नियत वेद शास्त्रों में, पूर्ण परब्रह्म में निश्चय करनेवाले को ब्राह्मणजानाहै हे तात ! ज्ञानी पुरुष उस दूसरे के चित्त में बाह्याभ्यन्तर नियत को अध्यग और अधिदैव समेत देखते हैं वही ब्राह्मण और देवताहैं यह विश्व उनमें प्रकट हुआ है और वर्त्तमान है अर्थात् वह सब उनके आधाररूप हैं उनके माहात्म्य की समानता किसी से नहीं होसक्ती वह ब्रह्मरूप सबप्रकार से श्रेष्ठ अन्तमें मृत्यु और कर्म्म को उल्लंघन करके सब चारप्रकार की सृष्टिके ईश्वर हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पैंसठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि जो पुरुष विना आत्मज्ञान के दान तप आदि कर्म्म को हज़ारों वर्षतक करता है वह दान आदि नाशवान् होता है इसकारण आत्मा का आकांक्षी उसकी प्राप्तिके लिये कर्म्म करे, यह प्राचीनवृत्ति ब्राह्मण की कही जाती है और ज्ञानीपुरुषही सब स्थानोंपर कर्म्मों को करता है और सिद्धि को पाता है, जो इसकर्म्म में निस्संदेह हो ऐसी दशा में कर्म करना सिद्धि के ही निमित्त होता है चाहै वह कर्म स्वभाव है अर्थात् नित्य है, अथवा ज्ञान उत्पन्न करनेसे सफलहै इस संदेहके होने पर जो ब्राह्मण की ओर से उस पुरुष को ज्ञान उत्पन्न करनेवाला कर्म उपदेश कियाजाय तब वह वेद बुद्धि होजाती है अर्थात् आत्मज्ञान के लिये जो कर्म कियेगये उनसे भी सिद्धि होती है इन ईप्सित और अनीप्सित कर्मों की मुख्यता को सुनो कि बहुत से मनुष्यों ने इस जन्म और पिछले जन्मके कर्मों को कारण कहा है कोई दैव को कोई स्वभाव को कारण कहते हैं इस वर्णन से मीमांसक कालवादी शून्यवादी और बौद्धों के मतों को कहकर उनके विकल्प और समुच्चय को कहते हैं कि दृष्टादृष्ट, उपाय कर्म और दैव यह तीनों कालवृत्तियां शोभासे पृथक् २ हैं अर्थात् उनमें एकही प्रधान है दूसरा कोई नहीं है उनके समुच्चय को कहते हैं, अब आर्हत मत को सुनो कि जीवों के अनेक प्रकार होने का क्या कारण है इसको कहें कि इसप्रकार का है सो नहीं कहसक्ता क्योंकि यह वाणी के विषय से दूर है तो यह भी इसप्रकार से नहीं कहसक्ते क्योंकि वह वाणी के विषय से पृथक् नहीं है, और दोनों हैं यह भी नहीं कह सक्ते और यह भी नहीं कहते कि वह दोनों कर्म दैव नहीं हैं क्यों कि दोनों से पृथक् कारण नहीं है वह आर्हत मतवाले सत्त्वस्थ नाम हैं, रजो

गुण तमोगुण से पृथक् अन्तःकरणवाली संप्रज्ञात दशा में नियत होकर योगी ब्रह्म को कारणरूप देखते हैं त्रेता द्वापरमें और कलियुगमें मनुष्य संदेह रखनेवाले होते हैं सब यज्ञों में तपस्वी तीनोंवेद ऋग् यजुः में भी भेद न देखनेवाले सब आदमी कामद्वेष रहित होकर तपस्या को करते हैं इसीकारण जो पुरुष तपधर्म युक्त सदैव तपनिष्ठ और श्रेष्ठ व्रत रखनेवाला है वह सब इच्छाओं को प्राप्त करता है, तप से उस ब्रह्म को पाता है जो ब्रह्मस्वरूप होकर संसार को उत्पन्न करता है, वह ब्रह्मरूप होनेवाला सब जीवमात्र का स्वामी होता है, वह ज्ञान क्या है, विद्या या कर्म से उत्पन्न होनेवाला या नाशवान् आत्मा इन में से पिछला स्वभाव के अपमान करने से त्याग किया है पहले में प्रमाण को दिखाकर मध्यवाले को त्याग करते हैं वह ब्रह्म कर्मकाण्डों में भी कहा है तौ भी अज्ञात रहा, फिर वेददर्शियों ने वेदान्त शास्त्रों में विद्या से प्राप्त होनेवाले उस ब्रह्म को प्रत्यक्ष वर्णन किया वह ब्रह्म कर्मयोग में दृष्ट नहीं आता अर्थात् भृंगीकीट के न्याय से ब्रह्म की उपासना के द्वारा ब्रह्मभाव की प्राप्ति कहना उचित नहीं है, हिंसात्मक यज्ञ करनेवाले क्षत्रिय और हव्यसे यज्ञ करनेवाले वैश्य और सेवारूप यज्ञ करनेवाले शूद्र और जपरूप यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण कहे हैं, ब्राह्मण जप यज्ञादि कर्म से ही निवृत्त होता है जपके विशेष दूसरा कर्म करे या न करे क्योंकि ब्राह्मण (मैत्र) वर्णन कियाजाता है अर्थात् सबका मित्र कहा जाता है, त्रेतायुगके प्रारम्भ में केवल वेद, यज्ञ, वर्ण और आश्रम थे यह द्वापर युग में अवस्था की न्यूनता से प्रकारता को प्राप्त करते हैं वह वेद द्वापर और कलियुग में उपद्रवता से कलियुग के अन्त में दृष्ट आते हैं और नहीं भी आते हैं वहां अधर्म से पीड़ित अपने धर्म नाश होजाते हैं गौ, पृथ्वी, जल और सिद्धियों के जो रस हैं वह भी नष्टता को पाते हैं, वेद, वैदिकधर्म, और आश्रम अधर्म से गुप्त होजाते हैं, आश्रम दानलेने से स्थावर जंगम वस्तु लाभ के लिये बेंचीजाती हैं जैसे कि वर्षा सब पृथ्वी के जीवों को प्रसन्न करती है उसी प्रकार वेद प्रत्येक यज्ञ में सब ओर से वेदपाठियों के योगांगों को प्रकट करते हैं, जो सत्य यज्ञ आदि का रूप धारण करनेवाला जीवात्मा है उसका नानाप्रकार का होना निश्चय किया है कि वह आदि अंत रहित है और जो प्रथम मैंने तुझसे कहा वही सृष्टि को उत्पन्न करता है तात्पर्य यह है कि जीव तत्पदार्थ से पृथक् नहीं है, जो यह जीवों की उत्पत्ति और लय का स्थान है वही सबका स्वामी

और अन्तर्यामी हैं, सुख दुःखादि से रहित बहुत से जीव ब्रह्मभाव से उसी में वर्त्तमान होते हैं, काल ही उत्पत्ति, धैर्य, वेद, क्रिया का कर्त्ता और क्रियारूप है हे तात ! जो तैंने पूछा वह सब मैंने कहा ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

छयासठवां अध्याय ॥

अब सांख्य और योग के अन्तर को छयासठ और सड़सठ अध्याय में वर्णन करते हैं ॥

भीष्मजीबोले कि हे युधिष्ठिर ! इसप्रकार महर्षि व्यासजी से सुनकर श्रीशुकदेवजी ने उनके वचनों की प्रशंसा करके मोक्षधर्म के सम्बन्धी इस प्रश्न को व्यासजी से पूछा कि बुद्धिमान् वेदपाठी यज्ञकर्त्ता ज्ञानी और परनिन्दारहित पुरुष उस ब्रह्म को कैसे पाता है जो कि वेद और प्रत्यक्ष अनुमानों से भी जाना नहीं जाता है और जिस युक्ति से पुरुषों को चित्त और इन्द्रियों की अविकारता प्राप्त होती है उसको भी आप वर्णन कीजिये, व्यासजी बोले कि कोई पुरुष विद्या, तप, इन्द्रिय निग्रह और सर्व त्याग किये विना किसी प्रकार से सिद्धि को प्राप्त नहीं होसक्ता है, सब महाभूत प्रथम ब्रह्माजी की उत्पत्ति अथवा जीवों की उत्पत्ति से पृथक् हैं वह जीवात्माओं के समूह के मध्य देहाभिमान रखनेवाले अज्ञानीजीवों में बहुत प्रविष्टहैं अर्थात् इन अज्ञानियोंने उनको आत्मारूप मानरक्खा है, पृथ्वी से देह, जल से रस, अग्नि से नेत्र, व्यान वायु प्राण, अपान में आश्रित है और देह के कर्णादि छिद्रों में आकाश वर्त्तमान है, योग के मत से आत्मा भोक्ता है कर्त्ता नहीं है, और सांख्य के मत से न भोक्ता है न कर्त्ता है उनमें से पहले को दूसरे का सिद्धान्त रूप प्रकट करने को दोष लगाते हैं कि पाद इन्द्रिय में विष्णु, पान इन्द्रियमें इन्द्र, उनको कर्म्म में प्रवृत्त करनेवाले नियत हैं, जिसप्रकार राजा के रथ आदि के पास युद्धकर्त्ता वर्त्तमान हों वहां युद्धकर्त्ताओं में वर्त्तमान जिसप्रकार हारजीत को और रथ में वर्त्तमान वृद्धि और हानि को अभिमान से राजा अपने में नियत करता है उसीप्रकार चैतन्य आत्मा देवता और इन्द्रियों में वर्त्तमान भोक्तापन आदि को अज्ञान से अपने में नियत करता है कि मैं भोगी आदि हूं जैसे कि नौकर में उसका अभिमान न होने से हार जीत नहीं होती उसी प्रकार विष्णु आदि में भोग भी नहीं है आत्मा में उसका दृष्ट पड़ना अज्ञान से है इस वर्णन से आत्मा का कर्त्ता और भोक्ता न होना निश्चय हुआ स्थानरूप दोनों कानों में दिशा देवता और श्रोत्र

इन्द्रिय और जिह्वा में वाक् इन्द्रिय और उसकी देवता सरस्वती देवी वर्त्तमान है, दोनों कान, त्वचा, दोनों नेत्र, जिह्वा और पांचवींनाक यह इन्द्रियां दर्शन आदि विषय प्राप्त करानेके लिये द्वार हैं, शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गन्ध इन विषयों को सदैव इन्द्रियों से पृथक् जाने चित्त इन्द्रियों को अपने २ कर्म्म में ऐसे प्रवृत्त करता है, जिसप्रकार सारथी अपने अधिकार में नियत होकर घोड़ों को चलाता है उसी प्रकार हृदय में नियत जीवात्मा सदैव चित्त को कर्म्म में प्रवृत्त करता है जैसे चित्त इनसब इन्द्रियों का ईश्वर है उसी प्रकार इस चित्त के उत्पत्ति और नाश में जीवात्मा समर्थ है, इन्द्रियां उनके विषय, स्वभाव, बुद्धि की वृत्ति, चित्त,प्राण,अपान और जीव सदैव जीवों की देह में वर्त्तमान रहते हैं बुद्धिका आश्रय जो पहिले देहको कहा वह भी नहीं है क्योंकि वह देह भी स्वप्नदशा के समान है फिर उसका आश्रय और स्वरूप क्या है, मूल प्रकृति ही उस अपनी रूपान्तर रखनेवाली शब्दमात्र स्वरूपवाली बुद्धिका आश्रय है, चिन्ता उस बुद्धिका स्वरूप और आश्रय नहीं है चाहे गुण बुद्धि के ही धर्म्म हो परन्तु यह पुरुष सात्त्विकी और राजसी है उसकी उपाधि से संयुक्त पुरुष में यह कहना सम्भव है इस शंका को कहते हैं–तेज बुद्धि को उत्पन्न करता है गुणों को नहीं करता है इससे वह आदि रहित वासना बुद्धि का कारण है गुण नहीं है यह सात्त्विकी है यह कहना परम्परा से भी होताहै, जो चित्तको स्वाधीन करनेवाला है वह ब्राह्मण देहमें सत्रहवीं चैतन्य आत्माको जो कि सोलहगुण संयुक्तहै चित्त के द्वारा बुद्धि में देखता है, यह आत्मा आंख और सब इन्द्रियों सेभी देखने के योग्य नहीं है, यह बड़ा आत्मा प्रकाशमान चित्तके द्वारा प्रकाश करताहै, उस शब्द,रूप, रस, गन्ध, स्पर्शसे रहित अविनाशी स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म देहों से पृथक् इन्द्रिय रहित आत्माको मरण धर्म्मवाले शरीरों में देखे, जो पुरुष मरण धर्म्मवाले सब देहों में नियत अव्यक्त आत्मा को गुरु और वेद के वचनों के अनुसार देखताहै वह देहत्याग के पीछे पूर्ण ब्रह्मभाव के निमित्त कल्पना किया जाताहै,पण्डितलोग गौ, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल और विद्या कुल शिष्य आदि रखनेवाले ब्राह्मणमें ब्रह्मकोही देखते हैं,वही अकेला बड़ाआत्मा जिससे यह सब संसार उत्पन्न हुआ है सब स्थावर जंगम जीवों में निवास करता है, अब योगफल को कहते हैं जब भूतात्मा जीव जीवमात्रों में आत्मा को देखता है अर्थात् यह सब मैं हीं हूं यह अनुभव करता है और सब जीवों को आत्मा में देखता है

तब वह ब्रह्मभाव को पाता है, वेदवचन अपने स्वरूप में देशकाल से जितने रूपवाला है उतनाही जीव अपने स्वरूप में है क्योंकि वेद में लिखा है कि ब्रह्म जहांतक कि नाना प्रकारके रूपोंसे वर्त्तमान है उतनाही वेदवचन है जो पुरुष सदैव इस प्रकारसे जानताहै वह अविनाशी होने को कल्पना किया जाताहै, जो सब जीवों का आत्मा और हितकारी हुआ उस अव्यक्त मुक्त पुरुष के मार्ग को देवता भी निश्चय करते २ मोह को प्राप्त होते हैं जैसे आकाश में पक्षियों का और जल में जलजीवों का मार्ग दृष्ट नहीं पड़ता उसीप्रकार ज्ञानमार्ग है, अर्थात् प्रकृति का जितना सामान है वह सब क्रमसे लय होकर अचल वा अनन्त आत्मा बाकी रहजाता है फिर उसका क्या मार्ग होगा, काल अर्थात् जीवात्मा सबभूतों को आप अपनी आत्मा में लय करता है और जिसपरमात्मा में वह कालरूप जीवत्मा लय होता है उसको यहां कोई नहीं जानता है, वह परमात्मा ऊंचे नीचे तिरछे बायें दाहें नहीं है न कोई वस्तु है न यह कहसक्के कि वह कहां से और कहांतक है तात्पर्य्य यह है कि किसी मुख्य स्थान का प्राप्त होना मुक्ति नहीं है यह सब संसार के लोग मुक्तिस्वरूप के मध्य में वर्त्तमान हैं इन लोकों के मध्य में कोई स्थान उससे बाहर नहीं है जो प्राप्त करने के योग्य हो, अगर धनुष से निकले हुये बाण के समान बराबर चलाजाय तो भी ब्रह्म की सन्निकटता को नहीं प्राप्त होसक्ता और जो चित्त के समान शीघ्रगति हो तो भी उस सूक्ष्म से सूक्ष्म नहीं है न इससे कोई स्थूल से स्थूल है, वह सबओर हाथ, पैर, आंख, शिर, मुख, कानयुक्त लोक में सबको ढककर वर्त्तमानहै वही लघु से भी लघुतम है और वृद्धों का वृद्ध है सब जीवों में वर्त्तमान दृष्ट नहीं आताहै, यह आत्माका भाव क्षर अक्षर के नाम से दो प्रकारका है वही क्षर सब स्थावर जंगम जीवों में वर्त्तमान है और अक्षर भी दिव्य और अमृतरूप है और सब जड़चैतन्य जीवों का ईश्वर है सब उपाधि दोषों से रहित अचल आत्मा नवद्वारवाले पुर को पाकर हंसरूप होजाता है वह नवद्वार यह हैं महत्तत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, अविद्या; कर्म्म, पुर को प्राप्त होकर हंसरूप इस प्रकार से होताहै कि तत्त्वज्ञानियों ने अजन्मा परमेश्वरके देह में वर्त्तमान और उन महत्तत्व से सम्बन्ध रखनेवाले गति दुःख आदि और मनुष्य हैं वा पशु हैं यह कल्पना है इन बातों के इकट्ठे होने से हंसभाव को कहा, इस प्रकार आत्मा से क्षर अक्षर की उत्पत्ति और अक्षरके द्वारा क्षर की गति आदि को कहकर तत्त्वमसि

वाक्य की सिद्धि के साथ ज्ञानी की उपाधि न होने से उसकी गति का न होना वर्णन करते हैं कि जो जीव नाम अक्षर हंसशब्द करके कहागया वह रूपान्तर दशा से रहित अविनाशी ब्रह्मही है इस कारण ज्ञानी हंस उस रूपान्तर दशा से रहित परमात्मा को पाकर प्राण और जन्म को त्याग करता है ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सड़सठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि इसप्रकार सांख्यतत्त्व को कहकर योगियों का कर्म्म वर्णन करते हैं कि हे श्रेष्ठपुत्र! यहां सांख्यज्ञानसे संयुक्त जो यह ज्ञान मैंने तुमसे कहा सो सांख्यशास्त्र से उत्तम दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है फिर योगकर्म वर्णन करने से क्या प्रयोजन है यह शंका करके योगमत में ज्ञानशब्द के अर्थ को कहते हैं सब इन्द्रिय और चित्तबुद्धि की ऐक्यता और सर्व्वव्यापी आत्मा का ज्ञान यह श्रेष्ठ है यह ज्ञान चित्त के जीतनेवाले निष्ठावान् आत्मा में प्रीतिमान् तत्त्वज्ञ, शास्त्र, यम, नियम आदि युक्त पुरुष से जानने के योग्य है, जो कि योग के पांचों दोषोंको जिनको पण्डितोंने वर्णन किया है नाश करके जान सक्ता है वह पांचों यह हैं कि काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न, शान्तता से क्रोध को और संकल्प के त्यागनेसे काम को जीतता है और बुद्धि के विचार से धैर्यवान् पुरुष स्वप्न को और अपने धैर्य्यसे लिंग, उदर और दुष्टकर्म्मोंसे रक्षा करे और हाथ पांव को नेत्र के द्वारा और नेत्र कानों को स्त्री आदि के देखने से और मन वाणी को यज्ञादिसे भय को सावधानीसे और कपट वा शठता को ज्ञानियोंके सत्संग से रक्षा करे, सावधान पुरुष सदैव इस प्रकार इन योगके दोषों को विजय करे और अग्नि ब्राह्मण का पूजन करे देवताओंको नमस्कार करे और हिंसायुक्त चित्तके बिगाड़नेवाले कामप्रधान वचन को त्याग करे, ब्रह्मज्ञान सेही मुक्ति प्रसिद्ध है केवल बुद्धि केही विरोध से मुक्ति नहीं होती यह शंका करके ब्रह्मशब्द के अर्थ को कहते हैं—बीजरूप प्रकाशमान सतोगुण प्रधान जो महत्तत्त्व है वही ब्रह्म है उसीब्रह्म का यह सब सारभूत है इस भूत का दृष्ट करनाही सब जड़चैतन्यों का प्रकट होना है, ध्यान,वेदपाठ, सत्यता, श्रम, शुद्धभाव, संतोष, पवित्रता, बाहर भीतर से आचारनिष्ठ, शांतचित्त इन गुणोंसे तेज की बड़ी वृद्धि होती है, और पाप निवृत्त होताहै और सब इच्छा पूर्ण होकर तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है और राग द्वेषरहित अनायास प्राप्ति से तृप्त निष्पाप तेजस्वी अल्पाहारी जितेन्द्रिय पुरुष

काम क्रोध को आधीन करके महत्तत्त्व का लयस्थान प्रकृति को आधीन करे वह सावधान चित्त इन्द्रियों को एकाग्र करके अर्थात् चित्त को विषयों से हटाकर बुद्धि में धारण करे अर्थात् संकल्परूप चित्त को रोंके, इन्द्रियों के न रोकने में दोषों को कहते हैं जो इस पांच इन्द्रिय रखनेवाले जीवात्माकी एक इन्द्रिय छिद्ररूप हो उस छिद्र से उसकी शास्त्रजन्य बुद्धि ऐसी गिरती है जैसे मसक से जल गिरता है, योगी पुरुष प्रथम चित्त को ऐसे आधीन करे जैसे कि मत्स्यघाती जाल तोड़नेवाली मछली को करता है–तदनन्तर यती हो इन सब चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण आदि को रोककर चित्त में नियत करे, और संकल्पों को त्याग करके चित्तको बुद्धि में धारण करे, और पांचों इन्द्रियोंको चित्त में धारण करे जब यह पांचों इन्द्रियां और छठा मन बुद्धि में नियत होते हैं और नाशवान् स्वरूप होकर संकल्प से उत्पन्न होनेवाली प्रवृत्ति को त्याग करते हैं, तब ब्रह्म प्रकाश करता है,जहां आत्मा सूक्ष्मरूप बुद्धि में दृष्ट पड़ताहै वहां सब रूप सर्वव्यापी होने से दिखाई देता है, उसको वह महात्मा ब्राह्मण देखते हैं जो कि बुद्धिमान् धैर्यवान् महाज्ञानी सब जीवों की वृद्धि में प्रवृत्त हैं, इसप्रकार श्रेष्ठ नियमवाला योगी नियत समयमें कर्म्म करता और एकांत में अकेला बैठा हुआ शुद्ध आत्मस्वरूप की ऐक्यता को प्राप्त होता है–अब योग के विघ्नों को कहते हैं, बड़े मोह भ्रम इन दोनोंको स्पर्श करनेवाला विषय दिव्यगन्धका प्राप्त करना, सुनना, देखना, अपूर्वरस, स्पर्श, शीत, उष्ण, वायु के समान शीघ्रगामीपने को और योगबल से सब शास्त्रों के अर्थ का ज्ञान दिव्य स्त्रियों के भोग आदि को पाकर वह तत्त्वज्ञानी उनको भी तुच्छ समझकर बुद्धिमेंही लय करे आशय यह है कि बुद्धि से कल्पित होने पर उनका लय बुद्धिमें भी होना उचित है जितेन्द्रिय मुनि शिखर पहाड़, दृढ़मूलवाले वृक्ष अथवा अन्य वृक्ष के नीचे आसन जमावे और तीनों काल योग का अभ्यास करे, जैसे पात्रों का चाहनेवाला मनुष्य पात्रों की रक्षा करता है उसीप्रकार एकाग्रता करनेवाला इन्द्रियों के समूह को हृदयकमल में नियत करके सदैव ध्यान करे और योग से चित्तको भयभीत न करे, जिस युक्ति से इस चंचल चित्तको वशमें करे उसीको सेवन करे और तद्रूप होकर उससे चलायमान न हो, वह सावधान योगी निवास के लिये जीवों से रहित पहाड़ीगुफा और देवताओं के मकान और उजड़े स्थानों को प्राप्त करे और दूसरे का संग कर्म वचन चित्त से भी न करे उदासीन वृत्ति स्वल्पाहारी और हानिलाभ में

और निन्दा स्तुति में एकचित्त रहै लाभ में प्रसन्न न हो हानि में शोच न करे वायु के समान सब जीवों में समान धर्मी होवे, इसप्रकार सावधानचित्त साधु समदर्शी सदैव योग में छः महीने तक प्रवृत्त मनुष्य का शब्दब्रह्म अपने अर्थ का अपरोक्षज्ञान करने से अत्यंत प्रकाश करता है सुवर्ण पाषाण को समान जाननेवाला योगी धन की प्राप्ति में पीड़ित मनुष्यों को देखकर धन के प्राप्त करने में प्रीति न करे और अज्ञान न हो, इसमें श्रद्धावान्ही अधिकारी है इसका वर्णन करते हैं कि इस शांतचित्तरूप योगमार्ग से शूद्र और धर्म्म जाननेवाली स्त्रियां भी परमगति को पाती हैं आशय यह है कि तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यों के अर्थ विचाररूप वेदान्त में तीन वर्ण अधिकारी हैं परन्तु शांतचित्तरूप योगमार्ग में स्त्री और शूद्र भी अधिकारी हैं चित्त और बुद्धि से संयुक्त अचल इंद्रियों के द्वारा जो पायाजाय वह अजन्मा पुराण और विपरीत दशा से रहित शांत सूक्ष्म से भी सूक्ष्म वृद्धसे वृद्ध अनंतरूप है, चित्त का जीतनेवाला पुरुष उस बुद्धि से मुक्तिको देखता है अब कर्म्ममुक्ति को कहते हैं कि बुद्धिमान् पुरुष इस वर्णन किये हुये महात्मा महर्षि के वचन को ध्यानसे शब्द और अर्थयुक्त उपदेश जानकर और युक्तिसे विचारकर महाप्रलय तक ब्रह्माजीकी सारूप्य मुक्ति को पाते हैं, आशय यहहै कि परोक्ष ज्ञानवाले शुद्धचित्त पुरुष ब्रह्माजी के साथ एकसे भोगवाले होकर महाप्रलयपर ब्रह्माजी के साथ मुक्त होते हैं और अपरोक्ष ज्ञानवाले ३४ श्लोक के अनुसार निर्गुण ब्रह्म के समता को पाते हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अड़सठवां अध्याय ॥

अब ब्रह्मविद्या समाप्त हुई और कर्म्मों के साथ उसका समुच्चय खण्डन करने को शुकदेवजी ने प्रश्न किया कि यह जो वेद का वचन है कि कर्म्म करो और त्याग करो इस ब्रह्मज्ञान से किस दशा को जाते हैं और कर्म्म से किसको प्राप्त करते हैं यह दोनों वचन परस्पर में विरुद्ध से मालूम होते हैं इसको आप कृपा करके समझाइये, भीष्मजी बोले कि ऐसे शुकदेवजी के वचन सुनकर व्यासजी ने पुत्र को उत्तर दिया कि यह कर्म्म और ज्ञानरूप दोनों विनाशी और अविनाशी मार्ग मैं तुमसे कहता हूं, हे पुत्र! ब्रह्मज्ञान से जिस दशाको प्राप्त करते हैं और कर्म्म से जिसको प्राप्त करते हैं उनको एक चित्त होकर सुनो कि दोनों में बहुतही अन्तर है, यह सत्य धर्म्मही कहागया इस स्थान पर जो कहैं कि

धर्म नहीं है उसकेही समान यह मेरा पक्ष होगा यह दोनों मार्ग वेदप्रतिष्ठित हैं निवृत्ति में प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म अच्छा वर्णन कियागया है अर्थात् जो प्रवृत्ति धर्म्म निवृत्ति धर्म्म का उत्पादक न हो तो अच्छा नहीं है, जीवात्मा कर्म्म से बन्धन को पाता है और ज्ञान से मुक्त होता है इसकारण पारदर्शी यती पुरुष कर्म्म को नहीं करते हैं, कर्म्मसेही दूसरा जन्म होता है जो कि सोलह अंगवाला है और ज्ञान से प्राचीन द्वैततारहित अविनाशी ब्रह्म प्रत्यक्ष होता है, कर्म्म की प्रशंसा महाअज्ञानी लोग करते हैं इस कारण वह लोग स्त्री आदि से रमण करते शरीररूप जंजालको प्राप्त करते हैं, उत्तम धर्मों के देखनेवाले जिन पुरुषों ने उत्तम बुद्धिको प्राप्त कियाहै वह कर्म्मकी प्रशंसा ऐसे नहीं करते हैं जैसे कि नदी के जल का पीनेवाला कूप की प्रशंसा नहीं करताहै, कर्म्म के फल से सुख दुःख और ऐश्वर्य समेत नाश को पाता है और ज्ञान के फलसे अशोचता को प्राप्त होता है जिस अखण्डब्रह्म में मिलकर न मरता है न जन्म लेताहै अर्थात् अहङ्काररूप जीवस्वरूप को प्राप्त नहीं होता और फिर जन्म नहीं लेता न उसमें प्रविष्ट होकर वर्त्तमान रहता है अर्थात् जीवगुण नाश होकर शुद्ध आत्मारूप शेष रहजाता है, जिस दशामें वह ब्रह्म जीव ईश्वर की द्वैततासे रहित होता है वह श्रेष्ठ और गुप्त अचल रूपांतर दशा से अदृष्ट सुगमता से प्राप्त होनेवाला अविनाशी है, सब स्थानों में समदर्शी सर्वमित्र सब जीवों के उपकारी ज्ञानी पुरुष हर्ष शोक आदि संकल्प से पीड्यमान नहीं होते हैं, हे पुत्र ! ज्ञानी पुरुष दूसरा है और कर्म्म कर्त्ता दूसरा है अमावस के दिन चन्द्रमा को सूक्ष्मकलासे युक्त देखो आशय यह है कि वृद्धिक्षययुक्त यह संवत्सर नाम प्रजापति चन्द्रमा प्रत्येक मासमें अमावसके दिन एक कला बाकी रहता है उसी प्रकार का कर्म्म कर्त्ताओं का ऐश्वर्य्य है सो आकाश में नवीन वक्रचन्द्रमा को देखकर याज्ञवल्क्य ऋषि से यह विधिपूर्वक कहा गया अनुमान कियाजाता है, जो दश इन्द्रिय और चित्त इन ग्यारह विकारस्वरूप और कर्म्मरूप कलाओं के भार से संयुक्त मूर्त्तिमान् है उस व्यष्टिजीव को त्रिगुणात्मक कर्म्म का फल और चन्द्रमा के समान वृद्धिनाशवाला समझा है, उस जीव उपाधिरूप चित्त में जो प्रकाशमान चैतन्य नियत है वह ऐसा है जैसे कि कमलपत्र में जलबिन्दु होता है उस योग से प्राप्त होनेवाले चित्तजीव को क्षेत्रज्ञ परमात्मा अविनाशी जानो, और यह सतोगुण रजोगुण तमोगुण जीव के गुण हैं और जीव को आत्मा का गुण जाने और

उस आत्मा को परमात्मा का गुण जाने जड़ चैतन्यरूप जीव जड़भाग के त्याग करने से ब्रह्मही हैं आप जड़रूप चेतना से संयुक्त देह को जीव के गुण चैतन्य से संयुक्त कहते हैं इस कारण वह जीव सबको चेष्टा देता है और चैतन्य करता है क्षेत्रज्ञ का ज्ञाता जीवसे परे उस परमात्मा को कहते हैं जिसने भूलोक आदि सप्त भुवनों को उत्पन्न किया है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवां अध्याय ॥

शुकदेवजी बोले कि प्रधानसे लेकर चौबीस तत्त्वरूप जो साधारण सृष्टिहै वह आत्मा से है इसी प्रकार विषयों समेत इन्द्रियां भी बुद्धि से उत्पन्न हुई हैं ईश्वर की सामर्थ्य से उत्पन्न होनेवाली सृष्टि उत्तम है और बंधनरूप होने से अनुत्तम है, जीव और ईश्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली सृष्टि दो प्रकार की है उनमें बुद्धिरूप जीवी सृष्टि बंधन का कारण है मैं कालसे संबंध रखनेवाले सत्पुरुषों के उस आचार को जिससे कि इस लोक में सन्त कर्म्मकर्त्ता होते हैं सुनना चाहता हूं और वेद में कर्म्म करना और कर्म्मों का त्यागना दोनों परस्पर विरुद्ध बातें लिखी हैं इसको भी आप निर्णय करके सुनाइये, क्योंकि मैं लोकरीति की मुख्यता का जाननेवाला और देहाभिमान का त्यागनेवाला गुरु के उपदेश से पवित्र बुद्धि का संस्कार करके अविनाशी आत्मा को देखना चाहता हूंगा, व्यासजी बोले कि जैसे पहिले आप ब्रह्माजी की ओर से जो वृत्ति विचार की गई वही प्राचीन ऋषियों करके काम में लाईगई आशय यह है कि ज्ञान के साथ कर्म्मों का समुच्चय नहीं है परन्तु कर्म्म समुच्चय होगा जैसे लिखा है कि कर्म्मों से बुद्धि को शुद्ध करके उस बुद्धि के द्वारा आत्मदर्शन को चाहै, परम ऋषिलोग ब्रह्मचर्य्य के द्वारा लोकों को विजय करते हैं इसकारण चित्तके द्वारा अपने कल्याण को चाहता वन में मूल फलों का भोक्ता बड़ा तपस्वी पवित्रदेशगामी अहिंसायुक्त वानप्रस्थ आश्रम में समय पर भिक्षा करता हुआ ब्रह्मभावके लिये कल्पना किया जाता है, शुभ अशुभ को त्याग कर किसी एक भोजनसे तृप्त स्तुति और नमस्कारके व्यवहार से रहित अकेले वन में घूमो, शुकदेवजी ने कहा कि कर्म्म करो वा त्याग करो यह जो वेद का वचन है वह परस्पर में विरोधी है तो कैसे शास्त्र से प्रमाणिक माने, सो यह संदेह निवृत्त कीजिये कि दोनों प्रमाण किस प्रकारसे हैं और कर्म्मोंके विरोधों में मोक्ष कैसे प्राप्त होती है,

भीष्मजी बोले कि इसप्रकार महातेजस्वी शुकदेवजी के प्रश्न को सुनकर व्यासजी बोले कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी यह सब शास्त्र उपदेश के अनुसार कर्म्म करनेवाले परमगति को पाते हैं, जो अकेलाही बुद्धिके अनुसार इन आश्रमों का अनुष्ठान करे और काम द्वेष से रहित हो वह ब्रह्मज्ञानके योग्य होता है यह चार पायेवाली ब्रह्मरूप नसेनी नियत है इस नसेनी पर चढ़कर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा पाता है, धर्म्म अर्थ में पण्डित किसी के गुण में दोष न लगानेवाला ब्रह्मचारी गुरु या गुरु के पुत्र के पास चौथाई अवस्था तक निवास करे नीचे पृथ्वी पर सोवे और प्रातःकाल उठकर गुरु के घर में भृत्यकर्म्म करके और गुरु को जतलाकर गुरु के पास बैठे और सर्व कर्म्मकर्त्ता होकर दास होजाय, ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले पुरुष को गुरु के सब काम पूरे करके फिर उनके पास पढ़ना चाहिये और आज्ञाकारी होकर असभ्य बात कभी न कहे और गुरु के पास बुलाने से प्राप्त होवे, पवित्र और चतुरतायुक्त प्रिय वचन बोले और जितेन्द्रिय सावधान होकर नेत्रों से गुरु को देखे गुरु से पहिले भोजन जलआदि को न ग्रहण करे और स्थिर न होनेपर स्थिर न हो और गुरु के जागतेहुये शयन नहीं करे और नम्रता से गुरु के चरण छुए दाहिने हाथसे दाहिने चरणको और बायें हाथ से बायें चरण को पकड़े गुरु से दंडवत् करके कहै कि हे भगवन्! पढ़ाओ यह काम मैंने किया और यह करूंगा और जो आप आज्ञा देंगे उसको करूंगा यह सब जतलाकर और बुद्धि के अनुसार प्रकट करके दूसरी बार भी गुरु से कहना चाहिये, और ब्रह्मचारीको जो २ रस गन्धादि सेवन करना वर्जित हैं उन सबको समावर्त्तनकर्म से निवृत्त होकर सेवन करे यह ब्रह्मचारीके धर्महैं इनको सदैव करता हुआ गुरु के सन्मुख वर्त्तमान हो और सामर्थ्य के अनुसार गुरु में प्रीति को प्रकट करे फिर वह शिष्य एक आश्रम से दूसरे आश्रमों में कर्म के द्वारा प्रवृत्त होवे वेद व्रत के उपवास से अवस्था के चतुर्थांश व्यतीत होने पर गुरु को दक्षिणा देकर विधिपूर्वक समावर्त्तनकर्म करे और व्रती पुरुष धर्मपत्नियों से संयुक्त युक्तिसे अग्नियोंको स्थापन करके अवस्थाके दूसरे भाग में गृहस्थी होय ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि सुन्दरव्रतपरायण धर्मपत्नीसंयुक्त गृहस्थी पुरुष अग्नियों को स्थापन करके अपनी अवस्थाके दो भाग तक घर में निवास करे, पण्डितों

की ओरसे गृहस्थियोंकी चार प्रकारकी आजीविका कही हैं प्रथम तीन वर्षतक के निमित्त अन्न का संचय करना उसको कुसूलधान्य कहते हैं दूसरा कुम्भधान्य अर्थात् कुंभकी पूर्णता के समान अन्न संचय करना तीसरे एक दिन के खर्च के योग्य अन्न रखना चौथे उञ्छवृत्ति से अपनी आजीविका को प्राप्त करे इन चारों में पहले पहले की अपेक्षा दूसरा उत्तम है, एक छः कर्म करनेवाला कर्मकर्त्ता होता है, दूसरा तीन कर्म से कर्मकर्त्ता होता है, एक दो कर्म से कर्मकर्त्ता होता है, चौथा ब्रह्मयज्ञ में अर्थात् जप वेदपाठ आदि में नियत होता है अब गृहस्थी के बड़े धर्मों को कहते हैं, केवल अपने ही निमित्त भोजन न बनावे और देव पितृ यज्ञ के उद्देश के विना कभी पशुओं का घात न करे बकरी आदि जीवधारी और फलआदि निर्जीवों को यजुर्वेद के मंत्रों के द्वारा संस्कार करे और दिवस वा अगली पिछली रात्रि में कभी न सोवे और दोनों समय के भोजन के सिवाय मध्य में फिर भोजन न करे और ऋतुकालों के सिवाय स्त्री से भोग न करे और पूजन भोजन के विना कोई ब्राह्मण उसके घर में निवास न करे, इसी प्रकार उसके हव्य कव्य के धारण करनेवाले वह अतिथि भी सदैव पूजन के योग्य हैं जो कि वेदविद्या और व्रत में पूर्ण वेद के पारदर्शी धर्म से निर्वाह करनेवाले जितेन्द्रिय क्रियावान् और तपस्वी हों उन्हीं के पूजन के निमित्त हव्य कव्य भी कहागया है, और पाखण्ड के निमित्त नख आदि के बढ़ानेवाले अपना धर्म विख्यात करनेवाले गुरु को न मानकर अग्निहोत्र के त्यागी इत्यादि, इसप्रकार के भी सब जीवों का भाग इस गृहस्थ को देना कहा है इसीप्रकार ब्रह्मचारी और संन्यासी को भी गृहस्थ भोजन करावे, सदैव विघसान्न और अमृत का भोजन करे जो हव्य के समान वा अन्य पदार्थ यज्ञ से शेष रहा हो उसको अमृत कहते हैं और जो गृहस्थी के बालबच्चे और वृद्ध अतिथियों को देकर शेष रहे उसको विघसान्न जानो उसका भोजन करनेवाला विघसाशी कहलाता है, अपनी स्त्री से प्रीति करनेवाला जितेन्द्रिय परनिन्दा रहित धर्म में क्लेशादिरहित, ऋत्विज, पुरोहित, आचार्य्य, मातुल, अतिथि, आश्रित, वृद्ध, बाल, आतुर, वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी, बांधव, माता, पिता, सगोत्री, स्त्री, भाई, पुत्र, भार्य्या और दास आदि के साथ भोजन के भाग के विषयमें वाद न करे क्योंकि इनके वाद को त्यागने से पापों से निवृत्त होता है, इन्हीं से विजय किया हुआ सबलोगों को विजय करता है निस्संदेह आचार्य्य

ब्रह्मलोक का और प्रजापति के लोक का स्वामी है अतिथि इन्द्रलोक का स्वामी, ऋत्विज देवलोक का अधिपति, बहन, कन्या, वधू आदि अप्सराओं के लोक में स्वामी हैं, जातिवाले वैश्य देवलोक में स्वामी हैं, नातेदार और बांधव दिशाओं में, और माता मामा पृथ्वीपर, और वृद्ध, बालक, रोगी, निर्बल आदमी आकाश में स्वामी हैं, आशय यह है कि जो जिस लोक का स्वामी है उसके अप्रसन्न करने में उन २ लोकों में हानि को पाता है, बड़ा भाई पिता के समान है, भार्या और पुत्र अपना देह हैं, दास लोगों के समूह अपनी छाया हैं, कन्या परम कृपण है इसीकारण गृहस्थ धर्म में प्रवृत्त बुद्धिमान् धर्माभ्यासी थकावट का विजयी और तपसे रहित पुरुष इन सब बातोंसे निंदित सदैव क्षमा करे कोई धर्मज्ञ पुरुष मनोरथसम्बन्धी यज्ञ आदि को नहीं करे, गृहस्थीकी तीन आजीविका हैं एक तो मुख्य तोल से अन्न संचय रखना उंछ, शिल, कापोती उनमें पिछली २ कल्याण करनेवाली हैं, चारों आश्रमों में भी एक से एक पिछले उत्तम समझो जिस प्रकार उनके नियम किये वह सब ऐश्वर्य की इच्छावाले को करने के योग्य हैं, कुंभधान्य शिल उंछ से निर्वाह करनेवाले कापोती नाम जीविका में प्रवृत्त हैं यह योग्य मनुष्य जिस देश में निवास करते हैं वह देश सब ओर से वृद्धि को पाता है, जो पीड़ारहित मनुष्य इन गृहस्थी की आजीविकाओं पर ध्यानपूर्वक कर्म्म करे वह अगले पिछले दश २ पुरुषाओं को तारता है, और चक्रवर्त्तियों के समान गति को पाता है यही गति जितेन्द्रियों की भी होती है, स्वर्गलोक उदारचित्तवाले गृहस्थियों का हितकारी है, विमानयुक्त स्वर्ग वेदसे देखा हुआ क्रीड़ायोग्य है, सावधानचित्त गृहस्थियों की स्वर्गही प्रतिष्ठा है इसी कारण यह गृहस्थधर्म्म स्वर्ग का देनेवाला ब्रह्माजी ने रचा है और भोग किया जाता है, इस दूसरे आश्रम को क्रम से प्राप्त करके स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा पाता है मैंने तुझसे तीसरे परमउदार वानप्रस्थों के उत्तमोत्तम बड़े आश्रम को कहा और जो देहके अभिमान दूरकरनेवाले वनवासी और गृहपति अपने अस्थि चर्मवाले देह को सुखानेवाले हैं उनके भी आश्रम को कहता हूं तुम चित्त से सुनो ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इकहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! शास्त्र में ज्ञानियों से विदित की हुई गृहस्थी

की आजीविका तुमसे वर्णन करी अब गृहस्थवृत्ति को क्रम से निन्दित करके जो आश्रम उत्तम कहा गया है उसको समझो कि इस स्त्रीसम्बन्धित गृहस्थवृत्ति से चित्त को हटाकर वानप्रस्थ आश्रम में आश्चर्यभूत तीसरी वृत्ति को कहता हूं जिनके।कि सब लोक और आश्रम आत्मारूप हैं उन विचारवान् पवित्र कर्मियों के धर्म को सुनो, व्यासजी अपने पुत्र शुकदेवजी को आशीर्वाद देकर बोले कि जब गृहस्थ अपने मुखपर श्वेतकेश और पुत्र की संतान को देखे तब वन में ही निवास करे अर्थात् अवस्था के तीसरे भाग को वानप्रस्थ आश्रम में व्यतीत करे और देवपूजनपूर्वक उन अग्नियों का सेवन करे, जो आचारवान् सामान्यभोक्ता दिन के छठे भाग में भोजन करनेवाला सावधान हो वही अग्निहोत्र वही गौ वही यज्ञों के सब अंग हैं यहां वन में भी पंचमहायज्ञों के बीच लोहे की फार से रहित हल के जोतने से उत्पन्न धान जौ नीवार नाम जो मुनियों के अन्न और सब प्रकार के विघसान्न हैं उनको भोजन करे और करावे, वानप्रस्थ आश्रम में भी यह चार आजीविका कही हैं कोई तत्काल प्रक्षालक अर्थात् शीघ्र भोजन निबटानेवाले कोई एक मास के भोजनार्थ अन्न संचय करनेवाले हैं कोई अतिथिपूजन और यज्ञ तंत्र आदि के निमित्त एक वर्ष के खर्च को और कोई बारहवर्ष के खर्च के लिये इकट्ठा करते हैं, वर्षा में स्थानरहित मैदान में तपकरनेवाले, हेमन्तऋतु में जल में नियत होनेवाले और उष्णऋतु में पंचाग्नि तपनेवाले मितभोजनवाले पृथ्वी पर सोते हैं एक पैर से खड़े रहते हैं स्थान और आसनों को भी त्याग देते हैं और यज्ञों में अभिषेक करते हैं, कोई दांत को ऊखल बनानेवाले हैं अर्थात् केवल दांत से ही चबाकर खाते हैं और कोई पत्थरपर कूटकर खाते हैं कोई कृष्णपक्ष में व्रत करके शुक्लपक्ष में यवागू नाम और अच्छे पके मूल आदि को एकबार खाते हैं कोई कृष्णपक्ष में जव आदि जो कुछ मिले भोजन करते हैं आशय यह है कि कोई फल कोई मूल कोई फूलों से न्याय के अनुसार निर्वाह करते हैं कोई वैखानस ऋषियों की गति में प्रवृत्त हैं उन ज्ञानियों की यह और अन्य प्रकार की भी अनेक दीक्षा हैं चौथा धर्म उपनिषद्सम्बन्धी साधारण है, जो सब आश्रमों में वर्त्तमान हो उसको साधारण कहते हैं, हे पुत्र! उस गृहस्थ और वानप्रस्थ से दूसरा आश्रम जो होता है इसे यज्ञ में सब अर्थ के देखनेवाले ब्राह्मणों में से अगस्त्य, सप्तऋषि, मधुच्छन्द, अघमर्षण, सांकृति, सुदिव, अतंडि, यथावास, कृतश्रम, अहोवीर्य,

काव्य, तांड्य, मेधातिथि, बुध, बलवान्, कर्णनिर्वाक, शून्यबाल इत्यादि ऋषियों ने किया है इसीहेतु से वह सब स्वर्गवासी हुये, इसीप्रकार सत्यसंकल्प आदि प्रत्यक्ष धर्म्म करनेवाले या यावर नाम गण स्वर्ग को गये, हे तात! इसी प्रकार धर्म्मदर्शी उग्र तपवाले अन्य उत्तम ब्राह्मण वन में निवासी हुये और वैखानस, बालखिल्य और सैकत नाम ऋषि कृच्छ्र चान्द्रायणकर्म्मों के कारण आनन्द से रहित सदैव धर्म्म करनेवाले जितेन्द्रिय प्रत्यक्ष धर्म्मधारी वनके वासी भी स्वर्गवासीहुये वह प्रकाशवान् नक्षत्रों से भी अधिक प्रकाशित निर्भय दृष्ट पड़ते हैं, वृद्धावस्था से निर्बल और रोग से अत्यन्त पीड़ित पुरुष अवस्था के चतुर्थांश बाकीरहने पर वानप्रस्थ आश्रम को त्याग करे एकदिन में होनेवाले सब वेद और दक्षिणा युक्त यज्ञ को करके जीवनदशा में आप श्राद्ध आदि करनेवाला आत्मा में प्रीतिमान् आत्मा में ही क्रीड़ा करनेवाला आश्रयी और अग्नियों का स्थापन करके सब परिग्रहों को त्याग संन्यासी होजाय बड़ा वैराग्य न होनेपर दूसरा पक्ष कहते हैं—शीघ्र होनेवाले ब्रह्मयज्ञ और दर्शपूर्णमास नाम यज्ञादि जबतक सदैव करै तबतक कि कर्मरूप यज्ञ से आत्मयज्ञ अर्थात् योगाभ्यास वर्त्तमान होता है, अब आत्मयज्ञ का स्वरूप कहते हैं—देह के त्यागपर्यन्त गार्हपत्य आहवनीय आदि तीनों अग्नियां जोकि मनचित्तमुखरूप हैं उनको पूजन कर मंत्रके द्वारा पांचों प्राणके लिये पांच या छः ग्रासोंको खाय उसके पीछे कर्म्मों से पवित्र वानप्रस्थ मृतक शिर देह और नखों को पृथक् करके एक आश्रम से दूसरे पवित्र आश्रम को प्राप्त करता है, जो ब्राह्मण सब जीवों को निर्भय करके संन्यासी होता है उसके लोक तेजरूप हैं वह देहत्याग कर मोक्षको पाता है अच्छे शील चलनवाला निष्पाप पुरुष इसलोक और परलोक में कर्म्म अनुष्ठान को नहीं चाहता है और काम क्रोध से रहित प्रिय अप्रियता से जुदा उदासीन पुरुष आत्मज्ञानी होता है अपने वेदान्तशास्त्र और सूत्र दोनों लोक को त्याग करके आत्मइच्छारूप आहवनीय और शिखा यज्ञोपवीतके त्यागसे सम्बन्ध रखनेवाले मंत्र का पराक्रम रखनेवाला प्राप्त होनेवाले नियम में पीड्यमान नहीं होय, आत्मज्ञानी की गति स्वेच्छाचारी होती है उस जितेन्द्रिय और धर्म्म में पूर्ण पुरुषके विषयमें संदेह नहीं है इसके अनन्तर उत्तम और सद्गुणयुक्त श्रेष्ठ पुरुष तीनों आश्रमों को तुच्छ कर उच्चस्थानी चौथे आश्रम का वर्णन किया अब जिसमें शम आदि वृत्ति अधिक हैं और मोक्षका हेतु है उसको सुनो॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

बहत्तरवां अध्याय॥

पूर्व में वैश्वानर आत्मा की उपासना वर्णन की वह कर्म ढीले आदमी से होना कठिन है इस बात को मानकर शुकदेवजी ने यह प्रश्न किया कि इस वानप्रस्थ आश्रम में इसप्रकार नियत होकर जानने के योग्य ब्रह्म की इच्छा करने वाले पुरुष की ओर से उस आत्मा का सामर्थ्य के अनुसार ब्रह्म में ठीक२ तद्रूप होना किस प्रकार से सम्भव है व्यासजी बोले कि इन दोनों आश्रमों से चित्त शुद्धिरूप संस्कार को पाकर फिर आत्मा को ब्रह्म में लय करना चाहिये जो परमार्थ करने के योग्य है उसको एकचित्त होकर सुनो, तीनों आश्रमों में चित्तके दोष को दूर करके सब आश्रमों में उत्तम पदवाले संन्यास आश्रम को धारण करे, सो तुम इसप्रकार अभ्यास करके कर्म्म करो इसीप्रकार अन्य भी सुनो कि अकेला किसीको साथ न रखनेवाला शुद्धि के लिये धर्म्म को करे, जो अकेला देवता किसी पदार्थ को त्याग नहीं करता है अर्थात् सर्वव्यापी है और मोक्ष के सुखसे भ्रष्ट नहीं होता है वह अग्नि और स्थानरहित अन्न के निमित्त ग्राम को जाय, सावधानचित्त अल्पाहारी एक समय भोजन करनेवाला मुनि किसी वस्तु का संग्रह न करे कपाल का जलपात्र वृक्षों के मूल पर निवास गेरुवे वस्त्र एकाकी सब जीवों के राग द्वेषसे पृथक् होना यह संन्यासी का लक्षण है, जिसमें भयानक कोपयुक्त हाथी के समान वचन प्रवेश करते हैं वे वचन फिर कहने वाले को प्राप्त नहीं होते हैं वह पुरुष कैवल्यमोक्षसम्बन्धी आश्रम में निवास करे, कभी किसी की मुख्यकर ब्राह्मण की निन्दा को न सुने न देखे न किसी दशा में आप करे, जिसमें ब्राह्मण की भलाई हो उसी को सदैव कहै, अपने संसारी रोगों की चिकित्सा करता निन्दारहित हो सदैव जिस अकेले से आकाश व्याप्त होता है और जिससे जनसमूह भी निर्जन स्थान के समान होता है देवता लोग उसको निर्दोष ब्राह्मण समझते हैं जिस किसी रोग से गुप्त देह और कोई अन्नसे तृप्त और जहां योग हो वहांही शयन करनेवाला है उसीको देवता ब्राह्मण कहते हैं, जैसे कि सर्प से भयभीत होते हैं उसीप्रकार जनसमूहों से भय करता रहै और जैसे नरक से भय उत्पन्न होता है उसीप्रकार मिष्टान्न से भयभीत रहै और जैसे मृतकआदि से भय होता है उसीप्रकार स्त्रियों से भय करता रहै और मान से प्रसन्न न हो और अपमान में क्रोधरहित हो और सब जीवों को अभय देनेवाला हो, जो मृत्यु जीवन को न चाहै और समय की

बाद आज्ञाकारी भृत्य के समान देखता रहै दोषरहित निर्दोषवक्ता सर्वपापरहित अशत्रु हो उसको क्या भय है जिससे सब जीव निर्भय हैं न किसी जीव से उस को भय है उस मोहरहित पुरुष को कहीं भय नहीं है, निर्भयता को कहकर पूर्णानंदप्राप्ति को भी कहते हैं; जैसे कि हाथी के पैर में सबके चरण अंतर्गत होजाते हैं उसीप्रकार समाधि में वर्त्तमान योगी के स्थानपर इन्द्रियों के स्थान अन्तर्गत होजाते हैं इसप्रकार के सब धर्म्म अर्थ इस हिंसा से रहित और सब जीवों की निर्भयतारूप संन्यासयोग में लय होजाते हैं जो हिंसारहित होता है वह अविनाशी जीवन्मुक्त होता है, हिंसारहित समदर्शी सत्यवक्ता धैर्यवान् सावधान सब जीवों का रक्षास्थान वह पुरुष उस गति को पाता है जिससे कि उत्तम दूसरी गति नहीं है, इस प्रकार मृत्युरूप आत्मा के प्रत्यक्ष अनुभव से तृप्त अनिच्छावान् पुरुष को उल्लंघन करनेवाला नहीं है क्योंकि वह पुरुष मृत्यु को उल्लंघन करजाता है, सब संगों से रहित आकाश के समान वर्त्तमान अदृष्ट अकेले घूमनेवाले शान्तरूपही को देवताओं ने ब्राह्मण कहा है, जिसका जीवन निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न होनेवाले पुण्य के निमित्त है और वह धर्म भी पास रहनेवाले पुत्र और मित्र आदि के लिये है और जिसके दिन रात्रि पुण्य के हेतु हैं अर्थात् समाधि परमेश्वरार्थ है उस अनिच्छावान् असावधानता रहित अपनी प्रशंसारहित नमस्कारादि से उत्पन्न होनेवाले सुख और वासनारूप बंधनों से रहित पुरुष को ब्राह्मण जानो सब जीव सुख में क्रीड़ा करते हैं और सब दुःखों का भय करते हैं उन कर्मों के द्वारा उत्पन्न होनेवाले भय से दुःखी होनेवाले श्रद्धावान् पुरुष हिंसात्मक कर्मों को नहीं करें सब जीवों की निर्भयतारूप दान सब दानों से उत्तम होता है जो पुरुष प्रथम ही हिंसात्मक कर्म को त्याग करता है और जीवों को निर्भय दान देता है वह मोक्ष को पाता है व्यतीत अध्याय के तेंतीस श्लोक के अनुसार खुले हुये मुख में हव्य को नहीं होमता है अर्थात् वह योगी चित्त और इन्द्रिय आदि को आत्मा में होम करता है, सब जड़ चैतन्य जीवों की जो नाभि है वह तीनों लोक के आत्मा वैश्वानर का स्थान है उस लोक के मस्तक आदि अंगों से लेकर सब अंगोंतक वैश्वानर के अंग हैं वह वैकल्पित हैं, हृदय से लेकर नाभिपर्यन्त प्रादेशमात्र स्थान में आत्मा प्रकट है जो योगी इस चिन्मात्र में सब प्रपंच को होम करता है अर्थात् लय करता है देह में नियत इन देवताओं से युक्त सब लोकों में होमा हुआ

अग्निहोत्र होता है अर्थात् उस होम से सब ब्रह्माण्ड तृप्त होता है, जिन पुरुषों ने उस प्रकाशमान और अकार अर्थवाले सूत्रात्मा को और तीनों गुणवाली मकार अर्थयुक्त माया की उपाधि रखनेवाले ईश्वर को और सूक्ष्मतम और उपाधि से पृथक् ब्रह्मभाव को जाना है वह सब लोक में प्रतिष्ठावान् हैं समर्थ देवता उस मोक्षरूप को प्राप्त होते हैं अर्थात् उसके अंगरूप होते हैं, अब विद्या के फल को कहते हैं, जो पुरुष वेदों को और जानने योग्य यज्ञादिकों को और कर्मकाण्ड वा परलोक आदि को आत्मा में जानता है उसकी देवता भी सेवा किया चाहते हैं, अब इसके पक्षीरूप का वर्णन करते हैं, किरणों से प्रकाशमान जो जीवात्मा उस पृथ्वी से अनुरागरहित और स्वर्ग में भी अचिन्त्यप्रभाव चिन्मात्ररूप ब्रह्माण्ड के मध्य में प्रकाशित बहुत पक्षरूप देवताओं से संयुक्त पक्षी अर्थात् असंग और मोद प्रमोद नाम वृत्तिरूप दो पक्ष रखनेवाले पक्षी को देह के भीतर हार्द आकाश में हृदयकमल पर जानता है उसको देवता प्राप्त होते हैं उसके छः ऋतु तो नाभि हैं और बारह महीने आरे हैं और मावस संक्रांति आदि सुन्दर पर्व हैं यह विश्व जिसके मुख के ऊपर जाता है वह भ्रमण करनेवाला ईश्वर से युक्त अजर कालचक्र बुद्धि में नियत है, सुषुप्ति नाम अज्ञान जो कि जाग्रत और स्वप्न अवस्था का बीजरूप है और संसार का शरीर है और स्थूल सूक्ष्म सृष्टि को व्याप्त करता है उस अज्ञानरूप स्थूल सूक्ष्मरूप देह में जो जीव है वह देवताओं को तृप्त करता है वह तृप्त देवता इसके मुख को तृप्त करते हैं, वेद में कहा है कि इस मंत्र से जो पहले आहुति मुख में होमी जाती है उससे प्राण तृप्त होता है प्राण की तृप्ति से नेत्र तृप्त होते हैं और नेत्रों की तृप्ति से सूर्य तृप्त होते हैं सूर्य की तृप्ति से स्वर्ग तृप्त होता है, स्वर्ग की तृप्ति से स्वर्गसंयुक्त सूर्यलोक तृप्त होता है, फिर वह आहुति देनेवाला सन्तानपशुअन्नादि युक्त होकर ब्रह्मतेज से तृप्त होता है, जो निर्गुण ब्रह्मभाव को न पाकर सगुण ब्रह्म में प्रवृत्त होता है उसकी गति को कहते हैं,जिससे जीवमात्र निर्भय होते हैं और जीवमात्रों से वह आप भी निर्भय होता है वह उन निर्भय अनन्त लोकों को पाता है, जो लोक वास्तव में एकाकी तेजरूप और पुराण ब्रह्मलोक नाम से प्रसिद्ध है, जो ब्राह्मण अनिन्द्य और दूसरों की निन्दा नहीं करता है और अज्ञान वा अपवित्रता से रहित जिसके स्थूल सूक्ष्म पाप निवृत्त होजाते हैं वही ब्राह्मण उस परमात्माको देखता है, वह पुरुष इस लोक और परलोक में भोगनेके

स्थानों को नहीं प्राप्त होता है तात्पर्य यह है कि केवल मोक्ष पानेसे उसकी गति नहीं है इसकी जीवन्मुक्त की दशा को कहते हैं, क्रोध मोह से पृथक् मृत्ति का सुवर्ण को समान जाननेवाला प्रत्यक्ष ऐश्वर्य रखनेवाला राग द्वेष से रहित निन्दा स्तुतिरहित प्रिय अप्रियतारहित संन्यासी और उदासीनों के समान भोगों को भोगता नियत होता है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, प्रकृति के जो देह, इन्द्रिय, चित्त आदि विकार हैं उनके कारण यह क्षेत्रज्ञ आत्मा कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व गुणों से गुणी है वह नेत्रआदि जड़रूप होने से आत्मा को नहीं जानते हैं अर्थात् आप प्रकाशमान नहीं होसक्ते हैं परन्तु वह आत्मा उनको भी जानता है अर्थात् प्रकाश करता है आत्मा इस लोक में उन इन्द्रियों से जिनमें छठा चित्त है करने के योग्य कर्म को ऐसे करता है जैसे कि अच्छे सीखेहुए घोड़ों से सारथी सारथ्यकर्म को करता है, इन्द्रियों से परे अर्थ, अर्थों से परे मन, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से परे अव्यक्त, अव्यक्त से परे चैतन्यात्मा है और चैतन्यात्मा से परे कुछ नहीं है वही काष्ठा और परमगति है, इस प्रकार सब जीवों में गुप्त आत्मा प्रकाश नहीं करता है और सूक्ष्मदर्शी ब्रह्मज्ञानियों की सूक्ष्म और तीक्ष्णबुद्धिसे दृष्टिगोचर होता है, ध्यान ध्यानी ध्यानयोग्य और सब इन्द्रिय और उनके विषयों के विचाररहित बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा चित्त को महत्तत्त्व में लय करके ध्यान से उपराम हो "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूं इस विद्या से शुद्ध ईश्वर भाव को लय करनेवाला मुक्तचित्त कैवल्य मोक्ष को पाता है, इसके विपरीत पक्ष में दोष है उसको भी सुनो कि चित्त को सब इन्द्रियों के स्वाधीन करनेवाला आत्मस्वरूप के स्मरण से पृथक् मरणधर्मवाला मनुष्य विषयों में प्रवृत्तचित्त होने से मृत्यु को पाता है सब संकल्पों को नाश करके चित्त को सूक्ष्मबुद्धिमें प्रवेश करे, बुद्धि में चित्त को प्रवेश करके फिर काल इन्द्र पर्वत के समान अचल हो अथवा काल का नाश करनेवाला होवे, इस संसार में यतीपुरुष चित्त की शुद्धता से पाप पुण्य को त्याग करता है वह शुद्ध चिदात्मस्वरूप में नियत होकर बड़े सुख को भोगता है, चित्तकी शुद्धि का यह लक्षण है कि जैसे स्वप्नमें शयन और निर्वातस्थान में प्रकाशमान दीपक निश्चल होता है इसीप्रकार

अगले और पिछले समयपर आत्माको परमात्मा में संयुक्त करनेवाला अल्पाहारी अतिशुद्धचित्त योगी परमात्मा को आत्मा में देखता है यह उपदेश पुत्रानुशासन वेदमें गुप्त बात है यह केवल अनुमान से विदित नहीं होता न केवल शास्त्रसे जानाजाता है यह अनुभव से प्राप्त होता है और आत्मज्ञान से सम्बन्ध रखता है सब धर्म्माख्यान और सब आख्यानों में जो सार है और कुछ ऊपर दश हज़ार वेद की ऋचाओं को मथकर यह ज्ञानरूप अमृत ऐसे निकाला है जैसे दही से मक्खन को और काष्ठ से अग्नि को निकालते हैं इसीप्रकार पुत्रके अर्थ यह ब्रह्मज्ञानियों का ज्ञान अच्छे प्रकार से निकालागया है, यह पुत्रानुशासन नाम शास्त्रज्ञान स्नातकों के आगे कहना योग्य है और ऐसे पुरुष से न कहना चाहिये जो इन्द्रिय के विषयों से अशान्तचित्त अवज्ञा करनेवाला वेद रहित उपदेश के अनुसार कर्मकर्त्ता न होकर निन्दकता सहित कुटिलप्रकृति हो, और न्यायशास्त्र से रहित अहंकारी को भी उपदेश न करना चाहिये, और बड़े शान्त तपस्वी दूसरेकी स्तुति करनेवाले प्रियपुत्र शिष्य और उपासक के लिये यह गुप्त धर्म उपदेश करना चाहिये इस ज्ञान को किसी से विना परीक्षा किये न कहा जाय यह ज्ञान रत्नजटित पृथ्वी से भी अधिक ब्रह्मज्ञानियों के मत से है इसीकारण यह अर्थ गोपनीय है, जो दिव्य आत्मज्ञान महर्षियों से देखागया और वेदान्तियों से गायाजाता है वह मैं तुमसे कहता हूं हे पुत्र! जो तेरे चित्त में दूसरी बात वर्त्तमान है और उसमें जहां तुझे संशय है उसको भी मैं कहूंगा ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥

चौहत्तरवां अध्याय॥

शुकदेवजी बोले कि, हे भगवन्! आप जिस ब्रह्मज्ञान को ठीक जानते हो उसको मुझसे वर्णन कीजिये व्यासजी बोले कि, हे तात! पुरुष का जो अध्यात्म पढ़ाजाता है उसको तुमसे कहता हूं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पांचों महाभूत चारोंप्रकार की सृष्टि के जीवों में पृथक् २ ऐसे कल्पित हैं जैसे कि समुद्र में तरंगें होती हैं, जैसे कि कछुआ अपने अंगों को फैलाकर खैंचलेता है उसी प्रकार पंचभूत देहरूप होनेवाले पंचमहाभूतों में नियत होकर नाश और उत्पत्ति रूपान्तरदशा को उत्पन्न करते हैं, छोटे तत्त्वों के रूप सब जड़ चैतन्य जगत् की उत्पत्ति प्रलय होनेपर उस देह के अन्तर्गत नियत तत्त्वसमूहों में लय होते हैं, हे तात! सब जीवमात्रों में पंच महाभूतही हैं परन्तु

इनमें ईश्वर ने कुछ अन्तर किया है कारण यह है कि जिस कर्म के हेतुरूप होने में देह के त्यागने के समय जो ध्यान करता है वही प्राप्त करता है, शुकदेवजी बोले कि, देह के बुद्धि इन्द्रिय आदि अंगों में जो अन्तर उत्पन्न किया है उसको किसप्रकार देखके अपने विषयों समेत इन्द्रियां किस गुणरूपयुक्त होती हैं और कैसे उनको देखना चाहिये व्यासजी बोले कि, इसको क्रम से ठीक२ मैं कहता हूं तुम सावधान होकर मुख्य सिद्धान्त को सुनो, शब्द श्रोत्र और देह के छिद्र यह तीनों आकाशसे संयुक्त हैं प्राण, चेष्टा और स्पर्श यह तीनों वायुके गुणहैं रूप, नेत्र और जठराग्नि यह तीन प्रकार की ज्योति कही जाती है, रस, रसनेन्द्रिय और आर्द्रता यह तीनों जल के गुण हैं, सूंघने के योग्य वस्तु, घ्राणेन्द्रिय, और देह यह तीनों पृथ्वी के गुण हैं, पंचभूत से सम्बन्ध रखनेवाली यह रूपान्तरदशा इन्द्रियसमूहों के समेत वर्णन की, वायु का गुण स्पर्श, जल का रस, अग्नि का रूप, आकाश का शब्द, पृथ्वी का गन्ध है मन, बुद्धि और स्वभाव यह तीनों अपनी योनि से उत्पन्न होनेवाले हैं, सतोगुण आदि से श्रोत्रइन्द्रिय आदि स्वरूप को प्राप्त होनेवाले वह तीनों शब्दआदि गुणों को उल्लंघन नहीं करते हैं जिस प्रकार इसलोक में कछुआ अंगों को फैलाकर खैंच लेता है इसीप्रकार बुद्धि इन्द्रियों के समूह को उत्पन्न करके फिर अपने में लय करती है, पैर के तालुए से ऊपर और मस्तक से नीचे जिस देह को देखता है इन दृष्टरूप कर्म्मों में बुद्धिही उत्तम कर्म्मकर्त्ता होती है अर्थात् मैं हूं यह अनुभव विषय बुद्धि का रूप है, बुद्धि विषयों के रूप को प्राप्त करती है और बुद्धिही इन्द्रियों के भी रूप को प्राप्त करती है वह मन समेत छः हैं, बुद्धि के न होने में इन्द्रिय और विषय कहां से प्रकट हों, मनुष्यों के देह में पांच इन्द्रिय और छठा मन कहाजाता है, बुद्धि को सातवां कहते हैं फिर आठवां क्षेत्रज्ञ है, नेत्र दर्शन के निमित्त है और मन संशय को करता है बुद्धि निश्चय करने को है क्षेत्रज्ञ सबका साक्षी है, रजोगुण, तमोगुण;सतोगुण यह तीनों अपनी योनि से उत्पन्न होते हैं आशय यह है कि चित्त और उससे उत्पन्न इन्द्रिय आदि सब त्रिगुणात्मक हैं, सब देव मनुष्यादिक जीवमें समान हैं इन गुणों को देखे और इनको जो प्रीति से संयुक्त बुद्धि में देखे उस अत्यन्त शान्त और शुद्ध को सतोगुण जाने, देह और चित्त में जो दुःखसे संयुक्त हो उस स्थानपर जाने कि रजोगुण उत्पन्न हुआ, जो मोह से संयुक्त अज्ञान का विषय होवे उस तर्करहित जानने के अयोग्य को

तमोगुण समझे, हर्ष, प्रीति, आनन्द, समदर्शी होना, बुद्धिमान् की सावधानी यह सातोंके गुण सहेतुक और निर्हेतुक वर्त्तमान होते हैं अभिमान,मिथ्यावचन, लोभ, मोह, असंतोष यह रजोगुण के चिह्न हैं यह भी सहेतुक और निर्हेतुक वर्त्तमान होते हैं इसीप्रकार, मोह, भ्रान्ति, शयन, आलस्य, अज्ञानता, यह सब इसीप्रकार सामने वर्त्तमान होते हैं यह तमोगुण जानने योग्य हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवां अध्याय ॥

इसप्रकार बुद्धि का स्वाभाविक त्रिगुणात्मक होना कहकर कर्म्म से उत्पन्न होनेवाले तीन प्रकारों को कहते हैं, व्यासजी बोले कि, चित्त नानाप्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करता है बुद्धि उनको निश्चय करनेवाली है, हृदय अनुकूल और प्रतिकूल को जानता है यह तीन प्रकार के लिखे हुए कर्म्म हैं इसी कारण विषय इन्द्रियों से सूक्ष्म हैं और विषयों से सूक्ष्म चित्त और चित्त से सूक्ष्म बुद्धि और बुद्धि से सूक्ष्म आत्मा को माना है, मनुष्य की व्यावहारिक आत्मा बुद्धि है, जब बुद्धि आत्मा में आपही विपरीतदशा को करती है तब वह चित्तरूप होती है, इन्द्रियों के पृथक् २ विषय होने से बुद्धिही रूपान्तर करती है इस कारण वह सुननेवाली बुद्धि श्रोत्रइन्द्रिय को प्रकाश करती है और जो स्पर्श करती है वह स्पर्शेन्द्रिय कहीजाती है, देखनेवाली चक्षुरिन्द्रिय होती है और रस को प्राप्त करके रसनेन्द्रिय होती है और सूंघनेवाली होकर घ्राणइन्द्रिय हो जाती है यह सब पृथक् २ रूप बुद्धिही प्राप्त करती हैं इनको इन्द्रिय कहते हैं उनमें दृष्ट न आनेवाला चैतन्य आत्मा ईश्वररूप नियत होता है, पुरुष में नियत होनेवाली बुद्धि तीनों सात्त्विकी आदि भावों में वर्त्तमान होती है, कभी हर्ष और कभी शोक में होकर इस लोक में कभी सुख दुःख से संयुक्त नहीं होती, यह भावात्मक बुद्धि उन तीनों भावों को उल्लंघन करके ऐसे वर्त्तमान होती है जैसे समुद्र लहराता हुआ किनारे को, जब इच्छावान् होती है तब मनरूप होती है बुद्धि में इन इन्द्रियगोलकों को गुप्त और परस्पर में पृथक् जाने, बुद्धि से सम्बन्ध रखनेवाली सब इन्द्रियां क्रम क्रम से सबकी सब विजय करने के योग्य हैं, जो इन्द्रिय जब बुद्धि के साथ होती है तब पहिले निर्विभाग और एकरूप होनेवाली बुद्धि भी सतोगुण आदि भावों के साथ संकल्परूप चित्तमें वर्त्तमान होती है तब बुद्धि से रक्षित इन्द्रिय संकल्प से उत्पन्न होनेवाले घटको

अपना विषयरूप बनाती है इसीप्रकार क्रमपूर्वक रूप आदि विषयों को भी जानो परन्तु एक समयही नहीं करती है, इन तीनों में जो भाव वर्त्तमान होते हैं वह विषयों के अनुसार ऐसे प्रकट होते हैं जिसप्रकार रथ की नेमि अर्थात् चक्रधारा रथ के साथही होती है बुद्धि आदि उन सब सत्त्व आदि के रूप हैं परन्तु विषय नहीं हैं, विषयों के अलिप्त होने पर किस प्रकार इन्द्रियों से उनकी समीपता और उनसे घट आदि का ज्ञान होय इस शंका को कहते हैं कि बुद्धि तीन प्रकार की है एक तो सीप में चांदी का प्रकाश दूसरे घट आदि के व्यवहार से सम्बन्ध रखनेवाली तीसरे ब्रह्म से सम्बन्ध रखनेवाली इसीसे वह बुद्धि सत्य, सत्यतर, सत्यतम इन तीन नामों से प्रसिद्ध हुई उनमें सत्यतर नाम बुद्धि ब्रह्मरूप है इससे चित्त इन स्थानों के अनुसार घूमनेवाली स्वतन्त्रता से उदासीन ब्रह्मरूप बुद्धिरूप इन्द्रियों के द्वारा विषय को ब्रह्मरूप करे अर्थात् ब्रह्म के छिपानेवाले अज्ञान का नाश करे है इस अज्ञान के फल को कहते हैं, यह जगत् ऐसे स्वभाववाला है अर्थात् बुद्धि से कल्पित है इस बात को जानता मोह को नहीं पाता है आशय यह है कि जैसे जागनेवाला पुरुष स्वप्नादि के धन के नाश में शोक नहीं करता है न प्रसन्न होता है किन्तु सदैव पृथक् रहता है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्त अपवित्रचित्त पुरुष को इन्द्रियों के द्वारा आत्मदर्शन होना असम्भव है जब चित्त के द्वारा उन इन्द्रियों की लगाम को अच्छे प्रकार से पकड़ता है तब इसका आत्मा ऐसे प्रकाश करता है जिसप्रकार दीपक से घटआदि रूप प्रकाश होते हैं उसी प्रकार इसको भी जानो, जैसे कि जलचारी पक्षी जल पर घूमता है और उसमें लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार विमुक्त आत्मा योगी प्राकृत पाप पुण्य से लिप्त नहीं होता है इसी प्रकार सबमें चित्त न लगानेवाला ज्ञानी पुरुष विषयों को भोगता है और दोषों से लिप्त नहीं होता है आशय यह है कि जैसे ज्ञानी पुरुष पुत्रादि के नाश में शोक आदि को नहीं करता है इसी प्रकार देह से असंग योगी देह के कर्म्मों से लिप्त नहीं होता है, पहिले किये हुए कर्म्मों को त्याग करके सब जीवों के आत्मारूप और गुणसमूह में चित्त न लगानेवाले जिस योगी की प्रीति सदैव आत्मा में है, आत्मा कभी बुद्धि और गुणों की ओर प्रवृत्त होता है, गुण तो आत्मा को नहीं जानते परन्तु आत्मा गुणों को अच्छे प्रकार जानता है वह निश्चय गुणों का उत्पन्न करनेवाला और साक्षी है इन सूक्ष्मबुद्धि और क्षेत्रज्ञ का यह अन्तर जानो, कि इनमें एक तो

गुण उत्पन्न करता है और दूसरा नहीं पैदा करता है वह दोनों स्वभाव से पृथक् और सदैव संयुक्त हैं, जिस प्रकार मछली जल से पृथक् और संयुक्त होती है उसी प्रकार वह बुद्धि और क्षेत्रज्ञ दोनों संयुक्त हैं, जैसे कि मूंज में सींक पृथक् और युक्त भी है उसी प्रकार यह दोनों साथ और एक दूसरे से संयुक्त हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, बुद्धि विषयों को उत्पन्न करती है और ईश्वर क्षेत्रज्ञ विपरीत दशा करनेवाले सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों को उदासीन के समान देखता हुआ ऐश्वर्यपद पर नियत होता है वह सर्वस्वभावयुक्त है जो इन गुणों को पैदा करता है, जैसे कि मकड़ी सूत्र को पैदा करती है इसी प्रकार का गुण वह भी रखनेवाला है, तत्त्वज्ञान से गुप्त होनेवाले यह गुण लौटते नहीं हैं उनकी फिर वर्त्तमानता नहीं पाई जाती है, आशय यह है कि रस्सी में सर्प का ज्ञान ध्यान से दूर होता है, फिर कभी रस्सी में सर्प की वर्त्तमानता नहीं होती इसी प्रकार यह गुण भी नष्ट होजाते हैं, कोई ज्ञानी पुरुष इस प्रकार से निश्चय करते हैं और दूसरे न्यायशास्त्रज्ञ इन गुणों के लौटने को निश्चय करते हैं, इन दोनों को विचार कर बुद्धि के अनुसार निश्चय करे इसी बुद्धि से आत्मा में आश्रय करे, आत्मा आदि अन्तरहित है सदैव मत्सरतारहित मनुष्य उस आत्मा को जानकर क्रोधहर्षरहित होकर विचरे इस प्रकार चिन्तारूप कर्म्म से बँधीहुई बुद्धिरूप हृदय की गांठ को काटकर निस्संशय जीवन्मुक्त पुरुष शोच से रहित सुखपूर्व्वक निवास करे, जैसे कि पूर्ण बहती नदी में गिरनेवाले अनपैराक पुरुष डूबने और उछलने से शोक को पाते हैं इसी प्रकार इस लोक को भी जानो परन्तु बुद्धिमान् तत्त्वज्ञ पुरुष थल में विचरता शोक से रहित होता है इसी प्रकार जो पुरुष अपनी आत्मा को आनन्दस्वरूप जानता है वह मनुष्य इस प्रकारसे सब जीवों का उत्पत्तिस्थान ब्रह्म की लय को जानकर लौटपौट को अच्छीतरह विचारकर अर्थात् ईश्वर जानकर अद्वितीय सुखको पाता है मुख्यकर जन्म पानेवाले और शास्त्रोक्त आचारवाले ब्राह्मण का यह पूर्ण आत्मज्ञान मोक्षरूप सुख को प्राप्त करनेवाला है, इसको जानकर पाप पुण्य से पृथक् होता है, ज्ञानी का दूसरा लक्षण कहा है, इसको जानकर ज्ञानी लोग कर्म्मों से निवृत्त होकर मुक्त होते हैं, परलोक में जो अज्ञानियोंका बड़ाभय है वह ज्ञानियोंको नहीं होता

है, ज्ञानी की जो सनातन गति होती है उससे अधिक किसी की नहीं होती है मनुष्य दोषोंसेयुक्त स्त्री आदि वस्तुके भोगकी निन्दा करते हैं और उस२ वस्तुको देखकर शोचकरते हैं उस स्थानपर शोच न करनेवाले ज्ञानियोंको देखो जिन्होंने उन हर्ष शोक को क्रमपूर्वक जाना है, जो फलकी वासनारहित कर्म्मको करता है वह उस कर्म्म का नाश करता है और जो पूर्व्व में किया है, वह दोनों उस कर्मकर्त्ता ज्ञानी के प्रिय अप्रिय को इस लोक में उत्पन्न नहीं करते हैं ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवां अध्याय ॥

शुकदेवजी बोले कि, इसलोक में धर्म्मों में उत्तम महाश्रेष्ठ ब्रह्मविद्या का प्राप्त करानेवाला जो धर्म है उसको आप कहिये व्यासदेवजी बोले कि, ऋषियों का किया हुआ और सब धर्म्मों से श्रेष्ठ प्राचीन धर्म्मको तुमसे कहता हूं तुम चित्त से उसको सुनो, जैसे पिता बालक पुत्रों को स्वाधीन करता है उसी प्रकार बुद्धि और उपाय से उन इन्द्रियों को एकाग्र करे जो कि दुखदाई और सब ओर दौड़नेवाली हैं, मन और इन्द्रियों की एकाग्रता में तपही उत्तम है और सब धर्म्मों से श्रेष्ठतर है वह धर्म्म उत्तम कहाजाता है कि उन सब इन्द्रियों को जिन में छठा मन है बुद्धि से स्वाधीन करके आत्मा से तृप्त और बहुत चिन्ता के योग्य को न मानकर नियत होजाय, जब बाह्याभ्यन्तर अर्थों से रहित इन्द्रियां सबके उत्पत्तिस्थान ब्रह्म में नियत होंगी तब तुम बुद्धि के द्वारा सनातन परमात्मा को देखोगे, जो ब्राह्मण महात्मा और ज्ञानी हैं वह उस उपाधिरहित स के आत्मा परमात्मा को देखते हैं, जिस प्रकार फूलफल से युक्त बहुत शाखावाला वृक्ष अपनी दशा को नहीं जानता है कि मेरे फूलफल कहां हैं इसी प्रकार बुद्धि भी नहीं जानती है कि मैं कहां से आई और कहां को जाऊंगी और दूसरा सबका देखनेवाला अन्तरात्मा है वह देह के भीतर प्रकाशमान ज्ञानदीपक से आत्मा को देखता है तुम सर्वज्ञ होकर आत्मज्ञान से आत्मा को देखकर उपाधि से पृथक् होजाओ, तुम इस लोक में ब्रह्मज्ञान को पाकर पापरहित तप से पृथक् कांचली से छुटेहुए सर्प की समान सब पापों से निवृत्त हो जाओ, सब ओर बहुत प्रकार से बहनेवाली और लोकों को बहानेवाली पांच इन्द्रियरूप ग्रह और चित्तरूप संकल्पवाले किनारेवाली लोभ, मोहरूप, तृणयुक्त कामक्रोधरूप सर्प और सत्यतारूप तीर्थवाली मिथ्यारूपी,वचनों से व्याकुल क्रोधरूप

कीचवाली अव्यक्त से प्रकाशित और अपवित्रचित्त पुरुषों से कठिनतापूर्वक पार होनेवाली नदियोंमें उत्तम संसाररूपी नदीको अच्छी तरहसे तरो यह संसाररूपी नदी अव्यक्त से प्रकट तीव्रधार अपवित्रचित्त पुरुषों से कठिनतापूर्वक पार होने योग्य कामरूपी ग्राह से व्याप्त संसारसागर में वर्त्तमान वासनारूप पाताल से अगम्य अपने जन्म से प्रकट होनेवाली जिह्वारूप भ्रमरचक्र से भयानक जिसको कि बुद्धिमान् ज्ञानी धीर पुरुष तरते हैं उसका तरनेवाला सब ओरसे मुक्त ज्ञानी पवित्र सर्वज्ञ और आत्मज्ञ उत्तम बुद्धि में नियत होकर ब्रह्मही होगा सब संसार से उत्तम रीति से तरनेवाले निष्पाप विमलबुद्धि क्रोधरहित दयायुक्त प्रसन्नतापूर्वक तुम इन ज्ञानियों को ऐसे देखो जैसे कि पर्वत पर चढ़ा मनुष्य पृथ्वी के वर्त्तमान जीवों को देखता है, फिर सब सृष्टि के उत्पत्ति और लय के स्थानरूप ब्रह्म को देखोगे धर्म्मध्वज तत्त्वदर्शी ज्ञानी मुनियों ने इस धर्म्म को जीवों के उपकारार्थ बहुत उत्तम जाना है, सर्वव्यापी आत्मा का यह ज्ञान जोकि पुत्रको उपदेश कियागया वह सावधान हितकारी और अपने आज्ञाकारी पुरुष को उपदेश करना योग्य है, हे तात ! यह आत्मज्ञान बड़ा गोपनीय है जिस आत्मसाक्षी को मैंने बहुत स्पष्ट और यथार्थ वर्णन किया है, यह हर्ष शोक रहित भूत भविष्यका उत्पत्तिस्थान और उनका रूप आत्मा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक इन तीनों में कोई नहीं है, इसको स्त्री पुरुष में से कोई भी जानकर पुनर्जन्म को नहीं पाता है, यह योगधर्म आत्मसिद्धि के निमित्त कहा जाता है, हे पुत्र ! जैसे सब मत मुक्ति में समाप्त होते हैं उसी प्रकार यह मेरे वचन हैं—वह मत फलों के अन्तर होने से होते हैं और वाणी से परे होने से नहीं भी होते हैं इसी कारण सब तान्त्रिकों को यह शास्त्र स्वीकार करना योग्य है, हे उत्तम पुत्र ! इसी हेतु से प्रीतिमान् शान्तचित्त भक्तिमान् पुत्र से प्रश्न किया हुआ पुरुष इस शास्त्र को जिसको कि पिता ने पुत्र के सम्मुख वर्णन किया यथार्थ वर्णन करे ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अठहत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, गन्ध रस आदि सुखोंकी इच्छा न करे और उनके सिवाय मान, कीर्त्ति और यश को भी नहीं चाहै ज्ञानी ब्राह्मण का यही व्यवहार है, सेवा करने का इच्छावान् ब्रह्मचारी सब वेदों को पढ़े जो पुरुष यजुर्वेद और सामवेद की ऋचाओं को जानता है वह ब्राह्मण उत्तम पदवाला नहीं है किन्तु

जो सब जीवों में सजातियों के समान सर्वज्ञ और सर्व वेदज्ञ अनिच्छावान् अर्थात् ज्ञान से तृप्त है वह कभी नहीं मरता है अर्थात् मुक्त होकर जीवताही जीवन्मुक्त होता है इस अनिच्छा से वह ब्राह्मण प्रथमाधिकारी अवश्य है, नानाप्रकार के इष्टि और पूर्ण दक्षिणावाले यज्ञों को करके दया और अनिच्छा के अभ्यास विना किसी दशा में भी ब्रह्मभाव को नहीं प्राप्त होसक्ता है, जब यह निर्भय होता है और जीवमात्र इससे अभय होते हैं और इच्छा और शत्रुतारहित होता है तब ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, जब जीवमात्र में मन, वाणी और कर्म से हिंसारहित होता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, अकेला कामही बन्धन है यहां दूसरा बन्धन नहीं है कामबन्धन से छूटना ही ब्रह्मभाव के योग्य समझाजाता है, जैसे काले बादल से चन्द्रमा अलग होता है इसी प्रकार काल से अलग रजोगुण से पृथक् धैर्यवान् काल को चाहता अपने धैर्य से वर्त्तमान होता है, जैसे कि जल सब ओर से पूर्ण निश्चल समुद्र में प्रवेश करते हैं इसी प्रकार सब इच्छा जिसमें प्रवेश होती हैं वह शान्ति को पाता है अर्थ चाहनेवाला शान्ति नहीं पाता है, वही सत्य संकल्प और संकल्प से होनेवाली कामनाओं से शोभित है न कि स्वर्ग आदि का चाहनेवाला क्योंकि वह देहाभिमान कामनाओं से स्वर्गादिकों को पाता है तात्पर्य यह है कि थोड़े काल पीछे स्वर्ग से पतित किया जाता है, वेद का रहस्य हितकारी वचन है और उसका शिर गुप्त शान्तरूप प्रकट है और शान्तचित्तकी प्रकटता दान है और दान का रहस्य तप है, निर्गुण ब्रह्म को पाकर सब गुप्त और प्रकट संसार के उल्लंघन करनेवाले और परमपद पानेवाले को फिर आवागमन नहीं होता है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

उनासीवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, मानापमान और अर्थ धर्मादि गुणों का कर्त्ता पुरुष जो मोक्ष का चाहनेवाला होय तब उस शिष्य को पहिले यह बड़ा आत्मज्ञान गुणवान् कहनेवाले से सुनना योग्य है, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पांचवीं पृथ्वी, भाव, अभाव, काल यह आठों इन पञ्चतत्त्वों से मिले हुए सब जीवों में नियत हैं देह के रूप के प्रकट करनेवाले वेदवचनों का जाननेवाला पुरुष देह के छिद्रों को आकाश जाने उस आकाश का रूप श्रोत्र इन्द्रिय को जाने और उसके विषय को शब्द जाने, चलना वायु का रूप है प्राण अपान

उसके भेद रूप हैं स्पर्श को इन्द्रिय और विषय जाने ऊष्मा अन्न की परिपक्वता दीपक आदि का प्रकाश सन्तप्तता और पांचवां नेत्र यह सब गुण उसके रूप हैं और यही रक्त श्वेतादि रूप उसका विषय है पवित्र करना और पृथ्वी में प्रवेश कर उसके अंगों के जोड़ को निर्बल करके हलका रहना और रस यह तीनों जल के गुण कहेजाते हैं रुधिर मस्तक और जो २ आर्द्रवस्तु हैं उनको जलरूप जानो, जिह्वा रसनेन्द्रिय कहाती है और रस जलों का गुण है और कठोर वस्तु हाड़ नख आदि डाढ़ी मूंछ शिरकेश शिरा और स्नायु नाम नाड़ी पृथ्वी से सम्बन्ध रखनेवाली धातु और नाक नाम से प्रसिद्ध घ्राणेन्द्रिय यह विषय हैं और गन्ध नाम पृथ्वीरूप जानना चाहिये, पिछले सब तत्त्वों में पहिले तत्त्वों के गुण हैं अर्थात् आकाश का शब्द गुण, वायु में शब्दस्पर्श, अग्नि में शब्द, स्पर्शरूप जल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पृथ्वी में गन्ध समेत पांच हैं इसी प्रकार सब प्राणियों में पहिले अविद्या, काम, कर्म्म, गुण कहे हैं मुनियों ने पञ्चतत्त्वों की उत्पत्ति को जाना है इन में नवां चित्त और दशवीं बुद्धि है ग्यारहवां आत्मा है वह अनन्त सर्वरूप और सर्वोत्तम कहा जाता है, बुद्धि निश्चयात्मक है और चित्त संशयात्मक है वह क्षेत्रज्ञ नाम जीवकर्मों के अनुमान से जानाजाता है, जो पुरुष इन कामरूप भावों से संयुक्त आत्मा को देखता है और वास्तव में सबसे अलिप्त जानता है वह सकल कर्म्म करता नहीं है तप का रहस्य त्याग, त्याग का रहस्य सुख, सुख का रहस्य सर्ग अर्थात् सगुण ब्रह्मभाव है, सर्ग का रहस्य शम है जो संतोष के द्वारा बुद्धि की निर्मलता को चाहै वही बुद्धि शान्ति का लक्षण है क्योंकि वह शोकसन्देह को लोभ के साथ संतप्त करके निर्बल करती है, शोक मोह और मत्सरता से पृथक् शान्त शुद्ध चित्त इन छओं गुणों का लक्षण रखनेवाला ज्ञान से तृप्त मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, इस प्रकार मुक्त पुरुष के लक्षण को कहकर मुक्ति के साधन को कहते हैं—जिन पुरुषों ने सतोगुणयुक्त सत्यता, शान्ताचित्तता, दान, तप, त्याग, शम इन छः गुण और श्रवण, मनन, निदिध्यासन और शास्त्र, अनुमान, अनुभव यह तीनों इच्छाओं से युक्त और देह में नियत आत्मा को देह की वर्त्तमान दशा में जाना है वह इस मुक्त लक्षण गुण को प्राप्त होकर देह में उस अजन्मा, अविनाशी, स्वभावसिद्ध और ब्रह्म को प्राप्त होनेवाले अविनाशी सुखको पाते हैं अथवा पक्षान्तर में उपनिषद् नाम विद्याको प्राप्त होनेवाला पुरुष

भी ध्यान आदि के क्रम से अविनाशी सुख को पाता है, वह उपनिषद् विद्या सदैव से अविनाशी आदि अनेक गुण रखनेवाली है, केवल शास्त्र के ही ज्ञान से मुक्ति नहीं होती किन्तु दूसरे साधन की भी आवश्यकता है उसको कहते हैं, यह पुरुष चित्तको कर्मरहित कर सब ओरसे नियत करके जिस तुष्टिताको पाता है वह दूसरे प्रकार से प्राप्त करना कठिन और असम्भव है, जिस ब्रह्म के कारण विना भोजन के निर्धन भी तृप्त होता है और संसार से वैराग्यवान् भी बलवान् होता है जो उसको जानता है वही वेदज्ञ है, जो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सावधानी से इन्द्रियों को रोककर ध्यान में नियत होता है वह आत्मा से प्रीति रखनेवाला कहाजाता है परमतत्त्वों में समाधि करनेवाले अनिच्छायुक्त नियत पुरुषको सब ओर से सुख मिलता है, पञ्चतन्मात्रा, बुद्धि, महत्तत्त्व और प्रधानसमूह और स्थूलतत्त्व ग्यारह इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयसमूहों के त्याग करनेवाले मुनिके सुखसे दुःख ऐसे दूर कियाजाता है जैसे कि अंधकार सूर्यसे दूर होता है, उस कर्म के उल्लंघन करनेवाले और गुणों के ऐश्वर्य से पृथक् विषयों से अलिप्त ब्राह्मण को जरा मृत्यु नहीं होती है इसी से करुणायुक्त सब ओर से वैराग्यवान् राग द्वेषसे रहित होता है, अर्थात् आत्मतत्त्वका जाननेवाला इच्छारहित होता है ॥ १२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अस्सीवां अध्याय ॥

इस प्रकार से पञ्चतत्त्व अविद्या काम कर्म चित्त बुद्धि इन दशरूपयुक्त देह है इसके विशेष अनन्त आत्माहै वहभी लिंगात्माहै इस भ्रमके निवृत्तके अर्थ उसको भी दशों में ही वर्त्तमान सिद्ध करते हैं—व्यासजी बोले कि, स्थूल शरीर से पृथक् जीव को सूक्ष्मशरीरवाला कहा इस हेतुसे शास्त्रज्ञ योगी उस लिंगात्माको शास्त्रोक्त कर्म से समाधि में देखते हैं अर्थात् उसका साक्षात्कार करते हैं जैसे कि सूर्यकी किरणें एकबार ही सब जगह घूमती हैं और नियत रहती हैं और गुरुकी युक्ति से दृष्टि पड़ती हैं इसी प्रकार जीवन्मुक्त लोग प्राचीन स्थूल शरीर को त्याग कर सूक्ष्मरूप से पृथ्वी पर घूमते हैं, जैसे कि जल में सूर्य का किरणमण्डल जिस रूपवाला विदित होता है उसी प्रकार सजीव देहों में सत्प्रधान लिंग उसी रूप वाला दृष्ट आता है, और वह योगी उसीको देखता है, जितेन्द्रिय और लिंग नाम देह के जाननेवाले योगी पुरुष अपने लिंगदेह से उन स्थूलदेहों से पृथक् सूक्ष्म शरीर रखनेवाले जीवों को देखते हैं वह योगी परकायप्रवेशनादि कर्म

करने को समर्थ होते हैं, योग ऐश्वर्य जो कि जगत् कारणप्रधान का आत्मा रूप है उससे निवृत्त और कर्म से दीखनेवाले रजोगुण को त्याग करनेवाले सोते जागते हैं उन सब योगाभ्यासी पुरुषों के स्वाधीन वह लिंगशरीर सदैव होता है जैसा रात्रि में वैसाही दिन में स्वाधीनता को करते हैं उन योगियों का जीवात्मा सदैव गुणों के कार्य महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा नाम सात सूक्ष्म गुणों समेत इन्द्रलोक आदि में आनेजानेवाला और तीनों काल में विनाशवान् व्यवहार से अजर अमर होता है, इसप्रकार योगियों को सूक्ष्मशरीर का अपरोक्ष ज्ञान कहागया वह अज्ञानियों को भी प्राप्त है, चित्त बुद्धि से विजय किया हुआ जीवात्मा स्वप्नावस्था में भी अपने और दूसरे के शरीर जो कि स्थूल शरीर से पृथक् हैं उनको जानता है और सुख दुःखों का भी ज्ञाता है परन्तु वहां भी सुख दुःखों को पाकर क्रोध लोभ से दुःखी होता है और बहुत अर्थवान् होकर प्रसन्न चित्त होता है तब पुण्य भी करता है और जीवता सा दीखता है, प्रत्यक्ष है कि उस जठराग्नि के भीतर वर्त्तमान होकर गर्भरूप को धारण किया और दशमहीने तक माता के उदरमें निवासी होकर भोजन की वस्तु के समान पेट में नहीं पचता है, तमोगुण रजोगुण से युक्त गिरे हुए मनुष्य उस परमेश्वर के अंश हृदयस्थ जीवात्मा को शरीरों के भीतर नहीं देखते हैं तो आत्माकी प्राप्ति कैसे होय उसका वर्णन करते हैं, उस आत्मा को चाहनेवाले पुरुष योगशास्त्र को जानकर सूक्ष्म और प्रलय में भी अविनाशी कारण नाम शरीर को उल्लंघन करते हैं आशय यह है कि योग से तीनों देह त्याग करनेवाले योगियों को आत्माकी प्राप्ति है, शाण्डिल्यऋषि ने पृथक्रूपवाले चार आश्रम के कर्मों के क्रम में समाधि के योग्य सब वृत्तियों के शान्तिरूप इस योग का वर्णन किया है, सात सूक्ष्म अर्थात् इन्द्रिय, विषय, चित्त, बुद्धि, महत्तत्त्व, अव्यक्त, पुरुष, आत्मा को और छः अंगयुक्त महेश्वरको जानकर और त्रिगुणात्मक ज्ञानका रूपान्तर इस जगत् को जानकर गुरु, वेदवचनों के विचार से परब्रह्म को साक्षात्कार करता है ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इक्यासीवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, इस प्रकार सूक्ष्म स्थूल देहों से पृथक् आत्मा को कह कर मूल अज्ञान से भी उसकी पृथक्ता वर्णन करते हैं कि हृदय में कामरूप वृक्ष अपूर्व है जो मोह के समूहरूप बीज से उत्पन्न क्रोध और अभिमानरूप

शाखाओंसे युक्त इच्छाकर्म्मरूप थांवले में वर्त्तमान अज्ञानरूप मूल और प्रमादरूप जल से सींचाहुआ है उसमें निन्दारूप पत्ते और पूर्व पापही सार है मोह चिन्ता शोकआदि डालियां भयरूप अंकुर और लोभरूपी मोहिनी लताओं से आच्छादित है लोहमयी पाश में बँधाहुआ महालोभी उसके फल के चाहनेवाले मनुष्य उस फल देनेवाले बड़े वृक्ष को चारों ओर से घेरकर समीप बैठते हैं, जो पुरुष उन पाशों को आधीन करके उस वृक्ष को काटता है वह उन दोनों प्रकार के दुःखों को त्याग करता है विषय से सम्बन्ध रखनेवाला सुख भी दुःख है इस कारण दुःख को द्विवचन कहा है, जिस कारण से अज्ञानी उस वृक्षको बढ़ाता है उसीकारण से वह इसप्रकार उसको मारता है जैसे कि विषकी गांठ रोगी को मारती है, उस दृढ़ बीजवाले वृक्ष की जड़ निर्विकल्प समाधिरूप उत्तम तेज के द्वारा काटी जाती है, जो पुरुष केवल कामकी निवृत्ति और कामशास्त्र के बन्धन को जानता है वह दुःखों को उल्लंघनकर वर्त्तमान होता है, देहपुर और बुद्धि स्वामी और उस निश्चयात्मक बुद्धि का मन्त्री चित्त है वह शरीर में नियत है चित्तरूप मन्त्री से बसाये गये इन्द्रियरूप पुरवासी हैं और इन्द्रियों का विषय धन है उन इन्द्रियरूप पुरवासियों के पोषण के अर्थ दान आदि बड़े यज्ञों का प्रारम्भ है उस कर्म्म के प्रारम्भ में दो दोष भयकारी हैं जो कि तमोगुण रजोगुण नाम हैं अर्थात् वह राजस, तामस, अहंकार, कर्म्मफल, सुख, दुःख को जैसे मन्त्री चित्त ने उत्पन्न किया हो वैसे भोगते हैं, यह चित्त बुद्धि अहंकार इस देहरूपी पुर के अधिपति हैं और तीनों उस सुख आदिरूप धन को परस्त्रीभोग आदि के द्वारा भोगते हैं उस दशा में अजिता बुद्धि भी चित्त के समान दोषों से लिप्त कहीजाती है, पुरवासी भी चित्तरूप मन्त्री से भयभीत होते हैं तब उनकी दृढ़चित्तता भी नष्ट होजाती है और दोषवान् बुद्धि भी जिस धन पुत्रादि अर्थ को अपना हितकारी निश्चय करती है वह अर्थ दुःखदायी होकर नाश होजाता है, नाशवान् अर्थ भी दुःखका देनेवाला है उसको सुनो कि जब चित्त बुद्धि के द्वा धनआदि को उनके नाश होने के पीछे शोचकर याद करता है तब वह चि महापीड्यमान होता है, जब चित्त बुद्धि से पृथक् होता है तब केवल चित्त कह जाता है परन्तु वास्तव में वही बुद्धि है इसी हेतु से चित्त के योग से बुद्धि में दुःख सुख होते हैं, अनात्मारूप बुद्धि और चित्तके दुःखमें आत्माकी क्या हानि होतीहै इसको विचारकर कहते हैं—उस बुद्धि में प्रतिबिम्बरूपसे नियत इस आत्

को केवल रजोगुणही व्याप्त करता है वह रजोगुण दुःखरूप फलका दाता है इसकारण वह चित्त रजोगुणसे मित्रता करता है अर्थात् प्रवृत्ति के सन्मुख होता है और उन पुरवासी लोगों को पकड़कर रजोगुण के आधीन करता है ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

बयासीवां अध्याय ॥

इसप्रकार संसाररूपी कारागृह से मोक्ष होने के लिये व्यासजी की कही हुई युक्ति के कहने को भीष्मजी उद्यत हुए—भीष्म उवाच—हे निष्पाप, पुत्र! व्यासजी के मुख से निकला हुआ चैतन्य आत्मा की उपाधिरूप आकाशादि तत्त्वों का बड़ा विचार तुम बड़ी श्लाघा से सुनो, देदीप्य अग्नि के समान प्रकाशित अज्ञानरहित भगवान् व्यास जी ने उन अज्ञानढके धूमवर्ण शुकदेवजी से कहा कि, हे पुत्र! इसकारण से मैं निश्चय किये हुए शास्त्र को कहता हूं कि निश्चलता, गुरुत्व, कठिनत्व, अन्नादि की उत्पत्तिस्थान, गन्ध अपनी प्रबलता से देहादि की वृद्धि करना, गन्ध के प्राप्तिकी सामर्थ्य एकत्र होकर दृढ़ होना, मनुष्यादि का रक्षास्थान और पञ्चभूतसम्बन्धी चित्त में जो धैर्य का भाग है यह सब पृथ्वीसम्बन्धी गुण हैं—शीतलता, आर्द्रता, जारी होना, सचिक्कणता, शोभा, जिह्वा अर्थात् रसनेन्द्रिय की चेष्टा, बरफ आदि जलविकार, तन्दुलादि पाक यह सब जलसम्बन्धी गुण हैं—स्पर्श के योग्य होना, अग्नि का प्रकाश, ऊष्मा अन्न का परिपाक, शोक, रोग, शीघ्रगामिता, तीव्रता, ऊपर का बराबर जाना; यह सब अग्निसम्बन्धी गुण हैं—शीत उष्ण से रहित स्पर्श, वचन इन्द्रिय के गोलक, गमन में स्वतन्त्रता, पराक्रम, शीघ्रता, छूटना, श्वास का आना जाना, प्राणरूप से चैतन्य की उपाधिरूप होना, जन्म, मरण यह सब वायुसम्बन्धी गुण हैं—शब्द, व्यापकता, छिद्रत्व, आश्रयत्व, अनन्याश्रयत्व, स्पर्शरहित अव्यक्तता, एक दशा से दूसरी दशा में न होना,—यह आकाशसम्बन्धी हैं यह सब पचाश गुण पांचों तत्त्वों से प्रकट हैं चित्त में नौ गुण हैं अर्थात् मण्डन करना, खण्डन करना, वार्त्तालाप में प्रवीणता, स्मरणता, भ्रान्ति, मनोरथवृत्ति, क्षमा, वैराग्य, राग, द्वेष आदि और व्याकुलता, प्रिय अप्रियता का नाश, निद्रारूप वृत्ति, समाधि से चित्त का रोकना, संशय प्रत्यक्ष आदि प्रमाण की वृत्ति इन पांचों को बुद्धि के गुण जानो, युधिष्ठिर ने कहा कि बुद्धि किसप्रकार से पांचों गुण रखनेवाली है और कैसे पांचों इन्द्रियों के गुण हैं हे पितामह! इन

सब मोक्षज्ञानों को मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि तत्त्वों के गुण पचास और बुद्धि के पांच पचपन हुए जो कि पांचों तत्त्व भी बुद्धि के ही गुण हैं इससे सबको इकट्ठा किया तो साठ हुए वह सब गुण चैतन्य से संयुक्त हैं पञ्चतत्त्व और उनकी विभूतियों को अविनाशी ब्रह्म से मिला हुआ कहते हैं हे पुत्र! यहां उसको सदैव नहीं कहते हैं अर्थात् जैसे सीपी में चांदी होना नित्य नहीं है इसी प्रकार केवल चैतन्य के देखने के समय से विश्व की उत्पत्ति है, इसीकारण चैतन्य की सदैव एक दशा होनेपर उससे उत्पन्न होनेवाला जगत् रस्सी के सर्प की समान मिथ्या है, ब्रह्म अद्वैत सिद्ध होता है, यह ऊपर वर्णन किया हुआ वेद-वचन के समान है इसको कहते हैं, हे पुत्र ! प्रथम लिखे हुए श्लोकमें सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में दूसरे वादियों ने जो वेद से विरुद्ध वचन तुम से कहा वह विचार से दोषयुक्त है अर्थात् युक्तिसहित भी अयुक्तिक है क्योंकि वेदका सिद्धान्त बड़ी युक्तिवाला है, परन्तु तुम इस लोक में मेरे कहे हुए उस सदैव नित्य सिद्ध ब्रह्मको ब्राह्मय ऐश्वर्य्य अच्छेप्रकार प्राप्त करके वृत्ति से रहित बुद्धिवाले हो ॥१२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

तिरासीवां अध्याय ॥

शान्तबुद्धि होने से कल्याण है वह शान्ति मरणसमय पर स्वतः उत्पन्न होजाती है क्योंकि स्मृति के अनुसार मृत्यु मौनरूप है फिर साधना से क्या प्रयोजन है यह शंका करके एक गाँव से दूसरे गाँव के जाने के समान जन्म मृत्यु हैं परन्तु वह मौनता उत्पत्ति नाश के समान केवल स्थूल देह से है सूक्ष्म देह से नहीं है इसके विषय में मृत्यु और ब्रह्माजी के प्रश्नोत्तर वर्णन करते हैं-

युधिष्ठिर बोले कि सेना के मध्य में जो मृतक छः महाबली राजा लोग वर्त्तमान हैं वह पृथ्वीपर सोते हैं उनमें हरएक भयकारी पराक्रमी दशहज़ार हाथीके समान बली था यह लोग युद्ध में पराक्रमी मनुष्यों के हाथ से मारे गये, मैं उस युद्ध में इन पुरुषों के किसी दूसरे मारनेवाले को नहीं देखता हूं वह पराक्रम तेजबल में युक्त थे फिर वह बड़े ज्ञानी निर्जीव सोते हैं और उन निर्जीवों में यह शब्द वर्त्तमान है कि वह मर गये, बहुधा ऐसे भयकारी पराक्रमी राजा लोग मरगये इसमें मुझको संशय है कि मरगये यह शब्द कहां से उत्पन्न हुआ, हे देवस्वरूप, पितामह ! मृत्यु किस की है स्थूल सूक्ष्म शरीर की है या आत्मा की है और किस पुरुष से उत्पन्न हुई और किस कारण संसार को मारती है यह सब मुझको

समझाइये–भीष्मजी बोले कि, हे तात। पूर्वकाल के सतयुग में एक अनुकम्पक नाम राजा हुआ वह युद्ध में क्षीणवाहन होकर शत्रु की सवारीपर शत्रु की स्वाधीनता में वर्त्तमान हुआ उसका हरि नाम पुत्र जो भगवान् के समान पराक्रमी था वह सेना और साथियों समेत युद्ध में शत्रुओं के हाथ से मारागया तब राजा अनुकम्पक जो शत्रु के स्वाधीनपुत्र शोकयुक्त और शान्तचित्त था उसने पृथ्वीपर स्वतः आये हुए नारदजी को देखा और अपने शत्रुवश और पुत्रशोक होने का सब वृत्तान्त नारदजी से वर्णन किया तब तपोमूर्त्ति नारदजी ने उसके वचन सुनकर पुत्रशोक की दूरकरनेवाली कथा उससे वर्णन की अर्थात् नारदजी बोले कि हे राजन्! इस बड़े विषयवाली कथा को सुनो कि प्रजा उत्पन्न करने के समय ब्रह्माजी सृष्टिको उत्पन्न करके उसकी अत्यन्त वृद्धि को न सहसके, हे अधिकार संच्युत न होनेवाले, युधिष्ठिर! उससमय पृथ्वी जीवों से कहीं भी खाली न रही तब तीनों लोक जड़पदार्थ के समान अचल होगये और संसार के नाश के विषय की चिन्ता ब्रह्माजी के चित्त में उत्पन्न हुई और ब्रह्माजी ने विचार करके सृष्टि के नाश होने का कोई कारण न समझा और उनके क्रोध करने से इन्द्रियों के छिद्रों के द्वारा अग्नि प्रकट हुई तब ब्रह्माजी ने उस अग्निके द्वारा सब दिशाओंको भस्म किया और भगवान् के कोप से उत्पन्न हुई अग्नि ने स्वर्ग, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र आदि चराचर जगत् को भस्म किया और सब स्थावर जंगम जीव भी भस्म होगये तब जटाधारी संसार के रक्षक श्रीशिवजी महाराज ब्रह्माजी के पास गये तब ब्रह्माजी शिवजी से मिलकर संसार के उपकारार्थ यह वचन बोले कि हे शिवजी! आप मेरी बुद्धि से सब वरों के योग्य हो मैं तुम्हारे मन की इच्छा के समान तुम्हारा अभीष्ट करूंगा॥ २१॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

चौरासीवां अध्याय।

शिवजी बोले कि हे प्रभो, पितामह! संसार की उत्पत्ति के निमित्त इस मेरी प्रार्थना को सुनो कि यह सृष्टि आपनेही उत्पन्न करी है इसपर क्रोध न करिये हे ब्रह्मन्! सब प्रजालोग आप के तेज की अग्नि से जलते हैं उनको देखकर मुझको दया उत्पन्न होती है इनपर दया कीजिये; ब्रह्माजी बोले कि मैं कोप नहीं करता हूं और यह भी नहीं चाहता हूं कि सृष्टि का नाश होजाय यह सृष्टि का नाश पृथ्वी के बोझ उतारने को किया जाता है सो हे महादेवजी! इस

भार से क्रान्त भयभीत पृथ्वी को जल में डूबता हुआ जानकर यह युक्ति की गई, जब बुद्धि के बड़े विचार से इस संसार की वृद्धि को न्यून करने का कोई विचार न पाया तब मुझ में क्रोध प्रवृत्त हुआ, शिवजी बोले कि हे देवेश्वर! प्रसन्न हूजिये और संसार के नाश के निमित्त क्रोध को त्यागो जिससे कि सब जड़ चैतन्य जीव बचें सब छोटे बड़े सरोवर, नदी, तृण और चारों खान के जीव जलकर भस्म होगये अब आप प्रसन्न हूजिये यही वर मैं मांगता हूं, यह नाशवान् भस्म हुए जीव अब किसीप्रकार से उत्पन्न नहीं होंगे इस कारण आप अपनेही तेज से इस तेज को हटाओ और इनके वृद्धि की कोई दूसरी युक्ति विचारिये हे पितामह! जैसे यह सब जीव बचें सोई कीजिये जिनकी स्त्रियां गौ आदि नष्ट होगई हैं वह नष्ट होवें, हे लोकेश्वरों के स्वामी! मुझ को आप ने अधिदेव के अधिकारपर नियत किया है और सब संसार तुम्हाराही बनाया है मैं आप को प्रसन्न करके मरमरकर जन्म लेनेवाली सृष्टि को चाहता हूं, नारदजी बोले कि यह शिवजी के वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने उस तेज को अपने अन्तरात्मा में आकर्षण करलिया और उस अग्नि को भी अपने में लय करके जीवों के जन्म मरण को विचार किया आशय यह है कि जन्म मरण इन दोनों के होने से न पृथ्वी पर भार होगा न सृष्टि की अधिकता होगी इन सब बातों के पीछे उन ब्रह्माजी के शरीरी छिद्रों से एक स्त्री प्रकट हुई जिसके काले और लाल वस्त्र और काले भीतरी नेत्र और दिव्य कुण्डलों से शोभित दिव्य भूषणों से अलंकृत थी वह देह के छिद्रों से निकलकर दक्षिण दिशा में नियत हुई और उन दोनों विश्वेश्वर देवताओं ने उस शोभित कन्या को देखा सो हे संसार के पोषण करनेवाले, राजन्, युधिष्ठिर! ब्रह्माजी ने उस कन्या को बुलाकर यह कहा कि, हे मृत्यो! तुमको हमने स्मरण किया था सो तुम सब स्थावर जंगम जीवों को मारो और किसी पर दया मत करो सब छोटे बड़ों को विनाश करो तुम मेरी आज्ञा से बड़े कल्याण को पाओगी यह ब्रह्मा का वचन सुनकर उस कमलमालाधारी स्त्रीरूप शोचग्रस्त मृत्यु ने बड़ा ध्यान करके अश्रुपात किया और मनुष्यों के आनन्द के तिमित्त उन अपने अश्रुपातों को दोनों हाथों में भरलिया और प्रार्थना की और आंसू गिरने से सब जीवों का एकही बार नाश न हो यह अभिप्राय था ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पचासीवां अध्याय ॥

नारदजी बोले कि, फिर वह दीर्घनेत्रवाली चित्त से दुःख को दूर कर हाथ जोड़ नम्र शिर से इसी प्रयोजन को कहनेलगी कि हे श्रेष्ठवक्ता, ब्रह्माजी ! तुम से उत्पन्न हुई मुझ सी स्त्री सब प्राणियों को भय उत्पन्न करनेवाली कैसे होसक्ती है, मैं अधर्म का भय करती हूं मुझको धर्मरूप कर्म का उपदेश करो आप मुझ भयरूप अग्नि को विचार कर कल्याणरूप नेत्रों से देखो हे प्राणियों के स्वामी मैं उन निरपराधी बालक, वृद्ध, तरुण, पुरुषों को नहीं मारूंगी मैं आप को नमस्कार करती हूं आप मुझपर प्रसन्न हूजिये, प्यारे पुत्र, बराबर के भाई और माता पिता आदि को भी नहीं मारूंगी जिनके कि सम्बन्धी मारेगये वह शाप देंगे मैं उनसे भय करती हूं, दुखिया जीवों का अश्रुपातीय जल मुझको बहुत वर्षोंतक सदैव भस्म करैगा मैं उनसे अत्यन्त भयभीत आपकी शरण आई हूं हे देव ! पाप करनेवाले जीव यमलोक में गेरेजाते हैं इससे हे वरद ! मैं आपको प्रसन्न करती हूं मेरे ऊपर कृपा करो हे लोकपितः ! मैं आपसे यह चाहती हूं कि तुम्हारे प्रसन्नता के अर्थ मैं तपस्या करूं ब्रह्माजी बोले कि हे मृत्यो ! मैंने तुझको संसार के नाश के निमित्त उत्पन्न किया है तुम जाओ सब संसार को मारो किसी बात का विचार मत करो यही बात अवश्य होगी कभी इसके विपरीत न होगी हे पापरहित, निर्दोष, स्त्री ! मेरे वचनों को मानकर जैसा कहा है वैसाही करो, फिर हे महाबाहो, युधिष्ठिर ! इसप्रकार से आज्ञा पाई हुई मृत्यु ने उत्तर नहीं दिया और नम्रतापूर्वक ब्रह्माजी के सन्मुख नियत होगई और वारंवार आज्ञप्त होने से निर्जीव के समान अवाक् होगई तदनन्तर देवों के देव ईश्वर ब्रह्माजी आपसे आप प्रसन्न हुए और मन्दमुसक्यानयुक्त होकर सब लोकों को देखा और देखते ही अपनी कृपा प्रकट की और सुनाजाता है कि ब्रह्माजी को क्रोधरहित देखकर वह कन्या उनके सामने से पृथक् चलीगई, हे राजेन्द्र ! तब वह मृत्यु सृष्टि के नाशकर्म्म को भूलकर वहां से चलकर शीघ्रही धेनुक नाम तीर्थ को गई और वहां महाउत्तम उग्र तप किया और पन्द्रह पद्म वर्षतक एक चरण से खड़ीरही फिर भी उन महातेजस्वी ब्रह्माजी ने उस उग्र तपवाली कन्या से कहा कि हे मृत्यो ! तू मेरे वचन को कर यह सुनकर मृत्यु उनके वचन को ध्यान न करके फिर सातपद्म वर्षतक एकपैर से खड़ीरही फिर तेरहपद्म वर्ष खड़ी रही और अयुत वर्षतक मृगों के साथ घूमी फिर दो अयुत

वर्षतक वायु के आधार से रही फिर मौनता में नियत हुई और आठ सहस्रवर्षतक जलमें निवास किया फिर वह कन्या कौशिकी नदी को गई वहां वायु और जल के आहार से नियम किया फिर वह श्रीगङ्गाजी और शुद्ध मेरुपहाड़ पर गई वहां काष्ठ के समान निश्चेष्ट सृष्टि के आनन्द की इच्छा से नियत हुई तदनन्तर हे राजेन्द्र! वह हिमालय के मस्तकपर जहां देवताओं ने यज्ञ किया था गई वहां भी एक निखर्व वर्ष तक अंगूठा विना लगाये खड़ीरही और बड़ी युक्ति से ब्रह्माजी को प्रसन्न किया तदनन्तर वहां लोकेश ब्रह्माजी ने आकर उससे यह कहा कि हे पुत्रि! यह क्या करती है मेरा वह वचन करो फिर मृत्यु ने भगवान् ब्रह्माजी से कहा कि, हे देव! मैं सृष्टि को नहीं मारूं यह आपसे प्रार्थना करती हूं, फिर तो ब्रह्माजी ने बड़े हठ से उस अधर्म से भयभीत मृत्यु से कहा कि हे मृत्यो! तेरा अधर्म नहीं है तुम निस्संदेह प्राणियों को मारो मेरा वचन अन्यथा कभी नहीं होगा तेरे पास यहां ही सनातनधर्म आवेगा मैं और सब देवता सदैव तेरी भलाई में प्रवृत्त हैं और इस दूसरे तेरे मनोरथों को देता हूं हम से पीड्यमान प्रजालोग तुझको दोष न लगावेंगे, तुम पुरुषों में पुरुषरूप स्त्रियों में स्त्रीरूप और नपुंसकों में नपुंसकरूप होगी अर्थात् ब्रह्मभाव को प्राप्त होगी और तुमको पाप नहीं होगा, हे राजन्! इसप्रकार आज्ञायुक्त भी उस मृत्यु ने हाथ जोड़कर फिर उस अविनाशी ब्रह्माजी से निषेध किया, तब ब्रह्मा ने फिर कहा कि तू मनुष्यादिकों को मार तुझको दोष कभी न होगा मैं ठीक विचारपूर्वक करूंगा, हे मृत्यो! मैंने जिन अश्रुपातों के कणों को जिनको पूर्व्व में तैंने अपने हाथों में धारण किया था घोररूप रोग बनाया है वह समय आने पर जीवों को मारेंगे, तुम सब जीवों के अन्तसमयपर उन दोनों काम क्रोध को चलायमान करो अर्थात् उनके कर्म्मफल के द्वारा काम क्रोध प्रकट होने पर तुम उनको मारो इसप्रकार से तुम को धर्म्म होगा और राग द्वेष से रहित तुमको अधर्म्म भी न होगा, तुम इसप्रकार से धर्म्मपालन करोगी और अधर्म में नहीं डूबोगी इस कारण इस अधिकार को अंगीकार करो और जीवों में काम को प्रवृत्त करके उनको मारो, तब मृत्युनाम स्त्री ने भयभीत होकर ब्रह्माजी से कहा कि बहुत अच्छा तब से वह मृत्यु जीवों के अन्तसमय पर उनमें काम क्रोध का प्रवृत्त करके प्राणों को अज्ञान कर मारती है, और मृत्यु के जो वह अश्रुपात रोगरूप हुए उनसे जीवन के अन्त में सब

मनुष्यादि जीवोंका देह पीड्यमान होता है इसकारण शोक मत करो और बुद्धि से समझो, जीवों की सब इन्द्रियां अपने व्यवहार के अन्त में अर्थात् जाग्रत दशाके समाप्त होनेपर सुषुप्ति में जीव ब्रह्म की एकता को प्राप्त होकर उस प्रकार जाग्रत अवस्था में प्रकट होती हैं जिस प्रकार से कि सब मनुष्य उन देवता इन्द्रियों के समान जीवन के अन्त में परलोक में जाकर फिर इसलोक में प्रकट होते हैं आशय यह है कि जाग्रत और स्वप्नावस्था के समान समाप्ति वा उत्पत्ति कर्म्म से जन्म और मरण को प्राप्त होते हैं और तुमने पूछा कि किसकी मृत्यु होती है उसका उत्तर सुनो कि भयकारी शब्द और रूप धारण करनेवाला बड़ा तेजस्वी जो वायु है वह सब प्राणियों का प्राणरूप नाना प्रकार के देहों में वर्त्तमान और जीवों के देह के नाश में इन्द्रियों का राजा है इसकारण वह अपूर्व्व विलक्षण है तात्पर्य यह है कि शरीर की ही मृत्यु होती है प्राणात्मा की नहीं है, सब देवतालोग जिनका कि पुण्य समाप्त होता है वह पृथ्वी पर आनकर जन्म लेते हैं और सुन्दर कर्म्मवाले मनुष्य देवभाव को प्राप्त होते हैं हे राजाओं में उत्तम ! इसीकारण से तुम अपने पुत्रका शोच मत करो वह तुम्हारा पुत्र स्वर्ग को प्राप्त होकर आनन्द करताहै, इस रीतिसे देवता से मिलेहुये काल के वर्त्तमान होनेपर जैसे चाहे वैसे मारनेवाली है और उसके अश्रुपात से उत्पन्न होनेवाले रोग इस लोक में समय आने पर जीवमात्रों को मारते हैं ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

छियासीवां अध्याय ॥

इसप्रकार से अपने कर्मों के द्वारा जीवों की मृत्यु और रोगों को जानकर उनकी निवृत्ति धर्म से मानके आर्य, जैन और म्लेच्छशास्त्रों के बहुत प्रकारके मार्गों में संदेहयुक्त धर्मरूप को लक्षण और प्रमाणसे जाननेके इच्छावान् राजा युधिष्ठिरने प्रश्न किया कि यह सब मनुष्य धर्म में अनेक संदेह करतेहैं कि यह धर्म क्या है और कहां से है यह इस लोक के या परलोक के या दोनों लोकों के निमित्त है इसको हे पितामह ! आप समझा के मुझसे कहिये, सदाचार, स्मृति, वेद यह तीन प्रकार का धर्मलक्षण है और चौथे अर्थ को भी पण्डितलोग धर्म का लक्षण कहते हैं, जो धर्मरूप कर्म कियेगये उनको न्यूनाधिकता के कारण भिन्न २ निश्चय करते हैं जैसे कि गृहस्थाश्रम में मोक्ष को न जानकर संन्यास को चाहना और कामीलोगों की इच्छा गृहस्थाश्रम में होना इस

स्थानपर क्या सिद्धान्त है इसको शंका करके कहते हैं, कि यहां लोकयात्रा के निमित्त धर्म का नियम कियागया है कि राजा जनक आदि के समान सावधानचित्त पुरुष को गृहस्थाश्रम भी मोक्ष का दाता है और अन्य को यह संन्यासधर्म इस लोक परलोक दोनों लोकों में सुख का देनेवाला है, पापात्मा पुरुष उत्तम धर्म को न पाकर पाप में प्रवृत्त होता है कोई पाप करनेवाले मनुष्य भी पापों से मुक्त नहीं होते हैं, आपत्तिकाल में पापवादी मनुष्य अपापवादी होता है और अधर्म करनेवाला धर्मात्मा होजाता है, धर्म की निष्ठा आचार है उसीके आश्रय होकर जानेगा जैसे कि अधर्म में डूबा हुआ चित्त चोरी के धन को लेता है और राजा से रहित देश में चोर दूसरे के धन को चुराता रहता है, जब दूसरे मनुष्य उसके धन को लेते हैं तब राजाको चाहताहै तभी ऐसे लोगों की भी इच्छा करता है जोकि अपने धन ऐश्वर्य से प्रसन्न हैं, सब ओरसे पवित्र मनुष्य निस्संदेह राजा के दरबार में वर्त्तमान होता है और अपनी अन्तरात्मा में कुछ पापको नहीं देखताहै, सत्य बोलना अच्छा है सत्य से उत्तम कोई बात नहींहै सत्यसे ही सब धारण किया जाताहै और सत्यही में सब नियतहैं, पापियों को भी सत्य त्यागना अयोग्य है इस बात को डेढ़ श्लोक में सिद्ध करते हैं कि पाप करनेवाले दुष्ट आदमी पृथक् २ शपथ खाकर उस सत्य में नियत इन दो गुणवाले होते हैं, प्रथम द्वेष न करना दूसरे अधिक विवाद न करना, जो वह परस्पर में प्रतिज्ञा को त्याग करें तो निस्संदेह नाश होजाय, दूसरे का धन न हरना योग्यहै यह सनातनधर्म है, पराक्रमी मनुष्य उस पूर्वोक्त धर्मको निर्बलों का किया हुआ मानते हैं जब प्रारब्धहीन होता है तब यह बात उसको अच्छी मालूम होती है और अधिक बलवान् सुखी भी नहीं होते हैं इसकारण तुमको कभी कुमार्ग में बुद्धि न लगानी चाहिये क्योंकि निर्दोष को नीचों से, न चोरों से, न राजा से भय होता है किसी का कुछ अप्रिय न करनाही निर्भय और पवित्रस्थान है, चोर सब ओर से ऐसे भय करताहै जैसे कि गांव में पहुँचनेवाला मृग चारों ओर से भयभीत होता है, बहुत प्रकार से किया हुआ अपना पाप दूसरे में भी देखता है, पवित्र और सदैव सब ओर से निर्भय मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक सन्मुख आता है और अपने किसी बुरे कर्मको दूसरों में नहीं देखता है, जीवों के उपकार में प्रवृत्त पुरुषों ने इस धर्म को किया है और उनकाही कथन है कि दान करना योग्य है धनवान् मनुष्य उस धर्म्म को निर्धनों का कियाहुआ

मानते हैं जब मन्द प्रारब्ध होता है तब यह बात उनको अच्छी लगती है और धनवान् भी अत्यन्त प्रसन्न नहीं होते हैं, सावधान लोग धर्म्मलक्षण को कहते हैं जो पुरुष दूसरों से किया हुआ अपना अप्रिय कर्म्म नहीं चाहता है उसको अपना अप्रिय जानता दूसरे मनुष्यों के साथ नहीं करे जो मनुष्य किसी की स्त्री का जारमित्र है वह किसी से क्या कहने को योग्य है अर्थात् अपने कुकर्म्म से दूसरे को कुछ नहीं कहसक्ता और जो दूसरे का किया हुआ आप करे तो उसमें देर न करे, जो अपने जीवन को चाहे वह किसी प्रकार दूसरे को न मारे जो २ अपने से इच्छा करे उस २ को दूसरे का भी समझले, निर्धनों को अपने खर्च से और शेषों को अपने भोगों से भाग दे, इसीकारण ईश्वर की ओर से ब्याज जारी हुआ है जिस सन्मार्ग में देवता सन्मुख हों उसी मार्ग में नियत हो अर्थात् शान्तचित्त, दान, दया में प्रवृत्त हो अथवा लाभ के समय परही धर्म्म में नियत होना श्रेष्ठ है; ज्ञानियों ने हिंसारहित सब कर्म्मों को धर्म्म कहा है हे युधिष्ठिर ! धर्म्म अधर्म्म में इस लक्षण के वर्णन को विचारो, पूर्व्वसमय में ईश्वर ने यह लोकसंग्रह से युक्त धर्म्म प्रकट किया है और सत्पुरुषों का कर्म्म सूक्ष्म धर्म्म के प्राप्त के अर्थ निश्चय कियागया है, हे राजन् ! यह धर्मलक्षण मैंने तुम से कहा इसकारण तुमको किसी दशा में भी कुकर्म में बुद्धि न लगानी चाहिये ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सत्तासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, साधुओं से उपदेश और निश्चय कियाहुआ धर्म्मलक्षण सूक्ष्म और वेद से जानने के योग्य है समय के अनुसार मैं अपनी मति के अनुमान से कहता हूं, मेरे हृदय में जो बहुत से सन्देहकारी प्रश्न थे वह आपने वर्णन किये हे राजन् ! अब यह प्रश्न मेरा छल से रहित है कि यह देहरूप प्राप्त होनेवाले तत्त्व अपने आपही जिवाते उत्पन्न करते और देहके रूप से पृथक् भी करते हैं, जैसे वेद में लिखा है कि अन्न से ही सब जीव उत्पन्न होते हैं और उसी से जीवते हैं और लयभी उसीमें होजाते हैं इसी हेतु से वह धर्म्म केवल मर्य्यादही मात्र से निश्चय नहीं होसक्ता, आपत्ति से मोक्ष होनेवाले का दूसरा धर्म्म है और आपत्ति में पड़ेहुओं का दूसरा है वह आपत्तियां मर्य्यादमात्र से जाननी असम्भव हैं; सदाचार माना है और सन्त पुरुष आचार लक्षणवाले हैं कैसे

साधन और असाधन के योग्य जानें इससे सदाचार भी लक्षण से रहित है, प्राकृत मनुष्य अधर्म्म को करता हुआ धर्म्मरूप देखने में आता है और कोई संस्कारी मनुष्य धर्म्म को करता अधर्म्मरूप दिखाई देता है तात्पर्य्य यह है कि इस विषय में सदाचार भी निश्चय करना कठिन है फिर शास्त्रज्ञ मनुष्यों से उसका प्रमाण कहागया इससे वेदवचन भी यज्ञ के समान नाश को प्राप्त होते हैं यह हमने सुना है आशय यह है कि समय के विभाग से धर्म्म के प्रसिद्ध करनेवाले वेद भी श्रद्धा के योग्य नहीं होते, सतयुग में दूसरे धर्म्म हैं, त्रेता, द्वापर में और कलियुग में और २ हैं मानों यज्ञ करनेवालों की ही सामर्थ्य के समान नियत कियेगये हैं वेदवचन सत्य हैं यह कहना केवल लोकरञ्जन है फिर सब ओर मुख रखनेवाले वेद आम्नायों से पूर्ण हैं, जो वह आम्नाय श्रुति हैं और इन स्मृतियों में उनका प्रमाण होना वर्त्तमान है स्मृति से भी वेद के विपरीत होने में शास्त्रता कहां से होसक्ती है, पराक्रमी दुष्ट आचरणवाले पुरुषों से कियेहुए धर्म्म का जो स्वरूप बदलजाता है इस हेतु से उसका भी नाश होता है, हम जाने हैं वा नहीं जाने हैं और जानना सम्भव हो वा असम्भव हो जो छुरी की तीक्ष्णधार है वह पहाड़ों की अपेक्षा बड़ी भारी है कर्म्मकाण्ड पूर्व में गन्धर्व्वनगर के समान अर्थात् अपूर्व्व दृष्ट पड़ता है और पण्डितों से विचार कियाहुआ फिर नाश को पाता है अर्थात् कर्म्मफल मोक्षदायी नहीं है, हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! जैसे गौओं के निमित्त बना हुआ छोटा तालाब खेत और क्यारी में काटकर लेजाने से शीघ्रही सूखजाता है इसीप्रकार कलियुग के अन्त में लोप होनेवाला वैदिकधर्म और स्मृतिधर्म्म दृष्ट नहीं आता है, कोई पुरुष फलयुक्त अग्निहोत्र को करते हैं, कोई वेतन लेकर पढ़ाना आदि कर्म्म करते हैं और कोई अन्यप्रकार से धन लेने के लिये व्रतादिक करते हैं कोई छली बहुत से मनुष्य निरर्थक आचार को प्रतिपादन करते हैं और सेवन करते हैं, फल के चाहनेवाले अज्ञानियों का कहाहुआ कर्म्म शीघ्रही धर्म्मरूप होता है उन अज्ञानियों की दृष्टि से साधुओं में धर्म्म नहीं है और उन साधुओं को छली और विक्षिप्त कहते हैं और हास्य करते हैं, बड़ेलोग अपने ब्रह्मकर्म्म से पृथक् होकर राजधर्म्म में आश्रित हुये, कोई मुख्य आचार सबकी भलाई के लिये वर्त्तमान नहीं होता है और उसी आचार से कोई २ विश्वामित्र के समान समर्थ होता है कि वशिष्ठादि को पीड़ा देताहै फिर वही आचारवान् वशिष्ठादि समान रूपवान्

दृष्टपड़ता है, जिस आचार से कोई समर्थ होता है वह दूसरोंको पीड़ा देता है इसकारण सब आचारों की विरुद्ध दशा को विचार करना योग्य है हे राजन्, युधिष्ठिर ! इसप्रकार से श्रुति स्मृतियों का अप्रमाण कहकर अपने मतको कहते हैं, पूर्वकाल में जो धर्म्म प्राचीन पण्डितों से उपदेश किया हुआ है उसी प्राचीन आचार से सनातन मर्य्यादा होती है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अट्ठासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें तुलाधार ने धर्म्मसम्बन्धी वचन जाजलि नाम ब्राह्मण से कहे हैं, वन के बीच महातपस्वी वनचारी किसी जाजलि नाम ब्राह्मण ने समुद्र के किनारे पर तपस्या की, वह बुद्धिमान् जितेन्द्रिय, अल्पाहारी, मृगचर्म और जटा धारण किये मुनिरूप हो बहुत कालतक मैल, कीच आदि का धारण करनेवाला हुआ, हे राजन् ! किसी समय वह महातपस्वी तेजधारवाले जल में निवास करनेवाला अपनी इच्छा के अनुसार ब्रह्मऋषियों के लोकों में घूमता देखता फिरता था कभी जल में बैठेहुए अपनी दृष्टि से वन पर्वतों समेत सब पृथ्वी को देखकर यह विचार किया कि इस लोक के जड़ चैतन्यों में मेरे समान कोई नहीं है जो मेरे साथ जल में नियत होकर आकाशस्थ ग्रह नक्षत्रादि को देखे, इसीप्रकार जल में कहा करता था और राक्षसों की दृष्टि से गुप्त था, उससे पिशाचों ने कहा कि तुमको ऐसा कहना उचित नहीं है हे श्रेष्ठ, ब्राह्मण ! एक तुलाधार नाम यशस्वी वैश्यों का धर्म्म धारण किये हुए काशी में रहता है वह भी इसप्रकार से नहीं कहसक्ता है जैसे कि तुम कहते हो पिशाचों के यह वचन सुनकर महातपस्वी जाजलि ने उत्तर दिया कि मैं उस यशस्वी तुलाधार को देखूंगा तब राक्षस उस ऋषि को समुद्र से उठाकर बोले कि हे ब्राह्मणों में उत्तम ! तुम इस मार्ग में होकर जाओ, राक्षसों से यह सुनते ही बेमन होकर जाजलि चलदिया और काशी में तुलाधार से मिलकर यह वचन कहा, तब युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जाजलि ने पूर्वसमय में कौन सा कठिन कर्म किया था जिससे कि उसने ऐसी बड़ी सिद्धि को पाया यह आप मुझे समझाकर कहिये, भीष्मजी ने कहा कि उस जाजलि मुनि ने बड़ा घोर तप किया था और प्रातःकाल सायंकाल को स्नान आचमनादि कर्म्म बड़ी प्रीति से करता था और वेदविद्या से तेज में

पूर्ण वानप्रस्थआश्रम की सब युक्तियों का ज्ञाता अग्नियों को अच्छेप्रकार से पूजता हुआ वेदपाठ और जप में प्रवृत्त होता था वन में तपयुक्त होकर उस ऋषि ने अपने धर्म को नहीं शोचा अर्थात् धर्म का किंचित् भी अहंकार नहीं किया वर्षाऋतु में बाहर शयन, हेमन्त में जलशयन, ग्रीष्म में वायु, घाम सहता परन्तु धर्म का अहंकार नहीं करता था इन बातों के विशेष उसकी बहुत प्रकार की दुःखशय्या इस पृथ्वीपर वर्त्तमान हैं और बहुत वर्षतक वर्षाऋतु में निराधार आकाश में नियत हुआ और बराबर अन्तरिक्ष में ही जल को मस्तक पर लिया और सदैव वन जाने से उसकी जटायें धूल में लिपटीहुई पापसे रहित गांठदार और जल से आर्द्र रहीं, कभी वह निराहार, वायुभक्षी, महातपस्वी, सावधान, मुनि काष्ठ के समान नियत हुआ और कभी उस तप से चलायमान नहीं हुआ और हे युधिष्ठिर ! कलिंगनाम पक्षी ने उस काष्ठरूप जड़ के समान पड़े हुए पर घोंसले बनाये और जटाओं पर तृण के तारों से घोंसले बनानेवाले पक्षियों के जोड़े को अपनी दयालुता से निषेध नहीं किया, जब वह काष्ठरूप महातपस्वी अपने स्थान से चलायमान नहीं हुआ तब सुखपूर्वक विश्वास करनेवाले वह दोनों पक्षी आनन्द से निवास करनेलगे, हे राजन् ! वर्षाऋतु के व्यतीत होने पर शरदी के प्रारम्भ में उस काम से मोहित पक्षियों के जोड़े ने गर्भाधानबुद्धिसे विश्वासित होकर उसके शिर में अण्डे दिये, और महातपस्वी मुनि ने जाना तब ऐसा देह को निश्चल किया कि कथंचित् भी नहीं हिला सदैव धर्म्मज्ञ ने अधर्म्म को नहीं चाहा तदनन्तर वह दोनों पक्षी प्रतिदिन आकर उसके मस्तक पर विश्वासयुक्त हो बड़ी प्रसन्नता से निवास करनेलगे फिर अण्डों से पक्षी उत्पन्न हुए और उसी मस्तक पर बड़े हुए और जाजलि जरा न हिला उनके अण्डे बच्चों की रक्षा करता वह व्रती धर्म्मात्मा चेष्टा से रहित सावधान रहा फिर वह बच्चे समयपर परवाले हुए और मुनिने सपक्ष देहवाला जाना तब वह महाव्रती बुद्धिमान् मुनि वहां उन पक्षियों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उन पक्षियोंने भी अपने बच्चों को बड़ा समर्थ देखकर बहुत आनन्द माना और निर्भय पुत्रों समेत उसके शिरपर रहनेलगे और प्रतिदिन सायंकाल के समय लौटते हुए परवाले पक्षियों को देखा कि लौटकर फिर बराबर चलेजाते थे फिर माता से अलग होगये परन्तु जाजलि ने शिर न हिलाया इसी प्रकार सदैव दिन में चले जाकर सायंकाल को लौटकर वहांहीं निवास किया करते

थे कभी छः दिन के पीछे भी आये तोभी जाजलि का शिर न हिला जब वह पराक्रमी पक्षी क्रम २ से बहुत दिनतक नहीं लौटे कभी महीनों तक नहीं लौटे तब वह जाजलि उठकर चलागया तदनन्तर उन पक्षियों के गुप्त होजाने पर उसने विचार किया मैं सिद्ध हूं और अहंकार भी प्रवृत्त हुआ और इस प्रकार गयेहुए पक्षियों को देखकर उनके पोषण करने से अत्यन्त प्रसन्न चित्त हुआ और नदी में स्नान आचमन कर अग्निको तृप्त किया फिर उदय होनेवाले सूर्य्य का अभ्युत्थान किया, और जप करनेवालों में श्रेष्ठ जाजलिने मस्तकपर पक्षियों को बड़ा करके आकाश में भुजा का शब्द किया और सूचित किया कि मैंने धर्म्म को प्राप्त किया, उसके पीछे आकाशवाणी हुई कि हे जाजले ! तुम धर्म्म में तुलाधार के समान नहीं हुए महाज्ञानी तुलाधार काशी में है वह भी ऐसा कहने के योग्य नहीं है जैसा कि तुम कहते हो फिर वह मुनि ईर्षायुक्त होकर तुलाधारके दर्शन की इच्छा से पृथ्वीपर घूमा और जहां सायंकाल हुआ वहांही उसका घर था, फिर वह बहुत काल पीछे काशीपुरी को गया तो उसने दूकान की वस्तुको तोलता तुलाधारको देखा, मूलधन से निर्वाह करनेवाले अतिप्रसन्न उस वैश्य ने उस आतेहुए ब्राह्मण को देखकर उठकर कुशल मंगल पूछा और बोला हे ब्राह्मण ! तुम आते हो मुझे मालूम हुए हो सो हे ब्राह्मण ! मेरे वचन को सुनो, कि तुमने सागर के अनूपदेश में आश्रय लेकर बड़ी तपस्या की और पूर्व्व में किसी दशा में भी अपने को धर्म्मवान् नहीं जाना फिर हे ब्राह्मण ! तुझ तप से सिद्ध होनेवाले के शिरपर शीघ्रही पक्षी उत्पन्न हुए और तुमने उनकी रक्षा करी जब वह पक्षवाले पक्षी भोजनके खोजमें इधर उधर चलेगये तब पक्षियों के पोषण से अपने को तुम धर्म्मवान् समझने लगे तब मेरे विषय का वचन तुमने आकाश से सुना और आतुरता से यहां आये सो हे ब्राह्मणों में उत्तम ! आपका क्या शिष्टाचार करूं जो आपको अभीष्ट हो उसको कहिये ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

नवासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, ऐसे तुलाधार के वचनों को सुनकर जाजलि ने कहा कि हे वैश्यपुत्र ! सब रस, गन्ध, वनस्पति, औषधि और उनके मूल फलों के बेचनेवाले तुमने इस दृढ़बुद्धि को कहां से पाया सो हे बुद्धिमन् ! इसको ब्यौरे समेत मुझसे कहो यह जाजलि के वचन सुनकर धर्म अर्थ के मूल ज्ञाता

तुलाधार वैश्य ने सूक्ष्मधर्मों को वर्णन किया, तुलाधार बोला कि हे जाजले ! मैं सनातन धर्म्म को रहस्य समेत जानता हूं मनुष्यों ने जिस धर्म्म को सब जीवोंका उपकारी जाना है, जीवों के साथ शत्रुभाव न करना अथवा आपत्तिकाल में थोड़ी शत्रुता से जीविका होती है वह उत्तम धर्म्म कहलाता है हे जाजले ! मैं उसीसे अपना निर्वाह करता हूं मैंने दूसरे के काटेहुए काष्ठ और तृणों से यह स्थान बनवाया है हे ब्राह्मण ! मैं लाक्षारस पद्मकतुंग नाम काष्ठ और कस्तूरी आदि गन्ध और मद्यरहित अनेक रसों को सत्यता से दूसरों के हाथ से मोल लेकर बेचता हूं, हे जाजले ! जो पुरुष सब का मित्र है और मन, वाणी, कर्म से सबकी भलाई में प्रवृत्त है वही धर्म्मज्ञ है, न मैं किसी को दुःख देता हूं न शत्रुता रखता हूं इच्छा रहित सब जीवों में समान हूं यह मेरा व्रत जानो, और मेरी तराजू सब जीवों में एकसी नियत होती है, हे वेदज्ञ ! मैं लोक की अद्भुतता को देखता हुआ दूसरों के कर्म्मों की प्रशंसा करता हूं मुझको तुम समदर्शी और सुवर्ण मृत्तिका समान जाननेवाला समझो, जैसे बहिरे, अन्धे और ग्रहभूतादि से ग्रसे हुए ऊर्ध्वश्वास लेनेवाले और देवताओं से गुप्त इन्द्रिय गोलकवाले होते हैं उसीप्रकार मुझको जानो, जैसे कि वृद्ध रोगी आदि विषयों से अनिच्छावान् होते हैं उसीप्रकार अर्थ कामादि भोगों में मेरी भी अनिच्छा होगई है, न किसी को भय देता न दूसरे से भयभीत होता इच्छा रहित शत्रुता से पृथक् होता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, जब मन, वच, कर्म से सब जीवों में पापबुद्धि नहीं करता तब ब्रह्मभावको पाता है, जो पुरुष सब जीवों को निर्भय करता है उसने भूतकालमें न जन्म लिया न आगे कभी लेगा परन्तु देहमें अभिमान आनेसे सब धर्म्म नष्ट होजाते हैं, जो निरभिमान है वह ब्रह्मरूप अभय पद को पाता है कठोर वचन अथवा कठिन दण्ड बन्धनादि से सब लोक भय करता है उन सबको त्याग दे, जो वृद्धलोग पुत्रादियुक्त और कुलीन हैं वह शास्त्र के अनुसार कर्म्म करते हैं, जो हिंसारहित हैं हम उन महात्माओं के चलनपर चलते हैं अब श्रेष्ठों के आचार को प्रमाण करते हैं—किसी स्थानपर सदाचार से विरुद्ध मोह को प्राप्त होनेवाला वेदोक्त धर्म्म परम्परा से प्राप्तभी ऐसे नष्ट होजाता है जैसे कि आपत्तिकालमें वामदेव विश्वामित्रके निन्दित आचार को देखकर बहुत से मतवाले मोह को प्राप्त होकर पाखण्डमत में प्रवृत्त हुए उस मोहरूपी कारण से विद्यावान् जितेन्द्रिय काम क्रोध का जीतनेवाला भी मोह

को पाता है अथवा पाठान्तर से यह अर्थ है कि वह सदाचार से रहित होता है, जो जितेन्द्रिय, शत्रुतारहित पुरुष चित्त से साधुओं का सत्संगी धर्म्म को करे वह ज्ञानी आचार से शीघ्रही धर्म्म को पाता है, जैसे कि लोक में नदी के मध्य अपने आप बहाहुआ काष्ठ आपही किसी दूसरे काष्ठसे मिलजाता है इसी प्रकार कर्म्म के प्रभाव से पिता पुत्र आदि का योग और वियोग है, उस नदी में कभी विना बिचारे दूसरी लकड़ी तृण काष्ठ और सूखा गोबरभी परस्पर में मिल जाते हैं, हे मुने ! जिस मनुष्य से कभी किसी स्थान में कोई जीव भयभीत नहीं होता है वह सदैव सब जीवों से निर्भयता को प्राप्त होता है और जिससे सब भेड़िये के समान भय करते हैं अथवा जैसे जलजीव बड़वानल से भयातुर होकर किनारे में आश्रय लेते हैं वह भयदायक पुरुष अभयता को नहीं पाता है इसी प्रकार यह अभयदायकरूप आचार जोकि प्रकट है इधर उधर से प्राप्त करना चाहिये जो सहायता रखनेवाला वा धनी है वह ऐश्वर्य्य और परलोक का हेतु है, उस निर्भयदान से पण्डितलोग उस सहायता और धन से युक्त पुरुषों को शास्त्रों में उत्तम वर्णन करते हैं जिसके हृदय में बाह्य सुख नियत है वह संसार में निर्भयतापूर्व्वक अपनी उत्तम कीर्ति उत्पन्न करते हैं और जो सावधान हैं वह उस निर्भयदान को ब्रह्मसम्बन्धी जानते हैं, सब तप, यज्ञ, दान और ज्ञानरूप वचनों से जिस २ फल को पाता है उसी फल को अभयदान देनेवाला भी प्राप्त करता है, जो पुरुष इस संसार में सब जीवों के लिये निर्भयदानरूप दक्षिणा को देता है वह सब यज्ञों से पूजन करनेवाला निर्भयतारूप प्रतिष्ठा को पाता है, जीवों का कोई धर्म अहिंसासे उत्तम नहीं है जिस मनुष्य से कभी किसीदशा में कोई जीव भय नहीं करता है वह सब जीवों से निर्भय रहता है और जिससे सर्प के समान संसार भयभीत रहता है वह इस लोक परलोक दोनों में धर्म्म को नहीं पाता है, सब जीवों के आत्मा रूप अर्थात् निर्विकल्प समाधि में नियत और अच्छेप्रकार से जीवों के देखनेवाले अर्थात् विकल्प समाधि में वर्तमान वे चिह्न मार्ग में उसके चिह्न को ढूंढ़नेवाले देवता भी मोह को पाते हैं, जीवों के अभयरूप दान को सब दानों से श्रेष्ठ कहते हैं हे जाजले ! यह सब मैं सत्य ही सत्य कहता हूं, पूर्वोक्त दान की प्रशंसा के अर्थ सफलदान की निन्दा करते हैं वह सफल कर्म करनेवाला स्वर्गवासी होकर फिर पृथ्वीपर आता है मनुष्य कर्म्मों के नाश को देखकर सदैव उसकी निन्दा करते हैं, हे जाजले !

सूक्ष्म धर्म्म निष्फल नहीं है इसलोक में ब्रह्म और स्वर्ग के निमित्त धर्मका बढ़ना वेद में नियत कियागया है आशय यह है कि स्थूलधर्म्म, यज्ञ आदि से दूसरा सूक्ष्मधर्म्म है, उसका ज्ञान सूक्ष्मता से असम्भव है क्योंकि मुख्य वस्तु को गुप्त करनेवाले बहुत हेतुवाले होते हैं दूसरे आचारों को यथार्थ जानकर उस सूक्ष्म धर्म को जानता है जो बैलों को बधिया करते हैं या नथनों को छेदते हैं बांधते हैं और बहुत से बोझों को लादकर लेचलते हैं मारते हैं और मारकर खाते भी हैं अथवा मनुष्य मनुष्य को दास बनाते हैं उनकी आप किसीप्रकार से निन्दा नहीं करते हो और पकड़कर क़ैद कराते हैं मारते हैं क़ैद करने और मारने में रात्रि दिन अपने देह और चित्त को जो खेद होता है उसको भी जानता है, पांच इन्द्रियां रखनेवाले जीवों में सब देवता निवास करते हैं अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, विष्णु, यमराज इत्यादि हैं उन जीवों को बेचकर मृतकों में क्या विचार करना है बकरा अग्निरूप है-मेढ़ा वरुणरूप है-घोड़ा सूर्यरूप है-पृथ्वी विराट्रूप है-गौ और बछड़ा चन्द्रमारूप हैं-इनको बेचकर सिद्धि को नहीं पाता है, हे ब्राह्मण ! तेल, घृत, शहद और औषधि के बेचने में भी क्या हानि है डांस मच्छरों से रहित देश में सुख से बड़े होनेवाले उन पशुओं को माता के प्यारे जानकर उनको अनेक प्रकार से स्वाधीन करके महाकीच के स्थान में जहां डांस मच्छरों के समूह होते हैं बांधकर लेजाते हैं और बोझ से पीड़ित होकर बैल आदि मृत्युवश होते हैं, मैं जानताहूं कि उस कर्म से भ्रूणहत्या भी अधिक नहीं है और लोग खेती को अच्छा मानते हैं परन्तु वह जीविका भी बड़ी निर्दयता का कर्म्म है, क्योंकि लोहे के फलवाला हल पृथ्वी और पृथ्वी के रहनेवाले जीवों का नाश करता है इसी प्रकार बैलों से युक्त रथ आदि को भी जानो, वेद में गौओं का नाम अघ्न्या है अर्थात् अवध्य है तो कौन उनको मारसक्ता है, जो बैल या गौ को मारता है वह महाशोकों को पाता है, ऋषि और यती लोगोंने राजा नहुष से जाकर कहा कि तुमने गौमाता और बैल प्रजापति को मारा यह तुमने अयोग्य कर्म किया है हम तेरे कारण पीड़ा को पावेंगे, हे जाजले ! उन महानुभाव ऋषियों ने नहुष के पाप से उत्पन्न होनेवाली एकसौ एक रोगरूप हत्या सब जीवों में व्याप्त करदीं और ब्रह्महत्या करनेवाले नहुष से कहा कि हम तेरे हव्य को होम नहीं करेंगे हे जाजले ! उ सब तत्त्वार्थवेत्ता महात्मा शान्तरूप ऋषि और यतीलोगोंने अपने तपके द्वा

इसप्रकार के अकल्याणरूप घोर आचारों को प्रकट किया अर्थात् जब नहुष की भूल से एक सौ एक गोहत्या रोगरूप होकर प्रजाओं में प्राप्त हुईं तो जानकर होने में तो अवश्य ही पाप प्रकट होगा तुम केवल अन्धपरम्परा को जानकर हिंसारूप धर्म को नहीं जानते हो इसकारण धर्मको चाहनेवाला संसार के किये हुए कर्म्म को नहीं करे, हे जाजले ! जो मुझको मारकर मेरी प्रशंसा करता है उस स्थानपर भी मेरा यह सिद्धान्त है कि यह दोनों भूल हैं क्योंकि मेरी बुद्धि से कोई प्रिय अप्रिय नहीं है, इस धर्म की ज्ञानी पुरुष प्रशंसा करते हैं और संन्यासधर्म के समान कहाजाता है और धर्मज्ञ पुरुषोंकी दिव्यदृष्टि से देखागया है ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नब्बेवां अध्याय ॥

जाजलि बोला हे तराजू हाथ में लेनेवाले ! तुम से जारी किया हुआ यह धर्म्म स्वर्गरूप द्वार की आजीविका का बन्द करनेवाला है, हे वैश्य ! खेती से अन्न उत्पन्न होता है उसीसे तुम भी जीवते हो मनुष्य पशुआदि औषधियों के द्वारा जीवते हैं और यज्ञादिक कर्म होते हैं तुम नास्तिकता की बातें करते हो इसलोक में सिद्ध बात को त्यागकर कोई नहीं जीसक्ता, तुलाधार बोला कि हे जाजले, ब्राह्मण ! मैं हिंसारहित जीविका को कहताहूं मैं यज्ञादि की निन्दा नहीं करता हूं और नास्तिक नहीं हूं वह यज्ञ नारायण विष्णु जानना कठिन है, ब्रह्मसम्बन्धी यज्ञ के और यज्ञ के दाता पुरुषों को भी नमस्कार है ब्राह्मण अपने योगरूप यज्ञ को त्याग करके क्षत्रियों के यज्ञ में ज्योतिष्टोमादि में प्रवृत्त हुए हे ब्रह्मन् ! वेदवचनों को न जानके लोभी और धन में प्रवृत्त चित्त नास्तिक मनुष्यों से वह हिंसात्मक यज्ञ जारी कियागया वह ऐसा है कि जैसे भीतर से मिथ्या और प्रत्यक्ष में सत्यता विदित हो, तात्पर्य यह है कि विश्वास के लिये वेद में प्रशंसा के वचन कहेगये कारण यह है कि जो ज्ञान का अधिकारी नहीं है उसके लिये प्रशंसाकर्म्म फलदायी है क्योंकि कर्म्म के द्वारा चित्त की शुद्धि होने से ज्ञान भी प्राप्त होजाता है यह देना योग्य है या अयोग्य है ऐसा यज्ञ प्रशंसा के योग्य है इसीकारण हे जाजले ! विपरीत दक्षिणा से लोभी यजमान को चोरी का अपराध होता है और अशुभकर्म्म उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार से क्षत्रिय यज्ञ की निन्दा करके ब्राह्मण यज्ञ के स्वरूप को कहते हैं कि जब उत्तमकर्म से प्राप्त होनेवाला हव्य तैयार हुआ उस तीन प्रकार के हव्य से

देवता तृप्त होते हैं, प्रथम नमस्काररूप द्वितीय जप और वेदपाठरूप तृतीय औषधिरूप हव्य से देवताओं की पूजा होती है यथा ज्योतिष्टोमादियज्ञ करने और कुयें, बावली, बाग़ आदि के बनवाने से साधु पुरुषों की सन्तान भी लोभादि अवगुणयुक्त उत्पन्न होती है, क्योंकि लोभियों से लोभी उत्पन्न होते हैं और रागद्वेषरहित पुरुषों की सन्तान समदर्शी होती है यजमान और ऋत्विज् अपने को इच्छावान् वा अनिच्छावान् देखते हैं उसीप्रकार की उनकी सन्तान भी होती है यज्ञ से ऐसी सन्तान पैदा होती है जैसे कि आकाश से निर्मलजल उत्पन्न होता है अब इसका अभिप्राय लिखते हैं अर्थात् हे ब्राह्मण ! अग्नि में होमी हुई आहुति सूर्य्य के समीप जाती है सूर्य्य से वर्षा होती है वर्षा से अन्न और अन्न से सन्तान उत्पन्न होती हैं, इस अनिच्छावान् यज्ञ में निष्ठावान् प्राचीन वृद्धों ने सब मनोरथों को प्राप्त किया और संसार का उपकार चाहने से पृथ्वी विना परिश्रम उर्व्वरा होकर सब पदार्थों की उत्पन्न करनेवाली हुई उसी से वीरुध् नाम लता हुई हैं, वह पुरुष आत्मयज्ञों में कुछ फल को नहीं देखते हैं और कभी यज्ञ का फल जानके सन्देहयुक्त पूजन करते हैं वह लोग असाधु धूर्त्त लोभी और धन की इच्छावाले उत्पन्न होते हैं और पापकर्मों से नरक को जाते हैं और हे विप्रवर्य ! जो लोग वेद के प्रमाण को बुद्धि के वाद से अशुभ करते हैं वह इस लोक में सदैव पापात्मा और अज्ञानी हैं अर्थात् मोक्ष के निमित्त ज्ञान के अधिकारपर नहीं चढ़ते हैं, इसप्रकार तीन श्लोकों से निष्फल कर्म्म की प्रशंसा और धूर्त्त कुतर्कियों की निन्दा करके अब ज्ञानियों की दशा को कहते हैं—करने के योग्य कर्म्म करना योग्य है क्योंकि वह निश्चय वेदनिष्ठ कर्म्म है उसके न करने से ब्राह्मण भय करता है फिर वह आत्मा में कर्तृत्वभाव को नहीं जानता है क्योंकि लोक में ऋत्विज् हव्य, मन्त्र अग्नि इत्यादि रूपों से ब्रह्महीं वर्त्तमान है जो इस बात को जानता है वही ब्राह्मण है, इसप्रकार के ज्ञानी ब्राह्मण में कोई अंगरहित भी कर्म उत्तम है यह वेद से निश्चय सुनते हैं और आत्मध्यान के कारण से उस ज्ञानी के कर्म में सब भ्रष्टजीव कुत्ता, शूकर आदि का स्पर्श होना भी अशुभ नहीं है परन्तु फलकी इच्छा में प्रायश्चित्त है, इसप्रकार ज्ञानी के यज्ञकर्म की प्रशंसा करके दूसरे प्रकार के यज्ञों को भी कहते हैं कि सत्यता और शान्ताचित्तता से यज्ञ करनेवाले परम पुरुषार्थ के लोभी धन और विषयों में तृप्त अर्थात् वैराग्यवान् मत्सरतारहित सब मनुष्य प्राप्त वस्तुओं

के त्यागी क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के ज्ञाता तत्त्वज्ञ योगनिष्ठ प्रणव का जप करनेवाले पुरुष दूसरों को भी तृप्त करते हैं, वह प्रणवरूप ब्रह्म सब देवताओं का आत्मरूप ब्रह्मज्ञानी में नियत होता है हे जाजले ! उस ब्रह्मज्ञानी के तृप्त होनेपर विराट्-रूप के अंगसम्बन्धी देवता तृप्त होते हैं, जैसे कि सब रसों से तृप्त मनुष्य किसी वस्तु को देखकर प्रसन्न नहीं होता इसीप्रकार पूर्णज्ञान से तृप्त होना भी सदैव को सुखकारी है, हमलोग धर्म के आश्रित सुख माननेवाले स्वामी की आज्ञा का निश्चय करनेवाले हैं हमारे विचार से बुद्धि में चिदाभास सूत्रात्मारूप प्राण विश्वव्यापक होने से बड़ा है उससे भी प्राणआदि का उत्पत्तिस्थान भूतात्मा बड़ा है ज्ञानी इसको विचारता है, शास्त्र से उत्पन्न ज्ञान और अनुभव के रखनेवाले और संसार से पारहोने के इच्छावान् सात्त्विकी पुरुष उस ब्रह्मलोक को पाते हैं जोकि पवित्र पुण्यदायक उत्तम कुलवान् पुरुषों से प्राप्त होने के योग्य शोक पीड़ा से रहित हैं वहां से फिर अधोगति नहीं पाते हैं वह स्वर्ग को नहीं जाते हैं और वेद अथवा धन से होनेवाले यज्ञों को नहीं करते हैं सत्पुरुषों के मार्ग पर चलते हैं और अहिंसायुक्त यज्ञों को करते हैं, उन्होंने वनस्पति, औषधि, फल, मूल को ही जाना है उनको धन चाहनेवाले लोभी ऋत्विज् यज्ञ नहीं कराते हैं, फिर कर्म को पूरा करनेवाले संकल्प से आत्मारूप यज्ञ सामग्री विचार करनेवाले उन ब्राह्मणों ने संसार के उपकार की इच्छा से मानसी यज्ञों को ही किया है, इसी कारण लोभी ऋत्विज् उनके यज्ञ नहीं कराते किन्तु धन के लोभ से अयोग्यों को यज्ञ कराते हैं, और अन्य साधुओं ने अपने धर्म के करने से भी प्रजा को स्वर्ग में पहुँचाया है आशय यह है कि साधुलोग अपने धर्म से दूसरोंका भी भला करते हैं, इस कारण मेरी बुद्धि सर्वत्र एकसी वर्त्तमान है, हे महामुने ! इस लोक में ज्ञानी ब्राह्मण देवयज्ञ पितृयज्ञ के द्वारा जिन देवयान पितृयानमार्ग से जाते हैं चाहैं वह दोनों देवयान मार्ग से ही जाते हैं तो भी उनमें धौमआदि मार्ग से जानेवाले का पुनरागमन होता है और ऋचीक आदि ज्ञानी के मार्ग से जानेवाले का आवागमन नहीं होता है सत्यसंकल्प ज्ञानियों के ऐश्वर्य्यको कहते हैं—इन ज्ञानीपुरुषों के चित्त की संकल्पसिद्धि से बैल आप सवारी में जोड़कर लेजाते हैं और गौ आप दूध देती हैं और वह आपही संकल्प से यज्ञकुम्भ को नियत करके पूरी दक्षिणावाले यज्ञों से पूजन करते हैं, जो इसप्रकार योग के अभ्यास से शुद्धचित्त होता है वह मधुपर्क में गोहिंसा करने को योग्य है, वह

अज्ञानी लोग इसप्रकार से औषधियों से भी यज्ञ नहीं करते इसीहेतु से तर्कणापूर्वक ऐसे प्रकार का वर्णन तुमसे करता हूं, और मिले हुए संन्यासी के लक्षण को भी कहता हूं देवतालोग उसी को ब्राह्मण जानते हैं जोकि अनिच्छा से कर्म्म का प्रारम्भ करनेवाला नमस्कार, स्तुति आदि से पृथक् अधिकार से न डिगने वाला और कर्म्मरहित हो, हे जाजले ! शास्त्र सुनता न सुनाता यज्ञ न करता और ब्राह्मणों को दान न देता इच्छानुसार जीविका चाहनेवाला पुरुष किसी गति को नहीं पाता है, इस लक्षण को देवता के समान सेवन करके बुद्धि के अनुसार परमात्मा को प्राप्त करे, जाजलि ने कहा कि हे वैश्य ! हमने इस आत्मयज्ञ करनेवाले पुरुषों की इस गुप्तवार्त्ता को नहीं सुना है यह कठिन बात है इससे तुमसे पूछता हूं कि पहिले पुरुष इस योगधर्म के विचार करनेवाले नहीं हुए और विचारवान् ऋषियों ने भी इस परम धर्म्मको लोक में जारी नहीं किया हे वैश्य! जो आत्मारूप भूमिपर अज्ञानीलोग मानसी यज्ञ को प्राप्त नहीं करे तो वह किस कर्म्म से सुख को प्राप्त हों हे ज्ञानिन् ! मैं तेरे वचनोंपर विश्वास करता हूं इसको मुझे समझाकर कहो, तुलाधार बोला कि, इन धूर्तों के यज्ञ भी श्रद्धारहित होकर नष्टरूप होते हैं वह कहीं भी यज्ञ के योग्य नहीं होते गौघृत, दूध, दही मुख्यकर पूर्णाहुती से यज्ञ को पूर्ण करता है और जो उस वेदोक्त यज्ञ के करने में समर्थ नहीं हैं उनको पुच्छ, शृंग, चरणआदि से पोषण करते हैं अर्थात् गौ की पूछपर पितृतर्पण करने से और जल से सींग को धोकर स्नान करने से और चरणोंकी रज से पापों का दूर होना और परलोक की प्राप्ति स्मृतियों में वर्णन की है, विना स्त्री के वेदोक्त यज्ञ कैसे होता है उसको सुनो कि हिंसारहित बुद्धियुक्त घृतादिक द्रव्यों को देवार्पणकर श्रद्धारूप स्त्री को करता है यज्ञ को देवता के समान सेवन करके सर्वव्यापी विष्णु ब्रह्म को प्राप्त करे, सब पशुओं में पुरोडास नाम हव्य पवित्र कहाजाता है अर्थात् पशुयज्ञ निन्दित है सत्य नदी सरस्वती हैं और सब पर्वत पवित्र हैं और आत्मा तीर्थ है अर्थात् जहां आत्मयज्ञ है वहां सब तीर्थ हैं इस प्रकार के इन धर्म्मों को करता और कारणों समेत धर्म्म को चाहता वह पुरुष शुभ लोकों को पाता है, भीष्मजी बोले कि वह तुलाधार युक्ति से मिला सदैव सत्पुरुषों से सेवित इसप्रकार के इन धर्म्मों की प्रशंसा करता था ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इक्यानबेवां अध्याय ॥

तुलाधार ने कहा कि सत्पुरुषों से वा असत्पुरुषों से सेवित मार्ग को प्रत्यक्ष कर इसपर चलोगे तब इसकी यथार्थता को जानोगे और यह बाजआदि अनेक पक्षी जो तेरे शिरपर उत्पन्न हुए चारोंओर को घूमते हैं और प्रत्येक स्थान पर घोसलों में बैठे हैं इन पक्षियों को फिर बुलाकर हाथ पैर सकोड़कर देह में चिपटे हुए देखो कि यह तेरे पोषण किये हुए पक्षी तुझ पितारूप से प्रीति भी करते हों तो निस्सन्देह तुम पिता हो अपने पुत्रों को बुलाओ तब उस जाजलि के बुलाये हुए पक्षियों ने धर्म्मवचनों से कहा कि जिसका प्रारम्भ हिंसा से रहित है वह कियाहुआ कर्मफल इसलोक और परलोक में मिलता है और हिंसा विश्वासघातिनी है वह घायल विश्वास उस विश्वासघातिनी को मारता है, हानि लाभ में समान जितेन्द्रिय श्रद्धावान् शान्तचित्त यज्ञकरने वाले पुरुषों का यज्ञ प्राप्त होता है आशय यह है कि कर्त्तापन और कर्मफल से पृथक् होते हैं, अब श्रद्धा की प्रशंसा सुनो हे ब्राह्मण! यह श्रद्धा प्रकाशरूप चैतन्य आत्मा से सम्बन्ध रखनेवाली है और सूर्य्यसमान प्रकाशित सतोगुण की पुत्री है वही पोषण करनेवाली है और अत्यन्त पवित्र योनि की देनेवाली है इसी हेतु मन वाणी से परे है अर्थात् जप दान से उत्पन्न धर्म्म से श्रद्धा श्रेष्ठ है, हे भरतवंशिन्! वह श्रद्धा उस मन्त्र को जो कि स्वर वर्ण से अशुद्ध उच्चारण होने से नष्ट होता है रक्षा करती है और श्रद्धा से नाशवान् मन वाणी यज्ञ आदि से रक्षा नहीं किये जासक्ते हैं इस स्थानपर ब्रह्माजी के कहे हुए इतिहास को कहता हूं जो पुरुष पवित्र हैं परन्तु श्रद्धावान् नहीं हैं और जो श्रद्धावान् हैं परन्तु पवित्र नहीं हैं यज्ञकर्म में देवताओं ने उन दोनों के धन को समान कहा है कृपण, वेदपाठी, दान का बड़ा देनेवाला, अनाज का बेचनेवाला इन सबके अन्नों को देवताओं ने समान कहा था परन्तु प्रजापति ब्रह्माजी ने उनके विचार को असिद्ध किया और कहा कि यह तुम्हारा विचार विपरीत है, बड़े दान के अभ्यासी पुरुष का अन्न श्रद्धा से पवित्र है और श्रद्धारहित का अन्न नष्टप्राय है इससे दानी का अन्न भोजन करने के योग्य है और कृपण वा अनाज बेचनेवाले का नष्ट है, श्रद्धारहित पुरुष देवताओं को हव्य भेंट करने के योग्य नहीं है उसका अन्न भोजन करना अनुचित है यह धर्मज्ञों का उपदेश है, श्रद्धारहित होना महापाप है श्रद्धा महापातकों को नाश करती है और

श्रद्धावान् पुरुष ऐसे पापमुक्त होता है जैसे कि कांचली को सर्प त्याग देता है, जो निवृत्ति श्रद्धायुक्त है वह सब पवित्रगुणों में उत्तम है जिसके स्वभाव से दोष दूर होगये और श्रद्धावान् है वही पवित्र है, तप से उसको कुछ प्रयोजन नहीं है और व्रत और आत्मा से भी क्या प्रयोजन यह पुरुष श्रद्धारूप है सात्त्विकी, राजसी, तामसी इनमें से जैसी जिसकी श्रद्धा है वही उसका रूपभी है, धर्मार्थ के देखनेवाले सत्पुरुषों ने इसधर्म को अच्छे प्रकार से कहा है उसधर्म के जानने की इच्छावाले हमलोगों ने धर्म्मदर्शन नाम मुनि से धर्म्म को पाया, हे महाज्ञानिन्! इसमें श्रद्धा करो इसीसे परब्रह्म को पावेगा हे जाजले! श्रद्धावान् वेदवचनपर श्रद्धा करनेवाला धर्मात्मा और अपने मार्ग में नियत पुरुष श्रेष्ठतम है, तदनन्तर थोड़े ही काल में वह दोनों बड़े ज्ञानी अर्थात् तुलाधार और जाजलि हार्दाकाश ब्रह्म को पाकर सुखपूर्वक विहार करनेलगे अर्थात् योगऐश्वर्य से क्रीड़ा कियेहुए अपने कर्म से प्राप्त अपने २ देश को पाकर ब्रह्म के ध्यान में तत्पर हुए, अनेक अर्थों का देनेवाला तुलाधार का यह वचन है हे युधिष्ठिर! इस जाजलि ने उस महाज्ञानी तुलाधार के वचनों से शान्ति पाई इस वृत्तान्त को तुमने सुना अब और क्या सुनना चाहते हो ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकोत्तरनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

बानबेवां अध्याय ॥

अब हिंसात्मक धर्म्म की निन्दा करने को भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहासको कहते हैं जिसको प्रजाओं के उपकारार्थ राजा विचख्नु ने कहा है, गवालम्भन नाम यज्ञ में वृद्धदेहवाले बैल को देखकर और गौओं के बड़े विलाप को सुनकर यज्ञशाला में नियत निर्दयी ब्राह्मणों के देखतेहुए उस राजा ने यह वचन कहा कि लोकों में गौओं के निमित्त कल्याण हो उसके पीछे यह वचन निश्चय किया कि हिंसात्मकयज्ञ क्षत्रियों का है ब्राह्मणों का दूसरा यज्ञ है इसमर्याद से पृथक् होनेवाले अज्ञानी नास्तिक संशययुक्त चित्त यज्ञ से ही कीर्त्तिचाहनेवाले मनुष्यों की ओर से यह हिंसात्मक उपदेश कियागया है, धर्म्मात्मा मनुजी ने सब कर्म्मों में अहिंसा ही को उत्तम कहा है मनुष्य अपनी इच्छा से वेद से बाहर पशुओं को मारते हैं आशय यह है कि हिंसात्मक कर्म्म अज्ञानियों के हैं क्योंकि वह फल की इच्छा रखते हैं और जब उनको ज्ञान के कारण अनिच्छा होती है तब हिंसात्मक कर्म्म की उत्पन्न करनेवाली श्रुति

अपने अर्थ के प्रकाश से उसको मोक्षमार्ग में नियत करती हैं, इसीकारण ज्ञानी पुरुष को वह सूक्ष्मधर्म्म प्रमाण के साथ करना चाहिये, सब जीवमात्र में अहिंसाधर्म्म सब धर्म्मों से उत्तम मानागया है, कुटुम्बी की पांच हत्या निवृत्त न होने से कैसे अहिंसा होसक्ती है इसको कहते हैं कि गांव के सन्मुख निवास करके तेज व्रतवाला होकर और देवता से प्रत्यक्ष श्रुतियों के फल को त्याग करके गृहस्थियों के आचार से रहित होजाय क्योंकि नीचपुरुष ऐसे होते हैं कि उनका कर्म्मफल कर्म्म में प्रवृत्त होने का कारण होता है, जो आदमी यज्ञविटप और यज्ञकुम्भों को नियत करके निरर्थक मांसों को खाते हैं इस धर्म्म की प्रशंसा नहीं की जाती है; मदिरा, मांस, मत्स्य, मधु, आसव, कृशरोदन यह सब धूर्त्तों ने प्रवृत्त किया है श्रेष्ठलोगों में इसकी प्रवृत्ति नहीं है न वेदों में इसकी विधि है, मान, मोह, लोभ से यह इच्छा कल्पना की गई है ब्राह्मण सब यज्ञों में विष्णु कोही पूजन के योग्य मानते हैं और उनका पूजन चन्दन पुष्पों से कहा है और वेदों में जो यज्ञ के योग्य वृक्ष विचार कियेगये हैं वह सब अत्यन्त पवित्र बुद्धिमान् शुद्धचित्त पुरुषों ने नियत किये हैं और सब वस्तुओं से देवता का भी पूजन है, युधिष्ठिर बोले कि देह और आपत्ति यह दोनों भी परस्पर में विरोधी हैं अर्थात् आपत्ति तो देह को सुखाती है और देह आपत्ति का नाश चाहती है फिर हिंसा से पृथक् और प्रारम्भ कर्म्मकरनेवाले देह का निर्वाह कैसे होसक्ता है, भीष्मजी बोले कि जैसे देह को पीड़ा न हो और मृत्यु के वश में न पड़े वैसे ही कर्म्म में प्रवृत्त होकर सामर्थ्य के अनुसार धर्म्म को करे ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

तिरानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! करने के योग्य कर्म की परीक्षा जल्दी या देर में किसप्रकार से करे, भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें अंगिराऋषि के कुल में उत्पन्न होनेवाले चिरकारी नाम ब्राह्मण का प्राचीन इतिहास है, हे चिरकारिन् ! तेरा कल्याण हो हे विलम्ब से कर्म्मकर्त्ता ! तेरा भला हो क्योंकि विलम्ब से करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष कर्म्मों में अपराध नहीं करता है, बड़ा ज्ञानी चिरकारी नाम ब्राह्मण गौतमऋषि का पुत्र था वह सब कामों को विचारपूर्वक विलम्ब से करता था और अर्थसिद्धि को प्राप्त होता था वह देर में ही अर्थों को विचारता और देर में ही जागता देर में ही करने

के योग्य कर्म्मों को जानता था इसकारण से उसका नाम चिरकारी कहाजाता है, अल्पबुद्धि और अदूरदर्शी मनुष्य उस चिरकारी को सुस्त और निर्बुद्धि कहते थे, किसी समय उसके पिता ने क्रोधयुक्त होकर दूसरे पुत्रों को त्याग कर इससे ही कहा कि तुम अपनी माता को मारो यह कहकर वह महातपस्वी गौतम जपनिष्ठ विना विचार किये वन को ही चलेगये उस चिरकारी ने अपने स्वभाव के अनुसार देर में स्वीकार कर विलम्ब से कर्म्म करने के अभ्यास से विचारकर बड़ी चिन्ता की कि कैसे पिता की आज्ञा करूं और कैसे माता को न मारूं और कैसे नीच के समान इस धर्म्मसंकट में न डूबूं पिता की आज्ञा मानना सर्वोपरि है और माता की रक्षा करना अपना धर्म्म है इससे अब पुत्ररूपी अस्वतन्त्रता मुझको महापीड़ा देरही है स्त्री को और मुख्यकर माता को मारकर कौन सुखी होता है और पिता की आज्ञा को भंग करके कौन प्रतिष्ठा को पाता है, पिता का आज्ञाकारी होना योग्य है और माताकी रक्षा करना भी योग्य है यह दोनों योग्य कर्म्मों के सहनेवाले हैं मैं किस मार्ग से उनकी आज्ञाभंग आदि नहीं करूं, पिता अपने को गर्भ में प्रवेश करता है अर्थात् नियत करता है और माता में शील, चरित्र, गोत्र, कुल समेत उत्पन्न होता है फिर मैं आप माता पिता की ओर से पुत्रत्व के अधिकार पर नियत किया गया मुझको अज्ञान कैसे नहीं होय दोनों अपनी उत्पत्ति का हेतु मानता हूं, पिता ने जो जातकर्म्म में आशीर्वाद दिये और दूसरे कर्म्मों में जपादिक किये पिता, गुरु धर्म्मरूप पोषण और शिक्षारूपी गुणों से संयुक्त हैं जो पिता ने कहा वही धर्म्म है उसीको वेदों ने भी उत्तम कहा है, पुत्र केवल पिताकी प्रसन्नता का कारण है और पिता पुत्र का सर्वस्व है अकेला पिता देने के योग्य देह आदि को देता है इसकारण पिता का वचन मानना उचित है इसमें कुछ विचार न करना चाहिये, पिता की आज्ञा माननेवाले पुरुषों के पातक भी दूर होजाते हैं, वस्त्र भोजनादि वस्तु, वेदशिक्षा, लौकिक शिक्षा और गर्भाधान से सीमन्त आदिकर्म्मों के संस्कार होने में भी पिता ही कारण है, पिता ही धर्म्म और स्वर्ग है; पिता ही तप और पिता ही के प्रसन्न होने में सब देवता प्रसन्न होते हैं, पिताने जो आशीर्वाद जिह्वा से दिये वह इस पुरुष को सेवन करते हैं जब पिता प्रसन्न होता है तब सब पापों का प्रायश्चित्त होजाता है, फूल बन्धन से छूटजाता है और फल वृक्ष से गिरपड़ता है परन्तु दुःख पानेवाला पिता पुत्र के स्नेहबन्धन से पुत्र को कभी नहीं छोड़ता है, यह पुत्र

की विचारी हुई पिता की प्रतिष्ठा है और सर्वोत्तम स्थान है, अब मैं माता का विचार करता हूं, मेरे नररूप होने में जो यह नीच आज्ञाभंग सम्बन्धी समूह है जैसे अग्नि का उत्पत्तिस्थान अरणी काष्ठ है इसीप्रकार इस समूह का उत्पत्तिस्थान मेरी माता है माता पुरुषों के देहों की अरणी है और सब दुःखी पुत्रआदि को सुख देनेवाली है माता के वर्त्तमान होने में सनाथता नियत है और माता न होने में अनाथता होती है, निर्द्धन मनुष्य भी माता यह शब्द कहके घर में जाकर शोक से रहित होता है और माता के होने में इसको वृद्धावस्था भी पीड़ित नहीं करती है, जो पुत्रादि युक्त भी माता के शरण में है वह सौवर्ष के अन्त में भी दोवर्ष की अवस्था के समान आनन्द से विचरता है, माता समर्थ, असमर्थ, दुर्बल, स्थूल चाहे जैसा पुत्र हो उसकी रक्षा करती है ऐसी रक्षा उस बुद्धि से अन्य मनुष्य नहीं करसक्ता, जब पुरुष माता से पृथक् होता है तब हीं वृद्ध होकर दुःख को पाता है और संसार उसकी दृष्टि में नष्ट सा मालूम होता है, माता के समान छाया नहीं, माता के समान गति नहीं, माता के समान रक्षा स्थान नहीं, माता के समान कोई प्यारा नहीं, उदर में धारण करने से धात्री और उत्पन्न करने से जननी और अंगों की वृद्धि करने से अंबा और वीरपुत्र उत्पन्न करने से वीरसू कहाती है, बालक का पोषण करने से श्वश्रू है यह माता प्रत्यक्ष देह है वह ज्ञानी मनुष्य इसको नहीं मारता है जिसका शिर कड़ु तूमर के समान नहीं है सत्संग के समय स्त्री पुरुष दोनों यही मनाते हैं कि हमारे पुत्र स्वरूपवान् और दीर्घायु हों परन्तु जीवों का प्रयोजन मातामें नियत है जो गोत्र है उसको माता जानती है और जिसका पुत्र है उसको भी माता ही जानती है, गर्भ में धारण करने से माता की प्रीति और शुभ करना चाहिये और पुत्र पिता की सन्तान हैं तात्पर्य यह है कि माता पिता दोनों की आज्ञा मानना अवश्य है जो पुरुष आप प्रतिज्ञापूर्वक पाणिग्रहण करके और साथ में धर्म को पाकर दूसरी स्त्रियों के पास जावेंगे वह पूजन और प्रतिष्ठा के योग्य नहीं हैं, तात्पर्य्य यह है कि मेरा पिता पतिव्रता का स्वामी है इससे पूजन के योग्य है, फिर पिता की आज्ञा से माता को मारना चाहिये यह शंका करके कहते हैं कि स्त्री के पोषण करने से भर्त्ता और पालन करने से पति कहाजाता है इस गुण के न होने से न भर्ता है न पति है तात्पर्य यह हुआ कि भार्या के मारने का इच्छावान् और पोषण रक्षणादि गुण से पृथक् इस पिता की आज्ञा से माता को नहीं मारूंगा,

कुचालिनी स्त्री मारने के योग्य है नहीं तो कुल में संकर होताहै यह शंका करके कहते हैं कि स्त्री इस प्रकार से भी अपराध रहित है पुरुष ही अपराधकर्त्ता है पुरुष ही परस्त्रीगमनादि बड़े २ दोषों को करता है, ऐसे पुरुष के साथ आनन्द मानने से स्त्री का भी अपराध है यह शंका करके कहते हैं कि स्त्री का परम देवता दैवत कहा है उसके शरीर के समान इन्द्र को जानकर और देखकर अपना श्रेष्ठ अंग देदिया तात्पर्य यह है कि अपने भर्त्ता के रूप के समान अन्य मनुष्य को अपना भर्ता जानकर अपना देह देनेवाली मेरी माता का व्यभिचार दोष नहीं है, गर्भ से उत्पन्न कुलसंकर के न होने से यह मारने के योग्य नहीं है, स्त्रियों का अपराध नहीं है पुरुष ही अपराधकर्त्ता है सब बातों में पति के स्वतन्त्र होने से जबरदस्ती से होनेवाले व्यभिचार आदि में स्त्रियां अपराध नहीं करती हैं कामदेव को स्त्री में लगानेवाले इन्द्र का ही प्रत्यक्ष दोष है मेरी माता का नहीं है यह निस्संदेह बात है आशय यह है कि इन्द्र के अपराध से माता का मरना न्यायविरुद्ध है इसप्रकार अज्ञानी पशुओं ने भी स्त्री को और पतिव्रता माता को मारने के अयोग्य समझा है, एक ही स्त्री के पास नियत पिता को देवताओं का समूह समझा है अर्थात् पिता के प्रसन्न करने से स्वर्ग की प्राप्ति है और देव मनुष्यों का समूह प्रीति से माता को प्राप्त होता है अर्थात् माता दोनों लोकों की देनेवाली और इसलोक में पोषण करनेवाली है अभ्यास और विलम्ब से करने के कारण बहुत विचार करतेहुए उसको बहुत समय व्यतीत होगया और उनका पिता भी आपहुँचा, बड़े ज्ञानी तपोनिष्ठ मेधातिथि नाम गौतम स्त्री के अयोग्य मरण को विचारकर अत्यन्त दुःखित अश्रुपात डालते हुए बोले और शास्त्रयुक्त धैर्य से शान्त हुए और पश्चात्ताप करने लगे कि तीनों लोक का ईश्वर इन्द्र ब्राह्मणरूपधारी अतिथिरूपी व्रत में नियत होकर मेरे आश्रम में आया वह मेरे वचनों से विश्वासित कियागया और कुशलक्षेम पूछकर पूजन किया गया और न्याय के अनुसार मैंने अर्घ पाद्य भी प्राप्त किया और मैं आपसे सनाथ हुआ यह वचन भी कहागया, इस निमित्त कि वह इस वचन से तृप्त होकर मुझपर प्रीति करेगा इस विचार में कामी इन्द्र की ओर से स्त्रीदोष उत्पन्न होने से स्त्री की बेमर्यादगी नहीं है, इसप्रकार स्त्रीसमेत मैं और स्वर्गमार्गगामी देवेश्वर इन्द्र अपराधी नहीं हैं योगधर्म में जो असावधानी है वही अपराध करती है, दुःख को अधैर्य से उत्पन्न होनेवाला कहा है इसीकारण मुनिलोग ऊर्ध्वरेता होते हैं मैं अपने अधैर्य

से अपमानयुक्त हुआ हूं और कुकर्मरूपी समुद्र में डूबा हुआ हूं, पतिव्रता स्त्री गर्भ का स्थान होने से और पोषण करने के हेतु भार्या नाम से प्रसिद्ध है उसको मारकर मुझको कौन पार उतारेगा, बड़ा बुद्धिमान् चिरकारी जिसको भूल से मैंने मारने की आज्ञा दी है वह चिरकारी ही मुझको पातक से निवृत्त करे अर्थात् रक्षा करे, हे चिरकारिन्! तेरा कल्याण हो और भला हो और तुम चिरकारी हो इस कारण कि विलम्ब से काम के करनेवाले हो, मुझको और अपनी माता को और जो मैंने तप संचय किया है इन सबको और अपने को पातक से रक्षा करो और विलम्ब से कार्यकर्त्ता होना यह गुण तुममें स्वाभाविक है यह तेरा गुण तेरी बड़ी बुद्धि से सफल हो बहुत समयतक माता से इच्छा कियागया और बड़े कालतक गर्भ में धारण कियागया हे चिरकारिन्! तुम अपने विलम्बयुक्त कार्य्यों को फलयुक्त करो तेरे विचार से बहुत कालतक रक्षा कियागया मनुष्य बहुत समय तक सोता है इससे हम दोनों के बड़े दुःख का विचार करो, हे राजन्, युधिष्ठिर! जब इसप्रकार से उस गौतमऋषि ने अपने चिरकारी पुत्र को सन्मुख वर्त्तमान देखा उसके पीछे बड़े दुःखी चिरकारी ने अपने पिता को देखकर शस्त्र को त्याग के मस्तक से प्रसन्न करने के लिये कर्म को प्रारंभ किया तदनन्तर गौतम ने भी शिर के बल से पृथ्वीपर गिरे हुये उस पुत्र को और लज्जा से पाषाणरूप उस स्त्री को देखकर बड़े हर्ष को पाया, आश्रम में नियत उस महात्मा के हाथ से वह स्त्री मारी नहीं गई और मारडालने की आज्ञा पानेवाला पुत्र भी निर्जन स्थान में चैतन्य रहा अर्थात् माता को नहीं मारा और अपने पिता की आज्ञा में अनुपस्थित खड्ग हाथ में लिये कार्य में नियत होनेपर और चरणों पर झुकेहुए पुत्र को देखकर पिता का यह सम्मत हुआ कि यह भय से शस्त्र धारण करने की चपलता को गुप्त करता है, फिर पिता ने कुछ कालतक प्रशंसा करके विलम्बतक मस्तक को सूंघते दोनों भुजाओं से मिलकर यह वचन कहा कि चिरंजीवी हो, इसप्रकार प्रीति की प्रसन्नतासहित उस महाज्ञानी गौतम ने पुत्र की प्रसन्नता के अर्थ फिर यह वचन कहा, कि हे चिरकारिन्! तेरा भला हो विलम्ब में कार्य्य करनेवाले बहुत समयतक जियो हे सौम्य, पुत्र! तेरे विलम्ब से आज्ञावर्त्ती होने से मुझको दुःखी न होना पड़ा, यह कहकर पुत्र से इस कथा को कहा जोकि विलम्ब से कार्य्य करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषों के गुणों के विषय में है देर में मित्र को पकड़े और बनायेहुए मित्र को विलम्ब से त्याग करे और देर में

किये हुए मित्र को विलम्बतक रखना उचित है, वह मनुष्य प्रीति, अहंकार, शत्रुता, पापकर्म और करने के योग्य अप्रिय कर्म में प्रशंसा कियाजाता है जोकि चिरकारी अर्थात् विलम्ब से कार्य्य करता है, बान्धव, सुहृद्, स्त्रीजन, नौकर आदि इन सबके गुप्त अपराधों में चिरकारी ही प्रशंसा कियाजाता है, हे भरतवंशिन्! इसप्रकार से गौतमजी पुत्रपर प्रसन्न हुए और पुत्र चिरकारी उनसे आनन्दित हुआ, इसीहेतु से सब पुरुष अपने सब कार्य्यों को विचारकर विलम्बतक निश्चय करके बहुत दुःखी नहीं होता है अर्थात् फिर पश्चात्ताप नहीं होता है, जब कि देरतक क्रोध को धारण करता है और देर में उस कर्म को निश्चय करता है ऐसी दशा में पश्चत्ताप पैदा करनेवाला कोई नहीं होता है, देरतक वृद्धों की उपासना करे, देरतक सन्मुख बैठकर पूजन करे, देरतक धर्म का सेवन करे, देरतक धर्म को खोज करे, देरतक ज्ञानियों के पास बैठे, देरतक श्रेष्ठ पुरुषों का सेवन करे, देरतक चित्त को स्वाधीन करे, तो देरतक प्रतिष्ठा को पाता है धर्मसम्बन्धी वचन कहनेवाले भी दूसरे को देर में उत्तर दें तो देरतक दुःखको नहीं पाते हैं, इसके पीछे वह बड़े तपस्वी पुत्र समेत बहुत कालतक उस आश्रम में निवास करके स्वर्ग को गये ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे त्रिणवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

चौरानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे सत्पुरुषों में श्रेष्ठ, पितामह! जब हिंसा ही धर्म है हिंसा ही पाप है तो अपराधियों के दण्ड देनेवाले राजा को हिंसा कैसे होगी और विना दण्ड दिये संसार की रक्षा कैसे होय और राजा की रक्षा कैसे करे और किसको मारे किसको न मारे यह आप से पूछता हूं आप समझा कर कहिये, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें द्युमत्सेन और राजा सत्यवान् का संवाद है, पिता की आज्ञा से अपराधियों के मारने पर उपस्थित होनेपर सत्यवान् ने यह वचन कहा जिसको कि पूर्व में किसीने नहीं कहा था, धर्म अधर्मरूप को और अधर्म धर्मरूप को वहां प्राप्त होता है जहां पर कि घात नाम ही धर्म होता है यह नहीं होने के योग्य है, द्युमत्सेन बोले कि हे सत्यवन्! जो न मारना ही धर्म है तो ऐसी दशा में अधर्म कौन होगा जो चोर न मारे जायँ तो वर्णसंकर होजायँ, यह मेरा है और इसका नहीं है यह बात कलियुगसम्बन्धी वर्त्तमान होजायँ तीर्थयात्रा और व्यापा-

रादिक व्यवहार भी मिटजायँ इस विषय में जो आप जानते हो वह मुझसे कहिये, सत्यवान् बोला कि यह तीनों वर्ण ब्राह्मणों के स्वाधीन करने चाहिये, इन धर्म्मपाश में बँधेहुए तीनों वर्णों के दूसरे अनुलोम प्रतिलोम से पैदा होने वाले सूत मागध इत्यादि भी इसीप्रकार कर्म्म करेंगे उनमें जो २ पुरुष न्याय के विपरीत हों उनको प्रकट करदें कि यह मेरी आज्ञा को नहीं सुनते हैं राजा उनको दण्ड देगा, जिस शास्त्र में देह का नाश नहीं कहा है उसमें प्रवृत्त होना चाहिये सब प्रकार की बातों को और शास्त्र के अभिप्राय को बुद्धि के अनुसार न विचारकर हिंसात्मक शास्त्र के अनुसार कर्म्म न करना चाहिये, राजा चोरों को मारता है तो उनके साथ उनकी स्त्री माता पिता पुत्र आदि बहुत से मनुष्य निरपराध मारे जाते हैं इसीकारण किसीसे आज्ञा भंग किया हुआ राजा अच्छे प्रकार से विचार करे, किसी समय साधुओं के सत्संग से असाधु पुरुष भी उत्तम स्वभाव को पाता है और असाधुओं से भी श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न होती है, निर्मूल न करना चाहिये क्योंकि यह सनातन धर्म नहीं है, थोड़े मारने का भी प्रायश्चित्त होता है, भय दिखाना, पकड़ लेना, कुरूप करना इत्यादि बातों से दण्ड देना चाहिये और उन भार्य्या पुत्रादि को पुरोहित की सभा में उनके अपराधी स्वामियों को मारकर दुःखी न करना चाहिये जब रक्षा की इच्छा करके वह चोर पुरोहित के पास जाकर यह कहैं कि हे स्वामिन् ! हम फिर इस पाप को नहीं करेंगे तब छोड़देने के योग्य हैं क्योंकि ईश्वर की आज्ञा है कि दण्ड मृगचर्म का धारण करनेवाला मुण्ड ब्राह्मण भी उपदेश के योग्य है, बड़े आदमी बड़ा अपराध करें तब बराबर अपराध करनेपर छोड़ने के योग्य नहीं हैं, द्युमत्सेन बोले कि प्रजा के लोग जिस २ मर्य्याद में चलाने सम्भव हों वही धर्म तब तक कहाजाता है जबतक कि वह धर्म्म उल्लंघन नहीं किया जाता है फिर धर्म्म के विपरीत चलने पर चोरों के न मारने में प्रजा का नाश होजाता है प्राचीन से प्राचीनसमय में संसार के लोग शासना योग्य होते थे क्योंकि वह मनुष्य बड़े मृदुस्वभाव सत्यवक्ता शत्रुता, क्रोध आदि साधारण रखते थे उस समय में धिक्कार दण्ड करना ही महादण्ड समझते थे फिर वचनदण्ड अर्थात् दस्यु नाम आदिही दण्डनियत हुआ फिर आदान दण्ड अर्थात् जुर्माना दण्ड हुआ अब कलियुग में मारना ही बड़ा दण्ड है कोई २ मनुष्य मारने से भी सुमार्ग में चलाने असम्भव हैं, चोर न मनुष्य का है न देव गन्धर्व्व पितरों का है फिर

यहां कौन किसका है कोई किसीका नहीं है यह श्रुति है, वह चोर मृतक के भूषण आदि को लेता है और पिशाच से ग्रसित मनुष्य के भी वस्त्रादिक हरण करता है उन निर्बुद्धि और नाशवान् चोरों की बुद्धि में कौन शपथ आदि मर्य्याद को जारी करे अर्थात् कोई नहीं जारी करसक्ता तात्पर्य्य यह है कि चोरों की जाति का कभी विश्वास नहीं है सत्यवान् बोला कि जो तुम हिंसा आदि से उन साधुओं की रक्षा करने को समर्थ नहीं हो तो उस दशा में किस यज्ञ के लाभ से उन चोरों के नाश को करते हो आशय यह है कि वेद की श्रुति के अनुसार चारों वरण जो कि अपराधी मारने के दण्डयोग्य हों वह यज्ञ में मारने योग्य हैं क्योंकि वह यज्ञपशु होकर स्वर्ग को जाते हैं, राजालोग इस प्रकार के चोरों से लज्जा करते हैं इसकारण चौरकर्मी होकर संसार के प्रबन्ध के निमित्त बड़ी तपस्या करते हैं, भयभीत करी हुई प्रजा नेकचलन होती है, राजा अपराधियों को अपनी इच्छानुसार नहीं मारते हैं अर्थात् जो वध के योग्य होता है उसको यज्ञ में मारते हैं और उत्तम कर्म्म से ही प्रजा को भय दिखलाकर शिक्षा करते हैं, ऐसा राजा होने पर सब मनुष्य परम्परापूर्व्वक उसके चलन के अनुसार कर्म्मकर्त्ता होते हैं क्योंकि बहुधा मनुष्य अपने गुरु की मर्य्यादा पर चलते हैं जो राजा अपने चित्त को स्वाधीन किये विना दूसरों को अपने स्वाधीन करना चाहता है मनुष्य उस राजा को जो कि पशुओं के मध्य में इन्द्रियों के स्वाधीन हैं हँसते हैं, जो मनुष्य कपट और मोह से राजा की कुछ आज्ञा भंग करे वह सबप्रकार से दण्ड के योग्य है वह उसीप्रकार दण्ड से और पाप से निवृत्त होता है, अपराधी को दण्ड देने की इच्छा करनेवाले राजा को पहिले अपना चित्त ही स्वाधीन करना योग्य है और अपराधी के भाई आदि को भी बड़े दण्डों से दण्ड देवे, जिस राज्य में पाप करनेवाला नीच मनुष्य बड़े कष्ट को नहीं पाता है वहां निश्चय करके पापीलोगों की वृद्धि होती है और धर्म्म का नाश होता है, हे तात! इसप्रकार दयावान् ज्ञानी ब्राह्मण ने शिक्षा करी उसीप्रकार विश्वास देनेवाले पूर्व के महात्माओं से भी यही शिक्षा हुई है हे राजन्! सतयुग में इस भूमण्डल को हिंसारूप दण्ड से भी स्वाधीन किया है, अर्थात् धिकार करना, कठोर वचन कहना, जुर्माना लेना, वध करना इनमें एक २ दण्ड को क्रम से हरएक युग में जारी करे इसप्रकार धर्म के तीन चरण त्रेतायुग में प्राप्त करे द्वापर में दो चरण से और कलियुग में एक चरण से और

कलियुग के वर्त्तमान होनेपर मुख्य समय में राजा के कुकर्म से धर्मकी सोलहवीं कला बाकी रहजाती है, हे सत्यवन्! फिर हिंसारूप दण्ड देने से वर्णसंकर होते हैं, अवस्था सामर्थ्य और समय को निश्चय करके तपरूप दण्ड की आज्ञा दे अर्थात् जैसे तप से पाप नष्ट होता है इसीप्रकार अपराधी दण्ड पाने से पवित्र होता है इसीकारण से तप का अर्थ दण्ड है, जैसे इस लोक में बड़े धर्मफल अर्थात् ज्ञान को ब्रह्मप्राप्ति के लिये त्याग नहीं करे उसी प्रकार का अहिंसारूप धर्म स्वायम्भूमनुजी ने जीवों के उपकारार्थ वर्णन किया है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पञ्चानबेवां अध्याय ॥

जीवों की अहिंसा से जो छः गुण का कारण योग था उसको कहा और हे पितामह! जो धर्म दोनों ओर का गुणदायक हो उसको मुझ से कहिये; ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, लक्ष्मी, वैराग्य, धर्म यह छः भग नाम हैं ये छओं जिसके पास हों और जो जीवों की उत्पत्ति, नाश होना, मोक्ष, विद्या, अविद्या को जानता है उसको भगवान् कहते हैं हे पितामह! यह दोनों सन्मुख वर्त्तमान गृहस्थ धर्म्म और योग इनमें कौन सा कल्याणकारी है, भीष्मजी बोले कि, यह दोनों गृहस्थ और योगधर्म बड़े कठिन हैं इनका पूरा करना बड़ा काम है परन्तु सत्पुरुषों के करने के योग्य और बड़े फल के देनेवाले हैं, मैं इन दोनों के प्रमाण को कहता हूं तुम चित्त लगाकर सुनो कि यह धर्म्म अर्थ के संशय का हरनेवाला प्राचीन इतिहास है जिसमें कपिलजी का और गौ का संवाद है, कि प्राचीन समय में राजा नहुष ने सनातन अचल आम्नाय को देखके त्वष्टा के निमित्त मधुपर्क में गोवध करना चाहा था यह हम ने श्रवण किया है कि उससमय महाज्ञानी उदारबुद्धि सतोगुणी शान्तचित्त कपिलजी ने इसप्रकार से मारने को आगे की हुई गौ को देखकर अकस्मात् यह वचन कहा कि हे वेदो! तुमको धन्य है, स्यूमरश्मि नाम ऋषि ने उस गौ में प्रवेश होकर कपिल यती से यह कहा कि बड़ा आश्चर्य्य है कि वेद निन्दित माने गये तो अब हिंसारहित धर्म ज्ञानका निश्चय किससे कियाजाय, तपस्वीलोग उस सदैव ज्ञानरूप परमेश्वरके कहे हुए वेद को अत्यन्त आर्ष मानते हैं वह तपस्वी अत्यन्त ज्ञानी विज्ञानशास्त्ररूप नेत्र रखनेवाले हैं और ईश्वर का कहा हुआ वचन मिथ्या नहीं हो सक्ता है, कपिलजी बोले कि मैं वेदोंकी निन्दा नहीं करता हूं

और धर्म के विपरीत भी कभी न कहूंगा जुदे२ आश्रमों के कर्म एकही प्रयोजन वाले हैं, संन्यासी, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ यह सब परमपद को पाते हैं यह चारों सनातनमार्ग आत्मा को प्राप्त करनेवाले माने हैं उनमें न्यूनाधिकता और एक से एक की श्रेष्ठता दिखलाने के निमित्त यह कहा है कि संन्यासी मोक्ष को, वानप्रस्थ ब्रह्मलोक को, गृहस्थी स्वर्ग्गलोक को और ब्रह्मचारी ऋषिलोक को पाता है, इस प्रकार जानकर सब स्वर्ग्ग आदि अर्थों के निमित्त यज्ञ आदि को प्रारम्भ करे यही वेद का मत है इससे भिन्न कर्म्मों का प्रारम्भ न करे यह निष्ठावान् श्रुति भी कहीं२ सुनीजाती है, कर्म्म के प्रारम्भ न करने में दोष नहीं होता है और कर्म्म के प्रारम्भ में बड़ा दोष है इस प्रकार के नियत शास्त्रों में प्रधानता अप्रधानता जानना कठिन है, जो यहां कोई शास्त्र प्रत्यक्षफलवाला और अहिंसा से श्रेष्ठतम वेदशास्त्र से विशेष है और आप उसको अनुभव से देखते होयँ तो कहिये, ल्यूमरश्मि ऋषि बोले कि, यह स्मृति है कि स्वर्ग कामनावाला सदैव यज्ञ करे इसमें प्रथम फल का संकल्प करके यज्ञ रचाया जाता है बकरा, घोड़ा, मेढ़ा, गौ और पक्षियों के समूह आदि का भोजन गांव और वन की औषधि है इसीसे इनके प्राणों की रक्षा होती है यह श्रुति है इसी प्रकार प्रतिदिन प्रातःकाल सायंकाल अन्न नरों के अर्पण होता है पशु और धान्य यज्ञ के अंग हैं यह भी श्रुति है इनको ब्रह्माजी ने यज्ञों के साथ ही उत्पन्न करके यज्ञ से देवताओं को पूजा इसके सब जीव जो कि सातप्रकार के हैं परस्पर में एकसे एक उत्तम हैं उस उत्तम नाम विश्वरूप पुरुष को यज्ञों में लयादिक करने के लिये संस्कार से संयुक्त किया अर्थात् गौ, बकरा, मेढ़ा, मनुष्य, घोड़ा, खच्चर, गधा यह गांव के पशु हैं और सिंह, व्याघ्र, वराह, भैंसा, हाथी, रीछ, हिरन यह सात वन के पशु हैं सबके पूर्व्व में विष्णु और फिर ब्रह्मा आदि ने यह यज्ञ का उपदेश किया है मुझमे बकरा घोड़ा आदिका मारना संभव है इस बातको जानकर कौन पुरुष प्राणियों को यज्ञ में मारने के निमित्त विचार न करेगा, यज्ञमें हिंसा दोष नहीं है इस बातको सिद्ध करके कहते हैं कि पशु आदि वृक्ष औषधि स्वर्ग कोही चाहते हैं और स्वर्ग यज्ञ के विना मिल नहीं सक्ता, औषधि, पशु, वृक्ष, वीरुध्, लता, घृत, दूध, दही, हव्य, पृथ्वी, दिशा, श्रद्धा, काल यह बारह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और सोलहवां यजमान और इनका ग्रहपति अग्नि है वह सत्रहवां कहा जाताहै, यह सब यज्ञके अंगहैं और यज्ञ ही संसारकी स्थिति

का मूल है यह श्रुति है, गौ अपने घृत, दूध, दही, गोबर, फटा दूध, चर्म, बैल, पूंछ, सींग और चरण आदि से यज्ञ को सिद्ध करती है अर्थात् पूर्ण करती है और जो २ अंग इस यज्ञ का कहाजाता है सब इसीप्रकार के हैं यह सब इकट्ठे होकर दक्षिणा पानेवाले ऋत्विजों के सहित यज्ञ को धारण करते हैं, इन सबको इकट्ठा करके यज्ञ निर्माण करते हैं, वह सब यज्ञ केही निमित्त उत्पन्नहुए इस अर्थवाली श्रुति कही और सुनी जाती है इसी प्रकार सब प्राचीनलोग कर्मकर्त्ता हुए, जो पुरुष फलकी अनिच्छा से पूजन करता है वह न हिंसा करता है न यज्ञकर्म का प्रारम्भ करता है और शत्रुता भी किसीसे नहीं करताहै क्योंकि वह यज्ञ करने के ही योग्य है, यह औषधि आदि यज्ञ के अंग और यज्ञ में वर्णित यज्ञ कुंभादिक अपनी अलौकिक बुद्धि के अनुसार परस्पर में एकएक की सहायता करते हैं, मैं उस आम्नाय को आर्ष देखता हूं जिसमें वेद प्रतिष्ठावान् हैं ज्ञानीलोग वेद ब्राह्मण के विचार से उसको देखते हैं, यज्ञ में वह वेद के ब्राह्मणों से उत्पन्न होनेवाले हैं और ब्राह्मण में हीं वर्त्तमान हैं सब संसार यज्ञ के पीछे है और यज्ञ सदैव संसार के पीछे है, वेद के उत्पत्तिस्थान प्रणव, नमस्कार, स्वाहा, स्वधा, वषट् यह सब जिसकी ओर से सामर्थ्य के अनुसार होते हैं वह प्रयोग कहेजाते हैं उसके भय से इस लोक को तीनों लोकों में नहीं जाना इसबात को वेदसिद्ध और महर्षिलोग जानते हैं, ऋग्, यजु, साम और स्तोम इत्यादि विधि जिसमें सब होती हैं वह द्विज कहा जाता है, फिर अग्निहोत्र और सोमपान में जो फल ब्राह्मण को मिलता है या अन्य महायज्ञोंसे मिलता है उसको आप ज्ञान ऐश्वर्य से संयुक्त जानते हो, हे ब्रह्मन् ! इसी कारण यज्ञ करे और विचार सहित यज्ञ करावे स्वर्ग के दाता ज्योतिष्टोमादि से पूजन करानेवाले पुरुष को देहत्यागने के पीछे बड़ा स्वर्गफल मिलता है, यज्ञ के न करनेवालों का न यह लोक है न परलोक है यह निश्चय है कि जो पुरुष वेदों के अर्थवाद को जानता है उसका दोनों प्रकार का अर्थवाद प्रमाण है क्योंकि एक अर्थवाद केवल प्रशंसारूप होता है जिसके द्वारा फलरहित कर्म्म करके शुद्धचित होकर मोक्ष का अधिकारी होता है और आत्मज्ञानी सबलोक और मनोरथों को प्राप्त करता है इसीकारण दोनों अर्थवाद समान हैं यह पूर्व्वपक्ष हुआ ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

छानबेवां अध्याय ॥

कपिलजी बोले कि, हम नियमादि गुणयुक्त योग्यमार्गं में प्रवृत्त ज्ञानीलोग इस कर्मफल से उत्पत्ति और दृष्टिगोचर होने से अभावरूप ब्रह्माण्ड के साक्षात्कार आत्मा को प्राप्त होते हैं और फलश्रुति को अर्थवाद कहा यह शंका करके कहते हैं कि सबभोग पदार्थों में इन योगों का संकल्प मिथ्या नहीं है अर्थात् इनके संकल्प से ही सब कुछ प्रकट होजाता है यह ज्ञान का फल हुआ आशय यह है कि ज्ञानी का आत्मज्ञान कर्म के अंगत्व भाव को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि वहांपर आत्मा के सिवाय कोई दूसरा शेष नहीं रहता इसकारण आत्मज्ञान का फल अर्थवाद नहीं होसक्ता और दूसरा अर्थवाद कर्म्म में ज्ञानी की श्रद्धा करने के लिये होता है यह उत्तरपक्ष हुआ, वह ज्ञानीलोग शीतोष्णता से उत्पन्न हर्ष शोकादि रहित किसी को नमस्कार न करनेवाले स्वभावसिद्ध निर्म्मल अर्थात् आगामी दोष और पापों से रहित विचरते हैं वह मोक्ष सर्व त्याग और बुद्धि में निश्चय करनेवाले ब्रह्मोष्ठि ब्रह्मरूप ब्रह्म में ही निवास करनेवाले शोकरहित नाशवान् रजोगुण हैं उनके सनातन अभीष्ट अर्थों को अर्थात् नित्य शुद्धता से उत्तम गति को पाकर गृहस्थ आश्रम के धर्मों में उनका क्या प्रयोजन है। ल्यूमरशिम बोले कि, जो यह परम काष्ठा है या परमगति है तो भी गृहस्थियों को रक्षाश्रय होकर दूसरा आश्रम वर्त्तमान नहीं होता है, जैसे कि सब जीव अपनी २ माता के आश्रय होकर जीवते हैं इसीप्रकार अन्य आश्रम गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर वर्त्तमान होते हैं, गृहस्थी यज्ञ करता है गृहस्थी ही तप करता है और सुखकी इच्छा से जो २ चेष्टा करता है उस धर्म्मफल का मूल गृहस्थाश्रम है, सब मनुष्य और जीवमात्र सन्तान उत्पन्न होने से प्रसन्न होते हैं दूसरे आश्रम में किसीप्रकार से भी संतान नहीं होसक्ती तृण, धान, औषधि आदि का मूल भी गृहस्थाश्रम है जैसे कि यज्ञ करने से वर्षा अन्नादि जीव क्रम से उत्पन्न होते हैं क्योंकि औषधिरूप प्राण से कुछ बाहर नहीं दृष्ट पड़ता है, किसका वचन सत्य नहीं है कि गृहस्थ आश्रम से मोक्ष नहीं है श्रद्धारहित अज्ञानी सूक्ष्मदृष्टि से पृथक् प्रतिष्ठारहित आलस्य परिश्रमयुक्त और अपने प्राकृतकर्मों से दुःखित अपण्डित मनुष्यों में से संन्यास में प्रवृत्त चित्त बाहर से उत्तम नहीं देखागया है, सनातनधर्म्म की अचल मर्यादा तीनों लोक की कारण है प्रत्यक्ष है कि वेदज्ञ ब्राह्मण भगवान् के समान जन्म से ही

पूजा जाता है, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों में गर्भाधान से पूर्व ही वेदोक्त मन्त्र जारी होते हैं और इसलोक परलोक सम्बन्धी साधन के योग्य सब कर्म्मों में निश्चय करके मन्त्र ही साधक होते हैं, मृतक का दाह आदि कर्म्म जोकि दूसरे जन्म से सम्बन्ध रखनेवाला है और जन्म लेनेवाले मृतक के लिये तर्पण श्राद्ध आदि में अन्न, जल, गोदान आदि का देना और वृषोत्सर्ग और जल में पिण्डों का डालना इत्यादि सब कर्मों में बड़े तेजस्वी बर्हिषद नाम पितृगण और कव्य के भोजन करनेवाले पितर मन्त्रोंको ही साधक मानते हैं और मन्त्र ही कारण हैं इसप्रकार से कहनेवाले वेदों में कैसे किसी की मोक्ष है जब कि संसार के लोग देवता और ऋषि, पितरों के ऋणी हैं, निर्धन आलसी पण्डितों ने वह वेदवचनों के ज्ञान से रहित सत्य समान दीखनेवाला मिथ्यारूप मोक्षस्वरूप जारी किया है, जो ब्राह्मण वेद और शास्त्रों के अनुसार यज्ञ करता है वह पाप से मुक्त और आकर्षण नहीं कियाजाता है और यज्ञ के द्वारा पशुओं समेत स्वर्ग को जाता है और कामनाओं से पूर्ण देव पितरों को तृप्त करताहै, वेदों की निन्दा और छलसे मोक्ष को नहीं पाता है वह पुरुष वेद में ही ब्रह्म को पाता है, कपिलजी बोले कि,-दर्श, पूर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास नाम यज्ञ ज्ञानी पुरुषों के हुए इन में सनातन धर्म्म है तात्पर्य यह है कि चित्त शुद्धि का चाहनेवाला बुद्धिमान् ही उनका अधिकारी है कर्म्म प्रारम्भ न करनेवाले बड़े धैर्य्यवान् बाह्याभ्यन्तर पवित्र ब्रह्मज्ञानी और अविनाशी होने की इच्छा करनेवाले संन्यासीलोग ब्रह्म से ही देवता ऋषि तृप्तकरते हैं, सब जीवों के आत्मारूप और सब जीवमात्र के देखनेवाले परमपद के इच्छावान् चिह्नरहित संन्यासियों के मार्ग में देवता भी मोह को प्राप्त होते हैं, इस सर्वात्मा चिह्नरहित शरीर के मध्यवर्ती आत्मा को गुरु के उपदेश से चारप्रकार का अर्थात् विराट्, सूत्र, अन्तर्य्यामी और शुद्धरूप इन भेदों से जानता है उसके चार द्वार अर्थात् दोनों भुजा, वचन, पीठ, लिंग यही गुप्त करनेवाले हैं और देह, चित्त, मन, बुद्धि यह चार सुख भोग के साधन हैं इनचारों से देवताओं का भी मोह उत्पन्न होता है इसकारण द्वारपाल अर्थात् भुजा इत्यादि का स्वामी ऐश्वर्यवान् होना चाहिये पाशों से नहीं खेले न दूसरे का धन लेवे और विपरीत जन्मवाले का हव्य न लेवे अर्थात् उसको यज्ञ न करावे और बुद्धिमानी से न क्रोधयुक्त हो न किसी पर चोट करे गाली आदि न दे वृथा वार्त्तालाप न करे कठोर वचन और

निन्दा न करे सत्यव्रत मितभाषी और सावधान हो और उसका वचन द्वार भी श्रेष्ठ होना चाहिये भोजन का अत्यन्तही त्यागी न हो मिथ्यावादी न हो लोभ रहित साधुओं की संगति करे थोड़ा भोजनकरे इसप्रकारसे उसके उदररूपी द्वार की रक्षा होती है हे वीर, युधिष्ठिर ! यज्ञ सम्बन्धिनी स्त्री को कभी पृथक् न करे अर्थात् दूसरी स्त्री के करने में भी उसको धर्म्म, अर्थ, काम में अविभागिनी नहीं करे और ऋतुकाल के विना स्त्री को नहीं बुलावे और दूसरे की स्त्री के रूप से सदैव परहेज़ करे कभी परस्त्रीवासना आत्मा में न धारण करे इसप्रकार से उसके लिंगरूप द्वार की रक्षा होती है जिस बुद्धिमान् के लिंग, उदर, भुजा, वचन यह चारोंद्वार अच्छे दृढ़ होते हैं वही ब्राह्मणहै और जिसके यह चारोंद्वार रक्षित नहीं हैं, उसके तप आदि सब धर्म्म निष्फल होते हैं और वस्त्राच्छादन रहित विना आतरण शयनकर्त्ता भुजा कांखवाले शान्तरूप को देवता लोग ब्राह्मण जानते हैं,जो एकाकी दूसरों का ध्यान न रखनेवाला दुःख सुख के स्थानों में समभाव से निवास करनेवाला है उसको भी देवताओं ने ब्राह्मण कहा है और जिससे ब्रह्मकी एकता जानी जाती है और जीवोंकी गतिका जाननेवाला है और सब जीवों से निर्भय है और उससे भी सब निर्भय हैं वह सर्वात्मारूप है और दान यज्ञ क्रियाओं के चित्तशुद्धि आदि फल गुरु आदि से विना पूछे और कहे हुए ब्रह्मज्ञान को नहीं जानते हैं, और उस ब्रह्म को न जानकर दूसरे स्वर्गादिक फल को स्वीकार करते हैं, आश्रमियों का वेदान्त श्रवणादिरूप विचार अपने कर्म्मों समेत उस अज्ञान का भस्म करनेवाला होता है जोकि संसार का मूल है, उस आदि रहित सदैव मोक्ष के योग्य निश्चेष्ट फलयुक्त सदाचार में आश्रित होकर धर्म्मशास्त्रों में लिखेहुए किसी कर्म्म के करने को समर्थ न होते उन कर्म्मों को देखते हैं जोकि प्रत्यक्ष फलवाले हैं, पर ऐश्वर्ययुक्त अविनाशी और त्याग यज्ञ आदि कर्म्मों से फल की अनिच्छा रखनेवाले अनैकान्तिक हैं सावधानी और कामादि से पृथक्ता यह दोनों आचार आपद्धर्म्म से पृथक् हैं, तात्पर्य यह है कि यज्ञ आदि को विनाशवान् जानके ज्ञाननिष्ठों में प्रवृत्त हो स्यूमरश्मि बोले कि, कर्म्म को त्याग करो इस पक्ष के होने पर जिसप्रकार वेद के प्रमाण हैं और जिस रीति से त्याग और बे त्याग फलयुक्त हैं वह दोनों मार्ग वेद में साफ कहे गये हैं अब आप ऐश्वर्य ज्ञान आदि से युक्त उसकी मुख्यता को मुझ से कहो, फिर अनुभव का प्रमाण करतेहुए कपिलजी बोले कि, योग में जो ब्रह्मप्राप्ति का

मार्ग है उसमें नियत होकर आप लोग यहां शरीर के होतेहुए प्रत्यक्ष देखते हैं और तुम सरीखे कर्मिष्ठ जिसको चाहते हैं वह इसलोक में किसरूप का प्रत्यक्ष है स्यूमरश्मि बोले कि, हे ब्रह्मन्! मैं स्यूमरश्मि हूं और ज्ञान सीखने को यहां आया हूं अर्थात् योग के द्वारा कल्याण की इच्छासे गौ में प्रवेश करके मैंने सत्यतासे प्रश्न किया है अपने पक्ष सिद्ध करनेको नहीं कियाहै आप छओं ऐश्वर्यवान्हैं इससे आप इस मेरे घोरसंशय को दूर कीजिये आप योगमार्ग में नियत प्रत्यक्ष देखरहे हैं और वह कौनसा प्रत्यक्षतम है किसकी आप उपासना करते हैं मैंने वेद के विपरीत बौद्ध, आर्हित, सौगत, कापालिक आदि शास्त्र से पृथक् आगम के अर्थ की बुद्धि के अनुसार जाना है वह आगम वेदवचन हैं और वेदार्थ को साफ करनेवाले पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, सांख्य, पातञ्जलि यह चारों भी आगम हैं इनको अपने आश्रमधर्म्म के अनुसार उपासना करे तो आगम सिद्ध होताहै और आगम के निश्चयसे प्रत्यक्ष और अनुमान के अनुसार सिद्धि दिव्य भोगप्राप्ति इत्यादि रूपवाली दृष्ट आती है, इसप्रकार दूसरे का मत जानने के लिये अपने मतकी निन्दा करते हैं हे वेदपाठिन्! जैसे कि नाव में बँधीहुई और नदी से बहाई हुई नाव पार नहीं लगाती है इसीप्रकार पहिले कर्म्मों की वासना से बँधीहुई कर्म्मरूपी नौका किसप्रकार से अज्ञानियों को तारसक्ती है आशय यह है कि अज्ञानी जन्म मरणरूप प्रवाह के तरने को समर्थ नहीं हैं आप छओं ऐश्वर्यवान् हैं और मैं शिष्यरूप वा अधिकारी हूं मुझे उपदेश करके प्रत्यक्षतमको समझाइये, कोई पुरुष कर्म्म की इच्छा से रहित नहीं है और न शोकरोगादि से पृथक् है, आप भी हमलोगों के समान प्रसन्न होते हैं और शोचते हैं आपकी इन्द्रियों के विषय भी सब जीवों के समान हैं इसप्रकार एकही सुख के चाहनेवाले चारोंवर्ण और चारों आश्रमों के व्यवहारी सिद्धान्त में कौन सा सुख अविनाशी है, कपिलजी बोले कि मोक्षशास्त्र की प्राप्ति के निमित्त जिस २ वैदिक अवैदिक शास्त्र को अच्छे प्रकार से अनुष्ठान करता है वह सब व्यवहारों में सफल है और यह बात प्रसिद्ध है कि जिस शास्त्र में जिसका अनुष्ठान है अर्थात् शम दम आदि की प्राप्ति है उस २ शास्त्र में सब दोषों से रहित आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है, साधन के अनुष्ठान से उत्पन्न ज्ञान सब संसार को आत्मा में मग्न करता है अर्थात् ज्ञानी को आत्मा के समानरूप करता है ज्ञान से पृथक् होकर जो वृत्ति वेदोक्त भी है वह जीवों को

दुःखदायी होती है जन्म मरणरूपी प्रवाह के पार होने से ज्ञानी आप से आप प्रत्यक्ष और सब रोगों से पृथक् हैं परन्तु आप सरीखे ज्ञानियों में कोई पुरुष द्वैततारहित आत्मज्ञान को पाता है, कोई मनुष्य शास्त्र को तत्त्वपूर्वक न जानकर कामद्वेष से युक्त होने के कारण पराक्रम के द्वारा अहंकार के आधीन होते हैं, शास्त्रों के चोर और ब्रह्म के विषय में विपरीत वचन कहनेवाले शम दम आदि के अनुष्ठान से रहित मोह के फन्द में वर्त्तमान पुरुष शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्त को न जानकर फल का होना नहीं देखते हैं आत्मज्ञान को सिद्ध करके ज्ञान ऐश्वर्यआदि गुण दूसरे को प्राप्त नहीं कराते हैं अर्थात् पाषाण के समान आप डूबते हैं वह दूसरे के निकालने को समर्थ नहीं होसक्ते उन शरीरों का जो अज्ञान है वही अज्ञान उनका रक्षास्थान है जो जीव जैसी प्रकृतिवाला है वह उसी प्रकृति के आधीन होता है उसके काम क्रोध द्वेष कपट मिथ्यावचन अहंकार आदि जो प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले गुण हैं वह सदैव वृद्धि को प्राप्त होते हैं परमगति के चाहनेवाले और धारणा ध्यान समाधिरूप नियम में प्रीतिमान् ज्ञानीलोग इसप्रकार से ध्यान करके पाप और पुण्य को अत्यन्त त्याग करें, स्यूमरश्मि बोले कि, हे ब्रह्मन्! मैंने यह सब शास्त्र से वर्णन किये क्योंकि शास्त्र को न जानकर वचनविलास जारी नहीं होते हैं, जो कोई आचार न्यायरूप है वह सब शास्त्र है यह श्रुति है और जो न्याय के विरुद्ध है वह शास्त्र नहीं है यह भी श्रुति सुनी जाती है, यह निश्चय है कि कोई वचनविलास शास्त्र से रहित नहीं है वेदवचन से जो अन्य है वह शास्त्र नहीं है, यह भी श्रुति है, प्रत्यक्ष सिद्धि को माननेवाले बहुत से पुरुष शास्त्र से भिन्न सिद्धान्त को देखते हैं, आत्मा का अनुभव न होने से जिनकी स्वरूपनिष्ठा जातीरही और विषयों में जिनकी बुद्धि प्रवृत्त है वह तमोगुण युक्त जैसे कि बौद्ध शास्त्रोक्त दोषों को नहीं देखते हैं और शोचते हैं उसीप्रकार हमलोग भी शोचते हैं क्योंकि आपलोगों की इन्द्रियों के विषय शीत उष्णतारूप का स्पर्श सबजीवों में एकसा है अर्थात सबको सुख दुःख देनेवाले हैं इसप्रकार एक सुख के जाननेवाले चारोंवर्ण आश्रमियों के व्यवहारों में हमलोग तुम से शान्ति को प्राप्त किये गये जोकि आप सिद्धान्त में अर्थात् सबप्रकार सब शास्त्रों के सिद्धान्त से मोक्ष को प्रकट करनेवाले वाद विवाद में समर्थ हैं परन्तु वह निष्ठा सब प्रकार से कर्म्म निवृत्त शान्तचित्त कोई ऐसे योगी पुरुषों से प्राप्त करनी सम्भव है जोकि देह के

निर्वाह योग्य भोजन के विशेष दूसरी वस्तु से प्रयोजन न रखते हों, यह न्याय शास्त्र से रहित लोकनिन्दित पुरुष से कहने के योग्य है कि वेदवचन पर न चलनेवालेकी मोक्ष होतीहै यह कठिनकर्म्म जोकि दान, वेदपठन, यज्ञ, सन्तान की उत्पत्ति और सीधापन है इसको इसप्रकार करने से भी जो मोक्ष नहीं है तो ऐसी दशा में कर्त्ता और क्रिया को धिक्कार है यह परिश्रम निरर्थक किन्तु दूसरी दशामें अर्थात् कर्म्मकाण्डको निरर्थक कहनेमें नास्तिकता होतीहै और वेदोंकी क्रियाका त्याग होजाताहै, हे भगवन्! मैं इस कर्म्मकाण्ड का हेतु मोक्ष न होना अथवा मोक्ष का अंग होना ठीक २ सुना चाहता हूं हे ब्रह्मन्! मैं आपकी शरण में आया हूं आप जिसप्रकार से जानते हों कृपा करके मुझे समझाइये ॥ ६७॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सत्तानवेवां अध्याय ॥

कपिलजी बोले कि, सब वेद लोकों को प्रमाण हैं वेद को विना उल्लंघन किये एक शब्दब्रह्म अर्थात् कर्म उपासनाकांड दूसरा परब्रह्म अर्थात् उपाधिरहित सच्चिदानन्द यह दोनों ब्रह्म जानने के योग्य हैं शब्दब्रह्म में पूर्ण कर्मकर्त्ता परब्रह्म को पाता है वेद के उपनिषद्कांड में जिस शरीर को गर्भाधान बुद्धि से उत्पन्न करता है वह देह को संस्कारयुक्त करता है क्योंकि गर्भाधान के मन्त्रों में यह आशीर्वाद होता है कि हे विष्णुजी! योनि को कल्पना करो प्रजापति सींचो और धाता गर्भ को धारण करो इन मन्त्रों से विष्णुआदि देवताओं के समान ज्ञान ऐश्वर्य्यादि युक्त जीव उत्पन्न होता है, वेद और स्मृतियों के संस्कारों से पवित्र देहवाला ब्राह्मण ब्रह्मविद्या के योग्य होता है इसलोक में कर्मों के फल इस चित्तशुद्धरूप मोक्ष के योग्य को प्रत्यक्ष जानो उसका वर्णन तुमसे करता हूं कि वह चित्तशुद्धिरूप फल के बल वेद से प्राप्त होनेवाला स्वर्ग के समान दृष्टि से गुप्त अथवा परम्परा का उपदेश नहीं है किन्तु लोकसाक्षी है—अनिच्छा से प्राप्त होनेवाले धन को त्याग करनेवाले निर्लोभी राग द्वेष से रहित पुरुष यह समझकर यज्ञों को रचते हैं कि यह धर्म्म है वही मोक्ष का साधन है और धनों का वही मार्ग है कि तीर्थ के समान पवित्र करनेवाले सत्पुरुषों को दान कियाजाय वह सत्पात्र अग्निहोत्र आदि कर्म्म, योगी पापकर्म्मरहित चित्त के संकल्प से बड़े शुद्ध, विषयों से पृथक्, ब्रह्मज्ञान में निश्चय रखनेवाले, क्रोध निन्दारहित, अहंकार ईर्षादि विना श्रवण, मनन, निदिध्यासन

में निष्ठायुक्त, जन्म, कर्म्म, विद्या इन तीनों को शुद्ध रखनेवाले अपने कर्मों में प्रतिष्ठित, सबके प्यारे बहुत सी सन्तानवाले, राजाजनक आदि और ब्राह्मणों में याज्ञवल्क्य इत्यादि बुद्धि के अनुसार योगी समदर्शी सत्यवक्ता संतोषी ज्ञाननिष्ठ सत्यसंकल्पादि गुणयुक्त उपाधिरहित ब्रह्म में श्रद्धावान् हुए आदि से ही शुद्ध अन्तःकरण बुद्धि के अनुसार व्रती परस्पर में स्नेह रखनेवाले महादुर्गम स्थान में भी धर्म्म को करते हैं, प्राचीनसमय में मिलकर धर्म्म करनेवालों का जो सुख हुआ किसी दशा में भी उनका धर्म्म प्रायश्चित्त के योग्य नहीं हुआ, वह सच्चे धर्म्म में नियत होकर बड़े दृढ़बुद्धि समझे गये हैं बुद्धि से ही नहीं करते किन्तु शास्त्रोक्त कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और अपने निश्चय से धर्म्म में छल नहीं करते हैं कारण यह है कि जो प्रधानकल्प अर्थात् धर्म्म सत्ययज्ञ है उसीको सबने मिलकर किया कभी उनका प्रायश्चित्त करने के योग्य नहीं हुआ, उस रीति पर नियत पुरुषों का प्रायश्चित्त वर्त्तमान नहीं है अज्ञानी पुरुष का प्रायश्चित्त उत्पन्न होता है यह श्रुति है, इसप्रकार से अनेक प्रकार के प्राचीन यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण तीनों वेद के ज्ञाता गुरुसेवापरायण यशस्वी इच्छारहित ज्ञानी प्रतिदिन यज्ञों के करनेवाले हुए, उनके यज्ञ वेद और कर्म्मशास्त्र के अनुसार क्रमपूर्वक संकल्पयुक्त हुए उन काम क्रोधरहित कठिन आचारवान् अपने कर्मों में पवित्र शुद्धचित्त सत्यवक्ता पुरुषों का यज्ञादिकर्म ब्रह्मरूप हुआ हमारे निमित्त भी यही सनातन श्रुति है, उन बड़े बुद्धिमान् कठिन कर्म और आचारों के करनेवाले पुरुषों के तप अविद्या दूर करनेवाले हुए, जो सदाचार आपात्ति धर्म्म से पृथक् काम क्रोध से अजित जिनमें किसी प्रकार की अमर्यादा नहीं हुई उस प्राचीन रूपान्तररहित एक आश्रमरूप सदाचार को ब्राह्मणों ने चार प्रकार का जाना है उसीको सन्तलोग बुद्धि के अनुसार पाकर परमगति को पाते हैं इसकारण अन्य ब्रह्मचारियों ने गृहस्थी होकर फिर घर से निकलकर वन में ही आश्रम लिया है वहां अधिकारी होकर संन्यास आश्रम में प्रवृत्त हुए वह तेजस्वी ब्राह्मण स्वर्ग में नक्षत्रों के समान दृष्ट आते हैं वैराग्य से भी अगस्त्य, वशिष्ठादि ने ब्रह्मभाव को पाया यह वैदिक वचन है कि इसप्रकार के लोग जो वारंवार योनियों में संसार को आते हैं वह प्रारब्धकर्म्म के कारण कभी पापों के फल से योग नहीं पाते हैं तात्पर्य यह है कि देह को प्राप्त करना उनकी इच्छा के अनुसार एक घरसे दूसरे घर में जाने के समान है, गुरु की

सेवा करनेवाला निश्चय में तदाकार ब्रह्मचारी भी इसी दशा का होताहै ऐसा योगी ब्राह्मण हो अर्थात् ब्रह्मज्ञानी के अर्थ के अनुसार ब्राह्मण होजाय और दूसरा नाममात्र को ब्राह्मण हो, इसप्रकार से जिनके अन्तःकरण का दोष नाशवान्हुआ उन पुरुषों के साक्षात्कार त्वम् पदार्थ और ज्ञान 'तत्त्वमसि' इस महा वाक्य से सब ब्रह्मरूपही हुआ, इसप्रकार की हमारी सनातन श्रुति है आशय यह है कि सबका ब्रह्मरूप होना बनावट नहीं है किन्तु मुख्य और सत्य है, उपनिषद् धर्म्म शम दमादि से लेकर समाधितक उन निर्लोभी निर्मल मोक्षबुद्धि वर्णाश्रमी पुरुषों का चौथी अवस्थावाला परमात्मा है उससे सम्बन्ध रखनेवाला सावधान है अर्थात् उसके सब अधिकारी हैं यह स्मृति है, शुद्धचित्त और मन के रोकनेवाले ब्राह्मण उसको त्रयब्रह्मप्राप्ति कहते हैं संतोषवान् संन्यासी ज्ञान का उत्पत्तिस्थान कहाजाता है अर्थात् और कोई उसकी योग्यता नहीं रखता सम्प्रदायक ब्रह्म साक्षात्कार वृत्तिवाला संन्यासियों का धर्म्म प्राचीन है, वह धर्म्म दूसरे आश्रमों के धर्म्म में मिलाहुआ वा पृथक् वैराग्य के अनुसार उपासना कियाजाता है वह धर्म्म उसके प्राप्त करनेवालों के आनन्द का हेतु है अर्थात् सब मनुष्य उससे लाभ उठासक्ते हैं और जो पुरुष रागी है वह इसमें पीड़ापाता है पवित्र मनुष्य ब्रह्मपद को चाहता संसार से मुक्त होता है, स्यूमरश्मि बोले कि, जो पुरुष प्राप्त होनेवाले अपने धन से भोग करते हैं दान करते हैं यज्ञ करते हैं और वेद पढ़ते हैं अथवा जो पुरुष त्यागी अर्थात् संन्यासी हैं इनमें सबसे अधिक कौन स्वर्ग को प्राप्त करता है यद्यपि गृहस्थ और संन्यास में सदाचार में प्रवृत्तपुरुषों का निवृत्ति ही धर्म्म है परन्तु देह त्यागने के पीछे उनमें कौन अधिक है इस प्रश्न को हे ब्रह्मन्! मुझे कृपा करके समझाइये, कपिलजी बोले कि, गुणभाव के प्राप्त करनेवाले सब परिग्रह शुभ हैं परन्तु संन्यास के सुख को नहीं पाते इसको तुम भी देखते हो, स्यूमरश्मि बोले कि आप निश्चय करके योगज्ञान में निष्ठा रखनेवाले हैं और गृहस्थी कर्म की निष्ठा रखनेवाले हैं निष्ठा में सब आश्रमों की एकता कही जाती है अर्थात् सबका निश्चय मोक्ष है इनमें एकता और द्वैतता में कोई मुख्यता नहीं दीखती है हे भगवन्! आप इसको मुझेसमझाइये, कपिलजी बोले कि, स्थूल, सूक्ष्म शरीर की पवित्रता बुद्धि के अनुसार कर्म्म और ज्ञानमोक्ष के साधन में कर्मों से चित्त के दोष दूरहोने और शास्त्र से उत्पन्न ज्ञान में ब्रह्मानन्दरस में नियत होने पर

यह सब गुण उत्पन्न होते हैं, दया ऐश्वर्य्य में भी चित्त को स्वाधीन रखना चित्त को जीतना, सत्यबोलना, सत्यता, हिंसा न करना, अहंकार शत्रुतारहित, लज्जा, शान्ति, कर्म का त्याग यह सब ब्रह्ममार्ग हैं इन्हीं से ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, विद्वान् मनुष्य चित्त से उस कर्म्मफल अर्थात् चित्तके दोषका दूरहोना और वैराग्यके उदय को जाने, सबओर से शान्त और अतिपवित्र ज्ञान में निश्चय करनेवाले तृप्त वेदपाठी ब्राह्मण जिस गति को पाते हैं उसीको परमगति कहते हैं इसप्रकार वेदों को जानने के योग्य ब्रह्मरूप कर्म्म को उसीप्रकार कर्म्मों को अनुष्ठान धर्म्म ज्ञान को जानकर वेद का ज्ञाता वर्णन किया इससे दूसरा पुरुष चमड़े की धौंकनी के समान तुच्छपुरुष कहनेवाला होता है वेद जाननेवालों ने सबको जाना है वेद में सब नियत है वेद मेंही सबकी वह निष्ठा है जो कि है और नहीं है अर्थात् वेद तीनों काल के वृत्तान्त का प्रकट करनेवाला है, पूर्व्व में ज्ञान को कहा अब जानने के योग्य को कहते हैं, सब शास्त्रों में एकही निष्ठा है वह यह कि यह जगत् पूर्ण प्रतीतिवाला है और बाधकाल में नहीं है, और तत्त्वज्ञानी की दृष्टि से यह दृश्यमान आकाशादि आदि मध्य अन्त युक्त है अर्थात् मिथ्या है और ज्ञानीलोगों के मत से सब दृश्यमान पदार्थ स्थिर हैं और सिद्धान्त में मिथ्यारूप भी अज्ञानियों की दृष्टि से दृढ़तम है, पुत्र, स्त्री, घर, धन, शरीर, मन, अहंकार तक के त्याग निर्विकल्प समाधि में नियत होनेपर आत्मा अच्छे प्रकार से प्राप्त होता है यह सब वेदों में लिखा है, उस मोक्षरूप संन्यासी में संतोष जो कि निरानन्द से लेकर ब्रह्मानन्द तक सब आनन्दों में वर्त्तमान हो नियत होता है, अब निर्व्वाण मोक्ष के स्वरूप को कहते हैं, वह अविनाशी है और अरूप सरूप प्रपञ्च की मूर्त्ति है क्योंकि सब का उत्पत्तिस्थान ही आत्मा है इसीसे जाना हुआ है और जोकि जड़ चैतन्यरूप है इसीकारण जानने के योग्य है और पूर्ण कलावान् सुखरूप और सर्वोत्तम है शिव है, ब्रह्म है और ईश के प्रकाश का कारणरूप रूपान्तर दशा से रहित और असंगहै जितेन्द्रिय होनेकी शक्ति बुराई करनेवालेपर भी क्रोध न करना, शान्ति अर्थात् सब कर्मों से वैराग्य यह तीनों शुभ हैं अर्थात् ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के हेतु हैं, बुद्धिरूप नेत्र रखनेवाले पुरुषों के इन तीनों गुणों से वह अकृत्रिम जगत् का कारण व असंग एकरूप अविनाशी प्राप्त होता है उस ब्रह्म और ब्रह्मज्ञानी को नमस्कार है ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवां अध्याय।

जो पुरुष मोक्षधर्म के अनुष्ठान में समर्थ नहीं है उसके निमित्त त्रिवर्ग में कौन श्रेष्ठतम है इस बात के निर्णय करने के निमित्त राजा युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! वेद इन तीनों धर्म, अर्थ, काम को कहते हैं उनमें किसका जानना उत्तम है उसको मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि, इस स्थान पर मैं इस प्राचीन इतिहास को तुम से वर्णन करता हूं जिसमें कुण्डधार नाम मेघ ने प्रीतियुक्त होकर अपने भक्त का उपकार किया, किसी निर्द्धन ब्राह्मण ने विचार किया कि फल की इच्छा से धर्म को करूंगा यह विचारकर उस आकांक्षी ने यज्ञ के निमित्त कठिन तपस्या को किया और निश्चय करके देवताओं का पूजन किया और भक्तिसे देवपूजन करने से भी धनको नहीं पाया फिर चिन्ता करके विचारनेलगा कि वह देवता कौन सा है जो कि मनुष्यों से सिद्ध किया गया हो वह मुझपर भी प्रसन्न हो फिर उसने मृदुचित्त से सन्मुख वर्त्तमान देवताओं के सेवक कुण्डधार नाम मेघ को देखा उस महाबाहु बादल के देखने से उसको भक्ति उत्पन्न हुई और समझा कि यह मेरा कल्याण करेगा क्योंकि यह स्वरूप ऐसाही है और देवता के समीप रहनेवाला है और अन्य किसी मनुष्य से संयुक्त नहीं है इससे यह शीघ्रही मुझ को धन देगा तदनन्तर उस ब्राह्मण ने कुण्डधार का धूप दीपादि से विधिपूर्वक पूजनकिया तदनन्तर थोड़े ही समय में उस मेघ ने प्रसन्न होकर उसके उपकार करने के लिये यह निश्चित वचनकहा कि ब्रह्महत्या करनेवाला, मद्यपीनेवाला, चोर, व्रतका खण्डित करनेवाला इन सबका प्रायश्चित्त होसक्ता है परन्तु उपकार को भूलनेवाले कृतघ्नी के लिये प्रायश्चित्तसे शुद्धि नहीं होसक्ती है, आशा के पुत्र अधर्म, क्रोध निन्दा हैं और छल के पुत्र लोभादि हैं और कृतघ्नी पुरुष संतानहीन होते हैं, इसके पीछे कुशाओंपर सोनेवाले उस ब्राह्मण ने कुण्डधार के प्रभाव से स्वप्न में सब जीवों को देखा, सुखदुःख के अनुभव से पृथक् शान्ताचित्त तप और भक्ति से शुद्ध उस ब्राह्मण ने रात्रि के समय उस कुण्डधार की भक्ति के फल को देखा, हे युधिष्ठिर ! उसने महातेजस्वी महात्मा मानभद्र को जोकि याचकों को देवताओं से कहकर कर्मफल का दिलानेवाला था देखा वहां देवतालोग उत्तमकर्मों के अनेकफलों को देते थे और दुष्टकर्म वर्त्तमान होने पर पूर्व दियेहुए राज्य को भी फेरलेते थे हे भरतर्षभ ! इसके पीछे बड़ा तेजस्वी कुण्डधार यक्षोंको देखताहुआ

पृथ्वीपर गिर इसके पीछे बड़े साहसी उदार मानभद्र ने देवताओं के वचन से उस पृथ्वी पर पड़े हुए कुण्डधार से कहा हे कुण्डधार! क्या इच्छा है कुण्डधार बोले कि जो देवता मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं इस ब्राह्मणपर कुछ सुखदायी अनुग्रह किया चाहता हूं क्योंकि यह ब्राह्मण मेरा भक्त है फिर मानभद्र ने देवताओं के वचनों से कुण्डधार को यह उपदेश किया कि उठ २ तेरा भलाहो और तेरी इच्छा पूर्ण हो जो यह ब्राह्मण धनकी इच्छा रखता है तो इसको बहुत सा धन दे दो यह तेरा सखा ब्राह्मण जितना धन चाहता है मैं देवताओं के वचनों से उतनाही असंख्य धन देता हूं यह सुनकर कुण्डधार ने मनुष्यता को अनियत और नाशवान् विचारकर ब्राह्मण को तपस्या करने की सलाह दी और कहा कि हे धनदाता! मैं ब्राह्मणों के निमित्त धन नहीं मांगता हूं किन्तु केवल भक्तों के वास्ते दूसरा अनुग्रह किया चाहता हूं अर्थात् रत्नों से पूर्ण पृथ्वी को भी भक्तों के लिये नहीं इच्छा करता हूं यह इच्छा है कि यह ब्राह्मण धार्मिक हो और इसकी बुद्धि सदैव धर्म्म में प्रवृत्त हो यह धर्म्महीसे अपना निर्वाह करे, मानभद्र बोले कि देह के कष्ट से रहित यह ब्राह्मण धर्म्म के फल राज्य आदि अनेक प्रकार के भोगों को भोगे भीष्मजी बोले कि इस बात को सुनकर कुण्डधार ने धर्म्म केही निमित्त प्रार्थना वारंवार की इससे देवता उसपर प्रसन्न हुए तब मानभद्र बोले कि सब देवता जैसे तुमसे प्रसन्न हैं उसीप्रकार इस ब्राह्मण से भी प्रसन्न हैं यह धर्म्मात्मा होकर धर्म्म में बुद्धि को लगावेगा फिर इस ईप्सित वर को पाय कुण्डधार प्रसन्न हुए तब उस ब्राह्मण ने उन सूक्ष्म वस्तुओं को जो कि इधर उधर और सन्मुख रक्खी हुई थीं और वैराग्यवान् देखकर उनसे इच्छा को हटाकर यह कहा कि यह कुण्डधार उत्तम कर्म्म को नहीं जानता है तो दूसरा कौन शुभ कर्म्म को जानेगा मैं धर्म्म से जीवन के लिये श्रेष्ठ वन कोही जाऊंगा भीष्मजी बोले कि तब उस उत्तम ब्राह्मण ने वैराग्य से और देवताओं की प्रसन्नता से वन में जाकर बड़ी तपस्या प्रारम्भ की और कन्दमूल फल भोजन करने लगा और धर्म्म में अपनी बुद्धि को दृढ़ किया तदनन्तर कन्दमूलादि को त्यागकर वृक्षों के पत्ते खानेलगा फिर पत्ते भी त्यागकर जल काही आहार करनेलगा तदनन्तर बहुत समयतक वायु भक्षण करनेलगा फिर भी इसके प्राणों की कोई बाधा न हुई यही आश्चर्य हुआ धर्म्मवान् उग्रतपी वह ब्राह्मण बहुत समय में दिव्य दृष्टिवाला होगया फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर तप मेंही प्रवृत्त होगया और अपने

पूर्व उत्तम विचार को करके मन में कहा कि जो मैं प्रसन्न होकर किसी को राज्य दूं वह थोड़ेही समय में राजा होगा और मेरा वचन मिथ्या न होगा तब तो अत्यन्त प्रसन्न होकर उस कुण्डधार ने फिर दर्शन दिया और उस ब्राह्मण ने उस कुण्डधार का बुद्धि के अनुसार पूजन किया और आश्चर्य्य भी किया तब कुण्डधार ने कहा कि हे ब्राह्मण! तेरे नेत्र दिव्य दृष्टिवाले हों तुम नेत्रों से राजाओं की गति और लोकों को देखो तब उसने अपनी दिव्यदृष्टि से नरक में फँसे हजारों राजाओं को देखा तब कुण्डधार ने कहा कि जब तुमने प्रीति से मुझको पूजा और तुमको खेद हुआ तो क्या हमारी प्रसन्नता का फल हुआ और स्वर्ग में केवल वही मनुष्य जाते हैं जिनमें देवताओं के से गुण होते हैं, भीष्मजी बोले कि, यह कुण्डधार की बातें सुनकर उस ब्राह्मण ने काम क्रोधादि अनेक दुर्गुणों को धारण किये मनुष्यों को भी देखा तब कुण्डधार ने कहा कि सबलोग इस काम क्रोधादि से व्याप्त हैं और यही काम क्रोधादि देवताओं की आज्ञा से इस मनुष्य के विघ्नकारी होते हैं विना देवइच्छा कोई मनुष्य धार्मिक नहीं होता है तुम इन बातों के देने को तपके द्वारा आप समर्थ हो भीष्मजी बोले कि यह सुनकर वह ब्राह्मण कुण्डधार के चरणों में गिरपड़ा और कहा कि मुझपर बड़ा अनुग्रह किया पूर्व्वसमय में काम लोभादि युक्त होकर जो आपकी प्रीति की मैंने निन्दा की उसको क्षमा कीजिये, तब कुण्डधार ने क्षमा किया यह वचन कहकर और उस ब्राह्मण से मिलकर वहीं अन्तर्द्धान होगया तब तप की शुद्धि से वह ब्राह्मण सब लोकों में घूमा, आकाश में चलना, ईप्सित मनोरथों का प्राप्त करना, इसके विशेष जो परम गति हैं उन सबको भी धर्म्म सामर्थ्य से और योग से प्राप्त किया, देवता, ब्राह्मण, सन्त, यक्ष, गन्धर्व, चारण, मनुष्य और अनेक सुकृती जीव इत्यादि को ही इसलोक में श्रेष्ठ कहते हैं परन्तु धनवान् कामी पुरुषों को नहीं कहते हैं, देवतालोग तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हैं इसहेतु से कि तेरी बुद्धि धर्म्म में तत्पर है, धर्म्म में तो सुख का समूह है और धनमें केवल सुखकी कलामात्रही है ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

निन्नानबेवां अध्याय ॥

निष्काम धर्म्म की उत्तमता वर्णन हुई इस धर्म्म में हिंसा नहीं होती इस

कारण इस अध्याय में हिंसायुक्त यज्ञों की निन्दा करते हैं युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! चित्त की पवित्रता या ईश्वर की भक्ति रखनेवाले अनेक यज्ञ और तपों में वह सुख धन आदि की इच्छारहित केवल धर्म्म के निमित्त नियत किया हुआ यज्ञ कैसे रूप का है, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानपर यज्ञ के विषय में उंछवृत्तिवाले ब्राह्मण का प्राचीन वृत्तान्त जिसको नारदजी ने वर्णन किया है तुमसे कहता हूं नारदजी ने कहा कि विदर्भ देशों में एक देश बड़ाधर्म प्रधान और श्रेष्ठ था वहां उंछवृत्तिवाला कोई तपस्वी ब्राह्मण था वह यज्ञ पूजन को सावधान हुआ वहां वन में श्यामाक, सूर्यपर्णी, सुवर्चला यह तीनों साग ही भोजन को मिलते थे यह तीनों साग नीरस और कटु थे परन्तु उस ब्राह्मण के तप के प्रभाव से वह सुस्वादु होगये और सब जीवों की हिंसा न होने से वन में ही सिद्धि को पाकर मूल फलों से ही स्वर्गसम्बन्धी यज्ञ किया, उसकी स्त्री व्रतसे निर्बल पवित्र पुष्करधारणी नामसे प्रसिद्ध थी वह विवाहिता यज्ञपत्नी सती स्वामी के साथ पशुयज्ञ की चाहनेवाली हिंसायज्ञ को उत्तम जानकर स्वामी से विपरीत थी परन्तु स्वामी के शाप से भयभीत होकर उसके ही स्वभाव के अनुसार कर्म्म करती थी और उसका वस्त्र पुराने पंखों का बनाहुआ था उसने पति की आज्ञा सेवन में निष्काम यज्ञ किया वहां शुक्रजी के शाप से मृगरूप उसी ब्राह्मण के समीप आश्रित सन्मुख बैठेहुए धर्म्मराज ने उस ब्राह्मण से कहा कि यह तुमने विपरीत कर्म्म किया, क्योंकि यह यज्ञ मन्त्रांग से रहित है अर्थात् इसमें श्यामाक नाम चरु से पशु बनालिया है मुख्य पशु नहीं है इस निमित्त तुम मुझे शीघ्रता से हवन करो और आनन्दपूर्व्वक तुम स्वर्ग को जाओ तदनन्तर, यज्ञ में साक्षात्सावित्री जो कि सूर्य्यमण्डल की अधिष्ठात्री देवी है उसने उसको समझाया कि मेरे निमित्त तुम पशु को होमो इन दोनों के कहने पर भी उसने यही उत्तर दिया कि मैं अपने समीपी आश्रित मृग को नहीं मारूंगा और यज्ञ में निकृष्टकर्म्म हुआ ऐसा कहकर वह देवी भी लौटगई और रसातल के देखने की इच्छा से यज्ञ की अग्नि में प्रवेश करगई फिर उस हाथ जोड़े हुए मृग ने उस सत्य नाम ब्राह्मण से प्रार्थना की और सत्य ने उसपर हाथ फेरकर आज्ञा दी कि जाओ फिर वह हिरन आठ चरण चलकर लौट आया और कहने लगा कि हे सत्य ! मैं चाहता हूं कि तू मुझ को हवन करदे इस निमित्त कि मेरी भी सद्गति होजाय तुम मेरे दिये हुए दिव्य नेत्रों

से उत्तम अप्सरा और श्रेष्ठ गन्धर्वों के दिव्य विमानों को देखो तदनन्तर उस इच्छायुक्त ब्राह्मण ने नेत्रों से बड़ी देरतक पशु और यजमान सहित स्वर्गगति को देखा और मृग को भी स्वर्ग का आकांक्षी देखकर स्वर्ग में नियत होने का विचार किया, वह धर्म्म देवता मृगरूप होकर बहुत कालतक वन में रहे और उस शाप के प्रायश्चित्त को किया और उसकी चित्त की वृत्ति में यह बात जो आई कि यह हिंसात्मक यज्ञ की बुद्धि नहीं है इसकारण से उसके बड़े तप की हानि हुई इसी हेतु से जानना चाहिये कि हिंसा यज्ञ की पूर्ण करनेवाली नहीं है, अब इस सन्देह को कहते हैं कि धर्म्म ने क्यों छल किया अर्थात् उसके पीछे धर्म्म ने आप उस पुष्करधारणी स्त्री के उस नियत यज्ञ को पूर्ण किया और उस ब्राह्मण ने तप के द्वारा मोक्षपदवी को पाया, अहिंसा पूर्ण धर्म्म है और हिंसात्मक धर्म्म उत्तम नहीं है अब मैं उस सच्चे धर्म्म को तुझसे कहता हूं जो कि ब्रह्मवादी पुरुषों का है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

एकसौ का अध्याय ॥

अहिंसा धर्म्म है और वैराग्य के द्वारा मोक्ष का हेतु है इसको निश्चय करके फिर युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि किसप्रकार पापात्मा होता है और कैसे धर्म्म को करता है किसके द्वारा वैराग्य की प्राप्ति होती है और किसरीति से मोक्ष को पाता है, भीष्मजी बोले कि सब धर्म्म तेरे जानेहुए हैं तुम मर्यादा के निमित्त पूछते हो वैराग्य से मोक्ष को और पाप धर्म्म को मूलसमेत सुनो, कि पांचों विषयों का विज्ञान होने के निमित्त प्रथम इच्छा वर्त्तमान होती है उससे काम और द्वेष उत्पन्न होते हैं, फिर कामना की प्राप्ति के अर्थ और पाप दूर करने के लिये उपाय करताहुआ बड़े कर्म्म का प्रारम्भ करता है और इच्छानुसार सुगन्धियों का सेवन करना चाहता है उससे राग उत्पन्न होता है उसके पीछे द्वेष उत्पन्न होता है फिर लोभ, मोह उत्पन्न होते हैं, लोभ, मोह और राग, द्वेष से युक्त पुरुष की बुद्धि अधर्म में प्रवृत्त होती है फिर छल से धर्म्म को करता है और छलसे ही अर्थ को चाहता है तब उसी में बुद्धि को करता है और पाप करना चाहता है फिर पण्डितों से निषेध कियाहुआ भी राग मोह से उत्पन्न कायिक, वाचिक, मानसिक इन तीनों प्रकार के अधर्म्मों को करता है अर्थात् पाप को विचारता है कहता है और करता है, उस अधर्मी के दोषों को साधुपुरुष कहते

हैं और एकसी बुद्धि रखनेवाले पापीलोग परस्पर में मित्रता रखते हैं, ऐसापुरुष जब कि इसीलोक में सुख नहीं पाता तो परलोक में कैसे पावेगा इसप्रकार पापात्मा होता है, अब धर्म्मात्मा का वर्णन सुनो जैसे कि वह कल्पनारूप धर्म्मवाला दूसरे की भलाई प्राप्त करता है इसीप्रकार कल्याणरूप धर्म्मसे वांछित गतिको पाता है, सुख दुःख के पहिचानने में कुशल जो पुरुष बुद्धि से प्रथमही इन दोषों को देखता है और साधुओं का भी सेवन करता है उसके श्रेष्ठ आचरण और उत्तम अभ्यास से बुद्धि बढ़ती है और धर्म्म में प्रवृत्त होती है तब वह धर्म्म सेही निर्वाह करता है और धर्म्म से प्राप्त होनेवाले धनों में चित्त करता है अर्थात् जिसमें गुण देखता है उसी की जड़ को सींचता है और धर्मात्मा होता है फिर श्रेष्ठ मित्रों को और उत्तम धनों को पाकर इसलोक में आनन्द भोगकर परलोक में सुख को भोगता है और शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध में संकल्प सिद्धि को पाता है यह सब धर्म्म का फल जानो फिर हे युधिष्ठिर ! वह धर्म्म के फल को पाकर प्रसन्न नहीं होता है तब उससे अतृप्त हो ज्ञानरूप नेत्र से वैराग्य को प्राप्त करता है, जब वह ज्ञान दृष्टियुक्त होकर रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि से भी मन को खींचता है और शोचरहित होता है तब इच्छाओं से निवृत्त होता है परन्तु धर्म्म को नहीं छोड़ता है और इसलोक को नाशवान् जानके स्वर्गादि धर्म्मफल के भी त्यागने का उपाय करता है फिर मोक्ष का चिन्तवन करता है और युक्ति से वैराग्य प्राप्तकर पाप कर्मों को त्यागता है, फिर धर्मात्मा होकर परम मोक्ष को पाताहै, हे युधिष्ठिर ! यह पाप धर्म्म मोक्ष और वैराग्य सब तुमसे कहा इसी से तुम सब दशाओं में धर्म्म के कर्त्ता हो, क्योंकि धर्म्म में नियत पुरुषों को सनातन सिद्धि होती है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकसौएक का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! आपने जिस युक्ति से मोक्ष का वर्णन किया उस युक्ति को न्याय के अनुसार सुना चाहता हूं, भीष्मजी बोले कि, हे बड़े ज्ञानिन् ! मोक्ष के निमित्त अपनी बुद्धि को साक्षी रखनेवाला उपाय तुम में योग्य है उसीसे सब अर्थ, धर्म्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है जैसे घट के बनाने में जो बुद्धि होती है उस बुद्धि का घट के बनजाने पर कुछ प्रयोजन नहीं रहता उसीप्रकार जिनमें यज्ञ आदि उपाय हैं उन प्रवृत्ति धर्म्मों में दूसरा निवृत्ति धर्म्म

कारण नहीं होसक्ता किन्तु फल की इच्छा न रखनेवाले पुरुष का यज्ञादिक धर्म्म चित्तशुद्धि के द्वारा निवृत्तिधर्म्म का हेतु होता है तात्पर्य्य यह है कि निवृत्ति धर्म्म के वर्त्तमान होनेपर प्रवृत्ति धर्म्म की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि पूर्वीसमुद्र में जो मार्ग है वह पश्चिम को नहीं जाता है, मोक्षमार्ग एकही है उसको ब्यौरे समेत सुनो कि निवृत्ति धर्म की जो पराकाष्ठा योग है उसके वर्णन करने में प्रथम उसके साधन वर्णन करता हूं कि शान्तिता से क्रोध को और संकल्प के त्याग से काम को दूरकरे धैर्यवान् पण्डित सतोगुणी मनुष्य भगवत् के ध्यान आदि धर्म के सेवन से निद्रा आलस्य को त्यागे और सावधानी और चतुरता से संसार की अपकीर्त्ति के भय को निवृत्त करे और क्षेत्रज्ञ में मन लगाने से प्राणचेष्टा को रोके और धैर्य से इच्छा, काम, द्वेष को शरीर में न रक्खे और तत्त्वाभ्यास से भ्रम अज्ञान आदि अनेक संशयों को निकाले ऐसा तत्त्वज्ञानी ज्ञान के अभ्यास से निन्दा और प्रतिभा को दूरकरे अर्थात् अन्य का ध्यान न करे प्रयोजन यह है कि ब्रह्म काही ध्यान ब्रह्म कोही कहना ब्रह्म काही उपदेश और ब्रह्म कोही परस्पर में ज्ञानोपदेश करना इसी को ज्ञान का अभ्यास कहते हैं कामरहित शीघ्रता से पचनेवाले निरुपद्रव सतोगुणी भोजनों से रोगादि को दूररक्खे सन्तोष से लोभ मोह को और विषयों के अनर्थ देखके विषयों को त्याग करे, दया से अधर्म को, विचार से धर्म को और भविष्यत्काल से आशा को और अनिच्छा से अर्थ को त्याग करे और पण्डित मनुष्य अस्थिरता से प्रीति को, योग से गृहस्थाश्रम को, दया से चित्त के अभिमान को, सन्तोष से लोभ को, युक्ति से आलस्य को, वेद विश्वास से विपरीत वाद को, मौनता से अनर्गल बकने को और छओं वर्ग के विजय करने की सामर्थ्य से भय को त्यागकरे, इन अंगों को कहकर अब प्रधानयोग को कहते हैं कि बुद्धि से मन वचन को स्वाधीन करे और उस बुद्धि को ज्ञान शुद्धतम पदार्थ वा समष्टिबुद्धि से आधीन करे फिर इस ज्ञानरूप शुद्धतम पदार्थ को यह आत्मा ब्रह्महीहै इस वचन के द्वारा उत्पन्न होनेवाली वृत्तिसे और उस बुद्धि की वृत्ति को भी परम चैतन्य के प्रकाश से आधीन करे तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों को मन में, मनको बुद्धि में, बुद्धि को तमपदार्थ में, तमपदार्थ को ब्रह्माकार वृत्ति में, उसको शुद्धआत्मा में लय करके आत्मस्वरूप नियत होजाय, यह ज्ञान शान्त वृत्ति और पवित्र कर्म करनेवाले पुरुषसे जाननेके योग्य है, काम,

क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न को त्यागकर वाक्जित् पुरुष योग साधन के योग्य है, ध्यान, वेदपाठ, दान, सत्यबोलना, लज्जा, सरलता, क्षमा, पवित्रता, बाह्याभ्यन्तर शुद्धि, क्षुधा और इन्द्रियों का जीतना इत्यादि गुणों से तेज की वृद्धि होती है और पाप नष्ट होता है ऐसे पुरुष के संकल्प सिद्ध होते हैं और विज्ञान प्राप्त होता है, वह निष्पाप स्वल्प भोक्ता तेजस्वी जितेन्द्रिय पुरुष काम क्रोध को जीत कर उस स्थान को प्राप्तकरता है जिसमें ब्रह्माजी का भी लय होता है, वेदान्त श्रवण आदि अभ्यास से अज्ञानरहित वैराग्ययुक्त सन्तोष क्षमा की दृढ़ता से काम क्रोध का त्याग, परिपूर्ण काम होना, अहंकार से रहित होना, निर्भयता और स्थानरहित होना और मन, वाणी, देह को आधीन करना यही पवित्र शुद्ध निर्मल सच्चा मोक्षमार्ग है ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे योगाचारवर्णनोनाम एकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

एकसौ दो का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, इस ब्रह्मपद प्राप्ति के विषय में इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिसमें नारदजी और असित, देवल ऋषि का संवाद है, नारदजी ने बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वृद्ध देवल ऋषि को बैठा हुआ जानकर यह प्रश्न किया कि हे ब्रह्मन् ! यह जड़, चैतन्य, स्थावर, जंगम, जगत् कहां से उत्पन्न हुआ है और प्रलय में कहां समाजाता है, असित ऋषि बोले कि प्राणियों की बुद्धिवासना से चेष्टित परमात्मा उन कर्म फल के उदय होने के समय जिन से कि जीवों को उत्पन्न करता है और तत्त्वज्ञ पुरुष जिनको आकाशादि पञ्चभूत कहते हैं चारों युगों का आत्मा जीवबुद्धि से चेष्टावान् होकर उन्हीं पञ्चभूतों से जीवमात्रों को उत्पन्न करता है जो कोई पुरुष कहै कि इन पञ्चभूतों से पृथक् है वह मिथ्या है अर्थात् बुद्धि आदिरूप से ब्रह्महीं प्रकट होता है और संसार का प्रत्यक्ष होना केवल दर्शनही मात्र है विचार से गुप्त होनेवाला वह ऐसे प्रकट नहीं है जैसे कि रस्सी में सर्प की भ्रान्ति होती है हे नारदजी ! इन पञ्च तत्त्वों को रस्सी में सर्प की भ्रान्ति के समान स्वभाव से आदि अन्त और रूपान्तर रहित मोक्षपर्यन्त नियतरहनेवाला और महत्तत्त्व जो सतोगुण प्रधान, प्रकाशरूप सूक्ष्मबुद्धि है उससे प्रत्यक्षहुआ जानो वही काल जीवात्मा है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पांचतत्त्व हैं महत्तत्त्व भी भूतभाव से इनमेंही गिनाजाता है तो उन तत्त्वों से श्रेष्ठतम नहीं हुआ, जब कि सीपी में

चांदी कल्पना की जाती है ऐसी दशा में उस मिथ्या चांदी से सीपी पृथक् नहीं होती इसीप्रकार सब आत्माही है वास्तव में तत्त्व नहीं हैं, तत्त्वों से श्रेष्ठ न वेद युक्ति से हुआ न लौकिक अनुमानसे है जो कोई कहै कि तत्त्वों से उत्तम है वह अज्ञानता है उसको सब जीवों में निस्सन्देह वर्त्तमान जानो और यह छओं जिसके कार्य्यरूप हैं उसको असित अज्ञान जानो, यह पांचों तत्त्व और चतुर्युगरूप जीव पूर्व संस्कार अज्ञानआदि रहित और मोक्षपर्यन्त सदैव रहने वाले स्थावर जंगमजीवों के उत्पत्ति और लय के स्थान यह आठों हैं इन्हीं से उत्पन्न और इन्हीं में लय होते हैं, यह जीव उन विनाशवान् तत्त्वों को देखकर नाश होता है अर्थात् विज्ञान बन जीव इन तत्त्वों से निकलकर उन तत्त्वों के पीछे नष्ट होता है अर्थात् उपाधि के नाशहोने पर शुद्ध आत्माही शेष रहजाता है उसका शरीर पृथ्वीरूप है श्रोत्र आकाशरूप से नेत्र सूर्य्यरूप से वायु से चेष्टा और जल से रुधिर उत्पन्न होता है आंख, नाक, कान, त्वचा, जिह्वा यह पांचों इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान पैदाकरनेवाले हैं इसको सूक्ष्मदर्शी सर्वज्ञ पण्डितों ने जाना है पञ्चेन्द्रिय पञ्च विषय और रूपादि विषय में पांच प्रकार से वर्त्तमान इन्द्रियों को देखना, सुनना, सूंघना, स्पर्शकरना, स्वादलेना इत्यादि कर्म्मरूपों को पञ्चतत्त्वही जानों और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द यह उसी विज्ञान आत्मा के गुण हैं वह पांचों इन्द्रियों के द्वारा पांचप्रकार से सिद्ध किये जाते हैं, फिर उस विज्ञान आत्मा के गुण, रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श को इन्द्रियां नहीं जानती हैं उनको क्षेत्रज्ञ जानता है, अब क्षेत्र से क्षेत्रज्ञ के विभाग को कहते हैं मन इन्द्रियसमूह से श्रेष्ठ है उससे श्रेष्ठ चित्त है चित्त से श्रेष्ठ बुद्धि और बुद्धि से भी अधिकतर क्षेत्रज्ञ है जीव प्रथम इन्द्रियों के द्वारा अर्थों को जुदा२ जानता है फिर चित्त से विचारकर बुद्धि से निश्चय करता है बुद्धिमान् पुरुष इन्द्रियों से प्राप्त होनेवाले विषयों को निश्चय करता है मन, इन्द्रिय समूह, चित्त, आठवीं बुद्धि इन आठों को आत्मविद्या के विचारनेवाले पुरुष ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं आशय यह है कि बुद्धि को इन्द्रियों में गिनने से क्षेत्रज्ञ को उपाधि रहित चिन्मात्रस्वरूप दिखाया है और हाथ, पैर, गुदा, लिंग और मुख यह पांचों कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं इनके काम सबको प्रसिद्ध हैं और छठवां पञ्च प्राण और बल है यह सब छः हुए मैंने ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय और उनके विषय शास्त्र की रीति से अच्छे प्रकार से वर्णन किये, जब परिश्रम से थककर इन्द्रियों को

कर्म्मों से वैराग्य होता है तब मनुष्य इन्द्रियों के त्याग से सोजाता है, जो इन्द्रियों के वैराग्य होनेपर चित्त को वैराग्य न हुआ तब उस दशा में विषयों को सेवन करता है उसको स्वप्नदर्शन समझे, जो सात्त्विकी, राजसी, तामसी, वासना रूप विषय जाग्रत् अवस्था में हैं उन भोगदेनेवाले कर्मों से संयुक्त सात्त्विक आदि वासनारूप विषयों को स्वप्नदशा में भी कहते हैं अर्थात् जाग्रत वासना ही उनकर्म्मों से उत्पन्न होनेवाली स्वप्नावस्था में दृष्टआती हैं, सुखकर्म्मों की सिद्धि ज्ञान वैराग्य धर्म्म यह सब सात्त्विक हैं सात्त्विक पुरुष की स्मृति इन असाररूप आनन्द आदि और वासनाओं को स्वप्न में स्मरण करती है, सात्त्विकी, राजसी, तामसी पुरुषों की जो कोई वासना कर्म्मगति में नियत हैं उनको स्मरणशक्ति स्वप्न में याद करती है, अर्थात् वह स्मृतिरूप ज्ञान भी भोग देनेवाले कर्म्मों के कारण प्रत्यक्ष के समान दृष्ट आता है उन दोनों वासनाओं का सुषुप्तिअवस्था में लयहोना प्रत्यक्ष है वह सदैव रहनेवाली अभीष्ट है आशय यह है कि सुषुप्ति अवस्था का सदैव रहना ही मुक्ति है, पूर्वोक्त चौदह इन्द्रिय सात्त्विक, राजस, तामस तीनों भाव यह सब सत्रहगुण हैं उनका अठारहवां देहाभिमानी आत्मा जो देह में है वह सनातन भोक्ता है, क्योंकि जीवों के देहसमेत उक्त सब गुण जिस भोक्ता में रक्षित हैं उसकी पृथक्ता में वह शरीर समेत नहीं हैं किन्तु पञ्चभूत सम्बन्धी एक समूह है अर्थात् बुद्धिवृत्ति रूप भोक्ता के साथ गुण और शरीर समेत पाञ्चभौतिक बीस गुण हैं आशय यह है कि जो इनका प्रकाशक अखण्ड ज्ञानस्वरूप है वह अनुभव क्षेत्रज्ञ समझो और इक्कीसवां प्राण इन सब समेत देह को धारण करता है वह प्राण देह के नाश में अपने प्रभाव से युक्त उस महान्‌काल का निवासस्थान है, जैसे कि कच्चाघट आदि बनता है और नाश होता है इसीप्रकार यह अनुभव प्रारब्ध पुण्यपाप के नष्ट होने पर संचित पाप पुण्य से चेष्टावान् होकर समयपर अपने कर्म्मसंयुक्त देह में प्रवेश करता है, यह काल से प्रेरित क्षेत्रज्ञ जिसका दूसरा देह अविद्या कर्म्म काम से उत्पन्न है वह अपने पूर्व २ देहों को छोड़कर एकशरीर से दूसरे शरीर में ऐसे जाता है जैसे कि पुराने स्थान को छोड़कर नवीन स्थान में मनुष्य जाते हैं, सिद्धान्त को निश्चय करनेवाले ज्ञानी पुरुष शरीर सम्बन्ध से ज्ञात होनेवाली मृत्यु आदि में दुःखी नहीं होते हैं वास्तव में देह और पुत्रादि के साथ सम्बन्ध न होनेपर भी भ्रान्ति से सम्बन्धदर्शी संसार को इच्छा करने-

वाले मनुष्य दुःखी होते हैं—पुत्रादि से असम्बन्धता वर्णन करते हैं—अर्थात् यह न तो किसी का है न इसका कोई वर्त्तमान है देह में दुःख सुख पैदा करनेवाला यह शरीरी सदैव अकेला रहता है—यह जीवात्मा उत्पन्न नहीं होता है न कभी नाश होता है यह कभी विद्या से कर्म के भस्म होनेपर देहको त्यागके मोक्षको भी पाता है तो भी प्रारब्धकर्म अवश्य भोगने पड़ते हैं इसको कहते हैं प्रारब्ध कर्म के नाश होनेपर पाप पुण्य रूप देह को त्यागकर वह जीवात्मा जिसके तीनों देह नाशहुए वह ब्रह्मभाव को पाता है ज्ञान से संचितकर्म्म नाश होते हैं पाप पुण्य के नाश के लिये सांख्यशास्त्र का ज्ञान उपदेश कियाजाता है उस पुण्य पाप के नाशहोने और उसके ब्रह्मरूप होनेपर पण्डितलोग शास्त्रदृष्टि से उस जीवात्मा की परम गति को देखते हैं क्योंकि एककी कैवल्यमोक्ष दूसरेको दृष्ट आना असम्भव है ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे नारदासितसंवादे द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

एकसौतीन का अध्याय ॥

सब अनर्थों का हेतु ज्ञान का नाशकरनेवाली तृष्णा और त्याग के द्वारा
ममता के त्याग और नाश के विषय में ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! राजलक्ष्मी के निमित्त पापकर्मी निर्दयी हम लोगों के हाथ से भाई, चाचा, ताऊ, पुत्र, पौत्र, ज्ञाति, सुहृद् इत्यादि सब मारे गये जो यह तृष्णा अर्थ से उत्पन्न होनेवाली है उसको कैसे दूर करूं हम सब लोग लोभ से पापकर्म्मी हुए, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसको राजा विदेह ने प्रश्न करनेवाले माण्डव्यऋषि से कहा है, कि बड़े आनन्द का स्थान है कि मैं अच्छे प्रकार से प्रसन्न हूं किसीका कुछ नहीं है इसी हेतु से मिथिलापुरी के अग्नि से भस्म होने पर मेरा कुछ भी नहीं भस्म होता है निश्चय करके ब्रह्मलोक के अन्ततक प्राप्त होनेंवाले विषय विवेकी पुरुषों की दृष्टि से महादुःखदायी हैं वह अप्राप्त होने पर भी अज्ञानी लोगोंको सदैव मोहित करते हैं लोक में जो स्त्री आदि का काम सुखहै और स्वर्ग सम्बन्धी महासुख है वह सब मिलकर उस सुख की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है जो कि ईर्षा के दूरहोने से प्राप्त होता है, जिसप्रकार बड़े होनेवाले बछड़े का सींग बड़ा होता है उसीप्रकार वृद्धि पानेवाले धन से ईर्षा भी बढ़ती है, जब कुछ वस्तु मेरी है इसप्रकार कल्पित होती है फिर वही वस्तु नाश होने पर दुःख का मूल होती है, इच्छाओं के अनुसार कर्म्मकर्त्ता न होना चाहिये

क्योंकि इच्छाओं में प्रवृत्त होना निश्चय करके दुःखदायी है धन को पाकर दूसरों का उपकार करना योग्य है परन्तु देहसम्बन्धी इच्छा और धर्म्मों को त्याग करे ऐसा ज्ञानीपुरुष सबजीवों में आत्मा के समान होता है अर्थात् सबका सुख चाहे किसी का दुःख न देखे वह निवृत्त धर्म्मी, शुद्ध अन्तःकरणी, ज्ञानी, पुण्य पापों के समूह को त्याग करता है, सत्य, मिथ्या, हर्ष, शोक, प्रिय, अप्रिय, भय, निर्भयता आदि को अच्छेप्रकार से त्यागकर सुख दुःख आदिसे रहित निर्विकल्प समाधि में नियतहोय, जो निर्बुद्धियों से त्यागना कठिनहै वह जरारहित प्राणों के सन्मुख रहनेवाला महारोग ईर्षारूप है उसके त्यागनेवाले पुरुष को आनन्द होता है, धर्म्मात्मा पुरुष अपने सदाचार को चन्द्रमा के समान उज्ज्वल नीरोग देखता सुखपूर्वक इसलोक और परलोक में कीर्त्ति को पाता है, माण्डव्यऋषि राजा के इन वचनों को सुनकर प्रसन्न हुए और उसके वचनों की प्रशंसा करके मोक्षमार्ग में प्रवृत्त हुए युधिष्ठिर बोले कि, सबजीवों के भयदेनेवाले इसकाल के भ्रमण होनेपर किस कल्याण को प्राप्त करे, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिसमें कि पुत्र के साथ पिता का प्रश्नोत्तर है हे कुन्तीनन्दन! वेदपाठ या जप में प्रवृत्त किसी ब्राह्मण का पुत्र था वह शास्त्र स्मरण रखनेवाली धारणा बुद्धि का स्वामी मेधावी नाम था मोक्षधर्म्म में पण्डित उस पुत्र ने वेदपाठ और जप करनेवाले मोक्षधर्म्म रहित अपने पिता से प्रश्न किया कि हे तात! धैर्य्यवान् पण्डित मनुष्य बहुत विषयों को जानकर क्या करे क्योंकि मनुष्यों की आयु बहुतशीघ्र नष्ट होजाती है और योग को भी यथार्थ ऐसे कहो जैसे कि मैं क्रमपूर्वक करसकूं पिताने कहा कि, हे पुत्र! ब्रह्मचर्य से वेदों को पढ़कर पितरों की पवित्रता के लिये पुत्रों को उत्पन्न करो अग्नियों को स्थापन करके बुद्धि के अनुसार यज्ञों का करनेवाला वन में जाकर मुनिवृत्ति होवे फिर ऐश्वर्यवान् होकर गृहस्थाश्रम में प्रवृत्त होवे पुत्र ने कहा कि चारों ओर से इसप्रकार लोक के घिरजाने और घायल होने और सफल वस्तुओं के गिरने पर आप कैसे घोर वचन कहते हो, पिताने कहा कि, लोक कैसे घायल या मृतकहै किससे घिराहै और कौन सफल होकर गिरते हैं हे पुत्र! मुझको क्यों डराते हो, पुत्र बोला कि, यह जगत् मृत्यु से घायल या मृतक है औ वृद्धावस्था से घिरा है और यह दिनरात गिरते हैं इन सबको तुम कैसे नहीं जानते हो, जब मैं भी जानताहूं कि मृत्यु नियत नहीं होती है तब ज्ञान से अपने

हित को करता हुआ किसप्रकार से मैं बाट देखूंगा, जब कि प्रत्येक रात्रि के व्यतीत होनेपर आयुर्दा न्यून होती जाती है तब थोड़े जल में व्याकुल मछली के समान कौन सुख को पावेगा, वह मृत्यु फूलों के समान विषयों को प्राप्तकरनेवाली और अन्य विषयों में प्रवृत्तचित्त मनुष्य को प्राप्त होती है चाहे किसी ने मनोरथों को सिद्ध नहीं भी किया हो परन्तु घड़ीभर का भी अवकाश न देगी इससे उचित है कि, जो काम कलहका है वह उसीक्षण करे अर्थात् विलम्ब कभी न करे जो कल्याण की बात हो उसको अभी करडालो बड़ासमय तुमको उल्लंघन न करजाय कौन जानता है कि अब किसकी मृत्यु का समय है मृत्यु कामपूरे न करनेपरही आकर्षण करलेती है मृत्यु का कोई ऐसा कारण नहीं विदित होता जिससे कि जीवन का समय विदित हो इससे धर्म्म करना ही ठीक है धन, पुत्र, स्त्री आदि में ही प्रवृत्त न रहे धर्म्म के समय धर्म्म ही निश्चय करे जिससे कि इसलोक परलोक दोनों में आनन्द पावे जब मृत्यु लेजाती है तब इसके योग्य अयोग्य चित्त के मनोरथ रहजाते हैं विषयों में लगे और मनोरथों के पूर्ण न करनेवाले मनुष्यों को मृत्यु ऐसे निर्मूल करती है जैसे कि जल का वेग वनस्पति और कच्चे स्थानों का विध्वंस करता है अथवा जैसे भेड़िनी भेड़ को उठालेजाती है वैसेही मृत्यु सबके बीच में से जीवों को उड़ालेजाती है यह किया यह नहीं किया यह काम करना है ऐसे विचारवाले लोगों को और जिसने अपने कर्म्मों का फल नहीं पाया उन खेत, दूकान, घर में आसक्त पुरुषों को और सबल, निर्बल, ज्ञानी, अज्ञानी, पण्डित, मूर्ख, इच्छा करनेवाले पुरुषों को और जरा व्याधि से ग्रसित महापीड़ित को भी मृत्यु ग्रासकरजाती है सिवाय सत्यब्रह्म के सब स्थावर, जंगम, जड़, चैतन्य मृत्यु के ही ग्रास हैं, जो वन है वही देवताओं का निवासस्थान है यह श्रुति है और ग्रामादिक में निवास करके पुत्र, स्त्री, धनआदि में प्रीति है वही इस पुरुष के बन्धन की रस्सी है श्रेष्ठलोग इस रस्सी को तोड़कर जाते हैं और निकृष्टकर्म्म करनेवाले इसको नहीं तोड़ते, जब पुरुष मन, वचन, कर्म्म के द्वारा अपने धन जीवनके नाश होनेपर भी किसी जीव मात्र को नहीं मारता है वह कभी अन्य जीवों के हाथसे नहीं माराजाता है इस कारण सच्चेव्रत और आचार का रखनेवाला सत्यवक्ता जितेन्द्रिय समदर्शी पुरुष सत्यब्रह्म केही द्वारा मृत्युका जीतनेवाला होता है अमृतता और मृतता दोनों शरीर ही में नियत हैं अज्ञान से मृतता अर्थात् मृत्यु और ज्ञान से अमृतता अर्थात्

अविनाशता को प्राप्त होता है सो अहिंसायुक्त कामक्रोध रहित सत्य में आश्रित अविनाशी के समान मैं सुख से मृत्यु को त्यागूंगा, क्योंकि शान्तियज्ञ में प्रीतियुक्त जितेन्द्रिय ब्रह्मयज्ञ में नियत मन, कर्म्म, वाणी का यज्ञ करनेवाला मुनि होकर उत्तरायण समय में ऐश्वर्य्यवान् होऊंगा मुझ सरीका समझा हुआ मनुष्य हिंसात्मक पशुयज्ञों को कैसे करेगा, आत्मा में आत्मा ही से उत्पन्न आत्मा ही में निष्ठा रखनेवाला सन्तानरहित मैं आत्मयज्ञकर्त्ता होऊंगा हे पितः! सन्तान मुझको पार नहीं लगावेगी जिसके मन वाणी सदैव सावधान हैं और तप, त्याग और योग भी होवे वह उनके द्वारा सब पाता है विद्या के समान नेत्र और फल नहीं है संसार की प्रीति के समान दुःख नहीं और त्याग के समान सुख नहीं है ब्रह्म की एकता और अविनाशी होना इसके विशेष ब्राह्मण का दूसरा धर्म्म नहीं है हे पितः! सदाचार में प्रवृत्त, दण्ड-विधान, साधुता और सफल कर्म्मों से वैराग्यवान् होकर जब तुम मरोगे तब तुमको धन, बान्धव, स्त्रियों से क्या प्रयोजन है इससे तुम हृदयस्थान में विराजमान आत्मा की इच्छा करो भीष्मजी बोले कि, हे राजन्, युधिष्ठिर! पिता ने पुत्र के ऐसे वचनों को सुनकर वैसाही किया तुम भी इसीप्रकार सच्चेधर्म में प्रवृत्त होकर इसी कर्म को करो ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पूर्वार्द्धे पितापुत्रसंवादे त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

इति पूर्वार्धं समाप्तम् ॥

श्री मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग विद्यालयीय पुस्तकालय
क्र० सं०..........
दि० सं०..........
अस्सी, वाराणसी।

अथ महाभारत भाषा
शान्तिपर्व।

मोक्षधर्म।

उत्तरार्धमारम्भः॥

एकसौ चार का अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि, ज्ञानीपुरुष कौन से आचारज्ञान से भरे स्वभाव और उन्नत स्थान का ज्ञाता होकर ब्रह्मरूप स्थान को पाता है क्योंकि पराप्रकृति रूपान्तरदशा से रहित है, भीष्मजी बोले कि मोक्षधर्म्म अर्थात् अध्यात्मविद्या में प्रीतिमान् वह हितकारी जितेन्द्रिय पुरुष उस प्रकृति से भी ऊंचे राग द्वेष रहित रूपान्तर अवस्था से पृथक् एकरसवाले स्थान को पाता है जोकि कामरहित घर से बाहर मोक्ष आश्रम में वर्त्तमान होवे और निष्पाप संन्यासी मन, वाणी से भी दूसरे को दोषी न करे आगे पीछे कभी किसी स्थानपर किसी के अवगुण को न कहै हिंसारहित सूर्य्य के समान एकत्र स्थिर निवास न करे ईर्षा द्वेष से पृथक् सबकी कठोर और असह्य बातों को सहे कभी अहंकार न करे क्रोध उत्पन्न करानेवाले से भी प्यारे ही वचन बोले कोई गाली भी दे तब भी उसकी भलाई करे जन समूहों में उनकी इच्छानुसार बर्त्ताव करे उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करे भिक्षा के निमित्त बहुत घरो में न घूमे प्रथम निमन्त्रित होकर किसी के यहां भोजन के लिये संन्यासी को जाना अयोग्य है किसी दशा में भी अपने मुख से कठोर वचन न कहे ऐसा दयालु हो कि अपने मारनेवाले पर भी प्रहार न करे निर्भय रहे और अपनी बड़ाई न करे जब घर में धुआं न होता हो अग्नि न जलती हो मनुष्यों ने भोजन न करलिया हो और लोगों का आना जाना

बन्द होगया हो और भोजनपात्र हाथ में हो तब मुनि भिक्षा को चाहे केवल प्राणयात्रा के ही योग्य भोजन करे भोजन के पूरे न होने में हठ न करे न प्राप्त होने में अपनी हानि न समझे न लाभ होने में प्रसन्न हो सबके समान माला चन्दन आदि को भी न चाहे प्रतिष्ठित होकर भोजन न करे इस प्रकार का संन्यासी आदर के लाभ की प्रशंसा न करे अर्थात् निन्दा करे परन्तु अन्य के दोषों की निन्दा न करे न किसी गुण की प्रशंसा करे सदैव सबसे पृथक् आसन बिछावे निर्जनस्थान पेड़ की खोह वन गुफा और दूसरे से अज्ञात अथवा श्मशान भूमि को पाकर फिर दूसरे किसी स्थान में प्रवेश न करे योग के अनुकूल संग से ब्रह्मरूप होजाय और देवयान पितृयान गति से रहित रूपान्तर अवस्था विना अच्छे बुरे कर्म्मोंको न चाहनेवाला जापक, शान्त, सन्तोष, इन्द्रियनिग्रह, निर्भयता, मौनता, वैराग्य, सबको आत्मारूप जानना कच्चे अन्न फलादि से निर्वाह करना चित्तबुद्धि से शुद्ध और अल्पाहारी, मन वचन क्रोध के वेग का सहना कामादि का रोकना राग द्वेष और निन्दास्तुति में समानबुद्धि इत्यादि गुणयुक्त, उदासीन, अशंक, गृहस्थ, वानप्रस्थके समीप न ठहरनेवाला, स्त्री से अशक्त, स्थानरहित, समाधि में नियत होवे किसी समयपर भी गृहस्थ और वानप्रस्थ के घर में न ठहरे अनिच्छा लाभ में संतोष यह विज्ञानी संन्यासी सिद्धलोगों का मोक्षसाधन है इस साधन में अज्ञानीलोग दुःख पाते हैं ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

एकसौ पांच का अध्याय ॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह ! सब मनुष्य हमको धन्य २ कहते हैं परन्तु हमारी समान संसार में कोई भी दुःखी नहीं है क्योंकि मनुष्यों में जन्म पाकर लोकों के उत्पन्न करनेवाले देवताओं में दुःख देखा गया है तो हम क्यों उस दुःखदायी संन्यस को करें इसकारण इन देहों का पानाही आपत्ति का मूल है और पञ्चप्राण, बुद्धि, मन और दशों इन्द्रियां यही सत्रह संसार के बन्धन हैं और काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न यह पांच योग दोष हैं और शब्दादि विषय और सत्त्वादि तीनोंगुण और पञ्चसूक्ष्मतत्त्व, अविद्या, अहंकार और कर्म्म यह आठकर्म्म हैं इन सबसे पृथक् व्रत परायण मुनिलोग फिर जन्म को नहीं पाते हैं तो हमलोग कैसे राज्य को त्यागकर जायँगे अर्थात् संन्यास आश्रम को कैसे करसकते हैं, भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! दुःख का अन्त है अर्थात् दुःख के

नाश को ही मोक्ष कहते हैं क्योंकि सब दृश्यपदार्थ और पुनर्ज्जन्मादि नाशवान् हैं और सब ऐश्वर्य्य भी चित्त के लगाने से मोक्ष के हानिकारक दोष हैं सो हे धर्मज्ञ ! तुम इन सबके विशेष अपने शमदमादि के अभ्यासरूप उद्योग ही से समय पर मोक्ष को पाओगे, हे राजन् ! यह जीवात्मा सदैव के पाप पुण्य और सुख का स्वामी नहीं है और उस हर्ष शोकजन्य राग द्वेषरूप अज्ञान से भी रुका हुआ है इसकारण दैव से उत्पन्न सुख दुःखादि से व्याकुल न होनेवाला पुरुष मोक्ष के निमित्त उपाय करे, जैसे कि रूपरहित वायु कृष्ण रक्तादि धूलों से मिलकर उसीरंग से आकाश को रंगीन करता दृष्टि पड़ता है उसीप्रकार अविद्यारूप उपाधि से संयुक्त समस्तजीव अपने २ कर्म्मों से रंगीन होकर त्रिगुणातीत अपने मुख्य अन्तर्य्यामी को भी व्याप्त करके देहों में घूमते हैं, जब जीवात्मा ज्ञान अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को दूर करता है तब सनातन ब्रह्म का प्रकाश होता है उस सनातन ब्रह्म को मुनिलोग कर्म्म उपासनादि उद्योग के विना ही सिद्ध होना कहते हैं अर्थात् जैसे कि कोई पुरुष अपने कण्ठ में पड़ी हुई मणि को भूलजाता है और फिर विचार से उसको पाता है उसीप्रकार का यह ब्रह्म भी है इसीहेतु से जो पुरुष जीवन्मुक्त हैं उनका सेवन तुमको और सब संसार को करना योग्य है अर्थात् उनकी उपासना से ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है इसी निमित्त सब ब्रह्मर्षि लोग ब्रह्म की उपासना करते हैं, हे भरतवंशिन् ! जिसप्रकार पूर्व्व समय में ऐश्वर्य्य के नाश होने पर वृत्रासुर ने इसी विषय में अपने चरित्रों को वर्णन किया उसको तुम चित्त से सुनो कि उस पराजित असहाय राज्यहीन बुद्धि में सावधान शत्रुओं में शोचरहित वृत्रासुर से शुक्रजी ने कहा कि हे दैत्य ! तुझ पराजित की कोई भी वस्तु नहीं है तब वृत्रासुर ने कहा कि मैं सत्य और तप के बल से जीवों के जन्म मोक्ष को निस्सन्देह जानकर न हर्ष करता हूं न शोक करता हूं, चारों युगसम्बन्धी जो पुण्य पाप नाम धर्म्म अधर्म्म हैं उनसे चेष्टावान् और विवश जीव नरक में पड़ते हैं और सन्तोष गुणसंयुक्त जीवों को ज्ञानियों ने स्वर्ग के योग्य कहा वह उस पापपुण्य की संख्या रखनेवाले काल को व्यतीत करके कुछ शेष बचे हुए पाप पुण्यरूपी काल से वारंवार जन्म को लेते हैं और इच्छारूपी बन्धन में बँधे विवशजीव हज़ारों पशुपक्षियों के जन्मों को पाते हैं इसीप्रकार सब जीवमात्र चक्र में फिरते हैं और मैं इच्छा से रहित असुरारि ईश्वर का जाननेवाला हूं जैसा जिसका कर्म्म है उसीप्रकार का उसका देह वा

ज्ञान होता है यह शास्त्र से निश्चय है कि पूर्व के ही कर्म्मों से देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जन्म को और स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख आदि प्रिय अप्रिय को प्राप्त करते हैं सबलोकों के जीव यमराज से ही दण्ड पाकर जन्म को पाते हैं सबलोग पूर्व्व में प्राप्त होनेवाले मार्ग्ग को सदैव प्राप्त करते हैं अर्थात् स्वर्ग नरक में अपने कर्म्मों के फल सुख दुःख को पाकर फिर जन्म लेते हैं, वह समय चारों युग में उत्पन्न होनेवाले पाप पुण्य की संख्या से अंकित है और उत्पत्ति स्थिति का मुख्य स्थान है तात्पर्य्य यह है कि जो पुरुष निष्काम कर्म्म करता है वह इस मार्ग्ग में कभी नहीं आता है यह बातें सुनकर भगवान् शुक्रजी ने उस असुर के ज्ञानसे आश्चर्यित होकर उसकी परीक्षा के निमित्त उसको उत्तर दिया कि हे बुद्धिमन्, वृत्रासुर! तुम किस कारण से असुरभाव की निन्दा करनेवाले वचनों को कहते हो वृत्रासुर ने कहा कि यह बात आपके और अन्य ऋषियों के प्रत्यक्ष है जैसे कि मुझ विजय के लोभी ने पूर्व्वकाल में बड़ी तपस्या की थी, मैंने अनेक ऋषि गन्धर्व्वों को विवशकर अपने तेज से तीनों लोकों को व्याप्त करके नष्ट किया और सब निर्भय जल, थल, आकाशचारी जीवों को वश में किया और तप के बल से बड़े २ ऐश्वर्य्यों को पाया हे भगवन्! वह सामान, ऐश्वर्य्य, तेज, बल अपने कर्म्मों से नाशवान् हुआ इसीहेतु से धैर्य्य में नियत होकर शोच नहीं करता हूं फिर मैंने उस षडैश्वर्य्यवान् पापों के दूर करनेवाले युद्ध के इच्छावान् महात्मा ईश्वर को इन्द्र के साथ में देखा वही सबकी उत्पत्ति लय का आश्रय और सबका अन्तर्य्यामी है आदि अन्त रहित सर्व्वव्यापी है हे ईश्वर! निश्चय वह मेरे उस कर्म्म के शेष फल का उदय था जिसके विषय में कि आपसे पूछना चाहता हूं कि बड़ा ऐश्वर्य्य किस ब्राह्मणादि धर्म्मों में नियत है और उत्तम ब्राह्मय ऐश्वर्य्य फिर कैसे सदैव वर्त्तमान रहता है अथवा दूर होता है, जीव किससे जीवते हैं जिसमें कि फिर बुद्धि के अनुसार चेष्टा करते हैं अर्थात् कौन अन्तर्य्यामी है और जीव किस उत्तम फल को पाकर अर्थात् ज्ञान को पाकर ब्रह्मरूप होजाता है, अथवा किस यज्ञादिकर्म्म या ज्ञान उपासना से उस फल का पाना सम्भव है हे देव! यह सब आप मुझे समझा के कहिये हे राजन्, युधिष्ठिर! उसके उत्तर में जो शुक्रजी ने वर्णन किया है उसको तुम चित्त लगाकर मुझसे सुनो ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

एकसौ छः का अध्याय ॥

शुक्रजी बोले कि, उस षडैश्वर्य्यवान् ज्योतिरूप अनेक भावभेद से प्रकट होनेवाले परमेश्वर को नमस्कार है जिसकी भुजाओं में आकाश समेत पृथ्वीतल वर्त्तमान है और जिसका मस्तक अनन्त मोक्ष का स्थान है उस उत्तम सर्वव्यापी विष्णुभगवान् का माहात्म्य मैं तुमसे कहता हूं, यह दोनों इसप्रकार कहते ही थे कि इतने में धर्मात्मा सनत्कुमारजी भी संदेह के दूर करने के लिये वहां आ पहुंचे और वृत्रासुर और शुक्रजी से अभ्युत्थानपूर्वक पूजित होकर वह महात्मा सनत्कुमार बड़ों के योग्य उत्तमोन्नत आसनपर विराजमान हुए और शुक्रजी ने उनसे यह वचन कहा कि हे महाज्ञानिन्! आप इस दानवेन्द्र को विष्णु भगवान् का उत्तम माहात्म्य सुनाइये इतनीबात के सुनते ही उन्हों ने विष्णु के माहात्म्य युक्त अर्थवान् वचन उस बुद्धिमान् असुरेन्द्र से वर्णन किये कि हे परंतप, दैत्य ! जिस सर्वव्यापी विष्णु में सब संसार नियत है उसके माहात्म्य को सुनो कि वही सब स्थावर जंगम जीवों को उत्पन्नकर समय आनेपर अपने में ही लय करता है फिर समयपर प्रकट करता है यह तो निमित्त का वर्णन है और इसीमें लय होना और प्रकट होना यही उपादान है इत्यादि गुणयुक्त विष्णु को जानना कठिन है इसकी प्राप्ति ज्ञानी के तप और यज्ञादि से असम्भव है यह केवल इन्द्रियों के संयम अर्थात् योग से ही प्राप्त होसक्ता है जो पुरुषोत्तम बाह्याभ्यन्तर कर्म्मों में अर्थात् यज्ञादि शम दमादि में चित्त से नियत है और बुद्धि से उन यज्ञादि को निर्मल करता है अर्थात् यज्ञादि से अपनी चित्तशुद्धि को करता है वह देह के अभिमान को त्याग आत्मलोक में प्राप्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है जैसे कि सुनार चांदी को अग्नि से शुद्ध करता है उसीप्रकार जीवात्मा अपने किये हुए बहुतसे यज्ञ और शमदमादि से सैकड़ोंवर्ष में अपने दोषों से निवृत्त होकर पवित्र होता है और एकही जन्म में बड़े २ उपायों से सिद्धि को पाता है जैसे अपने देह के मैल को थोड़े जल से धोता है उसीप्रकार बहुत से उपायों से दोष निवृत्त होते हैं जैसे कि थोड़ेपुष्पों के समीप वर्त्तमान सरसों अपनी गन्ध को नहीं त्यागती उसीप्रकार निर्मल सूक्ष्मब्रह्म का दर्शन है और बहुत पुष्पों के समीपवाली सरसों जैसे अपनी स्वाभाविक गन्ध को त्यागती है उसीप्रकार सैकड़ों त्रिगुणात्मक दोष प्रसंगी पुरुषों के बुद्धि और अभ्यास से उत्पन्न हुए उपायों से दूर होते हैं हे दानव ! जैसे उत्पन्न होनेवाले जीव कर्म्म से प्रीतियुक्त वैराग्य-

वान् भी कर्म्म के रागादि विषयों को प्राप्त करते हैं उसको सुनो, कि जो आदि, अन्तरहित पापों का नाशक सबका आश्रय परमात्मा नारायण है वही सब स्थावर, जंगम का उत्पन्न करनेवाला है उसकी सर्वात्मता कहने को नौप्रकार के गुणों की उत्पत्ति को कहते हैं वही सब देहधारियों में पञ्चतत्त्वात्मक होने से क्षर और जीवात्मारूप से अक्षर कहलाता है और मनसहित दशों इन्द्रियां इन ग्यारह रूपों से जगत् की रचना करके अपने में ही लय करलेता है एकता सिद्ध करने के लिये सब सृष्टि को नारायण का ही अंग कहते हैं अर्थात् उसके चरण पृथ्वी, मस्तक स्वर्ग, दिशा भुजा, आकाश कान, सूर्य नेत्र, चित्त चन्द्रमा, ज्ञान में उसकी बुद्धि को जानो रस जल में और सब ग्रह उसकी भृकुटी के समीप हैं और नेत्रों के प्रकाश में नक्षत्रचक्र है दोनों चरणों में पृथ्वी है और रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण नारायण के रूप हैं और यही जगदात्मा नारायण आश्रमों को जप आदि कर्म्म का और संन्यासधर्म्म का स्वरूप फल है अर्थात् उसका मिलनाही मोक्ष है वेदोंके मन्त्रआदि उसके शरीरीरोम हैं और प्रणवरूप सरस्वती है और बहुत से वर्णाश्रमों में नियत बहुत प्रकार का धर्म आत्मदर्शनरूप हृदय में वर्त्तमान है यही ब्रह्मधर्म्म सबसे श्रेष्ठ है वही तप, वही कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत है वही सत्य असत्य जगत् को पैदा करता है वही सब वेदशास्त्र और ग्रहादि से संयुक्त सोलह ऋत्विज्वाला यज्ञ है वही ब्रह्मा, वही विष्णु, वही महादेव, वही अश्विनीकुमार, वही इन्द्र, वरुण, कुबेर भी है यह सब उसी एक के अंगी हैं वह सबको विज्ञानवृत्ति से देखता है वही अद्वैत सबमें प्रकाश कर रहा है इस ब्रह्म की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है इसको सुनो जितने काल में सृष्टि की उत्पत्ति और लय होती है उसको कल्प कहते हैं और बहुत से जीव हजारों कल्पतक जड़रूप होते हैं और बहुत से आनन्द से चररूप विचरते हैं हे दैत्य! यह असंख्य बावड़ी इस संसार की उत्पत्ति लय को प्रकट करती हैं यह प्रत्येक बावड़ी पांच सौ योजन लम्बी एक कोस औंड़ी चार कोस चौड़ी अगम्य वृद्धियुक्त हो ऐसी बावड़ी के जल को बाल की नोक से प्रतिदिन एकबार जल की बूंद निकालीजाय और उस बूंद के निकलने से जितने काल में उनका जल निबटे उतनेकाल में प्रलय होना समझो इसप्रकार से भी संसार में एकही जीव का लय होता है अर्थात् एकजीव के मुक्त होनेपर अथवा नाश होने में असंख्य जीव होते हैं इस वर्णन से किसी दशा में भी संसार का नाश नहीं है, जीवात्मा के क

वरण परम प्रमाणरूप हैं पहिला कृष्णवर्ण तमोगुण की विशेषता और बाकी के दो गुण की परस्पर में प्रकट होनेवाली कमी और बराबरी यह तो जड़जीव वृक्षादि हैं, दूसरा धूम्रवर्ण और बाकी के दोनों गुणों की न्यूनाधिकता यही पशु पक्षी हैं, तीसरा रजोगुण की अधिकता नीलवर्ण और शेष दोनों गुणों की कमी बराबरी यही मनुष्यादि हैं, मध्यम वर्ण पूर्व के प्रत्येक दो २ गुण की न्यूनाधिकता से प्रकट होनेवाले शम दम आदि गुण रक्तवर्ण हैं, वह प्रवृत्ति मार्गवालों के निमित्त सुखरूप हैं, बड़े साहसी ज्ञानियों के सतोगुण की आधिक्यता और शेष दोनों गुणों की परस्पर की न्यूनाधिकता स्वर्गरूप सुखदायी है, सतोगुण श्वेत, रजोगुण लाल, तमोगुण का कालारंग है इन तीनों की न्यूनाधिकता से अन्य पीत आदि रंग उत्पन्न होते हैं हे दैत्य ! इन सृष्टियों में शुक्ल नाम कौमार स्वर्ग राग द्वेष से पृथक् होने के कारण निर्मल पापरहित शोक से पृथक् मोक्ष को साधन करता है परन्तु वह बहुत ही कठिनता से प्राप्त होता है अर्थात् यह जीव उन योनियों से उत्पन्न हजारों जन्मों को पाकर सिद्धि को पाता है उसका वर्णन करते हैं—इन्द्र देवता ने जिस श्रेष्ठ शास्त्र के द्वारा जिस अनुभव आत्मारूप गति का वर्णन किया वही गतिरूप वर्ण धारण करनेवाले संसार का है इस प्रकार से वह वर्ण उन चारों युगों के रूप जीव से उत्पन्न होता है आशय यह है कि धर्म्म में प्रीतिमान् धर्म ही का आलम्बन करनेवाला अधर्म्मरहित अधर्म्म से ही प्रीतिमान् जीव इन चारों रूप से चारों युग का स्वरूप है और पूर्वसंस्कार के कारण गुणों में प्रवृत्त होता है हे दैत्य ! यहां जीव पञ्चकर्म्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, चार अभ्यन्तरेन्द्रिय इन चौदहों के प्रयोजन से लाखों होजाते हैं और अर्थों के विभाग से भिन्नवृत्ति भी होती है उन सतोगुण प्रधान चौदह इन्द्रियरूप से जीवों का ऊपर नीचे और सब ओर होना अथवा पृथक् होना समझो, और सतोगुण प्रधान न होने से दोनों को कहते हैं—जड़भाव होनेवाले कृष्णवर्ण की अधोगति है वह कृष्णवर्ण जीव नरक देनेवाले कर्म्म में प्रवृत्त होता है इसी हेतु से नरक का भोगनेवाला होता है ऐसे ही उन चौदह इन्द्रियों के कारण कुमार्ग में चलनेवाले का निवास भी नरक में होता है और बहुत कल्पतक रहता है फिर वह जीव एकलाख वर्ष घूमकर धूम्रवर्ण पशुपक्षियों में जन्म को पाता है शीतोष्णता से दुःखी सब ओर को भय और काल को देखनेवाला जीव उस योनि में निवास करता है और पाप के भोग के पूरे होने पर विवेक बुद्धि से जब वह सतो-

गुण से संयुक्त होकर तमोगुण प्रवृत्ति को दूर करता है तब अपनी बुद्धि से कल्याण के निमित्त उपाय करताहै वह लालवर्ण अर्थात् अनुग्रह, स्वर्ग, शम, दमादि गुणों को पाता है और सतोगुण से पृथक् होने में नीलवर्ण मनुष्य के जन्म को पाकर नरलोक में आवागमन करता है, वह जीव वहांपर एक कल्पतक अपने कर्म्म जन्मबन्धन से खेद को पाता है वहां ऊपर चढ़नेवाला वह जीव सौ कल्प के अन्त होनेपर पीतवर्ण देवभाव को पाता है अर्थात् सौ कल्पतक कभी मनुष्य कभी देवता होता है, हे दैत्य! पीत वर्णवाला देवता हज़ारों कल्पों में भ्रमण करता हुआ भी विषयों से बँधाहुआ प्रत्येक कल्प में प्राप्तफलों को वास्तव में नरक नाम स्वर्ग में भोगता गतियों में घूमता नियत होता है वह सब गति संख्या में उन्नीस हज़ार हैं इस निमित्त इस जीव को नरक से अर्थात् भोग देनेवाले कर्म्म से जुदा जानो आशय यह है कि स्वर्ग भी नाशवान् है और दूसरे जन्म में भी यही दशाहै इसीकारण पक्षियों के जन्मके समान देवभाव भी भोगभूमि के होने से त्याग के योग्य है वह जीव लोक में सदैव विहार करता है उससे छूटकर मनुष्य देह को पाता है फिर देवभाव को पाता है पांचों इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त यह आठों अपने अर्थों के प्रत्यक्ष और लय के कारणहैं और अर्थों के विभागसे सैकड़ों होजाते हैं उन प्रत्यक्ष और लयादिको वह पाता है जोकि नरलोकों में नियत है वह इस संकल्प से उत्पन्न प्रत्यक्ष और लय के कारण कलियुग से भ्रष्टता को पाकर पृथ्वीपर सबसे छोटे वृक्षादि के रूप में जन्म लेता है, अब मुक्तिके उपाय को कहते हैं—वह मोक्ष का चाहनेवाला जोकि सातव्यूह रखनेवाले दिव्य सात्त्विक शमदमादि की वृत्तियों के कारण सैकड़ों वृत्ति रखनेवाले हैं उनमें आश्रित होकर प्रथम लालवर्ण अर्थात् शमदम आदि गुणों में अच्छे प्रकार से प्रवृत्त होता है फिर पीतवर्ण देवभाव को पाता है फिर बालक के समान शुक्लवर्ण रागद्वेष से रहित होता है फिर इसी शुक्लमार्ग्ग में दौड़ता है वह आठ पुरियों से उत्तम अर्चितम लोकों को पाता है, आशय यह है कि धूम्रमार्ग्ग से अर्चितर चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है वही अर्चित और उससे भी ऊंचा ब्रह्मलोक अर्चितर कहाता है और उससे श्रेष्ठतर केवल ज्ञान से ही प्राप्त होनेवाला योगफलरूप अर्चितम है, ब्रह्मज्ञानी इन आठों को चित्त से रोकते हैं इनके भी भेद पूर्वोक्त रीति के अनुसार छःहज़ार होजाते हैं अर्थात् वह अज्ञानदृष्टि से पृथक् २ भी ज्ञानियों के केवल चित्तरूप हैं हे महानुभाव! शुक्लवर्ण की जो गति है वह जा

ग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों दशाओं की रोधकरूप है अर्थात् तीनों दशाओं की रोधकता तुर्या नाम अवस्था है क्योंकि उपाधिरहित होने से उसकी प्राप्ति नहीं कहसक्के, इसप्रकार से जीवन्मुक्त पुरुष के भोग प्रारब्ध कर्म्म को जोकि हज़ारों प्रत्यक्ष और लय का रखनेवाला और अनिच्छा से ही इस देह में निवास करता है और योग ऐश्वर्य्य से प्राप्त दिव्यभोगों के त्याग करने में असमर्थ योगी दूसरे चार योगबल से ऐश्वर्य्यवान् और कर्म्म मुक्ति के स्थान महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक में निवास करता है क्योंकि वह उस शुक्लवर्ण रखनेवाले योगी की गति है जिसने उस गति की सिद्धि में भी शुद्ध ब्रह्म के साक्षात्कार से जीवन्मुक्ति को प्राप्त नहीं किया परन्तु उसके रागद्वेष नष्ट होगये तात्पर्य्य यह है कि योगसिद्धि भी जीवब्रह्म की एकता के ज्ञान से कर्म मुक्ति को प्राप्त होता है, योगभ्रष्ट की गति को कहते हैं, जो योगी योग का अनुष्ठान अच्छीरीति से करने को समर्थ नहीं है वह शेष बचे हुए कर्म्म से युक्त सौ कल्प तक इन्द्रिय, मन, बुद्धि में प्रवृत्त होकर निवास करता है फिर वहां से लौटकर नरलोक में ऐसे मनुष्य का जन्म पाता है जो कि अच्छे कुल के व्यवहार और विद्या आदि में अतिकुशल हो फिर उस नरदेह को त्यागकर क्रम से उत्तम योनियों के प्राप्त करने को जाताहै अर्थात् पहिले अभ्यास के द्वारा पिछली२ योगभूमियों पर चढ़ता है इसप्रकार से जानेवाला वह योगी सातबार लोकों में ब्रह्मलोकतक भोगता और घूमताहै वह योगी समाधि और उत्थानसे ऐश्वर्य्य को प्राप्तकरता है, फिर भूलोक आदि की बुद्धि और चित्त से इच्छा को और पांचों ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान से लय करके और सबको दुःखरूप निश्चय करके जीवलोक में नियत होता है, तदनन्तर देह को त्याग रूपान्तर दशा से रहित अनन्त सिद्ध ब्रह्मस्थान को पाता है वह शिवजी महाराज का लोक है ऐसा शैवलोग कहते हैं और वैष्णव उसको विष्णुलोक कहते हैं और हिरण्यगर्भ उपासक उसको ब्रह्मलोक और शेषजी का लोक कहते हैं और सांख्यशास्त्रवाले उसको जीवात्मा का परमपद कहते हैं और उपनिषद् मतवाले उसको प्रकाशमान चिन्मात्र सर्वव्यापी तुरीयरूप परब्रह्म परमात्मा का स्थान कहते हैं अब वादी प्रतिवादी समेत सबकी स्वीकृत वृत्ति को कहते हैं संहारकाल में जिन जीवों के स्थूल सूक्ष्म कारण और चेष्टारूप देवगण और जो ब्रह्मलोक से दूसरे मध्यवर्ती प्रकृति आदि हैं यह सब देहसमेत ज्ञान से जब अत्यन्त भस्म

होते हैं तब मोक्ष होकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, इसप्रकार आत्मज्ञान से उत्पन्न महाप्रलय को कहकर आवान्तर प्रलय का कहते हैं–प्रलयकाल के समीप होनेपर देवभाव को प्राप्त करनेवाले और सम्पूर्ण कर्म्मफलों के न भोगनेवाले जीव पहिले कल्प के प्राप्त हुए अपने स्थानों को दूसरे कल्प में भी पाते हैं क्योंकि वेद वचनों के अनुसार सबकल्प पहिले कल्पों के समान होते हैं और जो देवभाव को प्राप्त करनेवाले जीव कल्प के अन्त में कर्म्मों के फलों को भोगचुके हैं वह सब सृष्टि के संहारकाल में दूसरे मनुष्यों की समान देह को प्राप्त करते हैं–तात्पर्य्य यह है कि विना ब्रह्मज्ञान के सैकड़ों प्रलय में भी किया हुआ कर्म्म नाश नहीं होता है, जो जीव परम्परापूर्वक ब्रह्मलोक से पतन हुए वह क्रम से उन्हीं मनुष्यों की गति को पाते हैं और जो जीव कि उनके बल और रूप में समान हैं वह अपने २ अच्छे बुरे कर्म्मों के फल को विपरीतता के साथ प्राप्त करते हैं, तात्पर्य्य यह है कि एकही कल्प में स्थिति अस्थिति दोनों होती हैं इसीकारण संसार से भयभीत मनुष्य को तत्त्वज्ञान में आश्रय लेना योग्य है, इसप्रकार विवेकयुक्त ब्रह्मविद्या को कहकर संसारी दशा को कहते हैं–वह ब्रह्मज्ञानी जबतक प्रारब्ध कर्म्म को भोगता है तबतक उसके अंगों में उसका ही रूप सब संसार और दोनों शुक्लवर्ण वा दिव्य परा अपरा नाम माया वर्त्तमान रहती है अर्थात् ब्रह्मज्ञानी को शुद्ध कैवल्य मोक्षतक ही सब जगत् है फिर नहीं है क्योंकि योग से शुद्धचित्त होकर और धारण, ध्यान, समाधिरूप संयम का अनुष्ठान करके यह सब दृश्यमान आकाशादि पञ्चइन्द्रिय के समान हैं, सदैव श्रवण, मनन, निदिध्यासन के अभ्यास से शुद्ध होकर निश्चय करता उस अविद्यारहित शुद्धचिन्मात्रभाव परमगति ब्रह्म को पाता है फिर ब्रह्म के साक्षात्कार के पीछे अविनाशी मोक्षस्थान को पाता है–वह ब्रह्म शुद्ध चैतन्यतर है फिर उस आकाश सदृश अरूप की प्राप्ति नहीं कहसक्के इसीसे वह दुष्प्राप्य है, हे बुद्धिमन्, वृत्रासुर! यह मैंने जगदात्मा नारायण का बल पराक्रम तुझसे कहा–वृत्रासुर ने कहा कि मैं इस दशा को अच्छे प्रकार से देखता हूं इसमें मुझको व्याकुलता नहीं है हे बड़े बुद्धिमन्! मैं तेरे इस वचन को सुनकर अविद्या और शोक मोह से रहित हूं हे महर्षे! इस बड़े प्रतापी अनन्त विष्णु का यह अत्यन्त पराक्रमयुक्त चक्र ही सनातन अस्थान है जिसमें सब संसार वर्त्तमान है–भीष्मजी बोले कि हे कुन्तीनन्दन! उस वृत्रासुर ने इस प्रकार वचन कहकर उक्तरीति से आत्मा

को ब्रह्म में लय करके उत्तम स्थान को पाया, युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! पूर्वसमय में जिसको सनत्कुमारजी ने वृत्रासुर से वर्णन किया वह षडैश्वर्यवान् ज्योतिरूप यही श्रीकृष्ण हैं जो राजाओं के समान मूर्त्तिमान् सम्मुख वर्त्तमान हैं यह बात सुनकर ईश्वर में युधिष्ठिर को भ्रम न होने के निमित्त भीष्मजी ने कहा कि मैं मूल अधिष्ठान को कहता हूं जो उसके समान निराकाररूप से नियत हुआ उसको मूलस्थायी कहते हैं वह चैतन्य महान् आत्मा माया से रहित भूमिरूप आधारस्थान है वही प्रथम हुआ फिर चैतन्यमाया शबल नाम षडैश्वर्यवान् कार्यकारण का आत्मा होता है फिर स्थावर, जंगम, जड़, चैतन्य का आत्मा जीवरूप होता है यही दूसरा है वह भी अपने तेज से दृष्ट आनेवाला तेजस नाम कार्य ब्रह्मता को प्राप्त होकर वृक्ष होता है यह तीसरा हुआ उस ब्रह्माण्डरूप कार्य में नियत यह श्रीकृष्णजी बहुत बीजों के गर्भफल के स्थान में चौथे हैं यही श्रीकृष्णजी उस कार्यकारणरूप वृक्ष बीजरूप भाव को उत्पन्न करते हैं इनका चित्त सत्यसंकल्पादि गुणों से भरा हुआ है उस मूलस्थायी चिन्मात्र के आठवें भाग से उत्पन्न इन मूर्तिमान् केशवजी को जानो यह अविनाशी हैं अर्थात् अविद्या के वर्त्तमान रहने तक इनका नाश नहीं है यह बुद्धिमान् चैतन्य के आठवें भाग से तीनों लोकों को उत्पन्न करता है इसका आशय यह है कि मूलस्थायी तो पूर्ण चैतन्य है और माया सबल ब्रह्म माया के भाग की संप्रधानता से चैतन्य का आधा है और अविद्यारूप समष्टि कार्य्य तैजस में बीज का भाग आधा होने से चैतन्य का चौथाई है और व्यष्टि कार्य्य में देह आदि को पृथक् न मानने से आठवां भाग है यह बात हम लोगों में भी है क्योंकि उपाधिरहित होने से हमारी भी यही दशा होसक्ती है तो इनको भगवान् से कहना चाहिये इस शंका को कहते हैं-कि कर्म्मफल का स्वरूप ईश्वरता आदि श्रीकृष्णजी में योग्य है और हमलोगों में कचेफल के स्वरूप अनीश्वरता प्रकट है इसीकारण से हमलोग इनके समान नहीं होसक्ते-इन चारों की पृथक्ता अपने अज्ञान से है नहीं तो चारों एक शुद्ध चैतन्य हैं इसीको कार्य्यरूप संसार और कारणरूप कर्त्ताकी एकता सिद्ध करने से दृढ़ करते हैं-जो मध्यवर्ती समष्टि कार्य्य आत्मा तीसरा है वह कल्प के अन्त में लय होता है और षडैश्वर्य्यवान् ईश्वर महापराक्रमी प्रभु अन्तर्य्यामी है वह भी अखण्ड एकरस ब्रह्म में लय होता है क्योंकि इस ईश्वर की अविनाशिता व्यवहार से है परमार्थ से

नहीं है—शुद्ध चैतन्य ब्रह्माजी उस अखण्ड एकरस सदैव होनेवाले आत्मा को अविद्या के त्याग से प्राप्त करते हैं, वह अनन्त परमात्मा सब कारणों को अपनी सत्ता और स्फूर्त्ति देने से पूर्ण करता है और सदैव एकरूप वही उपाधि विशिष्ट श्रीकृष्णरूप से लोकों में घूमता है वह ऐसा भी हमारे समान उपाधि धर्म्मयुक्तों से नहीं रोका जाता है इसीकारण अहंकाररूप होकर जगत् को पैदा करता है यह महात्मा सबका आधाररूप है इसी में यह सब विचित्र जगत् ऐसे नियत है जैसे कि बीज में वृक्ष और फल में बहुत से बीज होते हैं युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह! मैं जानता हूं कि वृत्रासुर ने अपनी शुभगति को देखा उस आत्मगति के दर्शन से सुखी होकर शोच नहीं करताहै और हे पितामह! शुक्ल और शुक्लवंश में उत्पन्न पशुपक्षी योनि में जन्म नरक से छुटा फिर लौटकर नहीं आता है, और देवभाव युक्त पीतवर्ण जिसमें रजोगुण अधिक तमोगुण सम और सतोगुण कम होता है अथवा लालवर्ण अनुग्रह स्वर्ग, शम, दमादि जिसमें रजोगुण अधिक सतोगुण सम तमोगुण कम होता है इन सबमें वर्त्तमान मनुष्य अगर तामसी कर्मों में संयुक्त हो अर्थात् रजोगुण के समान होने से कभी आवरण प्रवृत्ति की आधिक्यता होय तो उससे पशु पक्षी के भी जन्म को देखे हैं और हम आपत्ति में फँसे दुःखरूप सुख में प्रवृत्त हैं इसकारण न जाने किस गति को पावेंगे नीलवर्ण वा कृष्णवर्णयुक्त नीचगति पावेंगे, भीष्मजी बोले कि हे पाण्डव! तुम उत्तम कुल में उत्पन्न प्रशंसनीय हो तुम देवलोकों में विहार करके फिर मनुष्यजन्म पाओगे अर्थात् समय पर सुखपूर्वक शरीर को त्याग देवभाव को प्राप्त सुखको भोग आनन्द से सिद्धरूप कहलाओगे चिन्ता मत करो तुम सब निर्मल हो ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

एकसौ सात का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे तात! बड़ा तेजस्वी वृत्रासुर प्रशंसा के योग्य है जिस में अपार विज्ञान और विष्णु भगवान् की ऐसी भक्ति वर्त्तमान है और विष्णु का अपार तेजोमय परमपद भी कठिनता से जानने योग्य है हे पितामह! उसने उस पद को कैसे जाना मैं आपके कथन से श्रीकृष्णजी पर श्रद्धा करता हूं परन्तु फिर भी ठीक २ न जानने से मेरी बुद्धि में यह शंका है कि वह धर्म का अभ्यासी विष्णुभक्त वेदान्त के अर्थ-विचार में महातत्त्वज्ञ ज्ञानी वृत्रासुर इन्द्र

के हाथ से कैसे मारागया इसको कृपा करके वर्णन कीजिये और जिसप्रकार से युद्ध हुआ उसके भी सुनने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा है—भीष्मजी बोले कि, पूर्वसमय में इन्द्र अपने देवगणों के सहित रथों में बैठकर जाते थे कि दैवयोग से पर्वत के समान आगे खड़ेहुए वृत्रासुर को देखा वह उँचाई में पांच सौ योजन और कुछ अधिक तीन सौ योजन मोटा था वह त्रिलोकी से भी विजय करने के योग्य न था उसको देखकर सब देवता महाभयभीत होकर व्याकुल होगये और इन्द्र भी उसके इस महाघोर अद्भुतरूप को देखकर निश्चेष्ट होगया फिर युद्ध के प्रारम्भ में देवता और असुरों के मुख और बाजों के महाशब्द हुए तदनन्तर सन्मुख इन्द्र को उद्यत (नियत) देखकर वृत्रासुर को भय और भय से उत्पन्न निश्चेष्टता इत्यादि सब जातीरही फिर देवराज इन्द्र और महात्मा वृत्रासुर का ऐसा घोरभयानक युद्ध हुआ जो तीनोंलोकों का भयकारी था, खड्ग, पट्टिश, शूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर और बड़ेशब्दायमान अनेक अस्त्र, शस्त्र, धनुष, दिव्य अस्त्र, अग्न्यस्त्र और उल्कापातों से युद्ध हुआ तबतो देवता लोग असुरों के शस्त्रों से घायल होकर महाव्याकुल हुए उस युद्ध के देखने को ब्रह्मादिक बड़े २ देवता ऋषि गन्धर्व भी अपनी २ अप्सरा और स्त्रियों के साथ उत्तम२अनेक विमानों में बैठकर आ पहुँचे फिर उस वृत्रासुरने आकाशमें जाकर पाषाणों की वृष्टि से देवराज समेत सब देवताओं को ढक दिया तब देवताओं ने भी महाक्रोधित होकर अपने दिव्य बाणों से उस पाषाणवृष्टि को निवृत्त किया फिर वृत्रासुर ने महाक्रोधित होकर अपनी नाना प्रकार की मायाओं से देवराज को व्याकुल किया और इन्द्र घबराकर निश्चेष्ट होगया तब वशिष्ठजी ने वेदों की ऋचाओं के द्वारा उसको सावधान किया और कहा कि हे दैत्य और असुरों के मारनेवाले, देवेन्द्र ! तुम देवताओं में श्रेष्ठ और तीनों लोक के पराक्रम से युक्त हो तुम क्यों असावधान होकर चेष्टारहित होगये हो और देखो यह भगवान् विष्णुजी, शिवजी, ब्रह्माजी और चन्द्रमा आदि अनेक ब्रह्मर्षिलोग भी वर्त्तमान हैं हे देवेन्द्र ! तुम अन्य के समान मूर्च्छा को त्यागो और युद्ध में श्रेष्ठइच्छा करके शत्रु को मारो और हे देवराज ! यह त्रिलोकी के स्वामी विष्णु भगवान् तुमको देखते हैं और यह बृहस्पति जी ब्रह्मर्षियों समेत तेरीही विजय के निमित्त दिव्य अस्त्रों से तुमको प्रतिष्ठा दे रहे हैं—भीष्मजी बोले कि इसप्रकार से वशिष्ठजी की प्रशंसा से इन्द्र में महाबल उत्पन्न हुआ फिर चैतन्य

होकर इन्द्र ने बड़े योग में प्रवृत्त होकर उस दैत्य की माया को दूर किया तदनन्तर अंगिराऋषि के पुत्र बृहस्पतिजी और सब महर्षि वृत्रासुर के पराक्रम को देखकर महेश्वरजी के पास जाकर लोकों के आनन्द के निमित्त वृत्रासुर के विनाश की प्रार्थना करते भये तब षडैश्वर्य्यवान् जगत्पति शिवजी का तेज ज्वररूप होकर महाउग्रता से वृत्रासुर के शरीर में प्रवेश करगया और संसार के पालनकर्त्ता और सब लोकों में पूजित विष्णुजी ने इन्द्र के वज्र में प्रवेश किया तब महातेजस्वी बृहस्पतिजी वशिष्ठजी और सब महर्षियों ने इन्द्र के पास आकर उसको समीप करके उससे सबने एक चित्त होकर यह वचन कहा कि प्रभु इन्द्र तुम वृत्रासुर को मारो और शिवजी ने कहा हे इन्द्र ! यह वृत्रासुर महापराक्रमी बड़ा लम्बा चौड़ा ज्ञान से विश्वात्मारूप सर्वत्र वर्त्तमान प्रबल मायावी प्रसिद्ध है सो हे देवेश्वर ! तुम योग में आरूढ़ होकर इस महाबली दुर्जय वृत्रासुर को मारो और इसका अपमान मत करो इसने पराक्रम के लिये साठ हज़ार वर्षतक तपस्या की है इससे ब्रह्माजी ने वर दिया है कि तू योगियों में श्रेष्ठ महापराक्रमी मायावी अतुल तेजधारी होगा सो हे इन्द्र ! यह मेरा तेज तुझमें प्रवेश होता है और तेरे वज्र में श्रीविष्णु भगवान् ने आप प्रवेश किया है तुम इस संसार के व्याकुल करनेवाले वृत्रासुर को वज्र से मारो,इन्द्र ने कहा हे देवदेव, भगवन्! मैं आपकी कृपा से आपके देखते ही देखते इस महादुर्जय दैत्य को वज्र से मारूंगा, भीष्मजी बोले कि, फिर तो उसके देह में ऐसे तेजों के होने से देवता और ऋषियों के आनन्दकारी महाशब्द हुए जब बड़े शब्द की हज़ारों दुन्दुभियों के और शंख, मुरज, डिंडिमी के आनन्दकारी शब्द हुए तब असुरों को मूर्च्छा हुई और क्षणभर में सब माया नाश होगई तदनन्तर देवता और ऋषियों ने तप से भरा वृत्रासुर का देह जानकर अपने स्वामी इन्द्र की प्रशंसा की और अनुमति भी दी तब ब्रह्मर्षियों से स्तुति किया हुआ इन्द्र युद्ध के समय रथ में चढ़ा हुआ ऐसा तेजवान् हुआ कि उसके स्वरूप को कोई कठिनता से भी नहीं देखसक्ता था॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

एकसौ आठ का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे महाराज ! तप से पूर्ण देह वृत्रासुर के शरीर में जो चिह्न प्रकट हुए उनको मुझसे सुनो, देदीप्य अग्नि के समान मुख और घोररूप होकर उनकी अपूर्व विवर्णता अर्थात् और का और रूप ऐसा होगया कि

सम्पूर्ण अंगों में रोमहर्ष और बड़े २ श्वासा निकलने लगे अर्थात् स्वरूप में मृतकता छागई और नाक मुख से बड़े २ श्वास निकले और उसके मुख से उसकी कल्याणरूप देवी निकली जो दूसरों को भयकारी दिखाई दी वह महाघोर देवी उसकी स्मृति अर्थात् स्मरणशक्ति थी उसके निकलतेही चारों ओर से उल्कापात होनेलगा और गृद्ध, कंक, बलाक इत्यादि पक्षी महाशब्द करनेलगे और वृत्रासुर के ओर पास भ्रमण करनेलगे तिस पीछे युद्ध में देवताओं से प्रशंसित इन्द्र हाथ में वज्र धारण कर रथ में बैठ उस दैत्य को अच्छे प्रकार से देखने लगा तब उस उग्रतप महाअसुर ने जंभाई ली और अमानुष घोर शब्द किया तभी इन्द्रने उसके वज्र मारा और उस कालरूप वज्र के लगतेही वृत्रासुर गिरा तब वृत्रासुर को मृतक जानकर देवताओं ने चारों ओर से जय जय शब्द किया और इन्द्रदेवता उसको मारकर विष्णुजी के साथ वज्रसमेत अपने स्वर्ग में आये तब वृत्रासुर की देह से ब्रह्महत्या बाहर निकली वह महाघोररूप, भयानकदांत, मलिनशरीर, काला पीला रंग, बिखरेहुएबाल, घोर नेत्रयुक्त कृत्या के समान कपालों की माला धारण कियेहुए रुधिरभरे वस्त्रों से आच्छादित थी उसने निकलतेही वज्रधारी इन्द्र की खोज करी हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर! थोड़ेकाल के पीछे लोकों के उपकार के हेतु इन्द्रदेवता स्वर्ग के सन्मुख चलेगये वहां उस ब्रह्महत्या ने उस निकलेहुए इन्द्र को देखकर पकड़लिया और देह से चिपटगई उससमय इन्द्र महादुःखी होकर कमल की नाल में नियत होकर बहुतकाल व्यतीत करते हुए और उस ब्रह्महत्या ने पैर की एँड़ी में होकर इन्द्र को बांधलिया तब उस तेजहीन इन्द्र ने उससे छूटने के लिये अनेक उपाय किये परन्तु किसी प्रकार से भी उस हत्या को दूर न करसका तब महाभयभीत होकर इन्द्र ने ब्रह्माजी के पास जाकर साष्टांग दण्डवत् की तब ब्रह्माजी ने उस उत्तम ब्राह्मण की हत्या से पकड़े हुए इन्द्र को जानकर बहुत विचार किया और मधुरस्वर से विश्वास देकर उस ब्रह्महत्या से कहा कि हे भवानि! तू इस इन्द्र को छोड़दे और मेरा कहना मानले और जो तेरा अभीष्ट हो उसको कहदे ब्रह्महत्या बोली कि तीनोंलोक के स्वामी और पूज्य के ऐसे वचनों से ही मैंने सब कुछ पालिया अब मेरे रहने को स्थान विचार कीजिये संसार की रक्षा की इच्छा करनेवाले आपही से यह मर्य्याद विचार की गई यह बड़ीमर्य्याद आपने प्रकट की है लोकेश्वर! धर्म्मज्ञ आप के प्रसन्न होने से मैं इन्द्र से पृथक् होजाऊंगी आप

मेरा स्थान नियत कीजिये, भीष्मजी बोले कि, फिर वहां ब्रह्माजी से ध्यान किये हुए अग्नि उत्पन्न होकर ब्रह्माजी से बोले हे निर्दोष, ब्रह्माजी ! मैं भी आपके आगे वर्त्तमान हूं जो मेरे योग्य काम हो वह आज्ञा दीजिये ब्रह्माजी बोले कि, मैं इन्द्र के वचनों के लिये इस ब्रह्महत्या के बहुत से भाग करूंगा तुम इसके चौथे भाग को लो अग्निदेवता बोले कि हे ब्रह्मन् ! मेरे मोक्ष का अन्त कौन होगा इसको विचार करिये और मुख्यतासमेत मुझे सुनाइये ब्रह्माजी बोले हे अग्ने ! जो अज्ञानी मनुष्य आप के किसी स्थानपर अग्निरूप तेज को पाकर पुरोडास आदि वीरुध्, औषधि, रस और सोमदूध आदि से पूजन नहीं करेगा उसको यह ब्रह्महत्या शीघ्रही प्राप्त होगी और उसीमें निवास भी करेगी हे अग्ने ! तेरे चित्त का संताप दूर होय जब हव्य कव्य भोजन करनेवाले अग्निदेवता ने ब्रह्मा के ऐसे वचन सुने तब उनकी आज्ञा के अनुसार वही किया फिर ब्रह्माजी ने वृक्ष औषधि तृणआदि को बुलाया और यही वचन उनसे भी कहा और वह सब भी अग्नि के समान पीड़ित न हुए और ब्रह्मा से बोले कि हे लोकों के पितामह ! हमारी ब्रह्महत्या का क्या अन्तहोगा हम प्रारब्ध के मारे हुए हैं हमको आप पीड़ा देने के योग्य नहीं हो हे देव ! हम सब ऊष्मा, शीत, वर्षा, वायु, छेदन, भेदन आदि अनेक दुःखों को अपने ऊपर सहते हैं हे त्रिलोकीनाथ ! हम आपकी आज्ञा से अपने ऊपर हत्या को धारण करेंगे आप हमारे मोक्ष का विचार करिये, ब्रह्माजी बोले कि जो मनुष्य किसी पूर्वकाल के वर्त्तमान होनेपर भूलसे भी तुम्हारा छेदन भेदन करेगा उसपर यह ब्रह्महत्या प्राप्त होगी यह सुनकर ब्रह्माजी की आज्ञा को अंगीकार करके वृक्ष, औषधि आदि भी दण्डवत् करके अपने २ स्थानों को चले गये फिर ब्रह्माजी ने अप्सराओंको बुलाकर विश्वासयुक्त मीठे वचनोंसे कहा हे उत्तम स्त्रियो ! यह ब्रह्महत्या इन्द्र से प्राप्त हुई है तुम मेरी आज्ञा से इसके चौथे भाग को लो, अप्सरा बोलीं हे देवेश्वर ! आप की आज्ञा से ब्रह्महत्या के लेने में हमारी मोक्ष के नियम को विचारो ब्रह्माजी बोले कि जो मनुष्य रजस्वला स्त्रियों के साथ विषय करेगा उसको यह ब्रह्महत्या शीघ्र लगैगी तुम्हारे चित्त का संताप दूर हो, यह सुनकर अप्सराओं के समूह भी ब्रह्मआज्ञा को अंगीकार कर बड़ी प्रसन्नता से अपने २ स्थानों को चलीगईं तदनन्तर तीनोंलोक के स्वामी ब्रह्मा ने जलों को स्मरण किया और वह भी आज्ञा पातेही शीघ्र आपहुँचे और सबने ब्रह्माजी की दण्डवत् करके यह वचन कहा कि हे शत्रुहन्ता, ब्रह्माजी ! हम आप

की आज्ञा से सब आप के सन्मुख उपस्थित हैं हम को जैसी आज्ञा होय वह करें ब्रह्माजी बोले कि, यह बड़ी भयकारिणी ब्रह्महत्या वृत्रासुर से इन्द्र में आई है तुम इसके चौथे भाग को धारण करो जल बोले कि हे प्रभो, लोकेश्वर! हम को अंगीकार है परन्तु हमारे मोक्ष को भी आप विचारिये जिससे कि इसके कष्ट से हम छूटें ब्रह्माजी बोले कि जो बुद्धि से अज्ञानी मोहित होके इस विचार से कि यह जल थोड़ा है उसमें थूक, विष्ठा, मूत्र को करेगा उसको यह ब्रह्महत्या प्राप्त होकर उसीमें निवास करेगी इससेही सत्य २ तुम्हारी मोक्ष होगी तदनन्तर हे युधिष्ठिर ! वह ब्रह्महत्या इन्द्र को छोड़कर बतलाये हुए उक्तस्थानों को गई इसप्रकार इन्द्र को ब्रह्महत्या हुई थी फिर इन्द्र ने ब्रह्माजी की आज्ञा लेकर अश्वमेध यज्ञ को रचा तब इन्द्र की शुद्धि हुई और बड़े २ हज़ारों शत्रुओं को मार उनकी लक्ष्मी ले इन्द्र ने बड़े हर्ष को पाया और वृत्रासुर के रुधिर से शिखण्डी उत्पन्न हुए वह दीक्षायुक्त तपोधन ब्राह्मणों के अभक्ष्य हैं हे कौरवनन्दन ! तुम भी सब प्रकार से इन ब्राह्मणों को प्रसन्न करो यह ब्राह्मण इस पृथ्वीतल में देवता प्रसिद्ध हैं, और हे राजन् ! इस प्रकार से वह वृत्रासुर इन्द्र के हाथ से मारागया, उसी इन्द्र के समान पृथ्वीपर तुमभी विजयी और अजेय होगे जो पुरुष हरएक पर्वमें इन्द्र की इस दिव्य कथा को ब्राह्मणों के मध्य कहेंगे वह पाप से मुक्त होंगे यह वृत्रासुर और इन्द्र का परस्पर युद्ध और कर्म्म तुम से ब्यौरे समेत कहा अब क्या सुनने की इच्छा है ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

एकसौनौ का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाज्ञानिन्, सर्वशास्त्रज्ञ, पितामह ! इस वृत्रासुर के वध में मुझ को बहुत सी तर्कणा उत्पन्न होती हैं हे निष्पाप, पितामह ! आपने कहा कि वृत्रासुर जब ज्वररूप तप से असावधान हुआ तभी इन्द्र ने वज्र से मारा तो हे महाभाग ! यह ज्वर कहां से और किसप्रकार उत्पन्न हुआ इसका मूल से सब वृत्तान्त सुना चाहता हूं भीष्मजी बोले कि, इस ज्वर की उत्पत्ति जोकि लोक में प्रसिद्ध है उसको सुनो कि सुमेरु पर्वत के शिखर ज्योतिषनाम सूर्यदेवता से सम्बन्ध रखनेवाले सब रत्नों से भरे तीनों लोकों से पूजित और अजित बड़े प्रभाववाले थे हे राजन् ! वहां पूर्वसमय में वह सुवर्ण के समान प्रकाशमान अनेक धातुओं से शोभित पर्यंक अर्थात् पलंग के समान वर्त्तमान थे वहां

शिवजी महाराज आनकर सुशोभित हुए उनके साथ श्रीपार्वती महारानीभी वर्त्तमान थीं और महातेजस्वी अष्टवसु, देववैद्य अश्विनीकुमार, यक्ष, गुह्यक युक्त श्रीमान् राजराज कुबेरजी और महात्मा शुक्राचार्य भी शिवजी महाराज की सेवा उपासना में प्रवृत्त थे इनके विशेष सनकादि महर्षि और अंगिरा ऋषि आदिक देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद, पर्वत, ऋषि और अप्सराओं के बहुत से समूह प्राप्त हुए और शीतल, मन्द, सुगन्ध सुखदायी वायु चलने लगी और सब प्रकार के वृक्ष ऋतुसम्बन्धी फलफूलों से आच्छादित थे और विद्याधरआदि तपोधन सिद्धलोग इत्यादि इन सबलोगोंने पशुपतिनाथजी को चारों ओर से व्याप्त करलिया और अनेक रूपधारी महापराक्रमी राक्षस पिशाच और देवताओं के शस्त्र लेचलनेवाले भी वर्त्तमान थे वहां अपने तेज से प्रकाशित भगवान् नन्दीश्वर देदीप्यमान त्रिशूल को लेकर देवताओं की आज्ञामें नियत थे और सब नदियों और तीर्थों में श्रेष्ठ श्रीगंगाजी भी शिवजी की उपासना में वर्त्तमान थीं कुछ समय के पीछे दक्षप्रजापति पूर्व कही हुई बुद्धि से यज्ञ करने के लिये दीक्षायुक्त हुए तदनन्तर इन्द्रादिक देवता इकट्ठे होकर उसके यज्ञ में जाने के निमित्त एकमत होके सुनते हैं कि हरिद्वार को चलेगये उनको आकाशमार्गी विमानों में स्त्रियों समेत जाता देखकर महापतिव्रता श्रीसतीरूप पार्वतीजी ने अपने स्वामी पशुपतिनाथजी से कहा कि हे महाराज ! यह इन्द्रादिक सब देवता कहांजाते हैं हे तत्त्वज्ञ ! इसको आप वर्णन कीजिये, महादेवजी बोले कि हे महाभागे ! दक्षनाम प्रजापति अश्वमेधयज्ञको करता है वहांहीं यह सब देवता भी जाते हैं उमा बोलीं कि हे महाराज, महादेवजी ! आप इस यज्ञ में क्यों नहीं जाते हो अथवा किसी कारण से आपको जाना नहीं है, महादेवजी बोले कि हे पार्वति ! पूर्वसमयमें देवताओं का नियत किया हुआ हमारा यज्ञभाग इसने नहीं दिया था और उसी पूर्वविचार से देवता मुझ को यज्ञभाग नहीं देते हैं भगवती उमा बोलीं कि हे महाराज ! आप तेज, प्रताप, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, बल, पराक्रम में सबसे उत्तम हो आप को यज्ञभाग न मिलने से मुझ को महाखेद है और मेरे रोम २ कँपते हैं यह कहकर महाक्रोधित होकर शिवजी के सन्मुख मौन होकर बैठीं तदनन्तर शिवजी ने पार्वती के चित्त की बात को जानकर नन्दीश्वर से कहा कि तुम ठहरो यह कहकर थोड़े ही समय पीछे योगेश्वर शिवजी ने अपने भयानकरूप अनुचरों के

साथ योगबल के द्वारा अकस्मात् उस यज्ञ को विध्वंसन किया बहुत से गणों में से कितनो ही ने शब्द किया कितनो ने हास्य कितनो ही ने मूत्रपुरीष और कितनो ही ने यज्ञ की अग्नि में रुधिर छिड़का कितनो ने रूपान्तर और कितने ही यज्ञस्तम्भ उखाड़ उखाड़ नाचनेलगे कितनो ने अपने नखों से यज्ञ के नौकरों को निकाला जब चारों ओर से घायल यज्ञ मृग का रूप धारण करके आकाश की ओर चला तब शिवजी उस रूप से जानेवाले यज्ञ को जानकर बाणयुक्त धनुष लेकर उसके सन्मुख उपस्थित हुए और क्रोध से वेगयुक्त शिवजी के ललाट से महाभयकारी प्रस्वेदकण टपका उसके पृथ्वीपर गिरतेही कालाग्नि के समान एक महाभयानक अग्नि उत्पन्न होगई उस अग्नि में एक पुरुष उत्पन्न हुआ जिसका छोटा शरीर अत्यन्त रक्तनेत्र पिंगलवर्ण डाढ़ीमूँछ समेत महाभयकारी बिखरेबाल शरीर में बहुत से रोम बड़ी भुजा लाल वस्त्र पहिरे इस महाबली ने उस यज्ञ को ऐसे मारडाला जैसे सूखेवन को अग्नि भस्म करडालता है, वह चारों ओर घूमता देवता और ऋषियों की ओर भी भागा तब सब देवता भयभीत होकर दशों दिशाओं में भागे हे युधिष्ठिर ! उसके यज्ञभूमि में घूमने से पृथ्वीभर कंपायमान हुई और संसार में हाहाकार मचगया यह दशा देखकर प्रभु ब्रह्माजी ने प्रत्यक्ष होकर शिवजी से कहा कि हे प्रभो, शिवजी ! सब देवता आप का भी यज्ञभाग देंगे हे देवेश्वर ! आप अपने इसतेज को लौटाओ, हे महादेव ! यह सब देवता ऋषि आप के इस उग्रतेज से महाव्याकुल होरहे हैं हे देव ! यह जो पुरुष आपके पसीने से उत्पन्न हुआ है वह ज्वरनाम होकर सबलोकों में घूमेगा, यह सम्पूर्ण पृथ्वी इस इकट्ठे तेज के धारण करने को समर्थ नहीं है इसके बहुत से भाग कर दीजिये, यज्ञ में भाग विचार होनेपर शिवजी ने उन महातेजस्वी ब्रह्माजी से कहा कि ऐसाही होगा और फिर पिनाक धनुषधारी शिवजी ने अपनी मन्द मुसक्यान से बड़े आनन्द सहित यज्ञभाग को पाया, तब धर्म्मज्ञ शिवजी ने जीवों की शान्ति के लिये उस ज्वर के बहुत से भाग किये हे पुत्र, युधिष्ठिर ! उन को भी सुनो कि हाथियों के शिरकादर्द, पहाड़ों का शिलाजीत, जलों की काई, सर्पों में कांचली इन सबको ज्वर के भाग जानो, खूराक नाम बैलों के पैरों का रोग, पृथ्वीपर ऊषर, पशुओं का अन्धा होना, घोड़ों के गले के छिद्र में वर्तमान जो बारहमास है उसको और मोरों की शिखाओं के पृथक् होने को सब पक्षियों के नेत्ररोग इत्यादि को महात्मालोग ज्वर बोलते हैं, भेड़ बकरियों के

पित्तभेद को और सबप्रकारके तोतों का हिक्किकानाम रोग भी ज्वर कहाजाता है हे धर्म्मज्ञ! सिंहशार्दूलों में जो रोग हैं उसे भी ज्वर कहते हैं और मनुष्यों में यह ज्वर ही नामसे प्रसिद्ध है यह ज्वर जन्म और मृत्यु और इन दोनों के मध्यवर्ती समय में भी मनुष्य के भीतर प्रवेश करता है यह महेश्वरजी का तेजरूप ज्वर बड़ा भयानक है और सब जीवों से नमस्कार और प्रतिष्ठा करने के योग्य है इसी ज्वरसे पूर्ण होकर जब धर्म्मधारियों में श्रेष्ठ वृत्रासुर ने जम्भाई ली थी तब इन्द्र ने उसपर वज्र मारा उस वज्र ने वृत्रासुर में प्रवेश करके उसकी दो फांक करदीं वज्र से फाड़ा हुआ वह महायोगी महाअसुर विष्णुजी के सर्वोत्तम लोक में गया, उस समय उसीकी विष्णुभक्ति से यह सब जगत् व्याप्त था इसी कारण उसने युद्ध में मरकर विष्णुलोक पाया हे पुत्र! यह मैंने वृत्रासुरकी कथा के उपदेश से ज्वर का मूल वर्णन किया अब क्या सुनना चाहता है, जो बड़े चित्तवाला अच्छा सावधान मनुष्य इस ज्वरकी उत्पत्ति को प्रतिदिन सुनेगा वह रोगों से रहित और सुखीहोकर आनन्दयुक्त वांछित फलों को पावेगा ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

एकसौदश का अध्याय ॥

पूर्व में भगवान् श्रीकृष्णजी का रूप सिद्ध करने में पूर्णब्रह्म की प्राप्तिका द्वार वर्णन किया अब इस अध्याय में इसबात को सिद्ध करते हैं कि दयावान् मूर्तिमान् परमेश्वर अपने शत्रुओं को दण्ड देकर फिर उसपर भी कृपा करता है और भक्ति से परमेश्वर को प्रसन्न करने के निमित्त एकहज़ार आठनाम को कहते हैं मोक्षधर्म में इसके लिखने का यह प्रयोजन है कि वह एक हजार आठनाम भी शम दम आदि गुणों के समान मोक्ष के हेतुरूप हैं—राजा जनमेजय वैशम्पायनजी से पूछते हैं कि हे ब्रह्मन्! वैवस्वत मन्वन्तर में प्रचेता के पुत्र दक्षप्रजापति के यज्ञका विध्वंस कैसे और किसकारण से हुआ, वह सर्वात्मा प्रभु शिवजी पार्वती के शोक के फल को मानकर कैसे क्रोधित हुए फिर कैसे उनकी कृपा से दक्ष ने यज्ञ को पूर्ण किया मैं इसका ठीक २ वृत्तान्त जानना चाहता हूं आप कृपा करके ब्यौरेसमेत वर्णन कीजिये, वैशम्पायन बोले कि पूर्व काल में हिमाचल के पीछे सिद्ध, ऋषि, गन्धर्व और अप्सराओं से सेवित नाना प्रकार के वृक्षवल्ली आदि से संकुलित गंगाद्वारनाम शुभदेश में दक्षप्रजापति ने यज्ञ को रचा था और पृथ्वी के सब मनुष्य पृथ्वीपर और स्वर्गवासी अन्तरिक्ष में

गन्धर्वऋषि आदि सब बड़ी नम्रता से हाथजोड़े हुए धर्म्मध्वजों में श्रेष्ठ दक्षप्रजापति के सन्मुख वर्त्तमान हुए, देवता, दानव, गन्धर्व्व, पिशाच, उरग, राक्षस, हाहा, हूहू और तुम्बुरु गन्धर्व्व और नारदऋषि, विश्वावसु, विश्वसेन और अनेक अप्सरा, बारहसूर्य, अष्टवसु, ग्यारहरुद्र, साध्य और मरुद्गण इत्यादिक यज्ञभागी इन्द्रसमेत सब आये और ऊष्मपा, सोमपा, धूमपा, आज्यपा, ऋषि, पितर, ब्राह्मण आदि अन्य बहुत से चारों प्रकार की सृष्टि के लोग ब्रह्माजी के साथ आये इनके विशेष अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज्ज यह चारों प्रकार के भी जीव आये और निमन्त्रणपूर्वक बुलाये हुए सब देवता अपनी २ स्त्रियों समेत देदीप्यमान विमानों में बैठेहुए विराजमानहुए उन सबको देखकर दधीचि ऋषि ने क्रोधयुक्त होकर यह वचन कहा, कि वह यज्ञ नहीं है और धर्म्म नहीं है जहांपर कि रुद्र भगवान् पूजे नहीं जाते हैं इससे तुम निश्चय बांधेजाओ और मारेजाओ क्या समय की विपरीतबुद्धि है कि सन्मुख वर्त्तमान नाश को अपनी अज्ञानता से नहीं देखते हैं और महायज्ञ में सन्मुख उपस्थित महाघोर उत्पात को नहीं जानते हैं यह कहकर उस महायोगी ने ज्ञानरूप नेत्रों से जब देखा तो महादेव और वरदाता श्रीउमादेवी कोही देखा और उस देवी के सन्मुख महात्मा नारदजी को भी देखा यह देखकर उस योगी ने बड़ा सन्तोष पाया और निश्चय करके जाना कि इन सबका एक मत है इसकारण सर्वेश्वर शिवजी को निमन्त्रण नहीं दिया इसीसे उसदेश से कुछ हटकर दधीचि ने कहा कि अपूज्यों के पूजन से और पूज्यों के न पूजन करने से नृघात के समान पाप होता है इसको मैंने न पहिले मिथ्या कहा न अब कभी मिथ्या कहूंगा मैं देवता और ऋषियों में बैठकर सत्य २ कहता हूं कि सब जगत् के स्वामी यज्ञ में प्रथम भाग लेनेवाले सबके प्रभु शिवजी को तुम यज्ञ में आया हुआ देखो, दक्ष ने कहा हमारे यज्ञ में ग्यारह स्थानों में वर्त्तमान बहुत से रुद्र हाथों में शूल धारण किये वर्त्तमान हैं यह सब गंगाजी से पूर्ण जटाधारी हैं मैं इनके सिवाय महेश्वरजी को नहीं जानता हूं, दधीचिऋषि बोले कि मैं जानता हूं कि यही सबकी राय है इसीसे शिवजी नहीं नेवते गये हैं, मैं शिवजी से बढ़कर जैसे किसी देवता को उत्तम नहीं देखता हूं वैसेही यह भी देखता हूं कि यह दक्ष का बड़ा यज्ञ भी नहीं होगा, दक्ष ने कहा कि सुवर्ण के पात्र में मन्त्र की विधि से पवित्र यह सम्पूर्ण हव्य यज्ञेश्वर के निमित्त है इसभाग को अनुपम विष्णुदेवता के अर्पण करूंगा यह विष्णुदेवता

सबका आत्मारूप और आहवनीय है, देवी पार्वतीजी ने अपने चित्त में विचार किया कि अब मैं किस दान नियम तपव्रतादि को करूं जिससे कि हमारे षड़ैश्वर्यस्वामी शिवजी आधे वा तीसरे भाग को पावें, तब तो अत्यन्त प्रसन्नचित्त शिवजी महाराज ने ऐसे विचार करनेवाली अपनी प्राणप्यारी को व्याकुलता में व्यग्रचित्त देखकर कहा कि हे सूक्ष्मोदरि, सुन्दररूप, और विशाल नेत्रवाली! तू मुझ को नहीं जानती है कि यज्ञेश्वर में कौन सा वचन योग्य है, हे सुन्दरि! मैं अच्छे प्रकार से जानता हूं कि ध्यानरहित असन्तलोग मुझ को नहीं जानते हैं अब तेरे मोह से इन्द्रसमेत सब देवता और तीनोंलोक भी अज्ञानी हैं, यज्ञ में स्तुति करनेवाले ब्राह्मण मेरी स्तुति करते हैं और सामवेदी भी मुझी को गाते हैं और ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण भी मुझी को पूजन करते हैं और मेरा भाग यज्ञ में कल्पना करते हैं—देवी बोलीं कि साधारण मनुष्य स्त्रियों में अपनी प्रशंसा और अहंकार को करता है, भगवान् बोले हे देवेश्वरि! मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता हूं हे कृशांगि! अब तुम मेरी उस सृष्टि को देखो जिसको कि मैं यज्ञविध्वंस के निमित्त उत्पन्न करता हूं यह कहकर मुख से घोर प्रसन्नतावाले पुरुष को उत्पन्न किया और उससे कहा कि तुम दक्ष के यज्ञ का विध्वंसन करो यह सुनतेही उसने एक लीलाही मात्र से देवी के क्रोध के निवृत्त करने को उन देवताओं के यज्ञ का विध्वंस किया और देवी के क्रोध से महाभयानकरूप महेश्वरी काली उत्पन्न हुई और अपना चरित्र दिखलाने को उस वीर के साथही चलीगई तिस पीछे शूरता में आत्मा के समान पराक्रम और रूपसंयुक्त रुद्र तेज सहित क्रोधरूप अमितबल महाउग्रतेज रखनेवाली देवी का क्रोध दूर करनेवाले भगवान् वीरभद्रनाम ने शिवजी की आज्ञा को अंगीकार और दण्डवत् करके अपने अंग के रोम कम्पायके रोमीनाम गणों के स्वामियों को उत्पन्न किया वह सब गण रुद्रजी के समान भयानक और बलपराक्रम रखनेवाले थे तदनन्तर वह हजारों लाखों भयानकरूप और देहधारी गण दक्ष के यज्ञ के विनाश करने को बड़ी शीघ्रता से दौड़े और महाकलकला शब्दों से आकाश को व्याप्त करदिया उस शब्द के सुनतेही सब यज्ञ के देवता महाभयभीत और व्याकुल हुए पहाड़ फटे पृथ्वी कम्पायमान होकर वायु में घूमनेलगी और समुद्र उथल पुथल होने लगा उससमय अग्नि प्रकाशरहित हुई सूर्य्य प्रकाशमान नहीं हुए और चन्द्रमा समेत ग्रह नक्षत्रादि मन्दप्रभ होगये ऋषि देवता मनुष्य प्रकाश से

रहित अन्धे से होगये ऐसे अन्धकार में उन अपमान पानेवाले गणों ने यज्ञ का नाश किया और बहुत से दूसरे गण घोरघात करते थे और यज्ञस्तम्भों को उखाड़२फेंकते थे एक २ को पकड़कर मर्दन करते हुए मारडालते थे, महावेगवान् वायु के समान दौड़ २ घूमते थे यज्ञ के सब पात्र और आभूषणों को तोड़२ चूर्ण करते थे, वह टुकड़े २ होने से ऐसे मालूम होते थे मानो आकाश में तारागण उत्पन्न हुए और दिव्य भोजन और पीने की वस्तु आदि पर्व्वत से पड़ेहुए दृष्ट आते थे दूध की नदियों में घृत और खीर कीचड़ सी विदित होती थी दही के समुद्रों में खांड बालूसी दिखाई देती थी और एक ओर इक्षुरस की नदियां अत्यन्तही शोभित मालूम होती थीं यह तो छओंरसों की दशा थी और नाना प्रकार के मांस और भोजन की वस्तु और चाटने चूसने की वस्तु इत्यादि सब पदार्थों को वह अनेकरूप के गण अपने नानाप्रकार के मुखों से खाते थे और फेंकते थे और अत्यन्त कुत्सित वचनों को कहते थे और वह कालरूप गण शिवजी के कोप से देवताओं की सेनाओं को चारोंओर से डराते मारते व्याकुल करते थे और नानारूपों को धारण किये क्रीड़ा करते थे और देवांगनाओं को पकड़ २ फेंकते थे ऐसे रुद्रकर्म करनेवाले वीरभद्र ने शिवजी के कोप से उस यज्ञ को जोकि देवताओं से अच्छेप्रकार रक्षित था इन उपायों से बहुत शीघ्र सब ओर से विध्वंस किया और सब जीवोंका भयकारी महाघोर शब्द करके यज्ञ के शिर को काट अत्यन्त प्रसन्न हुआ तदनन्तर ब्रह्मादिक देवता और दक्षप्रजापति आदि सब प्रजापति हाथ जोड़कर बोले कि आप कौन हैं अपना वर्णन कीजिये, वीरभद्र बोले कि मैं रुद्र नहीं हूं और भोगने को भी यहां नहीं आया हूं सब जीवों के आत्मा प्रभु सदाशिवजी देवी के क्रोधकर्म को अंगीकार करके कोपयुक्त हुए हैं न मैं ब्राह्मणों के दर्शनों को आया न खेल क्रीड़ा को आया केवल तेरे यज्ञविध्वंस करने को आया हूं मैं रुद्रजी के कोप से उत्पन्न हुआ वीरभद्र नाम से प्रसिद्ध हूं और देवीजी के कोप से उत्पन्न हुई यह भद्रकाली प्रसिद्ध है उस देवेश्वर के भेजेहुए हम यज्ञ के समीप आये हैं हे विप्रेन्द्र, दक्ष ! तुम उसी देवेश्वर शिव का आश्रय लो उसीकी शरण में तुम्हारा बचना है दूसरा कोई उपाय नहीं है क्रोध में भी देवताओं का वरदान उत्तम है और किसी का आनन्द में भी उत्तम नहीं है यह वीरभद्र के वचन सुनकर दक्ष ने महेश्वरजी को प्रणामकर इस स्तोत्र से प्रसन्न किया। स्तोत्रं—प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं

ध्रुवमव्ययम् । महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगतः पतिम् १ दक्षप्रजापतिर्यज्ञैर्द्रव्यैस्तैः सुसमाहितैः । आहूता देवतास्सर्वा ऋषयश्च तपोधनाः २ देवो नाहूयते तत्र विश्वकर्मा महेश्वरः । तत्र क्रुद्धा महादेवी गणांस्तत्र व्यसर्जयत् ३ प्रदीप्तयज्ञवाटे तु विद्रुतेषु द्विजातिषु । तारागणमनुप्राप्ते रौद्रे दीप्ते महात्मनि ४ शूलनिर्भिन्नहृदयैः कूजद्भिः परिचारकैः । निखातोत्पाटितैर्यूपैरपविद्धैरितस्ततः ५ उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृध्नुभिः । पक्षवातविनिर्धूतैः शिवाशतनिनादितैः ६ यक्षगन्धर्वसंघैश्च पिशाचोरगराक्षसैः । प्राणापानौ संनिरुध्य वक्त्रस्थानेन यत्नतः ७ विचार्य्य सर्व्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित् । सहसा देवदेवेशो ह्यग्निकुण्डात्समुत्थितः ८ बिभ्रत्सूर्य्यसहस्रस्य तेजःसंवर्त्तकोपमः । स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ९ श्राविते च मखाध्याये देवानां गुरुणा ततः । तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः १० भीतशङ्कितवित्रस्तः सबाष्पवदनेक्षणः । यदि प्रसन्नो भगवान्यदि चाहं भवत्प्रियः ११ यदि वाहमनुग्राह्यो यदि वा वरदो मम । यद्दग्धं भक्षितं पीतमशितं यच्च नाशितम् १२ चूर्णीकृतापविद्धं च यज्ञसम्भारमीदृशम् । दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन सुसंचितम् १३ तन्न मिथ्याभवेन्मह्यं वरमेतदहं वृणे १४ तथास्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हरः । धर्म्माध्यक्षो विरूपाक्षः त्र्यक्षो देवः प्रजापतिः १५ जानुभ्यामवनीं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भवाद्वरम् । नाम्नामष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम् १६–७२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकसौ ग्यारह का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे निष्पाप, पितामह ! दक्षप्रजापति ने जिन नामों से शिवजी की स्तुति की उनको मैं श्रद्धापूर्व्वक सुनना चाहता हूं भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! उन अपूर्व्वकर्म्मकर्त्ता और गुप्तव्रतधारी शिवजी के उन नामों को सुनो जो कि प्रकट हैं और श्रद्धाविहीन पुरुषों से गुप्त हैं ॥

स्तोत्र ॥

युधिष्ठिर उवाच–यैर्नामधेयैः स्तुतवान्दक्षो देवं प्रजापतिः । वक्तुमर्हसि मे तात श्रोतुं श्रद्धा ममानघ १ भीष्म उवाच–श्रूयतां देवदेवस्य नामान्यद्भुतकर्म्मणः । गूढव्रतस्य गुह्यानि प्रकाशानि च भारत २ नमस्ते देवदेवेश देवारिबलसूदन । देवेन्द्रबलविष्टम्भ देवदानवपूजित ३ सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय । सर्व्वतः पाणिपादान्त सर्व्वतोक्षिशिरोमुख ४ सर्व्वतः श्रुतिमल्लोके सर्व्व

मावृत्य तिष्ठसि । शङ्कुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय ५ गजेन्द्रकर्ण
गोकर्ण पाणिकर्ण नमोस्तु ते । शतोदर शतावर्त्त शतजिह्व नमोस्तुते ६ गायन्ति
त्वां गायत्रिणस्त्वामर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणं त्वां शतक्रतुमूर्ध्वं खमिवमेनिरे ७
मूर्त्तौ हि ते महामूर्त्ते समुद्राम्बरसन्निभ । सर्व्वा वै देवता ह्यस्मिन् गावो गोष्ठइवासते
८ भवच्छरीरे पश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम् । आदित्यमथ वै विष्णुं
ब्रह्माणञ्च बृहस्पतिम् ९ भगवन् कारणं कार्य्यं क्रियाकारणमेव च । असतश्च
सतश्चैव तथैव प्रभवाप्ययौ १० नमो भवाय सर्व्वाय रुद्राय वरदाय च । पशूनां
पतये नित्यं नमोस्त्वन्धकघातिने ११ । त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरपाणिने ।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नमः १२ नमश्चण्डाय कुण्डाय अण्डायाण्डधराय
च । दण्डिने समकर्णाय दण्डिमुण्डाय वै नमः १३ नमोर्ध्वदंष्ट्रकेशाय
शुक्लायावतताय च । विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय वै नमः १४ नमोस्त्वप्रतिरूपाय
विरूपाय शिवाय च । सूर्य्याय सूर्य्यमालाय सूर्य्यध्वजपताकिने १५
नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने । शत्रुन्दमाय दण्डाय पर्णचीरपटाय
च १६ नमोहिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च । हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये
नमः १७ नमोस्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय वै नमः । सर्व्वाय सर्व्वभक्षाय सर्व्वभूतान्तरात्मने
१८ नमो होत्रेऽथ मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने । नमो नाभाय
नाभ्याय नमः कटङ्कटाय च १९ नमोस्तु कृशनासाय कृशाङ्गाय कृशायच । संहृष्टाय
नमस्तुभ्यं नमः किलकिलाय च २० नमोस्तु शय्यमानाय शयितायोत्थिताय
च । स्थिताय धावमानाय मुण्डाय जटिलाय च २१ नमो नर्त्तनशीलाय मुखवादित्रवादिने
। नाद्योपहारलुब्धाय गीतवादितशालिने २२ नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय
बलप्रमथनाय च । कालनाथाय कल्पाय क्षयायोपक्षयाय च २३ भीमदुन्दुभिहासाय
भीमव्रतधराय च । उग्राय च नमो नित्यं नमोस्तु दशबाहवे २४ नमः
कपालहस्ताय चितिभस्मप्रियाय च । विभीषणाय भीष्माय भीमव्रतधराय च २५
नमो विक्षतवक्राय खड्गजिह्वाय दंष्ट्रिणे । पक्वाममांसलुब्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय
च २६ नमो वृषाय वृष्याय गोवृषाय वृषाय च । कटङ्कटाय दण्डाय नमः पचपचाय
च २७ नमः सर्व्ववरिष्ठाय वराय वरदाय च । वरमाल्यगन्धवस्त्राय वरातिवरदे
नमः २८ नमो रक्तविरक्ताय भावनायाक्षमालिने । सम्भिन्नाय विभिन्नाय छायायातपनाय
च २९ अघोरघोररूपाय घोरघोरतराय च । नमः शिवाय शान्ताय नमः
शान्ततमाय च ३० एकपाद्बहुनेत्राय एकशीर्ष्णे नमोस्तु ते । रुद्राय क्षुद्रलु-

ब्धाय संविभागप्रियाय च ३१ पञ्चालाय सिताङ्गाय नमः शमशमाय च। नमश्चण्डिकघण्टाय घण्टायाघण्टघण्टिने ३२ सहस्राध्मातघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च। प्राणघण्टाय गन्धाय नमः कलकलाय च ३३ हूंहूंहूंकारपाराय हूंहूंकारप्रियाय च। नमः शमशमे नित्यं गिरिवृक्षालयाय च ३४ गर्भमांससृगालाय तारकाय तराय च। नमो यज्ञाय यजिने हुताय प्रहुताय च ३५ यज्ञवाहाय दान्ताय तप्यायातपनाय च। नमस्तट्याय नद्याय तटानां पतये नमः ३६ अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजे तथा। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ३७ सहस्रोद्यतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च ३८ बालानुचरगोप्ताय बालक्रीडनकाय च। नमो वृद्धाय लुब्धाय क्षुधाय क्षोभणाय च ३९ तरङ्गाङ्कितकेशाय मुञ्जकेशाय वै नमः। नमः षट्कर्मतुष्टायत्रिकर्मनिरताय च ४० वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथक्कर्मनिवर्त्तिने। नमोघुष्याय घोषाय नमः कलकलाय च ४१ श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च। प्राणभग्नाय दण्डाय स्फोटनाय कृशाय च ४२ धर्मकामार्थमोक्षाणां कथनीयकथाय च। सांख्याय सांख्यमुख्याय सांख्ययोगप्रवर्त्तिने ४३ नमोरथ्यविरथ्याय चतुष्पथरथाय च। कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने ४४ ईशान वज्रसंघात हरिकेश नमोस्तु ते॥ त्र्यम्बकाम्बिकनाथाय व्यक्ताव्यक्त नमोस्तु ते ४५ काम कामद कामघ्न तृप्तातृप्तविचारिणे। सर्व सर्वद सर्वघ्न सन्ध्याराग नमोस्तु ते ४६ महामेघचयप्रख्य महाकाल नमोस्तु ते। स्थूलजीर्णाङ्गजटिले वल्कलाजिनधारिणे ४७ दीप्तसूर्य्याग्निजटिले वल्कलाजिनवाससे। सहस्रसूर्यप्रतिम तपोनित्य नमोस्तु ते ४८ उन्मादनशतावर्त्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज। चन्द्रावर्त्त युगावर्त्त मेघावर्त्त नमोस्तु ते ४९ त्वमन्नमन्नभोक्ता च अन्नदोन्नभुगेव च। अन्नस्रष्टा च पक्ता च पक्वभुक् पवनोऽनलः ५० जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजाश्च तथोद्भिजाः। त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामचतुर्विधः ५१ चराचरस्य स्रष्टा त्वम्प्रतिहर्त्ता तथैव च। त्वमाहुर्ब्रह्मविदुषोब्रह्म ब्रह्मविदांवर ५२ मनसः परमायोनिः खं वायुर्ज्योतिषां निधिः। ऋक्सामानि तथोंकारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः ५३ हायिहायिहुवाहोइ हुवाहोइ तथा सकृत्। गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठ सामगा ब्रह्मवादिनः ५४ यजुर्मयो ऋङ्मयश्च त्वमाहुतिमयस्तथा। पठ्यसे स्तुतिभिश्चैव वेदोपनिषदां गणैः ५५ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराश्च ये। त्वमेव मेघसंघाश्च विद्युत्स्तनितगर्जितः ५६ संवत्सरस्त्वमृतवो मासोमासार्द्धमेव च। युगं निमेषाः काष्ठास्त्वं नक्षत्राणि ग्रहाः कलाः ५७ वृक्षाणां ककुदोसि त्वं गिरीणां शिखराणि

च। व्याघ्रो मृगाणांपतता तार्क्ष्योऽनन्तश्च भोगिनाम् ५८ क्षीरोदो ह्युदधीनां च
यन्त्राणां धनुरेव च। वज्रः प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ५९ त्वमेव द्वेष इच्छा च
रागो मोहः क्षमाक्षमे। व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ ६० त्वं गदी
त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी झर्झरी तथा। छेत्ता भेत्ता प्रहर्त्ता त्वं नेता मन्ता पिता
मतः ६१ दशलक्षणसंयुक्तो धर्मार्थः काम एव च। गङ्गा समुद्राः सरितः पल्वलानि
सरांसि च ६२ लतावल्ल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः। द्रव्यकर्मसमारम्भः
कालपुष्पफलप्रदः ६३ आदिश्चान्तश्च देवानां गायत्र्योंकारएव च ६४ हरितो रोहितो
नीलः कृष्णो रक्तस्तथारुणः। कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा ६५
अवर्णश्च सुवर्णश्च वर्णकारो ह्यनोपमः। सुवर्णनामा च तथा सुवर्णप्रिय एव च ६६
त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः। उपप्लवश्चित्रभानुः स्वर्भानुर्भानुरेव
च ६७ होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुम्। त्रिसौपर्णं तथा ब्रह्म यजुषां
शतरुद्रियम् ६८ पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम्। गिरिको हिण्डको
वृक्षो जीवो मुद्गल एव च ६९ प्राणः सत्त्वं रजश्चैव तमश्चाप्रमदस्तथा। प्राणो
पानः समानश्च उदानो व्यान एव च ७० उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुतं जृम्भितमेव च।
लोहितान्तर्गता दृष्टिर्महावक्त्रो महोदरः ७१ शुचिरोमा हरिश्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः।
गीतवादित्रतत्त्वज्ञो गीतवादनकप्रियः ७२ मत्स्यो जलचरो जाल्यो
कलः केलिकलः कलिः। अकालश्चातिकालश्च दुष्कालः काल एव च ७३
मृत्युक्षुरश्च कृत्यश्च पक्षोपक्षक्षयं करः। मेघकालो महादंष्ट्रः संवर्त्तकबलाहकः ७४
घण्टोघण्टोघटीघण्टी चरुचेलीमिलीमिली। ब्रह्मकायिकमग्नीनां दण्डी मुण्डत्रिदण्डधृक्
७५ चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चातुर्होत्रप्रवर्त्तकः। चातुराश्रम्यनेता च
चातुर्वर्ण्यकरश्च यः ७६ सदा चाक्षप्रियो धूर्त्तो गणाध्यक्षो गणाधिपः। रक्तमाल्याम्बरधरो
गिरिशो गिरिकप्रियः ७७ शिल्पिकः शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्त्तकः।
भगनेत्राङ्कुशश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः ७८ स्वाहा स्वधा वषट्कारो
नमस्कारो नमो नमः। गूढव्रतो गुह्यतपास्तारकस्तारकामयः ७९ धाता
विधाता सन्धाता विधाता धारणो धरः। ब्रह्मातपश्च सत्यञ्च ब्रह्मचर्यमथार्जवम्
८० भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः। भूर्भुवःस्वरितश्चैव ध्रुवोदान्तो
महेश्वरः ८१ दीक्षितो दीक्षिनःक्षान्तो दुर्दान्तो दान्तनाशनः। चन्द्रावर्त्तोयुगावर्त्तः
संवर्त्तः संप्रवर्त्तकः ८२ कामोबिन्दुरणुस्थूलः कर्णिकारस्रजप्रियः। नन्दीमुखो
भीममुखः सुमुखो दुर्मुखोमुखः ८३ चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वग्निमुखस्तथा।

हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोरगपतिर्विराट् ८४ अधर्महा महापार्श्वश्चण्डधारो
गणाधिपः । गोनर्दो गोप्रतारश्च गोवृषेश्वरवाहनः ८५ त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो
गोमार्गो मार्ग एव च । श्रेष्ठस्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पः कम्प एव च ८६ दुर्वारणो
दुर्विषहो दुःसहो दुरतिक्रमः । दुर्धर्षो दुष्प्रकम्पश्च दुर्विषो दुर्जयो जयः ८७
शशः शशाङ्कः शमनः शीतोष्णक्षुज्जराधिधृक् । आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा
व्याधिरेव च ८८ मम यज्ञमृगव्याधो व्याधीनामागमोगमः । शिखण्डीपुण्डरीकाक्षः
पुण्डरीकवनालयः ८९ दण्डधारस्त्र्यम्बकश्च उग्रदण्डोण्डनाशनः ।
विषाग्निपाः सुरश्रेष्ठः सोमपास्त्वं मरुत्पतिः ९० अमृतपास्त्वं जगन्नाथ देवदेवगणेश्वरः ।
विषाग्निपा मृत्युपाश्च क्षीरपाः सोमपास्तथा । मधुश्च्युतानामग्रपास्त्वं
त्वमेव तुषिताद्यपाः ९१ हिरण्यरेताः पुरुषस्त्वमेव त्वं स्त्री पुमांस्त्वं च नपुंसकं च ।
बालो युवा स्थाविरो जीर्णदंष्ट्रस्त्वं विश्वकृद्विश्वकृतां वरेण्यः ९२ नागेन्द्रः शक्र
एवत्वं । विश्वकर्ता च विश्वकृत् । विश्ववाहो विश्वरूपस्तेजस्वी विश्वतोमुखः ।
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः ९३ महोदधिः सरस्वतीवाग्बलमनलोनिलः ।
निमेषोन्मेषकर्मा वै ह्यहोरात्रप्रकाशकः ९४ न ब्रह्मा न च गोविन्दः
पौराणा ऋषयो न ते । माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव ९५ या मूर्त्तयः
सुसूक्ष्मास्ते न मह्यं यान्ति दर्शनम् । त्राहि मां सततं रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ९६
रक्ष मां रक्षणीयोहं तवानघ नमोस्तु ते । भक्तानुकम्पी भगवान् भक्तश्चाहं सदा
त्वयि ९७ यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्य दुर्दृशः । तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे
गोप्तास्तु नित्यशः ९८ यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाः संयतेन्द्रियाः । ज्योतिः
पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ९९ जटिले दण्डिने नित्यं लम्बोदरशरीरिणे ।
कमण्डलुनिषङ्गाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः १०० यस्य केशेषु जीमूता
नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु । कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः १०१ सम्भक्ष्य
सर्वभूतानि युगांते पर्युपस्थिते । यः शेते जलमध्यस्थस्तम्प्रपद्येम्बुशायिनम् १०२
प्रविश्य वदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि । ग्रसत्यर्कञ्च स्वर्भानुर्भूत्वा मां सोभिरक्षतु
१०३ येचानुपतिता गर्भा यथाभागानुपासते । नमस्तेभ्यः स्वधा स्वाहा प्राप्नुवन्तु
मुदन्तु ते १०४ येङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम् । रक्षन्तु ते हि मां
नित्यं नित्यञ्चाप्याययन्तु माम् १०५ ये न रोदन्ति देहस्था देहिनो रोदयन्ति
च । हर्षयन्ति न हृष्यन्ति नमस्तेभ्योस्तु नित्यशः १०६ ये नदीषु समुद्रेषु पर्वतेषु
गुहासु च । वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारे गहनेषु च १०७ चतुष्पथेषु रथ्यासु

चत्वरेषु तटेषु च। हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च १०८ येषु पञ्चसु
भूतेषु दिशासु विदिशासु च। चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु १०९
रसातलगता ये च ये च तस्मै परं गताः। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्योस्तु
नित्यशः ११० येषां न विद्यते संख्या प्रमाणं रूपमेव च। असंख्येयगुणा रुद्रा
नमस्तेभ्योस्तु नित्यशः १११ सर्वभूतकरो यस्मात्सर्वभूतपतिर्हरः। सर्वभूतान्तरात्मा
च तेन त्वन्न निमन्त्रितः ११२ त्वमेव हीज्यसे यस्माद्यज्ञैर्विविधदक्षिणैः।
त्वमेव कर्त्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः ११३ अथवा मायया देव सूक्ष्मया तव
मोहितः। एतस्मात्कारणाद्वापि तेन त्वं न निमन्त्रितः ११४ प्रसीद मम भद्रन्ते
भवभावगतस्य मे। त्वयि मे हृदयं देव त्वयि बुद्धिर्मनस्त्वयि ११५ स्तुत्वैवं
स महादेवं विरराम प्रजापतिः। भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत ११६ परितुष्टोस्मि
ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत। बहुनात्र किमुक्तेन मत्समीपे भविष्यसि ११७
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च। प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि
११८ अथैनमब्रवीद्वाक्यं लोकस्याधिपतिर्भवः। आश्वासनकरं वाक्यं
वाक्यविद्वाक्यसंमितम् ११९ दक्ष दक्ष न कर्त्तव्यो मन्युर्विघ्नमिमं प्रति। अयं
यज्ञहरस्तुभ्यं दृष्टमेतत्पुरातनम् १२० भूयश्च ते वरं दद्यां तं त्वं गृह्णीष्व सुव्रत।
प्रसन्नवदनो भूत्वा तदिहैकमनाः शृणु १२१ वेदात्षडङ्गादुद्धृत्य सांख्ययोगाच्च
युक्तितः। तपः सुतप्तं विपुलं दुश्चरं देवदानवैः १२२ अपूर्वं सर्वतोभद्रं विश्वतो
मुखमव्ययम्। अब्दैर्दशाहसंयुक्तं गूढमप्राज्ञनिन्दितम् १२३ वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं
क्वचित्समम्। गतां तैरध्यवसितमत्याश्रममिदं व्रतम् १२४ मया पाशुपतिं
दक्ष शुभमुत्पादितं पुरा। तस्य चीर्णस्य तत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम् १२५
तच्चास्तु ते महाभाग त्यज्यतां मानसो ज्वरः। एवमुक्त्वा महादेवः सपत्नीकः
सहानुगः। अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामितविक्रमः १२६ दक्षप्रोक्तं स्तवमिमं
कीर्त्तयेद्यः शृणोति वा। नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् १२७ यथा
सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवाञ्छिवः। तथा स्तवो वरिष्ठोयं स्तवानां ब्रह्मसंमितः १२८
यशोराज्यसुखैश्वर्य्यकामार्थधनकाङ्क्षिभिः। श्रोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च
यत्नतः १२९ व्याधितो दुःखितो दीनश्चोरग्रस्तो भयार्दितः। राजकार्य्याभियुक्तो
वा मुच्यते महतो भयात् १३० अनेनैव तु देहेन गणानां समतां व्रजेत्।
तेजसा यशसा चैव युक्तो भवति निर्मलः १३१ न राक्षसाः पिशाचा वा न भूता
न विनायकाः। विघ्नं कुर्युर्गृहे तस्य यत्रायं पठ्यते स्तवः १३२ शृणुयाच्चैव या नारी

तद्भक्ता ब्रह्मचारिणी। पितृपक्षे मातृपक्षे पूज्या भवति देववत् १३३ शृणुयाद्यः स्त-
वं कृत्स्नं कीर्त्तयेद्वा समाहितः । तस्य सर्वाणि कर्म्माणि सिद्धिं गच्छन्त्यभीक्ष्ण-
शः १३४ मनसा वर्जितं यच्च यच्च वाचानुकीर्त्तितम्। सर्वं संपद्यते तस्य स्तवस्या-
स्यानुकीर्त्तनात् १३५ देवस्य च गुहस्यापि देव्या नन्दीश्वरस्य च । बलिं सुवि-
हितं कृत्वा दमेन नियमेन च १३६ ततस्तु युक्तो गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रम-
म् । ईप्सिताँल्लभते सोर्थान्भोगान्कामांश्च मानवः १३७ मृतश्च स्वर्गमाप्नोति
तिर्यक्षु च न जायते । इत्याह भगवान् व्यासः पराशरसुतः प्रभुः ॥ २३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

एकसौ बारह का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! स्तोत्रपाठ आदि के द्वारा चित्तशुद्धि होने से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना योग्य है यह आपने कहा परन्तु इस संसार में जिस पुरुष को अध्यात्मविद्या का ज्ञान वर्त्तमान है वह कैसे और कहाँ से प्राप्त होताहै उस को कृपा करके मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि, तुम बुद्धि के द्वारा जो उस को पूछते हो तो सबका विदित करनेवाला सर्वोत्तम ज्ञान है उसको मैं तुमसे बड़ी स्पष्टता से कहूंगा तू उसको चित्त लगाकर यथार्थता से सुन। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि यह पञ्चमहाभूत सबजीवों के उत्पत्तिस्थान और नाशस्थान हैं, हे भरतवंशिन् ! सब जीवों का देह सूक्ष्म स्थूल गुणों का समूह है वह बुद्धि आदि गुण परमकारणरूप आत्मा में सदैव लय होते हैं और प्रकट भी होते हैं, इसी आत्मा से वह सब जीव उत्पन्न हुए और लय भी होते हैं इसी प्रकार जैसे सागर से लहरें उत्पन्न होती हैं वैसेही जीवों से पञ्चमहाभूत भी प्रकट होते हैं, जैसे कि कछुआ अपने अंगों को फैलाकर समेट लेता है इसीप्रकार यह पञ्चभूत भी उन वृद्धजीवों के छोटे अंग हैं अर्थात् देखते ही गुप्त और प्रकट होने को समर्थ हैं, यह तो शरीर को पञ्चमहाभूतों से भराहुआ कहा—अब उसमें उन भूतों के अंशों का विवेक करते हैं—शरीर में जो शब्द है वह निश्चय आकाश का अंशहै और देहकी कठोरता पृथ्वीका अंशहै प्राण वायुका अंशहै; रस जल का; रूप अग्नि का अंश है, यह सब जड़ चैतन्य ब्रह्मरूप हैं प्रलय में उसी ब्रह्ममें लय होते हैं और उत्पत्तिकालमें उसीसे उत्पन्न होते हैं यह केवल कथनमात्रही है वास्तव में रस्सी में सर्प के होने और लय होने के समान है यह वेदान्तपक्ष है; पञ्चमहाभूतों के उत्पन्न करनेवाले अहंकार ने सब देहों में आकाशादि

तत्त्व और विषयों को कल्पना किया है और देह के भीतर उन आकाशादि तत्त्वों में जो कार्यरूप दृष्ट होताहै उसको कहता हूं, शब्द श्रोत्रेन्द्रिय और देह के छिद्र यह तीनों आकाश से उत्पन्न हैं रस, आर्द्रता, जिह्वा यह जल के गुण हैं, रूप, चक्षुरिन्द्रिय, जठराग्नि यह अग्नि के तीनों गुण हैं, सूंघने के योग्य गन्ध घ्राणेन्द्रिय और सब शरीर यह पृथ्वी के गुण हैं, प्राण, स्पर्शचेष्टा यह वायु के गुण हैं हे राजन्! पञ्चतत्त्वों से उत्पन्न होनेवाले यह सब गुण वर्णन किये, और इन शब्दादि पन्द्रह वस्तुओं में उस मायाधीश ईश्वर ने सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तीन गुण और चारोंयुग का आत्मा चिदाभास, जीव अपने विषयस्वरूप का निश्चय और छठा चित्त और अच्छीतरह कल्पना किये जो कफ वायु से ऊपर और मस्तक से नीचे देखते हो उस सब ओर में बुद्धि ही वर्त्तमान है अर्थात् वह बुद्धि शब्द से लेकर चित्ततक इक्कीस तत्त्वों का रूप है, अब बुद्धि के सात रूपों को कहते हैं—मनुष्य में पांच इन्द्रियां छठा चित्त सातवीं बुद्धि और आठवां क्षेत्रज्ञ को कहते हैं ये बुद्धि से विलक्षण हैं, इन्द्रिय और इन्द्रियों का कर्त्ता उनके कर्म के विभाग से जानने के योग्य हैं, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण और वह सात्त्विक आदि भाव भी उन इन्द्रियों के कर्त्ता में आश्रित हैं अर्थात् उससे उत्पन्नहुए हैं, चक्षुरिन्द्रिय देखने को, चित्त सुनने को, बुद्धि निश्चय करने को, और क्षेत्रज्ञ उदासीन चिन्मात्र कहाजाता है तमोगुण, सतोगुण, रजोगुण चारों युगों का आत्मा जीव और कर्म इन पांचों गुणों से बुद्धि वारंवार विषयों में प्राप्त की जाती है बुद्धिही सब इन्द्रिय और मन इत्यादि का रूप है और तमोगुण आदि का भी रूप है, बुद्धि न होने से गुणों का भी अभाव है देखने के कारण से चक्षुरिन्द्रिय, सुनने से श्रोत्रइन्द्रिय, सूंघने से घ्राणेन्द्रिय, रसों के स्वादलेने से रसनेन्द्रिय, छूने से स्पर्शेन्द्रिय यह सब बुद्धि ही सब रूपों को करती है अर्थात् जब कुछ इच्छा करती है तब वह चित्त होजाती है, यह बुद्धि के पांच प्रकार के अधिष्ठान हैं इन्हीं को चित्त समेत विषयवाली इन्द्रिय कहते हैं इन्हींके दूषित होनेपर बुद्धि भी दोषयुक्त होती है, साक्षीपुरुष में नियत बुद्धि सात्त्विकआदि दुःख सुख में वर्त्तमान होती है कभी हर्ष कभी शोक कभी सुख से तृप्त नहीं होती है न कभी दुःख से वैराग्य को पाती है यह सर्वात्मा बुद्धि सुख, दुःख, मोह इन तीनों भावों को उनका आत्मारूप होनेपर भी ऐसे उल्लंघकर वर्त्तमान होती है जैसे कि तरङ्गयुक्त समुद्र अपनी महावेला को अर्थात् मर्य्यादा

को उल्लंघनकर वर्त्तमान होता है सुख आदि भाव से पृथक् होनेवाली बुद्धि सत्तामात्र चित्त में वर्त्तमान होती है अर्थात् पूरे ज्ञान में सूक्ष्मरूप होती है, फिर उत्थानकाल में प्रकट होनेवाला रजोगुण बुद्धिभाव से वर्त्तमान होता है बड़ा-हर्ष, अनुराग, आनन्द, सुख, चित्त की शान्ति यह सातों के गुण बड़ेउपाय से वर्त्तमान होते हैं, ईर्षा, शोक, अंगों का जलना, चिन्ता, अधैर्य्य, यह रजोगुण के चिह्न कारण और अकारण दोनों प्रकार से दिखाई देते हैं, अविद्या, राग, मोह, प्रमाद, समय, चेष्टा, अचेष्टा, भय अपने तपआदि की वृद्धि न करना शोक, मोह, निद्रा, अर्धनिद्रा यह नानाप्रकार के तमोगुण के चिह्न महाप्रारब्धहीनता से उत्पन्न होते हैं, देह और मन में जब अनुराग उत्पन्न होता है तब सात्त्विक भाव होताहै और उसको विना ध्यान किये जो दुःखी होकर प्रीति नहीं करता है वहां रजोगुणी कर्म जानो और भय करके चिन्ता न करे अर्थात् दुःख को कुछ न गिने, और मोहयुक्त देह और मन होय इस तर्कणा से रहित जानने के अयोग्य को तमोगुण जाने, यहां बुद्धि की जितनी गति हैं वह वर्णन करीं इन सबको जानकर ज्ञानी होजाय, उस सूक्ष्मबुद्धि और क्षेत्रज्ञके अन्तर को समझो कि बुद्धि तो गुणों को उत्पन्न करती है और क्षेत्रज्ञ गुणों को नहीं उत्पन्न करता है, इसप्रकार स्वभाव से पृथक् वह दोनों सदैव ऐसे संयुक्त भी रहते हैं जैसे मत्स्य जल से पृथक् और मिला हुआ होता है गुणों ने आत्मा को नहीं जाना परन्तु वह आत्मा सब ओर से गुणों को जानता है, जैसे कि अज्ञानी गुण और गुणीरूप से आत्मा और गुणों का योग जानता है उसीप्रकार गुणों का देखनेवाला पुरुष गुणों को आत्मारूप देखता है, इसके अनन्तर गुण किसमें आश्रित रहते हैं उसको भी कहते हैं—बुद्धि का आश्रय अर्थात् उपादान नहीं है क्योंकि उसका कर्त्ता अज्ञान नाशवान् है सतोगुण आदि के कार्य महत्तत्त्वादि से अन्य गुण भी उत्पन्न होते हैं परन्तु उनगुणों को कभी कोई भी नहीं जानता है जैसे कि रस्सी के सर्प का कारण अज्ञान उसके कार्य्य से जान लियाजाता है परन्तु वास्तव में नहीं है और गुणों के मिथ्या होने से उसका कार्य्य भी दृष्ट नहीं पड़ता इस शंका को कहते हैं इन संसार के बुद्धि आदि गुण का आधार बुद्धिही है, बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है क्षेत्रज्ञ देखता है इन बुद्धि और क्षेत्रज्ञ का संयोग प्राचीन है, यह ऐसे स्वभाववाला है उसको बुद्धि से जानकर हर्ष शोक मित्रता से रहित होकर मनुष्य विहार करे, जड़ अज्ञान इन्द्रियां जिनमें मध्यस्थ बुद्धि

है उनसे वह आवरण भंग कियाजाता है अर्थात् परदा अलग कियाजाता है वह इन्द्रियां दीपक के समान हैं तात्पर्य्य यह है कि इन्द्रियां दीपक बुद्धि कर्त्ता और चिदात्मा साक्षी है, यह स्वभावसिद्ध है जैसे कि मकड़ी तारों को पैदा करती है उसीप्रकार बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है, इस हेतु से जो गुण बुद्धि से उत्पन्न होते हैं वह मकड़ी के तार की समान जानने योग्य हैं अर्थात् उसी का रूप हैं, नाशरूप गुण निवृत्त नहीं होते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष में प्रवृत्ति नहीं जाती है आशय यह है कि उक्तरस्सी के सर्प की समान नाश को पाते हैं कोई ऐसा निश्चय करते हैं कोई प्रतिकूल निश्चय करते हैं, इस हृदयकी दृढ़ चिन्तारूपी बुद्धि गांठ को खोलकर निस्सन्देह शोकरहित सुख से वर्त्तमान होजाय, जैसे कि थाह के न जाननेवाले अज्ञानी मोह से युक्त होकर संसाररूपी घोर नदी में गिरकर दुःख को पाते हैं उसीप्रकार बुद्धियोगरूप नौका का न जाननेवाला जीव भी कष्ट को पाता है, संसारनदी से पारजानेवाले ब्रह्मविद्या में कुशल धैर्य्यवान् ज्ञानी पुरुष दुःख को नहीं पाते हैं, ज्ञानियों को वह संसारी बड़ाभय नहीं होता है जो अज्ञानियों को है किसीकी गति अर्थात् मोक्ष अधिक नहीं है सबकी मोक्ष बराबर है ज्ञानियों में कुछ भी परस्पर अन्तर नहीं होता है, ऐसे ज्ञानी के फल कहते हैं—यह ज्ञानी जो बड़े दोषवाले कर्म को करता है और जो इसने ज्ञानदशा से पूर्व में किया है वह सब केवल ज्ञान से ही नाश होजाता है यह ज्ञानी अज्ञानदशा में जो दूसरे के कर्म्म में दोष लगता है और रागादि दोषों को आप करता है उन दोनों बातों को ज्ञानदशा में नहीं करता है अर्थात् आप दोषरहित होकर दूसरे के दोष को नहीं देखता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे द्वादशोपरिशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

एकसौ तेरहं का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! मनुष्य सुख दुःख और मृत्यु से भय करते हैं यह दोनों जैसे हम को बाधा न करें वह उपाय आप मुझसे कहिये भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें नारदजी और समंगऋषि का संवाद है नारदजी बोले कि हृदय से दण्डवत् करते हो अर्थात् अत्यन्त नम्र हो और भुजाओं से तरते हो और बड़े संकट में भी आनन्द में रहते हो सदैव प्रसन्नचित्त और शोच से रहित दृष्ट आते हो आपके अव्याकुल चित्त या प्रियवस्तु के वियोग से उत्पन्न दुःख और भय को

भी नहीं देखता हूं बालक के समान रागद्वेषरहित चेष्टा करते हो सदैव तृप्तरूप सुखपूर्वक नियत हो, समंगऋषि ने उत्तर दिया कि हे प्रशंसा करनेवाले ! मैं भूत, भविष्य, वर्त्तमान कालों के सिद्धान्त को जानता हूं इसकारण चित्त से व्याकुल नहीं होता हूं, और लोक में फल के देनेवाले कर्म्मों को और विचित्रफलों को भी जानता हूं इसीकारण से कर्म के प्रारम्भ को त्यागकर फिर मोहित नहीं होता हूं, हे नारदजी ! जैसे कि धन स्त्री से रहित विद्यारूपी धन से पूर्ण अन्धे, सिड़ी, मूर्ख मनुष्य जीवते हैं उसीप्रकार मुझको भी निर्वाह करनेवाला समझो, नीरोगदेह, स्वर्गवासी, पराक्रमी और निर्बल मनुष्य पूर्व कियेहुए कर्म्मोंके द्वारा जीवते हैं उसीकारण से हम को भी पूजन करते हैं, हजारों मनुष्य निर्वाह करते हैं कोई सागही खाकर जीवते हैं उसीप्रकार हम भी अपना निर्वाह करते हैं, हे नारदजी ! जब हम शोक के मूल अज्ञान के अभावरूप होने से शोच नहीं करते तब यज्ञादिक धर्म्म अथवा लौकिक कर्म्मों से हमको क्या प्रयोजन है क्योंकि जब सुख और दुःख दोनों नाशवान् वस्तु हैं तब हमको वह कैसे आधीन कर सक्ते हैं, ज्ञानी मनुष्य जिस मनुष्य को ऐसा कहते हैं कि उसकी इन्द्रियों की शुद्धता अर्थात् मोहादिक से रहित होना ज्ञान का मूल है इन्द्रियां ही मोह करती हैं इसप्रकार से जो शोचता है वही ज्ञानी है और जिसकी इन्द्रियां ज्ञान विहीन हैं उसको ज्ञान का लाभ नहीं है, जो अज्ञानी धन आदिका अहंकारी है वही मोह में प्रवृत्त होता है इसकारण अज्ञानी मनुष्य का न यह लोक है न परलोक है दुःख सुख सदैव नहीं रहते हैं तो दुःख में शोच और सुख में अहंकार भी न करना चाहिये, मुझसा आत्मज्ञानी इस संसाररूप और चारोंओर घूमनेवाले दुःख को कभी न माने प्रिय भोगों को और सुख को कभी न चाहै और दैवयोग से होनेवाले दुःख में चिन्ता न करे, योग में नियत होकर सुखादि की चाहना न करे और अप्राप्तवस्तु की इच्छा न करे बहुत से अर्थ लाभ में भी प्रसन्न न हो और अर्थों के नाश में भी कभी व्याकुल न हो बान्धव धन सब शास्त्र और मन्त्र पराक्रम यह सब दुःख से नहीं बचासक्के शम दमआदि गुणों से ही शान्ति अर्थात् निर्विकल्पता को पाते हैं, जो योगी नहीं है उसके बुद्धि भी नहीं है और योग के विना सुख की भी प्राप्ति नहीं होती हे राजन् ! मन प्राण और इन्द्रियों के कर्म्मों के रोकने में सामर्थ्य और दुःख का त्याग यही दोनों सुखरूप हैं, योग में प्रवृत्ति होने के लिये लौकिक प्रिय वस्तुओं की

निन्दा करते हैं प्रिय वस्तु प्रसन्नता और सुखको उत्पन्न करती है परन्तु फिर वही हर्षसुख अहंकार को बढ़ाती है उससे नरक होता है इसी हेतु से मैं उनको अत्यन्त त्याग करता हूं और उस सुख दुःख में इन शोक और भय आदि को मैं साक्षी के समान मोह उत्पन्न करनेवाला देखता हूं, और शोक और तप से पृथक् अर्थ, काम, तृष्णा और मोह को अत्यन्त त्याग करके इस पृथ्वीपर विचरता हूं मुझको इस लोक परलोक में मृत्यु अधर्म आदि किसी से भी ऐसे भय नहीं है जैसे कि बड़े अमृत पीनेवाले को भय नहीं होता है ब्रह्मन्, नारदजी! मैं अविनाशी योगरूप तपको करके ब्रह्म को जानता हूं इसीकारण से प्राप्तहोनेवाला शोक मुझको पीड़ा नहीं देता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे त्रयोदशोपरिशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

एकसौ चौदह का अध्याय ॥

उस ब्रह्मविद्या को जिसमें उपदेश ही प्रधान है सुनकर उसीको युक्तिप्रधान जानने की इच्छा से युधिष्ठिर बोले—हे पितामह! जिसने सब शास्त्रों के सिद्धान्त को नहीं जाना और सदैव संशय में ही पड़ा हुआ है और उस आत्मदर्शन के निश्चय के लिये शम दमादि के अनुष्ठान को नहीं किया उसके कल्याण को आप कहिये, भीष्मजी बोले कि, ईश्वर में चित्त लगाकर गुरु की पूजा और आचार्यों का सदैव पूजन करे गुरु आदि से शास्त्रों का सुनना तदनन्तर शुद्ध ब्रह्म से सम्बन्ध रखनेवाला कल्याण कहाजाता है, इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिसमें गालवऋषि और देवर्षि नारदजी का संवाद है, जितेन्द्रिय और कल्याण की इच्छा करनेवाले गालवऋषिने उन मोह और ग्लानि से रहित वेदपाठी ज्ञानतृप्त नारदजी से कहा कि हे मुने! मनुष्य जिन गुणों से लोक में सबका प्यारा होता है उन सब गुणों को मैं आपमें वर्त्तमान देखता हूं, इसप्रकार के आपसरीखे ज्ञानी हमसरीखे आत्मज्ञान न जाननेवाले अज्ञानियों का सन्देह दूर करने के योग्य हो, करने के योग्य कर्मोंकी मुख्यता न होने से ज्ञान में एकसी प्रवृत्ति होती है इसनिमित्त जो करने के योग्य है उसको हम नहीं निश्चय करसक्के इससे आप दान की मुख्यता को वर्णन कीजिये, जिसमें अनुष्ठान से उत्पन्न होनेवाला परिश्रम नहीं है उसको आश्रम ज्ञान कहते हैं और उसके जो साधक हैं उसको शास्त्र में आश्रम कहते हैं वह सब पृथक् २ आचारों के दिखानेवाले हैं हे भगवन्! सब मनुष्य भी उनको जानते हैं, शास्त्रों से उपदेश पायेहुए

और अपने २ शास्त्रों को अंगीकार करनेवाले नानाप्रकार के मार्गों में चलनेवाले और अपने ही शास्त्रों से तृप्त ऐसे पुरुषों को देखकर सन्देह करनेवाले हमलोग कल्याण को नहीं पाते हैं, जो शास्त्र एकही होय तो कल्याण प्रकट हो और बहुत शास्त्रों के ही कारण से कल्याण अत्यन्त गुप्त है, इस हेतु से मुझको वह कल्याण बड़े २ संदेहों से भरा हुआ दिखाई देता है हे भगवन् ! उसको मुझे समझाकर उपदेश करो, नारदजी बोले कि, हे तात, गालव ! जो चार आश्रम अर्थात् शास्त्र हैं उन सबको गुरु से पढ़कर विचारो और उन शास्त्रों के अनेकरूपवाले गुणदेश जो कि जहां तहां विपरीत रीति से नियत हैं उनको भी विचार करो जिसप्रकार दूसरे का धर्म्म गर्मशिलापर चढ़ना है वह हमको अधर्म है और हमारा धर्म पशु यज्ञादिक है वह दूसरों का अधर्म है यह विपरीत रीति से नियत धर्म हुआ, निस्संदेह जैसे स्थूलदृष्टि से देखे हुए वह शास्त्र अच्छे प्रकार से अभीष्ट आत्मतत्त्व धर्म को प्राप्त नहीं कराते हैं उसीप्रकार दूसरे सूक्ष्मदृष्टि मनुष्यों ने शास्त्रों की परमगति को अच्छेप्रकार से देखा है, जो शास्त्र कल्याणरूप और संशय से रहित हैं और जीवों की निर्भयता देनेवालों को अनुग्रहरूप और हिंसा करनेवालों को दण्डरूप तीनों वर्गों का समूह है उसीको ज्ञानियों ने कल्याणरूप कहा है और पापकर्म से पृथक् सदैव पवित्र कर्म करना सत्पुरुषों से उत्तम व्यवहार वर्त्तना यह भी कल्याणरूप है, सब जीवों में मृदुता, व्यवहार में सत्यवक्ता, प्रियभाषण, देवपितरों को भाग देना, अतिथिसत्कार करना, बाल बच्चे नौकर चाकरों का पोषण करना, अविनाशी, तत्त्वों का कहना सुनना यह सब और ब्रह्म प्राप्त करनेवाले ज्ञान कठिनता से प्राप्त होते हैं, जो जीवों का अत्यन्त उपकारी है मैं उसको सत्य ब्रह्म कहता हूं, अहंकार का त्याग, मोह का रोकना, संतोष, अकेला घूमना इन सबको अविनाशी कल्याण कहते हैं, धर्म से वेदों का पढ़ना, वेदान्तों का विचार करना, ज्ञान अर्थ के अनुभव की इच्छा भी कल्याणदायी है और वह मनुष्यरूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श को किसी दशा में भी अधिक सेवन न करे जो अपना कल्याण चाहे, रात्रि में चलना, दिन में सोना, आलस्य, निर्दयता, अहंकार, भोजनादि में न्यूनाधिकता इन सब बातोंको न करे जो कल्याण चाहे, दूसरे की निन्दा से अपनी प्रतिष्ठा न चाहे केवल अपने गुणों से ही नीचों से प्रतिष्ठा को चाहे, जो प्रतिष्ठावान् पुरुष अपने गुण और ऐश्वर्य के कारण दूसरे गुणवानों की निन्दा करते हैं वह बड़े

अज्ञानी हैं वह अपने अभिमान से बड़े लोगों को शिक्षा करते हुए अपने को बड़ा मानते हैं, किसी की निन्दा न करता हुआ अपनी प्रशंसा रहित गुणी दयालु पुरुष ब्रह्म को पाता है न बोलने से पुष्पों की पवित्र गन्ध उठती है और आकाश में निर्मल सूर्य देवता विना बोले प्रकाश करते हैं, इसप्रकार के दूसरे जीव बुद्धि के द्वारा संसार में प्रसिद्ध हैं जो अधिकभाषण नहीं करते हैं वह लोक में यश को प्रकाश करते हैं, मूर्ख मनुष्य केवल अपनी प्रशंसा से लोक में प्रकाश नहीं करता है, विद्वान् मौन भी प्रकाशमान होता है ऊँचे स्वर से कहा हुआ भी असार शब्द निचाई को पाता है और धीरे भी कहा हुआ सुन्दर शब्द लोकों में प्रकाश करता है, अज्ञानी मूर्खों का कहा हुआ असारवान् बहुत बड़ा शब्द अन्तरात्मा को ऐसा दिखाता है जैसे कि सूर्य अपने अग्निरूप को, इसीकारण शास्त्रों के अन्तरों से नानाप्रकार रखनेवाली बुद्धि को निश्चय करते हैं, जीवों का जो बड़ा लाभ है वही हमको उत्तम दिखलाई देता है, विना पूछे किसी से कुछ न कहै और पूछा हुआ भी न्याय से विरुद्ध न कहै, शास्त्रों के स्मरण रखनेवाली बुद्धि का स्वामी ज्ञानी मनुष्य जड़ के समान बैठे और ऐसे मनुष्यों के मध्य में रहना चाहै जो सदैव धर्म्मकर्त्ता साधु दानी और अपने धर्म्म में प्रीति करनेवाले हों, जिस स्थान में चारों वर्णों के धर्मों का योग हो वहां किसी दशा में भी निवास न करे जो अपना भला चाहै, कर्म का प्रारम्भ न करनेवाला, यथालाभसन्तोषी पुरुष इस लोक में पुण्यात्माओं में पुण्य और पापात्माओं में पाप को पाता है, जैसे कि जल अग्नि और चन्द्रमा के स्पर्श को पुरुष जानता है उसीप्रकार हम पाप पुण्य के स्पर्श को देखते हैं अर्थात् कुसंग और सुसंग पाप पुण्य का देनेवाला है, देवता आदि से शेष अन्न के भोजन करनेवाले स्वादु को न देखते जो भोजन करते हैं और जो बुद्धिसम्बन्धी विषयों को भोगते हैं उनको कर्मबन्धन में बँधे हुए जानो, अब गुरु शिष्य के धर्मों का वर्णन करते हैं—गुरु आत्मज्ञान धर्म के चाहनेवालों को उपदेश करे और अश्रद्धावान् को कभी न करे और जिस देश में अप्रतिष्ठापूर्वक गुरु को पूजते हैं ऐसे देश को ज्ञानी सदैव त्याग करे, जहांपर कि गुरु और शिष्य की आजीविका अच्छेप्रकार से नियत हो और बुद्धि के अनुसार शास्त्रयुक्त हो ऐसे देश को कभी न त्यागे, जहां शास्त्र से विरुद्ध होकर लोग पण्डितों के मिथ्या दोषों को वर्णन करें वहांपर अपनी प्रतिष्ठा चाहनेवाला कभी न रहै जिस स्थान

पर लोभियों ने धर्मरूपी सेतुओं को तोड़ फोड़ डाला हो वहां और जहांपर कि लोग शोकरूपी अग्नि से व्याकुल हों कभी न जाय, शंका और मत्सरता-रहित जहाँ अच्छेलोग धर्म्म को करते हैं वहां अवश्य जाय और उन धर्मकर्त्ता साधुओं में नियत होकर निवास करे, जहां लोग धन आदि के निमित्त धर्म करें वहांपर भी कभी न जाय क्योंकि वह पाप करनेवाले मनुष्य हैं, जिस स्थान में मनुष्य पापकर्मों को करके अपना जीवन करते हों वहां से ऐसे शीघ्र अलग होजाय जैसे सर्प के स्थान से पृथक् होते हैं, जहां कोई पूर्वकर्म्म वासना से कठिन आपत्तिरूपी दुःख में पड़ा हुआ हो वहां आत्माभिलाषी को प्रायश्चित्त करना योग्य है; जिस देश में राजा और राजा के मनुष्य छोटे बड़ों का अपमान करके बालबच्चों से पहले भोजन करनेवाले हैं ऐसे देश को भी ज्ञानी सदैव त्याग करे; जिस देश में सदैव धर्म करनेवाले ब्रह्मरूप यज्ञ कराने और पढ़ाने में प्रवृत्त वेदपाठी प्रथम भोजन करते हैं ऐसे देश में सुख से निवास करे; जिस देश में अच्छे प्रकार से अनुष्ठान किये हुए यज्ञों में स्वधा, स्वाहा, वषट्कार सदैव वर्त्तमान होते हैं उस देश में निस्संदेह निवास करे जिस देश में ब्राह्मण आजीविका से दुःखी अपवित्र रहते दीखें उस निकटवर्त्ती देश को भी अवश्य ऐसे त्यागे जैसे कि विषयुक्त भोजन को त्यागते हैं, जिस देश में फल की इच्छारहित दान को मनुष्य करते हैं उस देश में ऐसे सावधानचित्त होकर निवास करे जैसे कि चित्त का जीतनेवाला कर्मों से निवृत्त मनुष्य हो, जिस देश में अपराधियों को दण्ड और ज्ञानियों का सत्कार होता है वहां विचरे और पुण्यात्मा साधुओं में निवास करे, जो मनुष्य जितेन्द्रियोंपर क्रोध करते हैं और साधुओं में दुराचारी हैं उन लज्जारहित लोभी मनुष्यों को बड़ाभारी दण्ड देना चाहिये, जिस देश में सदैव धर्मपर नियत और कामनाओं का स्वामी राजा इच्छाओं को त्याग करके प्रजा का पालन धर्म से करता है उस देश में भी विना विचार किये निवास करे, कल्याण न होने में भी प्रसन्नचित्त राजा लोग सब देशवासियों को शीघ्र कल्याणयुक्त करते हैं, हे तात ! मैंने यह कल्याण तुमसे कहा और आत्मारूप कल्याण प्रधानता से वर्णन करना असंभव है ऐसी वृत्तिवाले सावधानचित्त पुरुष का कल्याण तपसे ही प्रत्यक्ष होगा ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे चतुर्दशोपरिशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

एकसौ पन्द्रह का अध्याय॥

युधिष्ठिर ने सब तन्त्रों में सावधान अहिंसाप्रधान मोक्षधर्मों को सुनकर उसे राजाओं से करना कठिन जानकर भीष्मजी से प्रश्न किया कि मुझ सा राजा कर्म में प्रवृत्त होकर किस रीति से पृथ्वीपर विचरे और सदैव किन गुणों से युक्त हो स्नेहबन्धन से छूटे, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिसको अरिष्टनेमि ने पूछनेवाले राजा सगर से वर्णन किया है, सगर ने कहा कि, हे ब्रह्मन्! इस लोक में किस परम कल्याण को करके सुख को पाता है और किस रीति से शोच और व्याकुलतारहित होता है उसको आप मुझे समझाइये इसप्रकार से पूछे हुए सर्वशास्त्रज्ञ अरिष्टनेमि ने अच्छेप्रकारसे विचारकर उपदेश के योग्य इस वचन को कहा कि पुत्र, धन, धान्य, पशु इत्यादि में प्रवृत्तचित्त अज्ञानी पुरुष इसलोक में मोक्षरूपी सुख को नहीं पाता है जिसकी बुद्धि विषयों में मग्न और चित्त लोभ से व्याकुल है, वह इस संसार रूपी रोग का इलाज करने को असमर्थ है वह अज्ञानी संसारी प्रीति की रस्सी में बँधा हुआ मोक्ष के योग्य नहीं समझा जाता है उन प्रीति के बन्धनों को तुझसे कहता हूं कि समय पर पुत्रों को उत्पन्न करके तरुण होने पर उनका विवाहादि करके अपने निर्वाह करने में समर्थ जानकर जीवन्मुक्त होकर सुख-पूर्व्वक विचरो और दैवाधीन प्राप्त होनेवाले विषयों में राग-द्वेष-रहित प्यारी स्त्री का सन्तानयुक्त पुत्रों पर स्नेह करनेवाली वृद्धा जान समय पर मोक्ष का विचार कर उस भार्य्या को त्याग करदो, तुम बुद्धि के अनुसार इन्द्रियों से विषयों को भोगकर संतानयुक्त व असंतान जीवन्मुक्त घूमो, उन विषयों में इच्छा रहित सुखपूर्व्वक जीवन्मुक्त विहार करो। यह विषयों के भोग के पीछे जो त्याग-रूप मोक्ष का प्रयोजन है उसको मैंने तुझसे मिला हुआ वर्णन किया अब ब्यौरेवार कहता हूं उसको सुनो कि लोक में प्रीतिरूपी बन्धन से छूट निर्भय होकर मनुष्य निस्संदेह सुख से विचरते हैं और विषयों में चित्त लगानेवाले लोग निस्संदेह विनाश को पाते हैं, इसीप्रकार इस लोक में भोजन का संचय करनेवाले कीड़े चींटी के समान नाशवान् हैं और भोजन में चित्त नहीं लगानेवाले सुखी हैं, तुझ मोक्ष-बुद्धि को अपने लड़के बालों के लिये यह चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि मेरे विना इनकी कौन दशा होगी, जीव आप ही उत्पन्न होकर वृद्धि को पाता है और आप ही सुख, दुःख और मृत्यु को पाता

है और माता-पिता के द्वारा वा अपनी देह के द्वारा भोजन वस्त्रादि को भी आप ही प्राप्त करता है, जिसको पूर्वसमय में नहीं प्राप्त किया वह इसलोक में प्रारब्धफल के विभाग करनेवाले ईश्वर से उत्पन्न और अपने कर्मों से रक्षित भोजनवाले सब जीव पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं आप मिट्टी के पिण्ड के समान सदैव दूसरे की आधीनता में नियत, निर्बल आत्मावाले पुरुष का कौन सा कारण अपने बाल-बच्चों के पोषण और रक्षा में है, जब कि मृत्यु तेरे देखते हुए बाल-बच्चों को बड़े उपाय करने पर भी मारडालती है वहां अपनी बुद्धि से समझना चाहिए कि इसीप्रकार पूरे पोषण किए विना रक्षा रहित इस जीवित कुटुम्ब को छोड़कर पीछे भी मरेगा, जब सुखी वा दुःखी मृतक भाई, बन्धु, रिश्तेदार आदि को कभी नहीं जानता है तब अपनी आत्मा से समझना चाहिए कि जैसे मैं इन सुखी दुःखियों को नहीं जानता हूं और किसी प्रकार से उनकी सहायता नहीं कीजाती है उसीप्रकार वह भी मुझको न जानेंगे और न सहायता करेंगे, जब घरके लोग तेरे जीते हुए वा मरने पर अपने कर्म से उत्पन्न सुख-दुःख को भोगेंगे और तुम उनकी सहायता नहीं कर सक्के इसीप्रकार वह भी तेरी सहायता नहीं करसक्के इसको जानकर अपना अभीष्ट प्रयोजन करना चाहिये, इस प्रकार हे पूर्णबुद्धिमन् ! इसलोक में कौन किसका है इसको निश्चय करनेवाले तुम मोक्ष में नियत होकर फिर भी सुनो, इस लोक में जिस देहधारी ने क्रोध, लोभ, मोह, क्षुधा, तृषा आदि भावों को जीता है वह सतोगुणी मुक्त-रूप है। जो मनुष्य अज्ञानता से युवावस्था पाकर मद्यपान, स्त्री, शिकार में आत्मा को भूल कर प्रवृत्त नहीं होता है वह भी मुक्तिरूप है, प्रत्यक्ष है कि जो पुरुष सदैव दिन-रात्रि में यह ध्यान करके दुःखी है कि अमुक भोग करना चाहिए वह दोषबुद्धि कहा जाता है, इसीप्रकार जो सदैव सावधान पुरुष अपने चित्त के स्वभाव को स्त्रियों से मुक्त देखता है अर्थात् स्त्री की इच्छा से पृथक् है वह भी बुद्धि के अनुसार मुक्त है, इसलोक में जो पुरुष जीवोंके जन्म-मरण और कर्मों को मूलसमेत जानता है वह मुक्त है देह के व्यवहारों के लिये हजारों लाखों छकड़े भरे हुए अन्नादिक भोजन को और सोने, बैठने को महल पलँग को विचारता है अर्थात् इन सब वस्तुओं के समूहों को निरर्थक जानता है वह भी मुक्त होता है, जो पुरुष इस प्रत्यक्ष संसार को मृत्यु से घायल रोगों से पीड़ित और आजीविका से दुःखी देखता है उसकी भी मुक्ति होती है। जो देखता है वह सन्तुष्ट और जो नहीं

देखता वह नष्ट होजाता है और जो थोड़े में संतुष्ट है वह इसलोक में मुक्त है, यह सब भोजन करनेवाले और भोजनके रूप हैं । जो पुरुष इसको विचारता है अर्थात् अपने को उन दोनों से पृथक् जानता है और मायारूप दुःख सुख के अपूर्वभाव से स्पर्श नहीं करता है वह मुक्त ही है, जिस देहधारी की दृष्टि से शय्या, पलँग, पृथ्वी आदि समान हैं, और शालि (धान) और निन्दित भोजन जिसकी बुद्धि से बराबर हैं वह भी मुक्त-रूप है अतसी के सूत्र का, तृणों का, रेशमी वस्त्र, कम्बल, मृगचर्म आदि का वस्त्र जो समान समझता है वह मुक्त-रूप है, जो पुरुष इसलोक को छह तत्त्वों से उत्पन्न जानता है अर्थात् विचारकर उसीप्रकार समदर्शी होकर बर्ताव करता है और जिसकी बुद्धि से हानि, लाभ, सुख, दुःख, हार, जीत, इच्छा, अनिच्छा, भय, निर्भयता, व्याकुलता आदि समान हैं वह सबप्रकार से मुक्त है, इसीप्रकार रुधिर, मूत्र, विष्ठा आदि दोषों को और बहुत दोष रखनेवाले देह को देखकर भी मुक्त होता है, जो पुरुष वृद्धावस्था की झुर्री, बालों की श्वेतता, निर्बलता, कुरूपता, कुब्जता आदि को देखता है और विचारता है वह भी मुक्त होता है । समय की लौट पौट से पुरुषार्थ हीन होने पर अन्धता, बधिरता और देहकी निर्बलता को आप देखताहै, वह मुक्त होता है, जो पुरुषइसलोक से परलोक में जानेवाले ऋषि, देवता और असुरों को देखता है वह भी मुक्त है, ऐसे ऐसे प्रतापवान्, तेजस्वी, बली हजारों राजा, महाराजा पृथ्वी को छोड़कर चले गए उसके भी विचार करने से मुक्त होता है, लोक में कष्ट से प्राप्त होनेवाले प्रयोजनों को और साधारणता से प्राप्त हुई विपत्तियों को और कुटुम्ब के लिये मिलनेवाले दुःखों को जो देखता है और संसार में पुत्रों की और मनुष्यों की गुणहीनता आदि बहुत सी अयोग्य बातों को देखकर कौन सा मनुष्य मोक्ष की प्रशंसा न करेगा, जो मनुष्य शास्त्र और लोक से विदित है और मनुष्यता को निर्मूल समझता है वह सब प्रकार से मुक्त है, आप मेरे इस वचन को सुनकर बुद्धि की व्याकुलता को त्यागकर गृहस्थाश्रम वा मोक्षआश्रम में मुक्त के समान विचरो, उस ऋषि के ऐसे वचनों को अच्छेप्रकार से सुनकर मोक्ष से उत्पन्न होनेवाले गुणों से युक्त उस राजा ने प्रजा का पालन किया ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे पञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

एकसौ सोलह का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे तात ! मेरे हृदय में यह कौतूहल सदैव वर्तमान रहता है उसको भी हे पितामह ! आपसे सुनना चाहता हूं कि देवर्षि शुक्राचार्यजी महाबुद्धिमान् होकर असुरों के प्रिय और उपकारी और देवताओं के अप्रिय और अनुपकारी किसकारण से हुए; इन शुक्रजी ने देवताओं के तेज को क्यों नाश किया और दैत्य, दानव देवताओं से किस कारण शत्रुभाव रखते हैं। और देवताओं क समान तेजस्वी शुक्रजी का शुक्र नाम कैसे हुआ और कैसे वृद्धि पाई और आकाश में से कैसे नहीं जाते हैं। हे पितामह! इस वृत्तान्त को मैं यथार्थ और पूर्णता के साथ सुना चाहता हूं, भीष्मजी बोले कि हे निष्पाप, युधिष्ठिर ! जैसा कि मैंने बुद्धि के अनुसार पूर्वसमय में सुना है वह सब ठीक ठीक चित्त लगाकर सुनो। यह भृगुवंशी, प्रतिष्ठा के योग्य, मुनि दृढ़व्रतवाले शुक्रजी किसी कर्म के कारण से देवताओं के अप्रियकारी हैं अर्थात् असुरलोग देवताओं को दुःख देकर भृगुपत्नी के आश्रम में छिपजाते थे उस आश्रम में जाने को असमर्थ देवताओं ने विष्णुजी की शरण ली तब विष्णुजी ने चक्र से भृगुपत्नी के शिर को काटडाला। फिर मरने से बचे हुए असुरों ने शुक्रजी की शरण ली अपनी माता के मरने से दुःखी होकर शुक्रजी ने असुरों को निर्भय करके देवताओं को पीड्यमान किया, यही कर्मरूप कारण है। यक्ष राक्षसों के और धनों के स्वामी कुबेरजी इन्द्र देवता के खज़ाने के अधिपति हैं उन कुबेरजी की देह में शुक्रजी ने अपने योगबल से प्रवेश करके उसको रोककर उसके धन को योगसिद्धि से हरलिया तदनन्तर उस धन के हरने से कुबेरजी को महादुःख हुआ और क्रोध से महाव्याकुल होकर वह कुबेरजी महादेवजी के पास गए और उन भवरूपधारी देवताओं के स्वामी शिवजी से यह सब वृत्तान्त वर्णन किया कि योगी शुक्रजी ने मुझ को रोककर मेरा सब धन हरलिया और अपने उग्रतेज और योगबल से धन को लेकर निकलगया हे राजन् ! कुबेर से इतनी बात के सुनते ही महायोगेश्वर शिवजी ने अत्यन्त क्रोध में युक्त होकर अरुण नेत्र करके त्रिशूल को धारण किया और इस उत्तम शस्त्र को लेकर बोले कि वह कहां है। शुक्रजी ने शिवजी के कर्म करने की इच्छा जानकर दूर से दर्शन दिया, फिर उस योगसिद्ध शुक्रजी ने महायोगी महात्मा शिवजी के क्रोध को जानकर जाने-आने और रहने के स्थान को

जाना। योग से सिद्धआत्मा शुक्रजी महेश्वरजी को विचारकर उग्रतप के द्वारा शूलकी नोक पर दृष्ट पड़े और वह तपोमूर्ति शुक्रजी धनुषधारी शिवजी को मालूम हुए। देवेश्वर ने उस चरित्र को जानकर शूल को धनुषरूप करने के निमित्त हाथ से नीचे को नवाया फिर बड़े तेजस्वी के हाथ से शूल के झुकजाने पर उग्र धनुषधारी प्रभु शिवजी ने शूल को पिनाक धनुष कहा, फिर देवताओं के स्वामी प्रभु उमापतिजी ने शुक्रजी को हाथों में वर्तमान देखकर मुख को खोलकर बड़े धीरेपने से मुख में डाला। वह तपसिद्ध महात्मा भृगुनन्दन शुक्रजी उन महेश्वरजी के पेट में पहुंचे और वहां विचरने लगे अर्थात् अन्न के समान परिपाक नहीं हुए, युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! बड़े तेजस्वी शुक्रजी उन देवदेव महादेवजी के उदर में किस निमित्त विचरे और उन्होंने कौनसा तप किया था। भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! महाव्रतधारी शुक्रजी पूर्वसमय में जल के भीतर नियत होकर प्रयुत और अर्बुद वर्षपर्यन्त स्तम्भरूप होकर वर्तमान रहे वहां कठिन तपस्या को करके उस महाह्रद से उठे तब देवताओं के देवता ब्रह्माजी उनके पास आये और तप की वृद्धिपूर्वक कुशल को पूछा और शिवजी ने भी कहा कि अच्छी तपस्या की और बड़े बुद्धिमान् अचिन्त्य आत्मा सदैव सत्यधर्मपरायण शिवजी ने उस तपयोग के द्वारा शुक्रजी के महत्व को देखा। उस तपोधन से युक्त पराक्रमी महायोगी शुक्रजी तीनोंलोकों में शोभायमान हुए, तदनन्तर योगात्मा शिवजी ध्यानयोग में प्रवृत्त हुए इसकारण भयभीत होकर शुक्रजी उदर में छिपगये और बाहर निकलने की इच्छा से उसी उदर में नियत होकर उन्होंने शिवजी की स्तुति की और रुद्रजी ने उनको रोक लिया, तब उदर में वर्तमान महामुनि शुक्रजी ने उन रोकनेवाले शिवजी से वारंवार स्तुति करके प्रार्थना की कि मुझपर कृपा करिए, उस समय महातेजस्वी शिवजी ने अपनी देह के सब छिद्रों को रोककर शुक्रजी से कहा कि इस लिंग के द्वार से तू निकल जा शुक्रजी ने सब द्वारों को बन्द देखा और मारे तेज के जलने लगे और व्याकुल होकर इधर उधर घूमने लगे और लाचार होकर उसी लिंगद्वार में होकर निकले। तभी से शुक्र यह नाम उनका प्रसिद्ध हुआ इसी लिंगद्वार से उत्पन्न होने के कारण आकाश में होकर नहीं जाते हैं तेज से ज्वालारूप उन निकले हुए शुक्रजी को देखकर क्रोध में भरकर शिवजी शूल को फिर उठाकर उपस्थित हुए तब देवी पार्वतीजी ने अपने

स्वामी रुद्रजी को निषेध किया शिवजी के रोकने पर शुक्रजी ने पार्वतीजी के पुत्रभाव को प्राप्त किया देवी ने कहा कि हे स्वामिन् ! इसने मेरे पुत्रभाव को पाया है इससे यह आपके हाथ से मारने के योग्य नहीं है और देवता के उदर से निकलनेवाला कोई नाश को नहीं पाता है, फिर तो देवी के ऊपर प्रसन्न हो शिवजी ने हँसकर वारंवार यह कहा कि यह इच्छापूर्वक जाय तदनन्तर महामुनि बुद्धिमान् शुक्रजी ने वरदाता शिव और पार्वतीजी को प्रणाम करके अभीष्ट गति को पाया, हे भरतवंशियों में उत्तम, तात, युधिष्ठिर ! मैंने यह महात्मा भार्गवजी का चरित्र कहा जिसके सुनने की तुमको इच्छा थी ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे षोडशोपरिशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

एकसौ सत्रह का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह, महाबाहो ! अब फिर उन कल्याणरूपों का वर्णन कीजिये मैं आपके अमृतरूपी वचनों से तृप्त नहीं होता हूं और हे तात! किस शुभकर्म को करके इसलोक परलोक दोनों में परमगति को पाता है इस को कृपा करके कहिये, भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर मैं वह संवाद कहूंगा जोकि पूर्वकाल में बड़े यशस्वी तेजस्वी राजा जनक ने महात्मा पराशर ऋषिजी से पूछा है कि इसलोक और परलोक में कल्याणकारी जीवों के जानने के योग्य क्या है तब सर्वधर्मज्ञ महातेजस्वी राजापर कृपालु पराशरजी ने यह वचन कहा कि इसलोक परलोक दोनों में धर्मही कल्याणरूप कहाजाता है ज्ञानी लोग इससे उत्तम किसी को नहीं कहते, धर्म को प्राप्त करके मनुष्य स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठा को पाता है, इस धर्म में निष्ठा करनेवाले पुरुष इसलोक में अपने कर्मों को इस कामना से करते हैं कि हमको धन की प्राप्ति हो हे तात! इस लोक में चारप्रकार की आजीविका कही जाती हैं उन्हीं जीविकाओं को संसारीलोग करते हैं अर्थात् ब्राह्मण की जीविका दान लेना, क्षत्रिय की जीविका पृथ्वी की भेज लेना, वैश्य की खेती आदि वाणिज्य करना शूद्र की आजीविका नौकरी करना सेवा करना, नानाप्रकार की रीतों से पाप पुण्य को भोग कर देह के त्यागनेवाले जीवों की बहुत प्रकार की गति होती हैं अर्थात् पापियों का जन्म पशु पक्षियों में और पुण्यात्माओं को स्वर्ग मिलता है और पुण्य पाप के समान होने में मनुष्य का जन्म होता है और तत्त्वज्ञान से माया के दूर होने पर मुक्ति होना होता है यही चारोगति हैं परन्तु इनके भेद बहुत से

हैं जिस प्रकार तांबे आदि के बर्तन चांदी, सोने के पानी से सुन्दर रंगीन किये जाते हैं इसी प्रकार पिछले कर्मों के पीछे चलनेवाला जीव पूर्व के कर्मों से रंग को पाता है विना बीज के कुछ उत्पन्न नहीं होता है और कर्म किये विना सुख की वृद्धि नहीं पाता है मनुष्य इस शरीर में वा दूसरे शरीर को पाकर उत्तम कर्म से सुख को पाता है चार्वाक कहता है कि मैं दैव को नहीं देखता हूं और उस पुण्य पाप का साधन भी नहीं है देवता गन्धर्व और मनुष्य स्वभाव से ही सिद्ध हैं देह के त्यागने के विना कर्म का फल नहीं पासकते वह मनुष्य उस कर्मफल के मिलने पर सदैव चार प्रकार के कर्मों को स्मरण करते हैं अर्थात् पाप, पुण्य, इच्छा, अनिच्छा यही चार प्रकार के कर्म हैं, लोक में सुख दुःख का कारण जो पाप, पुण्य आदि कियाजाता है और वेद में जो यह वचन है कि पवित्र कर्म से पवित्र होता है यह केवल मन सन्तोष के निमित्त है यह बृहस्पति सरीखे वृद्धों का वचन नहीं है किन्तु उस पूर्वोक्त चार प्रकार के जैसे कर्म को करता है वैसे ही फल को भी पाता है हे राजन्! यह कर्त्ता दुःख सुख या दोनों को पाता है क्योंकि कर्म का नाश नहीं होता, हे तात! इस संसार-सागर में डूबा हुआ मनुष्य तबतक ही पक्षपात से रहित उत्तम कर्म में प्रवृत्त होता है जबतक कि वह दुःख से नहीं छूटता है, फिर दुःख से निवृत्त होकर सुख को भोगता है और उत्तम कर्मों के नाश होने पर पापकर्म के फल दुःखों को भोगता है, शान्तचित्त प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष में सन्तोष, धैर्य, सत्यता, लज्जा, अहिंसा और क्रोध, स्त्री, मद्यपान आदि से उत्पन्न व्यसनों से पृथक् होना प्रवीणता यह सब बातें सुख की देनेवाली हैं, जीव पापकर्म और शुभकर्म में भी नियम न करे किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मदर्शन के निमित्त समाधि में ध्यान लगावे, यह जीव किसी दूसरे के पाप पुण्य को नहीं भोगता है जैसा आप कर्म करता है वैसा ही फल पाता है, मनुष्य सुख दुःख के कारण पुण्य पाप को तत्त्वज्ञान के द्वारा आत्मा में लय करके दूसरे ज्ञानमार्ग से उन प्रिय वस्तुओं को पाता है जो पृथ्वी से सम्बन्ध रखनेवाले पुत्र, स्त्री, पशु, गृह, धन, बाग इत्यादि हैं वह दूसरे ही मार्ग से जाते हैं अर्थात् स्वर्ग और मोक्ष में सहायता नहीं करते हैं, मनुष्य दूसरे के जिस कर्म की निन्दा करता है उसको आप भी न करे जो योगी इस प्रकार से दूसरे में और अपने में दोषों का देखनेवाला है वह नियमपूर्वक निन्दा को स्वीकार करता है तात्पर्य यह है

कि योगी स्नेह और निन्दा से पृथक् होजाय, जिसप्रकार निन्दा करनेवाला योगी निन्दा के योग्य है इसी प्रकार योग के विना वैरागीभी निन्दाके योग्यहै इसबात को बहुतसे दृष्टान्तों के साथ कहते हैं,भय करनेवाला क्षत्रिय, सबक्षेत्रों में भोजन करनेवाला ब्राह्मण, विना कर्मवाला वैश्य, सुस्तशूद्र, विद्या पढ़कर दुःख भाव गुरुपूजा आदि गुणोंसे रहित,कुलीन, सत्यतासे रहित ब्राह्मण, दुराचारिणी स्त्री, केवल अपने ही निमित्त भोजन बनानेवाला, अज्ञानी बोलनेवाला, राजा के विना देश, संसार से स्नेह करनेवाला योगी, प्रजापर प्रीति न करनेवाला राजा, योगाभ्यास से रहित, यह सब लोग शोच और निन्दा के योग्य हैं ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

एकसौ अठारह का अध्याय ॥

पराशरजी बोले कि, इस प्रकार से सुख दुःख का कारण पूर्वकर्म को जानकर सब कर्मों के नाश करने के लिये योग धर्म में प्रवृत्त होना हमने वर्णन किया अब उसकी टीका को कहते हैं कि जो मनुष्य चित्त देहरूपी रथ में जिसके इन्द्रियरूप घोड़े हैं उसको पाकर ब्रह्मज्ञानरूपी रस्सी के द्वारा विषयों को भी चैतन्यरूप देखता है वही बुद्धिमान् है अर्थात् सम्पूर्ण विषयों को ब्रह्मरूप देखता है वह भी मोक्ष को पाता है, हे ब्रह्मन् ! सब आलम्बन से रहित चित्त के द्वारा नियत वृत्ति से पृथक् पुरुष की भक्ति प्रशंसा के योग्य है वह भक्ति कर्म के त्यागी ब्रह्मज्ञानी से प्राप्त होनेवाली होती है अपने समान परोक्षज्ञानी को नहीं प्राप्त होती है क्योंकि परोक्षज्ञानियों को ब्रह्मज्ञान के उपदेश में अधिकार नहीं है हे राजन् ! यह बात साधारण नहीं है इससे उसको पाकर विषयों के सेवन से पूरा नहीं करे किन्तु उत्तम कर्म के द्वारा क्रम से उत्तम स्थान मिलने के लिये उपाय करे, वृत्रासुर की गीता में ऊंचे वर्ण से नीचे वर्ण में वर्तमान मनुष्य प्रतिष्ठा के योग्य नहीं है फिर जो सत्क्रिया को पाकर राजसी कर्म में प्रवृत्त होता है वह भी वैसाही है, शुभ कर्म के द्वारा मनुष्य क्रम से वर्ण की उत्तमता को पाता है और उस दुर्ग्राह्य को न पाकर पाप कर्म से अपना ही नाश करता है, अज्ञान से किये हुए पाप को तप के द्वारा नाश करे अपने से किया हुआ पापकर्म दुःख को देता है इस हेतु से दुःखरूप फल का उदय करनेवाला पापरूप कर्म कभी न करे, जो पापरूप फल देनेवाला कर्म है चाहै वह बड़ा भी फल देनेवाला हो तो भी पण्डित और पवित्र मनुष्य उसको चाण्डाल के समान

बुरा जानकर कभी न करे, मैं पापकर्म के कठिन फल को देखता हूं वह यहहै कि विपरीतदृष्टि मनुष्य को सदैव आत्मा अच्छा नहीं मालूम होता है अर्थात् देह को ही आत्मा जानता है, इसलोक में जिस अज्ञानी को वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है उस योग में प्रवृत्त मनुष्य को उत्तम स्थान के न मिलने से महाशोच उत्पन्न होता है अथवा उसको मरने से भी बड़ा शोच प्रकट होता है अर्थात् नरकयातना भोगनी पड़ती है, जो वस्त्र वास्तव में पवित्र है और प्रत्यक्ष में विपरीतरंग से रँगा हुआ है वह शुद्ध होसक्ता है और किसी काले रंग से रँगा हुआ वस्त्र बड़े उपायों से भी शुद्ध नहीं होसक्ता है हे नरेन्द्र ! इसीप्रकार पाप को समझो अर्थात् कोई पाप तो दूर होसक्ता है और कोई नहीं होसक्ता, जो मनुष्य आप जानबूझकर पाप को करके उसके प्रायश्चित्तसम्बन्धी शुभकर्म को करता है वह दोनों पाप पुण्य को पृथक्-पृथक् भोगता है अर्थात् जानबूझकर जो पाप कियाजाता है वह किसी प्रायश्चित्त से भी नाश नहीं होता मनुष्य वेद के अनुसार शास्त्र की आज्ञा से अहिंसा के द्वारा उस हिंसा के दोष को दूर करता है जोकि अज्ञानता से होगई है यह ब्रह्मवादियों का वचन है कि अहिंसा धर्म उसकी उस हिंसा को नहीं दूर करसक्ता है जिसको कि उसने जानबूझकर इच्छा से किया हो वेदज्ञ और शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों का भी यही वचन है परन्तु मैं इस बात को वहांतक देखता हूं जहांतक कि किया हुआ कर्म वर्तमान है वह गुणयुक्त हो या बुद्धि से जानकर किया हो अथवा पाप से चाहे रहित हो तात्पर्य यह है कि जानके या विना जाने कैसा ही छोटा बड़ा कर्म कियाजाय वह विना भोगे नाश नहीं होगा जिसप्रकार इस लोक में चित्त और बुद्धि से विचारे हुए वह सूक्ष्म छोटे बड़े कर्म सफल होते हैं अर्थात् सुख दुःख आदि को देते हैं, इसीप्रकार अभ्यास किया हुआ कर्मफल भी अविनाशी होता है और अज्ञानता से हिंसारूप कर्म से किया हुआ काम थोड़े फलवाला और नरक से मिलानेवाला होता है, जो कर्म देवता और मुनियों से कियेगये हैं उनको धर्मात्मा पुरुष नहीं करे और उनको सुनकर निन्दा भी न करे आशय यह है कि जब कर्म का फल नष्ट नहीं होता ऐसी दशा में विश्वामित्रजी ने वशिष्ठजी के सौ पुत्र मारे उसका फल नरक उन्होंने नहीं पाया यह संदेह करके उन देवता आदि के समान कर्मकर्त्ता न होना चाहिये क्योंकि उनके कर्म लौकिक नहीं हैं, हे राजन् ! जो पुरुष मन से अच्छे प्रकार विचारकर और

अपने शरीर से उसका करना सम्भव जानकर शुभकर्म को करता है वह कल्याणों को देखता और भोगता है जिस प्रकार कच्चे मिट्टी के पात्र में जल रखने से मिट्टी के पात्र का नाश होता है और पक्के में जल रखने से नाश नहीं होता उसी प्रकार पक्का योगी ब्रह्मानन्द से अविनाशीपन को पाता है आशय यह है कि उस तेजस्वी को जोकि पाप पुण्य में उदासीन है, कर्म नष्ट नहीं करता है, जैसे कि रखनेवाले पात्र में जल भरकर ऊपर से दूसरा जल जब भराजाता है ऐसी दशा में उस जल की वृद्धि होनेपर जल ही बढ़ता है इसीप्रकार से हे राजन्! इसलोक में जो कर्म बुद्धि से युक्त कैसे ही टेढ़े सीधे हैं परन्तु पवित्र हैं वह भी वृद्धि को पाते हैं, इसप्रकार से संसारी धर्मों को कहकर राजाओं के धर्मों को कहते हैं प्रथम तो राजा को बड़े-बड़े शत्रु जीतने योग्य हैं और उत्तम रीति से प्रजा का पालन करना उचित है और अनेक यज्ञों के द्वारा अग्नि स्थापन करना योग्य है अवस्था के मध्य में अथवा अन्त में वन में रहना चाहिये, शान्तचित्त जितेन्द्रिय धर्म का अभ्यासी पुरुष जीवमात्र को आत्मा के समान देखे और हे नरेन्द्र! सुखपूर्वक मधुरभाषी होकर ब्रह्मप्राप्ति के निमित्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्रह्मविद्या देनेवाले गुरुओं का पूजन करे ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

एकसौ उन्नीस का अध्याय ॥

पराशरजी ने कहा कि, जो कदाचित् तू यह शंका करता हो कि मैं राजा होकर मुनियों का पोषण करनेवाला और उन्हों के योगफल का छठा भाग लेनेवाला हूं मुझ को ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ गुरुओं के पूजने की क्या आवश्यकता है इस शंका को मैं निवृत्त करता हूं कि कौन किसके साथ उपकार करता है और कौन किसको देता है यह जीव आप अपने ही निमित्त कर्मों को करता है, जब गौरवतारहित माता, पिता, भाई, बन्धु, स्त्री, पुत्रादि को भी त्याग करता है तब अन्य नीच मूर्खों को क्यों नहीं त्यागेगा। तात्पर्य यह है कि उपकार न करनेवाले अपने वृद्धजनों को भी त्याग करते हैं इसकारण कोई किसी के साथ उपकार नहीं करता है, फिर अपने आनन्द के लिये क्या कर्म करे इसको कहते हैं कि श्रेष्ठ मनुष्य को दान करना और श्रेष्ठ ही से दान लेना दोनों समान हैं अर्थात् सत्पुरुष से दान लेना वेदोक्त दान की समान है, जो

धन न्याय से मिला और न्याय से ही बढ़ाया गया हो उस धन की युक्तिपूर्वक धर्म के लिये रक्षा करना चाहिये, धर्म का चाहनेवाला मनुष्य हिंसात्मक कर्म के धन को इकट्ठा नहीं करे अपनी सामर्थ्य के अनुसार सब कामों को करे और धन की वृद्धि का विचार न करे, सावधान पुरुष अपनी सामर्थ्य से शीतलजल या उष्णजल को क्षुधा से पीड़ित अतिथि के देने से अन्नदान के फल को पाता है, महात्मा रन्तिदेव ने लोकेष्ट सिद्धि को अर्थात् सर्वप्रियभाव को पाया उसने केवल फल, मूल और पत्तों से ऋषियों का पूजन किया था और राजा शैब्य ने फलपत्रों से सूर्यदेवता को प्रसन्न किया था इसीसे उच्च स्थान को पाया, मनुष्य अपने पुत्रादिक बालबच्चों का और अतिथि, देवता वा नौकर चाकर आदि का ऋणी अर्थात् क़र्ज़दार उत्पन्न होता है इसकारण उनके क़र्ज़ को अदा करे अर्थात् वेदपाठ आदि के द्वारा महर्षियों से और यज्ञकर्मादि के द्वारा देवताओं से और श्राद्धदान आदि के द्वारा पितरों से अऋण होना चाहिये और मनुष्यों के पूजन वेदशास्त्र पुराण आदि के सुनने विचारने और पञ्चयज्ञ में शेष अन्न के भोजन से जीवों के पोषण करने से आत्मा की अऋणता को प्राप्त करे और पुत्रादि के जातकर्म आदि संस्कार को बुद्धि के अनुसार प्रारम्भ से ही करना चाहिये, बड़े सिद्ध धनहीन मुनियों ने भी अग्निहोत्र को अच्छे प्रकार करके सिद्धि को पाया है, हे महाबाहो ! अजीगर्त के पुत्र ने विश्वामित्र के पुत्रभाव को प्राप्त किया और यज्ञभागी देवताओं को ऋग्वेद की ऋचाओं से प्रसन्न करके सिद्धि को पाया और उशना ने महादेवजी के प्रसन्न करने से शुक्र नाम पाया और देवी पार्वती की स्तुति करने से यशी कीर्त्तिमान् होकर आकाश में विराजमान है, असित, देवल, नारद, पर्वत, कक्षीवान् और जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी और आत्मज्ञानी ताण्ड्यजी, वशिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधार, श्रुतश्रवा इन सावधान महर्षियों ने ऋग्वेद की ऋचाओं से विष्णुजी को प्रसन्न करके उनकी कृपा से तप के द्वारा सिद्धि को पाया और बहुत से पूजन से विमुख सन्तों ने उसी की स्तुति करके पूजन को पाया इस लोक में निन्दित कर्म करके वृद्धि करनी अयोग्य है, जो अर्थ कि धर्मसंयुक्त हैं वही सच्चे हैं और जो अधर्म के साथ हैं उनको धिक्कार है इस लोक में धन की इच्छा से सनातनधर्म का त्याग नहीं करना चाहिये, जो धर्मात्मा अग्नि का स्थापन करनेवाला है वही श्रेष्ठ

पुण्यात्मा है हे राजेन्द्र! सब वेद तीनों अग्नियों में नियत हैं जिसकी जप गुरुपूजन आदिक क्रिया नष्ट नहीं होती हैं वह वेदपाठी अग्नि को अच्छे प्रकार से स्थापन करनेवाला है अग्निस्थापन न करना अर्थात् संन्यासधर्म लेना मोक्षरूप है, क्योंकि अग्निहोत्र भी कर्म ही है, हे नरोत्तम! आत्मा और पोषण करनेवाले माता पिता और गुरु भी अग्नि हैं इसीसे वह बुद्धि के अनुसार सेवा के योग्य हैं, वृद्धों की सेवा करनेवाला विद्वान् कामरहित साहसी धर्मयुक्त हिंसारहित मनुष्य अहंकार को त्याग कर सबको कृपादृष्टि से देखता है वह श्रेष्ठ पुरुष इस लोक में उत्तम पुरुषों से प्रशंसा कियाजाता है ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

एकसौ बीस का अध्याय ॥

पराशरजी ने कहा कि, अपनी सहायता करनेवाला कोई दूसरा नहीं है इसीकारण अपनी भलाई के लिये अपनी खुदी को त्याग करके वृद्धों का सेवन करे यह ऊपर वर्णन किया अब वृद्धों की सेवा और सत्संग की प्रशंसा के प्रयोजन से शूद्रवृत्ति की उत्तमता वर्णन करते हैं, तीनों वर्णों से पञ्चशूद्रों की वृद्धसेवारूपी आजीविका जोकि निश्चय से युक्त और प्रीतिपूर्वक की हुई हो सदैव सेवकों को धर्मात्मा करती है इसीकारण से अच्छी है, जो शूद्र की आजीविका बाप दादों से होनेवाली और प्राचीन नहीं है तो भी वह शूद्र तीनों वर्ण की सेवा के सिवाय दूसरी आजीविका को नहीं ढूंढ़े किन्तु सेवा ही करे सदैव सब दशाओं में धर्मदर्शी पुरुषों का मिलाप सन्तोष के साथ में शोभित होता है पञ्चों के साथ नहीं शोभित होता है यह मेरा मत है, जैसे कि उदयाचल पर्वत में मणि और सुवर्ण आदि सूर्यदेवता की समीपता से प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार पञ्चवर्ण भी सत्पुरुषों की समीपतासे प्रकाशित होते हैं श्वेतवस्त्र जैसे रंग से रँगाजाता है वैसा ही रंग उसपर आता है इसको ऐसे प्रकार से समझो कि, गुणों में प्रीति करो और कभी दोषों में प्रीति न करो, इस लोक में जीवमात्रों का जीवन नाशवान् और अस्तव्यस्त है, जो सुख का चाहनेवाला दुःख में वर्तमान होकर पण्डित मनुष्य शुभकर्मों को प्राप्त करता है वही शास्त्रों का देखनेवाला है, जो कर्म धर्म से रहित है वह चाहे बड़े फलवाला भी हो उसको बुद्धिमान् कभी न करे क्योंकि वह इसलोक में उत्तम कभी नहीं कहाजाता है, जो राजा हज़ारों गौओं को लूटकर विना पोषण किये हुए दान करता है वह

चोर राजा केवल संसारी प्रशंसा ही का फल पानेवाला होता है ब्रह्माजी ने प्रथम ही लोक से प्रतिष्ठा पानेवाले धाता को उत्पन्न किया और धाता ने लोकों के पोषण में प्रवृत्त पर्जन्य नाम पुत्र को उत्पन्न किया वैश्य उसको पूजन कर पशु और कृषि आदि की रक्षा करे वह सामान्य क्षत्रियों में रक्षा के योग्य हैं और ब्राह्मणों के भोगने के योग्य हैं सत्यवक्ता क्रोध और कृपणतारहित, हव्य कव्य में प्रयोग करनेवाले, शूद्रों से भूमिशुद्धि आदि करनी चाहिये इसप्रकार से धर्म का नाश नहीं होता है धर्म के नाश न होने से प्रजा सुखी होती है और उनके सुख से स्वर्गवासी सब देवता आनन्द को पाते हैं, इसकारण जो राजा अपने धर्म से संसार की रक्षा करता है और जो ब्राह्मण वेद को पढ़ता है वा जप करता है और जो वैश्य धन के संग्रह करने में प्रवृत्त है वह प्रशंसा कियाजाता है जो जितेन्द्रिय शूद्र सदैव तीनों वर्णों की सेवा करता है वह भी प्रशंसा के योग्य है हे राजन्! उसके विपरीत करनेवाला नाश को पाता है प्राणों को कष्ट देकर तीनकाकिणी अर्थात् एक धेला भी दान करना बड़ा फलदायक है फिर न्याय से इकट्ठी की हुई हजारों काकिणी क्यों नहीं फल देंगी जो राजा सत्कारपूर्वक ब्राह्मणों को दान करता है और जैसी श्रद्धा से देता है उसीप्रकार से प्रबल फल को सदैव पाता है उस पात्र ब्राह्मण की तृप्ति के निमित्त जो सन्मुख होकर दान दियाजाता है वह सर्वोत्तम दान कहाजाता है और याचना करने से जो दान कियाजाता है उसको पण्डित लोग मध्यम दान कहते हैं जो दान अनादर से अथवा अश्रद्धा से दियाजाता है उसको सत्यवादी मुनिलोग अधमदान कहते हैं संसारसमुद्र में डूबा हुआ मनुष्य सदैव नाना प्रकार के उद्योगों से संसारसागर को उल्लंघन करे और ऐसे उपाय करे जिससे कि गृहस्थाश्रम के फन्दे से छूटे ब्राह्मण शान्तचित्त होने से शोभा को पाता है क्षत्रिय शत्रुओं के विजय करने से, वैश्य धन की आधिक्यता से और शूद्र सेवा की हिम्मत से सदैव शोभा को पाता है ॥ २१ ॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे दानविषयवर्णनो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

एकसौ इक्कीस का अध्याय ॥

पराशरजी बोले कि, दान के द्वारा ब्राह्मणों को प्राप्त होनेवाला अर्थ धन और युद्ध में विजय करनेवाले क्षत्रिय को प्राप्त होनेवाला अर्थ धन और न्याय

से वैश्य का संचित किया हुआ अर्थ धन और सेवा से शूद्र के पास होनेवाला बहुत थोड़ा भी धनआदि अर्थ प्रशंसा के योग्य है वह सबके अर्थ धन धर्म करने के लिये बड़े शुद्ध और फल के देनेवाले हैं शूद्र सदैव तीनों वर्णों की सेवा करनेवाला कहाजाता है और आजीविकारहित ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के धर्मों करके पतित नहीं होता है परन्तु जब ब्राह्मण शूद्र का धर्म करनेवाला होता है तब ऊंचे ब्राह्मणपने के अधिकार से नीचे अधिकार को पाता है अर्थात् ब्राह्मणत्व से रहित होता है और जब शूद्रको अपनी जीविका नहीं मिलै उस दशा में व्यापार करके अथवा पशुपालन, शिल्पविद्या से भी वह अपनी जीविका करसक्ता है यह भी शूद्र का कर्म विचार कियागया है कुतूहल के स्थान में स्त्रीरूप से उतरना कठपुतली आदि का तमाशा करना मद्य और मांस से जीवन करना धातु और चर्म की वस्तुओं का बेंचना, और जिसने पूर्व में मद्य और मांस से जीविका नहीं करी है वह लोक में निन्दित जीविका से अपना निर्वाह न करे पहिले करनेवाले और पीछे से त्याग करनेवाले को बड़ा अधर्म होता है यह श्रुति है (अपूर्विणा न कर्त्तव्यं कर्म लोके विगर्हितम् । कृतपूर्वन्तु त्यजतो महान्धर्म इति श्रुतिः) धनवान् और अहंकारी से किया हुआ पाप स्वीकार के योग्य नहीं है पुराणों में ऐसी भी प्रजा सुनीजाती है जो केवल धिकारहीमात्र से दण्ड समझनेवाली जितेन्द्रिय धर्मही को उत्तम माननेवाली और न्यायधर्म निर्वाह करनेवाली थी हे राजन् ! इसलोक में सदैव से धर्महीकी प्रशंसा होती है धर्मप्रवृत्त मनुष्य पृथ्वीपर गुणों को ही काम में लाते हैं हे तात, राजन्, जनक ! असुरों ने काम क्रोधादि के कारण इस धर्म को धारण नहीं किया इसीहेतु से वह अत्यन्त वृद्धिपाने पर भी नाश को प्राप्त हुए और रहेसहे प्रजाओं में आनमिले उन प्रजाओं का वह अहंकार जो धर्म का नाश करनेवाला है अच्छे प्रकार से प्रकट हुआ उसके पीछे उस अहंकारी प्रजा का क्रोध उत्पन्न हुआ तब उस क्रोध से भरीप्रजा का गुरुपूजनादिक धर्म लज्जायुक्त हुआ अर्थात् केवल गुरुपूजनादिक धर्म लज्जायुक्त होकर करते थे भक्ति से नहीं करते थे जब लज्जा भी जातीरही तब मोह उत्पन्न हुआ तदनन्तर मोह में भरे हुए परस्पर में एक एक को दुःख देकर पेटभरनेवाली उस प्रजा ने पूर्व के समान बुद्धि के अनुसार सुख को नहीं पाया और उस धिकार दण्ड से उस प्रजा को कुछ लज्जा नहीं हुई फिर देवता और ब्राह्मणों का अपमान करके

नानाविषयों में प्रवृत्त हुई, इस प्रकार काम क्रोधादिक से प्रजा के बन्धन को दिखलाकर उससे छूटने के उपाय के लिये साधारण युक्ति को वर्णन करते हैं- उस समय पर शम दम आदि देवता उस गुणों में श्रेष्ठ अद्भुतरूपधारी शिवजी की शरण में गये जोकि ईश्वर से भी श्रेष्ठ और सेवायोग्य तीनों दशा के अभिमानी विश्व, तैजस, प्राज्ञ नाम विराट्सूत्र अन्तर्यामी से भी उत्तम चौथा है और माया करके अनेक रूप धारण करता है और ज्ञान ऐश्वर्यादि गुणों से अधिक उस साक्षात्रूप ब्रह्म से व्यावृत आकाश में वर्त्तमान जो काम क्रोधरूप असुर वह उसके एकही बाण से आत्मारूप पृथ्वी पर गिराये गये अर्थात् लय कियेगये वह बाण इन्द्रियरूप देवताओं के द्वारा वृद्धिपानेवाला तेज था और उन काम आदि का स्वामी भयानकरूप भय उत्पन्न करनेवाला और देवताओं का भी भय उत्पन्न करनेवाला महामोहनाम था वह हाथ में वर्तमान शूल के समान तीक्ष्ण अपनी स्वाधीनी में वर्तमान बुद्धि के द्वारा मारागया, उस महामोह के नाश होने पर जीवों ने पूर्व के समान वेदशास्त्रों को पढ़कर ब्रह्मभाव को प्राप्त किया अर्थात् जीवन्मुक्त होकर भी अनादि वासना के कारण से एक वेद की निष्ठा रखनेवाले हुए, तदनन्तर चैतन्य आत्मा को हृदयाकाश में इन्द्रियों की स्वामिता में अभिषेक करके अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ होने से जितेन्द्रिय होकर सप्तऋषियों ने मनुष्यों का दण्ड और पोषण विचार किया, जो सप्तऋषि संसार के अहंकार हैं उनसे भी ब्रह्मज्ञानी की उत्तमता को वर्णन करते हैं पञ्चज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि यही सप्तऋषि हैं इन सब ऋषियों के ऊपर हज़ार आरेवाला चक्र देह से पृथक् परमात्मा है वह देह में नियत है और पृथक्-पृथक् मण्डलों में षट्चक्रों के राजा गणेश आदि जोकि योग के विघ्नों के नाश करनेवाले हैं, वह वर्तमान हैं अब उस काम आदि के जीतने की कठिनता का वर्णन करते हैं जो बड़े कुल में उत्पन्न हुए वृद्ध से वृद्ध प्राचीन लोग हैं उनके हृदय से भी यह आसुरीभाव दूर नहीं होता है इस कारण से देहाभिमान रखनेवाले मनुष्य उन आसुरी गुणों में प्रवृत्त होने से आसुरी कर्मों में प्रवृत्त हुए, जो मनुष्य बड़े अज्ञानी हैं वह उन्हीं कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और उनको ही जारी करते हैं और अब भी उन्हीं का अभ्यास करते हैं हे राजन्! इसकारण से मैं शास्त्र से अच्छे प्रकार विचार कर तुम से कहता हूं कि जीव आत्मज्ञान ही को प्राप्त करे और हिंसात्मक कर्मों का त्याग करे, बुद्धिमान्

मनुष्य धर्म करने के निमित्त न्याय को त्याग कर वर्णसंकर से धन को प्राप्त नहीं करे क्योंकि उसमें कल्याण नहीं है भाइयों को प्यारा माननेवाले संसार के रक्षक और जितेन्द्रिय होकर तुम अपनी प्रजा और नौकर चाकर और पुत्रादिकों को धर्म से पोषण करो, प्रिय अप्रियता के योग में शत्रुता और मित्रता को प्राप्त करता है और हज़ारों जन्मों तक इसी चक्र में फिरता है, इसकारण गुणों में प्रीति करो और दोषों में कभी स्नेह न करो जो गुणरहित और निर्बुद्धि है वह भी अपने गुणों से अत्यन्त प्रसन्न होता है, हे राजन् ! मनुष्यों में धर्म और अधर्म दोनों जारी हैं और मनुष्यों के सिवाय अन्य जीवों में इस प्रकार से नहीं है, धर्म का अभ्यास रखनेवाला ज्ञानी भोजन आदि की इच्छा से अथवा अनिच्छा से सदैव आत्मारूप मनुष्य या अन्य जीवों की अहिंसा से लोक में विचरे, जब उसका मन हृदय वासना से और अहंकार वा अज्ञानता से पृथक् होता है तब ब्रह्मानन्द को पाता है ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

एकसौ बाईस का अध्याय ॥

पराशरजी बोले कि, हे राजन् ! अब मैं तप की प्रशंसा करने के निमित्त गृहस्थाश्रम की निन्दा करता हूं—प्रथम गृहस्थ की यह धर्मबुद्धि वर्णन की अब तप की बुद्धि को सुनो कि बहुधा राजस,तामस, सात्त्विक भावों के कारण से गृहस्थी की ममता प्रीति से उत्पन्न होनेवाली होती है इस हेतु से इसलोक में गृहस्थाश्रम में नियत होकर मनुष्य को पशु, क्षेत्र, धन, स्त्री, पुत्र, नौकर, चाकर आदि प्राप्त होते हैं, इस प्रकार से उस आश्रम में प्रवृत्त और उनके नाश को होते हुए दृष्टिकरनेवाले उस गृहस्थी के राग द्वेष आदि अत्यन्त वृद्धि को पाते हैं, हे राजन् ! उस राग द्वेष से हारेहुए धन की स्वाधीनता में वर्तमान मनुष्य को मोह से उत्पन्न होनेवाली प्रीति अच्छेप्रकार से प्राप्त होती है, संसारी प्रीति में फँसे हुए सब मनुष्य अपने को यथेष्ट लाभवान् और भोग करनेवाला मानकर स्नेह और स्त्रीप्रसंगादि सुखों के कारण से दूसरे लाभों को नहीं विचारते हैं, इसके पीछे लोभ में डूबेहुए वह मनुष्य संग से दासी दास आदि को बढ़ाता है और उन सबके पोषण के निमित्त ब्याज आदि व्यापारों से धन की वृद्धि करता है, वह मनुष्य करने के अयोग्य कर्मों को भी जानबूझकर धन के लिये करता है और पुत्रादि के स्नेह में डूबा हुआ उनके नाशहोने में महाशोक

करता है, तदनन्तर अहंकार और अहंबुद्धि से संयुक्त होकर अपनी पराजय को बचाता यश और स्त्री आदि की चित्त में इच्छा करता है अर्थात् अपने को भोगी मानकर उसी स्त्री आदि के कारण नाश को पाता है, और इसीप्रकार धन स्त्री आदि के नाश और देह मन के रोग सन्तापादि से उसको वैराग्य उत्पन्न होता है और जो बुद्धिमान् सनातन ब्रह्म के कहनेवाले उत्तम कर्म की अभिलाषायुक्त संसारी सुखों के त्याग करनेवाले हैं, उनको सच्चा वैराग्य होता है और उस वैराग्य से आत्मज्ञान होता है आत्मज्ञान से शास्त्रदर्शन होता है और शास्त्र के अर्थों पर दृष्टि होने से तप को ही कल्याणरूप जानता है, सारासार का विचारनेवाला नरेन्द्र मनुष्य कठिनता से मिलता है, जिसने स्त्री आदि से उत्पन्न होनेवाले सुख के निमित्त दुःखों को पाया वह उसमें दोष जानकर तप का करना निश्चय करता है, हे तात! वह सावधान होकर उस शूद्र का भी तप कहा जाता है जो कि जितेन्द्रिय और तप के क्लेशों के सहनेवाले मनुष्य के स्वर्गमार्ग को वर्तमान करनेवाला है हे राजन्! प्रथम बड़े ब्रह्मज्ञानी प्रजापतिजी ने किसी जन्म और किसी देश में व्रतों में निष्ठ होकर तपस्या से सृष्टि को उत्पन्न किया, द्वादशसूर्य, अष्टवसु, ग्यारहरुद्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, उनचासवायु, विश्वेदेवा, साध्यगण, पितृगण, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध और अन्य स्वर्गवासी देवता आदि सब तपसे ही सिद्ध हुए हैं, प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने तप के द्वारा जिन ब्राह्मणों को उत्पन्न किया वह प्रजा को उत्पन्न करते पृथ्वी और स्वर्ग में विचरते हैं जो राजा लोग और गृहस्थी लोग इस नर लोक में बड़े कुल में उत्पन्न दृष्ट आते हैं यह सब तप ही का फल है और जो रेशमी इत्यादि वस्त्र, सुन्दर भूषण, श्रेष्ठ सवारी, आसन और उत्तम भोजनादि की वस्तु हैं वह सब भी तप ही का फल है, जो इच्छा के समान और स्वरूपवाली अच्छी स्त्री हैं और महलों में निवास है वह भी तप ही का फल है, उत्तम पलँग आदि यथेष्ट भोग की उत्तम वस्तु भी श्रेष्ठ कर्म करनेवालों के ही होती हैं, हे परन्तप! तीनों लोक में तप के विना कोई वस्तु की प्राप्ति नहीं है अर्थात् तप ही से सब पदार्थ मिलते हैं और जिनको तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हुआ उनके तप के फल वैराग्यरूप हैं, हे राजन्! उत्तम मनुष्य सुखी दुःखी कैसाही हो वह चित्त और विचारवाली बुद्धि से शास्त्र को विचार कर लोभ को सब प्रकार से त्याग करता है, असन्तोषी

होना दुःखका मूल है और लोभ से इन्द्रियों में व्याकुलता होती है और उससे उसकी बुद्धि ऐसी नष्ट होती है जैसी कि अभ्यास न रखनेवाले की विद्या नाश हो जाती है, जब बुद्धि में नष्टता होती है तब योग्यायोग्य कर्म का विचार नहीं करता है इस कारण मनुष्य सुख के नाश होने पर कठिन तपस्या करे, जो चित्त से प्यारा है वही सुख और जो चित्त से बुरा है उसीको लोक में दुःख मानते हैं किये और बिन किये हुए तप का फल जो सुख दुःख नाम है उसको देखो अर्थात् विचार करो कि शुद्ध तप का फल कल्याण है उसीसे सुखों को भोग कर विख्यात होता है फल की इच्छा रखनेवाला मनुष्य ऊपर लिखे हुए फल को त्याग करके बड़े असह्य अपमान और दुःख वा विषयरूपी सुख को पाता है, जैसे इसकी इच्छा कर्म धर्म तप और दान में उत्पन्न होती है उसी प्रकार पाप कर्मों को भी करके नरक को पाता है हे नरोत्तम ! सुख या दुःख में भी वर्तमान मनुष्य अपने गुरुपूजन आदि व्रतों से नष्टता को नहीं पाता है क्योंकि वह मनुष्य शास्त्ररूप नेत्र रखनेवाला है, स्त्री आदि के स्पर्श में जो सुख होता है वह उतनी ही देर तक नियत रहता है जितनी देर में कमान से निकलनेवाला तीर पृथ्वी पर गिरता है इसी प्रकार रसना आदि इन्द्रियों का भी सुख थोड़ेही काल तक होता है, फिर उस स्त्री आदि के नाश से इसको कठिन दुःख होता है, सबसे उत्तम जो मोक्षसुख है अज्ञानी लोग उसकी प्रशंसा नहीं करतेहैं, इसी कारण सब बुद्धिमानों के शम दम आदि गुण मोक्ष के निमित्त उत्पन्न होते हैं, धर्मवृत्ति में सदैव रहने के कारण काम अर्थ से मोहित नहीं होता है, सब बातें प्रारब्धाधीन हैं फिर उद्योग करना व्यर्थ है इस शंका के निवृत्त करने को दोनों की प्रशंसा करते हैं—प्रारब्ध से उत्पन्न होनेवाली जो स्त्री और खाने पीने भोगने की वस्तु हैं वह गृहस्थियों को भोगनी चाहिये और अपना धर्म बड़े उपाय से होने के योग्य है अर्थात् धर्म में उद्योग ही बलवान् है, प्रतिष्ठावान् कुलीन और सदैव शास्त्रार्थरूप नेत्र रखनेवाले पुरुषों को यज्ञादिक क्रिया प्राप्त होनी सम्भव है और धर्मरहित चित्त से अज्ञानी पुरुषों की क्रिया असम्भव है, अब दोनों के कर्मों के भेदों को वर्णन करते हैं—मैं मनुष्य हूं इस अभिमान से किया हुआ कर्म नाश हो जाता है इसी कारण उन शास्त्ररूप नेत्र रखनेवाले पुरुषों का कर्म तपस्या के सिवाय दूसरा नहीं है, अब उन अज्ञानी लोगों के धर्म को सुनो—गृहस्थी अपने धर्म में प्रवृत्त हव्य कव्य के

लिये बुद्धिमानी के साथ यज्ञादिक कर्मों में निश्चय करे, जैसे सब नद नदी समुद्र में जाकर निवास करते हैं इसी प्रकार सब आश्रमी गृहस्थी के पास आश्रय लेते हैं ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

एकसौ तेईस का अध्याय ॥

राजा जनक बोले कि, हे महर्षे! वर्णों में जो विभाग हैं वह किस कारण से हुए उनको मैं सुनना चाहता हूं जो यह सन्तान पैदा होती है वह उसी पिता के रूप हैं यह श्रुति है ब्रह्मा की सन्तान सृष्टि ने कैसे दूसरे वर्ण को पाया अर्थात् सतोगुणी ब्राह्मण का पैदा होना योग्य है उससे रजोगुण प्रधान क्षत्री आदि कैसे उत्पन्न हुए पराशरजी बोले हे महाराज ! यह इसी प्रकार से है कि जो जिससे उत्पन्न हुआ वह वही है परन्तु तप के न होने से जातिभेद को पाया है अच्छे क्षेत्र और बीज से उत्तम और पवित्र सन्तान उत्पन्न होती है और नीच से नीच ही सन्तान होती है लोकों के स्वामी ब्रह्माजी के मुख भुजा जंघा और चरणों से पुत्र उत्पन्न हुए हे तात, राजन्, जनक! ब्राह्मण मुख से उत्पन्न हैं, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य जंघा से, शूद्र चरणों से पैदा हुए हैं इस प्रकार से चारों वर्णों की उत्पत्ति है इनसे अन्य जो दूसरे हैं वे संकरवर्ण हैं उनके नाम क्षेत्ररथ, क्षत्रिय, अतिरथी, अंबष्ठ, उग्र, वैदेहिक, श्वपाक, पुल्कस, स्तेन, निषाद, सूत, मागध, आयोग, कारण, व्रात्य, चाण्डाल यह सब इन्हीं चारों वर्णों के अन्योन्य भोगों से उत्पन्न हुए हैं, भिन्न अंग न रखनेवाले अज्ञान से यह सब संसार उत्पन्न हुआ है यही सर्व्वत्र सुनाजाता है उसमें अंगों का विचार करना कहां से है यह शंका करके जनक ने कहा कि एक ब्रह्माजी से सृष्टि के मनुष्यों की मिली हुई आधिक्यता और गोत्र आदि की उत्पत्ति कैसे हुई क्योंकि इसलोक में अनेक गोत्र हैं, जहां तहां किसी प्रकार से पैदा होनेवाले मुनियों ने अपने मूल को पाया है जैसे कि कक्षीवान् से शूद्रा में उत्पन्न होनेवाले पुत्रों ने ब्राह्मणवर्ण को पाया उसी प्रकार शुद्धयोनि में उत्पन्न होनेवाले अन्य मनुष्य विपरीतयोनि में नियत हुए, पराशरजी बोले कि, हे राजन् ! तप से शुद्ध अन्तःकरण महात्माओं की यह उत्पत्ति उस मनुष्य से जो कि रजोगुण तमोगुण में प्रवृत्त हो जानने के योग्य नहीं है, हे राजन् ! मुनिलोगों ने जहां तहां पुत्रों को उत्पन्न करके फिर अपनेही तप से उनका ऋषिभाव विचार किया, पूर्वसमय में काश्यप गोत्री ऋषिशृंग

मेरे पितामह वेदताण्डव, कृप, कक्षीवान्, कमठ, यवक्रीत, द्रोण, आयु, मतंग, दत्त, द्रुमद, मात्स्य इन सबने तप के ही आश्रय से अपने मूल को पाया वह वेदज्ञ शान्तचित्त तप के ही द्वारा प्रतिष्ठित हुए, हे राजन् ! सगुण ब्रह्म में यह चार गोत्र अर्थात् नाम पैदा हुए अंगिरा, काश्यप, वशिष्ठ, भृगु, आशय यह है कि अंगिरा अंगों का रस है इसीकारण देवताओं ने उसका नाम अंगिरा रक्खा है और हम सबसे अधिक जितेन्द्रिय होने से देवताओं ने वशिष्ठ नाम रक्खा यह श्रुति है, हे राजन्! इसीप्रकार से दूसरे सब गोत्र कर्म्म से और उनका नाम तप से विख्यात हुआ यह सब नाम गोत्र सत्पुरुषों के अंगीकार किये हुए हैं, राजा जनक बोले कि हे भगवन्! आप प्रथम सब वर्णों के मुख्यधर्मों को वर्णन कीजिये फिर सर्वसाधारण धर्म्मों को कहिये क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, पराशरजी बोले कि हे राजन् ! दानलेना यज्ञकराना और वेद पढ़ना यह तो ब्राह्मणों के मुख्यधर्म्म हैं और संसार की रक्षा करना यह क्षत्रियों का मुख्य धर्म्म है, खेती पशुपालन और व्यापारादि यह वैश्यों के मुख्यधर्म्महैं हे भूप ! यह तीनोंवर्ण द्विजन्मा कहेजाते हैं इनतीनों वर्णों के सिवाय शूद्र का कर्म्म पृथक् है, यह वर्णों के मुख्यधर्म्म वर्णन किये और इनके सिवाय सर्व साधारण वर्णों को सुनो उनको मैं विस्तार समेत कहता हूं, दया, अहिंसा, अप्रमादता, सबका भागदेना, श्राद्धकरना, अतिथि को भोजन देना, सत्य बोलना, क्रोध न करना, अपनी ही स्त्री पर सन्तोष करना, सदैव बाहर भीतर से पवित्र रहना, किसी के दोष को न कहना, आत्मज्ञान, शान्ति, यह सब धर्म्म सर्व साधारण हैं अर्थात् सबके लिये योग्य हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीनों दुबारा संस्कार होने से संस्कारी हैं और इन पूर्व्वोक्त धर्मों के अधिकारी भी हैं और हे राजन् ! यह तीनों अपने धर्म्म से विपरीत चलने में अपने २ अधिकार से अधःपतन होते हैं अर्थात् नीचे अधिकार में गिरते हैं और सतोगुण आदि से उत्पन्न होनेवाले गुण उस स्वकर्म्मनिष्ठ मनुष्य के आश्रित होकर वृद्धि को पाते हैं और शूद्र वेदोक्तधर्मों से रहित होता है इसीसे वह अपने से नीचे अधिकार में नहीं गिरता है परन्तु उक्त दशप्रकार के धर्म्मों में इसको निषेध भी नहीं किया हे राजन्, जनक ! वेदपाठी ब्राह्मण शूद्र को तीसरे जन्म में ब्राह्मण के समान मुक्त होनेवाला कहते हैं और वही वेदज्ञ ब्राह्मणलोग शूद्र को वैदेहिक कहते हैं मुख्य आशय यह है कि जो स्थूलशरीर को त्याग करके सूक्ष्म

शरीर को आत्मारूप जानते हैं वह विदेह कहलाते हैं और जो स्थूल सूक्ष्म दोनों देहों को त्याग करके प्रधाननाम कारण को आत्मारूप जानते हैं वह प्रकृति में लय होनेवाले हैं और तीनों शरीरों के त्याग करनेवाले ब्राह्मण हैं, पहले की मुक्ति दो जन्म में दूसरे की एक जन्म में और तीसरे की शीघ्रही होती है इस कारण से ब्राह्मणों ने शूद्रको वेदहीन कहा है अर्थात् शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय के जन्म को पाकर ब्राह्मण होना है यज्ञ न करनेवाले शूद्र की चित्तशुद्धिहोने से वह कैसे विदेह आदि होगा इस का कारण कहते हैं—कामादि दोषों को दूर करने की इच्छा वाला अथवा आत्मा की निवृत्ति चाहनेवाला शूद्र सत्पुरुषों के शान्तचित्त दया आदि चलनपर नियत होकर विना मन्त्र पौष्टिकादि क्रियाओं को करके दोषके भागी नहीं होते हैं और अन्यलोग जिस २ उत्तमरीति चलन को अंगीकार करते हैं उसी २ प्रकारसे इसलोक परलोक दोनों में आनन्द को भोगते हैं, राजा जनक ने कहा कि, हे महामुने ! इस मनुष्य को कौन सा कर्म्म दोषयुक्त करता है इस मेरे संदेह को भी आप निवृत्त करिये, पराशरजी बोले कि, हे महाराज ! निस्संदेह कर्म्म विरादरी दोनों दोषों के उत्पन्न करनेवाले हैं इसके मूल को सुनो कि जो मनुष्य ज्ञाति और कर्म्म से दूषित कामों को नहीं करता है और जो ज्ञाति से दूषित मनुष्य पाप को नहीं करता है वह उत्तम पुरुष कहाता है राजा जनक ने कहा कि हे मुने ! इसलोक में कौन से कर्म्म धर्म्मरूप हैं, जिनको सदैव करने से मनुष्य की हानि नहीं होती, पराशरजी ने कहा कि हिंसारहित धर्म्म ही इसलोक में मनुष्य की रक्षा करते हैं वह यह हैं कि तप से पृथक् उदासीन पुरुष अग्नियों को त्याग कर अर्थात् संन्यासी होकर क्रम से योगमार्ग्ग में प्रवृत्त होके मोक्षरूप सुख को देखते हैं श्रद्धा और नम्रतापूर्वक दानयुक्त होकर मनवाणी से शान्त शुद्धचित्त होना, सूक्ष्मबुद्धि होकर सब कर्मों का त्यागना इन कर्मों से मनुष्य रूपान्तररहित स्थान को पाता है, हे राजन् ! सब वर्ण धर्मरूप कर्मों को अच्छी रीति से करके सत्यवक्ता हो जीवलोक में भयकारी अधर्मों को त्यागकर स्वर्ग को पाते हैं इसमें किसी बात का विचार न करना चाहिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

एकसौ चौबीस का अध्याय ॥

पराशरजी बोले कि, इस लोक में भक्ति आदि से रहित मनुष्यों के पिता,

मित्र, गुरु, स्त्री आदि कोई भी इसकी सेवा आदि का फल देने को समर्थ नहीं होते हैं और पूर्णभक्त प्रियवादी शुभचिन्तक जितेन्द्रिय मनुष्य रक्षा सेवा आदि के फल को पाते हैं, मनुष्यों का श्रेष्ठ देवता पिता है पिता के कहने से माता संयुक्त समझना चाहिये और ज्ञान के लाभ को उत्तम कहते हैं और जिन्होंने इन्द्रियों के विषयों को जीता वह ब्रह्मपद को पाते हैं, जो राजकुमार युद्धभूमि में जहां बाणरूप अग्नि का शस्त्र है उससे घायल होकर मरता है वह देवपूजित लोकों को पाता है और सुखपूर्वक स्वर्गफल को भोगता है, हे राजन्! जो मनुष्य थका हुआ, भयभीत, अशस्त्र, हाथ जोड़े, रथ कवच आदि सामान से हीन, विना शस्त्र प्रहार किये अथवा रोगग्रस्त सन्मुख आकर बालक या वृद्ध के समान प्रार्थना करनेवाला है ऐसे मनुष्य को कभी न मारे, हे राजन्! ऐसे क्षत्रिय के लड़के को जो रथ, शस्त्र, कवच युक्त शस्त्र को प्रहार करनेवाला अपनी समान का है उसको मारे, इस लोक में समान या अपने से उत्तम पुरुष के हाथ से अपना मरण होना कल्याणरूप है और नीच नपुंसक और कृपण के हाथ से मरना निन्दित कियाजाता है, पापी पाप कर्मवाले और नीच जाति के हाथ से मरना पापरूप कहाजाता है और उसका फल भी निश्चय नरक होता है, हे राजन्! मृत्यु के वशीभूत मनुष्य की कोई रक्षा नहीं करसक्ता है और जिसकी अवस्था बाकी है उसको कोई मार नहीं सक्ता, इस लोक में माता आदि के किये हुए कर्म चाहैं हिंसारूपही होयँ उन पर कभी ध्यान न करे और दूसरे के प्राणों से अपने प्राणों का पोषण नहीं करे हे तात! बन्धन का नाश चाहनेवाले या पक्षिरूप परमात्मा के द्वारा परमानन्द की इच्छा करनेवाले क्रियावान् सब गृहस्थियों का तीर्थों पर मरना अच्छा है-अब हठ से तीर्थों पर मरने की निन्दा करते हैं-जिस मनुष्य ने देह को पाकर हठ जल प्रवेशादिक से अपने देह को त्याग किया उसका देह वैसाही है जैसा कि पूर्व में उत्पन्न होता है अर्थात् इस प्रकार से देह का त्यागनेवाला देह के कठिन दुःखों को पाता है यह हठमार्ग निन्दित है क्योंकि यह मोक्षक्षेत्र में भी इस देहसे दूसरेही देह में प्रवेश करता है फिर क्या इसकी मोक्ष नहीं है यह शंका करके कहते हैं-एक देह से दूसरे देह के मिलने में दूसरा कोई कारण वर्तमान नहीं है अर्थात उस देह के गुण केवल भोगही होने और कर्म गुण न होने से दूसरे देह की उत्पत्ति नहीं है क्योंकि जीवों का वह यातनारूप देह

मोक्ष के योग्य होकर रुद्र पिशाचादिकों में पूर्व कर्म फल के पूरे होने के निमित्त संयुक्त होकर वर्तमान होता है वेदान्त विचार करनेवाले ज्ञानियों ने देह को शिरा और स्नायुनाम नाड़ी और हाड़ों का समूह अत्यन्त अपवित्र वस्तुओं से भरा हुआ पञ्चतत्त्वात्मक वासनारूप विषयों के इकट्ठे होने का स्थान है ऐसा कहा है और परिणाम में मृत्यु होनेवाला सुन्दरतादि रूपों से रहित नाशवान् पूर्वसंस्कार से मनुष्यता को प्राप्त होनेवाला है, जीवात्मा से और चेष्टा से रहित जड़रूप देह जिसमें पञ्चतत्त्व अपने-अपने मूल कारणों में लय हुए पृथ्वी में मिल जाता है फिर योगादि कर्मों से प्रकट किया हुआ जहां तहां उत्पन्न होता है और स्थान स्थान पर मृत्यु को पाता है उसीप्रकार उसीका स्वरूप अपने कर्म के फल से दिखाई देता है, हे राजन् ! फिर वह भूतात्मा कुछ समय तक जन्म नहीं लेता है और ऐसे भ्रमण करता है जैसे कि आकाश में बड़ा बादल घूमता है फिर इसलोक में उद्धार होकर जन्म को पाता है, उद्धार यह है कि चित्त से अधिक आत्मा है अर्थात् संकल्प से रहित होना और संकल्प से पृथक् आत्मा में नियत होना मोक्ष का लक्षण है इन्द्रियों से प्रधान मन है और सब जीवों में चैतन्य जीव श्रेष्ठ हैं और चैतन्य चेष्टावान् जीवों में द्विपाद जीव उत्तम हैं और द्विपादों में भी द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीनों वर्ण श्रेष्ठ हैं और इन द्विज वर्णों में संतानयुक्त उत्तम हैं, प्रजाओं में योगी और योगियों में योग ऐश्वर्य से उत्पन्न होनेवाले निरहंकारी उत्तम हैं, मनुष्यों को यह पूर्ण निश्चय है कि संसार को मृत्यु प्राप्त होती है प्रजालोग सतोगुण आदि से युक्त कर्मों को कहते हैं, हे राजन् ! जब सूर्यनारायण उत्तरायण हों तब शुभ नक्षत्र और मुहूर्त में जो पुरुष मरता है वह ब्रह्मलोक के पाने का अधिकारी है, पाप से निवृत्त हो मनुष्यों को विना दुःख दिये अपनी सामर्थ्य के अनुसार कर्म करके कालजन्य मृत्यु से जो शरीर को त्यागता है वह भी उत्तम गति को पाता है, विष, फांसी, अग्नि, चोरों के हाथ से, मांसाहारी डाढ़वाले पशु जीवों से मरना प्रकृति मरण कहाजाता है, आशय यह है कि दुःख से पीड़ित भी योगी इस अपमृत्यु को नहीं चाहै, इच्छा से उत्पन्न इन अपमृत्यु और इसी प्रकार की अन्य बहुत सी मृत्युओं को भी वह पुरुष नहीं पाते हैं जो कि पवित्र कर्म करनेवाले हैं, हे राजन् ! पवित्र कर्म करनेवाले पुरुषों के प्राण सूर्यमण्डल को भेदकर जाते हैं और सामान्य धर्म

करनेवालों के प्राण नरलोक नाम सामान्य मार्ग से जाते हैं और निकृष्ट कर्म करनेवालों के नीचे मार्ग जो पशुपक्षी योनि हैं उनमें जाते हैं, हे राजन्! पुरुष का शत्रु एक अज्ञान ही है उससे अधिक कोई दूसरा दुःखदायी नहीं है उससे ही ढक्का और संयुक्त मनुष्य भयानक और भय के उत्पन्न करनेवाले कर्मों को करता है, उसी अज्ञान के नाश के लिये वेदोक्त धर्म में प्रवृत्त होकर वृद्धों के सत्संग से समर्थ होवे, हे राजपुत्र ! वह अज्ञान नाम शत्रु बड़े उपायों से जीतने के योग्य है वह ज्ञानरूप बाण से घायल करके ही नाश किया जाता है, ब्रह्मचारी तपस्या के द्वारा वेद को पढ़कर सामर्थ्य के अनुसार पञ्चयज्ञों को करके धर्म और मोक्ष मार्ग में नियत होकर वन को जाय, मनुष्य उपभोगों के न मिलने से अपनी हानि न करे हे राजन्! जीवों में भी मनुष्य-देह पाना बड़ा उत्तम है यही जन्म आदि है इसीको पाकर शुभ लक्षण युक्त कर्मों के द्वारा आत्मा की रक्षा होना संभव है, इसी देह में वेद के प्रमाण से मनुष्य अनेक धर्म कर्म कर सक्ता है, जो मनुष्य इस दुष्प्राप्य मनुष्य-शरीर को पाकर उत्तम कर्म नहीं करता है और धर्म का अपमान करनेवाला है वह दुराचारी कर्म से ठगा जाता है, जो मनुष्य सब जीवों को कृपादृष्टि से देखता है और सामर्थ्य के अनुसार दान मान सत्कार से उनका पोषण भी करता है और श्रेष्ठ मीठे वचनों से प्रसन्न करता है वह सुख दुःख में समान होकर परलोक में प्रतिष्ठा को पाता है दान त्याग शान्तरूप श्रेष्ठ है और जल और तपस्यादि से शरीर को पवित्र करना चाहिये वह जल सरस्वती नदी पुष्कर नैमिष इत्यादि पृथ्वी के बहुत से तीर्थों में वर्त्तमान हैं, जिन पुरुषों के प्राण घरों में निकलते हैं उनको सवारी के द्वारा समीपी पुण्यक्षेत्र अथवा श्मशान भूमि में लेजाकर विधि से दाहादि कर्म्म करना उत्तम है, अमावास्या पूनों के अंगरूप यज्ञ को इष्टि कहते हैं और बालबच्चों के पोषण को पुष्टि कहते हैं इन दोनों को और यज्ञ करना कराना दान पवित्र कर्म्मों का प्रचार करना इत्यादि जो उत्तम कर्म्म हैं इन सबको यह मनुष्य आत्मा के निमित्त सामर्थ्य के अनुसार करता है और साधारण कर्म्म करनेवाले मनुष्य के कल्याण के निमित्त वेद के छओं अंग और धर्म्मशास्त्र धारण कियेजाते हैं, भीष्मजी ने कहा हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार से पराशरजी ने राजा जनक से वर्णन किया ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

एकसौ पच्चीस का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे तात ! मिथिलापुरी के राजा जनक ने फिर भी धर्म्म के निश्चय की उत्तमता को पराशरजी से पूछा कि हे बड़े बुद्धिमन्, ऋषे ! कल्याण का क्या साधन है कौन गति है और कौनसा कर्म्म नाश नहीं होता और कहां जाकर फिर यहां लौटकर नहीं आता है इसको आप कृपा करके समझाइये, पराशर जी बोले कि, हे चिन्मात्ररूप, जनक ! माया के सब पदार्थों से प्रीति न करना कल्याण का मूल है और ज्ञान का होना परमगति है और करी हुई तपस्या का नाश नहीं होता है क्षेत्र और सत्पात्र में बोया हुआ अथवा दिया हुआ दान नाश नहीं होता है, जब अधर्मरूप फांसी को काट कर धर्म में प्रीति करता है तब निर्भयता करनेवाले दान को देकर संन्यास को धारण करके मोक्षरूप सिद्धि को पाता है यह चौथे प्रश्न का उत्तर हुआ, जो पुरुष हजारों गौ और घोड़ों को दान करता है और जीवमात्र को निर्भय दान देता है उसको सदैव निर्भयता प्राप्त होती है, बुद्धिमान् असंग पुरुष विषयों में नियत होकर भी पृथक् ही रहता है और दुर्बुद्धि मनुष्य सदैव नीच पुरुषों में और विषयों में ही पड़ा रहता है, कमल के पत्ते के ऊपर जैसे जल की बूंद नहीं ठहरती है इसी प्रकार ज्ञानी को अधर्म स्पर्श नहीं कर सक्ता है और काष्ठ पर लाख के समान अज्ञानी महापापिष्ठ मनुष्य को स्पर्श करता है, और दानरूप क्रिया के फल के चाहनेवाले और कर्म के करने के अभिमानी पुरुष को अधर्म कभी नहीं त्याग करता है, शुद्ध अन्तःकरण और आत्मज्ञान के विचारनेवाले पुरुष कर्मों के फल से कष्ट को नहीं पाते हैं जो कर्त्ता, पुरुष बुद्धि और कर्मेन्द्रियों के नष्ट कर्मों को नहीं जानता है और अच्छे बुरे कर्मों के फलों में आसक्त चित्त है वह बड़े भय को पाता है, जो सदैव वैराग्यवान् और क्रोध का जीतनेवाला होता है वह विषयों में वर्त्तमान भी पापयुक्त नहीं होता है, जैसे नदीपर बाँधा हुआ सेतु चलायमान नहीं होता है किन्तु नदी की पुष्टि करता है इसीप्रकार सब रागों से रहित धर्म्मरूप सेतु रखने वाला मर्य्यादा पुरुषोत्तम मनुष्य पीड़ा नहीं पाता है और उसके तप की वृद्धि होती है, हे राजेन्द्र ! जैसे कि सिद्ध मुनिलोग नियम के द्वारा सूर्य्यसम्बन्धी तेज को पाता है इसी प्रकार योग प्राप्त होनेपर यह जीव समाधि और ध्यान के द्वारा ब्रह्मभाव को पाता है, जब स्वर्ग की इच्छा करनेवाला मनुष्य स्त्रियों का

त्याग करता है और स्थान धन सवारी और नानाप्रकार के उत्तम कर्म्मों को त्याग करता है अर्थात् उन कर्म्मों के फलों को नहीं चाहता है तब उसकी बुद्धि विषयों को नहीं चाहती है, जिसप्रकार इस लोकमें तिलों का गुण पृथक् २ फूलों के योग से बड़ी २ मनोहर सुगन्धिताओं को पाता है इसीप्रकार अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरण मनुष्यों के सदैव अभ्यास के द्वारा सतोगुण उत्पन्न होता है, जो विषयों में बुद्धि लगानेवाला मनुष्य किसीप्रकार से भी अपनी श्रेष्ठता को नहीं जानता है वह सब भावों में प्रवृत्त चित्त से ऐसे खैंचा जाता है जैसे कि कांटेमें लगे हुए मांस से मछली पकड़ी जाती है, यह नरलोक देह और इन्द्रियों के समूह आदि के समान स्त्री, पुत्र, पशु आदि का समूह है परस्पर में रक्षा स्थान से रहित है अर्थात् केले के समान सार से रहित है, जैसे नौका जल में डूब जाती है इसीप्रकार यह भी डूब जाता है मनुष्य के धर्म का समय नियत नहीं है और मृत्यु भी मनुष्य की राह नहीं देखती इससे सदैव धर्म का ही अभ्यास रखना उत्तम है मनुष्य मृत्यु के मुख में अपने को समझा करे, धर्म से चित्त शुद्धि होने पर योगाभ्यास करना चाहिये इसको कहते हैं कि जैसे अन्धा अपने घर में अभ्यास से ही जाता है इसी प्रकार ज्ञानी योगी योगाभ्यास में चित्त को लगाकर उस गति को प्राप्त करता है, योग के न होने में अप्रियता को कहते हैं—मरना जन्म के लिये कहा और जन्म मृत्यु से संयुक्त ही है अज्ञानी मोक्षधर्म को न जानता हुआ चक्र के समान माया में घूमता है, और बुद्धिमार्ग में चलनेवाले मनुष्य को इस लोक परलोक दोनों में सुख होता है—विस्तार करने से क्लेश होता है और संक्षेपता से करना सुखकारी है सब विस्तार पराये निमित्त हैं और त्याग को आत्महितकारी कहते हैं, जैसे कमल के मृणाल की लगीहुई कीच शीघ्रता से अलग होजाती है वैसे ही पुरुष का आत्मा उपाधिरूप चित्त से पृथक् होता है, चित्त से उत्पन्न होनेवाला संसार चित्त से ही नाश होजाता है इसको कहते हैं—चित्त ही आत्मा को योगमार्ग में लाता है फिर वह योगी उस चित्तरूप आत्मा को परम काष्ठा में मिलाता है जब वह योग सिद्ध होता है तब उस परमात्मा को देखता है, जो मनुष्य इन्द्रियों की तृप्ति के निमित्त कर्म करने को अपना कार्यरूप मानता है वह इन्द्रियों के विषयों में संयुक्त होकर अपने योगरूप कार्य से नष्ट होजाता है, अब योग से नष्ट होनेवाले की गति को कहते हैं—इस जगत् में ज्ञानी और अज्ञानी का आत्मा

कर्मों के द्वारा आप नीची और तिर्यग्गति को और स्वर्ग में इन्द्रलोक को पाता है, अब योगनिष्ठ मनुष्य की गति को कहते हैं-जैसे मिट्टी के पात्र में पकाया हुआ जल आदि नष्ट नहीं होता है उसीप्रकार तप से तपाया हुआ देह ब्रह्मलोक तक विषय को व्याप्त करता है, जो आत्मा विषयों को प्राप्त करता है वह भोगता नहीं है अर्थात् निस्संदेह वह साक्षी है और जो चिदाभास जीवरूप आत्मा वैराग्यवान् होकर भोगों को त्याग करता है वही उनके भोगने को निश्चय करता है, वह साक्षीरूप आत्मा जिस हेतु से संयुक्त नहीं होता है उसको सुनो-कोहरे से ढके हुए के समान उदर और लिंग की तृप्ति में प्रवृत्त जीवात्मा जन्म से ही अन्धे के समान मार्ग को नहीं जानता है, जैसे वैश्य समुद्र से अपने मूलधन के अनुसार धन को पाता है उसीप्रकार इस संसारसागर में कर्म और विज्ञान से जीव की गति होती है, इस कालप्रधान लोक में वृद्धावस्थारूप से घूमती हुई मृत्यु जीवों को ऐसे निगल जाती है जैसे कि सर्प हवा को निंगलता है, जन्म लेनेवाला जीव अपने किये हुए कर्मफलों को पाता है विना कर्म के कोई प्रिय अप्रिय वस्तु नहीं मिलसक्ती, सदैव अच्छे बुरे कर्म इस मनुष्य को प्राप्त होते हैं, तत्त्वज्ञ पुरुषों का दूसरा जन्म नहीं होता इसको कहता हूं देहधारी मनुष्य संसारसागर के किनारे को पाकर जल के सिवाय दूसरे का तरना निश्चय नहीं करता है और महासमुद्र में इसका गिरना कठिन दृष्ट पड़ता है, जैसे कि नौका बड़े जल में मल्लाहरूपी चित्तवृत्ति से रस्सी के द्वारा खैंची जाती है इसीप्रकार चित्त भी अपने विचार से देह को कर्म में प्रवृत्त करता है, जैसे कि सब नदियाँ समुद्र में मिलती हैं उसी प्रकार आदि प्रकृति चित्त के विचार के द्वारा एकता प्राप्त करती है, बहुत प्रकार की प्रीतिरूपी रस्सियों से बँधे हुए चित्त और अज्ञान के स्वाधीन मनुष्य दुःख को पाते हैं, जो देहरूप घर और बाह्याभ्यन्तरीय शुद्धिरूप तीर्थवाला बुद्धि के मार्ग में चलनेवाला शरीरी है उसको दोनों लोक सुखदायी हैं मोक्षमार्ग में यज्ञादिक कर्म दुःखरूपही हैं और त्यागादि सुखदायक हैं, क्योंकि सब यज्ञादिक कर्म दूसरे के अर्थ हैं और त्यागादि अपने ही निमित्त होते हैं, योग के विघ्नरूप जो पुत्रादि की चिन्ता है उसको न करना चाहिये इस बात को कहते हैं-सब मित्रवर्ग संकल्प से उत्पन्न होते हैं और ज्ञातिसम्बन्धी लोग कारणरूप हैं अर्थात् पूर्व संस्काररूप हैं पुत्र, स्त्री, दास, दासी आदि अपने प्रयोजन के

सिद्ध करनेवाले हैं, माता पिता किसी के काम नहीं आते हैं और दानरूप पाथेय है अर्थात् पथ का भोजन है यह जीव स्वर्ग में जाकर अपने कर्मफल को पाता है यह माता, पिता, पुत्र, भाई, स्त्री और मित्रों के समूह ऐसे दृष्ट पड़ते हैं जैसे कि अशर्फी के ऊपर मुख्यरेखा—जैसे पूर्व समय के निज किये हुए पाप पुण्य मनुष्य को अपना-अपना फल देने के लिये प्राप्त होते हैं इसी प्रकार अन्तरात्मा सन्मुख वर्तमान कर्मफलों को जानकर बुद्धि को प्रेरणा करता है, जो मनुष्य एकाग्रचित्त योगाभ्यासी शूर धैर्यवान् और पण्डित है उसको कभी लक्ष्मी ऐसे त्याग नहीं करती है जैसे कि सूर्य को सूर्य की किरणें नहीं त्यागतीं, जिसकी प्रशंसा योग्य बुद्धि है वह मनुष्य परमेश्वर और परलोक के मानने वा निश्चय वा उपाय वा निरहंकारता आदि से आस्तिक्य बुद्धि के द्वारा कर्म का प्रारम्भ करे वह कर्म मिथ्या नहीं होता है, सब जीव निश्चय करके गर्भ से ही अन्ततक अपने पूर्वकर्मों के फलों को प्राप्त करते हैं इस कारण वह पाप पुण्य त्याग नहीं किये जासक्ते हैं, मृत्यु अपने सार्थी जीवन के नाश करनेवाले काल के साथ देह को ऐसे त्याग कराती है जैसे कि आरे से निकले हुए काष्ठ चूर्ण को वायु उड़ा देता है, इसी कारण प्रारब्ध से मिलनेवाली मर्यादाओं से प्राणों को धारण करके मोक्ष के ही निमित्त उपाय करना चाहिये, धनस्वरूप पुत्र, स्त्री, सुन्दर कुल आदि सुख अपने पूर्व कर्म के ही फल के द्वारा पाता है तात्पर्य यह है कि इन पदार्थों के निमित्त उपाय न करे केवल आत्मतत्त्व के साक्षात्कार के निमित्त उपाय करे, भीष्मजी बोले हे तात ! इसप्रकार से पराशरजी से उपदेश पाया हुआ राजा जनक अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

एकसौ छब्बीस का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! इस संसार में सत्यता, शान्तता और बुद्धिमत्ता इत्यादि गुणों से ज्ञानी मनुष्य की प्रशंसा करते हैं इसको आपने किस प्रकार माना है, भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर ! इस स्थान में एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें साध्यों का और हंस का संवाद है, अजन्मा और नित्य प्रजापति ब्रह्माजी सुन्दर पक्षधारी हंसरूप होकर तीनों लोक में घूमते थे दैवयोग

से घूमते हुए साध्य देवताओं के पास आये साध्य बोले हे पक्षिन् ! हम सब साध्य देवता तुमको नमस्कार करके मोक्षधर्म को पूछते हैं क्योंकि आप निश्चय करके मोक्ष के जाननेवाले हैं आपको हमने पण्डित और ज्ञानियों से मोक्षधर्म्म का वर्णन करनेवाला सुना है आपकी कीर्त्ति और प्रकर्षना विख्यात है आप किसको उत्तम मानते हैं और किसमें चित्त को रमाते हो हे महात्मन् ! उसीका उपदेश हमको कीजिये और अनेक कर्म्मों में से मुख्य एक कर्म्म को बताइये जिसको करके मनुष्य संसारबन्धनों से छूटकर परमगति को पावें, हंस ने कहा कि अमृतपान करनेवाले देवताओं में यह बात करने के योग्य सुनता हूं कि तपस्या करना सत्यतापूर्वक शान्तचित्त होना चित्त को जीतना और हृदय के रागादि दोषों को त्यागकर प्रिय अप्रिय को समान जानना अर्थात् उन में सुख दुःख न मानना चाहिये मर्म्मभेदी वचन न कहना नीचसे शास्त्रको न पढ़ना दूसरे को व्याकुल करनेवाला भयकारी असभ्यवचन का न कहना यह वचनरूप बाण मुखसे निकलते हैं उनसे घायल होकर मनुष्य अहर्निश दुःखी रहता है वह वचनबाण दूसरे के मर्म्मस्थान को ऐसा नहीं विदीर्ण करते जैसा कि कहनेवाले के मर्म्म को छिन्न करते हैं उन वचनरूप बाणों को पण्डित मनुष्य कभी दूसरेपर नहीं छोड़े जो अन्य मनुष्य इसको किसी प्रकार से वचनबाणों से घायल भी करे तब भी इसको शान्तिही करनी योग्य है जो अत्यन्त क्रोधरूप पुरुष को प्रसन्न कर देता है वह उसके पुण्य के फल को प्राप्त होता है, जो पुरुष दूसरे की अप्रतिष्ठा करनेवाले क्रोध को अपने आधीन करता है वह निर्भय दूसरे की निन्दा न करनेवाला और प्रसन्नचित्त दूसरों के पुण्यों को लेता है, जो पुरुष गाली खाकर कुछ नहीं कहता और चोट खाकर क्षमा करता है वही उत्तम है क्योंकि श्रेष्ठपुरुषों ने क्षमा, सत्यता, सरलता और दया कोही उत्तम कहाहै, सबका मत यह है कि वेद की गुप्तबात सत्यता है, सत्यवचनों की गुप्तबात अपने मनकी इच्छाओं का रोकना है और इच्छा आदि के रोकने की गुप्तवार्त्ता मोक्ष है; जो पुरुष मन, वचन, क्रोध, लोभ, उदर और काम की शक्ति को रोके मैं उसको ब्राह्मण और मुनि मानता हूं, क्रोध करनेवालों में क्रोधरहित होना उत्तम है इसी प्रकार अशान्त पुरुषों में शान्तपुरुष श्रेष्ठ हैं और जो मनुष्यता के गुणसे पृथक् हैं उनसे मिलनसार मनुष्य श्रेष्ठ हैं इसीप्रकार अज्ञानी से ज्ञानी अथवा ब्रह्म का जाननेवाला उत्तम है गाली देनेवाले को अपनी ओरसे गाली न दे शान्त

पुरुष का क्रोध इस गाली देनेवाले को नाश करता है और पुण्य भी हरलेता है, जो अत्यन्त निन्दित वा प्रशंसित मनुष्य रूखे और अप्रिय वचन को नहीं कहे और घायल किया हुआ धैर्य्य से बदला नहीं लेता है और मारनेवाले के पाप को नहीं चाहता है उस पुरुष की इच्छा देवलोक में देवतालोग करते हैं अप्रतिष्ठा कियाहुआ और प्रहार कियाहुआ और गाली दियाहुआभी अपने समानवाले या अपने से बड़े या नीच की क्षमा करे तो सिद्धि को पाता है, आशय यह है कि मैं भी सदैव वृद्धों का सेवन करता हूं मेरा लोभ प्रकट नहीं होता है और क्रोध और बड़ी आवश्यकता में भी धर्म्म से पृथक् नहीं होता हूं और विषयादिक की प्राप्ति के लिये देवताओं से भी याचना नहीं करता हूं, कोई मुझे शाप भी देता है तो मैं उसे शाप नहीं देता हूं इस लोक में शान्तस्वभाव होने को मैं मोक्ष का द्वार जानता हूं सो यह गुप्त ब्रह्म है इसको कहता हूं कि मनुष्यदेह से बढ़कर कोई कुछ नहीं है, जिसप्रकार चन्द्रमा बादलों से अलग होता है उसी प्रकार पापों से मुक्त रजोगुण से रहित पण्डित मनुष्य समय को देखता धैर्य्य से सिद्ध होता है, जो सबका बड़ा होता है और ब्रह्माण्डमण्डप का स्तम्भरूप है और जिसकी सबलोग प्रशंसा करतेहैं वह जितेन्द्रिय देवताओं में मिलता है, ईर्षा करनेवाले लोग जैसे पुरुषों के दोषों को कहना चाहते हैं वैसे उनके कल्याणरूपी गुणों को नहीं कहना चाहते हैं, जिसके वचन और मन अच्छेप्रकार से आधीन हैं और वेद तप अर्थात् स्वधर्मनिष्ठ होना और त्यागप्राप्त है वह इस सबके फल को पावे हैं ज्ञानी पुरुष अज्ञानियों को गाली देने और अप्रतिष्ठा करने से सावधान करसके इसीकारण दूसरे को नहीं मारे और अपघात भी न करे, पण्डित मनुष्य अपमान से ऐसे तृप्तहोजाय जैसे कि अमृत पीने से संतुष्ट होता है क्योंकि अपमान पाया हुआ सुख से सोता है और अपमान करनेवाला नष्ट होजाता है, क्रोधयुक्त मनुष्य जो यज्ञ करता है वा दान देता है अथवा तप होम आदि करता है उसके सब धर्म्म को यमराज हरलेते हैं और क्रोधी का परिश्रम निरर्थक होता है हे उत्तम देवताओ ! जिसके लिंग उदर दोनों हाथ और वचन यह चारोंद्वार अच्छेप्रकार बुरे कर्म्म से बचेहुए हैं वह धर्मज्ञ पुरुष है, सत्यता, शान्तचित्त होना, सरलता, दया, धैर्य्य, क्षमा इत्यादि का अच्छेप्रकार स अभ्यास करनेवाला सदैव वेद पाठ या जप में प्रवृत्त इच्छारहित और एकान्तवासी है वह मोक्ष का अधिकारी है जैसे कि बछड़ा चारों थनों को पीता

है उसी प्रकार इन सब गुणों को करता हुआ मोक्ष का अधिकारी होता है और मैंने सत्यता से बढ़ कर कोई उत्तम पदार्थ नहीं पाया, मैं घूमता हुआ मनुष्य और देवताओं से कहता हूं कि सत्यता स्वर्ग की नसेनी इस प्रकार की है जैसे कि समुद्र की नौका होती है, यह पुरुष जैसे लोगों के साथ रहता है और जैसे मनुष्यों का संग करता है और जैसा होना चाहता है, वैसाही होता है, जो संतों का सेवन करता है अथवा तपस्वी या चोर की सेवा करता है वह इस प्रकार से उनके आधीन होता है जैसे कि कपड़ा रंग के आधीन होता है, देवता सदैव साधुओं से वार्त्तालाप करते हैं और मनुष्यों के विषय भोगों को देखना भी नहीं चाहते हैं क्योंकि विषयादिक नाशवान् हैं देखो अमृतरूप चन्द्रमा भी सदैव एकरूप नहीं रहता अर्थात् घटता बढ़ता है और वायु भी समान नहीं होती तीव्र मध्यम धीरे चलती है इसी प्रकार न्यूनाधिक युक्ति विषयों को जो जानता है, वही जानता है, रागद्वेष से रहित जैसे हो वैसे ही हृदय में अन्तर्यामी पुरुष के वर्त्तमान होने पर उसी अन्तर्यामी के ज्ञान से युक्त और सत्पुरुषों के मार्ग में नियत पुरुष से देवता प्रसन्न होते हैं अर्थात् जो अन्तर्यामी है वही जीव है यह श्रुतियां जीव ब्रह्म की एकता को सिद्ध करती हैं यह आत्मा ब्रह्म है मैं ब्रह्म हूं वह तू है इत्यादि श्रुति कहती हैं, जो मनुष्य सदैव लिंगेन्द्रिय और उदरपूर्ति में प्रवृत्त हैं वह चोर और सदैव कठोर वचन कहनेवाले हैं उनको देवता लोग प्रायश्चित्त के द्वारा दोषों से रहित भी जान कर दूरसे ही त्याग करते हैं, जो मनुष्य नीच बुद्धि सर्वभक्षी कुकर्मी हैं उन से देवता कभी प्रसन्न नहीं होते, जो पुरुष सत्यव्रत कृतज्ञ और धर्म में प्रवृत्त हैं देवता उनको सुख विभाग करके सेवन करते हैं, बहुत बकने से मौन होना कल्याणरूप है और सत्य वचन कहना दूसरा कल्याणरूप है, धर्मरूप वचन कहना तीसरा कल्याण वचन है, प्रिय वचन कहना चौथा कल्याण है अर्थात् यह चारों एक दूसरे से उत्तम हैं, यह सुन कर साध्य लोगों ने पूछा कि जो ऐसाही है तो लोग क्यों नहीं कल्याणवचनों को कहते हैं और यह लोक किस से ढका हुआ है और काहे से प्रकाश नहीं करता है और किस कारण से मित्रों को त्यागता है और स्वर्ग को नहीं जाता है हंसरूप ने उत्तर दिया कि यह लोक अज्ञान से ढका हुआ है ईर्षा आदि से प्रकाश नहीं करता है लोभ से मित्रों को त्याग करता है और कुसंग से स्वर्ग को नहीं जाता है, जिसका

अज्ञान नाश हो गया है उसके प्रकार के लक्षण पूछने के लिये साध्यों ने प्रश्न किया कि ब्राह्मणों में कौन अकेला रमता है और बहुत मनुष्यों में कौनसा अकेला ज्ञानी सुख पाता है और कौन अकेला पराक्रमी या निर्बल है और इनमें कौन लड़ाई आदि को प्राप्त नहीं करता है, हंस बोले कि, ब्राह्मणों में ज्ञानी अकेला रहता है और अकेला ज्ञानी बहुत मनुष्यों के साथ सुखी रहता है और अकेला ज्ञानी पराक्रमी और निर्बल भी है इनमें ज्ञानी ही लड़ाई आदि को प्राप्त नहीं करता, साध्यों ने कहा कि ब्राह्मणों के देवभाव होने का क्या कारण है और साधुभाव होने का क्या कारण कहा जाता है और इनके असाधु होने का क्या हेतु है और नरभाव कैसे होता है, हंस बोले कि, ब्राह्मणों का वेदपाठ या जप देवभाव का कारण है और व्रतादिकों का करना साधुभाव कहाजाता है दूसरे की निन्दा करना असाधुभावका कारण है और मृत्यु नरभाव का कारण कहाती है, भीष्म जी बोले कि, यह मैंने साधुओं का उत्तम संवाद वर्णन किया और स्थूल सूक्ष्म शरीरों की उत्पत्ति के कारण कर्म हैं और सद्भाव अविनाशी कहा जाता है अर्थात् सद्भावरहित जो किया जाता है वह मिथ्यारूप है ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

एकसौ सत्ताईस का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! आपने सबके उपकार के लिये श्रेष्ठ लोगों का अंगीकार किया हुआ यह योगमार्ग न्याय के अनुसार वर्णन किया अब सांख्यशास्त्र में और योगशास्त्र में जो विशेषता है उसको विस्तारपूर्वक कहिये क्योंकि आप तीनों लोकों के ज्ञान को जानते हैं, भीष्मजी बोले कि, हे आत्मज्ञानिन् ! तुम सांख्य मत के इस सूक्ष्म तत्त्व को मुझसे सुनो जोकि कपिल आदि महामुनियों से प्रकाश किया गया है हे नरोत्तम ! जिसमें अनेक गुण हैं और संदेह आदि नहीं दिखाई देते हैं वह शास्त्र केवल शुद्धब्रह्म से ही सम्बन्ध रखता है इसका आशय यह है कि प्राणसम्बन्धी प्रपञ्च और दूसरा अविनाशी शुद्धब्रह्म इनके विशेष सब कर्म उपासना आदि जो व्यवहार सिद्ध हैं यहां इनमें से किसी को भी साथ लेकर द्वैतभाव नहीं है केवल एक ही अकेला है इस वचन से संसार नाशवान् है परन्तु इसके सिवाय अन्य मतों में द्वैतता मानने से एकता सिद्ध करनेवाले वेदवचन निरर्थक

समझे जाते हैं उनको जगत् की सत्यता का भ्रम दृष्ट पड़ता है ऐसे अनेक प्रकार के भ्रम सांख्यशास्त्र में नहीं होते और कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड का अन्तर अदृष्ट गुण हैं और इनके विपरीत दोष हैं, हे राजन् ! वह योगी दोष और विषयों को ज्ञान से त्याग कर सब विषयभाव को सीपी में चांदी की भ्रान्ति के समान मिथ्या समझ कर मनुष्य पिशाचादि के विषयों को यक्ष, राक्षस, देव, गन्धर्वों के विषयों को मनुष्य से देवता पर्यन्तों के ऐश्वर्यरूपी विषयों को प्रजापतियों में ब्रह्मादिकपर्यन्त के विषयों को, और इस लोक में अवस्था के अन्त को अच्छी रीति से जान कर और सुख के परमतत्त्व को भी जानकर विषय के सदैव चाहनेवालों के दुःख के समय को समझकर पशु, पक्षी, तिर्यक् योनि के जन्म में और नरक में पड़े हुए लोकों का दुःख देखकर स्वर्गको और वेदसम्बन्धी गुणोंको भी जान कर ज्ञानयोग के गुण दोषों को ध्यान करके रागद्वेषादि में गुण अवगुण देखकर और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीनों में भी दश नौ आठ क्रम से अवगुण जानकर चित्त को छः आकाश को पांच बुद्धि को चार गुणवाली इत्यादि सब बातें अच्छेप्रकार से जानकर ज्ञान विज्ञानयुक्त सात्त्विक भावों से शुद्धचित्त आकाश के समान सूक्ष्मज्ञानी शुभ उत्तम मोक्ष को पाता है अब ब्रह्म में सबके लयभाव को कहते हैं कि जैसे कुण्डल में सुवर्ण है उसीप्रकार रूप से युक्त चक्षुरिन्द्रिय, गन्ध से घ्राण, शब्द से श्रोत्र, रस से युक्त रसनाइन्द्रिय, स्पर्श में देह, आकाश में वायु, तम में मोह और अर्थों में लोभ लय होता है, वायु की गति में विष्णु को, भुजा में इन्द्र को, उदर में अग्नि को, जल में पृथ्वी को, तेज में जल को और वायु में तेज को संयुक्त जानो, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में, अहंकार बुद्धि में, तम में बुद्धि को, रजोगुण में तम को लय जानो, सतोगुण में रजोगुण को और त्वं पदार्थ जीव में सतोगुण को इसीप्रकार ईश्वर नारायण देवता में त्वं पदार्थ जीव को और मोक्ष में नियत देवता को जानो, और मोक्ष किसी में भी संयुक्त नहीं है अर्थात् वह कैवल्य निर्विकल्प मोक्ष अपनी ही महत्त्वता में संयुक्त है, सोलहगुणवाले स्वप्न से सम्बन्ध रखनेवाले देहको जानकर पिछले कर्म को और उस कर्म की उत्पत्ति कारणरूप वृत्ति को लिंगशरीर में आश्रयीभूत जान निष्पाप आत्मा को उदासीन जान के जाग्रत् अवस्था में विषय जाननेवालों के कर्म को दूसरा जानकर सब इन्द्रिय

और इन्द्रियों के विषयों को आत्मा में कल्पित जानकर वासनारूप तीनों दशा के कारण से वेदवचन के अनुसार मोक्ष की कठिनता को जानकर प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान इन पांचों प्राणों को एक करके नीचे को प्राप्त करता है वह अधोनाम छठवां है-फिर ऊपर को लेजानेवाला सातवां है इन सबको मुख्यता से जानकर इसीप्रकार फिर उन सातों को जिन प्रत्येकों में सातो प्राण इसप्रकार वर्तमान हैं जैसे कि वृक्षकी जड़ में बहुत से बीज और उन बीजों में अगणित बीज होते हैं यह सब जान के प्रजापति ऋषि और अनेक उत्तम मार्गों को जानकर बड़े देवर्षि ब्रह्मर्षि और सूर्य के समान तेजस्वी महापुरुषों को जानकर देवता आदि अनेक जीवसमूहों को नाशवान् देख सुनकर पांचों की अशुभ गति को और यमलोक की वैतरणी नदी के गिरनेवालों के महादुःखों को जानकर और नानाप्रकार की योनियों में अशुभ जन्म को थूक खकार विष्ठा मूत्र से संयुक्त नाना दुर्यातना में बड़े अनेक नरकों के दुःखों में पीड़ित जानकर संसारी दुःखों में ढके हुए तामसी जीव और सात्त्विकी जीवों के निन्दित कर्मों को जानकर और आत्मज्ञानी सांख्यमतवाले महापुरुषों के अर्थ में निन्दित कर्मों को जानके चन्द्र सूर्य के घोर ग्रहण को देखकर नक्षत्रों के गिरने और अदला बदली आदि को और स्त्री पुरुषों के वियोग और दुःख को देखकर और जीवों का परस्पर में भक्षण करना अशुभ भयकारी जानकर बालकपने के अज्ञान और अशुभ नाश को जानकर प्रीति और मोह होनेपर सतोगुणी बुद्धि में और मोक्ष बुद्धि में हजारों में कोई पुरुष नियत है, वेदवचन के अनुसार मोक्ष की कठिनता को जान अप्राप्त वस्तुओं में बहुत मानना और प्राप्त वस्तु में साधारण मानना और हे राजन् ! विषयों में दुरात्मभाव और निर्जीव पुरुषों के अशुभ देहों को देखकर हे युधिष्ठिर ! घरों में दुःखरूप निवास को और ब्रह्महत्या करनेवाले मनुष्यों की असह्य गति को, मद्यपान और गुरुपत्नी से आसक्त भ्रष्टाचारी ब्राह्मणों की गति को और जो माताओं में अच्छा बरताव नहीं करते और देवताओं से व्याप्त लोकों में श्रेष्ठ चलनवाले नहीं होते उन गतियों को जानकर बुरे कर्मों की और पशु आदि की योनि में जन्म होकर उनकी अनेक दुर्गतियों को और जलजीव कीट पतंगादि के नाश को और मास वर्षआदि के नाश को इसप्रकार यक्ष, राक्षस, देवता, गन्धर्व, दिन, रात, सूर्य, चन्द्रसम्बन्धी वृद्धि क्षय को समुद्रों को न्यूना-

धिकता और धनों के वृद्धि क्षय को ऋतुओं के पहाड़ों के नदियों के नाश को देखकर और ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णों का नाश वृद्धावस्था मरणावस्था आदि देहों के विकारों को और उनके दुःखों को ठीक-ठीक विचार कर, शरीर की व्याकुलता और आत्मा में नियत आत्मा के सब दोषों को जानकर अपने देह को शुद्ध करके कोई मोक्ष को चाहता है, युधिष्ठिर बोले कि, हे महाप्राज्ञ, पितामह ! अपने देह से उत्पन्न होनेवाले कौन से गुण दोषों को देखते हो इस मेरे सन्देह को भी अच्छे प्रकार से दूर करिये, भीष्मजी बोले हे शत्रुहन्तः, युधिष्ठिर! कपिल मुनि के सांख्यशास्त्रज्ञ और सांख्यमत के आचरण करनेवाले ज्ञानीपुरुष इस देह में पांच दोषों को कहते हैं उनको सुनो, काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास यही पांचों देहधारियों के शरीर में दोषरूप दृष्ट आते हैं, सन्तोष शान्ति से क्रोध को निवृत्त करते हैं और संकल्प के त्याग से काम को, सतोगुण रूप कर्म से निद्रा को, सावधानी से भय को और अल्पाहारी होने से श्वास को वश में करते हैं, गुणों को अनेक गुणों से दोषों को दोषों से पहचान कर और अपूर्व बात को अपूर्व बातों से, सैकड़ों माया से व्याप्त भीत के चित्र के समान नरकुल के तुल्य असारवान् गुफा के अँधेरे के समान जल के ओले के समान विनाशवान् नाशरूप इस लोक को देखकर रजोगुण, तमोगुण में भरी कीचड़ में फँसे हाथी के समान परवश संसार को जानकर महाज्ञानी सांख्यशास्त्रवाले संसारी प्रीति को त्यागकर उस सर्व्वन्यायी बड़े सांख्यज्ञान योग से राजसी, असुर, गन्धर्वों को और तामसी, असुर, गन्धर्वों को स्पर्श से उत्पन्न होनेवाले देह में नियत जान पवित्र सात्त्विकी गन्धर्वों को ज्ञान और तपरूप फरसे से काटते हैं हे राजन्, युधिष्ठिर ! इन सब बातों के पीछे अपनी शुद्धचित्तता और क्षेत्रज्ञ के ज्ञान के द्वारा ज्ञानी उस महाघोर सागर को तरते हैं जिसमें दुःखरूप जल और चिन्ता, शोक, गंभीरता, रोग, मृत्यु ग्राह और भय महाभयानक सर्प्प हैं, तमोगुण कछुआ, रजोगुण मछली, स्नेह कीच है, वृद्धावस्था कठिन मार्ग ज्ञानद्वीप है, और कर्मों के कारण अथाह है सत्यतीर और व्रतस्थिरता है, हिंसा शीघ्रता महावेग है और नानाप्रकार के रसही रत्नों की खानि हैं और बहुतप्रकार की प्रीति बड़े २ रत्नाधिक हैं और दुःख ज्वर नाम महावायु के उत्पात हैं शोक लोभ चारों ओर का जल है उग्ररोगही बड़ा हाथी है अंग के जोड़ पानी इकट्ठे होने का स्थान है

और हाड़ों के जोड़ों का इकट्ठा होना मैदान है श्लेष्म समुद्र के फेन हैं दांत मोतियों की खानि है और रुधिर का तड़ागही मूंगे हैं और हँसना पुकारना उसका शब्द है और नानाप्रकार के ज्ञानों से अगम्य है अश्रुपातही निमक है त्याग करनेवालाही उससे पार होताहै लोकमें फिर जन्म लेनाही जल की तीव्रता है पुत्र बांधव लोग नदी के दोनों तटों पर नगर हैं और अहिंसा और सत्यता नदी की मर्यादा हैं और प्राणों का त्यागनाही तरलतरंग है, वेदान्त का प्राप्त करना द्वीप है उस द्वीप में सब जीवों पर दया करना पानी के सोते हैं और कठिनता से प्राप्त होनेवाला मोक्षरूप देशहै और बड़वानल नाम अग्नि जीव सम्बन्ध है, हे राजन् ! शुद्ध जितेन्द्रिय लोग ज्ञानरूप नौका के द्वारा इस समुद्र को तरते हैं और दुस्तर स्थूल शरीर से निर्मोही होकर अर्थात् देह का अध्यास दूर करके निर्मल हृदयाकाश में प्राप्त होते हैं वहां उनको ज्ञान का उदय होताहै तदनन्तर उसी हृदयाकाश में सूर्य्य देवता आत्मसम्बन्धी चित्त के द्वारा प्रवेश करके नाड़ियों के संग अपनी किरणों के परस्पर सम्बन्ध से चौदह भुवन के विषयों को उन शुद्धकर्म्मी सांख्यवालों के ऐसे आधीन करते हैं जैसे कि कमलनाल के छिद्र के द्वारा मुख से आकर्षण कियाहुआ जल उदर में प्रवेश करता है, अर्थात् उसी हृदयाकाश में सूर्य्य अपनी किरणों से उन सुकृती सांख्यवालों को आकर्षण करता है फिर हे युधिष्ठिर ! उन यती रागरहित वीर्यवान् तपोधन लोगों को प्रवहनाम वायु ग्रहण करलेता है और उन ब्रह्माण्डरूप विषयों को लोकोंमें प्राप्त करता है इसीप्रकार आकाश की परमगतिरूप हृदयाकाश को भी जाता है फिर उसी में ब्रह्माण्ड को प्राप्त करता है वह वायु सातों वायु से उत्तम है वही रजोगुण की परमगति अहंकार को पहुँचाता है और अहंकार सतोगुण की परमगति महत्तत्त्वनाम शुद्ध पदार्थ को प्राप्त करता है और सतोगुण तत्पदार्थ श्रेष्ठ नारायण को प्राप्त कराता है, वह ईश्वर आत्मा के द्वारा शुद्ध परमात्मा को प्राप्त कराता है फिर परमात्मा को पाकर परमात्मारूप स्थान रखनेवाले निर्मल लोग मोक्ष के निमित्त समर्थ होते हैं और फिर संसार में लौटकर नहीं आते हैं हे राजन् ! द्वन्द्वरहित सत्यता में प्रवृत्त सब जीवों में कृपा करनेवाले महात्मा यतीलोगों की यह उत्तम गति है, युधिष्ठिर ने कहा कि, हे निष्पाप, पितामह ! यतीलोग उस षडैश्वर्यवान् परमात्मारूप मोक्षस्थान को पाकर सर्वज्ञ होकर जन्म मरण आदि को स्मरण करते हैं या नहीं अर्थात् मोक्षमें

मुख्य विज्ञान है या नहीं, इस स्थान पर जो ठीक वचन है वह जैसा है वैसा ही आप कहने को योग्य हैं—मोक्ष सिद्ध करनेवाले मन्त्रों को पाकर यह बड़ा दोष प्रकट होता है और जो दूसरे यती उस मुख्य विज्ञान में कर्म्मकर्त्ता होते हैं उस दशा में मैं प्रवृत्ति लक्षणवाले धर्म्म को उत्तम देखता हूं किन्तु संसार में डूबेहुए मनुष्य को उत्तम ज्ञान का होना महादुःखदायी है—भीष्मजी बोले कि, हे तात ! तुमने यहां न्याय के अनुसार बड़ा कठिन प्रश्न किया इस प्रश्न के उत्तर में ज्ञानीलोगों को भी महामोह होता है इस स्थान में मेरे वर्णन किये हुए उस उत्तम सिद्धान्त को सुनो जिसमें कपिल मतवाले महात्मा पुरुषों की उत्तम बुद्धि प्रकाशित है हे राजन् ! जीवों के देहमें अपने २ स्थान में नियत इन्द्रियां जिनमें छठा मन है अधिकतर दीखती हैं क्योंकि वह सब आत्मविज्ञान में मुख्य कारण हैं वह सूक्ष्म चिदात्मा उन कर्त्तारूपइन्द्रियों में बाह्याभ्यन्तरीय ज्ञान को प्रकाश करता है, अब आत्मा की ज्ञानशक्ति की पृथक्ता न होना दिखलाने को इन्द्रियों की जड़ता वर्णन करते हैं—आत्मा से पृथक् इन्द्रियां काष्ठ के समान नाश को पाती हैं यह निस्संदेह है कि जैसे महासमुद्र में जल से पृथक् फेन होता है उसीप्रकार आत्मा से पृथक् इन्द्रियां हैं—इन्द्रियों की जड़ता को कहकर आत्मा के स्वयं प्रकाशवान् होने का वर्णन करते हैं कि स्वप्नावस्था में इन्द्रियों के साथ स्वप्न देखनेवाले देहाभिमानी का सूक्ष्म अन्तरात्मा सब विषयों में ऐसे घूमता है जैसे कि आकाश में वायु—हे भरतवंशिन् ! वह न्याय के अनुसार देखता है और स्पर्श के योग्यों को स्पर्श करता है और जैसे कि पूर्व जाग्रत् अवस्था में देखता था उसीप्रकार इस स्वप्नावस्था में भी पूर्णता से सब विषयों का प्रकाश करता है, इस स्वप्नावस्था में अपना स्वामी न रखनेवाली सब इन्द्रियां अपने २ स्थानपर बुद्धि के अनुसार निर्विष सर्प के समान लय होजाती हैं, वह आत्मा अपने स्थानपर नियत होकर सब इन्द्रियों की सूक्ष्म अशेष वृत्तियों को फैलाकर विचरता है अर्थात् चैतन्यसे व्याप्त वृत्तियां निस्सन्देह उदयको प्राप्त होतीहैं अब चैतन्यकी सब स्थानोंमें व्याप्तिको दिखलाते हैं—हे युधिष्ठिर ! फिर वह आत्मा सत्त्व के और रजोगुण तमोगुण और बुद्धि के सब गुणों को व्याप्त करके चित्त के संकल्प आदि गुणों को आकाश के श्रोत्र आदि गुणों को और वायु अग्नि के गुणों को भी व्याप्त करके विचरता है इसी प्रकार जल के और पृथ्वी के भी गुणों को व्याप्त करके विचरता है, फिर

वह ब्रह्म क्षेत्रज्ञों में नियत होकर सतोगुण आदि गुणों को सत्चित् आनन्द से व्याप्त करके क्षेत्रज्ञ को भी व्याप्त करता है और अच्छे बुरे कर्म भी इसी जीव को ऐसे व्याप्त करते हैं जैसे कि शिष्य लोग गुरु अध्यापक को घेर लेते हैं और चित्तसमेत इन्द्रियां भी इसीप्रकार जीव को घेरती हैं, वह जीव प्रकृति को अर्थात् कारण की उपाधि को और इन्द्रियों को भी उल्लंघन कर न्यूनाधिकता से रहित अविनाशी ब्रह्म को प्राप्त होता है, हे राजन्! सब पुण्य पापों से रहित निरुपाधि, निर्द्वन्द्व, निर्गुण, उत्तम प्रकृति से परे आत्मारूप नारायण में प्राप्त होनेवाला वह जीव फिर संसार में लौट कर नहीं आता है, इस स्थान पर समाधि और व्यवस्थान काल के भेद से प्रारब्ध कर्म के अनुसार ईश्वराधीन कर्म करनेवाले शान्त चित्त जितेन्द्रिय के पास मन और इन्द्रिय आते जाते हैं, इसी प्रकार जीवन्मुक्ति के शुद्धभाव को कह कर कैवल्य बुद्धि को कहते हैं-हे कुन्तीनन्दन! इस प्रकार उपदेश पाया हुआ ज्ञानी मोक्ष के अधिकारी गुणग्राही मनुष्य से थोड़े ही समय में मोक्ष का पानेवाला हो जाता है, ऐसे बड़े ज्ञानी सांख्यमतवाले श्रेष्ठगति को पाते हैं हे युधिष्ठिर! इस ज्ञान से उत्तम कोई ज्ञान नहीं है, इस प्रकार सांख्य या योग से शुद्ध होनेवाले त्वम्पदार्थ का अद्वैतब्रह्म सिद्ध होने के निमित्त तत्पदार्थ का अभेद कहने को तत्पदार्थ के स्वरूप को कहते हैं-इसमें तुमको सन्देह नहीं होना चाहिये कि सांख्य ज्ञान उत्तम माना है जिसमें सर्वव्यापी चेष्टारहित पूर्ण सदैव एकरूप सर्वोत्तम ब्रह्मका वर्णन है उसीको ज्ञानी लोग आदि अन्त मध्य रहित अद्वितीय जगत् के जन्म मरण का कारण सनातन निर्विकार अविनाशी और नित्य कहते हैं उसीसे संसार की उत्पत्ति प्रलय और रूपान्तर दशा प्राप्त होती है उसकी महर्षिलोगों ने शास्त्रों के द्वारा बड़ी भारी प्रशंसा की है, सब ब्राह्मण देवता और बाहर भीतर से शुद्धचित्त लोग उस ब्रह्मण्य देव अनन्त अविनाशी सर्वोत्तम को अपना ईश्वर जानते हैं इसी प्रकार अच्छे सावधान योगी और दूरदर्शी सांख्य मतवाले संसार का कर्त्ता और सबका आदि कारण उसको मानते हैं और उस अरूप का स्वरूप शुद्ध चिन्मात्र है यह वेद की श्रुति है, उसके होने को सिद्ध करते हैं-घट आदि वस्तुओं का जो ज्ञान है वही उस अरूप ब्रह्म का भी ज्ञान है अर्थात् निर्विषयक घट आदि का ज्ञान ही परब्रह्म है-हे भरतवंशिन्, तात! इस पृथ्वी पर दो प्रकार के जीव हैं अर्थात् स्थावर और जंगम इनमें जंगम

जीव उत्तम हैं, हे राजन्! जो ब्रह्मज्ञानियों में ज्ञान और वेद शास्त्रों में सांख्य और योग बड़े उत्तम हैं और नाना प्रकार के उत्तम ज्ञान पुराणों में देखे गये हैं वह सब सांख्यशास्त्र में वर्त्तमान हैं आशय यह है कि सांख्य के विज्ञान से सबका विज्ञान होता है इसी प्रकार स्थावर जीवों से जंगम अर्थात् चलने फिरनेवाले उत्तम हैं और जंगमों में भी ज्ञानी सर्वोत्तम है, बड़े इतिहासों में जो ज्ञान देखा और अच्छे पुरुषों से किया हुआ जो शास्त्रों में सुना और देखा वह सब सांख्यशास्त्र में वर्त्तमान है जो उत्तम बल चित्तवृत्तिनिरोध और सूक्ष्म ज्ञान तप आदि सुखरूप हैं वह सब सांख्य विज्ञान के ही निमित्त नियत किये गये हैं, हे राजन्! उस ज्ञान के पूरे होने पर सांख्य मतवाले पुरुष देवलोकों को जाते हैं और वहां के भोगों को भोग कर अपने मनोरथों को सिद्ध करके वही लोग यती ब्राह्मणों में गिर कर जन्म लेते हैं, और यहां से शरीर त्याग कर वह सांख्यवाले देवताओं में प्रवेश करते हैं—हे राजन्! इसी कारण वह ब्राह्मण बड़े प्रतिष्ठित और श्रेष्ठ पुरुषों से सेवित सांख्यज्ञान में अधिक प्रवृत्त हैं इस हेतु से देवता तत्पदार्थ में प्रवेश करते हैं, उनका तिरछा चलना अर्थात् पशु पक्षी आदि में जन्म लेना न अधोगति होना देखा गया है और हे राजन्! वह ब्राह्मण भी नीच नहीं हैं जो इस सांख्यज्ञान में प्रीति करनेवाले हैं, सांख्यज्ञान बहुत बड़ा श्रेष्ठ प्राचीन एकरस निर्मल और चित्तरोचक है उस अप्रमेय अशेष सांख्यज्ञान को महात्मा परब्रह्म नारायण भी धारण करते हैं और श्रुति कहती है कि ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही होता है, हे नरदेव! मैंने यह सिद्धान्त वर्णन किया यह सब विश्व प्राचीन नारायण ही है वही समय पर संसार को उत्पन्न करता है वही प्रलयकाल में सबको अपने में आप लय कर लेता है, अब आधे श्लोक में सांख्य के सब सिद्धान्त का संक्षेप कहते हैं—वह जगत् का अन्तरात्मा नारायण आकाशादि सब सृष्टि को अपने देह में लय करके आप भी शुद्ध चिन्मात्र में लय हो जाता है ॥ ११३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे सप्तविंशत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

एकसौ अट्ठाईस का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि त्वं पदार्थ के शोधनेवाले सांख्य योग को आपने कहा अब उसके पारमार्थिक पदार्थ भाव को मूल समेत वर्णन करिये और जो आपने अविनाशी कहा वह क्या है जिसमें कि प्रवेश करके फिर लौट कर नहीं

आता है और जो विनाशवान् कहा कि जिसमें जाकर फिर लौट आता है वह क्या है हे सर्वज्ञ, पितामह! उन विनाशी और अविनाशी का पूर्ण वृत्तान्त सुनना चाहता हूं आपको ऋषि और महात्मा यती लोग वेदज्ञ और ज्ञान की खानि वर्णन करते हैं, आपकी अवस्था के थोड़े ही दिन बाकी हैं संसार के प्रकाश करनेवाले उत्तरायण में वर्तमान सूर्य भगवान् के होने पर आप इस अनित्य संसार को त्याग परमगति को पावेंगे, आपके जानेपर हम फिर कहां से ऐसे मोक्षरूप वचनों को सुनेंगे आप कुरुवंशियों के दीपकरूप अपने ज्ञानदीपक से हम लोगों पर प्रकाश करते हो हे कौरवकुल के दीपक, स्वर्ग में पहुंचानेवाले, राजेन्द्र! आपसे सब वृत्तान्त सुना चाहता हूं आपके अमृतरूपी वचनों से मेरी तृप्ति नहीं होती है, भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर मैं तुम से एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें वशिष्ठजी और राजा कराल जनक का प्रश्नोत्तर है, कि पूर्व समय में राजा कराल जनक ने उन ऋषियों में श्रेष्ठ आत्मविद्या में कुशल ब्रह्मज्ञान के अनुभव में निश्चय करनेवाले सूर्य के सन्मुख अभिवादन करके मैत्रावरुण के पुत्र वशिष्ठजी को बैठाहुआ देखकर बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर यह मोक्षसम्बन्धी प्रश्न किया, हे ब्रह्मन्! मैं सनातन परब्रह्म को सुना चाहता हूं जिससे कि ज्ञानी लोग आवागमन से छूटजाते हैं, जो वह आनन्दरूप कल्याणमय संसार से छुटानेवाला अद्वैत ब्रह्म कहाता है उसी में यह अनित्य संसार नोन और जल के समान लय होता है, वशिष्ठजी बोले कि हे सृष्टि और पृथ्वी के पालनेवाले! जैसे कि यह संसार लय होता है उसको चित्त से सुनो यह संसार काल से भी पूर्णता के साथ नाश नहीं होता है, यह सब अनित्य संसार जितने समय में लय होता है उसकी संख्या को कहता हूं कि चारोंयुग बारह हजार दिव्यवर्षों के होते हैं और चारों युगों को एक कल्प कहते हैं और एक हजार कल्प में जो समय है वह ब्रह्माजी का एकदिन कहाजाता है और इतनी ही रात्रि होती है जिस के अन्त में संसार के स्वामी शिवजी महाराज जागते हैं वही उस महाकर्मी सब की आदि में पैदाहोनेवाले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न करते हैं वह शिव अरूप रूपवान् विश्वरूप है और अणिमा लघिमा प्राप्तिआदि अष्टसिद्धयां उसको सदैव स्वयंसिद्ध होती हैं इसीकारणसे उस कालस्वरूप ईश्वरको रूपान्तरदशासे रहित चैतन्यरूप कहते हैं उस अविनाशी रूपरहित जानने के योग्य रूप को कहते

है-वह परमेश्वर सब ओर को हाथ, मुख, चरण, नेत्र, शिर, कान आदि अंग रखनेवाला संसार में सबको व्याप्त करके नियत है यही अविनाशी सर्व ऐश्वर्यवान् हिरण्यगर्भ है यही बुद्धिरूप योगेश्वर ब्रह्मा और अज हैं सांख्यशास्त्र में नामों से बहुत रूपवाले भी कहेजाते हैं वही विचित्ररूप विश्वात्मा और एकाक्षर अर्थात् प्रणवरूप है उसी ने अपनी आत्मा से तीनोंलोकों को उत्पन्न करके अनेक रूप युक्त किया इसी कारण बहुत रूप होने से विश्वरूप कहा जाता है, रूपान्तर प्राप्त करनेवाला बड़ा तेजस्वी यह सूत्रात्मा अपने को आप प्रकट करता है और वही अहंकार अथवा अहंकार के अभिमानी विराट् को उत्पन्न करता है, उसके दो प्रकार इस रीति से हैं कि अव्यक्त से व्यक्त प्रकट हुआ उसको विद्यासर्ग अर्थात् महान्त समष्टि कहते हैं और अविद्यासर्ग अहंकार भी उसी से प्रकट हुआ, अब विद्या और अविद्या के लक्षण को कहते हैं प्रथम उत्पत्ति अक्षर की है अक्षर से दूसरी उत्पत्ति हिरण्यगर्भ की और तीसरी विराट् की है इन तीनों से एक के विषय में अबुद्धि और बुद्धि उत्पन्न हुईं, वेद और शास्त्र के अर्थ विचारनेवाले पण्डितों की ओर से वह विद्या और अविद्या नाम असंभव प्रकार से संभव प्रसिद्ध हुईं आशय यह है कि वह तू है मैं ब्रह्म हूं यह आत्मा भी ब्रह्म है इस सिद्धि के समान कहना बुद्धि विद्या है कोई मनुष्य रस्सी को सर्प माने और दूसरा उसको शिक्षा करे कि यह रस्सी है इससे उसका भय दूर होजाता है यही अबुद्धि विद्या है हे राजन् ! अहंकार से उत्पन्न पञ्चतन्मात्रा स्थूल तत्त्व अपञ्चीकृत को तीसरी जानो और सब अहंकाररूप सातों की राजसी, तामसी और प्रत्यक्ष में पञ्चीकृत सूक्ष्मतत्त्व को चौथा जानो इसको कहते हैं-पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द यह दशोंवर्ग दृष्टि के साथ उत्पन्न होनेवाले प्रकटहुए और पञ्चज्ञानेन्द्रिय पञ्चकर्मेन्द्रिय मन समेत एक साथ उत्पन्न हुए, यह चौबीस तत्त्वात्मक मूलप्रकृति सब शरीर मात्रों में वर्तमान है, तत्त्वदर्शी ब्राह्मण जिसको पुरुष से पृथक् जानकर शोच नहीं करते हैं, हे नरोत्तम ! देव, मनुष्य, दैत्य, दानव आदि से युक्त तीनोंलोक हैं, सब जीवों में यह समान नाम देह अर्थात् पिण्ड ब्रह्माण्ड जानने और देखने के योग्य है यह ब्रह्माण्ड पिण्ड हाथी से लेकर लघुतम चींटीपर्यन्त असंख्य जीवों से भराहुआ है, इन सब समेत यह संसार प्रतिदिन नाश को पाता है इसकारण से इस भूतात्मा को

नाशवान् कहते हैं यह अक्षर अर्थात् अविनाशी ब्रह्म और जैसे यह जगत् नाश को पाता है इसका भी वर्णन किया अव्यक्त और व्यक्त नाम संसार को मोहरूप वर्णन किया और जगत् के अव्यक्त और व्यक्तरूप कहने से अव्यक्त का भी नाश कहा इस स्थान में उस युक्ति को कहते हैं—जिसके कारण बड़ी सूक्ष्म बुद्धि सदैव नाशवान् है इसीकारण उसका स्वामी अव्यक्त भी नाशवान् है यह दृष्टान्त तुमसे वर्णन किया यही तुम मुझ से पूछते थे, पचीसवां विष्णु शुद्ध चिन्मात्ररूप तत्त्व नहीं है परन्तु तत्व नाम है अर्थात् तत्त्वों में उसकी गणना है वह तत्त्वों का अधिष्ठान होने से तत्त्वनाम कहाजाता है स्वामीपन और सृष्टिपन से नहीं कहाता और तत्त्वों के मध्यवर्ती होने से तत्त्वों के हेतुरूप अज्ञान के कारण ब्रह्म को कर्त्तारूप वर्णन किया क्योंकि दूसरी दशा में उसका नाश भी सिद्ध होता है, तत्त्व होने से उसमें अधिष्ठातापन भी नहीं है इसको अब वर्णन करते हैं—जिस हेतु से नाशवान् कर्त्ता और कर्म को उत्पन्न किया इसीकारण वह मूर्त्ति मूर्त्तिमान् जगत् प्रधानसे भी प्रकट होती है वह अधिष्ठाता अव्यक्त चौबीसवां है क्योंकि पचीसवां पुरुष अंगरहित अमूर्त्तिमान् है इसी हेतुसे वह अधिष्ठाता नहीं है काष्ठ पाषाण के समान नाशवान् अव्यक्त भी अधिष्ठाता नहीं हो सक्ता इस हेतु से कहते हैं, चैतन्य की छाया से संयुक्त वह चौबीसवां अव्यक्त सब देहों में हृदयस्थ अधिष्ठाता है और उपाधि रहित प्राचीन चैतन्य प्रकृति के द्वारा मूर्त्तिमान् हो जाता है वास्तव में वह अमूर्त्तिमान् है, और उत्पत्ति नाशरूप धर्मवाली प्रकृति से वह उत्पत्ति और नाशवान् होता है वही निर्गुण सगुण होकर सदैव विषयों में ऐसे प्रवृत्त होता है, जैसे कि दर्पण में मुख प्रतिबिम्बरूप होता है, अब त्वम्पदार्थ को वर्णन करते हैं, इस प्रकार उत्पत्ति नाश का जाननेवाला यह महान् आत्मा अज्ञान और अविद्या से संयुक्त होके विपरीत दशा को प्राप्त होने के पीछे यह मानता है कि मैं हूं अर्थात् देहाभिमानी होता है, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण में संयुक्त होकर अज्ञानियों के सत्संग से उन २ योनियों से एकता प्राप्त करता है और संग में रहने से अपने को पृथक् नहीं मानता है और कहता है कि मैं अमुक का पुत्र हूं अमुक मेरी जाति है यह अपने गुणों पर ही बर्त्ताव करता है अर्थात् ज्ञाति के अभिमान आदि को त्याग नहीं करता है, तमोगुण से नाना प्रकार के काम क्रोधादिकों को प्राप्त करता है इसी प्रकार रजोगुण से राजस भाव प्रवृत्ति आदि को और सतोगुण से सा-

त्विकभाव प्रकाश आदि को पाते हैं इन तीनों भावों का रूप सतोगुण आदि के क्रम से श्वेत, रक्त, कृष्ण है यह प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाले तीनों रूप अग्नि, जल, पृथ्वी से सम्बन्ध रखनेवाले पूर्वोक्त ही रंग के हैं, तमोगुणी नरक को जाते हैं रजोगुणी मनुष्य शरीर पाते हैं और सुख के भागी सात्त्विकी पुरुष देव लोक को जाते हैं केवल पापात्मा जीव पशु पक्षी आदि के जन्म को और पुण्य पाप दोनों के योग से मनुष्य योनि को और केवल पुण्य से देवतारूप को पाते हैं इस प्रकार जो यह पचीसवां आत्मा है उस मायायुक्त को अज्ञान से नाशवान् अथवा विपरीत दशा प्राप्त करनेवाला कहा वह ज्ञान से प्रकाश करता है आशय यह है कि तत्पदार्थ ने ही अज्ञान से जीव भाव को पाया वह ज्ञान से मुक्त होता है इस वर्णन से "तत्त्वमसि" महावाक्य के अर्थ द्वारा जीव और परब्रह्म की एकता सिद्ध होती है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽष्टाविंशत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

एकसौ उन्तीस का अध्याय ॥

वशिष्ठजी ने कहा कि, प्रकृति में मिल कर पुरुष उसी के अनुसार कर्म करता है यह ऊपर वर्णन किया गया अब दो अध्यायों में उसका ब्यौरेवार वर्णन करते हैं कि जैसे ज्ञान न होने से अज्ञान के समान कर्म करते हैं इसी प्रकार एक देह से हज़ारों देह प्राप्त करते हैं, कभी गुणों के साथ मिलने से गुणों की सामर्थ्य से हज़ारों तिर्यग्योनि और देवयोनियों में भी प्राप्त होता है, मनुष्य शरीर के द्वारा स्वर्ग को जाता है और स्वर्ग से क्षीण पुण्य होकर पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म पाता है और मनुष्य शरीर से अपार नरकों को पाता है, जैसे कि रेशम का कीड़ा घर बनाता है और सूत्र वा तन्तुओं की रस्सियों से सदैव अपने को बन्द करता है इसी प्रकार यह निर्गुण आत्मा अपने को गुणों से बँधाता है यह सुख दुःख से रहित उन २ योनियों में सुख दुःख को पाता है जैसे कि शिर-पीड़ा, नेत्र-पीड़ा, दांत-पीड़ा, गलग्रह, जलोदर, तृषा-रोग, ज्वर, गण्ड-रोग, विशूचिका, कर्ण पीड़ा, कुष्ठ, मन्दाग्नि, कास, श्वास और अपस्मार आदि अनेक रोगों में महाकष्टों को पाते हैं, मनुष्य अपने को समझता है कि मैं रोगी हूं और देहों के मध्य में अनेक प्रकार के सुख दुःख आदि प्राकृत द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं उनको भी यह जीव अपने ही देह सम्बन्धी जानता है अर्थात् कहता है कि मैं दुःखी हूं रोगी हूं उसी प्रकार कभी हज़ारों पशुपक्षियों की योनियों में

और देवताओं में भी बड़े अहंकार से अपने उत्तम कर्मों का वर्णन करता है, श्वेत या मलिन पोशाक रखनेवाला और पृथ्वी पर सोनेवाला और मेढ़क के समान हाथ पैरों का सकोड़नेवाला शिर के बल से सोनेवाला और वीर आसन पर बैठनेवाला वस्त्र धारण कर मैदान में सोना और नियत होना ईंट कांटों पर सोना राख पृथ्वी पलँग आदि पर सोना और वीरों के स्थान जल कीच आदि में बैठना और नाना प्रकार की शय्याओं पर सोना और फल की आशायुक्त होना अलसी के बल्कल या सन से बना हुआ वस्त्र और काले मृगचर्म का धारण करनेवाला लँगोटी आदि का पहरना भोजपत्र या छाल को धारण करना शाल्मली आदि से उत्पन्न वस्त्रों का पहरना रेशमी या सूत्र वस्त्रों से निर्वाह करनेवाला और चीथड़ों का धारण करनेवाला ज्ञानी पुरुष बहुत से उत्तम भोजन वस्त्र और अनेक रत्नादिकों को चाहता है, एकरात्रि के पीछे एक बार भोजन करना चौथे आठवें और छठवें समय पर भोजन कर और छठें आठवें दिन भोजन करनेवाला वा बारहवें दिन भोजन और एक महीने तक व्रत करना फलमूलभोक्ता वायु, जल, दही, खल भोजन करनेवाला गोमूत्र पीनेवाला साग फूल सैवल और चावल के माड़ से निर्वाह करनेवाला सूखे वृक्षों के पत्र पेड़ से गिरे हुए फल आदि से उदर भरता हुआ मनुष्य अनेक कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतों का सेवन करता है और चान्द्रायण नाम व्रतों को धर्म के नाना प्रकार के मार्गों से आचरण करता है और पाशुपति आदि अनेक यज्ञ के पाखण्डों को अभ्यास करता है और पर्व्वतों या एकान्त में नाना प्रकार के नियम तप जप यज्ञ आदि को बुद्धि में प्रवृत्त करता है इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि के धर्म और उनके व्यापार-मार्ग को और दुःखी, अन्धे, कृषलोगों को अनेक प्रकार के दान और अनेक गुणों को वह आत्मा अज्ञानता से अपने से सम्बन्ध करता है, इसी प्रकार तीनों प्रकार के गुण और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों को भी वह आत्मा प्रकृति की प्रेरणा से अपने से सम्बन्ध करता है स्वधा, वषट्, स्वाहा, नमस्कार, यज्ञकराना, वेदपढ़ाना, दानलेना, देना, यज्ञकरना, वेद पढ़ना इत्यादि सब कर्म और जन्म मृत्यु आदि शुभ अशुभ कर्म इन सब को प्रकृतिरूपा माया उत्पन्न और नाश करती है। फिर अकेली माया इन सब गुणों को कुछ दिन के पीछे आप निगलकर नियत होती है जैसे कि सूर्य

अपनी किरण समूह को समय समय पर प्रकट करके व्याप्त करता है इसी प्रकार यह आत्मा वारंवार पूर्व आत्मा में कल्पित हृदय के प्यारे नानाप्रकार के गुणों को क्रीड़ा के निमित्त मानलेता है इस प्रकार क्रिया मार्ग में प्रीति करनेवाला त्रिगुणाधीश आत्मा उत्पत्ति नाशरूप धर्मवाली क्रियारूप त्रिगुणात्मक प्रकृति को बहुत से रूपों में बदलता है और क्रियामार्ग में संयुक्त होकर क्रिया को मानता है कि वह उसी प्रकार का है अर्थात् अवश्य करने के योग्य है, हे समर्थ, युधिष्ठिर! यह सब संसार प्रकृति से अन्धा किया गया है और रजोगुण तमोगुण से अनेक प्रकार करके भराहुआ है, इस प्रकार से यह सुख दुःखादि द्वन्द्व सदैव से वर्त्तमान हैं और मुझसे ही उत्पन्न होकर मेरी ही ओर दौड़ते हैं—हे राजन्! यह सब सदैव तरने के योग्य हैं इसी प्रकार यह जीव ज्ञान से मानता है कि सब उत्तम कर्म भी मुझ देवलोक में भी प्राप्त होनेवाले को भोगने के योग्य हैं और इन बुरे भले कर्म्मों के फल को इस लोक में भी भोगूंगा तो मुझे सुखही उत्पन्न करना योग्य है एक बार सुख कर्म करके जबतक उसका अन्त हो तबतक वह मुझे प्रत्येक जन्मों में प्राप्त होगा, इस लोक में कर्म से मुझको अत्यन्त दुःख भी होगा मनुष्य का शरीर पाना और नरक में भी पड़ना महादुःख है नरक भोग कर फिर भी मनुष्य देह को मैं पाऊंगा मनुष्य देह से देवभाव देवभाव से फिर नरदेह को पाऊंगा, मनुष्य देहसे क्रमपूर्वक नरक में जाता है आत्मा के सत्चित् आनन्दात्मक गुण से संयुक्त जीवात्मा सदैव इस बात को जानता है, इस कारण देवलोक नरलोक और नरक में भी जाता है और ममता में फँसकर हजारों संसारी जन्मोंतक नाशवान् मूर्त्तियों में प्राप्त होकर उन्हीं लोकों में घूमता है, जो पुरुष इस प्रकार से अच्छे बुरे कर्म को करता है जैसे कि स्त्री पुरुष से सन्तान उत्पन्न हो यद्यपि इसी प्रकार प्रकृति पुरुष से भी सब काम होते हैं तथापि आगे के वर्णन से कर्त्तापन प्रकृति में ही निश्चय होता है क्योंकि प्रकृति विकारवान् है और पुरुष निर्विकार है, इस बात को सिद्ध करते हैं—वह शरीरवान् जीव इस प्रकार से तीनों लोकों में इच्छानुसार फल को पाता है सब शुभ अशुभ कर्मों की करनेवाली प्रकृति ही है और वही प्रकृति जोकि इच्छानुसार तीनोंलोकों में चेष्टा करती है वह पशु, पक्षी, नर, देव आदि योनियों के द्वारा इस लोक परलोक में उस कर्मफल को भोगती है इस स्थान में तीनों स्थानों को प्रकृति सम्बन्धी ही जाने, प्रकृति का

कोई चिह्न नहीं है उसके महत्तत्त्वादि कार्यों से उसको अनुमान करते हैं इसी प्रकार चैतन्य आत्मा को चिदाभास के चिह्नों से अनुमान करते हैं यह सांख्यमतवाले महापुरुष इस प्रकार से मानते हैं, यह जीव अष्टपुरीवाले शरीर को जोकि प्रकृति से संयुक्त मोक्ष प्राप्त होने तक निर्विकार है पाकर उसके इन्द्रिय रूपी द्वार पर नियत होकर अपने कर्म के द्वारा उसको आत्मा में मानता है यह सब ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय अपने २ विषयों के साथ गुणों में वर्त्तमान होती हैं, यह सब इन्द्रियरूप मैंहीं हूं और यह सब मुझमें हैं इस प्रकार अपने को इन्द्रियों से पृथक् मानता है और विना घायल अपने को घायल मानता है और लिंग शरीर से पृथक् आत्मा को उक्त शरीरवान् मानता है और अक्षय होकर अपनी मृत्यु को मानता है बुद्धि से पृथक् आत्मा को बुद्धिरूप मानता है और तुच्छ शरीर आदि को आत्मतत्त्व समझता है और मृत्युरहित अपने को मृत्युरूप जानता है और चेष्टा रहित होकर अपने को चेष्टावान् मानता है और क्षेत्ररहित होकर अपने को क्षेत्रवान् जानता है और कर्तृत्व गुण से हीन होकर सृष्टि को आत्मा सम्बन्धी मानता है, तप से असम्बन्धी होकर आत्मा को तपस्वी मानता है और सब स्थानों में वर्त्तमान होने से निश्चेष्ट होकर अपनी गति को मानता है और अजन्मा होकर आत्मा को जन्म लेनेवाला मानता है एकता से निर्भय होकर भी आत्मा के भय को मानता है और अविनाशी होकर भी आत्मा को नाशवान् मानता है कारण यह है कि अज्ञानी है ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

एकसौ तीस का अध्याय ॥

वशिष्ठजी बोले कि, इस प्रकार अज्ञान और अज्ञानी मनुष्यों के संयोगी होने से हज़ारों नाशवान् जन्मों को पाता है, यह पुरुष सोलह कला रखनेवाला है इन सोलह कलाओं में सोलहवां अविनाशी पुरुष है उस प्रकाशरूप चैतन्य कला के द्वारा अनेक पशु, पक्षी, मनुष्य, देवयोनियों आदि में देवलोक पर्यन्त हज़ारों नाशवान् स्थानों को पाता है सब जीवों के चन्द्रमा के समान पन्द्रह कला हैं पञ्चतत्त्व पञ्चज्ञानेन्द्रिय पञ्चकर्मेन्द्रिय फिर यह अज्ञानी उन कलाओं में बुद्धि लगाने से हज़ारों जन्मों में प्राप्त किया जाता है पन्द्रहवीं कला मूल प्रकृति है वह चिदात्मा से चैतन्य होती है इस चन्द्रमारूप अविनाशी चिदात्मा को सदैव सोलहवीं कला जानो, अज्ञानी मनुष्य वारंवार मूल प्रकृतिरूप पन्द्र-

हवीं कला में जन्म लेता है उसकी सोलहवीं कला सच्चिदानन्दरूप है उसमें आश्रित होकर जीव चेष्टा करते हैं इसीहेतु से फिर जन्म होता है, जो सोलहवीं सूक्ष्म कला है उसको चन्द्रमा अर्थात् अमृतरूप ब्रह्म जानो वह इन्द्रियों से पोषण नहीं कियाजाता है किन्तु अपनी सत्तास्फूर्त्ति देने से उन इन्द्रियों का पोषण करता है, हे राजेन्द्र! इस सोलहवीं चैतन्यात्मक कला को अविनाशी मानकर यह सब ऐसे उत्पन्न होता है जैसे कि रस्सी की विद्यमानता में सर्प का होना, वह सोलहवीं प्रकृति इसप्रत्यक्ष संसार की उत्पत्ति और लयस्थान जानी जाती है, उससंसार के नाशहोने से अर्थात् "अहंब्रह्माऽस्मि" इस महावाक्य के अनुभव से मोक्ष कहीजाती है, दूसरा अर्थ यह है कि इस पन्द्रहवीं कला नाम प्रकृति को नाश किये विना जन्म लेता है वही उसकी उत्पत्ति और लयस्थान है उसके नाशहोने से मोक्ष कहीजाती है, जो धाम और मोक्षनाम शब्द से कहाजाता है वही आनन्दरूप सोलह कला रखनेवाला सब स्थावर जंगम का पिण्डरूप ब्रह्माण्ड है जो पुरुष पन्द्रहवीं प्रकृतिनाम से संयुक्त शरीर को इस प्रकार माननेवाला है कि यह मेरा है वह मनुष्य उसीमें घूमा करता है अर्थात् देह से नहीं छूटता है आशय यह है कि वेद में लिखा है कि निश्चय करके आनन्द से ही सब जीव उत्पन्न होते हैं और आनन्दही से जीवते हैं और उसी में प्रवेश करते हैं, जो इसप्रकार से माननेवालाहै उसका वर्णन करते हैं—पचीसवां बड़ा आत्मा है उस निर्मल अत्यन्त शुद्ध के न जानने और शुद्ध अशुद्ध के सेवन करने से वह शुद्धआत्मा वैसाही अशुद्ध होजाता है इसीप्रकार ज्ञानी भी अशुद्ध के सेवन से अज्ञान होजाता है हे राजन्! अच्छाज्ञानी भी इसी प्रकार जानने के योग्य है और त्रिगुणात्मिका प्रकृति के सेवन से तीनों गुण युक्त होता है ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे त्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

एकसौ इकतीस का अध्याय॥

राजा जनक बोले कि, हे महाराज! आपने कहा कि प्रकृति के नाश से मोक्ष होती है इसमें मुझको शंका है कि जो प्रकृति और पुरुष समान हैं फिर प्रकृति की निवृत्ति कैसे होसक्ती है हे भगवन्! जैसे प्रकृति पुरुष दोनों का योग सम्बन्ध है इसीप्रकार स्त्री पुरुष का भी सम्बन्धयोग कहाजाता है, इससंसार में स्त्री विना पुरुष के जैसे गर्भवती नहीं होसक्ती है इसीप्रकार पुरुष भी विना स्त्री के गर्भ

नियत नहीं करसक्ता है, परस्पर सम्बन्ध होने से और परस्पर गुणों में संयोग होने से सब योनियों में गर्भ उत्पन्न होता है ऋतुकाल में संभोगहोने और परस्पर गुणसंयोगहोने से गर्भहोता है इसका दृष्टान्त कहता हूं और इसलोक में माता पिता के जो गुण हैं उनको भी कहता हूं हे ब्राह्मण ! हाड़, नाड़ी और मस्तक को तो पिता का अंश और चर्म, मांस, रुधिर को माता का अंश सुनते हैं हे महापुरुष ! ऐसा वर्णन वेदशास्त्रों में देखा पढ़ागया है, अपने वेद और शास्त्रों में जो कहाहुआ है वही प्रमाण है वह वेद और शास्त्र दोनों सनातन हैं और प्रमाण हैं, इसीप्रकार प्रकृति पुरुष दोनों के परस्पर गुणसंयोग और परस्पराश्रित होने से परस्पर सम्बन्धवान् हैं इसकारण मैं देखता हूं और विचार करता हूं कि मोक्षधर्म वर्त्तमान नहीं है या मोक्ष के साक्षात्कार होने में कोई दृष्टान्त है इसको मूलसमेत आप वर्णन कीजिये क्योंकि आप सदैव प्रत्यक्ष के देखनेवाले हैं, और हम मोक्ष के चाहनेवाले हैं और उसको चाहते हैं जिससे कि दुःख दूर हो जाता है और जो शरीररहित सदैव जरा इच्छारहित ईश्वर से भी उत्तम है, वशिष्ठजी बोले जो यह वेदशास्त्र का दृष्टान्त आपने वर्णन किया यह ऐसा ही है जैसा कि आप समझ रहे हैं, हे राजन् ! तुमने वेद और शास्त्र दोनों अच्छे प्रकार से जाने हैं परन्तु जो उनका मुख्य सिद्धान्त है उसको नहीं जानते हो जो पुरुष वेदशास्त्र के ग्रन्थों को पढ़ा है और उसके मुख्य आशय को नहीं जानता है उसका वह सब पढ़ा हुआ निष्फल है अर्थात् जो ग्रन्थ के आशय को नहीं जानता वह केवल उस ग्रन्थ का भार उठानेवाला है और जो ग्रन्थ के मुख्य आशय का जाननेवाला है उसका ग्रन्थ पढ़ना सफल है, ग्रन्थ का आशय पूछा हुआ वैसाही कहने को योग्य होता है तब वह मुख्य प्रयोजन के अनुसार उसके आशय को पाता है जो स्थूल बुद्धिवाला पुरुष पण्डितों की सभा में ग्रन्थ के प्रयोजन को वर्णन न करसके तो वह निर्बुद्धि ग्रन्थ को खोल कर कैसे कहसकेगा ज्ञानरहित चित्तवाला मनुष्य जिसहेतु से इस स्पष्ट बात को भी मुख्यता से नहीं कहसक्ता है वह आत्मज्ञानी भी होकर हास्य के योग्य गिनाजाता है, हे राजेन्द्र ! इसीकारण अब चित्त देकर श्रवण करो जैसे कि यह बात सांख्ययोग में आत्मज्ञानियों के मध्य में ठीक दृष्ट पड़ती है वह मैं कहता हूं, जिसको योगीजन देखते हैं उसीको सांख्यमतवाले प्राप्त करते हैं, सांख्य और योग यह दोनों एक ही हैं जो ऐसा विचार से देखता है

वही बुद्धिमान् है हे तात ! चर्म, मांस, रुधिर, मज्जा, पित्त और नसें यह सब इन्द्रियों को अधिक रखनेवाले हैं यह तुमने मुझसे कहा सो यह सब द्वैत से उत्पन्न होते हैं जैसे कि द्रव्य से द्रव्य की उत्पत्ति होती है उसीप्रकार इन्द्रिय से इन्द्रिय, शरीर से शरीर, बीज से बीज को प्राप्त करते हैं तात्पर्य्य यह है कि समान जाति से उसी जाति की उत्पत्ति होती है और से और नहीं होसक्ती और प्रकृति पुरुष के भिन्नस्वभाव होने से योग होना असंभव है, उस इन्द्रियरहित निर्बीजरूप माया के आडम्बर से पृथक् अशरीरी महात्मा पुरुष के गुण निर्गुण होने से कैसे होसक्ते हैं तो यह उत्पत्ति किसप्रकार से है इसको कहते हैं—आकाश आदि गुण इस त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें ही उत्पन्न होते हैं और उसीमें लयहोते हैं इसीप्रकार गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और प्रकृति में ही लयहोते हैं फिर उस असहाय प्रकृति के सृष्टिसम्बन्धी कर्तृत्वगुण कैसे होसक्ते हैं इस शंका को दृष्टान्त से सिद्ध करते हैं कि चर्म, मांस, रुधिर, मज्जा, पित्त, भेजा, हड्डी, नसें इन प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाली आठों वस्तुओं को वीर्यसम्बन्धी जानो, जैसे कि विना माता के भी द्रोणाचार्य के शरीर में केवल वीर्य ही से त्वक्,मज्जा,मांसादि उत्पन्न हुए तो दर्पण के समान दूसरे के प्रतिबिम्ब को प्राप्त करनेवाली प्रकृति से यह सब संसार उत्पन्न होता है, पुरुष के अन्तःकरण चैतन्य का प्रतिबिम्ब जीव और आकाशादि अपुरुष आत्मा को प्राप्त करानेवाले प्रमाता प्रमाण प्रमेय यह तीनों प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाले कहे परन्तु वह चिदात्मा पुरुष अपुरुष नहीं कहाजाता है अर्थात् वह चिदात्मा जीव संसार से पृथक् है, सम्बन्ध न होने में प्रकृति पुरुष का लिंगी वा लिंगरूप होना कैसे होसक्ता है इस शंका को कहते हैं—वह प्रकृति अलिंगी अर्थात् चिह्नरहित पुरुष को पाकर अपने देह से उत्पन्न महत्तत्त्वादिक चिह्नों से उसी प्रकार विदित होती है जैसे कि विना रूप की फ़सलें सदैव फूल और फलों से विदित होती हैं—हे तात ! इसीप्रकार शुद्ध चिन्मात्र भी अनुमान से जाना जाता है जोकि पचीसवां है और चिदाभासों में व्याप्त आदि अन्त रहित है अर्थात् समय के चक्र से पृथक् अत्यन्त द्वेषरहित सबका द्रष्टा है और उपाधियों से भिन्न सीपी में मिथ्या चांदी के समान केवल अभिमान करने से शरीर आदि रूप धारण करनेवालों में कहाजाता है कि यह इन्द्रिय आदि का समूह आत्मा है, जब यह जीवात्मा प्रकृतिसम्बन्धी इन गुणों का नाश करता है अथवा

(पाठान्तर से) इन गुणों को श्रवण मनन निदिध्यासन से विचारकर जानता है तब शरीरादि के आत्मा जानने के भ्रम को दूर करके उस परब्रह्म को देखता है, सांख्ययोग और सब तान्त्रिकों ने जिस परब्रह्म को जड़रूप अहंकार के त्यागने से ज्ञात होनेवाला महाज्ञानी और बुद्धि से परे वर्णन किया है और अज्ञात अथवा गुणों से गुप्त अन्तर्यामी गुणसम्बन्ध से रहित ईश्वर प्राचीन अधिष्ठाता भी कहा है सांख्ययोग में कुशल मोक्ष के चाहनेवाले ज्ञानी लोग प्रकृति को और उसके महत्तत्त्वादिक गुणों को विचारकर जिसको पच्चीसवां कहते हैं, जब बाल्यावस्था और जाग्रत् अवस्था आदि जन्म से भयभीत ज्ञानी पुरुष निराकार ज्ञानस्वरूप परमात्मा को जानते हैं तब उस ब्रह्म को प्राप्त करते हैं अर्थात् वह उपाधिरहित ब्रह्म जाना हुआ जीव है और जानाहुआ ब्रह्म है हे राजन्! यह जीव ईश्वर की एकता का सिद्ध करनेवाले शास्त्रज्ञ ज्ञानी की ओर से अच्छेप्रकार से पृथक् वर्णन कियागया और अच्छे प्रकार जीव ब्रह्म की एकता का न देखना ही अज्ञानी की ओर से अनुत्तम शास्त्र पृथक् कहागया, इस जड़ चैतन्य का सिद्ध करनेवाला शास्त्र इसप्रकार से वर्णन कियागया कि अपना ही मत अच्छा है दूसरे का अच्छा नहीं है—वादियों के भ्रमों को कहकर अपने सिद्धान्त को कहते हैं—एकता को अविनाशी और द्वैतता को विनाशवान् कहाजाता है यह अनुभव जान के योग्य समझकर इसका वर्णन करते हैं—जब रस्सी में सर्प के समान ध्यान चिदाभास के साथ पच्चीस तत्त्वों में अच्छे प्रकार से विचार करना होता है तब उनके अधिष्ठान से पच्चीसवें आत्मा को साक्षात्कार करता है तब एकता और द्वैतता शास्त्र और अशास्त्र की सत्य होती है, संसारतत्त्व और असंसारतत्त्व का यह अनुभव पृथक् है ज्ञानियों ने पच्चीस प्रकार के तत्त्वों की उत्पत्ति को संसार कहा है और उस अतत्त्व को पच्चीसों तत्त्वों से उत्तम अनुभव कहा है क्योंकि सृष्टि के समूह चारों ओर घूमनेवाले हैं और तत्त्वों का तत्त्व पच्चीसवां परमात्मा सदैव एकरूप और अविनाशी है॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः॥ १३१॥

एकसौ बत्तीस का अध्याय॥

जनक बोले कि हे महर्षे! आपने जो कहा कि एकता विनाशरहित है और दो आदि अनेक नाशवान् हैं मैं इन दोनों के इस सिद्धान्त को अशुद्ध

जानता हूं क्योंकि एकता में बन्धन और मोक्ष नहीं है और अनेकता में आत्मा का नाश सिद्ध है हे राजन्! इसीप्रकार से ज्ञानी और अज्ञानी से जाने हुए इस आत्मतत्त्व को सूक्ष्म बुद्धि से देखता हूं हे निष्पाप! तुमने जो अविनाशी होने का कारण एकता और नाश होने का कारण अनेकता वर्णन की वह भी मेरी अस्थिर बुद्धि से नष्टता को प्राप्त हुआ इस हेतु से इस एकता और अनेकता के शास्त्र को और ब्रह्म प्रतिब्रह्म और प्रधान आदि ब्रह्म को और जड़ चैतन्य के आत्मारूप जीव को सुना चाहता हूं, हे भगवन्! विद्या जानने के योग्य आत्मा को प्राप्त करनेवाली और अविद्या आत्मा की गुप्त करनेवाली है इसी प्रकार अक्षर अविनाशी और क्षर नाशवान् है और सांख्यतत्त्वों का विवेक और योगचित्त की वृत्ति का रोकना है और भेद अभेद अर्थात् एकता और अनेकता यह सब भी प्रधानरूप सांख्य और योग के वर्णन से सब प्रश्नों का उत्तर होजाता है इस निमित्त योग का वर्णन करने को वशिष्ठजी बोले कि हे महाराज! तुम जो यह पूछते हो इसको मैं अच्छेप्रकार से कहूंगा अब योग के कर्मों को मैं पृथक्ता से वर्णन करता हूं, योगियों के शास्त्र में करने के योग्य ध्यान ही परम सामर्थ्य है उस ध्यान को भी विद्या जाननेवालों ने दो प्रकार का कहा है एक तो मन की एकाग्रता और दूसरा प्राणायाम है फिर प्राणायाम भी दो प्रकार का है अर्थात् सगर्भ और निर्गर्भ उनमें मनसम्बन्धी मुख्य है, हे राजन्! मूत्र पुरीष का त्याग और भोजन इन तीनों समय पर योग का अनुष्ठान नहीं करे इनके सिवाय और समय में मन बुद्धि को लगानेवाला योगी आत्मा को आत्मा में मिलावे फिर वह योगी मनसमेत इन्द्रियों को विषयों से रोककर चित्त से शुद्ध हो उन बाईस चेष्टाओं से जोकि मनरूपी घोड़े के चाबुक समान हैं उस अजर अमर जीवन्मुक्त जीव को जिसको ज्ञानी लोग तत्स्वरूप कहते हैं उस पचीसवें परमात्मा में जोकि चौबीस तत्त्वों से उत्तम है प्रवेश करनें की चेष्टा करे उन बाईस चेष्टाओं के द्वारा आत्मा सदैव जानने के योग्य है जिसका मन कामादि में आसक्त नहीं है उसका व्रतयोग नाम है यही निश्चय है इसमें कभी संदेह नहीं है, सब संयोग से रहित अल्पाहारी जितेन्द्रिय योगी पहली पिछली रात्रि में मनको आत्मा में तदाकार करे, हे राजन्, जनक! मनके द्वारा इन्द्रियों के समूहोंको वशकरे अर्थात् इधर उधर चलने न दे और मनको बुद्धि से पाषाण

के समान निश्चल करके स्तम्भरूप स्थिरता प्राप्त करके पर्वत के समान अचल हो जाय तब शास्त्र के प्रयोजन के जाननेवाले ज्ञानी योगी मिलने की दशा पर ब्रह्म में वर्त्तमान कहते हैं अब योगी के अनुभव को कहते हैं योग दशा में वह योगी स्वादु सुनना देखना स्पर्श आदि कोई बात नहीं करता है और उसके चित्त में कोई संकल्प विकल्प भी नहीं होता है न किसी प्रकार का अभिमान करता है और काष्ठ, पाषाण के समान स्थिर होकर संसार के व्यवहारों को भूल जाता है उस योगी को ज्ञानी योगीलोग अपने शुद्धस्वरूप से मिला हुआ कहते हैं, वह बुद्धि आदि से पृथक् और व्यापक होने से निश्चेष्ट योगी इस प्रकार से प्रकाश करता है जैसे कि वायुरहित स्थान में देदीप्यमान दीपक होता है और अखण्ड चिन्मात्ररूप होने में उसकी गति शेष नहीं रहती, जिस समय अनुभव के बल से यह कहता है कि जो हृदय में नियत अन्तर्यामी ईश्वर है वह मैं ही हूं तब आत्मा को साक्षात्कार करे हे तात ! मुझसे मनुष्यों से वह जानने के योग्य है दूसरा साफ़ अर्थ यह है कि जब सब वृत्तियों के निरोध से निराकार होने के कारण आत्मा के न जानने योग्य होने से यह नहीं कहता है कि वह जानने के योग्य जानना चाहिये अर्थात् परोक्ष ज्ञान से बढ़कर अपरोक्ष ज्ञान से मिलगया है तब वह आत्मज्ञानी कहा जाता है, आत्मा में आत्मा इस रीति से दृष्ट पड़ता है जैसे निर्धूम अग्नि और आकाश में प्रकाशमान सूर्य दीखता है, जो धैर्यवान् बुद्धिमान् वेदान्त के ज्ञाता महात्मा ब्राह्मण हैं वह उस उत्पत्ति स्थानरहित अविनाशी ब्रह्म को देखते हैं, उसीको सूक्ष्म से सूक्ष्म बृहत् से बृहत् कहते हैं वह अचल तत्त्व सब जीवों में नियत होकर भी दृष्ट नहीं पड़ता है जब वह दृष्ट ही नहीं पड़ता है तो उसका योग कैसे होसक्ता है इसको कहता हूं—हे तात ! महान्धकार के अन्त में वर्त्तमान वह सृष्टि का स्वामी बुद्धिरूप धन से पूर्ण सबसे परे वर्त्तमान उस पुरुष के चित्तरूपी दीपक से दिखाई देता है, सर्व वेदपारग ब्राह्मणों से वह अन्धकार का नाशकर्ता चिदात्मा प्रकाशमान सूत्रात्मा से पृथक् उपाधिरहित ब्रह्म कहा गया है, इस प्रकार उस ज़रा मृत्युरहित साक्षिरूप उत्तम आत्मा को देखता है यही योगियों का योग कहा जाता है, हे तात ! मैंने इतना योगशास्त्र सिद्धान्त के साथ तुमसे वर्णन किया अब उस सांख्ययोग को कहता हूं जिसमें न्यायरूपी रस्सी और सर्प के समान पिछले २ कार्य को पहले २ में लय करने से

साक्षात्कार होता है हे राजेन्द्र ! प्रकृतिवादियों ने प्रकृति को ही अव्यक्त वर्णन किया है उसीसे महत्तत्त्व हुआ जोकि प्रकृति से दूसरा है तीसरा अहंकार महत्तत्त्व से उत्पन्न होता है यह हमने सुना है सांख्य के सिद्ध होनेवाले आत्मा को देखनेवाले पुरुषों ने पञ्चतत्त्व अर्थात् पञ्चतन्मात्रा नाम सूक्ष्म तत्त्व को अहंकार से उत्पन्न होनेवाला कहा है यह आठ प्रकृति हैं और उनके विकृतरूप सोलह हैं और अपने २ विकारों को प्रकट करनेवाली ग्यारह इन्द्रियां पांच सूक्ष्मतत्त्व जो कि विशेष नाम कहे जाते हैं, सांख्य शास्त्र के आशय जाननेवाले और सांख्य मार्ग में ही सदैव चलनेवाले ज्ञानियों ने इतने ही तत्त्व वर्णन किये हैं–अब इनके लय को कहते हैं–जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसी में लय होता है अर्थात् वह अन्तरात्मा से उत्पन्न होते हैं, और विपरीत रीति में नियत होनेवाली लयता को प्राप्त होते हैं, वह गुण सदैव अनुलोम अर्थात् सीधे मार्ग से उत्पन्न होते हैं और प्रतिलोम अर्थात् उलटे मार्ग से ऐसे प्रकार गुणों में लय होते हैं, जैसे कि समुद्र की लहरें समुद्र में ही लय हो जाती हैं हे राजन् ! इसी प्रकार से प्रकृति की भी उत्पत्ति और लय है अर्थात् त्रिगुणात्मिका प्रकृति ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी शुद्ध ब्रह्म में लय हो जाती है प्रकृति के लय होने पर इस पुरुष की भी एकता होती है और जब उसको उत्पन्न करती है तब अनेकता होती है हे राजन् ! उसी ओर का भय ब्रह्मज्ञानियों को जानना चाहिये जिसको कि अगले श्लोक में वर्णन करेंगे जिसे महत्तत्त्वादि का चेष्टा करानेवाला अव्यक्त कहते हैं इसका भी वही दृष्टान्त है जिसने अर्थ तत्त्व को अच्छे प्रकार से पाया वह सुषुप्ति और प्रलयकाल में प्रकृति की एकता को और संसार की उत्पत्ति में अनेकता को जानता है, इस प्रकार अज्ञान के अधिष्ठाता सांख्यवाले मनुष्यों की विजय है इस शंका को कहते हैं–मोक्ष में चिदात्मा से इस अज्ञान की एकता ही है और स्वरूपसत्ता के द्वारा चिदात्मा प्रकृति के प्रकट होने से उसकी अनेकता है क्योंकि आत्मा उस उत्पत्तिरूप प्रकृति को बहुत प्रकार का कर देता है इसी हेतु से चिदात्मा ही मुख्य अधिष्ठाता है और प्रकृति गौण अधिष्ठाता, हे राजेन्द्र ! वहां जो पचीसवां परमात्मा क्षेत्र में अर्थात् प्रकृति और उसके विकाररूपों में नियत होता है तब साधुओंकी ओर से अधिष्ठाता कहा जाता है क्षेत्रों में नियत होने से अधिष्ठाता होता है और अव्यक्त नाम माया को क्षेत्र जानता है इसी हेतु से क्षेत्रज्ञ कहाता है, वह पुरुष इस

आठ पुरीवाली अविद्यारूप क्षेत्र में प्रवेश करता है यह भी कहा जाता है क्षेत्र एक पदार्थ और दूसरा अनेक पदार्थ कहा जाता है तात्पर्य यह है कि क्षेत्रज्ञ का अधिष्ठातापन अव्यक्त ही के द्वारा है, अब पुरुष और प्रकृति के विवेक को वर्णन करते हैं—क्षेत्र को अव्यक्तरूप कहा और उसके जाननेवाले को पचीसवां चिदात्मा कहाजाता है दूसरा नहीं है परन्तु ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य पदार्थ दूसरा कहाजाता है, ज्ञाता के ज्ञान को अव्यक्त और ज्ञेय को पचीसवां अव्यक्त को क्षेत्रबुद्धि और ईश्वर कहा और पचीसवां तत्त्व चिदात्मा ईश्वर नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष सामान से दूसरा है और तत्त्व भी नहीं है क्योंकि तत्परोक्ष का जतलानेवाला है परन्तु वह चिदात्मा परोक्ष है, सांख्यशास्त्र इतनाही है कि सांख्यमतवाले उस साक्षात्कार को जो स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च का आत्मा में लय करता है यही सिद्ध करते हैं और माया को जगत् का कारण कहते हैं—अब लय होने के योग्य वस्तुओं को कहते हैं सांख्यमतवाले चौबीस तत्त्वों को प्रकृति के साथ वास्तव करके चिदात्मा में लय करके सिद्धहोते हैं पचीसवां चिदात्मा सदैव अपरोक्ष है, प्रकृति से परे पचीसवां चिदात्मा जीवरूप कहा है और जब वह आत्मा ज्ञानस्वरूप होता है तब सिद्ध होता है, ब्रह्म दर्शन इतनाही है यह सब मैंने मूलसमेत तुझसे कहा इस प्रकार से इसके ज्ञाता लोग ब्रह्मभाव को पाते हैं, ब्रह्मदर्श ही पूर्ण दर्शन है और रस्सी के सर्प की समान अब्रह्म का दर्शन नहीं योग्य है वह केवल भ्रान्तिरूप है इसीप्रकार ब्रह्म में कल्पित अहंकारादि के देखने से द्रष्टा पूर्णता को नहीं पाता है, किन्तु जो उस अहंकारादि में नियत है उसका देखनेवाला पूर्णता को प्राप्त होता है निर्गुण के सिवाय यह भ्रान्तिरूप महत्तत्त्वादिक जैसे अपने सन्मुख और व्यवहार में सच्चा होने से प्रत्यक्ष है उसीप्रकार निर्गुण पुरुषों का भ्रान्तिरहित रूप होना प्रत्यक्ष होता है अब आत्मज्ञान के फल को कहते हैं—इसप्रकार देहाभिमान से रहित ज्ञान में प्रवृत्त पुरुषों का आवागमन नहीं होता है ब्रह्मरूप होने से अपर सत्य संकल्पादि ऐश्वर्य और पर अर्थात् उपाधिरहित समाधि समय का अविनाशी सुख वर्त्तमान होता है आवागमन किसको है उसको वर्णन करते हैं—जो नानाप्रकार की बुद्धि रखनेवाले पुरुष अनेकता को देखते हैं और उनमें ब्रह्मदर्शन नहीं है वह वारंवार शरीरों को धारण करते हैं, इस ब्रह्म को विज्ञान और ध्यान बल से अपरोक्ष न करनेवाले ब्रह्म का ज्ञान न होने से शरीर प्राप्त

करनेवाले पुरुष शरीर के आधीन होंगे, यह सब संसार अव्यक्त अर्थात् अज्ञान प्रधान है और पच्चीसवां चिदात्मा इससे पृथक् है जो पुरुष इस पच्चीसवें को जानते हैं उनको इस दुःखरूपी संसार का कोई भय नहीं है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे द्वात्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

एकसौ तेंतीस का अध्याय ॥

वशिष्ठजी बोले कि, बारह प्रश्नों में से सांख्ययोग और एकता अनेकता का विज्ञान इन तीनों प्रश्नों को मूलसमेत कहा अब शेष प्रश्नों के उत्तर वर्णन करता हूं-हे नरोत्तम ! यह सांख्ययोग तो तुमने सुना अब विद्या और अविद्या को क्रम से सुनो, उत्पत्ति नाश की धर्म रखनेवाली अविद्या को अव्यक्त अर्थात् अज्ञान प्रधान कहा और उत्पत्ति नाश से रहित अविद्या को पच्चीसवां कहा, इस विद्या की उत्तमता वर्णन करने को अवान्तर विद्या के भेद को कहते हैं एक दूसरे की विद्या को ऐसे क्रमपूर्वक समझो जैसे कि सांख्य ऋषियों ने ठीका वर्णन की है, सब कर्मेन्द्रियों की विद्या अर्थात लयस्थान ज्ञानेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों की विद्या स्थूलतत्त्व कहे गये यह हमने सुना है, ज्ञानीलोग उन स्थूल तत्त्वों की विद्या को चित्त और चित्त की विद्या को सूक्ष्म पञ्चतत्त्व कहते हैं, हे राजन् ! इन पांचों सूक्ष्मतत्त्व की विद्या अहंकार है और अहंकार की विद्या बुद्धि है अर्थात् महत्तत्त्व है, महत्तत्वादि की विद्या परमेश्वरी प्रकृति है जिसको प्रधान अज्ञान भी कहते हैं, हे नरोत्तम ! वह श्रेष्ठ विद्या जानने के योग्य है और परमबुद्धि को ही श्रेष्ठ संसार का कर्त्ता कहा पच्चीसवें चिदाभास को उस अव्यक्त की उत्तम विद्या वर्णन की और सब ज्ञानियों के ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य को अव्यक्त कहा अर्थात् अव्यक्त के ज्ञान से सर्वज्ञ होता है, ज्ञान अर्थात् बुद्धि की वृत्ति को अव्यक्त वर्णन किया और जानने के योग्य रूपरहित पच्चीसवां है इसी प्रकार ज्ञान अव्यक्त और जाननेवाला भी पच्चीसवां है यह मैंने विद्या और अविद्या क्रमपूर्वक तुमसे वर्णन की और अक्षर वा क्षर जो कहे उनको भी सुनो ब्रह्म, जीव, माया यह तीनों ब्रह्मरूप हैं इनमें से माया और जीव दोनों का वर्णन करते हैं यह माया और जीव आदि अन्त रहित होने से अक्षर हैं अर्थात् अविनाशी हैं और यही दोनों हरसमय पर रूपान्तर करने से कहे जाते हैं उनका कारण ज्ञान से ठीक-ठीक कहता हूं, यह दोनों आदि अन्त रहित हैं और दोनों मिले हुए

अक्षर हैं अर्थात् उत्पत्ति के कारण हैं इन दोनों को ब्रह्मदर्शीपुरुष तत्त्व नाम से वर्णन करते हैं उत्पत्ति नाशके धर्म रखने से अव्यक्त माया को अविनाशी कहा क्योंकि उसके नाशवान् होने से संसार का अन्त होजायगा परन्तु उस संसार का भी आदि अन्त मोक्षदशा के सिवाय नहीं है वह अव्यक्त गुणों की उत्पत्ति के निमित्त वारंवार रूपान्तर करनेवाला है, पचीसवें चिदाभास को भी परस्पर के अधिष्ठान से गुणों का उत्पत्तिस्थान वर्णन करते हैं अर्थात् विना परस्पर संग होने के न तो प्रकृति संसार को उत्पन्न करसक्ती है न जीव करसक्ता है किन्तु दोनों मिलकर ही करसक्ते हैं इसी हेतु से प्रकृति के समान जीव भी अविनाशी है यह तो दोनों की अविनाशता को कहा अब उनके नाश को कहते हैं-जब योगी उस प्रकृति को शुद्ध ब्रह्म में लय करता है तब वह पचीसवां चिदाभास जीव उन गुणों समेत लय को प्राप्त होता है अर्थात् तीसरा महापुरुष शेष रहता है तात्पर्य यह है कि जबतक चिदाभास और प्रकृति की एकता है तबतक दोनों अविनाशी हैं फिर दोनों का नाश होजाता है जब प्रलय के समय महत्तत्त्वादि गुण प्रकृति के गुणों में लय होते हैं तब प्रकृतिही अकेली रहजाती है इसीप्रकार क्षेत्रज्ञ भी जब अपने प्रत्यक्ष स्थान पचीसवें चिदात्मा में लय होता है तब वह पचीसवां ही अकेला रह जाता है, हे राजन्, जनक ! जब चिदाभास गुणों में कर्म कर्त्ता न होने से निर्गुण भाव को पाता है तब महत्तत्त्वादि समेत प्रकृति भी नाश को पाती है, इसी प्रकार यह क्षेत्रज्ञ भी क्षेत्रज्ञानके दूर होने में नाश को पाता है परन्तु प्रकृति में और उसमें इतना अन्तर है कि यह वास्तव में निर्गुण है अर्थात् यद्यपि गुण और गुणी नाम क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विनाशवान् हैं परन्तु क्षेत्रज्ञ के क्षेत्र से पृथक् होनेवाला चिदंश अविनाशी है यह हमने सुना है जब यह क्षेत्रज्ञ अज्ञान दशा में प्राप्त होता है तब विनाश युक्त होता है इसी प्रकार जब प्रकृति को गुण युक्त और आत्मा की निर्गुणता को देखता है, तब प्रकृति को लयादि करके अत्यन्त पवित्र होता है जब यह ज्ञानी अपरोक्ष कहता है कि मैं दूसरा हूं और यह प्रकृति दूसरी है तब यह तत्त्वनाश अर्थात् गुणों की कल्पना से पृथक्ता को पाता है, और उसकी सम्बन्धता को दूर करता है, हे राजेन्द्र! यह आत्मा प्रकृति से युक्त और पृथक् भी दृष्ट आता है, जब वह चिदाभास प्रकृति के गुण जाल की निन्दा करता है और सर्वद्रष्टा चिदात्मा को देखता है तब उसको देखता हुआ त्याग नहीं करै है अर्थात् भूलता नहीं है, मैंने यह

किया जो यहां इस प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाले देह का ऐसा साथी होता है जैसे कि मछली अज्ञान से जाल में आजाती है मैंने ही बड़ी भूल से एक देह से दूसरे देह में ऐसे निवास किया है जैसे कि मछली जल के इस ज्ञान से कि यह मेरे जीवन का कारण है तालाब में स्थिरता से निवास करती है, जिस प्रकार मछली अपनी अज्ञानता के कारण जल से अपनी अभिन्नता को नहीं जानती है उसी प्रकार मैं भी अज्ञान से पुत्र आदि से अपने आत्मा को पृथक् नहीं जानता हूं, मुझ अज्ञानी को धिकार है जो फिर उस आपत्ति में फँसे हुए देह का साथ किया और एक देह से दूसरे देह में प्रविष्ट हुआ, यहां पर यह मेरा भाई और मित्र है उसके साथ में मेरा कल्याण होगा यह विचार कर समानता और एकता को प्राप्त किया जैसा यह था वैसाही मैं भी हुआ निश्चय करके मैं उसीके समान हूं जैसे यह प्रत्यक्ष में कपट से रहित है इसी प्रकार का मैं भी हूं ऐसा विचार करनेवाला मैं अज्ञानी भूल से इस अज्ञानी के साथ प्रवृत्त हुआ मैं असंग होकर इतने समय तक इस संगी के साथ नियत हुआ और उसके आधीन हुआ अब तक नहीं चेता हूं मैं उस उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी से सम्बन्ध रखनेवाली प्रकृति के साथ कैसे निवास करूं यहां मैं अज्ञानता से इस प्रकृति के साथ कैसे निवास करूंगा, अब सांख्ययोग में निष्ठावान् होकर मैं आत्मा को जानूं इस समय अज्ञानी छली अपने साथी को नहीं पाऊंगा, मैं निर्विकार होकर इस विकारवान् प्रकृति से ठगा गया हूं यह इसका अपराध नहीं है यह मेरे ही अपराध का फल है जिससे कि मैं इसका साथी होकर आत्मा से बहिर्मुख हुआ हूं अर्थात् विषयों के भोगने में प्रवृत्त होगया इस हेतु से मेरा आत्मारूप भी धन और रूपों में अथवा मूर्त्तियों में मूर्त्तिमान् है यह देह से रहित ममता में फँसकर देहवान् है और अत्यन्त ममता के अभ्यास से नाना योनियों में गिराया गया, उन २ योनियों में चित्त की भ्रान्ति के साथ वर्त्तमान ममता से उस ममता रहित आत्मा का कुछ काम नहीं है, अहंकार से आत्मा की नाश करनेवाली इस प्रकृति से मेरा क्या काम है यह अनेक रूपों को धारण करके फिर मुझको उनसे मिलाती है अब ममता और अहंकार से रहित होकर मैं सावधान हुआ हूं कि अहंकार से आत्मा की नाश करनेवाली ममता इसी प्रकृति से सदैव उत्पन्न होती है, मैं इस प्रकृति को छोड़कर इससे अलग होकर निरानन्द परमात्मा की शरण लूंगा और

इसी परमात्मा से एकता को प्राप्त करूंगा इस जड़रूप प्रकृति से नहीं करूंगा, इस परमात्मा के साथ मेरी एकता है और प्रकृति के साथ अनेकता है, इस प्रकार उत्तम ज्ञान से पचीसवें चिदाभास ने शुद्ध ब्रह्म को साक्षात्कार किया है, नाशवान् प्रकृति को त्याग करके सब उपाधियों से पृथक् अविनाशीपने को प्राप्त करना योग्य है क्योंकि वह प्रकृतिरूप अव्यक्त वा प्रत्यक्ष धर्म रखनेवाली सगुण और निर्गुण है हे राजन्, जनक! यह चिदाभास प्रथम आदि निर्गुण ब्रह्म को देखकर वैसाही होता है अर्थात् ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मही होता है, यहां मैंने वेदानुभव के अनुसार यह ब्रह्म और प्रकृति का अनुभव जो कि ज्ञानयुक्त है तुमसे कहा और जो सन्देह रहित सूक्ष्म पवित्र और दोषों से रहित है उसको भी तुझसे वेद के अनुसार कहता हूं, मैंने सांख्य और योग दोनों शास्त्रों की रीति से वर्णन की जो सांख्यशास्त्र है वही योगदर्शन है इसका तात्पर्य यह है कि शम दम आदि से द्वैत का नाश होना मोक्ष का देनेवाला है यह बात दोनों शास्त्रों में बराबर है साधन के अनुभव फलों से दोनों की एकताई होती है, हे राजन्! सांख्यमतवालों का ज्ञान बड़ी विज्ञता का करनेवाला है वहां शिष्यों के प्रयोजन के सिद्ध होने की इच्छा से अच्छे प्रकार स्पष्टता से कहा जाता है, इस प्रकार यह शास्त्र बड़ा है यह ज्ञानियों का कथन है फिर उस सांख्यशास्त्र और वेद में योगियों का बड़ा आदर है, जीव इसमें क्या है यह समझ कर सांख्य मतवाले योग की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं इसीसे कहते हैं—हे राजन्! पचीसवें चिदाभास से बड़ा तत्त्व कोई नहीं है, और सांख्यमतवालों का उत्तम तत्त्व छब्बीसवां ही ठीक वर्णन किया गया है, फिर योगमत में उक्त दोष की कौन गति है यह शंका करके कहते हैं—जो चिदात्मा स्वरूप है वही सारूप्य वृत्तिदशा में शुद्धरूप के न जानने से जीवरूप होता है इसी कारण प्रधान और चिदात्मा को योग का अनुभव वर्णन किया है ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे त्रयस्त्रिंशत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

एकसौ चौंतीस का अध्याय ॥

वशिष्ठजी बोले कि, अब तुम परमात्मा जीव और सतोगुण आदि के प्रभाव को सुनो कि वह चैतन्य अपने को माया के कारण से बहुत प्रकार का करके उनके रूपों को तत्त्वरूप देखता है तात्पर्य यह है कि वही दोनों परमात्मा

जीव प्रधान से पृथक् जानने उचित हैं उस दशा में जीव से सम्बन्ध रखने वाला शास्त्र निष्फल नहीं होता है, इसप्रकार से भेदवादी की जीत नहीं होती है इसको कहते हैं—जीव इस ब्रह्म को नहीं जानता है कारण यह है कि अपने को कर्त्ता और भोक्ता मानकर विपरीत दशा करनेवाला है जब यह गुणों को धारण करता है तब उत्पत्ति और नाश को करता है, हे राजन्! यहां क्रीड़ा के निमित्त रूपान्तर को करता है और कार्य के साथ अज्ञान के जानने से जीव को विधीयमान नाम से भी प्रसिद्ध करता है, यह जानना जीव का ही धर्म है इस शंका को कहते हैं—हे तात! निश्चय करके यह रूप आदि से युक्त प्रधान अव्यक्त इस पच्चीसवें निर्गुण पुरुष को नहीं जानता है इसीकारण इसको जड़ वर्णन किया, पच्चीसवें महात्मा चिदाभास को अव्यक्त के जानने से विधीयमान कहते हैं यह भी वास्तव में नहीं जानता है, अब जाननेवाले को कहते हैं—जो छब्बीसवां निर्मल ज्ञानस्वरूप अप्रमेय सनातन है वह पच्चीसवें चिदाभास और चौबीसवीं प्रकृति को सदैव जानता है अर्थात् उपाधिरहित चैतन्य ही सबका प्रकाशक है, हे महातेजस्विन्! वह पच्चीसवां अपनी सत्ता से कार्य कारण में वर्तमान है अर्थात् सन्मात्र ही छब्बीसवां है हे तात! इस जीवते शरीर में वह गुप्त उपाधिरहित ब्रह्मज्ञानियों को विदित होता है, फिर सर्वत्र वर्तमान वह शुद्ध ब्रह्म हमको साक्षात् क्यों नहीं होता है—इसी हेतु से कहते हैं—जब यह जीव अपने को आत्मा से जुदा मानता है अर्थात् कहता है कि मैं अमुक पुरुष का पुत्र हूं ब्राह्मण हूं तब शुद्ध ब्रह्म पच्चीसवें चिदाभास और चौबीसवीं प्रकृति को भी नहीं जानता है, फिर कैसे शुद्ध ब्रह्म का जाननेवाला होसक्ता है इसी हेतु से कहते हैं—जब शुद्ध ब्रह्म से सम्बन्ध रखनेवाली द्वैततारहित सर्वोत्तमा विद्या को प्राप्त करता है तब अव्यक्त प्रधान अज्ञान में दृष्टि करनेवाला यह चिदाभास प्रकृति को जीतता है, हे नरोत्तम! इसप्रकार से छब्बीसवां ब्रह्म जीवभाव को प्राप्त करता है फिर वह जीव विद्या के द्वारा इस उत्पत्ति और नाश के धर्म रखनेवाले प्रधान अज्ञान को त्याग कर देता है, यह जीव अव्यक्त अज्ञान को अपने से पृथक् देखने से शुद्ध होता है जो आप निर्गुण होकर गुणयुक्त जड़रूप प्रकृति को जानता है वही शुद्ध ब्रह्म है, तीनों उपाधियों से रहित जीव शुद्ध आत्मा से मिलकर उसी आत्मा को पाता है जिसको कि निर्विकल्प अपरोक्ष अजर और अमर कहते हैं, हे महादानिन्! तत्त्वज्ञ महात्मा दृश्यमान

शरीरादिक में निवास करने से तत्त्ववान् होता है वास्तव में कभी नहीं होता इस कारण से कि केवल साक्षीमात्र है उन तत्त्वों को ज्ञानी लोग संख्या में पचीस कहते हैं, हे तात ! यह तत्त्ववान् अर्थात् महत्तत्त्वादि का रखनेवाला परोक्ष नहीं है क्योंकि निस्तत्त्व अर्थात् कार्य्य कारण से रहित अपरोक्ष यह ज्ञानी के "अहं ब्रह्माऽस्मि" इस तत्त्व लक्षण को भी शीघ्र त्याग करता है, जब ज्ञानी मानता है कि मैं अजर अमर छब्बीसवां हूं तब केवल अपनी सामर्थ्यरूप ब्रह्माकारवृत्ति के द्वारा ब्रह्मभाव को पाता है आशय यह है कि यह ब्रह्माकार अन्त की वृत्ति दूसरी वृत्ति को और अपने को भी शीघ्र शान्त करती है, छब्बीसवें ब्रह्म के द्वारा पचीस तत्त्वों को जाननेवाला भी उस छब्बीसवें को नहीं जानता है यह उस का अज्ञान सांख्य श्रुति के दृष्टान्त से अनेक अर्थात् द्वैतता के विरुद्ध है कहा जाता है, अब छब्बीसवें के अनुभव स्वरूप को कहते हैं-इस बुद्धि से युक्त पचीसवें की ब्रह्म से एकता उस समय होती है जब बुद्धि से भी आत्मा को नहीं जानता है अर्थात् बुद्धि का निरोध होने पर पूर्णसुषुप्ति के समान छब्बीसवें का अनुभव है, हे राजन्, जनक ! जब यह सुखादि का भोक्ता अहंवृत्ति में नियत जीव मन वाणी से परे छब्बीसवें चिदात्मा से एकता को प्राप्त होता है तब पुण्य पापके स्पर्श से पृथक् होता है, जब यह समर्थ उस असंग अजन्मा समर्थ छब्बीसवें परमात्मा को पाकर अज्ञानप्रधान अव्यक्त को त्याग करता है तब उसको जानता है तात्पर्य यह है कि पुरुष के देखते ही प्रकृति लय होजाती है, छब्बीसवें का ज्ञान होने से चौबीसवां रस्सी के सर्प की समान अरूप असार होजाता है, हे निष्पाप ! यह माया जीव और ब्रह्ममूल समेत वेद के प्रमाण संयुक्त तुम से कहे अब चौबीस तत्त्वों के साथ जीव की यह एकता और द्वैतता शास्त्र के अवलोकन से जानना योग्य है जैसे गूलर और गूलर के जीव वा मछली और जल जुदे हैं इसीप्रकार इन दोनों की पृथक्ता ज्ञात होती है, इसीप्रकार इन दोनों की भी एकता और द्वैतता जाननी उचित है अव्यक्त को पुरुष से पृथक् जानना और केवल पुरुष का शेष रहना नाम यह मोक्ष उस पचीसवें चिदाभास का वर्णन किया गया जो कि शरीरों में वर्त्तमान है यह चिदाभास अज्ञान और उसके विषय महत्तत्त्वादिकों से जुदा करने के योग्य वर्णन किया इस चिदाभास और अज्ञान के नाश होने से मुक्त होता है दूसरी रीति से नहीं होता है यह ठीक निश्चय है यह चिदाभास क्षेत्र से मिलकर चिदात्मा से दूसरा और

क्षेत्र का धर्म रखनेवाला होता है, हे नरोत्तम! वह अत्यन्त पवित्र धर्मवान् बुद्धिमान् मोक्षधर्म में नियत चिदाभास उस शुद्ध ज्ञानस्वरूप मुक्त वियोगधर्मी चिदात्मा से मिलकर वैसा ही हो जाता है, वह पवित्रकर्मी महाप्रकाशमान होता है और सब उपाधियों से पवित्र निर्मल आत्मा से मिलकर स्वच्छ निर्विकार आत्मा होता है, इसी प्रकार केवल शुद्ध ब्रह्म से मिलकर केवल आत्मा होता है और यह स्वतन्त्र चिदाभास इस स्वतन्त्र चिदात्मा से मिलकर स्वतन्त्रता को प्राप्त होता है, हे महाराज! मैंने यह सिद्धान्त इतना तुमसे वर्णन किया सो तुम ईर्षा से रहित होकर प्रयोजन को स्वीकार करके यह पवित्र सनातन आदि परब्रह्म तुम को उस मनुष्य से कहने के योग्य है जोकि तीनों गुणों से रहित हो यह ज्ञान का कारण और नम्र पुरुष का उपदेश ज्ञान की इच्छा करनेवालों को करना उचित है और मिथ्यावादी, शठ, नपुंसक, कुटिल बुद्धि को कभी न देना चाहिये ऐसे मनुष्य को देना योग्य है जो सदैव श्रद्धायुक्त दूसरे की निन्दा से रहित पवित्रात्मा योगी क्रियावान् शान्तरूप संतोषी महात्मा है, जो मनुष्य एकान्त में बैठनेवाला शास्त्र का माननेवाला विवादरहित अनेक शास्त्रों का ज्ञाता विज्ञानी मोक्षमार्ग में शत्रु से क्षमा न करनेवाला बाह्याभ्यन्तर से शान्तात्मा धर्मवान् है उसको उपदेश करना योग्य है, जो इन गुणों से अत्यन्त रहित है उसको कदापि न देना चाहिये क्योंकि यह अत्यन्त पवित्र परब्रह्म कहा जाता है इसीसे अभक्त मनुष्य को उपदेश करना निष्प्रयोजन है क्योंकि वह उपदेश उसको कल्याणकारी नहीं होगा और अपात्र को दान करने से उस दानी और धर्मोपदेश करनेवाले का भी कल्याण नहीं होता, चाहे रत्नों से भरी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी को दान करे परन्तु इस ब्रह्मज्ञान को व्रत न करनेवाले मनुष्य को कभी न देना चाहिये यह ज्ञान निस्सन्देह जितेन्द्रिय पुरुष को देना चाहिये, हे कराल जनक! अब तुमको किसी प्रकार का भय न होगा क्योंकि तुम ने यह शुद्ध उत्तम आदि अन्त रहित सनातन परब्रह्म का उपदेश ठीक २ वर्णन किया हुआ सुना हे राजन्! जो ब्रह्म जन्म मृत्यु से छुड़ानेवाला उपाधिरहित निर्भय और आनन्दस्वरूप है उस ब्रह्म को विचार कर और इस ज्ञान के तत्त्वार्थ को जानकर अब सब मोहों को त्याग करो हे राजेन्द्र! मैंने उस उग्र आत्मा सनातन ब्रह्माजी को युक्ति से प्रसन्न करके उस उपदेश करनेवाले सनातन हिरण्यगर्भ से इस

ब्रह्मज्ञान को ऐसे पाया है जैसे कि अब तुमने मुझसे प्राप्त किया है, हे राजन् ! यह ब्रह्मज्ञान मोक्ष जाननेवालों का उत्तम रक्षा का आश्रय है इसको जैसे तुमने मुझसे पूछा उसी प्रकार मैंने तुमसे कहा, युधिष्ठिर ने प्रश्न किया था कि वह अविनाशी कौन है जिसको प्राप्त होकर आवागमन से छूट जाता है इसको सिद्ध करने के लिये भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! मैंने वेदों के दृष्टान्त से यह परब्रह्म वर्णन किया जिसको पाकर पचीसवां चिदाभास संसार में फिर लौट कर नहीं आता है, यह जीव इस अजर अमर परब्रह्म को सिद्धान्तसहित नहीं जानता है इसी हेतु से उत्तम ज्ञान को न पाकर आवागमन में फँसता है हे पुत्र, राजन्, युधिष्ठिर ! मैंने देवऋषि नारदजी से सुनकर यह कल्याणकारी उत्तम ज्ञान मूलसमेत तुमसे कहा, यह ज्ञान महात्मा वशिष्ठ ऋषिजी ने ब्रह्माजी से पाया और नारदजी ने उन ऋषियों में श्रेष्ठ वशिष्ठजी से पाया और मुझको नारदजी से मिला हे कौरवेन्द्र ! तुम इस परमपद को सुन कर शोच मत करो हे तात ! जिसने यह क्षर माया और अक्षर जीव को जाना वह निर्भय है और जो इस ब्रह्म को नहीं जानता है वह सदैव भयभीत है, अज्ञानात्मा पुरुष ने विज्ञान के न होने से वारंवार दुःखों को पाया और मरकर हज़ारों मृत्युसम्बन्धी जन्मों को पाया है, देवलोक आदि लोकों को और पशु, पक्षी, मनुष्यपर्यन्त योनियों को भी पाता है जब इच्छा से रहित होता है तब उस अज्ञानसमुद्र से पार होता है, हे भरतवंशिन् ! वह अज्ञानसागर महाघोररूप है उसीमें हज़ारों जीव डूबते हैं, हे राजन् ! तुम जिस अथाह और प्राचीन अव्यक्त नाम समुद्र से बाहर निकले हो इस हेतु से तुम रजोगुण तमोगुण से पृथक् हो अर्थात् शुद्ध सतोगुण प्रधान हो ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे जनकवशिष्ठसंवादे

चतुस्त्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

एकसौ पैंतीस का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, चौबीस तत्त्वों को क्षर कहकर और योगमतसम्बन्धी पचीसवें चिदाभास को जो कि धर्म आदि के सम्बन्ध से क्षर है उसको वर्णन किया और धर्म आदि से असम्बन्धी छब्बीसवां अक्षर ब्रह्म भी सांख्यमत से वर्णन किया अब उसके प्राप्त करने में अधिकारी होने के हेतु कुछ धर्मों का वर्णन करता हूं-निर्जन वन में आखेट करते हुए राजा जनक के पुत्र राजा

वसुमान् ने वेदपाठियों के इन्द्र भृगुवंशी मुनि को देखा, उन बैठे हुए मुनि को शिरसे दण्डवत् करके उनके पास बैठगया और उनकी आज्ञा लेकर राजा वसुमान् ने यह प्रश्न किया, हे ब्रह्मन्! इस अनित्य शरीर में इच्छा की आधीनता में वर्त्तमान पुरुष का इसलोक और परलोक में कैसे कल्याण होय, तब बड़ी प्रसन्नता से सत्कारपूर्वक उस महात्मा तेजस्वी ने राजा से यह कल्याणकारी वचन कहा, जो तुम इसलोक और परलोकमें मनोवाञ्छित पदार्थों को चाहते हो तो इन्द्रियों से सावधान होकर हिंसा आदि जीवों के अप्रिय कर्मों को चित्तसे त्यागदो, धर्म ही सत्पुरुषों का हितकारी और रक्षा का स्थान है और हे तात! धर्म से ही तीनों लोक स्थावर जंगम जीवों समेत उत्पन्न हैं, विषयी लोगों की जो इच्छा और मन की वाञ्छा हैं उनकी अनिच्छा क्यों नहीं करता है हे मूर्ख! मधु को देखता है और उनके दुःखों को नहीं देखता है जिस प्रकार ज्ञान का फल जाननेवाले मनुष्य को धर्म में अभ्यास करना चाहिये, जो सत्पुरुष नहीं हैं और धर्म की इच्छा करनेवाला है वह अत्यन्त पवित्र होना कठिन है परन्तु धर्म को चाहनेवाले सत्पुरुष से कठिन कर्म होना सुगम है, जो वन के बीच स्त्रीप्रसंगादि सुख का अभ्यास करनेवाला है वह उसप्रकार का है जैसा प्राकृत मनुष्य और जो गांव वन के सुखों का अभ्यास करनेवाला है जैसा वनचारी, तुम सावधान होकर निवृत्तिमार्ग वा प्रवृत्तिमार्ग में गुण अवगुणों को विचार कर मन, बुद्धि, देह से सम्बन्ध रखनेवाले धर्म में श्रद्धा करो, दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाले मनुष्य और ऐसे साधुओं को सदैव बहुत सा दान देना योग्य है जो कि बाहर भीतर से पवित्र व्रती विरक्त देशकाल पर पूजित हों, श्रेष्ठबुद्धि से प्राप्त होनेवाले धन को योग्य और पात्र लोगों को दान करे दान में क्रोध और पश्चात्ताप को न करे न अपने मुख से उसका कहीं वर्णन करे, दयावान् पवित्र जितेन्द्रिय सत्यवक्ता स्वधर्मपत्नी में सन्तान हेतु विषय करनेवाला शुद्धकर्मी वेदज्ञ ब्राह्मण दान देने के योग्य पात्र है—अब योनि और कर्म की शुद्धि को कहते हैं—इसलोक में सन्तान का उत्पत्तिस्थान स्त्री ही समझी जाती है परन्तु जो एकही पुरुष की स्त्री है वही पूजित है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद का जाननेवाला षट्कर्मी ज्ञानी ब्राह्मण पात्र कहाजाता है, सब दानों में देशकाल को विचारकर दान के योग्य पात्र और कर्म की प्रशंसा से उसी मनुष्य को धर्म और अधर्म दोनों होते हैं जैसे कि मनुष्य शरीर के

साधारण धब्बे को शरीरही से शुद्ध करता है और बड़े धब्बे को बहुत उपायों से दूर करता है इसी प्रकार पाप का भी दूर करना है जैसे विरक्त की मुख्य औषधि धृति है उसीप्रकार दोषरहित मनुष्य का यज्ञादिधर्म परलोक में सुखदायक होता है, सब जीवधारियों में मानसी पाप और पुण्य वर्त्तमान होता है उस मन को सदैव पापों से पृथक् करके शुभ कर्मों में ही प्रवृत्त करे, सर्वत्र सब से किये हुए सब कर्मों को पूजन करे जिस स्थानपर अपने धर्म में मैत्री और प्रीति हो वहां इच्छानुसार धर्म को करे, हे अधीर! धीरजधर, हे दुर्बुद्धे! सुबुद्धि हो अशान्ति से शान्ति धारण करो हे अज्ञानिन्! तुम ज्ञानी के समान कर्म्म करो, अपने साथी सतोगुण अथवा पराक्रम से उपाय करना उचित है इसलोक और परलोक में जो कल्याण है उसका मूल उत्तम धीरज है, धीरज से रहित महाभिष नाम राजर्षि स्वर्ग से गिरा और पुण्य नाश होनेपर भी राजा ययाति ने धीरज ही के द्वारा लोकों को प्राप्त किया, तपस्वी धैर्य्यवान् ज्ञानियों की संगति और सेवा से बड़ी बुद्धि को प्राप्त करके उत्तम कल्याण को पाता है, भीष्मजी बोले कि उस स्वाभाविक धर्म से युक्त राजा वसुमान्ने मुनि के इस वर्णन को सुनकर और चित्त को इच्छाओं से हटा के धर्म में बुद्धि को नियत किया ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे पञ्चत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

एकसौ छत्तीस का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि जो चिदात्मा सुख दुःखादि धर्मों से और अनेक संशयों से और जन्ममृत्यु से पृथक् पाप पुण्य से रहित है और सदैव निर्भय नित्य अविनाशी न्यूनता और दोषों से रहित उपाधियों से मिला हुआ भी सदैव एकही रूप में नियत है उसको आप कहने के योग्य हैं, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन्! इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को तुमसे कहता हूं जिसमें याज्ञवल्क्यऋषि और राजा जनक का प्रश्नोत्तर है, महायशस्वी राजा देवराति के पुत्र नरभूषण राजा जनक ने ऋषियों में और प्रश्नों के महाज्ञाताओं में अति उत्तम याज्ञवल्क्यजी से प्रश्न किया, कि हे ब्रह्मर्षे! कितनी इन्द्रियां और प्रकृति हैं और महत्तत्त्व से परे कारण ब्रह्म कौन है और उससे भी परे निर्गुण ब्रह्म कौन है, हे वेदपाठियों में इन्द्ररूप! आपके अनुग्रह चाहनेवाले मुझ प्रार्थना करनेवाले से उत्पत्ति प्रलय और काल की संख्या कहने को आप

योग्य हैं क्योंकि आप ज्ञानके समूह हैं मैं अज्ञानता से इस संशय से रहित को सुनाचाहता हूं, याज्ञवल्क्य बोले कि, हे पृथ्वीपाल ! जिसको तुम पूछते हो वह योगियों का और सांख्यमतवालों का उत्तम ज्ञान है उसको विभागपूर्वक सुनो, तात्पर्य यह है कि योगमत में अव्यक्त को जड़ और सत्य भी मानते हैं और सांख्यमत में चैतन्य के प्रतिबिम्ब से युक्त अव्यक्त शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान से लय हो जाता है, प्रकृति आठ प्रकार की और उसके विकार सोलह कहे इनमें से वेदान्त विचार करनेवालों ने भी आठही प्रकृति वर्णन की हैं अज्ञान प्रधान अव्यक्त महत्तत्त्व, अहंकार, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि यह सूक्ष्म पञ्चतत्त्व जिनको तन्मात्रा भी कहते हैं, यही आठ प्रकृति हैं और सोलह विकारों को भी सुनो–श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रिय और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जिनको स्थूलतत्त्व भी कहते हैं, वाक्, पाणि, पाद, गुदा, लिंग यह कर्मेन्द्रिय, हे राजेन्द्र ! पांचों महाभूतोंमें यह दशों विशेष नाम हैं अर्थात् उनसे विकारों की उत्पत्ति नहीं होती है यह ज्ञानेन्द्रियां विशेष नाम हैं अर्थात् विशेष नहीं हैं, वेदान्त गति के विचार करनेवाले और तत्त्वज्ञों में पण्डित तुमने और अन्य आत्मज्ञानियों ने मनको सोलहवां कहा अर्थात् मनविकार के मध्यवर्त्ती भी विशेष नहीं है क्योंकि वह तत्त्वों की उत्पत्ति का कारणरूप है–अब उत्पत्ति के क्रम को वर्णन करते हैं–हे राजन् ! अव्यक्त से महान् आत्मा उत्पन्न होता है इसकी उत्पत्ति को ज्ञानी लोग प्राधानिक कहते हैं और प्रधान से संसार और महत्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न हुआ इस दूसरी उत्पत्ति को बुद्धि से संसार कहते हैं, अहंकार से चित्त उत्पन्न हुआ वही चित्त पञ्चतत्त्व और शब्दादि विषयों का उत्पत्ति कारणहै यह तीसरी सृष्टि की उत्पत्ति अहंकारसम्बन्धी कही जाती है, हे राजन् ! पञ्चमहाभूत चित्त से उत्पन्न हुए इस सबकी अंगीकृत चौथी उत्पत्ति को चित्तसम्बन्धी सृष्टि जानो, तत्त्वों के विचार करनेवाले ज्ञानियों ने रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द को पांचवीं उत्पत्ति को तत्त्वसम्बन्धी सृष्टि वर्णन करी है, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, पांचवीं घ्राण इस छठी उत्पत्ति को मनसम्बन्धी वर्णन किया हे राजन् ! श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से पञ्चकर्मेन्द्रिय उत्पन्न होती हैं वह चित्तरूप हैं अर्थात् चित्त से हुई हैं इस सातवीं उत्पत्ति को इन्द्रियसमूह वर्णन किया, ऊर्ध्वगतिवाले प्राण और तिर्यक्गति रखनेवाले, समान, व्यान, उदान को आठवीं उत्पत्ति कहते हैं और इन्द्रियों से उत्पन्न इन प्राण आदि की

वृत्ति को सामान्य कहते हैं इन समान, व्यान, उदान के नीचे अपान उत्पन्न होता है उसकी बाईं ओर को गति है ज्ञानी लोग इन्द्रियों की सृष्टि को सामान्य वृत्तिवाली कहते हैं, हे राजन् ! वेदों के दृष्टान्तों से यह नव प्रकार की उत्पत्ति और चौबीस तत्त्वों का वर्णन किया तदनन्तर महात्माओं की कही हुई इस गुण की उत्पत्ति संख्यारूप काल को मूल समेत कहता हूं अर्थात् उस २ गुण की उपासना से उसके स्वरूप को पाकर जितने २ समय तक नियत होता है वही उसकी संख्या है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे षट्त्रिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

एकसौ सैंतीस का अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि, हे नरोत्तम ! मोक्ष का अन्त नहीं है और कर्म उपासना के सब फलों का अन्त है और जिसने अव्यक्त की उपासना से अव्यक्तभाव को प्राप्त किया है उसके समय की संख्या को मैं कहता हूँ उसका दिन दश हजार कल्प का होता है और रात्रि भी इतनी ही होती है, हे राजन् ! वह जागनेवाला अव्यक्त प्रथम तो औषधि को उत्पन्न करता है क्योंकि उसी से सब जीवों का जीवन है वेद में लिखा है कि चित्त अन्नरूप है इसी कारण से यहां औषधि का अर्थ सूक्ष्मचित्त ही है, उस चित्त के द्वारा सुवर्णरूप अण्डे में अर्थात् वासनारूप ब्रह्माण्ड में प्रकट होनेवाले ब्रह्माजी को उत्पन्न किया वही ब्रह्माण्ड सब प्रत्यक्षों की मूर्ति है इस प्रकार से हमने सुना है, उस महामुनि प्रजापति ब्रह्माजी ने एक वर्षतक अण्डे में निवास किया और वहां से निकल कर पृथ्वी और आकाश आदि संपूर्ण संसार का विचार किया और वेदों में भी इस स्वर्ग और पृथ्वी की प्रकटना लिखी हुई है ईश्वर ने उस आधे अण्डे में मध्य को आकाश विचार किया, पूर्ण पण्डितों ने वेद वेदांगों में इस ब्रह्माण्ड की अवस्था की संख्या भी वर्णन की है उसका दिन पौने दश हजार कल्प का कहा जाता है, और अध्यात्मज्ञानी लोगों ने उसकी रात्रि भी इतनी ही वर्णन की है इसी प्रकार तत्त्वों का हेतु अहंकार भी उत्पन्न किया फिर उस महर्षि ने भौतिक देह की उत्पत्ति से पहले दूसरे चार पुत्र अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार नाम उत्पन्न किये हे राजन् ! वही चारों पुत्र महा भूतों के पितर सुने जाते हैं अर्थात् मन आदि ही महाभूतों के कर्त्ता हैं और चौदह इन्द्रियरूप देवता महाभूतों के पुत्र हैं इन्हीं चौदहों से चौदह भुवन और स्थावर जंगम

जीव ढके हुए हैं ऐसा हमने सुना है, ब्रह्म में लय होनेवाले अहंकार ने पृथ्वी आदि पञ्चतत्त्वों को उत्पन्न किया, अहंकार की उपासना करनेवाले और उस में तद्रूप होनेवाले काल पुरुष की संख्या को कहते हैं—तीसरी अहंकारिक नाम उत्पत्ति के कर्त्ता अहंकार की रात्रि को पांच हज़ार कल्प की वर्णन करते हैं इसी प्रकार दिन भी जानो, हे राजेन्द्र! शब्द स्पर्शादि यह सब पञ्च महाभूतों में विशेष नाम से कहे जाते हैं, इन्हीं शब्दादि से व्याप्त यह सब जीव परस्पर में प्रतिदिन इच्छा करते हैं और परस्पर की वृद्धि होने में प्रवृत्त हैं और एक २ को उल्लंघन करके कर्मकर्त्ता होते हैं और परस्पर ईर्षा भी किया करते हैं और विषयों से पीड़ित पशु पक्षी आदि योनि में प्रविष्ट होकर इसी लोक में घूमा करते हैं, हे राजन्! विशेष की उपासना करनेवाले पुरुषों का दिन तीन हज़ार कल्प का कहा जाता है और इतनी ही रात्रि होती है मन नाम महत्तत्त्व की उपासना से भूतादि की उपासना अधिक नहीं है यह शंका करके मनकी प्रधानता को सिद्ध करते हैं—हे राजेन्द्र! इन्द्रियों से घिरा हुआ सब विषयों में मनही विचरता है इन्द्रियां नहीं देखती हैं मनही देखता है, चक्षुरिन्द्रिय मन से ही रूपों को देखती है आंख से नहीं देखती क्योंकि मन की व्याकुलता होने में देखनेवाली आंख भी नहीं देखती हैं, इसी प्रकार यहां कहते हैं कि सब इन्द्रियां देखती हैं परन्तु इन्द्रियां नहीं देखतीं किन्तु मनही देखता है और हे राजन्! मनकी अनिच्छा होने से विषयों से इन्द्रियों की अप्रीति होजाय और जिस हेतु से इन्द्रियों में विषयों की अनिच्छा हुई इस कारण मन में भी अप्रीति होती है, इस प्रकार से मन प्रधान इन्द्रियों का ज्ञान करे क्योंकि मन सब इन्द्रियों का स्वामी कहलाता है यहां यह महायशस्वी मन सब इन्द्रियों में प्रविष्ट होता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे सप्तत्रिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

एकसौ अड़तीस का अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले कि, मैंने तत्त्वों की और काल की संख्या क्रम से वर्णन करी अब प्रलय को भी कहता हूं, जिसप्रकार उन आदि अन्त न रखनेवाले अविनाशी ब्रह्माजी ने वारंवार जीवों को उत्पन्न किया और अपने में लय करते हैं, वह ब्रह्माजी अपने दिन का अस्त जानकर रात्रि के समय जब शयन करते हैं तब शिवजी को बुलाते हैं फिर अव्यक्त माया से रहित सौ सूर्य के समान

तेजरूप रुद्रजी अपने बारहरूप धारण करके अग्नि के समान प्रचण्ड होते हैं, और चारों खान के जीवों को भस्म करते हैं, उस समय यह स्थावर जंगम सब जगत् पलक भर में ही नाश को प्राप्त होजाता है और सब पृथ्वी चारों ओर से कछुए की पीठ के समान होजाती है, फिर वह महातेजस्वी सूर्यरूप देवता सब जगत् को भस्म करके पृथ्वी को जल से पूर्ण करदेते हैं, फिर वह जल भी कालाग्नि उत्पन्न होने से नाश होजाता है जब वह महाकालाग्नि अत्यन्त प्रचण्डतर होता है, तो महाप्रबल ऊंचे नीचे तिरछे घूमते हुए महावेगवान् अष्टमूर्त्तिधारी अप्रमेय वायु देवतारूप होकर सब जीवों के जाठराग्निरूप सप्तजिह्वाओं से उस प्रबल प्रचण्ड अग्नि को भी भस्म करते हैं, फिर उस भयानक प्रचण्ड वायु को आकाश अपने में लय करलेता है फिर अधिकार में बड़ा मन भी चारों ओर से अश्रुपात डालता हुआ उस आकाश को निकालता है और अपना अहंकार बाहर करता है यह अहंकार महान् आत्मा है और भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों का जाननेवाला है इसको भी फिर वह अणिमादिक सिद्धियों का रूप प्रजाओं का स्वामी ज्योतिरूप अविनाशी ईश्वर निगल जाता है अर्थात् अपने में लय करलेता है, जोकि सब ओर को हाथ, पैर, शिर, मुख, नाक, आंख रखनेवाले सबको व्याप्त करके लोक में वर्तमान है और सब जीवों का हृदयरूप है अर्थात् हृदय में वर्तमान बुद्धि के प्रवृत्त कर्म का कर्ता है और बुद्धि ही की उपाधि से अंगुष्ठ प्रमाण कहाजाता है वह अनन्त महात्मा ईश्वर इस विश्व को अपने में लय करलेता है, फिर माया के नाश होजाने पर वह ब्रह्म प्रकट होता है जोकि न्यूनतारहित अविनाशी विपरीत दशा से पृथक् तीनों कालों का स्वामी और माया के दोषों को स्पर्श नहीं करनेवाला है, हे राजेन्द्र ! यह प्रलय भी मैंने तुम से अच्छे प्रकार से वर्णन की अब अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव को भी सुनाता हूं तुम चित्त से सुनो ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेऽष्टात्रिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

एकसौ उन्तालीस का अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य बोले कि, तत्त्वदर्शी ब्राह्मणों ने चरणों को अध्यात्म और गतिको अधिभूत और विष्णु को अधिदैवत कहा है, तत्त्वार्थदर्शियों ने वायु इन्द्रिय को अध्यात्म, विसर्ग को अधिभूत और मित्र देवता को अधिदैवत वर्णन

किया है और योगदर्शी पुरुषों ने उपस्थ इन्द्रिय को अध्यात्म और उसके आनन्द को अधिभूत और प्रजापतिजी अधिदैव वर्णन किये, सांख्यदर्शी पुरुषों ने दोनों हाथों को अध्यात्म और करने के योग्य कर्म को अधिभूत और इन्द्र को अधिदैव कहा है, श्रुति देखनेवालों ने वाक् इन्द्रिय को अध्यात्म, कहनेवाला अधिभूत और अग्नि अधिदैव वर्णन किये हैं, वेददर्शी चक्षुरिन्द्रिय को अध्यात्म, रूप अधिभूत और सूर्यको अधिदैव कहते हैं, और उन्हीं श्रुति देखनेवालों ने श्रोत्र इन्द्रिय को भी अध्यात्म कहा है, उसमें शब्द अधिभूत और दिशा अधिदैव है, वेददर्शियों ने जिह्वा को अध्यात्म, रस अधिभूत और जल को अधिदैव कहा है, श्रुतिदर्शी घ्राण इन्द्रिय को अध्यात्म, गन्ध को अधिभूत और पृथ्वी को अधिदैव कहते हैं, तत्त्वबुद्धि में कुशल पुरुषों ने मनको अध्यात्म, उसके विषय को अधिभूत और चन्द्रमा को अधिदैव कहा है, और शास्त्रवेत्ता पुरुषों ने त्वक्इन्द्रिय को अध्यात्म, स्पर्श इन्द्रिय को अधिभूत और वायु को अधिदैव कहा तत्त्वदर्शी अहंकार को अध्यात्म, अभिमान को अधिभूत और इसमें बुद्धि होना अधिदैव कहते हैं, फिर उन्हीं पुरुषों ने बुद्धि को अध्यात्म उसके विषय को अधिभूत और क्षेत्रज्ञ को अधिदैव कहा है, हे राजन्! आदि, मध्य, अन्त अर्थात् उत्पत्ति, समाधि, लय में यह पृथ्वी रस्सी में सर्प के समान तुम को ऐसे दिखलाई गई है जैसे कि तत्त्वज्ञ पुरुष सिद्धान्त के अनुसार देखता है, हे महाराज! यह प्रकृतिरूप अविद्या स्वतन्त्रता और अपनी इच्छा से हज़ारों महत्तत्त्वादि गुणों को पृथक् पृथक् प्रकट करती है इसीसे यह प्रकृति कहलाती है, जैसे कि संसारी पृथ्वी के पुरुष एक दीपक से हज़ारों दीपक प्रकाशित करते हैं इसी प्रकार प्रकृति पुरुष के हज़ारों गुणों को प्रकट करती है, उनका ब्यौरा धैर्य, ऐश्वर्य, आनन्द, प्रीति, प्रकाश, सुख, शुद्धि, आरोग्यता, सन्तोष, श्रद्धा, उदारता, क्रोधरहित होना, अहिंसकता, समदृष्टिता, सत्यता, तीनों ऋणों से निवृत्त होना, शील, लज्जा, अचपलता, बाहर भीतर की शुद्धता, सरलता, आचारता, निर्लोभता, निर्भय होना, प्रिय अप्रियता से रहित होना, बुरे कर्म से बचना, दानसे जीवों को आधीन करना, इच्छा, परोपकार करना, सबपर दया करना, यह सत्त्व के गुण हैं और ऐश्वर्य स्वरूपादि त्याग न करना, निर्दयता, सुख दुःख का अभ्यास दूसरे की निन्दा में प्रवृत्त होना, परस्पर में विवाद करना, अहंकार, असत्कार, चिन्ता

शत्रुता करना, शोक, भय, पराये धनका लेना, निर्लज्जता, कुटिलता, परस्पर में विरोध रखना, अपनी वीरता प्रकट करना, काम, क्रोध, अहंकार, बहुत बकना, यह राजस के गुण हैं, अब तामस के गुणों को सुनो मोह, अप्रकाश, तामिस्र, अन्धतामिस्र यह तमोगुण के लक्षण हैं भोजन आदिकी वस्तुओं में अधिक प्रीति रखना, भोजन से तृप्त न होना, पीने की वस्तुओं से तृप्त न होना, सुगन्ध, पोशाक, आनन्द के बाग आदि में विहार, पलँग आदि का शयन, आसन, दिन में सोना, अधिक बोलना और कामों में प्रवृत्त होकर विस्मरण होना, अज्ञान से नृत्यगीत वाद्य में प्रवृत्त चित्त, धर्मात्माओं से विरोध करना इत्यादि तमोगुण के धर्म हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकोनचत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥१३९॥

एकसौ चालीस का अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले कि, इन गुणों के विकारों से उनका प्रकाशक पुरुष अनेकरूप का होता है और इनके समान उत्तम मध्यम निकृष्ट स्थानों को प्राप्त करता है इस बात को इस अध्याय में वर्णन करते हैं—हे पुरुषोत्तम ! यह सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण तीनों प्रधान के ही गुण हैं वह सदैव सब संसार के आगे वर्तमान होते हैं यह षडैश्वर्य का स्वामी अव्यक्तरूप हजारों प्रकार से आत्मा के द्वारा इस अकेले शुद्ध चैतन्य को हजारों लाखों करोड़ों प्रकार का करता है इससे इस ब्रह्माण्ड में सात्त्विकी पुरुष का स्थान उत्तम है राजसी का मध्यम और तामसी का निकृष्ट स्थान है यह वेदान्त विचारवाले कहते हैं यहां केवल पुण्य से ही स्वर्ग को प्राप्त करना योग्य है पुण्य और पाप से मनुष्य देह और अधर्म से अधोगति को पाता है इन तीनों गुणों की प्रशंसा और वैसे ही उसके संयोग को भी मैं कहता हूं कि सतोगुणी में रजोगुण और रजोगुणी में तमोगुण और तमोगुणी में सतोगुण और सतोगुणी का शुद्ध ब्रह्मरूपी अव्यक्त देखा गया है सतोगुण से युक्त अव्यक्त जीवात्मा देवलोक को पाता है, रजोगुण सतोगुणयुक्त मनुष्य नरलोकों में जन्म लेता है और रजोगुण तमोगुणयुक्त पुरुष तिर्यग्योनि पशु पक्षी आदि में जन्म लेता है, रजोगुण तमोगुण और सतोगुण तीनों से युक्त मनुष्य शरीर को पाता है और पुण्य पाप से पृथक् मनुष्य महात्माओं के स्थान को पाता है और जो सनातन अविनाशी न्यूनता से रहित है वह मोक्षरूप है, ज्ञानियों में जन्म लेना उत्तम है

उनका स्थान निर्विकार अविनाशी इच्छाओं से रहित अविद्या से पृथक् जन्म मरण और अज्ञान का नाश करनेवाला है वह अरूप ब्रह्म में नियत होनेवाला सर्वोपरि है जिसको तू मुझ से पूछता है वही ब्रह्म प्रकृति में नियत होकर प्रकृति ही में निवास करनेवाला कहा जाता है, हे राजन् ! प्रकृति को भी जड़रूप ही मानते हैं वह प्रकृति इस चैतन्य से मिल कर उत्पत्ति और नाश को करती है परन्तु पकड़ने में नहीं आती है, हे वेदपाठियों के इन्द्र, याज्ञवल्क्य ! तुम मोक्षधर्म को सम्पूर्णता के साथ उपासना करते हो मैं सम्पूर्ण मोक्षधर्म को मूल समेत सुनना चाहता हूं इसी प्रकार चैतन्य होने पर भी आवश्यक गुणों के वर्त्तमान होने विना उसका होना कैसे होसक्ता है क्योंकि अग्नि और उसकी उष्मा के समान प्रकृति पुरुष की प्रीति एक साथ होजाती है और वर्त्तमानता होने पर भी एकता अर्थात् प्रकृति से पृथक् कैसे होसक्ती है क्योंकि पुरुष के ऐश्वर्य और प्रकृति के अविनाशी होने से उसका होना असम्भव है और शरीर में जो देवता नियत हैं उनको भी मुझे समझाइये, इसी प्रकार देह के त्यागनेवाले मृतक जीव के उस स्थान को भी बताइये जिसको कि समय पर प्राप्त करता है और सांख्यज्ञान और पृथक् योग को भी मूल समेत वर्णन कीजिये हे महात्मन् ! आप मृत्यु जाननेवाले तत्त्वों के भी वर्णन करने को योग्य हैं यह सब आप हस्तामलक के समान जानते हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे चत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

एकसौ इकतालीस का अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले कि, हे राजन् ! वह निर्गुण ब्रह्म सगुण होना ऐसे असम्भव है कि वह गुणवान् और निर्गुण दोनों है इसको मूलसमेत मैं कहता हूं वह माया के गुणों से गुणवान् है इसी प्रकार गुणों से पृथक् निर्गुण है ब्रह्म का साक्षात् करनेवाले महात्मा मुनियों ने इस प्रकार से कहा है, गुण का स्वभाव रखनेवाला अव्यक्त गुणों को त्याग कर वर्त्तमान नहीं होसक्ता है और स्वभाव से अज्ञानी वही अव्यक्त उन गुणों को भोगता है, और दृष्टि से अलक्ष्य दूसरा चिदात्मा पुरुष स्वभाव से ही गुणों को न जानता है न भोगता है किन्तु सदैव मानता है कि मुझ आत्मा से भोगने के योग्य पदार्थ पृथक् नहीं हैं, इसी कारण भोक्तापन और अभोक्तापन की विलक्षणता से स्वभाव से ही जड़रूप वह प्रधान अव्यक्त चैतन्य की प्राचीन योग्यता और विनाशी

अविनाशीपन आदि गुणों से भोक्ता है और काष्ठ के समान चैतन्य के अंश से भिन्न नहीं है इसी कारण अज्ञान के हेतु से वारंवार गुणों से मिला करता है इस निमित्त जबतक आत्मा को असंग नहीं जानता है तबतक मुक्त नहीं होता है, इसी प्रकार संसार के कर्तृत्वभाव से भी धर्म की उत्पत्तिवाला कहा जाता है और योगों के स्वामीपन से भी धर्म कहलाता है इस हेतु से मुक्त नहीं होता है, प्रजाओं के स्वामीभाव से प्रकृतिधर्मता नाम गुण को धारण करता है इस कारण से भी मुक्त नहीं होता बीजों के स्वामी होने से बीजधर्मा और गुणों की उत्पत्ति लय करने से ईश्वर कहलाता है इत्यादि सब कारणों से मुक्ति से रहित होता है, इस प्रकार के पुरुष की एकता कैसे होसक्ती है इसीसे कहते हैं—तप से पृथक् ब्रह्मविद्या जाननेवाले शुद्ध यतीलोग केवल साक्षीभाव और एकत्वता से अथवा अभिमान से मानते हैं कि अव्यक्त अर्थात् गुप्तब्रह्म सदैव है और प्रत्यक्ष कार्य सब विपरीत दशा करनेवाले हैं अर्थात् विनाशवान् हैं यह सुनते हैं, इसीप्रकार अनीश्वरवादी सांख्यों ने अव्यक्त की एकता को और पुरुषों की अनेकता को कहा है वह अनीश्वर सांख्यवादी सब जीवों पर दयावान् होकर केवल ज्ञान में नियत होते हैं, अब प्रकृति पुरुष के विभाग को बहुत दृष्टान्तों समेत कहते हैं वह सबमें पूर्ण अविनाशी नाम अव्यक्त और है अर्थात् पुरुष से पृथक् है जैसे कि सींकों के बाहर मूंज उत्पन्न होती है उसी प्रकार यह भी उत्पन्न होता है इसी प्रकार गूलर और गूलर के भुनगों को अलग जाने क्योंकि भुनगे गूलर के योग से पृथक् हैं इसीप्रकार जल और मछली को समझो क्योंकि मछली सब दशा में जल के स्पर्शही की पाबन्दी नहीं रखती इसीप्रकार अग्नि और अग्नि की अंगीठी पृथक् २ हैं इसी प्रकार कमल और जल भी जुदे २ हैं ज्ञानी पुरुष इन सबके निवासस्थान और साथी के निवासस्थान को सदैव मुख्यता अर्थात् आद्योपान्त देखते हैं और जो प्राकृत मनुष्य हैं वह सदैव नहीं देखते हैं, जो पुरुष विपरीत देखनेवाले हैं उन्हों में पूर्ण दृष्टि नहीं है वह सबके प्रत्यक्ष घोर नरक में पड़ते हैं, यह सांख्यदर्शन और उत्तम योग तुमसे कहा सांख्य पर चलनेवाले पुरुषों ने इसीप्रकार से ज्ञानी होकर एकता को प्राप्त किया है, उस सांख्यमें जो दूसरे ज्ञानी प्रवृत्त हों उनके निमित्त यह सब दृष्टान्त हैं, अब योगियोंके विचारज्ञान को कहता हूं ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकचत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

एकसौ बयालीस का अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य बोले कि, हे राजेन्द्र! मैंने सांख्यज्ञान को तो वर्णन किया अब योगज्ञान को मूलसमेत मुझसे सुनो, सांख्य के समान कोई ज्ञान नहीं है इसी प्रकार योग के समान कोई पराक्रम नहीं है वह दोनों एक चर्यावाले अर्थात् शम दमादि का अनुष्ठान करनेवाले और मृत्यु के नाश करनेवाले कहे हैं हे राजन्! जो मनुष्य अल्पबुद्धि हैं अर्थात् उन दोनों को पृथक् २ देखते हैं और हम अपने निश्चय से एकही देखते हैं, जिसको योगीलोग देखतेहैं वही सांख्य मतवाले भी देखते हैं जो सांख्य और योग को एक देखता है वही तत्त्वज्ञ कहाता है, हे शत्रुहन्तः, राजन्! दूसरे धारणरूप योगों को रुद्रप्रधान जानो अर्थात् शरीर त्यागने के समय जीवात्मा को रुलानेवाले प्राण इन्द्रियआदि प्रधानरूप आलम्बन उन धारणाओंमें नियतहैं उस प्राणधारणाका यह फलहै कि वह योगी दशोंदिशा में उसीदेह से घूमते हैं अर्थात् आकाश की गति में सामर्थ्यवान् होते हैं, हे निष्पाप, पुत्र, जनक! जब तक ब्रह्म में लयभाव हो तबतक योग के द्वारा अष्टपुरीरूप सूक्ष्म शरीर से लोकों में घूमते सुखपूर्वक संन्यास को धारण करो यह फल केवल श्रद्धाबढ़ाने के निमित्त कहा है कुछ योगियों को आवश्यक आदरार्थ नहीं है, हे राजेन्द्र! ऋषियों ने वेदों में अष्ट उन्माद आदि गुणरखनेवाले योग को पढ़ा है और प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, त्याग, समाधि, यम, नियम रखनेवाले योग को सूक्ष्म कहा है उस अन्य को नहीं कहा है जिसको पहिले आधे श्लोक में वर्णन किया था, योगियों की उत्तम योगचर्य्या को शास्त्र के दृष्टान्त समेत दो प्रकार की कही पहिली सगुण अर्थात् सबीज दूसरी निर्गुण अर्थात् निर्बीज, हे राजन्! प्राणनिग्रह के साथ आधारों में मन का धारण करना सगुण योगचर्या कहलाती है इसीप्रकार ध्यान करनेवाला ध्यान के योग्य वस्तु और ध्यान इन तीनों के विभाग से पृथक् उस एक ईश्वर के सन्मुख होना और मनसमेत इन्द्रिय और बुद्धि को रोकना यह निर्गुण योगचर्या कहाती है, सगुण निर्गुण अंग और अंगी हैं इस बात को कहते हैं—प्राणायाम सगुण है और वृत्ति से मन को पृथक् नियत करना निर्गुण है हे राजन्! जो योगी दृष्टि से गुप्त त्याग के स्थान प्राण में प्राणों को छोड़ता है तब वायु की आधिक्यता होती है तात्पर्य यह है कि जो योगी है और मूलाधार आदि के देवता आदि का ध्यान करता हुआ वायु की

धारणा करता है वह सिद्धि को पाता है और जो ध्यानरहित केवल अभ्यास करता है वह अवश्य कष्ट को सहता है जैसे कि पवनयोगसंग्रह में लिखा है कि ध्यान देवता से संयुक्त प्राणायाम करने से सब रोग दूर होते हैं और जिसमें अभ्यास और योगयुक्त नहीं है उसके करनेवाले को महारोग उत्पन्न होता है वह देवता यह हैं कि नील कमलदल के समान श्याम वर्ण नाभिदेश के मध्य नियत चतुर्भुज रूप को पूरक के द्वारा ध्यान करे और हृदय में नियत कमलासन पर रक्तवर्ण वा श्वेतवर्ण चतुर्मुख ब्रह्माजी को कुम्भक के द्वारा ध्यान करे और ललाट में नियत शुद्ध स्फटिकरूप पापनाशक महेश्वरजी को रेचक के द्वारा ध्यान करे इन्हीं हेतुओं से उसको नहीं करे अर्थात् मूलाधार चक्र से लेकर सब चक्रों में प्राण को पहुंचाकर उनके अधिष्ठाता देवता का ध्यान यहांतक करे कि बारहवींबार शुद्ध ब्रह्म में ध्यान लगाना होजाय इसप्रकार से वायुधारणा आदि उपाय के द्वारा दुःख से जीतने योग्य मनको अपने आधीन करके शान्त रूप तत्त्वप्राप्ति के योग्य एकान्त अभ्यासी केवल आत्मा में ही क्रीड़ा करनेवाले तत्त्वज्ञ योगी की ओर से जीव ब्रह्म की निस्सन्देह एकता करने के योग्य है, अब मिलजाने की रीति को कहते हैं—पांचों इन्द्रियों के पांचप्रकार के उन दोषों को जोकि इच्छा के अप्राप्तिरूप शब्दादि विषयों को प्राप्त हों तुच्छ करके विक्षेप और लय को एकरूप करके सम्पूर्ण इन्द्रियसमूहों को मन में और मन को अहंकार में, अहंकार को महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व को प्रकृति में लय करके फिर माया से रहित ब्रह्म का ध्यान करते हैं वह ब्रह्म रजोगुण से रहित अनन्त प्राचीन अत्यन्त पवित्र रूपान्तरदशा से रहित है कूटस्थ पुरीरूप देहों में शयन करनेवाला अज्ञानदशा में जीव ईश्वररूप के कारण माया से द्वैत न प्राप्त करनेवाला भी आकाश के समान गिरनेवाला अजर अमर सदैव अविनाशी परमेश्वर ब्रह्म न्यूनता से रहित है हे महाराज ! समाधियों में नियत योगी के लक्षणों को और आनन्दरूप योगी के उन लक्षणों को सुनो जैसे कि तृप्त होकर आनन्द से सोता है, वायुरहित स्थान में घृत से पूर्ण दीपक प्रकाशमान होते हैं और अग्नि की ज्वाला भी निश्चल प्रकाशमान होती है उसी प्रकार से समाधि में नियत योगी को भी ज्ञानी लोग कहते हैं और जैसे कि मेह की बूंदें पर्वत को चलायमान नहीं कर सकीं उसी प्रकार समाधि में नियत योगी का चित्त नाना प्रकार के गीत वाद्य रागादिकों से नहीं चलायमान होता यह मुक्त पुरुष का

दृष्टान्त है, समाधिस्थों के लक्षण कहकर अब योगी के लक्षणों को कहते हैं– जिस प्रकार हाथ में खड्ग लिये मनुष्यों से घुड़का हुआ भयभीत मनुष्य तेल के पात्र को दोनों हाथों से पकड़कर सीढ़ी पर चढ़ता है और वह सावधान चित्त उन खड्गधारियों के भय से पात्र के तेल की बूंद भी न गिरावे इसी प्रकार एकाग्र चित्त योगी के उत्तम लक्षण को पाकर वैसा ही होजाता है, इस प्रकार जितेन्द्रिय समाधि में नियत योगी के लक्षण को जानो आत्मा में मिला हुआ पुरुष उस ब्रह्मको देखता है जो कि न्यूनतारहित महाउत्तम है और ज्योतिःस्वरूप तत्त्वं नाम दोनों पदार्थों में नियत है अर्थात् उन दोनों का सारांशरूप है, हे राजन्! इस ज्ञान के साक्षात्कार से बहुत समय में अनात्मारूप देह को त्यागकर शुद्धब्रह्म को पाता है यह सनातन श्रुति है यही योगियों का मुख्य योग है दूसरा योग नहीं है इसी योग को जानकर ज्ञानी लोग अपने को निवृत्त मानते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे द्विचत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

एकसौ तैंतालीस का अध्याय॥

याज्ञवल्क्य ऋषि बोले कि, राजयोग के फल कैवल्य प्राप्ति को कहकर अब हठयोग का फल कहते हैं–हे राजन्! इसी प्रकार सावधान होकर अब देह के त्यागनेवाले जीवात्मा को सुनो, मन के साथ प्राण को चरण में धारण करनेवाले और उसी मार्ग से देह के त्यागनेवाले का परमपद विष्णुलोक वर्णन करते हैं, जंघाओं से वसुदेवताओं के लोकों को और घुटनों के द्वारा साध्य देवताओं के लोकों को प्राप्त करता है, पाप इन्द्रिय में मन और प्राण की धारणा से प्राण त्यागनेवाला मनुष्य मैत्रलोक को और जघन अंग से पृथ्वी को और ऊरु अंग से प्रजापति के लोक को और दोनों पार्श्वों से मरुत् देवताओं के लोक को और नाभि के द्वारा इन्द्रपदवी को पाता है और दोनों भुजाओं से भी इन्द्रलोक को और छाती के द्वारा रुद्रलोक को पाता है, ग्रीवा से मुनियों में श्रेष्ठ नरलोक को मुख से विश्वेदेवाओं के लोक को और श्रोत्र इन्द्रिय से दिशाओं को पाता है और मूर्द्धा के द्वारा सुषुम्णा नाड़ी अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र से देवताओं से प्रथमही प्रकट होनेवाले प्रभु ब्रह्माजी को पाता है, हे मिथिलेश्वर! यह शरीरत्याग के स्थान वर्णन किये अब ज्ञानियों के नियत किये हुए मृत्यु चिह्न जो कि एक वर्ष के अन्तर्गत मरनेवालों के शरीर में प्रकट होते हैं उनको

वर्णन करताहूं जो पुरुष पहले देखे हुए अरुन्धती के नक्षत्र को और ध्रुवजी के नक्षत्र को और पूर्ण चन्द्रमा और दीपक पूरा न देख सके वह एकही वर्ष के भीतर देह को त्यागेंगे और हे राजन्! जो पुरुष दूसरे मनुष्य के नेत्र में अपने प्रतिबिम्ब को नहीं देखते हैं वह भी एकही वर्षके भीतर जीवेंगे तेज और बुद्धि की आधिक्यता होना अथवा दोनों का नाश होजाना और स्वभाव में विपरीत होना अर्थात् असन्तोषी से सन्तोषी होना कृपण से उदार होना यह तो ऐसा लक्षण है कि छही महीने में मृत्यु होजाय—जो देवताओं का अपमान करता है और ब्राह्मणों से शत्रुता करता है कृष्णवर्ण वा धूसरवर्ण दीखकर मृत्यु को प्रकट करता है यह छः महीने के पीछे मृत्यु होने का लक्षण है, जो पुरुष चन्द्रमा और सूर्य को मकड़ी के जाले के समान वा उन चन्द्रमा सूर्य में छिद्र देखता है वह सातही रात्रि में मरनेवाला है, जो पुरुष देवता के मन्दिर में वर्त्तमान सुगन्धित वस्तु को पाकर उसमें मृतक की सी गन्ध को सूँघता है वह भी सातही रात्रि में मरनेवाला है, कान नाक का टेढ़ा होजाना, दांत और आंख का रंग बदल जाना, देह की बेहोशी और गर्मी का दूर होजाना यह बहुत जल्द मरने के लक्षण हैं, हे राजन्! जिसके बायें नेत्र में से अकस्मात् अश्रुपात होने लगें और मस्तक से धुआं निकले वह शीघ्र मरने का लक्षण है, ज्ञानी मनुष्य इतने मरने के लक्षण जानकर दिन और रात आत्मा को परमात्मा में मिलावे, जिस समय कि मरण होगा उस काल की बाट देखनेवाला अपने मरण को अप्रिय जाने उस दशा में इस कर्म को करना चाहिये, पूर्वोक्त रीति से पृथ्वी आदि के विजय करने के द्वारा उनके गन्धादि विषय भी जीते जाते हैं और पांचों तत्त्वों के विजय करने से मृत्यु को भी विजय करता है इसको कहते हैं—हे राजन्! सब गन्ध और रसों को धारण करे अर्थात् आत्मा के रूप समान करे वह नरोत्तम सांख्य और योग से प्रशंसनीय ज्ञानी पुरुष योग और उस योग में प्रवृत्त अन्तरात्मा के द्वारा संसारी मृत्यु को जीतता है, और उस पूर्ण अविनाशी अजन्मा आनन्दस्वरूप न्यूनतादि आवागमन और रूपांतर दशा से रहित को प्राप्त होकर उसके ज्ञान से उसकी एकता प्राप्त करे जोकि भ्रष्ट अन्तःकरणवाले पुरुषों से करना कठिन है ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे त्रिचत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

एकसौ चवालीस का अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि बोले कि, हे राजन्! अचलहोने के कारण ब्रह्म और प्रकृति की पृथक्ता सिद्ध करने को याज्ञवल्क्य ऋषि बोले-तुम अव्यक्त में नियत जो परब्रह्म है उसको और अपने पूछे हुए गुप्त प्रश्न को सावधानी से श्रवण करो ब्रह्मविद्या की कठिनता से प्राप्ति और गुप्तता देवता की प्रसन्नता से होती है इसको कहते हैं हे नरोत्तम! जिसप्रकार इस संसार में मैंने आर्षबुद्धि में प्रवृत्त होकर बड़ी नम्रता से यजुर्वेद की ऋचाओं को सूर्यनारायण से प्राप्त किया हे निष्पाप! मैंने बड़ी तपस्या से उस ज्योतिरूप संसार के प्रकाशक देवता को सेवन किया था तब उसने प्रसन्न होकर मुझको आज्ञा दी कि हे ब्रह्मर्षे! तुम वह वर मांगो जो तुम्हारा अभीष्ट और कठिनता से प्राप्त होनेवाला है मैं प्रसन्न चित्त होकर वह वर तुम को दूंगा मेरा प्रसन्न करना बड़ा कठिन है तब मैंने शिर से साष्टांग दण्डवत् करके उस सर्वप्रकाशक सूर्य देवता से प्रार्थना करी कि यजुर्वेद की उन ऋचाओं को जोकि अन्य मनुष्यों को अप्राप्त हैं शीघ्रही जानना चाहता हूं तदनन्तर षडैश्वर्य के स्वामी सूर्य देवता ने मुझ से कहा कि हे ब्राह्मण! मैं तुझको दूंगा और यहां वचनरूप सरस्वती तेरे शरीर में प्रवेश करेगी, फिर आज्ञा दी कि अपना मुख फाड़ो जभी मैंने मुख को फाड़ा उसी समय सरस्वतीजी उसमें प्रवेश करगईं, इसके अनन्तर मैं अत्यन्त तप्त महात्मा सूर्यनारायण के तेज को न सहकर जल में घुसगया फिर मुझको अत्यन्त सन्तप्त समझ कर भगवान् सूर्य्य ने कहा कि एक मुहूर्तमात्र शरीर के ताप को सहो फिर तेरा शरीर शीतल होजायगा, सूर्य्यनारायण ने जब मुझ को ताप से रहित देखा तब प्रसन्नता से कहा कि हे ब्राह्मण! तेरा वेद उपनिषदों समेत बड़ी प्रतिष्ठा को पावेगा और शतपथ नाम ब्राह्मण को प्रकट करेगा तदनन्तर तेरी बुद्धि मोक्ष में नियत होगी, सांख्ययोग में जो अभीष्टपद है उस को भी प्राप्त करेगा इतना कहकर वह सूर्यरूप परमेश्वर अन्तर्द्धान होगये, फिर मैंने अत्यन्त प्रसन्नता से घर में आकर सरस्वती को ध्यान किया इसके अनन्तर स्वर और व्यंजन वर्णों से विभूषित प्रणवको सन्मुखकरके देवी सरस्वती जी मेरे मुख से प्रकट हुईं फिर देवता में प्रवृत्त चित्त होकर मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार सरस्वती और सूर्यदेवता को ध्यान किया फिर तब उत्साह से सम्पूर्ण शतपथ रहस्य संयुक्त मैंने संग्रह किया तात्पर्य यह है कि सरस्वती के मुख में

प्रशेव करने से और सूर्य देवता की कृपा से वह प्राचीन शतपथ आप से आप प्रकट हो गया और मेरे १०० सौ शिष्य उनको पढ़ कर विद्वान् हो गये फिर जैसे कि सूर्य अपनी किरणों से घिरा होता है उसी प्रकार शिष्यों से घिरे हुए मैंने अपने मामा महात्मा वैशम्पायन और उनके शिष्योंका अप्रिय करने को तेरे महात्मा पिताका यज्ञ व्याप्त किया, उसके पीछे धनके निमित्त मामा आदि से बड़ा विवाद होने पर अपने मामा के पक्षवाले देवल ऋषि के देखते हुए मैंने अपनी वेद दक्षिणा का आधा भाग प्राप्त किया फिर जैमिनि आदि ऋषियों से भी मैं स्तुति के योग्य हुआ, हे राजन्! मैंने तो सूर्य देवता से यजुर्वेद की पन्द्रह ऋचा प्राप्त कीं और लोमहर्षऋषि ने उन्हीं सूर्यदेवता से पुराणों को पढ़ा, फिर मैं बीजरूप प्रणव और देवी सरस्वती को सन्मुख करके सूर्यनारायण के अनुभाव से शतपथ के करने में प्रवृत्त हुआ और मैंने बड़े परिश्रम से अनुपम शतपथ नाम ब्राह्मण प्रकट किया और शिष्यों की जैसी अभिरुचि थी उसी के समान सम्पूर्ण ज्ञान सिखलाया और शिष्यलोग बाहर भीतर से पवित्र अत्यन्त प्रसन्न चित्त हो अपने २ आश्रमों को चले गये सूर्य की दी हुई इन पन्द्रह शाखा नाम विद्या को प्रतिष्ठा देकर इच्छानुसार उस जानने के योग्य ब्रह्म का विचार करे, इस लोक में ब्राह्मण को कौन वस्तु हितकारी और कौन सी जानने के योग्य सत्य और श्रेष्ठतर हैं इस बात को मैं विचार ही रहा था कि एक गन्धर्व ने वहां आकर मुझ से प्रश्न किया फिर वेदान्त ज्ञान में पण्डित विश्वावसु गन्धर्व ने आकर वेद के चौबीस प्रश्नों को पूछा और युक्ति विचार सम्बन्धी पच्चीसवें प्रश्न को भी गन्धर्वों ने मुझ से पूछा और विश्व, अविश्व, श्वा, अश्व, मित्र, वरुण, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञ, अज्ञ, कः, तपा, अतपा, सूर्याद, सूर्य, विद्या, अविद्या, वेद्य, अवेद्य, अचल, चल, अपूर्व, अक्षय, क्षय यह उत्तम चौबीस प्रश्न पूछे, इस के अनन्तर मुझ से आज्ञा लेकर उन गन्धर्वों में श्रेष्ठ गन्धर्वों के राजा ने अर्थयुक्त उत्तम प्रश्नों को क्रम से पूछना प्रारम्भ किया, तब मैंने कहा कि मैं एक मुहूर्त तक विचारांश करता हूं तबतक आप ठहरिये यह सुन कर वह गन्धर्व मौन हो गया तब मैंने भगवती सरस्वतीको स्मरणकिया भगवतीकी कृपा से वह प्रश्न मेरे चित्त के ऊपर ऐसे आगया जैसे कि दही पर घृत आजाता है हे तात, जनक! मैंने उस स्थान पर सरस्वती की कृपा से दीखनेवाली युक्ति को देखकर वेद और उपनिषदों

के दृष्टान्तों को मनही मन में मथन किया हे नरोत्तम ! यह विद्या जो मैंने तुझसे वर्णन की है और तत्त्ववाले देह के अधिकार में नियत है वह दण्ड नीति और मोक्ष से सम्बन्ध रखनेवाली है फिर मैंने राजा विश्वावसु से कहा कि हे गन्धर्वों के इन्द्र ! जो तुम विश्व और अविश्व नाम प्रश्न को पूछते हो तो इस विश्व को प्रधान अज्ञानरूप अव्यक्त नाम जानो यही इस संसार का उत्पन्न करनेवाला है और अपने कर्त्तापने के गुण से तीनगुणों को धारण करता है इसीप्रकार का अविश्व अर्थात् आत्मा भी अंगों के त्रिभागों से पृथक् है ऐसेही अश्वा और अश्व का भी जोड़ा दृष्ट आता है अर्थात् प्रकृति अश्वा और उस का मानना अश्व है, स्त्रीरूप प्रकृति को अव्यक्त कहते हैं और वीर्य डालने वाले पुरुष को निर्गुण कहते हैं अर्थात् प्रकृति पुरुष के प्रतिबिम्ब को पाकर सृष्टि को उत्पन्न करती है इससे अन्य दूसरा शुद्ध ब्रह्म है इसीप्रकार पुरुष को मित्र और प्रकृति को वरुण कहने हैं, ज्ञान को प्रकृति और ज्ञेय को शब्द ब्रह्म इसकारण से जीव और ईश्वरनाम रखनेवाला अकेला पुरुष शुद्ध ब्रह्म ही कहाजाता है और (क) वा तपा, अतपा नाम जो कहा यह आनन्दपुरुष कहाजाता है इनमें तपा को प्रकृति अतपा को शुद्धब्रह्म कहने हैं, तात्पर्य यह है कि जीव तो कार्य की उपाधि है और ईश्वर कारण की उपाधि है उपाधि के दूर होने पर वह दोनों शुद्धब्रह्म हैं, अवेद्य अर्थात् न जानने के योग्य को अव्यक्त और वेद्य अर्थात् जानने के योग्य को पुरुष कहते हैं और जो चल वा अचल है उसको भी कहता हूं अर्थात् अज्ञान के दूर होने से केवल ब्रह्म जानने के योग्य है उपासना के योग्य नहीं है और अव्यक्त तुच्छता से जानने के अयोग्य है जैसे कि रस्सी को सर्प मानना है वहां उसको सर्प न मानें किन्तु रस्सीही मानें, उत्पत्ति नाश के कारण रूपान्तर होनेवाली प्रकृति को चल कहा और उसकी उत्पत्ति और लय का करनेवाला अचलपुरुष कहाजाता है अर्थात् सदैव एक दशा में रहता है और उसी के आभास से प्रकृति का होना है, इसी से अव्यक्त को प्रकट होने से जानने के योग्य कहा और पुरुष को गुप्त होने से न जानने के योग्य वर्णन किया दोनों अज्ञान हैं अर्थात् प्रकृति जड़ है और पुरुष प्रकृति के मिलने से अपने मुख्यरूप ब्रह्म को नहीं जानता है दोनों आदिरहित अविनाशी हैं अर्थात् द्वैतदशा में तो अवश्य विनाशी हैं परन्तु अज्ञान रहित होने में केवल शुद्धब्रह्म है, अध्यात्मगति के निश्चय से दोनों को

अजन्मा वर्णन करते हैं, वेदोक्त बीसप्रश्नों का उत्तर वेदकी ही रीति से देकर अब तर्कणा से उत्पन्न प्रश्नों के उत्तर को तर्क बल से ही देते हैं—यहां बहुतरूप से प्रकट होने पर भी न्यूनता न होने से उस अजन्मा को न्यूनता रहित वर्णन किया और उस अष्टपुरी में निवास करनेवाले को अविनाशी कहा क्योंकि उसका नाश वर्त्तमान नहीं है, भोग ऐश्वर्यादि गुण विनाशवान् हैं और माया को उत्पन्न करने से प्रकृतिनाम है कर्मउपासना ज्ञान से वारंवार उत्पन्न होनेवाले भोग ऐश्वर्य को अविनाशी कहा क्योंकि वह तीनों भोग पृथ्वी पर नहीं हैं इसी कारण अप्राकृत लोकों में भोगों की अविनाशिता योग्य नहीं है और कर्मभूमि में सिद्ध होनेवाले भोगों का अवश्य विनाशहै और भोगभूमि में अनुष्ठान नहीं होता है यह सब ज्ञानी लोगों का कथन है और जिसमें युक्ति विचार उत्तम है यह मोक्षसम्बन्धी चौथी विद्या तुमसे कही, इस चौथी विद्या से मिलेहुए धनको श्रवण मनन करके गुरुके द्वारा नित्यकर्ममें प्रवृत्त होना योग्य है हे विश्वावसो! सब वेदकर्म नित्य हैं और ईश्वर के प्रत्यक्ष करनेवाले हैं हे गन्धर्वराज! यह आकाशादि जिस अधिष्ठान में उत्पन्न और लय होते हैं उस जानने योग्य वेद से सिद्ध होनेवाले आत्मा को जिस हेतु से नहीं जानते हैं उसी हेतु से सब नाश को पाते हैं, जो पुरुष वेदों को अंग उपांग समेत भी पढ़ता है, और वेद से जानने योग्य ब्रह्म को नहीं जानता है वह वेदों का भार उठानेवाला है, हे गन्धर्व! जो घृत का चाहनेवाला गधी के दूध को बिलोवे वह उसमें मठा और घी नहीं पाता है किन्तु मठारूप विष्ठा को देखता है, इसीप्रकार जो वेद का जाननेवाला पुरुष जानने के योग्य ब्रह्म और न जानने के योग्य प्रकृति को नहीं जानता है वह अज्ञानी केवल ज्ञान का बोझा उठानेवाला है, उनमें प्रवृत्त अन्तरात्मा समेत यह दोनों माया और ब्रह्म सदैव देखने के योग्य हैं जिससे कि वारंवार जन्म मृत्युसे बचे, इस संसार में वारंवार होनेवाले जन्म मृत्यु को विचार करके और इस कर्मकाण्ड के लिखेहुए कर्म धर्म को त्यागकर मैं अविनाशी योगधर्म में प्रवृत्तहुआ, हे काश्यपगोत्रीय! जब यह त्वंपदार्थ प्रतिदिन आत्मा को देखता है तब वह शुद्ध होकर अर्थात् अविद्या को त्यागकरके छब्बीसवें तत्पदार्थ को साक्षात्कार करता है, अब "तत्त्वमसि" महावाक्य के अर्थ को वर्णन करते हैं—जैसे दृष्टि से गुप्त ईश्वर दूसरा है उसी प्रकार पच्चीसवां जीवात्मा भी दूसरा है अज्ञानी उस परमात्मा के दोनों रूपों को देखते हैं और

वेदान्तनिष्ठ सांख्यमतवाले साधुलोग उस एकही को देखते हैं और जन्म मृत्यु के भय से व्याकुल होकर मोक्ष की इच्छा करनेवाले ज्ञानीपुरुष इस जीव ईश्वर के भेद को नहीं मानते हैं, विश्वावसु बोले कि हे ब्राह्मणोंमें उत्तम ! तुमने जो पचीसवें का सिद्धान्त अच्युतरूप होना वर्णन किया वह उसीप्रकार का है वा नहीं है इसको वर्णन कीजिये, मैंने महात्मा ब्रह्मऋषि पराशर जी, जैगीषव्य, असित, देवल और वार्षगण्य के मुख से सुना है और महात्मा पञ्चशिख, कपिल, शुक्र, गौतम, अर्ष्टिषेण और गर्गजीके मुखसेभी सुनाहै, फिर महात्मा बुद्धिमान् नारद, आसुरी, पुलस्त्य, सनत्कुमार और शुक्र जी से श्रवण किया परन्तु सबसे पहले मैंने अपने पिता कश्यपजी से सुना था तदनन्तर विश्वरूप रुद्रजी के मुख से सुना इसके विशेष मैंने जहां तहां देवता, पितर, राक्षसों से भी इस सम्पूर्ण ब्रह्मविद्या को पाया इसी को जानने के योग्य और प्राचीन कहते हैं, हे ब्राह्मण ! इसीकारण उसको मैं आपकी बुद्धिसे सुनाचाहताहूं आप शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ वक्ता और सर्वज्ञ हैं और वेद के भंडार हैं आपको देवलोक, पितरलोक में भी वेद का ख़ज़ाना कहते हैं, ब्रह्मलोक के महर्षि और संसार के प्रकाश करनेवाले सूर्य्यनारायण भी वारंवार आपकी प्रशंसा करते हैं, हे याज्ञवल्क्यजी ! आपने सम्पूर्ण सांख्यज्ञान और योगशास्त्र को प्राप्त किया है, आप सब स्थावर जंगम व जीवमात्रों के ज्ञाता होकर पूर्ण बुद्धिमान् हो आप उस ज्ञान को सुनाइये जोकि घृतयुक्त मट्ठे के समान स्वादिष्ठ है, याज्ञवल्क्य बोले कि हे गन्धर्व ! मैं भी तुमको सर्वज्ञ मानता हूं तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते हो उसको आप शास्त्र के अनुसार सुनो, हे गन्धर्व ! पचीसवां अर्थात् चिदाभास जीव प्रकृति को जड़रूप जानता है परन्तु वह प्रकृति पचीसवें जीवात्मा को नहीं जानती है तात्पर्य्य यह है कि जड़रूप प्रकृति पुरुष से ही प्रकाशित होती है प्रकृति से पुरुष नहीं प्रकाशित होता है इस कहने से जीवही शुद्धचैतन्य वर्णन होता है, तत्त्वज्ञयोगी और सांख्यमतवाले पुरुष इस प्रकृति में चैतन्य के प्रतिबिम्ब होने से इस प्रकृति को वेद के दृष्टान्तों के द्वारा प्रधान कहते हैं, तात्पर्य्य यह है कि चैतन्य के प्रतिबिम्ब से संयुक्त बुद्धिही अहंप्रत्यय का विषय होती है, जो चिदाभास से दूसरा साक्षी है वह पचीसवें चिदाभास और चौबीसवीं प्रकृति को विकारों से संयुक्त देखता है और निर्विकल्प समाधि में अद्रष्टा होकर भी छब्बीसवें को देखता है तात्पर्य्य यह है कि जो साक्षी है वही दृष्टि से

मिलकर पचीसवां होताहै और दृष्टिसे पृथक् होकर छब्बीसवां है और जिसको देखता है वह दीखता हुआ भी नहीं देखता है, पचीसवां जीवात्मा यह माने कि मुझ से बढ़कर कोई दूसरा नहीं है परन्तु ज्ञानी मनुष्यों को चौबीसवां प्रकृतिरूप तत्त्व आत्मभाव से जानने के योग्य नहीं है क्योंकि वह अनात्मा है, मछली जल में प्रवेश करती है और उसमें निवास और चेष्टा करने को प्रवृत्त होकर जब उस को यह ज्ञान होय कि मैं जल से पृथक् हूं इसीप्रकार यह जीवात्मा भी ज्ञानी होजाता है, जब जीवात्मा समय की लौट पौट से छब्बीसवें परमात्मा के साथ अपनी एकता को नहीं जानता है तब वह सदैव की प्रीति और साथ के निवास करने से और अपने अभिमान से उस प्रकृति में संयुक्त होजाता है और किसी समय पर ब्रह्मभाव से शुद्धरूप होनेवाला उसप्रकृति से जुदा भी होजाता है, हे ब्राह्मण ! जब यह अपने को चिदात्मा मानता है और यह अहंकारादिक अनात्मरूप दूसरे हैं तब अविद्यारहित शुद्धरूप होकर छब्बीसवें को साक्षात्कार करता है, हे राजन् ! छब्बीसवां और पचीसवां यह दोनों अन्य २ हैं साधुलोग अज्ञान के नाश से केवल छब्बीसवें ही चिदात्मा को अनुभव कहते हैं, इसी कारण से जन्म मरण से निर्भय योगी और वह सांख्यमतवाले पुरुष इस जीव और ईश्वर के विभाग को नहीं मानते हैं, जोकि छब्बीसवें परमात्मा को अनुभव करनेवाले पवित्र और परमात्मा में तदाकार होरहे हैं जब अविद्या आदि से पृथक् शुद्धरूप होकर छब्बीसवें को अनुभव करते हैं तब वह सर्वज्ञ ज्ञानीपुरुष पुनर्जन्म को नहीं पाते हैं, हे निष्पाप ! यह मैंने माया जीव और ईश्वर वेद के निश्चय संयुक्त मुख्यता से वर्णन किये, हे काश्यप ! जो पुरुष निर्विकल्प समाधि से दृश्य और अदृश्य को और केवल अकेवल को और दृश्यादृश्य की अन्यता को नहीं देखता वही शुद्धब्रह्म है वही साक्षी वही पचीसवां चिदाभास और वही जगत् का कारण है और जो कार्यरूप महत्तत्त्वादिक हैं वह भी वही हैं इसकी साक्षी वेद की श्रुति है अर्थात् जो यह जानता है कि मैं ब्रह्म हूं वही यह सब होजाता है ब्रह्म शब्द से पूर्णब्रह्म और सर्व शब्द से शुद्ध और साक्षी आदि जानना योग्य है, विश्वावसु बोले कि हे प्रभो ! आपने यह मोक्ष के उपकारी शुभ और सत्य वचन से ब्रह्मका अच्छेप्रकार से यथार्थ वर्णन किया आप का सदैव कल्याण हो और आपका मन भी सदैव बुद्धि से

नियत हो, याज्ञवल्क्य बोले कि शोभायमान दर्शन से दिखाई देनेवाला वह महात्मा गन्धर्व बड़ी प्रसन्नता से यह कहता हुआ आशीर्वाद देकर मेरी परिक्रमा करके प्रकाश करता हुआ स्वर्ग को चलागया, हे नरेन्द्र! पृथ्वी और पाताल में जो निवास करते हैं और जो ब्रह्मा आदि आकाशचारी देवताओं के लोक और कल्याणरूप मार्ग में वर्त्तमान हैं वहां ही उनको इस शास्त्र का ज्ञान देने को उस गन्धर्व ने निवास किया, जैसे सब सांख्यमतवाले लोग सांख्यधर्म में प्रवृत्त हैं उसीप्रकार योगी लोग भी धर्म्म में प्रीति करनेवाले हैं और जो कोई अन्य लोग भी मोक्ष के आकांक्षी हैं उन्हीं के ही निमित्त यह शास्त्र प्रत्यक्ष फल का देनेवाला है, हे राजेन्द्र! ज्ञान से ही मोक्ष उत्पन्न होती है अज्ञान से कभी नहीं होती इस कारण ज्ञानही को मुख्यता समेत निश्चय करना योग्य है ज्ञानही से आत्मा जन्म मृत्यु से रहित होता है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कोई नीच भी हो उससे भी ज्ञान के लेने में श्रद्धा करनी चाहिये श्रद्धावान् को जन्म मृत्यु नहीं होती है, सब वर्ण ब्रह्मा से उत्पन्न ब्राह्मण हैं जो सदैव ब्रह्म को ही कहते हैं मैं ब्रह्मबुद्धि से तत्त्वशास्त्र को कहता हूं कि यह सम्पूर्ण स्थावर जंगम संसार ब्रह्मही है, ब्रह्माजी के मुख से ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्रिय जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्र किसी वर्ण को भेद दृष्टि से न जानना चाहिये, हे राजन्! अज्ञान के द्वारा कर्म से उत्पन्न होनेवाली उस-उस योनि को सेवन करते हैं और वह जैसे नाश को पाते हैं उसी प्रकार ज्ञान से रहित सब वर्ण महाअज्ञान से अनेक योनियों में गिरते हैं, इसी कारण सब प्रकार से सब से ज्ञान लेना योग्य है मैंने सब वर्णों में वर्त्तमान यह ज्ञान पदार्थ तुम से वर्णन किया जो ज्ञाननिष्ठ है वही ब्राह्मण है और जो क्षत्रिय आदि भी ज्ञान में प्रवृत्त हो उसके लिये भी यही मोक्ष मार्ग है, जो तुम ने पूछा उस को मैंने यथातथ्य वर्णन किया इस से अब तुम निर्भय होजाओ तुम अपने अभीष्ट को पाओगे तेरा कल्याण हो, भीष्मजी बोले कि इस प्रकार से याज्ञवल्क्यजी से उपदेश पाकर वह बुद्धिमान् राजा जनक बड़ा प्रसन्नहुआ और इनकी परिक्रमा की तदनन्तर उनको बड़े सत्कारपूर्वक चले जाने के पीछे ध्यान में प्रवृत्त होकर बड़ी श्रद्धा के साथ राजा जनक ने एक कोटि गोदान और अप्रमाण सुवर्ण और अनेक रत्नों का दान ब्राह्मणों को दिया विदेह देश के राज्य को अपने पुत्र को सुपुर्द करके संन्यास धर्म में

उपस्थितहुआ, हे राजन्, युधिष्ठिर! अविद्यासम्बन्धीधर्म और अधर्मकी निन्दा करता हुआ वह राजा जनक संपूर्ण सांख्य ज्ञान और योग शास्त्र का ज्ञाता हुआ, मैं अनन्त हूं यह मन में निश्चय करके और धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, सत्य, मिथ्या, जन्म, मृत्यु आदि को अविद्या से संयुक्त जान कर सदैव शुद्ध ब्रह्म के ही ध्यान में तत्पर होगया, हे राजन् ! अपने शास्त्रोक्त लक्षण रखने वाले योगी और सांख्य मतवाले सदैव देखते हैं कि यह धर्म आदि बुद्धि और अज्ञान का कर्म है ज्ञानियों ने सदैव उस ब्रह्म को अप्रियतारहित बड़े से बड़ा पवित्र और अचल वर्णन किया है इस कारण से तुम भी पवित्र होजाओ, हे राजन्! जो दिया जाता है वा जो पाता है और जो मानता है कि मैंने दिया अथवा जो लेता है वा देता है वह सब आत्मा ही है, निश्चय करके देने लेने वाला वही ईश्वरात्मा है उस आत्मा से उत्तम कोई नहीं है, उस पण्डित बुद्धिमान् को तीर्थ और यज्ञ साधन करना उचित है हे कौरवनन्दन! वेदपाठ, जप, तप, यज्ञ आदि से ज्योतिरूप स्थान को नहीं पाता है वह अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके प्रतिष्ठा को पाता है इसी प्रकार महत्तत्त्व और अहंकार में नियत होकर देवताओं के लोकों को और अहंकार से ऊपर के स्थानों को भी प्राप्त करे, अर्थात् जिस २ की उपासना करता है उस २ के रूप को प्राप्त करता है और जो शास्त्र का जाननेवाला ज्ञानी अव्यक्त से ऊंचे और सदैव एकदशा रखनेवाले जन्म मृत्यु से रहित सत्य मिथ्या से पृथक् ब्रह्म को जानते हैं वह ब्रह्मभाव को पाते हैं, हे राजन् ! मैंने इस ज्ञान को जनक से प्राप्त किया है और जनक ने याज्ञवल्क्य ऋषि से पाया था इससे यह ज्ञान ऐसा बड़ा उत्तम है कि इसके समान कोई यज्ञ नहीं ज्ञान के ही द्वारा दुर्गमस्थानों से पार होता है और यज्ञों के द्वारा पार नहीं होसक्ता इसी ज्ञान से दुस्तर जन्म मृत्यु के दुःख से भी पार होता है ज्ञानी पुरुष ब्रह्म को माया से जुदा कहते हैं जो पुरुष ज्ञानमार्ग में नियत नहीं है वह यज्ञ, तप, नियम और व्रतों के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त होकर फिर पृथ्वी में गिर कर जन्म को पाते हैं, इस कारण तुम उस महापवित्र ब्रह्म की उपासना करो जोकि कल्याणरूप निर्मल विमुक्त और पवित्र है तुम क्षत्रिय शरीर को जान कर ज्ञानयज्ञ और तत्त्वों की उपासना करके ऋषि हो जाओगे, राजा जनक के पुरोहित इन याज्ञवल्क्यजी ने उपनिषद् बुद्धि के अनुसार जो पाया जिसको कि न्यूनतारहित सनातन ब्रह्म वर्णन

करते हैं वही शोक सन्ताप से रहित जीवन्मुक्ति को देता है ॥ ११२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽचतुश्चत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

एकसौ पैंतालीस का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, यह ब्रह्मविद्या श्रुति और युक्तिप्रधान है अब साधनप्रधान ब्रह्मविद्या का वर्णन करते हैं अर्थात् अपने धर्म आचरण के साथ निवृत्तमार्ग में प्रवृत्त पुरुष जरा मरण को उल्लंघन करता है इस अध्याय के इस प्रयोजन को समझ कर–युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ, पितामह! बड़े २ धनादि ऐश्वर्य और पूर्ण अवस्था को पाकर कैसे मृत्यु को जीते और कौन सी बड़ी २ तपस्या कर्म शास्त्र और बड़ी २ युक्तियों के अभ्यास से जरा मरण को नहीं पाता है, भीष्मजी बोले कि, इस स्थान पर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में पञ्चशिख संन्यासी और राजा जनक का प्रश्नोत्तर है, विदेह देश के स्वामी राजा जनक ने वेदज्ञों में श्रेष्ठ पञ्चशिख नाम संन्यासी जिसका कि धर्म अर्थ से संदेह मिट गया था उससे पूछा कि, हे भगवन्! कौन से तप बुद्धि कर्म अथवा शास्त्र से जरा मरण को जीते यह बात सुनकर उस अपरोक्ष ज्ञानी ने राजा को उत्तर दिया कि देह को किसी दशा में भी जरा मरण से पृथक्ता और अपृथक्ता नहीं है अर्थात् योग के द्वारा उससे पृथक्ता होसक्ती है, महीने दिन और रात लौट कर नहीं आते हैं और यह विनाशवान् जीवात्मा बहुत काल में अपने अचल मार्ग को पाता है, सब जीवों का नाश सदैव होता है मानों नदी के प्रवाह से एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाया जाता है कोई मनुष्य इस बे नौका और जरा मरणरूप ग्राह से व्यास कालसागर में बहनेवाले वा डूबनेवाले पुरुष को नहीं पाता है न इसका कोई है न यह किसी का है, स्त्री और बांधव आदि का मिलाप मार्ग में है इस निवास को पहले भी किसी ने सदैव नहीं किया न करता है न करेगा, वारंवार मृत्यु पानेवाले देह को उसके ऐसे २ हितकारी बांधव लोग श्मशान भूमि में ऐसे डाल जाते हैं जैसे कि काल से वायु के द्वारा बादलों के समूह इधर से उधर को फेंके जाते हैं, यह जरा मरण भेड़ियों के समान सब छोटे बड़े जीवों के भक्षण करनेवाले हैं, सदैव रहनेवाला भूतात्मा उत्पन्न होनेवाले और सदैव न रहनेवाले माया के जीवों में कैसे प्रसन्न होय और मृत्यु पानेवालों में कष्ट न पावे, मैं कहां से आया और कौन हूं किस का हूं किस में नियत हूं कहां

जाऊंगा किस कारण से किसको शोचता हुआ किस स्थान में रहूंगा, स्वर्ग और नरक का देखनेवाला कौन है इत्यादि बातें स्मरण करके शास्त्र की रीति से दानयज्ञादिक को करे ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे पञ्चचत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

एकसौ छियालीस का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे कौरवेन्द्र, पितामह ! किस पुरुष ने गृहस्थाश्रम के विना त्यागे हुए बुद्धि के लयस्थान मोक्षतत्त्व को पाया है और जैसे इस स्थूल और कारण शरीर को त्यागते हैं और मोक्ष का जो परमतत्त्व है इन सब बातों को मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर ! इस स्थान पर भी एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें राजा जनक और सुलभा नाम संन्यासिनी का प्रश्नोत्तर है, पूर्व समय में कोई मिथिला का जनक नाम बड़ा धर्मध्वज राजा संन्यास धर्म के फल का बड़ा ज्ञाता होता हुआ, वेद मोक्ष शास्त्र और अपने शास्त्र दण्ड नीति आदि में कुशल होकर उस राजा ने इन्द्रियों को समाधान करके इस पृथ्वीपर राज्य किया, और संसार के वेदज्ञ ज्ञानी पुरुष उस की साधुवृत्ति को सुनकर उसके मिलने की इच्छा करते थे, उस धर्मयज्ञ में योगधर्म का अनुष्ठान करनेवाली सुलभा नाम संन्यासिनी अकेली पृथ्वी पर घूमा करती थी उसने दैवयोग से कई त्रिदण्डी और और संन्यासियों से श्रवण किया कि राजा जनक मोक्षमार्ग का बड़ा ज्ञाता है यह जानकर इसने अपने अनेक संदेह निवृत्त करने के लिये राजा जनक से मिलने की इच्छा की और अपने योगबल से पूर्वरूप को त्याग कर दूसरे ऐसे उत्तम रूप को धारण किया जिसके कमल के समान नेत्र सुन्दर भृकुटी महा तीव्रगामी स्वरूपा मोहनी रूप धारण किये हुए क्षण भर में राजा जनक की राजधानी में पहुँची और वहां उसने क्रीड़ा के योग्य बहुत से मनुष्यों से भरी हुई मिथिलापुरी को देख कर भिक्षुकी होकर राजा जनक को जाकर देखा तब राजा ने भी उसके उत्तम रूप को देखकर आश्चर्य किया कि यह कौन किसकी स्त्री और कहां से आई है तदनन्तर उसको क्षेम कुशल पूछ चरण धोकर उत्तम आसन पर बैठाय उत्तम अन्न से तृप्त किया फिर भोजन से निवृत्त होकर बड़े प्रसन्न चित्त से उस संन्यासिनी ने सूत्रार्थ के ज्ञाताओं के और मन्त्रियों के मध्यवर्ती होकर मोक्ष धर्मों में अन्य लोगों का तिरस्कार करके राजा से प्रश्न किया कि यह राजा

मुक्त नहीं है ऐसा संदेह करनेवाली सुलभा ने योगबल से अपनी बुद्धि को राजा की बुद्धि में प्रविष्ट किया अपने नेत्रों के प्रकाश से उसकी आंखों के प्रकाश को रोका फिर उस प्रश्न करनेवाली भिक्षुकी ने योग के बल से रसना और चित्त के द्वारा राजा को बांधा अर्थात् स्वाधीन कर लिया, तब तो राजा जनक ने भी उसके विचार को तुच्छ करके अपने चित्त से उसके चित्त को पकड़ लिया, उस समय एक ही कारण शरीर में नियत होने पर राज्य के छत्रादि चिह्नों के प्राप्त होने पर भी विमुक्त राजा के और त्रिदण्ड नाम संन्यास आश्रम में प्रवृत्त उस संन्यासिनी के प्रश्नोत्तरों को सुनो, राजा जनक बोले कि हे सुभद्रे! भगवती की योगचर्या तुमने कहां से सीखी कहां जाओगी किसकी हो और कहां से आई हो आपके रूप में साधुभाव नहीं विदित होता है इस कारण मेरे मिलने में तुमको इन बातों का उत्तर देना उचित है मुझको राज्य के छत्र चामरादि चिह्न युक्त होने पर भी मुख्यता से मुक्त ही जानो सो मैं भी तुमको जानना चाहता हूं आपको प्रतिष्ठा के योग्य मैं समझता हूं और मैंने पहले समय में मोक्षमार्ग के अद्वितीय जाननेवाले महात्मा जिस गुरु से यह वैशेषिक ज्ञान प्राप्त किया है उसको भी सुनो, मैं पराशर गोत्री बड़े महात्मा वृद्ध पञ्चशिख नाम संन्यासी का कृपापात्र शिष्य हूं वह गुरु महाराज सांख्य ज्ञान योग और राजबुद्धि कर्म उपासना ज्ञान इन तीनों प्रकार के मोक्षज्ञान धर्म मार्ग के ज्ञाता संदेहों से निवृत्त हैं, प्राचीन समय में शास्त्र में देखे हुए मार्ग में घूमते हुए वर्षा ऋतु के चार मास पर्यन्त मेरे समीप आनन्द से निवास करते हुए, उस सांख्यशास्त्र के मुख्य अर्थ के ज्ञाता गुरु महाराज ने तीन प्रकार का मोक्षधर्म मुझको सुनाया और इस राज्य से पृथक् भी नहीं किया सो मैं उस श्रेष्ठ पद पर नियत वैराग्यवान् अकेला होकर उस मोक्षकी उपकारी तीनों प्रकार की वृत्तियों को करता हूं इस मोक्ष का मुख्य उपाय वैराग्य है और वैराग्य ज्ञान से उत्पन्न होता है उसी से मुक्त होता है, ज्ञान से चैतन्य होकर पुरुष योगाभ्यास को करता है और योगाभ्यास से सर्वज्ञता को प्राप्त होता है वह सर्वज्ञता सुख दुःख आदि से निवृत्त होने के निमित्त है और सिद्धि वह है जो कि मृत्यु को जीतनेवाली है, यहां ही मोह से जुदे मुक्त संगी घूमते हुए गुरुजी से सुख दुःख आदि से पृथक्ता और उत्तम बुद्धि को मैंने पाया है, जिस प्रकार जुते हुए, जल के सींचे हुए खेत में बीज के द्वारा अंकुर उत्पन्न

होता है उसी प्रकार बीजरूप कर्म मनुष्यों के पुनर्जन्म को करता है जैसे कि भाड़ की बालू में भुना हुआ बीजरूप अन्न उत्पत्ति कारणरूप भी होकर बीज के गुणसे रहित होकर नहीं उपजताहै इसीप्रकार इन भगवान् पञ्चशिख संन्यासी गुरुजी ने मेरी बुद्धि को भी निर्बीज अर्थात् बीज वासना से रहित कर दिया है इसी से वह बुद्धि विषयों में नहीं लगती है किसी में प्रीति नहीं करती अनर्थ और स्त्री आदिक परिग्रह और रागद्वेष आदि को मिथ्या जानकर इन में प्रीति नहीं करती है, जो पुरुष मेरी दाहिनी भुजा को चन्दन से लेपन करे और बाईं भुजा को शस्त्र से काटे यह दोनों मेरी दृष्टि में समान हैं, इस प्रकार का होकर मैं मट्टी पाषाण के समान सुवर्ण को जानता हुआ मुक्त हूं और अन्य त्रिदण्डी नाम संन्यासियों से विलक्षण पाषाणरूप राज्य पर नियत हूं, अन्य मोक्ष के ज्ञाताओंने तीन प्रकारकी निष्ठा देखी है सब लोकों में कर्म, उपासना, ज्ञान और सब मानसी आदिक कर्म का त्यागनाही मोक्ष कहते हैं, और कोई मोक्ष शास्त्र के ज्ञाता केवल ज्ञाननिष्ठा को ही कहते हैं इसके विशेष दूसरे सूक्ष्मदर्शी यतीलोग केवल कर्मनिष्ठा को ही कहतेहैं इसीप्रकार अब चारों पक्षों को छोड़कर अपने मतको कहता हूं, ऊपर के दोनों श्लोकों के लिखेहुये दोनों सच्चे विकल्पों को भी त्याग करके केवल ज्ञान और दूसरे के उपकाररूप कर्म को ही उस महात्मा पञ्चशिख ने तीसरी निष्ठा वर्णन की है—इसी निष्ठा की प्रशंसा करते हैं—यम, नियम, काम, द्वेष, परिग्रह, मान, दम्भ आदि के होने से गृहस्थी संन्यासी के समानही त्रिदण्डी संन्यासी हैं अर्थात् यम आदिके होनेपर गृहस्थी भी संन्यासी के ही समानहै, और काम आदिके होनेपर संन्यासी भी गृहस्थी के समानहै, जो ज्ञानके द्वारा त्रिदण्डी आदिमें किसीकी मोक्षहै फिर छत्र आदि परिग्रह रखनेवालों में कैसे मोक्ष नहीं होसक्ती क्योंकि परिग्रह में दोनों समान हेतु रखनेवाले हैं, यहां विषयादिक कर्म में जिस २ से जिसका जो प्रयोजन है वह धन और स्त्री आदि अर्थ प्राप्त करने को उसी २ में प्रवृत्तचित्त होता है, गृहस्थाश्रम में दोष देखनेवाला जो पुरुष दूसरे आश्रम में जाता है वह त्याग और स्वीकार करनेवाला पुरुष भी संगदोष से निवृत्त नहीं होता है, इसीप्रकार शिष्य वा सेवक कृपा और दण्डरूप आज्ञा के समान होनेपर संन्यासी लोग राजाओं के समान हैं फिर वह कैसे मुक्त होते हैं, आज्ञा देनेवाला होनेपर भी उत्तम शरीर में नियत पुरुष ज्ञान के द्वारा सब पापों से छूट जातेहैं, फिर गेरुये

वस्त्रों का धारण करना कमण्डलु त्रिदण्ड आदि चिह्न भी केवल कुमार्गरूपही हैं मोक्ष के निमित्त नहीं हैं यह मेरी राय है, जो इन चिह्नों के होनेपर भी ज्ञान ही सुख का कारण है फिर यहां दुःख से अलग होना किस निमित्त है इससे केवल चिह्नों का होना निरर्थक है, अथवा चिह्नों में दुःख की अप्रबलता देख कर उसमें बुद्धि हुई है वह उन राज्य के छत्र आदि चिह्नों में क्या सदैव दृष्ट नहीं होते हैं केवल संसारी सामानों के ही त्यागने से मोक्ष नहीं होती है और न संसार के समान रहने से बन्धन होता है सब पुरुष संसारी सामान को त्यागें वा न त्यागें परन्तु उनकी मोक्ष सब दशा में ज्ञानही से होसक्ती है इसी कारण से धर्म, अर्थ, काम और राजपरिग्रह आदि बन्धनरूप स्थान में नियत होनेपर भी मुझको मोक्षपदवी में प्राप्तही जानो, मैंने यहां त्यागरूप खड्ग को मोक्षरूप पाषाण पर घिसकर उसकी तीक्ष्णधार से उस राज्यरूप ऐश्वर्य में चित्त की प्रीतिरूप फांसी को जो कि प्रीति के स्थान स्त्री धन आदि से बन्धन में डालती है काटडाला है, हे संन्यासिनि! इस दशावाला मुक्तरूप होकर मैं तुझ योगप्रभाव रखनेवाली को प्रतिष्ठा करनेवाला हूं तो भी योग के विरुद्ध त्रिगुण से उत्पन्न तेरे स्वरूप को मैं कहता हूं शरीर की कोमलतारूप उत्तम देह और तरुणावस्था यह सब तुझको प्राप्त हैं और यह योगाभ्यास रूप नियम भी सन्देहयुक्त है क्योंकि यह दोनों भिन्न २ दशा तुझ एक में कैसे हो सक्ती हैं, जैसे कि देह आदि के सूखे होने पर इस योगरूप की त्रिदण्ड धारणादि चेष्टा तेरे योग्य नहीं विदित होतीं और मेरे सभासद तैंने अपने उत्तम रूप के दिखाने से विपरीत दशा में करदिये इस हेतु से सन्देह है कि यह मुक्त हो या न हो, दूसरों के अनुग्रह चाहनेवाले योगी में संन्यास का फल नहीं होता है मेरे देह के सत्संग से यह आश्रम के चिह्न तुझसे रक्षा नहीं किये जाते हैं इन चिह्नों से योग के अधिकारपर चढ़कर उस करनेवाले की रक्षा नहीं है इसका दूसरा यह भी अर्थ है कि देह के कर्म से मुक्तपुरुष की रक्षा योग्य है, अपने मन से जो मेरे शरीर में तुझ आश्रय लेनेवाली ने अमर्यादा से प्रवेश किया है उसको भी सुनो, कुकर्मिणी स्त्री भी दूसरे के नगर वा स्थान में इंगितभाव से प्रवेश करती है वहां भी हमारा तिरस्कार करनेवाली तेराही अपराध है इसको कहता हूं—तुमने किस कारण से मेरे देश वा नगर में प्रवेश किया और तुमने किसके इशारे से मेरी देह में प्रवेश किया, उत्तम वर्णों में श्रेष्ठ तुम ब्राह्मण हो

और मैं क्षत्रिय हूं हम दोनों का योग सजातीय नहीं है तुम वर्णसंकर मत करो, तुम मोक्षधर्म से बर्त्ताव करती हो और मैं गृहस्थ आश्रम में हूं यह भी तेरी दूसरी बड़ी वर्णसंकरता है, मैं तुझको सगोत्रा या असगोत्रा नहीं जानता हूं और तू भी मुझको नहीं जानती है तुझ सगोत्र में प्रवेश करनेवाली का तीसरा गोत्र संकर है फिर तेरा पति जीवता है अथवा कहीं विदेश को गया है इससे भोग के अयोग्य दूसरे की भार्य्या है यह चौथा अधर्मसंकर है, तत्त्व का विज्ञान न होने से मिथ्या ज्ञान में युक्त प्रयोजन की चाहनेवाली तुम इन कर्मों को निश्चय करती हो, अथवा किसी समयपर अपने दोषों से स्वतन्त्र भी हो उस दशा में तुमने जो कुछ शास्त्र पढ़ा है वह सब निरर्थक है क्योंकि शास्त्र के अनुसार स्त्री कभी स्वतन्त्र नहीं है तुझ दूषित और भेद खोलनेवाली से प्रकट किया हुआ यह तीसरा चित्त का स्पर्शादि देखने में आता है, तुझ विजय चाहनेवाली ने विजय के निमित्त केवल मुझपरही इच्छा नहीं की किन्तु जो यह मेरी सम्पूर्ण सभा है उसको भी विजय करना चाहती है, इसीप्रकार तुमने मेरे पक्ष का नाश और अपने पक्ष की विजय के लिये अपनी दृष्टि को पूजन के योग्य पुरुषों पर डाली है सो तुम ईर्षा से उत्पन्न मोह की आधिक्यता से अज्ञान होकर फिर दूसरे की बुद्धि से अपनी बुद्धि के संयोग को इसप्रकार पैदा करती हो जैसे कि विष और अमृत का मेल होता है, इस लोक में मिलने वाले स्त्री वा पुरुष का जो योग है वह अमृत के समान है और जो मित्र का न मिलना अर्थात् बिना आज्ञा के मिलजाना है वह विष के ही समान है, अच्छा है सावधान होकर अपने संन्यासशास्त्र की रक्षा करो उसको मत त्यागो तुमने यह मेरी परीक्षा इस विचार से की थी कि यह मुक्त है वा नहीं है, यह सब बदला हुआ रूप आदि मुझसे गुप्त करना अयोग्य है, किसी दशा में भी राजा वा ब्राह्मण अथवा स्त्रियों में गुणयुक्त स्त्री से मिथ्या वचनों के द्वारा नहीं मिले जो मिथ्या वचनों के साथ मिलाप कियाजाय तो ऐसी दशा में यह तीनों उसको मारे हैं, राजाओं का बल ऐश्वर्य्य है, ब्रह्मज्ञानियों का बल ब्रह्म है और स्त्रियों का महाबलरूप यौवन और सौभाग्य है, इस कारण यह तीनों अपने-अपने बलों से पराक्रमी हैं, प्रयोजन चाहनेवाले मनुष्य को इन तीनों से सत्यतापूर्वक मिलना योग्य है क्योंकि इनसे कुटिलता करना नाशकारी है, सो तुम अपनी जाति, शास्त्र, आचरण, चित्त का विचार, स्वभाव और

यहां आने के प्रयोजन को मुख्यता समेत कहने के योग्य हो, भीष्मजी बोले कि, राजा के इन दुःखरूप अयोग्य और असभ्य वचनों से तिरस्कार पानेवाली वह सुलभा क्रोधयुक्त नहीं हुई और राजा की बातों के समाप्त होनेपर वह श्रेष्ठ रूपवाली सुलभा अत्यन्त उत्तम वचनों को बोली कि हे राजन् ! वचनों के दूषित करनेवाले कठोर आदि नौ दोष हैं और बुद्धि के दूषित करनेवाले काम आदि नौ दोष से पृथक् और वचन के मृदुता आदि नौ गुण और कामादि के विपरीत बुद्धि के नौ गुण से संयुक्त सौक्ष्म्य अर्थात् पद अर्थों से बिगड़ा हुआ सांख्य अर्थात् पूर्व्वपक्ष और सिद्धान्त में गुणागुण विचार, क्रम अर्थात् प्रत्यक्ष गुणदोषों में बलाबल विचारना, निर्णय अर्थात् सिद्धान्त, प्रयोजन अर्थात् अनुष्ठान यह पांचों जिसके अर्थ से सिद्ध होते हैं वह वचन कहा जाता है इन मेरे मुख से निकले हुए सौक्ष्म्यादि के प्रत्येक अर्थसम्बन्ध निजरूप को पद, वाक्य, पदार्थ, वाक्यार्थ इन भेदों से चार प्रकार का होना मुझ से सुनो जब जानने के योग्य अनेक प्रकार के वचनों में असंख्य संदेहों को स्पर्श करनेवाली और उसके ज्ञान करने में अयोग्य बुद्धि वर्त्तमान होती है वही सौक्ष्म्य है और किसी प्रयोजन को दृष्टि के गोचर करके दोष और गुणों का जो विभाग से परिमाण है वह सांख्य है यह पहले और यह पीछे कहना चाहिये यह जो कहने की इच्छा है उस वचन को वचनज्ञलोग कर्मयोग कहते हैं; अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष में पृथक् निश्चय को जानकर अर्थात् वचन के अन्त में युक्तिपूर्वक जो कहाजाता है कि यह वह है वही निर्णय है हे राजन् ! जिस विषय में इच्छा और अनिच्छा से उत्पन्न होनेवाले दुःखों से यह विचार उत्पन्न होता है कि यह करना योग्य है वा अयोग्य है और उसमें जो प्रवृत्ति निवृत्तिरूप वृत्ति है उसी को प्रयोजन कहते हैं, हे नरेश ! यह सौक्ष्म्य आदिक जैसे वर्णन कियेगये वह सब एक ही अर्थ निश्चय होनेवाले हैं उन पांचों गुणों से युक्त मेरे वचन को सुनो—अब वचन के गुण को कहती हूं—प्रत्यक्ष अर्थवाला पूरा बहुत प्रकार के अर्थों से रहित प्रसिद्ध स्पष्ट अर्थवाला न्याय के अनुसार श्लाघ्य, संक्षेप, असंदिग्ध, उत्तम, कठिन अक्षरों से रहित, सुकुमार नाम सुनने में सुखदायी, सत्य, त्रिवर्ग, धर्मादि के अनुसार संस्कार किया हुआ सभ्य छन्द व्याकरणादि के दोषों से रहित सुगम शब्दयुक्त क्रमपूर्वक लक्षण से दूसरे पदों को जिसमें संयुक्त कियाजाय ऐसे वचनों से पृथक् अर्थ

और युक्ति के साथ हो उसको कहूंगी प्रथम बुद्धि के नौ दोषों को कहती हूं मैं किसी दशा में काम, क्रोध, लोभ, मोह, दीनता, अहंकार, श्रम, कृपा और मान से वचन को नहीं कहूंगी, अब वचन कहनेवाले के गुण को कहते हैं- हे राजन् ! जब कहनेवाला और सुननेवाला वचन के सिद्धान्त के अनुसार तत्त्वनिर्णय से सम्बन्ध रखनेवाली इच्छा में प्रवृत्त और प्रवीण होकर बुद्धि में प्रवेश करते हैं तब वह अर्थ प्रकाश करता है, जब कहनेवाला कहने के योग्य वचन होनेपर सुननेवाले का अपमान करके अपने अंगीकृत वचन को कहता है तब वह बड़े अर्थवाला भी वचन हृदय में नहीं नियत होता है, फिर जो मनुष्य अपने अर्थ को त्यागकर दूसरे के अर्थ को कहे उसमें विशेष संदेह उत्पन्न होता है वह वचन भी दूषित है, हे राजन् ! जो कहनेवाला अपने और सुननेवाले के अर्थ को विपरीत नहीं करता है वही वक्ता है दूसरा नहीं है, हे राजन् ! तुम एकचित्त होकर उस अर्थवान् वचन को सुनो जड़रूप देह और इन्द्रिय से आत्मा को पृथक् जानकर जड़ चैतन्य समूहरूप जीवात्माओं से सम्बन्ध रखनेवाला अंश चैतन्य आकाश के समान तुझ में और मुझ में वही एक है जो कि मन-वाणी से परे है वह प्रश्न के योग्य नहीं है क्योंकि अद्वितीय है और ईश जड़ भी काष्ठ-मृत्तिका के समान होने से प्रश्न के योग्य नहीं है इसको सुलभा वर्णन करती है-हे राजन् ! जैसे लाख वा काष्ठ धूल और जलकण मिल जाते हैं इसीप्रकार यहां प्राणियों का जन्म है शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पांचों इन्द्रियां नानाप्रकार के रूप धारण करनेवाले लाख और काष्ठ के समान आत्मा अर्थात् आकाशादि के योग से मिलाप रखते हैं अर्थात् इन्हीं आकाशादि के रूप हैं, किसी शरीर में इनमें से प्रत्येक का वर्णन नहीं है चक्षुरिन्द्रिय अपनी दृष्टिशक्ति को नहीं जानती है इसीप्रकार श्रोत्रादि इन्द्रिय भी अपने स्वरूप और शक्ति को नहीं जानतीं और व्यभिचार से परस्पर में भी एक दूसरे को नहीं जानतीं अर्थात् वह अपने संघात से पृथक् नहीं हैं और प्रकाश करनेवाला आत्मा इनके संघात से पृथक् है इसीसे संघात का भाग भी न आप को जानता है न दूसरे को, और परस्पर में मिलकर भी अपने मिलाप को नहीं जानती हैं और रूप, नेत्र और प्रकाश यह तीनों दृष्टि में कारणरूप हैं उसीप्रकार ज्ञान और ज्ञेय यह दोनों रूपादि में कारण हैं, उस ज्ञान और ज्ञेय में मन दूसरा गुण है, यह जिसके द्वारा श्रेष्ठ उन्नतिरूप निश्चय को विचारता है यही

इन सबमें बुद्धिनाम दूसरा गुण बारहवां कहा जाता है, और जिसके द्वारा संदेह में भरा हुआ ज्ञेय पदार्थ को निश्चय करता है वह उस बारहवें में सत्त्व नाम पृथक् गुण है, जिसके द्वारा सुबुद्धि और निर्बुद्धि प्राणी जाना जाता है, उसीमें चौदहवां एक जुदा गुण है जो कि अपने को कर्त्तापन सिद्ध करता है उसीके द्वारा मानता है कि यह मेरा है वा मेरा नहीं है, हे राजन् ! फिर इनमें पन्द्रहवां अन्य गुण है वह यहां सोलह कलाओं के समूह का वासनारूप जगत् कहा जाता है, उस वासना में अविद्या नाम सोलहवां गुण है वही त्रिगुण होने से संघातरूप अर्थात् जगत् का अंकुर और बीजरूप है, उसी अविद्या में प्रकृति और व्यक्ति नाम दोनों गुण अच्छे प्रकार से नियत हैं, प्रकृति के कार्यरूप सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, हानि, लाभ, प्रिय, अप्रिय नाम संयोग उन्नीसवां गुण है इसको द्वन्द्वयोग कहते हैं, अब व्यक्ति के कार्यको कहते हैं कि उन्नीसवें गुण के पीछे काल नाम एक बीसवां अन्य गुण है इसी बीसवें से जीवों की उत्पत्ति और प्रलय होती है, यह बीसों गुणों का समूह और पांच महातत्त्व, सद्भावयोग असद्भावयोग यह दोनों गुणप्रकाशक इस प्रकार से बीसों गुणों का समूह और सात ऊपर कहे हुए गुण और बुद्ध शुक्र और बल यह तीस गुण कहे गये जिसमें सब गुण वर्त्तमान होते हैं उसीको शरीर जानो, इन तीस गुणों की उत्पत्ति में जुदे २ मत हैं उनको कहते हैं—अनीश्वर सांख्य वालों ने इन तीस कलाओं के उत्पत्तिस्थान को अव्यक्त कहा है इसी प्रकार स्थूलदर्शी कणादि लोग इनके व्यक्त अर्थात् महासमूह को ही इनका उत्पत्तिस्थान देखते हैं अव्यक्त को कपिल मतवाले अंगीकार करते हैं और व्यक्त को चार्वाक आदि स्वीकार करते हैं और जीव ईश्वर और इन दोनों की उपाधिरूप माया को वेदान्त विचार करनेवाले पुरुष सब जीवों का उत्पत्तिस्थान समझते हैं, हे राजेन्द्र ! जो यह अव्यक्त प्रकृति तीस कलाओं से व्यक्तरूप हो जाय तो मैं और तुम और जो अन्य शरीरधारी हैं वह सब भी इसी अव्यक्त प्रकृति के रूप हैं, इस प्रकार से चैतन्यांशों में तू कौन है इस प्रश्न को अयोग्य कह कर जड़ांश में भी उस प्रश्न की अयोग्यता वर्णन करते हैं जन्मादिक वीर्य और रुधिर के योग से होते हैं पुरुष स्त्री के योग से पहिले कलल पैदा होता है—कलल से बुद्बुद होते हैं—बुद्बुद से पेशी अर्थात् मांस पर की झिल्ली—और पेशी से अंगों की प्रकटता और अंगों से नख रोमादिक इस प्रकार

से देह की उत्पत्ति है, हे राजन्, जनक! नौमास पूरे होने पर जन्म लेनेवाली स्त्री वा पुरुष नाम रूप देह से प्राप्त होता है उत्पन्न होनेवाले लाल नख उँगली युक्त कौमाररूप को देख कर फिर रूपान्तरदशा नहीं होसक्ती है कौमारदशा से तरुणावस्था और तरुणावस्था से वृद्धावस्था को प्राप्त करता है इस क्रम से फिर वह जीव अपनी पूर्व अवस्था को नहीं पासक्ता है सब जीवों में हर समय विषय रखनेवाली कलाओं का रूपभेद पृथक् ही वर्त्तमान होता है और सूक्ष्मता से उसका ज्ञान नहीं होता है, हे राजन्! प्रत्येक दशा में इन कलाओं का उत्पत्ति नाश दृष्टि में नहीं आता है, ऐसा प्रभाव देखनेवाले और उत्तम घोड़े के समान दौड़नेवाले इस सब लोक को यह प्रश्न करना उचित नहीं है कि तू कौन है और कहां से आया है, यह किस का यह किसी का नहीं यह कहां से आया यह कहीं से नहीं आया अपने अंगों से भी जीवों को क्या सम्बन्ध है अर्थात् कुछ नहीं, जैसे कि सूर्य की किरण और मथनदण्ड से अग्नि उत्पन्न होता है इसी प्रकार कलाओं के उदय होने से जीव उत्पन्न होते हैं, जैसे कि तुम अपनी देह में आत्मज्ञान के द्वारा आत्मा को देखते हो इसी प्रकार आत्मा के द्वारा दूसरे में भी आत्मा को क्यों नहीं देखते हो, जो अपने और दूसरे की आत्मा में ब्रह्मभाव की बराबरी को निश्चय करते हो तो मुझ को क्यों पूछते हो कि तू कौन है और किसकी है, हे राजन्, जनक! यह मेरा है वा मेरा नहीं है इन दोनों से रहित ज्ञानी को इन बातों से क्या प्रयोजन है कि तू कौन किसकी और कहां से आई है, जो राजा शत्रु मित्र और उदासीनों में वा युद्ध के जय पराजय में योग्य कर्म करनेवाला है उसमें मुक्तों का कौन सा लक्षण है जो इस लोक में सात प्रकार के त्रिवर्ग को कर्मों में नहीं जानता है और त्रिवर्ग को साधन करता है उसमें मुक्तों का लक्षण कौन सा है, प्रिय अप्रिय सबल निर्बल में भी जिस की समान दृष्टि नहीं है उसमें भी मुक्तों का लक्षण क्या है अर्थात् कुछ भी नहीं है हे राजन्! इसी कारण तुम मोक्षसे न मिलनेवाले को जो अभिमान उत्पन्न हुआ वह श्रेष्ठ कर्मी पुरुषों से ऐसे हटाने के योग्य है जैसे कि कुपथ्य करनेवाले को औषधि से करते हैं हे शत्रुओं के जीतनेवाले! स्त्री प्रसंगादि के स्थानों को अच्छे प्रकार से विचार कर आत्मज्ञान के द्वारा आत्मा में ही देखी हुई मुक्ति का दूसरा लक्षण न ढूंढ़ना चाहिये अर्थात् यही लक्षण बहुत है, तुम मोक्ष में आश्रित होकर शयन, उपभोग, भोजन, वस्त्र इन चारों

ही अंगों में नियत जानते हो इनके विशेष पृथ्वी आदि के अनेक उपभोगों को मुझसे सुनो, तुमने जो यह कहा कि मेरे राज्य अथवा पुर में तुम किस के कहने से घुसे यहां तेरे पुर आदि से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है इसको मैं वर्णन करती हूं, जो पुरुष एक २ छत्रवाली सम्पूर्ण पृथ्वी का चक्रवर्त्ती राज्य करता है वह भी निश्चय करके अकेला एक ही पुर में निवास करता है अर्थात् उस दशा में पृथ्वी निरर्थक है, जो उस पुर में उसका एक ही महल नियत है और महल में भी एक ही शयनस्थान है जहां पर कि रात्रि के समय आकर सो रहता है उस शय्या में भी आधी शय्या उसकी स्त्री की है इसी कारण इसलोक में स्नेहरूपी बन्धन से मोक्ष नहीं पाता है, इसी प्रकार भोजन वस्त्रादि गुणों में और अपने भृत्यादि में दण्ड और अनुग्रह के करने के कारण राजा भी सदैव दूसरे की अधीनता में है थोड़े स्नेह से भी बन्धन में पड़ता है और संधि विग्रह में भी राजा अस्वतन्त्र है स्त्रियों की क्रीड़ाविहारों में यह पुरुष सदैव स्वतन्त्र है मित्रों में और मन्त्रियों की सभा में उसको स्वतन्त्रता कैसे होसक्ती है, हां जब दूसरों को आज्ञा देता है तब अवश्य उसको स्वतन्त्रता है ऐसे २ समयों पर नियत होकर वह राजा वहां पर अस्वतन्त्र किया जाता है शयन में उत्सुक राजा भृत्यों के कहने से सोता नहीं है किन्तु उनकी प्रार्थना से शयन में सोया हुआ भी जगा कर उठाया जाता है अर्थात् नौकर लोग कहते हैं कि स्नान, पूजन, दान, हवन, भोजनादि कर्मों को करो इन २ प्रकारों से राजा भी दूसरों के स्वाधीन गिना जाता है, मनुष्य सन्मुखता में आ आकर वारंवार प्रश्न करते हैं परन्तु वह धन का स्वामी राजा बड़े २ साहूकारों को भी देना नहीं चाहता है अर्थात दे नहीं सक्ता है, दान में तो इसका भण्डार खाली होता है और न देने में शत्रुता उत्पन्न होती है और इसके वैराग्य उत्पन्न करनेवाले दोष उसी क्षण वर्त्तमान होते हैं इसी प्रकार राजा एक स्थान पर भी अपने प्राचीन ज्ञानी और शूरवीर कामदारों को भी भयभीत रखता है और राजा को भी उन नौकरों से निर्भय स्थान पर भी भय रहता है जो कि सदैव सेवा में रहते हैं, हे राजन्! इसी प्रकार से वह लोग भी शत्रु होजाते हैं जिनको कि मैंने वर्णन किया है इसी प्रकार जैसा कि इसको भय उनसे उत्पन्न होता है इसी प्रकार उनको भी इसी रीति से समझो, अपने २ घर के सब राजा हैं और अपने २ घरों के

स्वामी हैं, हे जनक ! मनुष्य दण्ड और कृपा को करने से राजाओं के समान हैं, और मनुष्य के पुत्र, स्त्री, मित्र, आत्मा और धन आदि वस्तुओं के जो समूह हैं वह सब उन २ हेतुओं से अन्य मनुष्यों के पुत्रादि के साधारण हैं, राज्याभिमान में बड़ा दुःख है इसको वर्णन करते हैं देश का उजड़ना पुर में अग्नि का लगना प्रधान हाथी आदि का मरना इत्यादि लोकों के साधारण कारणों में मिथ्या ज्ञान से दुःखों को पाता है, इच्छा अनिच्छा भय आदि से उत्पन्न होनेवाले मानसी दुःख और शिरपीड़ा आदि रोग चारों ओर से खैंचने वाली आपत्तियों से सदैव बन्धन में पड़ते हैं उन २ सुख दुःखादि योगों से घायल सब ओर से सन्देहयुक्त मनुष्य रात्रियों को गिनता हुआ अनेक शत्रुओं से व्याप्त राज्य का सेवन करता है, उस अल्प सुख और बहुत से दुःख में प्रवृत्त असार के समान राज्य को प्राप्त करके फिर इसकी भी इच्छा नहीं करता है इस कारण से शान्ति को पाता है, जो इन पुर, देश, सेना, खज़ाना और मन्त्रियों को मानता है कि यह सब मेरे हैं हे राजन् ! यह किसी के हैं और किसी के नहीं हैं मित्र, मन्त्री, पुत्र, देश, दण्ड, खज़ाना और राज्य यह सब त्रिदण्डके समान नियत एक दूसरे के गुण से युक्त ऊपर लिखे हुए सात गुणयुक्त इस राज्य का कौन सा अंग किस अंग से गुण में अधिक है अर्थात् सब अंग बराबर हैं उन २ समयों पर वह २ अंग श्रेष्ठता को पाता है जिससे जो कार्य सिद्ध होता है और वही श्रेष्ठता के लिये विचार किया जाता है, हे राजन् ! सात अंगों का पुतला और दूसरे तीन गुण यह दश वर्ग ऐश्वर्य मानकर राजा के समान राज्य को भोगते हैं जो राजा बड़ा उदार और क्षत्रिय धर्म में प्रवृत्त हो वह दशवें भाग से ही प्रसन्न होता है और शेष बचे हुए नौ भाग से दूसरा-राजा साधारण नहीं है और राजा के विना राज्य भी नहीं है, राज्य के न होने पर धर्म कहां है और धर्म के न होने में मोक्ष कहां होसक्ता है यहां राजा और राज्य का जो उत्तम और पवित्र धर्म है, और जिसकी दक्षिणा पृथ्वी है वह अश्वमेध मोक्ष साधन में उपकारी नहीं होसक्ता है, हे राजन्, जनक ! मैं इस राज्य के हज़ारों दुःखदायी कर्मों के कहने को समर्थ हूं जब अपने शरीर में मेरा संग नहीं है तो दूसरे के शरीर में मेरा संग कैसे होसक्ता है, मुझ सरीखी ऐसी योगिनी को ऐसा कहना योग्य नहीं है कि तुमने पञ्चशिख नाम योगी संन्यासी से सम्पूर्ण मोक्षशास्त्र को सुना, श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि उपाय और

ध्यान के अंग नियम आदि युक्त जीव ब्रह्म की एकता के अनुभव समेत काम आदि की फांसियों से पृथक् तुझ मुक्तसंगी का संग उन छत्र आदि निज वस्तुओं में फिर कैसे है मेरी बुद्धि से तो तुमने शास्त्र को नहीं सुना अथवा सुना भी है तो कपट से सुना है, अथवा इस शास्त्र के रूप का कोई दूसरा शास्त्र सुना है कि फिर इस लोक की वस्तुओं पर नियत होते हो, तुम प्राकृत पुरुषके समान स्त्री आदि के स्नेह में प्रवृत्त हो मैंने जो तेरे शरीर में प्रवेश किया वह तेरी बुद्धि में प्रवेश नहीं है, मैंने उसमें तेरा क्या अनुपकार किया जो तुम सब प्रकार से मुक्त हो तो संन्यासियों का यह वनवास इन वर्णों में नियम किया जाता है, उजाड़ और विज्ञता रहित तेरी बुद्धि में मैंने प्रवेश करके किसका अपराध किया है हे राजन्! मैं दोनों हाथ, भुजा, जंघा और अन्य अंगों के भागों से तुझको स्पर्श नहीं करती हूं बड़े कुलीन, लज्जावान्, दूरदर्शी पुरुष से सभा के मध्य में यह गुप्त कर्म उचित हुआ अनुचित न कहना चाहिये, यह ब्राह्मण गुरु हैं इसी प्रकार उत्तम गुरु भी प्रतिष्ठा के योग्य हैं तुम भी इन सब लोगों के राजारूप गुरु हो इस प्रकार परस्पर की वृद्धता है, इस बात को विचारकर कहने और न कहने के योग्य बातों के आप ज्ञाता होकर आपको सभा में स्त्री पुरुष का योग होना कहना योग्य नहीं है जिस प्रकारसे कमल के पत्ते के ऊपर का जल उस पत्ते को स्पर्श न करता हुआ नियत होताहै इसी प्रकार स्पर्श से रहित मैंने तुझमें निवास किया, अब जो मुझ स्पर्श न करनेवाली के किसी स्पर्श को जानता है ऐसी दशा में यहां पञ्चशिख संन्यासी ने तेरे ज्ञानको किस रीतिसे निर्वासनारूप कहा, सो गृहस्थाश्रम से गिरे हुए तुम दुःख से प्राप्त होनेवाली मोक्ष को न पाकर दोनों आश्रमों के बीच में केवल मोक्ष की बातें करनेवाले हो, जानने के योग्य आत्मा की एकता और द्वैतता में प्रकृति पुरुष के कारण से मुक्त का मुक्त के साथ और आत्मा का प्रकृति के साथ मेल होने से वर्णसंकर नहीं उत्पन्न होता है, मिले हुए वर्ण और आश्रम जिसको बहुत प्रकार के दृष्ट पड़ते हैं और जिसने अर्थ को देखा उससे वर्णसंकर उत्पन्न होता है देह और आत्मा दो २ नहीं होते इस एकत्वता को जानकर मेरा दूसरा चित्त तुझ दूसरे में वर्त्तमान नहीं होता है, हाथ में कुण्ड कुण्ड में दूध और दूध में मक्खी यह सब आश्रय स्थान के मिलने से एकत्र होकर नियत हैं और फिर पृथक् २ भी नियत हैं, कुण्ड में दूध और मक्खी भी मिलावट नहीं रखती और दूध का अभाव भी

नहीं निश्चय करके वह सब वस्तु अपने आप ही दूसरे के निवास स्थान को प्राप्त करती हैं, आश्रमों के और वर्णों के पृथक् २ होने और परस्पर में जुदे होने से तेरा वर्णसंकर होना किस प्रकार से है, मैं जाति में तुझसे उत्तम वर्ण हूं न वैश्या हूं न शूद्रा हूं हे राजन्! मैं पवित्र उत्पत्तियुक्त और शान्तचित्त में तेरी सवर्णता रखती हूं, प्रसिद्धि में कभी तैंने भी सुना होगा कि एक प्रधान नाम राजर्षि है मैं उसीके कुल में उत्पन्न हूं मेरा सुलभा नाम है, मेरे पुरुषों के यज्ञों में द्रोणशत शृंग और चक्रद्वार नाम पर्वत इन्द्र के द्वारा ईंटों के स्थानापन्न लगाये गये थे, मैं उस घराने में उत्पन्न हुई और मेरे समान पति के न मिलने पर मोक्षधर्मों में गुरुओं से शिक्षा पाई हुई अकेली मैं मुनियों के व्रतों को करती हूं, मैं कपटरूप संन्यासिनी नहीं हूं न मैं दूसरे का धन हरनेवाली हूं और धर्मसंकर करनेवाली भी नहीं हूं अपने धर्म में व्रत करनेवाली हूं अपनी मर्यादा में नियत होकर विना विचारे वार्त्तालाप नहीं करती हूं और इस तेरे स्थान में भी मैं विना विचार के नहीं आई हूं, कुशल चाहनेवाली मैं मोक्षमें प्राप्त तेरी शुद्धबुद्धि को सुनकर इस तेरे मोक्ष की परीक्षा करने के निमित्त यहां आई हूं, अपने और दूसरे के पक्ष में अपने ही पक्षपात पर नियत होकर मैं ब्रह्म को नहीं कहती हूं किन्तु तेरे कल्याण के हेतु कहती हूं कि जो मनुष्य शूरवीरों के समान अपनी विजय के निमित्त वार्त्तालाप और ब्रह्म के निरूपण में परिश्रम नहीं करता है और ब्रह्म में शान्त होता है वही मुक्तरूप है, जैसे कि संन्यासी पुरुष नगर के उजड़े हुए स्थान में एकरात्रि ही निवास करता है उसीप्रकार मैं भी इस तेरे शरीर में आज की रात्रिभर निवास करूंगी, हे राजन्, जनक! मैं आपके प्रतिष्ठा और वचनरूप आतिथ्य से पूजित श्रेष्ठ स्थान में शयन करके प्रसन्नचित्त होकर कल प्रातःकाल जाऊंगी, भीष्मजी बोले कि राजा जनक ने ऐसी युक्तियों से भरे हुए प्रयोजनवाले वचनों को सुनकर भी कुछ दूसरा वचन नहीं कहा अर्थात् उसको उत्तर देने में समर्थ नहीं हुआ-इस वर्णन से यह सिद्धान्त दिखाया कि गृहस्थाश्रम में मुक्ति का होना कठिन है इसकारण से संन्यास ही उत्तम है ॥ १६० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे षट्चत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

एकसौ सैंतालीस का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, पूर्वसमय में व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी ने कैसे वैराग्य

को प्राप्त किया और अव्यक्त वा व्यक्त वा तत्त्वों का निश्चय और बुद्धि का निश्चय और अजन्मा देवता वा सगुण देवता की लीला को आप मुझे समझाइये मुझे इसके सुनने की बड़ी उत्कराठा है, भीष्मजी बोले कि, पिता व्यासजी ने प्राकृत आचरण से विचरनेवाले निर्भय पुत्र को अपना संपूर्ण वेद पढ़ाकर उपदेश किया कि हे पुत्र! तुम धर्म का सेवन करो और ऊष्मा, शीत, वर्षा, भूख, प्यास और वायु का विजय करके सदैव जितेन्द्रिय हो, सत्यता, सरलता, क्रोधरहित होना, दूसरे के गुण में दोष न लगाना, शान्तचित्त, अहिंसा, दया आदि गुणों में अपनी बुद्धि के अनुसार प्रवृत्त होना सत्यता में नियत कुटिलता रहित होना धर्म में प्रीतिमान् देवता अतिथि आदि के पूजन से जो शेष रहै उसी से अपनी प्राणरक्षा करो, हे पुत्र! देह को फेन के समान और जीवको पक्षी के समान नियत होनेपर और साथी, भाई, बन्धुओं के नाशवान् होनेपर कैसे सोरहा है अर्थात् पुरुषार्थ साधन में क्यों नहीं प्रवृत्त होता है हे बालक! तुम इन बड़े सावधान चैतन्य सदैव कर्म में प्रवृत्त और कामादि शत्रुओं में अवकाश की इच्छा रखनेवालों के मध्य में क्यों नहीं सावधान होते हो दिनों को संख्या युक्त होने से और अवस्था के न्यून होने वा जीवन के क्षणभंगुर होने पर क्यों नहीं उठकर दौड़ता है अर्थात् देवता और गुरु आदि का क्यों नहीं आश्रय लेता है, जो नास्तिक हैं वह मांस रुधिर आदि की वृद्धि करनेवाले नरलोक सम्बन्धी भोगों को चाहते हैं और परलोकसम्बन्धी कर्मों को भूलेहुए रहते हैं, जो पुरुष बुद्धि की भूल से धर्म की निन्दा करते हैं उन कुमार्गगामियों के पीछे चलनेवाला भी दुःख पाता है, जो सन्तोष गुणयुक्त वेद को उत्तम जाननेवाले महात्मा धर्मरूप मार्ग में नियत हैं उनकी उपासना करो और उनसे ही पूछो, उन धर्मदर्शी ज्ञानियों के मत को स्वीकार करो और उत्तम बुद्धि के द्वारा बुरे मार्ग से चित्त को सदैव हटाओ, इसी समय देखनेवाली बुद्धि से यह मानकर कि प्रातःकाल दूर है इस हेतु से निर्भय निर्बुद्धि सब वस्तुओं के भक्षण करनेवाले मनुष्य कर्मभूमि को नहीं देखते हैं, तुम सीढ़ी के समान धर्म में नियत होकर कुछ २ उस पर चढ़ो और तुम अपनेको रेशम के कीट के समान बन्धनमें डालतेहुए क्यों नहीं चैतन्य होते और तुम विश्वासयुक्त होकर नास्तिक और बेमर्यादा चलनेवाले बांस से ऊंचे मनुष्यों का कभी संग न करो, तुम प्राण वेग धारण नाम योगरूप नौका

को बनाकर मृत्युरूप काम क्रोध और पांच इन्द्रियरूप जल रखनेवाली नदी को और जन्म नाम कठिन स्थानों को अच्छेप्रकार से तरो, जरामृत्यु से पीड्यमान लोक को जानकर और अवस्था की न्यून करनेवाली ऋतुओं के होने पर धर्मरूप जहाज़ में चढ़कर इस संसार समुद्र को तरो, जब मृत्यु सोते हुए मनुष्य को प्राप्त होती है तब अकस्मात् मृत्यु से नाशवान् पुरुष किस से मोक्ष पासक्ता है अर्थात् कोई नहीं उसको बचा सक्ता है, इस धन आदि के संचय करनेवाले और मनोरथों से असन्तुष्टी मनुष्य को मृत्यु इस रीति से लेकर जाती है जैसे कि भेड़िया बकरी को लेकर जाता है, संसाररूपी अन्धकार में प्रवेश करना चाहिये और क्रमपूर्वक धर्मरूप तेजस्वी अग्नि से ज्ञानरूपी दीपक को प्रज्वलित करके बड़ी युक्ति से उसको निवृत्त करना चाहिये, हे पुत्र ! इस नरलोक में देहरूपी जाल में फँसा हुआ जीव बड़ी कठिनता से कभी ब्राह्मण के शरीर को पाता है इसको तुम चारों ओर से बचाओ, ब्राह्मण का यह शरीर कभी काम और अर्थ के निमित्त नहीं पैदा होता है किन्तु तपस्या आदि के निमित्त होता है ऐसे शरीर के त्याग करने के पीछे अनुपम सुख मिलता है, ब्राह्मण का शरीर बड़ी तपस्या से होता है उसको प्राप्त होकर संसारी प्रीति में डूब कर मनुष्य को उसकी अप्रतिष्ठा करनी उचित नहीं है, वेदपाठ जप तप और चित्त की शान्ति में सदैव प्रवृत्त मोक्ष को उत्तम माननेवाले तुम सदैव उपाय करते रहो, मनुष्य का जो अवस्था रूपी घोड़ा चलता है उसका उत्पत्ति स्थान अव्यक्त है और कला उसका शरीर है और उसका आत्मा सूक्ष्मरूप है वह क्षण और त्रुटि नाम समय में शयन करनेवाला है और पलक का लगाना उसकी देह के रोमाञ्च हैं दोनों सन्ध्या उसके कन्धे हैं और एक से प्रभाववाले शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष यह दोनों उसके नेत्र हैं, महीने अंग हैं, उस तीव्रगामी सदैव चलने और दौड़नेवाले और अपूर्व दिखाई देनेवाले घोड़े को देखकर जो तेरा ज्ञान अन्धे के समान नहीं है तब परलोक वा आत्मा को सुन कर तेरा मन धर्म में नियत होगा जो पुरुष इस लोक में धर्म से पृथक् संसारी भोगों में प्रवृत्त होकर सदैव दूसरे के अप्रियकर्मों के करनेवाले हैं वह अपने अत्यन्त अधर्मरूप कर्मों से यम के लोक में शारीरिक दण्ड को पाकर महा आपत्तियों को भोगते हैं, जो राजा अच्छे प्रकार से विचार कर सदैव धर्म में प्रवृत्त छोटे बड़े जातिवालों का रक्षक है वह श्रेष्ठ कर्मी पुरुषों के लोकों को पाता है और अनेक प्रकार के सुखों

को भोगता है और हजारों योनियों में प्राप्त होनेवाले दोषों से रहित होकर ब्रह्म में प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष को पाता है नरकदन नाम भयानक नरक में कुत्ते और लोहे के मुखवाले बल गृध्रनाम पक्षियों के समूह जो रुधिर मांसादि के भक्षी हैं वह सब उस देह के त्यागनेवाले पुरुष पर गिरते हैं, जोकि गुरु, पिता, माता आदि के वचनों को नहीं मानता है यह मर्यादा जो वेद से नियत की गई सांख्य में दश हैं अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, वेदपाठ, ईश्वर का-ध्यान, अहिंसा, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, परिग्रहरहित होना, जो मनुष्य इन दशों स्थानों को मन से नहीं मानता है वह पापी पुरुष अत्यन्त दुःखरूप यमलोकसम्बन्धी असिपत्र नाम वन में जाकर निवास करता है, जो मनुष्य अत्यन्त लोभी मिथ्यावादी और सदैव दुष्टकर्मी छल में प्रवृत्त चित्त होता है वह पापात्मा छल आदि से दुःखों का उत्पन्न करनेवाला बड़े नरक में पड़ कर महाअसह्य कष्टों को पाता है, ऊष्म जलवाली वैतरणी नाम महानदी में गोते खाता हुआ असिपत्रवन से घायल फरसे के वन में सोता महानरक में गिरा हुआ घोर कष्ट को पाता है, अब स्वर्ग से भी अनिच्छा कराते हैं, ब्रह्मलोकादि परमपदों की प्रशंसा करता है और ब्रह्म को नहीं विचारता है और आगे प्राप्त होनेवाली वृद्धों की मारनेवाली मृत्यु को यत्न कर क्या बैठा है बड़ा कराल बली भय उपस्थित हुआ है इससे सुख का उपाय कर नहीं जानता है वह जबतक यमराज की आज्ञा से मरकर यमलोक में पहुँचाया जाता है तबतक तुम आगे के सुख के निमित्त कृच्छ्र आदि तपों के द्वारा सत्यमार्ग में उपाय करो, जबतक दूसरे के दुःख को न जाननेवाला प्रभु यमराज इस लोक में तेरे जीवन को बान्धवादिकों समेत नहीं हरता है क्योंकि उसका रोकनेवाला नहीं है और यमराज के सन्मुख रहनेवाली वायु के द्वारा तू अकेला ही यमलोक को पहुँचाया जाता है उस समय से पूर्व ही उस काम को करो जोकि परलोक में लाभ दायक हो, वही नाशकारी हवा तेरे सन्मुख जबतक नहीं चलती है इससे पूर्व ही उपाय करो और जबतक बड़े भय के आने में तेरी दिशा और पास घूमती हैं उससे पूर्व ही उपाय करो, हे पुत्र ! यह जबतक तुझ व्याकुल और यमलोक में जानेवाले की श्रवणेन्द्रिय की सामर्थ्य बन्द होय उससे पूर्व ही उत्तम समाधि को करो, कर्म की भूल से दुःखी होने पर पूर्व समय के बुरे भले कर्मों का स्मरण करता हुआ जबतक

दुःख पाता है तबतक शुद्ध ब्रह्मरूप खज़ाने को आत्मा में धारण करो, जबतक देह के बलरूप की हरनेवाली वृद्धावस्था शरीर को अत्यन्त जर्जरीभूत न करे तबतक शुद्ध ब्रह्मरूप खज़ाने को आत्मा में धारण करो, जबतक जीवन के अन्त में रोग को सारथी बनानेवाला यमराज हठ करके तेरे शरीर को निर्जीव नहीं करे उससे पूर्व ही बड़ी तपस्या में प्रवृत्त होजाओ, जबतक मनुष्यों के शरीरों में घूमनेवाले भयानक भेड़िया के समान काम क्रोधादिक सब ओर से सन्मुख न दौड़ें उससे पूर्व ही पुण्य की वृद्धि में उपाय करो, जबतक सहायता न रखनेवाला तेरे दोषरूप अन्धकारों को नहीं देखे और पर्वत के शिखर पर पत्तों के चिह्नों को देखे न उससे पूर्व ही शीघ्र उपाय करो, जबतक बुरी इच्छा और मित्ररूप शत्रु तुझको अपने नेत्र या बुद्धि से बाहर न फेंकें हे पुत्र! उससे पहले ही तू मोक्ष में उपाय करले जिस विद्यारूपी धन को राजा और चोर से भय नहीं है और मरनेपर भी जिसकी कीर्त्ति विख्यात रहती है उस धन को अच्छेप्रकार से सञ्चय करो, वहां अपने कर्म्म का विभाग परस्पर में नहीं दियाजाता है जिसका जो पाथेय है वही अपने को वहां भी भोगता है हे पुत्र! परलोक में जिससे अपना जीवन होता है उसी को दान करो जो धन अविनाशी और अचल है उसी को उपाय करके इकट्ठा करो, जबतक साहूकार की यावक नाम भोजन की वस्तु पक्की नहीं होती है और उसके पक्के न होनेपर भी जो मरजायगा इस निमित्त पहले ही उपाय करना योग्य है, माता पिता पुत्र भाई और अच्छे प्रतिष्ठित रिश्तहदार लोग भी संकट में उस अकेले जानेवाले के पीछे नहीं जाते हैं, और पूर्व समय में जो कर्म्म अच्छा बुरा बनगया है केवल वही कर्म्म उस परलोकगामी का साथी होता है, अच्छे बुरे कर्म्मों से जो सुवर्ण रत्नादिक इकट्ठे किये गये हैं वह देह के मरने के पीछे उसके काम में नहीं आते हैं, इस स्थान में तुझ परलोक की इच्छा करनेवाले के और अन्य सब मनुष्यों के क्रोध से वा विना क्रोध से किये हुए कर्म्मों का आत्मा के सिवाय कोई साक्षी नहीं है, परलोक में अर्थात् साक्षी पुरुष में जीवात्मा के लय होनेपर ही मनुष्य का शरीर नाश होता है वह साक्षी हार्दाकाश में जाकर सबको दिखाई देता है, इस लोक में अग्नि, सूर्य्य, वायु यह तीनों देवता देह में वर्त्तमान रहते हैं वह धर्माधर्म के साक्षी होते हैं, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष वृत्तियों में सब जीवों के भीतर विचरनेवाले और रात्रि

दिन सब साक्षियों के चारों से स्पर्श करनेवाले होनेपर भी तुम धर्म्म की ही रक्षा करो, बहुत से शत्रु और बुरी सूरत के भयानक दंश करनेवाला परलोक के मार्ग में अपना ही कियाहुआ कर्म साथ जाता है इसी हेतु से अपने कर्म की भी रक्षा करो, वहां कोई किसी के कर्म का भागी नहीं होता है जैसा करता है वैसा ही अपने कर्म से उत्पन्न होनेवाले भोगों को भोगता है, जिसप्रकार अप्सराओं के समूह अपने कर्म फलरूपी सुख को पाती हैं उसीप्रकार इच्छानुसार चलनेवाले विमानों पर चढ़े हुए उत्तम पुरुष भी महर्षियों समेत कर्म के फल को पाते हैं, जिसप्रकार इस लोक में पापों से रहित ज्ञानीपुरुषों से जो कर्म कियाजाता है उसीप्रकार अत्यन्त पवित्र उत्पत्तिवाले पुरुष भी अपने उत्तम कर्मफल को पाते हैं, वह लोग गृहस्थधर्म्मरूप पुलों के द्वारा प्रजापति, बृहस्पति, इन्द्र इत्यादि के लोकों को पाकर मोक्ष को भी पाते हैं, फिर हमसरीखे अज्ञानियों को मोहनेवाला धर्म्म हजारों प्रकार से कहने को समर्थ है और वही अपनी सामर्थ्य से हमलोगों को ईप्सित स्थान में भी पहुंचाकर पवित्र करनेवाला है, तेरी अवस्था के वर्ष व्यतीत हुए अब केवल तुम्हारी अवस्था के पच्चीस वर्ष बाकी हैं तेरी अवस्था चलीजाती है इससे धर्म्म का ही संचय करो जबतक अज्ञान में वर्त्तमान होनेवाली मृत्यु इन्द्रियों को अपने-अपने कामों से पृथक् करती है उससे पूर्व ही मृत्यु के पंजे में फँसेहुए शरीर को मत त्यागो किन्तु तैयार होकर अपने धर्म की रक्षा शीघ्रही करो, जैसे कि आत्मारूप तुम भी आगे या पीछे आत्मा को प्राप्त होगे उसीप्रकार मोक्ष प्राप्त करनेवाले को अपने शरीर अथवा पुत्रादिकों से क्या प्रयोजन है अनेक भयों के प्राप्त होने पर केवल धर्म्म या ज्ञान के द्वारा परलोक में जानेवाले सत्पुरुषों का जो हितकारी लोक होता है उसी शुद्ध और गुप्त निर्गुण को धारण करो, वही असंग प्रभु सब जीवों को भाई, बन्धु, पुत्रादि समेत बाल वा वृद्धों को हरलेता है उसका रोकनेवाला कोई नहीं है इस हेतु से धर्मसंचय शीघ्र ही करो, हे पुत्र! अब यहां मैंने अपने शास्त्र और अनुमान से यह उचित दृष्टान्त तुझसे सब वर्णन किये इनको ही तुम अपना हितकारी जानकर अवश्य करो, जो पुरुष अपने कर्म से अपने शरीर को पुष्ट करता है और जिस किसी उपकारी को देता है वही अकेला अज्ञान मोहजन्य कष्टों से मिलता है, उत्तम कर्म करनेवाले पुरुषों को "तत्त्वमसि" वाक्य से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान ब्रह्माण्ड को व्याप्त करता है वही परम-

पुरुषार्थ मोक्षरूप अर्थ का दर्शन है कृतज्ञ पुरुषों को उपदेश किया हुआ ज्ञान पुरुषार्थ से संयुक्त होता है, जो संसारी लोगों में निवास करनेवाले पुरुषों को प्रीति होती है वही बड़ीभारी रस्सी बन्धन में डालती है और उत्तम कर्मी मनुष्य इस रस्सी के बन्धन को काटकर जाते हैं और निकृष्टकर्मी नहीं काटसक्ते हैं, हे पुत्र! जबकि तुम मृत्यु के वशीभूत होनेवाले हो फिर तुमको धन, भाई, पुत्रों से कुछ प्रयोजन नहीं है तुम अपने हार्द्दाकाश में नियत आत्मा की इच्छा करो देख तेरे पिता आदि कहां गये, कल के काम को आज कर और रात्रि के काम को प्रातःकाल ही करले क्योंकि मृत्यु जरा भी बाट नहीं देखती है न यह देखती है कि इसका काम समाप्त हुआ है वा नहीं, मरने के समय मित्र बान्धव और जातिवाले पीछे-पीछे चलकर मृतक को अग्नि में डालकर लौट आते हैं, तुम मोक्ष के अभिलाषी आलस्य को दूर करके विश्वासयुक्त होके उन निर्द्दयी पापबुद्धि नास्तिकों को अपने से सदैव हटाओ, इसप्रकार लोक से घायल काल से पीड़ावान् होनेपर भी तुम बड़े धैर्य्य से सब जीवों में धर्म्म को करो, फिर जो मनुष्य इस ज्ञान की युक्ति को अच्छे प्रकार से जानते हैं वह इस लोक में अपने धर्म को अच्छे प्रकार से करके परलोक में सुख को भोगते हैं, और देह के त्यागने में ज्ञानी लोगों की मृत्यु नहीं होती है और अपने धर्ममार्ग की रक्षा करने में किसीप्रकार की हानि नहीं है जो धर्म्म की वृद्धि करता है वह पण्डित है और धर्म्म से हीन होता है वह अज्ञान में फँसता है, कर्मकर्त्ता मनुष्य कर्ममार्ग में प्रकट होनेवाले अपने दो प्रकार के कर्म्मफलों को इस प्रकार से पाते हैं जैसा कि उन कर्मों को किया है अर्थात् बुरा कर्म करनेवाला नरक को पाता है और परायण लोग स्वर्ग पाते हैं इस स्वर्ग की नसेनी को बड़ी कठिनता से प्राप्त होनेवाले मनुष्य देह को पाकर उस आत्मा को अच्छे प्रकार से ध्यान करे जिससे कि आपत्ति में न फँसे, स्वर्गमार्ग के अनुसार कर्म करनेवाली जिसकी बुद्धि धर्म को नहीं उल्लंघन करती है उसको पवित्रकर्मी और पुत्र बान्धवादि से शोचने के योग्य कहा है, जिसकी बुद्धि अज्ञान से मोहित नहीं है और निश्चय में आश्रय लेती है उस स्वर्ग में निवासी को कोई भय नहीं होता है, जो पुरुष तपोवन में उत्पन्न हुए और वहीं मरे उन कामभोगों से रहित पुरुषों का धर्म अत्यन्त छोटा है, जो पुरुष भोगों को चारों ओर से त्याग कर देह से तपस्या करता है

उसको सब अभीष्ट प्राप्त होते हैं मैंने भी इसी बात को सिद्धान्त समझा है, हज़ारों माता पिता और सैकड़ों पुत्र स्त्री भूतकाल में हुए और आगे भी होंगे वह सब किसके हुए और हम किसके हैं, मैं अकेला हूं मेरा कोई नहीं है न मैं किसी का हूं और जिसका हूं उसको नहीं देख सक्ता हूं और जो मेरा है इस को भी नहीं देखता हूं, न मुझसे उनका काम होगा न उनसे मेरा काम होगा वह अपने २ कर्मों से उत्पन्न होकर मरे वा मरेंगे और आप भी जाओगे, इस लोक में धनवान् के भाई बन्धु अपनी प्रसन्नता को प्रकट करते हैं और निर्द्धनों के भाई बन्धु नष्टता को प्राप्त होते हैं, मनुष्य स्त्री के द्वारा बुरे कर्मों को संचय करता है फिर परलोक में और इस लोक में भी कष्टों को पाता है, अपने कर्मों से इस दुःखरूप जीवलोक को देखता है हे पुत्र! इसी हेतु से इन सब बातों को ऐसे ही करना चाहिये जैसा कि वर्णन किया गया है, इसको अच्छे प्रकार ध्यान करके परलोक चाहनेवाले को उत्तम कर्म करना योग्य है, जिस काल के महीने, ऋतु, वर्ष, भ्रमण हैं सूर्य अग्नि है और दिन रात ईंधन है वह सूर्य कर्म और फल की नियतता का साक्षी भी है ऐसे ईंधन और अग्नि में वह काल प्रमाथ २ कर सबको भस्म करता है, उस धन से क्या लाभ है जिसको न देता है न भोगता है और ऐसा पराक्रम भी निरर्थक है जिससे कि शत्रु को नहीं पीड़ित करता है और वह शास्त्र भी निष्फल है जिसके द्वारा धर्म को नहीं करे और उस आत्मा से भी क्या प्रयोजन है जो जितेन्द्रिय और मनका जीतनेवाला नहीं है भीष्मजी बोले कि, शुकदेवजी ने व्यासजी के कहे हुए इन हितकारी वचनों को सुनकर पिता को बिदाकर मोक्ष का उपदेश करने वाले राजा जनक के पास जाकर मोक्ष की रीति को पूछा, युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! दान, यज्ञ, तप और गुरुओं की सेवा जैसे करनी योग्य है वह मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि अनर्थ में संयुक्त बुद्धि के कारण मन पाप कर्मों में प्रवृत्त होता है और अपने कुकर्म के फल से महाकष्टों को नियत होता है दुर्भिक्ष से और नाना क्लेशों से अनेक भयकारी आपत्तियों में पड़कर मृतक नाम पाके अर्थात् मुक्त न होनेवाले पुरुष मृतक मनुष्यों में मिल जाते हैं और पापी मनुष्य निर्द्धन होते हैं, उत्सव से उत्सव को स्वर्ग से स्वर्ग को सुख से सुख को पाते हैं श्रद्धावान् जितेन्द्रिय और धनवान् लोग श्रेष्ठ कर्मी हैं, परलोक के न माननेवाले नास्तिक लोग सर्प हाथी आदि से दुर्गम और

भयकारी मार्ग में हथकड़ियों समेत पिटते हुए जाते हैं इससे कठिन दुःख क्या होगा, देवता अतिथि साधु लोग और देवता आदि जिन पुरुषों को प्यारे हैं और महादान दक्षिणाआदि के दाता हैं वह ज्ञानियों के मार्ग में नियत हैं जैसे धान्यों में पुलाका और पक्षियों में पूत्यण्डा होता है उसी प्रकार मनुष्यों के मध्य में वह नास्तिक पुरुष गिने जाते हैं, जिस २ मनुष्य से जैसा २ कर्म हुआ है वही कर्मफल प्रारब्धरूप होकर दौड़नेवाले मनुष्य के पीछे २ दौड़ता है और सोनेवाले के साथ में सोता है और पापकर्म उस कर्मकर्त्ता के समीप नियत होता है और दौड़नेवाले के पीछे दौड़ता है और कर्म करनेवाले के साथ कर्म करता है सदैव छाया के समान संगही बना रहता है, जिस २ पूर्व जन्म समय में जो २ कर्म किया है उस २ अपने कर्म किये को आगे के जन्म में सदैव वह भोगता है, जिसमें कर्म और त्याग समान हैं उस प्रारब्ध से चारों ओर से रक्षित जीव को काल चारों ओर से खैंचकर पृथक् कर देता है जैसे कि विना कहे हुए अपने २ समय और ऋतु में फूल फल समय को उल्लंघन नहीं करते हैं उसी प्रकार पूर्व जन्म के किये हुए कर्म भी कभी समय को नहीं उल्लंघन करते हैं, प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा लाभ हानि जीवन मृत्यु इत्यादि सब जारी होनेवाले बन्धनही होते हैं और प्रत्येक चरण पर नाश के जतानेवाले हैं, आत्मा ही से सुख और दुःख किये गये हैं गर्भशय्या को प्राप्त होकर आत्मा अपने ही किये हुए कर्मफलों को भोगता है, बालक, तरुण और वृद्ध कोई मनुष्य जिस २ शुभ अशुभ कर्म को करता है उसी दशा में वह प्रत्येक जन्म में उसके फल को भोगता है, जैसे बछड़ा हज़ारों गौओं के मध्य में अपनी ही माता को पालता है इसी प्रकार पूर्व का किया हुआ कर्त्ता का कर्म उसके पीछे २ चलता है, जैसे कि मैला वस्त्र फींचे से जल के द्वारा शुद्ध होजाता है उसी प्रकार व्रतादि अनेक नियमों से कष्ट सहनेवाले पुरुषों को अत्यन्त सुख प्राप्त होता है हे महाज्ञानिन् ! बहुत समय तक तपस्या करने से और धर्म से जिनका पाप दूर होगया है उनके मनोरथ शीघ्र सिद्ध होते हैं, जैसे कि आकाश में पक्षियों का और जल में मछलियों का पहला चिह्न दृष्ट नहीं आता है उसीप्रकार पापात्माओं की भी गली है, प्राप्त और नियत नानाप्रकारकी वे मर्यादाओं को छोड़ो और जो अपना हितकारी श्रेष्ठ कर्म है उसको करना उचित है ॥ ११२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे सप्तचत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४७॥

एकसौ अड़तालीस का अध्याय ॥

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि, हे पितामह ! व्यासजी के पुत्र धर्मात्मा तपस्वी शुकदेवजी ने किसप्रकार से जन्म लिया और सिद्धिरूप मोक्ष को प्राप्त हुए यह सब आप वर्णन कीजिये, तपोधन व्यासजी ने किस स्त्री में शुकदेवजी को उत्पन्न किया इन महात्मा की माता को और उनके उत्तम जन्म को नहीं जानते हैं और उस बालक की बुद्धि किस कारण से ज्ञान में प्रवृत्त हुई इसलोक में ऐसी बुद्धि किसी की ज्ञान में नहीं प्रवृत्त हुई हे महाज्ञानिन् ! मैं उसको मूलसमेत सुनना चाहता हूं क्योंकि आपके अमृतरूपी शास्त्रों के सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होती है इसीसे हे पितामह ! शुकदेवजी के माहात्म्य योग और विज्ञान को ठीक २ क्रमपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये, भीष्मजी बोले कि ऋषि लोगों ने अधिक अवस्था वा वृद्धता मृतक शरीर और धन के कारण से धर्म को नहीं कहा है जो पुरुष अंगों समेत वेदों को जानता है वही हमलोगों में बड़ा है इन सबमें तपही मूलरूप है वह तप जितेन्द्रिय पुरुषों से होता है दूसरों से नहीं होसक्ता है, हे तात ! हज़ार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ का फल योग की कला के भी समान नहीं होता है अब मैं इस स्थान में शुकदेवजी के उस जन्म योगफल और उत्तम गति को जो कि अपवित्र मिथ्यावादी मनुष्यों को कठिनता से समझ में आसक्ती है तुझसे कहता हूं, निश्चय करके पूर्व समय में भयंकररूप भूतगणों से सेवित श्रीमहादेव जीने मेरु पर्वत के उस शिखर पर जो कि वन के नानावृक्षों से शोभित था उत्तम जानकर बड़े आनन्द से विहार किया और उस समय श्रीपार्वतीजी भी उनके साथ थीं उसी समय देवताओं के समान श्रीव्यासजी ने वहां तपस्या की और हे कौरवेन्द्र ! वहां व्यासजी ने योगधर्म में प्रवृत्त हो अपने योगबल से इन्द्रियों को हृदय में रोककर पुत्र की कामना के निमित्त प्रार्थना की अर्थात् उन्होंने यह इच्छा की कि मेरा पुत्र धैर्य से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के समान होवे, उस उत्तम तप में प्रवृत्त उस ऋषि ने यह संकल्प करके योग के द्वारा उन शिवजी को आराधन किया जो कि अज्ञानियों को प्राप्त होने कठिन हैं, वायु का भक्षण करके बहुत रूप रखनेवाले उमापति शिव जी के ध्यान में प्रवृत्त होकर व्यासजी सौ वर्षतक खड़े रहे वहां परब्रह्म ऋषिराज ऋषि लोकपाल और साध्यगणों ने वसुओं समेत शिवजी महाराज को सेवन

किया और बारह सूर्य, ग्यारह रुद्र, चन्द्रमा, सूर्य्य, वसु, मरुद्गण, सागर, नदी, अश्विनीकुमार, देवता, गन्धर्व, नारद, पर्वत, देवऋषि, विश्वावसु गन्धर्व, सिद्ध और अप्सराओं ने शिवजी को आराधन किया उस समय शिवजी महाराज कनेर के पुष्पों की माला को धारण किये हुए ऐसे शोभायमान थे जैसे कि अपनी किरणों समेत चन्द्रमा शोभायमान हो अपने धर्म में दृढ़ व्यासदेवजी उस दिव्य क्रीड़ा के योग्य देवता और देव ऋषियों से व्याप्त वन के मध्य में पुत्र की इच्छा करके उत्तम योग में नियत हुए इन का न तो प्राण निकलता था और कोई प्रकार की ग्लानि भी नहीं उत्पन्न होती थी यह बात देखकर तीनों लोकों को आश्चर्य सा हुआ तब उस बड़े तेजस्वी की जटा का रूप तेज के मारे महादेदीप्यमान अग्नि की ज्वाला के समान दृष्ट पड़ता था यह चरित्र और अन्य भी अनेक देवचरित्र इस स्थान में मुझसे भगवान् मार्कण्डेयजी ने कहे हैं, हे तात ! अब भी उसी तप के प्रताप से व्यासजी की जटा अग्निवर्ण के समान दिखाई देती है हे युधिष्ठिर ! उनके इस योग भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवजी ने अपने चित्तमें विचार किया और ईषद्धास्यपूर्वक भगवान् शिवजी ने व्यासजी से यह कहा कि हे व्यास! तेरा पुत्र पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनके ही समान सिद्ध होगा और महापुरुष समझा जायगा, मैं ब्रह्म हूं ऐसा विचार करनेवाला उसी ब्रह्म में बुद्धि का लगानेवाला और उसीमें मन को दृढ़ करनेवाला और उसीमें निवास करके तेरा पुत्र अपने तेज से तीनों लोकों को व्याप्त करके यश को विख्यात करेगा ॥ २६ ॥

इतिश्री महाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽष्टचत्वारिंशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

एकसौ उनचास का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले उन व्यासजी ने शिवजी से उत्तम वर को पाकर और युग्म अरणीकाष्ठ को लेकर कामना की प्रत्यक्ष करनेवाली अग्नि से उनको मथा, हे राजन् ! फिर व्यासजी ने अपने तेजसे उत्तम रूप धारण करनेवाली घृताची नाम अप्सरा को देखा, हे युधिष्ठिर ! भगवान् व्यासजी उस वन में अप्सरा को देखकर काम से पीड़ित हुए और घृताची भी व्यासजी को काम से व्याकुल देखकर अपना रूप तोती का बनाकर उनके पास गई, वह ऋषि उस अप्सरा को पक्षी के रूपमें गुप्त हुआ जानकर काम में संयुक्त हुए और बड़े धैर्य से काम

को स्वाधीन करके व्यासजी अपने चंचल चित्त के रोकने को समर्थ नहीं हुए और होनहार के वश से घृताची के शरीर की लावण्यता पर मोहित होगये बड़ी युक्ति से काम को स्वाधीन करनेवाले उस मुनि की कामाग्नि से उनका वीर्य पतन होकर एक अरणीकाष्ठ के ऊपर गिरा इसीहेतु से उस महाऋषि ने अरणीकाष्ठ को मथा और उससे शुकदेवजी ने जन्म लिया जैसे कि यज्ञसम्बन्धी तीव्र अग्नि हव्य को धारण करता हुआ प्रकाशमान होता है वैसेही रूपवान् और तेज से देदीप्यमान शुकदेवजी भी होते हुए हे कुरुभूषण! पिता के अनूप रूप और सुन्दर वर्ण को धारण करते हुए शुद्ध अन्तःकरण शुकदेवजी धूमरहित अग्नि के समान प्रकाशमान होते हुए हे राजन्! तदनन्तर मेरुपर्वत के पीछे श्रेष्ठरूपवाली सब नदियों में उत्तम श्रीगंगाजी ने अपने रूप से उनके पास आकर उनको अपने जल से तृप्त किया और आकाश से दण्ड और कृष्णमृग का चर्म उन महात्मा के निमित्त पृथ्वी पर गिरा और गन्धर्व वा अप्सरा आदि गाने वा नाचने लगीं और देवता लोग बड़ी शब्दायमान दुन्दुभी बजाने लगे और विश्वावसु, नारद, तुम्बुर और हाहा हूहू आदि गन्धर्वों ने शुकदेवजी के जन्मोत्सव का मंगलगान गाया और इन्द्रादिक सब देवता और लोकपाल, ब्रह्मर्षि, देवर्षि भी सब आये और वायु ने सुगन्धित उत्तम पुष्पों की वर्षा की और सब संसार के स्थावर जंगम जीव अत्यन्त प्रसन्न हुए तब महातेजस्वी महात्मा शिवजी ने भगवती के साथ बड़ी प्रीति से उस मुनि के पुत्र को उत्पन्न होते ही बुद्धि से अपना शिष्य किया और देवेश्वर इन्द्रने अपूर्व दर्शनवाला दिव्य कमण्डलु और देवताओं के वस्त्र बड़ी प्रीति से उनको दिये फिर हजारों हंस, सारस, शतपत्र, तोते और नीलकण्ठों ने उनको दक्षिण किया, हे भरतर्षभ! फिर तो इस दिव्य जन्म को पाकर महातेजस्वी व्रत में सावधान अरणी के पुत्र बुद्धिमान् शुकदेवजी उस स्थान में निवास करने लगे तदनन्तर रहस्य और संग्रहों समेत सब वेद उनके पास वैसे ही वर्त्तमान हुए जैसे कि उनके पिता के पास आये थे, हे राजन्! वेद वेदांग के भाष्य के ज्ञाता धर्म विचारनेवाले शुकदेवजी ने बृहस्पतिजी को अपना गुरु किया और उनसे सब वेद, वेदांग, रहस्य, संग्रहों समेत और इतिहास आदि अनेक शास्त्रों को पूर्णता से पढ़ गुरु को दक्षिणा देकर समावर्त्तन कर्म किया, फिर उस सावधान ब्रह्मचारी ने महातप करना प्रारम्भ किया और अपने ज्ञान वा तप से

बाल्यावस्था में ही देवता और ऋषियों में बड़े माननीय हुए, हे राजन्! मोक्षधर्म के साक्षात्कार करनेवाले इन शुकदेवजी की बुद्धि गृहस्थादिक तीनों आश्रमों में नहीं रमती थी ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकोनपञ्चाशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

एकसौ पचास का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि शुकदेवजी गुरु से मोक्षशास्त्र को पढ़ कर पिता के पास गये और कल्याण के आकांक्षी विनीतता से अपने पितारूप गुरु को दण्डवत् करके बोले कि हे पितः! आप मोक्षधर्म में प्रवीण हैं इससे मुझको ऐसा उपदेश कीजिये जिससे कि चित्त में उत्तम शान्ति हो जाय, व्यासजी ने पुत्र के ऐसे वचन सुन कर उत्तर दिया कि हे पुत्र! तुम मोक्षशास्त्र को और अन्य नाना प्रकार के धर्मों को भी पढ़ो, हे भरतवंशिन्! उस धर्मधारियों में उत्तम श्रीशुकदेवजी ने पिता की आज्ञा से संपूर्ण योगशास्त्र और सांख्यशास्त्र को भी पढ़ा जब उन व्यासजी ने उस पुत्र को ब्राह्मणों की लक्ष्मी से संयुक्त ब्रह्म की समान पराक्रमी और मोक्षधर्मों में महापण्डित जाना तब कहा कि अब तुम राजा जनक के पास जाओ वह मिथिलेश्वर संपूर्ण मोक्षशास्त्र को तुम से कहैगा, हे राजन्! शुकदेवजी पिता की आज्ञा को मानकर धर्मनिष्ठा और मोक्ष के सिद्धान्त के निर्णय के निमित्त मिथिलापुरी में गये और चलने के समय पिता ने समझा दिया था कि तुम निस्संदेह मनुष्यमार्ग होकर जाना आकाशमार्ग होकर न जाना सीधे और सच्चेपन से जाना उचित है और उस हमारे यजमान राजा से तुम कभी अहंकार न करना उसके अधीन होनाही योग्य है वही तुम्हारे सन्देहों को निवृत्त करेगा, वह राजा धर्म में कुशल और मोक्षशास्त्र में अद्वितीय पण्डित है जो वह कहै वही तुम को निस्संदेह करना उचित होगा इस प्रकार से समझाये हुए वह धर्मात्मा शुकदेव मुनि मिथिलापुरी को गये जो कि वह मुनि अन्तरिक्ष के मार्ग से अपने चरणों करके समुद्रों समेत पृथ्वी के उल्लंघन करने को समर्थ थे इस हेतु से उन्होंने पर्वतों को उल्लंघन कर नदी, तीर्थ, सरोवर, वन, उपवन आदि अनेक पर्वतश्रेणी और सर्प मृगों करके व्याप्त वनों के अनेक मार्गों को उल्लंघन करके मेरु के इलावर्त्तादि शिखरों को क्रमपूर्वक व्यतीत करके भरतखण्ड को पाया, फिर चीनी और हूननाम मनुष्यों से सेवित नानाप्रकार के देशों को देखते हुए इस

आर्य्यावर्त्त देश में आये (अन्यमतवाले लोग इस आर्य्यावर्त्त देश को एरियन कहते हैं) और पिता के वचन को जान कर उसी अर्थ को विचारते हुए शुकदेवजी ने मार्ग को व्यतीत किया, आकाश में चलते हुए पक्षी के समान क्रीड़ा के योग्य नानाकुतूहलों से वृद्धिमान् नगर और नानाप्रकार के पृथ्वी के रत्नों को देखते हुए भी उनको तुच्छ समझ कर अथवा वैराग्य से नहीं देखते थे और मार्ग के अनेक क्रीड़ा के योग्य उद्यानस्थान और सुन्दर नानारत्नों को भी तुच्छ ही समझा इसी प्रकार से चलते २ थोड़े ही समय में महात्मा जनक से रक्षित विदेह नगर को पाया उस नगर में और अनेक रस अन्न भोजन आदि पदार्थों से भरे हुए और अनेक गौओं से शोभित घोषपल्ली जाति के लोगों से व्याप्त बहुत से ऐसे ग्रामों को देखा जिनमें घास अन्न से पोषित अनेक हंस सारस थे और बहुत प्रकार के कमलयुक्त तड़ाग वापी कूपों से शोभित अनेक धनाधीश साहूकारों से और व्यापारों से युक्त हाथी घोड़े रथ आदि अनेक वाहनों से पूर्ण विदेह नगर को उल्लंघन करके आत्मज्ञान और मोक्षज्ञान के आकांक्षी शुकदेवजी उसके खुले हुए द्वार के भीतर निश्शंक होकर घुसे वहां उग्रवचनों के द्वारा राजा के द्वारपालों ने उनको रोका तब शुकदेवजी क्रोधरहित होकर यथावस्थित खड़े हुए यद्यपि मार्ग की ऊष्मा और क्षुधा पिपासा से व्याकुल भी मुनि थे तथापि हर्ष शोक से रहित धूप में ही वर्त्तमान रहे फिर उन द्वारपालों में से एक द्वारपाल ने आकाश में सूर्य्य के समान तेजस्वी शुकदेवजी को शोकयुक्त रूप धारण किये देखा और वह बड़ी प्रीति से पूजन करके दण्डवत् कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा होगया और राजमहल की दूसरी ड्योढ़ीपर लेगया हे युधिष्ठिर ! वहां बैठकर शुकदेवजी ने मोक्ष का ही विचार किया क्योंकि वह महाप्रतापी धूप और शीत को समान देखते थे, एक मुहूर्त्त ही मात्र में राजा के मन्त्रियों ने बड़ी नम्रता से आकर शुकदेवजी को राजमहल की तीसरी ड्योढ़ी पर खड़ा करदिया और वहां से लेजाकर स्त्रियों के समूह में प्रवेश करवाया वहां राजमहल से लगा हुआ चित्ररथ के समान सुपुष्पित वृक्षों से शोभित क्रीड़ा के योग्य जलक्रीड़ास्थान से युक्त वन था उसमें शुकदेवजी का आसन करवाके वह मन्त्री चलागया उस स्थान में सुन्दर नितम्बवाली युवा स्वरूपवान् स्त्रियां जो अरुण सूक्ष्म वस्त्र धारण किये अग्नि के समान सुवर्ण आभूषणों से अलंकृत सुन्दर आलाप

करनेवाली मृदुभाषिणी गीतवाद्य में प्रवीण मन्द मुसुकानयुक्त वार्त्तालाप करनेवाली थीं और अप्सराओं के समान रूप कामकला में कुशल हावभाव कटाक्ष जाननेवाली सब बातों की ज्ञाता ऐसी पचास स्त्रियां उनके पास गईं और पाद्य अर्घ्य से उनका पूजन करके समयपर उपस्थित उत्तम भोजनों से उनको तृप्त किया और प्रत्येक स्त्री ने साथ लेलेजाकर वह क्रीड़ावन शुकदेव जी को दिखलाया और हँसती गाती और दूसरे के चित्त की जाननेवाली उन स्त्रियों ने उस बुद्धिमान् महाज्ञानी शुकदेवमुनि की अच्छे प्रकार से सेवा की वह शुद्ध अन्तःकरण स्वकर्मनिष्ठ अरणी के पुत्र शान्तचित्त क्रोधरहित शुकदेवजी इनके प्रेमों से न प्रसन्न होते थे न क्रोधित होते थे तब उन सुन्दर स्त्रियों ने शुकदेवजी के बिछाने को वह कृष्णवर्ण अनेक रत्नों से जटित आसन दिया जो कि उत्तम देवताओं के योग्य था शुकदेवजी भी चरण धोकर संध्योपासनादि कर्मों से निबटकर उसी मोक्ष को विचारते हुए उस पवित्र आसनपर विराजमान हुए और रात्रि के प्रथम भाग में ध्यानावस्थित होकर अर्द्धरात्रि के समय रीति के अनुसार शयन किया फिर एक ही मुहूर्त्त में उठकर निरालस्य शौच और स्नानादिक करके स्त्रियों से घिरेहुए मुनि ने अपने मनको ध्यान में लगाया, हे भरतवंशिन् ! मोक्ष के अधिकार में बड़े दृढ़चित्त शुकदेवजी ने इस बुद्धि से उस दिन के शेष और रात्रि को उसी राजकुल में व्यतीत किया॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे पञ्चाशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

एकसौ इक्यावन का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इनसब बातों के पीछे राजा जनक अपने सब मन्त्री पुरोहित और रानियों को आगे करके बड़े-बड़े आसन और नानाप्रकार के रत्नों समेत शिर से अर्घ्य को लेकर गुरु, पितर, देवताओं के सन्मुख गया और बहुत से रत्नों से जटित बहुमूल्य वस्त्रों से युक्त बड़े पूजित ऋद्धिमान् सर्वतोभद्र नाम आसन को हाथ में लेकर गुरु और पितृरूप शुकदेवजी को दिया, जब उस आसन पर शुकदेवजी विराजमान हुए तब राजा जनक ने पाद्य अर्घ्यपूर्वक शास्त्र की विधि से उनका पूजन करके बहुत से रत्नसंयुक्त सुन्दर गौओं को दान में दिया और शुकदेवजी ने उसके मन्त्रयुक्त पूजन को बुद्धि से अंगीकार किया फिर ब्राह्मणों में श्रेष्ठ तपस्वी शुकदेवजी ने भी उसके पूजन को और रत्नादिक समेत गौओं को स्वीकार करके और राजा को आशीर्वाद देकर

उस राजा की कुशल क्षेमको पूछा और राजा अपने सब साथियों समेत हाथ जोड़हुए मुनि की आज्ञा से ब्राह्मणों समेत नीचे पृथ्वीपर बैठगया फिर महाकुलीन प्रबल बुद्धिमान् राजा ने शुकदेवजी का कुशल मंगल पूछकर कहा कि आप का आगमन कैसे हुआ शुकदेवजी बोले तेरा कल्याण हो मैंने अपने पिता से सुना है कि मोक्षधर्म्म में महाविद्वान् मिथिलापुरी का राजा जनक मेरा यजमान है वह तुम्हारी बुद्धि से प्रवृत्ति निवृत्तिवाले सन्देहों को दूर करेगा तुम मेरी आज्ञा से वहां जाओ वह तुम्हारे हृदय के सब सन्देहों को निवृत्त करेंगे सो मैं पिता की आज्ञा से आप से अपने संदेहों के पूछने को आया हूं सो धर्म्मधारियों में श्रेष्ठ आप मुझ से कहने को योग्य हैं इसलोक में ब्राह्मण को क्या करना योग्य है और मोक्ष अर्थ का क्या स्वरूप है ज्ञान से अथवा तप के द्वारा मोक्ष किस रीति से प्राप्त करने के योग्य है, राजा जनक ने उत्तर दिया कि हे तात ! इस लोक में जन्म से लेकर ब्राह्मण को जो करने के योग्य है उसको आप सुनिये कि प्रथम तो यज्ञोपवीत प्राप्त करके वेदपाठी होना चाहिये तब गुरुवृत्ति और ब्रह्मचर्य होकर देवता और पितरों के ऋण को निवृत्त करके सबकी निन्दारहित दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाला सावधान वेदों को पढ़ गुरु को दक्षिणा देकर और उनकी आज्ञा प्राप्त करके फिर ब्राह्मण को समावर्त्तन कर्म्म करना चाहिये, गृहस्थ धर्म्म में प्रवृत्त होनेवाला और केवल अपनी ही विवाहिता स्त्री में प्रीति करनेवाला अन्य की निन्दा और गुणों में दोषरहित होकर निवास करे और न्याय के अनुसार अग्नि स्थापन करे फिर अपने पुत्र पौत्रादि को उत्पन्न करके वानप्रस्थ आश्रम में निवास करे और उन अग्नियों को शास्त्र की रीति से पूजता हुआ अतिथियों का प्यारा होवे, फिर वह धर्म्मज्ञ वन में अग्नियों को न्याय के अनुसार आत्मा में प्रविष्ट करके दुःख सुख आदि योगों से रहित विरक्त चित्त होकर संन्यास आश्रम में निवास करे, शुकदेवजी बोले कि ज्ञान और विज्ञान के उत्पन्न होने और हृदय से सुख दुःखादि के रहित होनेपर और सनातन आत्मा के होनेपर तीनों आश्रमों में निवास करना क्या आवश्यक और योग्य है यह मैं आपसे पूछता हूं इसको मुझे समझाइये और हे राजन् ! तुम वेदार्थ और सिद्धान्त के अनुसार वर्णन करो राजा जनक ने उत्तर दिया कि विना ज्ञान और विज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति नहीं होसक्ती और विना गुरु के ज्ञान नहीं मिलता यहां ज्ञानरूप

शास्त्र नौका है और गुरु उसका कर्णधार है अच्छे प्रकार से ज्ञानी होकर कर्मों से निवृत्त संसारसागर से पार होनेवाला उन दोनों गुरु और शास्त्र को त्याग करके वामदेवऋषि के समान ब्रह्मचर्य्य से प्रथमही विज्ञान के उत्पन्न होने पर उस ब्रह्मचर्य धर्म से क्या प्रयोजन है यह शंका करके कहते हैं कि धर्म परलोकों के निवास और कर्मों के नाश न होने के लिये प्राचीन वृद्धों का किया हुआ चारों आश्रमों में सुखरूप है तात्पर्य यह है कि ज्ञानी को संसारी लोगों की शिक्षा के निमित्त उसका करना आवश्यक है, इस कर्म की परम्परा से इसलोक के अनेक जन्मों में शुभ अशुभ कर्मों का त्याग करके यह मोक्षनाम पदार्थ प्राप्त होता है, यह शुद्धात्मा बहुत से जन्मों में शुद्ध होनेवाली बुद्धि आदि के कारण से पहले ही आश्रम में मोक्ष को पाता है उस मोक्ष को पाकर उस मोक्षदर्शी मुक्त ज्ञानी और कैवल्य मोक्ष चाहने वाले का तीनों आश्रमों में क्या प्रयोजन है, अर्थात् आश्रमधर्म केवल चित्त शुद्धि के निमित्त है उसकी चित्तशुद्धि होने पर वह सब निरर्थक है राजसी और तामसी दोनों दोषों को सदैव त्याग करे केवल सात्त्विकी मार्ग में नियत होकर आत्मा ही के द्वारा आत्मा को देखे, सब जीवों में नियत आत्मा को और आत्मा में नियत सब जीवमात्रों को अच्छेप्रकार देखता हुआ ऐसे लिप्त न होवे जैसे कि हंस आदि जल से निर्लिप्त होते हैं, देह को त्यागकर सुख दुःखादि से रहित शान्तचित्त होकर मुक्त ज्ञानी ऐसे प्रकार से पक्षी के समान परलोकमें मोक्ष को पाता है जैसे कि पक्षी नीचे स्थान से ऊपर को उड़ता है, हे तात ! इस स्थान पर मैं उन गाथाओं को कहता हूं जिनको कि पूर्व्वकाल में राजा ययाति ने गाया है और जो मोक्षशास्त्र में कुशल ब्राह्मणों से धारण की जाती हैं चिन्मात्र ब्रह्मरूपी ज्योति बुद्धि में ही होती है दूसरे स्थान में नहीं होती है और वह ज्योति सब जीवमात्रों में एकही है जिसका चित्त योगारूढ़ है वही उसका दर्शन कर सक्ता है, जिससे कोई भय नहीं करता है न आप किसी दूसरे से भय करता है न इच्छा करता है न निषेध करता है ऐसी दशा होने पर वह ब्रह्मभाव को पाता है जब सब जीवों में मन वाणी कर्म से पाप कर्म को नहीं करता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, जब मन के द्वारा आत्मा को परमात्मा में मिलाता है और मोह की उत्पन्न करनेवाली ईर्षा को त्याग कर काम मोह को पृथक् करता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, जब यह सुनने और

देखने के योग्य सब वस्तु और जीवमात्रों में समदर्शी और सुख दुःख आदि से रहित होता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, जब निन्दा स्तुति, सोना लोहा, सुख दुःख को समान देखता है वा शीतोष्णता, अर्थ, अनर्थ, प्रिय, अप्रिय, जीवन और मृत्यु को समान देखता और मानता है तब ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है जैसे कि कछुआ अंगों को फैलाकर फिर भीतर को सकोड़ लेता है उसीप्रकार संन्यासी को भी मन के द्वारा सब इन्द्रियों को जीतना योग्य है जैसे कि अँधेरेवाले घर में दीपक से ही पदार्थ देखते हैं उसी प्रकार ज्ञानरूप बड़े दीपक से आत्मा का दर्शन करना सम्भव है (आत्मारूप घर में अज्ञानरूप अँधेरा है) हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! मैं इन सब बातों को तुममें देखता हूं और जो दूसरी बात भी जानने के योग्य है उसको भी आप मूलसमेत जानते हो, हे ब्रह्मर्षे! आपके पिता की कृपा से और आपकी उपशिक्षता से आप सरीखे लोगों का आना इस देश में हुआ है, हे महामुने! उन व्यासजी की ही कृपा से यह मेरा दिव्य ज्ञान भी प्रकाश हुआ है जिसके कारण आप मुझ को विदित हुए हो, आपका विज्ञान अधिक है और आपकी गति ऐश्वर्य भी अधिक है तुम इसको नहीं जानते हो; बाल्यावस्था ही में संशय और बन्धन से उत्पन्न होनेवाले भय से विज्ञान की उत्पन्न दशा में भी उस गति को नहीं प्राप्त करते हो, मुझ सरीखे पुरुषसे संशय को निवृत्त करके और शुद्ध निश्चय से हृदय की गांठों को खोलकर उसगतिको प्राप्त करता है, आप विज्ञानी स्थिरबुद्धियुक्त और निर्लोभ हो परन्तु हे ब्रह्मन्! विना निश्चय कियेहुए उस मोक्ष को नहीं प्राप्त करता है, सुख दुःखादि में आपकी मुख्यता नहीं है लोभ नहीं है न नृत्य गीतादि में रुचि है न आपको शोक उत्पन्न होता है, बान्धवों में आप को बन्धन या संलग्नता और किसी प्रकार का भय भी नहीं है और आपकी बुद्धि में सुवर्ण वा पत्थर समान देखता हूं, मैं अथवा अन्य लोग जो ज्ञानी हैं वह सब भी आपको इस मार्ग में स्थिरबुद्धि जानते हैं जो सर्वोत्तम निरुपाधि और अविनाशी है हे ब्रह्मन्! इस लोकमें ब्राह्मण का जो फल है और जिस रूप का कि मोक्ष अर्थ है उन सबमें आपका पूरा २ बर्त्ताव है अब दूसरी कौन सी बात है जिसको आप पूछते हो ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकपञ्चाशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

एकसौ बावन का अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि, वह निश्चय करनेवाले ज्ञानी शुकदेवजी जनक के इस वचन को सुनकर बुद्धिरूप आत्मा के द्वारा आत्मा में नियत होकर और आत्मा को आत्माही से देखकर सिद्धमनोरथ महाआनन्दित और शान्तरूप वायु के समान धर्मधारी हिमालय पर्वत की इच्छा से मौन होकर चले और दैवयोग से उसी समय पर देवर्षि नारदजी भी सिद्ध चारणों समेत उस पर्वत के देखने को आये, वह पर्वत अप्सरा गणों से व्याप्त मन्द २ शब्दों से शब्दायमान हज़ारों किन्नर, गन्धर्व वा विचित्र जीव जीवकनाम पक्षियों से और मोरों की केकानाम वाणियों से शोभायमान राजहंस और कृष्णा गौओं से शोभित था और पक्षियों के राजा गरुड़ चारों लोकपाल और ऋषियों के समूहों समेत देवता लोग जिस पर सदैव निवास करते थे और सबका प्यारा उसको समझ कर सदैव वहां आया करते थे उसी पर्वत पर महात्मा विष्णुजी ने भी पुत्र की इच्छा से तप को किया था और उसी शैलपर बाल्यावस्था में स्वामिकार्तिकजी ने देवताओं को अपने अधीन किया और तीनों लोकों का अपमान करके शक्ति को पृथ्वीपर फेंका फिर संसार को तुच्छ करके स्वामिकार्त्तिकजी ने यह वचन कहा कि जो कोई दूसरा मुझसे अधिक है और वेदपाठी ब्राह्मण जिसको अधिक प्यारे हैं अथवा कोई अन्य भी जो ब्राह्मणों का माननेवाला है और तीनों लोकों में पराक्रमी है वह इस शक्ति को उठावे अथवा हिलाही दे यह वचन सुनकर सब लोक पीड्यमान हुए कि कौन इसको उठावे तदनन्तर भगवान् विष्णुजी ने सब देवताओं के समूह को भ्रान्तचित्त और अस्वस्थ व्याकुलता में प्रवृत्त और असुर राक्षसों से तिरस्कृत देख के यह विचार किया कि इस स्थान पर कौन सा काम उत्तम होगा, ऐसा विचार अप्रतिष्ठा को न सहकर उस अग्नि के पुत्र स्वामिकार्त्तिक के समक्ष में जाके उस प्रज्वलित शक्ति को अच्छे प्रकार से पकड़कर बायें हाथ से ही हिलाया तब महाबली विष्णु के शक्ति हिलाते ही उस शक्ति के साथ वन पर्वतों समेत सब पृथ्वी कांपने लगी जब वह शक्ति ऐसे धारण करने में समर्थ विष्णुजी ने केवल हिलाहीमात्र दी और स्कन्द के अपमान को न किया अर्थात् भगवान् ने इस को हिलाकर प्रह्लाद से यह वचन कहा कि कुमार के पराक्रम को देखो इस पराक्रम को दूसरा नहीं कर सक्ता है इस वचन को न सहकर प्रह्लाद ने शक्ति

के उठाने का निश्चय करके उस शक्ति को पकड़कर हिलाना चाहा परंतु उस से नहीं हिली तब तो वह महाशब्द करके पर्वत के शिखरपर मूर्च्छावान् होकर अति व्याकुलता से पृथ्वीपर गिरा और फिर शैलराज के उत्तर दिशा की ओर शिवजी ने जाकर हिमालय में सदैव तपस्या को किया उनका आश्रम अग्नि के समान देदीप्त है, उस पर्वत पर एक सूर्य्यनाम पर्वत है जो अशुद्ध अन्तःकरणवालों से महाकठिन और दुर्धर्ष है वहां यक्ष राक्षस दानव नहीं जासक्के उसका विस्तार दश योजन है और अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त है वहां भगवान् अग्निदेवता आप विराजमान रहते हैं हजार दिव्यवर्ष तक एक चरण से खड़े होकर महाप्रतापी अग्नि देवता श्रीमहादेवजी के अनेक विघ्नों को शान्त करते हुए वर्त्तमान हुए वहां महाव्रतधारी शिवजी ने देवताओं को अच्छेप्रकार से संतप्त किया और उस पर्वत की पूर्वदिशा में पहाड़ के किनारे में बड़े एकान्त स्थान पर बैठेहुए पराशरजी के पुत्र महातपस्वी व्यासजी ने अपने शिष्यों को वेद पढ़ाया उनके नाम महाभाग, महाज्ञानी, तपस्वी, सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिनि और पैल थे, जिस स्थानपर शिष्यों के मध्य वर्त्तमान व्यासजी थे उस पिता के उत्तम क्रीड़ा के योग्य आश्रम को शुकदेव जी ने देखा, जोकि अरणी के पुत्र शुकदेवजी अत्यन्त शुद्ध आत्मा और आकाश के सूर्य्य के समान तेजस्वी थे इस कारण व्यासजी ने अग्नि की ज्वाला के समान तेजस्वी और सूर्य के समान प्रकाशमान देश पर्वत वृक्षादि को प्रकाशित करते और सबसे स्पर्श योगयुक्त महात्मारूप धनुष से निकलेहुए बाण की समान आतेहुए पुत्र को देखा, उस अरणी के पुत्र महामुनि शुकदेवजी ने सन्मुख में आकर पिता के चरणों को स्पर्श करके दण्डवत् की और उन अपने पिता के शिष्यों से भी मिले फिर राजा जनक से जो जो वृत्तान्त हुआ था वह सब अपने पिता से प्रसन्नतापूर्वक सत्य-सत्य वर्णन किया इस प्रकार से पराशरजी के पुत्र व्यासमुनि ने अपने पुत्र और शिष्यों को वेद पढ़ाया और हिमालय के पृष्ठपर निवास किया एक समय वेदपाठी शान्तचित्त जितेन्द्रिय शिष्यों को चारोंओर बैठाकर व्यासजी पढ़ाते थे तब वह महातपस्वी शिष्यलोग अंगोंसमेत वेदों में निष्ठा को पाकर हाथ जोड़ के गुरु से बोले कि, हे गुरुदेव ! बड़े तेजस्वी यशस्वी और वृद्धि पाये हुए हम सब अब आप से एक अनुग्रह करवाना चाहते हैं उनके इस वचन को सुनकर ब्रह्मर्षि व्यासजी

ने उनसे कहा कि हे पुत्रो ! तुम उस बात को अवश्य कहो जो मेरे करने के योग्य है, हे राजन् ! गुरु के इस वचन को सुनकर शिष्यों ने फिर हाथजोड़ शिरसे गुरु को प्रणाम करके यह उत्तम वचन कहा कि हे महाराज, गुरुदेवजी ! जो आप हम सबपर प्रसन्न हैं ऐसी दशा में हमलोग धन्य हैं और यह वरदान आप से चाहते हैं कि आप का छठवां शिष्य संसार में कीर्त्ति को न पावै इस विषय में आप प्रसन्न हूजिये, हम आपके चार शिष्य हैं और गुरुपुत्र शुकदेवजी पांचवें हैं यही इस लोक में वेद की प्रतिष्ठा पावें यही हम वरदान चाहते हैं शिष्यों के वचन को सुनकर वेदार्थ और सिद्धान्तों समेत परलोक के अर्थ को जाननेवाले धर्मात्मा बुद्धिमान् व्यासजी ने शिष्यों से यह धर्मरूप कल्याणमय वचन कहा कि जैसे ब्राह्मण को वेद होता है उसीप्रकार सेवा करनेवाले के लिये सदैव धन आदि पदार्थ देना चाहिये, जो पुरुष ब्रह्मलोक में अचल स्थान को चाहता है यह उसका काम है आप सब लोग वृद्धि पायेहुए हो और यह वेद बहुत विस्तार को पावे, यह हमारा आशीर्वाद है जो शिष्य नहीं है वा व्रतरहित है अथवा अशुद्ध अन्तःकरण है उसको कभी न देना चाहिये शिष्यों के यह सब गुण अर्थ समेत जानने के योग्य हैं, जिसके व्रत और चाल चलन आदि की परीक्षा नहीं ली है उसको किसी दशा में भी यह विद्या देना योग्य नहीं है, जैसे कि शुद्ध सुवर्ण की परीक्षा गरम करके काटने और खींचने से करते हैं उसी प्रकार शिष्यों की परीक्षा कुलीनपन के गुण आदि से करनी चाहिये, और अपने शिष्यों को ऐसे स्थान पर तुम को आज्ञा नहीं करनी चाहिये जो कि आज्ञा के विपरीत और भय का करनेवाला हो, जैसी बुद्धि होती है वैसा ही पढ़ना होता है इसी प्रकार जैसे को वैसा ही फल विद्या भी देगी, सब अगम्य स्थानों को सुगम करो और सब कल्याणों को देखो ब्राह्मण को आगे करके चारों वर्णों को सुनावे यही वेद का पढ़ना है और महाकर्म है इसलोक में ब्रह्माजी ने देवताओं की स्तुति के लिये वेदों को उत्पन्न किया है जो मनुष्य भूल से वेदपाठी ब्राह्मण से कठोरतापूर्वक दुर्वचन कहता है वह उस ब्राह्मण के शाप से निस्सन्देह नाश हो जाता है और जो ब्राह्मण को अधर्म से उत्तर देता है या अधर्म से ही प्रश्न करता है वह भी नष्ट हो जाता है अथवा जो कोई वेदपाठी से विरोध करता है वह भी भ्रष्ट हो जाता है यह सब वेद की विधि तुम से वर्णन की और तुम शिष्यों

का उपकार करो यही बुद्धि तुम्हारे चित्त में सदैव नियत हो ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे द्विपञ्चाशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

एकसौ तिरपन का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, इस परस्पर वार्त्तालाप के पीछे व्यासजी के शिष्य जो बड़े तपस्वी तेजस्वी और प्रसन्न चित्त थे वह सब व्यासजी के इन वचनों को सुन कर परस्पर में एक एक से स्नेहपूर्वक मिले, भगवान् गुरुजी ने जो उपदेश किया वह वर्त्तमान और भविष्यत् काल में हमारा हितकारी है वह उपदेश हमारे चित्त में नियत हुआ हम सब उसको उसी प्रकार से करेंगे, फिर अत्यन्त प्रसन्न चित्त और वार्त्तालाप में प्रवीण उन शिष्यों ने परस्पर में इस प्रकार कह कर फिर गुरुजी को जतलाया कि हे महामुने, प्रभो ! हम वेदों को बहुत प्रकार का करने को पृथ्वी पर जाना चाहते हैं इसमें क्या आपकी आज्ञा है तदनन्तर व्यासजी ने शिष्यों के वचनों को सुन कर धर्म अर्थ संयुक्त हितकारी वचनों को कहा, कि जो तुम को इच्छा है तो पृथ्वी पर या स्वर्ग में जहां चाहो वहां जाओ परन्तु तुम को सावधान करना उचित है क्योंकि वेद विहित तर्कणाओं से युक्त अनेक अर्थवाला है, तदनन्तर सत्यवक्ता गुरु से आज्ञा लेकर वह सब शिष्य व्यासजी की प्रदक्षिणा करके मस्तक को नवा २ दण्डवत् कर चले गये, और पृथ्वी पर उतर कर उन शिष्यों ने चातुर्होत्र मन्त्रों को वेद से विचार किया और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों को पूजन कराते हुए उन्हीं द्विजन्माओं से अन्य भी पूजित होकर आनन्द से गृह में प्रीतिमान् हो यज्ञ कराने और पढ़ाने में प्रवृत्त होकर श्रीमान् और कीर्त्तिमान् जगत् में विख्यात हुए, पर्वत से शिष्यों के जाने के पीछे पुत्र को साथ लिये बुद्धिमान् श्रीव्यासदेवजी मौनतापूर्वक ध्यान में प्रवृत्त होकर एकान्त में विराजमान हुए, तब महातपस्वी नारदजी ने व्यासजी को आश्रमरूपी स्थान में देख कर समय के अनुसार बड़ी मृदुतापूर्वक उनसे यह वचन कहा कि हे वशिष्ठगोत्रिन् ! विना वेदघोष के आप एकान्त में मौन होकर ध्यानावस्थित अकेले चिन्तायुक्त क्यों बैठे हो विना वेद होने से यह पर्वत ऐसे शोभायमान नहीं लगता है जैसे कि आकाश धूल अन्धकार और राहु से ग्रसा हुआ शोभा नहीं देता है, देव ऋषियों के समूहों से व्याप्त होकर भी विना वेदों के यह पर्वत पूर्व के समान नहीं शोभित होता है ऐसा विदित होता है जैसा कि

निषादों का स्थान हो बड़े तेजस्वी ऋषि देवता गन्धर्व भी वेदरूप धन से रहित होकर शोभित नहीं मालूम होते हैं, व्यासजी ने नारदजी के वचनों को सुन कर उत्तर दिया कि हे वेदविदांवर! जो आप कहते हैं यह मेरे मन की बात है क्योंकि आप सर्वज्ञ और वेदज्ञ होकर सर्वत्र उत्तम बातों के देखने वाले हो तीनों लोकों का वृत्तान्त आपकी मति में नियत है सो हे ब्रह्मर्षे! आप आज्ञा कीजिये कि आप का क्या शिष्टाचार करूं जो मेरे योग्य है यहां शिष्यों से पृथक् होकर मेरा चित्त अप्रसन्न है, नारदजी बोले कि अभ्यास न करना वेद का मल है, व्रत न करना ब्राह्मण का मल है और वाहीका जातिवाले मनुष्य पृथ्वी का मल हैं और उत्तम २ पदार्थों के देखने की उत्कण्ठा होना स्त्रियों का मल है, आप अपने पुत्रसमेत वेदरूप धन के द्वारा राक्षसादि के भयरूप अन्धकार को निवृत्त करते हुए वेदों को पढ़ो, भीष्मजी बोले कि उत्तम धर्मज्ञ वेदाभ्यास में दृढ़व्रतधारी व्यासजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजी से कहा कि ऐसाही हो, तदनन्तर अपने पुत्र शुकदेवजी समेत बड़े उच्चस्वरपूर्वक स्वर की रीतियुक्त वेदों के शब्दों से लोकों को पूरित करके व्यासजी ने वेदों का अभ्यास किया, उन दोनों महातेजस्वी पुरुषों के वेदघोष करते ही समुद्र को भी व्यथित करनेवाला वायु महावेगयुक्त होकर चलने लगा, तब व्यासजी ने पुत्र को वेद के पढ़ने से निषेध किया फिर शुकदेवजी ने अपूर्व बातों के देखने की उत्कण्ठा से अपने पिता से निषेध का कारण पूछा और कहा कि हे ब्रह्मन्! यह वायु कहां से उत्पन्न हुआ आप इसका सब वृत्तान्त मूलसमेत वर्णन करने को योग्य हैं, व्यासजी ने शुकदेवजी के इस वचन को सुन कर बड़े आश्चर्यपूर्वक इस आंधी के विषय में यह वचन कहा कि तेरे दिव्य दृष्टि उत्पन्न हुई है और तेरा चित्त भी अति निर्मल है अर्थात् तमोगुण रजोगुण से रहित बुद्धि में नियत है, जैसे कि दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखते हो उसीप्रकार बुद्धि से आत्मा को देखो और आपही वेदार्थों को खण्डन मण्डन की तर्कणाओं से सिद्ध करके बुद्धि से ही अच्छे प्रकार विचार करो, सर्वव्यापी परमात्मा से सम्बन्ध रखनेवाला जो देवयान नाम मार्ग है उसमें विचरनेवाला अर्थात् सात्त्विक उपासकों के आवागमनरहित विष्णुलोक में पहुँचानेवाला वायु देवयानचर कहा जाता है और पितृयानसम्बन्धी वायु तामस कहा जाता है यह दोनों वायु दोनों मार्गों को पाकर

स्वर्ग और पाताल को जाते हैं, पिण्डरूप पृथ्वी और ब्रह्माण्डरूप अन्तरिक्ष में जहां २ वायु चलते हैं वह सब सात मार्ग हैं उनको क्रम से जानो, वहां पर महाबली साध्यनाम देवगण हैं उनका समाननाम पुत्र उत्पन्न हुआ वह बड़ी कठिनता से विजय होता है, उसका पुत्र उदान हुआ उसका पुत्र व्यान व्यान का पुत्र अपान और उसीका दूसरा भाई प्राण भी है, शत्रुओं का संतप्त करने वाला दुराधर्ष वह प्राणही है अर्थात् प्राण का दूसरा रूप नहीं है उनके पृथक्-पृथक् कर्मों को मूलसमेत कहता हूं वायु प्राणियों की चेष्टा को सब ओरसे पृथक्-पृथक् वर्त्तमान करता है जीवों के जीवनमूल होने से उसका प्राण नाम है जो धूम से वा ऊष्मा से उत्पन्न होनेवाले बादलों के समूहों को इधर उधर करता है वह प्रवह नाम प्रथम वायु है वह प्रथम मार्ग में धूम और ऊष्मा से पैदा होनेवाले बादलों के समूहों को चलायमान करता है वही वायु वर्षाऋतु पाकर बिजलीरूप होकर महातेजस्वी होजाता है और गर्जना करता हुआ दूसरा वायु चलता है अथवा जो चन्द्रमा आदि प्रकाशमान पदार्थों को सदैव उदय करता है वह आवह नाम वायु कहाता है, ज्ञानी पुरुष जिसको देह के भीतर आदान वा अपान कहते हैं और जो चारों समुद्र से जल को उठाता है और जो जल को उठाकर आकाश में लेजाकर जीमूतनाम बादलों के सुपुर्द करता है और जो जीमूतों को जल में मिलाकर पर्जन्यनाम बादलों को सुपुर्द करता है वह तीसरा उद्वहनाम बड़ा वायु है, जिससे खिचे हुए एकस्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाए हुए बादल पृथक्२ होते हैं और जिन्होंने वर्षा के लिये कर्म को प्रारम्भ किया है वह घन नाम जल से भरेहुए और अघननाम विना जल के बादल हैं, जिस वायु से मिले हुए बादल पृथक्२ होजाते हैं इसीकारण उन गर्जनेवालों के नाम नद होते हैं और रक्षा के निमित्त प्रकट होनेवाले जल से रहित बादल भी मेघही नाम से प्रसिद्ध बोले जाते हैं अर्थात् रस से रहित फल के समान नाश को नहीं पाते हैं, जो वायु जीवों के विमानों को आकाश मार्ग होकर चलाता है वह पर्वतों का तोड़नेवाला चौथा वायु संवह नाम से बोला जाता है, वृक्ष वा पर्वतों को तोड़नेवाले रूखे वेगवान् वायुसे खण्डित होनेवाले मेघ जिस वायु के साथी होते हैं उसको बलाहक कहते हैं अर्थात् जो दूसरे के बल या टक्कर से चलते हैं वह बलाहक कहाते हैं, संसार का नाश सूचन करनेवाले धूम्रकेतु संवर्त्त नाम मेघादिक जो उत्पात हैं और जिससे उन्हों की

चेष्टा होती है वह आकाश का स्तनयित्नु नाम बड़ा शीघ्रगामी पांचवां वायु विवह नाम कहाता है, जिस वायु में दिव्य और पारिप्लव नाम मेघ आकाश मार्ग होकर चलते हैं और जो आकाशगंगा के पवित्र जल को आकाश में नियत करके आप स्थिर होता है और जिसमें दूरसे टक्कर खाकर एकज्योतिवाला सूर्य्य हज़ारों किरणों का उत्पत्तिस्थान होता है और उस सूर्य्य से पृथ्वी प्रकाशमान होती है और जिससे कलारहित चन्द्रमा पूर्णमण्डल और वृद्धियुक्त होता है वह प्रवह नाम छठवां वायु कहाता है जो वायु कल्प के अन्त में सब प्राणियों के प्राणों को खींचता है और मृत्यु वा यमराज दोनों उसके पीछे चलते हैं अर्थात् वह इन दोनों का भी चलानेवाला है; हे वेदान्त विचार करनेवाले! तुम बाह्याभ्यन्तरीय विषयों से रहित बुद्धि के द्वारा अच्छी रीति से साक्षात्कार करो, और जो वायु उन पुरुषों के मोक्ष के लिये कल्पना किया जाता है जो ध्यान और अभ्यास में क्रीड़ा करनेवाले हैं, दक्षप्रजापति के दशहज़ार पुत्रों ने भी उसीको पाकर बड़े वेग से ब्रह्माण्ड के अन्त को पाया है—अब सातवें वायु को कहता हूं—जिस वायु से संपर्क होनेवाला ब्रह्मरूप योगी जाता है और फिर लौट कर नहीं आता है वह दुःख से उल्लंघन होनेवाला सबसे परे परावह नाम वायु है, यह अखण्ड चैतन्यजन्य अर्थात् उसीके रूपभेद सबमें वर्त्तमान सबको धारण करनेवाले अपूर्व वायु नियत होते हैं और चलते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है जो यह उत्तम पर्वत अकस्मात् उस कठोर वेगवाले वायुसे कम्पायमान हुआ, हे तात! जब सर्वव्यापी परमात्मा के वेग से चलायमान उनका श्वासरूप यह वेद अकस्मात् उच्चस्वर से पढ़ा जाता है तब यह जगत् पीड्यमान होता है इस हेतु से कि मूलपुरुष के श्वास की वायु अकस्मात् ऊंचे स्वर से उत्पन्न होकर मत कहीं सब संसार का नाशही करदे, इसीकारण से ब्रह्मज्ञानी पुरुष वायु के कठोर और वेगयुक्त चलने पर वेदों को नहीं पढ़ते हैं क्योंकि वायु से वायु को ही भय होना कहा गया और वह जगत्‌रूप या वेदरूप ब्रह्म भी पीड़ित होता है तब यह वचन कहकर और अपने पुत्रको पढ़ने की आज्ञा देकर व्यासजी आकाशगंगा को गये ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे त्रिपञ्चाशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

एकसौ चौवन का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, व्यासजी के जातेही स्थान के भीतर एकान्त स्थान में

नियत वेदपाठ में तदाकार शुकदेवजी के पास जब नारदजी आये तब शुकदेव ज़ी ने सन्मुख आयेहुए देवर्षि नारदजी को देखकर वेद के अर्थों के पूछने की इच्छा से अर्घ्यपाद्यपूर्वक वेदोक्त बुद्धि से उनका पूजन किया, फिर प्रसन्न चित्त होकर नारदजी बोले कि, हे धर्म्मधारियों में श्रेष्ठ, पुत्र! मैं प्रसन्न होकर तुम्हारा कौन सा कल्याण करूं भीष्मजी बोले हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! नारदजी के इस वचन को सुनकर शुकदेवजी ने उत्तर दिया कि इस संसार में जो महत हो अर्थात् बड़ा हो उसीसे मुझ को मिलाओ, नारदजी बोले कि पूर्वसमय में भगवान् सनत्कुमारजी ने शुद्ध अन्तःकरण और तत्त्वाभिलाषी ऋषियों से यह वचन कहा कि विद्या के समान आंख नहीं है त्याग के समान सुख नहीं, पापकर्म्म से पृथक् उत्तम प्रकृति श्रेष्ठवृत्ति और सदाचार यह महाकल्याण हैं, जो दुःखरूप मनुष्य शरीर को पाकर उसमें प्रवृत्त चित्त होता है वह मोह को प्राप्त होता है और दुःख से नहीं छूटसक्ता है क्योंकि संसार में लगना ही दुःख का मूल है, संसार में प्रवृत्त चित्त मनुष्य की बुद्धि मोहजाल की बढ़ानेवाली चलायमान होती है मोहजाल में फँसा हुआ जीव इसलोक और परलोक दोनों में दुःख को भोगता है कल्याण चाहनेवाले मनुष्य अनेक युक्तियों के द्वारा काम क्रोधादि के जीतने के योग्य हैं क्योंकि वह दोनों कल्याण के नाश के लिये सदैव तैयार रहते हैं, सदैव क्रोध से तप की रक्षा करे और आलस्य से लक्ष्मीजीकी रक्षा करे और प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा से विद्या की और प्रमाद से आत्मा की रक्षा करे, दयाधर्मही उत्तम है शान्त होनाही बड़ा पराक्रम है और ज्ञानों में आत्मज्ञान श्रेष्ठ है और सत्य से बड़ा धर्म कोई नहीं है, सत्य बोलना कल्याण रूप है और सत्य से भी वह उत्तम है जो हितकारी बात कहै इस निमित्त जीवों का जो प्रियवचन या प्राप्त होनेवाला हित है वह सत्यता ही जानो, जो सम्पूर्ण प्रारम्भ कर्मों का त्याग करनेवाला इच्छा और परिग्रह से रहित है और जिसने सर्वस्व त्याग भी किया है वही ज्ञानी और महापण्डित है, जो पुरुष आत्मा के वशीभूत इन्द्रियों से विषयादिकों को भोगते हैं उनमें वह पुरुष श्रेष्ठ है जो उन विषयादि में चित्त न लगाकर रूपान्तर दशा से रहित सावधान होता है उन आत्मारूप इन्द्रियों के साथ अथवा उनसे पृथक् भी उनसे सम्बन्ध नहीं रखता है वह विमुक्त पुरुष शीघ्र ही कल्याणपद को पाता है, हे मुने! सदैव जीवधारियों में जिसको दृष्टि स्पर्श और वचन सम्बन्ध नहीं

है वह भी परमकल्याण का भागी है कभी किसी जीवमात्र को न मारे और देवयानमार्ग में वर्त्तमान होकर विचरे इस जन्म को पाकर किसी के साथ शत्रुता न करे कुछ पास न रखना सन्तोषयुक्त चपलतारहित होना भी महाकल्याणकारी है जोकि मन को जीतकर आत्मज्ञानी हैं और स्त्री आदि परिग्रह को अत्यन्त त्यागकर जितेन्द्रिय और दुर्व्यसनों से रहित अशोक स्थान में नियत हैं और जो संसारी विषयों से पृथक् हैं वह शोच कभी नहीं करते हैं, जो इन विषयों को त्यागेगा वह दुःखरूप तीनों तापों से छूटेगा सदैव तप करनेवाले जितेन्द्रिय सदैव अजय को विजय करने के इच्छावान् संगों से असंगी मुनि को मोक्ष का अधिकारी होना उचित है, गुणों के संगों में प्रवृत्त न होनेवाला सदैव एकान्त विचार करनेवाला ब्राह्मण थोड़े ही समय में असादृश्य सुख को पाता है, जो एकाकी मुनि उन जीवधारियों में घूमता है जो कि सुख दुःखादि योगों में प्रवृत्त है उसको विज्ञान से तृप्त जानो क्योंकि ज्ञान से तृप्त पुरुष शोच नहीं करता है, उत्तम कर्म्मों से देवभाव को पाता है और दोनों अच्छे बुरे कर्म्मों से मनुष्य योनि को पाता है और बुरे कर्मों से महानीच योनियों में जन्म को पाता है और जरामृत्यु और अनेक दुःखों से वारंवार पीड़ित किया हुआ संसार में पकाया जाता है उसको तुम कैसे नहीं जानते हो, यद्यपि अमंगल में मंगल बुद्धि और चल में अचल अनर्थ में अर्थ बुद्धि भी हो तो भी आप किस निमित्त सावधान नहीं होते हो, अपने मोह के कारण देहजन्य अनेक जालों से और बन्धनों से बँधेहुए आपे को कैसे नहीं जानते हो और रेशम के कीड़े के समान अपने को आप ही बन्धन में करते हुए भी नहीं जानते इसलोक में स्त्री आदि के परिग्रह से तृप्ति हो वह परिग्रह निश्चय करके दोषयुक्त है वह रेशम का कीड़ा परिग्रह से ही माराजाता है, पुत्र स्त्री और कुटुम्ब में आसक्त चित्त मनुष्य बड़ी पीड़ा पाते हैं उनकी वैसी ही दशा है जैसी कि वृद्ध जंगली हाथी कीच के तालाब में फँसकर फिर नहीं निकल सक्ता है, प्रीतिरूपी रस्सी से खैंचेहुए बड़े दुःखी जीवों को देखो वह ऐसी दशा में होते हैं जैसे बड़ी रस्सियों के जाल में फँसी हुई मछलियां सूखे स्थल में धरी हों, पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब और अपना संचित आदि अनेक संसारी पदार्थ सब नाशवान् हैं केवल पुण्य पाप के सिवाय अपना यहां कुछ भी नहीं है, जब सबको त्याग करके तुझ असहाय को चलना है

तो फिर क्यों अनर्थ में फँसता है और अपने मोक्षरूप अर्थ का अभ्यास नहीं करता है, तुम अकेले ही उस अन्धकार वन के मार्ग में कैसे जाओगे वह वन निवासस्थान और रक्षास्थान मार्ग के भोजन और आबादी से रहित है, तुझ यात्रा करनेवाले के पीछे तेरे पापपुण्य के सिवाय कोई भी नहीं जायगा, विद्या, कर्म्म, शौच और बड़ा ज्ञान यही केवल मोक्ष की प्राप्ति के लिये अभ्यास किये जाते हैं और सिद्ध अर्थ अर्थात् मुक्तपुरुष उनसे छूटजाता है, वह रस्सी वारंवार बांधनेवाली है जो कि बहुतों में मनुष्य की प्रीति होती है उस रस्सी को शुभकर्म्मी मनुष्य काटकर जाते हैं और पापी इसको काट नहीं सक्ते हैं, जिसमें रूप किनारा है, मन प्रवाह, स्पर्श द्वीप, भाव रस, गन्ध कीच, और शब्द जल है और स्वर्ग के मार्ग में अगम्यरूप है अर्थात् स्वर्गमार्ग को रोकनेवाली है, शान्ति नौकाचलाने का दण्ड है और धर्म्म में नियत रहना नाव खींचने की रस्सी है त्याग वायु है ऐसी नौका के द्वारा वह नदी तरने के योग्य है उस नावरूप मार्ग में वर्त्तमान तीक्ष्ण वेगवाली नदी को पार होना चाहिये, धर्म्म, अधर्म्म, सत्य, मिथ्या और जिसबुद्धि से सत्य मिथ्या करते हो उस बुद्धि को त्याग करो, संकल्प न करने से धर्म्म को और अनिच्छा से अधर्म्म को त्याग करो और दोनों सत्य मिथ्या को बुद्धि से त्याग करो और परमात्माके निश्चय से बुद्धि को भी त्यागो, जिसमें कमर की हड्डियांरूप खम्भा नाड़ीरूप रस्सियों से बँधाहुआ मांस रुधिर से लिपा देह के चर्म से मढ़ा दुर्गन्ध मूत्रपुरीष आदि से भराहुआ बुढ़ापे और शोक से जीर्णरोग का घर रजोगुण से आतुर है ऐसे भूतावास को अर्थात् देह के निवासस्थान को त्यागकरो यह विश्व और विश्व के सिवाय भी जो कुछ है सब पञ्चतत्त्वरूप है और जो देह सेभी महत् है वह बुद्धिपञ्चइन्द्रिय पञ्चप्राण तीनोंगुणों का समूह यह सत्रह वस्तुओंका ढेर अव्यक्तनाम कहाता है, यहां सब इन्द्रियों के शब्दादि पञ्च विषय और दो विषय मनबुद्धि के गुप्तप्रकटनाम युक्त यह व्यक्त अव्यक्त रूप गुण बीस प्रकार का बोलाजाता है, इन सबसे युक्तहोनेवाले को पुरुष कहते हैं धर्म्म, अर्थ, काम यह त्रिवर्ग और सुख; दुःख, जीवन, मरण इन सबको जो पुरुष मूलसमेत जानता है वह उत्पत्ति लय के स्थानरूप ब्रह्म को जानता है ज्ञानियों का जो कुछ सार पदार्थ है वह क्रम से जानना योग्य है, इन्द्रियों से जो जो वस्तु लीजाती हैं उनका नाम व्यक्त है और जो इन्द्रियों के घेरे से बाहर हैं और कारणरूप देहसे

पकड़ने के योग्य हैं वह अव्यक्त कहीजाती हैं यही मर्यादा है इन्द्रियों से सावधान वह जीवात्मा धाराओं के समान तृप्त होता है जोकि लोक में फैले हुए आत्मा को और आत्मा में फैलेहुए लोकों को देखता है, सदैव सब दशा में जीवों को और सगुण निर्गुण ब्रह्म को देखनेवाले पुरुष की ज्ञानमूल शक्ति नाश नहीं होती है, ब्रह्मरूप ज्ञानी का योग पापकर्म्मों से प्राप्त नहीं होता है मोह से उत्पन्न अनेकप्रकार के क्लेशों को ज्ञान से उल्लंघन करता है, लोक में प्रकाशरूप बुद्धि से लोक का मार्ग नाश नहीं होता है, मोक्ष की युक्ति जाननेवाले परमेश्वर ने आत्मा में नियत जीव का आदि अन्तरहित न्यूनता से जुदा अकर्त्तारूप वर्णन किया है जो जीव अपने २ कियेहुए उन कर्म्मों से सदैव दुःखी हैं वह दुःख के नाश के अर्थ जीवों को अनेकप्रकार से मारते हैं फिर जीव दूसरे नवीन अनेक कर्म्मों को प्राप्त करता है, और उन्हीं कर्म्मों से ऐसे दुःख पाता है जैसे कि रोगी अपथ्य वस्तु को खाकर पीड़ित होता है वारंवार मोह से अन्धा होकर दुःखों में सुख मानता है और सदैव मथन के समान बांधा और मथाजाता है फिर वह बँधा हुआ जीव अपने कर्म्मों की मुख्य योनि को प्रकट करता है और अत्यन्त पीड़ित होकर संसार में घूमता है सो तुम बन्धन से और कर्मों से जुदे होकर सर्वज्ञ सर्वजित् सिद्धरूप और संसार के भावों से रहित होकर तप के बल से दृष्टिदोष से भी उत्पन्न हुए नवीन बन्धन को पृथक् करके सुख को उदय करनेवाली बाधारहित सिद्धि को अच्छेप्रकार से प्राप्तकरो ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे चतुष्पञ्चाशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

एकसौ पचपन का अध्याय ॥

नारदजी बोले कि, शोक के नाश के लिये शोकरहित शान्ति उत्पन्न करनेवाले आनन्दरूप शास्त्र को सुनकर बुद्धि को पाता है और उसको पाकर सुख से वृद्धि पाता है, शोक भय के हजारों स्थान प्रतिदिन अज्ञानी में प्रवेश करते हैं पण्डित में कभी नहीं प्रवेश करते, इसकारण अप्रिय के नाश के निमित्त मैं एक इतिहास को कहता हूं जो बुद्धि स्वाधीनता में नियत होती है तो शोक का नाशहोता है, अप्रिय के मेल से और प्रिय के वियोग से अत्यन्त निर्बुद्धि मनुष्य मानसी दुःखों से संयुक्त होते हैं, धन आदि के व्यय होजाने पर जो उस धन आदि के गुणों को नहीं चिन्तवन करते हैं उनकी प्रतिष्ठा करनेवाले मनुष्य की प्रीतिरूप फांसी पृथक् नहीं होती है अर्थात् उसमें फँसाही रहता है, जिसमें प्रीति

उत्पन्न होती है उसका अपूर्व दृष्ट होवे और जब अप्रियता से देह को दुःखित जानता है तभी वैराग्य को प्राप्त होता है, जो गत बात को शोचता है वह न अर्थ है न धर्म्म है और न यश है जिसका अर्थ नाश होजाता है वह फिरकर नहीं आता है सब जीवमात्र जैसे कि गुणों से मिलते हैं वैसेही जुदे भी होते हैं यह शोक का स्थल केवल एक जीवधारी काही नहीं है, किन्तु सबका है जो पुरुष भूतकाल के मृतक को अथवा नाश प्राप्त होनेवाले को शोचता है वह दुःख से दुःख को पाता है अर्थात् दुःख शोक दोनों अनर्थों को प्राप्त करता है, जो पुरुष लोकों में सन्तान आदि को देखकर बुद्धि के द्वारा अश्रुपात नहीं करता है उस ब्रह्मदर्शन करनेवाले को अश्रुपात करनेवाला कर्म्म प्राप्त नहीं होता है, देह और मन के दुःखों का रोग सन्मुख वर्त्तमान होनेपर जिसमें कि कोई उपाय नहीं करसक्ता है उसमें चिन्ता भी न करे, दुःख की औषधि यही है जो इसको नहीं शोचे शोचाहुआ दूर नहीं होताहै किन्तु और भी वृद्धि पाता है, बुद्धि के द्वारा चित्त के दुःख को और औषधि से देह के दुःख को निवृत्तकरे यह विज्ञान की सामर्थ्य है बालकरूप अज्ञानियों से बराबरी न करे, युवावस्था, रूप, जीवन धन का ढेर, नीरोगता, मित्रों के साथ निवास इत्यादि सब वस्तु सदैव नहीं रहती हैं इस हेतु से इन वस्तुओं में बुद्धिमान् पण्डित लोग लोभ न करें, अकेला आप सम्पूर्ण प्रदेश का शोचकरने को योग्य नहीं है शोच न करता हुआ रोग के स्थानों को देखकर उनकी चिकित्सा करे, जीवन में निस्संदेह सुख से भी अधिक दुःख हैं इन्द्रियों के विषयों में जो प्रीति करना है वही मोह से अप्रियकारी मृत्यु है, जो मनुष्य दोनों सुख दुःखों को चारों ओर से त्याग करता है वह अनन्त ब्रह्म को पाता है और पण्डित लोग उसको नहीं शोचते हैं धन आदि अर्थों का त्याग करते हैं इसहेतु से जो दुःखरूप हैं वह विना पालन करने से सुखरूप हो जाते हैं और जो दुःख से प्राप्त होते हैं उनके नाश को नहीं शोचते हैं कोई २ धन की मुख्य दशा को पाकर तृप्त न होनेवाले पुरुष नाशको पाते हैं इसी कारण पण्डित लोग सन्तोष को धारण करते हैं, सब धन आदि के समूह अन्त में नाशवान् हैं और वृद्धि प्राप्त करनेवाले अन्त में गिरनेवाले हैं सब मिलनेवाले अन्त को वियोगी होनेवाले हैं जीवन अन्त में मृत्यु रखनेवाला है, लोभ का अन्त नहीं है सन्तुष्टता में बड़ा आनन्द है इससे पण्डित लोग संतोषरूपी धन को सर्वोत्तम समझते हैं, सदैव जाती हुई अवस्था अपने

नाशवान् देहों में एक पलक भी नियत नहीं रहती है इस निमित्त शोच क्यों करना चाहिये, जो पुरुष मोक्षमार्ग में वर्त्तमान हैं वह बुद्धि के द्वारा चित्त से भी परे भाव को विचार कर परमगति को देखके शोच नहीं करते हैं, इन धन संचय करनेवाले और मनोरथों से अतृप्त मनुष्यों को मृत्यु ऐसे लेकर जाती है जैसे कि पशु को व्याघ्र लेजाता है, तो भी बुद्धिमान् पुरुष दुःख के दूर होने का उपाय विचार से अवश्य करे और शोचरहित होकर उपाय को विचार करे और जीवन्मुक्त होकर काम क्रोधादिक के दोषों से पृथक् हो जाय, धनी वा निर्धन को शब्दादि विषयों में उपभोग से अधिक कुछ नहीं है, विषयों के योग से पहला दुःख जीवों का निवासस्थान नहीं है विषयों के वियोग से ही सबको दुःख उत्पन्न होता है इसलिये मुख्य दशा में नियत होकर शोच नहीं करे, शिश्नेन्द्रिय और उदर को धैर्य से रक्षा करे, हाथ पैरों की रक्षा नेत्रों से करे और आंख कान की रक्षा मन के द्वारा करे और मनवाणी की रक्षा विद्या के द्वारा करे, निन्दास्तुति में अनिच्छा और प्रीति को दूर करके जो बन्धन से पृथक् होकर विचरे वही सुखी है और पण्डित है, जो ब्रह्मविद्या में प्रीति करनेवाला ज्ञानी अनिच्छा से एक स्थान पर नियत विषयों से जुदा होकर केवल आत्माहीं को अपना साथी बनाकर विचारता है वही महासुखी होता है ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे पञ्चपञ्चाशदुपरि शततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

एकसौ छप्पन का अध्याय ॥

नारदजी बोले कि, जब सुख दुःख का विपर्यास सन्मुख वर्त्तमान होता है तब उसकी रक्षा बुद्धि से नहीं होती है और अच्छे प्रकार से प्राप्त होनेवाले उपाय भी रक्षा नहीं करसक्ते हैं, स्वभाव से उपाय में नियत होवे क्योंकि उपाय करनेवाला दुःखी नहीं होता है अपने प्यारे आत्मा को जरामृत्यु और अनेक रोगों से छुटावे, देह और मन के रोग देहों को ऐसे पीड़ा देते हैं जैसे अच्छे बलवान् के धनुष से छोड़े हुए तीक्ष्णबाण भेदन करते हैं, लोभों से पीड़ित जीवन की इच्छा करनेवाले परतन्त्र प्राणी का शरीर नाश के निमित्त आकर्षण किया जाता है यह दिन और रात्रि जीवों की आयुर्दाय को लेकर बराबर व्यतीत होते चले जाते हैं और लौट कर फिर इस प्रकार नहीं आते हैं जैसे कि नदियों का प्रवाह फिर नहीं लौटता, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष का यह बड़ा आवागमन जन्मधारी जीवों को वृद्ध कर देता है और एक पलकमात्र को भी

स्थिर नहीं होता है यह जरारहित सूर्य वारंवार उदय और अस्त होता है और जीवों के सुख दुःखों को निर्बल करता है, यह रात्रि भी मनुष्यों की उन प्रिय अप्रिय वस्तुओं को लेकर समाप्त हो जाती है जिनको कि पूर्व में न देखा था न किसी ओर से उनके आने की शंका थी, यह इच्छा से जो चाहै तो उनमें से उसको तभी प्राप्त करे जब कि पुरुष का कर्म फल दूसरे के आधीन न होवे परन्तु जितेन्द्रिय बुद्धिमान् सावधान सन्तलोग सब कर्मों से पृथक् अर्थात् कर्मफल के विना दृष्ट आते हैं और कितने ही गुणों से रहित आशीर्वाद न पानेवाले नीच पुरुष अज्ञानी भी मनोरथ पानेवाले दिखाई देते हैं, जीवधारियों में कितने ही मनुष्य सदैव हिंसा और लोक के ठगने में उपस्थित हैं वह सुखों में ही वृद्ध होते हैं, किसी २ निकम्मे बैठे हुए मनुष्य के पास भी लक्ष्मी निवास करती है और कोई २ कर्मप्रवृत्त मनुष्य प्राप्त होने के योग्य वस्तु को भी नहीं पाता है, पुरुष के अपराध को कहता हूं स्वभाव से ही वीर्य दूसरे स्थान में उत्पन्न हुआ और दूसरे ही में फिर भी जाता है, उस योनि में संयुक्त वीर्य का गर्भ उत्पन्न होता है अथवा नहीं भी उत्पन्न होता है उसका होना खपुष्प के समान पाया जाता है पुत्र की इच्छा करनेवाले और पिछली संतान चाहनेवाले, सिद्धि में उपाय करनेवाले कितने ही पुरुषों का वीर्यरूप बीज नहीं उपजता है जैसे कि क्रोध भरे हुए महाविषवाले सर्प से भय होता है इसी प्रकार गर्भ से भयभीत मनुष्यों का पुत्र भी बड़ी अवस्था वाला उत्पन्न होता है मानों मरकर जीता है, देवताओं को पूजकर तपस्या करके पुत्र की इच्छावाले पुरुष दुःखों से दश महीने तक गर्भ में रक्खे हुए कुलीन पुत्र को भी दोष लगानेवाले होते हैं, उन्हीं मंगलों से प्राप्त होनेवाले अन्य पुत्र पिता के संचित किये हुए धन धान्य और बड़े २ उत्तम भोगों के भोगने के लिये उत्पन्न होते हैं, परस्पर में अच्छी रीति से सलाह करके स्त्री पुरुष के भोग में योनि के द्वारा गर्भ ऐसे प्राप्त होता है जैसे कि देह में प्रवेश करनेवाला उपद्रव प्रकट होता है, शीघ्रही दूसरे शरीर को प्राप्त करते हैं अर्थात् स्वर्ग नरक का वीर्यरूप सूक्ष्म देह जिसका नाशवान् हुआ और मांस रुधिर रखनेवाले देह से जिसकी चेष्टा है उस शरीरवाले प्राणी को देह के त्यागने के समय दूसरा देह प्राप्त होता है, मरने के समय दूसरी देह में भस्म और नाश पानेवाले जीव को देखकर विपरीतदशा से क्षणमात्र में ही नाश होनेवाला

दूसरा देह कर्म सम्बन्ध से ऐसे उत्पन्न होता है जैसे कि नौका में रक्खी हुई नौका होती है, स्त्री पुरुष के संभोग से उत्पन्न वीर्य जोकि चैतन्य नहीं है पेट में रक्खा गया है उस गर्भ को किस उपाय से तुम सजीव करते हो और जीवता देखते हो, जिस उदर में भोजन की वस्तु के समान वह गर्भ क्यों नहीं परिपाक होता है गर्भ में मूत्र विष्ठा आदि की गति स्वाभाविक है उनके धारण करने वा त्याग करने में स्वतन्त्र भी कर्त्ता वर्त्तमान नहीं है, उदर से गर्भ गिर भी पड़ते हैं इसी प्रकार बहुत से कर्म भी उत्पन्न होकर नाश होजाते हैं और ग्रह, भूत, पिशाचादि के प्रवेश से अनेक गर्भों का नाश होता है इसी कारण जो पुरुष योनि सम्बन्ध से वीर्य को छोड़ता है वह किसी प्रकार की सन्तान को पाता है और फिर सुख दुःख आदि योगों में संयुक्त होता है, गर्भ का निवास, जन्म, बाल्यावस्था, कौमारअवस्था जोकि पांच वर्षतक रहती है और पौगण्ड अवस्था जो दश वर्ष तक होती है तरुण वृद्ध और जरावस्था, प्राणरोधावस्था, नाश यह दशअवस्था हैं उस अनादि प्रवाह से बँधीहुई देह की सातवीं वृद्धावस्था और नवीं प्राणरोधावस्थाओं को पञ्चतत्त्व प्राप्त करते हैं आत्मा नहीं करता है तदनन्तर वह दशवीं नाश दशा को प्राप्त होते हैं, उपाय करने में मनुष्यों की सामर्थ्य निस्संदेह नहीं होती है जबकि वह अनेक रोगों से ऐसे व्यथित किये जाते हैं जैसे शिकारियों से मृग पीड़ित कियेजाते हैं, उपाय और चिकित्सा करनेवाले वैद्यादि लोग अपनी अनेक औषधियों से और अनेक रीति से धन के व्यय करवाने से भी उनके रोगों को दूर नहीं करसक्के हैं और चिकित्सा करनेवाले भी जब तंग होजाते हैं तब अनेक प्रकार के कडुवे कषैले काढ़े और फुकेहुए दिव्य रसों को खिलाते हैं फिर भी वृद्धावस्था से ऐसे जीर्ण शरीर दिखाई देते हैं जैसे कि बड़े बड़े हाथियों के तोड़ेहुए वृक्ष निस्सत्त्व होजाते हैं, पृथ्वी पर रोगों से पीड़ित पशु पक्षी और व्याघ्रादि विचारे जीवों की कौन चिकित्सा करता है इसीहेतु ईश्वर की कृपा से वह बहुधा रोगी नहीं होते हैं महाउग्र तेजस्वी राजाओं को भी रोग दबाकर अपने आधीन करते हैं जैसे कि पशुओं के समूह अन्य पशुओं के समूहों को; यह लोक पीड़ा करके व्याकुल मोह शोक से व्याप्त और आकस्मिक महावेगवाले प्रवाह से घिरा हुआ चेष्टा करता है, जो अपने दिव्य शरीर पर स्वाधीन है वह धन राज्य और उग्रतप के द्वारा स्वभाव को उल्लंघन नहीं करते हैं, उद्योग

सफल होने पर न मृत्यु पाते हैं न वृद्ध होते हैं न अशुभ को देखते हैं किन्तु सब मनोरथों के सिद्धकरनेवाले होते हैं, सब मनुष्य संसार से ऊपर २ जाना चाहते हैं और सामर्थ्य के अनुसार उद्योग भी करते हैं परन्तु वह ईश्वर उस रीति से वर्त्तमान नहीं होता है, सावधान, शूरवीर, पराक्रमी, मनुष्य शठता को त्यागकर ऐसे लोगों को प्राप्त होते हैं जोकि अपने रजोगुण में मद्यपान से उन्मत्त हैं, कितने ही मनुष्यों के अदृष्टक्लेश दूर होजाते हैं और कितनों ही को अपना भी धन प्राप्त नहीं होता है, कर्मफल की इच्छा करनेवाले मनुष्यों में फलों का बहुत सा अन्तर दीखता है कोई पालकी को ले चलते हैं कोई पालकी में सवार होते हैं, वृद्धि चाहनेवाले सब मनुष्यों के रथ के आगे भी कोई मनुष्य होते हैं, सैकड़ों मनुष्य तो विवाहिता स्त्रियों के रखनेवाले हैं कितने ही सुख दुःखादि योगों में क्रीड़ायुक्त नानाप्रकार की स्त्रियों का संग करते हैं तुम इस दूसरे पद को देखो इसमें मोह को नहीं करो, धर्माधर्म को त्यागकर सत्यमिथ्या से रहित होकर जिस बुद्धि के द्वारा उनको छोड़ता है उसको भी त्याग करो, हे ऋषियों में श्रेष्ठ, शुकदेवजी ! यह बड़ी गुप्त वार्त्ता मैंने तुमसे कही इसके द्वारा देवता मर्त्यलोक को त्यागकर स्वर्गलोक को गये हैं, नारदजी के इन वचनों को सुनकर बड़े धैर्यवान् बुद्धिमान् शुकदेवजी मन से अच्छे प्रकार विचार कर दृढ़ निश्चय को न पाकर जाना कि स्त्री पुत्रादि से बड़ी उपाधि में फँसता है और विद्या के अभ्यास अथवा उपदेश में बड़ा परिश्रम होता है इससे थोड़े परिश्रम में बड़े उदयवाला सनातन स्थान कौन है, यह विचारकर सगुण निर्गुण के जाननेवाले शुकदेवजी ने एक मुहूर्त्ततक अपनी निश्चय की हुई और मोक्षधर्म में उत्तम कल्याण करनेवाली गति को अच्छी रीति से विचारा कि मैं किसप्रकार से सब उपाधियों से छूटकर उत्तम गति को पाऊं जिससे कि इस योनिसंकट समुद्र में फिर न वर्त्तमान हूं, मैं उस परम ब्रह्मभाव को चाहता हूं जिसमें आवागमन नहीं होता है इससे सबप्रकार के स्नेहों को त्यागकर मन से गति को निश्चय करनेवाला मैं वहां जाऊंगा जिसमें मेरा आत्मा शान्ति को पावेगा और जिसमें अविनाशी न्यूनाधिकता रहित सनातन ब्रह्मरूप नियत होगा, वह उत्तम गति योग के विना प्राप्त नहीं होसक्ती कर्मों से ज्ञानी को बन्धन नहीं होता है, इसीकारण योग में अच्छेप्रकार से नियत होकर और स्थानरूप देह को त्याग वायु के रूप से इस

प्रकाशपुञ्ज सूर्य में प्रवेश करूंगा क्योंकि इसका नाश नहीं है जैसे कि असुरगणों से कम्पायमान होकर चन्द्रमा पृथ्वी पर गिरता है और फिर चढ़ता है अर्थात् सदैव नष्टता को पाता है और फिर पूर्णकला होता है मैं इस वृद्धि क्षय को वारंवार जानकर नहीं चाहता हूं अविनाशी मण्डलवाला सूर्य अपनी प्रत्यक्ष पवित्र कलाओं से लोकों को अच्छी रीति से संतप्त करता है और सब ओर से तेज को खींचता है इस कारण प्रकाशमान तेजवाले सूर्य में जाना मुझको अभीष्ट है, दुर्धर्ष मैं निश्शंक अन्तःकरण से वास करूंगा मैं सूर्यलोक में इसकारण नाम देह को त्यागूंगा, और ऋषियों के साथ बड़े असह्यसूर्य के अन्तर्यामी तेज में प्राप्त हूंगा, मैं वृक्ष सर्प पर्वत पृथ्वी और दशोंदिशाओं को पूछता हूं, और दानव, देवता, गन्धर्व्व, पिशाच, उरग, राक्षस आदि से भी पूछता हूं कि मैं संसार के जितने प्राणी हैं उन सब में निस्सन्देह प्रवेश करूंगा, सब देवता ऋषियों के साथ मेरे योग्य बल को देखो तदनन्तर उस अपूर्व प्रसिद्ध अनुपम नारद ऋषि से पूछकर और उनकी आज्ञा लेकर पिताजी के पासगये वहां जाकर शुकदेवजी ने अपने पिता व्यासजी को दण्डवत् और प्रदक्षिणा करके पूछा तब महात्मा व्यासजी ने शुकदेवजी के उस वचन को सुनकर कहा कि, हे पुत्र ! तुम तबतक निवास करो जबतक कि मैं तेरे निमित्त चक्षुओं को तृप्त करूं तब शुकदेवजी ने इच्छा, प्रीति, सन्देह इत्यादि से पृथक् होकर मोक्ष को ही विचार कर चलने के लिये मन किया और अपने पिता को त्यागकर कैलास के उस ऊंचे शिखर पर गये जहां सिद्ध लोगों के समूह वर्त्तमान थ ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे षट्पञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

एकसौ सत्तावन का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे भरतवंशिन् ! उन व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी ने पर्वत के शिखर पर चढ़कर तृणादि से रहित एकान्त स्थल की समभूमि में विराजमान होकर योग के क्रम को जाननेवाले शास्त्रबुद्धि के अनुसार चरण से लेकर शिखापर्य्यन्त सब अंगों में आत्मा को धारण किया, तदनन्तर सूर्य्य के शीघ्र उदय होने पर वह ज्ञानी शुकदेवजी पूर्वमुख होकर उस स्थान पर अपने हाथ पैरों को छाती पर इकट्ठे करके बड़ी नम्रता से सूर्य्य के सन्मुख बैठ गये, जिस स्थान में न पक्षियों का समूह न किसी प्रकार का शब्द न संसारी

जीवों का बहुधा दर्शन था ऐसे स्थान पर बुद्धिमान् शुकदेवजी ने योगक्रिया को प्रारम्भ किया, जब आत्मा को सब संगों से असंग देखा तब शुकदेवजी ने उस परमात्मा को मोक्षमार्ग की प्राप्ति के निमित्त योगारूढ़ महायोगेश्वर होकर आकाश को उल्लंघन किया, फिर देवऋषि नारदजी को प्रदक्षिण करके उस अपने योग को महर्षि से प्रकट किया, शुकदेवजी बोले कि हे तपोधन! मैंने मार्ग देखलिया मैं उसी में प्रवृत्त हूं आपका कल्याण हो हे महातेजस्विन्! आपके अनुग्रह से मैं वांछित गति को प्राप्त हूंगा, व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी उनसे दण्डवत् पूर्वक आज्ञा लेकर फिर योग में नियत होकर आकाश में पहुँचे और अन्तरिक्षचारी योग के ज्ञाता शुकदेवमुनि वायुरूप होके कैलास के ऊपर से उछलकर स्वर्ग को उड़े उस समय ऊपर की ओर चलनेवाले शुकदेवजी को सब जीवों ने गरुड़ के समान तेजस्वी और मन वायु के समान शीघ्रगामी देखा फिर बड़े मार्ग के अंगीकार करनेवाले और सूर्य्य के समान प्रकाशमान उस मुनि ने पूरे निश्चय से तीनों लोकों को ध्यान किया, सब स्थावर जंगम जीवों ने उस एकाग्र मन और सावधान निर्भय होकर जानेवाले को देखकर सामर्थ्य और न्याय के अनुसार पूजन किया और देवताओं ने दिव्य पुष्पमालाओं की वर्षा से उनको व्याप्त किया और सब गन्धर्व्व और अप्सराओं के गण उनको देखकर आश्चर्य्यित हुए और बड़े बड़े शुद्ध ऋषियों ने भी बड़ा अचंभा किया कि इस कौन से अन्तरिक्षचारी ने तप से सिद्धि को पाया; सूर्य्य की ओर देखने से जिसका नीचे को शरीर और ऊंचे को मुख है और नेत्रों से प्रीति को प्रकट करता है, तदनन्तर तीनोंलोकों में प्रसिद्ध वह बड़े धर्मात्मा शुकदेवजी सूर्य्यदेवता को देखतेहुए पूर्व्वाभिमुख होकर सुन्दर वाणी को बोले और अपने शब्द से संपूर्ण आकाश को पूर्ण करतेहुए चले, हे राजन्! सब अप्सराओं के समूह उस आकस्मिक आते हुए ऋषि को देखकर महाआश्चर्य्ययुक्त मन से अचंभा करनेलगे जोकि अत्यन्त सुन्दर नेत्रवाली पञ्चचूड़ा नाम आदि अप्सरा थीं वह परस्पर में कहनेलगीं कि यह उत्तम गति में नियत कौन सा देवता है जो अच्छा निश्चय करनेवाले इच्छारहित विमुक्त पुरुष के समान यहां आता है तदनन्तर उस मलयाचल नाम पर्वत को अच्छे प्रकार से उल्लंघन किया जहां पर कि उर्वशी और पूर्व्वचित्ती नाम अप्सरा सदैव निवास करती हैं, वह सब भी उस

महर्षि के पुत्र को देखकर आश्चर्ययुक्त हुईं कि इस वेदाभ्यास में प्रीति करनेवाले ब्राह्मणमें ऐसी बुद्धिकी एकाग्रताहै, कि थोड़ेही समय में चन्द्रमा के समान आकाश में चलता है इसने अपने पिता की ही सेवा से उत्तम बुद्धि को पाया है यह पितृभक्त दृढ़ तपस्वी अपने पिता का प्यारापुत्र है पुत्र के सिवाय दूसरे में चित्त न लगानेवाले उस पिता ने इसको कैसे यहां को बिदा किया है, परम धर्म्म के जाननेवाले शुकदेवजीने उस उर्वशी के वचन को सुनकर वचन में चित्त लगाकर सब दिशाओं को देखा और पहाड़, वन, विपिनों समेत पृथ्वी को और अनेक सरोवर समेत नदी और अन्तरिक्ष को देखा, तदनन्तर चारों ओर से हाथ जोड़े हुए सब देवताओं ने बड़ी प्रतिष्ठा से युक्त उन शुकदेवजी को देखा, तब परमधर्मज्ञ शुकदेवजी ने उनसे यह वचन कहा कि जो पिताजी मुझको अरे शुक ! इस वचन से पुकारतेहुए मेरे पीछे चलेआवें तो तुम सब उनको मेरी ओर से सावधानी से उत्तर देना इस मेरी प्रार्थना को आप सब लोग प्रतिपालन कीजिये, शुकदेवजी के इस वचन को सुनकर सब समुद्र, वन, नदी आदि समेत दिशाओं ने उत्तर दिया कि हे वेदपाठिन्, ब्राह्मण ! जैसी तुम आज्ञा करते हो वह अंगीकार है इसीप्रकार होगा जब ऋषि आवेंगे तो उत्तर दिया जायगा ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे ञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

एकसौ अट्ठावन का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, महातपस्वी ब्रह्मर्षि शुकदेवजी इसप्रकार के वचन को कहकर और चारों प्रकार के दोषों से जुदे हो बुद्धि में प्रवेश करते हुए, पाठान्तर से शुकदेवजी ने सिद्धि में प्रविष्ट होकर, आठ प्रकार के तमोगुण और पांच प्रकार के विषयों को त्यागकर फिर सत्त्वगुण वा बुद्धि को भी त्याग किया यह आश्चर्य सा हुआ, तदनन्तर निर्धूम अग्नि के समान देदीप्यमान वह ऋषि उस सूर्य्य के अन्तर्य्यामी आवागमन रहित लय के स्थान निर्गुण निराकार ब्रह्म में नियत हुए अर्थात् ब्रह्मभाव को प्राप्तहुए, उस समय उल्कापात और दिग्दाह होकर पृथ्वी कंपायमान हुई यह भी महाआश्चर्य सा होता हुआ (महापुरुषों के लयादिक होनेपर संसार की प्रारब्ध हीनता सूचक अनेक उत्पात होते हैं,) वृक्षों से शाखा और पर्व्वतों से शिखर गिरे और निर्घातशब्दों से हिमालय पर्व्वत भी फटगया और सहस्रांशु सूर्य्य देवता भी प्रकाशित नहीं हुए और

अग्नि ने प्रकाश त्याग करदिया और नदी समुद्रादि सब व्याकुल हुए, इन्द्र ने स्वादु सुगन्धियुक्त जल की वर्षा को किया और दिव्य सुगन्धयुक्त पवित्र वायु भी चलनेलगी, हे भरतवंशिन्! फिर उसने उत्तरदिशा में नियत होकर दो महासुन्दर शिखरों को देखा वह दोनों शिखर मेरुपर्वत के दिव्य प्रकाशवान् और तुषार से श्वेतरूप ऐसे दिखाई देते थे मानों चांदी और सुवर्ण के ढेर हैं विस्तार में सौ योजन और उँचाई में तीनयोजन थे, उसके समीप निश्शंकचित्त होकर शुकदेवजी जो दौड़े तो उनके दो खण्ड अकस्मात् होगये यह भी आश्चर्य्य साही हुआ फिर शुकदेवजी उनशिखरों से अकस्मात् बाहर निकले उस उत्तम पहाड़ ने भी इनकी गति को नहीं रोका इसकारण स्वर्ग में देवताओं का बड़ा शब्दहुआ और ऋषि गन्धर्व आदि जो पर्व्वतपर रहते थे उन्होंने भी महाशब्द किया और पहाड़ उल्लंघन करनेवाले शुकदेवजी को और दो फांक होनेवाले पर्व्वत के शिखरों को देखकर वहां सबस्थानों पर धन्य २ यह शब्द हुआ और देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और विद्याधरों के गणोंने भी उनका यथोचित पूजनकिया और उनके ऊपर दिव्यपुष्पों की वर्षाहुई फिर ऊपर को चलकर शुकदेवजी ने मन्दाकिनी गंगा को देखा जिसका तट सुगन्धित और प्रफुल्लित वृक्षों से व्याप्त क्रीड़ा के योग्य स्थान था और उस गंगा में अप्सराओं के गण क्रीड़ापूर्व्वक नग्न हो हो कर स्नान कररहे थे वह नग्न शरीरवाली अप्सरा शुकदेवजी को ब्रह्मरूप देखकर उसीप्रकार नग्न शरीरही वर्त्तमानरहीं हृदय से प्रीति और स्नेहयुक्त पिता व्यासजी उस मोक्षमार्ग में चलनेवाले को जानकर, और उत्तम गति में नियत होकर उनके पीछे २ चले तब शुकदेवजी वायु से ऊपर अन्तरिक्ष की चाल को और अपने प्रभाव को दिखाकर ब्रह्मरूप हुए और महातपस्वी व्यासजी ने दूसरी महायोग गति में उपाय करनेवाले होकर पलभर में ही उनके मार्ग में पहुँच कर शिखर के दो टुकड़े करनेवाले शुकदेवजी को देखा और वहां के सब ऋषियों ने शुकदेवजी के उस कर्म को वर्णन किया तदनन्तर व्यास पिता ने बड़े उचस्वर से तीनों लोकों को व्याप्त करके हे शुक! इस वचन को ऊँचेस्वर से कहा, तब धर्मात्मा शुकदेवजी ने सर्व्वव्यापी सर्वात्मा सर्वतोमुख होकर हे पितः! इस गर्जनापूर्व्वक शब्द से उत्तरदिया तिस पीछे 'भो' इस एकाक्षरवाले शब्द के द्वारा सब दिशाओं से अशेष जड़ चैतन्य जीवों ने उत्तरदिया तब से लेकर अबतक पृथक् २

कहेहुए शब्दों को गुफा और पहाड़ों के ऊपर शुकदेवजी के विषय में कहते हैं फिर शुकदेवजी ने प्रभाव को दिखाकर अन्तर्द्धान होकर, शब्दादि गुणों को त्याग करके परमपद को भी पाया उस महातपस्वी पुत्र की उस अपूर्व्व महिमा को देखकर पुत्र के शोच में व्यासजी पर्व्वत के शिखरपर ही बैठगये तदनन्तर मन्दाकिनी नाम आकाशगंगा के तटपर क्रीड़ा करनेवाले अप्सराओं के गण उन व्यासजी को देखकर भ्रान्तियुक्त हो ऐसी लज्जायुक्त हुई कि कोई तो जल में छिपीं कोई गुल्मों में गुप्तहुई और कितनी ही अप्सराओं ने उन व्यासजी को देखकर वस्त्रों से अपने शरीरों को आच्छादनकिया तब मुनि अपने पुत्रके मुक्तभाव को जानकर और अपने में आत्मा के बन्धन को समझकर प्रसन्न होके लज्जित हुए, उस समय देवगन्धर्व और बड़े २ महर्षियों समेत हाथ में पिनाक धनुष धारण किये भगवान् शिवजी उन व्यासजी के सन्मुख आये, और उस पुत्रशोक से व्याकुल व्यासजी को ढाढ़स और विश्वास कराके यह वचन बोले कि पूर्व्वसमय में पञ्चतत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि और आकशा के बलकी समान पुत्र तुमने मुझसे मांगा था इस हेतु से वह उसीप्रकार का पुत्र उत्पन्न हुआ और तुम्हारी तपस्या से पोषित हुआ और मेरी कृपा से वह पवित्र और ब्रह्मतेजरूप हुआ, उसने उस उत्तम गति को पाया जो अजितेन्द्रियों से प्राप्त होनी कठिन है हे ब्रह्मर्षे! वह गति देवताओं से भी प्राप्त होनी असंभव है तुम उसको क्या शोचते हो, जबतक पर्व्वत समुद्रादि नियत हैं तबतक तेरी और तेरे पुत्र की कीर्त्ति अचल रहेगी, हे महामुने! तुम इसलोक में मेरी कृपा से सदैव अपने पुत्र की समान सबओर से सन्मुख वर्त्तमान छाया को देखोगे, हे युधिष्ठिर! आप भगवान् शिवजी के समझायेहुए वह व्यासजी छाया को देखते हुए बड़ीप्रसन्नता से लौटआये, हे राजन्! यह मैंने शुकदेवजी का जन्म और मोक्ष ब्योरे समेत तुमसे वर्णन किया, हे पुत्र! पूर्व्वसमय में देवर्षि नारदजी और महायोगी व्यासजी ने हरएक स्थान की कथा में इस वृत्तान्त को मुझसे कहा, जो पुरुष बाह्याभ्यन्तर से शान्त होकर इस मोक्ष धर्म से भरी महा पवित्र कथा को सुनेगा वह मोक्षरूप परमगति को पावेगा ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽष्टपञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

एकसौ उनसठ का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! गृहस्थी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी

इत्यादि में से जो कोई सिद्धि में नियत होना चाहै वह किस देवता का पूजन करे और आवागमनरहित ब्रह्मलोक किसकी कृपा से प्राप्त होता है और किस से मोक्ष प्राप्त होता है और किस बुद्धि से देवता पितृसम्बन्धी हवन श्राद्धादि को करै, और मुक्त पुरुष किस गति को पाता है और मोक्ष का क्या स्वरूप है और स्वर्ग में प्राप्त होकर क्या २ करे जिसके द्वारा स्वर्ग से नहीं गिरे देवताओं का भी देवता कौन है इसी प्रकार पितरों का पितर भी कौन सा है और देवता आदि के स्वामी से जो श्रेष्ठतर है इन सबको आप मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि हे निष्पाप, प्रश्नों के ज्ञाता! तुम यह बड़ा प्रश्न मुझ से पूछते हो इस प्रश्न के उत्तर को मैं सैकड़ों वर्ष में भी देवता की कृपा और ज्ञान प्राप्ति के विना तर्कणाओं के द्वारा कहने को समर्थ नहीं होसक्ता हे शत्रुहन्तः, युधिष्ठिर! यह कठिनता से बुद्धि में आने योग्य आख्यान तुझ से कहने के योग्य है, इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें नारदजी और श्रीनारायण ऋषि का प्रश्नोत्तर है, वह नारायणजी विश्व के आत्मा चतुर्मूर्त्तिधारी सनातन धर्मराज के पुत्र हुए अर्थात् वासुदेवजी से संकर्षण नाम जीव उत्पन्न हुआ जीव से प्रद्युम्न नाम चित्त हुआ चित्त से अनिरुद्ध नाम अहंकार प्रकट हुआ यही चार मूर्त्ति हैं, हे महाराज! पहले स्वायंभुव मन्वन्तर के सतयुग में स्वतः सिद्ध होनेवाले नर नारायण हरि कृष्ण नाम चारों रूप प्रकट हुए उन सबमें आदि अन्त न रखनेवाले नर नारायणजी ने बदरिकाश्रम को पाकर मोह उत्पन्न करने से सुवर्णरूप और शकट के समान अन्य से चेष्टा पानेवाले शरीर में तपस्या करी वह सवारीरूप देह आठ प्रकार की अविद्यारूप आठ पहिये रखनेवाला पञ्चतत्त्वयुक्त मन को क्रीड़ा करानेवाला है अर्थात् मायारूप है वहां वह दोनों लोकनाथ महाकृशाङ्ग नाड़ियोंसे व्याप्त अपने तप के तेज के द्वारा देवताओं से कठिनता से देखने में आते थे, जिस पर प्रसन्न होते थे वही देवता दर्शन के योग्य होता था उन दोनों की इच्छा से और हृदय में वर्त्तमान अन्तर्यामी की प्रेरणा से सर्वज्ञ सर्वदर्शी नारदजी महामेरु पर्वत के शिखर से गन्धमादन पहाड़ पर आये और सब लोकों में घूमे, हे राजन्! शीघ्रगामी नारदजी घूमते हुए उस बदरीवन में उन दोनों नर नारायण की संध्या के समय पहुँचे और दर्शन न होने का नारद को बड़ा शोक और पश्चात्ताप हुआ और कहने लगे कि यह वह उत्तम अधिष्ठान है

जिसमें देव, गन्धर्व, दैत्य, दानवादिक सब जीवयुक्त लोक नियत हैं, प्रथम यह एक ही मूर्त्ति थी फिर धर्म की कुलसन्तान में चार प्रकार से प्रकट हुए और धर्मादिक से वृद्धियुक्त हुए, बड़ा आश्चर्य है कि अब यहां धर्म नर नारायण कृष्ण हरि इन चारों देवताओं से कृपा किया गया है इनमें से कृष्ण और हरि किसी कारण से धर्म के उत्तम माननेवाले हुए और इसी प्रकार यह दोनों नर नारायणजी तप में प्रवृत्त हुए, यह दोनों उत्तम तेजवान् यशस्वी सब जीवों के स्वामी पिता और देवता हैं इन दोनों को संध्या आदि क्रिया का करना क्या आवश्यक है, बड़े बुद्धिमान् यह दोनों किस इच्छा से किस देवता और पितर का पूजन करते हैं ऐसा मन में विचार कर नारदजी नारायण की भक्ति से अकस्मात् उन दोनों के सन्मुख वर्त्तमान हुए तब देवकर्म पितृकर्म समाप्त होने पर उन दोनों ने नारदजी को देखा और शास्त्र की बुद्धि से इनका पूजन किया इस आश्चर्य को देख कर परम प्रसन्न होकर नारदजी उनके समीप बैठगये औ आनन्दपूर्वक श्रीनारायणजी का दर्शन करके बड़े ईश्वर का ध्यान कर यह वचन बोले, कि पुराण उपपुराण और अंगों समेत चारों वेद तुमको अजन्मा वा सदैव वर्त्तमान अविनाशी सर्वपालक और सर्वोत्कृष्ट वर्णन करते हैं, यह सब संसार जो हुआ और है और होगा तुमही में नियत है हे देव! चारों आश्रम के पुरुष आपको अनेक मूर्त्तियों में नियत करके पूजन करते हैं तुमही सब जगत् के पिता माता और सनातन गुरु हो ऐसे आप होकर किस देवता और पितर का पूजन करते हो यह हम नहीं जानते आप अनुग्रहपूर्वक समझाइये श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन्! यह कहने के अयोग्य बुद्धि में गुप्त करने के योग्य सनातन वार्त्ता तुमसरीखे भक्तिमानों से कहना उचित है इसको यथातथ्य तुमसे कहता हूं, जोकि सूक्ष्म कठिनता से दर्शन होने वाला द्वैततारहित गुप्त और चेष्टा के विना अचल सनातन इन्द्रियों के विषय और तत्त्वों से भी पृथक् है, वही जीवों का अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ कहा जाता है और तीनों गुणों से रहित पुरीरूप शरीरों में शयन करनेवाला कल्पित हुआ, और हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! उसी पुरुष से तीनों गुणों का रखनेवाला अव्यक्त वा व्यक्त उत्पन्न हुआ, वह अविनाशिनी शक्तिरूप प्रकृति है वही अव्यक्त वा व्यक्तभाव में नियत होती है, उसीको हम दोनों ईश्वरजीव का उत्पत्तिस्थान जानों और जो यह कार्य्य कारण का आत्मा है उसीको हम दोनों पूजते हैं

और वही देव पितृ कर्म्मोंमें देवता और पितृरूप कल्पना कियाजाता है, उससे बड़ा कोई पिता देवता और ब्राह्मण नहीं है वह हमारा आत्मा जानने के योग्य है इसीहेतु से हम उसको पूजते हैं, हे ब्रह्मन् ! वही संसार की उत्पत्ति पालनरूप मर्यादा को स्थापित करता है और देव पितृसम्बन्धी कर्म सबको अवश्य करना चाहिये यह भी उसीका उपदेश है, ब्रह्मा, शिव, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, कर्दम और जो क्रोध विक्रीत नाम से इक्कीस प्रसिद्ध हैं वह प्रजापति कहे जाते हैं, जिस देवता की सनातन मर्यादा को पूजते हुए वह उत्तम ब्राह्मण उसके देव पितृकर्म को सदैव मुख्यता से जानकर आत्मा से प्राप्त भोगों को उसीसे प्राप्त करते हैं जो कोई पुरुष स्वर्ग में नियत हैं उनको भी शरीरधारी नमस्कार करते हैं परन्तु वह सब उसकी कृपा से उसके दिये हुए फलवाली गति को पाते हैं, जो पुरुष सत्रह गुणों से और कर्मों से रहित पन्द्रह कलाओं के त्यागनेवाले हैं वह निश्चय करके मुक्तरूप हैं, हे ब्रह्मन् ! मुक्तलोगों की लयरूपा गति क्षेत्रज्ञ है वही चिदात्मा माया से सगुणरूप और वास्तव में निर्गुण कहा जाता है, वह योग और ज्ञान से दृष्ट आता है हम दोनों उसीसे प्रकट हुए ऐसे जानकर उस सनातन आत्मा को हम पूजते हैं सब वेद आश्रम और नानाप्रकार के मतों में नियत होकर मनुष्य भक्ति से उस आत्मा को अच्छी रीति से पूजते हैं और वह भी उनको शीघ्रही गति देता है जो पुरुष संसार में उससे मिले हुए एक निश्चय में नियत हैं उनमें यही विशेषता है, कि इसमें प्रविष्ट होते हैं हे नारदजी ! भक्ति और प्रेम से यह गुप्त उपदेश हमने तुमसे कहा और हे ब्रह्मर्षे ! आपने भी बड़ी भक्ति से इसको सुना ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकोनषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

एकसौ साठ का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे पुरुषश्रेष्ठ, युधिष्ठिर ! इसप्रकार पुरुषोत्तम नारायणजी के समझायेहुए नारदजी ने लोकों का हितकारी प्रश्न फिर उन नारायणजी से पूछा कि अपने आप उत्पन्न होनेवाले आपने धर्मदेवता के घर में जिस प्रयोजन के लिये चार रूपों से अवतार लिया है उसको आप साधन कीजिये और मैं अब लोकों के हित के अर्थ आपकी श्वेतद्वीप में वर्त्तमान प्रथममूर्त्ति के दर्शनों को जाऊंगा उसके दर्शन में मैं अपने अधिकार को वर्णन करता

हूं कि एक तो मैं सदैव गुरु का पूजन करता हूं प्रथम मैंने किसी की गुप्तवार्त्ता प्रकट नहीं की और सब वेद भी अच्छे प्रकार से पढ़े और मिथ्यारहित होकर तपस्या को भी किया, शास्त्र के अनुसार हाथ, पैर, उदर, शिश्न यह चारों मेरे रक्षित हैं और सदैव शत्रु मित्र को समान जानता हूं और सदैव उस आदिदेव ज्योतिस्वरूप की शरण में रहता हूं और सदैव अनन्य भक्तिभाव से पूजन आदि करता हूं, इन मुख्य गुणों से शुद्ध होकर भी मैं उस अनन्त ईश्वर को कैसे न देखूंगा सनातनधर्म की रक्षा करनेवाले नारायणजी ने अपनी बुद्धि और अनुग्रहों से नारदजी की पूजा करके यह वचन कहा कि अब पधारो यह सुनकर वह ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी उस पूर्ण ऋषि को पूज और उन से विदा हो उत्तम योग में संयुक्त होकर आकाश को उछले और क्षण में मेरु पर्वत पर जापहुँचे और उसके शिखर पर एकान्त स्थान को पाकर एक मुहूर्त्त तक विश्रामयुक्त हुये, फिर उत्तर पश्चिम के कोणों की ओर देखतेहुए नारद जी अद्भुतरूपवाले उस देश में पहुँचे जो कि क्षीरसमुद्र से उत्तर दिशा में श्वेतद्वीप नाम से प्रसिद्ध बड़ा विस्तारवान् द्वीप है, पण्डितों ने इस द्वीप को मेरु पहाड़ के मूल से बत्तीस हजार योजन ऊंचा कहा है वहांपर जो पुरुष रहते हैं वह इन्द्रियों से पृथक् शब्दादि भोगों से रहित चेष्टारहित सौगन्धिनाम परमात्मा का ध्यान करनेवाले शुद्ध सतोगुण प्रधान श्वेतरूप सर्वपापरहित तेजस्वी होने से पापात्मा को दृष्ट न आनेवाले वज्र के समान अस्थि और शरीरवाले मानापमानरहित दिव्य अंगरूपयुक्त योग प्रभाव से उत्पन्न पराक्रमी जिनके छत्र के समान शिर और बादल के समान शब्द शरीर में पतले और काष्ठ के समान चारभुजाधारी अनेक रेखाओं समेत उत्तम चरण हैं और हे राजन्! छयासठ दाँतयुक्त संसार के भक्षण करने को वर्षों की व्यतीतता के समान समर्थ श्वेत आठ दाढ़वाले अर्थात् आठों दिशाओं के समान देश और काल को मुख में धारण करनेवाले विश्व को और महाकाल को अपनी रसना से चाटनेवाले हैं, कारण यह है कि जिससे सब सृष्टि उत्पन्न हुई और सब का ईश्वर है उस देवता को उन्होंने अपने ध्यान के बल से अपने हृदय में धारण किया है चारों वेद और सब धर्म देवता ऋषि गन्धर्वादिक जिसने विना उपाय के उत्पन्न किये हैं युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! वह इन्द्रिय भोजन चेष्टा आदि से रहित होकर सौगन्धिनाम परमात्मा को ध्यान में

दर्शन करनेवाले पुरुष किस प्रकार से उत्पन्न हुए और कौन सी उनकी उत्तम गति है, हे भरतर्षभ! इस लोक में जो जीवन्मुक्त होते हैं उन लोगों का यह लक्षण है और वही श्वेतद्वीपनिवासी सगुण उपासकों का लक्षण है, इसी हेतु से इस मेरे संदेह को निवृत्त करो क्योंकि मुझको अद्भुत बातों के देखने का बड़ा उत्साह है और आप सब कथाओं में कुशल हैं और आपकी शरण हैं, भीष्मजी बोले कि मैंने यह बड़ी कथा पिता के सन्मुख सुनी थी वह तुझसे कहने के योग्य है क्योंकि वह सब कथाओं का सार है, कि उपरिचर नाम एक राजा संपूर्ण पृथ्वी का स्वामी हुआ वह नारायण हरि का भक्त और इन्द्र का सखा करके प्रसिद्ध था, वह धर्म और भक्ति में कुशल सदैव पिता की सेवा में सावधान था उसने पूर्व समय में श्रीनारायणजी के वर से सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य को भोगा, और पञ्चरात्र नाम वैष्णवों की बुद्धि में नियत होकर प्रातःकाल सूर्य्य के मुख से प्रकट होनेवाले देवेश का पूजन किया फिर उस पूजन से बची हुई सामग्री से पितामहादिकों को तृप्त किया और पितरों के शेष बचेहुए अन्न से ब्राह्मणों और आश्रितों को विभाग देकर शेष बचेहुए अन्न का भोजन करनेवाला सत्यता से न्याय करने में प्रवृत्त जीवमात्र में हिंसा से रहित था, उस भक्त ने शुद्ध मन से देवदेव दुष्टनिकन्दन आदि अन्तरहित अविनाशी सबके स्वामी भगवान् का पूजन किया, उस नारायण के भक्त दुष्टों के पीड़ा करनेवाले राजा को इन्द्र ने अपने हाथ से एक शय्यासन दिया, वा अपना राज्य, धन, स्त्री, सवारी आदि जो सामान सुख के हैं ये सब नारायण ही के हैं ऐसा संकल्प सदैव रखता था हे राजन्! उस सावधान राजा ने वैष्णवबुद्धि में नियत होकर यज्ञसम्बन्धी काम्य और नैमित्तिक उत्तम कर्म्मों को किया उस महात्मा के घर में पञ्चरात्र शास्त्र के जाननेवाले मुख्य ब्राह्मण उस प्रधान भोजन को खाते थे जो भगवत् का प्रसाद कहा जाता था, धर्म्म से उस शत्रुहन्ता राजा के आज्ञावर्त्ती लोग कभी मिथ्याभाषी नहीं हुए और उसका चित्त भी कभी दोषयुक्त नहीं हुआ, उसने अपने शरीर से थोड़ा भी पाप नहीं किया और जो वह सात ऋषि चित्रशिखण्डी नाम से प्रसिद्ध थे उन्होंने एक मत होकर जो उत्तम शास्त्र वर्णन किया वह उस महामेरु पर्वत पर चारों वेदों के समान लोक का उत्तम धर्म्मरूप सात मुखों से वर्णन हुआ उन ऋषियों के नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलह,

क्रतु और महातेजस्वी वशिष्ठजी यही सातों चित्रशिखण्डी कहाते हैं यह सब प्रकृति हैं और स्वायंभुव मनु आठवीं प्रकृति है यह लोक इन्हीं से धारण किया जाता है और इन्हीं से शास्त्र उत्पन्न हुआ, उन एक मत जितेन्द्रिय संयम में प्रीतिमान् तीनों काल के जाननेवाले सत्यधर्म्म में नियत होकर मनुजी ने यह कल्याणरूप ब्रह्म है उत्तम मत है इसप्रकार मन से लोकों को विचार कर फिर शास्त्र को बनाया, उस शास्त्र में धर्म्म, अर्थ, काम और सच्चे मोक्ष को भी वर्णन किया और नानाप्रकार की वह मर्य्यादें जो स्वर्ग और पृथ्वी पर श्रेष्ठ गिनी जाती हैं उनको भी वर्णन किया, वह सब ऋषियों के दिव्य सात हजार वर्ष तक हरि नारायण को तपस्या से आराधन करके नियत हुए, तब नारायणजी की आज्ञा से देवी सरस्वतीजी लोकों के हित करने को उन ऋषियों में प्रविष्ट हुईं तदनन्तर प्रथम उत्पत्ति में उत्पन्न होनेवाली सरस्वती उन तपस्वी ब्राह्मणों के कारण से सिद्धार्थ और हेतुओं में अच्छेप्रकार से वर्त्तमान हुईं, आदि में ऋषियों की ओर से प्राण और स्वरयुक्त वह शास्त्र भगवान् विष्णुजी के स्थान में सुना गया, तदनन्तर षडैश्वर्य्य के स्वामी वर्णन से बाहर देह में वर्त्तमान दृष्टि से गुप्त प्रसन्नमूर्त्ति परमेश्वर ने उन सब ऋषियों से यह वचन कहा कि तुम ने जो यह एक लाख उत्तम श्लोक बनाये जिससे कि सब लोक तन्त्र धर्म्म अर्थात् संसार का धर्मप्रबन्ध जारी होता है, और इसीसे यह शास्त्र प्रवृत्ति निवृत्तिमार्ग में ऋग्, यजु, साम, अथर्वण इन चारों वेदों की ऋचाओं से सेवित वा संयुक्त होगा, हे ब्राह्मणो ! जिसप्रकार वह क्रोध से प्रकट होनेवाले रुद्रदेवता ब्रह्म अनुग्रह से प्रमाण कियेगये हैं और तुम प्रकृतिरूप ब्राह्मण, सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी, जल, अग्नि, सर्व नक्षत्रगण और भूतगण इत्यादि अपने-अपने अधिकारों पर वर्त्तमान रहते हैं और जैसे वह सब ब्रह्मवादी प्रमाण हैं इसीप्रकार यह आप का उत्तम शास्त्र भी मेरे उपदेश से प्रमाण होगा आप स्वायंभुव मनुजी इस शास्त्रसे धर्म्मों को कहेंगे, और जब शुक्र और बृहस्पतिजी उत्पन्न होंगे तब वह भी तुम्हारे इस शास्त्र से धर्म्मों को कहेंगे, स्वायंभुव मनु के सब धर्म्म और शुक्र वा बृहस्पतिजी के बनाये हुए शास्त्र लोकों में जारी होने पर राजा वसु तुम्हारे बनाये हुए शास्त्र को बृहस्पतिजी से पावेगा हे उत्तम ब्राह्मणलोगो ! इसको यथार्थ ही जानो, और वह राजा साधुओं का सेवी मेरा भक्त होगा वह उस शास्त्र से लोकों में सब क्रियाओं को करेगा, यह

तुम्हारा शास्त्र सब शास्त्रों में उत्तम है और सब अर्थ धर्मादियुक्त श्रेष्ठ रहस्य है तुम इसके जारी करने से सन्तानयुक्त होगे और महाराजा वसु लक्ष्मीवान् होगा, उस राजा के परमपद होनेपर यह सनातन शास्त्र गुप्त होजायगा यह सब वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा, वह अदृष्ट पुरुषोत्तम यह वचन कहकर और उन सब ऋषियों को बिदा करके किसी दिशा को चलदिये, तदनन्तर सब लोकों का हित विचारनेवाले लोक के पितररूप ऋषियों ने उस धर्म्मों के उत्पत्ति स्थान सनातन शास्त्र को जारी किया, प्रथम कल्पित सतयुग में अंगिरावंशी बृहस्पतिजी के उत्पन्न होनेपर अंग और उपनिषदों समेत शास्त्र को उसमें नियत करके, सब लोकों के धारण करनेवाले और अशेषसंसार को कर्म्मों में प्रवृत्त करनेवाले तपनिष्ठ वह सब ऋषिलोग अपने अभीष्ट देश को गये ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे षष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

एकसौइकसठ का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! महाकल्प के अन्त में बृहस्पतिजी के उत्पन्न होनेपर सब देवता उस देवताओं के पुरोहित बृहस्पतिजी के जन्म से बड़े प्रसन्न हुए, हे राजन् ! बृहद्ब्रह्म महत्त्व जिसमें यह सब शब्दसंयुक्त हों उसके पूरे अर्थ के कहनेवाले इत्यादि गुणों से संयुक्त बृहस्पतिजी हुए और प्रथम उनका शिष्य राजा उपरिचरवसु होताभया उसने चित्रशिखण्डी नाम ऋषियों के बनाये हुए शास्त्र को गुरु से अच्छे प्रकार पढ़ा, उस महात्मा ने प्रथम तो दिव्य बुद्धि से पृथ्वी के जीवों का पालन ऐसा किया जैसा कि स्वर्ग का इन्द्र करता है फिर उस यशस्वी ने अश्वमेध नाम भारी यज्ञ किया उसमें उपाध्याय बृहस्पतिजी होतेहुए और प्रजापतिजी के तीन पुत्र एकत द्वित त्रित नाम तीनों महर्षि यज्ञ में सदस्य हुए और धनुषाख्य, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि, ताण्ड्य, शान्त, वेदशिरा, कपिल जो कि शालिहोत्र का पिता कहा जाता है, अद्य, कठ, तैत्तिरि, वैसंपायन के बड़े भाई कण्व, देवहोत्र यह सोलह महान् ऋषि भी उस यज्ञ में वर्त्तमान थे उस बृहत् यज्ञ में और सामान तो सब इकट्ठा हुआ परन्तु उसमें पशु का नाश नहीं हुआ इन सब सामग्रियों समेत वह राजा यज्ञशाला में नियत हुआ, जोकि हिंसारहित पवित्र अक्षुद्र निराकांक्षी कर्म में प्रशंसनीय था इस निमित्त यज्ञ में वन के फल मूलों से विभाग विचार किये गये, तदनन्तर वह षडैश्वर्य्य का स्वामी देवताओं का देवता पुरातन

पुरुषोत्तम ईश्वर इसपर प्रसन्न हुआ और अदृश्य होकर भी इसको साक्षात् दर्शन दिया और आप अपने पुरोडाश नाम भाग को सूंघ कर लेलिया अर्थात् अश्वमेध यज्ञ से अपना भाग लेलिया, तदनन्तर क्रोधित होकर बृहस्पतिजी ने शुच्र नाम पात्र को उठाकर उससे आकाश को ताड़न करके बड़े अश्रुपात कर उस उपरिचर राजा से कहा कि मेरे सन्मुख से मेरे देखते हुए यह भाग उठाया गया है इससे देवता से निस्सन्देह लेना योग्य है, युधिष्ठिर बोले कि यहां उठाये हुए यज्ञभाग नेत्रों के आगे देवताओं ने अंगीकार किये परन्तु उस हरिने सबको दर्शन क्यों नहीं दिया, भीष्मजी बोले कि यह दशा देखकर उस महाराजा वसु ने और सब सदस्यों ने उस उठे हुए बृहस्पतिजी को बहुत प्रसन्न किया, भ्रान्तिरहित उन लोगों ने उनसे कहा कि आप को क्रोध करना योग्य नहीं है सतयुग में यह धर्म्म नहीं है जो आपने क्रोध किया, हे बृहस्पतिजी! यह देवता क्रोध से रहित है जिसका यह भाग उठाया गया है वह देवता हम से और तुम से अदृष्ट है, जो इसकी प्रसन्नता करता है उसीको यह दर्शन देता है तदनन्तर एकत, द्वित, त्रित और चित्रशिखण्डी नाम ऋषियों ने यह कहा कि हम ब्रह्माजी के मानसी पुत्र कहाते हैं एक समय हम अपने कल्याण के निमित्त उत्तर दिशा को गये और हजारों वर्षतक उत्तम तपस्या करके सावधानी से काष्ठ के समान एकचरण से खड़े रहे वह देश क्षीरसागर के तटपर सुमेरु पर्वत के उत्तर में है जहांपर कि हमने इस मनोरथ से उग्र तप किया था कि हम उस ज्योतिरूप वरदाता देवदेव श्रेष्ठ नारायण सनातनरूप को किसी प्रकार से देखें तदनन्तर इस व्रत की समाप्ति में अवभृथस्नान होनेपर आकाश से यह गंभीरवाणी हुई कि हे ब्राह्मणलोगो! तुमने शुद्ध अन्तरात्मा से अच्छा तप किया, तुम जानने की इच्छा करनेवाले भक्त हो उस प्रभु को कैसे देखोगे क्षीरसागर के उत्तर की ओर महाप्रकाशवान् श्वेतद्वीप है वहां नारायण को श्रेष्ठतम जाननेवाले चन्द्रमा के समान तेजस्वी एक में निश्चय भक्तिरखनेवाले मनुष्य हैं वह भक्तलोग पुरुषोत्तम को पूजते हैं, वह इन्द्रियों से रहित भोजन और चेष्टा से रहित परमात्मा को ध्यान करनेवाले भक्त उस हजारों किरणयुक्त सनातन देवता में प्रवेश करते हैं वह श्वेतद्वीप निवासी पुरुष एक निश्चय रखनेवाले हैं हे मुनियो ! तुम वहीं जाओ उस स्थान में मेरा आत्मा प्रकाशवान् है, इस आकाशवाणी को सुन कर हम सब

उस बताये हुए मार्ग के द्वारा उस देश में पहुँचे और उस के देखने की इच्छा की तब वह हम को दिखाई देकर गुप्त हो गया उसके तेज से नेत्रों की ज्योति नष्ट होजाने से हम सबने उस पुरुष को नहीं देखा तदनन्तर देवता की कृपा से हमारा यह विज्ञान उत्पन्न हुआ कि तपस्या न करनेवाले पुरुष को निश्चय करके दर्शन होना असम्भव है, फिर हम सबने सौ वर्ष तक तात्कालिक नाम तपस्या को करके शुभ लोगों को देखा वह पुरुष श्वेतवर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाशित सब लक्षणयुक्त सदैव हाथ जोड़े गायत्री वा प्रणव का जप करनेवाले पूर्वोत्तर कोण में मुख किये हुए वर्त्तमान थे वह महात्मा मानसी जप को करते हैं उसी चित्त की एकाग्रता से ईश्वर प्रसन्न होते हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! युग के अन्त में जैसी कि सूर्य की किरणें होती हैं वैसाही प्रकाश प्रत्येक मानसी भक्त का था तब हमने जाना कि यह द्वीप इनके रहने का स्थान है उनमें कोई न्यूनाधिक नहीं था सब बराबर के तेजस्वी थे, हे बृहस्पते ! जो इसके पीछे हमने फिर भी अकस्मात् एकही बार प्रकट होनेवाले हज़ार सूर्य के प्रकाश को देखा फिर वह मनुष्य हाथ जोड़े हुए प्रसन्नचित्त नमस्कार करके शीघ्रही सन्मुख को दौड़े और उन्हों के बोलने की ध्वनि को सुना फिर उन मनुष्यों ने उस देवता की बलिक्रिया की, फिर उसके तेज से अकस्मात् बेहोश अन्धे के समान महानिर्बल से होकर हमलोगों ने वहां कुछ भी नहीं देखा उनके मुख से निकला हुआ एक यह शब्द हमने सुना कि हे पुण्डरीकाक्ष ! आपने सबको विजय किया है हे विश्वभावन ! आप को नमस्कार है हे सबकी आदि इन्द्रियों के स्वामी, महापुरुष ! तुम को नमस्कार है शिक्षा और हाथ की चेष्टायुक्त यह शब्द हम ने सुना, इसी अन्तर में सब सुगन्धियों के बहानेवाले वायु ने उत्तम पुष्पों को और सब औषधियों को इकट्ठा किया तब पांचों काल के ज़ाननेवाले उत्तम भक्तियुक्त एक निश्चयवाले लोगों ने मन वाणी और कर्म से हरि का पूजन किया जैसे ही उन्हों ने मन्त्र वचनों से ध्यान किया वैसे ही वह निस्सन्देह साक्षात्कार हुआ परन्तु उसकी माया से मोहित हमलोगोंने दर्शन नहीं पाया, हे अंगीरावंशियों में उत्तम, बृहस्पतिजी ! वायु के बंद होनेपर और बलि के भेट करने पर हम लोग चिन्ता से व्याकुल होगये, उन शुद्ध उत्पत्तिवाले हज़ारों पुरुषों के मध्य में किसी ने हम को मन और नेत्रों से भी पूजन नहीं किया अर्थात् देखा भी नहीं, उन सुखरूप एक भावयुक्त ब्रह्मभाव का अनुष्ठान

करनेवालों ने हम को मन से भी नहीं देखा तदनन्तर वहां पर स्वर्ग में नियत देह के विना किसी पुरुष ने तप से पीड्यमान और थके हुए हम लोगों से यह वचन कहा कि यह दीखनेवाले श्वेतवर्ण पुरुष सब इन्द्रियों से रहित हैं इन देखनेवाले उत्तम पुरुषों से वह देवेश्वर देखने के योग्य है और इन्हीं को दर्शन देता है हे मुनियो ! तुम जैसे आये हो वैसेही शीघ्रता से चले जाओ उस देवता का दर्शन अभक्त लोगों से करना असंभव है अर्थात् भक्त लोगों के सिवाय वह किसी को दर्शन नहीं देता है वह षडैश्वर्य्ययुक्त प्रकाश मण्डल से बड़ी कठिनता से दर्शन होनेवाला कालपुरुष एक निश्चय करने वाले भक्तों से बहुत काल में दर्शन किया जाता है हे ब्राह्मणो ! तुम बहुत कर्मों को करो अब से लेकर वैवस्वतमन्वन्तर में सतयुग के अन्त होने और त्रेतायुग के वर्त्तमान होने पर, तुम देवताओं के प्रयोजन सिद्ध करने को मेरे साथी सहायता करनेवाले होगे तदनन्तर उस अपूर्व अमृतरूप वचन को सुन कर उसी की कृपा से शीघ्रही हम सब अपने मनभावने देश को पहुँचे, इस प्रकार बड़े तप और हव्य कव्य के द्वारा भी उस देवता को हमने नहीं देखा तो तुम उसके दर्शन कैसे कर सके हो वह नारायण बड़ा प्रत्यक्ष संसार का स्वामी- हव्य कव्य का भोक्ता आदिअन्तरहित दृष्टि से गुप्त देवता दानव आदि से पूजित है इस प्रकार द्वित त्रित ऋषि के अभीष्ट एकत ऋषि के वचनों से और सदस्यों से समझाये हुए बुद्धिमान् बृहस्पतिजी ने उस यज्ञ को समाप्त किया और देवता को अच्छी रीति से पूजा, और यज्ञपूर्ण करने वाले राजा वसु ने भी प्रजा का पालन किया तिस पीछे ब्राह्मणों के शाप से स्वर्ग से गिर कर पृथ्वी पर आया, हे राजाओं में श्रेष्ठ! सत्य धर्म में नियत और पृथ्वी के भीतर वर्त्तमान भी सदैव धर्मवत्सल उस राजा ने, नारायण का भक्त होकर नारायण ही के नाम का जप किया और उसीकी कृपा से वह राजा फिर स्वर्ग को गया और विना रोक के पृथ्वीतल से ब्रह्मलोक को गया और बहुत शीघ्र उस संसारबंधन से छूटनेवाली गति को पाया ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

एकसौ बासठ का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि महाराजा वसु तो बड़ा भगवद्भक्त था वह किस कारण स्वर्ग से गिरा और पृथ्वी में आया, भीष्मजी बोले कि हे भरतर्षभ ! इस

स्थान पर एक इतिहास को कहता हूं जिसमें ऋषियों का और देवताओं का संवाद है, देवताओं ने उत्तम ब्राह्मणों से यह कहा कि अज अर्थात् बकरे से यज्ञोंमें हवन करना चाहिये उस बकरे को भी अज जानना योग्य है दूसरा पशु न समझना यह मर्यादा है, ऋषियों ने उत्तर दिया कि यज्ञों में बीजोंके द्वारा हवन करना चाहिये यह वेदकी श्रुति है क्योंकि सब बीजों का अज नाम है इस कारण तुम बकरे के मारने के योग्य नहीं हो, हे देवता लोगो ! यह धर्म सत्पुरुषों का नहीं है जिसमें कि पशु माराजाय यही श्रेष्ठ यज्ञ है पशु को क्यों मारें, भीष्म जी बोले कि देवताओं के साथ में उन ऋषियों की इस प्रकार की वार्त्ता होने पर मार्ग में मिलनेवाले राजाओं में श्रेष्ठ महाराजा वसु भी दैवयोग से उस देश में प्राप्त हुए वह राजा संपूर्ण सेना और सवारियों समेत श्रीमान् अन्तरिक्ष में चलता था वह ऋषि और देवता उस अन्तरिक्षगामी राजा वसु को अकस्मात् आता देख कर बोल उठे कि यह राजा हमारे तुम्हारे सन्देहों को निवृत्त करेगा क्योंकि यह यज्ञ करनेवाला दानपति महाश्रेष्ठ सब जीवों की वृद्धि को अच्छा जाननेवाला है यह महाराजा कभी अन्यथा नहीं बोलेगा इस प्रकार से इन देवता और ऋषियों ने सम्मत करके अकस्मात् उसके समीप जाकर यह प्रश्न किया कि हे राजन् ! यज्ञ पशु से करना योग्य है वा औषधियों से उचित है हमारे इस सन्देह को आप निवृत्त कीजिये हम दोनों समूहों ने आपही को प्रमाण माना है तब राजा वसु ने हाथ जोड़ कर उनसे पूछा कि हे उत्तम ब्राह्मण लोगो ! आपमें से किस की कौन इच्छा है यह सत्य २ कहो, ऋषि बोले हे राजन् ! हमारा यह पक्षहै कि धानोंसे यज्ञ करना योग्य है और देवताओं का अभीष्ट पक्ष पशु है यह हमको समझाइये, भीष्मजी बोले कि देवताओं का सम्मत जान कर उनका पक्ष धारण करके राजाने ऋषियों से कहा कि बकरे से यज्ञ करना योग्य है, तदनन्तर वह सूर्य के समान तेजस्वी ऋषि लोग महाक्रोधयुक्त हुए और देवताओं के पक्ष धारण करनेवाले विमान में बैठे हुए राजा वसु से यह वचन कहा कि जिस हेतु से तुमने देवताओं का पक्ष अंगीकार किया है इस पाप से तुम स्वर्ग से गिरो और हे राजन् ! अब से लेकर तुम्हारा आकाश का चलना भी नष्ट हुआ, हमारे शाप से तू पृथ्वी को चीर कर प्रवेश करेगा इस वाक्य के कहते ही तत्क्षण राजा उपरिचर पृथ्वी के छिद्र में औंधामुख होकर वर्त्तमान हुआ परन्तु श्रीनारायणजी की आज्ञा से उसकी

स्मृति बनी रही, तब सावधान देवताओं ने राजा वसु के शाप के दूर करने का एक साथही विचार किया कि निश्चय करके राजा का ऐसा कहना यथार्थ था इस महात्मा राजा ने हमारे कारण से शाप पाया इस हेतु से हम सब लोगों को साथ होकर उसका अभीष्ट करना चाहिये, उस समय अत्यन्त प्रसन्न चित्त देवताओं ने शीघ्रही बुद्धि से निश्चय करके राजा उपरिचर से कहा कि देव ब्राह्मणों के रक्षक तुम देवता के भक्त हो और विष्णुजी देवता और असुर दोनों के गुरु हैं वह प्रसन्न चित्त तुम्हारी प्रीति से तुमको शाप से निवृत्त करें निश्चय करके महात्मा ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा करनी योग्य है हे उत्तम, राजन् ! इन ब्राह्मणों के तप से अवश्य फल प्रकट होने के योग्य है, हे राजन् ! जिस हेतु आप अकस्मात् स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरे इससे हमको भी तुम्हारा कुछ उपकार करना उचित है हे निष्पाप ! जब तक तुम शापदोष से पृथ्वी के छिद्र में प्रवेश करके शाप की मुद्दत को व्यतीत करोगे तब तक अपने मनोरथ को भी सिद्ध करोगे अर्थात् यज्ञों के बीच में सावधान ब्राह्मणों से अच्छे प्रकार होमी हुई वसोर्द्धारा को हमारी कृपा से पावोगे तुमको ग्लानि स्पर्श नहीं करेगी, हे राजेन्द्र ! वसोर्द्धारा के भोजन करने से पृथ्वी के छिद्र में तुमको भूख प्यास बाधा नहीं करेगी और तेज की वृद्धि होगी और हमारे वर से प्रसन्न होकर वह देवता तुमको ब्रह्मलोक में पहुँचावेगा इसप्रकार वर देकर वह सब देवता अपने भवन को गये और तपोधन ऋषिलोग भी चलेगये तदनन्तर हे भरतवंशिन् ! उस राजा वसु ने विष्णुजी का पूजन किया, और नारायण के मुखसे प्रकट होनेवाले जपके योग्य मन्त्रको सदैव जपता रहा, हे युधिष्ठिर ! वहां भी पृथ्वी के छिद्र में वर्त्तमान होकर राजा ने पांच यज्ञों से पांच समयपर देवताओंके स्वामी हरिका पूजन किया तब उसकी भक्ति से भगवान् नारायणजी प्रसन्न हुए जोकि अनन्यभक्त और सत्पुरुष था इसकारण विष्णु भगवान् उसपर प्रसन्न हुए और महातीव्रगामी पक्षियों के राजा अपने वाहन गरुड़जी से कहा कि हे महाभाग, गरुड़ ! तुम मेरे कहने से देखो कि सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा धर्मात्मा प्रशंसा के योग्य व्रत का करनेवाला राजा वसु ब्राह्मणों के क्रोध से पृथ्वीतल में पहुँचा है वह ऋषि तो प्रतिष्ठा दिये गये अब हे खगेश ! तुम मेरी आज्ञा से पृथ्वी के छिद्र में गुप्त राजा को जाकर यहां ले आकर उस पृथ्वीतल में विचरनेवाले उत्तम राजा को शीघ्रही आकाशचारी

करो विलम्ब मत करो यह सुनतेही वायु के समान शीघ्रगामी गरुड़जी अपने पंखों को फैलाकर पृथ्वी के छिद्र में जहां राजा वसु वर्त्तमान थे वहां पर पहुँचे और अकस्मात् उसको उठाकर शीघ्रही आकाश को ले उड़े और वहां जाकर इसको छोड़दिया इसीसे उस राजा का नाम फिर उपरिचर होगया अर्थात् आकाशचारी होगया फिर कुछ काल पीछे वह उत्तम राजा सदेह ब्रह्मलोक को गया, हे कुन्तीपुत्र ! इस प्रकार से उस राजा ने भी दोषी वचनों से उन महात्मा ब्राह्मणों के शाप से और देवता की आज्ञा से अधम और उत्तम दोनों गतियों को पाया, उस राजा ने केवल सर्वव्यापी पापों के दूर करने वाले ईश्वर का ही सेवन और पूजन किया था इसी कारण से वह शीघ्रही शाप से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को गया, भीष्मजी बोले कि यह वृत्तान्त मूल समेत तुझसे कहा अब मनुजी के पुत्र जैसे ऐश्वर्यवान् हुए और जैसे वह नारद ऋषि श्वेतद्वीप को गये वह सब वृत्तान्त तुझसे कहता हूं तू एकाग्रमन होकर सुन ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे द्विषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

एकसौ तिरेसठ का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, भगवान् नारदऋषि ने श्वेतद्वीप को प्राप्त होकर उन शुक्ल वर्ण और चन्द्रमा की समान प्रकाशमान पुरुषों को देखा और बड़ी भक्ति से दण्डवत् करके पूजन किया फिर उन लोगों ने भी नारदजी का मनसे पूजन किया और अपने जप में प्रवृत्त प्राजापत्यादि व्रत कियेहुए दर्शन की इच्छा करके नियत हुए थे तब नारदजी ने भी एकाग्रमन ऊंची भुजा और सावधान होकर उस विश्वरूप निर्गुण सगुण के निमित्त स्तोत्र का पाठ किया ॥

स्तोत्र ॥

नारद उवाच ॥ नमस्ते देव देवेश १ निष्क्रिय २ निर्गुण ३ लोकसाक्षिन् ४ क्षेत्रज्ञ ५ पुरुषोत्तम ६ अनन्त ७ पुरुष ८ महापुरुष ९ पुरुषोत्तम १० त्रिगुण ११ प्रधान १२ अमृत १३ अमृताक्ष १४ अनन्ताख्य १५ व्योम १६ सनातन १७ सदसद्व्यक्ताव्यक्त १८ ऋतधामन् १९ आदिदेव २० वसुप्रद २१ प्रजापते २२ सुप्रजापते २३ वनस्पते २४ महाप्रजापते २५ ऊर्जस्पते २६ वाचस्पते २७ जगत्पते २८ मनस्पते २९ दिवस्पते ३० मरुत्पते ३१ सलिलपते ३२ पृथिवीपते ३३ दिक्पते ३४ पूर्वनिवास ३५ गुह्य ३६ ब्रह्मपुरोहित ३७ ब्रह्मकायिक ३८

महाराजिक ३९ चातुर्यमहाराजिक ४० आभासुर ४१ महाभासुर ४२ सप्तमहाभाग ४३ याम्य ४४ महायाम्य ४५ संज्ञासंज्ञा ४६ तुषित ४७ महातुषित ४८ प्रमर्दन ४९ परिनिर्मित ५० अपरिनिर्मित ५१ वशवर्त्तिन् ५२ अपरिनिन्दित ५३ अपरिमित ५४ वशवर्त्तिन् ५५ अवशवर्तिन् ५६ यज्ञ ५७ महायज्ञ ५८ यज्ञसम्भव ५९ यज्ञयोने ६० यज्ञगर्भ ६१ यज्ञहृदय ६२ यज्ञस्तुत ६३ यज्ञभाग ६४ पञ्चयज्ञ ६५ पञ्चकालकर्तृपते ६६ पञ्चरात्रिक ६७ वैकुण्ठ ६८ अपराजित ६९ मानसिक ७० नामनामिक ७१ परस्वामिन् ७२ सुस्नात ७३ हंस '७४ परमहंस ७५ महाहंस ७६ परमयाज्ञिक ७७ सांख्ययोग ७८ सांख्यमूर्त्ते ७९ अमृतेशय ८० हिरण्येशय ८१ देवेशय ८२ कुशेशय ८३ ब्रह्मेशय ८४ पद्मेशय ८५ विश्वेश्वर ८६ विष्वक्सेन ८७ त्वं जगदन्वयः ८८ त्वं जगदाकृतिः ८९ तवाग्निरास्यं ९० वडवामुखोग्निः ९१ त्वमाहुतिः ९२ सारथिः ९३ त्वं वषट्कारः ९४ त्वं तपः ९५ त्वं मनः ९६ त्वं चन्द्रमाः ९७ त्वं चक्षुराख्यं ९८ त्वं सूर्यः ९९ त्वं दिशांगजः १०० त्वं दिग्भानो १०१ विदिग्भानो १०२ हयशिरः १०३ प्रथमत्रिसौपर्णः १०४ वर्णधरः १०५ पञ्चाग्ने १०६ त्रिणाचिकेत १०७ षडंगनिधान १०८ प्राग्ज्योतिष १०९ ज्येष्ठसामग ११० सामिकव्रतधर १११ अथर्वशिराः ११२ पञ्चमहाकल्प ११३ फेनपाचार्य्य ११४ बालखिल्य ११५ वैखानस ११६ अभग्नयोग ११७ अभग्नपरिसंख्यान ११८ युगादे ११९ युगमध्य १२० युगनिधन १२१ आखण्डल १२२ प्राचीनगर्भ १२३ कौशिक १२४ पुरुष्टुत १२५ पुराहूत १२६ विश्वकृत् १२७ विश्वरूप १२८ अनन्तगते १२९ अनन्तभोग १३० अनन्त १३१ अनादे १३२ अमध्य १३३ अव्यक्तमध्य १३४ अव्यक्तनिधन १३५ व्रतावास १३६ समुद्राधिवास १३७ यशोवास १३८ तपोवास १३९ दमावास १४० लक्ष्म्यावास १४१ विद्यावास १४२ कीर्त्यावास १४३ श्रीवास १४४ सर्वावास १४५ वासुदेव १४६ सर्वच्छन्द १४७ हरिहय १४८ हरिमेध १४९ महायज्ञभागहर १५० वरप्रदसुखप्रद १५१ धनप्रद १५२ हरिमेध १५३ यम १५४ नियम १५५ महानियम १५६ कृच्छ्र १५७ अतिकृच्छ्र १५८ महाकृच्छ्र १५९ सर्वकृच्छ्र १६० नियमधर १६१ निवृत्तभ्रम १६२ प्रवचनगतापृश्निगर्भप्रवृत्त १६३ प्रवृत्तवेदक्रिय १६४ अज १६५ सर्वगते १६६ सर्वदर्शिन् १६७ अग्राह्य १६८ अचल १६९ महाविभूते १७० माहात्म्यशरीर १७१ पवित्र १७२ महापवित्र १७३ हिरण्यमय १७४ बृहत् १७५ अप्र-

तर्क्य १७६ अविज्ञेय १७७ ब्रह्माग्र्य १७८ प्रजासर्गकर १७९ प्रजानिधनकर १८० महामायाधर १८१ चित्राशिखण्डिन् १८२ वरप्रद १८३ पुरोडासभागहर १८४ गताध्वर १८५ छिन्नतृष्ण १८६ छिन्नसंशय १८७ सर्वतोवृत्त १८८ निवृत्तरूप १८९ ब्राह्मणरूप १९० ब्राह्मणप्रिय १९१ विश्वमूर्त्ते १९२ महामूर्त्ते १९३ बान्धव १९४ भक्तवत्सल १९५ ब्रह्मण्य १९६ वेदभक्तोहंत्वां दिदृक्षुरेकान्तदर्शनाय नमो नमः १९७ इति श्रीमहापुरुषस्तवः समाप्तः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे महापुरुषस्तववर्णनोनाम
त्रिषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

एकसौ चौंसठ का अध्याय ॥

भीष्म उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान् गुह्यैस्तथ्यैश्च नामभिः । तं मुनिं दर्शयामास नारदं विश्वरूपधृक् १ किंचिच्चन्द्राद्विशुद्धात्मा किंचिच्चन्द्राद्विशेषवान् । कृशानुवर्णः किंचिच्च किंचिद्धिष्ण्याकृतिः प्रभुः २ शुकः पत्रनिभः किंचित् किंचित् स्फटिकसंनिभः । नीलाञ्जनचयप्रख्यो जातरूपप्रभः क्वचित् ३ प्रवालाङ्कुरवर्णश्च श्वेतवर्णस्तथा क्वचित् । क्वचित्सुवर्णवर्णाभो वैदूर्यसदृशः क्वचित् ४ नीलवैदूर्यसदृश इन्द्रनीलनिभः क्वचित् । मयूरग्रीववर्णाभो मुक्ताहारनिभः क्वचित् ५ एतान्बहुविधान्वर्णान् रूपैर्बिभ्रन्सनातनः । सहस्रनयनः श्रीमाञ्छतशीर्षः सहस्रपात् ६ सहस्रोदरबाहुश्च अव्यक्त इति च क्वचित् । ओंकारमुद्गिरन्वक्त्रात् सावित्रीं च तदन्वयाम् ७ शेषेभ्यश्चैव वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदान् गिरन्बहून् । आरण्यकं जगौ देवो हरिर्नारायणोवशी ८ वेदिं कमण्डलुं शुभ्रान्मणीनुपानहौकुशान् । अजिनं दण्डकाष्ठं च ज्वलितं च हुताशनम् ९ धारयामास देवेशो हस्तैर्यज्ञपतिस्तदा । तं प्रसन्नं प्रसन्नात्मा नारदो मुनिसत्तमः । वाग्यतः प्रणतो भूत्वा ववन्दे परमेश्वरम् १० तमुवाच नतं मूर्ध्ना देवानामादिरव्ययः ११ श्रीभगवानुवाच ॥ एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः । इमं देशमनुप्राप्ता मम दर्शनलालसाः १२ न च मां ते ददृशिरे न च द्रक्ष्यति कश्चन । ऋते ह्येकान्तिकश्रेष्ठा त्वं चैवैकान्तिकोत्तमः १३ ममैतास्तनवः श्रेष्ठा जाता धर्मगृहे द्विज । तांस्त्वं भजस्व सततं साधयस्व यथागतम् १४ वृणीष्व च वरं विप्र मत्तस्त्वं यदिहेच्छसि । प्रसन्नोहं तवाद्येह विश्वमूर्त्तिरिहाव्ययः १५ नारद उवाच ॥ अद्य मे तपसो देव यमस्य नियमस्य च । सद्यः फलमवाप्तं वै दृष्टो यद्भगवान् मया १६ वर एष मयात्यन्तं दृष्टस्त्वं यत्सनातनः । भगवन्विश्व-

हृक्सिंहः सर्वमूर्तिर्महान् प्रभुः १७ भीष्म उवाच ॥ एवं संदर्शयित्वा तु नारदं परमेष्ठिनम्। उवाच वचनं भूयो गच्छ नारद माचिरम् १८ इमे ह्यनिन्द्रियाहारा मद्भक्ताश्चन्द्रवर्चसः। एकाग्राश्चिन्तयेयुर्मां नैषां विघ्नोभवेदिति १९ सिद्धा ह्येते महाभागाः पुरा ह्यैकान्तिनोभवन्। तमोरजोभिनिर्मुक्ता मां प्रवेक्ष्यत्य संशयम् २० न दृश्यश्चक्षुषा योसौ न स्पृश्यः स्पर्शनेन च। न घ्रेयश्चैव गन्धेन रसेन च विवर्जितः २१ सत्त्वं रजस्तमश्चैव न गुणास्तं भजन्ति वै। यश्च सर्वगतः साक्षी लोकस्यात्मेति कथ्यते २२ भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु नविनश्यति। अजो नित्यः शाश्वतश्च निर्गुणो निष्कलस्तथा २३ द्विर्द्वादशेभ्यस्तत्त्वेभ्यः ख्यातो यः पञ्चविंशकः। पुरुषोनिष्क्रियश्चैव ज्ञानदृश्यश्च कथ्यते २४ यं प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता वै द्विजसत्तमाः। स वासुदेवो विज्ञेयपरमात्मा सनातनः २५ पश्य देवस्य माहात्म्यं महिमानं च नारद। शुभाशुभैः कर्मभिर्यो न लिप्यति कदाचन २६ एतान् गुणांस्तु क्षेत्रज्ञो भुङ्क्ते नैभिः सभुज्यते। निर्गुणो गुणभोक्तैव गुणस्रष्टा गुणाधिकः २७ जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते। ज्योतिष्यापः प्रलीयन्ते ज्योतिर्वायौ प्रलीयते २८ खे वायुः प्रलयं याति मनस्याकाशमेव च। मनो हि परमं भूतं तदव्यक्ते प्रलीयते २९ अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन्निष्क्रिये संप्रलीयये। नास्ति तस्मात्परतरः पुरुषाद्वै सनातनात् ३० नित्यं हि नास्ति जगतीभूतं स्थावरजंगमम्। ऋते तमेकं पुरुषं वासुदेवं सनातनम् ३१ सर्वभूतात्मभूतो हि वासुदेवो महाबलः। पृथिवीवायुराकाशमापोज्योतिश्च पञ्चमम् ३२ ते समेता महात्मानः शरीरमितिसंज्ञितम्। तदा विशति यो ब्रह्म न दृश्यो लघुविक्रमः। उत्पन्न एव भवति शरीरं चेष्टयन्प्रभुः ३३ न विना धातु संघातं शरीरं भवति क्वचित्। न च जीवं विना ब्रह्मन् वायवश्चेष्टयन्त्युत ३४ स जीवः परिसंख्यातः शेषः संकर्षणः प्रभुः। तस्मात्सनत्कुमारत्वं यो लभेत्स्वेन कर्मणा ३५ यस्मिंश्च सर्वभूतानि प्रलयं यान्ति संक्षये। मनसः सर्वभूतानां प्रद्युम्नः परिपठ्यते ३६ तस्मात् प्रसूतो यः कर्त्ता कारणं कार्य्यमेव च। तस्मात्सर्वं संभवति जगत्स्थावरजंगमम्। सोनिरुद्धः सईशानो व्यक्तः सर्वसु कर्मसु ३७ यो वासुदेवो भगवान् क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः। ज्ञेयः स एव राजेन्द्र जीवः संकर्षणः प्रभुः ३८ संकर्षणाच्च प्रद्युम्नो मनोभूतः स उच्यते। प्रद्युम्नाद्योनिरुद्धस्तु सोहंकारः स ईश्वरः ३९ मत्तः सर्वं संभवति जगत्स्थावरजंगमम्। अक्षरं च क्षरं चैव सच्चासच्चैव नारद ४० मां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता

भक्तास्तु ये मम। अहं हि पुरुषो ज्ञेयो निष्क्रियः पञ्चविंशकः। निर्गुणो निष्कलश्चैव निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ४१ एतत्त्वया न विज्ञेयं रूपवानिति दृश्यते। इच्छन्मुहूर्तान्निश्येयमीशोहं जगतोगुरुः ४२ माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसि ४३ मयैतत्कथितं सम्यक्तव मूर्तिचतुष्टयम्। अहं हि जीवसंज्ञातो मयि जीवः समाहितः ४४ नैवं ते बुद्धिरत्राभूद्दृष्टजीवो मयेति वै। अहं सर्वत्रगो ब्रह्मन्भूतग्रामान्तरात्मकः ४५ भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न नशाम्यहम्। सिद्धा हि ते महाभागा नरा ह्येकान्तिनोऽभवन् ४६ तमोरजोभ्यां निर्मुक्ताः प्रवेक्ष्यन्ति च मां मुने। हिरण्यगर्भो लोकादिश्चतुर्वक्रो निरुक्तगः ४७ ब्रह्मा सनातनो देवो मम बह्वर्थचिन्तकः। ललाटाच्चैव मे रुद्रो देवः क्रोधाद्विनिःसृतः ४८ पश्यैकादश मे रुद्रान् दक्षिणं पार्श्वमास्थितान्। द्वादशैव तथादित्यान् वामपार्श्वे समास्थितान् ४९ अग्रतश्चैव मे पश्य वसूनष्टौ सुरोत्तमान्। नासत्यं चैव दस्रं च भिषजौ पश्य पृष्ठतः ५० सर्वान्प्रजापतीन्पश्य पश्य सप्तऋषींस्तथा। वेदान्यज्ञांश्च शतशः पश्यामृतमथौषधीः ५१ तपांसि नियमांश्चैव यमानपि पृथग्विधान्। तथाष्टगुणमैश्वर्य्यमेकस्थं पश्य मूर्त्तिमत् ५२ श्रियं लक्ष्मीं च कीर्तिं च पृथिवीं च ककुद्मिनीम्। वेदानां मातरं पश्य मत्स्थां देवीं सरस्वतीम् ५३ ध्रुवं च ज्योतिषां श्रेष्ठं पश्य नारद खेचरम्। अम्भोधरान्समुद्रांश्च सरांसि सरितस्तथा ५४ मूर्त्तियुक्तान् पितृगणांश्चतुः पश्यसि सत्तम। त्रींश्चैवेमान्गुणान्पश्य मत्स्थान्मूर्तिर्विवर्जितान् ५५ देवकार्यादपि मुने पितृकार्य्यं विशिष्यते। देवानां च पितॄणां च पिता ह्येकोहमादितः ५६ अहं हयशिरा भूत्वा समुद्रे पश्चिमोत्तरे। पिबामि सुहुतं हव्यं कव्यं च श्रद्धयान्वितम् ५७ मया सृष्टः पुरा ब्रह्मा मां यज्ञमयजत्स्वयम्। ततस्तस्मिन्वरान्प्रीतो दत्तवानस्म्यनुत्तमान् ५८ मत्पुत्रत्वं च कल्पादौ लोकाध्यक्षत्वमेव च। अहंकारकृतं चैव नामपर्यायवाचकम् ५९ त्वया कृतं च मर्यादां नातिक्रम्यति कश्चन। त्वं चैव वरदो ब्रह्मन् वरेप्सूनां भविष्यसि ६० सुरासुरगणानां च ऋषीणां च तपोधन। पितॄणां च महाभाग सततं संशितव्रत॥ विविधानां च भूतानां त्वमुपास्यो भविष्यसि। प्रादुर्भावगतश्चाहं सुरकार्य्येषु नित्यदा॥ अनुशास्यस्त्वया ब्रह्मन् नियोज्यश्च सुतो यथा ६१ एतांश्चान्यांश्च रुचिरान् ब्रह्मणेमिततेजसे। अहं दत्त्वा वरान्प्रीतो निवृत्तिपरमोभवम् ६२ निर्वाणं सर्वधर्माणां निवृत्तिः परमा स्मृता। तस्मान्निवृत्तिमा-

पन्नश्चरेत्सर्वाङ्गनिर्वृतः ६३ विद्यासहायवन्तं च आदित्यस्थंसमाहितम्। कपिलं प्राहुराचार्य्याः सांख्यनिश्चितनिश्चयाः ६४ हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि सुष्टुतः। सोहं योगरतिर्ब्रह्मन्योगशास्त्रेषु शाब्दितः ६५ एषोहं व्यक्तिमागत्य तिष्ठामि दिवि शाश्वतः। ततो युगसहस्रान्ते संहरिष्ये जगत्पुनः ६६ कृत्वात्मस्थानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। एकाकी विद्यया सार्द्धं विहरिष्ये जगत्पुनः ६७ ततो भूयो जगत्सर्वं करिष्यामीह विद्यया। अस्मिन्मूर्त्तिश्चतुर्थी या सासृजच्छेषमव्ययम् ६८ सहि संकर्षणः प्रोक्तः प्रद्युम्नं सोप्यजीजनत्। प्रद्युम्नादनिरुद्धोहं सर्गो मम पुनः पुनः ६९ अनिरुद्धात्तथा ब्रह्मा तन्नाभिकमलोद्भवः। ब्रह्मणः सर्वभूतानि चराणि स्थावराणि च ७० एतां सृष्टिं विजानीहि कल्पादिषु पुनः पुनः। यथा सूर्यस्य गगनादुदयास्तमने इह ७१ नष्टे पुनर्बलात्काल आनयत्यमितद्युतिः। तथा बलादहं पृथ्वीं सर्वभूतहिताय वै ७२ सत्त्वैराक्रान्तसर्वांगो नष्टां सागरमेखलाम्। आनयिष्यामि स्वस्थानं वाराहं रूपमास्थितः ७३ हिरण्याक्षं वधिष्यामि दैतेयं बलगर्वितम्। नारसिंहं पुनः कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुनः ७४ सुरकार्यें हनिष्यामि यज्ञघ्नं दितिनन्दनम्। विरोचनस्य बलवान् बलिपुत्रो महासुरः ७५ अवध्यः सर्वलोकानां सदेवासुररक्षसाम्। भविष्यति सशक्रश्च स्वराज्याच्च्यावयिष्यति ७६ त्रैलोक्येऽपहृते तेन विमुखे च शचीपतौ। आदित्यान् द्वादशादित्यः सम्भविष्यामि कश्यपात् ७७ ततो राज्यं प्रदास्यामि शक्रायामिततेजसे। देवताः स्थपयिष्यामि स्वे स्वे स्थानेषु नारद ७८ बलिं चैव करिष्यामि पातालतलवासिनम्। दानवं च बलिश्रेष्ठमवध्यं सर्वदेवतैः ७९ त्रेतायुगे भविष्यामि रामो भृगुकुलोद्वहः। क्षत्रं चोत्सादयिष्यामि समृद्धबलवाहनम् ८० सन्ध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च। अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः ८१ त्रितोपघाताद्वैरूप्यमेकतोथ द्वितस्तथा। प्राप्स्येते वानरत्वं हि प्रजापतिसुतावृषी ८२ तयोर्येत्वन्वये जाता भविष्यन्ति वनौकसः। महाबला महावीर्याः शक्रतुल्यपराक्रमाः ८३ ते सहायाभविष्यन्ति सुरकार्य्ये मम द्विज। ततो रक्षपतिं घोरं पुलस्त्यकुलपांसनम् ८४ हरिष्ये रावणं रौद्रं सगणं लोककण्टकम्। द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पर्य्यवसानिके ८५ प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुराया भविष्यति। तत्राहं दानवान्हत्वा सुबहून् देवकण्टकान् ८६ कुशस्थलीं करिष्यामि निवेशं द्वारकां पुरीम्। वसानस्तत्र वै पुर्य्यामदितेर्विप्रियं करम् ८७ हनिष्ये नरकं भौमं मुरुम्पीठं च दानवम्।

प्राग्ज्योतिषं पुरं रम्यं नानाधनसमन्वितम् ८८ कुशस्थलीं नयिष्यामि हत्वा
वै दानवोत्तमम् । महेश्वरमहासेनौ बाणप्रियहितैषिणौ ८९ पराजेष्याम्यथो-
द्युक्तौ देवौ लोकनमस्कृतौ । ततः सुतं बलेर्जित्वा बाणं बाहुसहस्रिणम् ९०
विनाशयिष्यामि ततः सर्वान् सौभनिवासिनः । यः कालयवनख्यातो गर्ग-
तेजोभिसंवृतः ९१ भविष्यति वधस्तस्य मत एव द्विजोत्तम । जरासन्धश्च
बलवान् सर्वराजविरोधनः ९२ भविष्यत्यसुरस्फीतो भूमिपालो गिरिव्रजे।
मम बुद्धिपरिस्पंदाद् वधस्तस्य भविष्यति ९३ शिशुपालं वधिष्यामि यज्ञे
धर्म्मसुतस्य वै । समागतेषु बलिषु पृथिव्यां सर्वराजसु ९४ वासविः
सुसहायो वै मम त्वेको भविष्यति । युधिष्ठिरं स्थापयिष्ये स्वराज्ये भ्रातृभिः
सह ९५ एवं लोका वदिष्यन्ति नरनारायणावृषी । उद्युक्तौ दहतः क्षत्रं
लोके कार्य्यार्थमीश्वरौ ९६ कृत्वा भारावतरणं वसुधाया यथेप्सितम् । सर्वसात्व-
तमुख्यानां द्वारकायाश्च सत्तम ९७ करिष्ये प्रलयं घोरमात्मज्ञानाभिसंवृतम् ।
कर्माण्यपरिमेयानि चतुर्मूर्त्तिधरोम्यहम् ९८ कृत्वा लोकान् गमिष्यामि स्वानहं
ब्रह्मसत्कृतान् । हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावा द्विजोत्तम ९९ वाराहो नारसिं-
हश्च वामनो राम एव च । रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च १०० यदा
वेदश्रुतिर्नष्टा मया प्रत्याहृता पुनः । सवेदाः सश्रुतीकाश्च कृताः पूर्वं कृते युगे १
अतिक्रान्ताः पुराणेषु श्रुतास्ते यदि वा क्वचित् । अतिक्रान्ताश्च बहवः प्रादुर्भावा
ममोत्तमाः २ लोककार्य्याणि कृत्वा च पुनः स्वां प्रकृतिं गताः । न ह्येतद्ब्रह्मणा प्रा-
प्तमीदृशं मम दर्शनम् ३ यत्त्वया प्राप्तमद्येह एकान्तगतिबुद्धिना । एतत्ते सर्व-
माख्यातं ब्रह्मन्भक्तिमतो मया । पुराणं च भविष्यं च सरहस्यं च सत्तम ४ भीष्म
उवाच ॥ एवं स भगवान्देवो विश्वमूर्त्तिधरोऽव्ययः । एतावदुक्त्वा वचनं तत्रैवा-
न्तर्दधे पुनः ५ नारदोपि महातेजाः प्राप्यानुग्रहमीप्सितम् । नरनारायणौ द्रष्टुं
बदर्य्याश्रममाद्रवत् ६ इदं महोपनिषदं चतुर्वेदसमन्वितम् । सांख्ययोगकृतं तेन
पञ्चरात्रानुशाब्दितम् ७ युधिष्ठिर उवाच ॥ एतदाश्चर्य्यभूतं हि माहात्म्यं तस्य
धीमतः । किं वै ब्रह्मा न जानीते यतः शुश्राव नारदात् ८ पितामहोऽपि भगवां-
स्तस्माद्देवादनन्तरः । कथं स न विजानीयात्प्रभावममितौजसः ९ भीष्म
उवाच ॥ महाकल्पसहस्राणि महाकल्पशतानि च । समतीतानि राजेन्द्र! सर्गाश्च
प्रलयाश्च ह १० सर्गस्यादौ स्मृतो ब्रह्मा प्रजासर्गकरः प्रभुः । जानाति देव-
प्रवरं भूयश्चातोऽधिकं नृप ११ परमात्मानमीशानमात्मनः प्रभवन्तथा । ये त्वन्ये

ब्रह्मसदने सिद्धसङ्घाः समागताः १२ तेभ्यस्तच्छ्रावयामास पुराणं वेदसम्मितम्। तेषां सकाशात्सूर्यस्तु श्रुत्वा वै भावितात्मना १३ आत्मानुगामिनां राजन् श्रावयामास वै ततः। षट्षष्टिर्हि सहस्राणि ऋषीणां भावितात्मना १४ सूर्यस्य तपतो लोकान्निर्मिता ये पुरःसराः। तेषामकथयत्सूर्यः सर्वेषां भावितात्मनाम् १५ सूर्यानुगामिभिस्तात ऋषिभिस्तैर्महात्मभिः। मेरौ समागता देवाः श्राविताश्चेदमुत्तम १६ देवानान्तु सकाशाद्वै ततः श्रुत्वासितो द्विजः। श्रावयामास राजेन्द्र पितॄणां मुनिसत्तम १७ मम चापि पिता तात कथयामास शान्तनुः। ततो मयापि श्रुत्वा च कीर्त्तितं तव भारत १८ सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणं यैरिदं श्रुतम्। सर्वे ते परमात्मानं पूजयन्ते समन्ततः १९ इदमाख्यानमार्षेयं पारम्पर्यागतं नृप। न वासुदेवाभक्ताय त्वया देयं कथञ्चन २० मत्तोन्यानि च ते राजन्नुपाख्यानि शतानि वै। यानि श्रुतानि सर्वाणि तेषां सारोयमुद्धृतः २१ सुरासुरैर्यथा राजन्निर्मथ्यामृतमुद्धृतम्। एवमेतत्पुरा विप्रैः कथामृतमिहोद्धृतम् २२ यश्चेदं पठते नित्यं यश्चेदं शृणुयान्नरः। एकान्तभावोपगत एकान्तेषुसमाहितः २३ प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं भूत्वा चन्द्रप्रभो नरः। ससहस्रार्च्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः २४ मुच्येदार्त्तस्तथारोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम्। जिज्ञासुर्लभते कामान्भक्तो भक्तगतिं व्रजेत् २५ त्वयापि सततं राजन्नभ्यर्च्यः पुरुषोत्तमः। स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः २६ ब्रह्मण्यदेवो भगवान् प्रीयतां ते सनातनः। युधिष्ठिर महाबाहो महाबुद्धिर्जनार्द्दनः २७ वैशम्पायन उवाच॥ श्रुत्वैतदाख्यानवरं धर्मराड्जनमेजय। भ्रातरश्चास्य ते सर्वे नारायणपराभवन् २८ जितं भगवता तेन पुरुषेणेति भारत। नित्यं जाप्यपरा भूत्वा सरस्वतिमुदीरयन् २९ यो ह्यस्माकं गुरुः श्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनो मुनिः। जगौ परमकं जप्यं नारायणमुदीरयन् ३० गत्वान्तरिक्षात्सततं क्षीरोदममृताशयम्। पूजयित्वा च देवेशं पुनरायात्स्वमाश्रमम् ३१ भीष्म उवाच॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं नारदोक्तं मयेरितम्। पारम्पर्यागतं ह्येतत्पित्रा मे कथितम्पुरा ३२ सूत उवाच॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वैशम्पायनकीर्त्तितम्। जनमेजयेन तच्छ्रुत्वा कृतं सम्यग्यथाविधि ३३ यूयं हि तप्ततपसः सर्वे च चरितव्रताः। सर्वे वेदविदो मुख्याः नैमिषारण्यवासिनः ३४ शौनकस्य महासत्रे प्राप्ताः सर्वे द्विजोत्तमाः। यजध्वं सुहुतैर्यज्ञैः शाश्वतं परमेश्वरम्। पारम्पर्यागतं ह्येतत्पित्रा मे कथितं पुरा॥ १३५॥

एकसौ चौंसठ के अध्याय का अर्थ लिखते हैं॥

इसप्रकार गुप्त और सच्चे नामों से स्तुति किये हुये बहुरूपी भगवान् ईश्वर ने उन नारदजी को दर्शन दिया चन्द्रमा से भी स्वच्छ वा विशेष और अग्नि से भी उत्तम वर्ण कुछ स्थान की सी आकृति कुछ तोते के परों की समान कुछ स्फटिक और धवलागिरि के समान कहीं सुवर्ण समान प्रकाश कहीं वैडूर्य मणि के कहीं नीलवैडूर्य के समान कहीं इन्द्रनीलमणि के समान कहीं मोर की गर्दन के समान कहीं मुक्ताहारधारी के समान इत्यादि अनेक प्रकार के रूपयुक्त हजार शिर चरण और नेत्रों से शोभित हजारों भुजा उदर आदि को धारण किये कहीं अव्यक्तरूप से ॐकार और उसके अंगरूप गायत्री को मुख से उच्चारण करते और शेष मुखों से चारों वेद और अनेक शास्त्रों को कहते हुए उस सर्वैश्वर्य्यवान् जगत् के स्वामी ने आरण्यक उपनिषद् को वर्णन किया फिर उस देवदेव यज्ञपति ने हाथ में दण्डकमण्डलु देह में मृगचर्म चरणों में पादुका अग्निस्वरूप तेजवान् रूप को धारण किया ऐसा एक देव के ब्राह्मणों में उत्तम नारदजी ने बड़ी प्रसन्न बुद्धि और शान्तता को धारण कर नम्रतापूर्वक उस अपूर्व मूर्त्तिधारी को दण्डवत् किया तब उस महात्मा जगदीश ने प्रसन्न होकर उस शिरझुकाये हुए नारद से कहा कि हे नारद! मेरे दर्शनों की इच्छा से एकत, द्वित, त्रित महर्षिलोग इस देश में आये उनको मेरा दर्शन नहीं हुआ क्योंकि एक में ही निश्चय करनेवाले अर्थात् अनन्यभक्तों के सिवाय किसीको मेरा दर्शन नहीं होता है सो तुम भी अनन्यभक्त हो हे नारद! यह मेरे उत्तम अंग धर्म देवता के घर में उत्पन्न हुए तुम उन्हीं अंगों का ध्यान करके मुझको भजो जिससे कि मेरी प्राप्ति होय हे ब्रह्मर्षि, नारद! मैं तुम पर प्रसन्न हूं जो इच्छा हो सो वर मांगो नारदजी बोले कि हे देवेश्वर! मैंने आपके दर्शन पाकर सब तप यज्ञों का फल पाया यही मुझको बड़ा वर है जो संसार के उत्पत्ति पालन और नाश करनेवाले का दर्शन पाया, भीष्मजी बोले कि इसप्रकार ब्रह्म में लय होनेवाले नारदजी को दर्शन देकर फिर यह वचन बोले कि हे नारद! शीघ्रही जाओ विलम्ब मत करो, यह मेरे भक्त अनिच्छापूर्वक भोजन करनेवाले चन्द्रमा के समान प्रकाशमान एकाग्रचित्त होकर मेरा ध्यान करते हैं उनको कभी विघ्न नहीं होता है यह महाभाग शुद्ध

अन्तःकरण हैं यह सब पूर्वसमय में अनन्यभक्त थे यह निस्सन्देह तीनों गुणों से पृथक् होकर मुझमें प्रवेश करेंगे, अब प्रवेश करने के योग्य आत्मस्वरूप को कहता हूं जो कि इन्द्रियों के विषय से परे गुणातीत सर्वव्यापी साक्षी लोक का आत्मा कहाजाता है वह अज अविनाशी सदैव रूपान्तररहित निर्गुण कलारूप उपाधियों से पृथक् है, जो पुरुष चौबीस तत्त्वों से पृथक् पच्चीसवां प्रसिद्ध है वही सूक्ष्म निर्मल बुद्धि से दृष्ट होता है, संसार में उत्तम ब्राह्मण जिसमें प्रवेश करके मुक्त होते हैं वह वासुदेव सर्वव्यापी परमात्मा सनातन जानने के योग्य है हे नारदजी ! देवता के माहात्म्य और उसकी महिमा को देखकर जो पुरुष अच्छे बुरे कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता है और मन से जानता है कि क्षेत्रज्ञ ही भोगता है वा नहीं भोगता है निर्गुण गुणों को पैदा करता भोक्ता हुआ भी गुणों से जुदा है, हे देवर्षे ! जगत् की प्रतिष्ठा यह है कि पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश मन में और मन अव्यक्त में लय होता है, वह अव्यक्त अकर्त्ता पुरुष में लय होता है उस सनातन पुरुष से उत्तम कोई नहीं है, उस अकेले सनातन पुरुष वासुदेव के सिवाय यह जड़चैतन्य जगत् नाशवान् है वही वासुदेव सब जीवों के आत्मा हैं यह पांचों तत्त्व इकट्ठे होकर देहरूप होते हैं तब वह ब्रह्मरूप उसमें प्रवेश करता है वह दृष्टि से अगोचर महाबलवान् है वही देह को चेष्टा देता है तब संसार कहाजाता है विना तत्त्वों के देह नहीं होता और विना जीव के देह में वायुचेष्टा नहीं होती है वह प्रभु, जीव, शेष, संकर्षण, विश्वधारक इन नामों से और अपने ध्यान पूजन आदि कर्मों के द्वारा सनत्कुमारभाव को प्राप्त होता है अर्थात् जीवन्मुक्ति को पाता है, इस प्रकार अविद्या उपाधिवाले जीव को साबित करके उसीसे प्रद्युम्न नाम मन की उत्पत्ति को वर्णन करते हैं कि महाप्रलय में जिसके भीतर सब जीवमात्र लय होजाते हैं वह प्रद्युम्न नाम मन कहाता है, जिस मन से सब जीवों की उत्पत्ति है, उस संकर्षण से जो उत्पन्न हुआ वह कर्त्ता, क्रिया और कारणरूप है उसीसे सब जड़ चैतन्य जगत् उत्पन्न होता है वही प्रद्युम्न अनिरुद्ध नाम अहंकार होता है वह स्वामी है और सब कर्मों में प्रकट है, इस प्रकार प्रद्युम्न आदि के कर्त्तारूप त्वं पदार्थ जीव को कहकर ऊपर लिखेहुए तत्पदार्थ से इसकी एकांगी गति को कहते हैं हे राजेन्द्र ! जो निर्गुण क्षेत्रज्ञ भगवान् वासुदेव है वही प्रभु संकर्षण नाम जीव

है, संकर्षण से उत्पन्न होनेवाला प्रद्युम्न नाम मन वही वासुदेव कहाजाता है और प्रद्युम्न से जो अनिरुद्ध नाम अहंकार उत्पन्न हुआ वह भी वही ईश्वर है, यह सब चराचर जगत् मुझसे ही उत्पन्न होता है हे नारदजी! अक्षर जीव और क्षर महत्तत्त्वादिक जो कि सत् असत् रूप हैं वह उत्पन्न होते हैं यहां जो मेरे भक्त हैं वह अपने को मुझमें प्रवेश करके मुक्त होते हैं मैं ही चिन्मात्र निष्क्रिय कूटस्थ पच्चीसवां पुरुष जानने के योग्य हूं और उपाधिरहित निर्गुण सुख दुःखादि और वासनाआदि परिग्रह से जुदा हूं तुझ विश्वरूप का उपाधि से पृथक् होना कैसे होसक्ता है यह शंका करके कहते हैं यह बात तुमको न जानना चाहिये कि यह रूपयुक्त दृष्ट आता है मैं इच्छा करते ही एक मुहूर्त में निराकार होजाऊं मैंही जगत् का ईश्वर और गुरु भी होजाताहूं अर्थात् उत्पत्ति नाश केवल मेरी इच्छा है, हे नारद! मैंने यह माया की है जो तुम मुझको देखते हो तुम इस प्रकार से मुझको सब भूतों के गुणों से संयुक्त मत जानो तात्पर्य यह है कि मैं निर्गुण निराकारहूं मैंने यह चारों मूर्त्ति तुमसे अच्छेप्रकार वर्णन करीं मैं ही जीवभाव से जानागयाहूं और वह जीव मुझमें ही अच्छेप्रकार से नियत है, यहां तू ऐसा मत समझ कि मैंने उपाधियुक्त समष्टि जीव देखा हे ब्रह्मन्! मैं सब जगह वर्त्तमान सब जीवों में आत्मारूप हूं जीवसमूहों के शरीरनाश होनेपर मैं नाश नहीं होता हूं वे महाभाग अनन्यभक्त पुरुष सिद्ध हैं और तमोगुण रजोगुणसे पृथक् मुझमेंही प्रवेश करेंगे अर्थात् मुझसेही एकत्त्वता को प्राप्त करेंगे संसार का प्रथम चतुर्मुख वेदांगनिर्गत नाम को जाननेवाला हिरण्यगर्भ सनातन देवता ब्रह्मा मेरे अनेक अर्थों का विचारनेवाला है और क्रोध के कारण मेरे ललाट से रुद्र उत्पन्न हुए, और मेरे दक्षिणभाग से ग्यारह रुद्र और वामभाग से बारह सूर्य और अग्रभाग में अष्टवसु और पीछे के भाग में अश्विनीकुमार दोनों देववैद्य उत्पन्न देखो जिसप्रकार सब प्रजापति, ऋषि, वेद, यज्ञ, अमृत, औषध, तप, नियम हैं उसी प्रकार मुझ अकेले में नियत आठ प्रकार के ऐश्वर्य्य को देखो, श्रीलक्ष्मी, कीर्त्ति, पृथ्वी, ककुद्मनि, वेदमाता, सरस्वती को भी मुझमें नियत देखो बादल, समुद्र, नदी, सरोवर, मूर्त्तिमान् चारों पितरों को और तीनों गुणों को भी मुझी में देखो हे मुनिदेव! कर्म से पितृकर्म बड़ा है मैं अकेला ही देव पितर दोनों का पिता हूं मैं ही बड़वानल समुद्र की अग्नि होकर श्रद्धापूर्वक होमेहुए हव्य कव्य को भोजन करता हूं,

पूर्वसमय में मुझसे पैदाहुए ब्रह्मा ने मुझी यज्ञरूप को पूजा था जिसके कारण प्रसन्न होकर मैंने बहुत से वर उसको दिये, कल्प की आदि में मेरा पुत्रत्वभाव लेकर लोकों के क्रमपूर्वक राज्य और अध्यक्षता को अहंकार प्राप्त होगा तब तुम्हारी की हुई मर्यादाओं को कोई उल्लंघन नहीं करेगा और तुम जीवों के वांछित वस्तुओं के वरदाता होगे, हे तपोधन, महाभाग ! तुम्हीं महातेजस्वी ब्रह्मा होकर सब देव, पितृ, ऋषि, गन्धर्व आदि अनेक प्रकार के जीवों के उपासना योग्य होगे और हे ब्रह्मन् ! देवकार्य्यों में अवतार लेनेवाला मैं सदैव तुम से पुत्र के समान उपदेश और आज्ञा लेने के योग्य होऊंगा फिर मैं प्रसन्न होकर इन वरों के सिवाय अन्य बहुत उत्तम उत्तम वर ब्रह्मा को देकर निवृत्ति धर्मपरायण होऊंगा, सब धर्मों से जो पृथक्ता है उसको ही उत्तम निवृत्ति कहते हैं इसीहेतु से सब अंगों से निवृत्ति धर्मयुक्त होकर विचरे, सांख्यशास्त्र का निश्चय रखनेवाले आचार्य्यों ने कपिलजी को सावधान विद्यासम्पन्न और सूर्य्य में नियत होना वर्णन किया है, यह भगवान् हिरण्यगर्भ वेद में स्तुति किया हुआ है हे ब्रह्मन् ! वही मैं योगशास्त्रों के मध्य में योग में प्रीतिमान् वर्णन कियागया हूं, मैं ही सनातन सगुणरूप होकर सर्ग में नियत होता हूं फिर मैं ही हज़ार युगों के अन्त होनेपर संसार को अपने में लय कर लेता हूं, सब स्थावर जंगम जीवों को अपनी आत्मा में नियत करके अकेला मैं ही विद्यानाम माया से युक्त होकर जगत् को नाश करता हूं फिर मैं ही जगत् को उत्पन्न करता हूं मेरी जो चौथी मूर्त्ति है उसने अविनाशी शेषजी को उत्पन्न किया वही शेष संकर्षण जीव कहाजाता है उसने प्रद्युम्न नाम मन को उत्पन्न किया और प्रद्युम्न से अनिरुद्धरूप अहंकार उत्पन्न हुआ और वारंवार मेरा ही प्रत्यक्ष होता है, इसी प्रकार अनिरुद्ध से ब्रह्मा उत्पन्न हुए उसकी उत्पत्ति नाभिकमल से है और ब्रह्माजी से सब स्थावर जंगम जीव उत्पन्न हुए, वारंवार कल्पों की आदि में यह सब सृष्टि का होना ऐसा जानो, जैसे कि इस लोक में आकाश से सूर्य्य का उदय और अस्त होता है, गुप्त होने पर बड़ा तेजस्वी काल उसको फिर ले आता है इसी प्रकार मैं भी सब जीवों के उपकार के लिये वराहरूप को धारण करके बड़े बल से, इस सागररूप मेखलाधारी जीवों के भार से आक्रान्त सब अंगों समेत इस पृथ्वी को गुप्त होजाने पर अर्थात् हिरण्याक्ष के हरलाने पर पाताल से ऊपर को लाऊंगा फिर नृसिंहरूप होकर

हिरण्यकशिपु दैत्य को बड़े बल से नखों के द्वारा विदीर्ण करके मारूंगा तदनन्तर विरोचन का पुत्र महापराक्रमी महाअसुर राजा बलि सब लोकों का और देव असुर राक्षसों का विरोधी होगा और इन्द्र को अपने इन्द्रासन से नीचे उतारेगा उसके हाथ से तीनों लोकों की विजय होनेपर और इन्द्र के पीठफेरने पर कश्यपजी से अदिति माता में मैं ही बारहवां सूर्य्य उत्पन्न होऊंगा, हे नारद! फिर महातेजस्वी इन्द्र को उसका राज्य दूंगा और देवताओं को नये सिरे से फिर अपने अपने स्थानों पर नियत करूंगा, सब देवताओं के विरोधी पराक्रमियों में श्रेष्ठ दानवोत्तम राजा बलि को पाताल में स्थित करूंगा, त्रेता युग में भृगुवंश का रक्षा करनेवाला परशुराम अवतार भी मैं ही होऊंगा और बड़े बड़े क्षत्रिय राजाओं को सेना समेत मारूंगा, त्रेतायुग में द्वापर के सन्ध्यांश होने पर मैं जगत् का स्वामी दशरथ का पुत्र रामचन्द्र नाम मर्य्यादापुरुषोत्तम अवतार धारण करूंगा, प्रजापति के पुत्र एकत द्वित नाम ऋषि अपने त्रित नाम भाई के शाप से विपरीतरूप अर्थात् वानर के रूपों को धारण करेंगे, उन दोनों के वंश में जो बड़े पराक्रमी वानर इन्द्र के बल के समान प्रचण्ड पराक्रमी होंगे वही वानर देवताओं के कार्य में मेरी सहायता करेंगे फिर उस राक्षसों के स्वामी घोररूप पुलस्ति के कुलको दोष लगानेवाले-भयानकरूप संसार के कण्टक रावण को उसकी सन्तान समेत मारूंगा, और द्वापर कलियुग की सन्धि के अन्त में कंसादिकों के मारने को मेरा कृष्ण नाम अवतार मथुरा में होगा वहां भी देवताओं के कण्टकरूप बहुत से दानवों को मारकर, कुशस्थली द्वारकापुरी को अपना निवासस्थान बनाऊंगा उस पुरी में निवासी होकर अदिति माता के अप्रियकारी नरकासुर, भौमासुर, मुरु और पीठ नाम दानवों को मारकर नानाप्रकार के धनरत्नादि संपन्न क्रीड़ा के योग्य प्राग्ज्योतिष नाम रमणीक पुर को द्वारका में लाऊंगा फिर बाणासुर के हितैषी लोकपूज्य युद्धकांक्षी महेश्वरजी को सेना समेत विजय करूंगा तदनन्तर हजार भुजाधारी राजा बलि के पुत्र बाणासुर को विजय करके उस सौभनिवासी को मारूंगा जोकि गर्गऋषि के तेज से संयुक्त कालयवन नाम से प्रसिद्ध होगा उसका वध मेरे हाथ से होगा हे ब्रह्मन्! बड़ाबली सब राजाओं का विरोधी असुरों से वृद्धियुक्त जरासन्ध गिरिव्रज में राजा होगा उसका भी मरना मेरे ही बुद्धि की प्रेरणा से होगा, पृथ्वी के जितने पराक्रमी राजा हैं उन सबके

इकट्ठे होनेपर धर्म के पुत्र राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में शिशुपाल को मारूंगा और इन्द्र का पुत्र केवल एक अर्जुन ही मेरा साथी और सहायक रहैगा युधिष्ठिर को उसके भाइयों समेत उसके राज्यपर नियत करूंगा लोक में यही प्रसिद्धि होगी कि देवताओं के कार्य के लिये आप श्रीनरनारायण ऋषि युद्ध करके क्षत्रियों के समूहों को मारेंगे, इच्छानुसार पृथ्वी के भार को उतारकर सब यादव लोगों का और द्वारका का घोर नाश करूंगा फिर चार मूर्त्ति रखनेवाला मैं अनेक कर्मों को करके आत्मज्ञान में प्रवृत्त होके अपने लोकों को जाऊंगा हे उत्तम, ब्राह्मण! मेरे अवतारों के हंस, कूर्म, मत्स्य, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, दशरथात्मज श्रीरामचन्द्र, कृष्ण और कल्की यह नाम हैं, फिर मैं गुप्त होनेवाले वेद श्रुति को फेरकर जब लाया तब सतयुग में सब प्राणी वेद और श्रुति से संयुक्त कियेगये तुमने भी पुराणों में सुना होगा कि मेरे बहुत से उत्तम २ अवतार पूर्वकाल में होचुके हैं, लोक के कार्य्यों को करके फिर अपने मूल में प्रवेश किया मेरा यह इस प्रकार का दर्शन ब्रह्माजी को भी कभी नहीं हुआ अब जो यहां तुझ एक निश्चयवाले बुद्धि के स्वामी से यह मैंने अपना गुप्त वृत्तान्त जिसको कि कोई नहीं जानता है तुझ भक्तिमान् से वर्णन किया, भीष्मजी बोले कि इसप्रकार वह विश्वमूर्त्तिधारी अविनाशी भगवान् देवता यह सब वचन कहकर उसी स्थान में अन्तर्धान होगये फिर महातेजस्वी नारद ऋषि भी अभीष्ट मनोरथों को पाकर नरनारायणजी के दर्शन करने को बदरिकाश्रम को गये, उन नारायणऋषि ने सांख्ययोग और चारों वेदों से संयुक्त पञ्चरात्रनाम महाउपनिषद् बनाया, हे तात! फिर नारदजी ने श्रीनारायणजी के मुख से निकलेहुए शास्त्रों में जैसे सुना और समझा था सब ब्रह्मलोक में जाकर सुनाया, युधिष्ठिर बोले कि इन बुद्धिमान् नारायणजी का यह माहात्म्य अपूर्व है इसको क्या ब्रह्माजी नहींजानते थे जो नारद से सुना, ब्रह्माजी भी उसीसे एकता रखते हैं वह उस बड़े तेजस्वी के प्रभाव को क्यों नहीं जानते थे, भीष्मजी बोले हे राजेन्द्र! हजारों महाकल्प और उत्पत्ति नाश व्यतीत हुए और संसार की आदि उत्पत्ति में प्रभु ब्रह्माजी संसार के स्वामी कहे गये हैं इससे वह इस नारदजी से अधिक देवसृष्टि को जानते हैं; और उसी प्रकार से परमेश्वर को अपना उत्पत्तिस्थान जानते हैं, परन्तु ब्रह्मलोक में जो दूसरे सिद्धों के समूह इकट्ठे हुए उन सबके सुनाने को

यह श्रेष्ठ पुराण के समान वर्णन किया हे राजन्! इसके पीछे इन सिद्धों के मुखसे सूर्य्यदेवता ने सुनकर अपने पीछे चलनेवाले ऋषियों को सुनाया जिन की कि संख्या छयासठ सहस्र हैं और सूर्य्य के आगे पीछे स्तुति करते चलते हैं और उन आगे पीछे चलनेवाले ऋषियों ने भी सुमेरु पर्वत पर इकट्ठे होने वाले देवताओं को यह उत्तम शास्त्र सुनाया, और देवताओं से सुनकर असित नाम ऋषि ने अपने पितरों को सुनाया, हे भरतवंशिन्, पुत्र! मेरे पिता शंतनु ने भी मुझसे कहा इसीसे मैंने भी तुझसे वर्णन किया, जिन देवता मुनियों ने यह पुराण सुनाया है वह सबभी सबप्रकार से चारोंओर आत्माको पूजते हैं हे राजन्! यह ऋषिसम्बन्धी आख्यान क्रम से परम्परापूर्वक बहुतकाल से प्राप्त है जो वासुदेवजी का भक्त नहीं है उसको तुम किसी दशा में भी देने को योग्य नहीं हो, हे राजन्! तुमने सैकड़ों अन्य आख्यान जो मुझसे सुने उन सबका यह सारभूत है, जैसे देवता असुरों ने समुद्र को मथकर अमृत को निकाला है उसीप्रकार पूर्वकाल में वेदपाठी ब्राह्मणों ने यह कथारूपी अमृत निकाला है अनन्य भक्ति का प्राप्त करनेवाला और एकान्त में सावधान होकर जो पुरुष इसको पढ़ता है वा सुनता है, वह मनुष्य श्वेतद्वीप में प्राप्त होकर चन्द्रमा के समान प्रकाशमान होकर सहस्ररश्मिवाले सूर्य्यदेवता के भीतर वर्त्तमान अन्तर्य्यामी महातेज में निस्सन्देह नियत होजाता है, इसीप्रकार जो रोगी इस कथाको प्रारम्भ से मन लगाकर सुनेगा उसका भारी भी रोग निवृत्त होगा और जो जिस बात की कामना करे वह कामना उसको प्राप्त होगी और भक्तपुरुष महाभक्तों की गति का पाता है, हे राजन्! उस पुरुषोत्तम का पूजन तुमको भी करना उचित है वही संपूर्ण संसार का माता पिता और गुरु है, हे महाबाहो, युधिष्ठिर! वह महाज्ञानी दुष्टों का नाशकर्त्ता षडैश्वर्य्याधिपति वेदब्राह्मणों की रक्षा करनेवाला भक्तों का सनातन देवता तेरे ऊपर प्रसन्न हो, वैशंपायन बोले कि, हे जनमेजय! वह धर्मराज युधिष्ठिर और उसके वह सब भाई इस उत्तम आख्यान को सुनकर श्रीनारायणजी के भक्त होगये, हे भरतवंशिन्! सरस्वती को उच्चारण करते हुए उस भगवान् पुरुष नरनारायण ने सदैव जप में प्रवृत्त होकर सबको विजय किया, और हमारे श्रेष्ठ गुरु श्रीवेदव्यासजी ने भी नारायणजी को स्मरण करतेहुए मुख से उसी उत्तम मन्त्र का जप किया, और अन्तरिक्षमार्ग के द्वारा अमृत के उत्पत्तिस्थान क्षीरसागर

पर पहुँचकर देवेश्वर की पूजा करके फिर अपने आश्रम में निवास किया, भीष्मजी बोले कि यह नारदजी का कहा हुआ और मेरा वर्णन किया हुआ आख्यान सब तैंने सुना यह परम्परा से एक से एक को मिलाता हुआ चला आता है और पूर्व में मेरे पिता ने मुझसे वर्णन किया, सूतजी बोले कि यह वैशंपायनजी का कहा हुआ सब आख्यान मैंने तुमसे कहा उसको सुनकर जनमेजय ने अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छी रीति से अभ्यास किया हे नैमिषारण्यवासियो ! तुम सब तप और नियम के करनेवाले वेदज्ञों में उत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण शौनकऋषि के महायज्ञ में वर्त्तमान हो तुम सब अच्छे हवनपूर्वक उत्तम यज्ञों में सनातन परमेश्वर का पूजन करो ॥ १३५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे चतुःषष्ट्युत्तरिशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

एकसौ पैंसठ का अध्याय ॥

शौनकजी बोले कि, वह षडैश्वर्यवान् ईश्वर यज्ञों में किसरीति से प्रथम भाग अर्थात् उत्तम भाग के भागी हुए और यज्ञधारी होकर सदैव वेद वेदांग के कैसे जाननेवाले हुए वह भगवत्स्वरूप प्रभु शान्त और निवृत्ति धर्म में नियत है उसी भगवान् प्रभु ने निवृत्ति धर्म को धारण किया और सब देवता किस प्रकार प्रवृत्तिधर्मों में भाग पानेवाले किये गये और निवृत्ति धर्मवाले पुरुष किस रीति से निवृत्तिधर्मवाले हुए, हे सूतजी ! इस हमारे गुप्त और प्राचीन सन्देह को निवारण करिये क्योंकि आपही से नारायण की हितकारी कथाओं को हमने सुना है, यह सुनकर सूतपुत्र ने उत्तर दिया कि हे शौनक ! राजा जनमेजय ने व्यासजी के शिष्य वैशंपायनजी से जो पूछा है उस प्राचीन वृत्तान्त को मैं तुम से कहता हूं कि बड़े ज्ञानी जनमेजय ने इस जीवधारियों के अन्तरात्मा नारायणजी के माहात्म्य को सुन कर वैशंपायनजी से पूछा, कि यह सब ब्रह्माआदि सब देवता मनुष्य असुरों समेत सफल कर्मों में प्रवृत्त संसार दृष्ट आता है और हे ब्रह्मन् ! आपने मोक्ष को निर्वाण और परमानन्द रूप कहा इस लोक में जो पुरुष पुण्य पाप से रहित होकर मुक्त होते हैं, वह सूर्य के अन्तर्यामी अनन्त चैतन्यरूप में प्रवेश करते हैं यह हमने सुना है इस से यह सनातन मोक्षधर्म दुःख से करने के योग्य है, सब देवता जिस मोक्षधर्म को त्यागकर हव्य कव्य के भोक्ता हुए क्या यह ब्रह्मा, रुद्र और बलि का मारनेवाला इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, वरुण, आकाश, पृथ्वी और जो

शेष देवता हैं वह सब अपने नियत नाश आदि को नहीं जानते हैं इस कारण वह अचल अविनाशी न्यूनतारहित उत्तम मोक्षमार्ग में नहीं नियत होते हैं और उसी नाशवान् प्रवृत्तिमार्ग में वर्त्तमान हैं और काल के व्यतीत होने पर क्रियावान् पुरुषों में यह बड़ा दोष है हे ब्रह्मन्! इस सन्देहरूपी हृदय के बाण को इतिहासों के द्वारा निकालो मुझको अपूर्व बातों के देखने की बड़ी उत्कण्ठा है, हे ब्राह्मण ! देवता यज्ञों में भाग लेनेवाले कैसे कहे गये और कैसे पूजे जाते हैं हे ब्रह्मन् ! जो देवता यज्ञों में भागको लेते हैं वह पूजित देवता आप अपने यज्ञों में किसको भाग देते हैं, वैशंपायन बोले कि हे राजन्! बड़ा आश्चर्यकारी आपने प्रश्न किया यह प्रश्न उस मनुष्य से जिसने तपस्या नहीं की है और वेद को भी नहीं जानता है अथवा पुराण को भी सुना वा पढ़ा नहीं है शीघ्र कहना असंभव है अच्छा जैसे कि पहले गुरुजी से मैंने पूछा है उसके अनुसार तुझसे कहता हूं मेरे गुरु वेदों के विस्तार करनेवाले द्वीपनिवासी कृष्णनाम व्यास महर्षि हैं और सुमन्त, जैमिनि, सुव्रतपैल और चौथा मैं पांचवें शुकदेवजी इन पांचों शान्तचित्त क्रोधरहित जितेन्द्रिय शिष्यों के इकट्ठे होनेपर उन्हों ने वेदों को पढ़ाया इनमें पांचवां महाभारत है, पर्व्वतों में श्रेष्ठ क्रीड़ायोग्य सिद्ध चारण आदि से व्याप्त सुमेरु के किसी भाग में उन वेद पढ़नेवाले शिष्यों ने किसी समय सन्देह किया और व्यासजी ने इसी तुम्हारे प्रश्नको उनसे कहा और मैंने भी सुना उसीको हे भरतवंशिन् ! अब मैं तुझ से कहता हूं, सब अज्ञात दोषोंके दूर करनेवाले पराशरजी के पुत्र व्यास ऋषिने शिष्यों के वचनों को सुन कर यह वचन कहा कि हे उत्तम, शिष्य लोगो ! मैंने भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों के जानने के निमित्त ही बड़ी तपस्या की थी क्षीरसागर के समीप शान्तचित्त तपपरायण मुझ त्रिकालज्ञ होनेवाले के मनोरथ को श्रीनारायणजी ने अपनी कृपा से पूर्ण किया अर्थात् वह ज्ञान मुझको उत्पन्न हो गया उसको न्याय के अनुसार यथार्थ तुम से कहता हूं तुम चित्त लगाकर सुनो, मैंने कल्प के प्रारम्भ में ज्ञानरूप दृष्टि से जैसा वृत्तान्त देखा है और सांख्य वा योग जाननेवाले पुरुषों ने जिसको परमात्मा वर्णन किया है वह अपने कर्म से महापुरुष नाम कहलाता है उससे अव्यक्त हुआ जिसको ज्ञानी प्रधान कहते हैं, संसार की उत्पत्तिके निमित्त अपनी इच्छा से अव्यक्त ईश्वर व्यक्तरूप हुआ वह लोकों में

महान् आत्मा अनिरुद्ध कहा जाता है, जिसने अपने प्रकट होने के पीछे ब्रह्मा को उत्पन्न किया वह अहंकार नाम प्रसिद्ध हुआ वह सब तेजों का रूप है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पञ्चमहाभूत पांच रीति के द्वारा अहंकार से उत्पन्न हैं महाभूतों को उत्पन्न करके गुणों को उत्पन्न किया और पञ्चमहाभूतों से सब देह उत्पन्न हुए उनको सुनो, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, महात्मा वशिष्ठ, स्वायम्भुवमनु यह आठ प्रकृति अर्थात् उत्पत्तिस्थान जानने के योग्य हैं इन्हीं में लोक नियत हैं लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उन वेदवेदांग यज्ञ और यज्ञोंके अंगों से संयुक्त ऋषियों को लोकसिद्धि के लिये उत्पन्न किया उन आठों प्रकृतियों से यह विश्वरूप संसार उत्पन्न हुआ, फिर क्रोधरूप रुद्र पुरुष उत्पन्न हुए उन्होंने आप जिन देशों को उत्पन्न किया वह ग्यारह रुद्र रूपान्तर करनेवाले पुरुष कहे गये वह रुद्र प्रकृति, और सब देवर्षि लोग लोक की सिद्धि के निमित्त उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी के पास नियत होकर बोले कि हे भगवन्! अनेकरूपधारी पितामह आपने हमको उत्पन्न किया है इससे जो जिस अधिकार की योग्यता रखता है उसको उस अधिकार पर नियत करना योग्य है आपने जो संसार के कामों का विचार करनेवाला पद हमको दिया है वह उस अहंकारकर्त्ता से कैसे रक्षा किया जायगा, जो अधिकार के कामों का विचार करनेवाला है उसके पराक्रम उत्पन्न करनेवाले कर्म को बताओ यह बात सुनकर उस बड़े देवता ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि हे देवताओ! तुमने मुझ को खूब जताया तुम्हारा कल्याण हो मुझ को भी यही चिन्ता हुई थी जो तुम चाहते हो सम्पूर्ण त्रिलोकी का दृढ़ बीजरूप परिग्रह किस प्रकार करने के योग्य है और हमारे तुम्हारे शरीर का बल किस रीति से नाश न हो, यहां से हम सब उस लोकसाक्षी गुप्त पुरुष के धाम को चलें वह हमारे हितकी बात कहैगा, तदनन्तर लोक के हितकारी वह ऋषि देवता ब्रह्माजीसमेत क्षीरसागरके उत्तरीय तटपरगये, और सब ब्रह्माजी के बनाये हुए वेदसे कल्पित तपोंमें प्रवृत्त हुए वह तपचर्य्या महानियमनाम बड़ेभारी दुःखों से भी असह्य है, कि जिनकी दृष्टि और भुजा ऊपर को थीं और एकाग्रचित्त था इस स्वरूप से सब एक चरण से नियत होकर काष्ठ के समान दृढ़ होके सावधान हुए उन्होंने दिव्य हजारवर्ष घोर तपस्या की, करके उस मधुरवाणी को सुना जोकि वेद वेदांग से शोभित थी, श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मा समेत

सब देवता और तपोधन ऋषिलोगो ! मैं तुम सबकी कुशल क्षेम पूछकर इस उत्तम वचन को सुनाता हूं, मैंने तुम्हारे प्रयोजन को जाना वह लोक का बड़ा हितकारी है प्रवृत्तियुक्त तुम्हारे बल की बुद्धि करनेवाला कर्म्म तुमको करना उचित है हे देवताओ ! तुम ने मेरे आराधन की इच्छा से अच्छा तप किया हे बुद्धिमानो ! तुम इस तप के उत्तम फल को पावोगे यह ब्रह्मा लोकों का बड़ा मान्य और पितामह है हे देवताओ ! तुम बड़ी सावधानी से मेरा पूजन करो तुम सब यज्ञों में मेरे भागों को सदैव कल्पना किया करो मैं भी तुम्हारे अधिकार के समान सबका कल्याण करूंगा, वैशम्पायन बोले कि सब देव ऋषियों ने उस परमपुरुष के इन वचनों को सुनकर वेदोक्तरीतियों से बुद्धि के अनुसार विष्णुयज्ञ की रचना की उस यज्ञ में आप ब्रह्माजी ने सदैव के लिये सबका भाग नियत किया, देवता और देवर्षियों ने अपने २ भाग को कल्पना किया वह देवता आदि सब सतयुग का धर्म रखनेवाले थे और उनके भाग बड़े ऊँचे थे उनको सूर्य्य का सा वर्ण महावरदायी सर्वगामी तेजमय पुरुष कहते हैं; तदनन्तर उस अदेहरूप आकाश में नियत महावरदायी ईश्वरने उन सब नियत देवताओं से यह वचन कहा कि जिसने जो विभाग विचार किया है वह वैसेही मुझ को प्राप्त होगा मैं बहुत प्रसन्न हूं अब प्रवृत्ति लक्षणवाले फल को कहता हूँ; हे देवताओ ! मेरी प्रसन्नता से उत्पन्न होनेवाला यह तुम्हारा लक्षण है कि उत्तम पूरी दक्षिणावाले यज्ञों से आप पूजन करनेवाले तुम सब हरएक यज्ञ में प्रवृत्ति फल के भोगनेवाले होजाओ जो मनुष्य अन्यलोकों में भी यज्ञों से पूजन करेंगे वह मनुष्य वेदकल्पित तुम्हारे भी भागों को विचार करेंगे उस महायज्ञ में जिसने मेरे भाग को जिस रीति से विचार किया है वह उसीप्रकार वेदसूत्र में यज्ञभाग के योग्य किया हुआ यज्ञभाग और फल के योग्य तुम देवता लोगों को पोषण करो, लोक में सब बातों के विचारनेवाले और प्रवृत्ति फल से सत्कार पानेवाले तुम सब देवता अपने २ अधिकार के अनुसार जिन २ कर्मों को करोगे उनसे बलवान् होनेवाले तुम सब अन्य लोकों को भी धारण करोगे सब यज्ञों में मनुष्यों के पूजन आदि से ध्यान कियेहुए तुम सब फिर मुझ को ध्यान करो तुम्हारी ओर से यह मेरी ही भक्ति है इस आशय से औषधियों समेत सब वेद और यज्ञ उत्पन्न कियेगये हैं, इन वेदादिकों का पृथ्वीपर अच्छे प्रकार से प्रचार और अभ्यास होने से देवता तृप्त होते हैं यह तुम्हारी उत्पत्ति जोकि प्रवृत्ति गुण से कल्पित

है वह मैंने ही तबतक के लिये की है जबतक कि कल्पना का अन्त हो हे ईश्वरो ! तुम अपने अधिकार के अनुसार लोकों का हित विचार करो मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ यह सातों ऋषि हैं मैंने उनको मन से उत्पन्न किया है, यह महावेदज्ञ वेद के आचार्य्य विचार किये गये हैं और प्रवृत्ति धर्म में युक्त होने से वही लोग प्रजापतिभाव में भी कल्पना किये हैं, यह क्रियावानों का मार्ग प्रत्यक्षरूप और सनातन है इस सृष्टि का उत्पन्न करने वाला प्रभु अनिरुद्ध नाम से प्रसिद्ध है यह रजोगुण प्रधान पुरुषों का प्रवृत्तिमार्ग वर्णन किया, अब सतोगुण प्रधानपुरुषों के निवृत्तमार्ग को कहते हैं–सन, सनत, सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल और सातवें सनातन, यह सातों ऋषि ब्रह्माजी के मानसी पुत्र हैं और आप से आप विज्ञान प्राप्त करनेवाले निवृत्तिधर्म्म में नियत हुए, यह सब योग और सांख्य के उत्तम ज्ञाता धर्मशास्त्रों के आचार्य्य और मोक्षधर्म के जारी करनेवाले हैं, इनके मार्ग और अधिकार का विभाग कहां से है इसको कहते हैं–जिससे कि अव्यक्त के तीन गुण रखनेवाला महाअहंकार प्रथम उत्पन्न हुआ उससे भी जो परे है उसको क्षेत्रज्ञ नाम से कल्पित किया है, सो हम यह जो निवृत्तिमार्ग है वह आवागमन रखनेवाले क्रियावान् पुरुषों को कठिनता से प्राप्त होता है, जो जीव जिस २ कर्म में जिस रीति से प्रवृत्ति व निवृत्ति धर्म में नियत कियागया है वह उस २ के बड़े फल को पाता है यह ब्रह्मा लोकों का गुरु संसार आदिका उत्पन्न करनेवाला प्रभु है, माता पिता है और मेरा उपदेश किया हुआ तुम्हारा पितामह है और जीवधारियों को वर का देनेवाला होगा, इनके पुत्र रुद्रजी जो ललाट से उत्पन्न हुए वह ब्रह्माजी के उपदेश से सब जीवों के धारण करनेवाले होंगे तुम अपने २ अधिकारों को प्राप्त करके बुद्धि के अनुसार विचारकर सब लोकों में धर्मक्रियाओं को शीघ्र जारी करो विलम्ब मत करो, जीवों की कर्मगतियों का उपदेश करो हे देवताओ ! यहां मनुष्यों की आयु पूर्ण होती है, क्योंकि यह सतयुग नाम उत्तम समय जारी हुआ इस युग में यज्ञपशु नहीं मारे जायँगे और इसमें सब धर्म्म चारों चरणयुक्त होंगे इसके पीछे त्रेतायुग नाम आवेगा इसमें तीन चरण धर्म के रहेंगे, और संस्कार कियेहुए पशु यज्ञों में मारे जायँगे उसमें धर्मका चौथा चरण नहीं होगा जिसके पीछे द्वापर नाम युग होगा उसमें धर्म के दोही चरण होंगे उसके पीछे चौथा कलियुग नाम समय होगा

उसमें एक चरणही धर्म का रहैगा अर्थात् जहां तहां कोई कहीं धर्म को करेगा इस प्रकार से कहनेवाले गुरु से देवता और देव ऋषियों ने सुनकर कहा कि जब धर्म एक चरण होकर जहां तहां ही होगा तब हमलोगों को किसप्रकार से कर्म करना उचित होगा उसको आप कहिये श्रीभगवान् बोले कि, हे उत्तम, देवताओ! जिस स्थानपर वेद, यज्ञ, तप, सत्य, शान्तचित्तता और अहिंसा आदि धर्म वर्त्तमान हों वहां विचरो वही देश तुम्हारे सेवन करने के योग्य है अधर्म तुम को कभी स्पर्श न करेगा, व्यासजी बोले कि भगवान् से शिक्षा किये हुए वह सब देवता और ऋषियों के समूह भगवान् को नमस्कार करके अपनी रुचि के देशों को गये, देवता आदि के चलेजाने पर अकेले ब्रह्माजी उस अनिरुद्ध देह में नियत होकर भगवत् के दर्शन की अभिलाषा से वहीं स्थिर रहे, तब भगवान् ने हयग्रीवरूप धारण कर कुण्डल और कमण्डलु हाथ में लिये उन ब्रह्माजी के सन्मुख आकर चारोंवेदों को अंगों समेत वर्णन किया, व्यासजी बोले कि इसके पीछे संसार के स्वामी ब्रह्माजी उस महातेजस्वी नारायण को घोड़े के स्वरूप में देखकर लोकों के हित की इच्छा से उस वरदायी को नमस्कारकर हाथ जोड़के उसके आगे नियतहुए तब उस देवता ने उनसे स्नेह पूर्व्वक मिलकर यह वचन कहा तुम अपनी बुद्धि के अनुसार लोक के कामों की सब दशाओं को विचारो तुमहीं सबजीवों के धाता अर्थात् पालनेवाले प्रभु और गुरु हो मैं तुम्हारे सुपुर्द पृथ्वी का भार रखकर शीघ्र ही शान्तता को प्राप्त होजाऊंगा, जब देवताओं का कोई कार्य्य तुम्हारी सामर्थ्य से बाहर होगा तब आत्मज्ञान का उपदेश करनेवाला मैं अवतार धारण करूंगा, ऐसा कह वह हयग्रीवरूप नारायण उसीस्थानमें अन्तर्द्धान होगये और उनसे उपदेश पायेहुए ब्रह्माजी भी शीघ्र अपने लोक को गये, हे महाभाग! इसप्रकार से यह कमलनाभ सनातन देवता सदैव यज्ञों का धारण करनेवाला यज्ञों में उत्तमभाग का लेने वाला हुआ, और अविनाशी धर्मधारी पुरुषों की निवृत्ति धर्म नाम गति को प्राप्तहुआ और अपूर्व संसार को उत्पन्न करके प्रवृत्ति धर्मों को विचारनेलगा, वही आदि मध्य अन्त है वही प्रजापालक और ध्यान के योग्य है वही कर्त्ता वही क्रिया और उसीने युगों के अन्त में सबको अपने में लय करके शयन किया और फिर उसी युगकी आदि में जगनेवाले ने संसारको प्रकट किया उस महात्मा निर्गुण देवता के अर्थ नमस्कार करो और उस अजन्मा विश्वरूप सब देवों के

धाम स्वरूप को नमस्कार करो, महाभूतों के स्वामी रुद्रों के अधिपति द्वादश सूर्य्यों के प्रकाशक वसुओं के और अश्विनीकुमारों के, मरुद्गणों के वेद यज्ञ और वेदांगों के स्वामी को भी प्रणाम करो, समुद्र में स्थित हररूप मुञ्जकेशि शान्तस्वरूप सब जीवों को मोक्षधर्म के उपदेश करनेवाले तप, तेज, यश, वचन, सरिता, कपर्दी, वराह, एकशृंग, विवस्वत, अश्वशिर, चतुर्मूर्त्तिधारी गुह्य, ज्ञान, दृश्य, अक्षर, क्षर, सर्वत्रगति, अव्यय, न्यूनाधिकरहित इन रूपों से आनन्द पूर्वक विचरनेवाले को नमस्कार करो, यह परब्रह्म विज्ञान नेत्रों से जानने के योग्य है, मैंने भी पूर्वसमय में इसीप्रकार ज्ञानदृष्टि से उसको देखा था और मैंने तुम लोगों से मूलसमेत यथातथ्य वर्णन किया है शिष्यलोगो ! मेरे वचनों को मानकर उसी हरि का सेवन करो उसी को वेदों के शब्दों से गाओ और बुद्धि के अनुसार पूजनकरो, वैशम्पायन बोले कि हम सब शिष्य और उनके पुत्र महातेजस्वी शुकदेवजी उन बुद्धिमान् वेदव्यासजी से उपदेश किये गये, हे राजन् ! उन हमारे उपाध्यायजी ने हमलोगों समेत चारों वेदोंकी ऋचाओं से उस ईश्वर की स्तुति को किया यह जो तुमने पूछा सो सब वर्णन किया, यह सब पूर्वकाल में गुरु व्यासजी ने ही हमसे कहा है, जो सावधान बुद्धिमान् पुरुष भगवान् को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करके सदैव इस उपाख्यान को सुनै वा सुनावैगा, वह नीरोग बुद्धिमान् पराक्रमी होगा और रोगी रोग से निवृत्त हो जायगा और बद्ध मनुष्य बन्धन से छूटता है, इच्छावान् मनोरथों को और आयुर्दा चाहनेवाले दीर्घायु को और ब्राह्मण सब वेदों का प्राप्त करनेवाला होता है क्षत्रिय विजय को वैश्य बहुत लाभ को शूद्र सुख को अपुत्री पुत्र को कन्या सुन्दर पति को पाती है गर्भवती स्त्री आनन्द से निवृत्त होवे और पुत्र को उत्पन्नकरै बन्ध्या प्रसव पावे पुत्र पौत्र धन संयुक्तहोय और जो मनुष्य मार्ग में इसको पढ़ै वह आनन्द से मार्ग व्यतीत करे, जो जिस कामना को चाहै वह अवश्य उस मनोरथ को पाता है, इसप्रकार से उस महात्मा पुरुषोत्तम के इस वचन को जो अच्छेप्रकार से निश्चय कियाहुआ था राजा से महर्षि ने विस्तार पूर्वक वर्णन किया इस देवता और ऋषियों के समाज को सुनकर भक्तलोग आनन्द को पाते हैं ॥ १२१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे पञ्चषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

एकसौ छासठ का अध्याय ॥

राजा जनमेजय ने प्रश्न किया कि, हे भगवन्! व्यासजीने शिष्योंसमेत जिन नानाप्रकार के नामों से इन मधुसूदनजी की स्तुति करी उसका मुख्य हेतु क्या है इसको आप कृपा करके मुझे समझाइये जिससे कि मैं प्रजापतियों के स्वामी हरि की कथा को सुनकर अपने पापों से ऐसे शुद्ध होजाऊं जैसे कि शरद् ऋतु का चन्द्रमा निर्मल होता है, वैशम्पायन बोले कि हे राजन्! उस प्रसन्न भगवान् ने अपने नामों के सर्वज्ञता आदि गुण और संसार की उत्पत्ति का क्रम और मूल कारण श्रीकृष्णरूप होकर अर्जुन से कहा है और शत्रुहंता अर्जुन ने उन महात्मा श्रीकृष्णजी के कहेहुए नामों का मूल हेतु उन्हीं से पूंछा था कि हे षडैश्वर्य्यमान, त्रिकालज्ञ, सबके स्वामिन्, सर्वतेजोमय, जगन्नाथ, सबके अभय देनेवाले, देवदेवेश्वर! आप के जिन नामों को महर्षियों ने वर्णन किया है और जो वेद पुराणों में गुप्त हैं उन सबके मूल हेतु को आप से सुना चाहता हूं हे प्रभो, केशवजी! आपके सिवाय आपके नामों के मूल हेतु को दूसरा नहीं वर्णन कर सक्ता है श्रीभगवान् बोले कि हे अर्जुन! ऋक्, यजु, साम, अथर्वण यह चारों वेद पुराण और उपनिषद्, ज्योतिष्, सांख्य, योगशास्त्र और अन्य वैद्यक आदि शास्त्रों में भी मेरे बहुत से नाम ऋषियों ने वर्णन किये हैं उनमें कोई नाम तो गुण संयुक्त और कोई कर्म से उत्पन्न हैं उनको तुम सावधानी से सुनो हे तात! पूर्वसमय में तुम्हीं हमारे अर्द्धांग कहे जाते थे उस महातेजस्वी जीवमात्रों के परमात्मा यजस्वी निर्गुण सगुणरूप विश्वरूप नारायण के अर्थ नमस्कार है जिसकी प्रसन्नता से ब्रह्मा, क्रोध से रुद्र उत्पन्न हुए और सब जड़ चैतन्यों का उत्पत्ति स्थान है हे सतोगुणियों में श्रेष्ठ! वह जो प्रकाश आदि अठारह गुणों की धारण करनेवाली मेरी परा प्रकृति स्वर्ग पृथ्वीरूप लोकों को योग से धारण करनेवाली है वह कर्म्मफलरूप बाधा से रहित चिन्मात्ररूप अविनाशी अजया नाम लोकों की आत्मारूप है उसी प्रकृति से उत्पत्ति नाश की सब विपरीत दशा प्राप्त होती हैं तप यज्ञ और यज्ञकर्त्ता पुराणपुरुष विराट् लोकों का उत्पत्ति और लय स्थान इन नामों से नामी अनिरुद्ध कहा जाता है हे कमललोचन, अर्जुन! ब्रह्माजी की रात्रि के अन्त होनेपर उस बड़े तेजस्वी अनिरुद्ध की इच्छा से कमल उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए यह ब्रह्मा उसी की प्रसन्नता से उत्पन्न हुआ है इसी

प्रकार उस देवता के क्रोध होने पर ललाट से सायंकाल के समय संसार के नाशकर्त्ता रुद्र नाम पुत्र उत्पन्न हुए यह दोनों देवता प्रसन्नता और क्रोध से उत्पन्न होते हैं और उसकी आज्ञा से यह दोनों संसार की उत्पत्ति और नाश के करनेवाले हैं यहां वह दोनों कारण रूप होकर सब जीवों के वर देनेवाले हैं; हे अर्जुन ! गंगाजल से पूर्ण जटा मुण्डधारी श्मशानवासी उग्रव्रत परायण महायोगी रुद्रजी बड़े भयानकरूप, दक्षप्रजापति के यज्ञ के विध्वंसी और भग नाम देवता की आंख निकालनेवाले हर एक युग में नारायण रूप समझने के योग्य हैं उस देवदेवेश्वर महेश्वरजी के पूजित होने से प्रभु नारायण देवही की पूजा समझी जाती है इससे इनकी पूजा सदैव अच्छे प्रकार से सबको करना योग्य है, हे पाण्डुनन्दन ! मैं ही सब लोकों का आत्मा हूं इसी कारण प्रारम्भ में अपने आत्मारूप शिवजी का पूजन करता हूं जो मैं सबके ईश्वर वरदाता शिवजी का पूजन नहीं करूं तो फिर कोई आत्मा को पूजन नहीं करे मुझ शुद्ध अन्तःकरण का यह मत है कि यह लोक मेरी जारी करी हुई प्रमाणीक मर्य्यादाओं पर अच्छेप्रकार से कर्म करनेवाला होता है और प्रमाणीक ही पूजन के योग्य हैं इसहेतु से मैं उनको पूजता हूं, जो उन शिवजी को जानता है वह मुझको भी जानता है और जो उनके सन्मुख है वही मेरे भी सन्मुख है शिव और नारायण दोनों एकही आत्मा हैं केवल रूप में दो हैं परन्तु वास्तव में एक ही हैं हे अर्जुन ! वह शिवजी लोकों में विचरते हैं और सब कर्मों में प्रत्यक्षरूप से नियत हैं हे पाण्डव ! मेरे वरदेने के योग्य कोई नहीं है; मैंने इसप्रकार विचारकर पुत्र के निमित्त आत्मा के द्वारा उस आत्मारूप पुराणपुरुष ईश्वर शिवजीका आराधनकिया, विष्णु अपनी आत्मा के सिवाय किसी को नमस्कार नहीं करते इसकारण से रुद्रजी का स्मरण करता हूं ऋषियों समेत सब ब्रह्मा रुद्र देवता इस देवदेव नारायण हरिको पूजन करते हैं हे अर्जुन ! सब वर्त्तमान भविष्यत् देवताओं में श्रेष्ठतम विष्णुजी सदैव सेवा करने के योग्य हैं; इससे हे कुन्तीनन्दन ! तुम हव्य देनेवाले विष्णुजीको नमस्कार करो इसीप्रकार शरणदाता वरदाता और हव्य कव्य भोजन करनेवाले को सेवन करो; चारप्रकार के मेरे भक्त होते हैं उनमें भी अनन्यभक्त महाउत्तम हैं अर्थात् आत्मा के ही उपासक हैं, उन अनिच्छावान् भक्तों को मैं ही गति हूं इनके विशेष जो बाकी के तीन प्रकार के भक्त हैं वह कर्मफल के चाहनेवाले

हैं, वह विनाशवान् धर्मवाले हैं और ज्ञानी उत्तमफल का पानेवाला है ब्रह्मा महादेव और जो अन्य देवता हैं उनके सेवन करनेवाले ज्ञानी पुरुष मुझको ही प्राप्त होते हैं हे अर्जुन ! भक्ति के विषय में यह मुख्यता तुमसे वर्णन की, हे कुन्तीनन्दन ! तुम और हम नरनारायण कहाते हैं हम दोनों पृथ्वी के भार उतारने को मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हैं, हे अर्जुन ! मैं अध्यात्म को जानता हूं और जो हूं और जिससे प्रकट हूं उसको भी जानता हूं और निवृत्ति प्रवृत्ति लक्षणवाले धर्म को भी जानता हूं और मैं ही सनातन अकेला जीवात्मा का भी उत्पत्ति स्थान कहाताहूं अर्थात् मुझ बिम्बरूपमें प्रतिबिम्बरूप जीव कल्पित होते हैं और मुख्यता का ज्ञान होने पर केवल बिम्बही शेष रहजाता है दूसरे जीवात्मा से सम्बन्ध रखनेवाले शरीर नारायण नामहैं क्योंकि शरीर जीवात्मा से मिलेहुए हैं वह मोक्ष से पहले उपाधि दशा में मेरा निवास स्थान है इसी हेतु से मेरा नारायण नाम है, जैसे सूर्य्य उदय होकर अपनी किरणों से सब को प्रकाशित करता है उसीप्रकार मैं भी अपने प्रकाश से इस संसार को व्याप्त करता हूं और सब जीवों का निवास स्थान हूं इस हेतु से मेरा वासुदेव नाम है, सब जीवों का लयस्थान हूं और मुझी से सब प्रकट होते हैं आकाश स्वर्ग और पृथ्वी सब व्याप्त है प्रकाशभी मेरा अधिक है और जीवमात्र अपने शरीर त्यागने के समय जिस ब्रह्म को स्मरण करतेहैं वह भी मैंही हूं इस अर्थ परम्परा से मेरा नाम विष्णुहै, सब मन शुद्ध और शान्तचित्तसे मेरीही इच्छा करते हैं और दमदामनामस्वर्ग, अन्तरिक्ष, और पृथ्वी मेरेही उदरमें हैं इस हेतुसे मेरा दामोदर नाम है, अन्न, वेद, जल, अमृत, यह सब पृष्णि नाम कहे जाते हैं सो सब मेरे गर्भस्थान हैं इस हेतु से मेरा नाम पृष्णिगर्भ है, ऋषियों ने इच्छाओं में प्रवृत्त कियेहुए त्रित ऋषि को जतलाकर ऐसा मुझ से कहा कि हे पृष्णिगर्भ ! एकत और द्वित के हाथ से गिराये हुए त्रित ऋषि की रक्षा करो, तदनन्तर वह ब्रह्मा जी का पुत्र प्राचीन और ऋषियों में श्रेष्ठ त्रित पृष्णिगर्भ का जप करने से इच्छा से निवृत्त हुआ, लोकों को तप्त वा प्रकाशमान करनेवाले सूर्य्य, अग्नि, चन्द्रमा की जो किरणें प्रकाश करती हैं वह मेरे केश अर्थात् बाल कहेजाते हैं इसी कारण सर्वज्ञ पुरुष मुझको केशवनाम से पुकारते हैं, महात्मा उतथ्य ऋषि ने अपनी स्त्री में गर्भस्थापन किया और दैवयोग से उतथ्य ऋषि के कहीं चलेजाने पर बृहस्पतिजी ने उस महात्मा की स्त्री को एकान्त में पाकर विषय की वासना

की उस समय् हे अर्जुन ! स्त्रीके गर्भ में से उतथ्यके पञ्चभूतात्मक पुत्रने बृहस्पतिजी से यह कहा कि हे वरदाता ! मैं प्रथम आगया हूं तुम मेरी माता को दुःख देने के योग्य नहीं हो बृहस्पतिजी ने यह सुनकर क्रोध में होकर उसको शाप दिया कि मेरे विषय करने को जो तुमने रोका है इस हेतु से तुम निस्सन्देह अन्धे उत्पन्न होगे तब उनके शाप से वह जन्मान्ध होगये इसीसे वह ऋषि दीर्घतमा नाम से प्रसिद्ध हुए और सनातन ऋषि से उसने अंग और उपअंगों समेत चारों वेदों को पढ़ा और शुद्ध अन्तःकरण से मेरे इस गुप्त केशव नाम को रीतिपूर्व्वक वारंवार जपा इस जप के प्रताप से वह दृष्टियुक्त होगये और इसी हेतु से उनका नाम गौतम हुआ हे अर्जुन ! इसप्रकार से यह मेरा केशव नाम सब देवता और ऋषियों को वर का देनेवाला है, चन्द्रमा समेत अग्नि ने एकही उत्पत्ति स्थान को प्राप्तकिया इसीहेतु से यह जड़ चैतन्यरूप जगत् अग्निसोम रूप है, यह भी वृत्तान्त प्राचीन सिद्ध होता है कि अग्नि और चन्द्रमा एक स्थान में ही उत्पन्न होनेवाले हैं और अग्निको आगे रखनेवाले हैं और एकही स्थानसे उत्पन्न होने के कारण परस्पर पूजित होकर लोकों को धारण करते हैं ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे षट्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

एकसौ सरसठ का अध्याय ॥

अर्जुन बोले कि, हे मधुसूदनजी ! पूर्वसमय में अग्नि और चन्द्रमा किस प्रकार से एक ही योनि में प्राप्त हुए इस मेरे सन्देह को निवृत्त करो, श्रीभगवान् बोले हे पाण्डुनन्दन, अर्जुन ! बहुत श्रेष्ठ है मैं अपने तेज से प्रकट होनेवाले प्राचीन वृत्तान्त को तुम से कहता हूं तुम एकाग्र मन से सुनो, युगों की हजार चौकड़ियों के अन्त में प्रलयकाल के वर्त्तमान होने और सब स्थावर जंगम जीवों के अव्यक्त में लय होनेपर, औ वायु अग्नि पृथ्वी से रहित महाअन्धकारयुक्त लोक के एक रस ब्रह्मरूप होनेपर और उस एक रस अद्वैत ब्रह्म को अपनी महिमा में नियत होनेपर दिन, रात्रि, प्रधान आकाश परिमाणु आदि और सबल माया के वर्त्तमान होनेपर, नारायण के गुण ऐश्वर्य्य आदि की रक्षा से पुरीरूप देहों में शयन करनेवाले अविनाशी हरि उस अन्धकार के भीतर से प्रकट हुए यद्यपि वास्तव में अविनाशी अजर इच्छा से रहित अग्राह्य गुप्त सत्यवक्ता व्यवहारों से जुदे हिंसा से रहित चिन्तामणि के समान भावरूप नानाप्रकार की निजवृत्तियों से युक्त द्वेषनारहित जरा मृत्यु विना रूपरहित सबका स्वामी और

सनातन वेद प्रमाण है तौ भी उस समय सब सदसत् रात्रि दिन इत्यादि कोई भी न था केवल अन्धकाररूप विश्व था वही विश्वरूप परमेश्वर की रात्रि थी उस अन्धकार से प्रकट होनेवाले ब्रह्मयोनि पुरुषोत्तम सगुण ब्रह्म के प्रकट होने पर संसार के उत्पन्न करने की इच्छा करनेवाले उस पुरुष ने अपने नेत्रों से अग्नि और चन्द्रमा को उत्पन्न किया उससे भूतसर्ग के उत्पन्न होनेपर संसारी परम्परा में से ब्राह्मणों का वंश क्षत्रियों के वंश के पास नियत हुआ जो चन्द्रमा है वही ब्रह्म है जो ब्रह्म है वही ब्राह्मण है जो अग्नि है वही क्षत्रियों का वंश है और क्षत्रियों के वंश से ब्राह्मणों का वंश बड़ा बलवान् है कारण यह है कि यह गुण लोक के दृष्टिगोचर है कि प्रथम ब्राह्मणों से उत्तम कोई नहीं हुआ इसका हेतु यह है कि जो ब्राह्मणों के मुख में हवन करता है वह प्रत्यक्ष प्रकाशित अग्नि में हवन करता है इस हेतु से मैं कहता हूं कि ब्राह्मण से भूतसर्ग उत्पन्न किया गया है और हवनों को ही प्रतिष्ठा करके तीनोंलोक धारण कियेजाते हैं और मन्त्रवादी भी ब्राह्मण के माहात्म्य को प्रकट करता है कि हे अग्ने! तुम देवता मनुष्य और संसार के हितकारी हो क्योंकि तुम यज्ञों के होता हो तात्पर्य्य यह है कि अग्नि का होता ब्राह्मण अग्नि से भी अधिक है वेद भी इसकी गवाही देता है हे अग्ने ! तुम यज्ञों को और विश्वेश्वर आदि देवताओं के होताओं के होता हो अथवा विश्वेश्वर आदि देवताओं से सम्बन्ध रखनेवाले यज्ञों के होता हो और तुम देवता मनुष्यों के ही हेतु से संसार के हितकारी हो और अग्नि ही यज्ञों का होता अर्थात ऋत्विज् है और कर्त्तारूप यजमान भी वही है और वही अग्नि ब्राह्मण है, विना मन्त्रों के हवन नहीं है और विना पुरुष के तप नहीं होता है हव्य ही मन्त्रों की पूरी पूजा है इसी कारण तुम देवता मनुष्य और ऋषियों के होता हो यह वचन योग्य है कि जो पुरुष मनुष्यों में हवन का अधिकार रखनेवाले हैं वह ब्राह्मण के ही याजन को कहते हैं क्षत्रिय और वैश्य के याजन को नहीं कहते इसकारण अग्निरूप ब्राह्मण यज्ञों को धारण करते हैं अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य भी विना ब्राह्मण की सहायता के यज्ञ नहीं करसक्के उन यज्ञों से देवताओं की तृप्ति होती है और देवता सब पृथ्वी के जीवों का पोषण करते हैं और सत्पथ नाम वचन का अर्थ है कि वह देवताओं की तृप्ति ब्राह्मण के मुख में होती है अर्थात् अग्नि में हवन करने से ब्राह्मण तृप्त नहीं होता है और ब्राह्मण के मुख में हवन करने से अग्नि

आदि देवता ब्राह्मण के मुख में प्रवेश करके उसको धारण करते हुए उसकी तृप्ति से आप भी तृप्त होजाते हैं, वह ज्ञानी देदीप्य अग्नि में हवन करता है जोकि ब्राह्मण के मुख में आहुति को होमता है, इस प्रकार होने पर भी अग्निरूप ज्ञानी ब्राह्मण अग्नि को पूजते हैं क्योंकि सर्वव्यापी अग्नि सब जीवधारियों में प्रवेश करके प्राणों को धारण करता है इस स्थानपर सनत्कुमारजी के कहे हुए श्लोक भी प्रमाण होते हैं सबके आदि रूप ब्रह्माजी ने प्रथम इस विश्व को पैदा किया जोकि उनके सिवाय दूसरे की सृष्टि नहीं है ब्राह्मणयोनि में जन्म लेनेवाले देवता वेदघोष के द्वारा स्वर्ग को जाते हैं ब्राह्मणों के जो बुद्धि, वचन, कर्म, श्रद्धा, और तप हैं वह पृथ्वी और स्वर्ग को ऐसे धारण करते हैं जैसे कि दही दूध आदि को छींका धारण करता है, सत्यता से अधिक कोई धर्म नहीं है माता की समान कोई गुरु नहीं है और इस लोक परलोक दोनोंमें ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ कोई नहीं है, जिन राजाओंके देशमें ब्राह्मणों की जीविका नहीं है और बैल वा अन्य सवारी उनके चढ़ने को नहीं हैं और दान के निमित्त उनका बुलाना नहीं होता है वह राजा चोररूप विनाश को पाते हैं, वेद पुराण इतिहास आदि के प्रमाण से नारायणजी के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण सब के आत्मा सब के पैदा करनेवाले और सब भाव रखनेवाले हैं उन देवताओं के देवता वरदाता नारायणजी की मौनदशा में सब से प्रथम ब्राह्मण उत्पन्न हुए उन ब्राह्मणों से अन्य सब वर्ण उत्पन्न हुए इस प्रकार से ब्राह्मण लोग देवता और असुरों से श्रेष्ठ हैं जो कि मुझ निज ब्रह्मस्वरूप से पूर्व समय में उत्पन्न किये गये देवता, असुर, ब्रह्मर्षि आदि अधिकार पर नियत और पीड्यमान किये गये इन्द्र ने अहल्या से विषय करने के कारण अण्डकोशों को कटवाकर मेढ़े के अण्डकोशों को पाया और अश्विनीकुमार के यज्ञ में भाग रोकने के लिये भी इन्द्र ने वज्र को उठाया था तब इन्द्र की दोनों भुजा च्यवन ऋषि ने बांधदीन्हीं अर्थात् भुजा जड़रूप होकर हिलने झुलने से बन्द करदीं दक्षप्रजापतिने अपने यज्ञविध्वंसहोने के कारण क्रोधित होकर अपने तप में संयुक्त होकर नेत्र का दूसरारूप रुद्रजी के मस्तकपर उत्पन्न किया त्रिपुरासुर के मारने को महादेवजी के दीक्षित होने पर शुक्रजी ने शिर की जटा उखाड़कर शिवजीपर प्रयोग किया उससे सर्प प्रकट हुए उन सर्पों से रुद्रजी के पीड़ित कण्ठ में नील वर्णता होगई प्रथम स्वायंभुव मन्वन्तर में भी

नारायणजी के हाथ पकड़ने से शिवजी के कण्ठ में नीलता आगई थी क्षीरसागर की समीपता प्राप्त करनेवाले अंगिरावंशी बृहस्पतिजी के स्नान करने की दशा में जल ने स्वच्छता को नहीं पाया इससे बृहस्पतिजी ने जलों के ऊपर क्रोध किया कि जो तुम मेरे स्नान से मैले हुए और स्वच्छ नहीं हुए इसकारण आज से तुम मगर, मच्छ, कछुए आदि अनेक जलजीवों से भ्रष्ट रहोगे तभी से जल की नदी आदि जलजीवों से व्याप्तहुई हैं त्वष्टा का पुत्र विश्वरूप देवताओं का पुरोहित हुआ वह असुरों का मित्र होकर प्रत्यक्ष में तो देवताओं का भाग दिखाता था परन्तु गुप्त असुरों को ही भागदेता रहता था तदनन्तर असुरों ने हिरण्यकशिपु को अपना अग्रगामी बनाकर विश्वरूप की माता अपनी बहन को वरदेने की इच्छा की और कहा कि हे बहन ! यह तेरा पुत्र विश्वरूप जो त्वष्टा से उत्पन्न है तीन शिरधारी देवताओं का पुरोहित है इसने प्रत्यक्ष में तो देवताओं को भाग दिया और गुप्त हमको दिया इसहेतु से देवता वृद्धि पाते हैं और हमारा बिगाड़ होता है तुम उसको समझादो कि ऐसा न करे हमकोही चाहै तदनन्तर उसकी माता ने नन्दनवन में वर्त्तमान अपने पुत्र से कहा कि हे पुत्र ! तुम अन्य लोगों के पक्ष को क्यों वृद्धि करते हो और मामा के पक्ष को घटाते हो तुमको ऐसा कर्म करना उचित नहीं है तब उस विश्वरूप ने माता के वचन को उल्लंघन के अयोग्य समझकर उसका अच्छी रीति से पूजन करके हिरण्यकशिपु के पास यात्रा करी तब हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठजी से शाप पाया कि जो तुम ने दूसरा होता बुलाया इसकारण तुम्हारा यज्ञ पूर्ण न होगा और प्रकट होनेवाले अद्भुत शरीरधारी के हाथ से मारेजाओगे उनके शापदेने से उसीरीति से हिरण्यकशिपु मारागया तदनन्तर माता का पक्ष बढ़ानेवाले विश्वरूप ने बड़ा तपकिया इन्द्र ने उसका व्रत खण्डित करने के लिये बहुत सी शोभायमान अप्सराओं को उसके पास नियत किया उनको देखकर उसका चित्त महाव्याकुल और चलायमान हुआ और शीघ्रही उन अप्सराओं के ऊपर आसक्त होगया उसको आसक्त जानकर अप्सराओं ने कहा कि हम जहां से आई हैं वहीं जाती हैं तब विश्वरूप ने उनसे कहा कि कहां जाओगी बैठो हमारे साथ आनन्द करो तब अप्सराओं ने कहा कि हम देवताओं की स्त्री अप्सरा हैं हमने पूर्वसमय में वरदाता और अनेकरूप से प्रकट होनेवाले इन्द्र देवता कोही अपना पति बनाया है तब विश्वरूप ने कहा कि

आदि देवता ब्राह्मण के मुख में प्रवेश करके उसको धारण करते हुए उसकी तृप्ति से आप भी तृप्त होजाते हैं, वह ज्ञानी देदीप्य अग्नि में हवन करता है जोकि ब्राह्मण के मुख में आहुति को होमता है, इस प्रकार होने पर भी अग्निरूप ज्ञानी ब्राह्मण अग्नि को पूजते हैं क्योंकि सर्वव्यापी अग्नि सब जीवधारियों में प्रवेश करके प्राणों को धारण करता है इस स्थानपर सनत्कुमारजी के कहे हुए श्लोक भी प्रमाण होते हैं सबके आदि रूप ब्रह्माजी ने प्रथम इस विश्व को पैदा किया जोकि उनके सिवाय दूसरे की सृष्टि नहीं है ब्राह्मणयोनि में जन्म लेनेवाले देवता वेदघोष के द्वारा स्वर्ग को जाते हैं ब्राह्मणों के जो बुद्धि, वचन, कर्म, श्रद्धा, और तप हैं वह पृथ्वी और स्वर्ग को ऐसे धारण करते हैं जैसे कि दही दूध आदि को छींका धारण करता है, सत्यता से अधिक कोई धर्म नहीं है माता की समान कोई गुरु नहीं है और इस लोक परलोक दोनोंमें ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ कोई नहीं है, जिन राजाओंके देशमें ब्राह्मणों की जीविका नहीं है और बैल वा अन्य सवारी उनके चढ़ने को नहीं हैं और दान के निमित्त उनका बुलाना नहीं होता है वह राजा चोररूप विनाश को पाते हैं, वेद पुराण इतिहास आदि के प्रमाण से नारायणजी के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण सब के आत्मा सब के पैदा करनेवाले और सब भाव रखनेवाले हैं उन देवताओं के देवता वरदाता नारायणजी की मौनदशा में सब से प्रथम ब्राह्मण उत्पन्न हुए उन ब्राह्मणों से अन्य सब वर्ण उत्पन्न हुए इस प्रकार से ब्राह्मण लोग देवता और असुरों से श्रेष्ठ हैं जो कि मुझ निज ब्रह्मस्वरूप से पूर्व समय में उत्पन्न किये गये देवता, असुर, ब्रह्मर्षि आदि अधिकार पर नियत और पीड्यमान किये गये इन्द्र ने अहल्या से विषय करने के कारण अण्डकोशों को कटवाकर मेढ़े के अण्डकोशों को पाया और अश्विनीकुमार के यज्ञ में भाग रोकने के लिये भी इन्द्र ने वज्र को उठाया था तब इन्द्र की दोनों भुजा च्यवन ऋषि ने बांधदीन्हीं अर्थात् भुजा जड़रूप होकर हिलने झुलने से बन्द करदीं दक्षप्रजापतिने अपने यज्ञविध्वंस होने के कारण क्रोधित होकर अपने तप में संयुक्त होकर नेत्र का दूसरारूप रुद्रजी के मस्तकपर उत्पन्न किया त्रिपुरासुर के मारने को महादेवजी के दीक्षित होने पर शुक्रजी ने शिर की जटा उखाड़कर शिवजीपर प्रयोग किया उससे सर्प प्रकट हुए उन सर्पों से रुद्रजी के पीड़ित कण्ठ में नील वर्णता होगई प्रथम स्वायंभुव मन्वन्तर में भी

नारायणजी के हाथ पकड़ने से शिवजी के कण्ठ में नीलता आगई थी क्षीरसागर की समीपता प्राप्त करनेवाले अंगिरावंशी बृहस्पतिजी के स्नान करने की दशा में जल ने स्वच्छता को नहीं पाया इससे बृहस्पतिजी ने जलों के ऊपर क्रोध किया कि जो तुम मेरे स्नान से मैले हुए और स्वच्छ नहीं हुए इसकारण आज से तुम मगर, मच्छ, कछुए आदि अनेक जलजीवों से भ्रष्ट रहोगे तभी से जल की नदी आदि जलजीवों से व्याप्तहुई हैं त्वष्टा का पुत्र विश्वरूप देवताओं का पुरोहित हुआ वह असुरों का मित्र होकर प्रत्यक्ष में तो देवताओं का भाग दिखाता था परन्तु गुप्त असुरों को ही भागदेता रहता था तदनन्तर असुरों ने हिरण्यकशिपु को अपना अग्रगामी बनाकर विश्वरूप की माता अपनी बहन को वरदेने की इच्छा की और कहा कि हे बहन ! यह तेरा पुत्र विश्वरूप जो त्वष्टा से उत्पन्न है तीन शिरधारी देवताओं का पुरोहित है इसने प्रत्यक्ष में तो देवताओं को भाग दिया और गुप्त हमको दिया इसहेतु से देवता वृद्धि पाते हैं और हमारा बिगाड़ होता है तुम उसको समझादो कि ऐसा न करे हमकोही चाहै तदनन्तर उसकी माता ने नन्दनवन में वर्त्तमान अपने पुत्र से कहा कि हे पुत्र ! तुम अन्य लोगों के पक्ष को क्यों वृद्धि करते हो और मामा के पक्ष को घटाते हो तुमको ऐसा कर्म करना उचित नहीं है तब उस विश्वरूप ने माता के वचन को उल्लंघन के अयोग्य समझकर उसका अच्छी रीति से पूजन करके हिरण्यकशिपु के पास यात्रा करी तब हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठजी से शाप पाया कि जो तुम ने दूसरा होता बुलाया इसकारण तुम्हारा यज्ञ पूर्ण न होगा और प्रकट होनेवाले अद्भुत शरीरधारी के हाथ से मारेजाओगे उनके शापदेने से उसीरीति से हिरण्यकशिपु मारागया तदनन्तर माता का पक्ष बढ़ानेवाले विश्वरूप ने बड़ा तपकिया इन्द्र ने उसका व्रत खण्डित करने के लिये बहुत सी शोभायमान अप्सराओं को उसके पास नियत किया उनको देखकर उसका चित्त महाव्याकुल और चलायमान हुआ और शीघ्रही उन अप्सराओं के ऊपर आसक्त होगया उसको आसक्त जानकर अप्सराओं ने कहा कि हम जहां से आई हैं वहीं जाती हैं तब विश्वरूप ने उनसे कहा कि कहां जाओगी बैठो हमारे साथ आनन्द करो तब अप्सराओं ने कहा कि हम देवताओं की स्त्री अप्सरा हैं हमने पूर्वसमय में वरदाता और अनेकरूप से प्रकट होनेवाले इन्द्र देवता कोही अपना पति बनाया है तब विश्वरूप ने कहा कि

इन्द्रसमेत सब देवताओं का अभी नाश होजायगा यह कहकर मन्त्रों को जपा उन मन्त्रों के प्रभाव से तीन शिर रखनेवाला विश्वरूप ऐसा बढ़ा कि जिसने अपने एक मुख से तो अच्छे २ क्रियावान् पुण्यकर्मी ब्राह्मणों के श्रेष्ठरीति से होमेहुए अमृत को भोजन किया दूसरे मुख से अन्न को और तीसरे मुख से इन्द्र समेत सब देवताओं को तिसपीछे इन्द्र ने उसको ऐसा देखकर देवताओं समेत क्षीणता को पाया फिर वह इन्द्रादि सब देवता ब्रह्माजी के पास गये और कहा कि हे ब्रह्माजी ! सबयज्ञों में अच्छीरीति से होमाहुआ हव्य अमृत विश्वरूप भोजनकरता है हम भागों से रहित हुए असुरों का पक्ष वृद्धि को पाता है और हमारेपक्ष की हानि होती है इससे आप बड़ी शीघ्रता से हमारा कल्याण करो तब ब्रह्माजी ने उनको उत्तरदिया कि दधीचिनाम भार्गवऋषि तपस्या करते हैं उनको प्रसन्न करके उनसे यह वरदान मांगो कि आप अपने अस्थि हमको दें यह काम करके उनके हाड़ों का वज्रबनाओ यह सुनकर सब देवता वहांगये जहां भगवान् दधीचिऋषि तपकररहे थे इन्द्रसमेत देवताओं ने उनके सन्मुख जाकर प्रार्थना करी कि हे भगवन् ! आपका तप मंगलदायक और निर्विघ्न हो दधीचि ने कहा तुम सब आनन्द से आये हो हम तुम्हारा क्या सत्कारकरें जो आपलोग कहो वही मैं करूं उन्हों ने अपना मनोरथ कहा कि आप संसार के आनन्द के लिये अपना शरीर त्यागकरदीजिये तब तो हर्ष शोकरहित प्रसन्न होकर महायोगी दधीचिजी ने आत्मा को परमात्मा में धारण करके देह को त्यागकिया परमात्मा में उसके लय होजाने पर धातानाम देवता ने उनके हाड़ों को लेकर वज्र बनाया और उसवज्र में विष्णु प्रवेशकरगये उसी वज्रसे इन्द्रने विश्वरूपनाम त्रिशिराको मारडाला और उसके शिर को काटा तदनन्तर त्वष्टा से उत्पन्न मिथुनी से प्रकट हुए अपने शत्रु वृत्रासुर को भी इन्द्र ने मारडाला उस ब्रह्महत्या के दो प्रकार होनेपर इन्द्रने भय के मारे इन्द्रासन को त्यागकर मानसरोवर के शीतलजलसे उत्पन्न अत्यन्त शीतल स्पर्शवाली कमलनी में जाकर विश्राम किया वहाँ योगबल से अणुमात्र अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्मरूप होकर मृणाल की गांठ में प्रवेशकिया ब्रह्महत्या के भय से तीनों लोक के नाथ इन्द्र के गुप्तहोनेपर फिर संसार अनाथ होगया और देवताओं में रजोगुण तमोगुण की वृद्धिहुई मन्त्र गुप्त होगये और ब्रह्मर्षियों के सन्मुख राक्षस प्रकटहुए वेद ब्राह्मणरूप ब्रह्म का विनाश हुआ इन्द्र से रहित निर्बल संसार होगया तिस पीछे देवता और ऋषियों ने आयु के पुत्र

हंस को देवताओं के राज्यपर अभिषेक करके बैठाया जब हंस ने ललाटपर प्रकाशवान् सब तेजों की हरनेवाली पांच सौ ज्योतियों से स्वर्ग की रक्षाकरी तब संसार यथावस्थित हुआ और सब स्थिरचित्त होकर प्रसन्नहुए इसके पीछे हंस ने कहा कि शची के सिवाय इन्द्र का भोगा हुआ सब सामान मेरे सन्मुख आवे ऐसा कहकर वह शची के सन्मुख गया और उससे कहा कि हे सुन्दरि ! मैं देवताओं का इन्द्र हूं तुम मुझ को सेवनकरो शची ने उसको उत्तरदिया कि तुम स्वभाव सेही धर्मशील और चन्द्रवंशी हो अन्य की स्त्री से संभोग करने के योग्य नहीं हो फिर हंस ने उससे कहा कि मैं इन्द्रासन पर बैठा हूं और मैंहीं इन्द्र के राज्य और रत्नों का हरनेवाला हूं इसमें कोई अधर्म की बात नहीं है और तुम इन्द्र की उपभोग हो उसने फिर उत्तरदिया कि मेरा कोई व्रत अभी पूरा नहीं हुआ है उस-अवभृथस्नान अर्थात् पूरे व्रतहोने पर तेरे पास आऊंगी फिर कुछ दिन के लिये शची के ऐसे वचन सुनकर चलागया तदनन्तर दुःख शोक से पीड़ित अपने पति के दर्शन की इच्छा करती हुई हंस के भय से भयातुर शची बृहस्पतिजी के पास गई बृहस्पतिजी ने उसको अत्यन्त भयभीत और व्याकुल देखकर अपने ध्यान से शची को पति के कार्य में प्रवृत्त जानकर यह कहा कि तुम इस व्रत और तप से साक्षात् वरदाता देवी सरस्वती का आवाहन करो तब वह तुझको इन्द्र का दर्शन करावेगी यह सुनकर बड़े नियम में प्रवृत्त होकर शची ने अपने शुद्ध मन्त्रों से उस वरदाता सरस्वती का आवाहन किया और साक्षात् सरस्वतीजी शची के पास आईं और कहा कि मैं आई हूं जो तू चाहै वह मैं तेरा मनोरथ पूराकरूं तब शची ने मस्तक से प्रणाम करके भगवती से कहा कि हे देवि ! तुम मुझको मेरे पति का दर्शन कराओ आप सती और पूजित हो यह सुनतेही सरस्वती उसको मानसरोवरपर लेगई वहां कमल की मृणाल की गांठ में बैठेहुए इन्द्र का दर्शन कराया फिर इन्द्र ने उस अपनी स्त्री को दुर्बल और महादुःखी देखकर चिन्ता की कि यह मेरा दुःख वर्त्तमान हुआ यह स्त्री मुझ गुप्त को तालाश करतीहुई मेरे सन्मुख पीड्यमान होकर आई है इन्द्र ने शची से कहा कि तू कैसे अपनावर्त्ताव करती है उसने उत्तर दिया कि हंस मुझ को अपनी स्त्री बनाने को बुलाता है और मैंने उसका समय भी नियत करदिया है इन्द्र ने कहा कि जाओ तुम हंस से यह कहो कि तुम बहुत उत्तम ऋषियों से उठाईहुई सवारी पर सवार होकर मुझ को विवाहो इन्द्र की बहुत स-

अनेक सवारियां हैं और मैं उन सबपर चढ़ीहुई फिरी हूं इसके सिवाय उनमें से तुम कोई सवारी मतलाओ इसप्रकार इन्द्र की शिक्षापाकर वह बड़ी प्रसन्नता से चलीगई फिर इन्द्र भी अपने कमल मृणाल की गांठ में प्रविष्ट हुआ फिर हंस ने सन्मुख आईहुई इन्द्राणी को देखकर कहा कि तुम्हारा वादा पूराहुआ शची ने उससे वही कहा जैसे कि इन्द्र ने समझाय दिया था तब महर्षियों की सवारी में सवार होकर हंस शची के पासगया तदनन्तर मैत्रावरुण के पुत्र घट से उत्पन्न होनेवाले ऋषियों में श्रेष्ठ अगस्तिजी ने उन महर्षियों को हंस की सवारी में धिकारयुक्त हंस के चरणों से स्पर्शवान् देखकर हंस से कहा हे अयोग्यकर्मी, पापी ! पृथ्वी पर गिरो और तबतक सर्पयोनि में रहो जबतक पृथ्वी और पर्वत नियत रहैं उस महर्षि के इस वचन के कहतेही वह हंस उससवारी से गिर कर पृथ्वीपर सर्पयोनि में आकर प्रवृत्त हुआ इसके पीछे फिर तीनों लोक इन्द्र से रहित होकर अनाथ होगये तिसपीछे देवता और ऋषिलोग इन्द्र के निमित्त भगवान् विष्णुजी के धाम को गये और प्रार्थना करी कि हे भगवन् ! ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र की रक्षा करिये यह सुनकर विष्णुजी ने उनसे कहा कि इन्द्र अश्वमेधनाम विष्णुयज्ञ को करके अपने स्थान को पावेगा तिस पीछे जब देवता और ऋषियों ने इन्द्र को नहीं देखा तब शची से कहा कि हे सुन्दरि ! तुम जाकर इन्द्र को लाओ तब वह फिर उसी मानसरोवर पर गई और इन्द्र उस सरोवर से निकलकर बृहस्पतिजी के सन्मुख आया बृहस्पतिजी ने इन्द्र के निमित्त अश्वमेध नाम महायज्ञको किया और श्यामकर्ण नाम पवित्र घोड़े को छोड़कर और उसको सवारी विचार करके बृहस्पतिजी ने मरुद्गणों के स्वामी इन्द्र को अपने अधिकार स्थान को पहुंचाया तदनन्तर देवता ऋषियों से स्तुतिमान स्वर्ग में वर्त्तमान इन्द्र अपने पाप से निवृत्त हुआ और ब्रह्महत्या को स्त्री, अग्नि, औषधि और गौ इन चारों स्थानों में विभाग किया इसी प्रकार ब्राह्मणों के तेज और प्रताप से बुद्धिमान् इन्द्र अपने शत्रुओं के मरने के पीछे अपने स्थान पर पहुंचायागया, पूर्व समय में आकाशगंगापर वर्त्तमान भरद्वाजमहर्षि ने स्नान किया तब तीनचरण चलनेवाले त्रिविक्रम विष्णुजी उनसे मिले और विष्णुजी की छाती में उन हाथ में जल धारण कियेहुए भरद्वाज ने प्रहारकिया और वह छातीपर चिह्न नियतहुआ और भृगुजीने अग्नि को शाप दिया कि तुम सर्वभक्षी होजाओ सो अग्नि देवता सर्वभक्षी होगये—

अदितिमाता ने देवताओं के भोजन को ऐसे बनाया कि वह उसको खाकर असुरों को मारें और वहां व्रतचर्य्या के समाप्त होनेपर बुध देवता आये और उन्होंने अदिति से कहा कि भिक्षा दो तब अदिति ने यह समझकर कि प्रथम देवताओंको भोजन करना चाहिये दूसरे को नहीं योग्यहै ऐसा समझकर भिक्षा नहीं दी तब भिक्षा न देने से क्रोधरूप ब्रह्मरूप बुध ने अदिति को शापदिया कि विवस्वान् के दूसरे जन्म में अण्डनाम जन्म लेनेवाले की माता अदिति के उदर में पीड़ा होगी यह वचनकहा फिर वह मार्त्तण्ड विवस्वान् श्राद्ध देवता होतेहुए और दक्ष की जो साठ पुत्रियां हुईं उनमें से तेरह कन्या तो कश्यपजी को, दश धर्म को, दश मनु को और सत्ताईस चन्द्रमा को दीं उन सत्ताईस नक्षत्र नाम कन्याओं में चन्द्रमा की प्रीति केवल एक रोहिणी में अधिक हुई तब उन शेष नक्षत्र नाम कन्याओं ने ईर्षा करके अपने पिता से यह वृत्तान्त कहा कि हे पितः! हम सब समानरूप गुणवाली कन्याओं में से चन्द्रमा केवल एक रोहिणी परही स्नेह करता है यह सुनकर दक्षने क्रोधित होकर कहा कि जो तुम को नहीं चाहता है तो उसके शरीर में यक्ष्मानाम रोग उत्पन्न होगा इसी दक्ष के शाप से चन्द्रमा में यक्ष्मा रोग पैदा हुआ यक्ष्मारोग से भरा हुआ वह पीड़ित चन्द्रमा दक्ष के पास गया दक्ष ने कहा कि तुम सबसे समान बर्त्ताव नहीं करते हो फिर वहां ऋषियों ने चन्द्रमा से कहा कि तुम यक्ष्मारोग से नष्ट होतेहो इससे पश्चिम की ओर समुद्र के तटपर हिरण्य सरोवर नाम तीर्थ है उसमें स्नान करो यह सुनकर चन्द्रमा वहां गया और हिरण्य सरोवर तीर्थपर पहुंचकर अभिषेकपूर्वक स्नान करके पाप से छूटा और जब चन्द्रमा उसपर प्रकाशित हुआ तब से उस तीर्थ का प्रभास नाम प्रसिद्ध हुआ चन्द्रमा अब भी उसके शान्त से अमावास्या के दिन अन्तर्द्धान होजाता है और पूर्णमासी में प्रकट होकर भी मेघलेखा से आच्छादित शरीर दृष्ट पड़ता है मेघ की समान वर्ण पाने से उसका चन्द्र लक्षण निर्मल है स्थूलशिरा महर्षि ने सुमेरु पर्वत के पूर्वोत्तर कोण में तपस्या की तब उसके शरीर को सुगन्धित मन्दचलनेवाली पवित्रवायु ने स्पर्श किया इससे वह बहुत तृप्त हुए और वायु के वेग से हिलायेहुए वृक्षों ने अपने पुष्पों की शोभा ऋषि को दिखाई तब उसने उनको शाप दिया कि तुम सदैव फूल देनेवाले नहीं होगे- पूर्वसमय में नारायणजी संसार के आनन्द के लिये बड़वामुखनाम महर्षि

होगये थे उन्हों ने मेरु पर्वत पर तप करतेहुए समुद्र को बुलाया और समुद्र उनके बुलाने से नहीं आया तब उन्होंने महाक्रोधयुक्त होकर अपने संतप्त शरीर से समुद्र को अचल करदिया पसीने के समान जल को लवण सा कर दिया और कहा कि पीने के अयोग्य होगा फिर बड़वानल अग्नि से सोखा हुआ तेरा जल मीठा होगा वह जल अब तक भी समीप रहनेवाली बड़वानल अग्नि से सोखा जाता है रुद्रजी ने हिमालय पर्वत की पुत्री कन्यारूप उमा को चाहा और भृगुमहर्षि ने भी हिमालय से मिलकर कहाकि यह कन्या मुझे दो तब हिमालयने उनसे कहाकि रुद्रजी को इसका वर विचार कियागया है फिर भृगुजीने उससे कहाकि मैं कन्याकांक्षी हूं और तैंने हमको निषेध किया इस कारणसे तुम रत्नों के निवासस्थानरूप नहीं होगे वह ऋषि का वचन अब तक नियत है ब्राह्मणों का ऐसा २ माहात्म्य है क्षत्रियों के वंश भी ब्राह्मणों के ही आशीर्वाद से सदैव और न्यूनाधिक रहित स्त्रीरूप पृथ्वी को पाकर भोग करतेहैं; जो यह अग्निसोमीय नाम तेज ब्राह्मण और क्षत्रियों में नियतहै उसी तेज से संसार धारण किया जाताहै इसीहेतु से जगत्भी अग्निसोमीय कहाता है सूर्य्य और चन्द्रमा दोनों मेरे नेत्र कहेजाते हैं और उनकी किरणें मेरे बाल हैं वह दोनों सूर्य्य चन्द्रमा संसार को जगाकर प्रसन्न करते हैं और संसार पृथक्२ उठता है उनके जतलाने और तप्त करनेसे संसार में आनन्द होता है हे पाण्डुनन्दन ! अग्निसोमके इन कर्मोंसे मैं भी संसारका वरदाता ईश्वर और हृषीकेश हूं अर्थात् अग्नि और चन्द्रमा की किरणें जिसके बाल हों उसीको हृषीकेश कहते हैं, मैं आवागमन के सम्बन्ध से यज्ञों में भाग को लेता हूं और श्रेष्ठ वर्ण मेरा हरितहै इसीसेमेरा नाम हरिविख्यातहै, मैं बाधासे रहित जीवोंका आधार कहाता हूं इसीसे मुझे ब्राह्मणलोग अमृत विचारते हैं और रत्नधामा कहते हैं; पूर्वसमय में मैंने रसातल में गुप्त पृथ्वी को पाया इसीहेतु से मुझे देवताओं के वचनों से गोविन्द नाम से वर्णन करते हैं और जो कला से खाली ब्रह्माण्ड का बनानेवाला हूं इसीसे शिपिविष्ट मेरा नाम है बड़े सावधान यास्क नाम ऋषि ने बहुत से यज्ञों में मुझ को शिपिविष्ट नाम से वर्णन किया इसीसे मैं इस गुप्त नाम का धारण करनेवाला हूं बड़े बुद्धिमान् यास्क ऋषि ने शिपिविष्ट नाम से मेरी स्तुति को करके मेरी कृपा से पाताल में गुप्त हुए वेद को पाया, मैंने कभी न जन्म लिया है न लूंगा और सब जीवों का क्षेत्रज्ञ हूं इसीसे अज कहलाता हूं

मैंने प्रथम कभी स्वभाव के विरुद्ध किसी से कठोर वचन नहीं कहे वह मेरी वाणी सरस्वती सत्य अविनाशी और वेद से उत्पन्न है, हे कुन्तीनन्दन! मैंने नाभि से उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मलोक में पृथ्वी, जल, अग्निरूप सत् और वायु आकाशरूप असत् अपनी आत्मा में प्रवेशित किया इस कारण मुझ को ऋषियों ने सत्यनाम से प्रसिद्ध किया है, मैं प्रथम शुद्ध सतोगुण से कभी नहीं गिरा उसी शुद्ध सतोगुण को मेरी सृष्टि जानो हे अर्जुन! जन्म में मेरी इच्छा शुद्ध सतोगुणी और प्राचीन है मैं अनिच्छावान् सतोगुणी कर्मी निष्पाप ब्रह्मज्ञानियों को ब्रह्मज्ञान से दृष्ट आता हूं इस हेतु से मेरा सात्वत नाम है अर्थात् पञ्चरात्रि आदि से उत्पन्न होनेवाले ज्ञान से दर्शन देता हूं और हे अर्जुन! लोहे का कालरूप महल होकर पृथ्वी को विजय करता हूं उसीसे मेरा शरीर कृष्ण है इस हेतु से कृष्ण नाम से पुकारा जाता हूं मैंने इस पृथ्वी को जलों से संयुक्त किया आकाश को वायु से वायु को अग्नि से संयुक्त किया है इस कारण से मेरा नाम वैकुण्ठ है अर्थात् व नाम वायु व अग्नि और मेघरूप जल का है और कु पृथ्वी और ठः आकाश को कहते हैं इन सब शब्दों से मिलकर वैकुण्ठ शब्द बना है इससे जो महापुरुष इन सबको परस्पर में मिलाता है उसीको वैकुण्ठ वर्णन करते हैं यह उत्तम धर्म निर्वाण और परब्रह्मरूप कहाजाता है मैं प्रथम, जिस बुद्धि के कारण कहीं से नहीं गिरा इसी कर्म से मेरा नाम अच्युत बोलते हैं, पृथ्वी और आकाश दोनों विश्वतोमुख हैं प्रसिद्ध हैं इनका साधारण अर्थ मेरा अधोक्षज होता है अर्थात् अधनाम पृथ्वी का है क्षो नाम आकाश का है जो इन दोनों को विजय करता है उसका नाम अधोक्षज है, वेदज्ञ लोगों का यह वचन है वह वेदशब्दार्थ को विचारनेवाले पुरुष यज्ञशाला के मुख्य स्थान पर मुझ को अधोक्षज नाम से गान करते हैं, अर्थात् (अ) का अर्थ यह है कि जिसमें सदैव लय हो और (धोक्ष) का अर्थ यह है कि जिससे सबका पोषण हो और (ज) का अर्थ यह है कि जिससे सबकी उत्पत्ति हो यह अधोक्षज शब्द के अक्षरों का अर्थ है इनको इकट्ठा करके एक शब्द बनाकर महर्षियों ने गाया है कभी प्रभु नारायण के सिवाय दूसरा अधोक्षज नहीं होसक्ता है इस लोक में मुझ अग्नि स्वरूप की ज्वाला को घृत पदार्थ वृद्धि का करनेवाला है और जीवों के भी प्राणों का धारण करनेवाला है इस हेतु से सावधान वेदज्ञ लोगों ने मुझ को घृताची नाम से प्रसिद्ध किया है, और जो कर्मों

से उत्पन्न हुई तीन धातु वात, पित्त, कफ हैं इसका नाम संघात है इन्हीं तीनों से जीवमात्र धारण किये जाते हैं और इन्हीं के विनाशवान् होने से जीवों का विनाश होता है इस हेतु से वैद्य लोग मुझ को त्रिधातुरूप वर्णन करते हैं हे भरतवंशिन्! धर्म लोकों में भगवान् का नाम वृष नाम से प्रसिद्ध है नैष्ठिक पदों के अर्थ में मेरा वृषनाम उत्तम है वृष, कपि, वराह, यही श्रेष्ठ धर्म कहा जाता है इसी हेतु से कश्यप प्रजापति ने मुझ को (वृषाकपि) वर्णन किया है, देवता और असुर कभी मेरे आदि, मध्य, अन्त को नहीं कहते हैं इस हेतु से आदि अन्त से रहित प्रजा का स्वामी लोकसाक्षी (विभु) नाम से प्रसिद्ध मैं ही हूं, हे अर्जुन! मैं इसलोक में पवित्र और संशयात्मक वचनों को सुनता हूं और पापों को नहीं सुनता हूं इस हेतु से (शुचिश्रवा) नाम से प्रसिद्ध हूं, पूर्वसमय में मैंने आनन्द बढ़ानेवाला और एक सींग रखनेवाला वराहरूप होकर पृथ्वी को पाताल से ऊपर को उठाया इससे मुझ को एक शृंग नाम से वर्णन करते हैं, और उसी वराहरूप में नियत होकर मैं तीन ऊंचे कन्धे आदि रखनेवाला हुआ तब शरीर के माप से (त्रि ककुद) यह मेरा नाम हुआ वेदान्त विचार करनेवालों ने मुझ को (विरंचि) वर्णन किया अर्थात् जो सब तत्त्वों को अपने में लय करता है उसको विरंचि कहते हैं वह प्रजापति मैं ही हूं जो परमात्मा के द्वारा सब लोकों का उत्पन्न करनेवाला है, निश्चय को निश्चय करनेवाले सांख्यशास्त्र के आचार्य्यों ने मुझी को कपिल नाम से कहा है वही कपिल विद्यासंयुक्त सनातन पीतवर्ण सूर्य्य में नियत हैं, जो तेजस्वी वेदों से स्तुति किया हुआ हिरण्यगर्भ योगी लोगों से सदैव पूजा कियाजाता है और पृथ्वी में चतुर्मुख नाम से प्रसिद्ध है वह भी मैं ही हूं, जो वेदज्ञ पुरुष हैं वह मुझ को इकीस सहस्र संख्यायुक्त ऋग्वेद और सहस्र शाखा युक्त सामवेद वर्णन करते हैं, वेदपाठी ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् में मुझ को गाते हैं वह मेरे भक्त बहुत दुर्लभ हैं जिस यजुर्वेद में एकसौ एक शाखा हैं वह वेद और यजुर्वेदोक्त कर्म मैं ही हूं जोकि अध्वर्यु से सम्बन्धयुक्त है, इसी प्रकार अथर्वण वेद जाननेवाले ब्राह्मण मुझ को अथर्वण वेद कल्पना करते हैं वह वेद पांच कल्प और कृत्याओं से संयुक्त है और जो कुछ शाखाओं के भेद हैं और शाखाओं में जो गीत स्वर वर्णों से अच्छी रीति पूर्वक उच्चारण किये जाते हैं उन सबको मेरा ही बनाया हुआ जानो, हे अर्जुन! जो वह

अश्वशिर नाम वरदाता अवतार ब्रह्माजी को दर्शन देता है वह मैं ही संसार के उत्तरभाग में क्रम और अक्षर के विभाग का जाननेवाला हूं मेरे ही कृपा से महात्मा पाञ्चाल मुनिने वामदेव ऋषि के उपदेश कियेहुए मार्ग के द्वारा उस सनातनब्रह्म से क्रम को पाया, और बाभ्रव्यगोत्री मुनि भी नारायणजी से वर और उत्तम योग को पाकर कर्मशास्त्र में सब से विद्यावान् और शोभायमान हुए, और गालवऋषि कर्म और शिक्षाशास्त्र को निर्माण करके शोभायमान हुए और कण्डरीकवंशी महाप्रतापी राजा ब्रह्मदत्त ने जन्म मरण से उत्पन्न दुःखों को वारंवार स्मरण करके और सात जन्मों में से इस जन्म के उत्तम होने से योगियों के उत्तम ऐश्वर्य्य को प्राप्त किया हे अर्जुन! मैं पूर्वकाल में किसी हेतु से धर्म का पुत्र प्रसिद्धहुआ इस कारण से मुझको धर्मज नाम से प्रसिद्ध करते हैं, और पूर्वही काल में गन्धमादन पर्व्वत के ऊपर धर्मयान में सवार दोनों नरनारायण ने अविनाशी तपस्या की, हे भरतवंशिन्! उसीसमय में दक्ष प्रजापति का यज्ञ हुआ वहां दक्ष ने रुद्रजी का भाग नहीं विचार किया, तिसपीछे रुद्रजी ने दधीचिऋषि के वचन से दक्ष के यज्ञ को विध्वंस किया महाक्रोधित होकर वारंवार त्रिशूल को छोड़ा, वह त्रिशूल दक्ष के बड़े विस्तृत यज्ञ को भस्मीभूत करके अकस्मात् बदर्य्याश्रम के समीप हम दोनों की ओर को आया, हे अर्जुन! वह शूल बड़े वेग से नारायण की छातीपर गिरा तब नारायणजी के बाल उस शूल के तेज से भरे हुए मूंजवर्ण होकर शोभायमान हुए इस हेतु से मेरा नाम मुंजकेश भी है महात्मा की हुंकार से घुड़का हुआ और नारायणजी से घायल होकर वह शूल महादेवजी के हाथ में गया तदनन्तर शिवजी उन तप में भरेहुए ऋषियों के सन्मुख दौड़े, तब उस विश्वात्मा नारायण ने इस आकाशमार्ग से आनेवाले रुद्रजी के कण्ठ को अपने हाथ से पकड़ा इसी कारण अर्थात् कृष्णवर्ण नारायणजी के स्पर्श करने से शिवजी नीलकण्ठ हुए, तदनन्तर रुद्रजी के नाश करने को नर ने एक सींक को उठाया और शीघ्रही मन्त्रों से संयुक्त किया तभी वह बड़ा भारी फरसा होगया तब अकस्मात् शिवजी के घुड़के हुए उस फरसे ने पराजय पाई उस फरसे के पराजय होने से मेरानाम कण्ठपरशु कहाया गया (कण्ठपरशु नाम रुद्रजी का भी है कारण यह है कि नारायण और रुद्र एकही आत्मा हैं) अर्जुन ने प्रश्न किया कि हे दुष्टसंहारिन्, तीनोंलोकों की शान्ति करनेवाले, वासुदेवजी! इस

महायुद्ध के होनेपर किसने विजय को पाया इसको मुझे समझाइये, श्रीभगवान् बोले कि उस युद्ध में उन रुद्र और नारायण को प्रवृत्त होनेपर अकस्मात् सबलोक भयभीत और व्याकुलहुए, यज्ञों में अग्नि ने अच्छीरीति से होमेहुए उज्ज्वल हव्य को नहीं ग्रहण किया और वेद शुद्ध अन्तःकरण ऋषियों की याद से विस्मरण हुए, तब देवताओं में रजोगुण और तमोगुण प्रविष्ट हुआ पृथ्वी कम्पायमान हुई और आकाश भी हलने लगा, सब सूर्य्य आदि के तेज प्रभारहित हुए और ब्रह्माजी भी आसन से उठ खड़े हुए, समुद्र सूखने लगे और हिमालय पर्व्वत फटगया, हे पाण्डुनन्दन ! इसीप्रकार से ऐसे उत्पातों के होनेपर महात्मा ऋषियों समेत देवताओं के गणसहित ब्रह्माजी शीघ्रही उस देशमें आये जहां युद्ध वर्त्तमान था तब उन वेदज्ञ ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर रुद्रजी से वचन कहा कि हे विश्वेश्वर ! शस्त्रों को रखकर लोक की वृद्धि के अर्थ लोकों के कल्याण रूप होजाओ, जो अविनाशी और गुप्त लोकों का ईश्वर पालनकर्त्ता उपाधिरहित अकेला ही संसार का स्वामी हर्ष शोक से जुदा है उसको अकर्त्ता जाना इस सगुणरूपधारी की यह शुभ मूर्त्ति है जो कि धर्मकुल के प्रकाश करनेवाले नरनारायण नाम से दोनों प्रकट हुए, यह देवताओं में श्रेष्ठ महाव्रती और तपोमूर्त्ति हैं मैं भी किसी हेतु से इन्हीं की प्रसन्नता से उत्पन्न हुआ हूं हे तात ! सनातन तुम भी पूर्व उत्पत्ति में इन्हीं के क्रोध से उत्पन्न हुए हो हे वरदाता ! तुम और सब देवता महर्षियों समेत इनको शीघ्र प्रसन्न करो जिससे कि लोकों की शान्ति होय इसमें विलम्ब न कीजिये क्रोधाग्नि को छोड़ते हुए शिवजी ने इसप्रकार ब्रह्माजी के वचन सुनकर प्रभु नारायण देवता को बहुत प्रसन्नकिया और उस श्रेष्ठ वरदाता प्रभु आदिपुरुष के शरण हुए इसके पीछे क्रोध और स्वभाव के जीतनेवाले वरदायक देवदेव प्रसन्नहुए और स्नेहपूर्वक रुद्रजी से मिले फिर ब्रह्मासमेत देवता और ऋषियों ने भी उनका पूजन किया तब उस देवदेव नारायणजी ने शिवजी से यह वचन कहा कि हे शिवजी ! जो तुमको जानता है वह मुझी को जानता है और जो तुम्हारा भक्त है वह मेराभक्त है हमारी तुम्हारी कुछ पृथक्ता नहीं है अर्थात् एकही रूप हैं आपकी बुद्धि कभी विपरीत न हो अब से लेकर यह मेरा श्रीवत्स तुम्हारे शूल से अंकित-हुआ और मेरे हाथ से अंकित तुम भी श्रीकण्ठ होगे श्रीकृष्णजी बोले कि ऐसा कहकर उन दोनों नर नारायण ऋषि ने इस

प्रकार परस्पर में चिह्न अंकित करके शिवजी से बड़ी प्रीति भावकर देवताओं को बिदाकर सावधान होकर तपस्या को किया हे अर्जुन ! युद्ध में नारायण जी की यह विजय मैंने तुम से कही हे भरतवंशिन् ! गुप्त नाम और अनाम जो कि इसलोक में ऋषियों से वर्णन किये गये वह तेरे सन्मुख अच्छी रीति से वर्णन किये, हे कुन्तीनन्दन ! मैं इसरीति से इसलोक ब्रह्मलोक और सनातन गोलोक में बहुत प्रकार के रूपों से विचरता हूं युद्ध में मेरी रक्षा में होकर तुमने भी बड़ीभारी विजय को पाया और युद्ध के वर्त्तमान होनेपर जो वह पुरुष तेरे आगे चलता था, उसको गंगाजल से पूर्ण जटाधारी देवताओं का देवता रुद्र जानो वही रुद्र तेरे सन्मुख मेरे क्रोध से उत्पन्न कालपुरुष था जिन शत्रुओं को तैंने मारा है वह पहलेही से उन कालरूप रुद्रजी से मारे गये थे तुम सावधान होकर उस अप्रमेय प्रभावयुक्त देवदेव उमापति विश्वेश्वर अविनाशी हर को नमस्कार करो हे अर्जुन ! उस मेरे क्रोधजन्य तेज का अतुल प्रभाव था उसको तैंने वारंवार सुना है ॥ १४० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे सप्तषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

एकसौ अरसठ का अध्याय ॥

शौनक ऋषि बोले कि, हे सूत पुत्र ! आपने बहुत बड़ा आख्यान वर्णन किया इसको सुनकर हम सब मुनियों ने बड़ा आश्चर्य किया, सब आश्रमों में कर्म कर्त्ता होना, सब तीर्थों में स्नान करना ऐसा फल देनेवाला नहीं है जैसा कि नारायणजी की कथा से फल मिलता है हम इस नारायणजी की पवित्र और पापमोचनी कथा को आदि से सुनकर निष्पाप हुए, सब लोकों में पूज्य श्रीनारायण देवता ब्रह्मा को आदि लेकर किसी देवता वा महर्षियों से विजय नहीं किये जासक्ते हैं, हे सूतनन्दन ! नारदजीने जो उस देवता नारायण हरि को देखा वह निश्चय करके उन्हीं की इच्छा थी, जो नारदजी ने उस जगन्नाथ अनिरुद्ध देह में नियत प्रभु को वहां आकर देखा इसका हेतु आप हमसे वर्णन कीजिये, सूतजी बोले कि हे शौनक ! राजा जनमेजय ने अपने यज्ञ प्रारम्भ होने के समय अपने पिता के भी प्रपितामह व्यासजी से पूछा कि श्वेतद्वीप से लौटकर आनेवाले और भगवत् वचन के ध्यान करनेवाले देवऋषि नारदजी ने फिर कौनसा कर्म किया और बदर्य्याश्रम में आकर

उन नर नारायण ऋषि से मिलकर कितने समयतक वहां निवास किया और कौन २ कथा को भगवान् से पूछा, एकलाख श्लोकयुक्त महाभारत से बुद्धिरूप मथानी के द्वारा इस ज्ञानरूप उत्तम समुद्र को मथकर जैसे दही से मक्खन, मलयाचल से चन्दन और वेदों से आरण्यक उपनिषद् और औषधियों से अमृत निकाला जाता है उसीप्रकार से हे तपोधनजी ! यह कथारूप अमृत आपने निकाला है, हे विप्रेन्द्र ! वह षडैश्वर्य्य युक्त देवता आदि जीवमात्रों को आत्मारूप से पोषण करनेवाला है उन नारायण जी का तेज बड़ी कठिनता से दृष्ट आनेवाला है कल्प के अन्त में ब्रह्माआदि देवता ऋषि गन्धर्व और सब जड़ चैतन्य जिसमें प्रवेश करते हैं, मैं मानता हूं कि इसलोक और परलोक दोनों में उससे अधिक सबका पवित्र करनेवाला कोई नहीं है सब आश्रमों का वास और तीर्थों में स्नान ऐसा फलदायक नहींहै जैसी नारायण जी की कथा फलदायी होती है यहां हम सब पापमोचनी नारायण और विश्वेश्वर जी की इस कथा को प्रारम्भ से सुनकर सब दशा में पवित्र हैं उस कथा में मेरे बाबा अर्जुन ने जो कर्म किये वह अपूर्व और अद्भुत हैं, वासुदेव जी को साथ रखनेवाले जिस अर्जुन ने विजय को पाया मैं जानता हूं कि तीनोंलोक में भी उसको दुष्प्राप्य वस्तु कोई नहीं है वह तीनों लोक के स्वामी जैसे हैं और जिसप्रकार से वह अर्जुन के सहायक हुए वह सब मेरे वृद्ध प्रशंसा के योग्य हैं, दुष्टसंहारी श्रीकृष्ण जी जिनके हित और कल्याण के निमित्त कर्मकर्त्ता हुए वह लोकपूजित भगवान् तप के द्वारा अच्छी रीति से दर्शन देनेवाले हैं उन्होंने जिस श्रीवत्स चिह्न से अलंकृत विष्णुजी को अपने नेत्रों से देखा उनसे अधिक प्रशंसा के योग्य ब्रह्माजी के पुत्र श्रीनारदजी हैं, मैं मोक्ष के अधिकार से न गिरनेवाले नारदऋषि को थोड़े तेजवाला नहीं जानता हूं जिसने श्वेतद्वीप में जाकर आप साक्षात् नारायणजी का दर्शन पाया, प्रत्यक्ष है कि देवता की कृपा से उसको वह दर्शन हुआ जो अनिरुद्ध देहमें नियत गुप्तरूप था हे मुने ! फिर नारदजी नरनारायणजीका दर्शन करने के लिये बदर्य्याश्रम में गये इसका क्या कारण है, श्वेतद्वीप से लौटेहुए ब्रह्मा के पुत्र नारदजी बदर्य्याश्रम को पाकर उन दोनों नरनारायण ऋषियों से मिलकर कितने समय तक वहां स्थिर रहे और कौन २ सी बातें उनसे पूछीं और वहां से चलने के समय नरनारायणजी ने क्या २ नारद जी से कहा

इन सब बातों को कृपा करके मुझसे कहिये, वैशंपायन बोले कि उस बड़े तेजस्वी भगवान् व्यासजी को मैं नमस्कार करता हूं जिनकी कृपा से नारायणजी की इस कथा को कहता हूं, हे राजन्! नारदजी श्वेतद्वीप में प्राप्त होके उस अविनाशी हरि का दर्शन करके लौटे और बड़ी शीघ्रता से मेरु पर्वत पर आये और परमात्मानारायण ने जो उनसे कहा था उस बोझे को हृदय में धारण करके जब यहां आये तब उनके चित्त में यह बड़ा भय उत्पन्न हुआ कि मैं इतनी दूर जाकर फिर यहां आया हूं फिर मेरु पर्वत से गन्धमादन पर्वतमें आये फिर शीघ्रही आकाश से बड़े भारी बदर्य्याश्रम के पास गिरे वहां पुराणपुरुष ऋषियोंमें श्रेष्ठ नरनारायण को देखा, बड़े तपस्वी आत्मनिष्ठ महाव्रती सबलोक के प्यारे होकर सूर्य्य के समान तेजधारी श्रीवत्सचिह्न और जटामण्डलयुक्त हंसचिह्निनी भुजाओं से शोभित चक्रों से चिह्नित चरण बड़ा वक्षस्स्थल लम्बी २ चार भुजाधारी साठ दांत आठ दाढ़ रखनेवाले मेघों के समान शब्दायमान सुन्दर और बड़ा मुख, ललाट, भृकुटी, ठोड़ी, नाक आदि से शोभित उन दोनों देवताओं के शिरच्छत्र के समान थे इसप्रकार के लक्षणों से भरे महापुरुषनाम उन दोनों को देखकर नारदजी दोनों से पूजित होकर प्रसन्न हुए मार्ग की कुशल क्षेमादिक पूछकर मन के आनन्द को पूछा, उन दोनों पुरुषोत्तमों को देखकर नारदजी के अन्तःकरण में यह विचार उत्पन्न हुआ कि उस श्वेतद्वीपीय भगवत् की सभा में वर्तमान सब जीवों से पूज्य जो पुरुष मैंने देखे वैसेही यह दोनों ऋषि मनको प्यारे मालूम होते हैं वह नारदजी मन से अच्छीतरह ऐसा विचार के प्रदक्षिणा कर सुन्दर उत्तम कुशासनपर बैठगये, तिस पीछे तप यश और तेजों के निवास स्थान बाह्याभ्यन्तर से शुद्धचित्त सावधान दोनों ऋषियों ने पूर्वाह्न काल की संध्या आदि क्रिया करके पाद्य अर्घ्य से नारदजी का पूजन किया जब संध्या पूजन आरती आदि कर्मों से निवृत्त होकर अपने अपने आसनों पर वह दोनों नरनारायणजी बैठगये और उनके बैठने से वह देश चारों ओर से ऐसा शोभायमान हुआ जैसे कि घृत से होमी हुई अग्नि के तेज से यज्ञ की शोभा होजाती है तब नारायणजी ने नारदजी से यह वचन कहा कि हे नारदजी! आपने हम दोनों के उत्पत्ति स्थान सब से श्रेष्ठ परमात्मा भगवान् को भी श्वेतद्वीप में जाकर देखा है नारदजी बोले कि मैंने वह विश्वरूपधारी अविनाशी श्रीमान्

पुरुष देखा है उस देवता में सब ब्रह्मर्षियों समेत देवता नियत थे अब भी तुम दोनों सनातन पुरुषों को देखता हुआ भी मैं उनको देखता हूं वह गुप्तरूपधारी हरि जिन २ लक्षणों से युक्त हैं वैसेही लक्षण तुम दोनों प्रत्यक्षरूप धारियों में भी मुझे दिखाई देते हैं वहां उस देवता में तुम दोनों को भी उसके पार्श्व-भाग में देखा है, अब मैं परमात्मा से बिदा होकर यहां आया हूं प्रत्यक्ष है कि तीनों लोक में तुम दोनों धर्म्मपुत्र के सिवाय तेज यश और लक्ष्मी में उसके समान दूसरा कोई नहीं है उसने क्षेत्रज्ञसम्बन्धी सम्पूर्ण धर्म्म मुझ से वर्णन किये और अपने वह अवतार भी कहे जो यहां होनेवाले हैं वहां जो सतोगुण-प्रधान श्वेत पुरुष पांचों इन्द्रियों से रहित थे वह सब उस पुरुषोत्तम के ज्ञानी भक्त हैं वह सदैव उस देवता को पूजते हैं और वह भी उन्हीं के साथ क्रीड़ा करता है, वह भगवान् परमात्मा भक्तों का प्यारा और ब्रह्मण्य देव है वह ऐसा भगवद्भक्तों का प्रियतम सदैव उनसे पूजित और क्रीड़ायुक्त है, वही सर्व्व-व्यापी विश्व का स्वामी माधव भक्तवत्सल कार्य कारण रूप है और बड़े तेजबल का धारण करनेवाला है और बड़ा यशस्वी तप युक्त आत्मा को धारण करके उत्पत्ति कारण और आज्ञा प्रधान तत्त्वरूप है वह श्वेतद्वीप से भी अति उत्तम है वह अपने प्रकाश ही से तेजरूप प्रसिद्ध है उस शुद्ध आत्मा से तीनों लोक में वह शान्ति नियत हुई है कि मैं भी इस शुभ बुद्धि से नैष्ठिक व्रत में नियत हुआ हूं वहां न तो सूर्य्य उदय होता है न चन्द्रमा प्रकाश करता है और दुःख से करने के योग्य तप में देवेश्वर के नियत होनेपर वायु भी नहीं चलती है वह जगत् का स्वामी देवता आठ अंगुल ऊंची वेदी को पृथ्वी पर बनाकर ऊर्ध्वबाहु पूर्वाभिमुख एक चरण से नियत था अंगों से युक्त वेदों को पढ़ते हुए देवता ने महाकष्ट से करने के योग्य तपको तपा है वहां आप पशुपति शिवजी, ब्रह्माजी, समेत सब देवता, ऋषि, महर्षि, किन्नर, गन्धर्व, उरग, दैत्य, दानव, राक्षस, अप्सराओं समेत सदैव जिस बुद्धि युक्त होकर हव्य कव्य की भेंट करते हैं वह सब उस देवता के चरणों के समीप वर्त्तमान था, व्यभिचार रहित बुद्धि के स्वामी देवता उस भक्ति से दिये हुए सब पदार्थों को शिर से अंगीकार करता है महात्मा ज्ञानी भक्तों के सिवाय दूसरा उसका प्यारा तीनों लोक में कोई नहीं है इसी हेतु से वह उनकी भक्ति में नियत है, उस परमात्मासे बिदा होकर मैं यहां आयाहूं और जोकि उस आप परमेश्वरने

वर्णन किया है इससे मैं उसी में मन को लगाकर सदैव तुम दोनों के पास निवास करूंगा ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे ऽष्टषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

एकसौ उनहत्तर का अध्याय ॥

नरनारायण बोले कि, तुम प्रशंसा के योग्य और कृपापात्र हो तुमने साक्षात् प्रभु का दर्शन किया उसको किसी ने किन्तु ब्रह्माजी ने भी नहीं देखा है, हे नारद ! वह पुरुषोत्तम कठिनता से दर्शन देनेवाला षडैश्वर्य्य का स्वामी और अव्यक्त का उत्पत्ति स्थान है यह हमारा वचन सत्यही है, लोक में व्यक्त से अधिक उसका प्यारा कोई नहीं है हे उत्तम, ब्राह्मण ! इसी हेतु से उसने आप अपने रूप का दर्शन दिया, उस तप करनेवाले परमात्मा का जो निवास स्थान है उसको हम दोनों के सिवाय कोई प्राप्त नहीं करसक्ता है, जोकि उस का प्रकाश हजार सूर्य्य के समान हो इसीकारण उसी विराजमानही के प्रताप से इस स्थान का भी वही प्रकाश होता है, हे ब्राह्मण ! उस विश्व के स्वामी देवता के देवता से ही शान्ति उत्पन्न होती है हे शान्तोंमें श्रेष्ठ ! इस शान्ति से पृथ्वीसंयुक्त होती है उस जीवों के हितकारी देवता से रस उत्पन्न होताहै उसीसे जल संयुक्त होते हैं और नाश को प्राप्तहोते हैं, उसी से रूप गुण रखनेवाला तेज होता है सूर्य्य भी उसीमें युक्त होकर लोकों में प्रकाश करता है, उसी पुरुषोत्तम देवता से स्पर्श और स्पर्श से वायु उत्पन्न होकर लोकों में चेष्टा करता है, सब लोकों के ईश्वर से शब्द हुआ शब्द से आकाश होकर सर्वत्र व्याप्त होता है, उसी से मन हुआ जिससे संयुक्त होकर चन्द्रमा प्रकाशरूप धारण करता है वह वेदनाम स्थान सब भूतों का उत्पन्न करनेवाला है जहां ब्रह्मज्ञान से उत्पन्न होनेवाले हव्य कव्य के भोक्ता भगवान् विराजते हैं हे ब्राह्मण, श्रेष्ठ ! लोक में जो पुरुष शुद्ध और पुण्य से पृथक् हैं उन चलनेवालों का मार्ग मंगलों से भराहुआ है सब लोकों में अन्धकार का दूर करनेवाला सूर्य्य ही द्वाररूप कहाजाता है सूर्य्य से सुखाये हुए सब अंग कभी किसी के दृष्ट न आनेवाले परमाणुरूप होकर उस देवता में प्रवेश करते हैं और उससे भी छूटकर अनिरुद्ध शरीर में नियत होते हैं, फिर मन रूप होकर उकार अर्थ वाले सूत्रात्मा प्रद्युम्न नाम चित्त में प्रवेश करते हैं और प्रद्युम्न से भी निकल कर संकर्षण नाम जीव में प्रवेश होते हैं, वह सांख्य मतवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण

भगवत् भक्तों के साथ संकर्षण में प्रवेश करते हैं तदनन्तर वह तीनों गुणों से रहित उत्तम ब्राह्मण उस क्षेत्रज्ञ निर्गुण परमात्मा में शीघ्रही प्रवेश करते हैं उसको सबका निवासस्थान क्षेत्रज्ञ और वासुदेवनाम मुख्यता से जानो नियम व्रतधारी अच्छे सावधान चित्त जितेन्द्रिय विचार रहित भक्ति में प्रवृत्त पुरुष वासुदेवजी में प्रवेश करते हैं, हे ब्राह्मणवर्य्य! हम दोनों भी धर्म देवता के घर में उत्पन्न हुए और रमणीक बदरिकाश्रम में नियत होकर उग्रतप में नियत हुए, उसी देवता के अवतार जो सब देवताओं के प्यारे तीनों लोक में नियत होंगे उनका कल्याण हो और हे ब्राह्मण! पूर्व्व समय में अपनी बुद्धि से युक्त और सब कृच्छ्रनाम उत्तम व्रत में नियत हम दोनों ने तुम को बहुत पूछा था कि हे तपोधन! तुम श्वेतद्वीप में भगवान् से अपने संकल्प के समान मिले, जो तीनों लोकों में जड़ चैतन्यों समेत हम सबको जानते हैं और तीनों काल के शुभाशुभ को भी अच्छी रीति से जानते हैं, वैशम्पायन बोले कि नारदजी उन दोनों के इस वचन को सुनकर उग्रतप में प्रवृत्त हुए नारायण के चाहनेवाले नारदजी ने हाथ जोड़कर नरनारायणाश्रम में दिव्य हज़ार वर्षतक नारायण से पाये हुए अनेक मन्त्रों का बुद्धि के अनुसार जपकिया, और उसी देवता को इन दोनों नरनारायण समेत पूजते हुए नियत हुए ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकोनसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

एकसौ सत्तर का अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि, किसी समयपर ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी न्याय के अनुसार दैवकर्म को करके पितृकर्म में प्रवृत्तहुए तब धर्म के बड़े पुत्र नारायणजी ने नारदजी से यह वचन कहा कि हे द्विजवर्य्य! यहां दैव और पितृकर्म के कल्पित होनेपर तुम किसको पूजन करते हो, हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! यह कौन कर्म कियाजाता है और इसका फल क्या है इसको शास्त्र के अनुसार मुझ से वर्णन करो, नारदजी बोले कि प्रथम तुम से यह वर्णन कियागया है कि दैवकर्म करना चाहिये वह यज्ञपुरुष सनातन परमात्मा देवता उत्तम है इसी कारण उससे पालन कियाहुआ मैं सदैव उस अविनाशी की पूजाकरता हूं—पूर्वसमय में उसी से पितामह ब्रह्माजी भी उत्पन्नहुए और ब्रह्माजी ने प्रसन्नहोकर मेरे पिता को भी उत्पन्न किया मैं पहले कल्पित होनेवाला पुत्र उसके संकल्प से मिलाहुआ हूं,

हे साधो ! मैं तान्त्रिक पूजनादिकों म पितरों को पूजता हूं इसप्रकार से कि वही भगवान् माता पितारूप है, इसी रीति से वह जगत्पति सदैव पितृयज्ञों में पूजाजाता है और दूसरी देवी सरस्वती भी है कि पिताओं ने पुत्रों को पूजा है अर्थात् वेद की श्रुति जब प्रणष्ट होगई हैं तब पुत्रों ने पिताओं को पढ़ाया इसीकारण उन मन्त्र देनेवाले पुत्रों ने पित्राधिकार पाया, निश्चय है कि तुम दोनों शुद्ध अन्तःकरणवालों को भी यह वृत्तान्त देवताओं से विदित हुआ होगा कि पिता पुत्रों ने परस्पर में एक ने एक की प्रतिष्ठा की प्रथम पृथ्वी पर कुशाओं को बिछाकर उसपर पितरों के स्थान में पिण्डों को धर के पूजनकिया पूर्व्वसमय में उन पितरों ने किसी प्रकार से पिण्ड नाम को पाया, नरनारायण बोले कि पूर्व्वकाल में गोविन्दजी ने वराहरूप धारण करके सागररूप मेखला धारी इस पृथ्वी को शीघ्रता से ऊपर को उठाया और उसको यथावस्थित स्थान में नियत करके जलकीच से भरे संसार के कार्य्य में उद्योग युक्त शरीरवाले प्रभु ने मध्याह्न के समय सन्ध्याकाल होने पर दाढ़ में लगेहुए तीनपिण्डों को अकस्मात् बाहर निकाल कर पृथ्वीपर कुशाओं को बिछाकर पृथ्वी में उन पिण्डों को स्थापित किया फिर उन पिण्डों में अपने स्वरूप को नियत करके बुद्धि के अनुसार उसने पितृकर्म किया, प्रभुने अपनी बुद्धि से तीनों पिण्डों को संकल्प करके अपने शरीर की ऊष्मा से उत्पन्न हुए घृत और तिल से युक्त करके पूर्व्वाभिमुख हो पिण्डों का दान किया, फिर मर्य्यादा नियत करने के लिये यह वचन कहा कि मैं संसार का स्वामी होकर आप पितरों के उत्पन्न करने को प्रवृत्तहुआ हूं मेरे ध्यान करने से पितृकार्य्य की उत्तम रीति प्राप्त होती है, यह पिण्ड दाढ़ों से निकले और दक्षिण में पृथ्वीपर नियत हुए हैं इसहेतु से अब यह पितर हैं, यह तीनों पितर रूपरहित हैं और मुझ से मिलेहुए यह सनातन पितर पिण्डरूपधारी हों, इन तीनों पिण्डों में नियत मैंहीं पिता, पितामह, प्रपितामह नाम से जानने के योग्यहूं, मुझसे अधिक कोई नहीं है न कोई दूसरा मुझ से अन्य पूजन के योग्य है, लोक में मेरा पिता भी कोई नहीं है अर्थात् मैंहीं पितामह ब्रह्मा का भी पिता हूं मैंहीं सब का कारण हूं वह देवदेव वराह जी इतना वचन कहकर और वराह पर्व्वत पर बिस्तारयुक्त पिण्डों को दे अपने आत्मा का पूजन करके उसी स्थान में अन्तर्धान होगये हे ब्राह्मण ! उसी की यह मर्यादा है कि पिण्डनाम पितर सदैव पूजा को प्राप्त करते हैं जैसा

कि वराहजी का वचन है, जो पुरुष मन, वाणी, कर्म से देवता, पितर, गुरु, अतिथि, गौ, ब्राह्मण और पृथ्वी माता को पूजन करते हैं वह विष्णु भगवान् ही को पूजते हैं क्योंकि वह षडैश्वर्य्य का स्वामी सब जीवों के शरीर में वर्त्तमान उन देवताआदि के भी शरीर में नियत है वह हर्ष शोक रहित सब जीवों में समान वृद्ध महात्मा सब का आत्मा नारायण है ऐसा शिष्टलोगों से सुनते हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे सप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

एकसौ इकहत्तर का अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि, नारायणजी के कहे हुए इस वचन को सुनकर बड़े देवभक्त नारदजी अनिच्छा भक्ति में प्रवृत्त हुए, हजार वर्ष तक नरनारायण जी के आश्रम में निवास करके भगवत् आख्यान को सुनकर अविनाशी हरि के दर्शनकर, शीघ्रही हिमालय पर्वत पर गये जहां कि उनका निज आश्रम था और प्रसिद्ध तपयुक्त उन नरनारायणने भी, उसी रमणीक आश्रममें श्रेष्ठ तप को तपा और पाण्डु के वंश में महाविजय पानेवाले तुम भी अब इस कथा को आदि से सुनकर पवित्रात्मा होगये हे राजेन्द्र! उनका यहलोक परलोक दोनों नहीं हैं जो पुरुष मन वाणी और कर्म से विष्णुजी से शत्रुता करते हैं ऐसे पुरुषों के पितरलोग भी हजारों वर्ष तक नरक में पड़ते हैं जो पुरुष देवताओं में श्रेष्ठ देवदेव नारायण हरि से विरोध या अहंकार करे उसको ध्यान से विचार करना योग्य है कि सृष्टि का आत्मा कैसे शत्रुता करने योग्य है, हे पुरुषोत्तम! विष्णु ही सबका आत्मा जानना योग्य है जो हमारे गुरु व्यासजी हैं, जिनसे यह श्रेष्ठ और पूरण इतिहास और माहात्म्य मैंने सुना है हे निष्पाप, जनमेजय! यह मैंने उन्हीं की कृपा से तुम से वर्णन किया है, हे तात! नारदजी ने साक्षात् नारायणजी से पाया इसी से यह बड़ा धर्म है वह धर्म पूर्व में हरिगीताके मध्य तुमसे कहा है, हे राजन्! तुम कृष्ण द्वैपायन व्यासजी को भी नारायण ही जानो इनके सिवाय दूसरा कौन है जो महाभारत को बनाता और उन के सिवाय कौन नानाप्रकार के धर्मों को वर्णन करता तैंने बड़ा संकल्प जैसा किया है उसी के समान तेरा यज्ञ वर्त्तमान हो तुम अश्वमेध का संकल्प करने वाले और मुख्यता से धर्म के सुननेवाले हो सूतजी बोले कि, उस उत्तम राजा ने इस बड़े आख्यान को सुनकर फिर यज्ञ समाप्ति के लिये सब क्रियाओं को

प्रारम्भ किया, मैंने जो यह नारायणजी का इतिहास तुमसे कहा उसीको पूर्व समय में नैमिषारण्यवासी शौनक आदि ऋषियों में बैठेहुए नारदजी ने बृहस्पतिजी से कहा उस समय सब ऋषि, पाण्डव, भीष्म और श्रीकृष्ण ने भी श्रवणकिया वही विश्वंभर धराधारी श्रुति नम्रता बुद्धि शान्तिके घर यम नियममें पूर्ण देवताओं का हितकारी असुरसंहारी तप यश का पात्र मधुकैटभका मारनेवाला धर्मज्ञ सतयुगी पुरुषों को गति और निर्भयता का देनेवाला यज्ञभाग लेनेवाला नारायण हरि महर्षि व्यासजी समेत तेरी गति और रक्षा का आश्रय हो, त्रिगुणात्मक निर्गुण चतुर्मूर्ति वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध नाम से प्रसिद्ध इष्टापूर्त्ति के फल और भाग का हरनेवाला अजित नारायण श्रेष्ठकर्मी ऋषियों की कैवल्यादि गति को सदैव देता रहै, उस लोकसाक्षी अजन्मा सूर्य्यवर्ण लयस्थान पुराणपुरुष को एकाग्रचित्त से ध्यान और नमस्कार करो जिसको कि शेषशायी भगवान् वासुदेवजी नमस्कार करते हैं वही अव्यक्त आदि का उत्पन्नकर्त्ता मोक्ष का सूक्ष्मस्थान अचल आवागमनरहित सर्वात्मारूप है हे उदार! वह वासुदेव सनातन सांख्य और योग के ज्ञाता चित्त के निरोधी ध्यान करनेवाले पुरुषों से दर्शन के योग्य हैं॥ २१॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः॥ १७१॥

एकसौ बहत्तर का अध्याय॥

शौनक ऋषि बोले कि, उस भगवत् परमात्मा का माहात्म्य हमने सुना और धर्म के घर में नारायणजी का जन्म होना भी सुना, और महावराहजी के उत्पन्न किये हुए पिण्डों की प्राचीन उत्पत्ति भी सुनी और प्रवृत्ति निवृत्ति धर्मों की कल्पना जैसे करी उसको भी आपके मुख से हमने श्रवण किया, परन्तु हे ब्रह्मन्! जो आपने कहा कि हव्य भोगनेवाले विष्णुजी का अवतार अश्वशिर अर्थात् हयग्रीव पूर्व्वोत्तरकोण में महासमुद्र के समीप हुआ था जिसे परमेष्ठी ब्रह्माजी ने देखा सो हे परमबुद्धिमन्! उसको लोक के स्वामी नारायण ने प्रथम ही क्यों उत्पन्न किया क्या महापुरुषों का रूप और प्रभाव अपूर्व्व होता है हे मुने! प्रभु ब्रह्माजी ने उस देवदेव अपूर्वरूप पवित्रात्मा बड़े तेजस्वी हयग्रीव परमात्मा को देखकर क्या किया हे बुद्धिमन्, ब्राह्मण! इस हमारे प्राचीन ज्ञान से विचार कियेहुए संदेह को वर्णनकीजिये, हे पवित्र कथा कहनेवाले! आपकी कृपा से हम पवित्र हुए हैं, सूतजी बोले

कि मैं वेद के समान सब पुराणों को तुमसे वर्णन करता हूं जिसको भगवान् व्यासजी ने राजा जनमेजय के सन्मुख वर्णन किया है, हयग्रीव नाम विष्णु की मूर्त्ति को सुनकर सन्देह करनेवाले राजाने यह वचन कहा कि हे बड़े धर्मज्ञ! ब्रह्माजी ने जो उस अश्वशिरधारी देवता के दर्शन किये उस अवतार का कारण मुझसे वर्णन कीजिये, वैशंपायन बोले कि हे राजन्! निश्चय करके इसलोक में जो जीवधारी हैं वह सब ईश्वर के संकल्प रूप पञ्चतत्त्वों से मिश्रित हैं, जगत् का उत्पन्न करनेवाला ईश्वर प्रभु विराट्नारायण जीवों का अन्तरात्मा वरदाता सगुण और निर्गुणभी है, हे राजन्! तत्त्वों की महाप्रलय को कहता हूं कि पूर्वसमय में एक समुद्ररूप जल में पृथ्वी के लय होने और जल के अग्निरूप होने और वायु में अग्नि के लीनहोने और आकाश में वायु के लीन होने और इसीप्रकार मन में आकाश महत्तत्त्वों में मन, अव्यक्त में महत्तत्त्व, पुरुष में अव्यक्त और श्रीवासुदेवजी में पुरुष के लय होने पर, सब संसार अन्धकाररूप होगया अर्थात् निज विज्ञान गुप्त होगया और कुछ नहीं रहा उस अन्धकार से जिसका मूल शुद्ध ब्रह्म है अर्थात् जैसे कि रस्सी में सर्प कल्पित हुआ उसी प्रकार ब्रह्म में अन्धकार कल्पित है उस अन्धकार से जगत् का कारण ब्रह्म उत्पन्न हुआ, वह नामरूपधारी विराट् देह में नियत था वही अनिरुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ उसीको प्रधान कहते हैं, हे राजन्! उसी को त्रिगुणात्मक अव्यक्त जानना योग्य है निर्विशेष चिन्मात्राकार चित्तवृत्ति से संयुक्त निद्रायोग को प्राप्त देवता विष्वक्सेन प्रभु हरि ने निर्विशेष ब्रह्म में शयन किया अर्थात् लयता को पाया उसी चैतन्य ने जगत् की उत्पत्ति को जोकि अपूर्व्व अद्भुत गुणों से प्रकट होनेवाली है ध्यान किया, जगत् की उत्पत्ति को विचारते हुए उस देवता के निज गुण को महत्तत्त्व कहते हैं उस महत्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न हुआ, तब वह चतुर्मुख सब लोकों के पितामह ब्रह्मा कमललोचन भगवान् हिरण्यगर्भ कमलरूप ब्रह्माण्ड में अनिरुद्ध से उत्पन्न हुए, वह तेजस्वी सनातन ब्रह्मा हज़ार पत्तेवाले कमल पर बैठे और अद्भुतरूपवाले प्रभु ने जलरूप लोकों को देखा, तदनन्तर जीवसमूहों को उत्पन्न करते हुए वह ब्रह्माजी सतोगुण में नियत हुए सूर्य्य की किरण के समान प्रकाशमान कमलपत्ररूप ब्रह्माण्ड के मुख्य स्थान में नारायणजी से उत्पन्न श्रेष्ठ गुण सम्पन्न दो जलकण थे उस आदि अन्त रहित षडैश्वर्य्य के स्वामी ब्रह्मभाव से पूर्ण ने उन

दोनों जलकणों को देखा उनमें एक जलकण तो सुन्दर प्रभावयुक्त मधुर आम के वर्ण की समान था तब नारायण की आज्ञा से वह जलकण तामसी मधु नाम दैत्य होकर उत्पन्न हुआ, दूसरा कण कठोर था वह राजसी कण कैटभ नाम दैत्य हुआ तमोगुण रजोगुण यह दोनों श्रेष्ठ असुर बड़े बली गदा हाथ में लिये कमल की नाल में चलते हुए सन्मुख में दौड़े और कमल पर बैठे बड़े प्रकाशमान आदि में सुन्दर रूपधारी चारों वेद के प्रकट करनेवाले ब्रह्मा को बैठा देखकर उन स्वरूपवान् असुरों ने वेदों को देखके ब्रह्माजी के देखते हुए अकस्मात् वेदों को पकड़ लिया और दोनों ने वेदों को लेकर उस जल से पूर्ण समुद्र में प्रवेश किया फिर वेदों के हरेजाने पर ब्रह्माजी को मूर्च्छा हुई इसी कारण वेदों से रहित होकर ईश्वर से यह वचन कहा कि यह वेद ही मेरे उत्तम चक्षु हैं वेद ही मेरा परमबल परमधाम अर्थात् उत्तम तेज हैं वेद ही मेरा परमब्रह्म है यहां वह मेरे सब वेद दानवों ने बल से हरलिये वेदों से रहित होकर मेरे लोक सब अन्धकारयुक्त होगये मैं विना वेदों के लोकों की उत्तम सृष्टि को कैसे करूं वेदों के जाते रहने से बड़ा दुःख मुझको प्राप्त हुआ यह शोच मेरे हृदय को पीड़ा देता है अब शोकसमुद्र में डूबेहुए मुझको कौन यहां से छुटावे और गुप्तहुए वेदों को लावे, मैं किसका प्यारा हूं हे राजेन्द्र! इसप्रकार से कहनेवाले ब्रह्मा की बुद्धि हरि के स्तोत्र वर्णन करने को प्रकटहुई तदनन्तर ब्रह्माजी ने हाथ जोड़कर इस उत्तम स्तोत्र को वर्णन किया, ब्रह्माजी बोले कि हे ब्रह्महृदय! मुझसे प्रथम उत्पन्न होनेवाले लोक के आदि सब भूतों में श्रेष्ठ सांख्ययोग के भण्डार व्यक्त अव्यक्त के उत्पादक बुद्धि से परे मोक्षमार्ग में नियत तुम्हारे अर्थ नमस्कार है हे विश्वभोक्ता! जीवात्माओं के अन्तरात्मा योनि से उत्पन्न होनेवाले लोकप्रकाशक मैं तुम्हीं स्वयंभू से प्रसन्नतापूर्वक उत्पन्न होनेवाला हूं तुमसे ही मेरा प्रथम जन्म ब्राह्मणों से पूजित मानस नाम है और दूसरा जन्म प्राचीन चाक्षुष नाम हुआ और आपही की कृपा से मेरा तीसरा जन्म वाचक नाम हुआ मेरा चौथा जन्म श्रवणज नाम भी तुम्हीं से हुआ और मानसी मेरा पांचवां नाम जन्म भी तुम्हीं से है छठा जन्म अण्डज सातवां पद्मज भी तुमसे ही उत्पन्न हुआ है हे त्रिगुण से रहित, प्रभो! मैं प्रत्येक उत्पत्ति में आपही का पुत्र हूं, हे कमललोचन! मैं शुद्ध सतोगुण से कल्पित आपका प्रथम पुत्र हूं तुम मुझ ब्रह्मा के ईश्वर स्वभाव और कर्मबन्धन हो, वेद

रूप नेत्र रखनेवाला काल का विजय करनेवाला मैं आपकाही पैदा किया हूं वह मेरे नेत्ररूप वेद हरेगये मैं उनके विना अंधा होगया हूं आप चैतन्य हूजिये, मेरे नेत्रों को दो मैं आपका प्यारा हूं और तुम मेरे प्यारे हो इसप्रकार ब्रह्मा से स्तुति किये हुए सर्वव्यापी जगदात्मा स्वयंभू प्रभु जागे और वेद लाने को सन्नद्ध होके वह प्रभु अपने ऐश्वर्य्यप्रयोग से दूसरे शरीर में प्रवेश करगये, तब वह प्रभु सुन्दर नासिकायुक्त देहधारी चन्द्रमा के समान प्रकाशित होकर अश्व का शिर धारण करके प्रस्थान करगये वह रूप वेदों का निवास स्थान था, नक्षत्र तारागणों समेत स्वर्ग मस्तक और लम्बेबाल सूर्य्य की किरणों के समान प्रकाशमान हुए आकाश, पाताल, दोनों कान-पृथ्वी, ललाट-गंगा और सरस्वती और दोनों महासमुद्र भृकुटी-और सूर्य्य, चन्द्रमा दोनों नेत्र-संध्या नाक-प्रणव संस्कार-बिजली जिह्वा हुई और सोमप नाम पितर दांत हुए-और गोलोक ब्रह्मलोक उस महात्मा के दोनों होठ थे, और गुणयुक्त कालरात्रि उस की गर्दन थी-ऐसे नाना अद्भुतस्वरूप रखनेवाले हयग्रीव विश्वेश प्रभु शरीर को धारण करके अन्तर्धान होकर जल में प्रवेश करगये उस जल में प्रविष्ट योग में नियत प्रभु ने शिक्षायुक्त स्वर में नियत होकर उद्गीथ नाम स्वर को उत्पन्न किया वह शिर अत्यन्त स्वच्छ और दूसरा शब्द उत्पन्न करने वाला सब जीवों का गुण और हितकारी हुआ और ऐसा विदितहुआ कि मानो पृथ्वी के भीतर होता है तिस पीछे वह दोनों असुर वेदों को वचनबद्ध कर रसातल में छोड़कर जिधर शब्द होरहा था उधर को दौड़े हे राजन्! उसी अंतर में हयग्रीवधारी देवता ने रसातल में जाकर आप सब वेदों को लेलिया और वहां से लाकर ब्रह्माजी को देदिये और अपने मुख्यरूप को धारण करलिया, अर्थात् उस अपने हयग्रीव रूप को पूर्वोत्तर कोण के महासमुद्र में नियतकरके अपने मुख्यरूप को धारणकिया तदनन्तर हयग्रीव भी वेदों के निवास स्थान हुए, फिर मधुकैटभ नाम दोनों असुरों ने वहां कुछ भी न देखकर बड़ीशीघ्रता से वहां आकर उसस्थान को भी जहां वेद रक्खे थे खाली देखा तब तो महाबली वह दोनों बड़े शीघ्रगामी होकर शीघ्र ही फिर समुद्र से ऊपर उठे तो वहां उसी आदिपुरुष प्रभु को देखा जोकि श्वेतवर्ण शुद्ध चन्द्रमा के समान प्रकाशमान अनिरुद्ध देह में नियत महापराक्रमी निद्रा के योग से मिलाहुआ था और उस शयनपर विराजमान था जोकि जलों के ऊपर कल्पित ज्वालाओं

की मालाओं से गुप्त शेषनाग के फणोंपर वर्त्तमान अपने शरीर के समान रचाको देखकर बड़ाहास्य किया, रजोगुण तमोगुण से भरेहुए उनदोनों ने कहा हुआ था, उन दोनों दानवों ने उस शुद्ध सतोगुण युक्त सुन्दर प्रभाववाले पुरुष कि यह वह श्वेतवर्ण निद्रा में भराहुआ पुरुष सोता है, इसी ने निश्चय करके वेदों को रसातल से हरा है यह कौन है किसका है और शेष की शय्यापर क्यों सोता है, ऐसा वचन कहकर उन दोनों ने हरि को जगाया तब पुरुषोत्तमजी उनको युद्धाभिलाषी जानके जागे, और दोनों असुरेन्द्रों को देखकर युद्ध में मनको प्रवृत्त किया फिर तो उनदोनों से और भगवान् से बड़ायुद्ध हुआ, ब्रह्माजी की रक्षाकरते हुए मधुसूदनजी ने उन रजोगुण तमोगुण से भरेहुए दोनों असुरों को मारडाला और वेदों के लाने और उनके मारने से ब्रह्माजी के शोक को निवृत्त किया, तदनन्तर ईश्वर की आज्ञा से और वेदों से प्रतिष्ठित ब्रह्माजी ने सब जड़ चैतन्यरूप लोकों को उत्पन्न किया, फिर भगवान् प्रभुजी को संसार के उत्पन्न करने की बुद्धि को देकर वहीं अन्तर्द्धान होगये जहां से उदयहुये थे, इसप्रकार से महाभाग हरिने हयग्रीव होकर अवतार धारण किया था यह ईश्वर का रूप बड़ा वरदाता और प्राचीन वर्णन किया है, हरिने हयग्रीव शरीर धारण कर दोनों दैत्यों का वध करके प्रवृत्ति धर्म के लिये फिर उसी रूप को धारण किया, जो ब्राह्मण इसको सदैव सुनेगा अथवा धारण करेगा वह अपनी पढ़ी हुई विद्या को कभी न भूलेगा, पांचाल ने बड़ा तप करके हयग्रीव रूपधारी देवता का आराधन करके देवता की कृपा से कर्म को प्राप्त किया, हे राजन्! यह हयग्रीव अवतार का आख्यान जो कि प्राचीन और वेद की समान है मैंने तुझसे वर्णन किया, जब देवता संसार के प्रबन्ध के लिये जिस २ शरीर को धारण करना चाहता है तब अपनी आत्मा के द्वारा विपरीतरूप करनेवाला होकर उस २ शरीर को धारणकरता है, यह श्रीमान् वेदों का वा तपों का और सांख्य योगों का भण्डार है यही परब्रह्म हव्य और प्रभु है, वेद नारायण को सब से श्रेष्ठ कहनेवाले हैं यज्ञ नारायणरूप हैं तप नारायण को अन्त रखनेवाला है नारायण परमगति है, नारायण सत्यरूप है और सत्यधर्म दोनों नारायण को अन्त रखनेवाले हैं और जिसधर्म से स्वर्ग से नीचे को आवागमन होता है उससे कठिनतापूर्व्वक मिलता है, प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म भी नारायणरूप है, पृथ्वी में जो सबसे उत्तमगन्धि है उसको भी नारायणरूप कहते हैं, हे राजन्!

जलों के गुणरस भी नारायणरूप हैं, अग्नि आदि का उत्तमरूप भी नारायणस्वरूप है वायु का स्पर्श गुण आकाश का शब्द गुण अव्यक्त के गुण रखनेवाला मन और उसीसे प्रकट हुआ तेजस्वी वस्तुओं का निवासस्थान काल भी ईश्वर का रूप है, कीर्त्ति शोभा लक्ष्मी देवता इत्यादि सब नारायणरूप हैं सांख्य नारायण को सर्वोत्तम वर्णन करता है और योग भी नारायणरूप है जिन्हों का कारण पुरुषप्रधान, स्वभाव, कर्म और दैव है और अधिष्ठान कर्त्ता, जुदे प्रकार का करण और नानाप्रकार की चेष्टा जिसमें दैव है और निश्चय करके पांच कारणों से प्रसिद्ध हरिही सब स्थानपर निष्ठा है अनेक प्रकार के हेतुओं से तत्त्व जानने के अभिलाषी पुरुषों का एकतत्त्व वही प्रभु नारायण हरि है, वही ब्रह्मादिदेवता, महात्मा, ऋषि, सबलोक, सांख्यमतवाले, योगी और आत्मज्ञानी संन्यासियों के भी मन के भेद को जानते हैं परन्तु वह सब उसकी इच्छा को नहीं जानते लोकों में जो कोई पुरुष दैवकर्म पितृकर्म को करते हैं और दीनों को देते हैं अथवा बड़ातप करते हैं उनसबके रक्षा स्थान ईश्वरसम्बन्धी बुद्धि में नियत विष्णुजी ही हैं वह सब जीवों का उत्पत्तिस्थान अथवा सब जीवों में निवास करनेवाला वासुदेव कहाजाता है, यह पुराणपुरुष महाविभूतियुक्त प्रसिद्ध गुणातीत महाऋषि नारायण शीघ्रही गुणों से ऐसे मिलजाता है जैसे कि समय ऋतुओं से मिलजाता है, यहां इस महात्मा की गति को अथवा अगति को भी कोई नहीं जानता है न देखता है जो ज्ञानस्वरूप महर्षि हैं वही उस गुणातीत पुरुष को सदैव देखते हैं, ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे द्विसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

एकसौ तिहत्तर का अध्याय ॥

राजा जनमेजय बोले कि, बड़ा आश्चर्य है कि भगवान् हरि उन अनिच्छावान् सबभक्तों का पोषण करता है और बुद्धि से अर्पण कीहुई पूजा को आप ग्रहण करता है, लोक में जो पुरुष वासनारहित पुण्य पाप से पृथक् हैं तुमने उन्हों को ज्ञानगौरव सम्प्रदाय से प्राप्तहोनेवाला वर्णन किया, वह अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण के सिवाय चौथीप्रकृति वासुदेव नाम से पुरुषोत्तम को पाते हैं परन्तु इच्छारहित भक्त परमपद को पाते हैं, निश्चय करके यह एकान्त धर्म महाश्रेष्ठ नारायण का प्यारा है इसमें अनिरुद्ध आदि तीनों गतियों को न पाकर अविनाशी वासुदेव हरि को प्राप्त करते हैं, अच्छीरीति से धर्म में नियत

जो ब्राह्मण बुद्धि में नियत होकर उपनिषदों समेत वेदों को पढ़ते हैं और संन्यास धर्म को भी रखते हैं उनसे भी उत्तम गति पानेवाले इच्छारहित भक्तों को मैं जानता हूं यह धर्म किसी देवता और ऋषि ने वर्णन किया है जनमेजय बोले कि, हे प्रभो ! अनिच्छावान् पुरुषों का आदि नियम क्या है और कबसे है इस सन्देह को निवृत्त कीजिये मुझे इसके सुनने की बड़ी इच्छा है, वैशंपायन बोले कि युद्धभूमि में कौरव और पाण्डवों की सेना तैयार होने और अर्जुन के उदास होने पर आप भगवान् ने गीता का वर्णन किया, मैंने प्रथम ही अगति अर्थात् ज्ञान धर्मगति उपासनाधर्म तुझसे वर्णन किया यह मार्ग गहन है और अशुद्ध अन्तःकरण पुरुषों की बुद्धि में कठिनता से आता है, सामवेद "तत्त्वमसि" महावाक्य के समान है पहले सतयुग में जारी किया हुआ वह धर्म आप शिवजी और नारदजी से धारण किया जाता है हे महाराज ! ऋषियों के मध्य में श्रीकृष्णजी और भीष्मजी की विद्यमानता में महाभाग नारदजी से अर्जुन ने इसी विषय में पूछा था, हे राजेन्द्र ! नारदजी ने इसको जिस रीति से वर्णन किया और मेरे गुरु ने भी जैसे यह धर्म मुझसे कहा उसको मैं तुमसे कहता हूं, हे पृथ्वीपाल ! जब नारायणजी के मुख से प्रकट होनेवाले ब्रह्मा का मानसी जन्म हुआ तब आप नारायणजी ने, उसी धर्म से देवकर्म और पितृकर्म को किया फिर फेनप नाम ऋषियों ने इस धर्म को पाया, फेनपाओं से वैखानसों ने वैखानसों से चन्द्रमा ने पाया फिर वह गुप्त होगया, हे अर्जुन ! जब ब्रह्माजी का दूसरा जन्म चाक्षुष नाम हुआ तब ब्रह्माजी ने चन्द्रमा से धर्म को सुना और ब्रह्माजी ने उस धर्म को रुद्रजी को दिया, तिस पीछे सतयुग के बीच योगारूढ़ शिवजी ने यह संपूर्ण धर्म बालखिल्य ऋषियों को पढ़ाया फिर उस देवता की माया से वह धर्म गुप्त होगया, हे राजन् ! जब ब्रह्माजी का तीसरा जन्म कल्याणवाचक हुआ तब यह धर्म आप नारायणजी ने प्रकट किया, सुपर्ण नाम ऋषि ने श्रेष्ठ तपस्या और नियमपूर्वक शान्तवृत्ति होकर इस धर्म को पुरुषोत्तमजी से पाया, इस कारण सुपर्ण ऋषि ने इस उत्तम धर्म को प्रतिदिन तीनबार पाठ किया उसके प्रभाव से यह व्रत त्रिसुपर्ण नाम से विख्यात है यह कठिनता से करने के योग्य व्रत त्रिसुपर्ण नाम ऋग्वेद के पाठ में पढ़ागया सनातनधर्म है तदनन्तर वायु ने इस धर्म को किया फिर वायु से विघसासी सप्तऋषियों ने पाया सप्तऋषियों से

महोदधि ऋषि ने फिर नारायणजी से नियत किया हुआ वह धर्म फिर गुप्त होगया, हे पुरुषोत्तम ! जब महात्मा ब्रह्माजीकी उत्पत्ति नारायणजी के कानों से हुई उसके विषय में जो मैं कहता हूं उसको सुनो, संसार की उत्पत्ति में आसक्त चित्त नारायण हरि ने आप उस संसार की उत्पत्ति करनेवाले समर्थ पुरुष को ध्यान किया उस ध्यान करते हुए नारायणजी के कानों से सृष्टि के उत्पन्नकर्त्ता ब्रह्मा नाम पुरुष बाहर निकले उन ब्रह्माजी से जगत्पति नारायणजी ने कहा कि हे सुन्दर व्रतवाले, पुत्र ! तुम मुख और चरणों से सब सृष्टि को उत्पन्न करो और मैं तेरे कल्याण बल और तेज को भी करूंगा मुझ से सनातन नाम धर्म को लेकर उससे मिलेहुए सतयुग को बुद्धि के अनुसार नियत करो, तदनन्तर उन ब्रह्माजी ने नारायण देवता को नमस्कार करके रहस्य संग्रह समेत उत्तम धर्म को प्राप्त किया, फिर नारायणजी ने मुख से उत्पन्न होनेवाले अमित तेजधारी ब्रह्मा को उपदेश करके कहा कि तुम इच्छा से रहित होकर युगधर्मों के कर्ता हो यह कहकर नारायणजी तो उस तम के पार चले गये जहां दृष्टि से गुप्त नारायण परब्रह्म नियत हैं, तदनन्तर उस लोकों के पितामह वरदाता ब्रह्माजी ने सब जड़ चैतन्य लोकों को उत्पन्न किया, सबसे पूर्व सतयुग वर्त्तमान हुआ तब सात्त्विकधर्म लोकों को व्याप्त करके नियत हुआ उस समय सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीने उस पूर्व धर्म से देवेश्वर प्रभु नारायण हरि को पूजन किया, और संसार की वृद्धि की इच्छा से धर्म प्रतिष्ठा के निमित्त स्वारोचिष मनु को शिक्षा करी, तदनन्तर हे राजन् ! सब लोकों के स्वामी समर्थ सावधान ब्रह्माजी ने आपही स्वारोचिष के पुत्र शंखप्रद नाम को पढ़ाया फिर हे भरतवंशिन् ! शंखप्रद ने भी अपने औरस पुत्र दिशोपाल और सुवर्णाभ को पढ़ाया, फिर त्रेतायुग के वर्त्तमान होने पर वह धर्म फिर गुप्त हुआ, पूर्वसमय में ब्रह्माजी के नासत्य नाम जन्म में प्रभु नारायण हरि देवता ने इस धर्म को उपदेश किया, अर्थात् कमललोचन विष्णुजी ने उस धर्म को ब्रह्माजी के सन्मुख वर्णन किया फिर भगवान् सनत्कुमारजी ने उसको पढ़ा, फिर सतयुग के प्रारम्भ में वीरण नाम प्रजापति ने सनत्कुमार जी से इस धर्म को पढ़ा और वीरण ने भी पढ़कर रैभ्यनाम मनु को दिया उस रैभ्य ने अपने पुत्र कक्षी को जो कि शुद्ध सुन्दर व्रतयुक्त दिशाओं का रक्षक धर्मात्मा था पढ़ाया फिर वही धर्म गुप्त होगया, जिसका उत्पत्तिस्थान

हरि हैं उन ब्रह्माजी के अण्डज जन्म में यह धर्म फिर नारायणजी के मुख से प्रकट हुआ, और ब्रह्माजी ने उस धर्म को प्राप्त किया और बुद्धि के अनुसार काम में लाये और बर्हिषद नाम मुनि को पढ़ाया बर्हिषद ने सामवेद के पूर्ण ज्ञाता ज्येष्ठनाम प्रसिद्ध ब्राह्मणों को पढ़ाया और ज्येष्ठ ब्राह्मण ने अविकम्पन राजा को दिया क्योंकि हरि सामवेद का व्रत धारण करनेवाले हैं फिर यह धर्म गुप्त होगया हे राजन्! ब्रह्माजी का जो यह पद्मजनाम जन्म है उसमें यह धर्म आप नारायणजी ने नियत किया है, अर्थात् युग के प्रारम्भ में उस लोकधारी शुद्ध ब्रह्मा जी के निमित्त कहा गया फिर ब्रह्मा ने दक्ष को दिया दक्ष ने अपने बड़े धेवते सविता के बड़े भाई आदित्य को दिया आदित्य ने विवस्वान् को दिया, फिर त्रेतायुग के प्रारम्भ में विवस्वान् ने मनु को दिया मनु ने संसार के ऐश्वर्य्यादि के लिये इक्ष्वाकु को दिया इक्ष्वाकु से कहा हुआ धर्म लोकों को व्याप्त करके नियत हुआ अन्त को फिर भी वह धर्म नारायण में ही आवागवन करेगा, हे राजन्! संन्यासियों का भी जो धर्म है वह पूर्व्व में भगवद्गीता के मध्यवर्ती मिला हुआ तुम से कहा इस धर्म को नारदजी ने रहस्य संग्रहयुक्त नारायणजी से प्राप्त किया था, इसप्रकार यह सनातन आदि धर्म कठिनता से समझने और करने के योग्य सदैव भगवद्भक्त पुरुषों से धारण किया जाता है, वह ईश्वर हरि इस अहिंसाधर्मयुक्त श्रेष्ठ आचरित धर्म ज्ञान से प्रसन्न होता है, यह ब्रह्म एक व्यूह विभागवाला कहीं २ द्वैध नाम से भी युक्त है और त्रिव्यूहयुक्त भी प्रसिद्ध है और चार व्यूहवाला दृष्ट आता है, ममता और कला से पृथक् क्षेत्रज्ञ हरि ही है और पञ्चतत्त्वों के गुणों से रहित सब जीवों में नियत जीव भी हरि हैं, हे राजन्! पांचों इन्द्रियों को चेष्टा करानेवाला मन अहंकार समेत हरि ही हैं और हरि ही लोकप्रवर्त्तक अन्तर्य्यामी और बुद्धिमान् हैं और संसार की उत्पत्ति का ज्ञाता कर्त्ता अकर्त्ता कार्य्य कारणरूप हैं हे अर्जुन! यह पुरीरूप शरीरों में निवास करनेवाला अविनाशी हरि जैसा चाहता है वैसी ही क्रीड़ा करता है, हे राजेन्द्र! मैंने गुरु की कृपा से अनिच्छावान् भक्तों का धर्म जोकि अज्ञानियों से जानने के अयोग्य है तुम से वर्णन किया, हे राजेन्द्र! इच्छारहित भक्तपुरुष बहुत कम होते हैं कदाचित् यह संसार अनिच्छावान् पुरुषों से भरा हुआ होजाय तो हिंसारहित आत्मज्ञानी सब जीवों की भलाई में प्रवृत्त भक्तों से सतयुग वर्त्तमान होजाय वह युग फलरहित कर्मों से संयुक्त है, हे राजन्!

इस प्रकार से उस मेरे धर्मज्ञ गुरु ब्राह्मणोत्तम व्यास भगवान् ने इस धर्म को धर्मराज के सन्मुख वर्णन किया और ऋषियों के सन्मुख श्रीकृष्ण और भीष्म जी के सुनते हुए भी वर्णन किया उन व्यासजी के सन्मुख भी पूर्व्वसमय में बड़े तपस्वी नारदजी ने उस देवता का वर्णन किया जोकि परमब्रह्म चन्द्रमा के समान उज्ज्वल देदीप्तवर्ण अविनाशी है उसीमें वह निराकांक्षी नारायण परायण भक्त लय होते हैं, राजा जनमेजय ने प्रश्न किया कि नानाप्रकार के व्रत में नियत दूसरे ब्राह्मण इसप्रकार ज्ञानियों से सेवित बहुत प्रकारवाले धर्म को क्यों नहीं करते हैं, वैशम्पायन बोले हे भरतवंशिन्, राजन्, जनमेजय ! शरीररूप बन्धन रखनेवाले जीवों में तीन प्रकृति सात्त्विकी, राजसी, तामसी नाम उत्पन्न की गई हैं और शरीररूप बन्धन रखनेवाले जीवों में सात्त्विकी पुरुष श्रेष्ठ है वह मोक्ष के निमित्त निश्चय किया जाता है, यहां वह ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ उस पुरीरूप देहों में निवास करनेवाले को भी अच्छे प्रकार से जानता है और मोक्ष नारायण को प्राप्त करनेवाली है इसीसे वह ज्ञानी सात्त्विकी कहाजाता है, वह इच्छारहित भक्ति रखनेवाला सदैव ईश्वर का ध्यान करनेवाला पुरुष उस पुरुषोत्तम को ध्यान करता हुआ अभीष्ट को प्राप्त करता है, जो कोई मोक्ष धर्मवाले बुद्धिमान् संन्यासी हैं उन निराकांक्षी पुरुषों के योगक्षेम को हरिही प्राप्त कराते हैं, जिस जन्म लेनेवाले पुरुष को मधुसूदनजी अपनी कृपादृष्टि से देखते हैं उसको भी सात्त्विकी जानना योग्य है वह भी मोक्ष के योग्य है, नारायणरूप मोक्ष में इच्छारहित भक्तों से सेवन किया हुआ धर्म सांख्ययोग के समान है, इस कारण से वह भक्त परमगति को पाते हैं ईश्वर की कृपा से ही ज्ञान उत्पन्न होता है अपनी इच्छा से नहीं होता है इसको वर्णन करते हैं कि नारायण से देखा हुआ पुरुष ज्ञानी होता है—अब भक्ति न होने से दोषों को कहते हैं हे राजन् ! इसप्रकार अपनी इच्छा से ज्ञानी होनेवाला पुरुष जन्म नहीं धारण करता है, राजसी और तामसी स्वभाव दोषों से संयुक्त हैं, रजोगुण तमोगुण से संयुक्त प्रवृत्ति लक्षणों से युक्त जन्म लेनेवाले पुरुष को आप नारायण नहीं देखते हैं अर्थात् प्रवृत्तिमार्ग में ही लगाते हैं, और लोकपितामह ब्रह्माजी इस रजोगुण, तमोगुण से मिले हुए जन्म लेने वाले पुरुष को देखते हैं अर्थात् प्रवृत्तिमार्गी करते हैं और देवता ऋषि तो अवश्य सतोगुण में नियत हैं परन्तु सूक्ष्म सतोगुण से पृथक् हैं इसी हेतु से

वैकारिक कहेजाते हैं, राजा जनमेजय ने प्रश्न किया कि अहंकारी जीव किस रीति से पुरुषोत्तम को प्राप्त करसक्ता है इसको वर्णन कीजिये और प्रवृत्ति को भी क्रमपूर्व्वक वर्णन कीजिये, वैशंपायन बोले कि संन्यास धर्म में नियत पचीसवां पुरुष उस पुरुष को प्राप्त करता है जोकि अत्यन्त सूक्ष्मतत्त्वों से युक्त अधिष्ठानरूप अकार, उकार, मकार इन तीन अक्षरों से संयुक्त अर्थात् उपाधियों को त्यागकर पुरुष उस आदि पुरुष को प्राप्त करता है वह प्रवेश करनेवाला पुरुष अन्य नगर की समान नहीं है किन्तु उपाधि से रहित होना ही इसकी प्राप्ति है इस प्रकार से आत्मा अनात्मा का विवेकरूप सांख्य और चित्तवृत्ति निरोधरूप योग जीव ब्रह्म की एकता को सिद्ध करनेवाला "तत्त्वमसि" वाक्य से उत्पन्न होता है और ज्ञानरूप वेदारण्यक और भक्तिमार्गरूप पंचरात्रि यह सब एक दूसरे के अंग कहे जाते हैं अर्थात् यह सब एकही पुरुष के धर्म हैं पृथक् २ पुरुषों के नहीं हैं अनिच्छावान् पुरुषों का यह धर्म नारायण में निष्ठा रखनेवाला है हे राजन्! जैसे समुद्र से निकलनेवाले जलसमूह फिर उसीमें प्रवेश करते हैं, उसीप्रकार यह ज्ञानरूप बड़े जलसमूह रूप फिर नारायण में प्रवेश करते हैं, हे कौरवनन्दन! यह मैंने सात्त्विक धर्म तुम से वर्णन किया, उसको न्याय के अनुसार करो जिससे कि समर्थ हो इसीप्रकार उन महाभाग नारदजी ने मेरे गुरु से, श्वेतगर्हिन आदि की और संन्यासियों की एकान्त नाम अविनाशी गति को वर्णन किया और व्यासजी ने बड़ी प्रीतिपूर्व्वक बुद्धिमान् युधिष्ठिर के सन्मुख वर्णन किया, गुरु से उपदेश किया हुआ यह वही धर्म मैंने तुम से कहा हे राजाओं में श्रेष्ठ! इसप्रकार से यह धर्म असाधारण है, जैसे कि इसमें तुम मोहित होते हो उसी प्रकार अन्य पुरुष भी अधिक मोहित होते हैं, हे राजन्! श्रीकृष्ण जी ही संसार के पालनकर्त्ता मोहित करनेवाले नाश करनेवाले और उत्पत्ति के कारण हैं ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे त्रिसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

एकसौ चौहत्तर का अध्याय ॥

राजा जनमेजय ने प्रश्न किया हे ब्रह्मर्षे! यह सांख्ययोग पंचरात्रि वेद अरण्यकनाम ज्ञान लोकों में जारी है, हे मुने! यह क्या एकही पुरुष की निष्ठा है अथवा पृथक् २ पुरुषों की निष्ठा है आप इन ज्ञानियों की प्रवृत्ति को क्रम से वर्णन

कीजिये, वैशम्पायन बोले कि, पराशरऋषि और सत्यवती माता ने द्वीप के मध्य में अपने योग के द्वारा जिस बहुज्ञ उत्तम बड़ेउदार महर्षिपुत्र को उत्पन्नकिया उस अज्ञान के नाशकरनेवाले व्यासजी को नमस्कार है, जिन व्यास महर्षि को ऋषियों के ऐश्वर्ययुक्त वेदों का बड़ा भण्डार नारायणजी का छठवां अवतार और नारायण ही के अंश से उत्पन्न एकपुत्र कहते हैं, महाविभूति और ऐश्वर्य्ययुक्त तेजस्वी नारायणजी ने पूर्व्वसमय में उस वेदों के बड़े भंडार महात्मा अजन्मा पुराणपुरुष व्यासजी को अपना पुत्र होने के निमित्त उत्पन्नकिया, जनमेजय ने कहा हे उत्तम, ब्राह्मण ! पूर्व में आपने ही व्यासजी का जन्म वह वर्णन किया था कि वशिष्ठजी के पुत्र शक्ति और शक्ति के पुत्र पराशरजी और पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन हैं उनको आप नारायणजी का पुत्र कहते हो इसकारण से बड़े तेजस्वी व्यासजी का होनेवाला जन्म नारायणजी से कैसे हुआ इन सबको आप वर्णन कीजिये, वैशम्पायन बोले कि, हे राजन् ! वेदार्थ कहने के उत्सुक धर्मिष्ठ तपोमूर्त्ति ज्ञाननिष्ठ हिमालय के नीचे विराजमान और महाभारत को बनाकर तप से थकित बुद्धिमान् गुरु की सेवा में प्रीतिमान् हम सबने उन व्यासजी की सेवा करी, सुमन्तु, जैमिनि, बड़ेदृढ़व्रतवाले पैल, चौथा शिष्य मैं और व्यासजी के पुत्र शुकदेवमुनि इन पांचों उत्तम शिष्यों समेत शिवजी शोभायमान होते हैं, अंगों समेत वेद और सब महाभारत के वारंवार अर्थ वर्णन करते हुए व्यासजी ऐसे शोभायमान हुए जैसे कि भूतगणों समेत शिवजी शोभित होते हैं और हम सब शिष्यों ने भी एकाग्रमन होकर उन जितेन्द्रिय व्यासजी को मन से पूजन किया और किसी कथा में हम सब ने उनसे पूछा कि वेदार्थ और महाभारत के अर्थों को और नारायणजी से होनेवाले अपने जन्म को वर्णन कीजिये, उस तत्त्वज्ञानी ने प्रथम तो वेद के अर्थों को और महाभारत के अर्थों को कहकर नारायणजी से होनेवाले इस अपने जन्म को वर्णन करना प्रारम्भ किया, हे ब्राह्मणोत्तम ! इस ऋषिसम्बन्धी पूर्व्वसमय में प्रकट होनेवाले उत्तम आख्यान को सुनो मैंने इसको तप के द्वारा जाना है, कमल से उत्पन्न संसार की सात्त्विक उत्पत्ति होनेपर शुभाशुभरहित बड़े तेजस्वी और योगी नारायणजी ने अपनी नाभि से प्रथम तो ब्रह्माजी को उत्पन्न किया और जब ब्रह्मा प्रकट हुए तब उनसे यह वचन कहा कि तुम समर्थ संसार के स्वामी मेरी नाभि से उत्पन्न हुए हो सो हे ब्रह्माजी ! तुम नानाप्रकार के स्थावर जंगम

जीवों को उत्पन्न करो, इसप्रकार से कहेहुए चिन्ता से व्याकुल मन से विमुख उन ब्रह्माजी ने वरदाता ईश्वर हरिको प्रणाम करके कहा कि हे देवेश्वर ! तुम को नमस्कार करके कहता हूं कि सृष्टि के उत्पन्न करने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है मैं अज्ञानी हूं यह ब्रह्माजी के वचन सुनकर उस महाज्ञानी देवेश्वर भगवान् ने अन्तर्द्धान होकर बुद्धिदेवी को स्मरण किया, स्मरण करते ही वह स्वरूपधारी बुद्धिदेवी नारायणजी के पास आकर प्राप्तहुई तब उस निस्संग ईश्वर ने अपने योग से उस बुद्धिदेवी को संयुक्त करके यह वचन कहा, कि संसार की उत्पत्ति के लिये तुम ब्रह्माजी में प्रवेश करो तदनन्तर ईश्वर की आज्ञा से वह बुद्धि बड़ी शीघ्रता से ब्रह्माजी के शरीर में प्रवेश करगई, उसके पीछे उस हरि ने इस बुद्धि से संयुक्त ब्रह्माजी को फिर दर्शन दिया और यह वचन कहा कि नाना प्रकार के जीवों को उत्पन्न करो, तब ब्रह्माजी ईश्वर की आज्ञा को स्वीकार करके विचारपूर्वक कर्म में प्रवृत्त हुए और भगवान् वक्ष्यमाण बातों को कहकर उसी स्थान में अन्तर्द्धान होगये, कि ब्रह्माजी तुम उस निवासस्थान को एक मुहूर्त्त में ही पावोगे और उस स्थान को पाते ही अद्वैत भगवद्भक्त होगे इस अनन्य भक्तिके होतेही हे ब्रह्माजी ! तुम्हारी दूसरी बुद्धि फिर प्रकट होगी उसी बुद्धि के द्वारा सब सृष्टि उत्पन्न होगी दैत्य, दानव, गन्धर्व और राक्षसों के समूह से यह तपस्विनी पृथ्वी महाव्याकुल हो उन सबके भार से दब जायगी तब पृथ्वीपर महाबलवान् तपसंयुक्त बहुत से दैत्य, दानव और राक्षस होंगे और उत्तम वरों को पावेंगे, वरों के पाने से अभिमानी इन सब राक्षस आदि के हाथों से देवता आदि ऋषि, मुनि, तपोधन लोग अवश्य पीड़ा को पावेंगे तब मैं उस पृथ्वी के भार के उतारने को अवतार धारण कर के न्याय के अनुसार धर्म जारी करूंगा, तदनन्तर यह तपस्विनी पृथ्वी पापियों को दण्ड और साधुओं के पोषण करने से प्रजा को धारण करेगी, क्योंकि मुझ पातालवासी शेषनागरूप से यह सूक्ष्म स्थूलरूप चौदह भुवन नाम पृथ्वी धारण की जाती है और मुझसे धारण किये हुए इस जड़, चैतन्य विश्व को यह धारण करती है, इसीकारण अवतार लेनेवाला मैं पृथ्वी की रक्षा करूंगा, फिर उस भगवान् मधुसूदनजी ने ऐसा विचारकर अवतार लेने के लिये वराह, नृसिंह, वामन आदि अनेक रूपों को उत्पन्न किया, यह समझकर कि इनरूपों के द्वारा मैं दुष्ट राक्षसों को मारूंगा, तदनन्तर संबोधनपूर्व्वक

वार्त्तालाप करतेहुए संसारके स्वामी ने, सरस्वतीका उच्चारण किया उस स्थान पर वचन से प्रकट होनेवाला पुत्र सारस्वत प्रभु उपान्तरात्मानाम उत्पन्न हुआ, वह तीनोंकालका जाननेवाला सत्यवादी दृढ़व्रतधारी था, उसको देखकर देवताओं के आदिभूत अविनाशी ईश्वर ने उस माथा नवायेहुए पुरुष से यह वचन कहा कि हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! तुमको वेदाख्यान में श्रुतियों का करना योग्य है हे मुने ! इसी कारण जैसा मैंने कहा है वैसाही करो, तब स्वायम्भुव मन्वन्तर में उस ने वेदों का विभाग किया तिस पीछे भगवान् हरि उसके उस कर्म से प्रसन्न हुए, और कहा कि हे पुत्र ! अच्छे तपेहुए तप यम और नियमों से तुम हर एक मन्वन्तर में इसप्रकार वेदों के जारी करनेवाले होगे, और सदैव अचल और अजय होगे, फिर कलियुग वर्त्तमान होनेपर कौरव नाम भरतवंशी महात्मा राजा पृथ्वीपर वर्त्तमान होंगे और तुझसे उत्पन्न उन भरतवंशियों में नाश करनेवाला परस्पर का विरोध उत्पन्न होगा हे ब्राह्मणोत्तम ! तुम वहां भी तप से संयुक्त होकर वेदों को बहुत प्रकार का करोगे, कलियुग वर्त्तमान होनेपर कृष्णवर्ण होगा वह नानाप्रकार के धर्मों का उत्पन्न करनेवाला ज्ञान का उत्पादक और तप से संयुक्त होगा और वैराग्य से जीवन्मुक्त होगा, और तेरा पुत्र वैराग्यवान् परमात्मा महादेवजी की कृपा से उत्पन्न होगा यह मेरा वचन सत्य है, वेदपाठी ब्राह्मण जिन वशिष्ठजी को ब्रह्माजी की उत्तम बुद्धि से संयुक्त और उत्तम तप का भंडार मानसी विख्यात जिसकी किरणें सूर्य्य से भी अधिक देदीप्य हैं, उसके वंश में बड़े प्रभाववान् वेदों के घर श्रेष्ठ महातपस्वी तपोमूर्त्ति महर्षि पराशरजी उत्पन्न होंगे वही तुम्हारे पिता होंगे तुम उस ऋषि से कन्या के बीच कानीन गर्भ नाम पुत्र उत्पन्न होगे और त्रिकालज्ञ होगे पूर्व्व में जो कल्प व्यतीत हुए उन सबको तुम तपयुक्त होकर मेरे उपदेश से देखोगे फिर आगे होनेवाले अनेक कल्पों को भी देखोगे हे मुने ! लोक में मेरे ध्यान से मुझ आदि अन्तरहित चक्रधारी को भी देखोगे इस वचनको सत्यही जानना, हे बुद्धिमन् ! तेरी बड़ी कीर्ति होगी और सूर्य्य का बड़ा पुत्र शनैश्चर मनु होगा, हे पुत्र ! उस मन्वन्तर में मेरी कृपा से तुम निस्सन्देह मनु आदि समूह के पूर्व ही होगे, संसार में जो कुछ वर्त्तमान है वह मेरा कर्म है एक अनात्मा दूसरे अनात्माका ध्यान करता है, मैं अपनी इच्छा के अनुसार कर्म्म करता हूं, वह परमेश्वर सारस्वत ऋषि उपान्तरात्मा नाम से प्रकट होगा ऐसा

वचन कहकर बोले कि साधन करो सो मैं उस विष्णु देवताकी कृपा से उपान्तरतमा नाम उत्पन्न हुआ फिर हरिकी आज्ञासे जन्म लेनेवाला मैं वशिष्ठजी का कुलनन्दन नाम प्रसिद्ध हुआ मैंने नारायणजी की कृपा से वह अपना पहला जन्म और यह जन्म जोकि नारायण के अंशसे उत्पन्न हुआ है वर्णन किया, हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, शिष्यलोगो ! मैंने प्राचीन समय में उत्तम समाधियुक्त महाअसह्यतप किया था हे पुत्रो ! मैंने भक्तोंकी प्रीति से तुम्हारा पूछा हुआ यह प्रथम जन्म और होनेवाला वृत्तान्त तुम से कहा, वैशम्पायन बोले हे राजन् ! इस मृदुलचित्त अपने गुरु व्यासजी का प्रथम जन्म जो तैंने पूछा था उसका वर्णन फिर भी सुनो, हे राजऋषे ! सांख्ययोग, पंचरात्र, वेद, पाशुपत इत्यादि नाना प्रकार के मतों को ज्ञान जानो, सांख्यशास्त्र के वर्णन करनेवाले कपिल मुनि हैं वह परमऋषि कहे जाते हैं वही पुरातन हिरण्यगर्भ योग के जाननेवाले हैं दूसरा नहीं है, वह उपान्तरतमा ऋषि वेदों के आचार्य कहे जाते हैं यहां कोई पुरुष उस ऋषि को प्राचीनगर्भ भी कहते हैं, ब्रह्माजी के पुत्र उमापति, भूतपति, श्रीकण्ठ, सावधान, शिवजी ने इस पाशुपत ज्ञान को वर्णन किया है, हे राजन् ! सम्पूर्ण पंचरात्रि के जाननेवाले आप भगवान् नारायण हैं और इन सब ज्ञानियों के मध्यमें, शास्त्र और अनुभव के अनुसार प्रभु नारायण ही निष्ठारूप दिखाई देते हैं अर्थात् नारायण ही सब के परमात्मा हैं और जो पुरुष तमोगुणी हैं वह इसको अच्छी रीति से नहीं जानते हैं, शास्त्र बनानेवाले ज्ञानी पुरुष उसी नारायणऋषि को निष्ठा कहते हैं, और नारायण के सिवाय दूसरी निष्ठा नहीं है यह मेरा वचन है, सब पुरुषों में निस्सन्देह हरि सदैव निवास करते हैं और सन्देह से भरेहुए कुतर्कणा करनेवाले मनुष्यों में माधवजी निवास नहीं करते हैं, हे राजन् ! जो मनुष्य क्रमानुसार पंचरात्रके जाननेवाले और अनिच्छा भक्त हैं वह परमेश्वर हरि में प्रवेश करते हैं, सांख्य और योग यह दोनों शास्त्र सनातन हैं और सब वेदोंसमेत ऋषियों से भी प्राचीन विश्वनारायणरूप कहेजाते हैं अर्थात् वह नारायण अद्वितीय है, सब लोकोंमें जो कुछ वेदोक्त शुभाशुभकर्म वर्त्तमान होताहै वह सब स्वर्ग, अन्तरिक्ष, पृथ्वी और जल में उसी नारायण ऋषि से उत्पन्न होता है अर्थात् सबको कर्म में प्रवृत्त करनेवाला अन्तर्यामी वही नारायण है ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे चतुस्सप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

एकसौ पचहत्तर का अध्याय ॥

जनमेजयने प्रश्न किया कि हे ब्रह्मन् ! बहुतसे पुरुषहैं अथवा एकही पुरुष है यहां कौन पुरुष उत्तम है और कौन उत्पत्तिस्थान कहाजाता है, वैशंपायन बोले कि हे राजन्, जनमेजय ! लोकव्यवहार में बहुत पुरुषहैं और सांख्ययोग के विचार में एकही है उस एक पुरुष को नहीं जानते हैं, जिसप्रकार बहुत से प्रतिबिम्बों का उत्पत्तिस्थान एकही बिम्ब होता है उसीप्रकार हमलोगों का उत्पत्तिस्थान इस पुरीरूप शरीर में निवास करनेवाले गुणों से परे नारायणको वर्णन करता हूं–श्रीगुरु व्यासजी को नमस्कार करके कहता हूं कि उत्तम ऋषि से विचार किया हुआ यह पुरुषसूक्त सब वेदों में सत्य और पूजन के योग्य प्रसिद्ध हुआ, हे भरतवंशिन् ! कपिलादि ऋषियों ने वेदान्तविचार में नियत होकर योग्यायोग्य और विधि निषेध के साथ शास्त्रों को वर्णनकिया, व्यास गुरु ने जो सूक्ष्म के साथ पुरुष की ऐक्यता वर्णन की है मैं उसको अपने महात्मा गुरु की कृपा से वर्णन करता हूं हे राजन् ! इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें ब्रह्माजी और शिवजी के प्रश्नोत्तर हैं, हे राजेन्द्र ! क्षीरसमुद्र में सुवर्ण के समान प्रकाशित वैजयन्त नाम से प्रसिद्ध एक उत्तम पर्वत है वहां वेदान्तगति को विचारते अकेले देवता ब्रह्माजी सदैव विराट् भवन के समीप उसी वैजयन्त पर्वत को सेवन करते थे, दैवयोग से वहां पर बुद्धिमान् चतुर्मुख ब्रह्माजी के ललाट से उत्पन्न पुत्र शिवजी भी आपहुँचे, और प्रसन्नमन होकर शिवजी के सन्मुख हुए और दोनों चरणों को प्रणाम किया तब अकेले प्रभु ब्रह्मा प्रजापति ने उन नमस्कार करते हुए शिवजी को देखकर हाथों से ऊपर को उठाया और बहुत काल में मिलेहुए अपने पुत्र शिवजी से बोले कि हे महाबाहो ! तुम आनन्द से आये और मेरे प्रारब्ध से यहां आये हो हे पुत्र ! सदैव तुम्हारे वेदपाठ और तपस्यामें निर्विघ्नता है, तुम सदैव उग्र तप करनेवाले हो इसकारण फिर तुमसे पूछता हूं, शिवजी बोले कि हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरे वेदपाठ और जप तप की कुशलता पूर्वक वृद्धि है और सब जगत् की कुशल है, बहुत काल हुआ कि मैंने आप भगवान् को विराट् भवन में देखा था इसी कारण मैं आपके चरणों से सेवित इस पर्वतपर आया हूं हे पितामह ! आपकी मुलाकात हुई मुझको भी आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा थी और हे तात ! वह श्रेष्ठ भवन कौनसा है जो क्षुधा तृषा से रहित

देवता असुर और तेजस्वी ऋषियों से सेवित है और गन्धर्व अप्सराओं से भी शोभित है अकेले आपने इस उत्तम पर्वत को छोड़कर इस भवन को सेवन किया, ब्रह्माजी बोले इस पर्वतों में श्रेष्ठ वैजयन्त नाम पवत को मैं सदैव सेवन करता हूं यहां मैं एकाग्रमन से विराट् पुरुष का ध्यान करताहूं, रुद्रजी बोले कि, हे ब्राह्मण ! स्वतः उत्पन्न होनेवाले तुमने बहुत से पुरुषों को उत्पन्न किया और अब भी करते हो सो हे ब्रह्मन् ! वह विराट् पुरुष अकेला है सो कौन है जिसको तुम ध्यान किया करते हो आप इस मेरे संदेह को दूर करिये मुझे इसके जानने की बड़ी इच्छा है, ब्रह्माजी बोले हे पुत्र ! तत्त्वों से संघातरूप अनेक पुरुष हैं जो तुमने अच्छी रीति से वर्णन किये इस संघात को उल्लंघन करनेवाला पुरुष इसप्रकार से दर्शन के योग्य नहीं है उस अकेले पुरुष के अधिष्ठान को मैं तुमसे कहता हूं जैसे कि बहुत से पुरुषों का उत्पत्ति स्थान एकही कहा जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष निर्गुण होकर उस विश्वरूप परम सूत्रात्मा वृद्धों को वृद्ध निर्गुण अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव नाम रखनेवाले सनातन निर्गुण ब्रह्म में प्रवेश करते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे पञ्चसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

एकसौ छिहत्तर का अध्याय ॥

ब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र ! जैसे यह न्यूनतारहित अविनाशी सनातन पुरुष सब स्थानों में वर्त्तमान कहाजाता है और देखाजाता है वह पुरुष हमसे तुमसे और अन्य पुरुषों से जो बुद्धि इन्द्रिय युक्त वा शम दमादि गुणों से रहित है दर्शन करने के अयोग्य है वह विश्वात्मा केवल ज्ञानी सेही देखने में आता है, तीनों देहों से पृथक् यह पुरुष सब शरीरों में निवास करता है और शरीरों में बसता हुआ भी कर्मों में प्रवृत्त नहीं होताहै, वही मेरा और तेरा अन्तरात्मा है और दूसरे शरीरवान् हैं उन सबका साक्षी है तो भी वह कहीं किसी से पकड़ने के योग्य नहीं है, यही विश्वरूप है इसको कहते हैं–विश्वही उसका मस्तक, भुजा, चरण, नाक, आंख आदि हैं वह अपनी इच्छा से कर्मकर्त्ता है सब शरीरों में सुखपूर्वक घूमता है, सब शरीर क्षेत्र हैं और अच्छे बुरे कर्म बीजरूप हैं वह योगात्मा उनको जानता है इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाता है, जीवों में किसी से उसकी ऊर्ध्व वा दिव्ययान आदिकी गति जानी नहीं जासक्ती है मैं सांख्ययोग से क्रमपूर्वक उसकी गति को विचारता हूं परन्तु उसकी उत्तम गति को

नहीं जानता हूं तौ भी ज्ञान के अनुसार सनातन पुरुष को वर्णन करताहूं और एकता और बुद्धिमत्ता को भी कहता हूं–जो अकेला पुरुष कहाजाता है वही सनातन अकेला पुरुष महापुरुष कहलाता है एकही अग्नि अनेक प्रकार से वृद्धि पाता है एकही सूर्य्य सर्वत्र प्रकाश करता है तप का उत्पत्तिस्थान एक ही है लोक में एकही वायु अनेक प्रकारसे चलती है और जलों काभी उत्पत्तिस्थान केवल एक समुद्र है और पुरुष भी अकेला निर्गुण और सगुण है उसी निर्गुण पुरुषमें सब प्रवेश करतेहैं सब देह, इन्द्रिय, अहंकार, रूप, गुणों को छोड़ शुभाशुभ कर्म्मों को त्यागकर, अविनाशी जीव और प्रधानभोक्ता भोग को त्याग करके निर्गुण होता है, जो पुरुष गुरु से जताये हुए मनसे परे परमात्मा को जानकर अर्थात् साक्षात्कार करके सूक्ष्म विभागरूप अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव अथवा अधिदेव विराट् सूत्रात्मा अन्तर्यामी शुद्ध ब्रह्म या अध्यात्म विश्व तैजस प्राज्ञ इन सबमें कर्म करनेवाला होता है अर्थात् सूक्ष्म स्थूल लय के क्रम से सदैव समाधि को अधिष्ठान करता है वह बड़ा शान्त है और वही उस शुभपुरुष को प्राप्त करता है, इसप्रकार कोई पण्डित वा योगी परमात्मा को चाहते हैं, उस स्थान पर जो परमात्मा है वह सदैव निर्गुण कहाता है वही सबका आत्मा पुरुष नारायण जानने के योग्य है वह कर्म्मों के फल से भी कभी सम्बन्ध नहीं रखता जैसे कि जल से कमल का पत्ता स्पर्श नहीं करता, कर्मकर्त्ता दूसरा पुरुष है जोकि मोक्ष बन्धनों से संयुक्त होता है वह तत्त्वों के समूह लिंगशरीर से संयुक्त होते हैं इस प्रकार वह उपाधियुक्त जीवात्मा कर्मों के विभाग से देव मनुष्यादि के रूपों को प्राप्त करनेवाला पुरुष क्रमपूर्वक बहुत प्रकार का तुम से कहा है जो वह पुरुष संपूर्ण लोक मन्त्र का प्रकाशक चैतन्य ज्योतिरूप है वही जानने के योग्य उत्तम समझनेवाला जीव है वही सब इन्द्रियों के विषयों का भोगनेवाला जानने के योग्य है हे तात ! जिसको सगुण निर्गुण और प्रधान पुरुष भी कहते हैं, वह प्रधान पुरुष सदैव रहनेवाला आदि अन्तरहित रूपान्तर दशा से हीन और धाता से प्रथम महत्तत्त्व को उत्पन्न करता है–वेदपाठी ब्राह्मण उसको अहंकाररूप अनिरुद्ध कहते हैं जोकि लोक में वैदिक कर्म्मों का अधिष्ठाता देवता है वही इच्छा कियाजाता है उसी का ध्यान करना उचित है अच्छे शान्तरूप सब मुनि सावकाश के समय कर्मयज्ञ और उस यज्ञभोक्ता को समझते हैं अर्थात् यह कहते हैं कि इस अग्निहोत्र

से वह अनिरुद्ध का आत्मा वासुदेव प्रसन्न हो मैं संसार का आदि ईश्वर ब्रह्मा उससे उत्पन्न हुआ और तुम मुझ से प्रकट हुए, हे पुत्र! मुझ से ही जड़ चैतन्य जगत् और सब वेद रहस्यों समेत प्रकट हुए, चाररूपों में विभाग होनेवाला वह पुरुष क्रीड़ा करता है जैसा चाहता है वैसाही वह षडैश्वर्य्य का स्वामी अपने द्वैत ज्ञान से सावधान होता है अर्थात् वह वासुदेव उपाधियुक्त होकर चार प्रकार का होता है और अन्त में अपने अखण्ड स्वरूप के ज्ञान से जीवभाव को त्याग कर वासुदेवही होता है, हे पुत्र! यह मैंने तेरे पूछने से भक्ति और भक्तिजन्य ज्ञान और ज्ञान से प्राप्त होनेवाला मोक्ष जोकि सांख्यज्ञान और योगशास्त्र में निश्चय कियागया है मूल समेत वर्णन किया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे पञ्चसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

एकसौ सतहत्तर का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, यद्यपि सुलभा और राजा जनक के संवाद में संन्यास धर्म को उत्तम कहा तथापि सुख से प्राप्त होनेवाला श्रेष्ठ आश्रम कौन है और इस ज्ञान की इच्छा से प्रश्न कियेहुए मोक्षधर्म से सम्बन्ध रखनेवाले पितामह ब्रह्मा ने जो शिवजी से वर्णन किया वह आश्रमियों के मध्य में उत्तम धर्म आप कृपा करके वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि, सब आश्रमियों में वह धर्म विचार कियागया है जोकि स्वर्ग और मोक्षनाम बड़े फल का देनेवाला है इस लोक में यज्ञ दान आदि बहुत से द्वार रखनेवाले धर्म के कर्म निष्फल नहीं हैं हे भरतर्षभ! जो पुरुष जिस २ आश्रम धर्म में पूरे निश्चय को पाता है वह उसी को जानता है दूसरे को नहीं जानता है, इस दशा में न्यायपूर्वक धन प्राप्त करनेवाले गृहस्थाश्रम की उत्तमता सिद्ध करने को उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मण का इतिहास प्रारम्भ करते हैं, हे नरोत्तम! पूर्वसमय में श्रीनारद महर्षि से इन्द्र के सम्मुख वर्णन की हुई यह कथा मैं तुम से कहता हूं, कि तीनों लोकों का अभीष्ट सिद्ध करनेवाले वायु के समान बेरोक शुद्ध नारदजी क्रमपूर्वक लोकोंमें भ्रमण करते थे, वह नारदजी घूमते हुए कभी इन्द्रलोक को गये और वहां इन्द्र ने उनकी उत्तम प्रतिष्ठा करके श्रेष्ठ आसन पर विराजमान किया और यह पूछा कि हे निष्पाप, महर्षे! आपने कोई अद्भुतता भी देखी है, आप नाना प्रकार के अद्भुत कौतूहलों को देखतेहुए तीनों लोकों में आनन्द से विचरते रहते हो ऐसी कोई बात नहीं है जो आपको विदित न हो चाहे आपने सुना

हो वा अनुभव किया हो अथवा देखा हो मुझ को आप के मुख से सुनने की बड़ी अभिलाषा है हे युधिष्ठिर ! तब तो नारदजी ने इस बड़े इतिहास को इन्द्र से वर्णन किया सो जैसे नारदजी ने इन्द्र के पूछने पर कथा को कहा वैसेही तुम्हारे पूछने पर मैं तुम से कहता हूं ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे सप्तसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

एकसौ अठहत्तर का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे नरोत्तम ! गंगाजी के दक्षिण तटपर महापद्मनाम उत्तम नगर में कोई सावधान तपस्वी ब्राह्मण था, जोकि सौम्य और अत्रि गोत्रवाले वेदमार्ग जानने में संशय रहित सदैव धर्मिष्ठ क्रोध और इन्द्रियजित तप वेदपाठ अथवा जप में प्रीति करनेवाला सत्यवक्ता सज्जन न्याय से उपार्जित धन और अपने शील स्वभावयुक्त बहुत से सजातीय कुटुम्बी लोगों से युक्त ब्रह्मचर्य्य आश्रम के समान प्रसिद्ध बड़ा कुलीन श्रेष्ठवृत्ति में नियत था, वह अपने बहुत से पुत्रों को देखकर महाकर्म में नियत कुलधर्मी अपनी धर्मचर्य्या में उपस्थित हुआ, फिर वह ब्राह्मण वेद और शास्त्र के लिखेहुए उत्तम लोगों के अनुभूत तीन प्रकार के धर्म को मन से विचारकर, सदैव ऐसा दुःख पाताथा कि कैसे मेरा बेड़ा पार हो ऐसा कौन सा कर्म और स्थान है जिसका सेवन करूं किसी बात में पूरा निश्चय नहीं होता था, एक समय कोई बड़ा सावधान अतिथि ब्राह्मण जोकि उत्तम धर्म का ज्ञाता था उस दुःखी ब्राह्मण के समीप आया उसने बड़ी भक्ति से उसका शिष्टाचार किया और उनको प्रसन्न कर आनन्द से बैठाकर यह वचन कहा ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽष्टसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

एकसौ उन्नासी का अध्याय ॥

ब्राह्मण ने कहा कि, हे निष्पाप ! मैं तेरे मीठे वचनों से तेरे वश में हूं तुम मेरे मित्र हो अब मैं जो कुछ कहूं उसको सुनो हे वेदपाठियों में उत्तम ! मैं गृहस्थ आश्रम को अपने पुत्र के आधीन करके मोक्षधर्म में प्रवृत्त होना चाहता हूं आप मुझको वह मार्ग बताइये मैं अकेला ही आत्मा का आलम्बनकर आत्मा में नियत होकर संन्यास आश्रम को धारण किया चाहता हूं परन्तु इन्द्रियों के जाल में फँसे हुए होने से उसको नहीं चाहता हूं जबतक पुत्र के स्नेह कर्म में फँसकर मेरी अवस्था व्यतीत हो तबतक परलोक सम्बन्धी

पाथेय अर्थात् परलोक के मार्ग का भोजनादि पदार्थ प्राप्त किया चाहता हूं, इस ब्रह्माण्ड के बीच मुझ संसार से पार उतरनेवाले का विचार हुआ है कि धर्मरूप नौका किस आश्रम में है संसार में देवताओं को कर्म में प्रवृत्त और पीड्यमान विचारता सृष्टि में ऐसे फैले हुए रोगों को जो कि यमराज की पताका के दण्डरूप हैं देखता हूं और भोजन के समय संन्यासियों को दूसरे के घर में भिक्षा मांगनेवाला देखकर इस संन्यासधर्ममें भी प्रवृत्त नहीं होताहूं हे अतिथे ! इसी कारण बुद्धिबल में नियत धर्म के द्वारा मुझको धर्म में प्रवृत्त करो उस ज्ञानी अतिथि ने उस धर्म का वर्णन करनेवाले ब्राह्मण के वचन को सुनकर बड़ी मधुरता से इस स्वच्छ वचन को कहा कि इस स्थान पर मैं भी मोह को पाता हूं मेरा भी यही मनोरथ है कि अनेक द्वारयुक्त स्वर्ग होने पर पूरे निश्चय को नहीं पाता हूं कोई मोक्ष की प्रशंसा करते हैं कोई यज्ञ के फल को उत्तम कहते हैं कोई वानप्रस्थ धर्म में कोई गृहस्थाश्रम में नियत हैं कोई राजधर्म सम्बन्धी धर्म को कोई आत्मफल सम्बन्धी धर्म को कोई गुरुधर्म सम्बन्धी कर्म को कोई शान्तचित्तीयधर्म को और कोई माता पिता को सेवन करते हुए स्वर्ग को गये कोई हिंसारहित सत्यता के द्वारा स्वर्ग को गये, कोई युद्ध में लड़कर मरनेवाले स्वर्ग को गये कोई पुरुष उञ्छवृत्ति से शुद्ध कोई पुरुष स्वर्गमार्ग में प्रवृत्त कोई वेदपाठी वेदव्रत में नियत बुद्धिमान् तृप्त आत्मा जितेन्द्रिय उत्तम पुरुष स्वर्ग को गये शुद्धस्वभाव शुद्ध अन्तःकरण प्रतिष्ठावान् सत्यवादी और ऐसे भी मनुष्य जो कुटिल पुरुषों के हाथ से मारेगये स्वर्ग में आनन्द करते हैं इसप्रकार बहुतप्रकार के लोकों और धर्म के बड़े २ द्वारों से मेरी भी बुद्धि ऐसी व्याकुल हुई है जैसे वायु से बादल अस्तव्यस्त होजाते हैं ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकोनाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

एकसौ अस्सी का अध्याय ॥

अतिथि ने कहा कि, हे ब्राह्मण ! जैसा मेरे गुरु ने उपदेश किया है वैसाही मैं तुमसे वर्णन करता हूं प्रथम अर्थतत्त्व को कहता हूं उत्पत्ति के समय में जिस नैमिषारण्य क्षेत्रके गोमती के तटपर धर्मचक्र वर्त्तमानहुआ वहां नागाह्वय नाम एक नगर था जहां राजाओं में श्रेष्ठ मान्धाताने यज्ञ करके इन्द्र को विजय किया अथवा स्वाधीन किया था वहांपर पद्मनाभ नागनाम से प्रसिद्ध महाभाग धर्मात्मा सर्प निवास करताहै हे विप्रेन्द्र ! कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीनप्रकार के

ज्ञान में प्रवृत्त होकर वह सर्प मन, वाणी, कर्म से सब जीवों को प्रसन्न करताहै और साम, दाम, दण्ड, भेद इन चार प्रकार के नीति विचार से अर्थ के मूल को जानकर कुटिलतारहित सत्यताको प्रतिपालन करता है अर्थात् सत्यवक्ता को अभय और दुष्ट को दण्ड देताहै तुम उसके समीप जाकर अपने प्रयोजन का प्रश्न बुद्धि के अनुसार उससे कहने को योग्य हो वह सत्यवक्ता, धर्मात्मा, अतिथियों का पूजन करनेवाला, नागबुद्धि और शास्त्र में कुशल, सर्वज्ञ और अनेक गुणों से पूर्ण है और स्वभाव से सदैव जल के समान निर्मल अहर्निश जपमें प्रवृत्त तप और शान्ति से शोभित श्रेष्ठ आचरणवान् ईश्वर का पूजन करनेवाला, महादानी, सन्तोषरूपी उत्तम व्रत में नियत, सत्यवक्ता, किसी के गुणमें दोष न लगानेवाला, जितेन्द्रिय और प्रसन्नचित्त है, देवता पितृ आदि से शेष अन्नादि भोजन का करनेवाला, सबसे प्रियभाषी, उपकार और सत्यतासंयुक्त, दूसरे के शुभाशुभकर्म्मों का जाननेवाला, शत्रुतारहित, दूसरे के अभीष्ट में प्रवृत्त गंगाजल के समान शुद्ध कुलवाला है ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

एकसौ इक्यासी का अध्याय ॥

ब्राह्मण बोला कि, मैंने आप से दूसरे का निश्चय और दृढ़ता करानेवाला वचन सुना यह ऐसा है जैसे कि किसी भार धरेहुए मनुष्य का भार उतारलेना और मार्ग में किसी थकेहुए का सोरहना अथवा थकेहुए को आसन देना प्यासे को जल और भूखे को अन्न का देना होता है, समयपर भूखे अतिथि को मनमाना भोजन मिलना और जैसा वृद्धपुरुष का पुत्र प्रसन्नता का देनेवाला होता है अथवा जैसे मन से विचार कियेहुए की प्रीति और मित्र का दर्शन आनन्ददायक होता है उसीप्रकार आपने जो वचन कहे वह मुझ को अत्यन्त प्रसन्नता के देनेवाले हैं, अब तुम ने विज्ञान वचन से जो यह उपदेश मुझ को किया उसको मैं आकाश में दृष्टि करनेवाले के समान देखता और शोचता हूं हे साधो ! आप आनन्दपूर्वक निवास करके प्रातःकाल जाने का विचार करियेगा आज की रात्रि मेरे साथ में सुखपूर्वक निवास करो और जैसी आपने आज्ञा की है वैसाही मैं करूंगा इससमय सूर्य्यनारायण अस्तंगत होनेवाले हैं, भीष्मजी बोले हे शत्रुहन्तः ! तब वह अतिथि उसके शिष्टाचार को पाकर रात्रिभर उसी के समीप रहा और आनन्द से चौथे धर्म का वर्णन करतेहुए दोनों ने जब वह

रात्रि व्यतीत की तब प्रातःकाल होते ही ब्राह्मण ने उस अतिथि को अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूजा तदनन्तर वह कर्म का निश्चय करनेवाला अपने भाई पुत्र स्त्री आदि से पूछकर शुभकर्म में निश्चय करनेवाला ब्राह्मण अतिथि के बतायेहुए उस सर्पराज के स्थान को चला ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

एकसौ बयासी का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, वह ब्राह्मण अपने स्थान से चलकर मार्ग के अनेक विचित्र वन, पर्वत, तीर्थ, नदी, सरोवरोंको देखता हुआ चला २ किसी मुनि के पास पहुँचा तो उस ब्राह्मण ने उस अतिथि के बतायेहुए नाग के स्थान को उस मुनि से पूछा तो वह इसके वचन को सुनतेही चलदिया, उस अर्थ के जाननेवाले ब्राह्मण ने नाग के स्थानपर पहुँचकर हे अमुकनाग! ऐसा सुन्दर वचन कहा कि मैं अमुक ब्राह्मण हूं इसके इस वचन को सुनते ही धर्मचारिणी पतिव्रता नागपत्नी ने आकर उस ब्राह्मण को दर्शन दिया और सुन्दर व्रत में प्रवृत्त उस नाग की पत्नी ने बुद्धि के अनुसार धर्मपूर्वक उस ब्राह्मण का सत्कार पूर्वक पूजन किया और कुशल मङ्गल पूछकर बोलीकि क्या आज्ञा है, ब्राह्मण ने कहा कि, मैं तेरे इस स्वच्छ पवित्र सुन्दर वचनों सेही आनन्दयुक्त होकर उस उत्तम नाग देवता का दर्शन करना चाहता हूं यही मेरा प्रथम उत्तम कार्य है इसीमें मेरे मन की परम इच्छा है इसी प्रयोजन से मैं सर्पराज के आश्रम को आया हूं, नाग की भार्य्या बोली हे ब्राह्मण! वह मेरा पति चार महीने से सूर्य्य देवता का रथ धारण करने को गया है सो तुमको निस्सन्देह पन्द्रह दिन पीछे दर्शन देगा मैंने अपने पति के परदेश जाने का यह कारण तुमसे वर्णन किया इसके सिवाय जो आपकी आज्ञा सेवा हो उसको हमसे कहिये वही हम करें, ब्राह्मणने कहा हे साध्वि, देवि! मैं उसीसे मिलनेको आयाहूं और उस नागराजकी बाट देखता हुआ इस महावन में निवास करूंगा तुम मेरी यह प्रार्थना नागराज से कहने के योग्य हो कि मेरे संग स्नेह करे, मैंभी सामान्य आहार करनेवाला उसके आने के समयतक गोमती के सुन्दर पुलिनमें उसकी बाट देखूंगा, तदनन्तर वह वेदपाठियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण वारंवार उस नागपत्नी को विश्वास देकर उक्तनदी के पुलिन अर्थात् रेत के टीले पर गया ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे द्व्यशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

एकसौ तिरासी का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे नरोत्तम ! तब वह सर्पिणी उस तपस्वी ब्राह्मण के निराहार निवास करने से महादुःखित हुई और उस नाग के भाई बन्धु पुत्र आदि भी सब इकट्ठे होकर उस ब्राह्मण के पास गये और उस नदी के रेत में निराहार निवास करते हुए जप में प्रवृत्त उस ब्राह्मण को बैठाहुआ देखा, अतिथिपूजन में कुशल सर्पराज के सब भाई बन्धु वहां उस ब्राह्मण का वारंवार पूजन करके यह शुभ वचन बोले कि हे तपोधन ! यहां तुमको आये हुए छः दिन व्यतीत होगये हे धर्मवत्सल ! तुम अपने भोजन के विषय में कुछ नहीं कहते हो तुम हमारे पास आये हो और हम आपके सन्मुख वर्त्तमान हैं और हमको आपका अतिथिपूजन करना उचित है क्योंकि हम सब कुटुम्बी हैं, हे द्विजन्माओं में श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम आहार के निमित्त मूल, फल, पत्र, दूध, अन्न आदि भोजन करने को योग्य हो, हे वन में निवासी, आहार त्यागने वाले ! आपके कारण धर्म सुनने के हेतु से यह सब बालक और वृद्ध पीड़ा पारहे हैं, हमारे इस कुल में कोई भी गृहस्थी ब्रह्महत्या करनेवाला मिथ्यावादी नहीं है और देवता अतिथि बान्धवों से पहले भोजन करनेवाला भी कोई नहीं है, ब्राह्मण बोला कि, मैंने तुम्हारे कहने से यह आहार का वचन किया कि नागके आनेमें आठ दिन बाकी हैं, जो आठ रात्रिके व्यतीत होने पर वह सर्प नहीं आवेगा तब आहार करलूंगा यह उसी के निमित्त मेरा व्रत है, शोच न करना चाहिये जैसे आये हो वैसेही चलेजाओ उसके निमित्त इस मेरे व्रत को तुम खंडित करनेके योग्य नहीं हो, हे नरोत्तम ! तब उस ब्राह्मणकी आज्ञापाकर अपने मनोरथ प्राप्त किये विना वह सब सर्प अपने अपने घरको आये ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे त्र्यशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

एकसौ चौरासी का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, इसके अनन्तर बहुत तिथियुक्त समय के व्यतीत होने पर उस काम से निवृत्त हो सूर्य्य देवता की आज्ञा लेकर वह सर्प अपने स्थान पर आया, तब उसकी स्त्री चरणप्रक्षालनादि सेवा गुणयुक्त होकर उसके पास गई सर्प ने भी उस शुद्ध साध्वी स्त्री का बड़ा सत्कार करके पूछा, कि हे कल्याणिनि ! पूर्व कहीहुई युक्तिसंयुक्त बुद्धि से देवता अतिथि आदि के पूजनमें नियत हो क्योंकि वह कर्म तेरे योग्य है, हे सुन्दरि ! तुम स्त्रीबुद्धि से प्रयोजन

की सिद्धि करनेवाली होकर आलस्य से मेरे वियोग में धर्म मर्यादा से पृथक् तो नहीं होगई, नागपत्नी बोली कि शिष्योंका धर्म गुरुकी सेवा है ब्राह्मणोंका धर्म वेद का पढ़ना है नौकरों का धर्म स्वामी की आज्ञा का करनाहै राजा का धर्म प्रजाका पालनाहै, इसलोक में सब जीवोंकी रक्षा करना क्षत्रियोंका धर्म कहाजाता है वैश्योंका धर्म अतिथिपूजन और यज्ञ स्मृति है अर्थात् गौ सेवा आदि है शूद्रोंका कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवाहै हे नागेन्द्र ! गृहस्थी का धर्म सब जीवोंकी वृद्धि को चाहनाहै, गृहस्थी को योग्यहै कि सामान्य भोजन करना और सदैव बुद्धिके अनुसार व्रत करना मुख्यकर वह धर्म जो इन्द्रियोंके सम्बन्धसे होताहै और यह समझना कि यहां मैं किसकाहूं कहांसे आया और मेरा कौनहै इसप्रकार सदैव मोक्ष आश्रमके बीच बड़े काममें श्रेष्ठ बुद्धिका लगाने वाला होवै और भार्य्या का उत्तम धर्म पतिव्रत कहाजाता है हे नागेन्द्र ! मैं तेरे उपदेश से उसको मुख्यतासमेत जानती हूं सो मैं धर्मको अच्छे प्रकार जानती हुई तुझ धर्म्मात्माके नियतहोते उत्तम मार्गको त्यागकर कैसे कुमार्गमें चलूंगी, हे महाभाग ! देवताओंकी धर्मचर्य्या नाश नहींहोतीहै मैं आलस्य रहित होकर अतिथियोंके पूजनमें सदैव प्रवृत्तहूं अब यहां आनेवाले ब्राह्मणको पन्द्रहदिनहुए उसने अपना प्रयोजन मुझसे नहीं प्रकटकिया और तेरे दर्शनको चाहताहै, तेरे दर्शनका अभिलाषी तीव्रव्रतधारी वहब्राह्मण गोमतीके पुलिनमें वेदपाठ कररहा है, हे नागेन्द्र ! मुझको उस ब्राह्मणने बड़ी सत्यतासे उपदेशकियाहै कि वह सर्प जब आवै तब मेरे समीप उसको भेजना उचितहै, हे महाज्ञानिन्, सर्प ! तुमको इस वचन के सुनते ही वहां जाकर उसको दर्शन देना अवश्य है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे चतुरशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

एकसौ पचासी का अध्याय ॥

नाग बोला हे पवित्रे, स्त्री ! तुम उसको ब्राह्मणरूप से कौन जानती हो केवल मनुष्य ब्राह्मण जानती हो वा देवता समझती हो हे यशस्विनि ! वह कौन मनुष्य मेरे दर्शन का अभिलाषी और समर्थ है और देखनेपर कौन सी आज्ञा के साथ वचन को कहेगा हे भामिनि ! निश्चय करके देवता असुर और देव ऋषियों में नाग लोग बड़े पराक्रमी दिव्य गन्ध धारण करनेवाले और वेगवान् होते हैं और वन्दना के योग्य होकर वर को भी देनेवाले हैं और हम भी उनके समान अथवा उनके अनुगामी हैं वह नाग मुख्य करके मनुष्यों

को नहीं दर्शन देसके यह मेरामत है, नाग भार्य्या बोली हे वायुभक्षिन्, महाक्रोधिन् ! मैं सत्यता से जानती हूं कि देवता नहीं है इसके विषयमें इसप्रकार जानतीहूं कि वह भक्तपुरुषहै और अपने निजकामका चाहनेवाला तेरे दर्शन को इसप्रकारसे चाहनेवालाहै जैसे कि स्वातिके जल का प्यासा पपीहा वर्षनेवाले बादलकी बाटको देखे, वह तेरे दर्शनके किये विना किसी दुःखरूप विघ्न को नहीं मानताहै उत्तमकुलमें जन्म लेनेवाला कोई अन्य सर्पभी किसी अतिथिको त्याग करके अपने घर में नहीं बैठ रहता है सो तुम देहजन्य क्रोधको त्याग करके उसके देखने को योग्य हो अब उसके अभीष्ट नष्ट करने से तुम अपने को नष्ट मत करो, राजा अथवा राजकुमार आशावान् अपने आश्रितों के अश्रुपात न पोंछकर भ्रूणहत्या को प्राप्त होता है मौनतासे ज्ञानकी प्राप्ति है और दान से बड़ी शुभकीर्त्ति होती है और सत्य बोलनेसे वाणी प्रसन्न होती है और परलोक में प्रतिष्ठा होती है, भूमि दानकरने से आश्रमके समान गति को प्राप्तकरताहै औरन्यायसे धन संचयकरके उसके फलको भोगताहै, सबके अंगीकृत पक्षपातरहित अपने हितकरनेवाले धर्मकोकरके कोईभी नरकको नहीं जाता है यह बातें धर्मकी जानीहुईहैं, नाग बोला अहंकारादिकसे मेरा क्रोध नहीं है मेरे उत्पत्ति दोषसे मुझको बड़ाक्रोधहै हे साध्वि ! तुमने अपने वचनरूप अग्नि से उस मेरे क्रोधको भस्म करदिया जो संकल्पसे उत्पन्न हुआथा, हे साध्वि ! मैं क्रोधसे अधिक कोई बुरा दोष नहीं समझताहूं सर्पही में विशेषकरके वह क्रोधरूप निन्दा होती है, इन्द्र से ईर्षा करनेवाला वह महाप्रतापी रावण क्रोध के वशीभूत होकर रामचन्द्रजी के हाथसे मारागया, राजा कार्त्तवीर्य्य के पुत्रादिक महलोंसे बछड़ों को परशुराम करके लेजाना सुनकर अपने क्रोध से व्याकुल होकर मारेगये इन्द्रकी समानता रखनेवाला महापराक्रमी कार्त्तवीर्य्य जिसका दूसरा नाम सहस्रार्जुन भी है वह भी क्रोधके ही कारण जमदग्निजी के पुत्र परशुरामजी के हाथसे मारागया, मैंने तेरे वचनको सुनकर यह तप और अनेक कल्याणों का नाश करनेवाला क्रोध अपने स्वाधीन किया, हे विशालाक्षि ! मैं अधिकतर अपनी प्रशंसा करता हूं उसी मुझ अवगुणी सर्पकी तुम गुणवान् भार्य्याहो, मैं वहींजाताहूं जहां वह ब्राह्मण नियत है और सबप्रकारसे यही वचन नागिनसे कहा कि वह ब्राह्मण अपने मनोरथको प्राप्तकरके ही जायगा ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे पञ्चाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

एकसौ छियासी का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, वह सर्प उसी ब्राह्मणको मनसे ध्यान करताहुआ उसके मनोरथ को विचारता अपनी सर्पगतिसे उस ब्राह्मण के पास पहुँचा हे राजन्! स्वभाव से धर्मवत्सल बुद्धिमान् वह नागेन्द्र उसके समीप पहुँचकर यह मीठे वचन बोला कि हे ब्राह्मण ! मैं तुम को सम्मुख करके कहता हूं कि तुमको क्रोध करना योग्य नहीं है यहां किस हेतु से आये और क्या आपका प्रयोजन है, हे ब्राह्मणोत्तम ! मैं सन्मुख से समीप होकर प्रीतिके साथ तुमसे पूछता हूं कि तुम इस एकान्तस्थानमें गोमतीके रेतपर किसकी उपासना करतेहो, ब्राह्मण ने कहा कि पद्मनाभ सर्प के दर्शन करनेको यहां मुझे आयेहुए को धर्मारण्यनाम उत्तम ब्राह्मण जानो मेरा प्रयोजन उसीसे है, मैंने उसको यहां से सूर्य्यलोक में जाना सुना है उसी अपने सुजन मित्रकी बाट ऐसे देखरहाहूं जैसे कि खेती करनेवाले पर्जन्यनाम वर्षाके देवता बादलको देखते हैं, योगसंयुक्त सब दोषोंसे रहित होकर मैं उसवेदको पढ़ताहूं जोकि दुःखोंका दूरकरनेवाला और कल्याणों से भराहुआ है, नाग बोला कि बड़ा आश्चर्यहै कि तुम साधु और मित्रवत्सल कल्याणरूप चलन रखनेवालेहो हे महाभाग ! निन्दासेरहित तुम दूसरेको कृपादृष्टिसे देखते हो, हे ब्रह्मर्षे ! मैं वही नागहूं जैसा कि आप मुझको जानतेहो तुम अपनी इच्छानुसार आज्ञाकरो आपका क्या अभीष्टकरूं हे श्रेष्ठ; ब्राह्मण! मैंने अपनी स्त्रीआदिसे आपकाआगमन सुनाहै इसकारण मैं तुम्हारे दर्शनोंको आयाहूं अबआप मुझको मिलेहो अपने मनोरथको सिद्धकरके जाओगे हे विश्वासयोग्य, उत्तम, ब्राह्मण! आप अपने अभीष्टको मुझसे कहनेको योग्यहैं वास्तवमें हम सब आपके गुणोंसे बिकेहुए हैं इसहेतु से कि आप अपने हित को छोड़कर मेरा भी भलाचाहते हैं, ब्राह्मणने कहा हे महाभाग, सर्प ! मैं तेरे दर्शनकी अभिलाषाकरके आयाहूं और प्रयोजनका न जाननेवाला मैं किसी अभीष्ट के पूछनेको तुम्हारे पास आयाहूं, हे महाभाग, ज्ञानिन्! मैं विषयों से रहित आत्मा में नियतहोकर जीवों के लयस्थान ब्रह्म को निश्चय करताहुआ भी चलायमान चित्तहूं, तुम अपने उन उत्तमगुणोंसे प्रकाशमानहो जोकि कीर्त्तिरूप किरणोंसे युक्त चन्द्रमा के समान आत्मा से प्रकाशित हैं, हे सर्प ! मुझ पूछनेवाले के जोजो प्रश्नहैं उनका तुम उत्तर दो फिर मैं अपने प्रयोजनकोभी कहूंगा आपउनके सुननेके योग्यहैं॥ १६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

एकसौ सत्तासी का अध्याय॥

ब्राह्मण ने कहा कि, आप समय पर सावधानी से सूर्य्य का वह रथ धारण करने को जाते हो जिसमें एक चक्र है आपने जो कुछ वहां आश्चर्य्य नवीन देखा हो उसके कहने को योग्य हो, नाग ने कहा कि भगवन्! सूर्य्य देवता बड़े आश्चर्यों के निवासस्थान हैं तीनों लोकों के सब अभीष्टतत्त्व उसी से प्रकट होते हैं, अच्छे २ सिद्ध, मुनि, देवता आदि जिसकी हज़ारों किरणों में आश्रित होकर ऐसे निवास करते हैं जैसे कि इसलोक के पक्षी वृक्ष की शाखाओं पर विश्राम करते हैं, सूर्य्य में नियत जिस बड़े भारी तेज से अति प्रबल वायु निकलकर उसी सूर्य्य की किरणों में नियत होता है और आकाश में जंभाई लेता है तब बड़ा आश्चर्य होता है, हे ब्रह्मऋषे! वह सूर्य्य देवता संसार की वृद्धि के लिये उस वायु का रूपान्तर करके वर्षाऋतु में जल को उत्पन्न करता है इससे अधिक कौनसा आश्चर्य है उसी के मण्डल में उत्तम तेजरूप से नियत होकर महाप्रकाशमान अन्तर्यामी परमात्मा लोकों को देखता है यह भी बड़ा आश्चर्य्य है, जो देवता आठ महीने तक अपनी पवित्र किरणों से संयुक्त होनेवाले जल को समयपर वर्षता है इससे अधिक और आश्चर्य क्या है, जिसके प्रकाश समूह में आप आत्मा नियत है उसीकी कृपा से यह पृथ्वी जड़ चैतन्य समेत सब ओषधियों को धारण करती है हे ब्राह्मण! जिस सूर्य देवता में महाबाहु आदि अन्त रहित सनातन देवता पुरुषोत्तम नियत है इससे अधिक आश्चर्य्य क्या है, यह एकबात आश्चर्य्य का भी आश्चर्य्य है जिसको कि तैंने निर्मल आकाश में सूर्य्य के द्वारा देखा है उसको मैं तुम से कहता हूं मध्याह्न के समय संसार में सूर्य्य के प्रकाशमान होनेपर एक प्रकाश सूर्य्य के भीतर ऐसा तेजस्वी दिखाई दिया जो अपने तेज के प्रकाश से सब लोकों को प्रकाशित करता आकाश को पूर्ण करके सूर्य्यदेवता के सन्मुख जाता था, जिस प्रकार आहुति संयुक्त अग्नि प्रकाशमान होता है उसीप्रकार अपने तेज की किरणों से लोकों को व्याप्त करके वाणी से परे दूसरे सूर्य्यरूप के समान था, उसके सन्मुख आनेसे सूर्य्य देवता ने दोनों हाथ दिये फिर उस पूजन के इच्छा करनेवाले ने भी अपना दक्षिण हाथ दिया, और आकाश को चीरकर किरणों के मण्डल में प्रवेश किया और क्षणमात्र में ही वह तेज एक होगया और सूर्य्य के रूप को प्राप्त किया फिर दोनों तेजों के मिलजाने पर हम को यह संदेह उत्पन्न हुआ कि इन दोनों में

वह सूर्य्य कौन सा है जो रथ में नियत होकर वर्त्तमान है हम सब ने संदेह में प्रवृत्त होकर सूर्य्य देवता से ही पूछा कि यह कौन पुरुष है जो आकाश को उल्लंघन करके दूसरे सूर्य के समान गया है ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे सप्ताशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

एकसौ अट्ठासी का अध्याय ॥

सूर्य्य देवता ने उत्तर दिया कि यह न तो अग्नि देवता है न कोई असुर गन्धर्व है यह उञ्छवृत्ती सिद्धमुनि स्वर्ग को गया है, यह ब्राह्मण मूल फल का आहार करनेवाला सूखे पत्तों का खानेवाला वा पूजन करनेवाला सावधान था; इस ब्राह्मण ने संहिताओं के पाठों से शिवजी की स्तुति की और जिस निमित्त इसने स्वर्ग के द्वारके लिये उद्योग किया था उसीके हेतुसे वह स्वर्ग को गया हे भुजंग लोगो ! यह ब्राह्मण संसारी मनुष्यों से न मिलनेवाला अनिच्छावान् सदैव उञ्छशिल का भोजन करनेवाला सब जीवों की भलाई में प्रवृत्त था, देवता असुर गन्धर्व पन्नग इत्यादि उन जीवों के ऐश्वर्य्य को प्राप्त नहीं करसक्ते हैं जिन्हों ने उत्तम गति को पाया है हे ब्राह्मण ! वहां मैंने इसप्रकार से आश्चर्य को देखा, हे ब्रह्मन् ! अच्छे शुद्ध इस मनुष्य ने चित्त की इच्छा के अनुसार शुद्ध गति को पाया और सूर्य्य के साथ पृथ्वी पर भ्रमण करता है ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेऽष्टाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

एकसौ नवासी का अध्याय ॥

ब्राह्मण ने कहा कि, हे सर्प ! बड़ा आश्चर्य है और निस्सन्देह मैं प्रयोजन के अनुसार प्राप्त होनेवाले वचनों से विदित किया गया हूं, हे साधुरूप, सर्प ! तुम्हारा कल्याण हो आप मुझको अब जाने की आज्ञा दो और आपका कोई कार्य्य मेरे करने के योग्य होय तो मुझे स्मरण करियेगा नाग ने कहा कि, हे ब्राह्मण ! आप अपने हृदय के कार्य्य को कहे विना कहां जाते हो जो करने के योग्य है और जिसके निमित्त तुम यहां आये हो उसको अवश्य कहो हे सुन्दर व्रतवाले, ब्राह्मण ! उक्त अनुक्त काम के करनेपर तुम मुझसे पूछकर और आज्ञा लेकर यहां से जाओगे हे मित्र, ब्रह्मर्षे ! जैसे कि कोई मनुष्य वृक्ष के फल लेने के निमित्त वृक्ष के नीचे जाकर उस वृक्ष को त्यागकर निष्फल जाय उसी प्रकार तुम यहां आकर अपने अभीष्ट सिद्ध किये विना मुझे त्यागकर जाते हो यह तुमको योग्य नहीं है, हे निष्पाप, ब्राह्मण ! मैं तुमसे प्रीति करनेवाला हूं और

तुम भी मुझपर प्रीति करते हो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है यह सब लोक आप का है आपको मेरी मित्रता करने में क्या संदेह है, ब्राह्मण ने कहा हे बड़े, बुद्धिमन्, आत्मज्ञानिन्, सर्प ! यह इसी प्रकार से है किसी दशा में भी देवता तुमसे अधिक नहीं हैं अर्थात् तुम देवताओं के समान हो, जो पुरुषोत्तम सूर्य्य के भीतर वर्त्तमान है वही तुम और हम भी हैं और जो मैं हूं वही आप हो अर्थात् हम तुम में कुछ भी अन्तर नहीं है वह आत्मा अद्वैत है जिसमें हम तुम और सब तत्त्व सदैव लय होते हैं हम वही ब्रह्म हैं, ब्राह्मण ने कहा हे सर्पराज ! पुण्यसंचयमें मुझको सन्देहथा सो हे साधो ! मैं मोक्षसाधन नाम उञ्छवृत्ति व्रत को करूंगा, यह मेरा पूर्व निश्चयका श्रेष्ठ कारण नियतहुआथा सो पूर्णहुआ तुम्हारा कल्याणहो अब मुझे आप बिदाकीजिये मेरा सब मनोरथ पूर्णहुआ॥ १०॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे नवाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

एकसौ नब्बे का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे राजन् ! तब निश्चय करनेवाला वह ब्राह्मण सर्प की आज्ञा लेकर दीक्षा लेने की इच्छा से भार्गव च्यवनऋषि के पास गया, और भार्गवजी से संस्कारयुक्त होकर धर्म में प्रवृत्त हुआ और इस कथा को भी अपने गुरु च्यवनजी के सन्मुख वर्णन किया, हे राजन् ! तब भार्गवजी ने भी राजा जनक की सभा में महात्मा नारदजी के सन्मुख इस पवित्र कथा को वर्णन किया, हे राजेन्द्र ! उन नारदजी ने इस उत्तम कथा को इन्द्र के पूछने पर देवसभा में वर्णन किया, और पूर्व्व समय में यह शुभ कथा इन्द्र ने भी श्रेष्ठ ऋषियों के सन्मुख वर्णन की, हे राजन् ! जब परशुरामजी से मेरा युद्ध बड़ा भयकारी हुआ तब यह कथा वसुओं ने मेरे सन्मुख वर्णन करी हे धर्मध्वज ! मैंने भी यह धर्मरूप उत्तम कथा मूलसमेत तुमसे वर्णन करी, हे राजन्, युधिष्ठिर ! जो तुम मुझसे पूछते हो वह यही उत्तम और पवित्र धर्म्म है, जिसको करके वह वीर ब्राह्मण भी इसी व्रत में धर्म, अर्थ, कामादिक से निरपेक्ष हुआ, और अपने कर्म में सर्पराज की आज्ञा पाके हिंसाआदि दोषों से और शोच आदि दुःखों से रहित सहनशील होकर उञ्छशिल को निर्वाहमात्र भोजन करनेवाला होकर वन में जाके पूर्व्वोक्त उत्तम गति को प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धे नवत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥१९०॥

इति शान्तिपर्व समाप्तम् ॥

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी ।
आगत क्रमांक.........................
दिनांक.........................

महाभारत भाषा-वार्तिक

महाभारत ही आर्यों का सच्चा इतिहास है और इसीके पढ़ने से हिंदुओं में धर्म-भाव, सत्पुरुषार्थ और समय के अनुसार कार्य करने की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

जब वेदव्यासजी ने अपने मन में यह संकल्प किया कि महाभारत लिखा जाना चाहिए, तब उन्होंने गणेशजी से कहा कि तुम हमारे लेखक बनो। गणेशजी ने उत्तर दिया कि हम आपकी आज्ञा मानने के लिये तैयार हैं; पर लेखनी न रुकनी चाहिये। व्यासजी ने कहा, अच्छी बात है। हमारी भी एक शर्त है—जो कुछ लिखना, उसका अर्थ समझकर ही लिखना। गणेशजी ने इस शर्त को स्वीकार किया। वेदव्यासजी ने बोलना शुरूअ किया और गणेशजी ने लिखना। जब वेदव्यासजी को कुछ सोचने की आवश्यकता होती, तब वे बीच-बीच में कूट-श्लोक बोल देते, जिससे गणेशजी को अर्थ समझकर लिखने में कुछ देर हो जाती। इस कारण व्यासजी को आगे का मज़मून सोचने का मौक़ा मिल जाता। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार इस महाभारत में ऐसे गूढ़ार्थ-युक्त ८,८०० श्लोक हैं, जिनके विषय में स्वयं वेदव्यासजी ने कहा है—

अष्टौ श्लोकसहस्राणि, अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति, संजयो वेत्ति वा न वा॥
(आदि-पर्व अध्याय १ श्लो० ८१)

अर्थात् ८,८०० श्लोकों का सत्य अर्थ मैं जानता हूँ, श्रीशुकदेवजी जानते हैं और इसमें संदेह है कि संजय जानते हैं, या नहीं। इस प्रकार एक लाख श्लोकों की भारत-संहिता का निर्माण करके वेदव्यासजी ने जगत् में विख्यात किया। इसमें वेदव्यासजी ने भूत, भविष्यत् और वर्तमान, इन तीनों कालों के लक्षण, मृत्यु, भय और रोगों की निवृत्ति के उपाय, अनेक प्रकार के धर्मों और आश्रमों के लक्षण, चारों वर्णों के कर्तव्यों का विधान, तप और ब्रह्मचर्य की क्रियाएँ, सूर्य-चंद्रमा आदि ग्रहों, नक्षत्रों और ताराओं आदि का युगानुसार प्रमाण ऋक्, यजु और सामवेद का संक्षेपतः व्याख्यान, कुरु-वंश का विस्तार, गांधारी की धर्मशीलता, विदुर की प्रज्ञा, कुंती का धैर्य, श्रीकृष्ण का माहात्म्य, पांडवों की सत्यनिष्ठा और धृतराष्ट्र के पुत्रों की दुष्टता का विशद वर्णन किया है। यदि इस बूढ़े भारतवर्ष के पाँच हज़ार वर्ष के पहले का सच्चा इतिहास जानना हो; यदि बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामह के पवित्र चरित्र को पढ़कर ब्रह्मचर्य-रक्षा का महत्त्व देखना हो; यदि भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के उपदेशों से आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाना हो; तो प्रत्येक पढ़े-लिखे हिंदी-प्रेमियों को यह "महाभारत भाषा-वार्तिक" मँगाकर अवश्य पढ़ना और लाभ उठाना चाहिए। पृष्ठ-संख्या लगभग ५,१५४; मूल्य २५) मात्र।

नोट—प्रत्येक पर्व क्रमशः अलग-अलग भी मिलते हैं—

पर्व-नाम	पृष्ठ-संख्या	मूल्य
आदि-पर्व I	३७८	२।)
सभा-पर्व II	१३८	।॥=)
वन-पर्व III	६२०	३।)
विराट-पर्व IV	१२८	॥।)
उद्योग-पर्व V	५०६	२।)
भीष्म-पर्व VI	३२४	१॥।)
द्रोण-पर्व VII	६१०	२॥।)
कर्ण-पर्व VIII	३२८	१॥)
शल्य और गदा-पर्व IX	२०४	१।)
सौप्तिक और स्त्री-पर्व X	१०४	॥=)
अनुशासन-पर्व XI	५६२	२।)
अश्वमेध-पर्व XII	१९८	१।)
शांति-पर्व XIII	८८६	४।)
आश्रमवास-पर्व मुशल-पर्व, महाप्रस्थान-पर्व और स्वर्गारोहण-पर्व	११६	॥।)

मिलने का पता—

मैनेजर—नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ.

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग विद्यालय (पुस्तकालय)
क्र० सं०..........
वि० सं०..........
अस्सी, वाराणसी।

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक 1022
दिनांक